तफ़हीमुल-क़ुरआन

हिस्सा-4

(लुक़मान–अल-अहक़ाफ़)

मौलाना सैयद-अबुल-आला मौदूदी (रह०)

हिन्दी तर्जमा
मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी फ़लाही

MARKAZI MAKTABA ISLAMI PUBLISHERS
NEW DELHI
مرکزی مکتبہ اسلامی پبلشرز

तफ़हीमुल-क़ुरआन

हिस्सा-4

(लुक़मान — अल-अहक़ाफ़)

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह॰)

हिन्दी तर्जमा
मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी फ़लाही

एम॰ एम॰ आई॰ पब्लिशर्स

नई दिल्ली-110025

TAFHEEMUL QUR'AN, Part-IV (Hindi)
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट प्रकाशन न० -407
©सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

नाम मूल किताब (उर्दू) : तफ़हीमुल-क़ुरआन हिस्सा-IV
हिन्दी तर्जमा : मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी फ़लाही

प्रकाशकः **मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स**
D-307, दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव,
जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
दूरभाष : 26981652, 26984347
Mobile: 7290092401 WhatsApp: 7290092403
E-mail: mmipublishers@gmail.com
E-mail: info@mmipublishers.net
Website: www.mmipublishers.net

सफ़हात	:	800
दूसरा संस्करण	:	सितम्बर 2021 ई०
तादाद	:	1100
हदिया	:	₹585.00

ISBN 978-81-8088-846-5

मुद्रक : H. S. Printers, Tronica City, UP

सूरतों की फ़ेहरिस्त

● दो लफ़्ज़ 4

सूरा नं॰ और नाम

31. लुक़मान 5
32. अस-सजदा 35
33. अल-अहज़ाब 61
34. सबा 195
35. फ़ातिर 241
36. यासीन 271
37. अस-साफ़्फ़ात 305
38. सॉद 349
39. अज़-ज़ुमर 393
40. अल-मोमिन 429
41. हा-मीम अस-सजदा 479
42. अश-शूरा 521
43. अज़-ज़ुख़रुफ़ 575
44. अद-दुख़ान 615
45. अल-जासिया 637
46. अल-अहक़ाफ़ 659

● इंडेक्स 689

तफ़हीमुल-क़ुरआन, हिस्सा-4

उर्दू तर्जमा और तफ़सीर

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह॰)

हिन्दी तर्जमा

मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी फ़लाही

नज़रसानी और तसहीह वग़ैरा

मुहम्मद इलियास हुसैन

एस॰ ख़ालिद निज़ामी

मुहम्मद जावेद

ज़ाहिद ख़ालिद हामिदी फ़लाही

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही मेहरबान और रहम करनेवाला है।'

दो लफ़्ज़

ख़ुदा का शुक्र है कि क़ुरआन मजीद की मशहूर तफ़सीर तफ़हीमुल-क़ुरआन के चौथे हिस्से का हिन्दी तर्जमा आपके सामने है। इसका पहला, दूसरा और तीसरा हिस्सा छपने के बाद लोगों ने उसे बहुत पसन्द किया और उसी वक़्त से चौथे हिस्से की माँग होने लगी। इस हिस्से में भी हमारी कोशिश रही है कि इसकी ज़बान भी पहले तीनों हिस्सों की तरह बहुत आसान हो जो आम लोगों की समझ में आ सके।

इस हिस्से में भी कुछ हाशिए ऐसे दिए गए हैं जो तफ़हीमुल-क़ुरआन (उर्दू) में नहीं हैं। ये हाशिए तर्जमा क़ुरआन मजीद मय मुख़्तसर हवाशी के हैं। उनकी अहमियत और ज़रूरत को देखते हुए यहाँ बढ़ा दिए गए हैं।

इस तर्जमे को मुफ़ीद और बेहतर बनाने में हमें जनाब मुहम्मद इलियास हुसैन, एस॰ ख़ालिद निज़ामी, मुहम्मद जावेद और ज़ाहिद ख़ालिद हामिदी की बड़ी मदद मिली। जनाब मौलाना हाफ़िज़ अब्दुर्राज़िक़ साहब ने इसका अरबी मतन पढ़ा। हम इन सबके बेहद शुक्रगुज़ार हैं और अल्लाह से इनके लिए दुनिया व आख़िरत में भलाई की दुआ करते हैं।

हमारी कोशिश रही है कि इस किताब में प्रूफ़ वग़ैरा की कोई ग़लती न रहे; फिर भी अगर कोई ग़लती नज़र आए तो हमें ज़रूर बताएँ, हम आपके शुक्रगुज़ार होंगे।

क़ुरआन से मुताल्लिक़ इसतिलाही अलफ़ाज़ की जानकारी के लिए बराए मेहरबानी तफ़हीमुल-क़ुरआन (हिन्दी) का पहला हिस्सा देखें।

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

सेक्रेट्री

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (रजि.) दिल्ली

31. लुक़मान

परिचय

नाम

इस सूरा की आयत-12 से 19 में वे नसीहतें नक़्ल की गई हैं जो लुक़मान हकीम ने अपने बेटे को की थीं। इसी पहलू से इस सूरा का नाम 'लुक़मान' रखा गया है।

उतरने का ज़माना

इस सूरा में जो बातें बयान की गई हैं उनपर ग़ौर करने से साफ़ महसूस होता है कि यह उस ज़माने में उतरी है जब इस्लामी दावत (पैग़ाम) को दबाने और रोकने के लिए ज़ोर-ज़बरदस्ती और ज़ुल्म की शुरुआत हो चुकी थी और हर तरह के हथकण्डे इस्तेमाल किए जाने लगे थे, लेकिन अभी मुख़ालफ़त का तूफ़ान पूरे ज़ोर पर न आया था। इसकी निशानदेही आयत—14, 15 से होती है, जिसमें नए-नए मुसलमान होनेवाले नौजवानों को बताया गया है कि माँ-बाप के हक़ तो बेशक ख़ुदा के बाद सबसे बढ़कर हैं, लेकिन अगर वे तुम्हें इस्लाम क़बूल करने से रोकें और शिर्क (अनेकेश्वरवाद) के मज़हब की तरफ़ पलटने पर मजबूर करें तो उनकी यह बात हरगिज़ न मानो। यही बात सूरा-29 अनूकबूत में भी कही गई है, जिससे मालूम होता है कि दोनों सूरतें एक ही दौर में उतरी हैं। लेकिन दोनों के मजमूई अन्दाज़े-बयान और उनमें बयान की गई बातों पर ग़ौर करने से अन्दाज़ा होता है कि सूरा लुक़मान पहले उतरी है, इसलिए कि इसके पसमंज़र (पृष्ठभूमि) में किसी सख़्त मुख़ालफ़त का निशान नहीं मिलता, और इसके बरख़िलाफ़ सूरा अनूकबूत को पढ़ते हुए महसूस होता है कि उसके उतरने के ज़माने में मुसलमानों पर सख़्त ज़ुल्म व सितम हो रहा था।

मौज़ू (विषय) और मज़मून (वार्ता)

इस सूरा में लोगों को शिर्क के बातिल (असत्य) और अक़्ल के ख़िलाफ़ होने और तौहीद (एकेश्वरवाद) की सच्चाई और अक़्ल के मुताबिक़ होने की बात समझाई गई है, और उन्हें दावत दी गई है कि बाप-दादा की अन्धी पैरवी छोड़ दें, खुले दिल से उस

तालीम पर ग़ौर करें जो मुहम्मद (सल्ल॰) सारे जहान के ख़ुदा की तरफ़ से पेश कर रहे हैं, और खुली आँखों से देखें कि हर तरफ़ कायनात (जगत्) में और ख़ुद उनके अपने वुजूद में कैसी-कैसी खुली निशानियाँ इसकी सच्चाई पर गवाही दे रही हैं।

इस सिलसिले में यह भी बताया गया है कि यह कोई नई आवाज़ नहीं है जो दुनिया में या ख़ुद अरब के इलाक़े में पहली बार ही उठी हो और लोगों के लिए बिलकुल अनजानी हो। पहले भी जो लोग इल्म और अक़्ल और हिकमत और समझ रखते थे, वे यही बातें कहते थे जो आज मुहम्मद (सल्ल॰) कह रहे हैं। तुम्हारे अपने ही देश में लुक़मान नाम का हकीम गुज़र चुका है, जिसकी हिकमत (तत्त्वदर्शिता) और सूझ-बूझ की कहानियाँ तुम्हारे यहाँ मशहूर हैं, जिसकी मिसालें और जिसकी हिकमत भरी बातों को तुम अपनी बातचीत में नक़्ल करते हो, जिसका ज़िक्र तुम्हारे शाइर (कवि) और तक़रीर करनेवाले लोग अकसर किया करते हैं। अब ख़ुद ही देख लो कि वह किस अक़ीदे और किन अख़लाक़ी बातों (नैतिकता) की तालीम देता था।

☆☆☆

آیَاتُهَا ۳۴ ۳۱ سُورَةُ لُقْمَانَ مَكِّيَّةٌ ۵۷ رُكُوعَاتُهَا ۴

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

الٓمّٓ ۚ ﴿۱﴾ تِلْكَ اٰيٰتُ الْكِتٰبِ الْحَكِيْمِ ۙ ﴿۲﴾ هُدًى وَّ رَحْمَةً لِّلْمُحْسِنِيْنَ ۙ ﴿۳﴾ الَّذِيْنَ يُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَيُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَهُمْ بِالْاٰخِرَةِ هُمْ يُوْقِنُوْنَ ۗ ﴿۴﴾ اُولٰٓئِكَ عَلٰى هُدًى مِّنْ رَّبِّهِمْ

31. लुक़मान

(मक्का में उतरी--आयतें-34)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) अलिफ़-लाम-मीम। (2) ये हिकमतवाली किताब की आयतें हैं,[1] (3) हिदायत और रहमत अच्छे काम करनेवाले लोगों के लिए,[2] (4) जो नमाज़ क़ायम करते हैं और ज़कात देते हैं और आख़िरत पर यक़ीन रखते हैं।[3] (5) यही लोग अपने रब की तरफ़ से

1. यानी ऐसी किताब की आयतें जो हिकमत से भरी हुई हैं, जिसकी हर बात हिकमत भरी है।
2. यानी ये आयतें सीधे रास्ते की तरफ़ रहनुमाई करनेवाली हैं और ख़ुदा की तरफ़ से रहमत बनकर आई हैं, मगर इस रहमत और हिदायत से फ़ायदा उठानेवाले सिर्फ़ वही लोग हैं जो अच्छे काम करने का तरीक़ा अपनाते हैं, जो नेक बनना चाहते हैं, जिन्हें भलाई की तलाश है, जिनकी सिफ़त यह है कि बुराइयों पर जब उन्हें ख़बरदार कर दिया जाए तो उनसे रुक जाते हैं, और भलाई की राहें जब उनके सामने खोलकर रख दी जाएँ तो उनपर चलने लगते हैं। रहे बदकार और शरारती लोग, तो वे न इस रहनुमाई से फ़ायदा उठाएँगे, न इस रहमत में से हिस्सा पाएँगे।
3. यह मुराद नहीं है कि जिन लोगों को 'अच्छे काम करनेवाले' कहा गया है उनके अन्दर बस यही तीन ख़ूबियाँ पाई जाती हैं। अस्ल में पहले 'अच्छे काम करनेवाले' का लफ़्ज़ इस्तेमाल करके इस बात की तरफ़ इशारा किया गया कि वे उन तमाम बुराइयों से रुकनेवाले हैं जिनसे यह किताब रोकती है, और उन सारे नेक कामों पर अमल करनेवाले हैं जिनका यह किताब हुक्म देती है। फिर इन 'अच्छे काम करनेवाले' लोगों की तीन अहम ख़ूबियों का ख़ास तौर पर ज़िक्र किया गया जिसका मक़सद यह ज़ाहिर करना है कि बाक़ी सारी नेकियों का दारोमदार इन्हीं तीन चीज़ों पर है। वे नमाज़ क़ायम करते हैं, जिससे ख़ुदापरस्ती और ख़ुदातरसी उनकी हमेशा की आदत बन जाती है। वे ज़कात देते हैं, जिससे ईसार (त्याग) और क़ुरबानी का

وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ۝۵

सीधे रास्ते पर हैं और यही कामयाबी पानेवाले हैं।[4]

जज़्बा उनके अन्दर पुख़्ता होता है, दुनियावी चीज़ों की मुहब्बत दबती है और अल्लाह की ख़ुशनूदी (प्रसन्नता) की तलब उभरती है। और वे आख़िरत पर यक़ीन रखते हैं, जिससे उनके अन्दर ज़िम्मेदारी और जवाबदेही का एहसास उभरता है, जिसकी बदौलत वे उस जानवर की तरह नहीं रहते जो चराहगाह में छूटा फिर रहा हो, बल्कि उस इनसान की तरह हो जाते हैं जिसे यह समझ हासिल हो कि मैं अपनी मरज़ी का मालिक नहीं हूँ, किसी मालिक का ग़ुलाम हूँ और अपने सारे कामों पर अपने मालिक के सामने मुझे जवाबदेही करनी है। इन तीन ख़ूबियों की वजह से ये 'अच्छे काम करनेवाले लोग' उस तरह के नेक लोग नहीं रहते जिनसे इत्तिफ़ाक़ से नेकी का कोई काम हो जाता है और बुराई भी उसी शान से हो सकती है जिस शान से नेकी होती है। इसके बरख़िलाफ़ ये तीनों ख़ूबियाँ जो ऊपर बयान हुई हैं, उनके अन्दर अक़ीदे और अख़लाक़ का एक ऐसा मुस्तक़िल निज़ाम पैदा कर देती हैं जिसके सबब उनसे भलाई का काम होना बाक़ायदा एक ज़ाब्ते के मुताबिक़ होता है और बुराई अगर हो भी जाती है तो सिर्फ़ एक हादिसे (आकस्मिक घटना) के तौर पर होती है। बुराई पर उभारनेवाली कोई गहरी चीज़ें ऐसी नहीं होतीं जो उनके निज़ामे-फ़िक्र और अख़लाक़ के निज़ाम से उभरती हों और उनको अपने मन की ख़ाहिशों से बुराई की राह पर ले जाती हों।

4. जिस ज़माने में ये आयतें उतरी हैं, उस वक़्त मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ यह समझते थे और खुल्लम-खुल्ला कहते भी थे कि मुहम्मद (सल्ल॰) और उनकी इस दावत (पैग़ाम) को क़बूल करनेवाले लोग अपनी ज़िन्दगी बरबाद कर रहे हैं। इसलिए पूरे यक़ीन के साथ और पूरे ज़ोर के साथ फ़रमाया गया कि "यही कामयाबी पानेवाले हैं", यानी ये बरबाद होनेवाले नहीं हैं, जैसा कि तुम अपने नाक़िस ख़याल में समझ रहे हो, बल्कि अस्ल में कामयाबी यही लोग पानेवाले हैं और इससे महरूम (वंचित) रहनेवाले वे हैं जिन्होंने इस राह को अपनाने से इनकार किया है।

यहाँ क़ुरआन के अस्ल मतलब को समझने में वह शख़्स ग़लती करेगा जो फ़लाह (कामयाबी) को सिर्फ़ इस दुनिया की हद तक, और वह भी सिर्फ़ माद्दी (माल-दौलत की) ख़ुशहाली के मानी में लेगा। क़ुरआन के मुताबिक़ फ़लाह यानी कामयाबी क्या है, इसे जानने के लिए नीचे लिखी आयतों को तफ़हीमुल-क़ुरआन के तशरीह करनेवाले हाशियों के साथ ग़ौर से देखना चाहिए : सूरा-2 बक़रा, आयतें—2 से 5; सूरा-3 आले-इमरान, आयतें—102, 130, 200; सूरा-5 माइदा, आयतें—35, 90; सूरा-6 अनआम, आयत-21; सूरा-7 आराफ़, आयतें—7, 8, 157; सूरा-9 तौबा, आयत-88; सूरा-10 यूनुस, आयत-17; सूरा-16 नह्ल, आयत-116; सूरा-22 हज, आयत-77; सूरा-23 मोमिनून, आयतें—1, 117; सूरा-24 नूर, आयत-51; सूरा-30 रूम, आयत-38।

وَمِنَ النَّاسِ مَنۡ يَّشۡتَرِىۡ لَهۡوَ الۡحَدِيۡثِ لِيُضِلَّ عَنۡ سَبِيۡلِ اللّٰهِ بِغَيۡرِ

(6) और इनसानों ही में से कोई ऐसा भी है[5] जो दिल लुभानेवाली बातें[6] ख़रीदकर

5. यानी एक तरफ़ तो ख़ुदा की तरफ़ से यह रहमत और हिदायत आई हुई है जिससे कुछ लोग फ़ायदा उठा रहे हैं। दूसरी तरफ़ इन्हीं ख़ुशनसीब इनसानों के साथ-साथ ऐसे बदनसीब लोग भी मौजूद हैं जो अल्लाह की आयतों के मुक़ाबले में यह रवैया अपना रहे हैं।

6. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं 'लह्वल-हदीस', यानी ऐसी बात जो आदमी को अपने में मशग़ूल (व्यस्त) करके हर दूसरी चीज़ से ग़ाफ़िल और बेपरवाह कर दे। लुग़त (शब्दकोश) के मुताबिक़ तो इन अलफ़ाज़ में कोई मलामत (निन्दा) का पहलू नहीं है। लेकिन इन अलफ़ाज़ का इस्तेमाल बुरी और फ़ुज़ूल और बेहूदा बातों पर ही होता है, मसलन गप्प, ख़ुराफ़ात (बेकार के काम), हँसी-मज़ाक़, दास्तानें, अफ़साने और नॉविल, गाना-बजाना और इसी तरह की दूसरी चीज़ें।

लह्वल-हदीस 'ख़रीदने' का मतलब यह भी लिया जा सकता है कि वह शख़्स सच बात को छोड़कर झूठ बात को अपनाता है और हिदायत से मुँह मोड़कर उन बातों की तरफ़ जाता है जिनमें उसके लिए न दुनिया में कोई भलाई है, न आख़िरत में। लेकिन ये मजाज़ी (लाक्षणिक) मानी हैं। अस्ल मतलब इस जुमले का यही है कि आदमी अपना माल ख़र्च करके कोई बेहूदा चीज़ ख़रीदे। और बहुत-सी रिवायतें भी इसी तफ़सीर की ताईद (समर्थन) करती हैं। इब्ने-हिशाम ने मुहम्मद-बिन-इसहाक़ की रिवायत नक़्ल की है कि जब नबी (सल्ल॰) की दावत मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की सारी कोशिशों के बावजूद फैलती चली जा रही थी तो नज़्र-बिन-हारिस ने क़ुरैश के लोगों से कहा कि जिस तरह तुम इस आदमी का मुक़ाबला कर रहे हो, इससे काम न चलेगा। यह आदमी तुम्हारे बीच बचपन से अधेड़ उम्र को पहुँचा है। आज तक वह अपने अख़लाक़ में तुम्हारा सबसे बेहतर आदमी था। सबसे ज़्यादा सच्चा और सबसे बढ़कर अमानतदार था। अब तुम कहते हो कि वह काहिन है, जादूगर है, शाइर है, मजनून (दीवाना) है। आख़िर इन बातों पर कौन यक़ीन करेगा। क्या लोग जादूगरों को नहीं जानते कि वे किस तरह की झाड़-फूँक करते हैं? क्या लोगों को नहीं मालूम कि काहिन किस तरह की बातें बनाया करते हैं? क्या लोग शेरो-शाइरी से अनजान हैं? क्या लोगों को जुनून (दीवानगी) की कैफ़ियतों की जानकारी नहीं है? इन इलज़ामों में से आख़िर कौन-सा इलज़ाम मुहम्मद (सल्ल॰) पर चस्पाँ होता है कि उसका यक़ीन दिलाकर तुम आम लोगों को उसकी तरफ़ जाने से रोक सकोगे। ठहरो, इसका इलाज मैं करता हूँ। इसके बाद वह मक्का से इराक़ गया और वहाँ से अरब के बाहरी देशों के क़िस्से और रुस्तम और इस्फ़न्दयार की दास्तानें लाकर उसने कहानियाँ सुनाने की महफ़िलें सजानी शुरू कर दीं, ताकि लोगों का ध्यान क़ुरआन से हटे और वे इन कहानियों में खो जाएँ (सीरत इब्ने-हिशाम, हिस्सा-1, पे॰ 320, 321)। यही

रिवायत इस आयत के उतरने का सबब बयान करते हुए वाहिदी ने कल्बी और मुक़ातिल से नक़्ल की है। और इब्ने-अब्बास (रज़ि०) ने इसमें इतनी बात और बढ़ाई है कि नज़्र ने इस मक़सद के लिए गानेवाली लौंडियाँ भी ख़रीदी थीं। जिस किसी के बारे में वह सुनता कि नबी (सल्ल०) की बातों से मुतास्सिर हो रहा है, उसके साथ अपनी एक लौंडी लगा देता और उससे कहता कि इसे ख़ूब खिला-पिला और गाना सुना ताकि तेरे साथ मशग़ूल (व्यस्त) होकर इसका दिल उधर से हट जाए। यह क़रीब-क़रीब वही चाल थी जिससे क़ौमों के बड़े मुजरिम हर ज़माने में काम लेते रहे हैं। वे आम लोगों को खेल-तमाशों और नाच-गानों (के कल्चर) में डुबो देने की कोशिश करते हैं, ताकि उन्हें ज़िन्दगी के संजीदा मामलों की तरफ़ ध्यान देने का होश ही न रहे और इस मस्ती के आलम में उनको सिरे से यह महसूस ही न होने पाए कि उन्हें किस तबाही की तरफ़ धकेला जा रहा है।

लह्वल-हदीस का यही मतलब बहुत-से सहाबा और ताबिईन से नक़्ल हुआ है। अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) से पूछा गया कि इस आयत में 'लह्वल-हदीस' से क्या मुराद है? उन्होंने तीन बार ज़ोर देकर कहा, "अल्लाह की क़सम, इससे मुराद गाना है।" (हदीस : इब्ने-जरीर, इब्ने-अबी-शैबा, हाकिम, बैहक़ी)। इसी से मिलते-जुलते बोल हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०), जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह, मुजाहिद, इकरिमा, सईद-बिन-जुबैर, हसन बसरी और मकहूल (रह०) से रिवायत हुए हैं। इब्ने-जरीर, इब्ने-अबी-हातिम और तिरमिज़ी ने हज़रत अबू-उमामा बाहिली (रज़ि०) की यह रिवायत नक़्ल की है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "गानेवाली औरतों का बेचना और ख़रीदना और उनकी तिजारत करना हलाल नहीं है और न उनकी क़ीमत लेना हलाल है।" एक दूसरी रिवायत में आख़िरी जुमले के अलफ़ाज़ ये हैं, "उनकी क़ीमत खाना हराम है।" एक और रिवायत इन्हीं अबू-उमामा (रज़ि०) से इन अलफ़ाज़ में नक़्ल हुई है कि "लौंडियों को गाने-बजाने की तालीम देना और उनको ख़रीदना-बेचना हलाल नहीं है, और उनकी क़ीमत हराम है।" इन तीनों हदीसों में यह भी साफ़ बयान किया गया है कि आयत 'मंय-यश्तरी लह्वल-हदीस' (जो दिल लुभानेवाली बातें ख़रीदकर लाता है) इन्हीं के बारे में उतरी है। क़ाज़ी अबू-बक्र इब्नुल-अरबी (रह०) 'अहकामुल-क़ुरआन' में हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मुबारक (रह०) और इमाम मालिक (रह०) के हवाले से हज़रत अनस (रज़ि०) की रिवायत नक़्ल करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो कोई गानेवाली लौंडी की महफ़िल में बैठकर गाना सुनेगा, क़ियामत के दिन उसके कान में पिघला हुआ सीसा डाला जाएगा।" (इस सिलसिले में यह बात भी जान लेनी चाहिए कि उस ज़माने में गाने-बजाने का कल्चर पूरी तरह, बल्कि पूरा-का-पूरा लौंडियों की बदौलत ज़िन्दा था। आज़ाद औरतें उस वक़्त तक आर्टिस्ट (कलाकार) न बनी थीं। इसी लिए नबी (सल्ल०) ने गानेवालियों के लिए बेचने और ख़रीदने का ज़िक्र किया और उनकी फ़ीस के लिए क़ीमत का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया और गानेवाली औरत के लिए 'क़ैना' का लफ्ज़ इस्तेमाल किया जो अरबी ज़बान में लौंडी के लिए बोला जाता है)।

عِلْمٍ ۖ وَّيَتَّخِذَهَا هُزُوًا ؕ أُولَٰٓئِكَ لَهُمْ عَذَابٌ مُّهِينٌ ۞ وَإِذَا تُتْلَىٰ
عَلَيْهِ ءَايَٰتُنَا وَلَّىٰ مُسْتَكْبِرًا كَأَن لَّمْ يَسْمَعْهَا كَأَنَّ فِىٓ أُذُنَيْهِ وَقْرًا ۖ
فَبَشِّرْهُ بِعَذَابٍ أَلِيمٍ ۞ إِنَّ ٱلَّذِينَ ءَامَنُوا۟ وَعَمِلُوا۟ ٱلصَّٰلِحَٰتِ

लाता है, ताकि लोगों को अल्लाह के रास्ते से इल्म के बिना[7] भटका दे और इस रास्ते की दावत को मज़ाक़ में उड़ा दे।[8] ऐसे लोगों के लिए सख़्त रुसवा (अपमानित) करनेवाला अज़ाब है।[9] (7) उसे जब हमारी आयतें सुनाई जाती हैं तो वह बड़े घमण्ड के साथ इस तरह मुँह फेर लेता है मानो कि उसने इन्हें सुना ही नहीं, मानो कि उसके कान बहरे हैं। अच्छा, ख़ुशख़बरी सुना दो उसे एक दर्दनाक अज़ाब की। (8) अलबत्ता जो लोग

7. 'इल्म के बिना' का ताल्लुक़ 'ख़रीदता है' के साथ भी हो सकता है और 'भटका दे' के साथ भी। अगर इसका ताल्लुक़ पहले जुमले से माना जाए तो मतलब यह होगा कि वह जाहिल और नादान आदमी दिल को लुभानेवाली इस चीज़ को ख़रीदता है और कुछ नहीं जानता कि कैसी क़ीमती चीज़ को छोड़कर वह किस तबाह कर देनेवाली चीज़ को ख़रीद रहा है। एक तरफ़ हिकमत और हिदायत से भरपूर अल्लाह की आयतें हैं जो मुफ़्त उसे मिल रही हैं, मगर वह उनसे मुँह मोड़ रहा है। दूसरी तरफ़ ये बेहूदा चीज़ें हैं जो फ़िक्र (सोच) और अख़लाक़ को तबाह-बरबाद कर देनेवाली हैं और वह अपना माल ख़र्च करके उन्हें हासिल कर रहा है। और अगर उसे दूसरे जुमले से जोड़कर देखा जाए तो इसका मतलब यह होगा कि वह इल्म के बिना लोगों की रहनुमाई करने उठा है, उसे यह समझ ही नहीं है कि ख़ुदा के बन्दों को ख़ुदा की राह से भटकाने की कोशिश करके वह कितना बड़ा ज़ुल्म व गुनाह अपनी गर्दन पर ले रहा है।
8. यानी यह आदमी लोगों को क़िस्से-कहानियों और गाने-बजाने में लगाकर अल्लाह की आयतों का मुँह चिढ़ाना चाहता है। इसकी कोशिश यह है कि क़ुरआन की इस दावत को हँसी-ठट्ठों में उड़ा दिया जाए। यह ख़ुदा के दीन से लड़ने के लिए कुछ इस तरह की जंग का नक़्शा जमाना चाहता है कि इधर पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) अल्लाह की आयतें सुनाने निकलें, उधर कहीं किसी सुन्दर और सुरीली आवाज़ों में गानेवाली का मुजरा हो रहा हो, कहीं कोई तेज़ ज़बान कहानी सुनाने का माहिर ईरान-तूरान की कहानियाँ सुना रहा हो, और लोग इन तहज़ीबी (कल्चरल) सरगर्मियों में डूबकर इस मूड ही में न रहें कि ख़ुदा और आख़िरत और अख़लाक़ की बातें उन्हें सुनाई जा सकें।
9. यह सज़ा उनके जुर्म के मुताबिक़ है। वे ख़ुदा के दीन और उसकी आयतों और उसके रसूल को रुसवा करना चाहते हैं। ख़ुदा इसके बदले उनको सख़्त रुसवा करनेवाला अज़ाब देगा।

لَهُمْ جَنّٰتُ النَّعِيْمِ ۙ﴿٨﴾ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ؕ وَعْدَ اللّٰهِ حَقًّا ؕ وَهُوَ الْعَزِيْزُ
الْحَكِيْمُ ﴿٩﴾ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ بِغَيْرِ عَمَدٍ تَرَوْنَهَا وَاَلْقٰى فِى الْاَرْضِ رَوَاسِيَ

ईमान ले आएँ और भले काम करें, उनके लिए नेमत भरी जन्नतें हैं[10] (9) जिनमें वे हमेशा रहेंगे। यह अल्लाह का पक्का वादा है, और वह ज़बरदस्त और हिकमतवाला है।[11] (10) उसने[12] आसमानों को पैदा किया बिना सुतूनों (स्तंभों) के जो तुमको दिखाई दें।[13]

10. यह नहीं कहा कि उनके लिए जन्नत की नेमतें हैं, बल्कि कहा यह कि उनके लिए नेमत भरी जन्नतें हैं। अगर पहली बात कही जाती तो इसका मतलब यह होता कि वे उन नेमतों के मज़े तो ज़रूर लेंगे मगर वे जन्नतें उनकी अपनी न होंगी। इसके बजाय जब यह कहा गया कि "उनके लिए नेमत भरी जन्नतें हैं," तो इससे ख़ुद-ब-ख़ुद यह ज़ाहिर होता है कि पूरी-पूरी जन्नतें उनके हवाले कर दी जाएँगी और वे उनकी नेमतों से इस तरह फ़ायदा उठाएँगे, जिस तरह एक मालिक अपनी चीज़ से फ़ायदा उठाता है, न कि उस तरह जैसे किसी को मालिकाना हक़ दिए बिना सिर्फ़ एक चीज़ से फ़ायदा उठाने का मौक़ा दे दिया जाए।
11. यानी कोई चीज़ ख़ुदा को अपना वादा पूरा करने से रोक नहीं सकती, और वह जो कुछ करता है ठीक-ठीक हिकमत और इनसाफ़ के तक़ाज़ों के मुताबिक़ करता है। "यह अल्लाह का पक्का वादा है" कहने के बाद अल्लाह तआला की इन दो सिफ़तों को बयान करने का मक़सद यह बताना है कि अल्लाह तआला न तो ख़ुद से अपने वादे की ख़िलाफ़वर्ज़ी करता है और न इस कायनात में कोई ताक़त ऐसी है जो उसका वादा पूरा होने में रुकावट हो सकती हो, इसलिए इस बात का कोई ख़तरा नहीं हो सकता कि ईमान और नेक अमल के इनाम में जो कुछ अल्लाह ने देने का वादा किया है, वह किसी को न मिले। फिर यह कि अल्लाह की तरफ़ से इस इनाम का एलान सरासर उसकी हिकमत और उसके इनसाफ़ पर मबनी (आधारित) है। उसके यहाँ कोई ग़लत-बख़्शी नहीं है कि हक़दार को महरूम रखा जाए और जो हक़दार न हो उसे नवाज़ दिया जाए। ईमान रखनेवाले और नेक अमल करनेवाले लोग हक़ीक़त में इस इनाम के हक़दार हैं और अल्लाह यह इनाम इन्हीं को देगा।
12. ऊपर के शुरुआती जुमलों के बाद अब अस्ल मक़सद, यानी शिर्क को रद्द करने और तौहीद के पैग़ाम पर बात शुरू होती है।
13. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं 'बिग़ैरि अ-म-दिन् तरौनहा'। इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि "तुम ख़ुद देख रहे हो कि वे बिना सुतूनों (स्तंभों) के टिके हुए हैं।" दूसरा मतलब यह कि "वे ऐसे सुतूनों पर टिके हुए हैं जो तुमको दिखाई नहीं देते।" इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) और मुजाहिद ने दूसरा मतलब लिया है, और क़ुरआन की तफ़सीर लिखनेवाले बहुत-से दूसरे आलिम पहला मतलब लेते हैं। मौजूदा साइंसी इल्म की रौशनी में अगर इसका मतलब बयान

اَنۡ تَمِيۡدَ بِكُمۡ وَبَثَّ فِيۡهَا مِنۡ كُلِّ دَآبَّةٍ‌ ؕ وَاَنۡزَلۡنَا مِنَ السَّمَآءِ مَآءً
فَاَنۡۢبَتۡنَا فِيۡهَا مِنۡ كُلِّ زَوۡجٍ كَرِيۡمٍ ﴿۱۰﴾ هٰذَا خَلۡقُ اللّٰهِ فَاَرُوۡنِىۡ مَاذَا خَلَقَ
الَّذِيۡنَ مِنۡ دُوۡنِهٖ‌ ؕ بَلِ الظّٰلِمُوۡنَ فِىۡ ضَلٰلٍ مُّبِيۡنٍ ﴿۱۱﴾ ع

उसने ज़मीन में पहाड़ जमा दिए ताकि वे तुम्हें लेकर ढुलक न जाए।[14] उसने हर तरह के जानवर ज़मीन में फैला दिए और आसमान से पानी बरसाया और ज़मीन में तरह-तरह की अच्छी चीज़ें उगा दीं। (11) यह तो है अल्लाह की पैदा की हुई चीज़ें, अब ज़रा मुझे दिखाओ, इन दूसरों ने क्या पैदा किया है?[15] —अस्ल बात यह है कि ये ज़ालिम लोग खुली गुमराही में पड़े हुए हैं।[16]

किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि आसमानों की पूरी दुनिया में ये अनगिनत अज़ीमुश्शान तारे और सय्यारे अपनी-अपनी जगह और मदार (कक्षा) में दिखाई न देनेवाले सहारों से क़ायम किए गए हैं। कोई तार नहीं हैं जिन्होंने उनको एक-दूसरे से बाँध रखा हो। कोई सलाख़ें नहीं हैं जो उनको एक-दूसरे पर गिर जाने से रोक रही हों। सिर्फ़ जज़्बो-कशिश (गुरुत्वाकर्षण) का क़ानून है जो इस निज़ाम को थामे हुए है। यह मतलब हमारे आज के इल्म के लिहाज़ से है। हो सकता है कि कल हमारी जानकारी में कुछ और इज़ाफ़ा हो और इससे ज़्यादा लगता हुआ कोई दूसरा मतलब इस हक़ीक़त का निकाला जा सके।

14. तशरीह के लिए देखिए, तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, हाशिया-12।
15. यानी उन हस्तियों ने जिनको तुम अपना माबूद बनाए बैठे हो, जिन्हें तुम अपनी क़िस्मतों के बनाने और बिगाड़नेवाला समझ रहे हो, जिनकी बन्दगी बजा लाने पर तुम इतना अड़े हुए हो।
16. यानी जब ये लोग अल्लाह के सिवा इस कायनात (जगत्) में किसी दूसरे की कोई निशानदेही नहीं कर सकते कि उसने कोई चीज़ पैदा की है, और ज़ाहिर है कि नहीं कर सकते, तो इनका कुछ भी पैदा न कर सकनेवाली हस्तियों को ख़ुदाई में शरीक ठहराना और उनके आगे सिर झुकाना और उनसे दुआएँ माँगना और ज़रूरतें पूरी करने के लिए कहना, सिवाय इसके कि खुली बेअक़्ली है और कोई दूसरी वजह उनके इस बेवक़ूफ़ी भरे काम की नहीं बताई जा सकती। जब तक कोई शख़्स बिलकुल ही बहक न गया हो उससे इतनी बड़ी बेवक़ूफ़ी नहीं हो सकती कि आपके सामने वह ख़ुद अपने माबूदों के कुछ पैदा करने के क़ाबिल न होने और सिर्फ़ अल्लाह ही के ख़ालिक़ (स्रष्टा) होने का इक़रार करे और फिर भी उन्हें माबूद मानने पर अड़ा रहे। किसी के भेजे में ज़र्रा बराबर भी अक़्ल हो तो वह यक़ीनन यह सोचेगा कि जो किसी चीज़ को पैदा नहीं कर सकता, और जिसका ज़मीन और आसमान की किसी चीज़ के पैदा करने में नाम को भी कोई हिस्सा नहीं है, वह आख़िर क्यों हमारा माबूद हो? क्यों हम

وَلَقَدْ اٰتَيْنَا لُقْمٰنَ الْحِكْمَةَ اَنِ اشْكُرْ لِلّٰهِ ۗ وَمَنْ يَّشْكُرْ فَاِنَّمَا يَشْكُرُ

(12) हमने[17] लुक़मान को हिकमत (तत्त्वदर्शिता) अता की थी कि अल्लाह का

उसके आगे सजदे करें या उसके पैरों और आस्ताने को चूमते फिरें? क्या ताक़त उसके पास है कि वह हमारी फ़रियाद सुने और ज़रूरत पूरी कर सके? मान लो कि वह हमारी दुआओं को सुनता भी हो तो उनके जवाब में वह ख़ुद क्या कार्रवाई कर सकता है, जबकि वह कुछ बनाने का इख़्तियार रखता ही नहीं? बिगड़ी तो वही बनाएगा जो कुछ बना सकता हो, न कि वह जो कुछ भी न बना सकता हो।

17. शिर्क (बहुदेववाद) को रद्द करने में एक ज़बरदस्त अक़्ली दलील पेश करने के बाद अब अरब के लोगों को यह बताया जा रहा है कि यह अक़्ल में आनेवाली बात आज कोई पहली बार तुम्हारे सामने पेश नहीं की जा रही है, बल्कि पहले भी अक़्लमन्द और समझदार लोग यही बात कहते रहे हैं और तुम्हारा अपना मशहूर हकीम लुक़मान अब से बहुत पहले यही कुछ कह गया है। इसलिए तुम मुहम्मद (सल्ल॰) की इस दावत (पैग़ाम) के जवाब में यह नहीं कह सकते कि अगर शिर्क कोई नामुनासिब और अक़्ल के ख़िलाफ़ अक़ीदा है तो पहले किसी को यह बात क्यों न सूझी।

लुक़मान की शख़्सियत अरब में एक हकीम और अक़्लमन्द की हैसियत से बहुत मशहूर थी। जाहिलियत के ज़माने के शाइर (कवि) लोग मसलन इम्र-उल-क़ैस, लबीद, आशा, तरफ़ा वग़ैरा के कलाम में उनका ज़िक्र किया गया है। अरबवालों में कुछ पढ़े-लिखे लोगों के पास लुक़मान के सहीफ़े के नाम से उनकी हिकमत भरी बातों का एक मजमूआ (संग्रह) भी मौजूद था। चुनाँचे रिवायतों में आया है कि हिजरत से तीन साल पहले मदीना का सबसे पहला शख़्स जो नबी (सल्ल॰) से मुतास्सिर हुआ, वह सुवैद-बिन-सामित था। वह हज के लिए मक्का गया। वहाँ नबी (सल्ल॰) अपने तरीक़े के मुताबिक़ अलग-अलग इलाक़ों से आए हुए हाजियों के ठिकानों पर जा-जाकर इस्लाम का पैग़ाम पहुँचा रहे थे। इस सिलसिले में सुवैद ने जब नबी (सल्ल॰) की तक़रीर सुनी तो उसने आप (सल्ल॰) से कहा कि आप जो बातें पेश कर रहे हैं, ऐसी ही एक चीज़ मेरे पास भी है। आप (सल्ल॰) ने पूछा, "वह क्या है?" उसने कहा, "लुक़मान की किताब।" फिर आप (सल्ल॰) की फ़रमाइश पर उसने उस किताब का कुछ हिस्सा आप (सल्ल॰) को सुनाया। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "यह बहुत अच्छा कलाम है, मगर मेरे पास एक और कलाम इससे भी बेहतर है।" इसके बाद आप (सल्ल॰) ने उसे क़ुरआन सुनाया और उसने इस बात को माना कि यह बेशक लुक़मान की किताब से बेहतर है (सीरत इब्ने-हिशाम, हिस्सा-2, पृ॰ 67 से 69, उसदुल-ग़ाबा, हिस्सा-2, पृ॰ 378)। इतिहासकारों का बयान है कि यह आदमी (सुवैद-बिन-सामित) मदीना में अपनी क़ाबिलियत, बहादुरी, शेरो-शाइरी और ख़ानदानी शराफ़त की वजह से 'कामिल' (मुकम्मल) के लक़ब से

पुकारा जाता था। लेकिन नबी (सल्ल॰) से मुलाक़ात के बाद जब वह मदीना वापस हुआ तो कुछ मुद्दत के बाद बुआस की जंग हुई और यह उसमें मारा गया। उसके क़बीले के लोगों का आम ख़याल यह था कि नबी (सल्ल॰) से मुलाक़ात के बाद वह मुसलमान हो गया था।

ऐतिहासिक पहलू से लुक़मान की शख़्सियत के बारे में बड़े इख़्तिलाफ़ (मतभेद) हैं। जाहिलियत की अंधेरी सदियों में कोई लिखा हुआ या तरतीब-शुदा इतिहास मौजूद नहीं था। जानकारियों का दारोमदार एक-दूसरे से सुनी हुई उन रिवायतों पर था जो सैंकड़ों सालों से चली आ रही थीं। उन रिवायतों के मुताबिक़ कुछ लोग लुक़मान को आद क़ौम का एक आदमी और यमन का एक बादशाह बताते थे। मौलाना सैयद सुलैमान नदवी (रह॰) ने इन्हीं रिवायतों पर भरोसा करके अपनी किताब 'अर्ज़ुल-क़ुरआन' में यह राय ज़ाहिर की है कि आद क़ौम पर ख़ुदा का अज़ाब आने के बाद इस क़ौम के जो ईमानवाले हज़रत हूद (अलैहि॰) के साथ बच गए थे, लुक़मान उन्हीं की नस्ल से था, और यमन में उस क़ौम ने जो हुकूमत क़ायम की थी, यह उसके बादशाहों में से एक था। लेकिन दूसरी रिवायतें जो कुछ बड़े सहाबा (रज़ि॰) और ताबिईन (रह॰) से बयान हुई हैं, इसके बिलकुल ख़िलाफ़ हैं। इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) कहते हैं कि लुक़मान एक हब्शी ग़ुलाम थे। यही बात हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰), मुजाहिद, इकरिमा, और ख़ालिदुर-रबई (रह॰) ने कही है। हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह अनसारी का बयान है कि लुक़मान नूबा के रहनेवाले थे। सईद-बिन-मुसय्यिब का कहना है कि वे मिस्र के काले रंग के लोगों में से थे। ये तीनों रायें लगभग एक-दूसरे से मिलती-जुलती हैं, क्योंकि अरब के लोग काले रंग के लोगों को उस ज़माने में आम तौर से हब्शी कहा करते थे, और नूबा उस इलाक़े का नाम है जो मिस्र के दक्षिण और सूडान के उत्तर में मौजूद है। इसलिए तीनों बातों में एक शख़्स को मिस्री, नूबी और हब्शी क़रार देना सिर्फ़ लफ़्ज़ी इख़्तिलाफ़ है, मानी में कोई फ़र्क़ नहीं है। फिर 'रौज़ुल-उनुफ़' में सुहैली और 'मुरूजुज़्ज़हब' में मसऊदी के बयानात से इस सवाल पर भी रौशनी पड़ती है कि इस सूडानी ग़ुलाम की बातें अरब में कैसे फैलीं। इन दोनों का बयान है कि यह आदमी असलन तो नूबी था, लेकिन रहनेवाला मदयन और ऐला (मौजूदा अ-क़बा) के इलाक़े का था। इसी वजह से इसकी ज़बान अरबी थी और इसकी हिकमत और सूझ-बूझ की अरब में चर्चा हुई। इसके अलावा सुहैली ने यह भी साफ़ बयान किया है कि हकीम लुक़मान और लुक़मान-बिन-आद दो अलग-अलग आदमी हैं। उनको एक शख़्सियत ठहराना सही नहीं है। (रौज़ुल-उनुफ़, हिस्सा-1, पे॰ 266; मसऊदी, हिस्सा-1, पे॰ 57)।

यहाँ इस बात को वाज़ेह कर देना भी ज़रूरी है कि मुस्तशरिक़ (प्राच्यविद्) देरेनबोर्ग (Derenbourg) ने पैरिस की लाइब्रेरी का एक अरबी मख़्तूता (आलेख) जो 'लुक़मान हकीम की कहानियाँ' (Fables De Loqman Le Sage) के नाम से छापा है, वह हक़ीक़त में एक गढ़ी हुई चीज़ है, जिसका लुक़मान की किताब से दूर का भी ताल्लुक़ नहीं है। ये कहानियाँ

لِنَفْسِهٖ ۚ وَمَنْ كَفَرَ فَاِنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ حَمِيْدٌ ۝١٢ وَاِذْ قَالَ لُقْمٰنُ لِابْنِهٖ

शुक्रगुज़ार हो।[18] जो कोई शुक्र करे उसका शुक्र उसके अपने ही लिए फ़ायदेमन्द है। और जो कुफ़्र करे तो हक़ीक़त में अल्लाह बेनियाज़ (निस्पृह) और आप-से-आप तारीफ़ के क़ाबिल (महमूद) है।[19]

तेरहवीं सदी ईसवी में किसी आदमी ने जमा की थीं। इसकी अरबी बहुत नाक़िस (कमज़ोर) है और इसे पढ़ने से साफ़ महसूस होता है कि यह अस्ल में किसी और ज़बान की किताब का तर्जमा है जिसे तर्जमा करनेवाले ने अपनी तरफ़ से लुक़मान हकीम से जोड़ दिया है। मुस्तशरिक़ीन (प्राच्यविद्) इस तरह की चीज़ें निकाल-निकालकर जिस मक़सद के लिए सामने लाते हैं, वह इसके सिवा कुछ नहीं है कि किसी तरह क़ुरआन के बयान किए हुए क़िस्सों को इतिहास के ख़िलाफ़ कहानियाँ साबित करके भरोसा न करने लायक़ ठहरा दिया जाए। जो शख़्स भी 'इंसाइक्लोपेडिया ऑफ़ इस्लाम' में 'लुक़मान' पर बी. हेलर (B. Heller) का लेख पढ़ेगा, उससे उन लोगों की नीयत का हाल छिपा न रहेगा।

18. यानी अल्लाह की दी हुई इस हिकमत और सूझ-बूझ और गहरी नज़र और अक़्लमन्दी का सबसे पहला तक़ाज़ा यह था कि इनसान अपने रब के मुक़ाबले में शुक्रगुज़ारी और एहसानमन्दी का रवैया अपनाए, न कि नाशुक्री और नमकहरामी का। और उसका यह शुक्र सिर्फ़ ज़बानी जमा ख़र्च ही न हो, बल्कि सोचने, कहने और करने, तीनों सूरतों में हो। वह अपने दिलो-दिमाग़ की गहराइयों में इस बात का यक़ीन और शऊर भी रखता हो कि मुझे जो कुछ मिला हुआ है, ख़ुदा का दिया हुआ है। उसकी ज़बान अपने ख़ुदा की मेहरबानियों और एहसानों को हमेशा मानती भी रहे। और वह अमली तौर पर भी ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी करके, उसकी नाफ़रमानी से बचकर, उसकी ख़ुशी चाहने के लिए दौड़-धूप करके, उसके दिए हुए इनामों को उसके बन्दों तक पहुँचाकर, और उसके ख़िलाफ़ बग़ावत करनेवालों से कश्मकश करके यह साबित कर दे कि वह सचमुच अपने ख़ुदा का एहसानमन्द है।

19. यानी जो शख़्स कुफ़्र (नाशुक्री) करता है, उसका कुफ़्र उसके अपने लिए नुक़सानदेह है, अल्लाह तआला का उससे कोई नुक़सान नहीं होता। वह बेनियाज़ है, किसी के शुक्र का मुहताज नहीं है। किसी का शुक्र उसकी ख़ुदाई में कोई इज़ाफ़ा नहीं कर देता, न किसी की नाशुक्री उस हक़ीक़त को बदल सकती है कि बन्दों को जो नेमत भी नसीब है, उसी की दी हुई है। वह तो आप-से-आप तारीफ़ के क़ाबिल है, चाहे कोई उसकी तारीफ़ करे या न करे। क़ायनात का ज़र्रा-ज़र्रा उसके कमाल और जमाल की गवाही दे रही है और इस बात की गवाही दे रहा है कि वही हस्ती पैदा करनेवाली और रोज़ी देनेवाली है। और पैदा की हुई हर चीज़ अपने ज़बाने-हाल से उसकी तारीफ़ कर रही है।

وَهُوَيَعِظُهٗ يٰبُنَيَّ لَا تُشْرِكْ بِاللّٰهِ ۗ اِنَّ الشِّرْكَ لَظُلْمٌ عَظِيْمٌ ۝١٣ وَوَصَّيْنَا

وقف النبي صلى الله عليه وسلم ١٠

(13) याद करो जब लुक़मान अपने बेटे को नसीहत कर रहा था तो उसने कहा, "बेटा, ख़ुदा के साथ किसी को साझी न ठहराना,[20] सच तो यह है कि शिर्क (बहुदेववाद) बहुत बड़ा ज़ुल्म है।"[21]

---

20. लुक़मान की हिकमत-भरी बातों में से इस ख़ास नसीहत को दो मुनासिब वजहों से यहाँ नक़्ल किया गया है। एक यह कि उन्होंने यह नसीहत अपने बेटे को की थी, और ज़ाहिर बात है कि आदमी दुनिया में सबसे बढ़कर अगर किसी के हक़ में मुख़लिस (निष्ठावान) हो सकता है तो वह उसकी अपनी औलाद ही है। एक आदमी दूसरों को धोखा दे सकता है, उनसे धोखे-भरी बातें कर सकता है, लेकिन अपनी औलाद को तो एक बुरे-से-बुरा आदमी भी धोखा देने की कोशिश कभी नहीं कर सकता। इसलिए लुक़मान का अपने बेटे को यह नसीहत करना इस बात की खुली दलील है कि उनके नज़दीक शिर्क सचमुच एक सबसे बुरा काम था और इसी वजह से उन्होंने सबसे पहले जिस चीज़ की अपने बेटे को नसीहत की, वह यह थी कि इस गुमराही से बचे। दूसरी बात जो इस क़िस्से से मेल खाती है, यह है कि मक्का के ग़ैर-मुस्लिमों में से बहुत-से माँ-बाप उस वक़्त अपनी औलाद को शिर्क (अनेकेश्वरवाद) के दीन पर क़ायम रहने और मुहम्मद (सल्ल.) की तौहीद (एकेश्वरवाद) की दावत (पैग़ाम) से मुँह मोड़ लेने पर मजबूर कर रहे थे, जैसा कि आगे की आयतें बता रही हैं। इसलिए उन नादानों को सुनाया जा रहा है कि तुम्हारी सरज़मीन के मशहूर हकीम ने तो अपनी औलाद की भलाई का हक़ इस तरह अदा किया था कि उसे शिर्क से बचने की नसीहत की। अब तुम जो अपनी औलाद को उसी शिर्क पर मजबूर कर रहे हो तो यह उनके हक़ में बुरा है या भला?

21. ज़ुल्म का अस्ल मतलब है— किसी का हक़ मारना और इनसाफ़ के ख़िलाफ़ काम करना। शिर्क इस वजह से बहुत बड़ा ज़ुल्म है कि आदमी उन हस्तियों को अपने पैदा करनेवाले और रोज़ी और नेमतें देनेवाले के बराबर ला खड़ा करता है जिनका न उसके पैदा करने में कोई हिस्सा, न उसको रोज़ी देने में कोई दख़ल, और न उन नेमतों के देने में कोई साझेदारी जिनसे आदमी इस दुनिया में फ़ायदा उठा रहा है। यह ऐसी बेइनसाफ़ी है जिससे बढ़कर किसी बेइनसाफ़ी के बारे में सोचा तक नहीं जा सकता। फिर आदमी पर उसके पैदा करनेवाले का यह हक़ है कि वह सिर्फ़ उसी की बन्दगी और इबादत करे, मगर वह दूसरों की बन्दगी कर के उसका हक़ मारता है। फिर दूसरों की इस बन्दगी के सिलसिले में आदमी जो अमल भी करता है, उसमें वह अपने ज़ेहन और जिस्म से लेकर ज़मीन और आसमान तक की बहुत-सी चीज़ों को इस्तेमाल करता है, हालाँकि ये सारी चीज़ें एक अल्लाह की, जिसका कोई साझी नहीं, पैदा की हुई हैं और उनमें से किसी चीज़ को भी अल्लाह के सिवा किसी दूसरे की बन्दगी में इस्तेमाल करने का उसे हक़ नहीं है। फिर आदमी पर ख़ुद उसके अपने-आपका यह

الْاِنْسَانَ بِوَالِدَيْهِۚ حَمَلَتْهُ اُمُّهٗ وَهْنًا عَلٰى وَهْنٍ وَّفِصٰلُهٗ فِيْ عَامَيْنِ اَنِ

(14) और[22] यह हक़ीक़त है कि हमने इनसान को अपने माँ-बाप का हक़ पहचानने की ख़ुद ताकीद की है। उसकी माँ ने कमज़ोरी-पर-कमज़ोरी उठाकर उसे अपने पेट में रखा और दो साल उसका दूध छूटने में लगे।[23] (इसी लिए हमने उसे नसीहत की कि)

हक़ है कि वह इसे रुसवाई और अज़ाब में मुब्तला न करे। मगर वह पैदा करनेवाले को छोड़कर पैदा की गई चीज़ों की बन्दगी करके अपने आपको रुसवा भी करता है और अज़ाब का हक़दार भी बनाता है। इस तरह मुशरिक (अनेकेश्वरवादी) की पूरी ज़िन्दगी एक हर तरह का और हर वक़्त का ज़ुल्म बन जाती है, जिसकी कोई साँस भी ज़ुल्म से ख़ाली नहीं होती।

22. यहाँ (और यह हक़ीक़त है) पैराग्राफ़ के आख़िर (तुम कैसे काम करते रहे हो) तक की पूरी इबारत ऊपर से चली आ रही बात से हटकर एक बीच में आ जानेवाली बात है जो अल्लाह तआला ने अपनी तरफ़ से लुक़मान की बात की और ज़्यादा तशरीह के लिए कही है।

23. इन अलफ़ाज़ से इमाम शाफ़िई (रह॰), इमाम अहमद (रह॰), इमाम अबू-यूसुफ़ (रह॰) और इमाम मुहम्मद (रह॰) ने यह नतीजा निकाला है कि बच्चे को दूध पिलाने की मुद्दत दो साल है। इस मुद्दत के अन्दर अगर किसी बच्चे ने किसी औरत का दूध पिया हो तब तो दूध पीने से रिश्ते का हराम होना साबित होगा, वरना बाद के किसी दूध पिलाने का कोई लिहाज़ न किया जाएगा। इमाम मालिक (रह॰) से भी एक रिवायत इसी बात के हक़ में है। लेकिन इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) ने और ज़्यादा एहतियात की ख़ातिर ढाई साल की मुद्दत तय की है, और इसके साथ ही इमाम साहब यह भी फ़रमाते हैं कि अगर दो साल या इससे कम मुद्दत में बच्चे का दूध छुड़ा दिया गया हो और अपने खाने के लिए बच्चा दूध का मुहताज न रहा हो तो उसके बाद किसी औरत का दूध पी लेने से रिश्ते का हराम होना साबित न होगा। अलबत्ता अगर बच्चे की अस्ल ग़िज़ा दूध ही हो तो दूसरी ग़िज़ा थोड़ी बहुत खाने के बावजूद उस ज़माने में दूध पीने से रिश्ता हराम हो जाएगा। इसलिए कि आयत का मंशा यह नहीं है कि बच्चे को लाज़िमन दो साल दूध पिलाया जाए। सूरा-2 बक़रा में कहा गया है—"माएँ बच्चे को पूरे दो साल दूध पिलाएँ, उस शख़्स के लिए जो दूध पिलाने की मुद्दत पूरी कराना चाहता हो।" (आयत-233)।

इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) ने इन अलफ़ाज़ से यह नतीजा निकाला है और आलिमों ने उनकी इस बात की ताईद की है कि हम्ल (गर्भ) की कम-से-कम मुद्दत छः माह है, इसलिए कि क़ुरआन में एक दूसरी जगह कहा गया है, "उसका पेट में रहना और उसका दूध छूटना 30 महीनों में हुआ।" (सूरा-46 अहक़ाफ़, आयत-15)। यह एक अहम क़ानूनी नुक्ता (Point) है जो जाइज़ और नाजाइज़ पैदाइश की बहुत-सी बहसों का फ़ैसला कर देता है।

اشْكُرْ لِيْ وَلِوَالِدَيْكَ ۭ اِلَيَّ الْمَصِيْرُ ﴿١٤﴾ وَاِنْ جَاهَدٰكَ عَلٰٓي اَنْ تُشْرِكَ بِيْ مَا
لَيْسَ لَكَ بِهٖ عِلْمٌ ۙ فَلَا تُطِعْهُمَا وَصَاحِبْهُمَا فِي الدُّنْيَا مَعْرُوْفًا ۡ وَّاتَّبِعْ
سَبِيْلَ مَنْ اَنَابَ اِلَيَّ ۚ ثُمَّ اِلَيَّ مَرْجِعُكُمْ فَاُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ
تَعْمَلُوْنَ ﴿١٥﴾ يٰبُنَيَّ اِنَّهَآ اِنْ تَكُ مِثْقَالَ حَبَّةٍ مِّنْ خَرْدَلٍ فَتَكُنْ فِيْ صَخْرَةٍ اَوْ
فِي السَّمٰوٰتِ اَوْ فِي الْاَرْضِ يَاْتِ بِهَا اللّٰهُ ۭ اِنَّ اللّٰهَ لَطِيْفٌ خَبِيْرٌ ﴿١٦﴾

मेरा शुक्र कर और अपने माँ-बाप का शुक्र अदा कर, मेरी ही तरफ़ तुझे पलटना है। (15) लेकिन अगर वे तुझपर दबाव डालें कि मेरे साथ तू किसी ऐसे को साझी ठहराए जिसे तू नहीं जानता[24] तो उनकी बात हरगिज़ न मान। दुनिया में उनके साथ अच्छा बरताव करता रह, मगर पैरवी उस शख़्स के रास्ते की कर जिसने मेरी तरफ़ रुजू किया है। फिर तुम सबको पलटना मेरी ही तरफ़ है,[25] उस वक़्त मैं तुम्हें बता दूँगा कि तुम किस तरह के काम करते रहे हो।[26]

(16) (और लुक़मान[27] ने कहा था कि) "बेटा कोई चीज़ राई के दाने के बराबर भी हो, और किसी चट्टान में या आसमानों या ज़मीन में कहीं छिपी हुई हो, अल्लाह उसे निकाल लाएगा।[28] वह बारीक-से-बारीक चीज़ देख लेनेवाला (सूक्ष्मदर्शी) और ख़बर रखनेवाला है।

---

24. यानी जो तेरे इल्म में मेरा साझी नहीं है।

25. यानी औलाद और माँ-बाप सबको।

26. तशरीह के लिए देखिए, तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-29 अनकबूत, हाशिए—11, 12।

27. लुक़मान की दूसरी नसीहतों का ज़िक्र यहाँ यह बताने के लिए किया जा रहा है कि अक़ीदों की तरह अख़लाक़ के बारे में भी जो तालीमात नबी (सल्ल॰) पेश कर रहे हैं, वे भी अरब में कोई अनोखी बातें नहीं हैं।

28. यानी अल्लाह के इल्म से और उसकी पकड़ से कोई चीज़ बच नहीं सकती। चट्टान के अन्दर एक दाना तुम्हारे लिए छिपा हुआ हो सकता है, मगर उसके लिए बिलकुल ज़ाहिर है। आसमानों में कोई ज़र्रा तुमसे बहुत ही दूर हो सकता है, मगर अल्लाह के लिए वह बहुत क़रीब है। ज़मीन की तहों में पड़ी हुई कोई चीज़ तुम्हारे लिए सख़्त अंधेरे में है, मगर उसके लिए बिलकुल रौशनी में है। इसलिए तुम कहीं किसी हाल में भी नेकी या बदी का कोई काम ऐसा नहीं कर सकते जो अल्लाह से छिपा रह जाए। वह न सिर्फ़ यह कि उसे जानता है,

يٰبُنَيَّ اَقِمِ الصَّلٰوةَ وَاْمُرْ بِالْمَعْرُوْفِ وَانْهَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَاصْبِرْ عَلٰى
مَآ اَصَابَكَ ۭ اِنَّ ذٰلِكَ مِنْ عَزْمِ الْاُمُوْرِ ۝١٧ وَلَا تُصَعِّرْ خَدَّكَ لِلنَّاسِ
وَلَا تَمْشِ فِي الْاَرْضِ مَرَحًا ۭ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ كُلَّ مُخْتَالٍ فَخُوْرٍ ۝١٨

(17) बेटा, नमाज़ क़ायम कर, नेकी का हुक्म दे, बुराई से मना कर, और जो मुसीबत भी तुमपर पड़े, उसपर सब्र कर।[29] ये वे बातें हैं जिनकी बड़ी ताकीद की गई है।[30] (18) और लोगों से मुँह फेरकर बात न कर,[31] न ज़मीन में अकड़कर चल, अल्लाह किसी घमण्डी और डींग मारनेवाले शख़्स को पसन्द नहीं करता।[32]

बल्कि जब हिसाब लेने का वक़्त आएगा तो वह तुम्हारी एक-एक हरकत का रिकार्ड सामने लाकर रख देगा।

29. इसमें एक बारीक और छिपा हुआ इशारा इस बात की तरफ़ है कि जो शख़्स भी नेकी का हुक्म देने और बुराई से रोकने का काम करेगा, उसपर मुसीबतों का आना ज़रूरी है। दुनिया लाज़िमन ऐसे आदमी के पीछे हाथ धोकर पड़ जाती है और उसे हर तरह की तकलीफ़ों का सामना होकर रहता है।

30. दूसरा मतलब यह भी हो सकता है कि यह बड़े हौसले का काम है। दुनियावालों के सुधार के लिए उठना और उसकी मुश्किलों को बरदाश्त करना कम-हिम्मत लोगों के बस की बात नहीं है। यह उन कामों में से है जिनके लिए बड़ा दिल-गुर्दा चाहिए।

31. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं– "ला तुसअ्-इर ख़द-द-क लिन्नास।" 'सअर' अरबी ज़बान में एक बीमारी को कहते हैं जो ऊँट की गर्दन में होती है और उसकी वजह से ऊँट अपना मुँह हर वक़्त एक ही तरफ़ फेरे रखता है। इससे मुहावरा निकला, 'फ़ुलानुन सअ्अ-र ख़द-द-हु' यानी "फ़ुलाँ शख़्स ने ऊँट की तरह अपना मुँह फेर लिया।" यानी घमण्ड के साथ पेश आया और मुँह फेरकर बात की। इसी के बारे में क़बीला तग़लब का एक शाइर अम्र-बिन-हुय्य कहता है–

"हम ऐसे थे कि जब कभी किसी ज़ालिम ने हमसे मुँह फेरकर बात की तो हमने उसकी टेढ़ ऐसी निकाली कि वह सीधा हो गया।"

32. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं 'मुख़ताल' और 'फ़ख़ूर'। 'मुख़ताल' का मतलब है वह शख़्स जो अपनी समझ में अपने आपको बड़ी चीज़ समझता हो। और 'फ़ख़ूर' उसको कहते हैं जो अपनी बड़ाई का दूसरों पर इज़हार करे। आदमी की चाल में अकड़ और इतराहट और घमण्ड का अन्दाज़ लाज़िमन उसी वक़्त पैदा होता है जब उसके दिमाग़ में घमण्ड की हवा भर जाती है और वह चाहता है कि दूसरों को अपनी बड़ाई महसूस कराए।

وَاقْصِدْ فِيْ مَشْيِكَ وَاغْضُضْ مِنْ صَوْتِكَ ۭ اِنَّ اَنْكَرَ الْاَصْوَاتِ لَصَوْتُ

(19) अपनी चाल में एतिदाल (सन्तुलन) बनाए रख,[33] और अपनी आवाज़ ज़रा धीमी

33. क़ुरआन की तफ़सीर लिखनेवाले कुछ आलिमों ने इसका मतलब यह लिया है कि "तेज़ भी न चल और धीरे भी न चल, बल्कि बीच का तरीक़ा अपना।" लेकिन मौक़े के लिहाज़ से साफ़ मालूम होता है कि यहाँ चाल की तेज़ी और धीमेपन पर बात नहीं हो रही है। धीमी चाल चलना या तेज़ चलना अपने अन्दर कोई अख़लाक़ी ख़ूबी या ख़राबी नहीं रखता और न इसके लिए कोई क़ायदा मुक़र्रर किया जा सकता है। आदमी को जल्दी का कोई काम हो तो तेज़ क्यों न चले। और अगर वह सिर्फ़ दिल बहलाने के लिए चल रहा हो तो आख़िर आहिस्ता चलने में क्या बुराई है। बीच की चाल का अगर कोई पैमाना हो भी तो हर हालत में हर आदमी के लिए उसे एक बुनियादी उसूल कैसे बनाया जा सकता है? अस्ल में जो चीज़ यहाँ बताई जा रही है वह तो नफ़्स (मन) की उस कैफ़ियत का सुधार है जिसके असर से चाल में अकड़ और मिसकीनी ज़ाहिर होती है। बड़ाई का घमण्ड अन्दर मौजूद हो तो वह लाज़िमन एक ख़ास ढंग की चाल में ढलकर ज़ाहिर होता है, जिसे देखकर न सिर्फ़ यह मालूम हो जाता है कि आदमी किसी घमण्ड में मुब्तला है, बल्कि चाल की शान यह तक बता देती है कि किस घमण्ड में मुब्तला है। दौलत, हुकूमत, ख़ूबसूरती, इल्म, ताक़त और ऐसी ही दूसरी जितनी चीज़ें भी इनसान के अन्दर घमण्ड पैदा करती हैं, इनमें से हर एक का घमण्ड उसकी चाल का एक ख़ास अन्दाज़ पैदा कर देता है। इसके बरख़िलाफ़ चाल में मिसकीनी का ज़ाहिर होना भी किसी-न-किसी नापसन्दीदा अन्दरूनी कैफ़ियत के असर से होता है। कभी इनसान के मन का छिपा हुआ घमण्ड एक दिखावटी तवाज़ो (विनम्रता) और दिखावे की दरवेशी और अल्लाहवाला होने का रूप अपनाता है और यह चीज़ उसकी चाल में नुमायाँ नज़र आती है। और कभी इनसान सचमुच दुनिया और उसके हालात से हारकर और अपनी निगाह में आप हक़ीर होकर मरियल चाल चलने लगता है। लुक़मान की नसीहत का मंशा यह है कि अपने नफ़्स की इन कैफ़ियतों को दूर करो और एक सीधे-साधे समझदार और शरीफ़ आदमी की-सी चाल चलो, जिसमें न कोई ऐंठ और अकड़ हो, न मरियलपन और न बनावटी और दिखावटी परहेज़गारी और इनकिसार (विनम्रता)।

सहाबा किराम (रज़ि॰) का मिज़ाज और पसन्द इस मामले में जैसी कुछ थी, उसका अन्दाज़ा इससे किया जा सकता है कि हज़रत उमर (रज़ि॰) ने एक बार एक आदमी को सिर झुकाए हुए चलते देखा तो पुकारकर कहा, "सिर उठाकर चल, इस्लाम मरीज़ नहीं है।" एक और आदमी को उन्होंने मरियल चाल चलते देखा तो फ़रमाया, "ज़ालिम, हमारे दीन को क्यों मारे डालता है।" इन दोनों वाक़िआत से मालूम हुआ कि हज़रत उमर (रज़ि॰) के नज़दीक दीनदारी का मंशा हरगिज़ यह नहीं था कि आदमी बीमारों की तरह फूँक-फूँककर क़दम रखे और

الْحَمِيرِ ﴿١٩﴾ اَلَمْ تَرَوْا اَنَّ اللّٰهَ سَخَّرَ لَكُمْ مَّا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ

रख, सब आवाज़ों से ज़्यादा बुरी आवाज़ गधों की आवाज़ होती है।"[34]

(20) क्या तुम लोग नहीं देखते कि अल्लाह ने ज़मीन और आसमानों की सारी चीज़ें तुम्हारी ख़िदमत के लिए पाबन्द कर रखी हैं[35]—

ख़्वाहमख़्वाह मिसकीन बना चला जाए। किसी मुसलमान को ऐसी चाल चलते देखकर उन्हें ख़तरा होता था कि यह चाल दूसरों के सामने इस्लाम की ग़लत नुमाइन्दगी करेगी और ख़ुद मुसलमानों के अन्दर मायूसी पैदा कर देगी। ऐसा ही एक वाक़िआ एक बार हज़रत आइशा (रज़ि॰) को पेश आया। उन्होंने देखा कि एक साहब बहुत ढीले-ढाले से बने हुए चल रहे हैं। पूछा, "इन्हें क्या हो गया?" बताया गया कि यह 'क़ुर्रा' में से हैं (यानी क़ुरआन पढ़ने-पढ़ानेवाले और तालीम और इबादत में लगे रहनेवाले)। इसपर हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने फ़रमाया, "उमर सय्यिदुल-क़ुर्रा (क़ारियों के सरदार) थे, मगर उनका यह हाल था कि जब चलते तो ज़ोर से चलते, जब बोलते तो क़ुव्वत के साथ बोलते और जब (किसी ग़लतकार को) पीटते तो ख़ूब पीटते थे।" (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए, तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, हाशिया-43; सूरा-25 फ़ुरक़ान, हाशिया-79)

34. इसका मंशा यह नहीं है कि आदमी हमेशा धीरे बोले और कभी ज़ोर से बात न करे, बल्कि गधे की आवाज़ से मिसाल देकर यह बयान किया गया है कि इसका मक़सद किस तरह के लहजे और किस तरह की आवाज़ में बात करने से रोकना है। लहजे और आवाज़ की एक पस्ती और बुलन्दी और सख़्ती और नर्मी तो वह होती है जो फ़ितरी और हक़ीक़ी ज़रूरतों के लिहाज़ से हो। मसलन क़रीब के आदमी या कम आदमियों से आप बात करें तो आहिस्ता बोलेंगे। दूर के आदमी से बोलना हो या बहुत-से लोगों से बात करनी हो तो यक़ीनन ज़ोर से बोलना होगा। ऐसा ही फ़र्क़ लहजों में भी मौक़े और हालात के मुताबिक़ लाज़िमन होता है। तारीफ़ का लहजा मज़म्मत (बुरा-भला कहने) के लहजे से और रज़ामन्दी ज़ाहिर करने का लहजा नाराज़ी के लिहाज़ से अलग होना ही चाहिए। यह चीज़ किसी दरजे में भी एतिराज़ के क़ाबिल नहीं है, न लुक़मान की नसीहत का मतलब यह है कि आदमी इस फ़र्क़ को मिटाकर बस हमेशा एक ही तरह नर्म आवाज़ और धीमे लहजे में बात किया करे। एतिराज़ के क़ाबिल जो चीज़ है वह घमण्ड ज़ाहिर करने और धौंस जमाने और दूसरे को रुसवा करने और अपने रोब में लेने के लिए गला फाड़ना और गधे की-सी आवाज़ में बोलना है।

35. किसी चीज़ को किसी की ख़िदमत के लिए पाबन्द कर देने की दो शक्लें हो सकती हैं। एक यह कि वह चीज़ उसके तहत कर दी जाए और उसे इख़्तियार दे दिया जाए कि जिस तरह चाहे उसे ख़र्च करे और जिस तरह चाहे उसे इस्तेमाल करे। दूसरी यह कि उस चीज़ को कैसे ज़ाब्ते का पाबन्द कर दिया जाए, जिसकी बदौलत वह उस शख़्स के लिए फ़ायदेमन्द हो जाए

وَاَسۡبَغَ عَلَیۡکُمۡ نِعَمَهٗ ظَاهِرَةً وَّبَاطِنَةً ؕ وَمِنَ النَّاسِ مَنۡ یُّجَادِلُ فِی اللّٰهِ
بِغَیۡرِ عِلۡمٍ وَّلَا هُدًی وَّلَا کِتٰبٍ مُّنِیۡرٍ ﴿۲۰﴾ وَاِذَا قِیۡلَ لَهُمُ اتَّبِعُوۡا مَاۤ اَنۡزَلَ
اللّٰهُ قَالُوۡا بَلۡ نَتَّبِعُ مَا وَجَدۡنَا عَلَیۡهِ اٰبَآءَنَا ؕ اَوَلَوۡ کَانَ الشَّیۡطٰنُ یَدۡعُوۡهُمۡ

और अपनी खुली और छिपी नेमतें[36] तुमपर पूरी कर दी हैं? इसपर हाल यह है कि इनसानों में से कुछ लोग हैं जो अल्लाह के बारे में झगड़ते हैं[37] बिना इसके कि उनके पास कोई इल्म (ज्ञान) हो, या हिदायत, या कोई रौशनी दिखानेवाली किताब।[38] (21) और जब उनसे कहा जाता है कि पैरवी करो, उस चीज़ की जो अल्लाह ने उतारी है तो कहते हैं कि हम तो उस चीज़ की पैरवी करेंगे जिसपर हमने अपने बाप-दादा को पाया है। क्या ये उन्हीं

और उसके फ़ायदों (हितों) की ख़िदमत करती रहे। ज़मीन और आसमान की तमाम चीज़ों को अल्लाह तआला ने इनसान के लिए एक ही मानी में पाबन्द नहीं कर दिया है, बल्कि कुछ चीज़ें पहले मानी में पाबन्द की गई हैं और कुछ दूसरे मानी में। मसलन हवा, पानी, मिट्टी, आग, पेड़-पौधे, ज़मीन के अन्दर पाई जानेवाली चीज़ें, मवेशी वग़ैरा अनगिनत चीज़ें पहले मानी में हमारे लिए पाबन्द हैं, और चाँद, सूरज, वग़ैरा दूसरे मानी में।

36. खुली नेमतों से मुराद वे नेमतें हैं जो आदमी को किसी-न-किसी तरह महसूस होती हैं, या जो उसे मालूम हैं। और छिपी हुई नेमतों से वे नेमतें मुराद हैं जिन्हें आदमी न जानता है, न महसूस करता है। हद से ज़्यादा और बेहिसाब चीज़ें हैं जो इनसान के अपने जिस्म में और उसके बाहर दुनिया में उसके फ़ायदों के लिए काम कर रही हैं, मगर इनसान को उनका पता तक नहीं है कि उसके पैदा करनेवाले ने उसकी हिफ़ाज़त के लिए, उसको रोज़ी पहुँचाने के लिए, उसको पालने-पोसने के लिए, और उसकी कामयाबी के लिए क्या-क्या सरो-सामान जुटा रखा है। साइंस के अलग-अलग शोबों में इनसान खोज (Research) के जितने क़दम आगे बढ़ाता जा रहा है, उसके सामने ख़ुदा की बहुत-सी वे नेमतें बेनक़ाब होती जा रही हैं जो पहले उससे बिलकुल छिपी थीं, और आज तक जिन नेमतों पर से परदा उठा है, वह उन नेमतों के मुक़ाबले में हक़ीक़त में किसी गिनती में भी नहीं हैं जिनपर से अब तक परदा नहीं उठा है।

37. यानी उस तरह के मामलों में झगड़े और बहसें करते हैं कि मसलन अल्लाह है भी या नहीं? अकेला वही एक ख़ुदा है या दूसरे ख़ुदा भी हैं? उसकी सिफ़तें क्या हैं और कैसी हैं? अपनी पैदा की हुई चीज़ों और लोगों से उसका ताल्लुक़ किस तरह का है? वग़ैरा।

38. यानी न तो उनके पास जानने का कोई ऐसा ज़रिआ है जिससे उन्होंने सीधे तौर पर ख़ुद हक़ीक़त को देखा या तजरिबा कर लिया हो, न किसी ऐसे रहनुमा की रहनुमाई उन्हें हासिल

إِلَىٰ عَذَابِ السَّعِيرِ ﴿٢١﴾ وَمَنْ يُسْلِمْ وَجْهَهُ إِلَى اللَّهِ وَهُوَ مُحْسِنٌ فَقَدِ
اسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقَىٰ ۗ وَإِلَى اللَّهِ عَاقِبَةُ الْأُمُورِ ﴿٢٢﴾ وَمَنْ كَفَرَ فَلَا
يَحْزُنْكَ كُفْرُهُ ۚ إِلَيْنَا مَرْجِعُهُمْ فَنُنَبِّئُهُمْ بِمَا عَمِلُوا ۚ إِنَّ اللَّهَ عَلِيمٌ

की पैरवी करेंगे, चाहे शैतान उनको भड़कती हुई आग ही की तरफ़ क्यों न बुलाता रहा हो?[39]

(22) जो शख़्स अपने आपको अल्लाह के हवाले कर दे[40] और अमली तौर पर वह नेक हो,[41] उसने हक़ीक़त में एक भरोसे के क़ाबिल सहारा थाम लिया,[42] और सारे मामलों का आख़िरी फ़ैसला अल्लाह ही के हाथ है। (23) अब जो कुफ़्र (इनकार) करता है, उसका कुफ़्र तुम्हें ग़म में मुब्तला न करे,[43] उन्हें पलटकर आना तो हमारी ही तरफ़ है।

है जिसने हक़ीक़त को देखकर उन्हें बताया हो, और न कोई अल्लाह की किताब उनके पास है जिसपर ये अपने अक़ीदे की बुनियाद रखते हों।

39. यानी हर शख़्स और हर ख़ानदान और हर क़ौम के बाप-दादा का हक़ पर होना कुछ ज़रूरी नहीं है। सिर्फ़ यह बात कि यह तरीक़ा बाप-दादा के वक़्तों से चला आ रहा है, हरगिज़ इस बात की दलील नहीं है कि यह हक़ भी है। कोई अक़्लमन्द आदमी यह नादानी की हरकत नहीं कर सकता कि अगर उसके बाप-दादा गुमराह रहे हों तो वह भी आँखें बन्द करके उन्हीं के रास्ते पर चले जाए और कभी यह पता लगाने की ज़रूरत महसूस न करे कि यह रास्ता जा किधर रहा है।

40. यानी पूरी तरह अपने आपको अल्लाह की बन्दगी में दे दे। अपनी कोई चीज़ उसकी बन्दगी से अलग करके न रखे। अपने सारे मामले उसके सिपुर्द कर दे और उसी की दी हुई हिदायतों को अपनी पूरी ज़िन्दगी का क़ानून बनाए।

41. यानी ऐसा न हो कि ज़बान से तो वह हवालगी और सिपुर्दगी का एलान कर दे, मगर अमली तौर पर वह रवैया न अपनाए जो ख़ुदा के एक फ़रमाँबरदार बन्दे का होना चाहिए।

42. यानी न उसको इस बात का कोई ख़तरा है कि उसे ग़लत रहनुमाई मिलेगी, न इस बात का कोई अन्देशा कि ख़ुदा की बन्दगी करके उसका अंजाम ख़राब होगा।

43. बात नबी (सल्ल॰) से की जा रही है। मतलब यह है कि ऐ नबी, जो शख़्स तुम्हारी बात मानने से इनकार करता है, वह अपने नज़दीक तो यह समझता है कि उसने इस्लाम को रद्द करके और कुफ़्र पर अड़े रहकर तुम्हें नुक़सान पहुँचाया है, लेकिन अस्ल में उसने नुक़सान अपने आपको पहुँचाया है। उसने तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा, अपना ही बिगाड़ा है। अगर वह नहीं मानता तो तुम्हें परवाह करने की कोई ज़रूरत नहीं।

بِذَاتِ الصُّدُوْرِ ﴿٢٣﴾ نُمَتِّعُهُمْ قَلِيْلًا ثُمَّ نَضْطَرُّهُمْ اِلٰى عَذَابٍ غَلِيْظٍ ﴿٢٤﴾
وَلَئِنْ سَاَلْتَهُمْ مَّنْ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ لَيَقُوْلُنَّ اللّٰهُ ؕ قُلِ الْحَمْدُ
لِلّٰهِ ؕ بَلْ اَكْثَرُهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ ﴿٢٥﴾ لِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ؕ

फिर हम उन्हें बता देंगे कि वे क्या कुछ करके आए हैं। यक़ीनन अल्लाह सीनों के छिपे हुए राज़ तक जानता है। (24) हम थोड़ी मुद्दत उन्हें दुनिया में मज़े करने का मौक़ा दे रहे हैं, फिर उनको बेबस करके एक सख़्त अज़ाब की तरफ़ खींच ले जाएँगे।

(25) अगर तुम इनसे पूछो कि ज़मीन और आसमानों को किसने पैदा किया है, तो ये ज़रूर कहेंगे कि अल्लाह ने। कहो अलहम्दुलिल्लाह![44] (तमाम तारीफ़ें अल्लाह के लिए हैं।) मगर इनमें से अकसर लोग जानते नहीं हैं।[45] (26) आसमानों और ज़मीन में जो

44. यानी शुक्र है कि तुम इतनी बात तो जानते और मानते हो। लेकिन जब हक़ीक़त यह है तो फिर शुक्र और तारीफ़ सारी-की-सारी सिर्फ़ अल्लाह ही के लिए होनी चाहिए। दूसरी कोई हस्ती शुक्र और तारीफ़ की हक़दार कैसे हो सकती है जबकि कायनात (सृष्टि) के बनाने में उसका कोई हिस्सा ही नहीं है।

45. यानी अकसर लोग यह नहीं जानते कि अल्लाह को कायनात (जगत्) का बनानेवाला मानने के लाज़िमी नतीजे और तक़ाज़े क्या हैं, और कौन-सी बातें उसके उलट पड़ती हैं। जब एक आदमी यह मानता है कि ज़मीन और आसमानों का पैदा करनेवाला सिर्फ़ अल्लाह है तो लाज़िमी तौर से उसको यह भी मानना चाहिए कि इलाह और रब भी सिर्फ़ अल्लाह ही है, इबादत, फ़रमाँबरदारी और बन्दगी का हक़दार भी अकेला वही है, तसबीह (महिमागान) और तारीफ़ (गुणगान) भी उसके सिवा किसी दूसरे की नहीं की जा सकती, दुआएँ भी उसके सिवा किसी और से नहीं माँगी जा सकतीं, और अपने पैदा किए लोगों के लिए क़ानून देनेवाला और हुक्म देनेवाला भी उसके सिवा कोई नहीं हो सकता। पैदा करनेवाला एक हो और माबूद (उपास्य) दूसरा, यह अक़्ल के बिलकुल ख़िलाफ़ है, सरासर आपस में टकरानेवाली बात है जिसको सिर्फ़ वही शख़्स मान सकता है जो जहालत में पड़ा हुआ हो। इसी तरह एक हस्ती को पैदा करनेवाला मानना और फिर दूसरी हस्तियों में से किसी को ज़रूरतें पूरी करनेवाला और मुश्किलें हल करनेवाला ठहराना, किसी के आगे आजिज़ी (विनम्रता) से सिर झुकाना, और किसी को बाइख़्तियार हाकिम और पूरी तरह फ़रमाँबरदारी के लायक़ मानना, ये सब भी आपस में एक-दूसरे से टकरानेवाली बातें हैं, जिन्हें कोई इल्म रखनेवाला इनसान क़बूल नहीं कर सकता।

إِنَّ اللَّهَ هُوَ الْغَنِيُّ الْحَمِيدُ ﴿٢٦﴾ وَلَوْ أَنَّ مَا فِي الْأَرْضِ مِن شَجَرَةٍ أَقْلَامٌ
وَالْبَحْرُ يَمُدُّهُ مِن بَعْدِهِ سَبْعَةُ أَبْحُرٍ مَّا نَفِدَتْ كَلِمَاتُ اللَّهِ ۗ إِنَّ اللَّهَ عَزِيزٌ
حَكِيمٌ ﴿٢٧﴾ مَا خَلْقُكُمْ وَلَا بَعْثُكُمْ إِلَّا كَنَفْسٍ وَاحِدَةٍ ۗ إِنَّ اللَّهَ سَمِيعٌ

कुछ है अल्लाह ही का है,[46] बेशक अल्लाह बेनियाज़ और आप-से-आप तारीफ़ के क़ाबिल है।[47] (27) ज़मीन में जितने पेड़ हैं, अगर वे सब-के-सब क़लम बन जाएँ और समुद्र (दवात बन जाए) जिसे सात और समुद्र स्याही जुटाएँ, तब भी अल्लाह की बातें (लिखने से) ख़त्म न होंगी।[48] बेशक अल्लाह ज़बरदस्त और हिकमतवाला है। (28) तुम सारे इनसानों को पैदा करना और फिर दोबारा जिला उठाना तो (उसके लिए) बस ऐसा है जैसे एक जानदार को (पैदा करना और जिला उठाना)। हक़ीक़त यह है कि अल्लाह

46. यानी हक़ीक़त सिर्फ़ इतनी ही नहीं है कि ज़मीन और आसमानों का पैदा करनेवाला अल्लाह तआला है, बल्कि हक़ीक़त में वही इन सब चीज़ों का मालिक भी है जो ज़मीन और आसमानों में पाई जाती हैं। अल्लाह ने अपनी यह कायनात बनाकर यूँ ही नहीं छोड़ दी है कि जो चाहे इसका, या इसके किसी हिस्से का मालिक बन बैठे। अपनी पैदा की हुई चीज़ों का वह ख़ुद ही मालिक है और हर चीज़ जो इस कायनात में मौजूद है वह उसकी मिलकियत है। यहाँ उसके सिवा किसी की भी यह हैसियत नहीं है कि उसे ख़ुदाई जैसे इख़्तियार (अधिकार) मिल जाएँ।

47. इसकी तशरीह हाशिया (टिप्पणी)-19 में गुज़र चुकी है।

48. अल्लाह की बातों से मुराद हैं उसके तख़लीक़ी (रचना-सम्बन्धी) काम और उसकी क़ुदरत और हिकमत के करिश्मे। यह बात इससे ज़रा अलग अलफ़ाज़ में सूरा-18 कह्फ़, आयत-109 में भी कही गई है। ज़ाहिर में एक आदमी यह गुमान करेगा कि शायद यह बात बढ़ा-चढ़ाकर कही गई है। लेकिन अगर आदमी थोड़ा-सा ग़ौर करे तो उसे महसूस होगा कि हक़ीक़त में इसमें ज़रा-सी बात भी बढ़ाकर नहीं कही गई है। जितने क़लम इस ज़मीन के पेड़ों से बन सकते हैं, जितनी रौशनाई ज़मीन के मौजूदा समुद्र और वैसे ही और भी सात समुद्र जुटा सकते हैं, उनसे अल्लाह की क़ुदरत और हिकमत और उसको पैदा करने के सारे करिश्मे तो एक तरफ़, शायद दुनिया में मौजूद चीज़ों की लिस्ट (सूची) भी नहीं लिखी जा सकती। अकेले इस ज़मीन पर जितनी चीज़ें पाई जाती हैं उन्हीं की गिनती करना मुश्किल है, कहाँ यह कि इस अथाह कायनात (अनन्त सृष्टि) की सारी चीज़ें लिखी जा सकें।

इस बयान का मक़सद अस्ल में यह एहसास दिलाना है कि जो ख़ुदा इतनी बड़ी कायनात को वुजूद में लाया है और शुरू से आख़िर तक उसका सारा इन्तिज़ाम चला रहा है, उसकी ख़ुदाई में उन छोटी-छोटी हस्तियों की हैसियत ही क्या है जिन्हें तुम माबूद (उपास्य) बनाए बैठे हो।

بَصِيْرٌ ۝٢٨ اَلَمْ تَرَ اَنَّ اللّٰهَ يُوْلِجُ الَّيْلَ فِي النَّهَارِ وَيُوْلِجُ النَّهَارَ فِي الَّيْلِ وَسَخَّرَ
الشَّمْسَ وَالْقَمَرَ ۡ كُلٌّ يَّجْرِيْٓ اِلٰٓى اَجَلٍ مُّسَمًّى وَّاَنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ

सब कुछ सुनने और देखनेवाला है।[49]

(29) क्या तुम देखते नहीं हो कि अल्लाह रात को दिन में पिरोता हुआ ले आता है और दिन को रात में? उसने सूरज और चाँद को पाबन्द बना रखा है।[50] सब एक मुक़र्रर वक़्त तक चले जा रहे हैं।[51] और (क्या तुम नहीं जानते कि) जो कुछ भी तुम करते हो

इस अज़ीमुश्शान सल्तनत के चलाने में हिस्सेदार होना तो एक तरफ़, इसके किसी छोटे-से-छोटे हिस्से की पूरी जानकारी और सिर्फ़ जानकारी तक किसी इनसान के बस की चीज़ नहीं है। फिर भला यह कैसे ख़याल किया जा सकता है कि अल्लाह की पैदा की हुई चीज़ों में से किसी को यहाँ ख़ुदाई के अधिकारों का कोई मामूली-सा हिस्सा भी मिल सके जिसकी बुनियाद पर वह दुआएँ सुन सकता और क़िस्मतें बना और बिगाड़ सकता हो।

49. यानी वह एक ही वक़्त में सारी कायनात की आवाज़ें अलग-अलग सुन रहा है और कोई आवाज़ उसके सुनने की ताक़त को इस तरह मशग़ूल (व्यस्त) नहीं करती कि उसे सुनते हुए वह दूसरी चीज़ें न सुन सके। इसी तरह वह एक ही वक़्त में सारी कायनात को उसकी एक-एक चीज़ और एक-एक वाक़िए की तफ़सील के साथ देख रहा है और किसी चीज़ के देखने में उसके देखने की ताक़त इस तरह मशग़ूल नहीं होती कि उसे देखते हुए वह दूसरी चीज़ें न देख सके। ठीक ऐसा ही मामला इनसानों के पैदा करने और दोबारा वुजूद (अस्तित्व) में लाने का भी है। शुरू से आज तक जितने आदमी भी पैदा हुए हैं और आइन्दा क़ियामत तक होंगे, उन सबको वह एक पल में फिर पैदा कर सकता है। उसकी पैदा करने की क़ुदरत (क्षमता) एक इनसान को बनाने में इस तरह मशग़ूल नहीं होती कि उसी वक़्त वह दूसरे इनसान न पैदा कर सके। उसके लिए एक इनसान का बनाना और खरबों इनसानों का बना देना बराबर है।

50. यानी रात और दिन का पाबन्दी और बाक़ायदगी के साथ आना ख़ुद यह ज़ाहिर कर रहा है कि सूरज और चाँद पूरी तरह एक ज़ाब्ते (नियम) में कसे हुए हैं। सूरज और चाँद का ज़िक्र यहाँ सिर्फ़ इसलिए किया गया है कि ये दोनों आसमानी दुनिया की वे सबसे ज़्यादा नुमायाँ चीज़ें हैं जिनको इनसान पुराने ज़माने से माबूद (उपास्य) बनाता चला आ रहा है और आज भी बहुत-से इनसान उन्हें देवता मान रहे हैं। वरना हक़ीक़त में ज़मीन समेत कायनात के तमाम तारों और सय्यारों (ग्रहों) को अल्लाह तआला ने एक अटल ज़ाब्ते में कस रखा है जिससे वे बाल बराबर भी हट नहीं सकते।

51. यानी हर चीज़ की उम्र की जो मुद्दत तय कर दी गई है, उसी वक़्त तक वह चल रही है।

خَبِيْرٌ ﴿٢٩﴾ ذٰلِكَ بِاَنَّ اللّٰهَ هُوَ الْحَقُّ وَاَنَّ مَا يَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِهِ الْبَاطِلُ ۙ
وَاَنَّ اللّٰهَ هُوَ الْعَلِيُّ الْكَبِيْرُ ﴿٣٠﴾ اَلَمْ تَرَ اَنَّ الْفُلْكَ تَجْرِيْ فِي الْبَحْرِ
بِنِعْمَتِ اللّٰهِ لِيُرِيَكُمْ مِّنْ اٰيٰتِهٖ ۭ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّكُلِّ

अल्लाह उससे बाख़बर है? (30) यह सब कुछ इस वजह से है कि अल्लाह ही हक़ है[52] और उसे छोड़कर जिन दूसरी चीज़ों को ये लोग पुकारते हैं, वे सब झूठ (असत्य) हैं,[53] और (इस वजह से कि) अल्लाह ही बुज़ुर्ग (उच्च) और बरतर (महान) है।[54]

(31) क्या तुम देखते नहीं हो कि नाव समुद्र में अल्लाह की मेहरबानी से चलती है, ताकि वह तुम्हें अपनी कुछ निशानियाँ दिखाए?[55] हक़ीक़त में इसमें बहुत-सी निशानियाँ हैं

सूरज हो या चाँद, या कायनात (सृष्टि) का कोई और तारा या सय्यारा (ग्रह), इनमें से कोई चीज़ भी न हमेशा से है और न हमेशा रहेगी। हर एक की शुरुआत का एक वक़्त है जिससे पहले वह मौजूद न थी, और एक वक़्त ख़त्म होने का है जिसके बाद वह मौजूद न रहेगी। इस ज़िक्र का मक़सद यह जताना है कि ऐसी मिट जानेवाली और बेबस चीज़ें आख़िर माबूद कैसे हो सकती हैं।

52. यानी सब कुछ करने का अस्ल अधिकार वही रखता है, पैदा करने और इन्तिज़ाम करने का अस्ल मालिक वही है।

53. यानी वे सब तुम्हारी सोच (कल्पनाओं) से गढ़े हुए ख़ुदा हैं। तुमने मान लिया है कि फ़ुलाँ साहब ख़ुदाई में कोई दख़ल रखते हैं और फ़ुलाँ साहब मुश्किलें हल करने और ज़रूरतें पूरी करने का अधिकार रखते हैं। हालाँकि सच्ची बात यह है कि उनमें से कोई साहब भी कुछ नहीं बना सकते।

54. यानी हर चीज़ से ऊपर और बलन्द जिसके सामने सब पस्त हैं, और हर चीज़ से बड़ा जिसके सामने सब छोटे हैं।

55. यानी ऐसी निशानियाँ जिनसे यह पता चलता है कि इख़्तियारात (अधिकार) बिलकुल अल्लाह तआला के हाथ में हैं। इनसान चाहे कैसे मज़बूत और समुद्री सफ़र के लिए मुनासिब जहाज़ बना ले और जहाज़ चलाने के फ़न (कला) और उससे ताल्लुक़ रखनेवाली जानकारियों और तजरिबों में कितना ही कमाल हासिल कर ले, लकिन समुद्र में जिन भयानक ताक़तों से उसको वास्ता पड़ता है, उनके मुक़ाबले में वह अकेले अपनी तदबीरों के बल-बूते पर सही-सलामत सफ़र नहीं कर सकता जब तक कि अल्लाह की मेहरबानी उसके साथ न हो। उसकी मेहरबानी की निगाह फिरते ही आदमी को मालूम हो जाता है कि उसके वसाइल (संसाधन) के ज़रिए और हुनरमन्दी के कमाल कितने पानी में हैं। इसी तरह आदमी अम्न और इत्मीनान की

صَبَّارٍ شَكُوْرٍ ۝ وَاِذَا غَشِيَهُمْ مَّوْجٌ كَالظُّلَلِ دَعَوُا اللّٰهَ مُخْلِصِيْنَ لَهُ
الدِّيْنَ ۚ فَلَمَّا نَجّٰىهُمْ اِلَى الْبَرِّ فَمِنْهُمْ مُّقْتَصِدٌ ۭ وَمَا يَجْحَدُ بِاٰيٰتِنَآ اِلَّا

हर उस शख़्स के लिए जो सब्र और शुक्र करनेवाला हो।[56] (32) और जब (समुद्र में) इन लोगों पर एक लहर सायबानों की तरह छा जाती है तो ये अल्लाह को पुकारते हैं अपने दीन को बिलकुल उसी के लिए ख़ालिस करके, फिर जब वह बचाकर इन्हें .ख़ुशकी तक पहुँचा देता है तो इनमें से कोई इक़तिसाद बरतता है,[57] और हमारी निशानियों का

हालत में चाहे कैसा ही पक्का नास्तिक या कट्टर मुशरिक हो, लेकिन समुद्र के तूफ़ान में जब उसकी नाव डूबने और डोलने लगती है, उस वक़्त नास्तिक को भी मालूम हो जाता है कि ख़ुदा है, और मुशरिक भी जान लेता है कि ख़ुदा बस एक ही है।

56. यानी जिन लोगों में ये दो ख़ूबियाँ पाई जाती हैं, वे जब इन निशानियों से हक़ीक़त को पहचान जाते हैं तो हमेशा के लिए तौहीद (एकेश्वरवाद) का सबक़ हासिल करके उसपर मज़बूती के साथ जम जाते हैं। पहली ख़ूबी यह कि वे सब्बार (बहुत-ज़्यादा सब्र करनेवाले) हों, उनका मिज़ाज पल-पल रंग बदलनेवाला न हो, बल्कि उसमें ठहराव और जमाव हो। गवारा और नागवार, सख़्त और नर्म, अच्छे और बुरे, तमाम हालात में एक सही और बेहतर अक़ीदे पर क़ायम रहें। यह कमज़ोरी उनमें न हो कि बुरा वक़्त आया तो ख़ुदा के सामने गिड़गिड़ाने लगे और अच्छा वक़्त आते ही सब कुछ भूल गए, या इसके बरख़िलाफ़ अच्छे हालात में अल्लाह की इबादत करते रहे और मुसीबतों की एक चोट पड़ते ही ख़ुदा को गालियाँ देनी शुरू कर दें। दूसरी ख़ूबी यह है कि वे शकूर (बहुत ज़्यादा शुक्र करनेवाले) हों। नमक-हराम और एहसान-फ़रामोश न हों, बल्कि नेमत की क़द्र पहचानते हों और नेमत देनेवाले के लिए एक मुस्तक़िल (स्थायी) शुक्र का जज़्बा अपने दिल में बिठाए रखें।

57. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'मुक़्तसिद' इस्तेमाल हुआ है जो 'इक़्तिसाद' से बना है। इसके कई मतलब हो सकते हैं। 'इक़्तिसाद' को अगर सच बोलने के मानी में लिया जाए तो इसका मतलब यह होगा कि उनमें से कम ही ऐसे निकलते हैं, जो वक़्त गुज़र जाने के बाद भी उस तौहीद (एकेश्वरवाद) पर जमे रहते हैं जिसका इक़रार उन्होंने तूफ़ान में घिरकर किया था और यह सबक़ हमेशा के लिए उनको सीधे-सच्चे रास्ते पर चलनेवाला बना देता है। और अगर 'इक़्तिसाद' का मतलब 'बीच का रास्ता' लिया जाए तो इसका एक मतलब यह होगा कि उनमें से कुछ लोग अपने शिर्क (बहुदेववाद) और नास्तिकता के अक़ीदे में उस शिद्दत पर क़ायम नहीं रहते जिसपर इस तजरिबे से पहले थे, और दूसरा मतलब यह होगा कि वह वक़्त गुज़र जाने के बाद उनमें से कुछ लोगों के अन्दर इख़लास (निष्ठा) की वह कैफ़ियत ठण्डी पड़

كُلُّ خَتَّارٍ كَفُوْرٍ ۝٣٢ يٰۤاَيُّهَا النَّاسُ اتَّقُوْا رَبَّكُمْ وَاخْشَوْا يَوْمًا لَّا يَجْزِىْ

इनकार नहीं करता मगर हर वह शख़्स जो ग़द्दार और नाशुक्रा है।[58]

(33) लोगो, बचो अपने रब के ग़ज़ब (प्रकोप) से और डरो उस दिन से जबकि कोई

जाती है जो उस वक़्त पैदा हुई थी। ज़्यादा इमकान यह है कि अल्लाह तआला ने यहाँ यह कई मतलबोंवाला जुमला एक ही वक़्त में इन तीनों कैफ़ियतों की तरफ़ इशारा करने के लिए इस्तेमाल किया हो। मक़सद शायद यह बताना है कि समुद्री तूफ़ान के वक़्त तो सबका दिमाग़ दुरुस्त हो जाता है और शिर्क और नास्तिकता को छोड़कर सब-के-सब एक ख़ुदा को मदद के लिए पुकारना शुरू कर देते हैं। लेकिन सही-सलामत किनारे पर पहुँच जाने के बाद एक थोड़ी-सी तादाद ही ऐसी निकलती है जिसने इस तजरिबे से कोई पायेदार सबक़ लिया हो। फिर यह थोड़ी-सी तादाद भी तीन तरह के गरोहों में बँट जाती है— एक वह जो हमेशा के लिए सीधा हो गया। दूसरा वह जिसका कुफ़्र कुछ बीच के रास्ते पर आ गया। तीसरा वह जिसके अन्दर उस हंगामी इख़लास (निष्ठा) में से कुछ-न-कुछ बाक़ी रह गया।

58. ये दो सिफ़ात (गुण) उन दो सिफ़तों के मुक़ाबले में हैं जिनका ज़िक्र इससे पहले की आयत में किया गया था। ग़द्दार वह आदमी है जो बहुत बेवफ़ा हो और अपने क़ौल-क़रार का कोई ध्यान न रखे। और नाशुक्रा वह है जिसपर चाहे कितनी ही नेमतों की बारिश कर दी जाए वह एहसान मानकर न दे और जिसने उसपर एहसान किया है, उसके मुक़ाबले में सरकशी से पेश आए। ये सिफ़ात जिन लोगों में पाई जाती हैं, वे ख़तरे का वक़्त टल जाने के बाद बेझिझक अपने कुफ़्र, अपनी नास्तिकता और अपने शिर्क की तरफ़ पलट जाते हैं। वे यह नहीं मानते कि उन्होंने तूफ़ान की हालत में ख़ुदा के होने और एक ही ख़ुदा के होने की कुछ निशानियाँ बाहरी दुनिया में और ख़ुद अपने अन्दर भी पाई थीं और उनका ख़ुदा को पुकारना इसी हक़ीक़त को पा लेने का नतीजा था। उनमें से जो नास्तिक हैं, वे अपने इस काम की वजह यह बयान करते हैं कि वह तो एक कमज़ोरी थी जो मजबूरी की हालत में हमसे हो गई, वरना सच तो यह है कि ख़ुदा-वुदा कोई न था जिसने हमें तूफ़ान से बचाया हो, हम तो फ़ुलाँ-फ़ुलाँ असबाब व ज़राए (साधनों-संसाधनों) से बच निकलने में कामयाब हो गए। रहे मुशरिक लोग तो वे आम तौर पर यह कहते हैं कि फ़ुलाँ-फ़ुलाँ बुज़ुर्गों, या देवी-देवताओं का साया हमारे सिर पर था जिसकी वजह से हम बच गए, चुनाँचे किनारे पर पहुँचते ही वे अपने झूठे माबूदों के शुक्रिए अदा करने शुरू कर देते हैं और उन्हीं के आस्तानों पर चढ़ावे चढ़ाने लगते हैं। यह ख़याल तक उन्हें नहीं आता कि जब सारी उम्मीदों के सहारे टूट गए थे, उस वक़्त एक अल्लाह के सिवा, जिसका कोई साझी नहीं, कोई न था जिसका दामन उन्होंने थामा हो।

وَالِدٌ عَنْ وَّلَدِهٖ ۫ وَلَا مَوْلُوْدٌ هُوَ جَازٍ عَنْ وَّالِدِهٖ شَيْـًٔا ؕ اِنَّ وَعْدَ اللّٰهِ
حَقٌّ فَلَا تَغُرَّنَّكُمُ الْحَيٰوةُ الدُّنْيَا ٚ وَلَا يَغُرَّنَّكُمْ بِاللّٰهِ الْغَرُوْرُ ﴿۳۳﴾

बाप अपने बेटे की तरफ़ से बदला न देगा और न कोई बेटा ही अपने बाप की तरफ़ से कुछ बदला देनेवाला होगा।[59] हक़ीक़त में अल्लाह का वादा[60] सच्चा है। इसलिए यह दुनिया की ज़िन्दगी तुम्हें धोखे में न डाले[61] और न धोखेबाज़ तुमको अल्लाह के मामले

59. यानी दोस्त, लीडर, पीर और इसी तरह के दूसरे लोग तो फिर भी दूर का ताल्लुक़ रखनेवाले हैं, दुनिया में सबसे क़रीबी ताल्लुक़ अगर कोई है तो वह औलाद और माँ-बाप का है। मगर वहाँ हालत यह होगी कि बेटा पकड़ा गया हो तो बाप आगे बढ़कर यह नहीं कहेगा कि इसके गुनाह में मुझे पकड़ लिया जाए, और बाप की शामत आ रही हो तो बेटे में यह कहने की हिम्मत नहीं होगी कि इसके बदले मुझे जहन्नम में भेज दिया जाए। इस हालत में यह उम्मीद करने की क्या गुंजाइश बाक़ी रह जाती है कि कोई दूसरा शख़्स वहाँ किसी के कुछ काम आएगा। लिहाज़ा नादान है वह आदमी जो दुनिया में दूसरों की ख़ातिर अपनी आख़िरत ख़राब करता है, या किसी के भरोसे पर गुमराही और गुनाह का रास्ता अपनाता है। इस जगह पर आयत-15 का मज़मून (विषय) भी निगाह में रहना चाहिए जिसमें औलाद को नसीहत की गई थी कि दुनियावी ज़िन्दगी के मामलों में माँ-बाप की ख़िदमत करना तो बेशक सही है, मगर दीन (धर्म) और अक़ीदे के मामले में माँ-बाप के कहने पर गुमराही क़बूल कर लेना हरगिज़ सही नहीं है।

60. अल्लाह के वादे से मुराद यह वादा है कि क़ियामत आनेवाली है और एक दिन अल्लाह की अदालत क़ायम होकर रहेगी, जिसमें हर एक को अपने कामों (कर्मों) के लिए जवाब देना होगा।

61. दुनिया की ज़िन्दगी सिर्फ़ ज़ाहिरी चीज़ों को देखनेवाले इनसानों को अलग-अलग तरह की ग़लतफ़हमियों में मुब्तला करती है। कोई यह समझता है कि जीना और मरना जो कुछ है बस इसी दुनिया में है, इसके बाद कोई दूसरी ज़िन्दगी नहीं है, इसलिए जितना कुछ भी तुम्हें करना है बस यहीं कर लो। कोई अपनी दौलत और ताक़त और ख़ुशहाली के नशे में बदमस्त होकर अपनी मौत को भूल जाता है और इस ग़लतफ़हमी में पड़ जाता है कि उसका ऐश और उसकी हुकूमत कभी ख़त्म न होगी। कोई अख़लाक़ी और रूहानी मक़सदों को भुलाकर सिर्फ़ माद्दी (भौतिक) फ़ायदों (लाभों) और लज़्ज़तों को अस्ल मक़सद समझ लेता है और मेयारे-ज़िन्दगी (जीवन-स्तर) को ऊँचा करने के सिवा किसी दूसरे मक़सद को कोई अहमियत नहीं देता, चाहे नतीजे में उसका मेयारे-आदमियत (आदमी होने का स्तर) कितना ही नीचे गिरता चला जाए। कोई यह समझता है कि दुनियावी ख़ुशहाली ही हक़ और बातिल

إِنَّ اللَّهَ عِندَهُۥ عِلْمُ السَّاعَةِ وَيُنَزِّلُ الْغَيْثَ وَيَعْلَمُ مَا فِي الْأَرْحَامِ ۖ
وَمَا تَدْرِي نَفْسٌ مَّاذَا تَكْسِبُ غَدًا ۖ وَمَا تَدْرِي نَفْسٌ بِأَيِّ أَرْضٍ

में धोखा देने पाए।[62]

(34) उस घड़ी का इल्म अल्लाह ही के पास है, वही बारिश बरसाता है, वही जानता है कि माओं के पेटों में क्या परवरिश पा रहा है, कोई जानदार नहीं जानता कि कल वह क्या कमाई करनेवाला है और न किसी शख़्स को यह ख़बर है कि किस सरज़मीन में

(सत्य-असत्य) का अस्ल पैमाना है, हर वह तरीक़ा हक़ है जिसपर चलकर यह नतीजा हासिल हुआ और इसके बरख़िलाफ़ जो कुछ भी है बातिल है। कोई इसी ख़ुशहाली को इस बात की अलामत समझता है कि उसे ख़ुदा की ख़ुशनूदी हासिल है और यह उसूल बनाकर बैठ जाता है कि जिसकी दुनिया ख़ूब बन रही है, चाहे कैसे ही तरीक़ों से बने, वह अल्लाह का प्यारा है, और जिसकी दुनिया ख़राब है, चाहे वह हक़पसन्दी और सीधे रास्ते पर चलने की वजह ही से ख़राब हो, उसकी आख़िरत भी ख़राब है। ये और ऐसी ही जितनी ग़लतफ़हमियाँ भी हैं, उन सबको अल्लाह तआला ने इस आयत में "दुनिया की ज़िन्दगी का धोखा" कहा है।

62. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'अल-ग़रूर' (धोखेबाज़) इस्तेमाल हुआ है। अल-ग़रूर से मुराद शैतान भी हो सकता है, कोई इनसान या इनसानों का कोई गरोह भी हो सकता है, इनसान का अपना मन भी हो सकता है और कोई दूसरी चीज़ भी हो सकती है। किसी ख़ास आदमी या ख़ास चीज़ को तय किए बग़ैर इस बहुत-से मानी रखनेवाले लफ़्ज़ को किसी के लिए ख़ास न करने की वजह यह है कि अलग-अलग लोगों के लिए धोखा खाने की बुनियादी वजहें अलग-अलग होती हैं। जिस आदमी ने ख़ास तौर पर जिस ज़रिए से भी वह अस्ल धोखा खाया हो जिसके असर से उसकी ज़िन्दगी का रुख़ सही दिशा से ग़लत दिशा में मुड़ गया, वही उसके लिए 'अल-ग़रूर' (धोखेबाज़) है।

"अल्लाह के मामले में धोखा देने" के अलफ़ाज़ भी अपने अन्दर बहुत-से मानी रखते हैं जिनमें अलग-अलग तरह के अनगिनत धोखे आ जाते हैं। किसी को उसका 'धोखेबाज़' यह यक़ीन दिलाता है कि ख़ुदा सिरे से है ही नहीं। किसी को यह समझाता है कि ख़ुदा इस दुनिया को बनाकर अलग जा बैठा है और अब यह दुनिया बन्दों के हवाले है। किसी को इस ग़लतफ़हमी में डालता है कि ख़ुदा के कुछ प्यारे ऐसे हैं जिनकी नज़दीकी हासिल कर लो तो जो कुछ भी तुम चाहो करते रहो, बख़्शिश तुम्हारी यक़ीनी है। किसी को इस धोखे में मुब्तला करता है कि ख़ुदा तो माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है, तुम गुनाह करते चले जाओ, वह माफ़ करता चला जाएगा। किसी को 'जब्र' का अक़ीदा समझाता है और इस ग़लतफ़हमी में डाल

تَمُوۡتُ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَلِيۡمٌ خَبِيۡرٌ ۝٣٤

उसको मौत आनी है, अल्लाह ही सब कुछ जाननेवाला और ख़बर रखनेवाला है।[63]

देता है कि तुम तो मजबूर हो, बुराई करते हो तो ख़ुदा तुमसे कराता है और नेकी से तुम दूर भागते हो तो ख़ुदा ही तुम्हें उसकी तौफ़ीक़ नहीं देता। इस तरह के न जाने कितने धोखे हैं जो इनसान ख़ुदा के बारे में खा रहा है, और अगर जाइज़ा लेकर देखा जाए तो आख़िरकार तमाम गुमराहियों और गुनाहों और जुर्मों की बुनियादी वजह यही निकलती है कि इनसान ने ख़ुदा के बारे में कोई-न-कोई धोखा खाया है तब ही वह अक़ीदे की किसी गुमराही या अख़लाक़ी भटकाव में पड़ा है।

63. यह आयत अस्ल में उस सवाल का जवाब है जो क़ियामत का ज़िक्र और आख़िरत का वादा सुनकर मक्का के ग़ैर-मुस्लिम बार-बार अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से कहते थे कि आख़िर वह घड़ी कब आएगी। क़ुरआन मजीद में कहीं उनके इस सवाल को नक़्ल करके इसका जवाब दिया गया है और कहीं नक़्ल किए बिना जवाब दे दिया गया है, क्योंकि जिनसे बात की जा रही थी उनके ज़ेहनों में वह मौजूद था। यह आयत भी उन्हीं आयतों में से है जिनमें सवाल का ज़िक्र किए बिना उसका जवाब दिया गया है।

पहला जुमला : "उस घड़ी का इल्म अल्लाह ही के पास है।" यह अस्ल सवाल का जवाब है। इसके बाद के चारों जुमले इसके लिए दलील के तौर पर कहे गए हैं। दलील का ख़ुलासा यह है कि जिन मामलों से इनसान की सबसे क़रीबी दिलचस्पियाँ जुड़ी हैं, इनसान उनके बारे में भी कोई जानकारी नहीं रखता, फिर भला यह जानना उसके लिए कैसे मुमकिन है कि सारी दुनिया के अंजाम का वक़्त कब आएगा। तुम्हारी ख़ुशहाली और बदहाली का बड़ा दारोमदार बारिश पर है। मगर उसका अस्ल ताल्लुक़ बिलकुल अल्लाह के हाथ में है। जब, जहाँ, जितनी चाहता है बरसाता है और जब चाहता है रोक लेता है। तुम बिलकुल नहीं जानते कि कहाँ, किस वक़्त, कितनी बारिश होगी और कौन-सी ज़मीन इससे महरूम रह जाएगी, या किस ज़मीन पर बारिश उलटी नुक़सानदेह हो जाएगी। तुम्हारी अपनी बीवियों के पेट में तुम्हारे अपने नुत्फ़े (वीर्य) से हमल (गर्भ) ठहरता है जिससे तुम्हारी नस्ल का मुस्तक़बिल जुड़ा होता है। मगर तुम नहीं जानते कि क्या चीज़ इस पेट में पल रही है और किस शक्ल में किन भलाइयों या बुराइयों को लिए हुए वह सामने आएगी। तुमको यह तक पता नहीं है कि कल तुम्हारे साथ क्या कुछ पेश आना है। एक अचानक हादिसा (आकस्मिक घटना) तुम्हारी तक़दीर बदल सकता है, मगर एक मिनट पहले भी तुमको इसकी ख़बर नहीं होती। तुमको यह भी मालूम नहीं है कि तुम्हारी इस ज़िन्दगी का ख़ातिमा आख़िरकार कहाँ, किस तरह होगा। ये सारी मालूमात अल्लाह ने अपने ही पास रखी हैं और इनमें से किसी का इल्म भी तुमको नहीं दिया। इनमें से एक-एक चीज़ ऐसी है जिसे तुम चाहते हो कि पहले से तुम्हें उसका इल्म हो

जाए तो कुछ उसके लिए पहले से इन्तिज़ाम कर सको, लेकिन तुम्हारे लिए इसके सिवा कोई चारा नहीं है कि इन मामलों में अल्लाह ही की तदबीर और उसी के फ़ैसले पर भरोसा करो। इसी तरह दुनिया के ख़त्म होने की घड़ी के बारे में भी अल्लाह के फ़ैसले पर भरोसा करने के सिवा चारा नहीं है। इसका इल्म भी न किसी को दिया गया है, न दिया जा सकता है।

यहाँ एक बात और भी अच्छी तरह समझ लेनी ज़रूरी है, और वह यह है कि इस आयत में ग़ैब (परोक्ष) के तहत आनेवाले मामलों की कोई फ़ेहरिस्त (सूची) नहीं दी गई है जिनका इल्म अल्लाह के सिवा किसी को नहीं है। यहाँ तो सिर्फ़ सामने की कुछ चीज़ें मिसाल के तौर पर पेश की गई हैं जिनसे इनसान की निहायत गहरी और क़रीबी दिलचस्पियाँ जुड़ी हैं और इनसान उनसे बेख़बर है। इससे यह नतीजा निकालना ठीक न होगा कि सिर्फ़ यही पाँच ग़ैब के मामले हैं जिनको अल्लाह के सिवा कोई नहीं जानता। हालाँकि ग़ैब नाम ही उस चीज़ का है जो अल्लाह के बन्दों से छिपी हो और सिर्फ़ अल्लाह ही को मालूम हो, और सच तो यह है कि इस ग़ैब की कोई हद नहीं है। (इस बारे में तफ़सीली मालूमात के लिए देखिए, तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-27 नम्ल, हाशिया-83)

☆☆☆

32. अस-सजदा

परिचय

नाम

आयत-15 में सजदे की जो बात आई है, उसी को सूरा का नाम ठहरा दिया गया है।

उतरने का ज़माना

बयान के अन्दाज़ से ऐसा महसूस होता है कि इसके उतरने का ज़माना मक्का के बीच का दौर है और उसका भी शरुआती ज़माना, क्योंकि इस कलाम के पसमंज़र (पृष्ठभूमि) में ज़ुल्म व सितम की वह शिद्दत नज़र नहीं आती जो बाद के दौर की सूरतों के पीछे नज़र आती है।

मौज़ू (विषय) और मज़मून (वार्ता)

सूरा का मौज़ू तौहीद (एकेश्वरवाद), आख़िरत (परलोकवाद) और रिसालत (पैग़म्बरी) के बारे में लोगों के शक और शुब्हों को दूर करना और इन तीनों हक़ीक़तों पर ईमान की दावत देना है। मक्का के ग़ैर-मुस्लिम नबी (सल्ल॰) के बारे में आपस में चर्चा कर रहे थे कि यह आदमी अजीब-अजीब बातें गढ़-गढ़कर सुना रहा है। कभी मरने के बाद की ख़बरें देता है और कहता है कि मिट्टी में रल-मिल जाने के बाद तुम फिर उठाए जाओगे और हिसाब-किताब होगा और दोज़ख़ होगी और जन्नत होगी। कभी कहता है कि ये देवी-देवता और बुज़ुर्ग कोई चीज़ नहीं हैं, बस अकेला एक ख़ुदा ही माबूद (उपास्य) है। कभी कहता है कि मैं ख़ुदा का पैग़म्बर हूँ, आसमान से मुझपर वह्य आती है और यह कलाम जो मैं तुमको सुना रहा हूँ, मेरा कलाम नहीं, बल्कि ख़ुदा का कलाम है। ये अजीब कहानियाँ हैं जो यह आदमी हमें सुना रहा है—इन्हीं बातों का जवाब इस सूरा में दिया गया है।

इस जवाब में ग़ैर-मुस्लिमों से कहा गया है कि बिना किसी शक-शुब्हे के यह ख़ुदा ही का कलाम है और इसलिए उतारा गया है कि नुबूवत (पैग़म्बरी) की बरकतों से

महरूम, ग़फ़लत में पड़ी हुई एक क़ौम को चौंका दिया जाए। इसे तुम मनगढ़त कैसे कह सकते हो जबकि यह एक खुली हुई सच्चाई और हक़ीक़त है कि यह अल्लाह की तरफ़ से उतरा है।

फिर उनसे कहा गया है कि यह क़ुरआन जिन हक़ीक़तों को तुम्हारे सामने पेश करता है, अक़्ल से काम लेकर ख़ुद सोचो कि उनमें क्या चीज़ हैरत की है। आसमान और ज़मीन के इन्तिज़ाम को देखो, ख़ुद अपनी पैदाइश और बनावट पर ग़ौर करो, क्या यह सब कुछ उस तालीम के सच होने पर गवाह नहीं है जो इस नबी की ज़बान से इस क़ुरआन में तुमको दी जा रही है? कायनात का यह निज़ाम तौहीद का पता दे रहा है या शिर्क का? और इस सारे निज़ाम को देखकर और ख़ुद अपनी पैदाइश पर निगाह डालकर क्या तुम्हारी अक़्ल यही गवाही देती है कि जिसने अब तुम्हें पैदा कर रखा है, वह फिर तुम्हें पैदा न कर सकेगा?

फिर आख़िरत की दुनिया का एक नक़्शा खींचा गया है और ईमान के फल और कुफ़्र (हक़ के इनकार) के बुरे नतीजे और अंजाम बयान करके इस बात पर उभारा गया है कि लोग बुरा अंजाम सामने आने से पहले कुफ़्र छोड़ दें और क़ुरआन की इस तालीम को क़बूल कर लें जिसे मानकर ख़ुद उनकी अपनी ही आख़िरत दुरुस्त होगी।

फिर उनको बताया गया है कि यह अल्लाह की बड़ी रहमत है कि वह इनसान के क़ुसूरों पर अचानक आख़िरी और फ़ैसलाकुन अज़ाब में उसे नहीं पकड़ लेता, बल्कि उससे पहले छोटी-छोटी तकलीफ़ें, मुसीबतें, आफ़तें और नुक़सान भेजता रहता है। हल्की-हल्की चोटें लगाता रहता है, ताकि वह ख़बरदार हो और उसकी आँखें खुल जाएँ। आदमी अगर इन इब्तिदाई चोटों ही से होश में आ जाए तो उसके अपने हक़ में बेहतर है।

फिर फ़रमाया कि दुनिया में यह कोई पहला और अनोखा वाक़िआ तो नहीं है कि एक आदमी पर ख़ुदा की तरफ़ से किताब आई हो। इससे पहले आख़िर मूसा (अलैहि॰) पर भी तो किताब आई थी जिसे तुम सब लोग जानते हो। यह आख़िर कौन-सी ऐसी बात है कि इसपर तुम लोग यों कान खड़े कर रहे हो। यक़ीन मानो कि यह किताब ख़ुदा ही की तरफ़ से आई हुई है और अच्छी तरह समझ लो कि अब फिर वही कुछ होगा जो मूसा (अलैहि॰) के दौर में हो चुका है। इमामत और पेशवाई अब उन्हीं को मिलेगी जो अल्लाह की इस किताब को मान लेंगे। इसे रद्द कर देनेवालों के लिए नाकामी मुक़द्दर हो चुकी है।

फिर मक्का के ग़ैर-मुस्लिमों से कहा गया है कि अपने तिजारती सफ़रों के दौरान में

तुम जिन पिछली तबाह हो चुकी क़ौमों की बस्तियों पर से गुज़रते हो, उनका अंजाम देख लो, क्या यही अंजाम तुम अपने लिए पसन्द करते हो? ज़ाहिर से धोखा न खाओ। आज तुम देख रहे हो कि मुहम्मद (सल्ल॰) की बात कुछ लड़कों, कुछ ग़ुलामों और ग़रीब लोगों के सिवा कोई नहीं सुन रहा है और हर तरफ़ से उनपर तानों, मलामत और फ़ब्तियों की बारिश हो रही है। इससे तुम यह समझ बैठे हो कि यह चलनेवाली बात नहीं है, चार दिन चलेगी और फिर ख़त्म हो जाएगी। लेकिन यह सिर्फ़ तुम्हारी नज़र का धोखा है। क्या यह रात-दिन तुम्हारे देखने में नहीं आता कि आज एक ज़मीन बिलकुल सूखी और बंजर पड़ी है जिसे देखकर गुमान तक नहीं होता कि इसके पेट में हरियाली के ख़ज़ाने छिपे हुए हैं, मगर कल एक ही बारिश में वह इस तरह फबक उठती है कि उसके चप्पे-चप्पे से साग-सब्ज़ियों और पेड़-पौधों की शक्ल में मज़ेदार चीज़ों के ख़ज़ाने निकलने शुरू हो जाते हैं।

बात के ख़ातिमे पर नबी (सल्ल॰) को मुख़ातब (संबोधित) करके कहा गया है कि ये लोग तुम्हारी बातें सुनकर मज़ाक़ उड़ाते हैं और पूछते हैं कि हज़रत, यह फ़ैसलाकुन जीत आपको कब मिलनेवाली है, ज़रा तारीख़ तो बताओ। उनसे कहो कि जब हमारे और तुम्हारे बीच फ़ैसले का वक़्त आ जाएगा, उस वक़्त मानना तुम्हारे लिए कुछ भी फ़ायदेमन्द न होगा। मानना है तो अब मान लो और आख़िरी फ़ैसले ही का इन्तिज़ार करना है तो बैठे इन्तिज़ार करते रहो।

☆☆☆

آیاتُها ٣٠ ٣٢ سُوْرَةُ السَّجْدَةِ مَكِّيَّةٌ ٧٥ رُكُوْعَاتُها ٣

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

الٓمّٓ ۟ۚ تَنْزِيْلُ الْكِتٰبِ لَا رَيْبَ فِيْهِ مِنْ رَّبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۟ؕ اَمْ يَقُوْلُوْنَ

32. अस-सजदा

(मक्का में उतरी—आयतें-30)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) अलिफ़-लाम-मीम। (2) इस किताब का उतरना बिला शुब्हा तमाम जहानों के रब की तरफ़ से है।[1]

1. क़ुरआन मजीद की कई सूरतें इस तरह के किसी-न-किसी परिचय करानेवाले जुमले से शुरू होती हैं, जिसका मक़सद बात के शुरू ही में यह बताना होता है कि यह कलाम कहाँ से आ रहा है। यह बज़ाहिर उसी तरह का एक शुरुआती जुमला है, जैसे रेडियो पर एलान करनेवाला प्रोग्राम के शुरू में कहता है कि हम फ़ुलाँ स्टेशन से बोल रहे हैं। लेकिन रेडियो के उस मामूली से एलान के बरख़िलाफ़ क़ुरआन मजीद की किसी सूरत की शुरुआत जब इस ग़ैर-मामूली एलान से होती है कि यह पैग़ाम कायनात के बादशाह की तरफ़ से आ रहा है तो यह सिर्फ़ बात कहाँ से आ रही है यह बताना ही नहीं होता, बल्कि इसके साथ इसमें एक बहुत बड़ा दावा, एक बड़ा चैलेंज और एक सख़्त चेतावनी भी शामिल होती है। इसलिए कि वह छूटते ही इतनी बड़ी ख़बर देता है कि यह इनसानी कलाम नहीं है, तमाम जहानों के ख़ुदा का कलाम है। यह एलान फ़ौरन ही यह भारी सवाल आदमी के सामने ला खड़ा करता है कि इस दावे को मानूँ या न मानूँ। मानता हूँ तो हमेशा-हमेशा के लिए उसके आगे फ़रमाँबरदारी में सिर झुका देना होगा, फिर मेरे लिए इसके मुक़ाबले में कोई आज़ादी बाक़ी नहीं रह सकती। नहीं मानता हूँ तो लाज़िमी तौर पर यह बड़ा ख़तरा मोल लेता हूँ कि अगर सचमुच यह सारी कायनात के ख़ुदा का कलाम है तो इसे रद्द करने का नतीजा मुझको हमेशा की बदनसीबी और बदबख़्ती की सूरत में देखना पड़ेगा। इस बुनियाद पर यह शुरुआती जुमला अकेले अपनी इस ग़ैर-मामूली हैसियत की वजह से आदमी को मजबूर कर देता है कि चौकन्ना होकर इन्तिहाई संजीदगी के साथ इस कलाम को सुने और यह फ़ैसला करे कि इसको अल्लाह का कलाम होने की हैसियत से मानना है या नहीं।

यहाँ सिर्फ़ इतनी बात कहने पर बस नहीं किया गया है कि यह किताब तमाम जहानों के रब

की तरफ़ से आई है, बल्कि इसके अलावा पूरे ज़ोर के साथ यह भी कहा गया है कि 'ला रै-ब फ़ीह' यानी 'बेशक यह ख़ुदा की किताब है', यह अल्लाह के पास से आई है, इस बात में किसी शक की कोई गुंजाइश नहीं है। ज़ोर देकर कही गई इस बात को अगर क़ुरआन के उतरने के वाक़िआती पसमंज़र (घटनाक्रमानुसार पृष्ठभूमि) और ख़ुद क़ुरआन के अपने सियाक़ (सन्दर्भ) में देखा जाए तो महसूस होता है कि उसके अन्दर दावे के साथ दलील भी छिपी है, और यह दलील मक्का के उन निवासियों से छिपी न थी जिनके सामने यह दावा किया जा रहा था। इस किताब के पेश करनेवाले की पूरी ज़िन्दगी उनके सामने थी, किताब पेश करने से पहले की भी और उसके बाद की भी। वे जानते थे कि जो आदमी इस दावे के साथ यह किताब पेश कर रहा है, वह हमारी क़ौम का सबसे ज़्यादा सच्चा, संजीदा और पाक-साफ़ किरदार का इनसान है। वे यह भी जानते थे कि पैग़म्बरी के दावे से एक दिन पहले तक भी किसी ने उससे वे बातें कभी न सुनी थीं जो पैग़म्बरी के दावे के बाद अचानक उसने बयान करनी शुरू कर दीं। वे इस किताब की ज़बान और अन्दाज़े-बयान में और ख़ुद मुहम्मद (सल्ल॰) की ज़बान और अन्दाज़े-बयान में नुमायाँ फ़र्क़ पाते थे और इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि एक ही आदमी के दो स्टाइल इतने साफ़ फ़र्क़ के साथ नहीं हो सकते। वे इस किताब के इन्तिहाई मोजिज़ाना अदब (चामत्कारिक साहित्य) को भी देख रहे थे और अरबी ज़बान के माहिर होने की हैसियत से ख़ुद जानते थे कि उनके सारे अदीब (साहित्यकार) और शाइर इसकी मिसाल पेश नहीं कर सकते। वे इससे भी अनजान न थे कि उनकी क़ौम के शाइरों, काहिनों और तक़रीर करनेवालों के कलाम (वाणी) में और इस कलाम में कितना बड़ा फ़र्क़ है, और जो पाकीज़ा बातें इस कलाम में बयान की जा रही हैं, वे कितने ऊँचे दर्जे की हैं। उन्हें इस किताब में और इसके पेश करनेवाले की दावत में कहीं दूर-दूर भी उस ख़ुदग़रज़ी का हल्का-सा असर तक नज़र नहीं आता था जिससे किसी झूठे दावेदार का काम और कलाम कभी ख़ाली नहीं हो सकता। वे ख़ुर्दबीन (सूक्ष्मदर्शी यंत्र) लगाकर भी इस बात की निशानदेही नहीं कर सकते थे कि पैग़म्बरी का यह दावा करके मुहम्मद (सल्ल॰) अपने लिए या अपने ख़ानदान के लिए या अपनी क़ौम और क़बीले के लिए क्या हासिल करना चाहते हैं और इस काम में उनकी अपनी क्या ग़रज़ छिपी है। फिर वे यह भी देख रहे थे कि इस दावत की तरफ़ उनकी क़ौम के कैसे लोग खिंच रहे हैं और इससे जुड़कर उनकी ज़िन्दगियों में कितना बड़ा इन्क़िलाब आ रहा है। ये सारी बातें मिल-जुलकर ख़ुद दावे की दलील बनी हुई थीं, इसी लिए इस पसमंज़र में यह कहना बिलकुल काफ़ी था कि इस किताब का तमाम जहानों के रब की तरफ़ से उतरना हर शक-शुब्हे से परे है। इसपर किसी दलील के इज़ाफ़े की कोई ज़रूरत न थी।

افۡتَرٰىهُ ۚ بَلۡ هُوَ الۡحَقُّ مِنۡ رَّبِّكَ لِتُنۡذِرَ قَوۡمًا مَّاۤ اَتٰٮهُمۡ مِّنۡ نَّذِيۡرٍ مِّنۡ

(3) क्या[2] ये लोग कहते हैं कि इस शख़्स ने इसे ख़ुद गढ़ लिया है?[3] नहीं, बल्कि यह हक़ है तेरे रब की तरफ़ से[4] ताकि तू ख़बरदार करे एक ऐसी क़ौम को जिसके पास

2. ऊपर के शुरुआती जुमले के बाद मक्का के मुशरिक लोगों के पहले एतिराज़ को लिया जा रहा है जो वे मुहम्मद (सल्ल०) की रिसालत (पैग़म्बरी) पर करते थे।
3. यह सिर्फ़ सवाल नहीं है, बल्कि इसमें सख़्त ताज्जुब का अन्दाज़ पाया जाता है। मतलब यह है कि उन सारी बातों के बावजूद, जिनकी बुनियाद पर यह बात हर शक व शुब्हे से परे है कि यह किताब ख़ुदा की तरफ़ से उत्तरी है, क्या ये लोग ऐसी खुली हठधर्मी की बात कह रहे हैं कि मुहम्मद (सल्ल०) ने इसे ख़ुद गढ़कर झूठ-मूठ अल्लाह, सारे जहान के रब, से जोड़ दिया है? इतना बेहूदा और बेसिर पैर का इलज़ाम (आरोप) रखते हुए कोई शर्म इनको नहीं आती? इन्हें कुछ महसूस नहीं होता कि जो लोग मुहम्मद (सल्ल०) को और उनके काम और कलाम को जानते हैं और इस किताब को भी समझते हैं, वे इस बेहूदा इलज़ाम को सुनकर क्या राय क़ायम करेंगे?
4. जिस तरह पहली आयत में 'ला रै-ब फ़ीह' कहना काफ़ी समझा गया था और इससे बढ़कर कोई दलील क़ुरआन के अल्लाह के कलाम होने के हक़ में पेश करने की ज़रूरत न समझी गई थी, उसी तरह अब इस आयत में भी मक्का के ग़ैर-मुस्लिमों के इस क़ुरआन को गढ़ने के इलज़ाम (आरोप) पर कि मुहम्मद (सल्ल०) क़ुरआन को ख़ुद गढ़कर पेश कर रहे हैं, सिर्फ़ इतनी बात कहने पर बस किया जा रहा है कि "यह हक़ है तेरे रब की तरफ़ से।" इसकी वजह वही है जो ऊपर हाशिया-1 में हम बयान कर चुके हैं। कौन, किस माहौल में, किस शान के साथ यह किताब पेश कर रहा था, यह सब कुछ सुननेवालों के सामने मौजूद था और यह किताब भी अपनी ज़बान और अपने अदब (साहित्य) और मज़ामीन (विषयों) के साथ सबके सामने थी। और इसके असरात और नतीजे भी मक्का की उस सोसायटी में सब अपनी आँखों से देख रहे थे। इस सूरतेहाल में इस किताब का तमाम जहानों के रब की तरफ़ से आया हुआ हक़ होना ऐसी खुली हक़ीक़त थी जिसे सिर्फ़ फ़ैसलाकुन अन्दाज़ से बयान कर देना ही इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के इलज़ाम को रद्द कर देने के लिए काफ़ी था। इसपर किसी दलील देने की कोशिश बात को मज़बूत करने के बजाय उलटे उसे कमज़ोर करने का सबब होती। यह बिलकुल ऐसा ही है जैसे दिन के वक़्त सूरज चमक रहा हो और कोई ढीठ आदमी कहे कि यह अंधेरी रात है। इसके जवाब में सिर्फ़ यही कहना काफ़ी है कि तुम इसे रात कहते हो? यह चमकता दिन तो सामने मौजूद है। इसके बाद दिन के मौजूद होने पर अगर आप दलीलें क़ायम करेंगे तो अपने जवाब के ज़ोर में कोई इज़ाफ़ा न करेंगे, बल्कि हक़ीक़त में

قَبْلِكَ لَعَلَّهُمْ يَهْتَدُوْنَ ۝٣

तुझसे पहले कोई ख़बरदार करनेवाला नहीं आया, शायद के वे सीधा रास्ता पा जाएँ।[5]

उसके ज़ोर को कुछ कम ही कर देंगे।

5. यानी जिस तरह इसका हक़ होना और अल्लाह की तरफ़ से होना पक्की और यक़ीनी बात है, उसी तरह इसका हिकमत के मुताबिक़ होना और ख़ुद तुम लोगों के लिए ख़ुदा की एक रहमत होना भी ज़ाहिर है। तुम ख़ुद जानते हो कि सैकड़ों सालों से तुम्हारे अन्दर कोई पैग़म्बर नहीं आया है। तुम ख़ुद जानते हो कि तुम्हारी सारी क़ौम जहालत और अख़लाक़ी गिरावट और बहुत पिछड़ेपन में मुब्तला है। इस हालत में अगर तुम्हें जगाने और सीधा रास्ता दिखाने के लिए एक पैग़म्बर तुम्हारे बीच भेजा गया है तो इसपर हैरान क्यों होते हो। यह तो एक बड़ी ज़रूरत है जिसे अल्लाह तआला ने पूरा किया है और तुम्हारी अपनी भलाई के लिए किया है।

यह बात सामने रहे कि अरब में सच्चे दीन (इस्लाम) की रौशनी सबसे पहले हज़रत हूद (अलैहि॰) और हज़रत सालेह (अलैहि॰) के ज़रिए से पहुँची थी जो इतिहास से पहले के ज़माने में गुज़रे हैं। फिर हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) और हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) आए जिनका ज़माना नबी (सल्ल॰) से ढाई हज़ार साल पहले गुज़रा है। उसके बाद आख़िरी पैग़म्बर जो अरब की सरज़मीन में नबी (सल्ल॰) से पहले भेजे गए, वे हज़रत शुऐब (अलैहि॰) थे और उनको आए हुए भी लगभग दो हज़ार साल बीत चुके थे। यह इतनी लम्बी मुद्दत है कि इसके लिहाज़ से यह कहना बिलकुल सही था कि उस क़ौम के अन्दर कोई ख़बरदार करनेवाला नहीं आया। इस कहने का मतलब यह नहीं है कि उस क़ौम में कभी कोई ख़बरदार करनेवाला न आया था, बल्कि इसका मतलब यह है कि एक लम्बी मुद्दत से यह क़ौम एक ख़बरदार करनेवाले की मुहताज चली आ रही है।

यहाँ एक और सवाल सामने आ जाता है जिसको साफ़ कर देना ज़रूरी है। इस आयत को पढ़ते हुए आदमी के ज़ेहन में यह खटक पैदा होती है कि जब नबी (सल्ल॰) से पहले सैकड़ों साल तक अरबों में कोई नबी नहीं आया तो उस जाहिलियत के दौर में गुज़रे हुए लोगों से आख़िर क़ियामत के दिन पूछ-गच्छ किस बुनियाद पर होगी? उन्हें मालूम ही कब था कि हिदायत क्या है और गुमराही क्या? फिर अगर वे गुमराह थे तो अपनी इस गुमराही के ज़िम्मेदार वे कैसे ठहराए जा सकते हैं? इसका जवाब यह है कि दीन (धर्म) की तफ़सीली जानकारी चाहे उस जाहिलियत के ज़माने में लोगों के पास न रही हो, मगर यह बात उस ज़माने में भी लोगों से छिपी न थी कि अस्ल दीन तौहीद (एकेश्वरवाद) है और पैग़म्बरों (अलैहि॰) ने कभी बुतपरस्ती नहीं सिखाई है। यह हक़ीक़त उन रिवायतों में भी महफ़ूज़ थी

जो अरब के लोगों को अपनी सरज़मीन के पैग़म्बरों से पहुँची थीं और उसे क़रीब की सरज़मीन में आए हुए पैग़म्बरों, हज़रत मूसा (अलैहि॰), हज़रत दाऊद (अलैहि॰), हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) और हज़रत ईसा (अलैहि॰) की तालीमात के ज़रिए से भी वे जानते थे। अरब की रिवायतों में यह बात भी मशहूर और जानी-पहचानी थी कि पुराने ज़माने में अरबवालों का अस्ल दीन, इबराहीम (अलैहि॰) का दीन था और बुतपरस्ती उनके यहाँ अम्र-बिन-लुहई नाम के एक आदमी ने शुरू की थी। शिर्क और बुतपरस्ती के आम रिवाज के बावजूद अरब के अलग-अलग हिस्सों में जगह-जगह ऐसे लोग मौजूद थे जो शिर्क से इनकार करते थे, तौहीद का एलान करते थे और बुतों पर क़ुरबानियाँ करने को खुल्लम-खुल्ला बुरा और ग़लत कहते थे। ख़ुद नबी (सल्ल॰) के दौर से बिलकुल क़रीब ज़माने में क़ुस्स-बिन-साइदतुल-इयादी, उमैया-बिन-अबी-सल्त, सुवैद-बिन-अमरुल-मुस्तलक़ी, वकीअ्-बिन-सुलमा-बिन-ज़ुहैरुल-इयादी, अम्र-बिन-जुन्दुब-अल-जुहनी, अबू-क़ैस-सरमा-बिन-अबी-अनस, ज़ैद-बिन-अम्र-बिन-नुफ़ैल, वरक़ा-बिन-नौफ़ल, उसमान-बिन-हुवैरिस, उबैदुल्लाह-बिन-जह्श, आमिर-बिन-ज़रब अदवानी, अल्लाफ़-बिन-शिहाब तमीमी, अल-मुतलम्मिस-बिन-उमैया-अल-किनानी, ज़ुहैर-बिन-अबी-सुलमा, ख़ालिद बिन-सिनान-बिन-ग़ैस अबसी, अब्दुल्लाह अल-क़ुज़ाई और ऐसे ही बहुत-से लोगों के हालात हमें इतिहासों में मिलते हैं जिन्हें 'हुनफ़ा' के नाम से याद किया जाता है। ये सब लोग खुल्लम-खुल्ला तौहीद को अस्ल दीन कहते थे और अरब के मुशरिकों के मज़हब से ख़ुद के अलग होने का साफ़-साफ़ इज़हार करते थे। ज़ाहिर है कि इन लोगों के ज़ेहन में यह ख़याल पैग़म्बरों (अलैहि॰) की पिछली तालीमात के बचे हुए असरात ही से आया था। इसके अलावा यमन में चौथी-पाँचवीं सदी ईसवी के जो कतबे (शिलालेख) आसारे-क़दीमा (प्राचीन अवशेषों) की नई खोजों के सिलसिले में निकले हैं, उनसे पता चलता है कि उस दौर में वहाँ एक तौहीदी दीन (एकेश्वरीय धर्म) मौजूद था जिसकी पैरवी करनेवाले 'अर-रहमान' (दयावान ख़ुदा) और आसमानों और ज़मीन के रब ही को अकेला माबूद मानते थे। 378 ई॰ का एक कतबा एक इबादतगाह के खण्डहर से मिला है, जिसमें लिखा गया है कि यह इबादगाह आसमान के इलाह या आसमान के रब की इबादत के लिए बनाई गई है। 465 ई॰ के एक कतबे में भी ऐसे अलफ़ाज़ लिखे हैं जो तौहीद के अक़ीदे की दलील देते हैं। इसी दौर का एक और कतबा एक क़ब्र पर मिला है, जिसमें 'अर-रहमान' से मदद माँगने की बात लिखी हुई है। इसी तरह उत्तरी अरब में फ़ुरात और क़िन्नसरीन के बीच 'ज़बद' के मक़ाम पर 512 ई॰ का एक कतबा मिला है जिसमें 'बिसमिल-इलाह, ला इज़्-ज़ इल्ला लहू, ला शुक-र इल्ला लहू' (अल-इलाह के नाम से, उसके सिवा किसी के लिए इज़्ज़त नहीं, उसके सिवा किसी के लिए शुक्र नहीं) के अलफ़ाज़ पाए जाते हैं। ये सारी बातें बताती हैं कि मुहम्मद (सल्ल॰) को नबी बनाए जाने से पहले पिछले पैग़म्बरों की तालीमात की निशानियाँ अरब से बिलकुल मिट नहीं गई थीं और कम-से-कम इतनी बात याद दिलाने के लिए बहुत-से ज़रिए मौजूद थे कि

اَللّٰهُ الَّذِیْ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ وَمَا بَیْنَهُمَا فِیْ سِتَّةِ اَیَّامٍ ثُمَّ
اسْتَوٰی عَلَی الْعَرْشِ ؕ مَا لَكُمْ مِّنْ دُوْنِهٖ مِنْ وَّلِیٍّ وَّلَا شَفِیْعٍ ؕ اَفَلَا
تَتَذَكَّرُوْنَ ④ یُدَبِّرُ الْاَمْرَ مِنَ السَّمَآءِ اِلَی الْاَرْضِ ثُمَّ یَعْرُجُ اِلَیْهِ فِیْ

(4) वह[6] अल्लाह ही है जिसने आसमानों और ज़मीन को और उन सारी चीज़ों को जो उनके बीच हैं छः दिनों में पैदा किया और इसके बाद अर्श (राजसिंहासन) पर जलवा-फ़रमा (विराजमान) हुआ,[7] उसके सिवा न तुम्हारा कोई हिमायती और मददगार है और न कोई उसके आगे सिफ़ारिश करनेवाला, फिर क्या तुम होश में न आओगे?[8] (5) वह आसमान से ज़मीन तक दुनिया के मामलों का इन्तिज़ाम करता है और इस इन्तिज़ाम की

"तुम्हारा ख़ुदा एक ही ख़ुदा है।" (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-25 फ़ुरक़ान, हाशिया-84)।

6. अब मुशरिकों के दूसरे एतिराज़ को लिया जाता है जो वे नबी (सल्ल॰) की तौहीद की दावत पर करते थे। उनको इस बात पर सख़्त एतिराज़ था कि नबी (सल्ल॰) उनके देवताओं और बुज़ुर्गों के माबूद होने का इनकार करते हैं और हाँके-पुकारे यह दावत देते हैं कि एक अल्लाह के सिवा कोई माबूद, कोई कारसाज़, कोई ज़रूरत पूरी करनेवाला, कोई दुआएँ सुननेवाला और बिगड़ी बनानेवाला, और कोई पूरा इख़्तियार रखनेवाला हाकिम नहीं है।

7. तशरीह के लिए देखिए, तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-54; सूरा-10 यूनुस, आयत-3; सूरा-13 रअद, आयत-2।

8. यानी तुम्हारा अस्ल ख़ुदा तो ज़मीन और आसमान का पैदा करनेवाला है। तुम किस ग़लतफ़हमी में पड़े हो कि कायनात की इस अज़ीमुश्शान सल्तनत में उसके सिवा दूसरों को कारसाज़ समझ बैठे हो। इस पूरी कायनात (जगत्) का और इसकी हर चीज़ का पैदा करनेवाला अल्लाह तआला है। उसकी हस्ती के सिवा हर दूसरी चीज़ जो यहाँ पाई जाती है, पैदा की हुई है। और अल्लाह इस दुनिया को बना देने के बाद कहीं जाकर सो भी नहीं गया है, बल्कि अपनी इस सल्तनत का हाकिम और बादशाह भी वह आप ही है। फिर तुम्हारी अक़्ल आख़िर कहाँ चरने चली गई है कि तुम पैदा की हुई चीज़ों में से कुछ हस्तियों को अपनी क़िस्मतों का मालिक ठहरा रहे हो? अगर अल्लाह तुम्हारी मदद न करे तो इनमें से किसकी यह ताक़त है कि तुम्हारी मदद कर सके? अगर अल्लाह तुम्हें पकड़े तो इनमें से किसका यह ज़ोर है कि तुम्हें छुड़ा सके? अगर अल्लाह सिफ़ारिश न सुने तो इनमें से कौन यह बल-बूता रखता है कि उससे अपनी सिफ़ारिश मनवा ले?

يَوۡمٍ كَانَ مِقۡدَارُهٗۤ اَلۡفَ سَنَةٍ مِّمَّا تَعُدُّوۡنَ۝۵

रूदाद ऊपर उसके सामने जाती है एक ऐसे दिन में जिसकी मिक़दार (माप) तुम्हारी गिनती से एक हज़ार साल है।[9]

9. यानी तुम्हारे नज़दीक जो एक हज़ार साल का इतिहास है वह अल्लाह तआला के यहाँ मानो एक दिन का काम है जिसकी स्कीम आज फ़ैसलों को लागू करनेवाले कारिन्दों (फ़रिश्तों) के सिपुर्द की जाती है और कल वे उसकी रूदाद उसके सामने पेश करते हैं, ताकि दूसरे दिन (यानी तुम्हारे हिसाब से एक हज़ार साल) का काम उनके सिपुर्द किया जाए। क़ुरआन मजीद में यह बात दो जगहों पर और भी आई है, जिन्हें निगाह में रखने से इसका मतलब अच्छी तरह समझ में आ सकता है। अरब के ग़ैर-मुस्लिम कहते थे कि मुहम्मद (सल्ल॰) को नुबूवत (पैग़म्बरी) का दावा लेकर सामने आए कई साल बीत चुके हैं। वे बार-बार हमसे कहते हैं कि अगर मेरी इस दावत (पैग़ाम) को तुम लोग क़बूल न करोगे और मुझे झुठला दोगे तो तुमपर ख़ुदा का अज़ाब आ जाएगा। मगर कई सालों से वे अपनी यह बात दोहराए जा रहे हैं और आज तक अज़ाब न आया, हालाँकि हम एक बार नहीं हज़ारों बार उन्हें साफ़-साफ़ झुठला चुके हैं। उनकी ये धमकियाँ सचमुच सच्ची होतीं तो हमपर न जाने कभी का अज़ाब आ चुका होता। इसपर अल्लाह तआला क़ुरआन की सूरा-22 हज में फ़रमाता है—

"ये लोग अज़ाब के लिए जल्दी मचा रहे हैं। अल्लाह हरगिज़ अपने वादे के ख़िलाफ़ नहीं करेगा। मगर तेरे रब के यहाँ का एक दिन तुम लोगों की गिनती के हज़ार साल जैसा हुआ करता है।" (आयत-47)।

दूसरी जगह इसी बात का जवाब दिया गया है—

"माँगनेवाले ने अज़ाब माँगा है (वह अज़ाब जो ज़रूर आनेवाला है), इनकार करनेवालों के लिए है, कोई उसे टालनेवाला नहीं है, उस अल्लाह की तरफ़ से है जो तरक़्क़ी के ज़ीनों का मालिक है। फ़रिश्ते और रूह उसके पास चढ़कर जाते हैं, एक ऐसे दिन में जो पचास हज़ार साल के बराबर है। तो ऐ नबी! सब्र करो, अच्छा सब्र। ये लोग उसे दूर समझते हैं और हम उसे क़रीब देख रहे हैं।" (सूरा-70 मआरिज, आयतें—1 से 7)।

इन सारी बातों से जो बात ज़ेहन में बिठाई गई है, वह यह है कि इनसानी तारीख़ (मानाव-इतिहास) में ख़ुदा के फ़ैसले दुनिया की घड़ियों और जंतरियों के हिसाब से नहीं होते। किसी क़ौम से अगर यह कहा जाए कि तुम फ़ुलाँ रवैया अपनाओगे तो उसका अंजाम तुम्हें यह कुछ देखना होगा, तो वह क़ौम बहुत ही बेवक़ूफ़ होगी, अगर इसका यह मतलब समझे कि आज वह रवैया अपनाए और कल उसके बुरे नतीजे सामने आ जाएँ। नतीजे सामने आने के लिए दिन, महीने और साल तो क्या चीज़ हैं, सदियाँ भी कोई बड़ी मुद्दत नहीं हैं।

ذٰلِكَ عٰلِمُ الْغَيْبِ وَالشَّهَادَةِ الْعَزِيْزُ الرَّحِيْمُ ۙ﴿٦﴾ الَّذِيْٓ اَحْسَنَ كُلَّ شَيْءٍ خَلَقَهٗ
وَبَدَاَ خَلْقَ الْاِنْسَانِ مِنْ طِيْنٍ ۚ﴿٧﴾ ثُمَّ جَعَلَ نَسْلَهٗ مِنْ سُلٰلَةٍ مِّنْ مَّآءٍ مَّهِيْنٍ ۚ﴿٨﴾

(6) वही है हर छिपे और खुले का जाननेवाला,[10] ज़बरदस्त[11] और रहमकरनेवाला।[12] (7) जो चीज़ भी उसने बनाई ख़ूब[13] ही बनाई। उसने इनसान की पैदाइश की इब्तिदा गारे से की, (8) फिर उसकी नस्ल एक ऐसे सत् से चलाई जो हक़ीर (तुच्छ) पानी की तरह का है,[14]

---

10. यानी दूसरे जो भी हैं उनके लिए एक चीज़ ज़ाहिर है तो अनगिनत चीज़ें उनसे छिपी हैं। फ़रिश्ते हों या जिन्न, या नबी और वली और नेक इनसान, उनमें से कोई भी ऐसा नहीं है जो सब कुछ जाननेवाला हो। यह सिफ़त सिर्फ़ अल्लाह तआला की है कि उसपर हर चीज़ ज़ाहिर है। जो कुछ बीत चुका है, जो कुछ मौजूद है और जो कुछ आनेवाला है, सब उसपर रौशन है।
11. यानी हर चीज़ पर ग़ालिब (प्रभावी)। कायनात में कोई ताक़त ऐसी नहीं है जो उसके इरादे में रुकावट बन सके और उसके हुक्म को लागू होने से रोक सके। हर चीज़ उसके मातहत है और किसी में उसके मुक़ाबले का बल-बूता नहीं है।
12. यानी इस ग़लबे (प्रभाव) और ज़बरदस्त ताक़त के बावजूद वह ज़ालिम नहीं है, बल्कि अपनी मख़लूक़ (सृष्टि) पर रहम करनवाला और मेहरबानी करनेवाला है।
13. यानी इस अज़ीमुश्शान कायनात में उसने बेहद और बेहिसाब चीज़ें बनाई हैं, मगर कोई एक चीज़ भी ऐसी नहीं है जो बेढंगी और बेतुकी हो। हर चीज़ अपनी एक अलग ख़ूबसूरती रखती है। हर चीज़ अपनी जगह बिलकुल मुनासिब और सही है। जो चीज़ जिस काम के लिए भी उसने बनाई है, उसके लिए सबसे मुनासिब शक्ल पर, सबसे मुनासिब सिफ़ात के साथ बनाई है। देखने के लिए आँख और सुनने के लिए कान की बनावट से ज़्यादा मुनासिब किसी बनावट के बारे में सोचा तक नहीं जा सकता। हवा और पानी जिन मक़सदों के लिए बनाए गए हैं, उनके लिए हवा ठीक वैसी ही है जैसी होनी चाहिए और पानी वही सिफ़तें रखता है जैसी होनी चाहिएँ। तुम ख़ुदा की बनाई हुई किसी चीज़ के नक़्शे में किसी कमी की निशानदेही नहीं कर सकते, न उसमें कोई बदलाव पेश कर सकते हो।
14. यानी पहले उसने सीधे तौर पर अपनी पैदा करने की क़ुव्वत (Direct creation) से इनसान को पैदा किया और उसके बाद ख़ुद उसी इनसान के अन्दर नस्ल चलाने की यह ताक़त रख दी कि उसके नुत्फ़े (वीर्य) से वैसे ही इनसान पैदा होते चले जाएँ। एक कमाल यह था कि ज़मीन के माद्दों को इकट्ठा करके पैदा करने के एक हुक्म से उसमें वह ज़िन्दगी और वह अक़्ल और समझ पैदा कर दी जिससे इनसान जैसा एक हैरतअंगेज़ जानदार वुजूद में आ

ثُمَّ سَوّٰىهُ وَنَفَخَ فِيْهِ مِنْ رُّوْحِهٖ وَجَعَلَ لَكُمُ السَّمْعَ وَالْاَبْصَارَ

(9) फिर उसको नख-शिख से ठीक-ठाक किया[15] और उसके अन्दर अपनी रूह फूँक दी,[16]

गया। और दूसरा कमाल यह है कि आगे और ज़्यादा इनसानों की पैदाइश के लिए एक ऐसी अजीब मशीनरी ख़ुद इनसानी बनावट (मानव-संरचना) के अन्दर रख दी जिसकी बनावट और कारगुज़ारी को देखकर अक़्ल हैरान रह जाती है।

यह आयत क़ुरआन मजीद की उन आयतों में से है जिसमें साफ़ तौर से पहले इनसान की पैदाइश के बारे में बताया गया है। डार्विन के ज़माने से साइंसदाँ लोग (वैज्ञानिक) इस बात पर बहुत नाक-भौं चढ़ाते हैं और बड़ी नफ़रत के साथ वे इसको एक ग़ैर-साइंटिफ़िक नज़रिया ठहराकर मानो फेंक देते हैं कि सबसे पहले इनसान को सीधे तौर पर पैदा किया गया है। लेकिन इनसान की न सही, तमाम जानदारों की न सही, सबसे पहले जरसूमा-ए-हयात (जीवाणु) की सीधे तौर पर पैदाइश से तो वे किसी तरह पीछा नहीं छुड़ा सकते। इस पैदाइश को न माना जाए तो फिर यह इन्तिहाई बेमतलब बात माननी पड़ेगी कि ज़िन्दगी की शुरुआत सिर्फ़ एक हादिसे के तौर पर हुई है, हालाँकि सिर्फ़ एक ख़लीया (कोशिका Cell) वाले हैवान में ज़िन्दगी की सबसे सादा शक्ल भी इतनी पेचीदा और नाज़ुक हिकमतों से भरी हुई है कि उसे हादिसे का नतीजा बताना उससे लाखों गुना ग़ैर-साइंटिफ़िक बात है जितना नज़रिया-ए-इरतिक़ा (विकासवाद के सिद्धान्त) के माननेवाले पैदाइश के नज़रिए को ठहराते हैं। और अगर एक बार आदमी यह मान ले कि ज़िन्दगी का पहला जरसूमा (कीटाणु) सीधे तौर पर पैदा किया गया था, तो फिर आख़िर यही मानने में क्या बुराई है कि हर जानदार की पहली इकाई पैदा करनेवाले के पैदा करने से पैदा हुई है और फिर उसकी नस्ल पैदाइश (Procreation, प्रजनन) की अलग-अलग सूरतों से चली है। इस बात को मान लेने से वे बहुत-सी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं जो डार्विनिज़्म के अलमबरदारों की सारी साइंटिफ़िक शाइरी के बावजूद उनके नज़रिया-ए-इरतिक़ा (विकासवाद के सिद्धान्त) में अनसुलझी रह गई हैं। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए, तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, हाशिया-53; सूरा-4 निसा, हाशिया-1; सूरा-6 अनआम, हाशिया-63; सूरा-7 आराफ़, हाशिए-10, 145; सूरा-15 हिज्र, हाशिया-17, सूरा-22 हज, हाशिया-5, सूरा-23 मोमिनून, हाशिए-12, 13।

15. यानी एक इन्तिहाई बारीक ख़ुर्दबीनी (सूक्ष्मदर्शी) वुजूद से बढ़ाकर उसे पूरी इनसानी शक्ल तक पहुँचाया और उसका जिस्म सारे आज़ा (अंगों) और हिस्सों (इन्द्रियों) के साथ मुकम्मल कर दिया।

16. 'रूह' से मुराद सिर्फ़ वह ज़िन्दगी नहीं है जिसकी बदौलत एक जानदार जिस्म की मशीन हरकत करती है, बल्कि इससे मुराद वह ख़ास जौहर है जिसमें सोचने-समझने और अक़्ल-तमीज़ और फ़ैसले और इख़्तियार की ख़ूबी पाई जाती है, जिसकी बदौलत इनसान

وَالْاَفْـِٕدَةَ ۭ قَلِيْلًا مَّا تَشْكُرُوْنَ ۝

और तुमको कान दिए, आँखें दीं और दिल दिए।[17] तुम लोग कम ही शुक्रगुज़ार होते हो।[18]

धरती के तमाम दूसरे जानदारों से अलग एक शख़्सियत रखनेवाला, साहिबे-अना (स्वाभिमानी) और ख़ुदा का ख़लीफ़ा बनता है। इस रूह को अल्लाह तआला ने अपनी रूह या तो इस मानी में कहा है कि वह उसी की मिलकियत है और उसकी पाक हस्ती की तरफ़ उसका जोड़ना उसी तरह का है जिस तरह एक चीज़ अपने मालिक से जुड़कर उसकी चीज़ कहलाती है। या फिर इसका मतलब यह है कि इनसान के अन्दर इल्म, सोच, समझ, इरादा, फ़ैसला, इख़्तियार और ऐसी ही दूसरी जो सिफ़तें (गुण) पैदा हुई हैं, वे सब अल्लाह तआला की सिफ़तों का अक्स हैं। उनका सरचश्मा माद्दे की कोई तरकीब (मिश्रण) नहीं है, बल्कि अल्लाह तआला की हस्ती है। अल्लाह के इल्म से उसको इल्म मिला है, अल्लाह की हिकमत से उसको अक़्लमन्दी मिली है, अल्लाह के इख़्तियार से उसको इख़्तियार मिला है। ये सिफ़ात किसी बेइल्म, बेसमझ और इख़्तियार न रखनेवाले ज़रिए से इनसान के अन्दर नहीं आई हैं। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-15 हिज्र, हाशिए—17 से 19)।

17. यह एक लतीफ़ (सूक्ष्म) अन्दाज़े-बयान है। इनसान के अन्दर रूह फूँकने तक का सारा ज़िक्र सेग़ा-ए-ग़ायब (अन्य पुरुष) के तौर पर किया जाता रहा। "उसको पैदा किया", "उसकी नस्ल चलाई", "उसको नख-शिख से ठीक किया", "उसके अन्दर रूह फूँकी।" इसलिए कि उस वक़्त तक वह इसके लायक़ न था कि उससे बात भी की जाए। फिर जब रूह फूँक दी गई तो अब उससे कहा जा रहा है कि "तुमको कान दिए", "तुमको आँखें दीं", "तुमको दिल दिए", इसलिए कि रूहवाला हो जाने के बाद ही वह इस क़ाबिल हुआ कि उससे बात की जाए।

कान और आँखों से मुराद वे ज़रिए हैं जिनसे इनसान इल्म हासिल करता है। अगरचे इल्म चखने, छूने और सूँघने के ज़रिए से भी हासिल होता है, लेकिन सुनना और देखना तमाम दूसरे बड़े ज़रिओं (इन्द्रियों) से बड़े और अहम ज़रिए हैं, इसलिए क़ुरआन जगह-जगह इन्हीं दो को ख़ुदा की नुमायाँ देन की हैसियत से पेश करता है। इसके बाद 'दिल' से मुराद वह ज़ेहन (Mind) है जो उन ज़रिओं (इन्द्रियों) से हासिल हुई मालूमात को तरतीब देकर उनसे नतीजे निकालता है और अमल की अलग-अलग इमकानी राहों में से कोई एक राह चुनता और उसपर चलने का फ़ैसला करता है।

18. यानी यह बड़ी ही क़ीमती इनसानी रूह इतने आला और बुलन्द दर्जे की सिफ़ात के साथ तुमको इसलिए तो नहीं दी गई थी कि तुम दुनिया में जानवरों की तरह रहो और अपने लिए बस वही ज़िन्दगी का नक़्शा बना लो जो कोई जानवर बना सकता है। ये आँखें तुम्हें इसलिए

وَقَالُوٓا ءَاِذَا ضَلَلۡنَا فِى الۡاَرۡضِ ءَاِنَّا لَفِىۡ خَلۡقٍ جَدِيۡدٍ ؕ بَلۡ هُمۡ بِلِقَآئِ رَبِّهِمۡ كٰفِرُوۡنَ ۝١٠ قُلۡ يَتَوَفّٰٮكُمۡ مَّلَكُ الۡمَوۡتِ الَّذِىۡ وُكِّلَ بِكُمۡ ثُمَّ اِلٰى رَبِّكُمۡ

(10) और[19] ये लोग कहते हैं, "जब हम मिट्टी में रल-मिल चुके होंगे तो क्या हम फिर नए सिरे से पैदा किए जाएँगे?" अस्ल बात यह है कि ये अपने रब की मुलाक़ात का इनकार करते हैं।[20] (11) इनसे कहो, "मौत का वह फ़रिश्ता जो तुमपर मुक़र्रर किया गया है, तुमको पूरा-का-पूरा अपने क़ब्ज़े में ले लेगा और फिर तुम अपने रब की तरफ़

दी गई थीं कि तुम मन की सच्चाई की आँखों से देखो, होश के कानों से सुनो, न कि अंधे बनकर रहने के लिए। ये कान तुम्हें होश-हवास से सुनने के लिए दिए गए थे, न कि बहरे बनकर रहने के लिए। ये दिल तुम्हें इसलिए दिए गए थे कि हक़ीक़त को समझो और सोच और अमल की सही राह अपनाओ, न इसलिए कि अपनी सारी सलाहियतें सिर्फ़ अपनी हैवानियत की परवरिश के वसाइल (साधन) जुटाने में लगा दो और उससे कुछ ऊँचे उठो तो अपने पैदा करनेवाले (ख़ुदा) से बग़ावत के फ़लसफ़े (दर्शन) और प्रोग्राम बनाने लगो। यह बहुत क़ीमती नेमतें ख़ुदा से पाने के बाद जब तुम नास्तिकता या शिर्क (बहुदेववाद) अपनाते हो, जब तुम ख़ुद ख़ुदा या दूसरे ख़ुदाओं के बन्दे बनते हो, जब तुम ख़ाहिशों के ग़ुलाम बनकर जिस्म और मन की लज़्ज़तों में डूब जाते हो, तो मानो अपने ख़ुदा से यह कहते हो कि हम इन नेमतों के लायक़ न थे, हमें इनसान बनाने के बजाय एक बन्दर, या एक भेड़िया, या एक मगरमच्छ या एक कौआ बनाना चाहिए था।

19. रिसालत (पैग़म्बरी) और तौहीद (एकेश्वरवाद) पर ग़ैर-मुस्लिमों के एतिराज़ों का जवाब देने के बाद अब इस्लाम के तीसरे बुनियादी अक़ीदे यानी आख़िरत पर उनके एतिराज़ को लेकर उसका जवाब दिया जाता है। आयत में "व क़ालू" का 'व' पिछली बात से इस पैराग्राफ़ का ताल्लुक़ जोड़ता है, यानी बात का सिलसिला यों है कि "वे कहते हैं : मुहम्मद अल्लाह के रसूल नहीं हैं", "वे कहते हैं : अल्लाह अकेला माबूद नहीं है" और "वे कहते हैं कि हम मरकर दोबारा न उठेंगे।"

20. ऊपर के जुमले और इस जुमले के बीच पूरी एक दास्तान-की-दास्तान है जिसे सुननेवाले के ज़ेहन पर छोड़ दिया गया है। ग़ैर-मुस्लिमों का जो एतिराज़ पहले जुमले में नक़्ल किया गया है वह इतना बेमतलब है कि उसको रद्द करने की भी ज़रूरत महसूस न की गई। उसका सिर्फ़ नक़्ल कर देना ही इस बात को ज़ाहिर करने के लिए काफ़ी समझा गया कि यह बात बेमतलब और बेमानी है। इसलिए कि उनके एतिराज़ में जो दो बातें शामिल हैं, वे दोनों ही सरासर अक़्ल के ख़िलाफ़ हैं। उनका यह कहना कि "हम मिट्टी में रल-मिल चुके होंगे" आख़िर क्या मतलब रखता है? 'हम' जिस चीज़ का नाम है, वह कब मिट्टी में रलती-मिलती है? मिट्टी

में तो सिर्फ़ वह जिस्म मिलता है जिससे 'हम' निकल चुका होता है। इस जिस्म का नाम 'हम' नहीं है। ज़िन्दगी की हालत में जब इस जिस्म के हिस्से (अंग) काटे जाते हैं तो अंग-पर-अंग कटता चला जाता है मगर 'हम' पूरा-का-पूरा अपनी जगह मौजूद रहता है। उसका कोई हिस्सा भी किसी कटे हुए हिस्से के साथ नहीं जाता और जब यह 'हम' किसी जिस्म में से निकल जाता है, तो पूरा जिस्म मौजूद होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें इस 'हम' का कोई मामूली-सा हिस्सा (अंश) तक बाक़ी है। इसी लिए तो एक जाँनिसार आशिक़ अपने माशूक़ के मुर्दा जिस्म को ले जाकर दफ़्न कर देता है, क्योंकि माशूक़ उस जिस्म से निकल चुका होता है और वह माशूक़ नहीं, बल्कि उस ख़ाली जिस्म को दफ़्न करता है जिसमें कभी उसका माशूक़ रहता था। इसलिए एतिराज़ करनेवालों के एतिराज़ का पहला मुक़द्दमा ही बेबुनियाद है। रहा उसका दूसरा हिस्सा : "क्या हम फिर नए सिरे से पैदा किए जाएँगे?" तो यह इनकार और ताज्जुब के अन्दाज़ का सवाल सिरे से पैदा ही न होता अगर एतिराज़ करनेवालों ने बात करने से पहले इस 'हम' और उसके पैदा किए जाने के मतलब पर एक पल के लिए कुछ ग़ौर कर लिया होता। इस 'हम' की मौजूदा पैदाइश इसके सिवा क्या है कि कहीं से कोयला और कहीं से लोहा और कहीं से चूना और इसी तरह की दूसरी चीज़ें जमा हुईं और उस मिट्टी के पुतले में यह 'हम' विराजमान हो गया। फिर उसकी मौत के बाद क्या होता है? उस मिट्टी के पुतले में से जब 'हम' निकल जाता है तो उसका मकान बनाने के लिए जो चीज़ें ज़मीन के अलग-अलग हिस्सों से जुटाई गई थीं, वे सब उसी ज़मीन में वापस चली जाती हैं। सवाल यह है कि जिसने पहले इस 'हम' को यह मकान बनाकर दिया था, क्या वह दोबारा इसी सरो-सामान से वही मकान बनाकर उसे नए सिरे से उसमें नहीं बसा सकता? यह चीज़ जब पहले मुमकिन थी और हक़ीक़त के तौर पर सामने आ चुकी है, तो दोबारा उसके मुमकिन होने और हक़ीक़त बनने में आख़िर क्या बात रुकावट है? ये बातें ऐसी हैं जिन्हें ज़रा-सी अक़्ल आदमी इस्तेमाल करे तो ख़ुद ही समझ सकता है। लेकिन वह अपनी अक़्ल को इस रुख़ (दिशा) पर क्यों नहीं जाने देता? क्या वजह है कि वह बेसोचे-समझे मरने के बाद की ज़िन्दगी और आख़िरत पर इस तरह के बेमतलब एतिराज़ करता है? बीच की सारी बहस छोड़कर अल्लाह तआला दूसरे जुमले में इसी सवाल का जवाब देता है कि "अस्ल में ये अपने रब की मुलाक़ात का इनकार करते हैं।" यानी अस्ल बात यह नहीं है कि दोबारा पैदाइश कोई बड़ी ही अनोखी और नामुमकिन-सी बात है जो इनकी समझ में न आ सकती हो, बल्कि अस्ल में जो चीज़ इन्हें यह बात समझने से रोकती है, वह इनकी यह ख़ाहिश है कि हम ज़मीन में छूटे फिरें और दिल खोलकर गुनाह करें और फिर आज़ादी के साथ सही-सलामत (Scot-Free) यहाँ से निकल जाएँ। फिर हमसे कोई पूछ-गच्छ न हो। फिर अपने करतूतों का कोई हिसाब हमें न देना पड़े।

تُرْجَعُونَ ﴿١١﴾ ع

पलटा लाए जाओगे।"[21]

21. यानी तुम्हारा वह 'हम' मिट्टी में रल-मिल न जाएगा, बल्कि उसके अमल की मुहलत ख़त्म होते ही ख़ुदा की तरफ़ से मौत का फ़रिश्ता आएगा और उसे जिस्म से निकालकर पूरा-का-पूरा अपने क़ब्ज़े में ले लेगा। उसका कोई मामूली-सा हिस्सा भी जिस्म के साथ मिट्टी में न जा सकेगा। वह पूरा का पूरा हिरासत (Custody) में ले लिया जाएगा और अपने रब के सामने पेश कर दिया जाएगा।

इस छोटी-सी आयत-में बहुत-सी हक़ीक़तों पर रौशनी डाली गई है जिनपर से सरसरी तौर पर न गुज़र जाइए—

(1) इसमें साफ़ तौर पर बताया गया है कि मौत कुछ यूँ ही नहीं आ जाती कि एक घड़ी चल रही थी, कूक ख़त्म हुई और वह चलते-चलते अचानक बन्द हो गई, बल्कि अस्ल में इस काम के लिए अल्लाह तआला ने एक ख़ास फ़रिश्ता मुक़र्रर कर रखा है जो आकर बाक़ायदा रूह को ठीक उसी तरह वुसूल करता है जिस तरह एक सरकारी अमीन (Official Receiver) किसी चीज़ को अपने क़ब्ज़े में लेता है। क़ुरआन की दूसरी जगहों पर इसकी और ज़्यादा तफ़सीलात जो बयान की गई हैं, उनसे मालूम होता है कि मौत के इस अफ़सर के तहत फ़रिश्तों का एक पूरा अमला (Staff) है जो मौत लाने और रूह को जिस्म से निकालने और उसको क़ब्ज़े में लेने के बहुत-से अलग-अलग तरह के काम करता है। इसके अलावा यह कि अमले का बर्ताव मुजरिम रूह के साथ कुछ और होता है और ईमानवाली नेक रूह के साथ कुछ और। (इन तफ़सीलात के लिए देखिए— सूरा-4 निसा, आयत-97; सूरा-6 अनआम, आयत-93; सूरा-16 नह्ल, आयत-28; सूरा-56 वाक़िआ, आयतें—83 से 94।

(2) इससे यह भी मालूम होता है कि मौत से इनसान मिट नहीं जाता, बल्कि उसकी रूह जिस्म से निकलकर बाक़ी रहती है। क़ुरआन के अलफ़ाज़ "मौत का फ़रिश्ता तुमको पूरा-का-पूरा अपने क़ब्ज़े में ले लेगा" इसी हक़ीक़त की दलील देते हैं, क्योंकि कोई मिटी हुई या ग़ैर-मौजूद चीज़ क़ब्ज़े में नहीं ली जाती। क़ब्ज़े में लेने का तो मतलब ही यह है कि क़ब्ज़े में ली गई चीज़ क़ब्ज़ा करनेवाले के पास रहे।

(3) इससे यह भी मालूम होता है कि मौत के वक़्त जो चीज़ क़ब्ज़े में ली जाती है वह आदमी की हैवानी ज़िन्दगी (Biological Life) नहीं, बल्कि उसकी वह ख़ुदी, उसकी वह अना (अहं, Ego) है जो 'मैं' और 'हम' और 'तुम' के अलफ़ाज़ से जानी जाती है। यह अना (अहं) दुनिया में काम करके जैसी कुछ शख़सियत भी बनती है, वह पूरी-की-पूरी ज्यों-की-त्यों (Intact) निकाल ली जाती है, बिना इसके कि उसकी सिफ़ात में कोई कमी-ज़्यादती हो और

وَلَوْ تَرٰٓى اِذِ الْمُجْرِمُوْنَ نَاكِسُوْا رُءُوْسِهِمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ؕ رَبَّنَآ اَبْصَرْنَا
وَسَمِعْنَا فَارْجِعْنَا نَعْمَلْ صَالِحًا اِنَّا مُوْقِنُوْنَ ﴿١٢﴾ وَلَوْ شِئْنَا لَاٰتَيْنَا كُلَّ
نَفْسٍ هُدٰىهَا وَلٰكِنْ حَقَّ الْقَوْلُ مِنِّیْ لَاَمْلَئَنَّ جَهَنَّمَ مِنَ الْجِنَّةِ وَالنَّاسِ

(12) काश,[22] तुम देखो वह वक़्त जब ये मुजरिम सिर झुकाए अपने रब के सामने खड़े होंगे! (उस वक़्त ये कह रहे होंगे,) "ऐ हमारे रब, हमने ख़ूब देख लिया और सुन लिया, अब हमें वापस भेज दे, ताकि हम अच्छे काम करें, हमें अब यक़ीन आ गया है।" (13) (जवाब में कहा जाएगा,) "अगर हम चाहते तो पहले ही हर शख़्स को उसकी सही राह दिखा दे देते।[23] मगर मेरी वह बात पूरी हो गई जो मैंने कही थी कि मैं जहन्नम को,

यही चीज़ मौत के बाद अपने रब की तरफ़ पलटाई जाती है। इसी को आख़िरत में नया जन्म और नया जिस्म दिया जाएगा, इसी पर मुक़द्दमा क़ायम किया जाएगा, इसी से हिसाब लिया जाएगा और इसी को इनाम और सज़ा देखनी होगी।

22. अब उस हालत का नक़्शा पेश किया जाता है जब अपने रब की तरफ़ पलटकर यह इनसानी 'अना' अपना हिसाब देने के लिए उसके सामने खड़ी होगी।

23. यानी इस तरह हक़ीक़त को दिखाकर और तजरिबा कराकर ही लोगों को हिदायत देना हमारा मक़सद होता तो दुनिया की ज़िन्दगी में इतने बड़े इम्तिहान से गुज़ारकर तुमको यहाँ लाने की क्या ज़रूरत थी, ऐसी हिदायत तो हम पहले ही तुमको दे सकते थे। लेकिन तुम्हारे लिए तो शुरू ही से हमारी स्कीम यह न थी। हम तो हक़ीक़त को निगाहों से ओझल और हवास (इन्द्रियों) से छिपी रखकर तुम्हारा इम्तिहान लेना चाहते थे कि तुम सीधे तौर पर उसको बेनक़ाब देखने के बजाय कायनात में और ख़ुद अपने वुजूद में उसकी निशानियों को देखकर अपनी अक़्ल से उसको पहचानते हो या नहीं। हम अपने पैग़म्बरों और किताबों के ज़रिए से इस हक़ीक़त तक पहुँचने में तुम्हारी जो मदद करते हैं, उससे फ़ायदा उठाते हो या नहीं और हक़ीक़त जान लेने के बाद अपने मन पर इतना क़ाबू पाते हो या नहीं कि ख़ाहिशों और फ़ायदों की बन्दगी से आज़ाद होकर इस हक़ीक़त को मान जाओ और उसके मुताबिक़ अपना रवैया ठीक कर लो। इस इम्तिहान में तुम नाकाम हो चुके हो। अब दोबारा इसी इम्तिहान का सिलसिला शुरू करने से क्या मिलेगा। दूसरा इम्तिहान अगर इस तरह लिया जाए कि तुम्हें वह सब कुछ याद हो जो तुमने यहाँ देख और सुन लिया है तो यह सिरे से कोई इम्तिहान ही न होगा और अगर पहले की तरह तुम्हारे ज़ेहन से सब कुछ मिटाकर और हक़ीक़त को निगाहों से ओझल रखकर तुम्हें फिर दुनिया में पैदा कर दिया जाए और नए सिरे से तुम्हारा उसी तरह

اَجْمَعِيْنَ۝١٣ فَذُوْقُوْا بِمَا نَسِيْتُمْ لِقَاۗءَ يَوْمِكُمْ هٰذَا ۚ اِنَّا نَسِيْنٰكُمْ
وَذُوْقُوْا عَذَابَ الْخُلْدِ بِمَا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ۝١٤ اِنَّمَا يُؤْمِنُ بِاٰيٰتِنَا الَّذِيْنَ
اِذَا ذُكِّرُوْا بِهَا خَرُّوْا سُجَّدًا وَّسَبَّحُوْا بِحَمْدِ رَبِّهِمْ وَهُمْ لَا يَسْتَكْبِرُوْنَ۝١٥ السجدة

जिन्नों और इनसानों, सबसे भर दूँगा।[24] (14) तो अब चखो मज़ा अपनी इस हरकत का कि तुमने इस दिन की मुलाक़ात को भुला दिया,[25] हमने भी अब तुम्हें भुला दिया है। चखो हमेशा रहनेवाले अज़ाब का मज़ा अपने करतूतों के बदले में।"

(15) हमारी आयतों पर तो वे लोग ईमान लाते हैं जिन्हें ये आयतें सुनाकर जब नसीहत की जाती है तो सजदे में गिर पड़ते हैं और अपने रब की तारीफ़ के साथ उसकी तसबीह (महिमागान) करते हैं और घमण्ड नहीं करते।[26]———

इम्तिहान लिया जाए, जैसे पहले लिया गया था, तो नतीजा पिछले इम्तिहान से कुछ भी अलग न होगा। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए– तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, हाशिया-228; सूरा-6 अनआम, हाशिए-6, 141; सूरा-10 यूनुस, हाशिया-26; सूरा-23 मोमिनून, हाशिया-91।

24. इशारा है उस बात की तरफ़ जो अल्लाह तआला ने आदम (अलैहि०) को पैदा करते वक़्त इबलीस को मुख़ातब (सम्बोधित) करते हुए कही थी। सूरा-38 सॉद की आयत-71 से 85 तक में उस वक़्त का पूरा क़िस्सा बयान किया गया है। इबलीस ने आदम (अलैहि०) को सजदा करने से इनकार किया और आदम की नस्ल को बहकाने के लिए क़ियामत तक की मुहलत माँगी। जवाब में अल्लाह तआला ने फ़रमाया, "तो सच यह है और मैं सच ही कहा करता हूँ कि मैं जहन्नम को भर दूँगा तुझसे और उन लोगों से जो इनसानों में से तेरी पैरवी करेंगे।" अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'अजमईन' (सबको) इस्तेमाल हुआ है। यह लफ़्ज़ यहाँ इस मानी में इस्तेमाल नहीं किया गया है कि तमाम जिन्न और तमाम इनसान जहन्नम में डाल दिए जाएँगे, बल्कि इसका मतलब यह है कि शैतान और इन शैतानों की पैरवी करनेवाले इनसान सब एक साथ जहन्नम में जाएँगे।

25. यानी दुनिया के ऐश में गुम होकर तुम लोगों ने इस बात को बिलकुल भुला दिया कि कभी अपने रब के सामने भी जाना है।

26. दूसरे अलफ़ाज़ में वे अपने ख़यालात को छोड़कर अल्लाह की बात मान लेने और अल्लाह की बन्दगी अपनाकर उसकी इबादत करने को अपनी शान से गिरी हुई बात नहीं समझते। अपनी बड़ाई का एहसास उन्हें हक़ क़बूल करने और रब की फ़रमाँबरदारी से नहीं रोकता।

تَتَجَافٰى جُنُوۡبُهُمۡ عَنِ الۡمَضَاجِعِ يَدۡعُوۡنَ رَبَّهُمۡ خَوۡفًا وَّطَمَعًا وَّمِمَّا
رَزَقۡنٰهُمۡ يُنۡفِقُوۡنَ ﴿۱۶﴾ فَلَا تَعۡلَمُ نَفۡسٌ مَّاۤ اُخۡفِىَ لَهُمۡ مِّنۡ قُرَّةِ اَعۡيُنٍ ۚ
جَزَآءًۢ بِمَا كَانُوۡا يَعۡمَلُوۡنَ ﴿۱۷﴾ اَفَمَنۡ كَانَ مُؤۡمِنًا كَمَنۡ كَانَ فَاسِقًا ؕ لَا

وقف غفران

(16) उनकी पीठें बिस्तरों से अलग रहती हैं, अपने रब को डर और लालच के साथ पुकारते हैं,[27] और जो कुछ रोज़ी हमने उन्हें दी है, उसमें से ख़र्च करते हैं।[28] (17) फिर जैसा कुछ आँखों की ठण्डक का सामान उनके आमाल (कर्मों) के बदले में उनके लिए छिपाकर रखा गया है, उसकी किसी को ख़बर नहीं है।[29] (18) भला कहीं यह हो सकता है कि जो शख़्स ईमानवाला हो, वह उस शख़्स की तरह हो जाए जो नाफ़रमान[30] हो? ये

27. यानी रातों को अय्याशियाँ करते फिरने के बजाय वे अपने रब की इबादत करते हैं। उनका हाल उन दुनियापरस्तों का-सा नहीं है जिन्हें दिन की मेहनतों की थकन दूर करने के लिए रातों को नाच-गाने, शराब पीने और खेल-तमाशों की तफ़रीह (मनोरंजन) चाहिए होती हैं। इसके बजाय उनका हाल यह होता है कि दिन भर अपने फ़र्ज़ पूरे करके जब वे फ़ारिग़ होते हैं तो अपने रब के सामने खड़े हो जाते हैं। उसकी याद में रातें गुज़ारते हैं। उसके डर से काँपते हैं और उसी से अपनी सारी उम्मीदें बाँधते हैं।
बिस्तरों से पीठें अलग रहने का मतलब यह नहीं है कि वे रातों को सोते ही नहीं हैं, बल्कि इससे मुराद यह है कि वे रातों का एक हिस्सा ख़ुदा की इबादत में गुज़ारते हैं।
28. रोज़ी से मुराद है हलाल रोज़ी। हराम माल को अल्लाह तआला अपनी दी हुई रोज़ी नहीं कहता। लिहाज़ा इस आयत का मतलब यह है कि जो थोड़ी या बहुत पाक रोज़ी हमने उन्हें दी है, उसी में से ख़र्च करते हैं। इससे आगे बढ़कर अपने ख़र्चे पूरे करने के लिए हराम माल पर हाथ नहीं मारते।
29. हदीस की किताबें बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी और मुसनद अहमद में कई तरीक़ों से हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) की यह रिवायत नक़्ल की गई है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, “अल्लाह तआला फ़रमाता है कि मैंने अपने नेक बन्दों के लिए वह कुछ जुटाकर रखा है जिसे न कभी किसी आँख ने देखा, न कभी किसी कान ने सुना, न कोई इनसान कभी उसके बारे में सोच सका है।” यही बात थोड़े-से लफ़्ज़ी फ़र्क़ के साथ हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि॰), हज़रत मुग़ीरा-बिन-शोबा (रज़ि॰) और हज़रत सहल-बिन-सअद साइदी ने भी नबी (सल्ल॰) से रिवायत की है जिसे मुस्लिम, अहमद, इब्ने-जरीर और तिरमिज़ी ने सहीह सनदों के साथ नक़्ल किया है।
30. यहाँ अस्ल अरबी में ‘मोमिन’ और ‘फ़ासिक़’ के दो लफ़्ज़ इस्तेमाल किए गए हैं जो अपने

يَسْتَوٗنَ۝۱۸ اَمَّا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ فَلَهُمْ جَنّٰتُ
الْمَاْوٰى ۡنُزُلًا بِمَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ۝۱۹ وَاَمَّا الَّذِيْنَ فَسَقُوْا فَمَاْوٰىهُمُ النَّارُ ط
كُلَّمَآ اَرَادُوْٓا اَنْ يَّخْرُجُوْا مِنْهَآ اُعِيْدُوْا فِيْهَا وَقِيْلَ لَهُمْ ذُوْقُوْا عَذَابَ
النَّارِ الَّذِيْ كُنْتُمْ بِهٖ تُكَذِّبُوْنَ۝۲۰ وَلَنُذِيْقَنَّهُمْ مِّنَ الْعَذَابِ الْاَدْنٰى دُوْنَ
الْعَذَابِ الْاَكْبَرِ لَعَلَّهُمْ يَرْجِعُوْنَ۝۲۱ وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ ذُكِّرَ بِاٰيٰتِ رَبِّهٖ

दोनों बराबर नहीं हो सकते।[31] (19) जो लोग ईमान लाए हैं और जिन्होंने अच्छे काम किए हैं, उनके लिए तो जन्नतों के ठिकाने हैं,[32] मेहमानदारी के तौर पर उनके कामों के बदले में। (20) और जिन्होंने नाफ़रमानी का रवैया अपनाया है, उनका ठिकाना जहन्नम है। जब कभी वे उससे निकलना चाहेंगे, उसी में धकेल दिए जाएँगे और उनसे कहा जाएगा कि चखो अब उसी आग के अज़ाब का मज़ा जिसको तुम झुठलाया करते थे।

(21) उस बड़े अज़ाब से पहले हम इसी दुनिया में (किसी-न-किसी छोटे) अज़ाब का मज़ा इन्हें चखाते रहेंगे, शायद कि ये (अपने बग़ावतवाले रवैये से) बाज़ आ जाएँ।[33] (22) और उससे बड़ा ज़ालिम कौन होगा जिसे उसके रब की आयतों के ज़रिए से

मानी के लिहाज़ से एक-दूसरे के बरख़िलाफ़ हैं। 'मोमिन' से मुराद वह शख़्स है जो अल्लाह तआला को अपना रब और अकेला माबूद मानकर उस क़ानून की पैरवी अपना ले जो अल्लाह ने अपने पैग़म्बरों के ज़रिए से भेजा है। इसके बरख़िलाफ़ 'फ़ासिक़' वह शख़्स है जो 'फ़िस्क़' (फ़रमाँबरदारी से निकल जाने, या दूसरे लफ़्ज़ों में बग़ावत, अपनी मरज़ी का मालिक होने और अल्लाह के बजाय दूसरों की पैरवी) का रवैया अपनाए।

31. यानी न दुनिया में उनका सोचने और जीने का ढंग एक जैसा हो सकता है और न आख़िरत में उनके साथ ख़ुदा का मामला एक जैसा हो सकता है।

32. यानी वे जन्नतें सिर्फ़ उनकी सैर करने की जगहें न होंगी, बल्कि वही उनके रहने की जगहें भी होंगी जिनमें वे हमेशा रहेंगे।

33. 'बड़ा अज़ाब' से मुराद आख़िरत का अज़ाब है जो कुफ़्र और फ़िस्क़ (ख़ुदा के इनकार और उसकी नाफ़रमानी) की सज़ा में दिया जाएगा। इसके मुक़ाबले में 'छोटा अज़ाब' का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है जिससे मुराद वे तकलीफ़ें हैं जो इसी दुनिया में इनसान को पहुँचती हैं। मसलन लोगों की ज़िन्दगी में सख़्त बीमारियाँ, अपने सबसे क़रीबी लोगों की मौत, दर्दनाक

ثُمَّ اَعْرَضَ عَنْهَا ؕ اِنَّا مِنَ الْمُجْرِمِيْنَ مُنْتَقِمُوْنَ۝۲۲ وَلَقَدْ اٰتَيْنَا مُوْسَى

नसीहत की जाए और फिर वह उनसे मुँह फेर ले।[34] ऐसे मुजरिमों से तो हम इन्तिक़ाम लेकर रहेंगे।

हादिसे, घाटे, नाकामियाँ वग़ैरा और इज्तिमाई ज़िन्दगी में तूफ़ान, ज़लज़ले, सैलाब, महामारियाँ, अकाल, दंगे, लड़ाइयाँ और दूसरी बहुत-सी बलाएँ जो हज़ारों, लाखों, करोड़ों इनसानों को अपनी लपेट में ले लेती हैं। इन आफ़तों और मुसीबतों को भेजने की मस्लहत यह बयान की गई है कि बड़े अज़ाब में मुब्तला होने से पहले ही लोग होश में आ जाएँ और उस सोच और अमल के उस ढंग को छोड़ दें जिसकी सज़ा में आख़िरकार उन्हें वह बड़ा अज़ाब भुगतना पड़ेगा। दूसरे अलफ़ाज़ में इसका मतलब यह है कि दुनिया में अल्लाह तआला ने इनसान को बिलकुल ख़ैरियत से (सकुशल) ही नहीं रखा है कि पूरे आराम और सुकून से ज़िन्दगी की गाड़ी चलती रहे और आदमी इस ग़लतफ़हमी में पड़ जाए कि उससे ऊपर कोई ताक़त नहीं है जो उसका कुछ बिगाड़ सकती हो, बल्कि अल्लाह तआला ने ऐसा इन्तिज़ाम कर रखा है कि वक़्त-वक़्त पर लोगों पर भी और क़ौमों और देशों पर भी ऐसी आफ़तें भेजता रहता है जो उसे अपनी बेबसी का और अपने से ऊपर एक हमागीर (सर्वव्यापी) सल्तनत की हुकूमत का एहसास दिलाती हैं। ये आफ़तें एक-एक आदमी को, एक-एक गरोह को और एक-एक क़ौम को यह याद दिलाती हैं कि ऊपर तुम्हारी क़िस्मतों को कोई और कंट्रोल कर रहा है। सब कुछ तुम्हारे हाथ में नहीं दे दिया गया है। अस्ल ताक़त उसी हुक्म करने और चलानेवाले के हाथ में है। उसकी तरफ़ से जब कोई आफ़त तुम्हारे ऊपर आए तो न तुम्हारी कोई तदबीर उसे दूर कर सकती है और न किसी जिन्न, या रूह, या देवी-देवता, या नबी और वली से मदद माँगकर तुम उसको रोक सकते हो। इस लिहाज़ से ये आफ़तें सिर्फ़ आफ़तें नहीं हैं, बल्कि ख़ुदा की तंबीहात (चेतावनियाँ) हैं जो इनसान को हक़ीक़त से आगाह करने और उसकी ग़लतफ़हमियाँ दूर करने के लिए भेजी जाती हैं। उनसे सबक़ लेकर दुनिया ही में आदमी अपना अक़ीदा और अमल ठीक कर ले तो आख़िरत में ख़ुदा का बड़ा अज़ाब देखने की नौबत ही क्यों आए।

34. 'रब की आयतों' यानी उसकी निशानियों के अलफ़ाज़ अपने अन्दर बहुत-से मानी रखते हैं जिनके अन्दर तमाम तरह की निशानियाँ आ जाती हैं। क़ुरआन मजीद के तमाम बयानों को निगाह में रखा जाए तो मालूम होता है कि ये निशानियाँ नीचे लिखी छह तरह की हैं—

(1) वे निशानियाँ जो ज़मीन से लेकर आसमान तक हर चीज़ में और कायनात के पूरे निज़ाम (व्यवस्था) में पाई जाती हैं।

(2) वे निशानियाँ जो इनसान की अपनी पैदाइश और उसकी बनावट और उसके वुजूद में पाई जाती हैं।

الْكِتٰبَ فَلَا تَكُنْ فِيْ مِرْيَةٍ مِّنْ لِّقَآئِهٖ وَجَعَلْنٰهُ هُدًى لِّبَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ ﴿٢٣﴾

(23) इससे पहले हम मूसा को किताब दे चुके हैं, लिहाज़ा उसी चीज़ के मिलने पर तुम्हें कोई शक न होना चाहिए।[35] उस किताब को हमने बनी-इसराईल के लिए हिदायत

---

(3) वे निशानियाँ जो इनसान के विजदान (अन्तर्ज्ञान) में, उसके लाशुऊर (अचेतन) और तहतश्शुऊर (अवचेतन) में और उसके अख़लाक़ी तसव्वुरात में पाई जाती हैं।

(4) वे निशानियाँ जो मानव-इतिहास के लगातार तजरिबों में पाई जाती हैं।

(5) वे निशानियाँ जो इनसान पर ज़मीनी और आसमानी आफ़तों के आने में पाई जाती हैं।

(6) और इन सबके बाद वे आयतें जो अल्लाह तआला ने अपने पैग़म्बरों के ज़रिए से भेजीं, ताकि मुनासिब तरीक़े से इनसान को उन्हीं हक़ीक़तों से आगाह किया जाए जिनकी तरफ़ ऊपर की तमाम निशानियाँ इशारा कर रही हैं।

ये सारी निशानियाँ पूरी तरह एक आवाज़ होकर और ऊँची आवाज़ के साथ इनसान को यह बता रही हैं कि तू बेख़ुदा नहीं है, न बहुत-से ख़ुदाओं का बन्दा है, बल्कि तेरा ख़ुदा सिर्फ़ एक ही ख़ुदा है, जिसकी इबादत और फ़रमाँबरदारी के सिवा तेरे लिए कोई दूसरा रास्ता सही नहीं है। तू इस दुनिया में आज़ाद और अपनी मरज़ी का मालिक और ग़ैर-ज़िम्मेदार बनाकर नहीं छोड़ दिया गया है, बल्कि तुझे अपनी ज़िन्दगी के काम ख़त्म करने के बाद अपने ख़ुदा के सामने हाज़िर होकर जवाबदेही करनी है और अपने अमल के लिहाज़ से इनाम पाना या सज़ा पानी है। इसलिए तेरी अपनी भलाई इसी में है कि तेरे ख़ुदा ने तेरी रहनुमाई के लिए अपने पैग़म्बरों और अपनी किताबों के ज़रिए से जो हिदायत भेजी है, उसकी पैरवी कर और मनमरज़ी और ख़ुदमुख़्तारी के रवैये को छोड़ दे। अब यह ज़ाहिर है कि जिस इनसान को इतने अलग-अलग तरीक़ों से समझाया गया हो, जिसे समझाने-बुझाने के लिए तरह-तरह की इतनी अनगिनत निशानियाँ जुटा दी गई हों और जिसे देखने के लिए आँखें, सुनने के लिए कान और सोचने-समझने के लिए दिल की नेमतें भी दी गई हों, वह अगर इन सारी निशानियों की तरफ़ से आँखें बन्द कर लेता है, समझानेवालों की याददिहानी और नसीहत के लिए भी अपने कान बन्द कर लेता है, और अपने दिलो-दिमाग़ से भी औंधे फ़लसफ़े (दर्शन) ही गढ़ने का काम लेता है, उससे बड़ा ज़ालिम कोई नहीं हो सकता। वह फिर इसी का हक़दार है कि दुनिया में अपने इम्तिहान की मुद्दत ख़त्म करने के बाद जब वह अपने ख़ुदा के सामने हाज़िर हो तो बग़ावत की भरपूर सज़ा पाए।

35. बात बज़ाहिर नबी (सल्ल॰) से कही जा रही है, मगर अस्ल में उन लोगों से कही जा रही है जो नबी (सल्ल॰) की रिसालत और पैग़म्बरी में और आप (सल्ल॰) के ऊपर अल्लाह की किताब उतरने में शक कर रहे थे। यहाँ से बात का रुख़ उसी बात की तरफ़ फिर रहा है जो सूरा के शुरू (आयतें—2, 3) में बयान हुई थी। मक्का के ग़ैर-मुस्लिम कह रहे थे कि मुहम्मद (सल्ल॰)

وَجَعَلْنَا مِنْهُمْ اَىِٕمَّةً يَّهْدُوْنَ بِاَمْرِنَا لَمَّا صَبَرُوْا ۛؕ وَكَانُوْا بِاٰيٰتِنَا
يُوْقِنُوْنَ ﴿٢٤﴾ اِنَّ رَبَّكَ هُوَ يَفْصِلُ بَيْنَهُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ فِيْمَا كَانُوْا فِيْهِ

बनाया था,[36] (24) और जब उन्होंने सब्र किया और हमारी आयतों पर यक़ीन लाते रहे तो उनके अन्दर हमने ऐसे पेशवा पैदा किए जो हमारे हुक्म से रहनुमाई करते थे।[37] (25) यक़ीनन तेरा रब ही क़ियामत के दिन उन बातों का फ़ैसला करेगा जिनमें

पर ख़ुदा की तरफ़ से कोई किताब नहीं आई है, उन्होंने उसे ख़ुद गढ़ लिया है और दावा यह कर रहे हैं कि अल्लाह ने इसे उतारा है। इसका एक जवाब शुरू की आयतों में दिया गया था। अब इसका दूसरा जवाब दिया जा रहा है। इस सिलसिले में पहली बात जो कही गई है वह यह है कि ऐ नबी, ये नादान लोग तुमपर अल्लाह की किताब के उतरने को अपने नज़दीक नामुमकिन समझ रहे हैं और चाहते हैं कि हर दूसरा शख़्स भी अगर इसका इनकार न करे तो कम-से-कम इसके बारे में शक ही में पड़ जाए। लेकिन एक बन्दे पर ख़ुदा की तरफ़ से किताब उतरना एक निराला वाक़िआ तो नहीं है जो इनसानी इतिहास में आज पहली बार ही पेश आया हो। इससे पहले कई पैग़म्बरों पर किताबें उतर चुकी हैं, जिनमें सबसे मशहूर किताब वह है जो मूसा (अलैहि॰) को दी गई थी। लिहाज़ा इसी तरह की एक चीज़ आज तुम्हें दी गई है तो आख़िर इसमें अनोखी बात क्या है जिसपर बेवजह शक किया जाए।

36. यानी वह किताब बनी-इसराईल के लिए रहनुमाई का ज़रिआ बनाई गई थी, और यह किताब उसी तरह तुम लोगों की रहनुमाई के लिए भेजी गई है, जैसा कि आयत-3 में पहले बयान किया जा चुका है। इस बात का पूरा मतलब और मक़सद उसके तारीख़ी पसमंज़र (ऐतिहासिक पृष्ठभूमि) को निगाह में रखने से ही समझ में आ सकता है। यह बात इतिहास से साबित है और मक्का के ग़ैर-मुस्लिम भी उससे अनजान न थे कि बनी-इसराईल कई सदी तक मिस्र में बेहद रुसवाई और बदहाली की ज़िन्दगी गुज़ार रहे थे। इस हालत में अल्लाह तआला ने उनके बीच मूसा (अलैहि॰) को पैदा किया, उनके ज़रिए से उस क़ौम को ग़ुलामी की हालत से निकाला, फिर उनपर किताब उतारी और उसकी मेहरबानी से वही दबी और पिसी हुई क़ौम हिदायत पाकर दुनिया में एक नामवर क़ौम बन गई। इस इतिहास की तरफ़ इशारा करके अरबवालों से कहा जा रहा है कि जिस तरह बनी-इसराईल की हिदायत के लिए वह किताब भेजी गई थी, उसी तरह तुम्हारी हिदायत के लिए यह किताब भेजी गई है।

37. यानी बनी-इसराईल को इस किताब ने जो कुछ बनाया और जिन दर्जों पर उनको पहुँचाया, वह सिर्फ़ उनके बीच किताब के आ जाने का करिश्मा न था कि मानो यह कोई तावीज़ हो जो बाँधकर उस क़ौम के गले में लटका दिया गया हो और उसके लटकते ही क़ौम ने तरक़्क़ी

يَخْتَلِفُوْنَ۝٢٥ اَوَلَمْ يَهْدِ لَهُمْ كَمْ اَهْلَكْنَا مِنْ قَبْلِهِمْ مِّنَ الْقُرُوْنِ
يَمْشُوْنَ فِيْ مَسٰكِنِهِمْ ۭ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ ۭ اَفَلَا يَسْمَعُوْنَ۝٢٦

(बनी-इसराईल) आपस में इख़्तिलाफ़ (विभेद) करते रहे हैं।[38]

(26) और क्या इन लोगों को (इन ऐतिहासिक घटनाओं में) कोई हिदायत नहीं मिली कि इनसे पहले कितनी ही क़ौमों को हम हलाक कर चुके हैं, जिनके रहने की जगहों में आज ये चलते-फिरते हैं?[39] इसमें बड़ी निशानियाँ हैं, क्या ये सुनते नहीं हैं?

करना शुरू कर दिया हो, बल्कि यह सारी करामत (करिश्मा) उस यक़ीन और ईमान की थी जो वे अल्लाह की आयतों पर लाए, और उस सब्र और जमाव की थी जो उन्होंने अल्लाह के हुक्मों की पैरवी में दिखाया। ख़ुद बनी-इसराईल के अन्दर भी पेशवाई उन्हीं को मिली जो उनमें से अल्लाह की किताब के सच्चे मोमिन थे और दुनियावी फ़ायदों और लज़्ज़तों के लालच में फिसल जानेवाले न थे। उन्होंने जब हक़-परस्ती में हर ख़तरे का डटकर मुक़ाबला किया, हर नुक़सान और हर तकलीफ़ को बरदाश्त किया, और अपने मन की ख़ाहिशों से लेकर बाहर के दीन के दुश्मनों तक हर एक के ख़िलाफ़ मुजाहदे और जिद्दोजुहद का हक़ अदा कर दिया तब ही वे दुनिया के इमाम बने। इसका मक़सद अरब के ग़ैर-मुस्लिमों को ख़बरदार करना है कि जिस तरह ख़ुदा की किताब के नुज़ूल (उतरने) ने बनी-इसराईल के अन्दर क़िस्मतों के फ़ैसले किए थे, उसी तरह अब इस किताब का उतरना तुम्हारे बीच भी क़िस्मतों का फ़ैसला कर देगा। अब वही लोग इमाम और पेशवा बनेंगे जो उसको मानकर सब्र और जमाव के साथ हक़ की पैरवी करेंगे। इससे मुँह मोड़नेवालों की तक़दीर गर्दिश में आ चुकी है।

38. यह इशारा है उन इख़्तिलाफ़ात (मतभेदों) और गुट-बन्दियों की तरफ़ जिनके अन्दर बनी-इसराईल ईमान और यक़ीन की दौलत से महरूम होने और सीधे रास्ते पर चलनेवाले अपने इमामों और पेशवाओं की पैरवी छोड़ देने, और दुनिया-परस्ती में पड़ जाने के बाद मुब्तला हुए। इस हालत का एक नतीजा तो ज़ाहिर है जिसे सारी दुनिया देख रही है कि बनी-इसराईल रुसवाई और बदहाली में गिरफ़्तार हैं। दूसरा नतीजा वह है जो दुनिया नहीं जानती, और वह क़ियामत के दिन ज़ाहिर होगा।

39. यानी क्या इतिहास के इस लगातार तजरिबे से इन लोगों ने कोई सबक़ नहीं लिया कि जिस क़ौम में भी ख़ुदा का रसूल आया है, उसकी क़िस्मत का फ़ैसला उस रवैये के साथ जुड़ गया है जो अपने रसूल के मामले में उसने अपनाया। रसूल को झुठला देने के बाद फिर कोई क़ौम बच नहीं सकी है। उसमें से बचे हैं तो सिर्फ़ वही लोग जो उसपर ईमान लाए। इनकार कर देनेवाले हमेशा-हमेशा के लिए इबरत की निशानी बनकर रह गए।

اَوَلَمْ يَرَوْا اَنَّا نَسُوْقُ الْمَآءَ اِلَى الْاَرْضِ الْجُرُزِ فَنُخْرِجُ بِهٖ زَرْعًا تَاْكُلُ
مِنْهُ اَنْعَامُهُمْ وَاَنْفُسُهُمْ ؕ اَفَلَا يُبْصِرُوْنَ ۝٢٧ وَيَقُوْلُوْنَ مَتٰى هٰذَا الْفَتْحُ
اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ۝٢٨ قُلْ يَوْمَ الْفَتْحِ لَا يَنْفَعُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اِيْمَانُهُمْ
وَلَا هُمْ يُنْظَرُوْنَ ۝٢٩ فَاَعْرِضْ عَنْهُمْ وَانْتَظِرْ اِنَّهُمْ مُّنْتَظِرُوْنَ ۝٣٠

(27) और क्या इन लोगों ने यह (दृश्य) मंज़र कभी नहीं देखा कि हम एक सूखी-बंजर ज़मीन की तरफ़ पानी बहा लाते हैं? और फिर उसी ज़मीन से वह फ़सल उगाते हैं जिससे इनके जानवरों को भी चारा मिलता है और ये ख़ुद भी खाते हैं? तो क्या इन्हें कुछ नहीं सूझता?[40] (28) ये लोग कहते हैं कि "यह फ़ैसला कब होगा अगर तुम सच्चे हो?"[41] (29) इनसे कहो, "फ़ैसले के दिन ईमान लाना उन लोगों के लिए कुछ भी फ़ायदेमन्द न होगा जिन्होंने कुफ़्र (इनकार) किया है और फिर उनको कोई मुहलत न मिलेगी।"[42] (30) अच्छा, इन्हें, इनके हाल पर छोड़ दो और इन्तिज़ार करो, ये भी इन्तिज़ार में हैं।

40. मौक़ा-महल (प्रसंग और सन्दर्भ) को निगाह में रखने से साफ़ महसूस होता है कि यहाँ यह ज़िक्र मौत के बाद की ज़िन्दगी पर दलील देने के लिए नहीं किया गया है, जैसा कि क़ुरआन में आम तौर पर होता है, बल्कि बात के इस सिलसिले में यह बात एक और ही मक़सद के लिए कही गई है। इसमें अस्ल में एक हल्का-सा इशारा है इस बात की तरफ़ कि जिस तरह एक बंजर पड़ी हुई ज़मीन को देखकर आदमी यह गुमान नहीं कर सकता कि यह भी कभी लहलहाती खेती बन जाएगी, मगर ख़ुदा की भेजी हुई बरसात का एक ही रेला उसका रंग बदल देता है, उसी तरह इस्लाम की यह दावत (पैग़ाम) भी इस वक़्त तुमको एक न चलनेवाली चीज़ नज़र आती है, लेकिन ख़ुदा की क़ुदरत का एक ही करिश्मा इसको इस तरह फैला देगा कि तुम दंग रह जाओगे।

41. यानी तुम जो कहते हो कि आख़िरकार अल्लाह की मदद आएगी और हमें झुठलानेवालों पर उसका ग़ज़ब (प्रकोप) टूट पड़ेगा, तो बताओ वह वक़्त कब आएगा? कब हमारा-तुम्हारा फ़ैसला होगा?

42. यानी यह कौन-सी ऐसी चीज़ है जिसके लिए तुम बेचैन होते हो। ख़ुदा का अज़ाब आ गया तो फिर संभलने का मौक़ा तुमको न मिलेगा। इस मुहलत को ग़नीमत जानो जो अज़ाब आने से पहले तुमको मिली हुई है। अज़ाब सामने देखकर ईमान लाओगे तो कुछ हासिल न होगा।

☆☆☆

33. अल-अहज़ाब

परिचय

नाम

आयत-20 के जुमले "यह-सबूनल-अहज़ा-ब लम् यज़्हबू" (ये समझ रहे हैं कि हमला करनेवाले गरोह अभी गए नहीं हैं) से लिया गया है।

उतरने का ज़माना

इस सूरा के मज़ामीन (विषय) तीन अहम वाक़िआत से बहस करते हैं। एक अहज़ाब की जंग जो शव्वाल 5 हिजरी में हुई। दूसरा बनी-कुरैज़ा की जंग जो ज़ी-क़ादा 5 हि॰ में हुई। तीसरा हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) से नबी (सल्ल॰) का निकाह जो इसी साल ज़ी-क़ादा में हुआ। इन तारीख़ी वाक़िआत (ऐतिहासिक घटनाओं) से सूरा के उतरने का ज़माना ठीक तौर पर तय हो जाता है।

तारीख़ी पसमंज़र (ऐतिहासिक पृष्ठभूमि)

उहुद की जंग (शव्वाल 3 हि॰) में नबी (सल्ल॰) के मुक़र्रर किए हुए तीरन्दाज़ों की ग़लती से इस्लामी फ़ौज को जो हार हो गई थी, उसकी वजह से अरब के मुशरिकों, यहूदियों और मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) की हिम्मतें बहुत बढ़ गई थीं और उन्हें उम्मीद हो चली थी कि वे इस्लाम और मुसलमानों को उखाड़ फेंकने में कामयाब हो जाएँगे। इन बढ़ते हुए हौसलों का अन्दाज़ा उन वाक़िआत से हो सकता है जो उहुद के बाद पहले ही साल में हुए। उहुद की जंग पर दो महीनों से ज़्यादा न गुज़रे थे कि नज्द के क़बीले बनी-असद ने मदीना तय्यिबा पर छापा मारने की तैयारियाँ कीं और नबी (सल्ल॰) को उनकी रोकथाम के लिए अबू-सलमा नाम का 'सरिय्या'[1] भेजना पड़ा। फिर सफ़र 4 हि॰ में 'अज़ल' और 'क़ारा' नाम के क़बीलों ने नबी (सल्ल॰) से कुछ आदमी माँगे, ताकि वे उनके इलाक़े में जाकर लोगों को इस्लाम की तालीम दें। नबी (सल्ल॰) ने छह सहाबा को

1. इस्लामी ज़बान में 'सरिय्या' उस फ़ौजी मुहिम को कहते हैं जिसमें नबी (सल्ल॰) ख़ुद शरीक न होते थे और 'ग़ज़वा' उस जंग या मुहिम को कहा जाता है जिसमें नबी (सल्ल॰) ख़ुद क़ियादत करते थे।

उनके साथ कर दिया। मगर रजीअ् (जिद्दा और राबिग़ के बीच) पहुँचकर वे लोग 'हुज़ैल' क़बीले के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों को उन बेबस तबलीग़ करनेवालों पर चढ़ा लाए, उनमें से चार को क़त्ल कर दिया और दो साहिबों (हज़रत ख़ुबैब-बिन-अदी और हज़रत ज़ैद-बिन-दस्ना) को ले जाकर मक्का मुअज़्ज़मा में दुश्मनों के हाथ बेच दिया। फिर उसी सफ़र के महीने में बनी-आमिर के एक सरदार की दरख़ास्त पर नबी (सल्ल॰) ने एक और तबलीग़ी वफ़्द जिसमें चालीस (या कुछ के कहने के मुताबिक़ 70) अनसारी नौजवान थे, नज्द की तरफ़ रवाना किया। मगर उनके साथ भी ग़द्दारी की गई और बनी-सुलैम के क़बीले 'उसैया' और 'रिअ्ल' और 'ज़कवान' ने 'बिअरे-मऊना' के मक़ाम पर अचानक घेरे में लेकर उन सबको क़त्ल कर दिया। इसी दौरान में मदीना का यहूदी क़बीला बनी-नज़ीर दिलेर होकर लगातार समझौते की ख़िलाफ़वर्ज़ी करता रहा, यहाँ तक कि रबीउल-अव्वल 4 हि॰ में उसने ख़ुद नबी (सल्ल॰) को शहीद करने की साज़िश तक कर डाली। फिर जुमादल-ऊला 4 हि॰ में बनी-ग़तफ़ान के दो क़बीलों बनू-सअलबा और बनू-मुहारिब ने मदीना पर हमले की तैयारियाँ कीं और नबी (सल्ल॰) को ख़ुद उनकी रोकथाम के लिए जाना पड़ा। इस तरह उहुद की जंग की हार से जो हवा उखड़ी थी, वह लगातार सात-आठ महीने तक अपना रंग दिखाती रही।

लेकिन वह सिर्फ़ मुहम्मद (सल्ल॰) का पुख़्ता इरादा और गहरी सूझ-बूझ से काम लेना और सहाबा किराम का फ़िदा होनेवाला जज़्बा ही था जिसने थोड़ी मुद्दत के अन्दर ही हालात का रुख़ बदलकर रख दिया। अरबों के मआशी बॉयकाट (आर्थिक बहिष्कार) ने मदीनावालों के लिए जीना दूभर कर रखा था। आस-पास के तमाम मुशरिक क़बीले ज़्यादतियाँ कर रहे थे। ख़ुद मदीना के अन्दर यहूदी और मुनाफ़िक़ आस्तीन के साँप बने हुए थे। मगर इन मुट्ठी-भर सच्चे ईमानवालों ने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की रहनुमाई में एक-के-बाद-एक ऐसे क़दम उठाए जिनसे अरब में इस्लाम का रोब सिर्फ़ बहाल ही नहीं हो गया, बल्कि पहले से ज़्यादा बढ़ गया।

अहज़ाब की जंग से पहले की जंगें

इनमें सबसे पहला क़दम वह था जो उहुद की जंग के फ़ौरन ही बाद उठाया गया। जंग के ठीक दूसरे दिन जबकि बहुत-से मुसलमान ज़ख़्मी थे और बहुत-से घरों में सबसे क़रीबी रिश्तेदारों की शहादत पर कुहराम मचा था और अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ख़ुद भी ज़ख़्मी और हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) की शहादत पर बेहद दुखी थे, नबी (सल्ल॰) ने इस्लाम पर न्योछावर हो जानेवालों को पुकारा कि इस्लाम-दुश्मनों के लश्कर का पीछा

करते हुए चलना है, ताकि वे कहीं रास्ते से पलटकर फिर मदीना पर हमला न कर दें। नबी (सल्ल॰) का यह अन्दाज़ा बिलकुल सही था कि क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मन हाथ आई हुई जीत का कोई फ़ायदा उठाए बिना वापस तो चले गए हैं, लेकिन रास्ते में जब किसी जगह ठहरेंगे तो अपनी इस बेवक़ूफ़ी पर शर्मिन्दा होंगे और दोबारा मदीना पर चढ़ आएँगे। इस वजह से आप (सल्ल॰) ने उनका पीछा करने का फ़ैसला किया और फ़ौरन 630 जाँनिसार आप (सल्ल॰) के साथ चलने के लिए तैयार हो गए। मक्का के रास्ते में जब 'हमराउल-असद' पहुँचकर आप (सल्ल॰) ने तीन दिन तक पड़ाव किया तो एक हमदर्द ग़ैर-मुस्लिम के ज़रिए से आप (सल्ल॰) को मालूम हो गया कि अबू-सुफ़ियान अपने 2978 आदमियों के साथ मदीना से 36 मील दूर अर-रौहा के मक़ाम पर ठहरा हुआ था और ये लोग सचमुच अपनी ग़लती को महसूस करके फिर पलट आना चाहते थे, लेकिन यह सुनकर उनकी हिम्मत टूट गई कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) एक लश्कर लिए हुए उनका पीछा करते चले आ रहे हैं। इस कार्रवाई का सिर्फ़ यही फ़ायदा नहीं हुआ कि क़ुरैश के बढ़े हुए हौसले कमज़ोर हो गए, बल्कि आस-पास के दुश्मनों को भी यह मालूम हो गया कि मुसलमानों की क़ियादत एक निहायत बेदार ज़ेहन रखनेवाली और बड़े हौसलेवाली हस्ती कर रही है और मुसलमान उसके इशारे पर कट-मरने के लिए हर वक़्त तैयार हैं। (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए– तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, परिचय और हाशिया-122)।

फिर ज्यों ही कि बनी-असद ने मदीना पर छापा मारने की तैयारियाँ शुरू कीं, नबी (सल्ल॰) के मुख़बिरों ने वक़्त पर आप (सल्ल॰) को उनके इरादों के बारे में बता दिया। इससे पहले कि वे चढ़कर आते, आप (सल्ल॰) ने हज़रत अबू-सलमा (उम्मुल-मोमिनीन हज़रत उम्मे-सलमा रज़ि॰ के पहले शौहर) की क़ियादत में डेढ़ सौ आदमियों का एक लश्कर उनका सिर कुचलने के लिए भेज दिया। यह फ़ौज अचानक उनके सिर पर पहुँच गई। बदहवासी की हालत में वे अपना सब कुछ छोड़कर भाग निकले और उनका सारा माल और सामान मुसलमानों के हाथ आ गया।

इसके बाद बनी-नज़ीर की बारी आई। जिस दिन उन्होंने नबी (सल्ल॰) को शहीद करने की साज़िश की और उसका राज़ खुल गया, उसी दिन आप (सल्ल॰) ने उनको नोटिस दे दिया कि दस दिन के अन्दर मदीना से निकल जाओ, इसके बाद तुममें से जो यहाँ पाया जाएगा, क़त्ल कर दिया जाएगा। मदीना के मुनाफ़िक़ों के सरदार अब्दुल्लाह-बिन-उबई ने उनको तड़ी दी कि डट जाओ और मदीना छोड़ने से इनकार कर दो, मैं दो हज़ार आदमियों के साथ तुम्हारी मदद करूँगा, बनी-क़ुरैज़ा तुम्हारी मदद करेंगे

और नज्द से बनी-ग़तफ़ान भी तुम्हारी मदद के लिए आएँगे। इन बातों में आकर उन्होंने नबी (सल्ल॰) को कहला भेजा कि हम अपना इलाक़ा नहीं छोड़ेंगे, आपसे जो कुछ हो सके, कर लीजिए। नबी (सल्ल॰) ने नोटिस की मुद्दत ख़त्म होते ही उनको घेर लिया और उनके हिमायतियों में से किसी की यह हिम्मत न पड़ी कि मदद को आता। आख़िरकार उन्होंने इस शर्त पर हथियार डाल दिए कि उनमें से हर तीन आदमी एक ऊँट पर जो कुछ लादकर ले जा सकते हैं, ले जाएँगे और बाक़ी सब कुछ मदीना ही में छोड़ जाएँगे। इस तरह मदीना के आस-पास का वह पूरा इलाक़ा जिसमें बनी-नज़ीर रहते थे, उनके बाग़ और गढ़ियों और सरो-सामान समेत मुसलमानों के हाथ आ गया और समझौता तोड़नेवाले इस क़बीले के लोग ख़ैबर, क़ुरा की घाटी और शाम (सीरिया) में तितर-बितर हो गए।

फिर नबी (सल्ल॰) ने बनी-ग़तफ़ान की तरफ़ ध्यान दिया जो मदीना पर हमला करने के लिए पर तौल रहे थे। आप 400 का लश्कर लेकर निकले और 'ज़ातुर-रिक़ाअ' के मक़ाम पर उनको जा लिया। इस अचानक हमले ने उनके होश उड़ा दिए और किसी जंग के बिना वे अपने घर-बार और माल-असबाब छोड़कर पहाड़ों में बिखर गए।

इसके बाद शाबान 4 हि॰ में नबी (सल्ल॰) अबू-सुफ़ियान के उस चैलेंज का जवाब देने के लिए निकले जो उसने उहुद से पलटते हुए दिया था। जंग ख़त्म होने पर उसने नबी (सल्ल॰) और मुसलमानों की तरफ़ रुख़ करके एलान किया था कि "अगले साल बद्र के मक़ाम पर हमारा-तुम्हारा फिर मुक़ाबला होगा।" और नबी (सल्ल॰) ने जवाब में एक सहाबी के ज़रिए से यह एलान करा दिया था कि "ठीक है, यह बात हमारे और तुम्हारे बीच तय हो गई।" इस क़रारदाद (प्रस्ताव) के मुताबिक़ तय किए हुए वक़्त पर आप (सल्ल॰) 15 सौ सहाबियों को लेकर बद्र के मक़ाम पर पहुँच गए। उधर से अबू-सुफ़ियान दो हज़ार का लश्कर लेकर चला, मगर 'मर्रुज़-ज़हरान' (मौजूदा 'फ़ातिमा' घाटी) से आगे बढ़ने की हिम्मत न कर सका। नबी (सल्ल॰) ने बद्र में आठ दिन उसका इन्तिज़ार किया और इस दौरान में मुसलमान तिजारत करके एक दिरहम के दो दिरहम कमाते रहे। इस घटना से वह धाक जो उहुद में उखड़ी थी, पहले से भी ज़्यादा जम गई। इसने पूरे अरब पर यह बात खोल दी कि अब तन्हा क़ुरैश मुहम्मद (सल्ल॰) से मुक़ाबले की ताक़त नहीं रखते। (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, हाशिया-124)

इस धाक में एक और घटना ने और इज़ाफ़ा किया। अरब और शाम की सरहद पर दूमतुल-जन्दल (मौजूदा अल-जौफ़) एक अहम मक़ाम था, जहाँ से इराक़ और मिस्र

और शाम (सीरिया) के दरमियान अरब के तिजारती क़ाफ़िले गुज़रते थे। इस जगह के लोग क़ाफ़िलों को तंग करते और अकसर लूट लेते थे। नबी (सल्ल॰) रबीउल-अव्वल 5 हि॰ में एक हज़ार का लश्कर लेकर उनको सज़ा देने के लिए ख़ुद तशरीफ़ ले गए। वे आप (सल्ल॰) के मुक़ाबले की हिम्मत न कर सके और बस्ती छोड़कर भाग निकले। इससे पूरे शिमाली (उत्तरी) अरब पर इस्लाम का रोब बैठ गया और क़बीलों ने यह समझ लिया कि मदीना में जो ज़बरदस्त ताक़त पैदा हुई है, उसका मुक़ाबला अब एक-दो क़बीलों के बस का काम नहीं है।

अहज़ाब की जंग

ये हालात थे जिनमें अहज़ाब की जंग हुई। यह जंग अस्ल में अरब के बहुत-से क़बीलों का एक मिल-जुलकर किया गया हमला था जो मदीना की इस ताक़त को कुचल देने के लिए किया गया था। इसपर उभारा था बनी-नज़ीर के उन लीडरों ने जो मदीना से जलावतन होकर ख़ैबर में आबाद हो गए थे। उन्होंने दौरा करके क़ुरैश और ग़तफ़ान और हुज़ैल और दूसरे बहुत-से क़बीलों को इस बात पर राज़ी किया कि सब मिलकर बहुत बड़ी फ़ौज के साथ मदीना पर टूट पड़ें। चुनाँचे उनकी कोशिशों से शव्वाल 5 हि॰ में अरब के क़बीलों की इतनी बड़ी फ़ौज इस छोटी-सी बस्ती पर हमला कर बैठी जो इससे पहले अरब में कभी इकट्ठा न हुई थी। इसमें शिमाल (उत्तर) की तरफ़ से बनी-नज़ीर और बनी-क़ैनुक़ाअ के वे यहूदी आए जो मदीना से जलावतन होकर ख़ैबर और क़ुरा की घाटी में आबाद हुए थे। पूरब की तरफ़ से ग़तफ़ान के क़बीलों (बनू-सुलैम, फ़ज़ारा, मुर्रा, अशजअ, सअद और असद वग़ैरा) ने पहल की और जुनूब (दक्षिण) की तरफ़ से क़ुरैश अपने उन साथियों की एक भारी फ़ौज लेकर आगे बढ़े जिनसे उनका समझौता था। कुल मिलाकर उनकी तादाद दस-बारह हज़ार थी।

यह हमला अगर अचानक होता तो सख़्त तबाह करनेवाला होता। लेकिन नबी (सल्ल॰) मदीना तय्यिबा में बेख़बर बैठे हुए न थे, बल्कि आप (सल्ल॰) के ख़बर देनेवाले और इस्लामी तहरीक (आन्दोलन) के हमदर्द और उससे मुतास्सिर जो तमाम क़बीलों में मौजूद थे, आप (सल्ल॰) को दुश्मनों की नक़्लो-हरकत (गतिविधियों) की ख़बर बराबर देते रहते थे।[1] इससे पहले कि यह ज़बरदस्त भीड़ आप (सल्ल॰) के शहर पहुँचती, आप (सल्ल॰) ने

1. यह क़ौमपरस्त जत्थों के मुक़ाबले में एक नज़रियाती तहरीक (वैचारिक आन्दोल) की बड़ाई की एक अहम वजह होती है। क़ौमपरस्त जत्थों का दारोमदार सिर्फ़ अपनी क़ौम के लोगों की मदद और हिमायत पर होता है। लेकिन एक उसूली और नज़रियाती तहरीक अपनी दावत से हर सिम्त (दिशा) में बढ़ती है और ख़ुद उन जत्थों के अन्दर से अपने हिमायती निकाल लाती है।

छह दिन के अन्दर मदीना के पूरब की तरफ़ एक ख़न्दक़ (खाई) खुदवा ली और सलूअ पहाड़ को पीछे लेकर तीन हज़ार फ़ौज के साथ ख़न्दक़ की पनाह में बचाव करने के लिए तैयार हो गए। मदीना के जुनूब (दक्षिण) में बाग़ इतने ज़्यादा थे (और अब भी हैं) कि इस तरफ़ से कोई हमला उसपर न हो सकता था। पूरब में हर्रात (लावे की चट्टानें) हैं जिनपर से कोई इजतिमाई फ़ौजकशी आसानी के साथ नहीं हो सकती। यही कैफ़ियत मग़रिबी-जुनूबी (दक्षिण-पश्चिमी) इलाक़े की भी है। इसलिए हमला सिर्फ़ उहुद के पूरबी और मग़रिबी इलाक़ों से हो सकता था और इसी तरफ़ नबी (सल्ल०) ने ख़न्दक़ खुदवाकर शहर को महफ़ूज़ कर लिया था। यह चीज़ सिरे से इस्लाम-दुश्मनों के जंगी नक़्शे में थी ही नहीं कि उन्हें मदीना के बाहर ख़न्दक़ से वास्ता पेश आएगा, क्योंकि अरबवाले बचाव के इस तरीक़े से अनजान थे। मजबूर होकर उन्हें जाड़े के ज़माने में एक लम्बी घेराबन्दी के लिए तैयार होना पड़ा, जिसके लिए वे घरों से तैयार होकर न आए थे।

इसके बाद इस्लाम-दुश्मनों के लिए सिर्फ़ एक तदबीर बाक़ी रह गई थी और वह यह कि बनी-क़ुरैज़ा के यहूदी क़बीले को ग़द्दारी पर आमादा करें जो मदीना के जुनूबी (दक्षिणी) किनारे में रहता था। चूँकि इस क़बीले से मुसलमानों का बाक़ायदा समझौता था जिसके मुताबिक़ मदीना पर हमला होने की सूरत में वह मुसलमानों के साथ मिलकर बचाव करने का पाबन्द था, इसलिए मुसलमानों ने इस तरफ़ से बेफ़िक्र होकर अपने बाल-बच्चे उन गढ़ियों में भिजवा दिए थे जो बनी-क़ुरैज़ा की तरफ़ थीं और उधर बचाव का कोई इन्तिज़ाम न किया था। इस्लाम-दुश्मनों ने इस्लामी बचाव के इस कमज़ोर पहलू को भाँप लिया। उनकी तरफ़ से बनी-नज़ीर का यहूदी सरदार हुयई-बिन-अख़्तब बनी-क़ुरैज़ा के पास भेजा गया, ताकि उन्हें समझौता तोड़कर जंग में शामिल होने पर आमादा करे। शुरू में उन्होंने इससे इनकार किया और साफ़-साफ़ कह दिया कि हमारा मुहम्मद (सल्ल०) से समझौता है और आज तक कभी हमें उनसे कोई शिकायत पैदा नहीं हुई है। लेकिन इब्ने-अख़्तब ने उनसे कहा कि "देखो, मैं इस वक़्त अरब की सारी ताक़त इसपर चढ़ा लाया हूँ, यह उसे ख़त्म कर देने का बड़ा अच्छा मौक़ा है, इसको अगर तुमने खो दिया तो फिर दूसरा कोई मौक़ा न मिल सकेगा," तो यहूदी इस्लाम-दुश्मनी में अख़्लाक़ का ख़याल न रख सके और बनी-क़ुरैज़ा समझौता तोड़ने पर तैयार हो गए।

नबी (सल्ल०) इस मामले से भी बेख़बर न थे। आप (सल्ल०) को वक़्त रहते इसकी ख़बर मिल गई और आप (सल्ल०) ने फ़ौरन अनसार के सरदारों (सअद-बिन-उबादा, सअद-बिन-मुआज़, अब्दुल्लाह-बिन-रवाहा और ख़व्वात-बिन-जुबैर) को उनके पास सच्चाई का पता लगाने और समझाने-बुझाने के लिए भेजा। चलते वक़्त आप (सल्ल०) ने उनको

हिदायत की कि अगर बनी-क़ुरैज़ा समझौते पर क़ायम रहें तो आकर सारे लश्कर के सामने खुल्लम-खुल्ला यह ख़बर सुना देना। लेकिन अगर वे समझौता तोड़ने पर अड़े हों तो सिर्फ़ मुझको इशारे से इसकी ख़बर दे देना, ताकि आम मुसलमान यह बात सुनकर हिम्मत न हार जाएँ। ये लोग वहाँ पहुँचे तो बनी-क़ुरैज़ा को पूरी शरारत पर आमादा पाया और उन्होंने साफ़-साफ़ उनसे कह दिया कि "हमारे और मुहम्मद के बीच कोई अहद और समझौता नहीं है।" इस जवाब को सुनकर वे इस्लामी लश्कर में वापस आए और इशारे से नबी (सल्ल॰) से अर्ज़ कर दिया कि क़बीला अज़ल वक़ारा ने रजीअ के मक़ाम पर इस्लाम की तबलीग़ करनेवालों से जो ग़द्दारी की थी, वही कुछ अब बनी-क़ुरैज़ा कर रहे हैं।

यह ख़बर बहुत जल्दी मदीना के मुसलमानों में फैल गई और उनके अन्दर इससे सख़्त बेचैनी पैदा हो गई, क्योंकि अब वे दोनों तरफ़ से घेरे में आ गए थे और उनके शहर का वह हिस्सा ख़तरे में पड़ गया था जिधर बचाव का भी कोई इन्तिज़ाम न था और सबके बाल-बच्चे भी उसी तरफ़ थे। इसपर मुनाफ़िक़ों की सरगर्मियाँ और तेज़ हो गईं और उन्होंने ईमानवालों की हिम्मत तोड़ने के लिए तरह-तरह के नफ़सियाती (मनोवैज्ञानिक) हमले शुरू कर दिए। किसी ने कहा कि "हमसे वादा तो क़ैसर और किसरा के देश जीत लेने के किए जा रहे थे और हाल यह है कि पाख़ाना-पेशाब के लिए भी नहीं निकल सकते।" किसी ने यह कहकर ख़न्दक़ के मोर्चे से रुख़सत माँगी कि अब तो हमारे घर ही ख़तरे में पड़ गए हैं, हमें जाकर उनकी हिफ़ाज़त करनी है। किसी ने यहाँ तक ख़ुफ़िया प्रोपेगण्डा शुरू कर दिया कि हमला करनेवालों से अपना मामला दुरुस्त कर लो और मुहम्मद (सल्ल॰) को उनके हवाले कर दो। यह ऐसी सख़्त आज़माइश का वक़्त था जिसमें हर उस आदमी का पर्दाफ़ाश हो गया जिसके दिल में ज़र्रा बराबर भी 'निफ़ाक़' (इस्लाम से कपट) मौजूद था। सिर्फ़ सच्चे और मुख़लिस ईमानवाले ही थे जो इस कड़े वक़्त में भी क़ुरबान होने के अपने पुख़्ता इरादे पर जमे रहे।

नबी (सल्ल॰) ने इस नाज़ुक मौक़े पर बनी-ग़तफ़ान से सुलह (सन्धि) की बातचीत शुरू की और उनको इस बात पर आमादा करना चाहा कि मदीना के फलों की पैदावार का 1/3 हिस्सा लेकर वापस चले जाएँ, लेकिन जब अनसार के सरदारों (सअद-बिन-उबादा और सअद-बिन-मुआज़) से आप (सल्ल॰) ने सुलह की इन शर्तों के बारे में मशवरा माँगा तो उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! यह आपकी ख़ाहिश है कि हम ऐसा करें? या अल्लाह का हुक्म है कि हमारे लिए इसे क़बूल करने के सिवा कोई चारा नहीं है? या आप सिर्फ़ हमें बचाने के लिए यह मशवरा दे रहे हैं?" आप (सल्ल॰) ने

जवाब दिया, "मैं सिर्फ़ तुम लोगों को बचाने के लिए ऐसा कर रहा हूँ, क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि सारा अरब एकजुट होकर तुमपर पिल पड़ा है, मैं चाहता हूँ कि इनको एक-दूसरे से तोड़ दूँ।" इसपर दोनों सरदारों ने एकराय होकर कहा, "अगर आप हमारी ख़ातिर यह समझौता कर रहे हैं तो इसे ख़त्म कर दीजिए। ये क़बीले हमसे उस वक़्त भी एक दाना टैक्स के तौर पर कभी न ले सके थे, जब हम मुशरिक थे और अब तो अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाने की ख़ुशनसीबी हमें हासिल है, क्या अब ये हमसे टैक्स लेंगे? हमारे और उनके दरमियान अब सिर्फ़ तलवार है, यहाँ तक कि अल्लाह हमारा और उनका फ़ैसला कर दे।" यह कहकर उन्होंने समझौते के उस मुसव्वदे को फाड़ दिया जिसपर अभी दोनों तरफ़ के लागों के दस्तख़त न हुए थे।

इसी दौरान में ग़तफ़ान क़बीले की शाखा अशजअ के एक साहब नुऐम-बिन-मसऊद मुसलमान होकर नबी (सल्ल॰) के पास हाज़िर हुए और अर्ज़ किया कि "अभी तक किसी को भी मेरे इस्लाम क़बूल करने के बारे में पता नहीं है, आप मुझसे इस वक़्त जो ख़िदमत लेना चाहें, मैं उसे कर सकता हूँ।" नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "तुम जाकर दुश्मनों में फूट डालने की कोई तदबीर करो।"[1] चुनाँचे वे पहले बनी-क़ुरैज़ा के पास गए जिनसे उनका बहुत मेल-जोल था और उनसे कहा कि क़ुरैश और ग़तफ़ान तो घेराबन्दी से तंग आकर वापस भी जा सकते हैं, उनका कुछ न बिगड़ेगा, मगर तुम्हें मुसलमानों के साथ इसी जगह रहना है, वे लोग अगर चले गए तो तुम्हारा क्या बनेगा? मेरी राय यह है कि तुम उस वक़्त तक जंग में हिस्सा न लो जब तक इन बाहर से आए हुए क़बीलों के कुछ नुमायाँ आदमी तुम्हारे पास यरग़माल (वह शख़्स या लोग जो शर्तों की पाबन्दी की ज़मानत में दुश्मन के हवाले किए जाएँ) के तौर पर न भेज दिए जाएँ। यह बात बनी-क़ुरैज़ा के दिल में उतर गई और उन्होंने मुत्तहिदा मुहाज़ (संयुक्त मोर्चा) के क़बीलों से यरग़माल माँगने का फ़ैसला कर लिया। फिर यह साहब क़ुरैश और ग़तफ़ान के सरदारों के पास गए और उनसे कहा कि बनी-क़ुरैज़ा कुछ ढीले पड़ते दिखाई दे रहे हैं, नामुमकिन नहीं कि वे तुमसे यरग़माल के तौर पर कुछ आदमी माँगें और उन्हें मुहम्मद (सल्ल॰) के हवाले करके अपना मामला साफ़ कर लें। इसलिए ज़रा उनसे होशियारी से मामला करना। इससे मुत्तहिदा मुहाज़ (संयुक्त मोर्चा) के लीडर बनी-क़ुरैज़ा की तरफ़ से खटक गए और उन्होंने क़ुरज़ी सरदारों को पैग़ाम भेजा कि इस लम्बी घेराबन्दी से अब हम तंग आ गए हैं, अब एक फ़ैसला चुका देनेवाली लड़ाई हो जानी चाहिए, कल तुम

1. इस मौक़े पर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया था 'अल-हर्बु ख़दअतुन' यानी "जंग में धोखा देना जाइज़ है।"

उधर से हमला करो और हम इधर से एकबार में मुसलमानों पर टूट पड़ते हैं। बनी-क़ुरैज़ा ने जवाब में कहला भेजा कि आप लोग जब तक अपने कुछ नुमायाँ आदमी यरग़माल के तौर पर हमारे हवाले न कर दें, हम जंग का ख़तरा मोल नहीं ले सकते। इस जवाब से इन लीडरों को यक़ीन आ गया कि नुऐम की बात सच्ची थी। उन्होंने यरग़माल देने से इनकार कर दिया और उससे बनी-क़ुरैज़ा ने समझ लिया कि नुऐम ने हमको ठीक मशवरा दिया था। इस तरह यह जंगी चाल बहुत कामयाब साबित हुई और उसने दुश्मनों के कैम्प में फूट डाल दी।

अब घेराबन्दी को 25 दिन से ज़्यादा वक़्त बीत चुका था। सर्दी का ज़माना था। इतने बड़े लश्कर के लिए पानी और खाने और जानवरों के चारे का इन्तिज़ाम होना भी मुश्किल-से-मुश्किल होता जा रहा था और फूट पड़ जाने से भी घेराबन्दी करनेवालों की हिम्मतें टूट चुकी थीं। इस हालत में एकाएक एक रात सख़्त आँधी आई जिसमें सर्दी और कड़क और चमक थी और इतना अंधेरा था कि हाथ को हाथ न सुझाई देता था। आँधी के ज़ोर से दुश्मनों के ख़ेमे उलट गए और उनके अन्दर सख़्त खलबली मच गई। अल्लाह की क़ुदरत का यह गहरा वार वे सह न सके। रातों-रात हर एक ने अपने घर की राह ली और सुबह जब मुसलमान उठे तो मैदान में एक दुश्मन भी मौजूद न था। नबी (सल्ल॰) ने मैदान को दुश्मनों से ख़ाली देखकर फ़ौरन फ़रमाया, “अब क़ुरैश के लोग तुमपर कभी चढ़ाई न कर सकेंगे। अब तुम उनपर चढ़ाई करोगे।” ये हालात का बिलकुल सही अन्दाज़ा था। क़ुरैश ही नहीं, सारे दुश्मन क़बीले एकजुट होकर इस्लाम के ख़िलाफ़ अपना आख़िरी दाँव चल चुके थे। उसमें हार जाने के बाद अब उनमें यह हिम्मत बाक़ी न रही थी कि मदीना पर हमला करने की हिम्मत कर सकते। अब हमले (Offensive) की क़ुव्वत दुश्मनों से मुसलमानों की तरफ़ आ चुकी थी।

बनी-क़ुरैज़ा की जंग

ख़न्दक़ से पलटकर जब नबी (सल्ल॰) घर पहुँचे तो ज़ुहर के वक़्त जिबरील (अलैहि॰) ने आकर हुक्म सुनाया कि अभी हथियार न खोले जाएँ, बनी-क़ुरैज़ा का मामला अभी बाक़ी है, उनसे भी इसी वक़्त निबट लेना चाहिए। यह हुक्म पाते ही नबी (सल्ल॰) ने फ़ौरन एलान फ़रमाया कि “जो कोई सुनने और हुक्म मानने पर क़ायम हो वह अस्र की नमाज़ उस वक़्त तक न पढ़े जब तक बनी-क़ुरैज़ा के ठिकाने पर न पहुँच जाए।” इस एलान के साथ ही आप (सल्ल॰) ने हज़रत अली (रज़ि॰) को एक टुकड़ी के साथ फ़ौज के सिपह-सालार के तौर पर बनी-क़ुरैज़ा की तरफ़ रवाना कर दिया। वे जब

वहाँ पहुँचे तो यहूदियों ने कोठों पर चढ़कर नबी (सल्ल॰) और मुसलमानों पर गालियों की बौछार कर दी। लेकिन यह बदज़बानी उनको इस बड़े जुर्म के बुरे अंजाम से कैसे बचा सकती थी कि उन्होंने ठीक लड़ाई के वक़्त समझौता तोड़ डाला और हमला करनेवालों से मिलकर मदीना की पूरी आबादी को तबाही के ख़तरे में डाल दिया। हज़रत अली (रज़ि॰) की टुकड़ी को देखकर वे समझे थे कि ये सिर्फ़ धमकाने आए हैं। लेकिन जब नबी (सल्ल॰) की सरबराही में पूरा इस्लामी लश्कर वहाँ पहुँच गया और उनकी बस्ती की घेराबन्दी कर ली गई तो उनके हाथों के तोते उड़ गए। घेराबन्दी की सख़्ती को वे दो-तीन हफ़्तों से ज़्यादा बरदाश्त न कर सके और आख़िरकार उन्होंने इस शर्त पर अपने आपको नबी (सल्ल॰) के हवाले कर दिया कि औस क़बीले के सरदार सअद-बिन-मुआज़ (रज़ि॰) उनके हक़ में जो भी फ़ैसला कर देंगे, उसे दोनों तरफ़ के लोग मान लेंगे। उन्होंने हज़रत सअद (रज़ि॰) को इस उम्मीद पर हकम (फ़ैसला करनेवाला) बनाया था कि जाहिलियत के ज़माने में औस और बनी-क़ुरैज़ा के बीच जो समझौते से बने ताल्लुक़ात मुद्दतों से चले आ रहे थे, वे उनका लिहाज़ करेंगे और उन्हें भी उसी तरह मदीना से निकल जाने देंगे जिस तरह पहले बनी-क़ैनुक़ाअ और बनी-नज़ीर को निकल जाने दिया था। ख़ुद औस क़बीले के लोग भी हज़रत सअद (रज़ि॰) से माँग कर रहे थे कि उन लोगों के साथ नर्मी बरतें, जिनसे उनका समझौता है। लेकिन हज़रत सअद (रज़ि॰) अभी-अभी देख चुके थे कि पहले जिन दो यहूदी क़बीलों को मदीना से निकल जाने का मौक़ा दिया गया था, वे किस तरह सारे आस-पास के क़बीलों को भड़काकर मदीना पर दस-बारह हज़ार का लश्कर चढ़ा लाए थे और यह मामला भी उनके सामने था कि इस आख़िरी यहूदी क़बीले ने ठीक बाहरी हमले के मौक़े पर समझौते की ख़िलाफ़वर्ज़ी करके मदीनावालों को तबाह कर देने का क्या सामान किया था। इसलिए उन्होंने फ़ैसला दिया कि बनी-क़ुरैज़ा के तमाम मर्द क़त्ल कर दिए जाएँ औरतों और बच्चों को ग़ुलाम बना लिया जाए और उनकी तमाम जायदादें मुसलमानों में बाँट दी जाएँ। इस फ़ैसले पर अमल किया गया और जब बनी-क़ुरैज़ा की गढ़ियों में मुसलमान दाख़िल हुए तो उन्हें पता चला कि अहज़ाब की जंग में हिस्सा लेने के लिए इन ग़द्दारों ने पन्द्रह सौ तलवारें, तीन सौ ज़िरहें (कवच), दो हज़ार भाले और पन्द्रह सौ ढालें अपने पास जमा कर रखी थीं। अगर अल्लाह की मदद मुसलमानों के साथ न होती तो ये सारा जंगी सामान ठीक उस वक़्त मदीना पर पीछे से हमला करने के लिए इस्तेमाल होता जबकि मुशरिक एक साथ ख़न्दक़ पार करके टूट पड़ने की तैयारियाँ कर रहे थे। इस बात के खुल जाने के बाद तो इस बात में शक करने की कोई गुंजाइश ही न रही कि हज़रत सअद (रज़ि॰) ने

उन लोगों के मामले में जो फ़ैसला दिया, वह बिलकुल सही था।

सामाजिक सुधार

उहुद की जंग और अहज़ाब की जंग के बीच दो साल का यह ज़माना अगरचे ऐसे हंगामों का ज़माना था जिनकी बदौलत नबी (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के सहाबा को एक दिन के लिए भी अम्न और इत्मीनान न मिल सका। लेकिन इस पूरी मुद्दत में नए मुस्लिम-समाज की तामीर और हर पहलू में ज़िन्दगी के सुधार का काम बराबर जारी रहा। यही ज़माना था जिसमें मुसलमानों के निकाह और तलाक़ के बारे में क़ानून मुकम्मल हो गए, विरासत का क़ानून बना, शराब और जुए को हराम किया गया और मईशत (अर्थव्यवस्था) और सामाजिकता के दूसरे बहुत-से पहलुओं में नए क़ानून लागू किए गए।

इस सिलसिले का एक अहम मामला जो सुधार की माँग कर रहा था, 'तबनियत' (गोद लेने या बेटा बनाने) का मामला था। अरब के लोग जिस बच्चे को गोद लेकर बेटा बना लेते थे, वह बिलकुल उनकी सगी औलाद की तरह समझा जाता था। उसे विरासत मिलती थी। इससे मुँह बोली माँ और मुँह बोली बहनें उसी तरह घुली-मिली रहती थीं जिस तरह सगे बेटे और भाई से घुलती-मिलती हैं। इसके साथ मुँह बोले बाप की बेटियों का और उसके बाप के मर जाने के बाद उसकी बेवा का निकाह उसी तरह नाजाइज़ समझा जाता था जिस तरह सगी बहन और सगी माँ के साथ किसी का निकाह हराम होता है और यही मामला इस सूरत में भी किया जाता था जब मुँह बोला बेटा मर जाए या अपनी बीवी को तलाक़ दे दे। मुँह बोले बाप के लिए वह औरत सगी बहू की तरह समझी जाती थी। यह रस्म क़दम-क़दम पर निकाह और तलाक़ और विरासत के उन क़ानूनों से टकराती थी जो अल्लाह तआला ने सूरा-2 बक़रा और सूरा-4 निसा में मुक़र्रर किए थे। उनके मुताबिक़ जो लोग हक़ीक़त में विरासत के हक़दार थे, यह रस्म उनका हक़ मारकर एक ऐसे शख़्स को दिलवाती थी जो सिरे से कोई हक़ न रखता था। उनके मुताबिक़ जिन औरतों और मर्दों के बीच निकाह का रिश्ता जाइज़ था, यह रस्म उनके आपसी निकाह को हराम करती थी और सबसे ज़्यादा यह कि इस्लामी क़ानून जिन अख़लाक़ी बुराइयों को मिटाना चाहता था, यह रस्म उनके फैलने में मददगार थी। क्योंकि रस्म के तौर पर मुँह बोले रिश्ते को चाहे कितना ही पाक-साफ़ बना दिया जाए, बहरहाल मुँह बोली माँ, मुँह बोली बहन और मुँह बोली बेटी सगी माँ, बहन और बेटी की तरह नहीं हो सकतीं। इन बनावटी रिश्तों की रस्मी पाकीज़गी पर भरोसा करके मर्दों और

औरतों के बीच जब सगे रिश्तेदारों का-सा घुलना-मिलना हो तो वे बुरे नतीजे पैदा किए बिना नहीं रह सकते। इन वजहों से निकाह और तलाक़ के इस्लामी क़ानून, विरासत के क़ानून और ज़िना (व्यभिचार) के हराम होने के क़ानून का यह तक़ाज़ा था कि मुँह बोले बेटे को सगी औलाद की तरह समझने के ख़याल को बिलकुल जड़ से मिटा दिया जाए।

लेकिन मुँह बोले रिश्ते के बारे में जो बात राइज थी, वह सिर्फ़ एक क़ानूनी हुक्म के तौर पर इतनी-सी बात कह देने से ख़त्म नहीं हो सकती थी कि "मुँह बोला रिश्ता कोई हक़ीक़ी रिश्ता नहीं है।" सदियों के जमे हुए तास्सुबात (पक्षपात) और अंधविश्वास सिर्फ़ बातों से नहीं बदल जाते। हुक्म के तौर पर लोग इस बात को मान भी लेते कि ये रिश्ते हक़ीक़ी रिश्ते नहीं हैं, फिर भी मुँह बोली माँ और मुँह बोले बेटे के बीच, मुँह बोले भाई और बहन के बीच, मुँह बोले बाप और बेटी के बीच, मुँह बोले ससुर और बहू के बीच निकाह को लोग मकरूह (नापसन्दीदा) ही समझते रहते। इसके अलावा उनके बीच घुलना-मिलना भी कुछ-न-कुछ बाक़ी रह जाता। इसलिए बहुत ज़रूरी था कि यह रस्म अमली तौर पर तोड़ी जाए और अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ख़ुद इसको तोड़ें, क्योंकि जो काम नबी (सल्ल॰) ने ख़ुद किया हो और अल्लाह के हुक्म से किया हो, उसके बारे में किसी मुसलमान के ज़ेहन में नापसन्दीदा होने का ख़याल बाक़ी न रह सकता था। इसी वजह से अहज़ाब की जंग से कुछ पहले नबी (सल्ल॰) को अल्लाह तआला की तरफ़ से इशारा किया गया कि आप अपने मुँह बोले बेटे ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰) की तलाक़शुदा बीवी से ख़ुद निकाह कर लें, और इस हुक्म पर अमल आप (सल्ल॰) ने बनी-क़ुरैज़ा की घेराबन्दी के ज़माने में किया। (शायद देर की वजह यह थी कि इद्दत ख़त्म होने का इन्तिज़ार था और इसी दौरान में आप (सल्ल॰) को जंगी कामों में लग जाना पड़ा था)।

ज़ैनब (रज़ि॰) से निकाह पर प्रोपेगण्डे का तूफ़ान

यह काम होना था कि नबी (सल्ल॰) के ख़िलाफ़ प्रोपेगण्डे का एक तूफ़ान एकदम उठ खड़ा हुआ। मुशरिक, मुनाफ़िक़ और यहूदी सब आप (सल्ल॰) की एक के बाद एक कामयाबियों से जले बैठे थे। उहुद के बाद अहज़ाब और बनी-क़ुरैज़ा तक दो साल की मुद्दत में जिस तरह वे नुक़सान-पर-नुक़सान उठाते चले गए थे, उसकी वजह से उनके दिलों में आग लग रही थी। वे इस बात से भी मायूस हो चुके थे, कि अब वे खुले मैदान में लड़कर कभी आप (सल्ल॰) को हरा सकेंगे। इसलिए उन्होंने इस निकाह के मामले को अपने लिए ख़ुदा का दिया एक मौक़ा समझा और सोचा कि अब हम मुहम्मद (सल्ल॰) की उस अख़लाक़ी बरतरी (श्रेष्ठता) को ख़त्म कर सकेंगे जो उनकी ताक़त और उनकी

कामयाबियों का अस्ल राज़ है। चुनाँचे ये कहानियाँ तराशी गईं कि (अल्लाह की पनाह) मुहम्मद (सल्ल॰) बहू को देखकर आशिक़ हो गए थे, बेटे को इस लगाव का पता चल गया, उसने बीवी को तलाक़ दे दी और आप (सल्ल॰) ने उसके बाद बहू से ब्याह रचा लिया, हालाँकि यह बात बिलकुल बेबुनियाद थी। हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) की फुफेरी बहन थीं। बचपन से जवानी तक उनकी सारी उम्र आप (सल्ल॰) के सामने गुज़री थी। किसी वक़्त उनको देखकर आशिक़ हो जाने का सवाल ही कहाँ पैदा होता था। फिर आप (सल्ल॰) ने ख़ुद ज़िद करके हज़रत ज़ैद (रज़ि॰) से उनका निकाह कराया था। उनका सारा ख़ानदान इसपर राज़ी न था कि क़ुरैश के इतने ऊँचे घराने की लड़की एक आज़ाद किए हुए ग़ुलाम से ब्याही जाए। ख़ुद हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) भी इस रिश्ते से नाख़ुश थीं। मगर नबी (सल्ल॰) के हुक्म से सब मजबूर हो गए और हज़रत ज़ैद (रज़ि॰) के साथ उनकी शादी करके अरब में इस बात की पहली मिसाल पेश कर दी गई कि इस्लाम एक आज़ाद किए हुए ग़ुलाम को उठाकर क़ुरैश के इज़्ज़तदार लोगों के बराबर ले आया है। अगर सचमुच नबी (सल्ल॰) का कोई रुझान हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) की तरफ़ होता तो ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰) से उनका निकाह करने की ज़रूरत ही क्या थी, आप ख़ुद उनसे निकाह कर सकते थे। लेकिन मुख़ालफ़त करनेवाले बेशर्म लोगों ने इन सारी हक़ीक़तों के मौजूद होते हुए यह इश्क़ की कहानियाँ गढ़ीं, ख़ूब नमक-मिर्च लगा-लगाकर उनको फैलाया और उस प्रोपेगण्डे का सूर ज़ोर से फूँका कि ख़ुद मुसलमानों के अन्दर भी उनकी गढ़ी हुई रिवायतें फैल गईं।

परदे के इबतिदाई हुक्म

यह बात कि दुश्मनों की गढ़ी हुई ये कहानियाँ मुसलमानों की ज़बानों पर चढ़ने से भी न रुकीं, इस बात की खुली निशानी थी कि समाज में शहवानियत (कामुकता) हद से ज़्यादा बढ़ी हुई थी। यह ख़राबी अगर मौजूद न होती तो मुमकिन न था कि ज़ेहन ऐसी पाक हस्ती के बारे में ऐसे बेसिर-पैर की और इतनी ज़्यादा घिनौनी कहानियों की तरफ़ ज़र्रा बराबर भी ध्यान देते, कहाँ यह कि ज़बानें उनको दोहराने लगतीं। यह ठीक मौक़ा था जबकि इस्लामी समाज में उन इस्लाही हुक्मों के लागू करने की शुरुआत की गई जो 'हिजाब' (परदे) के उनवान से बयान किए जाते हैं। इन सुधार के कामों की शुरुआत इस सूरा से की गई और एक साल बाद सूरा-24 नूर में इनको पूरा किया गया, जबकि हज़रत आइशा (रज़ि॰) पर बुहतान का फ़ितना खड़ा हुआ। (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए— सूरा-24 नूर, परिचय)।

नबी (सल्ल॰) की घरेलू ज़िन्दगी के मामले

इसी ज़माने में दो मसले और भी ध्यान देने लायक़ थे। अगरचे बज़ाहिर इनका ताल्लुक़ नबी (सल्ल॰) की घरेलू ज़िन्दगी से था, मगर जो हस्ती अपनी जान अल्लाह के दीन को परवान चढ़ाने के लिए खपा रही थी और पूरी तरह इस बड़े काम में लगी थी, उसके लिए घरेलू ज़िन्दगी का सुकून जुटाना और उसको परेशानियों से बचाना और उसको लोगों के शक-शुबहों से बचाए रखना भी ख़ुद दीन ही के फ़ायदे के लिए ज़रूरी था। इसलिए अल्लाह तआला ने सरकारी तौर पर इन दोनों मसलों को भी अपने हाथ में ले दिया।

पहला मसला यह था कि नबी (सल्ल॰) उस वक़्त माली हैसियत से इन्तिहाई तंगहाल थे। इबतिदाई चार साल तक तो आप (सल्ल॰) का आमदनी का कोई ज़रिआ था ही नहीं। 4 हिजरी में बनी-नज़ीर की जलावतनी के बाद उनकी छोड़ी हुई ज़मीनों का एक हिस्सा अल्लाह तआला के हुक्म से आप (सल्ल॰) की ज़रूरतों के लिए ख़ास कर दिया गया। मगर वह आप (सल्ल॰) के ख़ानदान के लिए काफ़ी न था। इधर पैग़म्बरी के मंसब की ज़िम्मेदारियाँ इतनी भारी थीं कि वे आप (सल्ल॰) के जिस्म और दिलो-दिमाग़ की सारी ताक़तें और आप (सल्ल॰) के वक़्तों का एक-एक लम्हा निचोड़े डाल रही थीं और आप (सल्ल॰) अपनी रोज़ी और आमदनी के लिए ज़र्रा बराबर भी कोई फ़िक्र या कोशिश न कर सकते थे। इन हालात में जब आप (सल्ल॰) की पाक बीवियाँ ख़र्च की तंगी की वजह से आप (सल्ल॰) के मन के सुकून में दख़लअन्दाज़ होती थीं तो इससे आप (सल्ल॰) के ज़ेहन पर दोहरा बोझ पड़ जाता था।

दूसरा मसला यह था कि हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) के साथ निकाह करने से पहले आप (सल्ल॰) की चार बीवियाँ मौजूद थीं— हज़रत सौदा (रज़ि॰), हज़रत आइशा (रज़ि॰), हज़रत हफ़सा (रज़ि॰) और हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि॰)। उम्मुल-मोमिनीन हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) आप (सल्ल॰) की पाँचवीं बीवी थीं। इसपर मुख़ालफ़त करनेवालों ने यह एतिराज़ उठाया और मुसलमानों के दिलों में भी इससे शक-शुबहे उभरने लगे कि दूसरों के लिए तो एक वक़्त में चार से ज़्यादा बीवियाँ रखना मना कर दिया गया है, मगर ख़ुद नबी (सल्ल॰) ने यह पाँचवीं बीवी कैसे कर ली।

मौज़ू (विषय) और बहसें

ये मसले थे जो सूरा-33 अहज़ाब के ज़माने में पेश आए थे और इन्हीं पर इस सूरा में बात की गई है।

इसके मज़मूनों पर ग़ौर करने और पसमंज़र को निगाह में रखने से साफ़ मालूम होता है कि यह पूरी सूरा एक तक़रीर नहीं है जो एक ही वक़्त उतरी हो, बल्कि इसमें बहुत-से हुक्म और तक़रीरें हैं जो उस ज़माने के अहम वाक़िआत के सिलसिले में एक के बाद एक करके उतरे और फिर एक जगह जमा करके एक सूरा की शक्ल में तरतीब दे दिए गए। उसके नीचे दिए गए हिस्से साफ़ तौर पर अलग-अलग नज़र आते हैं—

1. पहला रुकू (आयत-1 से 8 तक) अहज़ाब की जंग से कुछ पहले का उतरा हुआ मालूम होता है। तारीख़ी पसमंज़र को निगाह में रखकर देखा जाए तो इस रुकू को पढ़ते हुए साफ़ महसूस होता है कि इसके उतरने के वक़्त हज़रत ज़ैद (रज़ि॰) हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) को तलाक़ दे चुके थे। नबी (सल्ल॰) इस ज़रूरत को महसूस कर रहे थे कि मुत्बन्ना (मुँह बोले बेटे) के बारे में जाहिलियत के ख़यालात और अंधविश्वास और रस्मों को मिटाया जाए और आप (सल्ल॰) को यह भी महसूस हो रहा था कि लोग मुँह बोले रिश्तों के मामले में सिर्फ़ जज़्बाती बुनियादों पर जिस तरह के नाज़ुक और गहरे तसव्वुरात (धारणाएँ) रखते हैं, वे उस वक़्त तक हरगिज़ न मिट सकेंगे जब तक आप (सल्ल॰) ख़ुद आगे बढ़कर इस रस्म को न तोड़ दें। लेकिन इसके साथ ही आप (सल्ल॰) इस वजह से सख़्त उलझन में थे और क़दम बढ़ाते हुए हिचकिचा रहे थे कि अगर इस मौक़े पर आप (सल्ल॰) ने हज़रत ज़ैद (रज़ि॰) की तलाक़शुदा बीवी से निकाह किया तो इस्लाम के ख़िलाफ़ हंगामा उठाने के लिए मुनाफ़िक़ों, यहूदियों और मुशरिकों को, जो पहले ही भरे बैठे हैं, एक ज़बरदस्त शोशा (मुद्दा) हाथ आ जाएगा। इस मौक़े पर पहले रुकू की आयतें उतरीं।
2. दूसरे और तीसरे रुकू (आयत 9 से 27 तक) में अहज़ाब की जंग और बनी-क़ुरैज़ा की जंग पर तबसिरा (समीक्षा) किया गया है। यह इस बात की खुली निशानी है कि ये दोनों रुकू इन लड़ाइयों के बाद उतरे हैं।
3. चौथे रुकू के शुरू (आयत-28 से आयत-35 तक) की तक़रीर में दो बातें कही गई हैं। पहले हिस्से में नबी (सल्ल॰) की बीवियों को, जो उस माली तंगी के ज़माने में बेसब्र हो रही थीं, अल्लाह तआला ने नोटिस दिया है कि दुनिया और उसकी रंगीनियों और ख़ुदा, रसूल और आख़िरत में से किसी एक को चुन लो। अगर तुम्हें पहली चीज़ चाहिए है तो साफ़ कह दो, तुम्हें एक दिन के लिए भी तंगी में मुब्तला न रखा जाएगा, बल्कि ख़ुशी से रुख़सत कर दिया जाएगा और अगर दूसरी चीज़ पसन्द है तो सब्र के साथ अल्लाह और उसके रसूल का साथ दो। दूसरे हिस्से में उस सामाजिक सुधार की तरफ़ पहला क़दम उठाया गया है जिसकी ज़रूरत इस्लाम

के साँचे में ढले हुए ज़ेहन अब ख़ुद महसूस करने लगे थे। इस सिलसिले में सुधार की इब्तिदा नबी (सल्ल॰) के घर से करते हुए आप (सल्ल॰) की पाक बीवियों को हुक्म दिया गया कि जाहिलियत के ज़माने की सज-धज से परहेज़ करें, वक़ार (गरिमा और इज़्ज़त) के साथ अपने घरों में बैठें और ग़ैर-मर्दों के साथ बातचीत करने में बहुत एहतियात (सावधानी) बरतें। ये परदे के हुक्मों की शुरुआत थी।

4. आयत 36 से 48 तक का मज़मून (विषय) हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) के साथ नबी (सल्ल॰) के निकाह के सिलसिले में है। इसमें उन तमाम एतिराज़ों का जवाब दिया गया है जो मुख़ालिफ़त करनेवालों की तरफ़ से इस निकाह पर किए जा रहे थे। उन तमाम शक-शुबहों को दूर किया गया है जो मुसलमानों के दिलों में डालने की कोशिश की जा रही थी। मुसलमानों को बताया गया है कि नबी (सल्ल॰) का मर्तबा और मक़ाम क्या है और ख़ुद नबी (सल्ल॰) को इस्लाम के इनकारियों और मुनाफ़िक़ों के झूठे प्रोपेगण्डे पर सब्र की नसीहत की गई है।
5. आयत-49 में तलाक़ के क़ानून की एक दफ़ा (धारा) बयान हुई है। यह एक बिलकुल अलग आयत है जो शायद इन्हीं वाक़िआत के सिलसिले में किसी मौक़े पर उतरी थी।
6. आयत-50 से 52 तक में नबी (सल्ल॰) के लिए निकाह का ख़ास ज़ाब्ता बयान किया गया है। इसमें यह बात बयान कर दी गई कि नबी (सल्ल॰) उन कई पाबन्दियों से अलग हैं जो मियाँ-बीवी के मामले में आम मुसलमानों पर लागू की गई हैं।
7. आयत-53 से 55 तक में सामाजिक सुधार का दूसरा क़दम उठाया गया। इसमें नीचे लिखे हुक्म दिए गए हैं—
   नबी (सल्ल॰) के घरों में ग़ैर-मर्दों के आने-जाने पर पाबन्दी। मुलाक़ात और दावत का क़ायदा। नबी (सल्ल॰) की पाक बीवियों के बारे में यह क़ानून कि घरों में सिर्फ़ उनके क़रीबी रिश्तेदार आ सकते हैं, बाक़ी रहे ग़ैर-मर्द, तो उन्हें अगर कोई बात कहनी हो या कोई चीज़ माँगनी हो तो परदे के पीछे से कहें या माँगें। नबी (सल्ल॰) की पाक बीवियों के बारे में यह हुक्म कि वे मुसलमानों के लिए माँ की तरह हराम (प्रतिष्ठित) हैं और नबी (सल्ल॰) के बाद भी उनमें से किसी के साथ किसी मुसलमान का निकाह नहीं हो सकता।
8. आयत-56, 57 में उन कानाफूसियों पर कड़ी चेतावनी दी गई है जो नबी (सल्ल॰) के निकाह और आप (सल्ल॰) की घरेलू ज़िन्दगी पर की जा रही थीं और ईमानवालों

को हिदायत की गई है कि वे दुश्मनों के ऐब और ख़राबियाँ निकालने के इस रवैये से अपने दामन बचाएँ और अपने नबी पर दुरूद भेजें। साथ ही यह नसीहत भी की गई है कि नबी तो बहुत दूर की बात, ईमानवालों को तो आम मुसलमानों पर भी तुहमतें और इलज़ाम (आरोप) लगाने से पूरी तरह बचना चाहिए।

9. आयत-59 में सामाजिक सुधार का तीसरा क़दम उठाया गया है। इसमें तमाम मुसलमान औरतों को यह हुक्म दिया गया है कि वे जब घरों से बाहर निकलें तो चादरों से अपने आपको ढाँककर और घूँघट डालकर निकलें।

इसके बाद आख़िर सूरा तक अफ़वाहें फैलाने की उस मुहिम (Whispering Compaign) पर सख़्त डाँट-फटकार की गई है जो मुनाफ़िक़ों, बेवक़ूफ़ों और घटिया ज़ेहनियत के लोगों ने उस वक़्त चला रखी थी।

☆☆☆

ايَاتُهَا ٧٣ ‏ ٣٣ سُورَةُ الْأَحْزَابِ مَكِّيَّةٌ ٩٠ ‏ رُكُوعَاتُهَا ٩

بِسْمِ اللهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

يٰۤاَيُّهَا النَّبِيُّ اتَّقِ اللّٰهَ وَلَا تُطِعِ الْكٰفِرِيْنَ وَالْمُنٰفِقِيْنَ ۗ اِنَّ
اللّٰهَ كَانَ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ۙ﴿۱﴾ وَّاتَّبِعْ مَا يُوْحٰۤى اِلَيْكَ مِنْ رَّبِّكَ ۗ اِنَّ اللّٰهَ

33. अल-अहज़ाब

(मक्का में उतरी--आयतें-73)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) ऐ नबी![1] अल्लाह से डरो और इनकार करनेवालों और मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) का कहना न मानो, हक़ीक़त में सब कुछ जाननेवाला और हिकमतवाला तो अल्लाह ही है।[2] (2) पैरवी करो उस बात की जिसका इशारा तुम्हारे रब की तरफ़ से तुम्हें किया जा

1. जैसा कि हम इस सूरा के परिचय में बयान कर चुके हैं, ये आयतें उस वक़्त उतरी थीं जब हज़रत ज़ैद (रज़ि॰) हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) को तलाक़ दे चुके थे। उस वक़्त नबी (सल्ल॰) ख़ुद भी यह महसूस करते थे और अल्लाह तआला का इशारा भी यही था कि मुँह बोले रिश्तों के मामले में जाहिलियत की रस्मों और अंधविश्वासों पर चोट लगाने का यह ठीक मौक़ा है। अब आप (सल्ल॰) को ख़ुद आगे बढ़कर अपने मुँह बोले बेटे (ज़ैद) की तलाक़शुदा बीवी से निकाह कर लेना चाहिए, ताकि यह रस्म पूरी तरह टूट जाए। लेकिन जिस वजह से नबी (सल्ल॰) इस मामले में क़दम उठाते हुए झिझक रहे थे, वह यह डर था कि इससे इस्लाम-दुश्मनों और मुनाफ़िक़ों को, जो पहले ही आप (सल्ल॰) की लगातार कामयाबियों से जले बैठे थे, आप (सल्ल॰) के ख़िलाफ़ प्रोपेगण्डा करने के लिए एक ज़बरदस्त हथियार मिल जाएगा। यह डर कुछ अपनी बदनामी के अन्देशे से न था, बल्कि इस वजह-से था कि इससे इस्लाम को नुक़सान पहुँचेगा, दुश्मनों के प्रोपेगण्डे से मुतास्सिर होकर बहुत-से लोग जो इस्लाम की तरफ़ झुकाव रखते हैं, बदगुमान हो जाएँगे, बहुत-से ग़ैर-जानिबदार (निष्पक्ष) लोग दुश्मनों में शामिल हो जाएँगे और ख़ुद मुसलमानों में से कमज़ोर अक़्ल और ज़ेहन के लोग शक-शुबहों में पड़ जाएँगे। इसलिए नबी (सल्ल॰) यह सोचते थे कि जाहिलियत की एक रस्म को तोड़ने की ख़ातिर ऐसा क़दम उठाना मस्लहत के ख़िलाफ़ है, जिससे इस्लाम के ज़्यादा बड़े मक़सदों को नुक़सान पहुँच जाए।
2. तक़रीर की शुरुआत करते हुए पहले ही जुमले में अल्लाह तआला ने नबी (सल्ल॰) के इन अन्देशों को दूर कर दिया। कहने का मतलब यह है कि हमारे दीन की मस्लहत किस चीज़ में

كَانَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا ۝٢ وَّتَوَكَّلْ عَلَى اللّٰهِ ؕ وَكَفٰى بِاللّٰهِ وَكِيْلًا ۝٣ مَا جَعَلَ
اللّٰهُ لِرَجُلٍ مِّنْ قَلْبَيْنِ فِيْ جَوْفِهٖ ۚ وَمَا جَعَلَ اَزْوَاجَكُمُ الّٰٓـِٔيْ تُظٰهِرُوْنَ مِنْهُنَّ

रहा है, अल्लाह हर उस बात से बाख़बर है जो तुम लोग करते हो।[3] (3) अल्लाह पर भरोसा करो, अल्लाह ही वकील होने के लिए काफ़ी है।[4]

(4) अल्लाह ने किसी के धड़ में दो दिल नहीं रखे हैं,[5] न उसने तुम लोगों की उन

है और किसमें नहीं है, इसको हम ज़्यादा जानते हैं। हमको मालूम है कि किस वक़्त क्या काम करना चाहिए और कौन-सा काम मस्लहत के ख़िलाफ़ है। इसलिए तुम वह रवैया न अपनाओ जो इस्लाम-दुश्मनों और मुनाफ़िक़ों की मर्ज़ी के मुताबिक़ हो, बल्कि वह काम करो जो हमारी मर्ज़ी के मुताबिक़ हो। डरना हम ही से चाहिए न कि इस्लाम-दुश्मन और मुनाफ़िक़ लोगों से।

3. इस जुमले में बात नबी (सल्ल॰) से भी कही गई है और मुसलमानों से भी और इस्लाम-दुश्मनों से भी। मतलब यह है कि नबी अगर अल्लाह के हुक्म पर अमल करके बदनामी का ख़तरा मोल लेगा और अपनी इज़्ज़त पर दुश्मनों के हमले सब्र के साथ बरदाश्त करेगा तो अल्लाह से उसकी यह वफ़ादारी भरी ख़िदमत छिपी न रहेगी। मुसलमानों में से जो लोग नबी की अक़ीदत (श्रद्धा) में साबित क़दम रहेंगे और जो शक-शुबहों में पड़े होंगे, दोनों ही का हाल अल्लाह से छिपा न रहेगा और इस्लाम-दुश्मन और मुनाफ़िक़ उसको बदनाम करने के लिए जो दौड़-धूप करेंगे, उससे भी अल्लाह बेख़बर न रहेगा। लिहाज़ा घबराने की कोई बात नहीं। हर एक अपने अमल के लिहाज़ से जिस इनाम या सज़ा का हक़दार होगा, वह उसे मिलकर रहेगी।

4. यह बात फिर नबी (सल्ल॰) से कही जा रही है। नबी (सल्ल॰) को हिदायत की जा रही है कि जो फ़र्ज़ तुमपर डाला गया है, उसे अल्लाह के भरोसे पर पूरा करो और सारी दुनिया भी अगर मुख़ालिफ़ हो तो उसकी परवाह न करो। जब आदमी को यक़ीन के साथ यह मालूम हो कि फ़ुलाँ हुक्म अल्लाह तआला का दिया हुआ है तो फिर उसे बिलकुल मुत्मइन हो जाना चाहिए कि सारी भलाई और मस्लहत इसी हुक्म को पूरा करने में है। इसके बाद हिकमत और मस्लहत देखना उस आदमी का अपना काम नहीं है, बल्कि उसे अल्लाह के भरोसे पर सिर्फ़ हुक्म का पालन करना चाहिए। अल्लाह इसके लिए बिलकुल काफ़ी है कि बन्दा अपने मामले उसके सिपुर्द कर दे। वह रहनुमाई के लिए भी काफ़ी है और मदद के लिए भी और वही इस बात की ज़मानत देनेवाला भी है कि उसकी रहनुमाई में काम करनेवाला आदमी कभी बुरे अंजाम से दोचार न हो।

5. यानी एक आदमी एक ही वक़्त में मोमिन और मुनाफ़िक़, सच्चा और झूठा, बदकार और नेकोकार नहीं हो सकता। उसके सीने में दो दिल नहीं हैं कि एक दिल में ख़ुलूस (निष्ठा) हो

اُمَّهٰتِكُمْ ۚ وَمَا جَعَلَ اَدْعِيَآءَكُمْ اَبْنَآءَكُمْ ۭ ذٰلِكُمْ قَوْلُكُمْ بِاَفْوَاهِكُمْ ۭ
وَاللّٰهُ يَقُوْلُ الْحَقَّ وَهُوَ يَهْدِى السَّبِيْلَ ④ اُدْعُوْهُمْ لِاٰبَآئِهِمْ هُوَ اَقْسَطُ عِنْدَ
اللّٰهِ ۚ فَاِنْ لَّمْ تَعْلَمُوْٓا اٰبَآءَهُمْ فَاِخْوَانُكُمْ فِى الدِّيْنِ وَمَوَالِيْكُمْ ۭ

बीवियों को जिनसे तुम 'ज़िहार' करते हो, तुम्हारी माँ बना दिया है[6] और न उसने तुम्हारे मुँह बोले बेटों को तुम्हारा सगा बेटा बनाया है।[7] ये तो वे बातें हैं जो तुम लोग अपने मुँह से निकाल देते हो, मगर अल्लाह वह बात कहता है जो हक़ीक़त पर मबनी (आधारित) है और वही सही तरीक़े की तरफ़ रहनुमाई करता है। (5) मुँह बोले बेटों को उनके बापों के ताल्लुक़ से पुकारो, यह अल्लाह के नज़दीक ज़्यादा इनसाफ़वाली बात है।[8] और अगर तुम्हें मालूम न हो कि उनके बाप कौन हैं तो वे तुम्हारे दीनी भाई और साथी

और दूसरे दिल में ख़ुदा से बेख़ौफ़ी। इसलिए एक वक़्त में आदमी की एक ही हैसियत हो सकती है। या तो वह मोमिन होगा या मुनाफ़िक़। या तो वह कुफ़्र करनेवाला होगा या मुस्लिम। अब तुम अगर किसी मोमिन को मुनाफ़िक़ कह दो या मुनाफ़िक़ को मोमिन तो इससे मामले की हक़ीक़त न बदल जाएगी। उस शख़्स की अस्ल हैसियत ज़रूर एक ही रहेगी।

6. 'ज़िहार' अरब का एक ख़ास लफ़्ज़ है। पुराने ज़माने में अरब के लोग बीवी से लड़ते हुए कभी यह कह बैठते थे कि "तेरी पीठ मेरे लिए मेरी माँ की पीठ जैसी है।" और यह बात जब किसी के मुँह से निकल जाती थी तो यह समझा जाता था कि अब यह औरत उसपर हराम हो गई है, क्योंकि वह उसे माँ जैसी कह चुका है। इसके बारे में अल्लाह तआला फ़रमाता है कि बीवी को माँ कहने या माँ जैसी कह देने से वह माँ नहीं बन जाती। माँ तो वही है जिसने आदमी को जना है। सिर्फ़ ज़बान से माँ कह देना हक़ीक़त को नहीं बदल देता कि जो बीवी थी, वह तुम्हारे कहने से माँ बन जाए। (यहाँ 'ज़िहार' के बारे में शरीअत का क़ानून बयान करना मक़सद नहीं है। उसका क़ानून सूरा-58 मुजादला, आयतें–2 से 4 में बयान किया गया है।)

7. यह अस्ल बात है जो बतानी है। ऊपर के दोनों जुमले इसी तीसरी बात को ज़ेहन में बिठाने के लिए दलील के तौर पर कहे गए थे।

8. इस हुक्म पर अमल करने में सबसे पहले जो सुधार जारी किया गया, वह यह था कि नबी (सल्ल॰) के मुँह बोले बेटे हज़रत ज़ैद (रज़ि॰) को ज़ैद-बिन-मुहम्मद (मुहम्मद का बेटा) कहने के बजाय उनके सगे बाप के ताल्लुक़ से ज़ैद-बिन-हारिसा (हारिसा का बेटा) कहना शुरू कर दिया गया। बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी और नसई ने हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) से यह रिवायत नक़्ल की है कि ज़ैद-बिन-हारिसा को पहले सब लोग ज़ैद-बिन-मुहम्मद कहते थे। यह

وَلَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ فِيمَآ أَخْطَأْتُم بِهِۦ وَلَٰكِن مَّا تَعَمَّدَتْ قُلُوبُكُمْ ۚ
وَكَانَ ٱللَّهُ غَفُورًا رَّحِيمًا ۝ ٱلنَّبِىُّ أَوْلَىٰ بِٱلْمُؤْمِنِينَ مِنْ أَنفُسِهِمْ ۖ وَأَزْوَٰجُهُۥٓ

हैं।[9] अनजाने में जो बात तुम कहो उसके लिए तुमपर कोई पकड़ नहीं है, लेकिन उस बात पर ज़रूर पकड़ है जिसका तुम दिल से इरादा करो।[10] अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।[11]

(6) बेशक नबी तो ईमानवालों के लिए उनके अपने वुजूद से बढ़कर है[12] और नबी

आयत उतरने के बाद उन्हें ज़ैद-बिन-हारिसा कहने लगे। इसके अलावा इस आयत के उतरने के बाद यह बात हराम ठहरा दी गई कि कोई शख़्स अपने सगे बाप के सिवा किसी और की तरफ़ अपना नसब (वंश) जोड़े। बुख़ारी, मुस्लिम और अबू-दाऊद ने हज़रत सअद-बिन-अबी-वक़्क़ास की रिवायत नक़्ल की है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जिसने अपने आपको अपने बाप के सिवा किसी और का बेटा कहा, हालाँकि वह जानता हो कि वह आदमी उसका बाप नहीं है, उसपर जन्नत हराम है।" इसी तरह की कुछ दूसरी रिवायतें भी हदीसों की किताबों में मिलती हैं जिनमें इस काम को सख़्त गुनाह ठहराया गया है।

9. यानी इस हालत में भी यह दुरुस्त न होगा कि किसी शख़्स से ख़्वाह-मख़्वाह उसका नसब (वंश) मिलाया जाए।

10. मतलब यह है कि किसी को प्यार से बेटा कह देने में कोई हरज नहीं है। इसी तरह माँ, बेटी, बहन, भाई वग़ैरा अलफ़ाज़ भी अगर किसी के लिए सिर्फ़ अख़लाक़ी तौर पर इस्तेमाल कर लिए जाएँ तो कोई गुनाह नहीं। लेकिन इस इरादे से यह बात कहना कि जिसे बेटा या बेटी वग़ैरा कहा जाए उसको सचमुच वही हैसियत दे दी जाए जो इन रिश्तों की है और उसके लिए वही हक़ हों जो इन रिश्तेदारों के हैं और उसके साथ वैसे ही ताल्लुक़ात हों जैसे उन रिश्तेदारों के साथ होते हैं, यह यक़ीनन एतिराज़ के क़ाबिल बात है और इसपर पकड़ होगी।

11. इसका एक मतलब यह है कि पहले इस सिलसिले में जो ग़लतियाँ की गई हैं, उनको अल्लाह ने माफ़ किया। उनपर अब कोई पूछ-गच्छ न होगी। दूसरा मतलब यह है कि अल्लाह अनजाने में किए गए कामों पर पकड़ करनेवाला नहीं है। अगर बेइरादा कोई ऐसी बात की जाए जिसकी ज़ाहिरी सूरत एक मना किए जा चुके काम की-सी हो, मगर उसमें हक़ीक़त में इस मना किए हुए काम की नीयत न हो, तो सिर्फ़ काम की ज़ाहिरी शक्ल पर अल्लाह तआला सज़ा न दे डालेगा।

12. यानी नबी (सल्ल॰) का मुसलमानों से और मुसलमानों का नबी (सल्ल॰) से जो ताल्लुक़ है, वह तो तमाम दूसरे इनसानी ताल्लुक़ात से एक बढ़कर हैसियत रखता है। कोई रिश्ता उस रिश्ते से और कोई ताल्लुक़ उस ताल्लुक़ से जो नबी (सल्ल॰) और ईमानवालों के बीच है, ज़र्रा बराबर भी कोई निस्बत नहीं रखता। नबी (सल्ल॰) मुसलमानों के लिए उनके माँ-बाप से भी

أُمَّهٰتُهُمْ ۗ وَاُولُوا الْاَرْحَامِ بَعْضُهُمْ اَوْلٰى بِبَعْضٍ فِىْ كِتٰبِ اللّٰهِ مِنَ
الْمُؤْمِنِيْنَ وَالْمُهٰجِرِيْنَ اِلَّآ اَنْ تَفْعَلُوْٓا اِلٰٓى اَوْلِيٰٓئِكُمْ مَّعْرُوْفًا ۗ

की बीवियाँ उनकी माएँ हैं,[13] मगर अल्लाह की किताब के मुताबिक़ आम मोमिनों और मुहाजिरों के मुक़ाबले में रिश्तेदार एक-दूसरे के ज़्यादा हक़दार हैं, अलबत्ता अपने साथियों

बढ़कर मुहब्बत और रहम करनेवाले और उनके अपने आपसे भी बढ़कर भला चाहनेवाले हैं। उनके माँ-बाप और उनके बीवी-बच्चे उनको नुक़सान पहुँचा सकते हैं, उनके साथ ख़ुदगरज़ी बरत सकते हैं, उनको गुमराह कर सकते हैं, उनसे ग़लतियाँ करा सकते हैं, उनको जहन्नम में धकेल सकते हैं, मगर नबी (सल्ल॰) उनके हक़ में सिर्फ़ वही बात करनेवाले हैं जिसमें उनकी हक़ीक़ी भलाई और कामयाबी हो। वे ख़ुद अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मार सकते हैं, बेवक़ूफ़ियाँ करके अपने हाथों अपना नुक़सान कर सकते हैं, लेकिन नबी (सल्ल॰) उनके लिए वही कुछ तय करेंगे जो सचमुच उनके लिए फ़ायदेमन्द हो और जब मामला यह है तो नबी (सल्ल॰) का भी मुसलमानों पर यह हक़ है कि वे आप (सल्ल॰) को अपने माँ-बाप और औलाद और अपनी जान से बढ़कर प्यारा रखें, दुनिया की हर चीज़ से ज़्यादा आप (सल्ल॰) से मुहब्बत रखें, अपनी राय पर आप (सल्ल॰) की राय को और अपने फ़ैसले पर आप (सल्ल॰) के फ़ैसले को बढ़कर समझें और आप (सल्ल॰) के हर हुक्म के आगे फ़रमाँबरदारी में सिर झुका दें।

इसी बात को नबी (सल्ल॰) ने उस हदीस में फ़रमाया है जिसे बुख़ारी और मुस्लिम वग़ैरा ने थोड़े से लफ़्ज़ी फ़र्क़ के साथ रिवायत किया है कि "तुममें से कोई शख़्स ईमानवाला नहीं हो सकता जब तक कि मैं उसको उसके बाप और औलाद से और तमाम इनसानों से बढ़कर महबूब और प्यारा न होऊँ।"

13. उसी ख़ासियत की वजह से जो ऊपर बयान हुई, नबी (सल्ल॰) की एक ख़ासियत यह भी है कि मुसलमानों की अपनी मुँह बोली माएँ तो किसी मानी में भी उनकी माँ नहीं हैं, लेकिन नबी (सल्ल॰) की बीवियाँ उसी तरह उनके लिए हराम हैं जिस तरह उनकी सगी माएँ हराम हैं। यह ख़ास मामला नबी करीम (सल्ल॰) के सिवा दुनिया में और किसी इनसान के साथ नहीं है।

इस सिलसिले में यह भी जान लेना चाहिए कि नबी (सल्ल॰) की बीवियाँ सिर्फ़ इस मानी में ईमानवालों की माएँ हैं कि उनकी इज़्ज़त और एहतिराम मुसलमानों पर वाजिब है और उनके साथ किसी मुसलमान का निकाह नहीं हो सकता था। बाक़ी दूसरे हुक्मों में वे माँ की तरह नहीं हैं। मसलन उनके हक़ीक़ी रिश्तेदारों के सिवा बाक़ी सब मुसलमान उनके लिए ग़ैर-महरम थे जिनसे परदा वाजिब था। उनकी बेटियाँ मुसलमानों के लिए माँ-जाई बहनें न थीं कि उनसे भी मुसलमानों का निकाह मना होता। उनके भाई-बहन मुसलमानों के लिए ख़ाला (मौसी) और मामू के हुक्म में न थे। उनसे किसी ग़ैर-रिश्तेदार मुसलमान को वह मीरास नहीं पहुँचती थी जो एक शख़्स को अपनी माँ से पहुँचती है।

यहाँ यह बात भी बयान करने के क़ाबिल है कि क़ुरआन मजीद के मुताबिक़ यह मर्तबा नबी (सल्ल॰) की तमाम पाक बीवियों को हासिल है जिनमें लाज़िमन हज़रत आइशा (रज़ि॰) भी शामिल हैं। लेकिन एक गरोह ने जब हज़रत अली (रज़ि॰) और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) और उनकी औलाद को दीन का मर्कज़ बनाकर दीन का सारा निज़ाम उन्हीं के आस-पास घुमा दिया और इस वजह से दूसरे बहुत-से सहाबा (रज़ि॰) के साथ हज़रत आइशा (रज़ि॰) को भी तानों और लानतों का निशाना बनाया, तो उनकी राह में क़ुरआन मजीद की यह आयत रुकावट बन गई, जिसके मुताबिक़ हर उस शख़्स को उन्हें अपनी माँ मानना पड़ता है जो ईमान का दावेदार हो। आख़िरकार इस मुश्किल को दूर करने के लिए यह अजीब-ग़रीब दावा किया गया कि नबी करीम (सल्ल॰) ने हज़रत अली (रज़ि॰) को यह हक़ दे दिया था कि आप (सल्ल॰) के इन्तिक़ाल के बाद आप (सल्ल॰) की पाक बीवियों में से जिसको चाहें आप (सल्ल॰) की बीवी के तौर पर बाक़ी रखें और जिसको चाहें आप (सल्ल॰) की तरफ़ से तलाक़ दे दें। अबू-मंसूर अहमद-बिन-अबू-तालिब तबरसी ने किताबुल-एहतिजाज में यह बात लिखी है और सुलैमान-बिन-अब्दुल्लाह अल-बुहरानी ने उसे नक़्ल किया है कि नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अली (रज़ि॰) से फ़रमाया, "ऐ अबुल-हसन! इज़्ज़त और क़द्र तो उसी वक़्त तक बाक़ी है, जब तक हम लोग अल्लाह की फ़रमाँबरदारी पर क़ायम रहें। इसलिए मेरी बीवियों में से जो भी मेरे बाद तेरे ख़िलाफ़ ख़ुरूज करके (यानी तेरी मातहती से निकलकर) अल्लाह की नाफ़रमानी करे, उसे तू तलाक़ दे देना और उसको ईमानवालों की माँ होने की ख़ुशनसीबी से अलग कर देना।"

रिवायत के उसूल के एतिबार से तो यह रिवायत सरासर बेअस्ल है ही, लेकिन अगर आदमी इसी सूरा-33 अहज़ाब की आयत-28, 29 और 51, 52 पर ग़ौर करे तो मालूम हो जाता है कि यह रिवायत क़ुरआन के भी ख़िलाफ़ पड़ती है, क्योंकि 'तख़ईर' (तलाक़ का हक़ मिलने) की आयत के बाद जिन पाक बीवियों ने हर हाल में अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ही के साथ को अपने लिए पसन्द किया था, उन्हें तलाक़ देने का हक़ नबी (सल्ल॰) को बाक़ी न रहा था। इस बात को आगे हाशिया-42 और 93 में हमने ज़्यादा खोलकर बयान कर दिया है।

इसके अलावा एक आदमी जो किसी तरह के तास्सुब (पक्षपात) और किसी की नामुनासिब तरफ़दारी की बीमारी में पड़ा हुआ न हो, अगर सिर्फ़ अक़्ल ही से काम लेकर इस रिवायत के मज़मून पर ग़ौर करे तो साफ़ नज़र आता है कि यह इन्तिहाई बेहूदा और अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के हक़ में बहुत ही रुसवाकुन झूठ है जो आप (सल्ल॰) से जोड़ा गया है। रसूल का मक़ाम तो बहुत ऊँचा और बरतर है, एक मामूली शरीफ़ आदमी से भी यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह अपनी मौत के बाद अपनी बीवी को तलाक़ देने की फ़िक्र करेगा और दुनिया से रुख़सत होते वक़्त दामाद को यह हक़ दे जाएगा कि अगर कभी तेरा इसके साथ झगड़ा हो तो मेरी तरफ़ से तू इसे तलाक़ दे देना। इससे मालूम होता है कि जो लोग 'अहले-बैत' (रसूल के घरवालों) की मुहब्बत के दावेदार हैं, उनके दिलों में 'साहिबुल-बैत' (सल्ल॰) की नेकनामी और इज़्ज़त का ख़याल कितना कुछ है और इससे भी गुज़रकर ख़ुद अल्लाह तआला के हुक्मों का वे कितना एहतिराम करते हैं।

كَانَ ذٰلِكَ فِي الْكِتٰبِ مَسْطُوْرًا ۝٦ وَاِذْ اَخَذْنَا مِنَ النَّبِيّٖنَ مِيْثَاقَهُمْ
وَمِنْكَ وَمِنْ نُّوْحٍ وَّاِبْرٰهِيْمَ وَمُوْسٰى وَعِيْسَى ابْنِ مَرْيَمَ ۪ وَاَخَذْنَا
مِنْهُمْ مِّيْثَاقًا غَلِيْظًا ۝٧ لِّيَسْـَٔلَ الصّٰدِقِيْنَ عَنْ صِدْقِهِمْ ۚ

के साथ तुम कोई भलाई (करना चाहो तो) कर सकते हो।[14] यह हुक्म अल्लाह की किताब में लिखा हुआ है।

(7) और (ऐ नबी!) याद रखो उस अहद और वादे को जो हमने सब पैग़म्बरों से लिया है, तुमसे भी और नूह और इबराहीम और मूसा और मरयम के बेटे ईसा से भी। सबसे हम पक्का वादा ले चुके हैं,[15] (8) ताकि सच्चे लोगों से (उनका रब) उनकी सच्चाई के

14. इस आयत में यह बताया गया है कि जहाँ तक नबी (सल्ल॰) का मामला है, उनके साथ तो मुसलमानों का ताल्लुक़ ही सबसे अलग तरह का है। लेकिन आम मुसलमानों के बीच आपस के ताल्लुक़ात इस उसूल पर क़ायम होंगे कि रिश्तेदारों के हक़ एक-दूसरे पर आम लोगों के मुक़ाबले में बढ़कर हैं। कोई ख़ैरात इस सूरत में सही नहीं है कि आदमी अपने माँ-बाप, बाल-बच्चों और भाई-बहनों की ज़रूरतें तो पूरी न करे और बाहर ख़ैरात करता फिरे। ज़कात से भी आदमी को पहले अपने ग़रीब रिश्तेदारों की मदद करनी होगी, फिर वह दूसरे हक़दारों को देगा। मीरास लाज़िमी तौर से उन लोगों को पहुँचेगी जो रिश्ते में आदमी से ज़्यादा क़रीब हों। दूसरे लोगों को अगर वह चाहे तो हिबा (दान), या वक़्फ़ या वसीयत के ज़रिए से अपना माल दे सकता है, मगर इस तरह नहीं कि वारिस महरूम (वंचित) रह जाएँ और सब कुछ दूसरों को दे डाला जाए। अल्लाह के इस हुक्म से वह तरीक़ा भी ख़त्म हो गया जो हिजरत के बाद मुहाजिरों और अनसार के बीच भाईचारा क़ायम करने से शुरू हुआ था, जिसके मुताबिक़ सिर्फ़ दीनी बिरादरी के ताल्लुक़ की बुनियाद पर मुहाजिर और अनसार एक-दूसरे के वारिस होते थे। अल्लाह तआला ने साफ़ फ़रमा दिया कि विरासत तो रिश्तेदारी की बुनियाद पर ही बँटेगी, अलबत्ता एक शख़्स हदिए, तोहफ़े या वसीयत के ज़रिए से अपने किसी दीनी भाई की कोई मदद करना चाहे तो कर सकता है।

15. इस आयत में अल्लाह तआला नबी (सल्ल॰) को यह बात याद दिलाता है कि तमाम पैग़म्बरों (अलैहि॰) की तरह आप (सल्ल॰) से भी अल्लाह तआला एक पक्का अहद (वचन) ले चुका है, जिसकी आप (सल्ल॰) को सख़्ती से पाबन्दी करनी चाहिए। इस अहद से कौन-सा अहद मुराद है? ऊपर से बात का जो सिलसिला चला आ रहा है, उसपर ग़ौर करने से साफ़ मालूम हो जाता है कि इससे मुराद यह अहद है कि पैग़म्बर अल्लाह तआला के हर हुक्म को ख़ुद मानेगा और दूसरों से मनवाएगा, अल्लाह की बातों को बिना घटाए-बढ़ाए पहुँचाएगा और उन्हें अमली तौर से लागू करने की कोशिश करने में कोई कमी न करेगा। क़ुरआन मजीद में इस अहद का

ज़िक्र कई जगहों पर किया गया है। जैसे—

"अल्लाह तआला ने मुक़र्रर कर दिया तुम्हारे लिए दीन का वही तरीक़ा जिसका हुक्म उसने नूह को दिया था और जिसकी वह्य की गई (ऐ मुहम्मद) तुम्हारी तरफ़ और जिसकी हिदायत हम इबराहीम और मूसा और ईसा को कर चुके हैं, इस ताकीद के साथ कि तुम लोग क़ायम करो इस दीन को और इसमें फूट न डालो।" (सूरा-42 शूरा, आयत-13)

"और याद करो इस बात को कि अल्लाह ने अहद लिया था, उन लोगों से जिनको किताब दी गई थी कि तुम लोग उसकी तालीम को बयान करोगे और उसे छिपाओगे नहीं।" (सूरा-3 आले-इमरान, आयत-187)

"और याद करो कि हमने बनी-इसराईल से अहद लिया था कि तुम अल्लाह के सिवा किसी की बन्दगी न करोगे।" (सूरा-2 बक़रा, आयत-83)

"क्या उनसे किताब का अहद नहीं लिया गया था?......मज़बूती के साथ थामो उस चीज़ को जो हमने तुम्हें दी है और याद रखो इस हिदायत को जो इसमें है। उम्मीद है कि तुम अल्लाह की नाफ़रमानी से बचते रहोगे।" (सूरा-7 आराफ़, आयतें—169 से 171)

"और ऐ मुसलमानो! याद रखो अल्लाह के उस एहसान को जो उसने तुमपर किया है और उस अहद को जो उसने तुमसे लिया है, जबकि तुमने कहा, हमने सुना और माना।" (सूरा-5 माइदा, आयत-7)

इस अहद को इस मौक़े पर अल्लाह तआला जिस वजह से याद दिला रहा है, वह यह है कि नबी (सल्ल॰) दुश्मनों के मज़ाक़ उड़ाने और ताने देने के अन्देशे से मुँह बोले रिश्तों के मामले में जाहिलियत की रस्म को तोड़ते हुए झिझक रहे थे। आप (सल्ल॰) को बार-बार यह शर्म महसूस हो रही थी कि मामला एक औरत से शादी करने का है। मैं चाहे कितनी ही नेक नीयती के साथ सिर्फ़ समाज-सुधार के लिए यह काम करूँ, मगर दुश्मन यही कहेंगे कि यह काम अस्ल में मन की ख़ाहिश पूरी करने के लिए किया गया है और सुधारक का चोला इस आदमी ने सिर्फ़ धोखा देने के लिए ओढ़ रखा है। इसी वजह से अल्लाह तआला नबी (सल्ल॰) से फ़रमा रहा है कि तुम हमारे मुक़र्रर किए हुए पैग़म्बर हो, तमाम पैग़म्बरों की तरह तुमसे भी हमारा यह पक्का अहद है कि जो कुछ भी हुक्म हम देंगे, उसको ख़ुद पूरा करोगे और दूसरों को उसकी पैरवी का हुक्म दोगे। लिहाज़ा तुम किसी के तानों और लानत-मलामत की परवाह न करो, किसी से शर्म न करो और न किसी से डरो और जो काम हम तुमसे लेना चाहते हैं, उसे बिना झिझक कर डालो।

एक गरोह इस अहद से वह अहद मुराद लेता है जो नबी (सल्ल॰) से पहले के तमाम नबियों और उनकी उम्मतों से इस बात के लिए लिया गया था कि वे बाद के आनेवाले नबी पर ईमान लाएँगे और उसका साथ देंगे। इस मतलब की बुनियाद पर इस गरोह का दावा यह है कि नबी (सल्ल॰) के बाद भी नुबूवत (पैग़म्बर आने) का दरवाज़ा खुला हुआ है और नबी (सल्ल॰) से भी यह अहद लिया गया है कि आप (सल्ल॰) के बाद जो नबी आए आप (सल्ल॰) की उम्मत उसपर ईमान लाएगी। लेकिन आयत का मौक़ा और महल साफ़ बता रहा है कि यह मतलब बिलकुल ग़लत है। बात के जिस सिलसिले में यह आयत आई है, उसमें यह

وَاَعَدَّ لِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابًا اَلِيْمًا ۝۸ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اذْكُرُوْا نِعْمَةَ اللّٰهِ
عَلَيْكُمْ اِذْ جَآءَتْكُمْ جُنُوْدٌ فَاَرْسَلْنَا عَلَيْهِمْ رِيْحًا وَّجُنُوْدًا لَّمْ تَرَوْهَا ۚ

बारे में सवाल करे[16] और इनकार करनेवालों के लिए तो उसने दर्दनाक अज़ाब जुटा ही रखा है।[17]

(9) ऐ लोगो![18] जो ईमान लाए हो, याद करो अल्लाह के उस एहसान को जो (अभी-अभी) उसने तुमपर किया है। जब लश्कर तुमपर चढ़ आए तो हमने उनपर एक सख़्त आँधी भेज दी और ऐसी फ़ौजें रवाना कीं जो तुमको नज़र न आती थीं।[19]

कहने का सिरे से कोई मौक़ा ही नहीं है कि आप (सल्ल॰) के बाद भी नबी आएँगे और आप (सल्ल॰) की उम्मत को उनपर ईमान लाना चाहिए। यह मतलब इसका लिया जाए तो यह आयत यहाँ बिलकुल बेजोड़ और बेमौक़ा हो जाती है। इसके अलावा आयत के अलफ़ाज़ में कोई इशारा ऐसा नहीं है जिससे यह ज़ाहिर होता हो कि यहाँ अहद से मुराद कौन-सा अहद मुराद है। यह किस तरह का अहद है, यह मालूम करने के लिए लाज़िमन हमको क़ुरआन मजीद के दूसरे मक़ामात की तरफ़ रुजू करना होगा जहाँ नबियों से लिए हुए अहदों का ज़िक्र किया गया है। अब अगर सारे क़ुरआन में सिर्फ़ एक ही अहद का ज़िक्र होता और वह बाद के आनेवाले नबियों पर ईमान लाने के बारे में होता तो यह समझना दुरुस्त होता कि यहाँ भी अहद से मुराद वही अहद है। लेकिन क़ुरआन पाक को जिस शख़्स ने भी आँखें खोलकर पढ़ा है, वह जानता है कि इस किताब में बहुत-से अहदों का ज़िक्र है, जो नबियों (अलैहि॰) और उनकी उम्मतों से लिए गए हैं। लिहाज़ा उन अलग-अलग अहदों में से वह अहद यहाँ मुराद लेना सही होगा जो इस मौक़े-महल से मेल खाता हो, न कि वह अहद जिसके ज़िक्र का यहाँ कोई मौक़ा न हो। इसी तरह के ग़लत मतलबों से यह हक़ीक़त खुल जाती है कि कुछ लोग क़ुरआन से हिदायत लेने नहीं बैठते, बल्कि उसे हिदायत देने बैठ जाते हैं।

16. यानी अल्लाह तआला सिर्फ़ अहद लेकर नहीं रह गया है, बल्कि उस अहद के बारे में वह सवाल करनेवाला है कि उसकी कहाँ तक पाबन्दी की गई। फिर जिन लोगों ने सच्चाई के साथ अल्लाह से किए हुए अहद को निभाया होगा, वही अहद के सच्चे ठहरेंगे।
17. इस रुकू के मज़मून (विषय-वस्तु) को पूरी तरह समझने के लिए ज़रूरी है कि इसको इसी सूरा की आयतों—36 से 41 के साथ मिलाकर पढ़ा जाए।
18. यहाँ से रुकू-3 के आख़िर (आयत-27) तक की आयतें उस वक़्त उतरी थीं जब नबी (सल्ल॰) बनी-क़ुरैज़ा की जंग से निबट चुके थे। इन दोनों रुकूओं में अहज़ाब और बनी-क़ुरैज़ा की जंगों के वाक़िआत पर तबसिरा (समीक्षा) किया गया है। इनको पढ़ते वक़्त इन दोनों जंगों की वे तफ़सीलात निगाह में रहनी चाहिएँ जो हम परिचय में बयान कर आए हैं।
19. यह आँधी उसी वक़्त नहीं आ गई थी, जबकि दुश्मनों के लश्कर मदीना पर चढ़ आए थे, बल्कि उस वक़्त आई थी जब घेराबन्दी को लगभग एक महीना बीत चुका था। नज़र न

وَكَانَ اللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرًا ﴿٩﴾ اِذْ جَآءُوْكُمْ مِّنْ فَوْقِكُمْ وَمِنْ اَسْفَلَ
مِنْكُمْ وَاِذْ زَاغَتِ الْاَبْصَارُ وَبَلَغَتِ الْقُلُوْبُ الْحَنَاجِرَ وَتَظُنُّوْنَ بِاللّٰهِ
الظُّنُوْنَا ﴿١٠﴾ هُنَالِكَ ابْتُلِيَ الْمُؤْمِنُوْنَ وَزُلْزِلُوْا زِلْزَالًا شَدِيْدًا ﴿١١﴾ وَاِذْ
يَقُوْلُ الْمُنٰفِقُوْنَ وَالَّذِيْنَ فِيْ قُلُوْبِهِمْ مَّرَضٌ مَّا وَعَدَنَا اللّٰهُ وَرَسُوْلُهٗٓ اِلَّا

अल्लाह वह सब कुछ देख रहा था जो तुम लोग उस वक़्त कर रहे थे। (10) जब वह ऊपर से और नीचे से तुमपर चढ़ आए।[20] जब डर के मारे आँखें पथरा गईं, कलेजे मुँह को आ गए और तुम लोग अल्लाह के बारे में तरह-तरह के गुमान करने लगे। (11) उस वक़्त ईमान लानेवाले ख़ूब आज़माए गए और बुरी तरह हिला मारे गए।[21]

(12) याद करो वह वक़्त जब मुनाफ़िक़ और वे सब लोग जिनके दिलों में रोग था, साफ़-साफ़ कह रहे थे कि अल्लाह और उसके रसूल ने जो वादे हमसे किए थे[22] वे धोखे

आनेवाली 'फ़ौजों' से मुराद वे छिपी हुई ताक़तें हैं जो इनसानी मामलों में अल्लाह तआला के इशारे पर काम करती रहती हैं और इनसानों को उनकी ख़बर तक नहीं होती। इनसान वाक़िआत और हादिसों को सिर्फ़ उनके ज़ाहिरी असबाब (कारकों) की वजह समझता है। लेकिन अन्दर-ही-अन्दर ग़ैर-महसूस तौर पर जो क़ुव्वतें काम करती हैं, वह उसके हिसाब में नहीं आतीं, हालाँकि अकसर हालात में इन्हीं छिपी ताक़तों की कारफ़रमाई फ़ैसलाकुन होती है। ये ताक़तें चूँकि अल्लाह तआला के फ़रिश्तों के तहत काम करती हैं, इसलिए 'फ़ौजों' से मुराद फ़रिश्ते भी लिए जा सकते हैं, अगरचे यहाँ फ़रिश्तों की फ़ौजें भेजने की बात साफ़ तौर पर बयान नहीं की गई है।

20. इसका एक मतलब तो यह हो सकता है कि हर तरफ़ से चढ़ आए और दूसरा मतलब यह भी हो सकता है कि नज्द और ख़ैबर से चढ़कर आनेवाले ऊपर से आए और मक्का की तरफ़ से आनेवाले नीचे से आए।

21. ईमान लानेवालों से मुराद यहाँ वे सब लोग हैं जिन्होंने मुहम्मद (सल्ल॰) को अल्लाह का रसूल मानकर अपने आपको नबी (सल्ल॰) की पैरवी करनेवालों में शामिल किया था, जिनमें सच्चे ईमानवाले भी शामिल थे और मुनाफ़िक़ भी। इस पैराग्राफ़ में अल्लाह तआला ने मुसलमानों के गरोह का मजमूई तौर से ज़िक्र किया है। इसके बाद के तीन पैराग्राफ़ों में मुनाफ़िक़ों के रवैये पर तबसिरा (समीक्षा) किया गया है। फिर आख़िर के दो पैराग्राफ़ अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) और सच्चे ईमानवालों के बारे में हैं।

22. यानी इस बात के वादे कि ईमानवालों को अल्लाह की मदद और हिमायत हासिल होगी और आख़िरकार ग़लबा (प्रभुत्व) इन्हीं को दिया जाएगा।

غُرُوْرًا ﴿١٢﴾ وَاِذْ قَالَتْ طَّآئِفَةٌ مِّنْهُمْ يٰٓاَهْلَ يَثْرِبَ لَا مُقَامَ لَكُمْ
فَارْجِعُوْا ۚ وَيَسْتَاْذِنُ فَرِيْقٌ مِّنْهُمُ النَّبِيَّ يَقُوْلُوْنَ اِنَّ بُيُوْتَنَا عَوْرَةٌ ۛ
وَمَا هِيَ بِعَوْرَةٍ ۛ اِنْ يُّرِيْدُوْنَ اِلَّا فِرَارًا ﴿١٣﴾ وَلَوْ دُخِلَتْ عَلَيْهِمْ مِّنْ
اَقْطَارِهَا ثُمَّ سُئِلُوا الْفِتْنَةَ لَاٰتَوْهَا وَمَا تَلَبَّثُوْا بِهَآ اِلَّا يَسِيْرًا ﴿١٤﴾

के सिवा कुछ न थे। (13) जब उनमें से एक गरोह ने कहा कि "ऐ यसरिब के लोगो, तुम्हारे लिए अब ठहरने का कोई मौक़ा नहीं है, पलट चलो।"[23] जब उनके कुछ लोग यह कहकर नबी से रुख़सत (इजाज़त) तलब कर रहे थे कि "हमारे घर ख़तरे में हैं,"[24] हालाँकि वे ख़तरे में न थे,[25] अस्ल में वे (जंग के मोर्चे से) भागना चाहते थे। (14) अगर शहर के चारों तरफ़ से दुश्मन घुस आए होते और उस वक़्त उन्हें फ़ितने की तरफ़ दावत दी जाती[26] तो ये उसमें जा पड़ते और मुश्किल ही से इन्हें फ़ितने में पड़ने से कोई हिचक

23. इस जुमले के दो मतलब हैं। ज़ाहिरी मतलब यह है कि ख़न्दक़ के सामने इस्लाम-दुश्मनों के मुक़ाबले पर ठहरने का कोई मौक़ा नहीं है, शहर की तरफ़ पलट चलो और छिपा हुआ मतलब यह है कि इस्लाम पर ठहरने का कोई मौक़ा नहीं है, अब अपने बाप-दादा के धर्म की तरफ़ पलट जाना चाहिए, ताकि सारे अरब की दुश्मनी मोल लेकर हमने जिस ख़तरे में अपने आपको डाल दिया है, उससे बच जाएँ। मुनाफ़िक़ अपनी ज़बान से इस तरह की बातें इसलिए कहते थे कि जो उनकी बातों में आ सकता हो, उसको तो अपना छिपा हुआ मतलब समझा दें, लेकिन जो उनकी बात सुनकर चौकन्ना हो और उसपर गिरिफ़्त करे, उसके सामने अपने ज़ाहिर अलफ़ाज़ की आड़ लेकर गिरिफ़्त से बच जाएँ।

24. यानी जब बनी-क़ुरैज़ा भी हमला करनेवालों के साथ मिल गए तो उन मुनाफ़िक़ों को अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के लश्कर से निकल भागने के लिए एक अच्छा बहाना हाथ आ गया और उन्होंने यह कहकर रुख़सत माँगनी शुरू की कि अब तो हमारे घर ही ख़तरे में पड़ गए हैं, लिहाज़ा हमें जाकर अपने बाल-बच्चों की हिफ़ाज़त करने का मौक़ा दिया जाए। हालाँकि उस वक़्त सारे मदीनावालों की हिफ़ाज़त के ज़िम्मेदार नबी (सल्ल॰) थे। बनी-क़ुरैज़ा के समझौता तोड़ने से जो ख़तरा भी पैदा हुआ था, उससे शहर और उसके वासियों को बचाने की तदबीर करना नबी (सल्ल॰) का काम था, न कि फ़ौज के एक-एक शख़्स का।

25. यानी इस ख़तरे से बचाव का इन्तिज़ाम तो नबी (सल्ल॰) कर चुके थे। यह इन्तिज़ाम भी बचाव की उस पूरी स्कीम ही का एक हिस्सा था जिसपर फ़ौज के कमांडर की हैसियत से नबी (सल्ल॰) अमल कर रहे थे। इसलिए कोई फ़ौरी ख़तरा उस वक़्त सामने न था, जिसकी वजह से उनका यह बहाना किसी दर्जे में भी सही होता।

26. यानी अगर शहर में दाख़िल होकर जीत हासिल करनेवाले इस्लाम-दुश्मन इन मुनाफ़िक़ों को

وَلَقَدْ كَانُوْا عَاهَدُوا اللّٰهَ مِنْ قَبْلُ لَا يُوَلُّوْنَ الْاَدْبَارَ ؕ وَكَانَ عَهْدُ اللّٰهِ
مَسْـُٔوْلًا ⑮ قُلْ لَّنْ يَّنْفَعَكُمُ الْفِرَارُ اِنْ فَرَرْتُمْ مِّنَ الْمَوْتِ اَوِ الْقَتْلِ وَاِذًا لَّا
تُمَتَّعُوْنَ اِلَّا قَلِيْلًا ⑯ قُلْ مَنْ ذَا الَّذِيْ يَعْصِمُكُمْ مِّنَ اللّٰهِ اِنْ اَرَادَ بِكُمْ
سُوْٓءًا اَوْ اَرَادَ بِكُمْ رَحْمَةً ؕ وَلَا يَجِدُوْنَ لَهُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَلِيًّا وَّلَا نَصِيْرًا ⑰

होती। (15) इन लोगों ने इससे पहले अल्लाह से वादा किया था कि ये पीठ न फेरेंगे और अल्लाह से किए हुए वादे की पूछ-गच्छ तो होनी ही थी।[27]

(16) ऐ नबी! इनसे कहो, अगर तुम मौत या क़त्ल से भागो तो यह भागना तुम्हारे लिए कुछ भी फ़ायदेमन्द न होगा। उसके बाद ज़िन्दगी के मज़े लूटने का थोड़ा ही मौक़ा तुम्हें मिल सकेगा।[28] (17) इनसे कहो : कौन है जो तुम्हें अल्लाह से बचा सकता हो, अगर वह तुम्हें नुक़सान पहुँचाना चाहे? और कौन उसकी रहमत को रोक सकता है, अगर वह तुमपर मेहरबानी करना चाहे? अल्लाह के मुक़ाबले में तो ये लोग कोई हिमायती या मददगार नहीं पा सकते हैं।

दावत देते कि आओ, हमारे साथ मिलकर मुसलमानों को ख़त्म कर दो।

27. यानी उहुद की जंग के मौक़े पर जो कमज़ोरी उन्होंने दिखाई थी, उसके बाद शर्मिन्दगी और पछतावा ज़ाहिर करके उन लोगों ने अल्लाह से वादा किया था कि अब अगर आज़माइश का कोई मौक़ा पेश आया तो हम अपने इस क़ुसूर की भरपाई कर देंगे। लेकिन अल्लाह तआला को सिर्फ़ बातों से धोखा नहीं दिया जा सकता। जो शख़्स भी उससे कोई अहद बाँधता है, उसके सामने कोई-न-कोई आज़माइश का मौक़ा वह ज़रूर ले आता है, ताकि उसका झूठ-सच खुल जाए। इसलिए वह उहुद की जंग के दो ही साल बाद उससे भी ज़्यादा बड़ा ख़तरा सामने ले आया और उसने जाँचकर देख लिया कि उन लोगों ने कैसा कुछ सच्चा अहद उससे किया था।

28. यानी इस तरह भागने से कुछ तुम्हारी उम्र बढ़ नहीं जाएगी। इसका नतीजा बहरहाल यह नहीं होगा कि तुम क़ियामत तक जियो और तमाम धरती की दौलत पा लो। भागकर जियोगे भी तो ज़्यादा-से-ज़्यादा कुछ साल ही जियोगे और उतना ही कुछ दुनिया की ज़िन्दगी का मज़ा ले सकोगे, जितना तुम्हारी क़िस्मत में लिखा है।

قَدْ يَعْلَمُ اللّٰهُ الْمُعَوِّقِيْنَ مِنْكُمْ وَالْقَآئِلِيْنَ لِاِخْوَانِهِمْ هَلُمَّ اِلَيْنَا ۚ وَلَا يَاْتُوْنَ الْبَاْسَ اِلَّا قَلِيْلًا ﴿۱۸﴾ اَشِحَّةً عَلَيْكُمْ ۚ فَاِذَا جَآءَ الْخَوْفُ رَاَيْتَهُمْ يَنْظُرُوْنَ اِلَيْكَ تَدُوْرُ اَعْيُنُهُمْ كَالَّذِيْ يُغْشٰى عَلَيْهِ مِنَ الْمَوْتِ ۚ فَاِذَا ذَهَبَ الْخَوْفُ سَلَقُوْكُمْ بِاَلْسِنَةٍ حِدَادٍ اَشِحَّةً عَلَى الْخَيْرِ ۭ اُولٰٓئِكَ لَمْ يُؤْمِنُوْا فَاَحْبَطَ اللّٰهُ اَعْمَالَهُمْ ۭ وَكَانَ ذٰلِكَ عَلَى اللّٰهِ يَسِيْرًا ﴿۱۹﴾

(18) अल्लाह तुममें से उन लोगों को ख़ूब जानता है जो (जंग के काम में) रुकावटें डालनेवाले हैं, जो अपने भाइयों से कहते हैं कि “आओ हमारी तरफ़।”[29] जो लड़ाई में हिस्सा लेते भी हैं तो बस नाम गिनाने को, (19) जो तुम्हारा साथ देने में सख़्त कंजूस हैं।[30] ख़तरे का वक़्त आ जाए तो इस तरह दीदे फिरा-फिराकर तुम्हारी तरफ़ देखते हैं जैसे किसी मरनेवाले पर बेहोशी छा रही हो, मगर जब ख़तरा टल जाता है तो यही लोग फ़ायदों के लोभी बनकर क़ैंची की तरह चलती हुई ज़बानें लिए तुम्हारे इस्तिक़बाल (स्वागत) के लिए आ जाते हैं।[31] ये लोग हरगिज़ ईमान नहीं लाए, इसी लिए अल्लाह ने उनके सारे आमाल बेकार कर दिए।[32] और ऐसा करना अल्लाह के लिए बहुत आसान

29. यानी छोड़ो इस पैग़म्बर का साथ। कहाँ दीन-ईमान और हक़ और सच्चाई के चक्कर में पड़े हो? अपने आपको ख़तरों और मुसीबतों में मुब्तला करने के बजाय वही सुकून और बचने की पॉलिसी अपनाओ जो हमने अपना रखी है।
30. यानी अपनी मेहनतें, अपने वक़्त, अपनी फ़िक्र, अपने माल, ग़रज़ कोई चीज़ भी वे उस राह में लगाने के लिए ख़ुशी से तैयार नहीं हैं जिसमें सच्चे ईमानवाले अपना सब कुछ झोंके दे रहे हैं। जान खपाना और ख़तरों में पड़ना तो बड़ी चीज़ है, वे किसी काम में भी खुले दिल से ईमानवालों का साथ नहीं देना चाहते।
31. अरबी ज़बान के हिसाब से इस आयत के दो मतलब हैं। एक यह कि लड़ाई से जब तुम कामयाब पलटते हो तो वे बड़े तपाक से तुम्हारा इस्तिक़बाल (स्वागत) करते हैं और बातें बना-बनाकर यह धौंस जमाने की कोशिश करते हैं कि हम भी बड़े ईमानवाले हैं और हमने भी इस काम को फैलाने में हिस्सा लिया है, इसलिए हम भी ग़नीमत के माल (लड़ाई में दुश्मन के छोड़े हुए माल) के हक़दार हैं। दूसरा मतलब यह है कि अगर जीत मिलती है तो ग़नीमत के माल के बँटवारे के मौक़े पर ये लोग ज़बान की बड़ी तेज़ी दिखाते हैं और बढ़-बढ़कर माँगें करते हैं कि लाओ हमारा हिस्सा, हमने भी ख़िदमत अंजाम दी हैं, सब कुछ तुम ही लोग न लूट ले जाओ।
32. यानी इस्लाम क़बूल करने के बाद जो नमाज़ें उन्होंने पढ़ीं, जो रोज़े उन्होंने रखे, जो ज़कातें दीं

يَحْسَبُوْنَ الْاَحْزَابَ لَمْ يَذْهَبُوْا ۚ وَاِنْ يَّاْتِ الْاَحْزَابُ يَوَدُّوْا لَوْ اَنَّهُمْ
بَادُوْنَ فِي الْاَعْرَابِ يَسْاَلُوْنَ عَنْ اَنْۢبَآئِكُمْ ؕ وَلَوْ كَانُوْا فِيْكُمْ مَّا قٰتَلُوْٓا
اِلَّا قَلِيْلًا ۝٢٠ لَقَدْ كَانَ لَكُمْ فِيْ رَسُوْلِ اللّٰهِ اُسْوَةٌ حَسَنَةٌ لِّمَنْ كَانَ يَرْجُوا

है।[33] (20) ये समझ रहे हैं कि हमला करनेवाले गरोह अभी गए नहीं हैं और अगर वे फिर हमला कर दें तो इनका जी चाहता है कि उस मौक़े पर ये कहीं रेगिस्तान में बद्दुओं (देहातियों) के बीच जा बैठें और वहीं से तुम्हारे हालात पूछते रहें। फिर भी अगर ये तुम्हारे बीच रहे भी तो लड़ाई में कम ही हिस्सा लेंगे।

(21) हक़ीक़त में तुम लोगों के लिए अल्लाह के रसूल में एक बेहतरीन नमूना था,[34]

और बज़ाहिर जो नेक काम भी किए, उन सबको अल्लाह तआला रद्द कर देगा और उनका कोई बदला उन्हें न देगा, क्योंकि अल्लाह तआला के यहाँ फ़ैसला आमाल की ज़ाहिरी शक्ल पर नहीं होता, बल्कि यह देखकर होता है कि इस ज़ाहिर की तह में ईमान और सच्चाई है या नहीं। जब यह चीज़ सिरे से उनके अन्दर मौजूद ही नहीं है तो ये दिखावे के काम सरासर बेमतलब हैं। इस जगह इस बात पर गहराई से ध्यान देने की ज़रूरत है कि जो लोग अल्लाह और रसूल (सल्ल॰) का इक़रार करते थे, नमाज़ें पढ़ते थे, रोज़े रखते थे, ज़कात भी देते थे और मुसलमानों के साथ उनके दूसरे नेक कामों में भी शरीक होते थे, उनके बारे में साफ़-साफ़ फ़ैसला दे दिया गया है कि ये सिरे से ईमान लाए ही नहीं और यह फ़ैसला सिर्फ़ इस बुनियाद पर दिया गया है कि कुफ़्र और इस्लाम की कश्मकश में जब कड़ी आज़माइश का वक़्त आया तो उन्होंने दोग़लेपन का सुबूत दिया, दीन के फ़ायदे पर अपने फ़ायदे को आगे रखा और इस्लाम की हिफ़ाज़त के लिए जान, माल और मेहनत लगाने में कोताही की। इससे मालूम हुआ कि फ़ैसले की अस्ल बुनियाद ये ज़ाहिरी आमाल नहीं हैं, बल्कि यह सवाल है कि आदमी की वफ़ादारियाँ किस तरफ़ हैं। जहाँ ख़ुदा और उसके दीन से वफ़ादारी नहीं है, वहाँ ईमान का इक़रार और इबादतों और दूसरी नेकियों की कोई क़ीमत नहीं।

33. यानी इनके आमाल कोई वज़्न और क़ीमत नहीं रखते कि उनको बरबाद कर देना अल्लाह को बुरा लगे और ये लोग कोई ज़ोर भी नहीं रखते कि उनके आमाल को बरबाद करना उसके लिए मुश्किल हो।

34. जिस पसमंज़र में यह आयत उतरी है उसके लिहाज़ से अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के रवैये को इस जगह नमूने के तौर पर पेश करने का मक़सद उन लोगों को सबक़ देना था जिन्होंने अहज़ाब की जंग के मौक़े पर अपना फ़ायदा देखा और ख़तरों में पड़ने से बचे रहे थे। उनसे कहा जा रहा है कि तुम ईमान और इस्लाम और रसूल की पैरवी के दावेदार थे। तुमको देखना चाहिए था कि जिस रसूल की पैरवी करनेवालों में तुम शामिल हुए हो, उसका इस

اللّٰهَ وَالْيَوْمَ الْاٰخِرَ وَذَكَرَ اللّٰهَ كَثِيْرًا ﴿٢١﴾ وَلَمَّا رَاَ الْمُؤْمِنُوْنَ الْاَحْزَابَ ۙ قَالُوْا

हर उस आदमी के लिए जो अल्लाह और आख़िरी दिन की उम्मीद रखता हो और अल्लाह को बहुत ज़्यादा याद करे[35] (22) और सच्चे ईमानवालों (का हाल उस वक़्त

मौक़े पर क्या रवैया था। अगर किसी गरोह का लीडर ख़ुद ख़तरों से बचनेवाला आराम तलब हो, ख़ुद अपने निजी फ़ायदे की हिफ़ाज़त को सबसे ज़्यादा अहमियत और तरजीह देता हो, ख़तरे के वक़्त ख़ुद भाग निकलने की तैयारियाँ कर रहा हो, फिर तो उसकी पैरवी करनेवालों की तरफ़ से इन कमज़ोरियों का ज़ाहिर होना सही हो सकता है। मगर यहाँ तो अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) का हाल यह था कि हर मेहनत और मशक़्क़त जिसकी आप (सल्ल॰) ने दूसरों से माँग की, उसे बरदाश्त करने में आप (सल्ल॰) ख़ुद सबके साथ शरीक थे, बल्कि दूसरों से बढ़कर ही आप (सल्ल॰) ने हिस्सा दिया। कोई तकलीफ़ ऐसी न थी जो दूसरों ने उठाई हो और आप (सल्ल॰) ने न उठाई हो। ख़न्दक़ खोदनेवालों में आप (सल्ल॰) ख़ुद शामिल थे। भूख और सर्दी की तकलीफ़ें उठाने में एक मामूली मुसलमान के साथ आप (सल्ल॰) का हिस्सा बिलकुल बराबर था। घेराबन्दी के दौरान में आप (सल्ल॰) हर वक़्त जंग के मोर्चे पर मौजूद रहे और एक पल के लिए भी दुश्मन के मुक़ाबले से न हटे। बनी-क़ुरैज़ा की ग़द्दारी के बाद जिस ख़तरे में सब मुसलमानों के बाल-बच्चे मुब्तला थे, उसी में आप (सल्ल॰) के बाल-बच्चे भी मुब्तला थे। आप (सल्ल॰) ने अपनी हिफ़ाज़त और अपने बाल-बच्चों की हिफ़ाज़त के लिए कोई ख़ास इन्तिज़ाम न किया जो दूसरे मुसलमानों के लिए न हो। जिस बड़े मक़सद के लिए आप (सल्ल॰) दूसरों से क़ुरबानियाँ माँग रहे थे, उसपर सबसे पहले और सबसे बढ़कर आप (सल्ल॰) ख़ुद अपना सब कुछ क़ुरबान कर देने को तैयार थे। इसलिए जो कोई भी आप (सल्ल॰) की पैरवी का दावेदार था, उसे यह नमूना देखकर उसकी पैरवी करनी चाहिए थी।

यह तो मौक़ा और महल के लिहाज़ से इस आयत का मतलब है। मगर इसके अलफ़ाज़ आम हैं और इसके मक़सद को सिर्फ़ उसी मतलब तक महदूद रखने की कोई वजह नहीं है। अल्लाह तआला ने यह नहीं फ़रमाया है कि सिर्फ़ उसी लिहाज़ से उसके रसूल की ज़िन्दगी मुसलमानों के लिए नमूना है, बल्कि पूरी तरह उसे नमूना बताया है। इसलिए इस आयत का तक़ाज़ा यह है कि मुसलमान हर मामले में आप (सल्ल॰) की ज़िन्दगी को अपने लिए नमूने की ज़िन्दगी समझें और उसके मुताबिक़ अपनी ज़िन्दगी और किरदार को ढालें।

35. यानी अल्लाह को भूले हुए आदमी के लिए तो यह ज़िन्दगी नमूना नहीं है, मगर उस शख़्स के लिए ज़रूर नमूना है जो कभी-कभार इत्तिफ़ाक़ से ख़ुदा का नाम लेनेवाला नहीं, बल्कि बहुत ज़्यादा उसको याद करने और याद रखनेवाला हो। इसी तरह यह ज़िन्दगी उस आदमी के लिए तो नमूना नहीं है जो अल्लाह से कोई उम्मीद और आख़िरत के आने की कोई उम्मीद न रखता हो, मगर उस आदमी के लिए ज़रूर नमूना है जो अल्लाह के फ़ज़्ल और उसकी मेहरबानियों का उम्मीदवार हो और जिसे यह भी ख़याल हो कि कोई आख़िरत आनेवाली है, जहाँ उसकी भलाई का सारा दारोमदार ही इसपर है कि दुनिया की ज़िन्दगी में उसका रवैया

هٰذَا مَا وَعَدَنَا اللّٰهُ وَرَسُوْلُهٗ وَصَدَقَ اللّٰهُ وَرَسُوْلُهٗ ۚ وَمَا زَادَهُمْ اِلَّآ اِيْمَانًا

यह था कि)[36] जब उन्होंने हमला करनेवाले लश्करों को देखा तो पुकार उठे कि "यह तो वही चीज़ है जिसका अल्लाह और उसके रसूल ने हमसे वादा किया था, अल्लाह और उसके रसूल की बात बिलकुल सच्ची थी।"[37] इस वाक़िए ने उनके ईमान और उनकी

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के रवैये से किस हद तक क़रीब रहा है।

36. अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के नमूने की तरफ़ ध्यान दिलाने के बाद अब अल्लाह तआला सहाबा किराम (रज़ि॰) के रवैये को नमूने के तौर पर पेश करता है, ताकि ईमान के झूठे दावेदारों और सच्चे दिल से रसूल की पैरवी इख़्तियार करनेवालों का किरदार एक-दूसरे के मुक़ाबले में पूरी तरह नुमायाँ कर दिया जाए। अगरचे ईमान के ज़ाहिरी इक़रार में वे और ये दोनों एक जैसे थे। मुसलमानों के गरोह में दोनों की गिनती होती थी और नमाज़ों में दोनों शरीक होते थे। लेकिन आज़माइश की घड़ी पेश आने पर दोनों एक-दूसरे से छँटकर अलग हो गए और साफ़ मालूम हो गया कि अल्लाह और उसके रसूल के सच्चे और वफ़ादार कौन हैं और सिर्फ़ नाम के मुसलमान कौन।

37. इस मौक़े पर आयत-12 को निगाह में रखना चाहिए। वहाँ बताया गया था कि जो लोग मुनाफ़िक़ और दिल के रोगी थे, उन्होंने दस-बारह हज़ार के लश्कर को सामने से और बनी-क़ुरैज़ा को पीछे से हमला करते देखा तो पुकार-पुकारकर कहने लगे कि "सारे वादे जो अल्लाह और उसके रसूल ने हमसे किए थे सिर्फ़ झूठ और छल निकले। कहा तो हमसे यह गया था कि ख़ुदा के दीन पर ईमान लाओगे तो ख़ुदा की मदद और हिमायत तुम्हारी पीठ पर होगी। अरब और अजम (अरब से बाहर के इलाक़े) पर तुम्हारा सिक्का चलेगा और क़ैसरो-किसरा के ख़ज़ाने तुम्हारे लिए खुल जाएँगे। मगर हो यह रहा है कि सारा अरब हमें मिटा देने पर तुल गया है और कहीं से फ़रिश्तों की वे फ़ौजें आती दिखाई नहीं दे रही हैं जो हमें इस मुसीबतों के सैलाब से बचा लें।" अब बताया जा रहा है कि अल्लाह और उसके रसूल के वादों का एक मतलब तो वह था जो ईमान के उन झूठे दावेदारों ने समझा था। दूसरा मतलब वह है जो इन सच्चे ईमानवाले मुसलमानों ने समझा। ख़तरे उमड़ते देखकर अल्लाह के वादे तो उनको भी याद आए, मगर ये वादे नहीं कि ईमान लाते ही उंगली हिलाए बिना तुम दुनिया के बादशाह हो जाओगे और फ़रिश्ते आकर तुम्हारी ताजपोशी की रस्म अदा करेंगे, बल्कि ये वादे कि सख़्त आज़माइशों से तुमको गुज़रना होगा, मुसीबतों के पहाड़ तुमपर टूट पड़ेंगे, बड़ी-से-बड़ी क़ुरबानियाँ तुमको देनी होंगी, तब कहीं जाकर अल्लाह की मेहरबानियाँ तुमपर होंगी और तुम्हें दुनिया और आख़िरत की वे कामयाबियाँ दी जाएँगी जिनका वादा अल्लाह ने अपने मोमिन बन्दों से किया है—

"क्या तुम लोगों ने यह समझ रखा है कि तुम जन्नत में बस यूँ ही दाख़िल हो जाओगे? हालाँकि अभी वे हालात तो तुमपर गुज़रे ही नहीं जो तुमसे पहले ईमान लानेवालों पर गुज़र

وَّتَسْلِيْمًا ﴿٢٢﴾ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ رِجَالٌ صَدَقُوْا مَا عَاهَدُوا اللّٰهَ عَلَيْهِ ۚ فَمِنْهُمْ

सिपुर्दगी (समर्पण भाव) को और ज़्यादा बढ़ा दिया।[38] (23) ईमान लानेवालों में ऐसे लोग मौजूद हैं जिन्होंने अल्लाह से किए हुए अहद (वचन) को सच्चा कर दिखाया है। उनमें से

चुके हैं। उनपर सख़्तियाँ और मुसीबतें आईं और वे हिला मारे गए, यहाँ कि रसूल और उसके साथी पुकार उठे कि कब आएगी अल्लाह की मदद—सुनो! अल्लाह की मदद क़रीब ही है।"

(सूरा-2 बक़रा, आयत-214)

"क्या लोगों ने यह समझ रखा है कि बस यह कहने पर वे छोड़ दिए जाएँगे कि 'हम ईमान लाए,' और उन्हें आज़माया न जाएगा? हालाँकि हमने उन सब लोगों को आज़माया है जो इनसे पहले गुज़रे हैं। अल्लाह को तो यह ज़रूर देखना है कि सच्चे कौन हैं और झूठे कौन।"

(सूरा-29 अनकबूत, आयतें-2, 3)

38. यानी मुसीबतों के इस सैलाब को देखकर उनके ईमान डगमगाने के बजाय और ज़्यादा बढ़ गए और अल्लाह की फ़रमाँबरदारी से भाग निकलने के बजाय वे और ज़्यादा यक़ीन और इत्मीनान के साथ अपना सब कुछ उसके हवाले कर देने पर तैयार हो गए।

इस जगह यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि ईमान और तस्लीम अस्ल में मन की एक ऐसी कैफ़ियत है जो दीन के हर हुक्म और हर माँग पर इम्तिहान में पड़ जाती है। दुनिया की ज़िन्दगी में हर-हर क़दम पर आदमी के सामने वे मौक़े आते हैं, जहाँ दीन या तो किसी चीज़ का हुक्म देता है या किसी चीज़ से मना करता है, या जान-माल और वक़्त और मेहनत और मन की ख़ाहिशों की क़ुरबानियों की माँग करता है। ऐसे हर मौक़े पर जो शख़्स ख़ुदा व रसूल की फ़रमाँबरदारी से मुँह मोड़ेगा, उसके ईमान और मानने में कमी हो जाएगी और जो शख़्स भी हुक्म के आगे सिर झुका देगा, उसके ईमान और इस्लाम में बढ़ोत्तरी होगी। अगरचे शुरू में आदमी सिर्फ़ इस्लाम के कलिमे को क़बूल कर लेने से मोमिन और मुस्लिम हो जाता है, लेकिन यह कोई ठहरी हुई या जमी हुई हालत नहीं है जो बस एक ही जगह पर ठहरी रहती हो, बल्कि इसमें घटने और बढ़ने दोनों के इमकान हैं। ख़ुलूस और हुक्म मानने में कमी उसके घटने का सबब होती है, यहाँ तक कि एक आदमी पीछे हटते-हटते ईमान की उस आख़िरी सरहद पर पहुँच जाता है जहाँ से बाल बराबर भी आगे बढ़ जाए तो मोमिन के बजाय मुनाफ़िक़ हो जाए। इसके बरख़िलाफ़ ख़ुलूस (निष्ठा) जितना ज़्यादा हो, फ़रमाँबरदारी जितनी मुकम्मल हो और सच्चे दीन (इस्लाम) की सरबुलन्दी के लिए लगन और धुन जितनी बढ़ती चली जाए, ईमान उसी हिसाब से बढ़ता चला जाता है, यहाँ तक कि आदमी 'सिद्दीक़ियत' (बेहद सच्चा होने) के मक़ाम तक पहुँच जाता है। लेकिन यह कमी-ज़्यादती जो कुछ भी है अख़्लाक़ी दर्जों में है, जिसका हिसाब अल्लाह के सिवा कोई नहीं लगा सकता। बन्दों के लिए ईमान बस एक ही इक़रार और मान लेने का नाम है जिससे हर मुसलमान

مَّنْ قَضٰى نَحْبَهٗ وَمِنْهُمْ مَّنْ يَّنْتَظِرُ ۖ وَمَا بَدَّلُوْا تَبْدِيْلًا ۝٢٣ لِّيَجْزِيَ اللّٰهُ
الصّٰدِقِيْنَ بِصِدْقِهِمْ وَيُعَذِّبَ الْمُنٰفِقِيْنَ اِنْ شَآءَ اَوْ يَتُوْبَ عَلَيْهِمْ ؕ
اِنَّ اللّٰهَ كَانَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۝٢٤ وَرَدَّ اللّٰهُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا بِغَيْظِهِمْ لَمْ يَنَالُوْا
خَيْرًا ؕ وَكَفَى اللّٰهُ الْمُؤْمِنِيْنَ الْقِتَالَ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ قَوِيًّا عَزِيْزًا ۝٢٥ وَاَنْزَلَ
الَّذِيْنَ ظَاهَرُوْهُمْ مِّنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ مِنْ صَيَاصِيْهِمْ وَقَذَفَ فِيْ

कोई अपनी नज़्र (मन्नत) पूरी कर चुका और कोई वक़्त आने का इन्तिज़ार कर रहा है।[39] उन्होंने अपने रवैये में कोई बदलाव नहीं किया। (24) (यह सब कुछ इसलिए हुआ) ताकि अल्लाह सच्चों को उनकी सच्चाई का अच्छा बदला दे और मुनाफ़िक़ों को चाहे तो सज़ा दे और चाहे तो उनकी तौबा क़बूल कर ले, बेशक अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।

(25) अल्लाह ने इनकार करनेवालों का मुँह फेर दिया, वे कोई फ़ायदा हासिल किए बिना अपने दिल की जलन लिए यों ही पलट गए और ईमानवालों की तरफ़ से अल्लाह ही लड़ने के लिए काफ़ी हो गया। अल्लाह बड़ी क़ुव्वतवाला और ज़बरदस्त है। (26) फिर अहले-किताब में से जिन लोगों ने हमला करनेवालों का साथ दिया था,[40] अल्लाह उनकी

इस्लाम में दाख़िल होता है और जब तक उसपर क़ायम रहे, मुसलमान माना जाता है। उसके बारे में हम यह नहीं कह सकते कि यह आधा मुसलमान है और यह चौथाई, या यह दो गुना मुसलमान है और यह तीन गुना। इसी तरह क़ानूनी हक़ों में सब मुसलमान बराबर हैं, यह नहीं हो सकता कि किसी को हम ज़्यादा मोमिन कहें और उसके अधिकार ज़्यादा हों और किसी को कम मोमिन ठहराएँ और उसके अधिकार कम हों। इन पहलुओं से ईमान के घटने-बढ़ने का कोई सवाल पैदा नहीं होता और अस्ल में इसी मानी में इमाम अबू-हनीफ़ा (रह०) ने यह कहा है कि "ईमान कम और ज़्यादा नहीं होता।" (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए, तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, हाशिया-2; सूरा-48 फ़तह, हाशिया-7)।

39. यानी कोई अल्लाह की राह में जान दे चुका है और कोई उसके लिए तैयार है कि वक़्त आए तो उसके दीन की ख़ातिर अपने ख़ून का नज़राना (तोहफ़ा) पेश कर दे।

40. यानी बनी-क़ुरैज़ा के यहूदी।

قُلُوبِهِمُ الرُّعْبَ فَرِيقًا تَقْتُلُونَ وَتَأْسِرُونَ فَرِيقًا ﴿٢٦﴾ وَأَوْرَثَكُمْ أَرْضَهُمْ
وَدِيَارَهُمْ وَأَمْوَالَهُمْ وَأَرْضًا لَّمْ تَطَئُوهَا ۚ وَكَانَ اللَّهُ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ
قَدِيرًا ﴿٢٧﴾ يَا أَيُّهَا النَّبِيُّ قُل لِّأَزْوَاجِكَ إِن كُنتُنَّ تُرِدْنَ الْحَيَاةَ الدُّنْيَا ع ٣ ١٩
وَزِينَتَهَا فَتَعَالَيْنَ أُمَتِّعْكُنَّ وَأُسَرِّحْكُنَّ سَرَاحًا جَمِيلًا ﴿٢٨﴾ وَإِن كُنتُنَّ
تُرِدْنَ اللَّهَ وَرَسُولَهُ وَالدَّارَ الْآخِرَةَ فَإِنَّ اللَّهَ أَعَدَّ لِلْمُحْسِنَاتِ مِنكُنَّ

गढ़ियों से उन्हें उतार लाया और उनके दिलों में उसने ऐसा रोब डाल दिया कि आज उनमें से एक गरोह को तुम क़त्ल कर रहे हो और दूसरे गरोह को क़ैद कर रहे हो। (27) उसने तुमको उनकी ज़मीन और उनके घरों और उनके मालों का वारिस बना दिया और वह इलाक़ा तुम्हें दिया जिसे तुमने कभी पैरों से न रौंदा था। अल्लाह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है।

(28) ऐ नबी![41] अपनी बीवियों से कहो, अगर तुम दुनिया और उसकी ज़ीनत (शोभा) चाहती हो तो आओ, मैं तुम्हें कुछ दे-दिलाकर भले तरीक़े से रुख़सत कर दूँ। (29) और अगर तुम अल्लाह और उसके रसूल और आख़िरत के घर की तलबगार हो तो जान लो कि तुममें से जो भले काम करनेवाली हैं अल्लाह ने उनके लिए बड़ा बदला

41. यहाँ से नम्बर-35 तक की आयतें अहज़ाब की जंग और बनी-क़ुरैज़ा से लगे हुए ज़माने में उतरी थीं। उनका पसमंज़र (पृष्ठभूमि) हम परिचय में मुख़्तसर तौर पर बयान कर आए हैं। सहीह मुस्लिम में हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह उस ज़माने का यह वाक़िआ बयान करते हैं कि एक दिन हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) और हज़रत उमर (रज़ि.) नबी (सल्ल.) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और देखा कि आप (सल्ल.) की बीवियाँ आप (सल्ल.) के पास बैठी हैं और आप (सल्ल.) चुप हैं। आप (सल्ल.) ने हज़रत उमर (रज़ि.) से कहा, "ये मेरे आस-पास बैठी हैं जैसा कि तुम देख रहे हो। ये मुझसे ख़र्च के लिए रुपये माँग रही हैं।" इसपर दोनों सहाबियों ने अपनी-अपनी बेटियों को डाँटा और उनसे कहा कि तुम अल्लाह के रसूल (सल्ल.) को तंग करती हो और वह चीज़ माँगती हो जो आप (सल्ल.) के पास नहीं है। इस वाक़िए से पता चलता है कि नबी (सल्ल.) उस वक़्त कैसी माली कठिनाइयों में मुब्तला थे और कुफ़्र और इस्लाम की बड़ी ही सख़्त कशमकश के ज़माने में ख़र्च के लिए पाक बीवियों के तक़ाज़े नबी (सल्ल.) पर क्या असर डाल रहे थे।

اَجۡرًا عَظِيۡمًا ۝٢٩ يٰنِسَآءَ النَّبِيِّ مَنۡ يَّاۡتِ مِنۡكُنَّ بِفَاحِشَةٍ مُّبَيِّنَةٍ يُّضٰعَفۡ

जुटाकर रखा है।[42]

(30) नबी की बीवियो, तुममें से जो किसी खुली बेहयाई की हरकत करेगी

42. इस आयत के उतरने के वक़्त नबी (सल्ल॰) के निकाह में चार बीवियाँ थीं, हज़रत सौदा (रज़ि॰), हज़रत आइशा (रज़ि॰), हज़रत हफ़सा (रज़ि॰) और हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि॰)। अभी हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) से नबी (सल्ल॰) का निकाह नहीं हुआ था। (अहकामुल-क़ुरआन लिइब्नुल-अरबी, एडीशन मिस्र 1958 ई॰, हिस्सा-3, पे॰ 1512-13)। जब यह आयत उतरी तो नबी (सल्ल॰) ने सबसे पहले हज़रत आइशा (रज़ि॰) से बात की और फ़रमाया, "मैं तुमसे एक बात कहता हूँ, जवाब देने में जल्दी न करना, अपने माँ-बाप की राय ले लो, फिर फ़ैसला करो।" फिर नबी (सल्ल॰) ने उनको बताया कि अल्लाह तआला की तरफ़ से यह हुक्म आया है और यह आयत उनको सुना दी। उन्होंने कहा, "क्या इस मामले को मैं अपने माँ-बाप से पूछूँ? मैं तो अल्लाह और उसके रसूल और आख़िरत को चाहती हूँ।" इसके बाद नबी (सल्ल॰) बाक़ी पाक बीवियों में से एक-एक के यहाँ गए और हर एक से यही बात कही और हर एक ने वही जवाब दिया जो हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने दिया था।

(हदीस : मुसनद अहमद, मुस्लिम, नसई)

इस्लामी ज़बान में इसको 'तख़ईर' कहते हैं, यानी बीवी को इस बात का इख़्तियार देना कि वह शौहर के साथ रहने या उससे अलग हा जाने के बीच किसी एक चीज़ का ख़ुद फ़ैसला कर ले। यह 'तख़ईर' नबी (सल्ल॰) पर वाजिब थी, क्योंकि अल्लाह तआला ने उसका नबी (सल्ल॰) को हुक्म दिया था। अगर पाक बीवियों में से कोई बीवी अलग होना पसन्द करती तो आप-से-आप अलग न हो जाती, बल्कि नबी (सल्ल॰) के अलग करने से अलग होती, जैसा कि आयत के अलफ़ाज़ "आओ मैं तुम्हें कुछ दे-दिलाकर भले तरीक़े से रुख़सत (विदा) कर दूँ" से ज़ाहिर होता है। लेकिन नबी (सल्ल॰) पर यह वाजिब था कि इस हालत में उनको अलग कर देते, क्योंकि नबी की हैसियत से आप (सल्ल॰) का यह मंसब न था कि अपना वादा पूरा न करते। अलग हो जाने के बाद बज़ाहिर यही मालूम होता है कि वह उम्महातुल-मोमिनीन (मुसलमानों की माओं) के दायरे से बाहर हो जातीं और उनसे किसी दूसरे मुसलमान का निकाह हराम न होता, क्योंकि वे दुनिया और उसकी ज़ीनत (शोभा) ही के लिए तो अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से अलग होतीं, जिसका हक़ उन्हें दिया गया था और ज़ाहिर है कि उनका यह मक़सद निकाह से महरूम हो जाने की हालत में पूरा न हो सकता था। दूसरी तरफ़ आयत का मंशा यह भी मालूम होता है कि जिन बीवियों ने अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) और आख़िरत के घर को पसन्द कर लिया उन्हें तलाक़ देने का इख़्तियार नबी (सल्ल॰) के लिए बाक़ी न रहा, क्योंकि 'तख़ईर' के दो ही पहलू थे। एक यह कि दुनिया को अपनाती हो तो तुम्हें अलग कर दिया जाए। दूसरा यह कि अल्लाह और उसके

रसूल (सल्ल॰) और आख़िरत के घर को अपनाती हो तो तुम्हें अलग न किया जाए। अब ज़ाहिर है कि इनमें से जो पहलू भी कोई बीवी अपनातीं उनके हक़ में दूसरा पहलू आप-से-आप मना हो जाता।

इस्लामी फ़िक़्ह में 'तख़ईर' अस्ल में तलाक़ का इख़्तियार सौंपने की हैसियत रखती है, यानी शौहर इस ज़रिए से बीवी को यह इख़्तियार दे देता है कि चाहे तो उसके निकाह में रहे, वरना अलग हो जाए। इस मसले में क़ुरआन और हदीस के हुक्मों में ग़ौर करके फ़ुक़हा ने जो अहकाम बयान किए हैं उनका ख़ुलासा यह है—

(1) यह इख़्तियार एक बार दे देने के बाद शौहर न तो उसे वापस ले सकता है और न औरत को उसके इस्तेमाल से रोक सकता है। अलबत्ता औरत के लिए लाज़िम नहीं है कि वह इस इख़्तियार को इस्तेमाल ही करे। वह चाहे तो शौहर के साथ रहने पर रज़ामन्दी ज़ाहिर कर दे, चाहे अलग होने का एलान कर दे और चाहे तो किसी चीज़ का इज़हार न करे और इस इख़्तियार को यूँ ही ख़त्म हो जाने दे।

(2) इस इख़्तियार के औरत को मिलने के लिए दो शर्तें हैं। एक यह कि शौहर ने या तो साफ़ अलफ़ाज़ में तलाक़ का इख़्तियार दिया हो, या अगर तलाक़ को साफ़ तौर से बयान न किया हो तो फिर उसकी नीयत यह इख़्तियार देने की हो। मसलन अगर वह कहे, "तुझे इख़्तियार है," या "तेरा मामला तेरे हाथ में है," तो इस तरह के इशारों में शौहर की नीयत के बिना तलाक़ का इख़्तियार औरत की तरफ़ न जाएगा। अगर औरत इसका दावा करे और शौहर क़सम खाकर यह बयान दे कि उसकी नीयत तलाक़ का इख़्तियार देने की न थी तो शौहर का बयान क़बूल किया जाएगा। सिवाय यह कि औरत इस बात की गवाही पेश कर दे कि ये अलफ़ाज़ नाराज़ी और झगड़े की हालत में, या तलाक़ की बातें करते हुए कहे गए थे, क्योंकि इस पसमंज़र में इख़्तियार देने का मतलब यही समझा जाएगा कि शौहर की नीयत तलाक़ का इख़्तियार देने की थी। दूसरे यह कि औरत को यह मालूम हो कि यह इख़्तियार उसे दिया गया है। अगर वह ग़ायब हो तो उसे इसकी ख़बर मिलनी चाहिए और अगर वह मौजूद हो तो उसे ये अलफ़ाज़ सुनने चाहिएँ। जब तक वह सुने नहीं, या उसे उसकी ख़बर न पहुँचे, इख़्तियार उसको न मिलेगा।

(3) अगर शौहर कोई वक़्त तय किए बिना आज़ादी के साथ उसको इख़्तियार दे तो औरत इस इख़्तियार को कब तक इस्तेमाल कर सकती है? इस मसले में फ़क़ीहों की अलग-अलग राय है। एक गरोह कहता है कि जिस बैठक में शौहर उससे यह बात कहे, उसी बैठक में औरत अपने इख़्तियार का इस्तेमाल कर सकती है। अगर वह कोई जवाब दिए बिना वहाँ से उठ जाए, या किसी ऐसे काम में लग जाए जो इस बात की दलील बनता हो कि वह जवाब देना नहीं चाहती, तो उसका इख़्तियार ख़त्म हो जाएगा। यह राय हज़रत उमर (रज़ि॰), हज़रत उसमान (रज़ि॰), हज़रत इब्ने-मसऊद (रज़ि॰), हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि॰), जाबिर-बिन-ज़ैद, अता, मुजाहिद, शअबी, नख़ई, इमाम मालिक, इमाम अबू-हनीफ़ा, इमाम शाफ़िई, इमाम औज़ाई, सुफ़ियान सौरी और अबू-सौर

(रह०) की है। दूसरी राय यह है कि उसका इख़्तियार उस बैठक तक महदूद (सीमित) नहीं है, बल्कि वह उसके बाद भी उसे इस्तेमाल कर सकती है। यह राय हज़रत हसन बसरी, क़तादा और ज़ुहरी (रह०) की है।

(4) अगर शौहर वक़्त तय कर दे, मसलन कहे कि एक महीने या एक साल तक तुझे इख़्तियार है, या इतनी मुद्दत तक तेरा मामला तेरे हाथ में है तो यह इख़्तियार उसी मुद्दत तक उसको हासिल रहेगा। अलबत्ता अगर वह कहे कि तू जब चाहे इस इख़्तियार को इस्तेमाल कर सकती है तो इस हालत में उसका इख़्तियार ग़ैर-महदूद होगा।

(5) औरत अगर अलग होना चाहे तो उसे साफ़-साफ़ अलफ़ाज़ में उसका इज़हार करना चाहिए। ग़ैर-वाज़ह अलफ़ाज़ जिनसे मक़सद वाज़ेह न होता हो, असरदार नहीं हो सकते।

(6) क़ानूनी तौर से शौहर की तरफ़ से औरत को इख़्तियार देने के तीन अन्दाज़ हो सकते हैं। एक यह कि वह कहे "तेरा मामला तेरे हाथ में है।" दूसरा यह कि वह कहे "तुझे इख़्तियार है।" तीसरा यह कि वह कहे, "तुझे तलाक़ है अगर तू चाहे।" इनमें से हर एक के क़ानूनी नतीजे अलग-अलग हैं—

अ, "तेरा मामला तेरे हाथ में है" के अलफ़ाज़ अगर शौहर ने कहे हों और औरत उसके जवाब में कोई साफ़ बात ऐसी कहे, जिससे ज़ाहिर हो कि वह अलग होती है तो हनफ़ी मसलक के नज़दीक एक तलाक़ 'बाइन' पड़ जाएगी (यानी उसके बाद शौहर को रुजू (मिलाप) करने का हक़ न होगा, लेकिन इद्दत गुज़र जाने पर ये दोनों फिर चाहें तो आपस में निकाह कर सकते हैं) और अगर शौहर ने कहा हो कि "एक तलाक़ की हद तक तेरा मामला तेरे हाथ में है" तो इस हालत में एक तलाक़ 'रजई' पड़ेगी (यानी इद्दत के अन्दर शौहर रुजू (मिलाप) कर सकता है)। लेकिन अगर शौहर ने मामला औरत के हाथ में देते हुए तीन तलाक़ की नीयत की हो, या उसको साफ़ बयान किया हो तो इस सूरत में औरत का इख़्तियार तलाक़ ही के मानी में लिया जाएगा, चाहे वह साफ़-साफ़ अपने ऊपर तीन तलाक़ क़ायम करे या सिर्फ़ एक बार कहे कि मैं अलग हो गई या मैंने अपने आपको तलाक़ दी।

ब, "तुझे इख़्तियार है" के अलफ़ाज़ के साथ अगर शौहर ने औरत को अलग होने का अधिकार दिया हो और औरत अलग होने को साफ़ तौर पर बयान कर दे तो हनफ़ी आलिमों के नज़दीक एक ही तलाक़ 'बाइन' पड़ेगी, चाहे शौहर की नीयत तीन तलाक़ का इख़्तियार देने की हो, अलबत्ता अगर शौहर की तरफ़ से तीन तलाक़ का इख़्तियार देने को साफ़ बयान किया गया हो तब औरत के तलाक़ के इख़्तियार से तीन तलाक़ें होंगी। इमाम शाफ़िई (रह०) के नज़दीक अगर शौहर ने इख़्तियार देते हुए तलाक़ की नीयत की हो और औरत अलग हो जाए तो एक तलाक़ 'रजई' होगी। इमाम मालिक (रह०) के नज़दीक जिस बीवी से हमबिस्तरी हो चुकी हो, उसपर तीन तलाक़ें पड़ जाएँगी, लेकिन अगर जिससे हमबिस्तरी न हुई हो उसके मामले में शौहर एक तलाक़ की नीयत का दावा करे तो उसे क़बूल कर लिया जाएगा।

ज, "तुझे तलाक़ है अगर तू चाहे" कहने की हालत में अगर औरत तलाक़ का इख़्तियार इस्तेमाल करे तो तलाक़ 'रजई' होगी, न कि 'बाइन'।

بِاٰيٰتِيْ وَلَا تَنِيَا فِيْ ذِكْرِيْ ﴿٤٢﴾ اِذْهَبَآ اِلٰى فِرْعَوْنَ اِنَّهٗ طَغٰى ﴿٤٣﴾ فَقُوْلَا لَهٗ
قَوْلًا لَّيِّنًا لَّعَلَّهٗ يَتَذَكَّرُ اَوْ يَخْشٰى ﴿٤٤﴾ قَالَا رَبَّنَآ اِنَّنَا نَخَافُ اَنْ يَّفْرُطَ
عَلَيْنَآ اَوْ اَنْ يَّطْغٰى ﴿٤٥﴾ قَالَ لَا تَخَافَآ اِنَّنِيْ مَعَكُمَآ اَسْمَعُ وَاَرٰى ﴿٤٦﴾ فَاْتِيٰهُ
فَقُوْلَآ اِنَّا رَسُوْلَا رَبِّكَ فَاَرْسِلْ مَعَنَا بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ ۙ وَلَا تُعَذِّبْهُمْ ۭ
قَدْ جِئْنٰكَ بِاٰيَةٍ مِّنْ رَّبِّكَ ۭ وَالسَّلٰمُ عَلٰي مَنِ اتَّبَعَ الْهُدٰى ﴿٤٧﴾
اِنَّا قَدْ اُوْحِيَ اِلَيْنَآ اَنَّ الْعَذَابَ عَلٰي مَنْ كَذَّبَ وَتَوَلّٰى ﴿٤٨﴾

मेरी निशानियों के साथ। और देखो, तुम मेरी याद में कोताही न करना। (43) जाओ तुम दोनों फ़िरऔन के पास कि वह सरकश हो गया है। (44) उससे नर्मी के साथ बात करना, शायद कि वह नसीहत क़बूल करे या डर जाए।''[18]

(45) दोनों ने[18अ] अर्ज़ किया, ''परवरदिगार, हमें अन्देशा है कि वह हमपर ज़्यादती करेगा या पिल पड़ेगा।'' (46) कहा, ''डरो मत, मैं तुम्हारे साथ हूँ, सब कुछ सुन रहा हूँ और देख रहा हूँ। (47) जाओ उसके पास और कहो कि हम तेरे रब के भेजे हुए हैं, बनी-इसराईल को हमारे साथ जाने के लिए छोड़ दे और उनको तकलीफ़ न दे। हम तेरे पास तेरे रब की निशानी लेकर आए हैं, और सलामती है उसके लिए जो सीधे रास्ते की पैरवी करे। (48) हमको वह्य से बताया गया है कि अज़ाब है उसके लिए जो झुठलाए और मुँह मोड़े।''[19]

18. आदमी के सीधे रास्ते पर आने की दो ही शक्लें हैं। या तो वह समझाने और नसीहत करने से मुत्मइन होकर सही रास्ता अपना लेता है, या बुरे अंजाम से डरकर सीधा हो जाता है।

18(अ). मालूम होता है कि यह उस वक़्त की बात है जब हज़रत मूसा (अलैहि०) मिस्र पहुँच गए और हज़रत हारून (अलैहि०) अमली तौर से उनके काम में शरीक हो गए। उस वक़्त फ़िरऔन के पास जाने से पहले दोनों ने अल्लाह तआला के सामने यह गुज़ारिश की होगी।

19. इस वाक़िए को बाइबल और तलमूद में जिस तरह बयान किया गया है उसे भी एक नज़र देख लीजिए, ताकि अन्दाज़ा हो कि क़ुरआन मजीद नबियों (अलैहि०) का ज़िक्र किस शान से करता है और बनी-इसराईल की रिवायतों में उनकी कैसी तस्वीर पेश की गई है। बाइबल का बयान है कि पहली बार जब ख़ुदा ने मूसा से कहा कि ''अब मैं तुझे फ़िरऔन के पास भेजता हूँ कि तू मेरी क़ौम बनी-इसराईल को मिस्र से निकाल लाए'' तो हज़रत मूसा ने जवाब में कहा कि ''मैं

قَالَ فَمَنْ رَّبُّكُمَا يٰمُوْسٰى ﴿٤٩﴾

(49) फ़िरऔन[20] ने कहा, "अच्छा तो फिर तुम दोनों का रब कौन है, ऐ मूसा?"[21]

कौन हूँ जो फ़िरऔन के पास जाऊँ और बनी-इसराईल को मिस्र से निकाल लाऊँ।" फिर ख़ुदा ने हज़रत मूसा को बहुत कुछ समझाया, उनकी ढाढ़स बंधाई, मोजिज़े दिए, मगर हज़रत मूसा (अलैहि.) ने फिर कहा तो यही कहा कि "ऐ ख़ुदावन्द, मैं तेरी मिन्नत करता हूँ किसी और के हाथ से जिसे तू चाहे, यह पैग़ाम भेज।" (निष्कासन, 4:13) तलमूद की रिवायत इससे भी कुछ क़दम आगे जाती है। उसका बयान यह है कि अल्लाह तआला और हज़रत मूसा (अलैहि.) के बीच सात दिन तक इसी बात पर तकरार होती रही। अल्लाह कहता रहा कि नबी बन, मगर मूसा (अलैहि.) कहते रहे कि मेरी ज़बान ही नहीं खुलती तो मैं नबी कैसे बन जाऊँ। आख़िर अल्लाह ने कहा कि मेरी ख़ुशी यह है कि तू नबी बन। इसपर हज़रत मूसा (अलैहि.) ने कहा कि लूत (अलैहि.) को बचाने के लिए आपने फ़रिश्ते भेजे। हाजरा जब सारा के घर से निकली तो उसके लिए पाँच फ़रिश्ते भेजे, और अब अपने ख़ास बच्चों (बनी-इसराईल) को मिस्र से निकलवाने के लिए आप मुझे भेज रहे हैं। इसपर ख़ुदा नाराज़ हो गया और उसने रिसालत में उनके साथ हारून को शरीक कर दिया और मूसा की औलाद को महरूम करके कहानत का मंसब हारून की औलाद को दे दिया—ये किताबें हैं जिनके बारे में बेशर्म लोग कहते हैं कि क़ुरआन में इनसे क़िस्से नक़्ल कर लिए गए हैं।

20. यहाँ क़िस्से की इन तफ़सीलात को छोड़ दिया गया है कि हज़रत मूसा (अलैहि.) किस तरह फ़िरऔन के पास पहुँचे और किस तरह अपनी दावत उसके सामने पेश की। ये तफ़सीलात सूरा-7 आराफ़, आयतें—100-108 में गुज़र चुकी हैं और आगे सूरा-26 शुअरा, आयतें—10-33; सूरा-28 क़सस, आयतें—28-40 और सूरा-79 नाज़िआत, आयतें—15-36 में आनेवाली हैं।

फ़िरऔन के बारे में ज़रूरी जानकारी के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, हाशिया-85 ।

21. दोनों भाइयों में से अस्ल दावत देनेवाले चूँकि मूसा (अलैहि.) थे, इसलिए फ़िरऔन ने उन्हीं से बात की। और हो सकता है कि बात का रुख़ उनकी तरफ़ रखने से उसका मक़सद यह भी हो कि वह हज़रत हारून की बोलने और तक़रीर करने की सलाहियत को मैदान में आने का मौक़ा न देना चाहता हो और तक़रीर करने के इस पहलू में हज़रत मूसा (अलैहि.) की कमज़ोरी से फ़ायदा उठाना चाहता हो जिसका ज़िक्र इससे पहले गुज़र चुका है।

फ़िरऔन के इस सवाल का मंशा यह था कि तुम दोनों किसे रब बना बैठे हो? मिस्र और मिस्रवालों का रब तो मैं हूँ। सूरा-79 नाज़िआत, आयत-24 में उसका यह एलान नक़्ल किया गया है कि "ऐ मिस्रवालो, तुम्हारा रब्बे-आला (सबसे बड़ा रब) मैं हूँ!" सूरा-43 ज़ुख़रुफ़ में वह भरे दरबार से कहता है, "ऐ क़ौम, क्या मिस्र की बादशाही मेरी नहीं है? और ये नहरें मेरे नीचे नहीं बह रही हैं?"(आयत-51) सूरा-28 क़सस में वह अपने दरबारियों के सामने यूँ हुंकारता है, "ऐ क़ौम के सरदारो! मैं नहीं जानता कि मेरे सिवा तुम्हारा कोई और भी इलाह (माबूद) है, ऐ

قَالَ رَبُّنَا الَّذِيْٓ اَعْطٰى كُلَّ شَيْءٍ خَلْقَهٗ ثُمَّ هَدٰى۝ قَالَ فَمَا بَالُ

(50) मूसा ने जवाब दिया, "हमारा रब वह है[22] जिसने हर चीज़ को उसकी सही शक्ल दी, फिर उसको रास्ता बताया।"[23] (51) फ़िरऔन बोला, "और पहले जो नस्लें गुज़र

हामान! ज़रा ईंटें पकवा और एक बुलन्द इमारत मेरे लिए तैयार करा; ताकि मैं ज़रा ऊपर चढ़कर देखूँ तो सही कि यह मूसा किसे इलाह बना रहा है।" (आयत-38) सूरा-26 शुअरा में वह हज़रत मूसा (अलैहि.) को डाँटकर कहता है कि "अगर तूने मेरे सिवा किसी को इलाह (माबूद) बनाया तो याद रख कि तुझे जेल भेज दूँगा।" (आयत-29)

इसका यह मतलब नहीं है कि फ़िरऔन अपनी क़ौम का अकेला माबूद था और वहाँ उसके सिवा किसी की पूजा और इबादत न होती थी। यह बात पहले गुज़र चुकी है कि फ़िरऔन ख़ुद सूरज देवता ('रअ' या 'राअ') के अवतार की हैसियत से बादशाही का हक़ जताता था, और यह बात भी मिस्र के इतिहास से साबित है कि उस क़ौम के धर्म में बहुत-से देवी-देवताओं की पूजा होती थी। इसलिए फ़िरऔन का दावा यह न था कि सिर्फ़ वही एक अकेला माबूद है जिसकी इबादत की जाए, बल्कि वह अमली तौर पर मिस्र की और नज़रिए के पहलू से अस्ल में सारे ही इनसानों की सियासी ख़ुदाई का दावेदार था और यह मानने के लिए तैयार न था कि उसके ऊपर कोई दूसरी हस्ती हाकिम हो जिसका नुमाइन्दा आकर उसे एक हुक्म दे और उसका हुक्म मानने की माँग उससे करे। कुछ लोगों को उसकी शेख़ी और डींग भरी बातों से यह ग़लतफ़हमी हुई है कि वह अल्लाह तआला के वुजूद को नहीं मानता था और ख़ुद ख़ुदा होने का दावा रखता था। मगर यह बात क़ुरआन से साबित है कि वह इस दुनिया से ऊपर किसी और की हुक्मरानी (सत्ता) को मानता था। सूरा-40 मोमिन, आयतें—28-34 और सूरा-43 ज़ुख़रुफ़ आयत-53 को ग़ौर से देखिए। ये आयतें इस बात की गवाही देती हैं कि अल्लाह तआला और फ़रिश्तों के वुजूद से उसको इनकार न था। अलबत्ता जिस चीज़ को मानने के लिए वह तैयार न था, वह यह थी कि उसकी सियासी ख़ुदाई में अल्लाह का कोई दख़ल हो और अल्लाह का कोई रसूल आकर उसपर हुक्म चलाए। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए—तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-28 क़सस, हाशिया-53)

22. यानी हम हर मानी में सिर्फ़ उसको रब मानते हैं। परवरदिगार, आक़ा, मालिक, हाकिम, सब कुछ हमारे नज़दीक वही है। किसी मानी में भी उसके सिवा कोई दूसरा रब हमें क़बूल नहीं है।

23. यानी दुनिया की हर चीज़ जैसी कुछ भी बनी हुई है, उसी के बनाने से बनी है। हर चीज़ को जो बनावट, जो शक्ल-सूरत जो ताक़त और सलाहियत, और जो ख़ूबी और ख़ासियत मिली हुई है, उसी की दी हुई है। हाथ को दुनिया में अपना काम करने के लिए जिस बनावट की ज़रूरत थी, वह उसको दी और पाँव को जो सबसे ज़्यादा मुनासिब बनावट चाहिए थी, वह उसको दी। इनसान, जानवर, पेड़-पौधे, जमादात (पत्थर, पहाड़, धातु वग़ैरा), हवा, पानी, रौशनी, हरेक चीज़ को उसने वह ख़ास सूरत दी है जो उसे कायनात में अपने हिस्से का काम ठीक-ठीक अंजाम देने के लिए चाहिए है।

الْقُرُوْنِ الْاُوْلٰى ﴿٥١﴾ قَالَ عِلْمُهَا عِنْدَ رَبِّيْ فِيْ كِتٰبٍ ۚ لَا

चुकी हैं, उनकी फिर क्या हालत थी?"[24] (52) मूसा ने कहा, "उसका इल्म मेरे रब के

फिर उसने ऐसा नहीं किया कि हर चीज़ को उसकी ख़ास बनावट देकर यों ही छोड़ दिया हो, बल्कि उसके बाद वही उन सब चीज़ों की रहनुमाई भी करता है। दुनिया की कोई चीज़ ऐसी नहीं है जिसे अपनी बनावट से काम लेने और अपनी पैदाइश के मक़सद को पूरा करने का तरीक़ा उसने न सिखाया हो। कान को सुनना और आँख को देखना उसी ने सिखाया है। मछली को तैरना और चिड़िया को उड़ना उसी की तालीम से आया है। पेड़ को फल-फूल देने और ज़मीन को पेड़-पौधे उगाने की हिदायत उसी ने दी है। कहने का मतलब यह कि वह सारी कायनात (सृष्टि) और उसकी हर चीज़ का सिर्फ़ पैदा करनेवाला ही नहीं, हिदायत देनेवाला और सिखानेवाला भी है।

इस बेमिसाल और बहुत-से मानी समेटे हुए इस मुख़्तसर से जुमले में हज़रत मूसा (अलैहि०) ने सिर्फ़ यही नहीं बताया कि उनका रब कौन है, बल्कि यह भी बता दिया कि वह क्यों रब है और किस लिए उसके सिवा किसी और को रब नहीं बनाया जा सकता। दावे के साथ उसकी दलील भी इसी छोटे-से जुमले में आ गई है। ज़ाहिर है कि जब फ़िरऔन और उसकी रिआया (जनता) का हर शख़्स अपने ख़ास वुजूद के लिए अल्लाह का एहसानमन्द है, और जब उनमें से कोई एक पल के लिए ज़िन्दा तक नहीं रह सकता जब तक उसका दिल और उसके फेफड़े और उसका मेदा (यकृत) और जिगर अल्लाह की दी हुई हिदायत से अपना काम न किए चले जाएँ तो फ़िरऔन का यह दावा कि वह लोगों का रब है, और लोगों का यह मानना कि वह सचमुच उनका रब है, एक बेवक़ूफ़ी और एक मज़ाक़ के सिवा कुछ नहीं हो सकता।

इसके अलावा इसी छोटे-से जुमले में हज़रत मूसा (अलैहि०) ने इशारे में इस बात की दलील भी पेश कर दी कि वे ख़ुदा के पैग़म्बर हैं जिसके मानने से फ़िरऔन को इनकार था। उनकी दलील में यह इशारा पाया जाता है कि ख़ुदा जो पूरी कायनात का रहनुमा है और जो हर चीज़ को उसकी हालत और ज़रूरत के मुताबिक़ हिदायत दे रहा है, उसके आलमगीर हिदायत के मंसब का लाज़िमी तक़ाज़ा यह है कि वह इनसान की शऊरी ज़िन्दगी के लिए भी रहनुमाई का इन्तिज़ाम करे। और इनसान की शऊरी ज़िन्दगी के लिए रहनुमाई की वह शक्ल मुनासिब नहीं हो सकती जो मछली और मुर्ग़ी की रहनुमाई के लिए मुनासिब है। उसकी सबसे ज़्यादा मुनासिब शक्ल यह है कि एक अक़्ल और समझ रखनेवाला इनसान उसकी तरफ़ से इनसानों की रहनुमाई पर मुक़र्रर हो और वह उनकी अक़्ल और समझ को अपील करके उन्हें सीधा रास्ता बताए।

24. यानी अगर बात यही है कि जिसने हर चीज़ को उसकी शक्ल और बनावट दी और ज़िन्दगी में काम करने का रास्ता बताया, उसके सिवा कोई दूसरा रब नहीं है; तो यह हम सबके बाप-दादा जो सैकड़ों सालों से नस्ल दर नस्ल दूसरे रबों (उपास्यों) की बन्दगी करते चले आ रहे हैं उनकी तुम्हारे नज़दीक क्या पोज़ीशन है? क्या वे सब गुमराह थे? क्या वे सब अज़ाब के

يَضِلُّ رَبِّىْ وَلَا يَنْسَى ﴿٥٢﴾ الَّذِىْ جَعَلَ لَكُمُ الْاَرْضَ مَهْدًا وَّسَلَكَ لَكُمْ

पास एक किताब में महफ़ूज़ है। मेरा रब न चूकता है, न भूलता है।''[25]— (53) वही[26] जिसने तुम्हारे लिए ज़मीन का फ़र्श बिछाया, और उसमें तुम्हारे चलने को रास्ते बनाए,

हक़दार थे? क्या उन सबकी अक़्लें मारी गई थीं? यह था फ़िरऔन के पास हज़रत मूसा (अलैहि०) की इस दलील का जवाब। हो सकता है कि फ़िरऔन ने यह जवाब नादानी की वजह से दिया हो और यह भी हो सकता है कि उसने शरारत में यह सवाल किया हो। और यह भी मुमकिन है कि इसमें दोनों बातें शामिल हों, यानी वह ख़ुद भी इस बात पर झल्ला गया हो कि इस मज़हब से हमारे तमाम बुज़ुर्ग गुमराह ठहरते हैं, और साथ-साथ इसका मक़सद यह भी हो कि अपने दरबारियों और मिस्र के आम लोगों के दिलों में हज़रत मूसा (अलैहि०) की दावत के ख़िलाफ़ एक तास्सुब (दुराग्रह) भड़का दे। हक़ के रास्ते पर चलनेवालों की तबलीग़ के ख़िलाफ़ यह हथकंडा हमेशा इस्तेमाल किया जाता रहा है और जाहिलों को भड़काने के लिए बड़ा असरदार साबित हुआ है। ख़ास तौर से उस ज़माने में जबकि क़ुरआन की ये आयतें उतरी हैं, मक्का में नबी (सल्ल०) की दावत को नीचा दिखाने के लिए सबसे ज़्यादा इसी हथकंडे से काम लिया जा रहा था। इसलिए हज़रत मूसा (अलैहि०) के मुक़ाबले में फ़िरऔन की इस मक्कारी का ज़िक्र यहाँ बिलकुल मौक़े के मुताबिक़ था।

25. यह एक बहुत हिकमत से भरा जवाब है जो हज़रत मूसा (अलैहि०) ने उस वक़्त दिया और इससे तबलीग़ करने की हिकमत का एक बेहतरीन सबक़ मिलता है। फ़िरऔन का मक़सद, जैसा कि ऊपर बयान हुआ है, सुननेवालों के और उनके ज़रिए से पूरी क़ौम के दिलों में तास्सुब की आग भड़काना था। अगर हज़रत मूसा (अलैहि०) कहते कि हाँ, वे सब जाहिल और गुमराह थे और सबके सब जहन्नम का ईंधन बनेंगे तो चाहे यह सच बोलने का बड़ा ज़बरदस्त नमूना होता; मगर यह जवाब हज़रत मूसा के बजाय फ़िरऔन के मक़सद को ज़्यादा पूरा करता। इसलिए हज़रत मूसा (अलैहि०) ने इन्तिहाई अक़्लमन्दी के साथ ऐसा जवाब दिया जो अपने आप में सच भी था और साथ-ही-साथ उसने फ़िरऔन के सारे ज़हरीले दाँत भी तोड़ दिए। उन्होंने फ़रमाया कि वे लोग जैसे कुछ भी थे, अपना काम करके ख़ुदा के यहाँ जा चुके हैं। मेरे पास उनके कामों और उनकी नीयतों को जानने का कोई ज़रिआ नहीं है कि उनके बारे में कोई बात कहूँ। उनका पूरा रिकॉर्ड अल्लाह के पास महफ़ूज़ है। उनकी एक-एक हरकत और उसको उन्होंने क्यों अंजाम दिया है, इन सब बातों को ख़ुदा जानता है। न ख़ुदा की निगाह से कोई चीज़ बची रह गई है और न उसकी याददाश्त से कोई चीज़ मिटी है। उनसे जो कुछ भी मामला ख़ुदा को करना है, उसको वही जानता है। मुझे और तुम्हें यह फ़िक्र नहीं होनी चाहिए कि उनका ख़याल या नज़रिया क्या था और उनका अंजाम क्या होगा। हमें तो इसकी फ़िक्र होनी चाहिए कि हमारा नज़रिया और रवैया क्या है और हमें किस अंजाम का सामना करना है।

26. बयान के अन्दाज़ से साफ़ महसूस होता है कि हज़रत मूसा (अलैहि०) का जवाब 'न भूलता है' पर ख़त्म हो गया, और यहाँ से आयत-55 तक की पूरी बात अल्लाह तआला की तरफ़ से

فِيهَا سُبُلًا وَّ اَنْزَلَ مِنَ السَّمَآءِ مَآءً ۖ فَاَخْرَجْنَا بِهٖۤ اَزْوَاجًا
مِّنْ نَّبَاتٍ شَتّٰى ﴿۵۳﴾ كُلُوْا وَ ارْعَوْا اَنْعَامَكُمْ ۖ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ
لِّاُولِي النُّهٰى ﴿۵۴﴾ مِنْهَا خَلَقْنٰكُمْ وَفِيْهَا نُعِيْدُكُمْ وَ مِنْهَا
نُخْرِجُكُمْ تَارَةً اُخْرٰى ﴿۵۵﴾ وَ لَقَدْ اَرَيْنٰهُ اٰيٰتِنَا كُلَّهَا فَكَذَّبَ

ع

और ऊपर से पानी बरसाया; फिर उसके ज़रिए से अलग-अलग तरह की पैदावार निकाली। (54) खाओ और अपने जानवरों को भी चराओ। यक़ीनन इसमें बहुत-सी निशानियाँ हैं अक़्ल रखनेवालों के लिए।[27] (55) इसी ज़मीन से हमने तुमको पैदा किया है; इसी में हम तुम्हें वापस ले जाएँगे और इसी से तुमको दोबारा निकालेंगे।[28]

(56) हमने फ़िरऔन को अपनी सभी निशानियाँ[29] दिखाईं, मगर वह झुठलाए चला

वाज़ेह करने और याददिहानी के तौर पर कही गई है। क़ुरआन में इस तरह की बहुत-सी मिसालें मौजूद हैं कि किसी गुज़रे हुए या आगे होनेवाले वाक़िए को बयान करते हुए जब किसी आदमी की कोई बात नक़्ल की जाती है तो उसके बाद फ़ौरन कुछ जुमले नसीहत करने या बात को समझाने या खोल और वाज़ेह करके बयान करने के लिए भी कहे जाते हैं और सिर्फ़ बात के अन्दाज़ से पता चल जाता है कि यह उस शख़्स की बात नहीं है जिसका पहले ज़िक्र हो रहा था, बल्कि यह अल्लाह तआला की अपनी बात है।

वाज़ेह रहे कि इस इबारत का ताल्लुक़ सिर्फ़ क़रीब के जुमले 'मेरा रब न चूकता है, न भूलता है' से ही नहीं है, बल्कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) की पूरी बात से है जो 'हमारा रब वह है जिसने हर चीज़ को उसकी शक्ल और बनावट दी' से शुरू हुआ है।

27. यानी जो लोग अक़्ले-सलीम (सद्बुद्धि) से काम लेकर सच्चाई को जानना चाहते हों, वे इन निशानों की मदद से सही मंज़िल तक पहुँचने का रास्ता मालूम कर सकते हैं। ये निशान उनको बता देंगे कि इस कायनात (सृष्टि) का एक रब है और रुबूबियत (प्रभुत्व) सारी की सारी उसी की है। किसी दूसरे के लिए यहाँ कोई गुंजाइश नहीं है।

28. यानी हर इनसान को लाज़िमी तौर पर तीन मरहलों से गुज़रना है। एक मरहला मौजूदा दुनिया में पैदाइश से लेकर मौत तक का, दूसरा मरहला मौत से क़ियामत तक का और तीसरा क़ियामत के दिन दोबारा ज़िन्दा होने के बाद का मरहला। ये तीनों मरहले इस आयत के मुताबिक़ इसी ज़मीन पर गुज़रनेवाले हैं।

29. यानी बाहरी दुनिया और ख़ुद इनसान के अन्दर की दलीलों की निशानियाँ भी और वे मोजिज़े भी जो हज़रत मूसा (अलैहि॰) को दिए गए थे। क़ुरआन में कई जगहों पर हज़रत मूसा (अलैहि॰) की वे तक़रीरें भी मौजूद हैं जो उन्होंने फ़िरऔन को समझाने के लिए की थीं। और

وَاَبٰی﴿۵۶﴾ قَالَ اَجِئۡتَنَا لِتُخۡرِجَنَا مِنۡ اَرۡضِنَا بِسِحۡرِكَ يٰمُوۡسٰی﴿۵۷﴾
فَلَنَاۡتِيَنَّكَ بِسِحۡرٍ مِّثۡلِهٖ فَاجۡعَلۡ بَيۡنَنَا وَبَيۡنَكَ مَوۡعِدًا لَّا

गया और न माना। (57) कहने लगा, "ऐ मूसा, क्या तू हमारे पास इसलिए आया है कि अपने जादू के ज़ोर से हमको हमारे देश से निकाल बाहर करे?[30] (58) अच्छा, हम भी तेरे मुक़ाबले में वैसा ही जादू लाते हैं। तय कर ले कब और कहाँ मुक़ाबला करना है। न

उन मोजिज़ों का भी ज़िक्र है जो उसको एक-के-बाद एक दिखाए गए।

30. जादू से मुराद असा (लाठी) और यदे-बैज़ा (चमकता हाथ) का मोजिज़ा है जो सूरा-7 आराफ़ और सूरा-26 शुअरा की तफ़सीलात के मुताबिक़ हज़रत मूसा (अलैहि०) ने पहली मुलाक़ात के वक़्त भरे दरबार में पेश किया था। इस मोजिज़े को देखकर फ़िरऔन पर जो बदहवासी छाई उसका अन्दाज़ा उसके इसी जुमले से किया जा सकता है कि "तू अपने जादू के ज़ोर से हमें हमारे देश से निकाल बाहर करना चाहता है।" दुनिया के इतिहास में न पहले कभी ऐसा हुआ था और न बाद में कभी हुआ कि किसी जादूगर ने अपने जादू के ज़ोर से कोई देश जीत लिया हो। फ़िरऔन के अपने देश में सैकड़ों-हज़ारों जादूगर मौजूद थे जो तमाशे दिखा-दिखाकर इनाम के लिए हाथ फैलाते फिरते थे। इसलिए फ़िरऔन का एक तरफ़ यह कहना कि तू जादूगर है और दूसरी तरफ़ यह ख़तरा ज़ाहिर करना कि तू मेरी सल्तनत छीन लेना चाहता है, खुली हुई घबराहट की निशानी है। अस्ल में वह हज़रत मूसा (अलैहि०) की मुनासिब और दलीलों से भरी तक़रीर सुनकर, और फिर उनके मोजिज़े को देखकर यह समझ गया था कि न सिर्फ़ उसके दरबारी, बल्कि उसकी रिआया के भी आम और ख़ास लोग उससे मुतास्सिर हुए बिना न रह सकेंगे। इसलिए उसने झूठ और फ़रेब और तास्सुबात (दुराग्रह) जैसी भड़कीली बातों से काम निकालने की कोशिश शुरू कर दी। उसने कहा, यह मोजिज़ा नहीं, जादू है और हमारी सल्तनत का हर जादूगर इसी तरह लाठी को साँप बनाकर दिखा सकता है। उसने कहा कि लोगो, ज़रा देखो, यह तुम्हारे बाप-दादा को गुमराह और जहन्नमी ठहराता है। उसने कहा कि लोगो, होशियार हो जाओ; यह पैग़म्बर-वैग़म्बर कुछ नहीं है, इक़तिदार का भूखा है; चाहता है कि यूसुफ़ के ज़माने की तरह फिर बनी-इसराईल यहाँ हुकूमत करने लगें और क़िब्ती क़ौम से हुकूमत छीन ली जाए। इन हथकंडों से वह हक़ की दावत को नीचा दिखाना चाहता था। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, हाशिए—87-89; सूरा-10 यूनुस, हाशिया-75) इस मक़ाम पर यह बात भी निगाह में रहनी चाहिए कि हर ज़माने में हुकूमत में बैठे लोगों ने हक़ की ओर बुलानेवालों को यही इलज़ाम दिया है कि वे अस्ल में हुकूमत के भूखे हैं और सारी बातें इसी मक़सद के लिए कर रहे हैं। इसकी मिसालों के लिए देखें—सूरा-7 आराफ़, आयतें-110, 123; सूरा-10 यूनुस, आयत-78; सूरा-23 मोमिनून, आयत-24।

نُخۡلِفُهٗ نَحۡنُ وَلَاۤ اَنۡتَ مَكَانًا سُوًى۝٥٨ قَالَ مَوۡعِدُكُمۡ يَوۡمُ الزِّيۡنَةِ
وَاَنۡ يُّحۡشَرَ النَّاسُ ضُحًى۝٥٩ فَتَوَلّٰى فِرۡعَوۡنُ فَجَمَعَ كَيۡدَهٗ ثُمَّ اَتٰى۝٦٠

हम इस क़रारदाद (प्रस्ताव) से फिरेंगे, न तू फिरना; खुले मैदान में सामने आ जा।"
(59) मूसा ने कहा, "जश्न का दिन तय हुआ, और दिन चढ़े लोग इकट्ठा हों।"[31]
(60) फ़िरऔन ने पलटकर अपने सारे हथकंडे जमा किए और मुक़ाबले में आ गया।[32]

31. फ़िरऔन का मक़सद यह था कि एक बार जादूगरों से लाठियों और रस्सियों का साँप बनवाकर दिखा दूँ तो मूसा के मोजिज़े का जो असर लोगों के दिलों पर हुआ है, वह दूर हो जाएगा। यह हज़रत मूसा (अलैहि॰) की मुँह माँगी मुराद थी। उन्होंने कहा कि अलग कोई दिन और जगह तय करने की क्या ज़रूरत है। जश्न का दिन क़रीब है जिसमें सारे देश के लोग राजधानी में खिंचकर आ जाते हैं। वहीं मेले के मैदान में मुक़ाबला हो जाए, ताकि सारी क़ौम देख ले। और वक़्त भी दिन की पूरी रौशनी का होना चाहिए, ताकि शक-शुब्हे के लिए कोई गुंजाइश न रहे।

32. फ़िरऔन और उसके दरबारियों की निगाह में इस मुक़ाबले की अहमियत यह थी कि वे इसी के फ़ैसले पर अपनी क़िस्मत के फ़ैसले का दारोमदार समझ रहे थे। सारे देश में आदमी दौड़ा दिए गए कि जहाँ-जहाँ कोई माहिर जादूगर मौजूद हो, उसे ले आएँ। इसी तरह आम लोगों को भी जमा करने के लिए ख़ास तौर पर उभारा गया; ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इकट्ठे हों और अपनी आँखों से जादू के कमाल देखकर मूसा (अलैहि॰) की लाठी के रोब से बच जाएँ। खुल्लम-खुल्ला कहा जाने लगा कि हमारे दीन का दारोमदार अब जादूगरों के करतब पर है। वे जीतें तो हमारा दीन बचेगा, वरना मूसा का दीन छाकर रहेगा (देखिए— सूरा-26 शुअरा, आयतें—34-51)।

इस मक़ाम पर यह हक़ीक़त भी सामने रहनी चाहिए कि मिस्र के शाही ख़ानदान और अमीर लोगों का मज़हब आम लोगों के मज़हब से काफ़ी अलग था। दोनों के देवता और मन्दिर अलग-अलग थे। मज़हबी काम और रस्में भी एक जैसी न थीं और मौत के बाद आनेवाली ज़िन्दगी के मामले में भी जिसको मिस्र में बहुत बड़ी अहमियत हासिल थी, दोनों के अमली तरीक़े और नज़री अंजाम में बहुत बड़ा फ़र्क़ पाया जाता था। (देखिए— Toynbee की A Study of History, page 31, 32)। इसके अलावा मिस्र में इससे पहले जो मज़हबी इंक़िलाब आए थे, उनकी वजह से वहाँ की आबादी में ऐसे बहुत-से लोग पैदा हो चुके थे जो एक मुशरिकाना मज़हब के मुक़ाबले में एक तौहीदी मज़हब (एकेश्वरवादी धर्म) को तरजीह देते थे या दे सकते थे। मिसाल के तौर पर ख़ुद बनी-इसराईल और उनके मज़हब को माननेवाले लोग आबादी का कम-से-कम दस फ़ीसद हिस्सा थे। इसके अलावा उस मज़हबी इंक़िलाब को अभी पूरे डेढ़ सौ साल भी न बीते थे जो फ़िरऔन अमीनूफ़िस या अख़्नातून (1377-1360 ई॰पू॰) ने हुकूमत के ज़ोर से बरपा किया था, जिसमें तमाम माबूदों को ख़त्म करके सिर्फ़ एक माबूद 'आतून' बाक़ी रखा गया था। हालाँकि इस इंक़िलाब को बाद में हुकूमत ही के ज़ोर से उलट दिया गया, मगर

قَالَ لَهُمْ مُّوسٰى وَيْلَكُمْ لَا تَفْتَرُوْا عَلَى اللّٰهِ كَذِبًا فَيُسْحِتَكُمْ
بِعَذَابٍ ۚ وَقَدْ خَابَ مَنِ افْتَرٰى ﴿٦١﴾ فَتَنَازَعُوْٓا اَمْرَهُمْ بَيْنَهُمْ وَاَسَرُّوا
النَّجْوٰى ﴿٦٢﴾ قَالُوْٓا اِنْ هٰذٰنِ لَسٰحِرٰنِ يُرِيْدٰنِ اَنْ يُّخْرِجٰكُمْ مِّنْ

(61) मूसा ने (ठीक मौक़े पर सामनेवाले गरोह को मुख़ातब करके) कहा,[33] "शामत के मारो, न झूठे इलज़ाम लगाओ अल्लाह पर,[34] वरना वह एक सख़्त अज़ाब से तुम्हारा सत्यानाश कर देगा। झूठ जिसने भी गढ़ा, वह नाकाम हुआ।"

(62) यह सुनकर उनके बीच इख़्तिलाफ़ (मतभेद) हो गया और वे चुपके-चुपके आपस में मशवरा करने लगे।[35] (63) आख़िरकार कुछ लोगों ने कहा,[36] "ये दोनों तो महज़ जादूगर हैं। इनका मक़सद यह है कि अपने जादू के ज़ोर से तुमको तुम्हारी

कुछ-न-कुछ तो अपने असरात वह भी छोड़ गया था। इन हालात को निगाह में रखा जाए तो फ़िरऔन की वह घबराहट अच्छी तरह समझ में आ जाती है जो उस मौक़े पर उसके अन्दर पैदा हो गई थी।

33. यह बात आम लोगों से नहीं कही गई थी जिन्हें अभी हज़रत मूसा (अलैहि॰) के बारे में यह फ़ैसला करना था कि वह मोजिज़ा दिखाते हैं या जादू, बल्कि यह बात फ़िरऔन और उसके दरबारियों से कही जा रही थी जो उन्हें जादूगर बता रहे थे।

34. यानी उसके मोजिज़े को जादू और उसके पैग़म्बर को महाझूठा जादूगर न कहो।

35. इससे मालूम होता है कि वे लोग अपने दिलों में अपनी कमज़ोरी को ख़ुद महसूस कर रहे थे। उनको मालूम था कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने जो कुछ दिखाया है, वह जादू नहीं है। वे पहले ही से उस मुक़ाबले में डरते और हिचकिचाते हुए आए थे, और जब बिलकुल मौक़े पर हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने ललकार कर उनको ख़बरदार किया तो उनका हौसला एकाएक डगमगा गया। उनका इख़्तिलाफ़ इस बात में हुआ होगा कि क्या इस बड़े त्योहार के मौक़े पर, जबकि पूरे देश से आए हुए आदमी इकट्ठे हैं, खुले मैदान और दिन की पूरी रौशनी में यह मुक़ाबला करना ठीक है या नहीं। अगर यहाँ हम हार गए और सबके सामने जादू और मोजिज़े का फ़र्क़ खुल गया तो फिर बात संभाले न संभल सकेगी।

36. और यह कहनेवाले ज़रूर ही फ़िरऔनी पार्टी के वे सिरफिरे लोग होंगे जो हज़रत मूसा (अलैहि॰) की मुख़ालफ़त में हर बाज़ी खेल जाने पर तैयार थे। दुनिया देखे हुए और मामलों की समझ रखनेवाले लोग क़दम आगे बढ़ाते हुए झिझक रहे होंगे। और ये सिरफिरे जोशीले लोग कहते होंगे कि ख़ाह-मख़ाह की दूर-अंदेशियाँ छोड़ दो और जी कड़ा करके मुक़ाबला कर डालो।

اَرْضِكُمْ بِسِحْرِهِمَا وَ يَذْهَبَا بِطَرِيْقَتِكُمُ الْمُثْلٰى۝٦٣ فَاَجْمِعُوْا
كَيْدَكُمْ ثُمَّ ائْتُوْا صَفًّا ۚ وَ قَدْ اَفْلَحَ الْيَوْمَ مَنِ اسْتَعْلٰى۝٦٤
قَالُوْا يٰمُوْسٰۤى اِمَّاۤ اَنْ تُلْقِيَ وَ اِمَّاۤ اَنْ نَّكُوْنَ اَوَّلَ مَنْ اَلْقٰى۝٦٥
قَالَ بَلْ اَلْقُوْا ۚ فَاِذَا حِبَالُهُمْ وَعِصِيُّهُمْ يُخَيَّلُ اِلَيْهِ مِنْ سِحْرِهِمْ

ज़मीन से बेदख़ल कर दें और तुम्हारे मिसाली तरीक़ा-ए-ज़िन्दगी का ख़ातिमा कर दें।[37] (64) अपनी सारी तदबीरें आज इकट्ठी कर लो और एका करके मैदान में आओ।[38] बस यह समझ लो कि आज जो ग़ालिब (प्रभावी) रहा, वही जीत गया।"

(65) जादूगर बोले,[39] "मूसा तुम फेंकते हो या पहले हम फेंकें?" (66) मूसा ने कहा, "नहीं, तुम्हीं फेंको।" यकायक उनकी रस्सियाँ और उनकी लाठियाँ उनके जादू के

37. यानी उन लोगों का दारोमदार दो बातों पर था। एक यह कि अगर जादूगर भी मूसा (अलैहि॰) की तरह लाठियों से साँप बनाकर दिखा देंगे तो मूसा का जादूगर होना आम लोगों के सामने साबित हो जाएगा। दूसरे यह कि वे तास्सुबात (दुराग्रह) की आग भड़काकर हुक्मराँ तबक़े को अंधा जोश दिलाना चाहते थे और इस बात से उन्हें डरा रहे थे कि मूसा के ग़ालिब आ जाने का मतलब तुम्हारे हाथों से देश निकल जाना और तुम्हारी मिसाली (Ideal) तरीक़ा-ए-ज़िन्दगी का ख़त्म हो जाना है। वे देश के बाअसर तबक़े को डरा रहे थे कि अगर मूसा के हाथ में ताक़त आ गई तो यह तुम्हारी तहज़ीब और यह तुम्हारी आर्ट और यह तुम्हारा ख़ूबसूरत और हसीन तमद्दुन (सभ्यता) और ये तुम्हारी तफ़रीहें, और ये तुम्हारी औरतों की आज़ादियाँ (जिनके शानदार नमूने हज़रत यूसुफ़ के ज़माने की औरतें पेश कर चुकी थीं) ग़रज़ वह सब कुछ, जिसके बिना ज़िन्दगी का कोई मज़ा नहीं, बर्बाद होकर रह जाएगा। इसके बाद तो निरे 'मुल्लापन' का राज होगा जिसे बरदाश्त करने से मर जाना अच्छा है।

38. यानी इनके मुक़ाबले में एकजुट हो जाओ। अगर इस वक़्त तुम्हारे बीच आपस ही में फूट पड़ गई और ठीक मुक़ाबले के वक़्त भरी भीड़ के सामने यह हिचकिचाहट और कानाफूसियाँ होने लगीं तो अभी हवा उखड़ जाएगी और लोग समझ लेंगे कि तुम ख़ुद अपने हक़ (सत्य) पर होने का यक़ीन नहीं रखते; बल्कि दिलों में चोर लिए हुए मुक़ाबले पर आए हो।

39. बीच की यह तफ़सील छोड़ दी गई कि इसपर फ़िरऔन के लोगों में फिर से हौसला और भरोसा पैदा हो गया और मुक़ाबला शुरू करने का फ़ैसला करके जादूगरों को हुक्म दे दिए गए कि मैदान में उतर आएँ।

اَنَّهَا تَسۡعٰى ۝٦٦ فَاَوۡجَسَ فِىۡ نَفۡسِهٖ خِيۡفَةً مُّوۡسٰى ۝٦٧ قُلۡنَا لَا تَخَفۡ اِنَّكَ
اَنۡتَ الۡاَعۡلٰى ۝٦٨ وَاَلۡقِ مَا فِىۡ يَمِيۡنِكَ تَلۡقَفۡ مَا صَنَعُوۡا ؕ اِنَّمَا صَنَعُوۡا

ज़ोर से मूसा को दौड़ती हुई महसूस होने लगीं,[40] (67) और मूसा अपने दिल में डर गया।[41] (68) हमने कहा, "मत डर, तू ही ग़ालिब रहेगा। (69) फेंक जो कुछ तेरे हाथ में है, अभी इनकी सारी बनावटी चीज़ों को निगले जाता है।[42] ये जो कुछ बनाकर लाए

40. सूरा-7 आराफ़ में बयान हुआ था कि "जब उन्होंने अपने-अपने अंक्षर फेंके तो लोगों की निगाहों पर जादू कर दिया और उन्हें डरा दिया।" (आयत-116) यहाँ बताया जा रहा है कि यह असर सिर्फ़ आम लोगों पर ही नहीं हुआ था, ख़ुद हज़रत मूसा (अलैहि॰) भी जादू के असर से मुतास्सिर हो गए थे। उनकी सिर्फ़ आँखों ही ने यह महसूस नहीं किया, बल्कि उनके ख़याल पर भी यह असर पड़ा कि लाठियाँ और रस्सियाँ साँप बनकर दौड़ रही हैं।

41. मालूम ऐसा होता है कि ज्यों ही हज़रत मूसा (अलैहि॰) की ज़बान से 'फेंको' का लफ़्ज़ निकला, जादूगरों ने एक साथ अपनी लाठियाँ और रस्सियाँ उनकी तरफ़ फेंक दीं और अचानक उनको यह नज़र आया कि सैकड़ों साँप दौड़ते हुए उनकी तरफ़ चले आ रहे हैं। इस मंज़र से फ़ौरी तौर पर अगर हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने एक डर अपने अन्दर महसूस किया हो तो यह कोई अजीब बात नहीं है। इनसान हर हाल में इनसान ही होता है, चाहे वह पैग़म्बर ही क्यों न हो, इनसानियत के तक़ाज़े उससे अलग नहीं हो सकते। इसके अलावा यह भी मुमकिन है कि उस वक़्त हज़रत मूसा (अलैहि॰) को यह डर लगा हो कि मोजिज़े से इतना ज़्यादा मिलता-जुलता मंज़र देखकर आम लोग ज़रूर आज़माइश में पड़ जाएँगे।

इस मक़ाम पर यह बात ज़िक्र करने के क़ाबिल है कि क़ुरआन यहाँ इस बात की तसदीक़ (पुष्टि) कर रहा है कि आम इनसानों की तरह पैग़म्बर भी जादू से मुतास्सिर हो सकता है। अगरचे जादूगर उसकी पैग़म्बरी छीन लेने, या उसके ऊपर उतरनेवाली वह्य में रुकावट डाल देने, या जादू के असर से उसको गुमराह कर देने की ताक़त नहीं रखता; लेकिन कुछ देर के लिए उसके जिस्म के हिस्सों पर कुछ हद तक असर ज़रूर डाल सकता है। इससे उन लोगों के ख़याल की ग़लती खुल जाती है जो हदीसों में नबी (सल्ल॰) पर जादू का असर होने की रिवायतें पढ़कर न सिर्फ़ उन रिवायतों को झुठलाते हैं, बल्कि इससे आगे बढ़कर तमाम हदीसों को भरोसा न करने लायक़ बताने लगते हैं।

42. हो सकता है कि मोजिज़े से जो अज़दहा (अजगर) पैदा हुआ था वह उन तमाम लाठियों और रस्सियों ही को निगल गया हो जो साँप बनी दिखाई दे रही थीं। लेकिन जिन अलफ़ाज़ में यहाँ और दूसरी जगहों पर क़ुरआन में इस वाक़िए को बयान किया गया है, उनसे बज़ाहिर गुमान यही होता है कि उसने लाठियों और रस्सियों को नहीं निगला, बल्कि उस जादू के असर को बेअसर कर दिया जिसकी वजह से वे साँप बनी दिखाई दे रही थीं। सूरा-7 आराफ़, आयत-117 और सूरा-26 शुअरा, आयत-45 में अलफ़ाज़ ये हैं, "जो झूठ वे बना रहे थे उसको वह निगले

كَيْدُ سٰحِرٍ ۭ وَلَا يُفْلِحُ السَّاحِرُ حَيْثُ اَتٰى ﴿٦٩﴾ فَاُلْقِيَ السَّحَرَةُ سُجَّدًا
قَالُوْٓا اٰمَنَّا بِرَبِّ هٰرُوْنَ وَمُوْسٰى ﴿٧٠﴾ قَالَ اٰمَنْتُمْ لَهٗ قَبْلَ اَنْ اٰذَنَ

हैं यह तो जादूगर का धोखा है, और जादूगर कभी कामयाब नहीं हो सकता, चाहे किसी शान से वह आए।" (70) आख़िर को यही हुआ कि सारे जादूगर सजदे में गिरा दिए गए[43] और पुकार उठे, "मान लिया हमने हारून और मूसा के रब को।"[44] (71) फ़िरऔन ने कहा, "तुम इसपर ईमान ले आए, इससे पहले कि मैं तुम्हें इसकी इजाज़त देता?

जा रहा था।" और यहाँ अलफ़ाज़ हैं, "वह निगल जाएगा उस चीज़ को जो उन्होंने बना रखी है।" अब यह ज़ाहिर है कि उनका झूठ और उनकी बनावट लाठियाँ और रस्सियाँ न थीं, बल्कि वह जादू था जिसकी बदौलत वे साँप बनी नज़र आ रही थीं। इसलिए हमारा ख़याल यह है कि जिधर-जिधर वह गया, लाठियों और रस्सियों को निगलकर इस तरह पीछे फेंकता चला गया कि हर लाठी, लाठी और हर रस्सी, रस्सी बनकर पड़ी रह गई।

43. यानी जब उन्होंने मूसा (अलैहि॰) की लाठी का कारनामा देखा तो उन्हें फ़ौरन यक़ीन आ गया कि यह यक़ीनन मोजिज़ा है, उनकी कला की चीज़ हरगिज़ नहीं है। इसलिए वे इस तरह एक साथ और बेइख़्तियार सजदे में गिरे, जैसे किसी ने उठा-उठाकर उनको गिरा दिया हो।

44. इसका मतलब यह है कि वहाँ सबको मालूम था कि यह मुक़ाबला किस बुनियाद पर हो रहा है। पूरी भीड़ में कोई भी इस ग़लतफ़हमी में न था कि मुक़ाबला मूसा और जादूगरों के करतब का हो रहा है और फ़ैसला इस बात का होना है कि किसका करतब ज़बरदस्त है। सब यह जानते थे कि एक तरफ़ मूसा (अलैहि॰) अपने आपको अल्लाह तआला, ज़मीन-आसमान के पैदा करनेवाले, के पैग़म्बर की हैसियत से पेश कर रहे हैं और अपनी पैग़म्बरी के सुबूत में यह दावा कर रहे हैं कि उनका असा (लाठी) मोजिज़े के तौर पर सचमुच अजगर बन जाता है। और दूसरी तरफ़ जादूगरों को सबके सामने बुलाकर फ़िरऔन यह साबित करना चाहता है कि असा से अजगर बन जाना मोजिज़ा नहीं है, बल्कि महज़ जादू का करतब है। दूसरे अलफ़ाज़ में, वहाँ फ़िरऔन और जादूगर और आम और ख़ास सारे तमाशा देखनेवाले इस मोजिज़े और जादू के फ़र्क़ को जानते थे, और इम्तिहान इस बात का हो रहा था कि मूसा (अलैहि॰) जो कुछ दिखा रहे हैं यह किसी तरह का जादू है या उस तरह का कोई मोजिज़ा है जो सारे जहानों के रब की क़ुदरत के करिश्मे के सिवा और किसी ताक़त से नहीं दिखाया जा सकता। यही वजह है कि जादूगरों ने अपने जादू को हारते देखकर यह नहीं कहा कि "हमने मान लिया, मूसा हमसे ज़्यादा कमाल दिखा सकता है," बल्कि उन्हें फ़ौरन यक़ीन आ गया कि मूसा (अलैहि॰) सचमुच अल्लाह, सारे जहान के रब, के सच्चे पैग़म्बर हैं। और वे पुकार उठे कि हम उस ख़ुदा को मान गए जिसके पैग़म्बर की हैसियत से मूसा और हारून आए हैं।

इससे अन्दाज़ा किया जा सकता है कि आम भीड़ पर इस हार के क्या असरात पड़े होंगे, और फिर पूरे देश पर इसका कैसा ज़बरदस्त असर हुआ होगा। फ़िरऔन ने देश के सबसे बड़े

لَكُمْ ۚ اِنَّهٗ لَكَبِيْرُكُمُ الَّذِىْ عَلَّمَكُمُ السِّحْرَ ۚ فَلَاُقَطِّعَنَّ
اَيْدِيَكُمْ وَ اَرْجُلَكُمْ مِّنْ خِلَافٍ وَّ لَاُوصَلِّبَنَّكُمْ فِىْ
جُذُوْعِ النَّخْلِ ۫ وَ لَتَعْلَمُنَّ اَيُّنَآ اَشَدُّ عَذَابًا وَّاَبْقٰى ﴿۷۱﴾

मालूम हो गया कि यह तुम्हारा गुरु है जिसने तुम्हें जादूगरी सिखाई थी।[45] अच्छा, अब मैं तुम्हारे हाथ-पाँव मुख़ालिफ़ सम्तों (दिशाओं) से कटवाता हूँ।[46] और खजूर के तनों पर तुमको सूली देता हूँ।[47] फिर तुम्हें पता चल जाएगा कि हम दोनों में से किसका अज़ाब ज़्यादा सख़्त और देर तक रहनेवाला है।"[48] (यानी मैं तुम्हें ज़्यादा सख़्त सज़ा दे सकता

मर्कज़ी (केन्द्रीय) मेले में यह मुक़ाबला इस उम्मीद पर कराया था कि जब मिस्र के हर कोने से आए हुए लोग अपनी आँखों से देख जाएँगे कि लाठी से साँप बना देना मूसा (अलैहि०) का कोई निराला कमाल नहीं है, हर जादूगर यह करतब दिखा लेता है तो मूसा (अलैहि०) की हवा उखड़ जाएगी। लेकिन उसकी यह तदबीर उसी पर उलट पड़ी और गाँव-गाँव से आए हुए लोगों के सामने ख़ुद जादूगरों ही ने एकजुट होकर इस बात की तसदीक़ कर दी कि मूसा जो कुछ दिखा रहे हैं यह उनकी कला की चीज़ नहीं है, यह सचमुच मोजिज़ा है जो सिर्फ़ ख़ुदा का पैग़म्बर ही दिखा सकता है।

45. सूरा-7 आराफ़, आयत-123 में अलफ़ाज़ ये हैं, "यह एक साज़िश है जो तुम लोगों ने राजधानी में मिलीभगत करके की है; ताकि मुल्क से उसके मालिकों को बेदख़ल कर दो।" यहाँ इस बात को और ज़्यादा तफ़सील के साथ बयान किया गया है कि तुम्हारे बीच सिर्फ़ मिलीभगत ही नहीं है, बल्कि मालूम यह होता है कि यह मूसा तुम्हारा सरदार और गुरु है। तुमने मोजिज़े से हार नहीं मानी है, बल्कि अपने उस्ताद से जादू में हार मानी है, और तुम आपस में यह तय करके आए हो कि अपने उस्ताद की बड़ाई साबित करके और उसे उसकी पैग़म्बरी का सुबूत बनाकर यहाँ सियासी इंक़िलाब ले आओ।

46. यानी एक तरफ़ का हाथ और दूसरी तरफ़ का पाँव।

47. सलीब या सूली देने का पुराना तरीक़ा यह था कि एक लम्बा शहतीर-सा लेकर ज़मीन में गाड़ देते थे, या किसी पुराने पेड़ का तना इस मक़सद के लिए इस्तेमाल करते थे और उसके ऊपर के सिरे पर एक तख़्ता आड़ा करके बाँध देते थे। फिर मुजरिम को ऊपर चढ़ाकर और उसके दोनों हाथ फैलाकर आड़े तख़्ते के साथ कीलें ठोक देते थे। इस तरह मुजरिम तख़्ते के बल लटका रह जाता था और घँटों सिसक-सिसककर जान दे देता था। सलीब (सूली) दिए हुए यह मुजरिम एक मुद्दत तक यूँ ही लटके रहने दिए जाते थे; ताकि लोग उन्हें देख-देखकर सबक़ हासिल करें।

48. यह हारी हुई बाज़ी जीत लेने के लिए फ़िरऔन का आख़िरी दाँव था। वह चाहता था कि जादूगरों को इन्तिहाई भयानक सज़ा से डराकर उनसे ये क़बूल करा ले कि वाक़ई यह उनकी

قَالُوْا لَنْ نُّؤْثِرَكَ عَلٰى مَا جَآءَنَا مِنَ الْبَيِّنٰتِ وَالَّذِيْ فَطَرَنَا فَاقْضِ مَآ
اَنْتَ قَاضٍ ؕ اِنَّمَا تَقْضِيْ هٰذِهِ الْحَيٰوةَ الدُّنْيَا ﴿۷۲﴾ اِنَّآ اٰمَنَّا بِرَبِّنَا لِيَغْفِرَ
لَنَا خَطٰيٰنَا وَمَآ اَكْرَهْتَنَا عَلَيْهِ مِنَ السِّحْرِ ؕ وَاللّٰهُ خَيْرٌ وَّاَبْقٰى ﴿۷۳﴾ اِنَّهٗ
مَنْ يَّاْتِ رَبَّهٗ مُجْرِمًا فَاِنَّ لَهٗ جَهَنَّمَ ؕ لَا يَمُوْتُ فِيْهَا وَلَا يَحْيٰى ﴿۷۴﴾ وَمَنْ

हूँ या मूसा)। (72) जादूगरों ने जवाब दिया, ''क़सम है उस हस्ती की जिसने हमें पैदा किया है, यह हरगिज़ नहीं हो सकता कि हम रौशन निशानियाँ सामने आ जाने के बाद भी (सच्चाई पर) तुझे तरजीह (प्राथमिकता) दें।[49] तू जो कुछ करना चाहे, कर ले। तू ज़्यादा-से-ज़्यादा बस इसी दुनिया की ज़िन्दगी का फ़ैसला कर सकता है। (73) हम तो अपने रब पर ईमान ले आए, ताकि वह हमारी ग़लतियाँ माफ़ कर दे और उस जादूगरी से, जिसपर तूने हमें मजबूर किया था, माफ़ कर दे। अल्लाह ही अच्छा है और वही बाक़ी रहनेवाला है।''—(74) हक़ीक़त यह है[50] कि जो मुजरिम बनकर अपने रब के सामने हाज़िर होगा; उसके लिए जहन्नम है, जिसमें वह न जिएगा, न मरेगा।[51] (75) और

और मूसा (अलैहि॰) की मिलीभगत थी और वे उनसे मिलकर हुकूमत के ख़िलाफ़ साज़िश कर चुके थे, मगर जादूगरों के इरादे की मज़बूती और जमाव ने उसका यह दाँव भी उलट दिया। उन्होंने इतनी भयानक सज़ा झेलने के लिए तैयार होकर दुनिया भर को यह यक़ीन दिला दिया कि साज़िश का इलज़ाम सिर्फ़ बिगड़ी हुई बात बनाने के लिए एक बेशर्मी भरी सियासी चाल के तौर पर गढ़ा गया है, और अस्ल हक़ीक़त यही है कि वे सच्चे दिल से इस बात पर ईमान ले आए हैं कि मूसा (अलैहि॰) अल्लाह के पैग़म्बर हैं।

49. दूसरा तर्जमा इस आयत का यह भी हो सकता है, ''यह हरगिज़ नहीं हो सकता कि हम उन खुली निशानियों के मुक़ाबले में जो हमारे सामने आ चुकी हैं, और उस हस्ती के मुक़ाबले में जिसने हमें पैदा किया है, तुझे तरजीह (प्राथमिकता) दें।''

50. यह जादूगरों की बात पर अल्लाह तआला का अपना इज़ाफ़ा है। बात का अन्दाज़ ख़ुद बता रहा है कि यह इबारत जादूगरों की बात का हिस्सा नहीं है।

51. यानी मौत और ज़िन्दगी के बीच लटकता रहेगा। न मौत आएगी कि उसकी तकलीफ़ और मुसीबत को ख़त्म कर दे और न जीने का ही कोई मज़ा उसे हासिल होगा कि ज़िन्दगी को मौत पर तरजीह दे सके। ज़िन्दगी से उकता गया होगा, मगर मौत नसीब न होगी; मरना चाहेगा, मगर मर न सकेगा। क़ुरआन मजीद में दोज़ख़ के अज़ाबों की जितनी तफ़सीलात दी गई हैं, उनमें अज़ाब की सबसे ज़्यादा डरावनी सूरत यही है जिसके ख़याल से रूह काँप उठती है।

يَّاْتِهٖ مُؤْمِنًا قَدْ عَمِلَ الصّٰلِحٰتِ فَاُولٰٓئِكَ لَهُمُ الدَّرَجٰتُ
الْعُلٰى ﴿٧٥﴾ جَنّٰتُ عَدْنٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ؕ
وَذٰلِكَ جَزٰٓؤُا مَنْ تَزَكّٰى ﴿٧٦﴾ وَلَقَدْ اَوْحَيْنَآ اِلٰى مُوْسٰٓى ۙ اَنْ اَسْرِ بِعِبَادِيْ
فَاضْرِبْ لَهُمْ طَرِيْقًا فِى الْبَحْرِ يَبَسًا ۙ لَّا تَخٰفُ دَرَكًا وَّلَا تَخْشٰى ﴿٧٧﴾

ع ٣ ١٢

जो उसके सामने मोमिन (ईमानवाले) की हैसियत से हाज़िर होगा, जिसने अच्छे काम किए होंगे, ऐसे सब लोगों के लिए बुलन्द दर्जे हैं, (76) सदाबहार बाग़ हैं जिनके नीचे नहरें बह रही होंगी; इनमें वे हमेशा रहेंगे। यह बदला है उस शख़्स का जो पाकीज़गी अपनाए। (77) हमने[52] मूसा पर वह्य की कि अब रातों-रात मेरे बन्दों को लेकर चल पड़, और उनके लिए समुद्र में से सूखी सड़क बना ले;[53] तुझे किसी के पीछा करने का ज़रा डर न हो और न (समुद्र के बीच से गुज़रते हुए) डर लगे।

52. बीच में उन हालात की तफ़सील छोड़ दी गई है जो उसके बाद मिस्र में रहने के लम्बे ज़माने में पेश आए। उन तफ़सीलात के लिए देखिए—सूरा-7 आराफ़, आयतें—130-147; सूरा-10 यूनुस, आयतें—83-92; सूरा-40 मोमिन, आयतें—23-50 और सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयतें—46-56)।

53. इस वाक़िए की तफ़सील यह है कि अल्लाह तआला ने आख़िरकार एक रात तय कर दी जिसमें तमाम इसराईली और ग़ैर-इसराईली मुसलमानों को (जिनके लिए 'मेरे बन्दों' का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है) मिस्र के हर हिस्से से हिजरत के लिए निकल पड़ना था। ये सब लोग एक तयशुदा मक़ाम पर इकट्ठे होकर एक क़ाफ़िले की शक्ल में रवाना हो गए। उस ज़माने में स्वेज़ नहर मौजूद न थी। लाल सागर से रोम सागर (Mediterranean) तक का पूरा इलाक़ा खुला हुआ था। मगर इस इलाक़े के तमाम रास्तों पर फ़ौजी छावनियाँ थीं, जिनसे ख़ैरियत के साथ गुज़रा नहीं जा सकता था। इसलिए हज़रत मूसा (अलैहि०) ने लाल सागर की तरफ़ जानेवाला रास्ता अपनाया। शायद उनका ख़याल यह था कि समन्दर के किनारे-किनारे चलकर जज़ीरा नुमा (प्रायद्वीप) सीना की तरफ़ निकल जाएँ। लेकिन उधर से फ़िरऔन एक बड़ी फ़ौज लेकर पीछा करता हुआ ठीक उस मौक़े पर आ पहुँचा, जबकि यह क़ाफ़िला अभी समन्दर के किनारे पर ही था।

सूरा-26 शुअरा, आयतें—61-63 में बयान हुआ है कि मुहाजिरों का क़ाफ़िला फ़िरऔन की फ़ौज और समन्दर के बीच बिलकुल घिर चुका था। ठीक उस वक़्त अल्लाह तआला ने हज़रत मूसा को हुक्म दिया कि "अपनी लाठी समन्दर पर मार।" (सूरा-7 आराफ़, आयत-107; सूरा-26 शुअरा, आयत-63) "फ़ौरन समन्दर फट गया और उसका हर टुकड़ा एक बड़े टीले की तरह

فَاَتْبَعَهُمْ فِرْعَوْنُ بِجُنُوْدِهٖ فَغَشِيَهُمْ مِّنَ الْيَمِّ مَا غَشِيَهُمْ ۝٧٨ وَ
اَضَلَّ فِرْعَوْنُ قَوْمَهٗ وَمَا هَدٰى ۝٧٩

(78) पीछे से फ़िरऔन अपने लश्कर लेकर पहुँचा, और फिर समुद्र उनपर छा गया, जैसा कि छा जाने का हक़ था।[54] (79) फ़िरऔन ने अपनी क़ौम को गुमराह ही किया था, कोई सही रहनुमाई नहीं की थी।[55]

खड़ा हो गया।'' (सूरा-26 शुअरा, आयत-63) और बीच में सिर्फ़ यही नहीं कि क़ाफ़िले के गुज़रने के लिए रास्ता निकल आया, बल्कि बीच का यह हिस्सा, ऊपर की आयत के मुताबिक़, सूखकर सूखी सड़क की तरह बन गया। यह साफ़ और खुले मोजिज़े का बयान है और इससे उन लोगों के बयान की ग़लती साफ़ सामने आ जाती है जो कहते हैं कि हवा के तूफ़ान या ज्वार-भाटे की वजह से समन्दर हट गया था। इस तरह जो पानी हटता है, वह दोनों तरफ़ टीलों के रूप में खड़ा नहीं हो जाता और बीच का हिस्सा सूखकर सड़क की तरह नहीं बन जाता (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-26 शुअरा, हाशिया-47)

54. सूरा-26 शुअरा में बयान हुआ है कि मुहाजिरों के गुज़रते ही फ़िरऔन अपने लश्कर सहित समन्दर के इस दरमियानी रास्ते में उतर आया (आयतें—64-66)। यहाँ बयान किया गया है कि समन्दर ने उसको और उसके लश्कर को दबोच लिया। सूरा-2 बक़रा में कहा गया है कि बनी-इसराईल समन्दर के दूसरे किनारे पर से फ़िरऔन और उसके लश्कर को डूबते हुए देख रहे थे (आयत-50) और सूरा-10 यूनुस में बताया गया है कि डूबते वक़्त फ़िरऔन पुकार उठा, ''मैं मान गया कि कोई ख़ुदा नहीं है, उस ख़ुदा के सिवा जिसपर बनी-इसराईल ईमान लाए हैं, और मैं भी फ़रमाँबरदारों में से हूँ।'' (आयत-90) मगर इस आख़िरी पल के ईमान को क़बूल न किया गया और जवाब मिला, ''अब ईमान लाता है? और पहले यह हाल था कि नाफ़रमानी करता रहा और बिगाड़ फैलाता चला गया। अच्छा, आज हम तेरी लाश को बचाए लेते हैं; ताकि तू बादवाली नस्लों के लिए इबरत का निशान बना रहे।'' (आयतें—91, 92)

55. बड़े लतीफ़ (सूक्ष्म) अन्दाज़ में मक्का के इस्लाम-दुश्मनों को ख़बरदार किया जा रहा है कि तुम्हारे सरदार और लीडर भी तुमको उसी रास्ते पर लिए जा रहे हैं जिसपर फ़िरऔन अपनी क़ौम को ले जा रहा था। अब तुम ख़ुद देख लो कि यह कोई सही रहनुमाई न थी।

इस क़िस्से को ख़त्म करते हुए मुनासिब मालूम होता है कि बाइबल के बयानों का भी जायज़ा ले लिया जाए; ताकि उन लोगों के झूठ की हक़ीक़त खुल जाए जो कहते हैं कि क़ुरआन में ये क़िस्से बनी-इसराईल से नक़्ल कर लिए गए हैं। बाइबल की किताब निष्कासन (Exodus) में इस क़िस्से की जो तफ़सीलात बयान हुई हैं, उनकी ये बातें ध्यान देने के क़ाबिल हैं—

(1) अध्याय-4, आयतें—2-5 में बताया गया है कि असा का मोजिज़ा हज़रत मूसा को दिया गया था। और आयत—17 में उन्हीं को यह हिदायत की गई है कि ''तू इस लाठी को अपने हाथ में लिए जा और इसी से इन मोजिज़ों को दिखाना।'' मगर आगे जाकर न जाने यह लाठी किस

तरह हज़रत हारून के क़ब्ज़े में चली गई और वही उससे मोजिज़े दिखाने लगे। अध्याय-7 से लेकर बाद के अध्यायों में लगातार हमको हज़रत हारून ही लाठी के मोजिज़े दिखाते नज़र आते हैं।

(2) अध्याय-5 में फ़िरऔन से हज़रत मूसा (अलैहि॰) की पहली मुलाक़ात का हाल बयान किया गया है, और उसमें सिरे से उस बहस का कोई ज़िक्र ही नहीं है जो अल्लाह तआला की तौहीद और उसके रब होने के मसले पर उनके और फ़िरऔन के बीच हुई थी। फ़िरऔन कहता है कि "ख़ुदावन्द कौन है कि मैं उसकी बात मानूँ और बनी-इसराईल को जाने दूँ? मैं ख़ुदावन्द को नहीं जानता।" मगर हज़रत मूसा (अलैहि॰) और हारून इसके सिवा कुछ जवाब नहीं देते कि "इबरानियों का ख़ुदा हमसे मिला है।" (अध्याय-5, आयतें-2, 3)

(3) जादूगरों से मुक़ाबले की पूरी दास्तान बस इन चन्द जुमलों में समेट दी गई है—

"और ख़ुदावन्द ने मूसा और हारून से कहा कि जब फ़िरऔन तुमको कहे कि अपना मोजिज़ा दिखाओ तो हारून से कहना कि अपनी लाठी को लेकर फ़िरऔन के सामने डाल दे; ताकि वह साँप बन जाए। और मूसा और हारून फ़िरऔन के पास गए और उन्होंने ख़ुदावन्द के हुक्म के मुताबिक़ किया और हारून ने अपनी लाठी फ़िरऔन और उसके सेवकों के सामने डाल दी और वह साँप बन गई, तब फ़िरऔन ने भी अक़्लमन्दों और जादूगरों को बुलवाया और मिस्र के जादूगरों ने भी अपने जादू से ऐसा ही किया; क्योंकि उन्होंने भी अपनी-अपनी लाठी सामने डाली और वे साँप बन गईं। लेकिन हारून की लाठी उनकी लाठियों को निगल गई।"

(अध्याय-7, आयतें—8-12)

इस बयान का मुक़ाबला क़ुरआन के बयान से करके देख लिया जाए कि क़िस्से की सारी रूह यहाँ किस बुरी तरह मिटा दी गई है। सबसे ज़्यादा अजीब बात यह है कि जश्न के दिन खुले मैदान में बाक़ायदा चैलेंज के बाद मुक़ाबला होना, और फिर हार जाने के बाद जादूगरों का ईमान लाना जो क़िस्से की अस्ल जान था, सिरे से यहाँ उसका ज़िक्र ही नहीं है।

(4) क़ुरआन कहता है कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) की माँग बनी-इसराईल की रिहाई और आज़ादी की थी। बाइबल का बयान है कि माँग सिर्फ़ यह थी, "हमको इजाज़त दे कि हम रेगिस्तान की तीन दिन की मंज़िल में जाकर ख़ुदावन्द, अपने ख़ुदा के लिए क़ुरबानी करें।"

(अध्याय-5, आयत-3)

(5) मिस्र से निकलने और फ़िरऔन के डूबने का तफ़सीली हाल अध्याय-11 से 14 तक बयान किया गया है। इसमें बहुत-सी फ़ायदेमन्द मालूमात और क़ुरआन में बयान की गई मुख़्तसर बातों की तफ़सीलात भी हमें मिलती हैं और उनके साथ कई अजीब बातें भी। मिसाल के तौर पर अध्याय-14 की आयतें-15, 16 में हज़रत मूसा को हुक्म दिया जाता है कि "तू अपनी लाठी (जी हाँ, अब लाठी हज़रत हारून से लेकर फिर मूसा अलैहि॰ को दे दी गई है) उठाकर अपना हाथ समन्दर के ऊपर बढ़ा और उसे दो हिस्से कर और बनी-इसराईल समन्दर के बीच में से सूखी ज़मीन पर चलकर निकल जाएँगे।" लेकिन आगे चलकर आयतें-21, 22 में कहा जाता है कि "फिर मूसा ने अपना हाथ समन्दर के ऊपर बढ़ाया और ख़ुदावन्द ने रात भर तेज़ पूर्वी आँधी चलाकर और समन्दर को पीछे हटाकर उसे सूखी ज़मीन बना दिया और पानी दो हिस्से हो गया और बनी-इसराईल समन्दर के बीच में से सूखी ज़मीन पर चलकर निकल गए और

يٰبَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ قَدْ اَنْجَيْنٰكُمْ مِّنْ عَدُوِّكُمْ وَ وٰعَدْنٰكُمْ جَانِبَ الطُّوْرِ الْاَيْمَنَ وَ نَزَّلْنَا عَلَيْكُمُ الْمَنَّ وَ السَّلْوٰى۝۸۰ كُلُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا رَزَقْنٰكُمْ وَ لَا تَطْغَوْا فِيْهِ فَيَحِلَّ عَلَيْكُمْ

(80) ऐ बनी-इसराईल,[56] हमने तुमको तुम्हारे दुश्मन से नजात दी, और तूर के दाहिनी तरफ़[57] तुम्हारी हाज़िरी के लिए वक़्त मुक़र्रर किया[58] और तुमपर 'मन्न' और 'सलवा' उतारा।[59]—(81) खाओ हमारी दी हुई पाक रोज़ी और उसे खाकर सरकशी न

उनके दाहिने और बाएँ हाथ पानी दीवार की तरह था।"

यह बात समझ में नहीं आई कि क्या यह मोजिज़ा था या क़ुदरती वाक़िआ? अगर मोजिज़ा था तो असा की चोट पड़ते ही ज़ाहिर हो गया होगा, जैसा कि क़ुरआन में कहा गया है। और अगर क़ुदरती वाक़िआ था तो यह अजीब सूरत है कि पूर्वी आँधी ने समन्दर को बीच में से फाड़कर पानी को दोनों तरफ़ दीवार की तरह खड़ा कर दिया और बीच में से सूखा रास्ता बना दिया। क्या फ़ितरी तरीक़े से हवा कभी ऐसे करिश्मे दिखाती है?

तलमूद का बयान इसके मुक़ाबले बाइबल से अलग और क़ुरआन से ज़्यादा क़रीब है, मगर दोनों का मुक़ाबला करने से साफ़ महसूस हो जाता है कि एक जगह सीधे तौर पर वह्य के इल्म की बुनियाद पर वाक़िआत बयान किए जा रहे हैं, और दूसरी जगह सदियों की एक दूसरे से सुनी हुई रिवायतों में वाक़िआत की सूरत अच्छी-ख़ासी बिगड़ गई है। देखिए —The Talmud Selections, H. Polano. pp. 150-154

56. समन्दर को पार करने से लेकर सीना पहाड़ के दामन में पहुँचने तक की दास्तान बीच में छोड़ दी गई है। इसकी तफ़सीलात सूरा-7 आराफ़, आयतें—138-198 में गुज़र चुकी हैं। और वहाँ यह भी गुज़र चुका है कि मिस्र से निकलते ही बनी-इसराईल प्रायद्वीप सीना के एक मन्दिर को देखकर अपने लिए एक बनावटी ख़ुदा माँग बैठे थे।

(तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, हाशिया-98)

57. यानी तूर के पूर्वी दामन में।

58. सूरा-2 बक़रा, आयत-51 और सूरा-7 आराफ़, आयत-142 में यह बात बयान की गई है कि अल्लाह तआला ने बनी-इसराईल को शरीअत का हिदायतनामा देने के लिए चालीस दिन की मुद्दत मुक़र्रर की थी जिसके बाद हज़रत मूसा को पत्थर की तख़्तियों पर लिखे हुए हुक्म अता किए गए।

59. 'मन्न' और 'सलवा' की तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, हाशिया-73; सूरा-7 आराफ़, हाशिया-119। बाइबल का बयान है कि मिस्र से निकलने के बाद जब बनी-इसराईल सीन के जंगल में एलियम और सीना के बीच से गुज़र रहे थे और खाने के

غَضَبِيْ ۚ وَمَنْ يَّحْلِلْ عَلَيْهِ غَضَبِيْ فَقَدْ هَوٰى ﴿٨١﴾ وَاِنِّيْ لَغَفَّارٌ لِّمَنْ
تَابَ وَاٰمَنَ وَعَمِلَ صَالِحًا ثُمَّ اهْتَدٰى ﴿٨٢﴾

करो, वरना तुमपर मेरा ग़ज़ब (प्रकोप) टूट पड़ेगा। और जिसपर मेरा ग़ज़ब टूटा, वह फिर गिरकर ही रहा। (82) अलबत्ता जो तौबा कर ले और ईमान ले आए और अच्छे काम करे, फिर सीधा चलता रहे, उसके लिए मैं बहुत माफ़ करनेवाला हूँ।[60]

भंडार ख़त्म होकर भूखे रहने की नौबत आ गई थी, उस वक़्त 'मन्न' और 'सलवा' का उतरना शुरू हुआ, और फ़िलिस्तीन के आबाद इलाक़े में पहुँचने तक पूरे चालीस साल यह सिलसिला जारी रहा। (निर्गमन, अध्याय-16; गिनती, अध्याय-11, आयत–7-9; यशूअ, अध्याय-5, आयत-12) निर्गमन की किताब में 'मन्न' और 'सलवा' की यह कैफ़ियत बयान की गई है–

"और यूँ हुआ कि शाम को इतनी बटेरें आईं कि उनकी ख़ेमागाह को ढाँक लिया। और सुबह को ख़ेमागाह के आसपास ओस पड़ी हुई थी और जब वह ओस जो पड़ी थी, सूख गई तो क्या देखते हैं कि वीराने में एक छोटी-छोटी गोल-गोल चीज़, ऐसी छोटी जैसे पाले के दाने होते हैं, ज़मीन पर पड़ी है। बनी-इसराईल उसे देखकर आपस में कहने लगे 'मन्न'? क्योंकि वे नहीं जानते थे कि वह क्या है।" (अध्याय-16, आयत–13-15)

"और बनी-इसराईल ने उसका नाम 'मन्न' रखा और वह धनिए के बीज की तरह सफ़ेद और उसका मज़ा शहद के बने हुए पूए की तरह था।" (आयत-31)

गिनती में उसकी और ज़्यादा तशरीह यह मिलती है–

"लोग इधर-उधर जाकर उसे इकट्ठा करते और उसे चक्की में पीसते या ओखली में कूट लेते थे। फिर उसे हाँडियों में उबालकर रोटियाँ बनाते थे। उसका मज़ा ताज़ा तेल जैसा था। और रात को जब छावनी में ओस पड़ती तो उसके साथ मन्न भी गिरता था।" (अध्याय-11, आयतें-8, 9)

यह भी एक मोजिज़ा था; क्योंकि 40 साल बाद जब बनी-इसराईल के लिए खाने के क़ुदरती ज़रिए मिल गए तो यह सिलसिला बन्द कर दिया गया। अब न उस इलाक़े में बहुत ज़्यादा बटेरें ही मौजूद हैं, न मन्न ही कहीं पाया जाता है। खोज-बीन करनेवालों ने उन इलाक़ों को छान मारा है, जहाँ बाइबल के बयान के मुताबिक़ बनी-इसराईल 40 साल तक जंगल-जंगल घूमे थे। मन्न उनको कहीं न मिला। अलबत्ता कारोबारी लोग ख़रीदारों को बेवक़ूफ़ बनाने के लिए मन्न का हलवा ज़रूर बेचते फिरते हैं।

60. यानी मग़फ़िरत और माफ़ी के लिए चार शर्तें हैं। एक तौबा, यानी सरकशी और नाफ़रमानी या शिर्क और कुफ़्र से बाज़ आ जाना। दूसरी ईमान, यानी अल्लाह और रसूल और किताब और आख़िरत को सच्चे दिल से मान लेना। तीसरी 'अच्छे काम', यानी अल्लाह और रसूल की हिदायतों के मुताबिक़ नेक अमल करना। चौथी 'इहतदा', यानी सीधे रास्ते पर मज़बूती के साथ

وَمَآ اَعْجَلَكَ عَنْ قَوْمِكَ يٰمُوْسٰى﴿۸۳﴾ قَالَ هُمْ اُولَآءِ عَلٰٓى اَثَرِىْ وَعَجِلْتُ
اِلَيْكَ رَبِّ لِتَرْضٰى﴿۸۴﴾ قَالَ فَاِنَّا قَدْ فَتَنَّا قَوْمَكَ مِنْۢ بَعْدِكَ وَ
اَضَلَّهُمُ السَّامِرِىُّ﴿۸۵﴾ فَرَجَعَ مُوْسٰٓى اِلٰى قَوْمِهٖ غَضْبَانَ اَسِفًا ۚ قَالَ

---

(83) और[61] क्या चीज़ तुम्हें अपनी क़ौम से पहले ले आई,[62] मूसा? (84) उसने अर्ज़ किया, "वह बस मेरे पीछे आ ही रहे हैं। मैं जल्दी करके तेरे सामने आ गया हूँ, ऐ मेरे रब; ताकि तू मुझसे ख़ुश हो जाए।" (85) कहा, "अच्छा तो सुनो, हमने तुम्हारे पीछे तुम्हारी क़ौम को आज़माइश में डाल दिया और सामरी[63] ने उन्हें गुमराह कर डाला।"

(86) मूसा सख़्त ग़ुस्से और रंज की हालत में अपनी क़ौम की तरफ़ पलटा। जाकर

जमे रहना और फिर ग़लत रास्ते पर न जा पड़ना।

61. यहाँ से बयान का सिलसिला उस वाक़िए के साथ जुड़ता है जो अभी ऊपर बयान हुआ है। यानी बनी-इसराईल से यह वादा किया गया था कि तुम तूर के दाहिनी तरफ़ ठहरो, और चालीस दिन की मुद्दत गुज़रने पर तुम्हें हिदायतनामा दिया जाएगा।

62. इस जुमले से मालूम होता है कि क़ौम को रास्ते ही में छोड़कर हज़रत मूसा (अलैहि॰) अपने रब की मुलाक़ात के शौक़ में आगे चले गए थे। तूर की दाहिनी तरफ़, जहाँ का वादा बनी-इसराईल से किया गया था, अभी क़ाफ़िला पहुँचने भी न पाया था कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) अकेले रवाना हो गए और हाज़िरी दे दी। उस मौक़े पर जो मामलात ख़ुदा और बन्दे के बीच हुए उनकी तफ़सीलात सूरा-7 आराफ़, आयतें—143-145 में आई हैं। हज़रत मूसा (अलैहि॰) का अल्लाह के दीदार (दर्शन) के लिए गुज़ारिश करना और अल्लाह तआला का फ़रमाना कि तू मुझे नहीं देख सकता; फिर अल्लाह का एक पहाड़ पर ज़रा-सा जलवा दिखाकर उसे चूर-चूर कर देना और हज़रत मूसा (अलैहि॰) का बेहोश होकर गिर पड़ना, उसके बाद पत्थर की तख़्तियों पर लिखे हुए हुक्मों का दिया जाना, यह सब उसी वक़्त के वाक़िआत हैं। यहाँ उन वाक़िआत का सिर्फ़ वह हिस्सा बयान किया जा रहा है जो बनी-इसराईल की बछड़े की पूजा के बारे में है। उसके बयान का मक़सद मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों को यह बताना है कि एक क़ौम में बुतपरस्ती की शुरुआत किस तरह हुआ करती है और अल्लाह के नबी इस फ़ितने को अपनी क़ौम में सिर उठाते देखकर कैसे बेताब हो जाया करते हैं।

63. यह उस आदमी का नाम नहीं है, बल्कि अस्ल अरबी में जो हर्फ़ ताल्लुक़ जोड़ने के लिए इस्तेमाल हुआ है, उससे साफ़ मालूम होता है कि यह बहरहाल कोई-न-कोई निस्बत ही है; चाहे क़बीले की तरफ़ हो या नस्ल की तरफ़ या जगह की तरफ़। फिर क़ुरआन जिस तरह

'अस-सामिरी' कहकर उसका ज़िक्र कर रहा है, उससे यह भी अन्दाज़ा होता है कि उस ज़माने में सामिरी क़बीले या नस्ल या मक़ाम के बहुत-से लोग मौजूद थे जिनमें से एक ख़ास सामिरी वह शख़्स था जिसने बनी-इसराईल में सुनहरे बछड़े की परस्तिश फैलाई। इससे ज़्यादा कोई तशरीह (व्याख्या) क़ुरआन के इस मक़ाम की तफ़सीर के लिए हक़ीक़त में दरकार नहीं है। लेकिन यह मक़ाम उन अहम मक़ामों में से है जहाँ ईसाई मिशनरियों और ख़ास तौर से पश्चिमी मुस्तशरिक़ीन (इस्लाम का अध्ययन करनेवाले पश्चिमी विद्वानों) ने क़ुरआन पर नुक्ताचीनी की हद कर दी है। वे कहते हैं कि यह (अल्लाह की पनाह) क़ुरआन के लेखक की जहालत का खुला सुबूत है, इसलिए कि इसराईल की हुकूमत की राजधानी 'सामिरिया' इस वाक़िए के कई सदी के बाद 925 ई॰ पू॰ के आसपास के ज़माने में बनी। फिर उसके बाद भी कई सदी बाद इसराईलियों और ग़ैर-इसराईलियों की वह मिली-जुली नस्ल पैदा हुई जिसने 'सामिरियों' के नाम से शुहरत पाई। उनका ख़याल यह है कि उन सामिरियों में चूँकि शिर्क भरी दूसरी नई बातों के साथ-साथ सुनहरे बछड़े की पूजा का रिवाज भी था, और यहूदियों के ज़रिए से मुहम्मद (सल्ल॰) ने इस बात की सुन-गुन पा ली होगी। इसलिए उन्होंने ले जाकर उसका ताल्लुक़ हज़रत मूसा के ज़माने से जोड़ दिया और यह क़िस्सा गढ़ डाला कि वहाँ सुनहरे बछड़े की पूजा को रिवाज देनेवाला एक सामिरी शख़्स था। इसी तरह की बातें इन लोगों ने हामान के मामले में बनाई हैं जिसे क़ुरआन फ़िरऔन के वज़ीर की हैसियत से पेश करता है और ईसाई मिशनरी और मुस्तशरिक़ीन इसे इख़्सुएरस (ईरान का बादशह) के दरबारी अमीर 'हामान' से ले जाकर मिला देते हैं और कहते हैं कि यह क़ुरआन के लेखक की जहालत का एक और सुबूत है। शायद इल्म और खोज के इन दावेदारों का गुमान यह है कि पुराने ज़माने में एक नाम का एक ही आदमी या क़बीला या मक़ाम हुआ करता था और एक नाम के दो या दो से ज़्यादा आदमी या क़बीला और मक़ाम होने का बिलकुल कोई इमकान न था। हालाँकि सुमैरी पुराने ज़माने की एक बहुत मशहूर क़ौम थी जो हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के दौर में इराक़ और उसके आस-पास के इलाक़ों पर छाई हुई थी, और इस बात का बहुत इमकान है कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) के दौर में उस क़ौम के या उसकी किसी शाखा के लोग मिस्र में सामिरी कहलाते हों। फिर ख़ुद उस सामिरिया की अस्ल को भी देख लीजिए जिसकी निस्बत से उत्तरी फ़िलिस्तीन के लोग बाद में सामिरी कहलाने लगे। बाइबल का बयान है कि इसराईली हुकूमत के हुक्मराँ उमरी ने 'समर' नाम के एक आदमी से वह पहाड़ ख़रीदा था जिसपर उसने बाद में अपनी राजधानी बनाई और चूँकि पहाड़ के पिछले मालिक का नाम समर था, इसलिए उस शहर का नाम सामिरिया रखा गया (राजा-1, अध्याय-16, आयत-24)। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि सामिरिया के वुजूद में आने से पहले 'समर' नाम के बहुत-से लोग पाए जाते थे और उनसे निस्बत पाकर उनकी नस्ल या क़बीले का नाम सामिरी और मक़ामात का नाम सामिरिया होना कम-से-कम मुमकिन ज़रूर था।

يٰقَوۡمِ اَلَمۡ يَعِدۡكُمۡ رَبُّكُمۡ وَعۡدًا حَسَنًا ؕ اَفَطَالَ عَلَيۡكُمُ
الۡعَهۡدُ اَمۡ اَرَدۡتُّمۡ اَنۡ يَّحِلَّ عَلَيۡكُمۡ غَضَبٌ مِّنۡ رَّبِّكُمۡ فَاَخۡلَفۡتُمۡ
مَّوۡعِدِىۡ ﴿۸۶﴾ قَالُوۡا مَاۤ اَخۡلَفۡنَا مَوۡعِدَكَ بِمَلۡكِنَا وَ لٰكِنَّا
حُمِّلۡنَاۤ اَوۡزَارًا مِّنۡ زِيۡنَةِ الۡقَوۡمِ فَقَذَفۡنٰهَا فَكَذٰلِكَ

उसने कहा, "ऐ मेरी क़ौम के लोगो, क्या तुम्हारे रब ने तुमसे अच्छे वादे नहीं किए थे?[64] क्या तुम्हें दिन लग गए हैं?[65] या तुम अपने रब का ग़ज़ब ही अपने ऊपर लाना चाहते थे कि तुमने मुझसे वादाख़िलाफ़ी की?"[66] (87) उन्होंने जवाब दिया, "हमने आपसे वादाख़िलाफ़ी कुछ अपने इख़्तियार से नहीं की। मामला यह हुआ कि लोगों के ज़ेवरात के बोझ से हम लद गए थे और हमने बस उनको फेंक[67] दिया था।"–

64. "अच्छा वादा नहीं किया था" भी तर्जमा हो सकता है। ऊपर अस्ल में जो तर्जमा हमने किया है उसका मतलब यह है कि आज तक तुम्हारे रब ने तुम्हारे साथ जितनी भलाइयों का वादा भी किया है, वे सब तुम्हें हासिल होती रही हैं। तुम्हें मिस्र से सही-सलामत निकाला, ग़ुलामी से नजात दी, तुम्हारे दुश्मन को तहस-नहस किया, तुम्हारे लिए इन वीरानों और पहाड़ी इलाक़ों में साए और खाने का इन्तिज़ाम किया। क्या ये सारे अच्छे वादे पूरे नहीं हुए? दूसरे तर्जमे का मतलब यह होगा कि तुम्हें शरीअत और हिदायतनामा देने का जो वादा किया गया था, क्या तुम्हारे नज़दीक वह किसी ख़ैर और भलाई का वादा न था?

65. दूसरा तर्जमा यह भी हो सकता है कि "क्या वादा पूरा होने में बहुत देर लग गई कि तुम बेसब्र हो गए?" पहले तर्जमे का मतलब यह होगा कि तुमपर अल्लाह तआला अभी-अभी जो बड़े-बड़े एहसान कर चुका है, क्या उनको कुछ बहुत ज़्यादा मुद्दत गुज़र गई है कि तुम उन्हें भूल गए? क्या तुम्हारी मुसीबत का ज़माना बीते युग बीत चुके हैं कि तुम बेसुध होकर बहकने लगे? दूसरे तर्जमे का मतलब साफ़ है कि हिदायतनामा देने का जो वादा किया गया था, उसके पूरा होने में कोई देर तो नहीं हुई है जिसको तुम अपने लिए उज़्र और बहाना बना सको।

66. इससे मुराद वह वादा है जो हर क़ौम अपने नबी से करती है– उसकी पैरवी का वादा, उसकी दी हुई हिदायत पर जमे रहने का वादा, अल्लाह के सिवा किसी की बन्दगी न करने का वादा।

67. यह उन लोगों का बहाना था जो सामिरी के फ़ितने में मुब्तला हुए। उनका कहना यह था कि हमने ज़ेवरात फेंक दिए थे; न हमारी कोई नीयत बछड़ा बनाने की थी, न हमे मालूम था कि क्या बननेवाला है। उसके बाद जो मामला पेश आया वह था ही कुछ ऐसा कि उसे देखकर हम बेइख़्तियार शिर्क में मुब्तला हो गए।

"लोगों के ज़ेवरात के बोझ से हम लद गए थे" इसका सीधा मतलब तो यह है कि हमारे मर्दों और औरतों ने मिस्र की रस्मों के मुताबिक़ जो भारी-भारी ज़ेवरात पहन रखे थे, वे उस जंगल-जंगल भटकने में हमपर बोझ बन गए थे और हम परेशान थे कि इस बोझ को कहाँ तक लादे फिरें। लेकिन बाइबल का बयान है कि ये ज़ेवरात मिस्र से चलते वक़्त हर इसराईली घराने की औरतों और मर्दों ने अपने मिस्री पड़ोसी से माँगे को ले लिए थे और इस तरह हर एक अपने पड़ोसी को लूटकर रातों-रात 'हिजरत' के लिए चल खड़ा हुआ था। यह 'अख़लाक़ी कारनामा' सिर्फ़ इसी हद तक न था कि हर इसराईली ने अपने तौर पर ख़ुद इसे अंजाम दिया हो, बल्कि यह 'नेकी का काम' अल्लाह के नबी हज़रत मूसा (अलैहि०) ने उनको सिखाया था, और नबी को भी इसकी हिदायत ख़ुद अल्लाह ने दी थी। बाइबल की किताब निर्गमन में कहा गया है—

"ख़ुदा ने मूसा से कहा....जाकर इसराईली बुज़ुर्गों को एक जगह इकट्ठा कर और उनसे कह....कि तुम जब निकलोगे तो ख़ाली हाथ न निकलोगे, बल्कि तुम्हारी एक-एक औरत अपनी पड़ोसन से और अपने-अपने घर की मेहमान से सोने-चाँदी के ज़ेवर और लिबास माँग लेगी। उनको तुम अपने बेटों और बेटियों को पहनाओगे और मिस्रियों को लूट लोगे।"

(अध्याय-3, आयतें—14-22)

"और ख़ुदावन्द ने मूसा से कहा....सो अब तू लोगों के कान में यह बात डाल दे कि उनमें से हर शख़्स अपने पड़ोसी और हर औरत अपनी पड़ोसन से सोने-चाँदी के ज़ेवर ले, और ख़ुदावन्द ने उन लोगों पर मिस्रियों को मेहरबान कर दिया।" (अध्याय-11, आयतें—2, 3)

"और बनी-इसराईल ने मूसा के कहने के मुताबिक़ यह भी किया कि मिस्रियों से सोने-चाँदी के ज़ेवर और कपड़े माँग लिए और ख़ुदावन्द ने इन लोगों को मिस्रियों की निगाह में ऐसी इज़्ज़त दी कि जो कुछ इन्होंने माँगा, उन्होंने दिया। सो उन्होंने मिस्रियों को लूट लिया।"

(अध्याय-12, आयतें-35, 36)

अफ़सोस है कि हमारे तफ़सीर लिखनेवालों ने भी क़ुरआन की इस आयत की तफ़सीर में बनी-इसराईल की इस रिवायत को आँखें बन्द करके नक़्ल कर दिया है और उनकी इस ग़लती से मुसलमानों में भी यह ख़याल फैल गया कि ज़ेवरात का यह बोझ इसी लूट का बोझ था।

आयत के दूसरे टुकड़े "और हमने बस उनको फेंक दिया था" का मतलब हमारी समझ में यह आता है कि जब अपने ज़ेवरात को लादे फिरने से लोग तंग आ गए होंगे तो आपसी मशवरे से यह बात तय पाई होगी कि सबके ज़ेवरात एक जगह इकट्ठे किए जाएँ और यह नोट कर लिया जाए कि किस का कितना सोना और किसकी कितनी चाँदी है; फिर इनको गलाकर ईंटों और छड़ियों की शक्ल में ढाल लिया जाए, ताकि क़ौम के सारे सामान के साथ गधों और बैलों पर उनको लादकर चला जा सके। चुनाँचे इस फ़ैसले के मुताबिक़ हर शख़्स अपने ज़ेवरात ला-लाकर ढेर में फेंकता चला गया होगा।

أَلْقَى السَّامِرِيُّ ﴿٨٧﴾ فَأَخْرَجَ لَهُمْ عِجْلًا جَسَدًا لَّهُ خُوَارٌ فَقَالُوا هَٰذَا
إِلَٰهُكُمْ وَإِلَٰهُ مُوسَىٰ فَنَسِيَ ﴿٨٨﴾ أَفَلَا يَرَوْنَ أَلَّا يَرْجِعُ إِلَيْهِمْ قَوْلًا وَلَا
يَمْلِكُ لَهُمْ ضَرًّا وَلَا نَفْعًا ﴿٨٩﴾ وَلَقَدْ قَالَ لَهُمْ هَارُونُ مِن قَبْلُ يَا قَوْمِ
إِنَّمَا فُتِنتُم بِهِ وَإِنَّ رَبَّكُمُ الرَّحْمَٰنُ فَاتَّبِعُونِي وَأَطِيعُوا أَمْرِي ﴿٩٠﴾
قَالُوا لَن نَّبْرَحَ عَلَيْهِ عَاكِفِينَ حَتَّىٰ يَرْجِعَ إِلَيْنَا مُوسَىٰ ﴿٩١﴾ قَالَ

फिर[68] इसी तरह सामरी ने भी कुछ डाला (88) और उनके लिए एक बछड़े की मूरत बनाकर निकाल लाया जिसमें से बैल की-सी आवाज़ निकलती थी। लोग पुकार उठे, "यही है तुम्हारा ख़ुदा और मूसा का ख़ुदा, मूसा इसे भूल गया।" (89) क्या वे देखते न थे कि न वह उनकी बात का जवाब देता है और न उनके फ़ायदे-नुक़सान का कुछ इख़्तियार रखता है? (90) हारून (मूसा के आने से) पहले ही उनसे कह चुका था कि "लोगो, तुम इसकी वजह से फ़ितने (आज़माइश) में पड़ गए हो। तुम्हारा रब तो रहमान है तो तुम मेरी पैरवी करो और मेरी बात मानो।" (91) मगर उन्होंने उससे कह दिया कि "हम तो इसी की परस्तिश करते रहेंगे जब तक कि मूसा हमारे पास वापस न आ जाए।"[69]

(92-93) मूसा (क़ौम को डाँटने के बाद हारून की तरफ़ पलटा और) बोला,

---

68. यहाँ से पैराग्राफ़ के आख़िर तक की इबारत पर ग़ौर करने से साफ़ महसूस होता है कि क़ौम का जवाब "फेंक दिया था" पर ख़त्म हो गया है और बाद की यह तफ़सील अल्लाह तआला ख़ुद बता रहा है। इससे वाक़िए की शक्ल यह मालूम होती है कि लोग पेश आनेवाले फ़ितने से बेख़बर, अपने-अपने ज़ेवर ला-लाकर ढेर करते चले गए, और सामिरी भी उनमें शामिल था। बाद में ज़ेवर गलाने का काम सामिरी ने अपने ज़िम्मे ले लिया, और कुछ ऐसी चाल चली कि सोने की ईंटें या छड़ियाँ बनाने के बजाय एक बछड़े की मूरत भट्टी से निकल आई जिसमें से बैल की-सी आवाज़ निकलती थी। इस तरह सामिरी ने क़ौम को धोखा दिया कि मैं तो सिर्फ़ सोना गलाने का क़ुसूरवार हूँ; यह तुम्हारा ख़ुदा आप ही इस शक्ल में नमूदार हो गया है।

69. बाइबल इसके बरख़िलाफ़ हज़रत हारून पर इलज़ाम रखती है कि बछड़ा बनाने और उसे माबूद ठहराने का भारी गुनाह उन्हीं से हुआ था—

"और जब लोगों ने देखा कि मूसा ने पहाड़ से उतरने में देर लगाई तो वे हारून के पास इकट्ठे होकर उससे कहने लगे कि 'उठ, हमारे लिए देवता बना दे जो हमारे आगे चले; क्योंकि हम नहीं जानते कि इस मूसा नाम के आदमी को जो हमको मिस्र देश से निकालकर लाया, क्या हो गया।' हारून ने उनसे कहा, 'तुम्हारी बीवियों, लड़कों और लड़कियों के कानों में जो सोने की बालियाँ हैं, उनको उतारकर मेरे पास ले आओ।' चुनाँचे सब लोग उनके कानों से सोने की बालियाँ उतार-उतारकर हारून के पास ले आए। और उसने उनको उनके हाथों से लेकर एक ढाला हुआ बछड़ा बनाया जिसकी सूरत छेनी से ठीक की। तब वे कहने लगे, 'ऐ इसराईल, यही तेरा वह देवता है जो तुझको मिस्र देश से निकालकर लाया।' यह देखकर हारून ने उसके आगे एक क़ुरबानगाह बनाई और उसने एलान कर दिया कि कल ख़ुदावन्द के लिए ईद होगी।"

(निर्गमन, अध्याय-32, आयतें—1-5)

बहुत मुमकिन है कि बनी-इसराईल के यहाँ यह ग़लत रिवायत इस वजह से मशहूर हुई हो कि सामिरी का नाम भी हारून ही हो, और बाद के लोगों ने इस हारून को पैग़म्बर हारून (अलैहि॰) के साथ ख़ल्त-मल्त कर दिया हो। लेकिन आज ईसाई मिशनरियों और पश्चिमी मुस्तशरिक़ों को ज़िद है कि क़ुरआन यहाँ भी ज़रूर ग़लती पर है। बछड़े को ख़ुदा उनके मुक़द्दस (पाक) नबी ने ही बनाया था और उनके दामन से इस दाग़ को साफ़ करके क़ुरआन ने एक एहसान नहीं, बल्कि उल्टा ग़लती की है। यह है उन लोगों की हठधर्मी का हाल। और उनको नज़र नहीं आता कि इसी अध्याय में कुछ लाइनों के बाद आगे चलकर ख़ुद बाइबल अपनी ग़लतबयानी का राज़ किस तरह खोल रही है। इस अध्याय की आख़िरी दस आयतों में बाइबल यह बयान करती है कि हज़रत मूसा ने उसके बाद बनी-लावी को इकट्ठा किया और अल्लाह तआला का यह हुक्म सुनाया कि जिन लोगों ने शिर्क का यह भारी गुनाह किया है, उन्हें क़त्ल किया जाए, और हर एक ईमानवाला ख़ुद अपने हाथ से अपने उस भाई और साथी और पड़ोसी को क़त्ल करे जिसने बछड़े की पूजा का जुर्म किया था। चुनाँचे उस दिन तीन हज़ार आदमी क़त्ल किए गए। अब सवाल यह है कि हज़रत हारून क्यों छोड़ दिए गए? अगर वही इस जुर्म की बुनियाद रखनेवाले थे तो उन्हें इस क़त्ले-आम से किस तरह माफ़ किया जा सकता था? क्या बनी-लावी यह न कहते कि मूसा, हमको तो हुक्म देते हो कि हम अपने गुनाहगार भाइयों, साथियों और पड़ोसियों को अपने हाथों से क़त्ल करें, मगर ख़ुद अपने भाई पर हाथ नहीं उठाते; हालाँकि अस्ल गुनाहगार वही था? आगे चलकर बयान किया जाता है कि मूसा ने ख़ुदावन्द के पास जाकर अर्ज़ किया कि अब बनी-इसराईल का गुनाह माफ़ कर दे, वरना मेरा नाम अपनी किताब में से मिटा दे। इसपर अल्लाह तआला ने जवाब दिया कि "जिसने मेरा गुनाह किया है, मैं उसी का नाम अपनी किताब में से मिटाऊँगा।" लेकिन हम देखते हैं कि हज़रत हारून का नाम न मिटाया गया, बल्कि इसके बरख़िलाफ़ उनको और उनकी औलाद को बनी-इसराईल में सबसे ऊँचे मंसब, यानी बनी-लावी की सरदारी और मक़दिस की देख-भाल से नवाज़ा गया (गिनती, अध्याय-18, आयतें—1-7)। क्या बाइबल की यह अन्दरूनी गवाही ख़ुद उसके अपने पिछले

يٰهٰرُوْنُ مَا مَنَعَكَ اِذْ رَاَيْتَهُمْ ضَلُّوْٓا ﴿۹۲﴾ اَلَّا تَتَّبِعَنِ ؕ اَفَعَصَيْتَ
اَمْرِيْ ﴿۹۳﴾ قَالَ يَبْنَؤُمَّ لَا تَاْخُذْ بِلِحْيَتِيْ وَلَا بِرَاْسِيْ ۚ اِنِّيْ خَشِيْتُ اَنْ
تَقُوْلَ فَرَّقْتَ بَيْنَ بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ وَلَمْ تَرْقُبْ قَوْلِيْ ﴿۹۴﴾ قَالَ فَمَا خَطْبُكَ

"हारून, जब तुमने देखा था कि ये लोग गुमराह हो रहे हैं तो किस चीज़ ने तुम्हारा हाथ पकड़ा था कि मेरे तरीक़े पर अमल न करो? क्या तुमने मेरे हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी की?"[70] (94) हारून ने जवाब दिया, "ऐ मेरी माँ के बेटे,[71] मेरी दाढ़ी न पकड़, न मेरे सिर के बाल खींच, मुझे इस बात का डर था कि तू आकर कहेगा कि तुमने बनी-इसराईल में फूट डाल दी और मेरी बात का लिहाज़ न रखा।"[72] (95) मूसा ने

बयान को रद्द और क़ुरआन के बयान को सही साबित नहीं कर रही है?

70. हुक्म से मुराद वह हुक्म है जो पहाड़ पर जाते वक़्त और अपनी जगह हज़रत हारून को बनी-इसराईल की सरदारी सौंपते वक़्त हज़रत मूसा (अलैहि.) ने दिया था। सूरा-7 आराफ़ में इसे इन अलफ़ाज़ में बयान किया गया है, "और मूसा ने (जाते हुए) अपने भाई हारून से कहा कि तुम मेरी क़ौम में मेरी जानशीनी करो और देखो, सुधार करना; बिगाड़ फैलानेवालों के तरीक़े की पैरवी न करना।" (आयत-142)

71. इन आयतों के तर्जमे में हमने इस बात का ध्यान रखा है कि हज़रत मूसा (अलैहि.) छोटे भाई थे मगर मंसब के लिहाज़ से बड़े थे, और हज़रत हारून बड़े भाई थे मगर मंसब के लिहाज़ से छोटे थे।

72. हज़रत हारून के इस जवाब का यह मतलब हरगिज़ नहीं है कि क़ौम का इकट्ठा रहना उसके सही रास्ते पर रहने से ज़्यादा अहमियत रखता है, और इत्तिहाद (एकता) चाहे वह शिर्क ही पर क्यों न हो, बिखराव से बेहतर है; चाहे उसकी बुनियाद हक़ और बातिल (असत्य) ही का इख़्तिलाफ़ हो। इस आयत का यह मतलब अगर कोई शख़्स लेगा तो क़ुरआन से हिदायत के बजाय गुमराही ले लेगा। हज़रत हारून की पूरी बात समझने के लिए इस आयत को सूरा-7 आराफ़ की आयत-150 के साथ मिलाकर पढ़ना चाहिए। वहाँ वे फ़रमाते हैं कि "मेरी माँ के बेटे, इन लोगों ने मुझे दबा लिया और क़रीब था कि मुझे मार डालते। तो तू दुश्मनों को मुझपर हँसने का मौक़ा न दे और इस ज़ालिम गरोह में मुझे मत गिन।" अब इन दानों आयतों को इकट्ठा करके देखिए तो वाक़िए की अस्ली तस्वीर यह सामने आती है कि हज़रत हारून ने लोगों को इस गुमराही से रोकने की पूरी कोशिश की, मगर उन्होंने हज़रत हारून के ख़िलाफ़ सख़्त फ़साद खड़ा कर दिया और उनको मार डालने पर तुल गए। मजबूरन वे इस अन्देशे से चुप हो गए कि कहीं हज़रत मूसा के आने से पहले यहाँ अपने अन्दर ही लड़ाई न छिड़ जाए, और वे

يٰسَامِرِيُّ ۞ قَالَ بَصُرْتُ بِمَا لَمْ يَبْصُرُوْا بِهٖ فَقَبَضْتُ قَبْضَةً
مِّنْ اَثَرِ الرَّسُوْلِ فَنَبَذْتُهَا وَ كَذٰلِكَ سَوَّلَتْ لِيْ نَفْسِيْ۞

कहा, "और सामरी, तेरा क्या मामला है?" (96) उसने जवाब दियाा, "मैंने वह चीज़ देखी जो इन लोगों को नज़र न आई; तो मैंने रसूल के पाँव के निशान से एक मुट्ठी उठा ली और उसको डाल दिया। मेरे नफ़्स (मन) ने मुझे कुछ ऐसा ही सुझाया।"[73]

बाद में आकर शिकायत करें कि तुम अगर इस सूरतेहाल से सही तौर पर न निबट सकते थे तो तुमने मामलात को इस हद तक क्यों बिगड़ने दिया; मेरे आने का इन्तिज़ार क्यों न किया। सूरा-7 आराफ़ वाली आयत के आख़िरी जुमले से यह भी ज़ाहिर होता है कि क़ौम में दोनों भाइयों के दुश्मनों की एक तादाद मौजूद थी।

73. इस आयत की तफ़सीर में दो गरोहों की तरफ़ से अजीब खींच-तान की गई है।

एक गरोह जिसमें पुराने और बहुत पुराने ज़माने के तफ़सीर लिखनेवाले बहुत-से लोग शामिल हैं, इसका यह मतलब बयान करता है कि "सामिरी ने रसूल यानी हज़रत जिबरील को गुज़रते हुए देख लिया था और उनके पैरों के निशान से एक मुट्ठी भर मिट्टी उठा ली थी, और यह उसी मिट्टी की करामत थी कि जब उसे बछड़े के बुत पर डाला गया तो उसमें ज़िन्दगी पैदा हो गई और जीते-जागते बछड़े की-सी आवाज़ निकलने लगी।" हालाँकि क़ुरआन यह नहीं कह रहा है कि सचमुच ऐसा हुआ था। वह सिर्फ़ यह कह रहा है कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) की पूछ-गच्छ के जवाब में सामिरी ने यह बात बनाई। फिर हमारी समझ में नहीं आता कि तफ़सीर लिखनेवाले इसको एक सच्चा वाक़िआ और क़ुरआन की बयान की हुई हक़ीक़त कैसे समझ बैठे।

दूसरा गरोह सामिरी की कही हुई बात को एक और ही मतलब पहनाता है। उसके मुताबिक़ सामिरी ने अस्ल में यह कहा था कि "मुझे रसूल, यानी हज़रत मूसा में, या उनके दीन में वह कमज़ोरी नज़र आई जो दूसरों को नज़र न आई। इसलिए मैंने एक हद तक तो उसके नक़्शे-क़दम की पैरवी की, मगर बाद में उसे छोड़ दिया।" यह मतलब शायद सबसे पहले अबू-मुस्लिम असफ़हानी को सूझा था। फिर इमाम राज़ी ने इसको अपनी तफ़सीर में नक़्ल करके उसपर अपनी पसन्दीदगी को ज़ाहिर किया, और अब नए ढंग के तफ़सीर लिखनेवाले आम तौर पर इसी को तरजीह दे रहे हैं। लेकिन ये लोग इस बात को भूल जाते हैं कि क़ुरआन मुअम्मों और पहेलियों की ज़बान में नहीं उतरा है, बल्कि साफ़ और आसानी से समझ में आनेवाली अरबी ज़बान में उतरा है; जिसको एक आम अरब अपनी ज़बान के राइज मुहावरे के मुताबिक़ समझ सके। कोई शख़्स जो अरबी ज़बान के राइज मुहावरे और आम बोल-चाल की ज़बान जानता हो, कभी यह नहीं मान सकता कि सामिरी की उस बात को अदा करने के लिए जो उसके मन में थी, वाज़ेह अरबी में वे अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए जाएँगे जो इस आयत में पाए

जाते हैं। न एक आम अरब इन अलफ़ाज़ को सुनकर कभी वह मतलब ले सकता है जो ये लोग बयान कर रहे हैं। लुग़त (शब्दकोश) की किताबों में से किसी लफ़्ज़ के वे बिलकुल मुख़्तलिफ़ मतलब तलाश कर लेना जो मुख़्तलिफ़ मुहावरों में उससे मुराद लिए जाते हों, और उनमें से किसी मतलब को लाकर एक ऐसी इबारत में चस्पाँ कर देना जहाँ एक आम अरब उस लफ़्ज़ को हरगिज़ उस मानी में इस्तेमाल न करेगा, ज़बान की अच्छी जानकारी रखना तो नहीं हो सकता; अलबत्ता बातें बनाने का करतब ज़रूर माना जा सकता है। इस तरह के करतब उर्दू का लुग़त 'फ़रहंगे-आसिफ़िया' हाथ में लेकर अगर कोई शख़्स ख़ुद इन लोगों की उर्दू इबारतों में, या ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी लेकर इनकी अंग्रेज़ी इबारतों में दिखाने शुरू कर दे तो शायद अपनी बातों के दो-चार ही मतलब सुनकर ये लोग चिल्ला उठें। आम तौर से क़ुरआन में ऐसे मनमाने मतलब उस वक़्त निकाले जाते हैं जबकि एक शख़्स किसी आयत के साफ़ और सीधे मतलब को देखकर अपनी समझ में यह समझता है कि यहाँ तो अल्लाह से बड़ी बेएहतियाती हो गई, लाओ मैं उनकी बात इस तरह बना दूँ कि उनकी ग़लती का परदा ढक जाए और लोगों को उनपर हँसने का मौक़ा न मिले।

सोचने के इस ढंग को छोड़कर जो शख़्स भी बात के इस सिलसिले में इस आयत को पढ़ेगा, वह आसानी के साथ यह समझ लेगा कि सामिरी एक फ़ितना पैदा करनेवाला आदमी था, जिसने ख़ूब सोच-समझकर धोखे-फ़रेब की स्कीम तैयार की थी। उसने सिर्फ़ यही नहीं किया कि सोने का बछड़ा बनाकर उसमें किसी तदबीर से बछड़े की-सी आवाज़ पैदा कर दी और सारी क़ौम के जाहिल और नादान लोगों को धोखे में डाल दिया, बल्कि उसपर और ज़्यादा जसारत (दुस्साहस) यह भी की कि ख़ुद हज़रत मूसा (अलैहि॰) के सामने एक धोखे भरी दास्तान गढ़कर रख दी। उसने दावा किया कि मुझे वह कुछ नज़र आया जो दूसरों को नज़र न आता था और साथ-साथ यह कहानी भी गढ़ दी कि रसूल के पैरों की एक मुट्ठी भर मिट्टी से यह करामत हुई है। रसूल से मुराद मुमकिन है कि जिबरील ही हों, जैसाकि पहले के तफ़सीर लिखनेवालों ने समझा है, लेकिन अगर यह समझा जाए कि उसने रसूल का लफ़्ज़ ख़ुद हज़रत मूसा (अलैहि॰) के लिए इस्तेमाल किया था तो यह उसकी एक और मक्कारी थी। वह इस तरह हज़रत मूसा को ज़ेहनी रिश्वत देना चाहता था, ताकि वे उसे अपने नक़्शे-क़दम की मिट्टी का करिश्मा समझकर फूल जाएँ और अपनी कुछ और करामतों का इश्तिहार देने के लिए सामिरी की ख़िदमतें हमेशा के लिए हासिल कर लें। क़ुरआन इस सारे मामले को सामिरी के धोखे और फ़रेब ही की हैसियत से पेश कर रहा है, अपनी तरफ़ से पेश आए वाक़िए के तौर पर बयान नहीं कर रहा है कि उसमें कोई बुराई सामने आती हो और लुग़त की किताबों से मदद लेकर बिला वजह की बात बनानी पड़े; बल्कि बाद के जुमले में हज़रत मूसा ने जिस तरह उसको फटकारा है और उसके लिए सज़ा बताई है उससे साफ़ ज़ाहिर हो रहा है कि उसकी गढ़ी हुई इस धोखे और फ़रेब भरी कहानी को सुनते ही उन्होंने उसके मुँह पर मार दिया।

قَالَ فَاذْهَبْ فَاِنَّ لَكَ فِى الْحَيٰوةِ اَنْ تَقُوْلَ لَا مِسَاسَ ۪ وَاِنَّ لَكَ
مَوْعِدًا لَّنْ تُخْلَفَهٗ ۚ وَانْظُرْ اِلٰٓى اِلٰهِكَ الَّذِىْ ظَلْتَ عَلَيْهِ عَاكِفًا ؕ
لَنُحَرِّقَنَّهٗ ثُمَّ لَنَنْسِفَنَّهٗ فِى الْيَمِّ نَسْفًا ﴿۹۷﴾ اِنَّمَآ اِلٰهُكُمُ اللّٰهُ الَّذِىْ لَآ
اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ؕ وَسِعَ كُلَّ شَىْءٍ عِلْمًا ﴿۹۸﴾ كَذٰلِكَ نَقُصُّ عَلَيْكَ مِنْ اَنْۢبَآءِ مَا

(97) मूसा ने कहा, "अच्छा तो जा, अब ज़िन्दगी भर तुझे यही पुकारते रहना है कि मुझे न छूना।[74] और तेरे लिए पूछ-गच्छ का एक वक़्त मुक़र्रर है जो तुझसे हरगिज़ न टलेगा। और देख अपने इस ख़ुदा को जिसपर तू रीझा हुआ था, अब हम इसे जला डालेंगे और चूर-चूर करके दरिया में बहा देंगे। (98) लोगो, तुम्हारा ख़ुदा तो बस एक ही अल्लाह है जिसके सिवा कोई और ख़ुदा नहीं है, हर चीज़ पर उसका इल्म छाया हुआ है।"

(99) ऐ नबी![75] इस तरह हम पिछले गुज़रे हुए हालात की ख़बरें तुमको सुनाते हैं,

---

74. यानी सिर्फ़ यही नहीं कि ज़िन्दगी भर के लिए समाज से उसके ताल्लुक़ात तोड़ दिए गए और उसे अछूत बनाकर रख दिया गया, बल्कि यह ज़िम्मेदारी भी उसी पर डाली गई कि हर आदमी को वह ख़ुद अपने अछूतपन से आगाह करे और दूर ही से लोगों को बताता रहे कि मैं अछूत हूँ, मुझे हाथ न लगाना। बाइबल की किताब अहबार में कोढ़ियों की छूत से लोगों को बचाने के लिए जो क़ायदे बयान किए गए हैं उनमें से एक क़ायदा यह भी है—
"और जो कोढ़ी उसमें मुब्तला हो, उसके कपड़े फटे और उसके सिर के बाल बिखरे रहें और वह अपने ऊपर के होंठ को ढाँके और चिल्ला- चिल्लाकर कहे—नापाक-नापाक। जितने दिनों तक वह इस बला में मुब्तला रहे, वह नापाक रहेगा और वह है भी नापाक। इसलिए वह अकेला रहे, उसका मकान फ़ौजी ठिकाने के बाहर हो।" (अध्याय-13, आयतें-45, 46)
इससे गुमान होता है कि या तो अल्लाह तआला की तरफ़ से अज़ाब के तौर पर उसको कोढ़ के रोग में मुब्तला कर दिया गया होगा, या फिर उसके लिए यह सज़ा तय की गई होगी कि जिस तरह जिस्मानी कोढ़ का रोगी लोगों से अलग कर दिया जाता है, उसी तरह इस अख़लाक़ी कोढ़ के रोगी को भी अलग कर दिया जाए, और यह भी कोढ़ी की तरह पुकार-पुकारकर हर क़रीब आनेवाले को बताता रहे कि मैं नापाक हूँ, मुझे न छूना।

75. मूसा (अलैहि०) का क़िस्सा ख़त्म करके अब फिर तक़रीर का रुख़ उस मज़मून की तरफ़ मुड़ता है जिससे सूरा की शुरुआत हुई थी। आगे बढ़ने से पहले एक बार पलटकर सूरा की उन इब्तिदाई आयतों को पढ़ लीजिए जिनके बाद यकायक हज़रत मूसा (अलैहि०) का क़िस्सा शुरू हो गया था। इससे आप की समझ में अच्छी तरह यह बात आ जाएगी कि अस्ल मौज़ू क्या है

قَدْ سَبَقَ ۚ وَقَدْ اٰتَيْنٰكَ مِنْ لَّدُنَّا ذِكْرًا ﴿٩٩﴾ مَنْ اَعْرَضَ عَنْهُ
فَاِنَّهٗ يَحْمِلُ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ وِزْرًا ﴿١٠٠﴾ خٰلِدِيْنَ فِيْهِ ؕ وَسَآءَ لَهُمْ يَوْمَ
الْقِيٰمَةِ حِمْلًا ﴿١٠١﴾ يَّوْمَ يُنْفَخُ فِى الصُّوْرِ وَنَحْشُرُ الْمُجْرِمِيْنَ يَوْمَئِذٍ

और हमने ख़ास अपने यहाँ से तुमको एक 'ज़िक्र' (नसीहत का सबक़) अता (प्रदान) किया है।[76] (100) जो कोई इससे मुँह मोड़ेगा, वह क़ियामत के दिन सख़्त गुनाह का बोझ उठाएगा, (101) और ऐसे सब लोग हमेशा उसके वबाल में गिरफ़्तार रहेंगे, और क़ियामत के दिन उनके लिए (इस जुर्म की ज़िम्मेदारी का बोझ) बड़ा तकलीफ़देह बोझ होगा,[77] (102) उस दिन जबकि सूर फूँका जाएगा[78] और हम मुजरिमों को इस हाल में घेर

जिसपर इस सूरा में बात की गई है। बीच में हज़रत मूसा (अलैहि॰) का क़िस्सा किस लिए बयान हुआ है, और अब क़िस्सा ख़त्म करके किस तरह तक़रीर अपने मौज़ू की तरफ़ पलट रही है।

76. यानी यह क़ुरआन जिसके बारे में सूरा के शुरू में कहा गया था कि यह कोई अनहोना काम तुमसे लेने और तुमको बैठे-बिठाए एक मुश्किल में डाल देने के लिए नहीं उतारा गया है, यह तो एक याददिहानी और नसीहत (ज़िक्र) है, हर उस शख़्स के लिए जिसके दिल में ख़ुदा का कुछ डर हो।

77. इसमें पहली बात तो यह बताई गई है कि जो शख़्स नसीहत के इस सबक़, यानी क़ुरआन, से मुँह मोड़ेगा और उसकी हिदायत और रहनुमाई क़बूल करने से इनकार करेगा, वह अपना ही नुक़सान करेगा, मुहम्मद (सल्ल॰) और उनके भेजनेवाले ख़ुदा का कुछ न बिगाड़ेगा। उसकी यह बेवक़ूफ़ी दर अस्ल उसकी ख़ुद अपने साथ दुश्मनी होगी। दूसरी बात यह बताई गई कि कोई शख़्स जिसको क़ुरआन की यह नसीहत पहुँचे और फिर वह उसे क़बूल करने से कतराए, आख़िरत में सज़ा पाने से बच नहीं सकता। आयत के अलफ़ाज़ आम हैं। किसी क़ौम, किसी देश, किसी ज़माने के साथ ख़ास नहीं हैं। जब तक यह क़ुरआन दुनिया में मौजूद है, जहाँ-जहाँ जिस-जिस देश और क़ौम के जिस शख़्स को भी यह पहुँचेगा, उसके लिए दो ही रास्ते खुले होंगे, तीसरा कोई रास्ता न होगा। या तो इसको माने और इसकी पैरवी करे या इसको न माने और इसकी पैरवी से मुहँ मोड़ ले। पहला रास्ता अपनानेवाले का अंजाम आगे आ रहा है। और दूसरा रास्ता अपनानेवाले का अंजाम यह है जो इस आयत में बता दिया गया है।

78. सूर यानी नरसिंघा, क़रना, याबूक़। आजकल इसी चीज़ की जगह पर बिगुल या इसी तरह की कोई और चीज़ है जो फ़ौज को इकट्ठा करने या बिखेरने और हिदायतें देने के लिए बजाया जाता है। अल्लाह तआला अपनी कायनात (सृष्टि) के इन्तिज़ाम को समझाने के लिए वे अलफ़ाज़ और इस्तिलाहें (किसी चीज़ के लिए बोले जानेवाले ख़ास अलफ़ाज़) इस्तेमाल करता है

زُرْقًا ﴿١٠٢﴾ يَّتَخَافَتُوْنَ بَيْنَهُمْ اِنْ لَّبِثْتُمْ اِلَّا عَشْرًا ﴿١٠٣﴾

लाएँगे कि उनकी आँखें (दहशत के मारे) पथराई हुई होंगी,[79] (103) आपस में चुपके-चुपके कहेंगे कि "दुनिया में मुश्किल ही से तुमने कोई दस दिन गुज़ारे होंगे।"[80]—

जो ख़ुद इनसानी ज़िन्दगी में उसी से मिलते-जुलते निज़ाम के लिए इस्तेमाल होती हैं। इन अलफ़ाज़ और इस्तिलाहों के इस्तेमाल का मक़सद हमारे ख़याल को अस्ल चीज़ के क़रीब ले जाना है, न यह कि हम अल्लाह की सल्तनत के निज़ाम की मुख़्तलिफ़ चीज़ों को ठीक उन्हीं महदूद मानी में ले लें, और उन महदूद सूरतों की चीज़ें समझ लें, जैसी कि वे हमारी ज़िन्दगी में पाई जाती हैं। पुराने ज़माने से आज तक लोगों को इकट्ठा करने और अहम बातों का एलान करने के लिए कोई-न-कोई ऐसी चीज़ फूँकी जाती रही है जो सूर या बिगुल से मिलती-जुलती हो। अल्लाह तआला बताता है कि ऐसी ही एक चीज़ क़ियामत के दिन फूँकी जाएगी जिसकी नौईयत हमारे नरसिंघे की-सी होगी। एक बार वह फूँकी जाएगी और सबपर मौत छा जाएगी। दूसरी बार फूँकने पर सब जी उठेंगे और ज़मीन के हर हिस्से से निकल-निकलकर हश्र के मैदान की तरफ़ दौड़ने लगेंगे। (और ज़्यादा तफ़सीलात के लिए देखिए—तफ़हीमुल-क़ुरआन, हिस्सा-3, सूरा-27 नम्ल, हाशिया-106)

79. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'ज़ुरक़ा' इस्तेमाल हुआ है जो 'अज़रक़' का जमा (बहुवचन) है। कुछ लोगों ने इसका मतलब यह लिया है कि वे लोग ख़ुद अज़रक़ (सफ़ेदी लिए हुए नीले रंग के) हो जाएँगे; क्योंकि डर और दहशत के मारे उनका ख़ून सूख जाएगा और उनकी हालत ऐसी हो जाएगी कि मानो उनके जिस्म में ख़ून की एक बूँद तक नहीं है। और कुछ दूसरे लोगों ने इस लफ़्ज़ को 'अज़रक़ुल-ऐन' (नीली आँखोंवाले) के मानी में लिया है और वे इसका मतलब यह लेते हैं कि घबराहट की ज़्यादती से उनके दीदे पथरा जाएँगे। जब किसी शख़्स की आँख बेनूर हो जाती है तो उसकी आँखों का रंग सफ़ेद पड़ जाता है।

80. दूसरा मतलब यह भी हो सकता है कि "मौत के बाद से इस वक़्त तक तुमको मुश्किल ही से दस दिन गुज़रे होंगे।" क़ुरआन मजीद के दूसरे मक़ामात से मालूम होता है कि क़ियामत के दिन लोग अपनी दुनियावी ज़िन्दगी के बारे में भी ये अन्दाज़े लगाएँगे कि वह बहुत थोड़ी थी, और मौत से लेकर क़ियामत तक जो वक़्त गुज़रा होगा उसके बारे में भी उनके अन्दाज़े कुछ ऐसे ही होंगे। एक जगह कहा गया है, "अल्लाह तआला पूछेगा कि तुम ज़मीन में कितने साल रहे हो? वे जवाब देंगे, एक दिन या दिन का एक हिस्सा रहे होंगे, गिनती करनेवालों से पूछ लीजिए।" (सूरा-23 मोमिनून, आयतें—112, 113)। दूसरी जगह कहा जाता है, "और जिस दिन क़ियामत क़ायम हो जाएगी तो मुजरिम लोग क़समें खा-खाकर कहेंगे कि हम (मौत की हालत में) एक घड़ी भर से ज़्यादा नहीं पड़े रहे हैं। इसी तरह वे दुनिया में भी धोखे खाते रहते थे। और जिन लोगों को इल्म और ईमान दिया गया था, वे कहेंगे कि अल्लाह की किताब के मुताबिक़ तो तुम उठाए जाने के दिन तक पड़े रहे हो और यह वही उठाए जानेवाला दिन है,

نَحْنُ اَعْلَمُ بِمَا يَقُوْلُوْنَ اِذْ يَقُوْلُ اَمْثَلُهُمْ طَرِيْقَةً
اِنْ لَّبِثْتُمْ اِلَّا يَوْمًا ۟ ﴿١٠٤﴾ وَيَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْجِبَالِ فَقُلْ

ع ١٥ ١٣

(104) हमें[81] ख़ूब मालूम है कि वे क्या बातें कर रहे होंगे। (हम यह भी जानते हैं कि) उस वक़्त इनमें से जो ज़्यादा-से-ज़्यादा एहतियात के साथ अन्दाज़ा लगानेवाला होगा, वह कहेगा कि नहीं, तुम्हारी दुनिया की ज़िन्दगी बस एक दिन की ज़िन्दगी थी।— (105) ये लोग[82] तुमसे पूछते हैं कि आख़िर उस दिन ये पहाड़ कहाँ चले जाएँगे? कहो

मगर तुम जानते न थे।" (सूरा-30 रूम, आयत-55, 56)। इन अलग-अलग साफ़ बयानों से साबित होता है कि दुनिया की ज़िन्दगी और बरज़ख़ की ज़िन्दगी, दोनों ही को वे बहुत थोड़ा समझेंगे। दुनिया की ज़िन्दगी के बारे में वे इसलिए ये बातें करेंगे कि अपनी उम्मीदों के बिलकुल उलट जब उन्हें आख़िरत की हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी में आँखें खोलनी पड़ेंगी, और जब वे देखेंगे कि यहाँ के लिए वे कुछ भी तैयारी करके नहीं आए हैं तो इन्तिहा दरजे की हसरत के साथ वे अपनी दुनियावी ज़िन्दगी की तरफ़ पलटकर देखेंगे और अफ़सोस के साथ हाथ मलेंगे कि चार दिन की मौज-मस्ती और फ़ायदे और लज़्ज़त के लिए हमने हमेशा के लिए अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मार ली। मौत के बाद आनेवाली ज़िन्दगी को वे दुनिया में नामुमकिन समझते थे और क़ुरआन की बताई हुई आख़िरत की दुनिया का जुग़राफ़िया (भूगोल) कभी संजीदगी के साथ उनके ज़ेहन में उतरा ही न था। यही सोच और ख़यालात लिए हुए दुनिया में होश-हवास की आख़िरी घड़ी उन्होंने ख़त्म की थी। अब जो अचानक वे आँखें मलते हुए दूसरी ज़िन्दगी में जागेंगे और दूसरे ही पल अपने आपको एक बिगुल या नरसिंघे की आवाज़ पर मार्च करते पाएँगे तो वे सख़्त घबराहट के साथ अन्दाज़ा लगाएँगे कि फ़ुलाँ हस्पताल में बेहोश होने या फ़ुलाँ जहाज़ में डूबने या फ़ुलाँ जगह पर हादिसे से दो-चार होने के बाद से इस वक़्त तक आख़िर कितना वक़्त लगा होगा। उनकी खोपड़ी में उस वक़्त यह बात समाएगी ही नहीं कि दुनिया में वे मर चुके थे और अब यह वही दूसरी ज़िन्दगी है जिसे हम बिलकुल बकवास कहकर मज़ाक़ और ठट्ठों में उड़ा दिया करते थे। इसलिए उनमें से हर एक यह समझेगा कि शायद मैं कुछ घंटे या कुछ दिन बेहोश पड़ा रहा हूँ, और अब शायद ऐसे वक़्त मुझे होश आया है या ऐसी जगह इत्तिफ़ाक़ से पहुँच गया हूँ, जहाँ किसी बड़े हादसे की वजह से लोग एक तरफ़ को भागे जा रहे हैं। नामुमकिन नहीं कि आजकल के मरनेवाले साहब लोग सूर की आवाज़ को कुछ देर तक हवाई हमले का सायरन ही समझते रहें।

81. ऊपर से चली आ रही बात से हटकर लोगों के शुबहे को दूर करने के लिए दरमियान में यह बात कही गई है कि आख़िर उस वक़्त हश्र के मैदान में भागते हुए लोग चुपके-चुपके जो बातें करेंगे, वे आज यहाँ कैसे बयान हो रही हैं।

82. ऊपर से चली आ रही बात से हटकर दरमियान में कही गई बात है जो तक़रीर के बीच में किसी सुननेवाले के सवाल पर कही गई है। मालूम होता है कि जिस वक़्त यह सूरत एक

يَنْسِفُهَا رَبِّيْ نَسْفًا ﴿١٠٥﴾ فَيَذَرُهَا قَاعًا صَفْصَفًا ﴿١٠٦﴾ لَّا تَرٰى
فِيْهَا عِوَجًا وَّ لَآ اَمْتًا ﴿١٠٧﴾ يَوْمَئِذٍ يَّتَّبِعُوْنَ الدَّاعِيَ لَا
عِوَجَ لَهٗ ۚ وَ خَشَعَتِ الْاَصْوَاتُ لِلرَّحْمٰنِ فَلَا تَسْمَعُ اِلَّا هَمْسًا ﴿١٠٨﴾

कि मेरा रब इनको धूल बनाकर उड़ा देगा (106) और ज़मीन को ऐसा समतल और चटियल मैदान बना देगा (107) कि उसमें तुम कोई बल और सलवट न देखोगे।[83]—(108) उस दिन सब लोग पुकारनेवाले की पुकार पर सीधे चले आएँगे, कोई ज़रा अकड़ न दिखा सकेगा। और आवाज़ें रहमान (दयावान ख़ुदा) के आगे दब जाएँगी, एक

इलहामी (अल्लाह की तरफ़ से उतारी हुई) तक़रीर के अन्दाज़ में सुनाई जा रही होगी, उस वक़्त किसी ने मज़ाक़ उड़ाने के लिए यह सवाल उठाया होगा कि क़ियामत का जो नक़्शा आप खींच रहे हैं उससे तो ऐसा मालूम होता है कि दुनिया भर के लोग किसी सपाट मैदान में भागे चले जा रहे होंगे। आख़िर ये बड़े-बड़े पहाड़ उस वक़्त कहाँ चले जाएँगे? इस सवाल का मौक़ा समझने के लिए उस माहौल को निगाह में रखिए जिसमें यह तक़रीर की जा रही थी। मक्का जिस जगह पर है, उसकी हालत एक हौज़ की-सी है जिसके चारों तरफ़ ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं। पूछनेवाले ने उन्हीं पहाड़ों की तरफ़ इशारा करके यह बात कही होगी और वह्य के इशारे से जवाब फ़ौरन उसी वक़्त यह दे दिया गया कि ये पहाड़ कूट-पीटकर इस तरह चूरा-चूरा कर दिए जाएँगे जैसे रेत के ज़र्रे, और उनको धूल की तरह उड़ाकर सारी ज़मीन एक ऐसा सपाट मैदान बना दी जाएगी कि उसमें कोई ऊँच-नीच न रहेगी, कोई गढ़ा या टीला न होगा। उसकी हालत एक ऐसे साफ़ फ़र्श की-सी होगी जिसमें ज़रा-सा बल और कोई मामूली-सी सलवट तक न हो।

83. आख़िरत की दुनिया में ज़मीन की जो नई शक्ल बनेगी, उसे क़ुरआन मजीद में अलग-अलग मौक़ों पर बयान किया गया है। सूरा-84 इनूशिक़ाक़, आयत-3 में कहा गया, "ज़मीन फैला दी जाएगी।" सूरा-82 इनूफ़ितार, आयत-3 में कहा गया, "समन्दर फाड़ दिए जाएँगे" जिसका मतलब शायद यह है कि समन्दरों की तहें फट जाएँगी और सारा पानी ज़मीन के अन्दर उतर जाएगा। सूरा-81 तकवीर, आयत-6 में कहा गया, "समन्दर भर दिए जाएँगे या पाट दिए जाएँगे।" और यहाँ बताया जा रहा है कि पहाड़ों को चूरा-चूरा करके सारी ज़मीन एक सपाट मैदान की तरह कर दी जाएगी। (सूरा-20 ता-हा, आयतें—105-107) इससे जो शक्ल ज़ेहन में बनती है वह यह है कि आख़िरत की दुनिया में यह पूरी ज़मीन समन्दर को पाटकर, पहाड़ों को तोड़कर, ऊँचाई-नीचाई को बराबर करके और जंगलों को साफ़ करके बिलकुल एक गेंद की तरह बना दी जाएगी। यही वह शक्ल है जिसके बारे में सूरा-14 इबराहीम, आयत-48 में फ़रमाया, "वह दिन जबकि ज़मीन बदलकर कुछ-से-कुछ कर दी जाएगी।" और यही ज़मीन की वह शक्ल होगी जिसपर तमाम लोगों को ज़िन्दा करके जमा किया जाएगा और अल्लाह तआला हर शख़्स

يَوْمَئِذٍ لَّا تَنفَعُ الشَّفَاعَةُ إِلَّا مَنْ أَذِنَ لَهُ الرَّحْمَٰنُ وَرَضِيَ لَهُ
قَوْلًا ﴿١٠٩﴾ يَعْلَمُ مَا بَيْنَ أَيْدِيهِمْ وَمَا خَلْفَهُمْ وَلَا يُحِيطُونَ بِهِ

सरसराहट[84] के सिवा तुम कुछ न सुनोगे। (109) उस दिन शफ़ाअत (सिफ़ारिश) काम न आएगी, सिवाय यह कि किसी को रहमान इसकी इजाज़त दे और उसकी बात सुनना पसन्द करे।[85]—(110) वह लोगों का अगला-पिछला सब हाल जानता है और दूसरों को

से उसके कामों का हिसाब लेगा। फिर इसकी आख़िरी और दाइमी शक्ल वह बना दी जाएगी जिसको सूरा-39 ज़ुमर, आयत-74 में यों बयान किया गया है, "(परहेज़गार लोग) कहेंगे कि शुक्र है उस अल्लाह का जिसने हमसे अपने वादे पूरे किए और हमको ज़मीन का वारिस बना दिया। हम इस जन्नत में जहाँ चाहें अपनी जगह बना सकते हैं; तो बेहतरीन अज्र (बदला) है अमल करनेवालों के लिए।" इससे मालूम हुआ कि आख़िरकार यह पूरी ज़मीन जन्नत बना दी जाएगी और ख़ुदा के नेक और परहेज़गार बन्दे उसके वारिस होंगे। उस वक़्त पूरी ज़मीन एक देश होगी। पहाड़, समन्दर, नदियाँ, रेगिस्तान जो आज ज़मीन को अनगिनत देशों और वतनों में बाँट रहे हैं, और साथ-साथ इनसानियत को भी बाँटे दे रहे हैं, सिरे से मौजूद ही न होंगे। वाज़ेह रहे कि सहाबा और ताबिईन में से इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) और क़तादा (रज़ि॰) भी यही बात कहते हैं कि जन्नत इसी ज़मीन पर होगी (देखें—आलूसी, हिस्सा-27, पेज 27) और सूरा-53 नज्म, आयतें-14, 15 का मतलब वे यह बयान करते हैं कि इससे मुराद वह जन्नत है जिसमें अब शहीदों की रूहें रखी जाती हैं।)

84. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'हम्स' इस्तेमाल हुआ है जो क़दमों की आहट, चुपके-चुपके बोलने की आवाज़, ऊँट के चलने की आवाज़ और ऐसी ही हल्की आवाज़ों के लिए बोला जाता है। मुराद यह है कि वहाँ कोई आवाज़, सिवाय चलनेवालों के क़दमों की आहट और चुपके-चुपके बात करनेवालों की खुसर-फुसर के नहीं सुनी जाएगी। एक घबराहट भरा माहौल होगा।

85. इस आयत के दो तर्जमे हो सकते हैं। एक वह जो ऊपर किया गया है। दूसरा यह कि "उस दिन सिफ़ारिश काम न आएगी सिवाय यह कि किसी के हक़ में रहमान (अल्लाह) इसकी इजाज़त दे और उसके लिए बात सुनने पर राज़ी हो।" अलफ़ाज़ ऐसे हैं जिनमें दोनों मतलब शामिल हैं। और हक़ीक़त भी यही है कि क़ियामत के दिन किसी को दम मारने तक की हिम्मत न होगी, कहाँ यह कि कोई सिफ़ारिश के लिए ख़ुद अपनी ज़बान खोल सके। सिफ़ारिश वही कर सकेगा जिसे अल्लाह तआला बोलने की इजाज़त दे, और उसी के हक़ में कर सकेगा जिसके लिए अल्लाह के दरबार से सिफ़ारिश करने की इजाज़त मिल जाए। ये दोनों बातें क़ुरआन में कई जगहों पर खोलकर बता दी गई हैं। एक तरफ़ फ़रमाया, "कौन है जो उसकी इजाज़त के बिना उसके सामने सिफ़ारिश कर सके।" (सूरा-2, बक़रा, आयत-255) और "जिस दिन रूह और फ़रिश्ते सब क़तार में खड़े होंगे, कोई न बोलेगा सिवाय उसके जिसे रहमान

عِلْمًا ﴿١١٠﴾ وَعَنَتِ الْوُجُوْهُ لِلْحَيِّ الْقَيُّوْمِ ؕ وَقَدْ خَابَ مَنْ

उसका पूरा इल्म नहीं है।[86] —(111) लोगों के सिर उस हमेशा ज़िन्दा और क़ायम रहनेवाले के आगे झुक जाएँगे। नाकाम होगा जो उस वक़्त किसी ज़ुल्म के गुनाह का

इजाज़त दे और जो ठीक बात कहे।" (सूरा-78 नबा, आयत-38) दूसरी तरफ़ कहा गया, "और वे किसी की सिफ़ारिश नहीं करते सिवाय उस शख़्स के जिसके हक़ में सिफ़ारिश सुनने पर (रहमान) राज़ी हो, और वह उसके ख़ौफ़ से डरे-डरे रहते हैं।" (सूरा-21 अम्बिया, आयत-28) और "कितने ही फ़रिश्ते आसमानों में हैं जिनकी सिफ़ारिश कुछ भी फ़ायदेमन्द नहीं हो सकती, सिवाय इस सूरत के कि अल्लाह से इजाज़त लेने के बाद की जाए और ऐसे शख़्स के लिए की जाए जिसके लिए वह सिफ़ारिश सुनना चाहे और पसन्द करे।" (सूरा-53 नज्म, आयत-26)

86. यहाँ वजह बताई गई है कि सिफ़ारिश पर यह पाबन्दी क्यों है। फ़रिश्ते हों या पैग़म्बर या वली, किसी को भी यह मालूम नहीं है और नहीं हो सकता कि किसका रिकॉर्ड कैसा है, कौन दुनिया में क्या करता रहा है और अल्लाह की अदालत में किस किरदार और कैसी-कैसी ज़िम्मेदारियों का बोझ लेकर आया है। इसके बरख़िलाफ़ अल्लाह को हर एक के पिछले कारनामों और करतूतों की भी जानकारी है और वह यह भी जानता है कि अब उसका नज़रिया क्या है। नेक है तो कैसा नेक है और मुजरिम है तो किस दरजे का मुजरिम है। माफ़ी के क़ाबिल है या नहीं। पूरी सज़ा का हक़दार है या उसकी सज़ा में कमी या कुछ रिआयत भी उसके साथ की जा सकती है। ऐसी हालत में यह किस तरह सही हो सकता है कि फ़रिश्तों और पैग़म्बरों और नेक लोगों को सिफ़ारिश की खुली छूट दे दी जाए और हर एक जिसकी तरफ़दारी में जो सिफ़ारिश चाहे कर दे। एक मामूली अफ़सर अपने छोटे-से महकमे में अगर अपने हर दोस्त या रिश्तेदार की सिफ़ारिशें सुनने लगे तो चार दिन में सारे महकमे का सत्यानास करके रख देगा। फिर भला ज़मीन और आसमान के बादशाह से यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि उसके यहाँ सिफ़ारिशों का बाज़ार गर्म होगा और हर बुज़ुर्ग जा-जाकर जिसको चाहेंगे, माफ़ करा लाएँगे; हालाँकि उनमें से किसी बुज़ुर्ग को भी यह मालूम नहीं है कि जिन लोगों की सिफ़ारिश वे कर रहे हैं उनके आमालनामे कैसे हैं। दुनिया में जो अफ़सर ज़िम्मेदारी का कुछ भी एहसास रखता है, उसका रवैया यह होता है कि अगर उसका कोई दोस्त उसके किसी क़ुसूरवार मातहत की सिफ़ारिश लेकर जाता है तो वह उससे कहता है कि आपको पता नहीं है कि यह आदमी कितना कामचोर, अपने फ़र्ज़ को न पहचाननेवाला, रिश्वतख़ोर और लोगों को तंग करनेवाला है! मैं इसके करतूतों को जानता हूँ, इसलिए आप मेहरबानी करके मुझसे इसकी सिफ़ारिश न करें। इसी छोटी-सी मिसाल को सामने रखकर अन्दाज़ा किया जा सकता है कि इस आयत में सिफ़ारिश के बारे में जो क़ायदा बयान किया गया है वह कितना ज़्यादा सही, समझ में आनेवाला और इनसाफ़ के मुताबिक़ है। ख़ुदा के यहाँ सिफ़ारिश का दरवाज़ा बन्द न होगा। नेक बन्दे जो दुनिया में लोगों के साथ हमदर्दी का बरताव करने के आदी थे, उन्हें आख़िरत में भी हमदर्दी का हक़ अदा करने का मौक़ा दिया जाएगा। लेकिन वे सिफ़ारिश करने से पहले

حَمَلَ ظُلْمًا ﴿١١١﴾ وَ مَنْ يَّعْمَلْ مِنَ الصّٰلِحٰتِ وَ هُوَ مُؤْمِنٌ فَلَا يَخٰفُ
ظُلْمًا وَّ لَا هَضْمًا ﴿١١٢﴾ وَكَذٰلِكَ اَنْزَلْنٰهُ قُرْاٰنًا عَرَبِيًّا وَّ صَرَّفْنَا
فِيْهِ مِنَ الْوَعِيْدِ لَعَلَّهُمْ يَتَّقُوْنَ اَوْ يُحْدِثُ لَهُمْ ذِكْرًا ﴿١١٣﴾

बोझ उठाए हुए हो। (112) और किसी ज़ुल्म या हक़ मारे जाने का ख़तरा न होगा उस शख़्स को जो अच्छे काम करे और इसके साथ वह ईमानवाला[87] भी हो।

(113) और ऐ नबी, इसी तरह हमने इसे अरबी क़ुरआन बनाकर उतारा है[88] और इसमें तरह-तरह से तम्बीहें (चेतावनियाँ) की हैं, शायद कि ये लोग टेढ़े रास्ते पर चलने से बचें या इनमें कुछ होश के आसार इसकी वजह से पैदा हों।[89]

इजाज़त माँगेंगे, और जिसके लिए अल्लाह तआला उन्हें बोलने की इजाज़त देगा, सिर्फ़ उसी के लिए वे सिफ़ारिश कर सकेंगे। फिर सिफ़ारिश के लिए भी यह शर्त होगी कि वह मुनासिब और हक़ के मुताबिक़ हो, जैसा कि अल्लाह का यह फ़रमान कि 'और बात ठीक कहे' साफ़ बता रहा है। बेवजह की सिफ़ारिशें करने की वहाँ इजाज़त न होगी कि एक आदमी दुनिया में सैकड़ों, हज़ारों लोगों के हक़ मारकर आया हो और कोई बुज़ुर्ग उठकर सिफ़ारिश कर दें कि हुज़ूर इसे इनाम दें, यह मेरा ख़ास आदमी है।

87. यानी वहाँ फ़ैसला हर इनसान की सिफ़ात और ख़ूबियों (Merits) की बुनियाद पर होगा। जो शख़्स किसी ज़ुल्म का बोझ उठाए हुए आएगा, चाहे उसने ज़ुल्म अपने ख़ुदा के हक़ों पर किया हो या ख़ुदा के बन्दों के हक़ों पर, या ख़ुद अपने आप पर, बहरहाल यह चीज़ उसे कामयाबी का मुँह न देखने देगी। दूसरी तरफ़ जो लोग ईमान और अच्छे काम (सिर्फ़ अच्छे काम नहीं, बल्कि ईमान के साथ अच्छे काम, और सिर्फ़ ईमान भी नहीं, बल्कि अच्छे कामों के साथ ईमान) लिए हुए आएँगे, उनके लिए वहाँ न तो इस बात का कोई डर है कि उनपर ज़ुल्म होगा यानी बेवजह और बेक़ुसूर उनको सज़ा दी जाएगी, और न इसी बात का कोई ख़तरा है कि उनके किए-कराए पर पानी फेर दिया जाएगा और उनके जाइज़ हक़ मार खाए जाएँगे।

88. यानी ऐसे ही मज़ामीन (विषयों) और तालीमात और नसीहतों से भरा हुआ। इसका इशारा उन तमाम मज़ामीन की तरफ़ है जो क़ुरआन में बयान हुए हैं, न कि सिर्फ़ क़रीबी मज़मून की तरफ़ जो ऊपर वाली आयत में बयान हुआ है। और बात का यह सिलसिला उन आयतों से जुड़ता है जो क़ुरआन के बारे में सूरा के शुरू में और फिर मूसा (अलैहि॰) के क़िस्से के आख़िर में कही गई हैं। मतलब यह है कि वह 'याददिहानी' जो तुम्हारी तरफ़ भेजी गई है, और वह 'ज़िक्र' जो हमने ख़ास अपने यहाँ से तुमको दिया है, इस शान की 'याददिहानी' और ज़िक्र है।

89. यानी अपनी ग़फ़लत से चौंकें, भूले हुए सबक़ को कुछ याद करें, और उनको कुछ इस बात का एहसास हो कि किन रास्तों में भटके चले जा रहे हैं और इस गुमराही का अंजाम क्या है।

فَتَعٰلَى اللّٰهُ الْمَلِكُ الْحَقُّ ۚ وَلَا تَعْجَلْ بِالْقُرْاٰنِ مِنْ قَبْلِ
اَنْ يُّقْضٰٓى اِلَيْكَ وَحْيُهٗ ۫ وَقُلْ رَّبِّ زِدْنِيْ عِلْمًا ﴿۱۱۴﴾

(114) तो बाला और बरतर (उच्च और महान) है अल्लाह, हक़ीक़ी बादशाह।[90] और देखो, क़ुरआन पढ़ने में जल्दी न किया करो, जब तक कि तुम्हारी तरफ़ उसकी वह्य मुकम्मल न हो जाए और दुआ करो कि ऐ परवरदिगार! मुझे और ज़्यादा इल्म दे।[91]

90. इस तरह के जुमले क़ुरआन में आम तौर पर एक तक़रीर को ख़त्म करते हुए कहे जाते हैं, और इनका मक़सद यह होता है कि बात अल्लाह तआला की तारीफ़ और शुक्र बयान करने पर ख़त्म हो। बयान के अन्दाज़ और मौक़ा-महल पर ग़ौर करने से साफ़ महसूस होता है कि यहाँ एक तक़रीर ख़त्म हो गई है और "और हमने इससे पहले आदम को एक हुक्म दिया था" (आयत-115) से दूसरी तक़रीर शुरू होती है। ज़्यादा इमकान यह है कि ये दोनों तक़रीरें अलग-अलग वक़्तों में उतरी होंगी और बाद में नबी (सल्ल॰) ने अल्लाह के हुक्म से इनको एक सूरा में जमा कर दिया होगा। जमा करने की वजह यह है कि दोनों में जो बात कही गई है उनमें बड़ी मुनासबत है जिसको अभी हम वाज़ेह करेंगे।

91. 'तो बाला व बरतर है अल्लाह—हक़ीक़ी बादशाह' पर तक़रीर ख़त्म हो चुकी थी। उसके बाद विदा होते हुए फ़रिश्ता अल्लाह तआला के हुक्म से नबी (सल्ल॰) को एक बात पर ख़बरदार करता है जो वह्य उतरने के दौरान में उसके देखने में आई। बीच में टोकना मुनासिब न समझा गया, इसलिए पैग़ाम भेजने का अमल पूरा करने के बाद अब वह उसका नोटिस ले रहा है। बात क्या थी जिसपर ख़बरदार किया गया, इसे ख़ुद ख़बरदार करने के अलफ़ाज़ ज़ाहिर कर रहे हैं। नबी (सल्ल॰) वह्य का पैग़ाम वुसूल करने के दौरान में उसे याद करने और ज़बान से दोहराने की कोशिश कर रहे होंगे। इस कोशिश की वजह से आप (सल्ल॰) का ध्यान बार-बार हट जाता होगा। वह्य को अपनाने के सिलसिले में रुकावट आ रही होगी। पैग़ाम के सुनने पर ध्यान पूरी तरह नहीं लग रहा होगा। इस कैफ़ियत को देखकर यह ज़रूरत महसूस की गई कि आप (सल्ल॰) को वह्य का पैग़ाम वुसूल करने का सही तरीक़ा समझाया जाए, और बीच-बीच में याद करने की कोशिश जो आप (सल्ल॰) करते हैं उससे मना कर दिया जाए।

इससे मालूम होता है कि इस सूरा ता-हा का यह हिस्सा इब्तिदाई ज़माने की वह्यों में से है। इब्तिदाई ज़माने में जबकि नबी (सल्ल॰) को अभी वह्य को अपनाने की आदत अच्छी तरह न पड़ी थी, आप (सल्ल॰) से कई बार यह काम हो गया है और हर मौक़े पर कोई-न-कोई जुमला इसपर आप (सल्ल॰) को ख़बरदार करने के लिए अल्लाह तआला की तरफ़ से इरशाद फ़रमाया गया है। सूरा-75 क़ियामह के उतरने के मौक़े पर भी यही हुआ था और इसपर बात के सिलसिले को तोड़कर आप (सल्ल॰) को टोका गया कि "इसे याद करने की जल्दी में अपनी ज़बान को बार-बार हरकत न दो, इसे याद करा देना और पढ़वा देना हमारे ज़िम्मे है, इसलिए जब हम इसे सुना रहे हों तो ग़ौर से सुनते रहो; फिर इसका मतलब समझा देना भी हमारे ही

وَلَقَدْ عَهِدْنَآ إِلَىٰٓ ءَادَمَ مِن قَبْلُ فَنَسِيَ وَلَمْ نَجِدْ

(115) हमने[92] इससे पहले आदम को एक हुक्म दिया था,[93] मगर वह भूल गया

ज़िम्मे है।" (आयतें—16-19) सूरा-87 आला में भी नबी (सल्ल.) को इत्मीनान दिलाया गया है कि "हम इसे पढ़वा देंगे और आप भूलेंगे नहीं।" (आयत-6) बाद में जब आप (सल्ल.) को वह्य के पैग़ाम वुसूल करने की अच्छी महारत हासिल हो गई तो इस तरह की कैफ़ियतें आप (सल्ल.) पर तारी होनी बन्द हो गईं। इसी वजह से बाद की सूरतों में ऐसी कोई बात हमें नहीं मिलती जिसमें इस पहलू से आप (सल्ल.) को ख़बरदार किया गया हो।

92. जैसाकि अभी बताया जा चुका है, यहाँ से एक अलग तक़रीर शुरू होती है जो शायद ऊपरवाली तक़रीर के बाद किसी वक़्त उतरी है और मज़मून से मेल खाने की वजह से उसके साथ मिलाकर एक ही सूरा में जमा कर दी गई है। मज़मून से मेल खाती बातें कई एक हैं। मिसाल के तौर पर ये—

(1) वह भूला हुआ सबक़ जिसे क़ुरआन याद दिला रहा है वही सबक़ है जो इनसानी नस्ल को उसकी पैदाइश के शुरू में दिया गया था और जिसे याद दिलाते रहने का अल्लाह तआला ने वादा किया था, और जिसे याद दिलाने के लिए क़ुरआन से पहले भी बार-बार 'ज़िक्र' (याददिहानियाँ) आते रहे हैं।

(2) इनसान उस सबक़ को बार-बार शैतान के बहकाने से भूलता है, और यह कमज़ोरी वह उस वक़्त से बराबर दिखा रहा है जबसे उसकी पैदाइश हुई है। सबसे पहली भूल उसके सबसे पहले माँ-बाप (आदम-हौवा) से हुई थी और उसके बाद से इसका सिलसिला बराबर जारी है, इसी लिए इनसान इसका मुहताज है कि उसको लगातार याददिहानी कराई जाती रहे।

(3) यह बात कि इनसान की ख़ुशनसीबी और बदनसीबी का दारोमदार बिलकुल उस बरताव पर है जो अल्लाह तआला के भेजे हुए इस 'ज़िक्र' (याददिहानी) के साथ वह करेगा, उसकी पैदाइश के शुरू ही में साफ़-साफ़ बता दी गई थी। आज यह कोई नई बात नहीं कही जा रही है कि उसकी पैरवी करोगे तो गुमराही और बदनसीबी से बचे रहोगे वरना दुनिया और आख़िरत दोनों में मुसीबत में पड़ोगे।

(4) एक चीज़ है भूल और अज़्म (संकल्प) की कमी और इरादे की कमज़ोरी, जिसकी वजह से इनसान अपने पैदाइशी दुश्मन (शैतान) के बहकावे में आ जाए और ग़लती कर बैठे। इसकी माफ़ी हो सकती है, बशर्ते कि इनसान ग़लती का एहसास होते ही अपने रवैये की इस्लाह कर ले और नाफ़रमानी छोड़कर फ़रमाँबरदारी की तरफ़ पलट आए। दूसरी चीज़ है वह सरकशी और बग़ावत और ख़ूब सोच-समझकर अल्लाह के मुक़ाबले में शैतान की बन्दगी जो फ़िरऔन और सामिरी ने इख़्तियार की। इस चीज़ के लिए माफ़ी का कोई इमकान नहीं है। इसका अंजाम वही है जो फ़िरऔन और सामिरी ने देखा, और यह अंजाम हर वह शख़्स देखेगा जो इस डगर पर चलेगा।

93. हज़रत आदम (अलैहि.) का क़िस्सा इससे पहले सूरा-2 बक़रा; सूरा-7 आराफ़ (दो जगहों पर); सूरा-15 हिज्र; सूरा-17 बनी-इसराईल और सूरा-18 कह्फ़ में गुज़र चुका है। यह सातवाँ मौक़ा है

لَهٗ عَزْمًا ﴿١١٥﴾ وَاِذْ قُلْنَا لِلْمَلٰٓئِكَةِ اسْجُدُوْا لِاٰدَمَ فَسَجَدُوْٓا اِلَّآ

और हमने उसमें अज़्म (मज़बूत इरादा) न पाया।[94] (116) याद करो वह वक़्त जबकि हमने फ़रिश्तों से कहा था कि आदम को सजदा करो। वे सब तो सजदा कर गए, मगर

जबकि इसे दोहराया जा रहा है। हर जगह मौक़े के लिहाज़ से बात कही गई है और हर जगह उसी मौक़े के लिहाज़ से क़िस्से की तफ़सीलात अलग-अलग तरीक़े से बयान की गई हैं। क़िस्से के जो हिस्से जगह के मौज़ू-ए-बहस (वार्ता-विषय) से मेल खाते हैं उसी जगह बयान हुए हैं; दूसरी जगह वे न मिलेंगे, या बयान का अन्दाज़ ज़रा अलग होगा। पूरे क़िस्से को और उसकी पूरी बात को समझने के लिए उन तमाम मक़ामात पर निगाह डाल लेनी चाहिए। हमने हर जगह उसके एक दूसरे से ताल्लुक़ और उससे निकलनेवाले नतीजों को अपने हाशियों में बयान कर दिया है।

94. यानी उसने बाद में इस हुक्म के साथ जो मामला किया वह घमंड और जान-बूझकर की गई सरकशी की बुनियाद पर न था, बल्कि ग़फ़लत और भूल में पड़ जाने और अज़्म और इरादे की कमज़ोरी में मुब्तला होने की वजह से था। उसने हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी कुछ इस ख़याल और नीयत के साथ नहीं की थी कि मैं ख़ुदा की क्या परवाह करता हूँ, उसका हुक्म है तो हुआ करे; जो कुछ मेरा जी चाहेगा, करूँगा। ख़ुदा कौन होता है कि मेरे मामलों में दख़ल दे। इसके बजाय उसकी नाफ़रमानी की वजह यह थी कि उसने हमारा हुक्म याद रखने की कोशिश न की। भूल गया कि हमने उसे क्या समझाया था, और उसके इरादे में इतनी मज़बूती न थी कि जब शैतान उसे बहकाने आया उस वक़्त वह हमारी पहले से दी गई तंबीह (चेतावनी) और नसीहत को (जिसका ज़िक्र अभी आगे आता है) याद करता और उसके दिए हुए लालच का सख़्ती के साथ मुक़ाबला करता।

कुछ लोगों ने ''उसमें अज़्म न पाया'' का मतलब यह लिया है कि ''हमने उसमें नाफ़रमानी का अज़्म न पाया'', यानी उसने जो कुछ किया, भूले से किया; नाफ़रमानी के इरादे से नहीं किया। लेकिन यह बेवजह की बात है। यह बात अगर कहनी होती तो "हमने उसमें बुराई करने का इरादा नहीं पाया" कहा जाता, न कि सिर्फ़ "हमने उसमें अज़्म न पाया"। आयत के अलफ़ाज़ साफ़ बता रहे हैं कि अज़्म के न होने से मुराद हुक्म की पैरवी के अज़्म का न होना है, न कि नाफ़रमानी के अज़्म का न होना। इसके अलावा अगर मौक़ा-महल को देखा जाए तो साफ़ महसूस होता है कि यहाँ अल्लाह तआला आदम (अलैहि०) की पोज़ीशन साफ़ करने के लिए यह क़िस्सा बयान नहीं कर रहा है, बल्कि यह बताना चाहता है कि वह इनसानी कमज़ोरी क्या थी जो उनसे हुई और जिसकी बदौलत सिर्फ़ वही नहीं, बल्कि उनकी औलाद भी अल्लाह तआला की पहले से दी गई चेतावनियों के बावजूद अपने दुश्मन के फन्दे में फँसी और फँसती रही है। इसके अलावा जो शख़्स भी अपना ज़ेहन साफ़ करके इस आयत को पढ़ेगा, उसके ज़ेहन में पहला मतलब यही आएगा कि ''हमने उसमें हुक्म की पैरवी का अज़्म, या मज़बूत इरादा न पाया।'' दूसरा मतलब उसके ज़ेहन में उस वक़्त तक नहीं आ सकता जब तक कि वह आदम (अलैहि०) की तरफ़ गुनाह के ताल्लुक़ को ग़लत समझकर आयत के किसी और मतलब की

إِبْلِيسَ ۖ أَبَىٰ ﴿١١٦﴾ فَقُلْنَا يَا آدَمُ إِنَّ هَٰذَا عَدُوٌّ لَّكَ وَلِزَوْجِكَ فَلَا
يُخْرِجَنَّكُمَا مِنَ الْجَنَّةِ فَتَشْقَىٰ ﴿١١٧﴾ إِنَّ لَكَ أَلَّا تَجُوعَ فِيهَا وَلَا تَعْرَىٰ ﴿١١٨﴾

एक इबलीस था कि इनकार कर बैठा। (117) इसपर हमने आदम[95] से कहा कि "देखो, यह तुम्हारा और तुम्हारी बीवी का दुश्मन है,[96] ऐसा न हो कि यह तुम्हें जन्नत से निकलवा दे[97] और तुम मुसीबत में पड़ जाओ। (118-119) यहाँ तो तुम्हें ये सुख और

तलाश शुरू न कर दे। यही राय अल्लामा आलूसी ने भी इस मौक़े पर अपनी तफ़सीर में ज़ाहिर की है। वे कहते हैं, "मगर तुमसे यह बात छिपी न होगी कि यह तफ़सीर आयत के अलफ़ाज़ सुनकर फ़ौरन ज़ेहन में नहीं आती और न मौक़ा-महल के साथ कुछ ज़्यादा जोड़ रखती है।"
(देखिए– रूहुल-मआनी, हिस्सा-16, पृ॰ 243)

95. यहाँ वह अस्ल हुक्म बयान नहीं किया गया है जो आदम (अलैहि॰) को दिया गया था, यानी यह कि "इस ख़ास पेड़ का फल न खाना।" वह हुक्म दूसरी जगहों पर क़ुरआन मजीद में बयान हो चुका है। इस जगह पर चूँकि बताने की अस्ल चीज़ सिर्फ़ यह है कि इनसान किस तरह अल्लाह की पहले से दी हुई तंबीह (चेतावनी) और नसीहत के बावजूद अपने जाने-बूझे दुश्मन की धोखे और फ़रेब भरी बातों से मुतास्सिर हो जाता है और किस तरह उसकी यही कमज़ोरी उससे वह काम करा लेती है, जो उसके अपने फ़ायदे के ख़िलाफ़ होती है। इसलिए अल्लाह ने अस्ल हुक्म का ज़िक्र करने के बजाय यहाँ उस नसीहत का ज़िक्र किया है जो इस हुक्म के साथ हज़रत आदम (अलैहि॰) को की गई थी।

96. दुश्मनी की बात उसी वक़्त सामने आ चुकी थी। आदम (अलैहि॰) और हव्वा (अलैहि॰) ख़ुद देख चुके थे कि इबलीस ने उनको सजदा करने से इनकार किया है और साफ़-साफ़ यह कहकर किया है कि "मैं इससे बेहतर हूँ। तूने मुझको आग से पैदा किया है और इसको मिट्टी से।" (सूरा-7 आराफ़, आयत-12; सूरा-38 सॉद, आयत-76)। "ज़रा देख तो सही यह है वह हस्ती जिसको तूने मुझपर बड़ाई दी है।" "अब क्या मैं उसे सजदा करूँ जिसको तूने मिट्टी से बनाया है?" (सूरा-17 बनी-इसराईल, आयतें–61, 62)। फिर इतने ही पर उसने बस न किया कि खुल्लम-खुल्ला अपना हसद (ईर्ष्या) ज़ाहिर कर दिया, बल्कि अल्लाह तआला से उसने मुहलत भी माँगी कि मुझे अपनी बड़ाई और उसका नाकारापन साबित करने का मौक़ा दीजिए। मैं इसे बहकाकर आपको दिखा दूँगा कि कैसा है यह आपका ख़लीफ़ा। सूरा-7 आराफ़; सूरा-15 हिज्र और सूरा-17 बनी-इसराईल में उसका यह चैलेंज गुज़र चुका है और आगे सूरा-38 सॉद में भी आ रहा है। इसलिए अल्लाह तआला ने जब यह फ़रमाया कि यह तुम्हारा दुश्मन है तो यह महज़ एक ग़ैब के मामले की ख़बर न थी, बल्कि एक ऐसी चीज़ थी जिसे ठीक मौक़े पर दोनों मियाँ-बीवी अपनी आँखों देख चुके और अपने कानों सुन चुके थे।

97. इस तरह यह भी दोनों को बता दिया गया कि अगर उसके बहकावे में आकर तुमने हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी की तो जन्नत में न रह सकोगे और वे तमाम नेमतें तुमसे छिन जाएँगी जो तुमको यहाँ हासिल हैं।

وَاَنَّكَ لَا تَظْمَؤُا فِيْهَا وَلَا تَضْحٰى ﴿١١٩﴾ فَوَسْوَسَ اِلَيْهِ الشَّيْطٰنُ
قَالَ يٰٓاٰدَمُ هَلْ اَدُلُّكَ عَلٰى شَجَرَةِ الْخُلْدِ وَمُلْكٍ لَّا يَبْلٰى ﴿١٢٠﴾ فَاَكَلَا
مِنْهَا فَبَدَتْ لَهُمَا سَوْاٰتُهُمَا وَطَفِقَا يَخْصِفٰنِ عَلَيْهِمَا

आराम हासिल हैं कि न भूखे-नंगे रहते हो, न प्यास और धूप तुम्हें सताती है।"[98] (120) लेकिन शैतान ने उसको फुसलाया।[99] कहने लगा, "आदम! बताऊँ तुम्हें वह पेड़ जिससे हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी और कभी न ख़त्म होनेवाली सल्तनत हासिल होती है?"[100] (121) आख़िरकार दोनों (मियाँ-बीवी) उस पेड़ का फल खा गए। नतीजा यह हुआ कि फ़ौरन ही उनकी शर्मगाहें एक-दूसरे के आगे खुल गईं और लगे दोनों अपने

98. यह तशरीह (व्याख्या) है उस मुसीबत की जिसमें जन्नत से निकलने के बाद इनसान को मुब्तला हो जाना था। इस मौक़े पर जन्नत की बड़ी और आला दरजे की नेमतों का ज़िक्र करने के बजाय उसकी चार बुनियादी नेमतों का ज़िक्र किया गया, यानी यह कि यहाँ तुम्हारे लिए खाना-पानी, कपड़ा और रहने का इन्तिज़ाम सरकारी तौर पर किया जा रहा है। तुमको उनमें से कोई चीज़ भी हासिल करने के लिए मेहनत और कोशिश नहीं करनी पड़ती। इससे ख़ुद-ब-ख़ुद यह बात आदम (अलैहि०) और हव्वा (अलैहि०) पर वाज़ेह हो गई कि अगर वे शैतान के बहकावे में आकर सरकार के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी करेंगे तो जन्नत से निकलकर उन्हें यहाँ की बड़ी नेमतें तो दूर रहीं, ये बुनियादी सुहूलतें तक हासिल न रहेंगी। वे अपनी बिलकुल इब्तिदाई ज़रूरतों तक के लिए हाथ-पाँव मारने और अपनी जान खपाने पर मजबूर हो जाएँगे। चोटी से एड़ी तक पसीना जब तक न बहाएँगे, एक वक़्त की रोटी तक न पा सकेंगे। रोज़ी की फ़िक्र ही उनके ध्यान और उनके वक़्तों और उनकी क़ुव्वतों का इतना बड़ा हिस्सा खींच ले जाएगी कि किसी ज़्यादा बुलन्द मक़सद के लिए कुछ करने की न फ़ुरसत रहेगी, न ताक़त।

99. यहाँ क़ुरआन साफ़-साफ़ बता रहा है कि आदम और हव्वा में से अस्ल वह शख़्स जिसको शैतान ने वसवसे में डाला आदम (अलैहि०) थे, न कि हज़रत हव्वा। अगरचे सूरा-7 आराफ़ के बयान के मुताबिक़ मुख़ातब दोनों ही थे और बहकाने में दोनों ही आए, लेकिल शैतान के वसवसे डालने का रुख़ अस्ल में हज़रत आदम (अलैहि०) ही की तरफ़ था। इसके बरख़िलाफ़ बाइबल का बयान यह है कि साँप ने पहले औरत से बात की और फिर औरत ने अपने शौहर को बहकाकर पेड़ का फल उसे खिलाया। (उत्पत्ति, अध्याय-3)

100. सूरा-7 आराफ़, आयत-20 में शैतान की बातचीत की और ज़्यादा तफ़सील हमको यह मिलती है, "और उसने कहा कि तुम्हारे रब ने तुमको इस पेड़ से सिर्फ़ इसलिए रोक दिया है कि कहीं तुम दोनों फ़रिश्ते न हो जाओ, या हमेशा जीते न रहो।"

مِنۡ وَّرَقِ الۡجَنَّةِ ۚ وَعَصٰٓى اٰدَمُ رَبَّهٗ فَغَوٰى ۞ ثُمَّ اجۡتَبٰهُ رَبُّهٗ

आपको जन्नत के पत्तों से ढाँकने।[101] आदम ने अपने रब की नाफ़रमानी की और सीधे रास्ते से भटक गया।[102] (122) फिर उसके रब ने उसे चुन लिया[103] और उसकी तौबा

101. दूसरे अलफ़ाज़ में नाफ़रमानी का गुनाह होते ही वे सहूलतें उनसे छीन ली गईं जो सरकारी इन्तिज़ाम से उनको मुहैया की जाती थीं, और इसका सबसे पहला इज़हार लिबास छिन जाने की शक्ल में हुआ। खाना-पानी और ठिकाना छिनने की नौबत तो बाद को ही आनी थी। उसका पता तो भूख-प्यास लगने पर ही चल सकता था, और मकान से निकाले जाने की बारी भी बाद ही में आ सकती थी। मगर पहली चीज़ जिसपर नाफ़रमानी का असर पड़ा वह सरकारी पोशाक थी जो उसी वक़्त उतरवा ली गई।

102. यहाँ उस इनसानी कमज़ोरी की हक़ीक़त को समझ लेना चाहिए जो आदम (अलैहि॰) से ज़ाहिर हुई। अल्लाह तआला को वे अपना पैदा करनेवाला और पालनहार जानते थे और दिल से मानते थे। जन्नत में उनको जो सुहूलतें हासिल थीं, उनका तजरिबा उन्हें ख़ुद हर वक़्त हो रहा था। शैतान के हसद और दुश्मनी का भी उनको सीधे तौर इल्म हो चुका था। अल्लाह तआला ने उनको हुक्म देने के साथ ही बता दिया था कि यह तुम्हारा दुश्मन तुम्हें नाफ़रमानी पर आमादा करने की कोशिश करेगा और उसका तुम्हें यह नुक़सान उठाना पड़ेगा। शैतान उनके सामने चैलेंज दे चुका था कि मैं इसे बहकाऊँगा और इसको जड़ से उखाड़ फेंकूँगा। इन सारी बातों के बावजूद जब शैतान ने उनको मेहरबान नसीहत करनेवाले और ख़ैरख़ाह दोस्त के वेश में आकर एक बेहतर हालत (हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी और कभी ख़त्म न होनेवाली सल्तनत) का लालच दिलाया तो वे उसके लालच दिलाने के मुक़ाबले में जम न सके और फिसल गए। हालाँकि अब भी ख़ुदा पर उनके अक़ीदे में फ़र्क़ न आया था और उसके फ़रमान के बारे में ऐसा कोई ख़याल उनके ज़ेहन में नहीं था कि उसपर अमल करना सिरे से ज़रूरी ही नहीं है। बस एक फ़ौरी जज़्बे ने जो शैतान के ललचाने पर उभर आया था, उन्हें ग़फ़लत में डाल दिया और अपने मन पर उनकी पकड़ ढीली होते ही वे फ़रमाँबरदारी के बुलन्द मक़ाम से गुनाहगारी की पस्ती में जा गिरे। यही वह 'भूल' और 'अज़्म की कमी' है जिसका ज़िक्र क़िस्से के शुरू में किया गया था, और इसी चीज़ का नतीजा वह नाफ़रमानी और भटकाव है जिसका ज़िक्र इस आयत में किया गया है। यह इनसान की वह कमज़ोरी है जो उसकी पैदाइश के शुरू ही में उससे ज़ाहिर हुई और बाद में कोई ज़माना ऐसा नहीं गुज़रा है जबकि यह कमज़ोरी उसमें न पाई गई हो।

103. यानी शैतान की तरह दरबार से धुतकार कर निकाल न दिया, फ़रमाँबरदारी की कोशिश में नाकाम होकर जहाँ वे गिर गए थे, वहीं उन्हें पड़ा नहीं छोड़ दिया; बल्कि उठाकर अपने पास बुला लिया और अपनी ख़िदमत के लिए चुन लिया। एक सुलूक वह है जो इरादे के साथ बग़ावत करनेवाले और अकड़ और हेकड़ी दिखानेवाले नौकर के साथ किया जाता है। उसका हक़दार शैतान था और हर वह बन्दा है जो डटकर अपने रब की नाफ़रमानी करे और सीना

فَتَابَ عَلَيْهِ وَهَدٰى ﴿١٢٢﴾ قَالَ اهْبِطَا مِنْهَا جَمِيْعًا بَعْضُكُمْ
لِبَعْضٍ عَدُوٌّ ۚ فَاِمَّا يَاْتِيَنَّكُمْ مِّنِّيْ هُدًى ۙ فَمَنِ اتَّبَعَ هُدَايَ
فَلَا يَضِلُّ وَلَا يَشْقٰى ﴿١٢٣﴾ وَمَنْ اَعْرَضَ عَنْ ذِكْرِيْ فَاِنَّ لَهٗ
مَعِيْشَةً ضَنْكًا وَّنَحْشُرُهٗ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ اَعْمٰى ﴿١٢٤﴾ قَالَ

क़बूल कर ली और उसे रास्ता दिखाया।[104] (123) और कहा, "तुम दोनों (फ़रीक़ यानी इनसान और शैतान) यहाँ से उतर जाओ। तुम एक-दूसरे के दुश्मन रहोगे। अब अगर मेरी तरफ़ से तुम्हें कोई हिदायत (रहनुमाई) पहुँचे तो जो कोई मेरी उस हिदायत की पैरवी करेगा वह न भटकेगा, न बदहाली व बदनसीबी में मुब्तला होगा। (124) और जो मेरे 'ज़िक्र' (नसीहत के सबक़) से मुँह मोड़ेगा उसके लिए दुनिया में ज़िन्दगी तंग होगी[105] और क़ियामत के दिन हम उसे अंधा उठाएँगे।"[106]—(125) वह कहेगा,

ठोंककर उसके सामने खड़ा हो जाए। दूसरा सुलूक वह है जो उस वफ़ादार बन्दे के साथ किया जाता है जो महज़ 'भूल' और 'अज़्म की कमी' की वजह से क़ुसूर कर गुज़रा हो, और फिर होश आते ही अपने किए पर शर्मिन्दा हो जाए। यह सुलूक हज़रत आदम और हव्वा से किया गया; क्योंकि अपनी ग़लती का एहसास होते ही वे पुकार उठे थे, "ऐ हमारे परवरदिगार! हमने अपने आपपर ज़ुल्म किया, और अगर तू हमें माफ़ न करे और हमपर रहम न करे तो हम बरबाद हो जाएँगे।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-23)

104. यानी सिर्फ़ माफ़ ही न किया, बल्कि आगे के लिए सीधा रास्ता भी बताया और उसपर चलने का तरीक़ा भी सिखाया।

105. दुनिया में तंग ज़िन्दगी होने का मतलब यह नहीं है कि वह तंगदस्त हो जाएगा; बल्कि इसका मतलब यह है कि यहाँ उसे चैन नसीब न होगा। करोड़पति भी होगा तो बेचैन रहेगा। सात देशों का हाकिम भी होगा तो बेकली और बेइत्मीनानी से छुटकारा न पाएगा। उसकी दुनियावी कामयाबियाँ हज़ारों तरह की नाजाइज़ तदबीरों का नतीजा होंगी जिनकी वजह से अपने ज़मीर (अन्तरात्मा) से लेकर आसपास के पूरे इज्तिमाई माहौल तक हर चीज़ के साथ उसकी लगातार कशमकश जारी रहेगी जो उसे कभी अम्नो-इत्मीनान और सच्ची ख़ुशी से फ़ायदा न उठाने देगी।

106. इस जगह आदम (अलैहि॰) का क़िस्सा ख़त्म हो जाता है। यह क़िस्सा जिस तरीक़े से यहाँ और क़ुरआन की दूसरी जगहों पर बयान हुआ है, उसपर ग़ौर करने से मैं यह समझा हूँ (सही बात तो अल्लाह ही जानता है) कि ज़मीन की अस्ल ख़िलाफ़त (शासनाधिकार) वही थी जो आदम (अलैहि॰) को शुरू में जन्नत में दी गई थी। वह जन्नत हो सकता है कि आसमानों में हो और हो सकता है कि इसी ज़मीन पर बनाई गई हो। बहरहाल, वहाँ अल्लाह तआला का

ख़लीफ़ा इस शान से रखा गया था कि उसके खाने-पीने और लिबास और मकान का सारा इन्तिज़ाम सरकार के ज़िम्मे था और ख़िदमत करनेवाले (फ़रिश्ते) उसके हुक्म के ग़ुलाम थे। उसको अपनी निजी ज़रूरतों के लिए बिलकुल भी कोई फ़िक्र न करनी पड़ती थी; ताकि वह ख़िलाफ़त की बहुत बड़ी और बहुत अहम ज़िम्मेदारियाँ अदा करने के लिए तैयार हो सके। मगर इस मंसब पर बाक़ायदा तक़र्रुर होने से पहले इम्तिहान लेना ज़रूरी समझा गया, ताकि उम्मीदवार की सलाहियतों का हाल खुल जाए और यह ज़ाहिर हो जाए कि उसकी कमज़ोरियाँ क्या हैं और ख़ूबियाँ क्या। चुनाँचे इम्तिहान लिया गया और जो बात खुली वह यह थी कि यह उम्मीदवार लालच और लोभ के असर में आकर फिसल जाता है, फ़रमाँबरदारी के इरादे पर मज़बूती से क़ायम नहीं रहता, और उसके इल्म पर भूल हावी हो जाती है। इस इम्तिहान के बाद आदम (अलैहि०) और उनकी औलाद को मुस्तक़िल तौर पर ख़िलाफ़त पर मुक़र्रर करने के बजाय आज़माइशी ख़िलाफ़त दी गई, और आज़माइश के लिए एक मुद्दत (अ-जले मुसम्मा जिसका ख़ातिमा क़ियामत पर होगा) मुक़र्रर कर दी गई। इस आज़माइश के दौर में उम्मीदवारों के लिए रोज़ी-रोटी का सरकारी इन्तिज़ाम ख़त्म कर दिया गया। अब अपनी रोज़ी का इन्तिज़ाम उन्हें ख़ुद करना है। अलबत्ता ज़मीन और उसपर मौजूद अल्लाह की बनाई हुई चीज़ों पर उनके इख़्तियारात बरक़रार हैं। आज़माइश इस बात की है कि इख़्तियार रखने के बावजूद ये फ़रमाँबरदारी करते हैं या नहीं, और अगर भूल हो जाती है, या लालच के असर में आकर फिसलते हैं तो चेतावनी, नसीहत और तालीम का असर क़बूल करके संभलते भी हैं या नहीं? और उनका आख़िरी फ़ैसला क्या होता है, फ़रमाँबरदारी का या नाफ़रमानी का? इस आज़माइशी ख़िलाफ़त के दौरान में हर एक के रवैये का रिकॉर्ड महफ़ूज़ रहेगा। और हिसाब के दिन जो लोग कामयाब निकलेंगे, उन्हीं को फिर मुस्तक़िल तौर पर ख़िलाफ़त दी जाएगी और यह ख़िलाफ़त, उस हमेशा की ज़िन्दगी और कभी न ख़त्म होनेवाली सल्तनत के साथ दी जाएगी, जिसका लालच देकर शैतान ने अल्लाह के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी कराई थी। उस वक़्त यह पूरी ज़मीन जन्नत बना दी जाएगी और इसके वारिस अल्लाह के वे नेक बन्दे होंगे जिन्होंने आज़माइशी ख़िलाफ़त में फ़रमाँबरदारी पर क़ायम रहकर, या भूल हो जाने के बाद आख़िरकार फ़रमाँबरदारी की तरफ़ पलटकर, अपना लायक़ होना साबित कर दिया होगा। जन्नत की उस ज़िन्दगी को जो लोग सिर्फ़ खाने-पीने और ऐंडने की ज़िन्दगी समझते हैं उनका ख़याल सही नहीं है। वहाँ लगातार तरक़्क़ी होगी, बिना इसके कि उसके लिए किसी तरह की गिरावट का ख़तरा हो। और वहाँ अल्लाह की ख़िलाफ़त के अज़ीमुश्शान काम इनसान अंजाम देगा, बिना इसके कि उसे फिर किसी नाकामी का मुँह देखना पड़े। मगर इन तरक़्क़ियों और उन ख़िदमतों का तसव्वुर करना हमारे लिए उतना ही मुश्किल है जितना एक बच्चे के लिए यह तसव्वुर करना मुश्किल होता है कि बड़ा होकर जब वह शादी करेगा तो शादीशुदा ज़िन्दगी की कैफ़ियतें क्या होंगी। इसी लिए क़ुरआन में जन्नत की ज़िन्दगी की सिर्फ़ उन्हीं लज़्ज़तों का ज़िक्र किया गया है जिनका हम इस दुनिया की लज़्ज़तों पर गुमान करके कुछ अन्दाज़ा कर सकते हैं।

इस मौक़े पर यह बात दिलचस्पी से ख़ाली न होगी कि आदम (अलैहि०) और हव्वा (अलैहि०) का क़िस्सा जिस तरह बाइबल में बयान हुआ है उसे भी एक नज़र देख लिया जाए। बाइबल

का बयान है कि "ख़ुदा ने ज़मीन की मिट्टी से इनसान को बनाया और उसके नथुनों में ज़िन्दगी का दम फूँका तो इनसान जीती जान हुआ। और ख़ुदावन्द ख़ुदा ने पूरब की तरफ़ अदन में एक बाग़ लगाया और इनसान को जिसे उसने बनाया था, वहाँ रखा।" "और बाग़ के बीच में एक ज़िन्दगी का पेड़ और अच्छे और बुरे की पहचान का पेड़ भी लगाया।" "और ख़ुदावन्द ख़ुदा ने आदम को हुक्म दिया और कहा कि तू बाग़ के हर पेड़ का फल बेरोक-टोक खा सकता है, लेकिन अच्छे और बुरे की पहचान के पेड़ का फल कभी न खाना; क्योंकि जिस दिन तूने उसमें से खाया तो मरा।" "और ख़ुदावन्द ख़ुदा उस पसली से जो उसने आदम में से निकाली थी, एक औरत बनाकर उसे आदम के पास लाया।" "और आदम और उसकी बीवी दोनों नंगे थे और शरमाते न थे।" "और साँप तमाम जंगली जानवरों से जिनको ख़ुदावन्द ख़ुदा ने बनाया था, चालाक था, और उसने औरत से कहा कि क्या वाक़ई ख़ुदा ने कहा है कि बाग़ के किसी पेड़ का फल तुम न खाना?" "साँप ने औरत से कहा कि तुम हरगिज़ न मरोगे, बल्कि ख़ुदा जानता है जिस दिन तुम उसे खाओगे, तुम्हारी आँखें खुल जाएँगी और तुम ख़ुदा की तरह अच्छे और बुरे के जाननेवाले बन जाओगे।" चुनाँचे औरत ने उसका फल लेकर खाया और अपने शौहर को भी खिलाया। "तब दोनों की आँखें खुल गईं और उनको मालूम हुआ कि वे नंगे हैं और उन्होंने अंजीर के पत्तों को सीकर अपने लिए लुँगियाँ बनाईं। और उन्होंने ख़ुदावन्द ख़ुदा की आवाज़ जो ठंडे वक़्त बाग़ में फिरता था, सुनी और आदम और उसकी बीवी ने अपने आपको ख़ुदावन्द ख़ुदा के सामने बाग़ के पेड़ों में छिपाया।" "फिर ख़ुदा ने आदम को पुकारा कि तू कहाँ है। उसने कहा कि मैं तेरी आवाज़ सुनकर डरा और छिप गया; क्योंकि मैं नंगा था। ख़ुदा ने कहा कि अरे, तुझको यह कैसे मालूम हो गया कि तू नंगा है। ज़रूर तूने उस पेड़ का फल खाया होगा जिससे मैंने मना किया था। आदम ने कहा कि मुझे हव्वा ने इसका फल खिलाया, और हव्वा ने कहा कि मुझे साँप ने बहकाया था। इसपर ख़ुदा ने साँप से कहा, "इसलिए कि तूने यह किया, तू सब चौपायों और जंगली जानवरों में धिक्कारा हुआ ठहरा। तू अपने पेट के बल चलेगा और उम्र भर धूल चाटेगा और मैं तेरे और औरत के बीच और तेरी नस्ल और औरत की नस्ल के बीच दुश्मनी डालूँगा। वह तेरे सिर को कुचलेगा और तू उसकी एड़ी पर काटेगा।" और औरत को यह सज़ा दी कि "मैं तेरे हमल के दर्द (प्रसव-पीड़ा) को बहुत बढ़ाऊँगा। तू दर्द के साथ बच्चा जनेगी और तेरी दिलचस्पी अपने शौहर की तरफ़ होगी और वह तुझपर हुकूमत करेगा।" और आदम के बारे में यह फ़ैसला सुनाया कि चूँकि तूने अपनी बीवी की बात मानी और मेरे हुक्म के ख़िलाफ़ किया, "इसलिए ज़मीन तेरी वजह से लानती हुई, मेहनत और तकलीफ़ के साथ तू अपनी उम्र भर उसकी पैदावार खाएगा....तू अपने मुँह के पसीने की रोटी खाएगा।" फिर "ख़ुदावन्द ने आदम और उसकी बीवी के लिए चमड़े के कुर्ते बनाकर उनको पहनाए।" "और ख़ुदावन्द ख़ुदा ने कहा : देखो, इनसान अच्छे और बुरे की पहचान में हममें से एक की तरह हो गया। अब कहीं ऐसा न हो कि वह अपना हाथ बढ़ाए और ज़िन्दगी के पेड़ से भी कुछ लेकर खाए और हमेशा जीता रहे। इसलिए ख़ुदावन्द ख़ुदा ने उसको अदन के बाग़ से बाहर कर दिया।"

(उत्पत्ति, अध्याय-2, आयतें—7-25; अध्याय-3, आयतें—1-23)

رَبِّ لِمَ حَشَرْتَنِيٓ اَعْمٰى وَقَدْ كُنْتُ بَصِيرًا ﴿١٢٥﴾ قَالَ كَذٰلِكَ اَتَتْكَ اٰيٰتُنَا فَنَسِيْتَهَا ۚ وَكَذٰلِكَ الْيَوْمَ تُنْسٰى ﴿١٢٦﴾ وَكَذٰلِكَ نَجْزِيْ مَنْ اَسْرَفَ

"परवरदिगार, दुनिया में तो मैं आँखोंवाला था, यहाँ मुझे अंधा क्यों उठाया?" (126) अल्लाह तआला कहेगा, "हाँ, इसी तरह तू हमारी आयतों को, जबकि वे तेरे पास आई थीं, तूने भुला दिया था; उसी तरह आज तू भुलाया जा रहा है।"[107] —(127) इस तरह हम हद से गुज़रनेवाले और अपने रब की आयतें न माननेवाले को (दुनिया में) बदला देते हैं,[108]

बाइबल के इस बयान और क़ुरआन के बयान को ज़रा वे लोग एक दूसरे के सामने रखकर देखें जो यह कहते हुए नहीं शरमाते कि क़ुरआन में ये क़िस्से बनी-इसराईल से नक़्ल कर लिए गए हैं।

107. क़ियामत के दिन नई ज़िन्दगी की शुरुआत से लेकर जहन्नम में दाख़िल होने तक जो अलग-अलग कैफ़ियतें मुजरिमों पर बीतेंगी, उनको क़ुरआन मजीद में अलग-अलग जगहों पर जुदा-जुदा बयान किया गया है। एक कैफ़ियत यह है, "तू इस चीज़ से ग़फ़लत में पड़ा हुआ था। अब हमने तेरे आगे से परदा हटा दिया है। आज तेरी निगाह बड़ी तेज़ है।" यानी तुझे ख़ूब नज़र आ रहा है। (सूरा-50 क़ाफ़, आयत-22) दूसरी कैफ़ियत यह है, "अल्लाह तो उन्हें टाल रहा है उस दिन के लिए, जब हाल यह होगा कि आँखें फटी-की-फटी रह गई हैं, सिर उठाए भागे चले जा रहे हैं, नज़रें ऊपर जमी हैं और दिल हैं कि उड़े जाते हैं।"(सूरा-14 इबराहीम, आयतें-42, 43)। तीसरी कैफ़ियत यह है कि "और क़ियामत के दिन हम उसके लिए एक लिखी हुई दस्तावेज़ निकालेंगे जिसे वह खुली किताब पाएगा। पढ़ अपना आमालनामा, आज अपना हिसाब लगाने के लिए तू ख़ुद ही काफ़ी है।" (सूरा-17 बनी-इसराईल, आयतें—13, 14) और इन्हीं कैफ़ियतों में से एक यह भी है जो इस हाशिए से मुताल्लिक़ आयत में बयान हुई है। मालूम ऐसा होता है कि ख़ुदा की क़ुदरत से ये लोग आख़िरत के हौलनाक मंज़रों और अपने बुरे आमाल के नतीजों को तो ख़ूब देखेंगे, लेकिन बस उनकी आँखों की रौशनी यही सब देखने के लिए होगी। बाक़ी दूसरी हैसियतों से उनका हाल अंधे का-सा होगा जिसे अपना रास्ता नज़र न आता हो; जो न लाठी रखता हो कि टटोलकर चल सके, न कोई उसका हाथ पकड़कर चलानेवाला हो; क़दम-क़दम पर ठोकरें खा रहा हो, और उसको कुछ न सूझता हो कि किधर जाए और अपनी ज़रूरतें कहाँ से पूरी करे। इसी कैफ़ियत को इन अलफ़ाज़ में अदा किया गया है कि "जिस तरह तूने हमारी आयतों को भुला दिया था, उसी तरह आज तू भुलाया जा रहा है।" यानी आज कोई परवाह न की जाएगी कि तू कहाँ-कहाँ ठोकरें खाकर गिरता है और कैसी-कैसी महरूमियाँ बरदाश्त कर रहा है। कोई तेरा हाथ न पकड़ेगा, कोई तेरी ज़रूरतें पूरी न करेगा, और तेरा कुछ भी हाल न पूछा जाएगा।

108. इशारा है उस 'तंग ज़िन्दगी' की तरफ़ जो अल्लाह के 'ज़िक्र' यानी उसकी किताब और उसके भेजे हुए नसीहत के सबक़ से मुँह मोड़नेवालों को दुनिया में बसर कराई जाती है।

وَلَمْ يُؤْمِنْ بِاٰيٰتِ رَبِّهٖ ؕ وَلَعَذَابُ الْاٰخِرَةِ اَشَدُّ وَاَبْقٰى ﴿١٢٧﴾ اَفَلَمْ يَهْدِ لَهُمْ
كَمْ اَهْلَكْنَا قَبْلَهُمْ مِّنَ الْقُرُوْنِ يَمْشُوْنَ فِيْ مَسٰكِنِهِمْ ؕ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ
لَاٰيٰتٍ لِّاُولِى النُّهٰى ﴿١٢٨﴾ وَلَوْلَا كَلِمَةٌ سَبَقَتْ مِنْ رَّبِّكَ لَكَانَ لِزَامًا وَّاَجَلٌ
مُّسَمًّى ﴿١٢٩﴾ ؕ فَاصْبِرْ عَلٰى مَا يَقُوْلُوْنَ وَسَبِّحْ بِحَمْدِ رَبِّكَ قَبْلَ طُلُوْعِ
الشَّمْسِ وَقَبْلَ غُرُوْبِهَا ۚ وَمِنْ اٰنَآئِ الَّيْلِ فَسَبِّحْ وَاَطْرَافَ النَّهَارِ

और आख़िरत का अज़ाब ज़्यादा सख़्त और ज़्यादा देर तक रहनेवाला है।

(128) फिर क्या इन लोगों को[109] (इतिहास के इस सबक़ से) कोई रहनुमाई न मिली कि इनसे पहले कितनी ही क़ौमों को हम हलाक कर चुके हैं जिनकी (तबाहशुदा) बस्तियों में आज ये चलते-फिरते हैं? हक़ीक़त में इसमें[110] बहुत-सी निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो अक़्ले-सलीम (सद्‌बुद्धि) रखनेवाले हैं।

(129) अगर तेरे रब की तरफ़ से पहले एक बात तय न कर दी गई होती और मुहलत की एक मुद्दत मुक़र्रर न की जा चुकी होती तो ज़रूर इनका भी फ़ैसला चुका दिया जाता। (130) इसलिए ऐ नबी जो बातें ये लोग बनाते हैं उनपर सब्र करो, और अपने रब की तारीफ़ बयान करने के साथ उसकी तसबीह करो, सूरज निकलने से पहले और डूबने से पहले, और रात के वक़्तों में भी तसबीह करो और दिन के किनारों पर भी,[111]

109. इशारा है मक्कावालों की तरफ़ जिनसे उस वक़्त बात की जा रही थी।

110. यानी इतिहास के इस सबक़ में, आसारे-क़दीमा (पुरातत्व अवशेषों) के इस मुशाहिदे में, इनसानी नस्ल के इस तजरिबे में।

111. यानी चूँकि अल्लाह तआला उनको अभी हलाक नहीं करना चाहता और उनके लिए मुहलत की एक मुद्दत मुक़र्रर कर चुका है, इसलिए उसकी दी हुई उस मुहलत के दौरान में ये जो कुछ भी तुम्हारे साथ करें, उसको तुम्हें बरदाश्त करना होगा और सब्र के साथ इनकी तमाम कड़वी-कसैली बातें सुनते हुए तबलीग़ और नसीहत का अपना फ़र्ज़ अंजाम देना पड़ेगा। इस बरदाश्त और इस सब्र की ताक़त तुम्हें नमाज़ से मिलेगी जिसको तुम्हें इन वक़्तों में पाबन्दी के साथ अदा करना चाहिए।

'रब की तारीफ़ बयान करने के साथ उसकी तसबीह' करने से मुराद नमाज़ है, जैसाकि आगे चलकर ख़ुद फ़रमा दिया, "अपने घरवालों को नमाज़ की ताकीद करो और ख़ुद भी उसके पाबन्द रहो।"

لَعَلَّكَ تَرْضٰى ﴿۱۳۰﴾ وَلَا تَمُدَّنَّ عَيْنَيْكَ اِلٰى مَا مَتَّعْنَا بِهٖٓ اَزْوَاجًا مِّنْهُمْ زَهْرَةَ
الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۙ لِنَفْتِنَهُمْ فِيْهِ ؕ وَرِزْقُ رَبِّكَ خَيْرٌ وَّاَبْقٰى ﴿۱۳۱﴾ وَاْمُرْ اَهْلَكَ

शायद कि तुम राज़ी हो जाओ।[112] (131) और निगाह उठाकर भी न देखो दुनियवी ज़िन्दगी की उस शानो-शौकत को जो हमने इनमें से अलग-अलग तरह के लोगों को दे रखी है। वह तो हमने इन्हें आज़माइश में डालने के लिए दी है, और तेरे रब की दी हुई हलाल रोज़ी[113] ही बेहतर और बाक़ी रहनेवाली है। (132) अपने घरवालों को नमाज़ की

नमाज़ के वक़्तों की तरफ़ यहाँ भी साफ़ इशारा कर दिया गया है। सूरज निकलने से पहले फ़ज्र की नमाज़, सूरज डूबने से पहले अस्र की नमाज़ और रात के वक़्तों में इशा और तहज्जुद की नमाज़। रहे दिन के किनारे तो वे तीन ही हो सकते हैं। एक किनारा सुबह है, दूसरा किनारा सूरज ढलने का वक़्त है, और तीसरा किनारा शाम। लिहाज़ा दिन के किनारों से मुराद फ़ज्र, ज़ुहर और मग़रिब की नमाज़ ही हो सकती है। और ज़्यादा तफ़सीलात के लिए देखिए—तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-11 हूद, हाशिया-113; सूरा-17 बनी-इसराईल, हाशिए—91-97; सूरा-30 रूम, हाशिया-24; सूरा-40 मोमिन, हाशिया-74।

112. इसके दो मतलब हो सकते हैं और शायद दोनों ही मुराद भी हैं। एक यह कि तुम अपनी मौजूदा हालत पर राज़ी हो जाओ जिसमें अपने मिशन की ख़ातिर तुम्हें तरह-तरह की नागवार बातें सहनी पड़ रही हैं, और अल्लाह के उस फ़ैसले पर राज़ी हो जाओ कि तुमपर नाहक़ ज़ुल्म और ज़्यादतियाँ करनेवालों को अभी सज़ा नहीं दी जाएगी। वे हक़ की तरफ़ बुलानेवालों को सताते भी रहेंगे और ज़मीन में दनदनाते भी फिरेंगे। दूसरा मतलब यह है कि तुम ज़रा यह काम करके तो देखो। इसका नतीजा वह कुछ सामने आएगा जिससे तुम्हारा दिल ख़ुश हो जाएगा। यह दूसरा मतलब क़ुरआन में कई जगहों पर अलग-अलग तरीक़ों से अदा किया गया है। मिसाल के तौर पर सूरा-17 बनी-इसराईल में नमाज़ का हुक्म देने के बाद फ़रमाया, "उम्मीद है कि तुम्हारा रब तुम्हें मक़ामे-महमूद (प्रशंसित स्थान) पर पहुँचा देगा।" (आयत-79) और सूरा-93 ज़ुहा में फ़रमाया, "तुम्हारे लिए बाद का दौर यक़ीनन पहले दौर से बेहतर है, और जल्द ही तुम्हरा रब तुम्हें इतना कुछ देगा कि तुम ख़ुश हो जाओगे।" (आयतें-4, 5)

113. रिज़्क़ का तर्जमा हमने 'हलाल रोज़ी' किया है; क्योंकि अल्लाह तआला ने कहीं भी हराम माल को 'रब का (दिया हुआ) रिज़्क़' नहीं कहा है। मतलब यह है कि तुम्हारा और तुम्हारे साथी ईमानवालों का यह काम नहीं है कि ये नाफ़रमान और खुले आम बुरे काम करनेवाले नाजाइज़ तरीक़ों से दौलत समेट-समेटकर अपनी ज़िन्दगी में जो ज़ाहिरी चमक-दमक पैदा कर लेते हैं, उसको रश्क की नज़रों से देखो। यह दौलत और यह शानो-शौकत तुम्हारे लिए हरगिज़ रश्क के क़ाबिल नहीं है। जो पाक रोज़ी तुम अपनी मेहनत से कमाते हो वह चाहे कितनी ही थोड़ी हो, सच्चाईपसन्द और ईमानदार आदमियों के लिए वही बेहतर है और उसी में वह भलाई

بِالصَّلٰوةِ وَاصْطَبِرْ عَلَيْهَا ۭ لَا نَسْـَٔلُكَ رِزْقًا ۭ نَحْنُ نَرْزُقُكَ ۭ
وَالْعَاقِبَةُ لِلتَّقْوٰى ۝١٣٢ وَقَالُوْا لَوْلَا يَاْتِيْنَا بِاٰيَةٍ مِّنْ رَّبِّهٖ ۭ اَوَلَمْ
تَاْتِهِمْ بَيِّنَةُ مَا فِي الصُّحُفِ الْاُوْلٰى ۝١٣٣ وَلَوْ اَنَّآ اَهْلَكْنٰهُمْ بِعَذَابٍ
مِّنْ قَبْلِهٖ لَقَالُوْا رَبَّنَا لَوْلَآ اَرْسَلْتَ اِلَيْنَا رَسُوْلًا فَنَتَّبِعَ اٰيٰتِكَ

ताकीद करो[114] और ख़ुद भी इसके पाबन्द रहो। हम तुमसे कोई रोज़ी नहीं चाहते, रोज़ी तो हम ही तुम्हें दे रहे हैं। और अंजाम की भलाई तक़वा (परहेज़गारी) ही के लिए है।[115]
(133) वे कहते हैं कि यह शख़्स अपने रब की तरफ़ से कोई निशानी (मोजिज़ा) क्यों नहीं लाता? और क्या इनके पास अगले सहीफ़ों (आसमानी किताबों) की तमाम तालीमात (शिक्षाओं) का साफ़-साफ़ बयान नहीं आ गया?[116] (134) अगर हम उसके आने से पहले इनको किसी अज़ाब से हलाक कर देते तो फिर यही लोग कहते कि ऐ हमारे परवरदिगार, तूने हमारे पास कोई रसूल क्यों न भेजा कि ज़लील और रुसवा होने

है जो दुनिया से आख़िरत तक बाक़ी रहनेवाली है।

114. यानी तुम्हारे बाल-बच्चे भी अपनी तंगदस्ती और बदहाली के मुक़ाबले में इन हरामख़ोरों के ऐशो-आराम को देखकर दिल छोटा न करें। उनको नसीहत करो कि नमाज़ पढ़ें। यह चीज़ उनके सोचने के ढंग को बदल देगी। उनके अच्छाई-बुराई के पैमाने को बदल देगी। उनके रुझानों, मैलानात और ख़यालात के मर्कज़ (केन्द्र) को बदल देगी। वे पाक रोज़ी पर सब्र और राज़ी रहनेवाले बन जाएँगे और उस भलाई को जो ईमान और तक़वा (परहेज़गारी) से हासिल होती है, उस ऐश पर तरजीह देने लगेंगे जो नाफ़रमानी, सरकशी और दुनियापरस्ती से हासिल होता है।

115. यानी हम नमाज़ पढ़ने के लिए तुमसे इसलिए नहीं कहते हैं कि इससे हमारा कोई फ़ायदा है। फ़ायदा तुम्हारा अपना ही है, और वह यह है कि तुममें तक़वा (परहेज़गारी) पैदा होगा जो दुनिया और आख़िरत दोनों ही में आख़िरी और मुस्तक़िल कामयाबी का ज़रिआ है।

116. यानी क्या यह कोई कम मोजिज़ा (चमत्कार) है कि उन्हीं में से एक उम्मी (बिना पढ़े-लिखे) शख़्स ने वह किताब पेश की है जिसमें शुरू से अब तक कि तमाम आसमानी किताबों के मज़ामीन (विषयों) और तालीमात का इत्र निकालकर रख दिया गया है। इनसान की हिदायत और रहनुमाई के लिए उन किताबों में जो कुछ था, वह सब न सिर्फ़ यह कि इसमें जमा कर दिया गया, बल्कि उसको ऐसा खोलकर वाज़ेह भी कर दिया गया कि रेगिस्तान में रहनेवाले बद्दू (देहाती) तक उसको समझकर फ़ायदा उठा सकते हैं।

مِنْ قَبْلِ اَنْ نَّذِلَّ وَنَخْزٰى ۝١٣٤ قُلْ كُلٌّ مُّتَرَبِّصٌ فَتَرَبَّصُوْا ۚ
فَسَتَعْلَمُوْنَ مَنْ اَصْحٰبُ الصِّرَاطِ السَّوِيِّ وَمَنِ اهْتَدٰى ۝١٣٥

ع ٨ / ١٧

से पहले ही हम तेरी आयतों की पैरवी कर लेते? (135) ऐ नबी! इनसे कहो, हर एक अपने अंजाम के इन्तिज़ार में है,[117] तो अब इन्तिज़ार में रहो, जल्द ही तुम्हें मालूम हो जाएगा कि कौन सीधी राह चलनेवाले हैं और कौन रहनुमाई पाए हुए हैं।

117. यानी जब से यह दावत तुम्हारे शहर में उठी है, न सिर्फ़ इस शहर का बल्कि आसपास के इलाक़े का भी हर शख़्स इन्तिज़ार कर रहा है कि इसका अंजाम आख़िरकार क्या होता है।

☆☆☆

21. अल-अम्बिया

परिचय

नाम

इस सूरा का नाम किसी ख़ास आयत से नहीं लिया गया है। चूँकि इसमें लगातार बहुत-से नबियों (अम्बिया) का ज़िक्र आया है, इसलिए इसका नाम 'अल-अम्बिया' रख दिया गया। यह नाम सूरा की पहचान के लिए एक अलामत है। इसमें नबियों की दास्तान बयान नहीं हुई है, कुछ दूसरी बातें बयान की गई हैं।

उतरने का ज़माना

मज़मून (विषय) और बयान के अन्दाज़ दोनों से यही मालूम होता है कि इस सूरत के उतरने का ज़माना मक्का के बीच का दौर, यानी हमने जो नबी (सल्ल॰) की ज़िन्दगी को कई दौर में बाँटा है, उसके लिहाज़ से यह मक्की ज़िन्दगी का तीसरा दौर है। इसके पसमंज़र (पृष्ठभूमि) में हालात की वह कैफ़ियत नहीं पाई जाती जो आख़िरी दौर की सूरतों में साफ़ तौर पर महसूस होती है।

मौज़ू (विषय) और मज़मून (वार्ता)

इस सूरा में उस कशमकश पर चर्चा की गई है जो नबी (सल्ल॰) और क़ुरैश के सरदारों के बीच बरपा थी। वे लोग नबी (सल्ल॰) के पैग़म्बरी के दावे और आप (सल्ल॰) की तरफ़ से दी जा रही तौहीद और आख़िरत के अक़ीदे की दावत पर जो शक और एतिराज़ पेश करते थे, उनका जवाब दिया गया है। उनकी तरफ़ से आप (सल्ल॰) की मुख़ालिफ़त में जो चालें चली जा रही थीं उनपर डाँट-फटकार की गई है और उन हरकतों के बुरे नतीजों से आगाह किया गया है। वे आप (सल्ल॰) की दावत के सिलसिले में जो ग़फ़लत और बेपरवाही दिखा रहे थे उसपर ख़बरदार किया गया है। और आख़िर में उनको यह एहसास दिलाया गया है कि जिस शख़्स को तुम अपने लिए परेशानी और मुसीबत समझ रहे हो वह अस्ल में तुम्हारे लिए रहमत बनकर आया है।

तक़रीर के दौरान में ख़ास तौर पर जो बातें चर्चा में आई हैं वे ये हैं—

(1) मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की यह ग़लतफ़हमी कि इनसान कभी रसूल नहीं हो सकता और इस वजह से उनका नबी (सल्ल०) को रसूल मानने से इनकार करना—इसको बड़ी तफ़सील के साथ रद्द किया गया है।

(2) उनका नबी (सल्ल०) पर और क़ुरआन पर अलग-अलग और एक-दूसरे के उलट एतिराज़ करना और किसी एक बात पर न जमना—इसपर मुख़्तसर तौर पर मगर बहुत ही ज़ोरदार और बामानी तरीक़े से पकड़ की गई है।

(3) उनका यह सोचना कि ज़िन्दगी बस एक खेल है जिसे कुछ दिन खेलकर यूँ ही ख़त्म हो जाना है। उसका कोई नतीजा नहीं निकलना है, किसी हिसाब-किताब और इनाम-सज़ा का सामना नहीं होना है—यह चीज़ चूँकि उस ग़फ़लत और बेपरवाही की अस्ल जड़ थी जिसकी वजह से वे नबी (सल्ल०) की दावत के साथ यह सुलूक कर रहे थे। इसलिए बड़े ही असरदार अन्दाज़ में इसका तोड़ किया गया है।

(4) शिर्क पर उनका अड़ना और तौहीद के ख़िलाफ़ उनका जाहिलाना तास्सुब (पूर्वाग्रह) जो उनके और नबी (सल्ल०) के बीच झगड़े की अस्ल वजह था, इसके सुधार के लिए शिर्क के ख़िलाफ़ और तौहीद के हक़ (पक्ष) में मुख़्तसर तौर पर मगर बहुत वज़नदार और दिल में उतर जानेवाली दलीलें दी गई हैं।

(5) उनको यह ग़लतफ़हमी कि नबी को बार-बार झुठलाने के बावजूद जब उनपर कोई अज़ाब नहीं आता तो ज़रूर नबी झूठा है और अल्लाह के अज़ाब के वे डरावे जो वह ख़ुदा की तरफ़ से हमें देता है सिर्फ़ ख़ाली-ख़ूली धमकियाँ हैं—इसको दलीलों और नसीहत दोनों तरीक़ों से दूर करने की कोशिश की गई है।

इसके बाद नबियों (अलैहि०) की सीरतों (जीवनियों) के अहम वाक़िआत से कुछ नमूने पेश किए गए हैं, जिनका मक़सद यह समझाना है कि तमाम वे पैग़म्बर जो इनसानी इतिहास के दौरान में ख़ुदा की तरफ़ से आए थे, इनसान थे और पैग़म्बरी की ख़ास ख़ूबियों को छोड़कर दूसरी सिफ़ात में वे वैसे ही इनसान होते थे, जैसे दुनिया के आम इनसान हुआ करते हैं। उलूहीयत (ईश्वरत्व) और ख़ुदाई का उनमें हल्का-सा निशान तक न था, बल्कि अपनी हर ज़रूरत के लिए वे ख़ुद ख़ुदा के आगे हाथ फैलाते थे। इसके साथ इन्हीं तारीख़ी नमूनों से दो बातें और भी साफ़ तौर से बताई गई हैं। एक यह कि नबियों पर तरह-तरह की मुसीबतें आई हैं और उनकी मुख़ालफ़त करनेवालों ने भी उनको नाकाम करने की कोशिशें की हैं, मगर आख़िरकार अल्लाह तआला की तरफ़ से ग़ैर-मामूली तरीक़ों पर उनकी मदद की गई है। दूसरी यह कि तमाम नबियों का दीन एक

था और वह वही दीन था जिसे मुहम्मद (सल्ल॰) पेश कर रहे हैं। तमाम इनसानों का अस्ल दीन यही है और बाक़ी जितने मज़हब दुनिया में बने हैं, वे सिर्फ़ गुमराह इनसानों की डाली हुई फूट हैं।

आख़िर में यह बताया गया है कि इनसान की नजात का दारोमदार इसी दीन की पैरवी अपनाने में है। जो लोग इसे क़बूल करेंगे, वही ख़ुदा की आख़िरी अदालत से कामयाब निकलेंगे और ज़मीन के वारिस होंगे और जो लोग इसे रद्द कर देंगे, वे आख़िरत में बदतरीन अंजाम से दोचार होंगे। अल्लाह तआला की यह बड़ी मेहरबानी है कि वह फ़ैसले के वक़्त से पहले अपने नबी के ज़रिए से लोगों को इस हक़ीक़त से आगाह कर रहा है। नादान हैं वे लोग जो नबी के आने को अपने लिए रहमत के बजाय ज़हमत (परेशानी) समझ रहे हैं।

☆☆☆

آيَاتُهَا ١١٢ ٢١ سُوْرَةُ الْأَنْبِيَاءِ مَكِّيَّةٌ ٧٣ رُكُوْعَاتُهَا ٧

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

اِقْتَرَبَ لِلنَّاسِ حِسَابُهُمْ وَهُمْ فِيْ غَفْلَةٍ مُّعْرِضُوْنَ ۝١ مَا يَأْتِيْهِمْ ١٧ الجزء
مِّنْ ذِكْرٍ مِّنْ رَّبِّهِمْ مُّحْدَثٍ اِلَّا اسْتَمَعُوْهُ وَهُمْ يَلْعَبُوْنَ ۝٢ لَاهِيَةً

21. अल-अम्बिया

(मक्का में उतरी—आयतें 112)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) क़रीब आ गया है लोगों के हिसाब का वक़्त[1] और वे हैं कि ग़फ़लत में मुँह मोड़े हुए हैं।[2] (2) उनके पास जो ताज़ा नसीहत भी उनके रब की तरफ़ से आती है,[3] उसको तकल्लुफ़ से सुनते हैं और खेल में पड़े रहते हैं।[4] (3) उनके दिल (दूसरी ही

1. मुराद है क़ियामत का क़रीब आ जाना। यानी अब वह वक़्त दूर नहीं है जब लोगों को अपना हिसाब देने के लिए अपने रब के सामने हाज़िर होना पड़ेगा। मुहम्मद (सल्ल॰) का नबी बनाकर भेजा जाना इस बात की निशानी है कि इनसानों का इतिहास अब अपने आख़िरी दौर में दाख़िल हो रहा है। अब वह अपनी शुरुआत के मुक़ाबले अपने अंजाम से ज़्यादा क़रीब है। शुरू और बीच के मरहले गुज़र चुके हैं और आख़िरी मरहला शुरू हो चुका है। यही बात है जिसको नबी (सल्ल॰) ने एक हदीस में बयान फ़रमाया है। आप (सल्ल॰) ने अपनी दो उँगलियाँ खड़ी करके फ़रमाया, "मैं ऐसे वक़्त पर भेजा गया हूँ कि मैं और क़ियामत इन दो उँगलियों की तरह हैं।" यानी मेरे बाद बस क़ियामत ही है। कोई और नबी बीच में दावत और पैग़ाम लेकर आनेवाला नहीं है। संभलना है तो मेरी दावत पर संभल जाओ। कोई और हिदायत देनेवाला, ख़ुशख़बरी सुनानेवाला और डरानेवाला आनेवाला नहीं है।
2. यानी किसी डरावे (चेतावनी) की तरफ़ ध्यान नहीं देते। न ख़ुद सोचते हैं कि हमारा अंजाम क्या होना है और न उस पैग़म्बर की बात सुनते हैं जो उन्हें ख़बरदार करने की कोशिश कर रहा है।
3. यानी क़ुरआन की हर नई सूरा जो मुहम्मद (सल्ल॰) पर उतरती है और उन्हें सुनाई जाती है।
4. अस्ल अरबी में जुमला 'वहुम यल-अबून' इस्तेमाल हुआ है। इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक वह जो ऊपर तर्जमे में दिया गया है, और उसमें खेल से मुराद यही ज़िन्दगी का खेल है जिसे ख़ुदा और आख़िरत से ग़ाफ़िल लोग खेल रहे हैं। दूसरा मतलब यह है कि वे इसे संजीदगी के

قُلُوْبُهُمْ ۭ وَاَسَرُّوا النَّجْوَى ۖ الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا ۖ هَلْ هٰذَآ اِلَّا بَشَرٌ مِّثْلُكُمْ ۚ اَفَتَاْتُوْنَ السِّحْرَ وَاَنْتُمْ تُبْصِرُوْنَ ۝۳

फ़िक्रों में) लगे हुए हैं।

और ज़ालिम आपस में कानाफूसियाँ करते हैं कि "यह शख़्स आख़िर तुम जैसा एक इनसान ही तो है, फिर क्या तुम आँखों देखते जादू के फन्दे में फँस जाओगे।"[5]

साथ नहीं सुनते, बल्कि खेल और मज़ाक़ के तौर पर सुनते हैं।

5. "फँसे जाते हो" भी तर्जमा हो सकता है, और दोनों ही मतलब सही हैं। कानाफूसियाँ मक्का के इस्लाम-दुश्मनों के वे बड़े-बड़े सरदार आपस में बैठ-बैठकर किया करते थे जिनको नबी (सल्ल॰) की दावत का मुक़ाबला करने की बड़ी फ़िक्र लगी थी। वे कहते थे कि यह शख़्स बहरहाल नबी तो हो नहीं सकता; क्योंकि हम ही जैसा इनसान है, खाता है, पीता है, बाज़ारों में चलता-फिरता है, बीवी-बच्चे रखता है। आख़िर इसमें वह निराली बात क्या है जो इसको हमसे अलग करती हो और हमारे मुक़ाबले में इसको ख़ुदा से एक ग़ैर-मामूली ताल्लुक़ का हक़दार बनाती हो? अलबत्ता इस शख़्स की बातों में और इसकी शख़्सियत में एक जादू है कि जो इसकी बात कान लगाकर सुनता है और इसके क़रीब जाता है, वह इसका हो जाता है। इसलिए अगर अपनी ख़ैर चाहते हो तो न इसकी सुनो और न इससे मेल-जोल रखो; क्योंकि इसकी बातें सुनना और इसके क़रीब जाना मानो आँखों देखते जादू के फन्दे में फँसना है।

जिस चीज़ की वजह से वे नबी (सल्ल॰) पर 'जादू' का इलज़ाम लगाते थे, उसकी कुछ मिसालें नबी (सल्ल॰) के सबसे पुराने सीरत-निगार (जीवनी-लेखक) मुहम्मद-बिन-इसहाक़ (इन्तिक़ाल 152 हि॰) ने बयान की हैं। वे लिखते हैं कि एक बार उतबा-बिन-रबीआ (अबू-सुफ़ियान के ससुर, हज़रत हमज़ा का कलेजा चबानेवाली औरत हिन्द के बाप) ने क़ुरैश के सरदारों से कहा, "अगर आप लोग पसन्द करें तो मैं जाकर मुहम्मद (सल्ल॰) से मिलूँ और उसे समझाने की कोशिश करूँ?" यह हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) के इस्लाम लाने के बाद का वाक़िआ है, जबकि नबी (सल्ल॰) के सहाबा की तादाद दिन-पर-दिन बढ़ती देखकर क़ुरैश के सरदार सख़्त परेशान हो रहे थे। लोगों ने कहा, "अबुल-वलीद, तुमपर पूरा इत्मीनान है, ज़रूर जाकर उससे बात करो।" वह नबी (सल्ल॰) के पास पहुँचा और कहने लगा, "भतीजे, हमारे यहाँ तुमको जो इज़्ज़त हासिल थी, तुम ख़ुद जानते हो, और नस्ल के लिहाज़ से भी तुम एक बड़े शरीफ़ घराने के आदमी हो। तुम अपनी क़ौम पर यह क्या मुसीबत ले आए हो? तुमने समाज में फूट डाल दी। सारी क़ौम को बेवक़ूफ़ ठहराया। उसके दीन और उसके माबूदों की बुराई की। बाप-दादा जो मर चुके हैं उन सबको तुमने गुमराह और बेदीन ठहराया। भतीजे, अगर इन बातों से तुम्हारा मक़सद दुनिया में अपनी बड़ाई क़ायम करना है तो आओ हम सब मिलकर तुमको इतना रुपया दे देते हैं कि तुम सबसे ज़्यादा मालदार हो जाओ। सरदारी चाहते हो तो हम तुम्हें सरदार माने लेते हैं।

बादशाही चाहते हो तो बादशाह बना देते हैं। और अगर तुम्हें कोई बीमारी हो गई है जिसकी वजह से तुमको वाक़ई सोते या जागते में कुछ नज़र आने लगा है तो हम सब मिलकर बेहतरीन हकीमों (और डॉक्टरों) से तुम्हारा इलाज कराए देते हैं।" ये बातें वह करता रहा और नबी (सल्ल०) चुपचाप सुनते रहे। जब वह ख़ूब बोल चुका तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अबुल-वलीद जो कुछ आप कहना चाहते थे कह चुके हैं या और कुछ कहना है?" उसने कहा, "बस, मुझे जो कुछ कहना था मैंने कह दिया।" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अच्छा, अब मेरी सुनो, 'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम, हा-मीम तन्ज़ीलुम-मिनर्रहमानिर्रहीम। (अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है, हा-मीम यह मेहरबान और रहम करनेवाले की तरफ़ से उतरी हुई चीज़ है)।" इसके बाद कुछ देर तक आप लगातार सूरा-41 हा-मीम सजदा की तिलावत फ़रमाते रहे और उतबा पीछे ज़मीन पर हाथ टेके ग़ौर से सुनता रहा। 38वीं आयत पर पहुँचकर आप (सल्ल०) ने सजदा किया और फिर सिर उठाकर उतबा से फ़रमाया, "अबुल-वलीद, जो कुछ मुझे कहना था वह आपने सुन लिया। अब आप जानें और आपका काम।" उत्बा यहाँ से उठकर क़ुरैश के सरदारों की तरफ़ पलटा तो लोगों ने दूर से उसको आते देखकर कहा, "ख़ुदा की क़सम, अबुल-वलीद का चेहरा बदला हुआ है। यह वह सूरत नहीं है जिसे लेकर वह गया था।" उसके पहुँचते ही लोगों ने सवाल किया, "कहो अबुल-वलीद, क्या कर आए हो?" उसने कहा, "ख़ुदा की क़सम, आज मैंने ऐसा कलाम सुना है कि इससे पहले कभी न सुना था। अल्लाह की क़सम, यह शायरी नहीं है, न जादू है और न कहानत (ज्योतिष)। ऐ क़ुरैश के लोगो, मेरी बात मानो और उस शख़्स को उसके हाल पर छोड़ दो। उसकी बातें जो मैंने सुनी हैं, रंग लाकर रहेंगी। अगर अरब उसपर ग़ालिब आ गए तो अपने भाई का ख़ून तुम्हारी गरदन पर न होगा, दूसरों पर होगा। और अगर यह अरब पर ग़ालिब आ गया तो उसकी हुकूमत तुम्हारी हुकूमत होगी और उसकी इज़्ज़त, तुम्हारी इज़्ज़त।" लोगों ने कहा, "अल्लाह की क़सम, अबुल-वलीद तुमपर भी उसका जादू चल गया।" उसने कहा, "यह मेरी राय है, अब तुम जानो और तुम्हारा काम।" (इब्ने-हिशाम, हिस्सा-1, पे० 313, 314)। बैहक़ी ने इस वाक़िए के बारे में जो रिवायतें जमा की हैं उनमें से एक रिवायत में यह इज़ाफ़ा है कि जब नबी (सल्ल०) हा-मीम सजदा की तिलावत करते हुए इस आयत (13) पर पहुँचे कि "फिर अगर वे मुँह मोड़ें तो कह दो : मैं तुम्हारे ऊपर उस अचानक टूट पड़नेवाले अज़ाब से डरता हूँ जैसा आद और समूद पर आया था।" तो उतबा ने बेइख़्तियार आगे बढ़कर नबी (सल्ल०) के मुँह पर हाथ रख दिया और कहने लगा कि ख़ुदा के लिए अपनी क़ौम पर रहम करो।

दूसरा वाक़िआ इब्ने-इसहाक़ ने यह बयान किया है कि एक बार 'अराश' नाम के क़बीले का एक आदमी कुछ ऊँट लेकर मक्का आया। अबू-जह्ल ने उसके ऊँट ख़रीद लिए और जब उसने क़ीमत माँगी तो टालमटोल करने लगा। अराशी ने तंग आकर एक दिन काबा में क़ुरैश के सरदारों को जा पकड़ा और भरी भीड़ में फ़रियाद शुरू कर दी। दूसरी तरफ़ हरम के एक कोने में नबी (सल्ल०) बैठे हुए थे। क़ुरैश के सरदारों ने उस शख़्स से कहा कि "हम कुछ नहीं कर सकते। देखो, वे साहब जो उस कोने में बैठे हैं उनसे जाकर कहो। वे तुमको तुम्हारा रुपया दिलवा देंगे।" अराशी नबी (सल्ल०) की तरफ़ चला, और क़ुरैश के सरदारों ने आपस में कहा,

قُلَ رَبِّيْ يَعْلَمُ الْقَوْلَ فِي السَّمَآءِ وَالْاَرْضِ وَهُوَالسَّمِيْعُ
الْعَلِيْمُ ۝ بَلْ قَالُوْٓا اَضْغَاثُ اَحْلَامٍ بَلِ افْتَرٰىهُ بَلْ هُوَشَاعِرٌ ۚ
فَلْيَاْتِنَا بِاٰيَةٍ كَمَآ اُرْسِلَ الْاَوَّلُوْنَ ۝ مَآ اٰمَنَتْ قَبْلَهُمْ مِّنْ قَرْيَةٍ

(4) रसूल ने कहा, "मेरा रब हर उस बात को जानता है जो आसमान और ज़मीन में की जाए, वह सुनता और जानता है।"[6]

(5) वे कहते हैं, "बल्कि ये बिखरे सपने हैं, बल्कि यह इसकी मनगढ़ंत है, बल्कि यह आदमी शाइर है,[7] वरना यह लाए कोई निशानी जिस तरह पुराने ज़माने के रसूल निशानियों के साथ भेजे गए थे।" (6) हालाँकि इनसे पहले कोई बस्ती भी जिसे हमने

"आज मज़ा आएगा।" अराशी ने जाकर नबी (सल्ल॰) से अपनी शिकायत बयान की। आप (सल्ल॰) उसी वक़्त उठ खड़े हुए और उसे साथ लेकर अबू-जह्ल के मकान की तरफ़ चल पड़े। सरदारों ने पीछे एक आदमी लगा दिया कि जो कुछ गुज़रे उसकी ख़बर लाकर दे। नबी (सल्ल॰) सीधे अबू-जह्ल के दरवाज़े पर पहुँचे और कुण्डी खटखटाई। उसने पूछा, "कौन?" आप (सल्ल॰) ने जवाब दिया, "मुहम्मद।" वह हैरान होकर बाहर निकल आया। आप (सल्ल॰) ने उससे कहा, "इस आदमी का हक़ अदा कर दो।" उसने जवाब में कोई आनाकानी न की, अन्दर गया और उसके ऊँटों की क़ीमत लाकर उसके हाथ में दे दी। क़ुरैश का मुख़बिर यह हाल देखकर हरम की तरफ़ दौड़ा और सरदारों को सारा माजरा सुनाया और कहने लगा कि अल्लाह की क़सम, आज वह अजीब मामला देखा है जो कभी न देखा था। हकम-बिन-हिशाम (अबू-जह्ल) जब निकला है तो मुहम्मद (सल्ल॰) को देखते ही उसका रंग फ़क़ हो गया और जब मुहम्मद (सल्ल॰) ने उससे कहा कि इसका हक़ अदा कर दो तो यह मालूम होता था कि जैसे हकम-बिन-हिशाम के जिस्म में जान नहीं है। (इब्ने-हिशाम, हिस्सा-2, पे॰ 29, 30)
यह था शख़्सियत और सीरत व किरदार का असर और यह था कलाम का असर जिसको वे लोग जादू कहते थे और न जाननेवालों को यह कहकर डराते थे कि उस शख़्स के पास न जाना वरना जादू कर देगा।

6. यानी रसूल ने कभी इस झूठे प्रोपेगंडे और कानाफूसियों की इस मुहिम (Whispering Campaign) का जवाब इसके सिवा न दिया कि "तुम लोग जो कुछ बातें बनाते हो सब ख़ुदा सुनता और जानता है, चाहे ज़ोर से कहो, चाहे चुपके-चुपके कानों में फूँको।" वह कभी बेइनसाफ़ दुश्मनों के मुक़ाबले में तुर्की-ब-तुर्की जवाब देने पर न उतर आया।

7. इसका पसमंज़र (पृष्ठभूमि) यह है कि नबी (सल्ल॰) की दावत का असर जब फैलने लगा तो मक्का के सरदारों ने आपस में मशवरा करके यह तय किया कि आप (सल्ल॰) के मुक़ाबले में प्रोपेगंडे की एक मुहिम शुरू की जाए और हर उस आदमी को जो मक्का में ज़ियारत के लिए

आए, आप (सल्ल॰) के ख़िलाफ़ पहले ही से इतना बदगुमान कर दिया जाए कि वह आप (सल्ल॰) की बात सुनने के लिए तैयार ही न हो। यह मुहिम वैसे तो बारह महीने जारी रहती थी, मगर ख़ास तौर पर हज के ज़माने में बहुत ज़्यादा तादाद में आदमी फैला दिए जाते थे जो काबा की ज़ियारत के लिए बाहर से आनेवाले तमाम लोगों के ख़ेमों में पहुँचकर उनको ख़बरदार करते फिरते थे कि यहाँ ऐसा-ऐसा एक आदमी है उससे होशियार रहना। इन गुफ़्तगुओं में तरह-तरह की बातें बनाई जाती थीं। कभी कहा जाता कि यह शख़्स जादूगर है। कभी कहा जाता कि एक कलाम उसने ख़ुद गढ़ रखा है और कहता है ख़ुदा का कलाम है। कभी कहा जाता कि अजी वह कलाम क्या है, दीवानों की बड़ और परेशान और बिखरे ख़यालात का पुलिन्दा है। कभी कहा जाता कि शाइराना ख़याली बातें और तुकबन्दियाँ हैं जिनका नाम उसने अल्लाह का कलाम रखा है। मक़सद यह था कि किसी-न-किसी तरह लोगों को बहकाया जाए। सच्चाई का उनके सामने सिरे से कोई सवाल ही न था कि जमकर कोई एक तयशुदा और जंची-तुली राय ज़ाहिर करते। लेकिन इस झूठे प्रोपेगंडे का नतीजा जो कुछ हुआ वह यह था कि नबी (सल्ल॰) का नाम उन्होंने ख़ुद देश के कोने-कोने में पहुँचा दिया। आप (सल्ल॰) की जितनी शुहरत मुसलमानों की बरसों की कोशिशों से भी न हो सकती थी, वह क़ुरैश की इस मुख़ालिफ़ाना मुहिम से थोड़ी मुद्दत ही के अन्दर हो गई। हर आदमी के दिल में एक सवाल पैदा हो गया कि आख़िर मालूम तो हो कि वह कौन ऐसा आदमी है जिसके ख़िलाफ़ यह तूफ़ान बरपा है, और बहुत-से सोचनेवालों ने सोचा कि उस शख़्स की बात सुनी तो जाए। हम कोई बच्चे तो नहीं हैं कि ख़ाहमख़ाह बहक जाएँगे।

इसकी एक दिलचस्प मिसाल तुफ़ैल-बिन-अम्र दौसी का क़िस्सा है जिसे इब्ने-इसहाक़ ने ख़ुद उनकी रिवायत से बड़ी तफ़सील के साथ नक़्ल किया है। वे कहते हैं कि मैं दौस क़बीले का एक शाइर था। किसी काम से मक्का गया। वहाँ पहुँचते ही क़ुरैश के कुछ लोगों ने मुझे घेर लिया और नबी (सल्ल॰) के ख़िलाफ़ ख़ूब मेरे कान भरे, यहाँ तक कि मैं आप (सल्ल॰) से सख़्त बदगुमान हो गया और मैंने तय कर लिया कि आप (सल्ल॰) से बचकर ही रहूँगा। दूसरे दिन मैंने हरम में जाकर हाज़िरी दी तो आप (सल्ल॰) काबा के पास नमाज़ पढ़ रहे थे। मेरे कानों में कुछ जुमले जो पड़े तो मैंने महसूस किया कि यह तो कोई बड़ा अच्छा कलाम है। मैंने अपने दिल में कहा कि मैं शाइर हूँ, जवान मर्द हूँ, अक़्ल रखता हूँ, कोई बच्चा नहीं हूँ कि सही और ग़लत में फ़र्क़ न कर सकूँ। आख़िर क्यों न इस शख़्स से मिलकर मालूम करूँ कि यह क्या कहता है। चुनाँचे जब नबी (सल्ल॰) नमाज़ से फ़ारिग़ होकर वापस चले तो मैं आप (सल्ल॰) के पीछे-पीछे हो लिया और आप (सल्ल॰) के मकान पर पहुँचकर मैंने अर्ज़ किया कि आप (सल्ल॰) की क़ौम ने आपके बारे में मुझसे यह-यह कुछ कहा था, और मैं आपसे इतना ज़्यादा बदगुमान हो गया था कि मैंने अपने कानों में रूई ठूँस ली थी; ताकि आपकी आवाज़ न सुनने पाऊँ। लेकिन अभी जो कुछ जुमले मैंने आपकी ज़बान से सुने हैं, वे मुझे कुछ अच्छे मालूम हुए। आप मुझे ज़रा तफ़सील से बताइए, आप क्या कहते हैं। नबी (सल्ल॰) ने जवाब में मुझको क़ुरआन का एक हिस्सा सुनाया और मैं उससे इतना ज़्यादा मुतास्सिर हुआ कि उसी वक़्त ईमान ले आया। फिर वापस जाकर मैंने अपने बाप और बीवी को मुसलमान किया। उसके बाद अपने

أَهْلَكْنٰهَا ۚ أَفَهُمْ يُؤْمِنُونَ ۞ وَمَآ أَرْسَلْنَا قَبْلَكَ إِلَّا رِجَالًا

तबाह किया, ईमान न लाई। अब क्या ये ईमान लाएँगे?[8]

(7) और ऐ नबी, तुमसे पहले भी हमने इनसानों ही को रसूल बनाकर भेजा था

क़बीले में लगातार इस्लाम के फैलाने का काम करता रहा, यहाँ तक कि ख़न्दक़ (खाई) की जंग के ज़माने तक पहुँचते-पहुँचते मेरे क़बीले के 70-80 घराने मुसलमान हो गए।

(इब्ने-हिशाम, हिस्सा-2, पे॰ 22-24)

एक और रिवायत जो इब्ने-इसहाक़ ने नक़्ल की है उससे मालूम होता है कि क़ुरैश के सरदार अपनी महफ़िलों में ख़ुद इस बात का एतिराफ़ करते थे कि जो बातें वे नबी (सल्ल॰) के ख़िलाफ़ बनाते हैं, वे सिर्फ़ झूठ हैं। वह कहता है कि एक मजलिस में नज़्र-बिन-हारिस ने तक़रीर की कि "तुम लोग मुहम्मद का मुक़ाबला जिस तरह कर रहे हो उससे काम न चलेगा। वह जब तुम्हारे बीच नई उम्र का जवान था तो तुम्हारे नज़दीक सबसे ज़्यादा अच्छी आदतवाला आदमी था। सबसे ज़्यादा सच्चा और सबसे बढ़कर अमानतदार समझा जाता था। अब जबकि उसके बाल सफ़ेद होने को आ गए तो तुम कहते हो कि यह जादूगर है, काहिन है, शाइर है, दीवाना है। ख़ुदा की क़सम, वह जादूगर नहीं है। हमने जादूगरों को देखा है और उनकी झाड़-फूँक से हम वाक़िफ़ हैं। ख़ुदा की क़सम, वह काहिन भी नहीं है, हमने काहिनों की तुकबन्दियाँ सुनी हैं और जैसी गोल-मोल बातें वे किया करते हैं उनका हमें इल्म है। ख़ुदा की क़सम, वह शाइर (कवि) भी नहीं है, शाइरी की तमाम क़िस्मों से हम वाक़िफ़ हैं और उसका कलाम उनमें से किसी क़िस्म में नहीं आता। ख़ुदा की क़सम, वह दीवाना भी नहीं है, दीवाने की जो हालत होती है और जैसी बेतुकी बातें वह करता है, क्या इससे हम बेख़बर हैं? ऐ क़ुरैश के सरदारो, कुछ और बात सोचो जो चीज़ तुम्हारे मुक़ाबले पर है वह इससे ज़्यादा बड़ी है कि ये बातें बनाकर तुम उसे हरा सको।" इसके बाद उसने यह मशवरा दिया कि अजम (अरब के बाहर) से रुस्तम और असफ़न्दयार के क़िस्से लाकर फैलाए जाएँ ताकि लोग उनमें दिलचस्पी लेने लगें और वे उन्हें क़ुरआन से ज़्यादा अजीब मालूम हों। चुनाँचे कुछ दिनों इसपर अमल किया गया और ख़ुद नज़्र ने लम्बी-लम्बी कहानियाँ सुनानी शुरू कर दीं। (इब्ने-हिशाम, हिस्सा-1, पे॰ 320, 321)

8. इस छोटे-से जुमले में निशानी की माँग का जो जवाब दिया गया है उसमें तीन मज़मूनों पर चर्चा की गई है। एक यह कि तुम पिछले रसूलों की-सी निशानियाँ माँगते हो, मगर यह भूल जाते हो कि हठधर्म लोग निशानियों को देखकर भी ईमान न लाए थे। दूसरी यह कि तुम निशानी की माँग तो करते हो, मगर यह याद नहीं रखते कि जिस क़ौम ने भी खुला मोजिज़ा आँखों से देख लेने के बाद ईमान लाने से इनकार किया है वह फिर हलाक हुए बिना नहीं रही है। तीसरी यह कि तुम्हारी मुँहमाँगी निशानी न भेजना तो तुमपर ख़ुदा की एक बड़ी मेहरबानी है। अब तक तुम इनकार-पर-इनकार किए जाते रहे और अज़ाब में न घिरे। क्या अब निशानी इसलिए माँगते हो कि उन क़ौमों का-सा अंजाम देखो जो निशानियाँ देखकर भी ईमान न लाईं और तबाह कर दी गईं?

نُّوۡحِیۡۤ اِلَیۡہِمۡ فَسۡـَٔلُوۡۤا اَہۡلَ الذِّکۡرِ اِنۡ کُنۡتُمۡ لَا تَعۡلَمُوۡنَ ﴿۷﴾ وَ مَا
جَعَلۡنٰہُمۡ جَسَدًا لَّا یَاۡکُلُوۡنَ الطَّعَامَ وَ مَا کَانُوۡا خٰلِدِیۡنَ ﴿۸﴾ ثُمَّ
صَدَقۡنٰہُمُ الۡوَعۡدَ فَاَنۡجَیۡنٰہُمۡ وَ مَنۡ نَّشَآءُ وَ اَہۡلَکۡنَا الۡمُسۡرِفِیۡنَ ﴿۹﴾
لَقَدۡ اَنۡزَلۡنَاۤ اِلَیۡکُمۡ کِتٰبًا فِیۡہِ ذِکۡرُکُمۡ ؕ اَفَلَا تَعۡقِلُوۡنَ ﴿۱۰﴾ ع

जिनपर हम वह्य किया करते थे।[9] तुम लोग अगर नहीं जानते तो अहले-किताब से पूछ लो।[10] (8) उन रसूलों को हमने कोई ऐसा जिस्म नहीं दिया था कि वे खाते न हों, और न वे सदा जीनेवाले थे। (9) फिर देख लो कि आख़िरकार हमने उनके साथ अपने वादे पूरे किए, और उन्हें और जिस-जिसको हमने चाहा बचा लिया, और हद से गुज़र जानेवालों को हलाक कर दिया।[11]

(10) लोगो! हमने तुम्हारी तरफ़ एक ऐसी किताब भेजी है जिसमें तुम्हारा ही ज़िक्र है। क्या तुम समझते नहीं हो?[12]

9. यह जवाब है उनकी इस बात का कि "यह शख़्स तुम जैसा एक इनसान ही तो है।" वे नबी (सल्ल.) के इनसान होने को इस बात की दलील ठहराते थे कि आप (सल्ल.) नबी नहीं हो सकते। जवाब दिया गया कि पहले ज़माने के जिन लोगों को तुम ख़ुद मानते हो कि वे ख़ुदा की तरफ़ से भेजे गए थे, वे सब भी इनसान ही थे और इनसान होते हुए ही ख़ुदा की वह्य से नवाज़े गए थे। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-36 या-सीन, हाशिया-11)

10. यानी ये यहूदी जो आज इस्लाम की दुश्मनी में तुम्हारे साथ हैं और तुमको मुख़ालिफ़त के दाँव-पेंच सिखाया करते हैं, उन्हीं से पूछ लो कि मूसा और बनी-इसराईल के दूसरे पैग़म्बर कौन थे। इनसान ही थे या कोई और मख़्लूक़?

11. यानी पिछले इतिहास का सबक़ सिर्फ़ इतना ही नहीं बताता कि पहले जो रसूल भेजे गए थे वे इनसान थे, बल्कि यह भी बताता है कि उनकी मदद और हिमायत के, और उनकी मुख़ालिफ़त करनेवालों को हलाक कर देने के जितने वादे अल्लाह ने उनसे किए थे, वे सब पूरे हुए और हर वह क़ौम बरबाद हुई जिसने उनको नीचा दिखाने की कोशिश की। अब तुम अपना अंजाम ख़ुद सोच लो।

12. यह इकट्ठा जवाब है मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की उन उलटी-सीधी बातों का जो वे क़ुरआन और मुहम्मद (सल्ल.) के बारे में कहते थे कि यह शाइरी है, यह जादूगरी है, ये परेशान ख़ाब हैं, ये मनगढ़ंत कहानियाँ हैं, वग़ैरा। इसपर कहा जा रहा है कि इस किताब में आख़िर वह कौन-सी

وَكَمْ قَصَمْنَا مِن قَرْيَةٍ كَانَتْ ظَالِمَةً وَأَنشَأْنَا بَعْدَهَا قَوْمًا
آخَرِينَ ⑪ فَلَمَّا أَحَسُّوا بَأْسَنَا إِذَا هُم مِّنْهَا يَرْكُضُونَ ⑫
لَا تَرْكُضُوا وَارْجِعُوا إِلَىٰ مَا أُتْرِفْتُمْ فِيهِ وَمَسَاكِنِكُمْ
لَعَلَّكُمْ تُسْأَلُونَ ⑬ قَالُوا يَا وَيْلَنَا إِنَّا كُنَّا ظَالِمِينَ ⑭ فَمَا زَالَت
تِّلْكَ دَعْوَاهُمْ حَتَّىٰ جَعَلْنَاهُمْ حَصِيدًا خَامِدِينَ ⑮ وَمَا

(11) कितनी ही ज़ालिम बस्तियाँ हैं जिनको हमने पीसकर रख दिया और उनके बाद दूसरी किसी क़ौम को उठाया। (12) जब उनको हमारा अज़ाब महसूस हुआ[13] तो लगे वहाँ से भागने। (13) (कहा गया) "भागो नहीं, जाओ अपने उन्हीं घरों में और ऐश के सामानों में जिनके अन्दर तुम चैन कर रहे थे, शायद कि तुमसे पूछा जाए।"[14] (14) कहने लगे, "हाय हमारी कमबख़्ती! बेशक हम ग़लती करनेवाले थे।" (15) और वे यही पुकारते रहे, यहाँ तक कि हमने उनको खलियान कर दिया, ज़िन्दगी की एक चिंगारी तक उनमें न रही।

निराली बात है जो तुम्हारी समझ में न आती हो, जिसकी वजह से उसके बारे में तुम इतनी अलग-अलग राएँ क़ायम कर रहे हो जो ख़ुद आपस में एक दूसरे से टकरा रही हैं। इसमें तो तुम्हारा अपना ही हाल बयान किया गया है। तुम्हारे ही मन की हालत और ज़िन्दगी से मुतअल्लिक़ तुम्हारे ही मामलों पर चर्चा की गई है। तुम्हारी ही फ़ितरत (स्वभाव) और बनावट और शुरुआत और अंजाम पर बात की गई है। तुम्हारे ही माहौल से वे निशानियाँ चुन-चुनकर पेश की गई हैं जो हक़ीक़त की तरफ़ इशारा कर रही हैं। और तुम्हारी ही अख़लाक़ी सिफ़ात में से अच्छाइयों और बुराइयों का फ़र्क़ नुमायाँ करके दिखाया जा रहा है, जिसके सही होने पर तुम्हारे अपने ज़मीर (अन्तरात्माएँ) गवाही देते हैं। इन सब बातों में क्या चीज़ ऐसी उलझी हुई और पेचीदा है कि इसको समझने से तुम्हारी अक़्ल मजबूर हो?

13. यानी जब अल्लाह का अज़ाब सिर पर आ गया और उन्हें मालूम हो गया कि आ गई मुसीबत।

14. यह जुमला अपने अन्दर बड़े गहरे मानी रखता है और इसके कई मतलब हो सकते हैं, मिसाल के तौर पर ज़रा अच्छी तरह इस अज़ाब को देख लो ताकि कल कोई इसकी कैफ़ियत पूछे तो ठीक बता सको। अपने वही ठाठ जमाकर फिर मजलिसें गर्म करो, शायद अब भी तुम्हारे नौकर-चाकर हाथ बाँधकर पूछें कि हुज़ूर क्या हुक्म है। अपनी वही कौंसिलें और कमेटियाँ

خَلَقْنَا السَّمَآءَ وَالْاَرْضَ وَمَا بَيْنَهُمَا لٰعِبِيْنَ۝١٦ لَوْ اَرَدْنَآ اَنْ نَّتَّخِذَ
لَهْوًا لَّاتَّخَذْنٰهُ مِنْ لَّدُنَّآ ۖ اِنْ كُنَّا فٰعِلِيْنَ۝١٧ بَلْ نَقْذِفُ بِالْحَقِّ عَلَى
الْبَاطِلِ فَيَدْمَغُهٗ فَاِذَا هُوَ زَاهِقٌ ۭ وَلَكُمُ الْوَيْلُ مِمَّا تَصِفُوْنَ۝١٨

(16) हमने इस आसमान और ज़मीन को और जो कुछ भी इनमें है, कुछ खेल के तौर पर नहीं बनाया है।[15] (17) अगर हम कोई खिलौना बनाना चाहते और बस यही कुछ हमें करना होता तो अपने ही पास से कर लेते।[16] (18) मगर हम तो बातिल (असत्य) पर हक़ (सत्य) की चोट लगाते हैं जो उसका सिर तोड़ देती है और वह देखते-देखते मिट जाता है और तुम्हारे लिए तबाही है उन बातों की वजह से जो तुम बनाते हो।[17]

जमाए बैठे रहो, शायद अब भी तुम्हारे अक़्लमन्दी भरे मशवरों और समझ से भरी रायों से फ़ायदा उठाने के लिए दुनिया हाज़िर हो।

15. यह तबसिरा (टिप्पणी) है तौहीद के बारे में उनके उस पूरे नज़रिए पर जिसकी वजह से वे नबी (सल्ल.) की दावत पर ध्यान न देते थे। उनका ख़याल यह था कि इनसान दुनिया में बस यूँ ही आज़ाद छोड़ दिया गया है। जो कुछ चाहे करे और जिस तरह चाहे जिए, कोई पूछ-गच्छ उससे नहीं होनी है। किसी को उसे हिसाब नहीं देना है। कुछ दिनों की भली-बुरी ज़िन्दगी गुज़ारकर सबको बस यूँ ही मिट जाना है। कोई दूसरी ज़िन्दगी नहीं है जिसमें भलाई का इनाम और बुराई की सज़ा हो। यह ख़याल अस्ल में इस बात का हममानी (समानार्थी) था कि कायनात (सृष्टि) का यह सारा निज़ाम (व्यवस्था) महज़ किसी खिलंडरे का खेल है जिसका कोई संजीदा मक़सद नहीं हैं। और यही ख़याल पैग़म्बर की दावत की तरफ़ उनके ध्यान न देने का अस्ल सबब था।

16. यानी हमें खेलना ही होता तो खिलौने बनाकर हम ख़ुद ही खेल लेते। इस सूरत में यह ज़ुल्म तो हरगिज़ न किया जाता कि ख़ाहमख़ाह एक शऊर और एहसास रखनेवाली ज़िम्मेदार मख़लूक़ (सृष्टि) को पैदा कर डाला जाता उसके बीच हक़ (सत्य) और बातिल (असत्य) की यह कशमकश और खींचातानियाँ कराई जातीं, और सिर्फ़ अपने मज़े और मनोरंजन के लिए हम दूसरों को बेवजह तकलीफ़ों में डालते। तुम्हारे ख़ुदा ने यह दुनिया कुछ रूमी अखाड़े (Colosseum) के तौर पर नहीं बनाई है कि बन्दों को दरिन्दों से लड़वाकर और उनकी बोटियाँ नुचवाकर ख़ुशी के ठट्ठे लगाए।

17. यानी हम बाज़ीगर नहीं हैं, न हमारा काम खेल-तमाशा करना है। हमारी यह दुनिया एक संजीदा निज़ाम (गंभीर व्यवस्था) है जिसमें कोई बातिल चीज़ नहीं जम सकती। बातिल यहाँ जब भी सिर उठाता है, हक़ीक़त से उसका टकराव होकर रहता है और आख़िरकार वह मिटकर ही

وَلَهٗ مَنۡ فِى السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ‌ؕ وَمَنۡ عِنۡدَهٗ لَا يَسۡتَكۡبِرُوۡنَ عَنۡ
عِبَادَتِهٖ وَلَا يَسۡتَحۡسِرُوۡنَ‌ۚ‏ ﴿۱۹﴾ يُسَبِّحُوۡنَ الَّيۡلَ وَالنَّهَارَ لَا يَفۡتُرُوۡنَ‏ ﴿۲۰﴾

(19) ज़मीन और आसमानों में जो कुछ भी है, अल्लाह का है।[18] और जो (फ़रिश्ते) उसके पास हैं[19] वे न अपने आपको बड़ा समझकर उसकी बन्दगी से मुँह मोड़ते हैं और न दुखी होते हैं।[20] (20) रात-दिन उसकी तसबीह (महिमागान) करते रहते हैं, दम नहीं लेते।

रहता है। इस दुनिया को अगर तुम तमाशागाह समझकर जियोगे, या हक़ीक़त के ख़िलाफ़ खोखले नज़रियात पर काम करोगे तो नतीजा तुम्हारी अपनी ही तबाही होगा। इनसानों का इतिहास उठाकर देख लो कि दुनिया को सिर्फ़ एक तामाशागाह, सिर्फ़ नेमतों से भरा एक थाल, सिर्फ़ ऐश करने की एक जगह समझकर जीनेवाली और नबियों की बताई हुई हक़ीक़त से मुँह मोड़कर बातिल नज़रियों पर काम करनेवाली क़ौमें एक के बाद एक किस अंजाम से दोचार होती रही हैं। फिर यह कौन-सी अक़्लमन्दी है कि जब समझानेवाला समझाए तो उसका मज़ाक़ उड़ाओ, और जब अपने ही किए करतूतों के नतीजे अल्लाह के अज़ाब की शक्ल में सिर पर आ जाएँ तो चीख़ने लगो कि "हाय हमारी कमबख़्ती, बेशक हम ख़ताकार थे।"

18. यहाँ से तौहीद (एकेश्वरवाद) को सही और शिर्क (अनेकेश्वरवाद) को ग़लत साबित करने पर बात शुरू होती है जो नबी (सल्ल.) और मक्का के मुशरिकों के बीच झगड़े की अस्ल जड़ थी। अब मुशरिकों को यह बताया जा रहा है कि कायनात का यह निज़ाम जिसमें तुम जी रहे हो (जिसके बारे में अभी यह बताया जा चुका है कि यह किसी खिलंडरे का खिलौना नहीं है, जिसके बारे में यह भी बताया जा चुका है कि यह एक संजीदा और बामक़सद और हक़ीक़त पर बना हुआ निज़ाम है और जिसके बारे में यह भी बताया जा चुका है कि इसमें बातिल हमेशा हक़ीक़त से टकराकर चूर-चूर हो जाता है) इसकी हक़ीक़त यह है कि इस पूरे निज़ाम का पैदा करनेवाला, मालिक, हाकिम और रब सिर्फ़ एक ख़ुदा है, और इस हक़ीक़त के मुक़ाबले में बातिल यह है कि इसे बहुत-से ख़ुदाओं की साझा सल्तनत समझा जाए, या यह समझा जाए कि एक बड़े ख़ुदा की ख़ुदाई में दूसरे छोटे-छोटे ख़ुदाओं का भी कुछ दख़ल है।

19. यानी वही फ़रिश्ते जिनको अरब के मुशरिक लोग ख़ुदा की औलाद समझकर, या ख़ुदाई में साझीदार मानकर माबूद बनाए हुए थे।

20. यानी ख़ुदा की बन्दगी करना उनको नागवार भी नहीं है कि अनचाहे मन से बन्दगी करते-करते वे उकता जाते हों। अस्ल अरबी इबारत में लफ़्ज़ 'ला यसतहसिरून' इस्तेमाल किया गया है। इससे मुराद वह थकन है जो किसी नागवार काम के करने से हो जाती है।

اَمِ اتَّخَذُوْٓا اٰلِهَةً مِّنَ الْاَرْضِ هُمْ يُنْشِرُوْنَ ﴿٢١﴾ لَوْ كَانَ فِيْهِمَآ اٰلِهَةٌ
اِلَّا اللّٰهُ لَفَسَدَتَا ۚ فَسُبْحٰنَ اللّٰهِ رَبِّ الْعَرْشِ عَمَّا يَصِفُوْنَ ﴿٢٢﴾ لَا

(21) क्या इन लोगों के बनाए हुए ज़मीनी ख़ुदा ऐसे हैं कि (बेजान में जान डालकर) उठा खड़ा करते हों?[21]

(22) अगर आसमान और ज़मीन में एक अल्लाह के सिवा दूसरे ख़ुदा भी होते तो (ज़मीन और आसमान) दोनों का निज़ाम (व्यवस्था) बिगड़ जाता।[22] तो पाक है अल्लाह,

---

21. अस्ल अरबी इबारत में लफ़्ज़ 'युन्शिरून' इस्तेमाल हुआ है जो 'इन्शार' से निकला है। इन्शार का मतलब है बेजान पड़ी हुई चीज़ को उठा खड़ा करना। अगरचे इस लफ़्ज़ को क़ुरआन मजीद में आम तौर से मौत के बाद की ज़िन्दगी के लिए इस्तेमाल किया गया है। लेकिन इस मतलब से अलग हटकर अस्ल लफ़्ज़ी मानी के एतिबार से यह लफ़्ज़ बेजान माद्दे में ज़िन्दगी फूँक देने के लिए इस्तेमाल होता है। और मौक़े को देखते हुए हम समझते हैं कि यह लफ़्ज़ यहाँ इसी मतलब में इस्तेमाल हुआ है। मतलब यह है कि जिन हस्तियों को उन्होंने ख़ुदा ठहरा रखा है और अपना माबूद बनाया है, क्या उनमें कोई ऐसा है जो बेजान माद्दे में ज़िन्दगी पैदा करता हो? अगर एक अल्लाह के सिवा किसी में यह ताक़त नहीं है— और अरब के मुशरिक लोग ख़ुद मानते थे कि किसी में यह ताक़त नहीं है— तो फिर वे उनको ख़ुदा और माबूद किस लिए मान रहे हैं?

22. दलील का यह तरीक़ा बहुत सीधा-सादा भी है और बहुत गहरा भी। सादा-सी बात जिसको एक देहाती, एक मोटी-सी समझ का आदमी भी आसानी से समझ सकता है, यह है कि एक मामूली घर का निज़ाम (व्यवस्था) भी चार दिन सही-सलामत नहीं चल सकता अगर उस घर के दो मुखिया हों। और गहरी बात यह है कि कायनात का पूरा निज़ाम, ज़मीन की तहों से लेकर दूर-दूर के सैयारों तक, एक हमागीर (विश्वव्यापी) क़ानून पर चल रहा है। यह एक पल के लिए भी क़ायम नहीं रह सकता अगर इसकी अनगिनत अलग-अलग क़ुव्वतों और बेहद और बेहिसाब चीज़ों के बीच सही तनासुब (अनुपात) और तवाज़ुन (सन्तुलन) और ताल-मेल और सहयोग न हो। और यह सब कुछ इसके बिना मुमकिन नहीं है कि कोई अटल, ग़ालिब और ज़बरदस्त क़ानून इन अनगिनत चीज़ों और क़ुव्वतों को पूरे ताल-मेल के साथ बाहम तआवुन (सहयोग) करते रहने पर मजबूर कर रहा हो। अब यह किस तरह समझा जा सकता है कि बहुत-से तानाशाहों की हुकूमत में एक क़ानून इस बाक़ायदगी के साथ चल सके? नज़्म (अनुशासन) का पाया जाना ख़ुद ही यह लाज़िम करता है कि नज़्म को चलानेवाला एक अकेला है। क़ानून और ज़ाब्ते की हमागीरी (सर्वव्यापकता) आप ही हैं इस बात पर गवाह है कि अधिकार और इख़्तियार सब-के-सब एक ही हाकिम के हाथ में हों और वह हाकिमियत अलग-अलग तरह के हाकिमों (शासकों) में बँटी हुई नहीं है। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, हाशिया-47; सूरा-23 मोमिनून, हाशिया-85)

يُسْـَٔلُ عَمَّا يَفْعَلُ وَهُمْ يُسْـَٔلُوْنَ ﴿٢٣﴾ اَمِ اتَّخَذُوْا مِنْ دُوْنِهٖٓ اٰلِهَةً ۭ قُلْ
هَاتُوْا بُرْهَانَكُمْ ۚ هٰذَا ذِكْرُ مَنْ مَّعِيَ وَذِكْرُ مَنْ قَبْلِيْ ۭ بَلْ
اَكْثَرُهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ ۙ الْحَقَّ فَهُمْ مُّعْرِضُوْنَ ﴿٢٤﴾ وَمَآ اَرْسَلْنَا مِنْ
قَبْلِكَ مِنْ رَّسُوْلٍ اِلَّا نُوْحِيْٓ اِلَيْهِ اَنَّهٗ لَآ اِلٰهَ اِلَّآ اَنَا فَاعْبُدُوْنِ ﴿٢٥﴾
وَقَالُوا اتَّخَذَ الرَّحْمٰنُ وَلَدًا سُبْحٰنَهٗ ۭ بَلْ عِبَادٌ مُّكْرَمُوْنَ ﴿٢٦﴾ لَا
يَسْبِقُوْنَهٗ بِالْقَوْلِ وَهُمْ بِاَمْرِهٖ يَعْمَلُوْنَ ﴿٢٧﴾ يَعْلَمُ مَا بَيْنَ اَيْدِيْهِمْ

अर्श का मालिक,[23] उन बातों से जो ये लोग बना रहे हैं। (23) वह अपने कामों के लिए (किसी के आगे) जवाबदेह नहीं है और सब जवाबदेह हैं।

(24) क्या उसे छोड़कर इन्होंने दूसरे ख़ुदा बना लिए हैं? ऐ नबी, इनसे कहो कि "लाओ अपनी दलील, यह किताब भी मौजूद है जिसमें मेरे दौर के लोगों के लिए नसीहत है और वे किताबें भी मौजूद हैं जिनमें मुझसे पहले लोगों के लिए नसीहत[24] थी।" मगर इनमें से अकसर लोग हक़ीक़त से बेख़बर हैं, इसलिए मुँह मोड़े हुए हैं।[25] (25) हमने तुमसे पहले जो रसूल भी भेजा है उसको यही वह्य की है कि मेरे सिवा कोई ख़ुदा नहीं है, इसलिए तुम लोग मेरी ही बन्दगी करो।

(26) ये कहते हैं, "रहमान औलाद रखता है।"[26] पाक है अल्लाह, वे तो बन्दे हैं जिन्हें इज़्ज़त दी गई है, (27) उसके सामने बढ़कर नहीं बोलते और बस उसके हुक्म पर

23. 'रब्बुल-अर्श' (अर्श का रब) यानी कायनात के तख़्ते-सल्तनत (राज्य-सिंहासन) का मालिक।
24. पहली दो दलीलें अक़्ल की बुनियाद पर दी गई थीं, और यह दलील लिखी हुई बातों की बुनियाद पर दी गई है। इसका मतलब यह है कि आज तक जितनी किताबें भी ख़ुदा की तरफ़ से दुनिया के किसी देश में किसी क़ौम के पैग़म्बर पर उतरी हैं उनमें से किसी में यह निकालकर दिखा दो कि एक अल्लाह, ज़मीन और आसमान के पैदा करनेवाले, के सिवा कोई दूसरा भी ख़ुदाई का थोड़ा-सा भी हिस्सा रखता है और किसी और को भी बन्दगी और इबादत का हक़ पहुँचता है। फिर यह कैसा मज़हब तुम लोगों ने बना रखा है जिसकी ताईद में न अक़्ल से कोई दलील है और न आसमानी किताबें ही जिसके लिए कोई गवाही देती हैं।
25. यानी नबी की बात पर इनका ध्यान न देना इल्म की बुनियाद पर नहीं, बल्कि जहालत की वजह से है। हक़ीक़त से बेख़बर हैं इसलिए समझानेवाले की बात को ध्यान देने के क़ाबिल ही नहीं समझते।
26. यहाँ फिर फ़रिश्तों ही का ज़िक्र है, जिनको अरब के मुशरिक लोग (बहुदेववादी) ख़ुदा की

وَمَا خَلْفَهُمْ وَلَا يَشْفَعُوْنَ ۙ اِلَّا لِمَنِ ارْتَضٰى وَهُمْ مِّنْ خَشْيَتِهٖ
مُشْفِقُوْنَ ﴿۲۸﴾ وَمَنْ يَّقُلْ مِنْهُمْ اِنِّيْٓ اِلٰهٌ مِّنْ دُوْنِهٖ فَذٰلِكَ نَجْزِيْهِ
جَهَنَّمَ ۭ كَذٰلِكَ نَجْزِي الظّٰلِمِيْنَ ﴿۲۹﴾ اَوَلَمْ يَرَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اَنَّ

अमल करते हैं। (28) जो कुछ उनके सामने है उसे भी वह जानता है और जो कुछ उनसे ओझल है उससे भी वह बाख़बर है। वे किसी की सिफ़ारिश नहीं करते सिवाय उसके जिसके हक़ में सिफ़ारिश सुनने पर अल्लाह राज़ी हो, और वे उसके ख़ौफ़ से डरे रहते हैं।[27] (29) और जो उनमें से कोई कह दे कि अल्लाह के सिवा मैं भी एक ख़ुदा हूँ तो उसे हम जहन्नम की सज़ा दें, हमारे यहाँ ज़ालिमों का यही बदला है।

(30) क्या वे लोग, जिन्होंने (नबी की बात मानने से) इनकार कर दिया है, यह ग़ौर

बेटियाँ ठहराते थे। बाद की तक़रीर से यह बात ख़ुद ज़ाहिर हो जाती है।

27. मुशरिक लोग फ़रिश्तों को दो वजहों से माबूद बनाते थे। एक यह कि उनके नज़दीक वे ख़ुदा की औलाद थे। दूसरी यह कि वे उनकी परस्तिश (ख़ुशामद) करके उन्हें ख़ुदा के यहाँ अपना सिफ़ारिशी बनाना चाहते थे। "वे कहते हैं कि ये अल्लाह के यहाँ हमारे सिफ़ारिशी हैं।" (सूरा-10 यूनुस, आयत-18) और "हम तो उनकी इबादत इसलिए करते हैं कि वे अल्लाह तक हमारी पहुँच करा दें।" (सूरा-39 ज़ुमर, आयत-3) इन आयतों में दोनों वजहों को रद्द किया गया है।

इस जगह यह बात भी ध्यान देने के क़ाबिल है कि क़ुरआन आम तौर से शफ़ाअत (सिफ़ारिश) के मुशरिकाना अक़ीदे को ग़लत बताते हुए इस हक़ीक़त पर ज़ोर देता है कि जिन्हें तुम सिफ़ारिशी ठहराते हो, वे ग़ैब का इल्म नहीं रखते और यह कि अल्लाह तआला उन बातों को भी जानता है जो उनके सामने हैं और उन बातों को भी जो उनसे ओझल हैं। इसका मक़सद यह ज़ेहन में बिठाना है कि आख़िर इनको सिफ़ारिश करने का खुला और बिना शर्त के अधिकार कैसे मिल सकता है जबकि वे हर शख़्स के अगले-पिछले और छिपे और खुले हालात नहीं जानते हैं। इसलिए चाहे फ़रिश्ते हों या पैग़म्बर और नेक लोग, हर एक का सिफ़ारिश का अधिकार लाज़िमन इस शर्त के साथ जुड़ा है कि अल्लाह तआला उनको किसी के हक़ में सिफ़ारिश की इजाज़त दे। अपने तौर पर हर भले-बुरे की सिफ़ारिश कर देने का किसी को भी इख़्तियार नहीं। और जब सिफ़ारिश सुनने या न सुनने और उसे क़बूल करने या न करने का दारोमदार बिलकुल अल्लाह की मरज़ी पर है तो ऐसे अधिकार न रखनेवाले सिफ़ारिशी इस क़ाबिल कब हो सकते हैं कि उनके आगे बन्दगी में सिर झुकाया जाए और उनके आगे माँगने के लिए हाथ फैलाया जाए। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन,

السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ كَانَتَا رَتْقًا فَفَتَقْنٰهُمَا ؕ وَجَعَلْنَا مِنَ الْمَآءِ كُلَّ
شَيْءٍ حَيٍّ ؕ اَفَلَا يُؤْمِنُوْنَ ۝٣٠ وَجَعَلْنَا فِي الْاَرْضِ رَوَاسِيَ اَنْ تَمِيْدَ بِهِمْ ۠
وَجَعَلْنَا فِيْهَا فِجَاجًا سُبُلًا لَّعَلَّهُمْ يَهْتَدُوْنَ ۝٣١ وَجَعَلْنَا السَّمَآءَ

नहीं करते कि ये सब आसमान और ज़मीन आपस में मिले हुए थे, फिर हमने इन्हें अलग किया,[28] और पानी से हर ज़िन्दा चीज़ पैदा की?[29] क्या वे (हमारी इस तरह-तरह की चीज़ें पैदा करने की इस सलाहियत को) नहीं मानते? (31) और हमने ज़मीन में पहाड़ जमा दिए ताकि वह उन्हें लेकर ढुलक न जाए।[30] और उसमें कुशादा रास्ते बना दिए,[31] शायद कि लोग अपना रास्ता मालूम कर लें।[32] (32) और हमने आसमान को

सूरा-20 ता-हा, हाशिए-85, 86)

28. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'रत्क़' और 'फ़तक़' के अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए गए हैं। 'रत्क़' का मतलब है एक जगह होना, इकट्ठा होना, एक-दूसरे से जुड़ा हुआ होना, मिला हुआ होना। और 'फ़तक़' का मतलब फाड़ने और जुदा करने के हैं। बज़ाहिर इन अलफ़ाज़ से जो बात समझ में आती है वह यह है कि कायनात की इब्तिदाई शक्ल एक ढेर (Mass) की-सी थी, बाद में उसको अलग-अलग हिस्सों में बाँटकर ज़मीन और दूसरी आसमानी चीज़ें अलग-अलग दुनियाओं की शक्ल में बनाई गईं। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए—तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-41 हा-मीम सजदा, हाशिए-13, 14, 15)

29. इससे जो मतलब समझ में आता है वह यह है कि पानी को ख़ुदा ने ज़िन्दगी का सबब और ज़िन्दगी की अस्ल बनाया। उसी में और उसी से ज़िन्दगी की शुरुआत की। दूसरी जगह इस मतलब को इन अलफ़ाज़ में बयान किया गया है, "और अल्लाह ने हर जानदार चीज़ को पानी से पैदा किया।" (सूरा-24 नूर, आयत-45)

30. इसकी तशरीह सूरा-16 नह्ल, हाशिया-12 में की जा चुकी है।

31. यानी पहाड़ों के बीच ऐसे दर्रे रख दिए और नदियाँ निकाल दीं जिनकी वजह से पहाड़ी इलाक़ों से गुज़रने और ज़मीन के एक हिस्से से दूसरे हिस्से की तरफ़ जाने के रास्ते निकल आते हैं। इसी तरह ज़मीन के दूसरे हिस्सों की बनावट भी ऐसी रखी है कि एक इलाक़े से दूसरे इलाक़े तक पहुँचने के लिए रास्ता बन जाता है या बना लिया जा सकता है।

32. यह जुमला अपने अन्दर कई मतलब रखता है। इसका यह मतलब भी है कि लोग ज़मीन में चलने के लिए रास्ता पाएँ, और यह भी कि वह इस हिकमत और इस कारीगरी और इस इन्तिज़ाम को देखकर हक़ीक़त तक पहुँचने का रास्ता पा लें।

سَقْفًا مَّحْفُوْظًا ۚ وَّهُمْ عَنْ اٰيٰتِهَا مُعْرِضُوْنَ ﴿٣٢﴾ وَهُوَ الَّذِیْ خَلَقَ
الَّیْلَ وَالنَّهَارَ وَالشَّمْسَ وَالْقَمَرَ ؕ كُلٌّ فِیْ فَلَكٍ یَّسْبَحُوْنَ ﴿٣٣﴾ وَمَا

एक महफ़ूज़ छत बना दिया,[33] मगर ये हैं कि उसकी निशानियों की तरफ़[34] ध्यान ही नहीं देते। (33) और वह अल्लाह ही है जिसने रात और दिन बनाए और सूरज और चाँद को पैदा किया। सब एक-एक फ़लक (कक्ष) में तैर रहे हैं।[35]

33. तशरीह के लिए देखिए– सूरा-15 हिज्र, हाशिए-8, 10, 11, 12।

34. यानी उन निशानियों की तरफ़ जो आसमान में हैं।

35. अस्ल अरबी में 'कुल्लुन' और 'यस-बहून' इस्तेमाल हुए हैं। ये अलफ़ाज़ बताते हैं कि मुराद सिर्फ़ सूरज और चाँद ही नहीं हैं, बल्कि दूसरी आसमानी चीज़ें यानी तारे भी मुराद हैं, वरना यहाँ जमा (बहुवचन) के बजाय वह लफ़्ज़ इस्तेमाल होता जो दो चीज़ों के लिए बोला जाता है। अस्ल अरबी में 'फ़लक' लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है जो अरबी ज़बान में आसमान के मशहूर नामों में से है। "सब एक-एक फ़लक (कक्ष) में तैर रहे हैं" से दो बातें साफ़ समझ में आती हैं। एक यह कि ये सब तारे एक ही 'फ़लक' में नहीं हैं, बल्कि हर एक का फ़लक अलग है। दूसरी यह कि फ़लक कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसमें ये तारे खूँटियों की तरह जड़े हुए हों और वह ख़ुद उन्हें लिए हुए घूम रहा हो, बल्कि वह कोई तरल चीज़ है या फ़ज़ा और ख़ला की तरह की चीज़ है जिसमें इन तारों की हरकत तैरने के अमल से मिलती-जुलती है। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए– तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-36 या-सीन, हाशिया- 37)

पुराने ज़माने में लोगों के लिए आसमान और ज़मीन के 'जुड़े होने' (रत्क़) और 'अलग होने' (फ़तक़) और पानी से हर ज़िन्दा चीज़ के पैदा किए जाने, और तारों के एक-एक फ़लक में तैरने का मतलब कुछ और था। मौजूदा दौर में तबीआत (भौतिक विज्ञान, Physics), हयातियात (जीव विज्ञान, Biology) और इल्मे-हैअत (खगोल विज्ञान, Astronomy) की नई मालूमात ने हमारे लिए इनका मतलब कुछ और कर दिया है, और नहीं कह सकते कि आगे चलकर इनसान को जो मालूमात हासिल होनी हैं वे इन अलफ़ाज़ के किन मानी और मतलबों पर रौशनी डालेंगी। बहरहाल, मौजूदा ज़माने का इनसान इन तीनों आयतों को बिलकुल अपनी नई मालूमात के मुताबिक़ पाता है।

इस जगह पर यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि "व लहू मन फ़िस्समावाति वल अरज़ि" (ज़मीन और आसमानों में जो कुछ भी है अल्लाह ही का है) से लेकर "कज़ालि-क नजज़िज़-ज़ालिमीन" (ज़ालिमों को हम यही बदला देते हैं) तक की तक़रीर शिर्क के रद्द में है, और "अ-वलम यरल्लज़ी-न क-फ़रू" (क्या जिन्होंने इनकार किया) से लेकर "फ़ी फ़-लकिंय-यस-बहून" (एक-एक फ़लक में तैर रहे हैं) तक जो कुछ फ़रमाया गया है उसमें तौहीद (एकेश्वरवाद) के लिए ईजाबी (सकारात्मक, Positive) दलीलें दी गई हैं। मक़सद यह है कि कायनात का यह निज़ाम जो तुम्हारे सामने है, क्या इसमें कहीं एक अल्लाह, सारे जहान के रब,

جَعَلْنَا لِبَشَرٍ مِّنْ قَبْلِكَ الْخُلْدَ ۭ اَفَاۡىِٕنْ مِّتَّ فَهُمُ الْخٰلِدُوْنَ ۝ كُلُّ نَفْسٍ
ذَاۗىِٕقَةُ الْمَوْتِ ۭ وَنَبْلُوْكُمْ بِالشَّرِّ وَالْخَيْرِ فِتْنَةً ۭ وَاِلَيْنَا تُرْجَعُوْنَ ۝

(34) और[36] ऐ नबी, हमेशगी तो हमने तुमसे पहले भी किसी इनसान के लिए नहीं रखी है। अगर तुम मर गए तो क्या ये लोग हमेशा जीते रहेंगे? (35) हर जानदार को मौत का मज़ा चखना है,[37] और हम अच्छे और बुरे हालात में डालकर तुम सब की आज़माइश कर रहे हैं।[38] आख़िरकार तुम्हें हमारी ही तरफ़ पलटना है।

के सिवा किसी और की भी कोई कारीगरी तुम्हें नज़र आती है? क्या यह निज़ाम एक से ज़्यादा ख़ुदाओं की साझेदारी में बन सकता था और इस बाक़ायदगी के साथ जारी रह सकता था? क्या इस हिकमत से भरे निज़ाम के बारे में कोई अक़्ल और समझ रखनेवाला आदमी यह सोच सकता है कि यह एक खिलंडरे का खेल है और उसने सिर्फ़ मनोरंजन के लिए कुछ गुड़ियाँ बनाई हैं जिनसे कुछ देर खेलकर बस वह यूँ ही इनको मिट्टी में मिला देगा? यह सब कुछ अपनी आँखों से देख रहे हो और फिर भी नबी की बात मानने से इनकार किए जाते हो? तुमको नज़र नहीं आता कि ज़मीन और आसमान की एक-एक चीज़ तौहीद के उस नज़रिए की गवाही दे रही है जो यह नबी तुम्हारे सामने पेश कर रहा है? इन निशानियों के होते हुए तुम कहते हो कि "यह नबी हमारे पास कोई निशानी लेकर आए।" नबी तौहीद की जो दावत दे रहा है क्या उसके हक़ होने पर गवाही देने के लिए ये निशानियाँ काफ़ी नहीं हैं?

36. यहाँ से फिर तक़रीर का सिलसिला उस कशमकश की तरफ़ मुड़ता है जो नबी (सल्ल॰) और आपकी (सल्ल॰) मुख़ालिफ़त करनेवालों के बीच हो रही थी।

37. यह मुख़्तसर-सा जवाब है उन सारी धमकियों और बद्दुआओं और कोसनों और क़त्ल की साज़िशों का जिनसे हर वक़्त नबी (सल्ल॰) की 'ख़ातिर' की जाती थी। एक तरफ़ क़ुरैश के सरदार थे जो आए दिन आप (सल्ल॰) को इस तबलीग़ के भयानक नतीजों की धमकियाँ देते रहते थे, और उनमें से कुछ जोशीले मुख़ालिफ़ बैठ-बैठकर यह तक सोचा करते थे कि किसी तरह आप (सल्ल॰) का काम तमाम कर दें। दूसरी तरफ़ हर वह घर, जिसका कोई आदमी इस्लाम क़बूल कर लेता था, आप (सल्ल॰) का दुश्मन बन जाता था। उसकी औरतें आप (सल्ल॰) को कलप-कलपकर कोसनें और बद्दुआएँ देती थीं और उसके मर्द आप (सल्ल॰) को डरावे देते फिरते थे। ख़ास तौर से हब्शा की हिजरत के बाद तो मक्का भर के घरों में कोहराम मच गया था; क्योंकि मुश्किल ही से कोई ऐसा घराना बचा रह गया था जिसके किसी लड़के या लड़की ने हिजरत न की हो। ये सब लोग नबी (सल्ल॰) के नाम की दुहाइयाँ देते थे कि इस शख़्स ने हमारे घर बरबाद किए हैं। इन्हीं बातों का जवाब इस आयत में दिया गया है, और साथ-साथ नबी (सल्ल॰) को भी नसीहत की गई है कि तुम इनकी परवाह किए बिना, निडर होकर अपना काम किए जाओ।

38. यानी सुख और दुख, ग़रीबी और अमीरी, ग़ालिब होना और मग़लूब (पराधीन) होना, ताक़त

وَإِذَا رَاٰكَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اِنْ يَّتَّخِذُوْنَكَ اِلَّا هُزُوًا ۭ اَهٰذَا الَّذِيْ
يَذْكُرُ اٰلِهَتَكُمْ ۚ وَهُمْ بِذِكْرِ الرَّحْمٰنِ هُمْ كٰفِرُوْنَ ۝۳۶
خُلِقَ الْاِنْسَانُ مِنْ عَجَلٍ ۭ سَاُورِيْكُمْ اٰيٰتِيْ فَلَا

(36) ये हक़ का इनकार करनेवाले जब तुम्हें देखते हैं तो तुम्हारा मज़ाक़ बना लेते हैं। कहते हैं, "क्या यह है वह आदमी जो तुम्हारे ख़ुदाओं का ज़िक्र किया करता है?"[39] और उनका अपना हाल यह है कि रहमान (दयावान प्रभु) का ज़िक्र करने से इनकार करते हैं।[40]

(37) इनसान उतावला पैदा हुआ है।[41] अभी मैं तुमको अपनी निशानियाँ दिखाए

और कमज़ोरी, सेहत और बीमारी, ग़रज़ तमाम तरह के हालात में तुम लोगों की आज़माइश की जा रही है; ताकि देखें तुम अच्छे हालात में घमंडी, ज़ालिम, ख़ुदा को भूल जानेवाले, मन की ख़ाहिशों पर चलनेवाले तो नहीं बन जाते, और बुरे हालात में कम-हिम्मती के साथ नीच और घटिया तरीक़े और नाजाइज़ रास्ते तो नहीं अपनाने लगते। इसलिए किसी अक़्ल रखनेवाले आदमी को इन अलग-अलग तरह के हालात को समझने में ग़लती नहीं करनी चाहिए। जो हालत भी उसे पेश आए उसके इम्तिहानी और आज़माइशी पहलू को निगाह में रखना चाहिए और उससे बख़ैरियत गुज़रने की कोशिश करनी चाहिए। यह सिर्फ़ एक बेवक़ूफ़ और ओछे आदमी का काम है कि जब अच्छे हालात आएँ तो फ़िरऔन बन जाए, और जब बुरे हालात पेश आ जाएँ तो ज़मीन पर नाक रगड़ने लगे।

39. यानी बुराई के साथ उनका ज़िक्र करता है। यहाँ इतनी बात और समझ लेनी चाहिए कि यह जुमला उनके मज़ाक़ का मज़मून नहीं बता रहा है, बल्कि मज़ाक़ उड़ाने की वजह और बुनियाद पर रौशनी डाल रहा है। ज़ाहिर है कि यह जुमला अपने आपमें कोई मज़ाक़ का जुमला नहीं है। मज़ाक़ तो वे दूसरे ही अलफ़ाज़ में उड़ाते होंगे और कुछ और ही तरह की फब्तियाँ कसते होंगे। अलबत्ता यह सारा दिल का बुख़ार जिस वजह से निकाला जाता था, वह यह थी कि आप (सल्ल.) उनके अपने गढ़े हुए माबूदों के ख़ुदा होने का रद्द करते थे।

40. यानी बुतों और बनावटी ख़ुदाओं की मुख़ालिफ़त तो उन्हें इतनी ज़्यादा नागवार है कि उसका बदला लेने के लिए तुम्हारा मज़ाक़ उड़ाते और तुम्हारी बेइज़्ज़ती करते हैं, मगर उन्हें ख़ुद अपने हाल पर शर्म नहीं आती कि ख़ुदा से फिरे हुए हैं और उसका ज़िक्र सुनकर आग बगूला हो जाते हैं।

41. अस्ल अरबी में "ख़ुलिक़ल-इनूसानु मिन् अ-जल" के अलफ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं जिनका लफ़्ज़ी तर्जमा है "इनसान जल्दबाज़ी से बनाया गया है, या पैदा किया गया है।" लेकिन यह लफ़्ज़ी मानी बात का अस्ल मक़सद नहीं है। जिस तरह हम अपनी ज़बान में कहते हैं कि फ़ुलाँ शख़्स

تَسْتَعْجِلُوْنِ۝ وَيَقُوْلُوْنَ مَتٰى هٰذَا الْوَعْدُ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ۝ لَوْ
يَعْلَمُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا حِيْنَ لَا يَكُفُّوْنَ عَنْ وُّجُوْهِهِمُ النَّارَ وَلَا عَنْ
ظُهُوْرِهِمْ وَلَا هُمْ يُنْصَرُوْنَ۝ بَلْ تَاْتِيْهِمْ بَغْتَةً فَتَبْهَتُهُمْ فَلَا
يَسْتَطِيْعُوْنَ رَدَّهَا وَلَا هُمْ يُنْظَرُوْنَ۝ وَلَقَدِ اسْتُهْزِئَ بِرُسُلٍ مِّنْ
قَبْلِكَ فَحَاقَ بِالَّذِيْنَ سَخِرُوْا مِنْهُمْ مَّا كَانُوْا بِهٖ يَسْتَهْزِءُوْنَ۝

देता हूँ, जल्दी न मचाओ।[42] (38)—ये लोग कहते हैं, "आख़िर यह धमकी पूरी कब होगी, अगर तुम सच्चे हो।" (39) काश, हक़ के इन इनकारियों को उस वक़्त का कुछ इल्म होता जबकि ये न अपने मुँह आग से बचा सकेंगे, न अपनी पीठें और न इनको कहीं से मदद पहुँचेगी। (40) वह बला अचानक आएगी और इन्हें इस तरह एकदम दबोच लेगी कि ये न उसे दूर कर सकेंगे और न इनको पल भर की मुहलत ही मिल सकेगी। (41) मज़ाक़ तुमसे पहले भी रसूलों का उड़ाया जा चुका है, मगर उनका मज़ाक़ उड़ानेवाले उसी चीज़ के फेर में आकर रहे जिसका वे मज़ाक़ उड़ाते थे।

अक़्ल का पुतला है, और फ़ुलाँ शख़्स हर्फ़ों का बना हुआ है उसी तरह अरबी ज़बान में कहते हैं कि वह फ़ुलाँ चीज़ से पैदा किया गया है, और मतलब यह होता है कि फ़ुलाँ चीज़ उसकी फ़ितरत में है। यही बात जिसको यहाँ "ख़ुलिक़ल-इन्सानु मिन् अ-जल" कहकर अदा किया गया है, दूसरी जगह "वकानल-इन्सानु अजूला" यानी "इनसान जल्दबाज़ है" (सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-11) के अलफ़ाज़ में बयान की गई है।

42. बाद की तक़रीर साफ़ बता रही है कि यहाँ 'निशानियों' से क्या मुराद है। वे लोग जिन बातों का मज़ाक़ उड़ाते थे उनमें से एक अल्लाह का अज़ाब और क़ियामत और जहन्नम की बातें भी थीं। वे कहते थे कि यह शख़्स आए दिन हमें डरावे देता है कि मेरा इनकार करोगे तो ख़ुदा का अज़ाब टूट पड़ेगा, और क़ियामत में तुमपर यह बनेगी और तुम लोग यूँ जहन्नम के ईंधन बनाए जाओगे। मगर हम रोज़ इनकार करते हैं और दनदनाते फिर रहे हैं। न कोई अज़ाब आता दिखाई देता है और न कोई क़ियामत ही टूटी पड़ती है। इसी का जवाब इन आयतों में दिया गया है।

قُلْ مَنْ يَّكْلَؤُكُمْ بِالَّيْلِ وَالنَّهَارِ مِنَ الرَّحْمٰنِ ؕ بَلْ هُمْ عَنْ ذِكْرِ
رَبِّهِمْ مُّعْرِضُوْنَ ﴿٤٢﴾ اَمْ لَهُمْ اٰلِهَةٌ تَمْنَعُهُمْ مِّنْ دُوْنِنَا ؕ لَا
يَسْتَطِيْعُوْنَ نَصْرَ اَنْفُسِهِمْ وَلَا هُمْ مِّنَّا يُصْحَبُوْنَ ﴿٤٣﴾ بَلْ
مَتَّعْنَا هٰٓؤُلَآءِ وَاٰبَآءَهُمْ حَتّٰى طَالَ عَلَيْهِمُ الْعُمُرُ ؕ اَفَلَا يَرَوْنَ
اَنَّا نَاْتِى الْاَرْضَ نَنْقُصُهَا مِنْ اَطْرَافِهَا ؕ اَفَهُمُ الْغٰلِبُوْنَ ﴿٤٤﴾

(42) ऐ नबी, इनसे कहो, "कौन है जो रात को या दिन को तुम्हें रहमान से बचा सकता हो?"[43] मगर ये अपने रब की नसीहत से मुँह मोड़ रहे हैं। (43) क्या ये कुछ ऐसे ख़ुदा रखते हैं जो हमारे मुक़ाबले में इनकी हिमायत करें? वे तो न ख़ुद अपनी मदद कर सकते हैं और न हमारी ही ताईद उनको हासिल है। (44) अस्ल बात यह है कि इन लोगों को और इनके बाप-दादाओं को हम ज़िन्दगी का सरो-सामान दिए चले गए, यहाँ तक कि इनको दिन लग गए।[44] मगर क्या इन्हें नज़र नहीं आता कि हम ज़मीन को अलग-अलग दिशाओं से घटाते चले आ रहे हैं?[45] फिर क्या ये ग़ालिब

43. यानी अगर अचानक दिन को या रात को किसी वक़्त ख़ुदा का ज़बरदस्त हाथ तुमपर पड़ जाए तो आख़िर वह कौन-सा ज़ोरावर, हिमायती और मदद करनेवाला है जो उसकी पकड़ से तुमको बचा लेगा?
44. यानी हमारी इस मेहरबानी और परवरिश से ये इस ग़लतफ़हमी में पड़ गए हैं कि यह सब कुछ इनका कोई निजी हक़ है जिसका छीननेवाला कोई नहीं। अपनी ख़ुशहालियों और सरदारियों को ये कभी न ख़त्म होनेवाली समझने लगे हैं और ऐसे बदमस्त हो गए हैं कि इन्हें कभी यह ख़याल तक नहीं आता कि ऊपर कोई ख़ुदा भी है जो इनकी क़िस्मतें बनाने और बिगाड़ने की क़ुदरत रखता है।
45. यह मज़मून इससे पहले सूरा-13 रअद, आयत-41 में गुज़र चुका है और वहाँ हम इसकी तशरीह भी कर चुके हैं (देखिए— हाशिया-60)। यहाँ इस मौक़े पर यह एक और मतलब भी दे रहा है। वह यह कि ज़मीन में हर तरफ़ एक ग़ालिब ताक़त की कारफ़रमाई के ये आसार नज़र आते हैं कि अचानक कभी सूखे की शक्ल में, कभी महामारी की शक्ल में, कभी सैलाब की शक्ल में, कभी ज़लज़ले की शक्ल में, कभी सर्दी या गर्मी की शक्ल में और कभी किसी और शक्ल में कोई बला ऐसी आ जाती है जो इनसान के सब किए-धरे पर पानी फेर देती है। हज़ारों-लाखों आदमी मर जाते हैं। बस्तियाँ तबाह हो जाती हैं। लहलहाती खेतियाँ ग़ारत हो

قُلْ اِنَّمَاۤ اُنْذِرُكُمْ بِالْوَحْيِ ۖ وَلَا يَسْمَعُ الصُّمُّ الدُّعَاۤءَ اِذَا
مَا يُنْذَرُوْنَ ۝٤٥ وَلَئِنْ مَّسَّتْهُمْ نَفْحَةٌ مِّنْ عَذَابِ رَبِّكَ
لَيَقُوْلُنَّ يٰوَيْلَنَاۤ اِنَّا كُنَّا ظٰلِمِيْنَ ۝٤٦ وَنَضَعُ الْمَوَازِيْنَ الْقِسْطَ
لِيَوْمِ الْقِيٰمَةِ فَلَا تُظْلَمُ نَفْسٌ شَيْـًٔا ۭ وَاِنْ كَانَ مِثْقَالَ
حَبَّةٍ مِّنْ خَرْدَلٍ اَتَيْنَا بِهَا ۭ وَكَفٰى بِنَا حٰسِبِيْنَ ۝٤٧

आ जाएँगे?[46] (45) इनसे कह दो कि "मैं तो वह्य की बुनियाद पर तुम्हें ख़बरदार कर रहा हूँ"— मगर बहरे पुकार को नहीं सुना करते जबकि उन्हें ख़बरदार किया जाए। (46) और अगर तेरे रब का अज़ाब ज़रा-सा इन्हें छू जाए[47] तो अभी चीख़ उठें कि हाय हमारी कमबख़्ती, बेशक हम ख़ताकार थे।

(47) क़ियामत के दिन हम ठीक-ठीक तौलनेवाले तराज़ू रख देंगे, फिर किसी शख़्स पर ज़र्रा बराबर ज़ुल्म न होगा। जिसका राई के दाने के बराबर भी कुछ किया-धरा होगा, वह हम सामने ले आएँगे, और हिसाब लगाने के लिए हम काफ़ी हैं।[48]

जाती हैं। पैदावार घट जाती है। कारोबारों में मन्दी आने लगती है। ग़रज़ इनसान की ज़िन्दगी के वसाइल (संसाधनों) में कभी किसी तरफ़ से कमी पैदा हो जाती है और कभी किसी तरफ़ से। और इनसान अपना सारा ज़ोर लगाकर भी इन नुक़सानों को नहीं रोक सकता। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-32 सजदा, हाशिया-33)

46. यानी जबकि इनके तमाम वसाइले-ज़िन्दगी (जीवन-संसाधन) हमारे हाथ में हैं, जिस चीज़ को चाहें घटा दें और जिसे चाहें रोक लें तो क्या ये इतना बलबूता रखते हैं कि हमारे मुक़ाबले में ग़ालिब आ जाएँ और हमारी पकड़ से बच निकलें? क्या ये आसार इनको यही इत्मीनान दिला रहे हैं कि तुम्हारी ताक़त कभी कम न होनेवाली और तुम्हारा ऐश कभी ख़त्म न होनेवाला है और कोई तुम्हें पकड़नेवाला नहीं है।

47. वही अज़ाब जिसके लिए ये जल्दी मचाते हैं और मज़ाक़ के अन्दाज़ में कहते हैं कि लाओ न वह अज़ाब, क्यों नहीं वह टूट पड़ता?

48. तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, हाशिए-8, 9। हमारे लिए यह समझना मुश्किल है कि यह तराज़ू किस तरह का होगा। बहरहाल, वह कोई ऐसी चीज़ होगी जो माद्दी चीज़ों (भौतिक पदार्थों) को तौलने के बजाय इनसान की अख़लाक़ी सिफ़ात और कामों

وَلَقَدْ اٰتَيْنَا مُوْسٰى وَهٰرُوْنَ الْفُرْقَانَ وَضِيَآءً وَّذِكْرًا

(48-49) पहले[49] हम मूसा और हारून को 'फ़ुरक़ान' और 'रौशनी' और 'ज़िक्र'[50]

और उसकी नेकी और बदी को तौलेगी और ठीक-ठीक वज़्न करके बता देगी कि अख़लाक़ी हैसियत से किस शख़्स का क्या दरजा है। नेक है तो कितना नेक है और बुरा है तो कितना बुरा। अल्लाह तआला ने इसके लिए हमारी ज़बान के दूसरे अलफ़ाज़ को छोड़कर 'तराज़ू' का लफ़्ज़ या तो इस वजह से चुना है कि यह तराज़ू से मिलता-जुलता होगा, या इसके चुनने का मक़सद यह तसव्वुर दिलाना है कि जिस तरह एक तराज़ू के पलड़े दो चीज़ों के वज़्न का फ़र्क़ ठीक-ठीक बता देते, हैं उसी तरह ख़ुदा के इनसाफ़ का तराज़ू भी हर इनसान की ज़िन्दगी के कारनामे को जाँचकर बिना घटाए-बढ़ाए बता देगा कि उसमें अच्छाई का पहलू हावी है या बुराई का।

49. यहाँ से नबियों (अलैहि॰) का ज़िक्र शुरू होता है और एक के बाद एक बहुत-से नबियों की ज़िन्दगी के वाक़िआत की तरफ़ तफ़सील से या मुख़्तसर तौर पर इशारे किए जाते हैं। यह ज़िक्र जिस मौक़े से आया है उसपर ग़ौर करने से साफ़ मालूम होता है कि इसका मक़सद नीचे लिखी बातें ज़ेहन में बिठाना है—

एक यह कि तमाम पिछले नबी भी इनसान ही थे, कोई निराली मख़लूक़ (प्राणी) न थे। इतिहास में यह कोई नया वाक़िआ आज पहली बार ही पेश नहीं आया है कि एक इनसान को रसूल और पैग़म्बर बनाकर भेजा गया है।

दूसरी यह कि पहले नबी भी इसी काम के लिए आए थे जो काम अब मुहम्मद (सल्ल॰) कर रहे हैं। यही उनका मिशन था और यही उनकी तालीम थी।

तीसरी यह कि नबी (अलैहि॰) के साथ अल्लाह तआला का ख़ास मामला रहा है। बड़ी-बड़ी मुसीबतों से वे गुज़रे हैं। सालों-साल वे मुसीबतों में घिरे रहे। शख़्सी और निजी मुसीबतों में भी और अपने मुख़ालिफ़ों की डाली हुई मुसीबतों में भी, मगर आख़िरकार अल्लाह तआला की मदद और हिमायत उनको हासिल हुई है। उसने अपनी मेहरबानी और रहमत से उनको नवाज़ा है, उनकी दुआओं को क़बूल किया है, उनकी तकलीफ़ों को दूर किया है, उनके मुख़ालिफ़ों को नीचा दिखाया है और मोजिज़ाना तरीक़ों पर उनकी मदद की है।

चौथी यह कि अल्लाह तआला के प्यारे और क़रीबी होने के बावजूद, और उसकी तरफ़ से बड़ी-बड़ी हैरतअंगेज़ ताक़तें पाने के बावजूद, थे वे बन्दे और इनसान ही। ख़ुदा होने की कोई सिफ़त उनमें से किसी को भी न हासिल थी। राय और फ़ैसले में उनसे ग़लती भी हो जाती थी। बीमार भी होते थे। आज़माइशों में भी डाले जाते थे, यहाँ तक कि क़ुसूर भी उनसे हो जाते थे और उनपर अल्लाह तआला की तरफ़ से पकड़ भी होती थी।

50. तीनों अलफ़ाज़ तौरात की तारीफ़ में इस्तेमाल हुए हैं। यानी वह हक़ (सत्य) और बातिल (असत्य) का फ़र्क़ दिखानेवाली कसौटी थी, वह इनसान को ज़िन्दगी का सीधा रास्ता दिखानेवाली रौशनी थी, और वह आदम की औलाद को उसका भूला हुआ सबक़ याद

لِّلْمُتَّقِينَ ﴿٤٨﴾ الَّذِينَ يَخْشَوْنَ رَبَّهُم بِالْغَيْبِ وَهُم مِّنَ السَّاعَةِ
مُشْفِقُونَ ﴿٤٩﴾ وَهَٰذَا ذِكْرٌ مُّبَارَكٌ أَنزَلْنَاهُ ۚ أَفَأَنتُمْ لَهُ مُنكِرُونَ ﴿٥٠﴾
وَلَقَدْ آتَيْنَا إِبْرَاهِيمَ رُشْدَهُ مِن قَبْلُ وَكُنَّا بِهِ عَالِمِينَ ﴿٥١﴾

अता कर चुके हैं उन परहेज़गार लोगों की भलाई के लिए[51] जो बेदेखे अपने रब से डरें और जिनको (हिसाब की) उस घड़ी[52] का खटका लगा हुआ हो। (50) और अब यह बरकतवाला 'ज़िक्र' हमने (तुम्हारे लिए) उतारा है। फिर क्या तुम इसको क़बूल करने से इनकार करते हो?

(51) उससे भी पहले हमने इबराहीम को उसकी होशमन्दी दी थी और हम उसको ख़ूब[53]

दिलानेवाली नसीहत थी।

51. यानी अगरचे भेजी गई थी वह तमाम इनसानों के लिए, मगर उससे अमली तौर पर फ़ायदा वही लोग उठा सकते थे जिनमें ये सिफ़ात पाई जाती हों।

52. जिसका अभी ऊपर ज़िक्र गुज़रा है, यानी क़ियामत।

53. 'होशमन्दी' हमने अरबी लफ़्ज़ 'रुश्द' का तर्जमा किया है जिसका मतलब है ''सही और ग़लत में फ़र्क़ करके सही बात या तरीक़े को अपना लेना और ग़लत बात या तरीक़े से बचना।'' इस मतलब के लिहाज़ से 'रुश्द' का तर्जमा 'सीधे रास्ते पर चलना' भी हो सकता है, लेकिन चूँकि रुश्द का लफ़्ज़ सिर्फ़ सीधे रास्ते पर चलने को नहीं, बल्कि उस सीधे रास्ते पर चलने को ज़ाहिर करता है जो नतीजा हो सही सोच और सही अक़्ल के इस्तेमाल का, इसलिए हमने 'होशमन्दी' के लफ़्ज़ को इसके मतलब से ज़्यादा क़रीब समझा है।

''इबराहीम को उसकी होशमन्दी दी'' यानी जो होशमन्दी उसको हासिल थी, वह हमारी दी हुई थी।

''हम उसको ख़ूब जानते थे'' यानी हमारी यह बख़्शिश कोई अंधी बाँट न थी। हमें मालूम था कि वह कैसा आदमी है, इसलिए हमने उसको नवाज़ा। ''अल्लाह ख़ूब जानता है कि अपनी रिसालत किसके हवाले करे।'' (सूरा-6 अनआम, आयत-124) इसमें एक हलका-सा इशारा छिपा है क़ुरैश के सरदारों के उस एतिराज़ की तरफ़ जो वे नबी (सल्ल.) पर करते थे। वे कहा करते थे कि आख़िर इस शख़्स में कौन-से सुर्ख़ाब के पंख लगे हुए हैं कि अल्लाह हमको छोड़कर इसे रिसालत के मंसब पर मुक़र्रर करे। इसका जवाब अलग-अलग जगहों पर क़ुरआन मजीद में अलग-अलग तरीक़ों से दिया गया है। यहाँ सिर्फ़ यह हलका-सा इशारा करने पर बस किया गया कि यही सवाल इबराहीम के बारे में भी हो सकता था। पूछा जा सकता था कि सारे इराक़ देश में एक इबराहीम ही क्यों इस नेमत से नवाज़ा गया, मगर हम जानते थे कि इबराहीम में क्या क़ाबिलियत है, इसलिए उनकी पूरी क़ौम में से उनको इस नेमत के लिए चुना गया।

إِذْ قَالَ لِأَبِيهِ وَقَوْمِهِ مَا هَٰذِهِ التَّمَاثِيلُ الَّتِي أَنتُمْ لَهَا عَاكِفُونَ ﴿٥٢﴾
قَالُوا وَجَدْنَا آبَاءَنَا لَهَا عَابِدِينَ ﴿٥٣﴾ قَالَ لَقَدْ كُنتُمْ أَنتُمْ وَآبَاؤُكُمْ
فِي ضَلَالٍ مُّبِينٍ ﴿٥٤﴾ قَالُوا أَجِئْتَنَا بِالْحَقِّ أَمْ أَنتَ مِنَ اللَّاعِبِينَ ﴿٥٥﴾
قَالَ بَل رَّبُّكُمْ رَبُّ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ الَّذِي فَطَرَهُنَّ وَأَنَا عَلَىٰ

जानते थे। (52) याद करो वह मौक़ा[54] जबकि उसने अपने बाप और अपनी क़ौम से कहा था कि "ये बुत कैसे हैं जिनपर तुम लोग फ़िदा हो रहे हो?" (53) उन्होंने जवाब दिया, "हमने अपने बाप-दादा को इनकी इबादत करते पाया है।" (54) उसने कहा, "तुम भी गुमराह हो और तुम्हारे बाप-दादा भी खुली गुमराही में पड़े हुए थे।" (55) उन्होंने कहा, "क्या तू हमारे सामने अपने अस्ली ख़यालात पेश कर रहा है या मज़ाक़ करता है?"[55] (56) उसने जवाब दिया, "नहीं, बल्कि हक़ीक़त में तुम्हारा रब वही है जो ज़मीन और आसमानों का रब और उनका पैदा करनेवाला है। इसपर मैं तुम्हारे सामने

हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की पाक सीरत के अलग-अलग पहलू इससे पहले सूरा-2 बक़रा, आयतें-124 से 141, 258-260; सूरा-6 अनआम, आयतें-74 से 81; सूरा-9 तौबा, आयत-114; सूरा-11 हूद, आयतें-69 से 76; सूरा-14 इबराहीम, आयतें-35 से 41; सूरा-15 हिज्र, आयतें-51 से 60; सूरा-16 नह्ल, आयतें-120 से 123 में गुज़र चुके हैं जिनपर एक निगाह डाल लेना फ़ायदेमन्द होगा।

54. जिस वाक़िए का आगे ज़िक्र किया जा रहा है उसको पढ़ने से पहले यह बात ज़ेहन में ताज़ा कर लीजिए कि क़ुरैश के लोग हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की औलाद थे, काबा उन्हीं का बनाया हुआ था, सारे अरब में काबा का मर्कज़ होना उन्हीं के ताल्लुक़ की वजह से था और क़ुरैश का सारा भरम इसी लिए बंधा हुआ था कि ये इबराहीम (अलैहि॰) की औलाद हैं और इबराहीमी काबा के मुजाविर हैं। आज इस ज़माने और अरब से दूर-दराज़ के माहौल में तो हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) का यह क़िस्सा सिर्फ़ एक सबक़आमोज़ तारीख़ी वाक़िआ ही दिखाई देता है, मगर जिस ज़माने और माहौल में पहले-पहले यह बयान किया गया था उसको निगाह में रखकर देखिए तो महसूस होगा कि क़ुरैश के मज़हब और उनके पुरोहितवाद पर यह एक ऐसी गहरी चोट थी जो ठीक उसकी जड़ पर जाकर लगती थी।

55. इस जुमले का लफ़्ज़ी तर्जमा यह होगा कि "क्या तू हमारे सामने हक़ पेश कर रहा है या खेलता है?" लेकिन अस्ल मतलब वही है जिसकी तर्जमानी ऊपर की गई है। उन लोगों को अपने दीन के सच्चे होने का इतना यक़ीन था कि वे यह सोचने के लिए भी तैयार न थे कि ये बातें कोई शख़्स संजीदगी के साथ कर सकता है। इसलिए उन्होंने कहा कि यह तुम सिर्फ़

ذٰلِكُمْ مِّنَ الشّٰهِدِيْنَ﴿٥٦﴾ وَتَاللّٰهِ لَاَكِيْدَنَّ اَصْنَامَكُمْ بَعْدَ اَنْ تُوَلُّوْا
مُدْبِرِيْنَ﴿٥٧﴾ فَجَعَلَهُمْ جُذٰذًا اِلَّا كَبِيْرًا لَّهُمْ لَعَلَّهُمْ اِلَيْهِ
يَرْجِعُوْنَ﴿٥٨﴾ قَالُوْا مَنْ فَعَلَ هٰذَا بِاٰلِهَتِنَآ اِنَّهٗ لَمِنَ الظّٰلِمِيْنَ﴿٥٩﴾
قَالُوْا سَمِعْنَا فَتًى يَّذْكُرُهُمْ يُقَالُ لَهٗۤ اِبْرٰهِيْمُ﴿٦٠﴾ قَالُوْا

गवाही देता हूँ। (57) और ख़ुदा की क़सम, मैं तुम्हारी ग़ैर-मौजूदगी में ज़रूर तुम्हारे बुतों की ख़बर लूँगा।"[56] (58) चुनाँचे उसने उनको टुकड़े-टुकड़े कर दिया[57] और सिर्फ़ उनके बड़े को छोड़ दिया ताकि शायद वे उसकी तरफ़ रुजूअ करें।[58] (59) (उन्होंने आकर बुतों का यह हाल देखा तो) कहने लगे, "हमारे ख़ुदाओं का यह हाल किसने कर दिया? बड़ा ही कोई ज़ालिम था वह।" (60) (कुछ लोग) बोले, "हमने एक नवजवान को इनका ज़िक्र करते सुना था जिसका नाम इबराहीम है।" (61) उन्होंने कहा, "तो पकड़ लाओ

मज़ाक़ और खेल कर रहे हो या सचमुच तुम्हारे यही ख़यालात हैं।

56. यानी अगर तुम दलील से बात नहीं समझते हो तो मैं अमली तौर पर तुम्हें दिखा दूँगा कि ये बेबस हैं, इनके पास कुछ भी अधिकार नहीं हैं, और इनको ख़ुदा बनाना ग़लत है। रही यह बात कि अमली तजरिबे और मुशाहिदे (अवलोकन) से यह बात वे किस तरह साबित करेंगे तो इसकी कोई तफ़सील हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने उस मौक़े पर नहीं बताई।

57. यानी मौक़ा पाकर, जबकि पुजारी और मुजाविर मौजूद न थे, हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) उनके मर्कज़ी बुतख़ाने में घुस गए और सारे बुतों को तोड़ डाला।

58. 'उसकी तरफ़' का इशारा बड़े बुत की तरफ़ भी हो सकता है और ख़ुद हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की तरफ़ भी। अगर पहली बात हो तो यह हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की तरफ़ से उनके अक़ीदों पर एक तंज़ (व्यंग्य) करने जैसा है। यानी अगर इनके नज़दीक सचमुच ये ख़ुदा हैं तो इन्हें अपने बड़े ख़ुदा के बारे में यह शक होना चाहिए कि शायद बड़े साहब इन छोटे साहबों से किसी बात पर बिगड़ गए हों और सबका कचूमर बना डाला हो। या फिर बड़े साहब से यह पूछें कि जनाब, आपकी मौजूदगी में यह क्या हुआ? कौन यह काम कर गया? और आपने उसे रोका क्यों नही? और अगर दूसरा मतलब लिया जाए तो हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) का मंशा इस कार्रवाई से यह था कि अपने बुतों का यह हाल देखकर शायद इनका ज़ेहन मेरी ही तरफ़ जाएगा और ये मुझसे पूछेंगे तो मुझको फिर इनसे साफ़-साफ़ बात करने का मौक़ा मिल जाएगा।

فَأْتُوا بِهٖ عَلٰٓی اَعْیُنِ النَّاسِ لَعَلَّهُمْ یَشْهَدُوْنَ۝۶۱ قَالُوْٓا ءَ اَنْتَ
فَعَلْتَ هٰذَا بِاٰلِهَتِنَا یٰٓاِبْرٰهِیْمُ۝۶۲ قَالَ بَلْ فَعَلَهٗ ۖ كَبِیْرُهُمْ
هٰذَا فَسْـَٔلُوْهُمْ اِنْ كَانُوْا یَنْطِقُوْنَ۝۶۳ فَرَجَعُوْٓا اِلٰٓی اَنْفُسِهِمْ فَقَالُوْٓا

उसे सबके सामने ताकि लोग देख लें (उसकी कैसी ख़बर ली जाती है[59])।" (62) (इबराहीम के आने पर) उन्होंने पूछा, "क्यों इबराहीम, तूने हमारे ख़ुदाओं के साथ यह हरकत की है?" (63) उसने जवाब दिया, "बल्कि यह सब कुछ उनके इस सरदार ने किया है, इन्हीं से पूछ लो, अगर ये बोलते हों।"[60] (64) यह सुनकर वे लोग अपने ज़मीर (अन्तरात्मा) की तरफ़ पलटे और (अपने दिलों में) कहने लगे, "सच तो यह है कि

59. यह मानो हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की मुँह माँगी मुराद थी; क्योंकि वे भी यही चाहते थे कि बात सिर्फ़ पुरोहितों और पुजारियों ही के सामने न हो, बल्कि आम लोग भी मौजूद हों और सब देख लें कि ये बुत जो उनकी ज़रूरतें पूरी करनेवाले बनाकर रखे गए हैं, कैसे बेबस हैं और ख़ुद ये पुरोहित लोग इनको क्या समझते हैं। इस तरह इन पुजारियों से भी वही बेवक़ूफ़ी हो गई जो फ़िरऔन से हुई थी। उसने भी जादूगरों से हज़रत मूसा (अलैहि॰) का मुक़ाबला कराने के लिए देश भर के लोगों को इकट्ठा कर लिया था और इन्होंने भी हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) का मुक़द्दमा सुनने के लिए जनता को इकट्ठा कर लिया। वहाँ हज़रत मूसा (अलैहि॰) को सबके सामने यह साबित करने का मौक़ा मिल गया कि जो कुछ वे लाए हैं वह जादू नहीं, मोजिज़ा है। और यहाँ हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को उनके दुश्मनों ने आप ही यह मौक़ा दे दिया कि वे जनता के सामने उनके धोखे और फ़रेब का तिलिस्म तोड़ दें।

60. यह आख़िरी जुमला ख़ुद ज़ाहिर कर रहा है कि पहले जुमले में हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने बुत तोड़ने के इस काम को बड़े बुत की तरफ़ जो जोड़ा है इससे उनका मक़सद झूठ बोलना न था, बल्कि वे अपने मुख़ालिफ़ों पर हुज्जत क़ायम करना चाहते थे। यह बात उन्होंने इसलिए कही थी कि वे लोग जवाब में ख़ुद इसका इक़रार करेंगे कि उनके ये माबूद बिलकुल बेबस हैं और उनसे कुछ करने की उम्मीद तक नहीं की जा सकती। ऐसे मौक़े पर एक शख़्स दलील से साबित करने के लिए जो हक़ीक़त के ख़िलाफ़ बात कहता है उसको झूठ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि न वह ख़ुद झूठ की नीयत से ऐसी बात कहता है और न सुननेवाले ही इसे झूठ समझते हैं। कहनेवाला इसे दलील क़ायम करने के लिए कहता है और सुननेवाला भी उसे इसी मानी में लेता है।

बदक़िस्मती से हदीस की एक रिवायत में यह बात आ गई है कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) अपनी ज़िन्दगी में तीन बार झूठ बोले हैं, उनमें से एक 'झूठ' तो यह है, और दूसरा 'झूठ' सूरा-37 साफ़ात में हज़रत इबराहीम का कहना 'इन्नी सक़ीम' (मेरी तबीअत ठीक नहीं है) है, और तीसरा 'झूठ' उनका अपनी बीवी को बहन कहना है जिसका ज़िक्र क़ुरआन में नहीं, बल्कि

बाइबल की किताब उत्पत्ति में आया है। एक गरोह रिवायतपरस्ती में हद से आगे बढ़कर इस हद तक पहुँच जाता है कि इसे बुख़ारी और मुस्लिम के कुछ रावियों की सच्चाई ज़्यादा प्यारी है और इस बात की परवाह नहीं है कि इससे एक नबी पर झूठ का इलज़ाम लगता है। दूसरा गरोह इस एक रिवायत को लेकर हदीस की तमाम किताबों पर निशाना साधता है और कहता है कि सारी ही हदीसों को उठाकर फेंक दो; क्योंकि उनमें ऐसी-ऐसी रिवायतें पाई जाती हैं। हालाँकि न एक या कुछ रिवायतों में किसी ख़राबी के पाए जाने से यह ज़रूरी हो जाता है कि सारी ही रिवायतें भरोसे के लायक़ न हों, और न हदीस को जाँचने की कसौटी के मुताबिक़ किसी रिवायत की सनद का मज़बूत होना इस बात को ज़रूरी कर देता है कि उस हदीस की इबारत चाहे कितनी ही क़ाबिले-एतिराज़ हो, मगर उसे ज़रूर आँखें बन्द करके सही मान लिया जाए। सनद के मज़बूत और भरोसेमन्द होने के बावजूद बहुत-से सबब ऐसे हो सकते हैं जिनकी वजह से एक इबारत ग़लत रूप में नक़्ल हो जाती है और उसमें ऐसी बातें होती हैं जिनकी ख़राबी ख़ुद पुकार रही होती है कि ये बातें नबी (सल्ल॰) की कही हुई नहीं हो सकतीं। इसलिए सनद के साथ-साथ इबारत को देखना भी ज़रूरी है, और अगर इबारत में सचमुच कोई ख़राबी हो तो फिर ख़ाहमख़ाह उसके सही होने पर ज़ोर देना सही नहीं है।

यह हदीस, जिसमें हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के तीन 'झूठ' बयान किए गए हैं, सिर्फ़ इसी वजह से क़ाबिले-एतिराज़ नहीं है कि यह एक नबी को झूठा ठहरा रही है; बल्कि इस वजह से भी ग़लत है कि इसमें जिन तीन वाक़िआत को बयान किया गया है, वे तीनों ही ध्यान देने के क़ाबिल हैं। उनमें से एक 'झूठ' का हाल अभी आप देख चुके हैं कि कोई मामूली अक़्ल और दिमाग़ का आदमी भी इस मौक़े पर हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की इस बात को 'झूठ' नहीं कह सकता, कहाँ यह कि हम नबी (सल्ल॰) से (अल्लाह की पनाह) इस नासमझी की बात की उम्मीद करें। रहा 'इन्नी सक़ीम' (मेरी तबीअत ठीक नहीं है) वाला वाक़िआ तो उसका झूठ होना साबित नहीं हो सकता जब तक यह साबित न हो जाए कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) सचमुच उस वक़्त बिलकुल ठीक और तन्दुरुस्त थे और कोई मामूली-सी शिकायत भी उनको न थी। यह बात न क़ुरआन में कहीं बयान हुई है और न इस ज़ेरे-ग़ौर रिवायत के सिवा किसी दूसरी भरोसेमन्द रिवायत में इसका ज़िक्र आया है। अब रह जाता है बीवी को बहन बताने का वाक़िआ तो वह अपने आपमें ख़ुद इतना बेमानी है कि एक शख़्स उसको सुनते ही यह कह देगा कि यह हरगिज़ सच नहीं हो सकता। क़िस्सा उस वक़्त का बताया जाता है जब हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) अपनी बीवी हज़रत सारा के साथ मिस्र गए हैं। बाइबल के मुताबिक़ उस वक़्त हज़रत इबराहीम की उम्र 75 और हज़रत सारा की उम्र 65 वर्ष से कुछ ज़्यादा ही थी। और इस उम्र में हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को यह डर महसूस होता है कि मिस्र का बादशाह इस ख़ूबसूरत औरत को हासिल करने के लिए मुझे क़त्ल कर देगा। चुनाँचे वे बीवी से कहते हैं कि जब मिस्री तुम्हें पकड़कर बादशाह के पास ले जाने लगें तो तुम भी मुझे अपना भाई बताना और मैं भी तुम्हें अपनी बहन बताऊँगा ताकि मेरी जान तो बच जाए (उत्पत्ति, अध्याय 12)। हदीस की ज़ेरे-ग़ौर रिवायत में तीसरे 'झूठ' की बुनियाद इसी बेबुनियाद और बेमानी इसराईली रिवायत पर है। क्या यह कोई मुनासिब बात है कि जिस हदीस की इबारत में ऐसी बात हो उसको भी हम नबी (सल्ल॰) से जोड़ने पर सिर्फ़ इसलिए ज़िद करें कि इसकी सनद कमज़ोर

اِنَّكُمۡ اَنۡتُمُ الظّٰلِمُوۡنَ ﴿٦٤﴾ ثُمَّ نُكِسُوۡا عَلٰى رُءُوۡسِهِمۡ ۚ لَقَدۡ عَلِمۡتَ
مَا هٰٓؤُلَاۤءِ يَنۡطِقُوۡنَ ﴿٦٥﴾ قَالَ اَفَتَعۡبُدُوۡنَ مِنۡ دُوۡنِ اللّٰهِ مَا لَا
يَنۡفَعُكُمۡ شَيۡـًٔا وَّلَا يَضُرُّكُمۡ ﴿٦٦﴾ اُفٍّ لَّكُمۡ وَلِمَا تَعۡبُدُوۡنَ مِنۡ دُوۡنِ
اللّٰهِ ؕ اَفَلَا تَعۡقِلُوۡنَ ﴿٦٧﴾ قَالُوۡا حَرِّقُوۡهُ وَانۡصُرُوۡۤا اٰلِهَتَكُمۡ اِنۡ كُنۡتُمۡ
فٰعِلِيۡنَ ﴿٦٨﴾ قُلۡنَا يٰنَارُ كُوۡنِىۡ بَرۡدًا وَّسَلٰمًا عَلٰٓى اِبۡرٰهِيۡمَ ﴿٦٩﴾ وَاَرَادُوۡا بِهٖ

तुम ख़ुद ही ज़ालिम हो।" (65) मगर फिर उनकी मत पलट गई[61] और बोले, "तू जानता है कि ये बोलते नहीं हैं।" (66) इबराहीम ने कहा, "फिर क्या तुम अल्लाह को छोड़कर उन चीज़ों को पूज रहे हो जो न तुम्हें फ़ायदा पहुँचाने की क़ुदरत रखती हैं, न नुक़सान। (67) धिक्कार है तुमपर और तुम्हारे इन माबूदों पर जिनकी तुम अल्लाह को छोड़कर पूजा कर रहे हो। क्या तुम कुछ भी अक़्ल नहीं रखते?" (68) उन्होंने कहा, "जला डालो इसको और मदद करो अपने ख़ुदाओं की अगर तुम्हें कुछ करना है।" (69) हमने कहा, "ऐ आग, ठंडी हो जा और सलामती बन जा इबराहीम पर।"[62] (70) वे

नहीं है? इसी तरह की इन्तिहापसन्दियाँ फिर मामले को बिगाड़कर उस दूसरी इन्तिहा पर पहुँचा देती हैं जिसका मुज़ाहिरा हदीस का इनकार करनेवाले लोग कर रहे हैं। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— मेरी किताब 'रसाइल-मसाइल (उर्दू)', हिस्सा-2, पे॰ 35-39)

61. अस्ल अरबी इबारत में "नुकिसू अला रुऊसिहिम" (औंधा दिए गए अपने सिरों के बल) कहा गया है। कुछ लोगों ने इसका मतलब यह लिया है कि उन्होंने शर्मिन्दगी के मारे सिर झुका लिए। लेकिन मौक़ा और बयान का अन्दाज़ इस मतलब को क़बूल करने से इनकार करता है। सही मतलब जो बात के सिलसिले और बात के अन्दाज़ पर ध्यान देने से साफ़ समझ में आ जाता है, यह है कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) का जवाब सुनते ही पहले तो उन्होंने अपने दिलों में सोचा कि "वाक़ई ज़ालिम तो तुम ख़ुद हो, कैसे बेबस और लाचार माबूदों को ख़ुदा बना बैठे हो जो अपनी ज़बान से यह भी नहीं कह सकते कि इनपर क्या बीती और कौन इन्हें मारकर रख गया। आख़िर ये हमारी क्या मदद करेंगे जबकि ख़ुद अपने आपको भी नहीं बचा सकते।" लेकिन इसके बाद फ़ौरन ही उनपर ज़िद और जहालत सवार हो गई और, जैसा कि ज़िद की ख़ासियत है उसके सवार होते ही उनकी अक़्ल औंधी हो गई। दिमाग़ सीधा सोचते-सोचते यकायक उलटा सोचने लगा।

62. अलफ़ाज़ साफ़ बता रहे हैं, और मौक़ा भी इस मतलब का साथ दे रहा है कि उन्होंने सचमुच अपने फ़ैसले पर अमल किया, और जब आग का अलाव तैयार करके उन्होंने हज़रत इबराहीम

كَيْدًا فَجَعَلْنٰهُمُ الْاَخْسَرِيْنَ ۚ﴿٧٠﴾ وَنَجَّيْنٰهُ وَلُوْطًا اِلَى الْاَرْضِ الَّتِيْ
بٰرَكْنَا فِيْهَا لِلْعٰلَمِيْنَ ﴿٧١﴾ وَوَهَبْنَا لَهٗۤ اِسْحٰقَ ؕ وَيَعْقُوْبَ نَافِلَةً ؕ وَكُلًّا
جَعَلْنَا صٰلِحِيْنَ ﴿٧٢﴾

चाहते थे कि इबराहीम के साथ बुराई करें, मगर हमने उनको बुरी तरह नाकाम कर दिया। (71) और हम उसे और लूत को[63] बचाकर उस सर-ज़मीन की तरफ़ निकाल ले गए जिसमें हमने दुनियावालों के लिए बरकतें रखी हैं।[64] (72) और हमने उसे इसहाक़ दिया और याक़ूब उसपर और ज़्यादा,[65] और हर एक को नेक बनाया।

(अलैहि॰) को उसमें फेंका तब अल्लाह तआला ने आग को हुक्म दिया कि वह इबराहीम के लिए ठंडी हो जाए और बेनुक़सान बनकर रह जाए। इसलिए साफ़ तौर पर यह भी उन मोजिज़ों में से एक है जो क़ुरआन में बयान किए गए हैं। अगर कोई शख़्स इन मोजिज़ों का कोई और मनमाना मतलब इसलिए निकालता है कि उसके नज़दीक ख़ुदा के लिए भी दुनिया के निज़ाम के मामूल (Routine) से हटकर कोई ग़ैर-मामूली काम करना मुमकिन नहीं है तो आख़िर वह ख़ुदा को मानने ही की तकलीफ़ क्यों उठाता है। और अगर वह इस तरह के मतलब इसलिए निकालता है कि नए ज़माने के नाम-निहाद अक़लियतपरस्त (तथाकथित बुद्धिवादी) ऐसी बातों को मानने के लिए तैयार नहीं हैं तो हम उससे पूछते हैं कि अल्लाह के बन्दे, तेरे ऊपर यह फ़र्ज़ किसने डाल दिया था कि तू किसी-न-किसी तरह उन्हें मनवाकर ही छोड़े? जो शख़्स क़ुरआन को, जैसा कि वह है, मानने के लिए तैयार नहीं है उसे उसके हाल पर छोड़ दो। उसे मनवाने के लिए क़ुरआन को उसके ख़यालात के मुताबिक़ ढालने की कोशिश करना जबकि क़ुरआन के अलफ़ाज़ क़दम-क़दम पर इस ढिलाई से रोक रहे हों, आख़िर किस तरह की तबलीग़ है और कौन समझदार आदमी इसे जाइज़ समझ सकता है। (और ज़्यादा तफ़सली के लिए दखिए– तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-29 अनकबूत, हाशिया-39)

63. बाइबल के बयान के मुताबिक़ हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के दो भाई थे, नहूर और हारान। हज़रत लूत (अलैहि॰) हारान के बेटे थे (उत्पत्ति, अध्याय-11, आयत-26)। सूरा-29 अनकबूत में हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) का जो ज़िक्र आया है उससे बज़ाहिर यही मालूम होता है कि उनकी क़ौम में से सिर्फ़ एक हज़रत लूत (अलैहि॰) ही उनपर ईमान लाए थे (देखिए–आयत-26)।

64. यानी शाम (सीरिया) और फ़िलिस्तीन की सरज़मीन। उसकी बरकतें माद्दी (भौतिक) भी हैं और रूहानी भी। माद्दी हैसियत से वह दुनिया के बहुत ज़्यादा उपजाऊ इलाक़ों में से है और रूहानी हैसियत से वह दो हज़ार साल तक नबियों (अलैहि॰) के आने की जगह रही है। दुनिया के किसी दूसरे भू-भाग में इतनी ज़्यादा तादाद में नबी नहीं भेजे गए हैं।

65. यानी बेटे के बाद पोता भी ऐसा हुआ जिसे नुबूवत (पैग़म्बरी) से नवाज़ा गया।

وَجَعَلْنٰهُمْ اَىِٕمَّةً يَّهْدُوْنَ بِاَمْرِنَا وَاَوْحَيْنَآ اِلَيْهِمْ فِعْلَ
الْخَيْرٰتِ وَاِقَامَ الصَّلٰوةِ وَاِيْتَآءَ الزَّكٰوةِ ۚ وَكَانُوْا لَنَا عٰبِدِيْنَ ﴿٧٣﴾

(73) और हमने उनको इमाम (पेशवा) बना दिया जो हमारे हुक्म से रहनुमाई करते थे। और हमने उन्हें वह्य के ज़रिए से अच्छे कामों की और नमाज़ क़ायम करने और ज़कात देने की हिदायत की, और वे हमारे इबादतगुज़ार थे।[66]

66. हज़रत इबराहीम (अलैहि०) की ज़िन्दगी के इस अहम वाक़िआ का बाइबल में कोई ज़िक्र नहीं है, बल्कि उनकी ज़िन्दगी के इराक़ी दौर का कोई वाक़िआ भी उस किताब में जगह नहीं पा सका है। नमरूद से उनकी मुठभेड़, बाप और क़ौम से उनकी कशमकश, बुतपरस्ती के ख़िलाफ़ उनकी जिद्दो-जुह्द, आग में डाले जाने का क़िस्सा, और आख़िरकार देश छोड़ने पर मजबूर होना, इनमें से कोई भी चीज़ बाइबल की किताब 'उत्पत्ति' के लेखक की निगाह में ध्यान देने के क़ाबिल न थी। वह सिर्फ़ उनकी हिजरत का ज़िक्र करता है, मगर वह भी इस अन्दाज़ से जैसे एक ख़ानदान रोज़ी की तलाश में एक देश छोड़कर दूसरे देश में जाकर आबाद हो रहा है। क़ुरआन और बाइबल का इससे भी ज़्यादा दिलचस्प फ़र्क़ यह है कि क़ुरआन के बयान के मुताबिक़ हज़रत इबराहीम (अलैहि०) का मुशरिक बाप उनपर ज़ुल्म करने में आगे-आगे था, और बाइबल कहती है कि उनका बाप ख़ुद अपने बेटों, पोतों और बहुओं को लेकर हारान में जा बसा (अध्याय-11, आयतें—27 से 32)। इसके बाद यकायक ख़ुदा हज़रत इबराहीम से कहता है कि तू हारान को छोड़कर कनआन में जाकर बस जा और "मैं तुझे एक बड़ी क़ौम बनाऊँगा और बरकत दूँगा और तेरा नाम ऊँचा करूँगा। सो तू बरकत का सबब हो। जो तुझे मुबारक कहें उनको मैं बरकत दूँगा और जो तुझपर लानत करे उसपर मैं लानत करूँगा और ज़मीन के सब क़बीले तेरे ज़रिए से बरकत पाएँगे।" (अध्याय-12, आयतें—1-3)। कुछ समझ में नहीं आता कि अचानक हज़रत इबराहीम पर मेहरबानी की यह नज़र क्यों हो गई।

तलमूद में अलबत्ता इबराहीम (अलैहि०) की ज़िन्दगी के इराक़ी दौर की वे ज़्यादातर तफ़सीलात मिलती हैं जो क़ुरआन की अलग-अलग जगहों पर बयान हुई हैं। मगर दोनों को सामने रखकर देखने से न सिर्फ़ यह कि क़िस्से के अहम हिस्सों में खुला फ़र्क़ नज़र आता है, बल्कि एक शख़्स साफ़ तौर पर यह महसूस कर सकता है कि तलमूद का बयान बहुत-सी बेजोड़ और न समझ में आनेवाली बातों से भरा हुआ है और इसके बरख़िलाफ़ क़ुरआन बिलकुल साफ़-सुथरी शक्ल में हज़रत इबराहीम की ज़िन्दगी के अहम वाक़िआत को पेश करता है जिनमें कोई फ़ुज़ूल बात नहीं आने पाई है। अपनी बात को साफ़-साफ़ बयान करने के लिए हम यहाँ तलमूद की दास्तान का ख़ुलासा पेश करते हैं ताकि उन लोगों की ग़लती पूरी तरह खुल जाए जो क़ुरआन को बाइबल और यहूदी लिट्रेचर से लिया हुआ बताते हैं।

तलमूद का बयान है कि हज़रत इबराहीम की पैदाइश के दिन नुजूमियों (ज्योतिषियों) ने

आसमान पर एक निशानी देखकर नमरूद को मशवरा दिया था कि तारेह के यहाँ जो बच्चा पैदा हुआ है उसे क़त्ल कर दे। चुनाँचे वह उनके क़त्ल के पीछे पड़ा। मगर तारेह ने अपने एक ग़ुलाम का बच्चा उनके बदले में देकर उन्हें बचा लिया। इसके बाद तारेह ने अपनी बीवी और बच्चे को एक गुफा में ले जाकर छिपा दिया, जहाँ दस साल तक वे रहे। ग्यारहवें साल हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को तारेह ने हज़रत नूह (अलैहि॰) के पास पहुँचा दिया और 39 साल तक वे हज़रत नूह और उनके बेटे साम की तर्बियत में रहे। इसी ज़माने में हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने अपनी सगी भतीजी सारा से निकाह कर लिया जो उम्र में उनसे 42 साल छोटी थीं (बाइबल इस बात को बयान नहीं करती कि सारा हज़रत इबराहीम की भतीजी थीं। साथ ही वह दोनों के बीच उम्र का फ़र्क़ भी सिर्फ़ 10 साल बताती है। पैदाइश, अध्याय-11, आयत-29, और अध्याय-17, आयत-17)

फिर तलमूद कहती है कि हज़रत इबराहीम पचास साल की उम्र में हज़रत नूह (अलैहि॰) का घर छोड़कर अपने बाप के यहाँ आ गए। यहाँ उन्होंने देखा कि बाप बुतपरस्त है और घर में साल के बारह महीनों के हिसाब से 12 बुत रखे हैं। उन्होंने पहले तो बाप को समझाने की कोशिश की, और जब उसकी समझ में बात न आई तो एक दिन मौक़ा पाकर उस घरेलू बुतख़ाने के बुतों को तोड़ डाला। तारेह ने आकर अपने ख़ुदाओं का यह हाल जो देखा तो सीधा नमरूद के पास पहुँचा और शिकायत की कि 50 साल पहले मेरे यहाँ जो लड़का पैदा हुआ था, आज उसने मेरे घर में यह हरकत की है। आप इसका फ़ैसला कीजिए। नमरूद ने बुलाकर हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) से पूछ-गच्छ की। उन्होंने सख़्त जवाब दिए। नमरूद ने उनको फ़ौरन जेल भेज दिया और फिर मामला अपनी कौंसिल में पेश किया ताकि सलाह-मशवरे से इस मुक़द्दमे का फ़ैसला किया जाए। कौंसिल के मेम्बरों ने मशवरा दिया कि इस शख़्स को आग में जला दिया जाए। चुनाँचे आग का एक बड़ा अलाव तैयार कराया गया और हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) उसमें फेंक दिए गए। हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के साथ उनके भाई और ससुर, हारान को भी फेंका गया; क्योंकि नमरूद ने तारेह से जब पूछा कि तेरे इस बेटे को तो मैं पैदाइश ही के दिन क़त्ल करना चाहता था, तूने उस वक़्त उसे बचाकर दूसरा बच्चा क्यों उसके बदले क़त्ल कराया तो उसने कहा कि मैंने हारान के कहने से यह हरकत की थी। इसलिए ख़ुद इस हरकत के करनेवाले को तो छोड़ दिया गया और मशवरा देनेवाले को हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के साथ आग में फेंका गया। आग में गिरते ही हारान फ़ौरन जल-भुनकर कोयला हो गया, मगर हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को लोगों ने देखा कि अन्दर इत्मीनान से टहल रहे हैं। नमरूद को इस मामले की ख़बर दी गई। उसने आकर जब ख़ुद अपनी आँखों से यह माजरा देख लिया तो पुकारकर कहा कि "आसमानी ख़ुदा के बन्दे, आग से निकल आ और मेरे सामने खड़ा हो जा।" हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) बाहर आ गए। नमरूद उनका अक़ीदतमन्द (श्रद्धालु) हो गया और उसने बहुत क़ीमती नज़राने उनको देकर रुख़सत कर दिया।

इसके बाद तलमूद के बयान के मुताबिक़ हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) दो साल तक वहाँ रहे। फिर नमरूद ने एक डरावना सपना देखा और उसके ज्योतिषियों ने उसका मतलब यह बताया कि इबराहीम (अलैहि॰) तेरी हकूमत की तबाही का सबब बनेगा उसे क़त्ल करा दे। उसने उनके

وَلُوۡطًا اٰتَيۡنٰهُ حُكۡمًا وَّعِلۡمًا وَّنَجَّيۡنٰهُ مِنَ الۡقَرۡيَةِ الَّتِىۡ كَانَتۡ تَّعۡمَلُ
الۡخَبٰٓـئِثَ ؕ اِنَّهُمۡ كَانُوۡا قَوۡمَ سَوۡءٍ فٰسِقِيۡنَ ۙ‏ ﴿۷۴﴾ وَاَدۡخَلۡنٰهُ فِىۡ رَحۡمَتِنَا ؕ
اِنَّهٗ مِنَ الصّٰلِحِيۡنَ ﴿۷۵﴾ وَنُوۡحًا اِذۡ نَادٰى مِنۡ قَبۡلُ فَاسۡتَجَبۡنَا لَهٗ

(74) और लूत को हमने हुक्म और इल्म दिया[67] और उसे उस बस्ती से बचाकर निकाल दिया जो बदकारियाँ (कुकर्म) करती थी– हक़ीक़त में वह बड़ी ही बुरी, नाफ़रमान क़ौम थी – (75) और लूत को हमने अपनी रहमत में दाख़िल किया, वह नेक लोगों में से था।

(76) और यही नेमत हमने नूह को दी। याद करो जबकि इन सबसे पहले उसने हमें पुकारा था।[68] हमने उसकी दुआ क़बूल की और उसे और उसके घरवालों को बड़ी

क़त्ल के लिए आदमी भेजे, मगर हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को ख़ुद नमरूद ही के दिए हुए एक ग़ुलाम अल-यज़र ने वक़्त से पहले इस मनसूबे की ख़बर दे दी और हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने भागकर हज़रत नूह (अलैहि॰) के यहाँ पनाह ली। वहाँ तारेह आकर उनसे चुपके-चुपके मिलता रहा और आख़िर बाप-बेटों की यह सलाह हुई कि देश छोड़ दिया जाए। हज़रत नूह (अलैहि॰) और साम ने भी इस सुझाव को पसन्द किया। चुनाँचे तारेह अपने बेटे इबराहीम (अलैहि॰) और पोते लूत (अलैहि॰) और पोती और बहू सारा को लेकर उर से हारान चला गया। (तलमूद से उद्धृत, लेखक : एच॰ पोलानो, लन्दन, पे॰ 30-42)।
क्या इस दास्तान को देखकर कोई समझदार आदमी यह सोच सकता है कि क़ुरआन ने हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के बारे में जो कुछ बयान किया है, वह इस दास्तान से लिया गया है।

67. 'हुक्म और इल्म देना' आम तौर से क़ुरआन मजीद में नुबूवत (पैग़म्बरी) देने के मानी में इस्तेमाल होता है। 'हुक्म' से मुराद हिकमत भी है, सही फ़ैसले की क़ुव्वत भी और अल्लाह तआला की तरफ़ से हुक्मरानी का अधिकार (Authority) हासिल होना भी। रहा 'इल्म' तो इससे मुराद सच्चाई का वह इल्म है जो वह्य के ज़रिए से दिया गया हो। हज़रत लूत (अलैहि॰) के बारे में और ज़्यादा तफ़सीलात के लिए देखिए–सूरा-7 आराफ़, आयतें–80-84; सूरा-11 हूद, आयतें–69-83; सूरा-15 हिज्र, आयतें–57-76।

68. इशारा है हज़रत नूह (अलैहि॰) की उस दुआ की तरफ़ जो एक लम्बी मुद्दत तक अपनी क़ौम के सुधार के लिए लगातार कोशिश करते रहने के बाद आख़िरकार थककर उन्होंने माँगी थी कि "परवरदिगार! मैं हार गया हूँ, अब तू मेरी मदद को पहुँच।" (सूरा-54 क़मर, आयत-10) और "परवरदिगार! ज़मीन पर हक़ का इनकारी एक बाशिन्दा भी न छोड़।" (सूरा-71 नूह, आयत-26)

فَنَجَّيْنٰهُ وَاَهْلَهٗ مِنَ الْكَرْبِ الْعَظِيْمِ ۝ وَنَصَرْنٰهُ مِنَ الْقَوْمِ
الَّذِيْنَ كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَا ۭ اِنَّهُمْ كَانُوْا قَوْمَ سَوْءٍ فَاَغْرَقْنٰهُمْ
اَجْمَعِيْنَ ۝ وَدَاوٗدَ وَسُلَيْمٰنَ اِذْ يَحْكُمٰنِ فِي الْحَرْثِ اِذْ نَفَشَتْ فِيْهِ
غَنَمُ الْقَوْمِ ۚ وَكُنَّا لِحُكْمِهِمْ شٰهِدِيْنَ ۝ فَفَهَّمْنٰهَا سُلَيْمٰنَ ۚ
وَكُلًّا اٰتَيْنَا حُكْمًا وَّعِلْمًا ۡ وَّسَخَّرْنَا مَعَ دَاوٗدَ الْجِبَالَ يُسَبِّحْنَ

तकलीफ़[69] से नजात दी। (77) और उस क़ौम के मुक़ाबले में उसकी मदद की जिसने हमारी आयतों को झुठला दिया था। वे बड़े बुरे लोग थे, सो हमने उन सबको डुबो दिया।

(78) और इसी नेमत से हमने दाऊद और सुलैमान को नवाज़ा। याद करो वह मौक़ा जबकि वे दोनों एक खेत के मुक़द्दमे में फ़ैसला कर रहे थे जिसमें रात के वक़्त दूसरे लोगों की बकरियाँ फैल गई थीं, और हम उनकी अदालत ख़ुद देख रहे थे। (79) उस वक़्त हमने सही फ़ैसला सुलैमान को समझा दिया; हालाँकि हिकमत और इल्म हमने दोनों ही को दिया था।[70]

दाऊद के साथ हमने पहाड़ों और परिन्दों को ख़िदमत में लगा दिया था जो तसबीह

69. 'बड़ी तकलीफ़' से मुराद या तो एक बदकिरदार क़ौम के बीच ज़िन्दगी गुज़ारने की मुसीबत है, या फिर तूफ़ान। हज़रत नूह (अलैहि०) के क़िस्से की तफ़सीलात के लिए देखिए– सूरा-7 आराफ़, आयतें—59-64; सूरा-10 यूनुस, आयतें—71-73; सूरा-11 हूद, आयतें—25-48; सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-3।

70. इस वाक़िआ का ज़िक्र बाइबल में नहीं है और यहूदी लिट्रेचर में भी हमें इसका कोई निशान नहीं मिला। मुसलमान तफ़सीर लिखनेवाले मुस्लिम उलमा ने इसकी जो तशरीह की है वह यह है कि एक शख़्स के खेत में दूसरे शख़्स की बकरियाँ रात के वक़्त घुस गई थीं। उसने हज़रत दाऊद (अलैहि०) के यहाँ अपील की। उन्होंने फ़ैसला किया कि उसकी बकरियाँ छीनकर इसे दे दी जाएँ। हज़रत सुलैमान (अलैहि०) ने इससे इख़्तिलाफ़ किया और यह राय दी कि बकरियाँ उस वक़्त तक खेतवाले के पास रहें जब तक बकरीवाला उसके खेत को फिर से तैयार न कर दे। इसी के बारे में अल्लाह तआला फ़रमा रहा है कि यह फ़ैसला हमने सुलैमान को सुझाया था। मगर चूँकि मुक़द्दमे की यह तफ़सील क़ुरआन में बयान नहीं हुई है और न किसी हदीस में नबी (सल्ल०) की तरफ़ से इसकी तफ़सील मिलती है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इस तरह के मुक़द्दमे में यही साबितशुदा इस्लामी क़ानून है। यही वजह है कि इमाम अबू-हनीफ़ा,

وَالطَّيْرَ ۚ وَكُنَّا فٰعِلِيْنَ ۝٧٩ وَعَلَّمْنٰهُ صَنْعَةَ لَبُوْسٍ لَّكُمْ

करते थे।[71] इस काम के करनेवाले हम ही थे। (80) और हमने उसको तुम्हारे फ़ायदे के लिए ज़िरह (कवच) बनाने का हुनर सिखा दिया था ताकि तुमको एक-दूसरे की

इमाम शाफ़िई, इमाम मालिक और इस्लाम के दूसरे फ़क़ीहों के बीच इस बात में इख़्तिलाफ़ पैदा हुआ है कि अगर किसी का खेत दूसरे शख़्स के जानवर ख़राब कर दें तो कोई हरजाना लागू होगा या नहीं, और लागू होगा तो किस सूरत में होगा और किस सूरत में नहीं, और यह कि हरजाने की शक्ल क्या होगी।

इस मौक़े पर हज़रत दाऊद और सुलैमान (अलैहि॰) के इस ख़ास क़िस्से का ज़िक्र करने का मक़सद यह ज़ेहन में बिठाना है कि पैग़म्बर (अलैहि॰) नबी होने और अल्लाह की तरफ़ से ग़ैर-मामूली ताक़तें और क़ाबिलियतें पाने के बावजूद होते इनसान ही थे, ख़ुदाई का कोई हलका-सा निशान तक उनमें न होता था। इस मुक़द्दमे में हज़रत दाऊद (अलैहि॰) की रहनुमाई वह्य के ज़रिए से न की गई और वह फ़ैसला करने में ग़लती कर गए। हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) की रहनुमाई की गई और उन्होंने सही फ़ैसला किया, हालाँकि नबी दोनों ही थे। आगे इन दोनों बुज़ुर्गों के जिन कमालात का ज़िक्र किया गया है, वह भी यही बात समझाने के लिए है कि ये कमालात ख़ुदा के दिए हुए थे और इस तरह के कमालात किसी को ख़ुदा नहीं बना देते।

साथ ही इस आयत से अदालत का यह उसूल भी मालूम हुआ कि अगर दो जज एक मुक़द्दमे का फ़ैसला करें, और दोनों के फ़ैसले अलग-अलग हों तो अगरचे सही फ़ैसला एक ही का होगा, लेकिन दोनों हक़ पर होंगे, शर्त यह है कि अदालत करने की ज़रूरी सलाहियत दोनों में मौजूद हो, उनमें से कोई नादानी और ना-तजरिबेकारी के साथ अदालत करने न बैठ जाए। नबी (सल्ल॰) ने अपनी हदीसों में इस बात को और ज़्यादा खोलकर बयान फ़रमा दिया है। बुख़ारी में अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) की रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अगर हाकिम अपनी हद तक फ़ैसला करने की पूरी कोशिश करे तो सही फ़ैसला करने की सूरत में उसके लिए दोहरा इनाम है और ग़लत फ़ैसला करने की सूरत में इकहरा इनाम।" अबू-दाऊद और इब्ने-माजा में बुरैदा (रज़ि॰) की रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि "क़ाज़ी तीन तरह के हैं, एक उनमें से जन्नती है और दो जहन्नमी। जन्नती वह क़ाज़ी है जो हक़ को पहचान जाए तो उसके मुताबिक़ फ़ैसला दे। मगर जो शख़्स हक़ को पहचानने के बावुजूद हक़ के ख़िलाफ़ फ़ैसला दे तो वह जहन्नमी है। और इसी तरह वह भी जहन्नमी है जो इल्म के बिना लोगों के फ़ैसले करने के लिए बैठ जाए।

71. अस्ल अरबी इबारत में 'म-अ दाऊ-द' के अलफ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं, 'लिदावू-द' के अलफ़ाज़ नहीं हैं, यानी 'दाऊद (अलैहि॰) के लिए' नहीं, बल्कि 'उनके साथ' पहाड़ और परिन्दे पाबन्द कर दिए गए थे, और इस पाबन्द करने का मतलब यह था कि वे भी हज़रत दाऊद (अलैहि॰) के साथ अल्लाह की तसबीह करते थे। यही बात सूरा-38 सॉद में बयान की गई है, "हमने

لِتُحْصِنَكُمْ مِّنْۢ بَاْسِكُمْ ۚ

मार से बचाए।[72]

उसके साथ पहाड़ों को पाबन्द कर दिया था कि सुबह-शाम तसबीह करते थे, और परिन्दे भी पाबन्द कर दिए थे जो इकट्ठे हो जाते थे, सब उसकी तसबीह को दोहराते।" (आयतें—18, 19) सूरा-34 सबा में इसको और ज़्यादा खोलकर बयान किया गया है, "पहाड़ों को हमने हुक्म दिया कि उसके साथ तसबीह दोहराओ और यही हुक्म हमने परिन्दों को दिया।" (आयत-10) इन बयानों से जो बात समझ में आती है वह यह है कि हज़रत दाऊद (अलैहि॰) जब अल्लाह की तारीफ़ के गीत गाते थे तो उनकी बुलन्द और सुरीली आवाज़ से पहाड़ गूँज उठते थे, परिन्दे ठहर जाते थे और एक समाँ बंध जाता था। इस मतलब की ताईद उस हदीस से होती है जिसमें ज़िक्र आया है कि एक बार हज़रत अबू-मूसा अशअरी जो ग़ैर-मामूली तौर पर अच्छी आवाज़वाले बुज़ुर्ग थे, क़ुरआन की तिलावत कर रहे थे। नबी (सल्ल॰) उधर से गुज़रे तो उनकी आवाज़ सुनकर खड़े हो गए और देर तक सुनते रहे। जब वे ख़त्म कर चुके तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "इस शख़्स को दाऊद की अच्छी आवाज़ का एक हिस्सा मिला है।"

72. सूरा-34 सबा में और ज़्यादा तफ़सील यह है, "और हमने लोहे को उसके लिए नर्म कर दिया (और उसको हिदायत की) कि पूरे-पूरे कवच बना और ठीक अन्दाज़ से कड़ियाँ जोड़।" (आयत-10)। इससे मालूम होता है कि अल्लाह तआला ने हज़रत दाऊद (अलैहि॰) को लोहे के इस्तेमाल पर क़ुदरत अता की थी, और ख़ास तौर पर जंगी मक़सदों के लिए कवच बनाने का तरीक़ा सिखाया था। आज के ज़माने की तारीख़ी और असरी (ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक) तहक़ीक़ात से इन आयतों के मानी पर जो रौशनी पड़ती है वह यह है कि दुनिया में लोहे के इस्तेमाल का दौर (Iron-Age) 1200 से 1000 ई॰ पू॰ के बीच शुरू हुआ है, और यही हज़रत दाऊद का ज़माना है। पहले-पहले शाम (सीरिया) और एशिया-ए-कोचक की हित्ती क़ौम (Hittites) को जिसकी तरक़्क़ी का ज़माना 2000 से 1200 ई॰ पू॰ तक रहा है, लोहे के पिघलाने और तैयार करने का एक पेचीदा तरीक़ा मालूम हुआ और वह शिद्दत के साथ इसको दुनिया भर से राज़ में रखे रही। मगर इस तरीक़े से जो लोहा तैयार होता था वह सोने-चाँदी की तरह इतना क़ीमती होता था कि आम इस्तेमाल में न आ सकता था। बाद में फ़िलिस्तियों ने यह तरीक़ा मालूम कर लिया, और वे भी इसे राज़ ही में रखते रहे। तालूत की बादशाही से पहले हित्तियों और फ़िलिस्तियों ने बनी-इसराईल को लगातार हराकर जिस तरह फ़िलिस्तीन से लगभग बेदख़ल कर दिया था, बाइबल के बयान के मुताबिक़ उसकी वजहों में से एक अहम वजह यह भी थी कि ये लोग लोहे की रथें इस्तेमाल करते थे और उनके पास लोहे के दूसरे हथियार भी थे (यशूअ, अध्याय-17, आयत-16; क़ुज़ात, अध्याय-1, आयत-19, अध्याय-4, आयतें—2-3)। 1020 ई॰ पू॰ में जब तालूत ख़ुदा के हुक्म से बनी-इसराईल का हुक्मराँ हुआ तो उसने लगातार हराकर उन लोगों से फ़िलिस्तीन का बड़ा हिस्सा वापस ले लिया, और फिर

فَهَلْ اَنْتُمْ شٰكِرُوْنَ۝۸۰ وَلِسُلَيْمٰنَ الرِّيْحَ عَاصِفَةً تَجْرِيْ بِاَمْرِهٖٓ اِلَى
الْاَرْضِ الَّتِيْ بٰرَكْنَا فِيْهَا ۭ وَكُنَّا بِكُلِّ شَيْءٍ عٰلِمِيْنَ۝۸۱ وَمِنَ
الشَّيٰطِيْنِ مَنْ يَّغُوْصُوْنَ لَهٗ وَيَعْمَلُوْنَ عَمَلًا دُوْنَ ذٰلِكَ ۚ

फिर क्या तुम शुक्रगुज़ार हो?[73] (81) और सुलैमान के लिए हमने तेज़ हवा को वश में कर दिया था जो उसके हुक्म से उस सर-ज़मीन की तरफ़ चलती थी जिसमें हमने बरकतें रखी हैं।[74] हम हर चीज़ का इल्म रखनेवाले थे। (82) और शैतानों में से हमने ऐसे बहुतों को उसका मातहत बना दिया था जो उसके लिए ग़ोते लगाते और इसके सिवा

हज़रत दाऊद (1004-965 ई. पू.) ने न सिर्फ़ फ़िलिस्तीन और पूर्वी जॉर्डन, बल्कि शाम (सीरिया) के भी बड़े हिस्से पर इसराईली हुकूमत क़ायम कर दी। उस ज़माने में लोहा बनाने का वह राज़ जो हित्तियों और फ़िलिस्तियों के क़ब्ज़े में था, बेनक़ाब हो गया, और सिर्फ़ बेनक़ाब ही न हुआ, बल्कि लोहा बनाने के ऐसे तरीक़े भी निकल आए जिनसे आम इस्तेमाल के लिए लोहे की सस्ती चीज़ें तैयार होने लगीं। फ़िलिस्तीन के दक्षिण में अदूम का इलाक़ा कच्चे लोहे (Iron ore) की दौलत से मालामाल है और हाल में आसारे-क़दीमा (प्राचीन अवशेषों) की खुदाइयाँ इस इलाक़े में हुई हैं उनमें बहुत-सी ऐसी जगहों की निशानियाँ मिली हैं जहाँ लोहा पिघलाने की भट्ठियाँ लगी हुई थीं। अ-क़बा और ऐला से लगी हुई हज़रत सुलैमान के ज़माने की बन्दरगाह इसयून जाबिर के आसारे-क़दीमा (अवशेषों) में जो भट्ठी मिली है उसको ग़ौर से देखकर अन्दाज़ा किया गया है कि इसमें कुछ वे उसूल इस्तेमाल किए जाते थे जो आज बिलकुल नए ज़माने की 'Blast Furnace' में इस्तेमाल होते हैं। अब यह एक क़ुदरती बात है कि हज़रत दाऊद (अलैहि॰) ने सबसे पहले और सबसे बढ़कर इस नई खोज को जंगी मक़सदों के लिए इस्तेमाल किया होगा; क्योंकि थोड़ी ही मुद्दत पहले आसपास की दुश्मन क़ौमों ने इसी लोहे के हथियारों से उनकी क़ौम का जीना दूभर कर दिया था।

73. हज़रत दाऊद (अलैहि॰) के बारे में और ज़्यादा तफ़सीलात के लिए देखिए— सूरा-2 बक़रा, आयत-251; तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, हाशिए-7, 63।

74. इसकी तफ़सील सूरा-34 सबा (आयत-12) में यह आई है, "और सुलैमान के लिए हमने हवा को पाबन्द कर दिया था, एक महीने की राह तक उसका चलना सुबह को और एक महीने की राह तक उसका चलना शाम को।" फिर इसकी और ज़्यादा तफ़सील सूरा-38 सॉद (आयत-36) में यह आती है, "तो हमने उसके लिए हवा को पाबन्द कर दिया जो उसके हुक्म से सहूलत के मुताबिक़ चलती थी जिधर वह जाना चाहता।" इससे मालूम हुआ कि हवा को हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) के लिए इस तरह हुक्म का पाबन्द कर दिया गया था कि उनकी सल्तनत से एक महीने की राह तक की जगहों का सफ़र आसानी से किया जा सकता था। जाने में भी हमेशा

وَكُنَّا لَهُمْ حٰفِظِيْنَ ﴿٨٢﴾

दूसरे काम करते थे। उन सबके निगराँ हम ही थे।[75]

उनकी मरज़ी के मुताबिक़ हवा मिलती थी और वापसी पर भी। बाइबल और नई तारीख़ी खोजों से इस मज़मून पर जो रौशनी पड़ती है वह यह है कि हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) ने अपनी हुकूमत के ज़माने में बहुत बड़े पैमाने पर समन्दरी तिजारत का सिलसिला शुरू किया था। एक तरफ़ इसयून जाबिर से उनके तिजारती जहाज़ लाल सागर में यमन और दूसरे दक्षिणी और पूर्वी देशों की तरफ़ जाते थे, और दूसरी तरफ़ रोम सागर के बन्दरगाहों से उनका बेड़ा (जिसे बाइबल में 'तरसीसी बेड़ा' कहा गया है) मग़रिबी (पश्चिमी) देशों की तरफ़ जाया करता था। इसयून जाबिर में उनके ज़माने की जो बड़ी और शानदार भट्टी मिली है उसके मुक़ाबले की कोई भट्टी मग़रिबी एशिया और मशरिक़े-वुस्ता (मध्य-पूर्व) में अभी तक नहीं मिली। आसारे-क़दीमा (पुरातत्व विभाग) के माहिरों का अन्दाज़ा है कि यहाँ अदुम के इलाक़े अ-रबा की कानों (खदानों) से कच्चा लोहा और ताँबा लाया जाता था और उस भट्टी में पिघलाकर उसे दूसरे कामों के अलावा जहाज़ बनाने में भी इस्तेमाल किया जाता था। इससे क़ुरआन मजीद की उस आयत के मतलब पर रौशनी पड़ती है जो सूरा-34 सबा में हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) के बारे में आई है कि "और हमने उसके लिए पिघली हुई धातु का चश्मा बहा दिया।" साथ ही इस तारीख़ी पसमंज़र को निगाह में रखने से यह बात भी समझ में आ जाती है कि हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) के लिए एक महीने की राह तक हवा की रफ़्तार को 'पाबन्द करने' का क्या मतलब है। उस ज़माने में समन्दरी सफ़र का सारा दारोमदार मुवाफ़िक़ (अनुकूल) हवा मिलने पर था, और अल्लाह तआला की हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) पर यह ख़ास मेहरबानी थी कि वह हमेशा उनके दोनों समन्दरी बेड़ों को उनकी मरज़ी के मुताबिक़ मिलती थी। फिर भी अगर हवा पर हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) को हुक्म चलाने का भी कोई इख़्तिदार दिया गया हो, जैसा कि 'उसके हुक्म से चलती थी' के ज़ाहिर अलफ़ाज़ से ज़ाहिर होता है तो यह अल्लाह की क़ुदरत के लिए कोई नामुमकिन बात नहीं है। वह अपनी सल्तनत का आप मालिक है। अपने जिस बन्दे को जो अधिकार चाहे दे सकता है। जब वह ख़ुद किसी को कोई अधिकार दे तो हमारा दिल दुखने की कोई वजह नहीं।

75. सूरा-34 सबा (आयतें–12-18) में इसकी तफ़सील यह आई है, "और जिन्नों में से ऐसे जिन्न हमने उसके लिए पाबन्द कर दिए थे जो उसके रब के हुक्म से उसके आगे काम करते थे, और उनमें से जो कोई हमारे हुक्म से मुँह मोड़ता तो हम उसको भड़कती हुई आग का मज़ा चखाते। वे उसके लिए जैसे वह चाहता महल और मुजस्समे (प्रतिमाएँ) और हौज़-जैसे बड़े-बड़े लगन और भारी जमी हुई देगें बनाते थे ....फिर जब हमने सुलैमान को मौत दे दी तो उन जिन्नों को उसकी मौत की ख़बर देनेवाली कोई चीज़ न थी, मगर ज़मीन का कीड़ा (यानी घुन) जो उसकी लाठी को खा रहा था। फिर जब वह गिर पड़ा तो जिन्नों को पता चल गया कि अगर वे सचमुच ग़ैब (परोक्ष) की बातें जाननेवाले होते तो इस रुसवाई के अज़ाब में इतनी मुद्दत

وَاَيُّوْبَ اِذْ نَادٰى رَبَّهٗٓ اَنِّىْ مَسَّنِىَ الضُّرُّ وَاَنْتَ

(83) और यही (होशमन्दी और इल्म-व-हिकमत की नेमत) हमने अय्यूब[76] को दी थी। याद करो जबकि उसने अपने रब को पुकारा कि "मुझे बीमारी लग गई है और तू

तक फँसे न रहते।" इस आयत से यह बात बिलकुल साफ़ समझ में आ जाती है कि जो शैतान हज़रत सुलैमान के लिए पाबन्द किए गए थे, और जो उनके लिए अलग-अलग तरह के काम करते थे, वे जिन्न थे, और जिन्न भी वे जिन्न जिनके बारे में अरब के मुशरिकों का यह अक़ीदा था, और जो ख़ुद अपने बारे में भी यह ग़लतफ़हमी रखते थे कि उनको ग़ैब का इल्म हासिल है। अब हर शख़्स जो क़ुरआन मजीद को आँखें खोलकर पढ़े, और उसको अपने तास्सुबात (पूर्वाग्रह) और पहले क़ायम किए हुए नज़रियों का पाबन्द बनाए बिना पढ़े, वह ख़ुद देख सकता है कि जहाँ क़ुरआन सिर्फ़ 'शैतान' और 'जिन्न' के अलफ़ाज़ इस्तेमाल करता है, वहाँ उसकी मुराद कौन-सा जानदार होता है, और क़ुरआन के मुताबिक़ वे कौन-से जिन्न हैं जिनको अरब के मुशरिक लोग ग़ैब को जाननेवाला (परोक्षज्ञाता) समझते थे।

नए ज़माने के तफ़सीर लिखनेवाले यह साबित करने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा देते हैं कि वे जिन्न और शैतान जो हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) के लिए पाबन्द किए गए थे, इनसान थे और आसपास की क़ौमों में से आए थे। लेकिन सिर्फ़ यही नहीं कि क़ुरआन के अलफ़ाज़ में उनके इस मनमाना मतलब निकालने के लिए कोई गुंजाइश नहीं है, बल्कि क़ुरआन में जहाँ-जहाँ भी यह क़िस्सा आया है, वहाँ का मौक़ा और बयान का अन्दाज़ इस मतलब की गुंजाइश निकालने से साफ़ इनकार करता है। हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) के लिए इमारतें बनानेवाले अगर इनसान ही थे तो आख़िर ये उनकी कौन-सी ख़ास ख़ूबी थी जिसको क़ुरआन में इस शान के साथ बयान किया गया है। मिस्र के अहराम से लेकर न्यूयार्क की गगनचुंबी इमारतों तक किस चीज़ को इनसान ने नहीं बनाया है और किस बादशाह या रईस या ताजिरों के सरदार के लिए वे 'जिन्न' और 'शैतान' मुहैया नहीं हुए जो आप हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) के लिए मुहैया कर रहे हैं?

76. हज़रत अय्यूब (अलैहि॰) की शख़्सियत, ज़माना, क़ौमियत, हर चीज़ के बारे में इख़्तिलाफ़ है। नए ज़माने के तहक़ीक़ करनेवालों में से कोई उनको इसराईली कहता है और कोई मिस्री और कोई अरब। किसी के नज़दीक उनका ज़माना हज़रत मूसा (अलैहि॰) से पहले का है, कोई उन्हें हज़रत दाऊद (अलैहि॰) और सुलैमान (अलैहि॰) के ज़माने का आदमी कहता है और कोई उनसे भी पहले का। लेकिन सबके गुमान और अन्दाज़ों की बुनियाद 'अय्यूब' नाम की उस किताब या पन्नों पर है जो बाइबल की मुक़द्दस किताबों के मजमूए (संग्रह) में शामिल है। उसी की ज़बान, अन्दाज़े-बयान और कलाम को देखकर ये अलग-अलग राएँ क़ायम की गई हैं, न कि किसी और तारीख़ी गवाही पर। और इस 'अय्यूब' नाम की किताब का हाल यह है कि उसके अपने मज़मूनों में भी बाहम टकराव पाया जाता है और उसका बयान क़ुरआन मजीद के बयान से भी इतना अलग है कि दोनों को एक ही वक़्त में नहीं माना जा सकता। लिहाज़ा हम उसपर बिलकुल भरोसा नहीं कर सकते। ज़्यादा-से-ज़्यादा भरोसेमन्द गवाही अगर कोई है तो वह यह है

اَرۡحَمُ الرّٰحِمِیۡنَ ﴿۸۳﴾ فَاسۡتَجَبۡنَا لَهٗ فَكَشَفۡنَا مَا بِهٖ مِنۡ ضُرٍّ وَّاٰتَيۡنٰهُ اَهۡلَهٗ وَمِثۡلَهُمۡ مَّعَهُمۡ رَحۡمَةً مِّنۡ عِنۡدِنَا وَذِكۡرٰى لِلۡعٰبِدِيۡنَ ﴿۸۴﴾

रहम करनेवालों में सबसे बढ़कर रहम करनेवाला[77] है।" (84) हमने उसकी दुआ क़बूल की और जो तकलीफ़ उसे थी उसको दूर कर दिया,[78] और सिर्फ़ उसके ख़ानदान के लोग ही उसको नहीं दिए, बल्कि उनके साथ उतने ही और भी दिए, अपनी ख़ास रहमत के तौर पर, और इसलिए कि यह एक सबक़ हो इबादतगुज़ारों के लिए।[79]

कि यसअयाह नबी और हिज़क़ीएल नबी के सहीफ़ों में उनका ज़िक्र आया है, और ये सहीफ़े तारीख़ी हैसियत से ज़्यादा भरोसेमन्द हैं। यसअयाह नबी आठवीं सदी और हिज़क़ीएल नबी छठी सदी ई॰ पू॰ में गुज़रे हैं, इसलिए यह बात यक़ीन से कही जा सकती है कि हज़रत अय्यूब (अलैहि॰) नवीं सदी ई॰ पू॰ या उससे पहले के बुज़ुर्ग हैं। रही उनकी क़ौमियत तो सूरा-4 निसा, आयत-163, और सूरा-6 अनआम, आयत-84 में जिस तरह उनका ज़िक्र आया है उससे गुमान तो यही होता है कि वे बनी-इसराईल ही में से थे, मगर वहब-बिन-मुनब्बिह का यह बयान भी कुछ नामुमकिन नहीं है कि वे हज़रत इसहाक़ (अलैहि॰) के बेटे ईसू की नस्ल से थे।

77. दुआ का अन्दाज़ कितना लतीफ़ (कोमल और सुथरा) है। बहुत ही कम अलफ़ाज़ में अपनी तकलीफ़ का ज़िक्र करते हैं और उसके बाद बस यह कहकर रह जाते हैं कि तू "अरहमुर-राहिमीन (सबसे बढ़कर रहम करनेवाला) है।" आगे कोई शिकवा या शिकायत नहीं, कोई ग़रज़ बयान करना नहीं, किसी चीज़ की माँग नहीं, दुआ के इस अन्दाज़ में कुछ ऐसी शान नज़र आती है जैसे कोई इन्तिहाई सब्र और क़नाअत (सन्तोष) करनेवाला और शरीफ़ और ख़ुद्दार आदमी लगातार फ़ाक़ों से बेताब हो और किसी इन्तिहाई मेहरबान हस्ती के सामने बस इतना कहकर रह जाए कि "मैं भूखा हूँ और आप दाता हैं।" आगे कुछ उसकी ज़बान से न निकल सके।

78. सूरा-38 सॉद (आयतें—41-64) में इसकी तफ़सील यह बताई गई है कि अल्लाह तआला ने उनसे फ़रमाया, "अपना पाँव मारो, यह ठंडा पानी मौजूद है नहाने को और पीने को।" इससे मालूम होता है कि ज़मीन पर पाँव मारते ही अल्लाह ने उनके लिए एक क़ुदरती चश्मा जारी कर दिया जिसके पानी में यह ख़ासियत थी कि उससे नहाने और उसको पीने से उनकी बीमारी दूर हो गई। यह इलाज इस बात की तरफ़ इशारा करता है कि उनको कोई सख़्त जिल्दी बीमारी (चर्म-रोग) हो गई थी, और बाइबल का बयान भी इसकी ताईद करता है कि उनका जिस्म सिर से पाँव तक फोड़ों से भर गया था। (अय्यूब, अध्याय-2, आयत-7)

79. इस क़िस्से में क़ुरआन मजीद हज़रत अय्यूब (अलैहि॰) को इस शान से पेश करता है कि वे सब्र की तस्वीर नज़र आते हैं, और फिर कहता है कि उनकी ज़िन्दगी इबादतगुज़ारों के लिए एक नमूना है। लेकिन दूसरी तरफ़ बाइबल की किताब 'अय्यूब' पढ़िए तो वहाँ आपको एक ऐसे

शख़्स की तस्वीर नज़र आएगी जो ख़ुदा के ख़िलाफ़ शिकायत की मूरत और अपनी मुसीबत पर सिर से पैर तक फ़रियाद बना हुआ है। बार-बार उसकी ज़बान से ऐसे जुमले निकलते हैं, "मिट जाए वह दिन जिस दिन मैं पैदा हुआ।" "मैं पेट ही में क्यों न मर गया।" "मैंने पेट से निकलते ही क्यों न जान दे दी।" और बार-बार वह ख़ुदा के ख़िलाफ़ शिकायतें करता है कि "क़ादिरे-मुतलक़ (सर्वशक्तिमान) के तीर मेरे अन्दर लगे हुए हैं, मेरी रूह उन्हीं के ज़हर को पी रही है, ख़ुदा की डरावनी बातें मेरे ख़िलाफ़ क़तार बाँधे हुए हैं।" "ऐ आदम की औलाद के देखनेवाले, अगर मैंने गुनाह किया है तो तेरा क्या बिगाड़ता हूँ? तूने क्यों मुझे अपना निशाना बना लिया है, यहाँ तक कि मैं अपने आपपर बोझ हूँ? तू मेरा गुनाह माफ़ क्यों नहीं करता और मेरी बदकारी क्यों नहीं दूर कर देता?" "मैं ख़ुदा से कहूँगा कि मुझे मुलज़िम न ठहरा, मुझे बता कि तू मुझसे क्यों झगड़ता है? क्या तुझे अच्छा लगता है कि अंधेर करे और अपने हाथों की बनाई हुई चीज़ को हक़ीर (मामूली) जाने और शरारत करनेवालों की मशवरत को रौशन करे?" उसके तीन दोस्त आकर उसे तसल्ली देते हैं और उसको सब्र और मानने और राज़ी रहने की नसीहत करते हैं, मगर वह नहीं मानता। वह उनकी नसीहत के जवाब में एक के बाद एक इलज़ाम ख़ुदा पर रखता चला जाता है और उनके समझाने के बावुजूद इस बात पर अड़ जाता है कि ख़ुदा के इस काम में कोई हिकमत और मस्लहत नहीं है, सिर्फ़ एक ज़ुल्म है जो मुझ जैसे एक परहेज़गार और इबादतगुज़ार आदमी पर किया जा रहा है। वह ख़ुदा के इस इन्तिज़ाम पर सख़्त एतिराज़ करता है कि एक तरफ़ बदकार नवाज़े जाते हैं और दूसरी तरफ़ भले काम करनेवाले सताए जाते हैं। वह एक-एक करके अपनी नेकियाँ गिनाता है और फिर वे तकलीफ़ें बयान करता है जो उनके बदले में ख़ुदा ने उसपर डालीं, और फिर कहता है कि ख़ुदा के पास अगर कोई जवाब है तो वह मुझे बताए कि यह सुलूक मेरे साथ किस क़ुसूर की सज़ा में किया गया है। उसकी यह ज़बानदराज़ी अपने पैदा करनेवाले के मुक़ाबले में इतनी ज़्यादा बढ़ जाती है कि आख़िरकार उसके दोस्त उसकी बातों का जवाब देना छोड़ देते हैं। वे चुप होते हैं तो एक चौथा आदमी जो उनकी बातें चुपचाप सुन रहा था बीच में दख़ल देता है और अय्यूब (अलैहि॰) को इस बात पर बहुत डाँटता है कि "उसने ख़ुदा को नहीं, बल्कि अपने आपको सही ठहराया।" उसकी तक़रीर ख़त्म नहीं होती कि बीच में अल्लाह मियाँ ख़ुद बोल पड़ते हैं और फिर उनके और अय्यूब (अलैहि॰) के बीच ख़ूब गर्मागर्म बहस होती है। इस सारी दास्तान को पढ़ते हुए किसी जगह भी हमें यह महसूस नहीं होता कि हम उस सरापा सब्र का हाल और कलाम पढ़ रहे हैं जिसकी तस्वीर इबादतगुज़ारों के लिए सबक़ बनाकर क़ुरआन ने पेश की है।

हैरत की बात यह है कि इस किताब का इब्तिदाई हिस्सा कुछ कह रहा है, बीच का हिस्सा कुछ, और आख़िर में नतीजा कुछ और निकल आता है। तीनों हिस्सों में कोई मेल नहीं है। शुरुआती हिस्सा कहता है कि अय्यूब (अलैहि॰) एक बहुत ही ज़्यादा हक़परस्त, परहेज़गार और नेक शख़्स था, और इसके साथ इतना दौलतमन्द कि "पूरबवालों में वह सबसे बड़ा आदमी था।" एक दिन ख़ुदा के यहाँ उसके (यानी ख़ुद अल्लाह मियाँ के) बेटे हाज़िर हुए और उनके साथ शैतान भी आया। ख़ुदा ने उस महफ़िल में अपने बन्दे अय्यूब पर फ़ख़्र का इज़हार किया। शैतान ने कहा, "आपने जो कुछ इसे दे रखा है, उसके बाद वह शुक्र न करेगा तो और क्या करेगा। ज़रा

इसकी नेमत छीनकर देखिए, वह आपके मुँह पर आपका 'इनकार' न करे तो मेरा नाम शैतान नहीं।" ख़ुदा ने कहा, "अच्छा, इसका सब कुछ तेरे अधिकार में दिया जाता है। अलबत्ता उसकी ज़ात को कोई नुक़सान न पहुँचाना।" शैतान ने जाकर अय्यूब के तमाम माल-दौलत का और उसके पूरे ख़ानदान का सफ़ाया कर दिया और अय्यूब हर चीज़ से महरूम होकर बिलकुल अकेला रह गया। मगर अय्यूब की आँख पर मैल न आया। उसने ख़ुदा को सजदा किया और कहा, "नंगा ही मैं अपनी माँ के पेट से निकला और नंगा ही वापस जाऊँगा। ख़ुदावन्द ने दिया और ख़ुदावन्द ने ले लिया। ख़ुदावन्द का नाम मुबारक हो।" फिर एक दिन वैसी ही महफ़िल अल्लाह मियाँ के यहाँ जमी। उनके बेटे भी आए और शैतान भी हाज़िर हुआ। अल्लाह मियाँ ने शैतान को जताया कि "देख ले, अय्यूब कैसा हक़परस्त आदमी साबित हुआ।" शैतान ने कहा, "जनाब, ज़रा उसके जिस्म पर मुसीबत डालकर देखिए। वह आपके मुँह पर आपका 'इनकार' करेगा।" अल्लाह मियाँ ने फ़रमाया, "अच्छा जा उसको तेरे अधिकार में दिया गया, बस उसकी जान महफ़ूज़ रहे।" चुनाँचे शैतान वापस हुआ और आकर उसने "अय्यूब को तलवे से चाँद तक दर्दनाक फोड़ों से दुख दिया।" उसकी बीवी ने उससे कहा, "क्या तू अब भी अपनी हक़परस्ती पर क़ायम रहेगा? ख़ुदा का इनकार कर और मर जा।" उसने जवाब दिया, "तू नादान औरतों की-सी बातें करती है। क्या हम ख़ुदा के हाथ से सुख पाएँ और दुख न पाएँ?"

यह है 'अय्यूब' नाम की किताब के पहले और दूसरे बाब (अध्याय) का ख़ुलासा। लेकिन इसके बाद तीसरे अध्याय से एक दूसरा ही मज़मून शुरू होता है जो 42वें अध्याय तक अय्यूब की बेसब्री और ख़ुदा के ख़िलाफ़ शिकायतों और इलज़ामों की एक लगातार दास्तान है, और उससे पूरी तरह यह बात साबित हो जाती है कि अय्यूब के बारे में ख़ुदा का अन्दाज़ा ग़लत निकला और शैतान का अन्दाज़ा सही था। फिर 42वाँ अध्याय इस बात पर ख़त्म होता है कि अल्लाह मियाँ से ख़ूब गर्मा-गर्म बहस कर लेने के बाद, सब्र, शुक्र और भरोसे की वजह से नहीं, बल्कि अल्लाह मियाँ की डाँट खाकर, अय्यूब (अलैहि॰) उनसे माफ़ी माँग लेता है और वह उसे क़बूल करके उसकी तकलीफ़ें दूर कर देते हैं और जितना कुछ पहले उसके पास था उससे दोगुना दे देते हैं। इस आख़िरी हिस्से को पढ़ते वक़्त आदमी को यूँ महसूस होता है कि अय्यूब और अल्लाह मियाँ दोनों शैतान के चैलेंज के मुक़ाबले में नाकाम साबित हुए हैं, और फिर सिर्फ़ अपनी बात रखने के लिए अल्लाह मियाँ ने डाँट-डपटकर उसे माफ़ी माँगने पर मजबूर किया है, और उसके माफ़ी माँगते ही उसे क़बूल कर लिया है; ताकि शैतान के सामने उनकी हेटी (रुसवाई और सुबकी) न हो।

यह किताब ख़ुद अपने मुँह से बोल रही है कि यह न ख़ुदा का कलाम है, न ख़ुद हज़रत अय्यूब (अलैहि॰) का; बल्कि यह हज़रत अय्यूब के ज़माने का भी नहीं है। उनके सदियों बाद किसी शख़्स ने अय्यूब (अलैहि॰) के क़िस्से को बुनियाद बनाकर 'यूसुफ़-ज़ुलैख़ा' की तरह एक दास्तान लिखी है और उसमें अय्यूब, अल-य़ज़ तैमानी, सूख़ी बलदू, नोमाती ज़ूफ़र, बराकील बूज़ी का बेटा अल-यहू कुछ किरदार हैं जिनकी ज़बान से कायनात के निज़ाम के बारे में दरअस्ल वह अपना फ़लसफ़ा (दर्शन) बयान करता है। उसकी शाइरी और उसके ज़ोरे-बयान की जितना जी चाहे दाद दे लीजिए, मगर पाक किताबों के मजमूए में एक आसमानी सहीफ़े की हैसियत से

وَإِسْمٰعِيْلَ وَإِدْرِيْسَ وَذَا الْكِفْلِ ۖ كُلٌّ مِّنَ الصّٰبِرِيْنَ ﴿٨٥﴾
وَأَدْخَلْنٰهُمْ فِيْ رَحْمَتِنَا ۖ إِنَّهُمْ مِّنَ الصّٰلِحِيْنَ ﴿٨٦﴾

(85) और यही नेमत इसमाईल और इदरीस[80] और ज़ुलकिफ़्ल[81] को दी कि ये सब सब्र करनेवाले लोग थे। (86) और उनको हमने अपनी रहमत में दाख़िल किया कि वे नेक लोगों में से थे।

इसको जगह देने का कोई मतलब नहीं। अय्यूब (अलैहि॰) की सीरत (जीवनी) से इसका बस इतना ही ताल्लुक़ है जितना 'यूसुफ़-ज़ुलैख़ा' का ताल्लुक़ यूसुफ़ (अलैहि॰) की सीरत से है, बल्कि शायद उतना भी नहीं। ज़्यादा-से-ज़्यादा हम इतना ही कह सकते हैं कि इस किताब के इब्तिदाई और आख़िरी हिस्से में जो वाक़िआत बयान किए गए हैं उनमें सही तारीख़ का एक हिस्सा पाया जाता है, और वह शाइर ने या तो ज़बानी रिवायतों से लिया होगा जो उस ज़माने में मशहूर होंगी, या फिर किसी सहीफ़े से लिया होगा जो अब मौजूद नहीं है।

80. तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-19 मरयम, हाशिया-33।

81. ज़ुलकिफ़्ल का लफ़्ज़ी तर्जमा है 'नसीबवाला', और मुराद है अख़लाक़ी बुज़ुर्गी और आख़िरत के बदले के लिहाज़ से नसीबवाला, न कि दुनियावी फ़ायदों और लाभों के लिहाज़ से। यह उन बुज़ुर्ग का नाम नहीं, बल्कि लक़ब (उपाधि) है। क़ुरआन मजीद में दो जगह उनका ज़िक्र आया है और दोनों जगह उनको इसी लक़ब से याद किया गया है। नाम नहीं लिया गया।

क़ुरआन की तफ़सीर लिखनेवालों के ख़यालात इस मामले में बहुत उलझे हुए हैं कि ये बुज़ुर्ग कौन हैं, किस देश और क़ौम से ताल्लुक़ रखते हैं और किस ज़माने में गुज़रे हैं। कोई कहता है कि ये हज़रत ज़करिय्या (अलैहि॰) का दूसरा नाम है (हालाँकि यह बिलकुल ग़लत है, क्योंकि उनका ज़िक्र अभी आगे आ रहा है), कोई कहता है ये हज़रत इल्यास (अलैहि॰) हैं, कोई यूशअ-बिन-नून का नाम लेता है, कोई कहता है ये अल-यसअ हैं, (हालाँकि यह भी ग़लत है, सूरा-38 सॉद में उनका ज़िक्र अलग किया गया है और ज़ुलकिफ़्ल का अलग), कोई उन्हें हज़रत अल-यसअ का ख़लीफ़ा बताता है और किसी का कहना है कि ये हज़रत अय्यूब (अलैहि॰) के बेटे थे जो उनके बाद नबी हुए और उनका अस्ली नाम बिश्र था। आलूसी ने रूहुल-मआनी में लिखा है कि "यहूदियों का दावा है कि ये हिज़क़ियाल (हिज़क़ीएल) नबी हैं जो बनी-इसराईल की क़ैदी ज़िन्दगी (597 ई॰ पू॰) के ज़माने में नबी बनाए गए और नहर ख़ाबूर के किनारे एक बस्ती में नुबूवत की ज़िम्मेदारियाँ निभाते रहे।"

इन अलग-अलग बयानों की मौजूदगी में यक़ीन और भरोसे के साथ नहीं कहा जा सकता कि अस्ल में ये कौन-से नबी हैं। मौजूदा ज़माने के तफ़सीर लिखनेवालों ने अपना झुकाव हिज़क़ीएल नबी की तरफ़ ज़ाहिर किया है, लेकिन हमें कोई सही दलील ऐसी नहीं मिली जिसकी बुनियाद पर यह राय क़ायम की जा सके। फिर भी अगर इसके लिए कोई दलील मिल सके तो यह राय तरजीह के क़ाबिल हो सकती है; क्योंकि बाइबल की किताब हिज़क़ीएल को देखने से मालूम

وَذَا النُّوْنِ اِذْ ذَّهَبَ مُغَاضِبًا فَظَنَّ اَنْ لَّنْ نَّقْدِرَ عَلَيْهِ فَنَادٰى فِى الظُّلُمٰتِ اَنْ لَّآ اِلٰهَ اِلَّآ اَنْتَ سُبْحٰنَكَ ۖ اِنِّىْ كُنْتُ مِنَ الظّٰلِمِيْنَ ﴿٨٧﴾

(87) और मछलीवाले को भी हमने नवाज़ा।[82] याद करो जबकि वह बिगड़कर चला गया था[83] और समझा था कि हम उसपर गिरिफ़्त न करेंगे।[84] आख़िर को उसने अंधेरों में से पुकारा,[85] "नहीं है कोई ख़ुदा मगर तू, पाक है तेरी ज़ात, बेशक मैंने क़ुसूर किया।"

होता है कि सचमुच वे इस तारीफ़ के हक़दार हैं जो इस आयत में की गई है, यानी सब्र करनेवाले और नेक। वे उन लोगों में से थे जो यरूशलम की आख़िरी तबाही से पहले बख़्त नसर के हाथों गिरफ़्तार हो चुके थे। बख़्त नसर ने इराक़ में इसराईली क़ैदियों की एक नई आबादी ख़ाबूर नदी के किनारे क़ायम कर दी थी, जिसका नाम तल अबीब था। इसी जगह पर 594 ई॰ पू॰ में हज़रत हिज़क़ीएल नबी बनाए गए जबकि उनकी उम्र 30 साल थी, और लगातार 22 साल एक तरफ़ मुसीबत में गिरफ़्तार इसराईलियों को और दूसरी तरफ़ यरूशलम के ग़ाफ़िल और अपने में मस्त बाशिन्दों और हुक्मरानों को चौंकाने का काम करते रहे। इस बड़े काम में उनकी लगन का जो हाल था उसका अन्दाज़ा इससे किया जा सकता है कि नुबूवत के 9वें साल उनकी बीवी जिन्हें वे ख़ुद 'मंज़ूरे-नज़र' कहते हैं, इन्तिक़ाल कर जाती हैं, लोग उनके पुरसे के लिए इकट्ठे होते हैं, और यह अपना दुखड़ा छोड़कर अपनी मिल्लत (समुदाय) को ख़ुदा के उस अज़ाब से डराना शुरू कर देते हैं जो उसके सिर पर तुला खड़ा था (अध्याय-24, आयतें—15-27)। बाइबल की किताब हिज़क़ीएल उन सहीफ़ों में से है, जिन्हें पढ़कर सचमुच यह महसूस होता है कि यह इलहामी (अल्लाह की तरफ़ से उतारा हुआ) कलाम है।

82. मुराद हैं हज़रत यूनुस (अलैहि॰)। कहीं उनका नाम लिया गया है और कहीं 'ज़ुन्नून' और 'साहिबुल-हूत' यानी 'मछलीवाले' के लक़ब से याद किया गया है। मछलीवाला उन्हें इसलिए नहीं कहा गया कि वे मछलियाँ पकड़ते या बेचते थे, बल्कि इस वजह से कि अल्लाह तआला के हुक्म से एक मछली ने उन्हें निगल लिया था, जैसा कि सूरा-37 साफ़्फ़ात, आयत-142 में बयान हुआ है। और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-10 यूनुस, हाशिए—98-100; तफ़हीमुल-कुरआन, सूरा-37 साफ़्फ़ात, हाशिए—77-85।

83. यानी वह अपनी क़ौम से नाराज़ होकर चले गए, इससे पहले कि ख़ुदा की तरफ़ से हिजरत का हुक्म आता और उनके लिए अपनी ड्यूटी छोड़ना जाइज़ होता।

84. उन्होंने सोचा कि इस क़ौम पर तो अज़ाब आनेवाला है। अब मुझे कहीं चलकर पनाह लेनी चाहिए ताकि ख़ुद भी अज़ाब में न घिर जाऊँ। यह बात अपनी जगह ख़ुद तो क़ाबिले-गिरिफ़्त न थी, मगर पैग़म्बर का अल्लाह की इजाज़त के बिना ड्यूटी से हट जाना क़ाबिले-गिरिफ़्त था।

85. यानी मछली के पेट में से जिसमें ख़ुद अंधेरा था, और ऊपर से समन्दर के अंधेरे और भी ज़्यादा।

فَاسْتَجَبْنَا لَهٗ ۙ وَنَجَّيْنٰهُ مِنَ الْغَمِّ ؕ وَكَذٰلِكَ نُـنْجِي الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٨٨﴾
وَزَكَرِيَّآ اِذْ نَادٰى رَبَّهٗ رَبِّ لَا تَذَرْنِيْ فَرْدًا وَّاَنْتَ خَيْرُ الْوٰرِثِيْنَ ﴿٨٩﴾
فَاسْتَجَبْنَا لَهٗ ۡوَوَهَبْنَا لَهٗ يَحْيٰى وَاَصْلَحْنَا لَهٗ زَوْجَهٗ ؕ اِنَّهُمْ كَانُوْا
يُسٰرِعُوْنَ فِي الْخَيْرٰتِ وَيَدْعُوْنَنَا رَغَبًا وَّرَهَبًا ؕ وَكَانُوْا لَنَا خٰشِعِيْنَ ﴿٩٠﴾

(88) तब हमने उसकी दुआ क़बूल की और ग़म से उसको नजात दी, और इसी तरह हम ईमानवालों को बचा लिया करते हैं।

(89) और ज़करिय्या को जबकि उसने अपने रब को पुकारा कि "ऐ परवरदिगार, मुझे अकेला न छोड़, और बेहतरीन वारिस तो तू ही है।" (90) फिर हमने उसकी दुआ क़बूल की और उसे यह्या दिया और उसकी बीवी को उसके लिए दुरुस्त कर दिया।[86] ये लोग नेकी के कामों में दौड़-धूप करते थे और हमें लगाव और डर के साथ पुकारते थे, और हमारे आगे झुके हुए थे।[87]

86. तशरीह के लिए देखिए—तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयतें—37-41 हाशियों समेत; सूरा-19 मरयम, आयतें 2-15 हाशियों समेत, बीवी को दुरुस्त कर देने से मुराद उनका बाँझपन दूर कर देना और बुढ़ापे के बावजूद बच्चा पैदा करने के क़ाबिल बना देना है। "बेहतरीन वारिस तो तू ही है।" यानी तू औलाद न भी दे तो ग़म नहीं, तेरी पाक हस्ती वारिस होने के लिए काफ़ी है।

87. यहाँ इस मौक़े पर नबियों का ज़िक्र जिस मक़सद के लिए किया गया है उसे फिर ज़ेहन में ताज़ा कर लीजिए। हज़रत ज़करिय्या (अलैहि०) के क़िस्से का ज़िक्र करने का मक़सद यह ज़ेहन में बिठाना है कि ये सारे पैग़म्बर सिर्फ़ अल्लाह के बन्दे और इनसान थे, ख़ुदाई का उनमें कोई हलका-सा निशान और असर तक न था। दूसरों को औलाद देनेवाले न थे, बल्कि ख़ुद अल्लाह के आगे औलाद के लिए हाथ फैलानेवाले थे। हज़रत यूनुस (अलैहि०) का ज़िक्र इसलिए किया गया कि एक बुलन्द और मज़बूत इरादोंवाले नबी होने के बावजूद जब उनसे ग़लती हो गई तो उन्हें पकड़ लिया गया। और जब वे अपने रब के आगे झुक गए तो उनपर मेहरबानी भी ऐसी की गई कि मछली के पेट से ज़िन्दा निकाल लिए गए। हज़रत अय्यूब (अलैहि०) का ज़िक्र इसलिए किया गया कि नबी का मुसीबत में पड़ जाना कोई निराली बात नहीं है, और नबी भी जब मुसीबत में मुब्तला होता है तो ख़ुदा ही के आगे मुसीबत से नजात के लिए हाथ फैलाता है। वह दूसरों को अच्छा कर देनेवाला नहीं, ख़ुदा से सेहत माँगनेवाला होता है। फिर इन सब बातों के साथ एक तरफ़ यह हक़ीक़त भी ज़ेहन में बिठानी मक़सद है कि ये सारे पैग़म्बर तौहीद

وَالَّتِيْٓ اَحْصَنَتْ فَرْجَهَا فَنَفَخْنَا فِيْهَا مِنْ رُّوْحِنَا وَجَعَلْنٰهَا وَابْنَهَآ اٰيَةً لِّلْعٰلَمِيْنَ﴿۹۱﴾

(91) और वह औरत जिसने अपनी इस्मत (अस्मिता) की हिफ़ाज़त की थी,[88] हमने उसके अन्दर अपनी रूह से फूँका[89] और उसे और उसके बेटे को दुनिया भर के लिए निशानी बना दिया।[90]

(एकेश्वरवाद) के माननेवाले थे और अपनी ज़रूरतें एक ख़ुदा के सिवा किसी के सामने न ले जाते थे, और दूसरी तरफ़ यह भी जताना मक़सद है कि अल्लाह तआला हमेशा ग़ैर-मामूली तौर पर अपने पैग़म्बरों की मदद करता रहा है। शुरू में चाहे कैसी ही आज़माइशों से उनको गुज़रना पड़ा हो, मगर आख़िरकार उनकी दुआएँ मोजिज़ाना (चामत्कारिक) शान के साथ पूरी हुई हैं।

88. मुराद हैं हज़रत मरयम (अलैहि॰)।

89. हज़रत आदम (अलैहि॰) के बारे में भी यह कहा गया है कि "मैं मिट्टी से एक इनसान बना रहा हूँ; तो (ऐ फ़रिश्तो) जब मैं उसे पूरा बना चुकूँ और उसमें अपनी रूह से फूँक दूँ तो तुम उसके आगे सजदे में गिर जाना।" (सूरा-38 सॉद, आयतें—71, 72) और यही बात हज़रत ईसा (अलैहि॰) के बारे में अलग-अलग जगहों पर कही गई है। सूरा-4 निसा में फ़रमाया, "अल्लाह का रसूल और उसका फ़रमान जो मरयम की तरफ़ डाला गया और उसकी तरफ़ से एक रूह।" (आयत-171)। और सूरा-66 तहरीम में कहा गया, "और इमरान की बेटी मरयम जिसने अपनी शर्मगाह की हिफ़ाज़त की तो फूँक दिया हमने उसमें अपनी रूह से।" (आयत-12)। इसके साथ यह बात भी सामने रहे कि अल्लाह तआला हज़रत ईसा (अलैहि॰) की पैदाइश और हज़रत आदम (अलैहि॰) की पैदाइश को एक-दूसरे से मिलता-जुलता क़रार देता है, चुनाँचे सूरा-3 आले-इमरान में फ़रमाया, "ईसा की मिसाल अल्लाह के नज़दीक आदम की-सी है जिसको अल्लाह ने मिट्टी से बनाया और फिर कहा 'हो जा' और वह हो जाता है।" (आयत-59) इन आयतों पर ग़ौर करने से यह बात समझ में आती है कि पैदाइश के आम तरीक़े के बजाय जब अल्लाह तआला किसी को सीधे-सीधे अपने हुक्म से वुजूद में लाकर ज़िन्दगी देता है तो उसके लिए 'अपनी रूह से फूँकने' के अलफ़ाज़ का इस्तेमाल करता है। इस रूह का ताल्लुक़ अल्लाह से शायद इसलिए जोड़ा गया है कि उसका फूँका जाना मोजिज़े की ग़ैर-मामूली शान रखता है। और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-4 निसा, हाशिए-212, 213।

90. ये दोनों माँ-बेटे ख़ुदा या ख़ुदाई (अल्लाह के गुणों) में शरीक न थे, बल्कि ख़ुदा की निशानियों में से एक निशानी थे। 'निशानी' वे किस मानी में थे, इसकी तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-19 मरयम, हाशिया-21 और तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, हाशिया-43।

إِنَّ هٰذِهٖٓ اُمَّتُكُمْ اُمَّةً وَّاحِدَةً ۖ وَّاَنَا رَبُّكُمْ فَاعْبُدُوْنِ ﴿٩٢﴾ وَتَقَطَّعُوْٓا
اَمْرَهُمْ بَيْنَهُمْ ۗ كُلٌّ اِلَيْنَا رٰجِعُوْنَ ﴿٩٣﴾ فَمَنْ يَّعْمَلْ مِنَ الصّٰلِحٰتِ ع ٨
وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَلَا كُفْرَانَ لِسَعْيِهٖ ۚ وَاِنَّا لَهٗ كٰتِبُوْنَ ﴿٩٤﴾ وَحَرٰمٌ عَلٰى قَرْيَةٍ
اَهْلَكْنٰهَآ اَنَّهُمْ لَا يَرْجِعُوْنَ ﴿٩٥﴾ حَتّٰٓى اِذَا فُتِحَتْ يَاْجُوْجُ وَمَاْجُوْجُ

(92) यह तुम्हारी उम्मत (समुदाय) हक़ीक़त में एक ही उम्मत है और मैं तुम्हारा रब हूँ तो तुम मेरी इबादत करो। (93) मगर (यह लोगों की कारस्तानी है कि) उन्होंने आपस में अपने दीन को टुकड़े-टुकड़े कर डाला[91]—सबको हमारी तरफ़ पलटना है। (94) फिर जो नेक अमल करेगा, इस हाल में कि वह ईमानवाला हो तो उसके काम की नाक़द्री न होगी, और उसे हम लिख रहे हैं। (95) और मुमकिन नहीं है कि जिस बस्ती को हमने हलाक कर दिया हो वह फिर पलट सके।[92] (96) यहाँ तक कि जब याजूज और माजूज

91. 'तुम' तमाम इनसानों को कहा गया है। मतलब यह है कि ऐ इनसानो, तुम सब हक़ीक़त में एक ही उम्मत (समुदाय) और एक ही मिल्लत (पंथ) थे। दुनिया में जितने नबी भी आए, वे सब एक ही दीन लेकर आए थे, और वह अस्ल दीन यह था कि सिर्फ़ एक अल्लाह ही इनसान का रब है और अकेले अल्लाह ही की बन्दगी और परस्तिश की जानी चाहिए। बाद में जितने धर्म पैदा हुए वे इसी दीन को बिगाड़कर बना लिए गए। उसकी कोई चीज़ किसी ने ली, और कोई दूसरी चीज़ किसी और ने, और फिर हर एक ने एक हिस्सा उसका लेकर बहुत-सी चीज़ें अपनी तरफ़ से उसके साथ मिला डालीं। इस तरह ये अनगिनत मिल्लतें वुजूद में आईं। अब यह समझना कि फ़ुलाँ नबी फ़ुलाँ मज़हब की बुनियाद डालनेवाला था और फ़ुलाँ नबी ने फ़ुलाँ मज़हब की बुनियाद डाली, और इनसानों में यह मिल्लतों और मज़हबों की फूट नबियों की डाली हुई है, महज़ एक ग़लत ख़याल है। महज़ यह बात कि ये अलग-अलग मिल्लतें अपने आपको अलग-अलग ज़मानों और अलग-अलग देशों के नबियों से जोड़ रही हैं, इस बात की दलील नहीं है कि मिल्लतों और मज़हबों का यह इख़्तिलाफ़ नबियों का डाला हुआ है। ख़ुदा के भेजे हुए पैग़म्बर दस अलग मज़हब नहीं बना सकते थे और न एक ख़ुदा के सिवा किसी और की बन्दगी सिखा सकते थे।

92. इस आयत के तीन मतलब हैं—

एक यह कि जिस क़ौम पर एक बार अल्लाह का अज़ाब आ चुका हो, वह फिर कभी नहीं उठ सकती। उसका दोबारा उठना और नई ज़िन्दगी मुमकिन नहीं है।

दूसरा यह कि हलाक हो जाने के बाद फिर इस दुनिया में उसका पलटना और उसे दोबारा

وَهُمْ مِّنْ كُلِّ حَدَبٍ يَّنْسِلُوْنَ ﴿٩٦﴾ وَاقْتَرَبَ الْوَعْدُ الْحَقُّ فَاِذَا هِيَ
شَاخِصَةٌ اَبْصَارُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا ؕ يٰوَيْلَنَا قَدْ كُنَّا فِيْ غَفْلَةٍ

खोल दिए जाएँगे और हर बुलन्दी से वे निकल पड़ेंगे (97) और सच्चे वादे के पूरा होने का वक़्त क़रीब आ लगेगा[93] तो यकायक उन लोगों के दीदे फटे-के-फटे रह जाएँगे जिन्होंने कुफ़्र (इनकार) किया था। कहेंगे, "हाय हमारी कमबख़्ती, हम इस चीज़ की तरफ़

इम्तिहान का मौक़ा मिलना नामुमकिन है। फिर तो अल्लाह की अदालत ही में उसकी पेशी होगी।

तीसरा यह कि जिस क़ौम की बदकारियाँ और ज़ुल्म-ज़्यादतियाँ और सीधे रास्ते से बराबर मुँह फेरते रहना इस हद तक पहुँच जाता है कि अल्लाह तआला की तरफ़ से उसकी तबाही का फ़ैसला हो जाता है उसे फिर सही रास्ते की तरफ़ पलटने और ग़लतियों से तौबा करने का मौक़ा नहीं दिया जाता। उसके लिए फिर यह मुमकिन नहीं रहता कि गुमराही से सीधे रास्ते की तरफ़ पलट सके।

93. याजूज-माजूज की तशरीह तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, हाशिया-62 और 69 में की जा चुकी है। उनके खोल दिए जाने का मतलब यह है कि वे दुनिया पर इस तरह टूट पड़ेंगे कि जैसे कोई शिकारी दरिन्दा यकायक पिंजरे या बन्धन से छोड़ दिया गया हो। "सच्चे वादे के पूरा होने का वक़्त क़रीब आ लगेगा" का इशारा साफ़ तौर पर इस तरफ़ है कि याजूज-माजूज की पूरी दुनिया पर यह यलग़ार आख़िरी ज़माने में होगी और उसके बाद जल्दी ही क़ियामत आ जाएगी। नबी (सल्ल॰) का वह इरशाद इस मानी को और ज़्यादा खोल देता है जो मुस्लिम ने हुज़ैफ़ा-बिन-असीद अल-ग़िफ़ारी की रिवायत से नक़्ल किया है कि "क़ियामत क़ायम न होगी जब तक तुम उससे पहले दस अलामतें (लक्षण) न देख लो—धुआँ, दज्जाल, ज़मीन का जानवर, मग़रिब (पश्चिम) से सूरज का निकलना, मरयम के बेटे ईसा (अलैहि॰) का उतरना, याजूज-माजूज का हमला और तीन बड़े ख़ुसूफ़ (ज़मीन का धँसना या Land Slide)—एक पूरब में, दूसरा मग़रिब (पश्चिम) में और तीसरा जज़ीरतुल-अरब (अरब प्रायद्वीप) में। फिर सबसे आख़िर में यमन से एक सख़्त आग उठेगी जो लोगों को महशर (इकट्ठे होने की जगह) की तरफ़ हाँकेगी (यानी बस उसके बाद क़ियामत आ जाएगी)।" एक और हदीस में याजूज-माजूज के हमले का ज़िक्र करके नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "उस वक़्त क़ियामत इतनी ज़्यादा क़रीब होगी, जैसे पूरे पेटों की हामला कि कह नहीं सकते कब वह बच्चा जन दे, रात को या दिन को।" लेकिन क़ुरआन मजीद और हदीसों में याजूज-माजूज के बारे में जो कुछ बयान किया गया है उससे यह ज़ाहिर नहीं होता कि ये दोनों एकजुट होंगे और मिलकर दुनिया पर टूट पड़ेंगे। हो सकता है कि क़ियामत के क़रीब ज़माने में ये दोनों आपस ही में लड़ जाएँ और फिर उनकी लड़ाई एक पूरी दुनिया में फैल जानेवाले फ़साद की वजह बन जाए।

مِّنْ هٰذَا بَلْ كُنَّا ظٰلِمِيْنَ ﴿٩٧﴾ اِنَّكُمْ وَمَا تَعْبُدُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ حَصَبُ
جَهَنَّمَ ؕ اَنْتُمْ لَهَا وٰرِدُوْنَ ﴿٩٨﴾ لَوْ كَانَ هٰٓؤُلَآءِ اٰلِهَةً مَّا وَرَدُوْهَا ؕ وَكُلٌّ
فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ﴿٩٩﴾ لَهُمْ فِيْهَا زَفِيْرٌ وَّهُمْ فِيْهَا لَا يَسْمَعُوْنَ ﴿١٠٠﴾

से ग़फ़लत में पड़े हुए थे, बल्कि हम ख़ताकार थे।[94] (98) बेशक तुम और तुम्हारे वे माबूद, जिन्हें तुम पूजते हो, जहन्नम का ईंधन हैं। वहीं तुमको जाना है।[95] (99) अगर सचमुच ये ख़ुदा होते तो वहाँ न जाते। अब सबको हमेशा इसी में रहना है। (100) वहाँ वे फुंकारें मारेंगे[96] और हाल यह होगा कि उसमें कान पड़ी आवाज़ न सुनाई देगी।

94. 'ग़फ़लत' में फिर एक तरह की मजबूरी पाई जाती है, इसलिए वे अपनी ग़फ़लत का ज़िक्र करने के बाद फिर ख़ुद ही साफ़-साफ़ तस्लीम कर लेंगे कि हमको नबियों ने आकर इस दिन से ख़बरदार किया था। लिहाज़ा हक़ीक़त में हम ग़ाफ़िल और बेख़बर न थे, बल्कि ख़ताकार थे।

95. रिवायतों में आया है कि इस आयत पर अब्दुल्लाह-बिन-अज़-ज़बअरा ने एतिराज़ किया कि इस तरह तो सिर्फ़ हमारे ही माबूद नहीं, मसीह और उज़ैर और फ़रिश्ते भी जहन्नम में जाएँगे; क्योंकि दुनिया में उनकी भी इबादत की जाती है। इसपर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "हाँ, हर वह शख़्स जिसने पसन्द किया कि अल्लाह के बजाय उसकी बन्दगी की जाए, वह उन लोगों के साथ होगा जिन्होंने उसकी बन्दगी की।" इससे मालूम हुआ कि जिन लोगों ने अल्लाह के बन्दों को ख़ुदापरस्ती की तालीम दी थी और लोग उन्हीं को माबूद बना बैठे, या जो बेचारे इस बात से बिलकुल बे-ख़बर हैं कि दुनिया में उनकी बन्दगी की जा रही है और इस काम में उनकी ख़ाहिश और मरज़ी का कोई दख़ल नहीं है उनके जहन्नम में जाने की कोई वजह नहीं है; क्योंकि वे इस शिर्क के ज़िम्मेदार नहीं हैं। अलबत्ता जिन्होंने ख़ुद माबूद बनने की कोशिश की और जिनका लोगों के इस शिर्क में सचमुच दख़ल है, वे सब अपने इबादतगुज़ारों के साथ जहन्नम में जाएँगे। इसी तरह वे लोग भी जहन्नम में जाएँगे जिन्होंने अपने मतलब और फ़ायदों के लिए अल्लाह को छोड़कर दूसरों को माबूद बनवाया; क्योंकि इस सूरत में मुशरिकों के अस्ली माबूद वही क़रार पाएँगे, न कि वे जिनको इन शरारती लोगों ने बज़ाहिर माबूद बनवाया था। शैतान भी इसी के तहत आता है; क्योंकि उसके उकसाने पर जिन हस्तियों को माबूद बनाया जाता है, अस्ल माबूद वे नहीं, बल्कि ख़ुद शैतान होता है जिसके हुक्म पर चलने में यह हरकत की जाती है। इसके अलावा पत्थर और लकड़ी के बुतों और पूजा के दूसरे सामान को भी मुशरिक लोगों के साथ जहन्नम में दाख़िल किया जाएगा, ताकि वे उनपर जहन्नम की आग के और ज़्यादा भड़कने की वजह बनें और यह देखकर उन्हें और ज़्यादा तकलीफ़ हो कि जिनसे वे सिफ़ारिश की उम्मीद लगाए बैठे थे, वे उनपर उलटे अज़ाब की शिद्दत की वजह बने हुए हैं।

96. अस्ल अरबी में 'ज़फ़ीर' लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है। सख़्त गर्मी, मेहनत और थकान की हालत में जब आदमी लम्बी साँस लेकर उसको एक फुँकार के रूप में निकालता है तो उसे अरबी में

إِنَّ الَّذِينَ سَبَقَتْ لَهُم مِّنَّا الْحُسْنَىٰ ۙ أُولَٰئِكَ عَنْهَا مُبْعَدُونَ ﴿١٠١﴾
لَا يَسْمَعُونَ حَسِيسَهَا ۖ وَهُمْ فِي مَا اشْتَهَتْ أَنفُسُهُمْ خَالِدُونَ ﴿١٠٢﴾
لَا يَحْزُنُهُمُ الْفَزَعُ الْأَكْبَرُ وَتَتَلَقَّاهُمُ الْمَلَائِكَةُ ۚ هَٰذَا يَوْمُكُمُ
الَّذِي كُنتُمْ تُوعَدُونَ ﴿١٠٣﴾ يَوْمَ نَطْوِي السَّمَاءَ كَطَيِّ السِّجِلِّ
لِلْكُتُبِ ۚ كَمَا بَدَأْنَا أَوَّلَ خَلْقٍ نُّعِيدُهُ ۚ وَعْدًا عَلَيْنَا ۚ إِنَّا كُنَّا
فَاعِلِينَ ﴿١٠٤﴾ وَلَقَدْ كَتَبْنَا فِي الزَّبُورِ مِن بَعْدِ الذِّكْرِ

(101) रहे वे लोग जिनके लिए हमारी तरफ़ से भलाई का पहले ही फ़ैसला हो चुका होगा तो वे यक़ीनन उससे दूर रखे जाएँगे,[97] (102) उसकी सरसराहट तक न सुनेंगे। और हमेशा- हमेशा अपनी मनभाती चीज़ों के बीच रहेंगे। (103) वह इन्तिहाई घबराहट का वक़्त उनको ज़रा परेशान न करेगा,[98] और फ़रिश्ते बढ़कर उनको हाथों-हाथ लेंगे कि "यह तुम्हारा वही दिन है जिसका तुमसे वादा किया जाता था।"

(104) वह दिन जबकि आसमान को हम यूँ ही लपेटकर रख देंगे, जैसे पंजी में पन्ने लपेटकर रख दिए जाते हैं। जिस तरह पहले हमने पैदाइश की शुरुआत की थी, उसी तरह हम फिर उसको दोहराएँगे। यह एक वादा है हमारे ज़िम्मे, और यह काम हमें बहरहाल करना है। (105) और ज़बूर में हम नसीहत के बाद यह लिख चुके हैं कि

'ज़फ़ीर' कहते हैं।

97. इससे मुराद वे लोग हैं जिन्होंने दुनिया में नेकी और भलाई की राह अपनाई। ऐसे लोगों के बारे में अल्लाह तआला पहले ही यह वादा कर चुका है कि वे उसके अज़ाब से बचे रहेंगे और उनको नजात दी जाएगी।

98. यानी महशर (इकट्ठा होने) के दिन और ख़ुदा के सामने पेशी का वक़्त जो आम लोगों के लिए इन्तिहाई घबराहट और परेशानी का वक़्त होगा, उस वक़्त नेक लोगों पर एक इत्मीनान की कैफ़ियत छाई रहेगी। इसलिए कि सब कुछ उनकी उम्मीदों के मुताबिक़ हो रहा होगा। ईमान और अच्छे कामों की जो पूँजी लिए हुए वे दुनिया से विदा हुए थे, वह उस वक़्त ख़ुदा की मेहरबानी से उनकी ढाढ़स बँधाएगी और डर और दुख की जगह उनके दिलों में यह उम्मीद पैदा करेगी कि जल्द ही वे अपनी कोशिश के अच्छे नतीजे देखनेवाले हैं।

اَنَّ الْاَرْضَ يَرِثُهَا عِبَادِيَ الصّٰلِحُوْنَ ۝١٠٥ اِنَّ فِيْ هٰذَا لَبَلٰغًا لِّقَوْمٍ
عٰبِدِيْنَ ۝١٠٦

ज़मीन के वारिस हमारे नेक बन्दे होंगे। (106) इसमें एक बड़ी ख़बर है इबादतगुज़ार लोगों के लिए।[99]

99. इस आयत का मतलब समझने में कुछ लोगों ने ज़बरदस्त ठोकर खाई है और इससे एक ऐसा मतलब निकाल लिया है जो पूरे क़ुरआन को रद्द करता और दीन के पूरे निज़ाम (व्यवस्था) की जड़ खोद डालता है। वे आयत का मतलब यह लेते हैं कि दुनिया की मौजूदा ज़िन्दगी में ज़मीन की विरासत (यानी सल्तनत और हुकूमत और ज़मीन के वसाइल के इस्तेमाल का हक़) सिर्फ़ नेक और भले लोगों को मिला करती है और उन्हीं को अल्लाह तआला इस नेमत से नवाज़ता है। फिर इस तस्लीमशुदा उसूल से वे यह नतीजा निकालते हैं कि नेक होने और नेक न होने के फ़र्क़ का पैमाना यही ज़मीन की विरासत है। जिसको यह विरासत मिले वह नेक है और जिसको न मिले वह नेक नहीं है। इसके बाद वे आगे बढ़कर उन क़ौमों पर निगाह डालते हैं जो दुनिया में पहले ज़मीन की वारिस रही हैं और आज इस विरासत की मालिक बनी हुई हैं। यहाँ वे देखते हैं कि काफ़िर, मुशरिक, नास्तिक, गुनाहगार और बदकार, सब ये विरासत पहले भी पाते रहे हैं और आज भी पा रहे हैं। जिन क़ौमों में वे तमाम सिफ़ात पाई गई हैं और आज पाई जाती हैं जिन्हें क़ुरआन साफ़ अलफ़ाज़ में कुफ़्र (इनकार), गुनाह, बदकारी, बुराई और नाफ़रमानी कहता है, वे इस विरासत से महरूम नहीं हुईं, बल्कि नवाज़ी गईं और आज भी नवाज़ी जा रही हैं। फ़िरऔन और नमरूद से लेकर इस ज़माने के कम्युनिस्ट हाकिमों तक कितने ही हैं जो खुल्लम-खुल्ला ख़ुदा का इनकार करनेवाले उसके मुख़ालिफ़ बल्कि उसके मद्दे-मुक़ाबिल (प्रतिद्वन्द्वी) बने हैं और फिर भी ज़मीन के वारिस हुए हैं। इस मंज़र को देखकर वे यह राय क़ायम करते हैं कि क़ुरआन का बयान किया हुआ बुनियादी उसूल तो ग़लत नहीं हो सकता। अब लाज़िमी तौर पर ग़लती जो कुछ है वह 'भले और अच्छे' के उस मतलब में है जो अब तक मुसलमान समझते रहे हैं। चुनाँचे वे नेकी और भलाई का एक नया तसव्वुर तलाश करते हैं जिसके मुताबिक़ ज़मीन के वारिस होनेवाले सब लोग समान रूप से 'नेक या भले' ठहराए जा सकें, इस बात से बिलकुल अलग हटकर कि वे अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) और उमर फ़ारूक़ (रज़ि॰) हों या चंगेज़ और हलाकू। इस नए तसव्वुर की तलाश में डार्विन का तरक़्क़ी का नज़रिया उनकी रहनुमाई करता है और वह क़ुरआन में बताए गए 'नेकी' के तसव्वुर को डार्विन के 'सलाहियत' (Fitness) के तसव्वुर से ले जाकर मिला देते हैं।

इस नई तफ़सीर (व्याख्या) के मुताबिक़ इस आयत का मतलब यह ठहरता है कि जो शख़्स और गरोह भी देशों को जीतने और उनपर ताक़त के ज़रिए से अपनी हुकूमत चलाने और ज़मीन के वसाइल को कामयाबी के साथ इस्तेमाल करने की क़ाबिलियत रखता हो, वही 'ख़ुदा का नेक

बन्दा' है और उसका यह काम तमाम 'इबादतगुज़ार' इनसानों के लिए एक पैग़ाम है कि 'इबादत' इस चीज़ का नाम है जो यह शख़्स और गरोह कर रहा है, अगर यह इबादत तुम नहीं करते और नतीजे में ज़मीन की विरासत तुम्हें नहीं मिल पाती है तो न तुम्हारी गिनती नेक और भले लोगों में हो सकती है और न तुमको ख़ुदा का इबादतगुज़ार बन्दा कहा जा सकता है।

यह मतलब अपना लेने के बाद इन लोगों के सामने यह सवाल आया कि अगर 'नेकी' और 'इबादत' का तसव्वुर यह है तो फिर वह ईमान (अल्लाह पर ईमान, आख़िरत के दिन पर ईमान, रसूलों पर ईमान और आसमानी किताबों पर ईमान) क्या है जिसके बिना, ख़ुद इसी क़ुरआन के मुताबिक़, ख़ुदा के यहाँ कोई अच्छा काम क़बूल न होगा? और फिर क़ुरआन की इस दावत का क्या मतलब है कि उस अख़लाक़ी निज़ाम (नैतिक व्यवस्था) और क़ानूने-ज़िन्दगी (जीवन-विधान) की पैरवी करो जो ख़ुदा ने अपने रसूल के ज़रिए से भेजा है? और फिर क़ुरआन का बार-बार यह कहना क्या मतलब रखता है कि जो रसूल को न माने और ख़ुदा के उतारे हुए हुक्मों की पैरवी न करे वह काफ़िर (इनकारी), फ़ासिक़ (नाफ़रमान), अज़ाब का हक़दार और अल्लाह के ग़ज़ब का हक़दार है? ये सवालात ऐसे थे कि अगर ये लोग इनपर ईमानदारी के साथ ग़ौर करते तो महसूस कर लेते कि इनसे इस आयत का मतलब समझने और नेकी का एक नया तसव्वुर क़ायम करने में ग़लती हुई है। लेकिन उन्होंने अपनी ग़लती महसूस करने के बजाय पूरी ढिठाई के साथ ईमान, इस्लाम, तौहीद, आख़िरत, रिसालत, हर चीज़ का मतलब बदल डाला; ताकि वे सब उनकी इस एक आयत की तफ़सीर के मुताबिक़ हो जाएँ, और इस एक चीज़ को ठीक बिठाने के लिए उन्होंने क़ुरआन की सारी तालीमात को उलट-पुलट कर डाला। इसपर लतीफ़ा यह है कि जो लोग उनके ज़रिए से निकाले गए क़ुरआनी आयत के इस मनमाने मतलब से इख़्तिलाफ़ करते हैं उनको ये उलटा इलज़ाम देते हैं कि "ख़ुद बदलते नहीं, क़ुरआँ को बदल देते हैं।" यह अस्ल में माद्दी तरक़्क़ी (भौतिक विकास) की ख़ाहिश का हैज़ा है जो कुछ लोगों को इस बुरी तरह हो गया है कि वे क़ुरआन के मतलबों में उलट-फेर करने में भी नहीं झिझकते।

उनकी इस तफ़सीर में पहली बुनियादी ग़लती यह है कि ये लोग एक आयत की ऐसी तफ़सीर करते हैं जो क़ुरआन की कुल तालीमात के ख़िलाफ़ पड़ती है; हालाँकि उसूली तौर पर क़ुरआन की हर आयत की वही तफ़सीर सही हो सकती है जो उसके दूसरे बयानों और उसके पूरे निज़ामे-फ़िक्र (वैचारिक व्यवस्था) से मेल खाती हो। कोई शख़्स जिसने कभी क़ुरआन को एक बार भी समझकर पढ़ने की कोशिश की है, इस बात से अनजान नहीं रह सकता कि क़ुरआन जिस चीज़ को नेकी, तक़वा (परहेज़गारी) और भलाई कहता है वह 'माद्दी तरक़्क़ी और हुक्मरानी की सलाहियत' के हममानी नहीं है, और 'नेक' को अगर 'सलाहियतवाला' के मानी में ले लिया जाए तो यह एक आयत पूरे क़ुरआन से टकरा जाती है।

दूसरा सबब जो इस ग़लती की वजह बना है, यह है कि ये लोग एक आयत को उसके मौक़ा-महल से अलग करके बेझिझक जो मतलब चाहते हैं उसके अलफ़ाज़ से निकाल लेते हैं; हालाँकि हर आयत का सही मतलब सिर्फ़ वही हो सकता है जो मौक़ा-महल से मेल खाता हो। अगर यह ग़लती न की जाती तो आसानी के साथ देखा जा सकता था कि ऊपर से जो बात

लगातार चली आ रही है उसमें आख़िरत की दुनिया में नेक ईमानवालों और हक़ के इनकारियों और मुशरिकों के अंजाम से बहस की गई है। इस मज़मून (विषय) में यकायक इस मज़मून के बयान करने का आख़िर कौन-सा मौक़ा था कि दुनिया में ज़मीन की विरासत का इन्तिज़ाम किस क़ायदे पर हो रहा है।

तफ़सीर के सही उसूलों को ध्यान में रखकर देखा जाए तो आयत का मतलब साफ़ है कि दूसरी पैदाइश (मरने के बाद दोबारा उठाए जाने) में जिसका ज़िक्र इससे पहले की आयत में हुआ है, ज़मीन के वारिस सिर्फ़ नेक और भले लोग होंगे और उस हमेशा रहनेवाले निज़ाम में मौजूदा थोड़े दिनों के निज़ाम की-सी कैफ़ियत क़ायम न रहेगी कि ज़मीन पर ख़ुदा के नाफ़रमानों और ज़ालिमों को भी ग़लबा हासिल हो जाता है। यह बात सूरा-23 मोमिनून, आयतें—4-11 में भी कही गई है और इससे ज़्यादा साफ़ अलफ़ाज़ में सूरा-39 ज़ुमर के आख़िर में बयान की गई है, जहाँ अल्लाह तआला क़ियामत और पहला और दूसरा सूर फूँके जाने का ज़िक्र करने के बाद अपनी अदालत का ज़िक्र करता है। फिर कुफ़्र का अंजाम बयान करके नेक लोगों का अंजाम यह बताता है कि "और जिन लोगों ने अपने रब के डर से तक़वा (परहेज़गारी) अपनाया था, वे जन्नत की तरफ़ गरोह-दर-गरोह ले जाए जाएँगे; यहाँ तक कि जब वे वहाँ पहुँच जाएँगे तो उनके लिए जन्नत के दरवाज़े खोल दिए जाएँगे और उसका इन्तिज़ाम करनेवाले उनसे कहेंगे कि सलाम हो तुमको, तुम बहुत अच्छे रहे। आओ, अब इसमें हमेशा रहने के लिए दाख़िल हो जाओ। और वे कहेंगे कि तारीफ़ है उस ख़ुदा की जिसने हमसे अपना वादा पूरा किया और हमको ज़मीन का वारिस कर दिया। अब हम जन्नत में जहाँ चाहें अपनी जगह बना सकते हैं; तो बेहतरीन बदला है अमल करनेवालों के लिए।" देखिए, ये दोनों आयतें एक ही बात बयान कर रही हैं, और दोनों जगह ज़मीन की विरासत का ताल्लुक़ आख़िरत की दुनिया से है, न कि इस दुनिया से।

अब ज़बूर को लीजिए जिसका हवाला ज़ेरे-बहस (विचाराधीन) आयत में दिया गया है। अगरचे हमारे लिए यह कहना मुश्किल है कि बाइबल की पाक किताबों के मजमूए में ज़बूर के नाम से जो किताब इस वक़्त पाई जाती है यह अपनी अस्ली बे-बिगड़ी हुई सूरत में है या नहीं; क्योंकि इसमें मज़ामीरे-दाऊद (दाऊद के भजन) के अलावा दूसरे लोगों के मज़ामीर (भजन) भी गड्ड-मड्ड हो गए हैं और अस्ली ज़बूर का नुस्ख़ा कहीं मौजूद नहीं है। फिर भी जो ज़बूर इस वक़्त मौजूद है उसमें भी नेकी और सच्चाई और अल्लाह पर भरोसा करने की नसीहत के बाद कहा गया है—

"क्योंकि बदकिरदार काट डाले जाएँगे, लेकिन जिनको ख़ुदावन्द की आस है देश के वारिस होंगे; क्योंकि थोड़ी देर में शरारत करनेवाला मिट जाएगा; तू उसकी जगह को ग़ौर से देखेगा, पर वह न होगा। लेकिन हलीम (बरदाश्त करनेवाले) देश के वारिस होंगे और सलामती की बहुतायत से ख़ुश रहेंगे......उनकी मीरास हमेशा के लिए होगी......सच्चे लोग ज़मीन के वारिस होंगे और उसमें हमेशा बसे रहेंगे।" (37 दाऊद का मज़मूर, आयतें—9, 10, 11, 18-29)

देखिए, यहाँ सच्चे लोगों के लिए ज़मीन की हमेशा रहनेवाली विरासत का ज़िक्र है, और ज़ाहिर है कि आसमानी किताबों के मुताबिक़ हमेशा की ज़िन्दगी का ताल्लुक़ आख़िरत की ज़िन्दगी से

وَمَآ اَرۡسَلۡنٰكَ اِلَّا رَحۡمَةً لِّلۡعٰلَمِيۡنَ﴿۱۰۷﴾ قُلۡ اِنَّمَا يُوۡحٰٓى اِلَىَّ اَنَّمَاۤ اِلٰهُكُمۡ
اِلٰهٌ وَّاحِدٌ‌ ۚ فَهَلۡ اَنۡتُمۡ مُّسۡلِمُوۡنَ﴿۱۰۸﴾ فَاِنۡ تَوَلَّوۡا فَقُلۡ اٰذَنۡتُكُمۡ عَلٰى

(107) ऐ नबी, हमने जो तुमको भेजा है तो यह अस्ल में दुनियावालों के हक़ में हमारी रहमत है।[100] (108) इनसे कहो, "मेरे पास जो वह्य आती है वह यह है कि तुम्हारा ख़ुदा सिर्फ़ एक ख़ुदा है। फिर क्या तुम फ़रमाँबरदारी में सिर झुकाते हो?" (109) अगर वे मुँह फेरें तो कह दो कि "मैंने अलानिया तुमको ख़बरदार कर दिया है।

है, न कि इस दुनिया की ज़िन्दगी से।

दुनिया में ज़मीन की थोड़े दिनों की विरासत जिस क़ायदे पर तक़सीम होती है उसे सूरा-7 आराफ़ में इस तरह बयान किया गया है, "ज़मीन अल्लाह की है, अपने बन्दों में से जिसको चाहता है इसका वारिस बनाता है।" (आयत-128)। अल्लाह की मरज़ी के तहत यह विरासत ईमानवाले और इनकारी, नेक और बुरे, फ़रमाँबरदार और नाफ़रमान, सबको मिलती है, मगर आमाल के बदले के तौर पर नहीं, बल्कि इम्तिहान के तौर पर; जैसा कि इसी आयत के बाद दूसरी आयत में फ़रमाया, "और वह तुमको ज़मीन में ख़लीफ़ा बनाएगा। फिर देखेगा कि तुम कैसे काम करते हो।" (आयत-129)। यह विरासत हमेशा रहनेवाली नहीं है। यह मुस्तक़िल और हमेशा का बन्दोबस्त नहीं है। यह सिर्फ़ एक इम्तिहान का मौक़ा है जो ख़ुदा के एक ज़ाब्ते के मुताबिक़ दुनिया में अलग-अलग क़ौमों को बारी-बारी दिया जाता है। इसके बरख़िलाफ़ आख़िरत में इसी ज़मीन का हमेशा क़ायम रहनेवाला बन्दोबस्त होगा, और क़ुरआन के कई साफ़ बयानों की रौशनी में वह इस ज़ाब्ते के मुताबिक़ होगा कि "ज़मीन अल्लाह की है और वह अपने बन्दों में से सिर्फ़ नेक ईमानवालों को इसका वारिस बनाएगा; इम्तिहान के तौर पर नहीं, बल्कि उस नेक रवैये के हमेशा रहनेवाले इनाम के तौर पर जो उन्होंने दुनिया में अपनाया था।" (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-24 नूर, हाशिया-83)

100. दूसरा तर्जमा यह भी हो सकता है कि "हमने तुमको दुनियावालों के लिए रहमत ही बनाकर भेजा है।" दोनों सूरतों में मतलब यह है कि नबी (सल्ल॰) का नबी बनाकर भेजा जाना अस्ल में तमाम इनसानों के लिए ख़ुदा की रहमत और मेहरबानी है; क्योंकि आप (सल्ल॰) ने आकर ग़फ़लत में पड़ी हुई दुनिया को चौंकाया है, और उसे वह इल्म दिया है जो हक़ और बातिल का फ़र्क़ खोल देता है, और उसको बिलकुल साफ़-साफ़ बता दिया है कि उसके लिए तबाही की राह कौन-सी है और सलामती की राह कौन-सी। मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ नबी (सल्ल॰) को अपने लिए परेशानी और मुसीबत समझते थे और कहते थे कि इस शख़्स ने हमारी क़ौम में फूट डाल दी है। हमारे अपनों को हमसे अलग करके रख दिया है। इसपर फ़रमाया गया कि नादानो, तुम जिसे मुसीबत समझ रहे हो, यह अस्ल में तुम्हारे लिए ख़ुदा की रहमत है।

سَوَآءٍ ۭ وَاِنْ اَدْرِيْٓ اَقَرِيْبٌ اَمْ بَعِيْدٌ مَّا تُوْعَدُوْنَ ﴿١٠٩﴾ اِنَّهٗ يَعْلَمُ
الْجَهْرَ مِنَ الْقَوْلِ وَيَعْلَمُ مَا تَكْتُمُوْنَ ﴿١١٠﴾ وَاِنْ اَدْرِيْ لَعَلَّهٗ فِتْنَةٌ
لَّكُمْ وَمَتَاعٌ اِلٰى حِيْنٍ ﴿١١١﴾ قٰلَ رَبِّ احْكُمْ بِالْحَقِّ ۭ وَرَبُّنَا الرَّحْمٰنُ
الْمُسْتَعَانُ عَلٰي مَا تَصِفُوْنَ ﴿١١٢﴾

ع ١٩ ٧ النصف

अब मैं यह नहीं जानता कि वह चीज़ जिसका तुमसे वादा किया जा रहा है,[101] क़रीब है या दूर। (110) अल्लाह वे बातें भी जानता है जो बुलन्द आवाज़ से कही जाती हैं और वे भी जो तुम छिपाकर करते हो।[102] (111) मैं तो यह समझता हूँ कि शायद यह (देर) तुम्हारे लिए एक फ़ितना[103] है और तुम्हें एक ख़ास वक़्त तक के लिए मज़े करने का मौक़ा दिया जा रहा है।''

(112) (आख़िरकार) रसूल ने कहा कि ''ऐ मेरे रब, हक़ के साथ फ़ैसला कर दे। और लोगो, तुम जो बातें बनाते हो उनके मुक़ाबले में हमारा मेहरबान रब ही हमारे लिए मदद का सहारा है।''

---

101. यानी ख़ुदा की पकड़ जो पैग़म्बर की दावत को रद्द कर देने की सूरत में आएगी, चाहे किसी तरह के अज़ाब की शक्ल में आए।
102. इशारा है उन मुख़ालिफ़ाना बातों, साज़िशों और कानाफूसियों की तरफ़ जिनका ज़िक्र सूरा की शुरुआत में किया गया था। वहाँ भी रसूल की ज़बान से उनका यही जवाब दिलवाया गया था कि जो बातें तुम बना रहे हो, वे सब ख़ुदा सुन रहा है और जानता है। यानी इस ग़लतफ़हमी में न रहो कि ये हवा में उड़ गईं और कभी इनके बारे में पूछ-गच्छ न होगी।
103. यानी तुम इस देरी की वजह से फ़ितने में पड़ गए हो। देर तो इसलिए की जा रही है कि तुम्हें संभलने के लिए काफ़ी मुहलत दी जाए और जल्दबाज़ी करके फ़ौरन ही न पकड़ लिया जाए। मगर तुम इससे इस ग़लतफ़हमी में पड़ गए हो कि नबी की सब बातें झूठी हैं वरना, अगर यह सच्चा नबी होता और ख़ुदा ही की तरफ़ से आया होता तो उसको झुठला देने के बाद हम कभी के धर लिए गए होते।

☆☆☆

22. अल-हज

परिचय

नाम

इस सूरा का नाम आयत-27 "व-अज़्-ज़िन फ़िन-नासि बिल-हज्ज" (और लोगों को हज के लिए आम इजाज़त दे दो) से लिया गया है।

उतरने का ज़माना

इस सूरा में मक्की और मदनी सूरतों की ख़ासियतें मिली-जुली पाई जाती हैं। इसी वजह से क़ुरआन की तफ़सीर लिखनेवालों में इस बात पर इख़्तिलाफ़ हुआ है कि यह मक्का में उतरी है या मदीना में। लेकिन हमारे नज़दीक इसके मज़ामीन (विषय) और अन्दाज़े-बयान का यह रंग इस वजह से है कि इसका एक हिस्सा मक्की दौर के आख़िर में उतरा है और दूसरा हिस्सा मदनी दौर के शुरू में उतरा है। इसलिए दोनों दौरों की ख़ासियतें इसमें जमा हो गई हैं।

इबतिदाई हिस्से का मज़मून और बयान का अन्दाज़ साफ़ बताता है कि यह मक्का में उतरा है और बहुत मुमकिन है कि मक्की ज़िन्दगी के आख़िरी दौर में हिजरत से कुछ पहले उतरा हो। यह हिस्सा आयत-24 "व हुदू इलत-तय्यिबि मिनल-क़ौलि व हुदू इला सिरातिल-हमीद" (उनको पाकीज़ा बात क़बूल करने की हिदायत दी गई और उन्हें तारीफ़ के क़ाबिल ख़ूबियों के मालिक अल्लाह का रास्ता दिखाया गया) पर ख़त्म होता है।

इसके बाद "इन्नल्लज़ी-न क-फ़रू व यसुद्दू-न अन सबीलिल्लाहि" (जिन लोगों ने कुफ़्र किया और जो अल्लाह के रास्ते से रोकते हैं) से अचानक मज़मून का रंग बदल जाता है और साफ़ महसूस होता है कि यहाँ से आख़िर तक का हिस्सा मदीना तय्यिबा में उतरा है। नामुमकिन नहीं कि यह हिजरत के बाद पहले ही साल ज़िलहिज्जा में उतरा हो; क्योंकि आयत-25 से 41 तक का मज़मून इसी बात की निशानदेही करता है, और आयत-39, 40 के उतरने का वक़्त भी इसी की ताईद करता है। उस वक़्त मुहाजिर लोग अभी ताज़ा-ताज़ा ही अपने घर-बार छोड़कर मदीना में आए थे। हज के ज़माने में उनको

अपना शहर और हज में सबका इकट्ठा होना याद आ रहा होगा और यह बात बुरी तरह खल रही होगी कि क़ुरैश के मुशरिक लोगों ने उनपर मस्जिदे-हराम का रास्ता तक बन्द कर दिया है। उस ज़माने में उन्हें इस बात का भी इन्तिज़ार होगा कि जिन ज़ालिमों ने उनको घरों से निकाला, मस्जिदे-हराम की ज़ियारत न करने दी और ख़ुदा का रास्ता अपनाने पर उनकी ज़िन्दगी तक दूभर कर दी, उनके ख़िलाफ़ जंग करने की इजाज़त मिल जाए। यह ठीक नफ़सियाती (मनोवैज्ञानिक) मौक़ा था इन आयतों के उतरने का। इनमें पहले तो हज का ज़िक्र करते हुए यह बताया गया है कि यह मस्जिदे-हराम इसलिए बनाई गई थी और यह हज का तरीक़ा इसलिए शुरू किया गया था कि दुनिया में एक अल्लाह की बन्दगी की जाए, मगर आज वहाँ शिर्क हो रहा है और एक अल्लाह की बन्दगी करनेवालों के लिए उसके रास्ते बन्द कर दिए गए हैं। इसके बाद मुसलमानों को इजाज़त दे दी गई है कि वे उन ज़ालिमों के ख़िलाफ़ जंग करें और उन्हें बे-दख़ल करके देश में वह बेहतरीन निज़ाम (व्यवस्था) क़ायम करें जिसमें बुराइयाँ दबें और नेकियाँ फलें-फूलें। इब्ने-अब्बास, मुजाहिद, उरवा-बिन-ज़ुबैर, ज़ैद-बिन-असलम, मुक़ातिल-बिन-हय्यान, क़तादा और दूसरे बड़े तफ़सीर लिखनेवालों का बयान है कि यह पहली आयत है जिसमें मुसलमानों को जंग की इजाज़त दी गई है। और हदीस और सीरत की रिवायतों से साबित है कि इस इजाज़त के बाद फ़ौरन ही क़ुरैश के ख़िलाफ़ अमली सरगर्मियाँ शुरू कर दी गईं और पहली मुहिम सफ़र-2 हिजरी में बहरे-अहमर (लाल सागर) के तट की तरफ़ रवाना हुई जो 'दव्वान' या 'अबवा' की जंग के नाम से मशहूर है।

मौज़ू (विषय) और बहसें

इस सूरा में तीन गरोहों से बात कही गई है। मक्का के मुशरिक, शक और उलझन में पड़े मुसलमान और सच्चे ईमानवाले।

मुशरिकों से बात की शुरुआत मक्का में की गई और मदीना में उसका सिलसिला पूरा किया गया। इस ख़िताब (सम्बोधन) में उनको पूरे ज़ोर के साथ ख़बरदार किया गया है कि तुम ज़िद और हठधर्मी के साथ अपने बे-बुनियाद जहालत भरे ख़यालात पर अड़े रहे, ख़ुदा को छोड़कर उन माबूदों पर भरोसा किया जिनके पास कोई ताक़त नहीं है, और ख़ुदा के रसूल को झुठला दिया। अब तुम्हारा अंजाम वही कुछ होकर रहेगा जो तुमसे पहले इस डगर पर चलनेवालों का हो चुका है। नबी को झुठलाकर और अपनी क़ौम के सबसे अच्छे लोगों को ज़ुल्मों का निशाना बनाकर तुमने अपना ही कुछ बिगाड़ा है। इसके नतीजे में ख़ुदा का जो ग़ज़ब तुमपर टूटेगा उससे तुम्हारे बनावटी माबूद तुम्हें न बचा

सकेंगे। इस चेतावनी और डरावे के साथ समझाने-बुझाने का पहलू बिलकुल ख़ाली नहीं छोड़ दिया गया है। पूरी सूरा में जगह-जगह याददिहानी और नसीहत भी है और शिर्क के ख़िलाफ़ और तौहीद और आख़िरत के हक़ में असरदार दलीलें भी पेश की गई हैं।

शक व शुब्हे में पड़े हुए मुसलमान जो ख़ुदा की बन्दगी तो क़बूल कर चुके थे मगर इस राह में कोई ख़तरा बरदाश्त करने के लिए तैयार न थे, उनको सख़्ती से डाँटा गया है। उनसे कहा गया है कि यह आख़िर कैसा ईमान है कि आराम, ख़ुशी, ऐश मिले तो ख़ुदा तुम्हारा ख़ुदा और तुम उसके बन्दे। मगर जहाँ ख़ुदा की राह में मुसीबत आई और सख़्तियाँ झेलनी पड़ीं, फिर न ख़ुदा तुम्हारा ख़ुदा रहा और न तुम उसके बन्दे रहे। हालाँकि तुम अपने इस रवैये से किसी ऐसी मुसीबत और नुक़सान और तकलीफ़ को नहीं टाल सकते जो ख़ुदा ने तुम्हारे नसीब में लिख दी हो।

ईमानवालों को दो तरीक़ों से मुख़ातब किया गया है। एक ख़िताब (सम्बोधन) ऐसा है जिसमें वे ख़ुद भी मुख़ातब हैं और अरब के आम लोग भी। और दूसरे ख़िताब में सिर्फ़ ईमानवालों को मुख़ातब किया गया है।

पहले ख़िताब में मक्का के मुशरिकों के इस रवैये पर पकड़ की गई है कि उन्होंने मुसलमानों के लिए मस्जिदे-हराम (काबा) का रास्ता बन्द कर दिया है; हालाँकि मस्जिदे-हराम उनकी निजी जायदाद नहीं है और वे किसी को हज से रोकने का हक़ नहीं रखते। यह एतिराज़ न सिर्फ़ यह कि अपनी जगह ख़ुद सही था, बल्कि सियासी हैसियत से यह क़ुरैश के ख़िलाफ़ एक बहुत बड़ा हथियार भी था। इससे अरब के तमाम दूसरे क़बीलों के ज़ेहन में यह सवाल पैदा कर दिया गया कि क़ुरैश हरम के मुजाविर हैं या मालिक? अगर आज अपनी निजी दुश्मनी की वजह से वे एक गरोह को हज से रोक देते हैं और इसको बरदाश्त कर लिया जाता है तो कुछ नामुमकिन नहीं कि कल जिससे भी उनके ताल्लुक़ात ख़राब हों उसको वे हरम की हदों में दाख़िल होने से रोक दें और उसका 'उमरा' और 'हज' बन्द कर दें। इस सिलसिले में मस्जिदे-हराम की तारीख़ बयान करते हुए एक तरफ़ यह बताया गया है कि इबराहीम (अलैहि॰) ने जब ख़ुदा के हुक्म से इसको बनाया था तो सब लोगों को हज करने की आम इजाज़त दी थी और वहाँ पहले दिन से मक़ामी बाशिन्दों और बाहर से आनेवालों के हुक़ूक़ समान ठहराए गए थे। दूसरी तरफ़ यह बताया गया है कि यह घर शिर्क के लिए नहीं, बल्कि एक ख़ुदा की बन्दगी के लिए बना था, अब यह क्या ग़ज़ब है कि वहाँ एक ख़ुदा की बन्दगी तो हो मना और बुतों की पूजा के लिए हो पूरी आज़ादी।

दूसरे ख़िताब में मुसलमानों को क़ुरैश के ज़ुल्म का जवाब ताक़त से देने की हिदायत

की गई है और साथ-साथ उनको यह भी बताया गया है कि जब तुम्हें इक़्तिदार (सत्ता) मिल जाए तो तुम्हारा रवैया क्या होना चाहिए और अपनी हुकूमत में तुमको किस मक़सद के लिए काम करना चाहिए। यह बात सूरा के बीच में भी है और आख़िर में भी। आख़िर में ईमानवालों के गरोह के लिए 'मुस्लिम' (फ़रमाँबरदार) के नाम का बाक़ायदा एलान करते हुए यह कहा गया है कि इबराहीम (अलैहि॰) के अस्ल जानशीन (उत्तराधिकारी) तुम लोग हो, तुम्हें इस काम के लिए चुन लिया गया है कि दुनिया में लोगों के सामने हक़ की गवाही के मक़ाम पर खड़े हो। अब तुम्हें नमाज़ क़ायम करने, ज़कात देने और ख़ैरात के ज़रिए से अपनी ज़िन्दगी को बेहतरीन नमूने की ज़िन्दगी बनाना चाहिए और अल्लाह के भरोसे पर अल्लाह के कलिमे को बुलन्द करने के लिए जिहाद करना चाहिए।

इस मौक़े पर सूरा-2 बक़रा और सूरा-8 अनफ़ाल के परिचयों पर भी निगाह डाल ली जाए तो समझने में ज़्यादा आसानी होगी।

☆☆☆

آيَاتُهَا ٧٨ ٢٢ سُوْرَةُ الْحَجِّ مَدَنِيَّةٌ ١٠٣ رُكُوْعَاتُهَا ١٠

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ اتَّقُوْا رَبَّكُمْ ۚ اِنَّ زَلْزَلَةَ السَّاعَةِ شَيْءٌ عَظِيْمٌ ① يَوْمَ تَرَوْنَهَا تَذْهَلُ كُلُّ مُرْضِعَةٍ عَمَّآ اَرْضَعَتْ وَتَضَعُ كُلُّ ذَاتِ حَمْلٍ حَمْلَهَا

22. अल-हज

(मक्का में उतरी—आयतें-78)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) लोगो, अपने रब के ग़ज़ब से बचो, हक़ीक़त यह है कि क़ियामत का ज़लज़ला बड़ी (भयानक) चीज़ है।[1] (2) जिस दिन तुम उसे देखोगे, हाल यह होगा कि हर दूध

1. यह ज़लज़ला (भूकम्प) क़ियामत की शुरुआती कैफ़ियतों में से है और बहुत मुमकिन यह है कि इसका वक़्त वह होगा जबकि ज़मीन यकायक उलटी फिरनी शुरू हो जाएगी और सूरज पूरब के बजाय पश्चिम से निकलेगा। यही बात क़ुरआन के पुराने तफ़सीर लिखनेवालों में से अलक़मा और शाबी ने बयान की है कि "यह उस वक़्त होगा जबकि सूरज पश्चिम से निकलेगा।" और यही बात उस लम्बी हदीस से मालूम होती है जो इब्ने-जरीर, तबरानी और इब्ने-अबी-हातिम वग़ैरा ने हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) की रिवायत से नक़्ल की है। उसमें नबी (सल्ल.) ने बताया है कि सूर फूँके जाने के तीन मौक़े हैं। एक 'नफ़ख़ि फ़-ज़अ', दूसरा 'नफ़ख़ि सअक़' और तीसरा 'नफ़ख़ि क़ियामि-लिरब्बिल-आलमीन'। यानी पहला सूर आम घबराहट पैदा करेगा, दूसरा सूर फूँके जाने पर सब मरकर गिर जाएँगे और तीसरा सूर फूँके जाने पर सब लोग ज़िन्दा होकर ख़ुदा के सामने पेश हो जाएँगे। फिर पहले सूर की तफ़सीली कैफ़ियत बयान करते हुए आप (सल्ल.) बताते हैं कि उस वक़्त ज़मीन की हालत उस नाव की-सी होगी जो मौजों के थपेड़े खाकर डगमगा रही हो, या उस लटकी हुई लालटेन की-सी हो जिसको हवा के झोंके बुरी तरह झिंझोड़ रहे हों। उस वक़्त ज़मीन की आबादी पर जो कुछ गुज़रेगी उसका नक़्शा क़ुरआन मजीद में अलग-अलग जगहों पर खींचा गया है। जैसे—

"फिर जब एक बार सूर में फूँक मार दी जाएगी और ज़मीन और पहाड़ों को उठाकर एक ही चोट में चूरा-चूरा कर दिया जाएगा, उस दिन वह होनेवाला वाक़िआ पेश आ जाएगा।"

(सूरा-69 हाक़्क़ा, आयतें—13-15)

"जबकि ज़मीन पूरी शिद्दत (तीव्रता) के साथ हिला डाली जाएगी, और ज़मीन अपने अन्दर के

وَتَرَى النَّاسَ سُكٰرٰى وَمَا هُمْ بِسُكٰرٰى وَلٰكِنَّ عَذَابَ اللّٰهِ شَدِيْدٌ ②

पिलानेवाली अपने दूध पीते बच्चे से ग़ाफ़िल हो जाएगी,[2] हर हामिला (गर्भवती) का हमल (गर्भ) गिर जाएगा, और लोग तुमको मदहोश नज़र आएँगे; हालाँकि वे नशे में न होंगे, बल्कि अल्लाह का अज़ाब ही कुछ ऐसा सख़्त होगा।[3]

सारे बोझ निकालकर बाहर डाल देगी, और इनसान कहेगा कि यह इसको क्या हो रहा है!"
(सूरा-99 ज़िलज़ाल, आयतें—1-3)
"जिस दिन हिला मारेगा ज़लज़ले का झटका और उसके बाद पीछे एक और झटका पड़ेगा, कुछ दिल होंगे जो उस दिन ख़ौफ़ से काँप रहे होंगे, निगाहें उनकी डरी हुई होंगी।"
(सूरा-79 नाज़िआत, आयतें—6-9)
"ज़मीन उस दिन यकबारगी हिला डाली जाएगी और पहाड़ इस तरह चूरा-चूरा कर दिए जाएँगे कि बिखरी हुई धूल बनकर रह जाएँगे।" (सूरा-56 वाक़िआ, आयतें—4-6)
"अगर तुम मानने से इनकार करोगे तो कैसे बचोगे उस दिन से जो बच्चों को बूढ़ा कर देगा, और जिसकी सख़्ती से आसमान फटा जा रहा होगा।" (सूरा-73 मुज़्ज़म्मिल, आयतें—17-18)
हालाँकि कुछ तफ़सीर लिखनेवालों ने इस ज़लज़ले का वक़्त वह बताया है जबकि मुर्दे ज़िन्दा होकर अपने रब के सामने पेश होंगे, और इसकी ताईद में कई हदीसें भी बयान की हैं, लेकिन क़ुरआन का बयान इन रिवायतों को क़बूल करने की इजाज़त नहीं देता है। क़ुरआन इसका वक़्त वह बता रहा है जबकि माएँ अपने बच्चों को दूध पिलाते-पिलाते छोड़कर भाग खड़ी होंगी, और हामिलाओं के हमल गिर जाएँगे। अब यह ज़ाहिर है कि आख़िरत की ज़िन्दगी में न कोई औरत अपने बच्चे को दूध पिला रही होगी और न किसी हामिला के हमल गिरने का कोई मौक़ा होगा, क्योंकि क़ुरआन के साफ़-साफ़ बयानों के मुताबिक़ वहाँ सब रिश्ते कट चुके होंगे और हर शख़्स अपनी इन्फ़िरादी हैसियत से ख़ुदा के सामने हिसाब देने के लिए खड़ा होगा। इसलिए उसी रिवायत को तरजीह दी जाएगी जो हमने पहले नक़्ल की है। हालाँकि उसकी सनद कमज़ोर है, मगर क़ुरआन से मेल खाना उसकी कमज़ोरी को दूर कर देता है। और ये दूसरी रिवायतें अगरचे सनद के एतिबार से ज़्यादा मज़बूत हैं, लेकिन क़ुरआन के ज़ाहिर बयान से मेल न खाना इनको कमज़ोर कर देता है।

2. आयत में अरबी लफ़्ज़ "मुरज़िअ' के बजाय "मुरज़ि-आ" का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है। अरबी ज़बान के लिहाज़ से दोनों में फ़र्क़ यह है कि 'मुरज़िअ' उस औरत को कहते हैं जो दूध पिलानेवाली हो, और 'मुरज़ि-आ' उस हालत में बोलते हैं जबकि वह अमली तौर से दूध पिला रही हो और बच्चा उसकी छाती मुँह में लिए हुए हो। तो यहाँ नक़्शा यह खींचा गया है कि जब वह क़ियामत का ज़लज़ला आएगा तो माएँ अपने बच्चों को दूध पिलाते-पिलाते छोड़कर भाग निकलेंगी और किसी माँ को यह होश न रहेगा कि उसके लाडले पर क्या बीती।
3. याद रहे कि यहाँ बात का अस्ल मक़सद क़ियामत का हाल बयान करना नहीं है, बल्कि ख़ुदा के अज़ाब से डराकर उन बातों से बचने की ताकीद करना है जो उसके ग़ज़ब का सबब होती हैं। लिहाज़ा क़ियामत का थोड़ा-सा हाल बयान करने के बाद आगे अस्ल मक़सद पर बात

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يُّجَادِلُ فِي اللّٰهِ بِغَيْرِ عِلْمٍ وَّيَتَّبِعُ كُلَّ شَيْطٰنٍ
مَّرِيْدٍ ۝٣ كُتِبَ عَلَيْهِ اَنَّهٗ مَنْ تَوَلَّاهُ فَاَنَّهٗ يُضِلُّهٗ وَيَهْدِيْهِ اِلٰى عَذَابِ
السَّعِيْرِ ۝٤ يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ اِنْ كُنْتُمْ فِيْ رَيْبٍ مِّنَ الْبَعْثِ فَاِنَّا
خَلَقْنٰكُمْ مِّنْ تُرَابٍ ثُمَّ مِنْ نُّطْفَةٍ ثُمَّ مِنْ عَلَقَةٍ ثُمَّ مِنْ مُّضْغَةٍ
مُّخَلَّقَةٍ وَّغَيْرِ مُخَلَّقَةٍ لِّنُبَيِّنَ لَكُمْ ؕ وَنُقِرُّ فِي الْاَرْحَامِ مَا نَشَآءُ اِلٰى

(3) कुछ लोग ऐसे हैं जो इल्म के बिना अल्लाह के बारे में बहसें करते हैं[4] और हर सरकश शैतान की पैरवी करने लगते हैं; (4) हालाँकि उसके तो नसीब ही में यह लिखा है कि जो उसको दोस्त बनाएगा उसे वह गुमराह करके छोड़ेगा और जहन्नम के अज़ाब का रास्ता दिखाएगा। (5) लोगो, अगर तुम्हें मरने के बाद की ज़िन्दगी के बारे में कुछ शक है तो तुम्हें मालूम हो कि हमने तुमको मिट्टी से पैदा किया है; फिर नुत्फ़े (वीर्य की बूँद) से,[5] फिर ख़ून के लोथड़े से, फिर गोश्त की बोटी से जो शक्लवाली भी होती है और बे-शक्ल भी।[6] (यह हम इसलिए बता रहे हैं) ताकि तुमपर हक़ीक़त खोल दें। हम जिस

शुरू होती है।

4. आगे की तक़रीर से मालूम होता है कि यहाँ अल्लाह तआला के बारे में उनके जिस झगड़े पर बात की जा रही है, वह अल्लाह की हस्ती और उसके वुजूद के बारे में नहीं, बल्कि उसके हक़ों और अधिकारों और उसकी भेजी हुई तालीमात के बारे में था। नबी (सल्ल॰) उनसे तौहीद और आख़िरत मनवाना चाहते थे, और इसी पर वे आप (सल्ल॰) से झगड़ा करते थे। इन दोनों अक़ीदों पर झगड़ा आख़िरकार जिस चीज़ पर जाकर ठहरता था वह यही थी कि ख़ुदा क्या कर सकता है और क्या नहीं कर सकता, और यह कि कायनात में क्या ख़ुदाई सिर्फ़ एक ही ख़ुदा की है या कुछ दूसरी हस्तियों की भी।
5. इसका मतलब या तो यह है कि हर इनसान उन माद्दों (तत्त्वों) से पैदा किया जाता है जो सब-के-सब ज़मीन से हासिल होते हैं और इस पैदाइश की शुरुआत नुत्फ़े (वीर्य की बूँद) से होती है। या यह कि इनसानी नस्ल की शुरुआत आदम (अलैहि॰) से की गई जो सीधे तौर पर मिट्टी से बनाए गए थे, और फिर आगे इनसानी नस्ल का सिलसिला नुत्फ़े से चला, जैसा कि सूरा-32 सजदा में कहा गया, "इनसान की पैदाइश गारे से की और फिर उसकी नस्ल एक ऐसे सत से चलाई जो हक़ीर पानी की तरह का है।" (आयतें—7, 8)
6. यह इशारा है उन अलग-अलग हालतों की तरफ़ जिनसे माँ के पेट में बच्चा गुज़रता है। उनकी वे तफ़सीलात बयान नहीं की गईं जो आजकल सिर्फ़ ताक़तवर ख़ुर्दबीनों (सूक्ष्मदर्शी यंत्रों) ही से

اَجَلٍ مُّسَمًّى ثُمَّ نُخْرِجُكُمْ طِفْلًا ثُمَّ لِتَبْلُغُوْٓا اَشُدَّكُمْ ۚ وَمِنْكُمْ
مَّنْ يُّتَوَفّٰى وَمِنْكُمْ مَّنْ يُّرَدُّ اِلٰٓى اَرْذَلِ الْعُمُرِ لِكَيْلَا يَعْلَمَ مِنْۢ بَعْدِ
عِلْمٍ شَيْـًٔا ؕ وَتَرَى الْاَرْضَ هَامِدَةً فَاِذَآ اَنْزَلْنَا عَلَيْهَا الْمَآءَ
اهْتَزَّتْ وَرَبَتْ وَاَنْۢبَتَتْ مِنْ كُلِّ زَوْجٍۢ بَهِيْجٍ ۝ ذٰلِكَ بِاَنَّ اللّٰهَ
هُوَ الْحَقُّ وَاَنَّهٗ يُحْيِ الْمَوْتٰى وَاَنَّهٗ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝ وَّاَنَّ السَّاعَةَ

(नुत्फ़े) को चाहते हैं एक ख़ास वक़्त तक रहमों (गर्भाशयों) में ठहराए रखते हैं। फिर तुमको एक बच्चे की सूरत में निकाल लाते हैं (फिर तुम्हें पालते हैं), ताकि तुम अपनी पूरी जवानी को पहुँचो। और तुममें से कोई पहले ही वापस बुला लिया जाता है और कोई बहुत बुरी उम्र की तरफ़ फेर दिया जाता है, ताकि सब कुछ जानने के बाद फिर कुछ न जाने।[7] और तुम देखते हो कि ज़मीन सूखी पड़ी है, फिर जहाँ हमने उसपर मेंह बरसाया कि यकायक वह फबक उठी और फूल गई और उसने हर तरह की ख़ुशनुमा नबातात (वनस्पतियाँ) उगलनी शुरू कर दीं। (6) यह सब कुछ इस वजह से है कि अल्लाह ही हक़ (सत्य) है,[8] और वह मुर्दों को ज़िन्दा करता है, और वह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है, (7) और यह (इस बात की दलील है) कि क़ियामत की घड़ी आकर

नज़र आ सकती हैं, बल्कि उन बड़ी-बड़ी नुमायाँ तब्दीलियों का ज़िक्र किया गया है जिनसे उस ज़माने के आम अरब-देहाती भी वाक़िफ़ थे। यानी नुत्फ़ा ठहरने के बाद शुरू में जमे हुए ख़ून का एक लोथड़ा-सा होता है, फिर वह गोश्त की एक बोटी में तब्दील हो जाता है जिसमें पहले शक्ल-सूरत कुछ नहीं होती और आगे चलकर इनसानी शक्ल नुमायाँ होती चली जाती है। हमल गिरने की अलग-अलग हालतों में चूँकि इनसान की पैदाइश के ये सारे मरहले लोगों के देखने में आते थे, इसलिए इन्हीं की तरफ़ इशारा किया गया है। इसको समझने के लिए इल्मुल-जनीन (भ्रूण-विज्ञान) की जानकारी की तफ़सीली तहक़ीक़ात की न उस वक़्त ज़रूरत थी, न आज है।

7. यानी बुढ़ापे की वह हालत जिसमें आदमी को अपने तन-बदन का होश भी नहीं रहता। वही शख़्स जो दूसरों को अक़्ल बताता था, बूढ़ा होकर उस हालत को पहुँच जाता है जो बच्चे की हालत जैसी होती है। जिस इल्म और जानकारी और तजरिबेकारी और दुनिया देखे होने पर उसको नाज़ था, वह ऐसी बे-ख़बरी में तब्दील हो जाती है कि बच्चे तक उसकी बातों पर हँसने लगते हैं।
8. बात के इस सिलसिले में यह जुमला तीन मानी दे रहा है। एक यह कि अल्लाह ही सच्चा है

اٰتِيَةٌ لَّا رَيْبَ فِيْهَا ۙ وَاَنَّ اللّٰهَ يَبْعَثُ مَنْ فِي الْقُبُوْرِ ⑦

रहेगी, इसमें किसी शक की गुंजाइश नहीं, और अल्लाह ज़रूर उन लोगों को उठाएगा जो क़ब्रों में जा चुके हैं।[9]

और तुम्हारा यह गुमान बिलकुल ग़लत है कि मौत के बाद दोबारा ज़िन्दगी का कोई इमकान नहीं। दूसरा यह कि अल्लाह का वुजूद सिर्फ़ एक ख़याली और फ़र्ज़ी वुजूद नहीं है, जिसे कुछ अक़्ली मुश्किलें दूर करने के लिए मान लिया गया हो। वह निरा फ़लसफ़ियों (दार्शनिकों) के ख़याल की उपज, वाजिबुल-वुजूद (ख़ुद का पैदा किया हुआ) और इल्लतुल-इलल (पहली वजह, First Cause) ही नहीं है, बल्कि वह हक़ीक़ी सब कुछ करने का अधिकारी है जो हर पल अपनी क़ुदरत, अपने इरादे, अपने इल्म और अपनी हिकमत से पूरी कायनात और उसकी एक-एक चीज़ की तदबीर कर रहा है। तीसरा यह कि वह खिलंडरा नहीं है कि सिर्फ़ दिल बहलाने के लिए खिलौने बनाए और फिर यूँ ही तोड़-फोड़कर मिट्टी में मिला दे। वह हक़ (सत्य) है, उसके सब काम संजीदा और बा-मक़सद और हिकमत से भरे हैं।

9. इन आयतों में इनसान की पैदाइश की अलग-अलग हालतों, ज़मीन पर बारिश के असरात और पेड़-पौधों की पैदावार को पाँच हक़ीक़तों की निशानदेही करनेवाली दलीलें ठहराया गया है—

(1) यह कि अल्लाह ही हक़ है,
(2) यह कि वह मुर्दों को ज़िन्दा करता है,
(3) यह कि वह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है,
(4) यह कि क़ियामत की घड़ी आकर रहेगी, और
(5) यह कि अल्लाह ज़रूर उन सब लोगों को ज़िन्दा करके उठाएगा जो मर चुके हैं।

अब देखिए कि ये निशानियाँ उन पाँचों हक़ीक़तों की किस तरह निशानदेही करती हैं।

कायनात के पूरे निज़ाम (व्यवस्था) को छोड़कर आदमी सिर्फ़ अपनी ही पैदाइश पर ग़ौर करे तो मालूम हो जाएगा कि एक-एक इनसान के वुजूद में अल्लाह की हक़ीक़ी और वाक़ई तदबीर हर वक़्त अमली तौर पर काम कर रही है और हर एक के वुजूद और पलने-बढ़ने का एक-एक मरहला उसके इरादी फ़ैसले पर ही तय होता है। कहनेवाले कहते हैं कि यह सब कुछ एक लगे-बंधे क़ानून पर हो रहा है जिसको एक अंधी-बहरी बे-इल्म और बे-इरादा फ़ितरत चला रही है। लेकिन वे आँखें खोलकर देखें तो उन्हें नज़र आए कि एक-एक इनसान जिस तरह वुजूद में आता है और फिर जिस तरह वह वुजूद के अलग-अलग मरहलों से गुज़रता है उसमें एक हिकमतवाली और क़ादिरे-मुतलक़ (सर्वशक्तिमान) हस्ती का इरादी फ़ैसला किस शान से काम कर रहा है। आदमी जो खाना खाता है उसमें कहीं इनसानी बीज मौजूद नहीं होता, न उसमें कोई चीज़ ऐसी होती है जो इनसानी जान की ख़ासियतें पैदा करती हो। यह खाना जिस्म में जाकर कहीं बाल, कहीं गोश्त और कहीं हड्डी बनता है, और एक ख़ास जगह पर पहुँचकर यही उस नुत्फ़े में तब्दील हो जाता है जिसके अन्दर इनसान बनने की सलाहियत रखनेवाले बीज

मौजूद होते हैं। इन बीजों (शुक्राणुओं) की ज़्यादती का हाल यह होता है कि एक वक़्त में एक मर्द से जितना नुत्फ़ा (वीर्य) निकलता है उसके अन्दर कई करोड़ बीज पाए जाते हैं और उनमें से हर एक बैज़ा-ए-उनसा (औरत के अंडाणु) से मिलकर इनसान बन जाने की सलाहियत रखता है। मगर यह किसी हिकमत और क़ुदरतवाले और हर चीज़ की ताक़त रखनेवाले हाकिम का फ़ैसला है जो इन अनगिनत उम्मीदवारों में से किसी एक को किसी ख़ास वक़्त पर छाँटकर औरत के अंडाणु से मिलने का मौक़ा देता है और इस तरह हमल (गर्भ) ठहरता है। फिर हमल ठहरने के वक़्त मर्द के बीज (Sperm) और औरत के अंडाणु कोशों (Egg Cells) के मिलने से जो चीज़ शुरू में बनती है वह इतनी छोटी होती है कि सूक्ष्मदर्शी (Microscope) के बिना नहीं देखी जा सकती। यह हक़ीर-सी चीज़ 9 महीने और कुछ दिन में पेट के अन्दर परवरिश पाकर जिन अनगिनत मरहलों से गुज़रती हुई एक जीते-जागते इनसान की शक्ल इख़्तियार करती है उनमें से हर मरहले पर ग़ौर करो तो तुम्हारा दिल गवाही देगा कि यहाँ हर पल एक हिकमतवाली और निहायत सरगर्म हस्ती का इरादी फ़ैसला काम करता रहा है। वही फ़ैसला करता है कि किसे तकमील (पूर्णता) को पहुँचाना है और किसे ख़ून के लोथड़े, या गोश्त की बोटी, या अधूरे बच्चे की शक्ल में गिरा देना है। वही फ़ैसला करता है कि किसको ज़िन्दा निकालना है और किसको मुर्दा। किसको मामूली इनसान की सूरत और शक्ल में निकालना है और किसे अनगिनत ग़ैर-मामूली सूरतों में से कोई सूरत दे देनी है। किसको सही-सलामत निकालना है और किसे अंधा, बहरा, गूँगा या टुंडा या लुंजा बनाकर फेंक देना है। किसको ख़ूबसूरत बनाना है और किसे बदसूरत। किसको मर्द बनाना है और किसको औरत। किसको आला दरजे की क़ुव्वतें और सलाहियतें देकर भेजना है और किसे नासमझ और कम दिमाग़ बनाकर पैदा करना है। यह पैदाइश और शक्ल देने का अमल जो हर दिन करोड़ों औरतों के पेटों में हो रहा है, इसके दौरान में किसी वक़्त किसी मरहले पर भी एक ख़ुदा के सिवा दुनिया की कोई ताक़त ज़र्रा बराबर अपना असर नहीं डाल सकती, बल्कि किसी को यह भी मालूम नहीं होता कि किस पेट में क्या चीज़ बन रही है और क्या बनकर निकलनेवाली है। हालाँकि इनसानी आबादियों की क़िस्मत के कम-से-कम 90 फ़ीसद फ़ैसले इन्हीं मरहलों में हो जाते हैं और यहीं लोगों ही के नहीं, क़ौमों के, बल्कि पूरी इनसानी नस्ल के मुस्तक़बिल (भविष्य) की शक्ल बनाई और बिगाड़ी जाती है। इसके बाद जो बच्चे दुनिया में आते हैं, उनमें से हर एक के बारे में यह फ़ैसला कौन करता है कि किसे ज़िन्दगी की पहली साँस लेते ही ख़त्म हो जाना है, किसे बढ़कर जवान होना है और किसको क़ियामत के बोरिये समेटने हैं? यहाँ भी एक पूरी तरह हावी इरादा काम करता नज़र आता है और ग़ौर किया जाए तो महसूस होता है कि उसकी कारफ़रमाई किसी आलमगीर तदबीर और हिकमत के साथ हो रही है जिसके मुताबिक़ वह लोगों ही की नहीं, क़ौमों और देशों की क़िस्मत के भी फ़ैसले कर रहा है। यह सब कुछ देखकर भी अगर किसी को इस बात में शक है कि अल्लाह 'हक़' है और सिर्फ़ अल्लाह ही 'हक़' है तो बेशक वह अक़्ल का अंधा है।

दूसरी बात जो पेश की गई निशानियों से साबित होती है वह यह है कि "अल्लाह मुर्दों को ज़िन्दा करता है।" लोगों को तो यह सुनकर अचम्भा होता है कि अल्लाह किसी वक़्त मुर्दों को

ज़िन्दा करेगा, मगर वे आँखें खोलकर देखें तो उन्हें दिखाई दे कि वह तो हर वक़्त मुर्दे जिला रहा है। जिन चीज़ों से आपका जिस्म बना है और जिन ग़िज़ाओं (खाद्य पदार्थों) से वह पलता-बढ़ता है उनकी जाँच करके देख लीजिए। कोयला, लोहा, चूना, कुछ नमकीन चीज़ें, कुछ हवाएँ, और ऐसी ही कुछ चीज़ें और हैं। इनमें से किसी चीज़ में भी ज़िन्दगी और इनसान होने की ख़ासियतें मौजूद नहीं हैं। मगर इन्हीं मुर्दा-बेजान चीज़ों को जमा करके आपको जीता-जागता वुजूद बना दिया गया है। फिर इन्हीं माद्दों की ग़िज़ा आपके जिस्म में जाती है और वहाँ इससे मर्दों में वे बीज और औरतों में वे अंडाणु कोशिकाएँ बनती हैं जिनके मिलने से आप ही जैसे जीते-जागते इनसान हर दिन बन-बनकर निकल रहे हैं। इसके बाद ज़रा अपने आसपास की ज़मीन पर निगाह डालिए। अनगिनत अलग-अलग चीज़ों के बीज थे जिनको हवाओं और परिन्दों ने जगह-जगह फैला दिया था, और अनगिनत अलग-अलग चीज़ों की जड़ें थीं जो जगह-जगह मिट्टी में दबी पड़ी थीं। उनमें कहीं भी पेड़-पौधेवाली ज़िन्दगी का कोई निशान मौजूद न था। आपके आसपास की सूखी ज़मीन उन लाखों मुर्दों की क़ब्र बनी हुई थी। मगर ज्यों ही कि पानी का एक छींटा पड़ा, हर तरफ़ जिन्दगी लहलहाने लगी, हर मुर्दा जड़ अपनी क़ब्र से जी उठी, और हर बेजान बीज ने एक ज़िन्दा पौधे का रूप ले लिया। यह मौत के बाद दोबारा ज़िन्दगी मिलने का अमल हर बरसात में आपकी आँखों के सामने होता है।

तीसरी चीज़ जो इन मुशाहदों (अवलोकनों) से साबित होती है वह यह है कि "अल्लाह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है।" सारी कायनात (सृष्टि) को छोड़कर सिर्फ़ अपनी इसी ज़मीन को ले लीजिए, और ज़मीन की भी तमाम हक़ीक़तों और वाक़िआत को छोड़कर सिर्फ़ इनसान और पेड़-पौधों ही की ज़िन्दगी पर नज़र डालकर देख लीजिए। यहाँ उसकी क़ुदरत के जो करिश्मे आपको नज़र आते हैं, क्या उन्हें देखकर कोई अक़्ल रखनेवाला आदमी यह बात कह सकता है कि ख़ुदा बस वही कुछ कर सकता है जो आज हम उसे करते हुए देख रहे हैं और कल अगर वह कुछ और करना चाहे तो नहीं कर सकता? ख़ुदा तो ख़ैर बहुत बुलन्द और बड़ी हस्ती है, इनसान के बारे में पिछली सदी तक लोगों के ये अन्दाज़े थे कि यह सिर्फ़ ज़मीन ही पर चलनेवाली गाड़ियाँ बना सकता है, हवा पर उड़नेवाली गाड़ियाँ बनाना इसके बस में नहीं है। मगर आज के हवाई जहाज़ों ने बता दिया कि इनसान के 'इमकानात' (सम्भावनाओं) की हदें तय करने में उनके अन्दाज़े कितने ग़लत थे। अब अगर कोई शख़्स ख़ुदा के लिए उसके सिर्फ़ आज के काम देखकर इमकानात की कुछ हदें तय कर देता है और कहता है कि जो कुछ वह कर रहा है उसके सिवा वह कुछ नहीं कर सकता तो वह सिर्फ़ अपने ही ज़ेहन की तंगी का सुबूत देता है, अल्लाह की क़ुदरत बहरहाल उसकी बाँधी हुई हदों में बन्द नहीं हो सकती।

चौथी और पाँचवीं बात, यानी यह कि "क़ियामत की घड़ी आकर रहेगी" और यह कि "अल्लाह ज़रूर उन सब लोगों को ज़िन्दा करके उठाएगा जो मर चुके हैं," उन तीन इबतिदाई बातों का अक़्ली नतीजा है जो ऊपर बयान हुई हैं। अल्लाह के कामों को उसकी क़ुदरत के पहलू से देखिए तो दिल गवाही देगा कि वह जब चाहे क़ियामत ला सकता है और जब चाहे उन सब मरनेवालों को फिर से ज़िन्दा कर सकता है जिनको पहले उस वक़्त वुजूद में लाया था जबकि उनका कोई वुजूद ही नहीं था, और अगर उसके कामों को उसकी हिकमत के पहलू से

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يُّجَادِلُ فِي اللّٰهِ بِغَيْرِ عِلْمٍ وَّلَا هُدًى وَّلَا كِتٰبٍ
مُّنِيْرٍ ۝٨ ثَانِيَ عِطْفِهٖ لِيُضِلَّ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۗ لَهٗ فِي الدُّنْيَا خِزْيٌ

(8-9) कुछ और लोग ऐसे हैं जो किसी इल्म[10] और हिदायत[11] और रौशनी देनेवाली किताब[12] के बिना, गरदन अकड़ाए हुए,[13] ख़ुदा के बारे में झगड़ते हैं; ताकि लोगों को

देखिए तो अक़्ल गवाही देगी कि ये दोनों काम भी वह ज़रूर करके रहेगा; क्योंकि इनके बिना हिकमत के तक़ाज़े पूरे नहीं होते और एक हिकमतवाली हस्ती से यह नामुमकिन है कि वह उन तक़ाज़ों को पूरा न करे। जो थोड़ी-सी हिकमत और समझदारी इनसान को हासिल है, उसका यह नतीजा हम देखते हैं कि आदमी अपना माल या जायदाद या कारोबार जिसके सुपुर्द भी करता है उससे किसी-न-किसी वक़्त हिसाब ज़रूर लेता है। यानी अमानत और हिसाब लेने के बीच एक लाज़िमी अक़्ली राबिता है जिसको इनसान की महदूद हिकमत भी किसी हाल में नज़र अन्दाज़ नहीं करती। फिर इसी हिकमत की बुनियाद पर आदमी जान-बूझकर और अनजाने में किए गए कामों में फ़र्क़ करता है, इरादे के साथ किए गए कामों के साथ अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी का तसव्वुर (धारणा) जोड़ता है, कामों में अच्छे और बुरे का फ़र्क़ करता है, अच्छे कामों का नतीजा तारीफ़ और इनाम की शक्ल में देखना चाहता है, और बुरे कामों पर सज़ा का तक़ाज़ा करता है, यहाँ तक कि ख़ुद एक अदालती निज़ाम इस मक़सद के लिए वुजूद में लाता है। यह हिकमत जिस पैदा करनेवाले ने इनसान में पैदा की है, क्या यह समझा जा सकता है कि वह ख़ुद इस हिकमत से ख़ाली होगा? क्या माना जा सकता है कि अपनी इतनी बड़ी दुनिया, इतने सरो-सामान और इतने ज़्यादा इख़्तियारात के साथ, इनसान के सुपुर्द करके वह भूल गया है? उसका हिसाब वह कभी न लेगा? क्या किसी सही दिमाग़ आदमी की अक़्ल यह गवाही दे सकती है कि इनसान के जो बुरे काम सज़ा से बच निकले हैं, या जिन बुराइयों की मुनासिब सज़ा उसे नहीं मिल सकी है उनकी पूछ-गच्छ के लिए कभी अदालत क़ायम न होगी, और जो भलाइयाँ अपने इनसाफ़ के मुताबिक़ इनाम से महरूम रह गई हैं वे हमेशा महरूम ही रहेंगी? अगर ऐसा नहीं है तो क़ियामत और मरने के बाद की ज़िन्दगी हिकमतवाले ख़ुदा की हिकमत का एक लाज़िमी तक़ाज़ा है जिसका पूरा होना नहीं, बल्कि न पूरा होना सरासर अक़्ल के ख़िलाफ़ बात है।

10. यानी वह निजी जानकारी जो सीधे तौर पर मुशाहिदे और तजरिबे से हासिल हुई हो।
11. यानी वह जानकारी जो किसी दलील से हासिल हुई हो या किसी इल्म रखनेवाले की रहनुमाई से।
12. यानी वह जानकारी जो ख़ुदा की उतारी हुई किताब से हासिल हुई हो।
13. इसमें तीन कैफ़ियतें शामिल हैं— जाहिलाना ज़िद और हठधर्मी, घमंड और ग़ुरूरे-नफ़्स (अहंकार) और किसी समझानेवाले की बात की तरफ़ ध्यान न देना।

وَّنُذِيْقُهٗ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ عَذَابَ الْحَرِيْقِ۝٩ ذٰلِكَ بِمَا قَدَّمَتْ يَدٰكَ
وَاَنَّ اللّٰهَ لَيْسَ بِظَلَّامٍ لِّلْعَبِيْدِ۝١٠ وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّعْبُدُ اللّٰهَ عَلٰى
حَرْفٍ ۚ فَاِنْ اَصَابَهٗ خَيْرُ ۨاطْمَاَنَّ بِهٖ ۚ وَاِنْ اَصَابَتْهُ فِتْنَةُ ۨانْقَلَبَ
عَلٰى وَجْهِهٖ ۫ خَسِرَ الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةَ ۭ ذٰلِكَ هُوَ الْخُسْرَانُ الْمُبِيْنُ۝١١

ع

अल्लाह के रास्ते से भटका दें।[14] ऐसे शख़्स के लिए दुनिया में रुसवाई है और क़ियामत के दिन उसको हम आग के अज़ाब का मज़ा चखाएँगे। (10)—यह है तेरा वह मुस्तक़बिल (भविष्य) जो तेरे अपने हाथों ने तेरे लिए तैयार किया है वरना अल्लाह अपने बन्दों पर ज़ुल्म करनेवाला नहीं है।

(11) और लोगों में कोई ऐसा है जो किनारे पर रहकर अल्लाह की बन्दगी करता है,[15] अगर फ़ायदा हुआ तो मुत्मइन हो गया और जो कोई मुसीबत आ गई तो उलटा फिर गया।[16] उसकी दुनिया भी गई और आख़िरत भी। यह है खुला घाटा।[17]———

14. पहले उन लोगों का ज़िक्र था जो ख़ुद गुमराह हैं। और इस आयत में उन लोगों का ज़िक्र है जो ख़ुद ही गुमराह नहीं हैं, बल्कि दूसरों को भी गुमराह करने पर तुले रहते हैं।

15. यानी दीन (धर्म) के दायरे के बीच में नहीं, बल्कि किनारे पर, या दूसरे लफ़्ज़ों में कुफ़्र और इस्लाम की सरहद पर खड़ा होकर बन्दगी करता है। जैसे एक शक और उलझन में पड़ा आदमी किसी फ़ौज के किनारे पर खड़ा हो, अगर जीत होती देखे तो साथ आ मिले और हार होती देखे तो चुपके से सटक जाए।

16. इससे मुराद हैं वे कच्चे किरदार के, ढुलमुल अक़ीदेवाले और अपने मन के दास लोग जो इस्लाम क़बूल तो करते हैं मगर फ़ायदे की शर्त के साथ। उनका ईमान इस शर्त के साथ होता है कि उनकी मुरादें पूरी होती रहें, हर तरह चैन-ही-चैन नसीब हो, न ख़ुदा का दीन उनसे किसी क़ुरबानी की माँग करे, और न दुनिया में उनकी कोई ख़ाहिश और आरज़ू पूरी होने से रह जाए। यह हो तो ख़ुदा से वे राज़ी हैं और उसका दीन उनके नज़दीक बहुत अच्छा है। लेकिन जहाँ कोई आफ़त आई, या ख़ुदा की राह में किसी मुसीबत, मेहनत और नुक़सान से वास्ता पेश आ गया, या कोई तमन्ना पूरी होने से रह गई, फिर उनको ख़ुदा की ख़ुदाई और रसूल की रिसालत और दीन के सच्चे होने, किसी चीज़ पर भी इत्मीनान नहीं रहता। फिर वे हर उस आस्ताने पर झुकने के लिए तैयार हो जाते हैं जहाँ से उनको फ़ायदे की उम्मीद और नुक़सान से बच जाने का भरोसा हो।

17. यह एक बहुत बड़ी हक़ीक़त है जो कुछ लफ़्ज़ों में बयान कर दी गई है। शक और शुब्हे में पड़े मुसलमान का हाल हक़ीक़त में सबसे बदतर होता है। ख़ुदा का इनकारी अपने रब से बे-परवाह,

يَدۡعُوۡا مِنۡ دُوۡنِ اللّٰهِ مَا لَا يَضُرُّهٗ وَمَا لَا يَنۡفَعُهٗ ؕ ذٰلِكَ هُوَ الضَّلٰلُ

الۡبَعِيۡدُ ۝١٢ يَدۡعُوۡا لَمَنۡ ضَرُّهٗۤ اَقۡرَبُ مِنۡ نَّفۡعِهٖ ؕ لَبِئۡسَ الۡمَوۡلٰى

(12) फिर वह अल्लाह को छोड़कर उनको पुकारता है जो न उसको नुक़सान पहुँचा सकते हैं, न फ़ायदा; यह है गुमराही की इन्तिहा। (13) वह उनको पुकारता है जिनका नुक़सान उनके फ़ायदे से ज़्यादा क़रीब है[18], बहुत ही बुरा है उसका सरपरस्त और बहुत

आख़िरत से बे-परवाह और अल्लाह के क़ानूनों की पाबन्दियों से आज़ाद होकर जब यकसूई के साथ दुनियवी फ़ायदों के पीछे पड़ जाता है तो चाहे वह अपनी आख़िरत खो दे, मगर दुनिया तो कुछ-न-कुछ बना ही लेता है। और ईमानवाला जब पूरे सब्र, जमाव और मज़बूत इरादे के साथ ख़ुदा के दीन की पैरवी करता है तो अगरचे दुनिया की कामयाबी भी आख़िरकार उसके क़दम चूमकर रहती है, फिर भी अगर दुनिया बिलकुल ही उसके हाथ से जाती रहे, आख़िरत में बहरहाल उसकी कामयाबी और नजात यक़ीनी है। लेकिन ये शक व शुब्हा में पड़ा मुसलमान न अपनी दुनिया ही बना सकता है और न आख़िरत ही में उसके लिए कामयाबी का कोई इमकान है। दुनिया की तरफ़ लपकता है तो कुछ-न-कुछ ख़ुदा और आख़िरत के होने का गुमान जो उसके दिलो-दिमाग़ के किसी कोने में रह गया है, और कुछ-न-कुछ अख़लाक़ी हदों का लिहाज़ जो इस्लाम से ताल्लुक़ ने पैदा कर दिया है, उसका दामन खींचता रहता है, और ख़ालिस दुनिया-तलबी के लिए जिस यकसूई और जमाव की ज़रूरत है, वह ख़ुदा के इनकारी की तरह उसे नहीं मिल पाती। आख़िरत का ख़याल करता है तो दुनिया के फ़ायदों का लालच और नुक़सानों का डर, और ख़ाहिशों पर पाबन्दियाँ क़बूल करने से तबीअत का इनकार उस तरफ़ जाने नहीं देता, बल्कि दुनिया-परस्ती उसके अक़ीदे और अमल को इतना कुछ बिगाड़ देती है कि आख़िरत में उसका अज़ाब से बचना मुमकिन नहीं रहता। इस तरह वह दुनिया भी खोता है और आख़िरत भी।

18. पहली आयत में इस बात को साफ़ तौर से नकार दिया गया है कि अल्लाह से हटकर जिनको माबूद बना लिया गया है वे किसी तरह का फ़ायदा और नुक़सान पहुँचा सकते हैं; क्योंकि हक़ीक़त के पहलू से वे किसी फ़ायदे और नुक़सान की क़ुदरत नहीं रखते। दूसरी आयत में बताया गया है कि उनको फ़ायदा मिले न मिले लेकिन उनको नुक़सान तो पहुँचकर रहेगा, क्योंकि उनसे दुआएँ माँगकर और उनके आगे अपनी ज़रूरतें पूरी करने के लिए हाथ फैलाकर वह अपना ईमान तो यक़ीनन फ़ौरन खो देता है। रही यह बात कि वह फ़ायदा उसे हासिल हो जिसकी उम्मीद पर उसने उन्हें पुकारा था तो हक़ीक़त से अलग हटकर, ज़ाहिर के लिहाज़ से भी वह ख़ुद मानेगा कि उसका हासिल न तो यक़ीनी है और न हासिल के क़रीब। हो सकता है कि अल्लाह उसको और ज़्यादा फ़ितने में डालने के लिए किसी आस्ताने पर उसकी मुराद पूरी कर दे, और हो सकता है कि उस आस्ताने पर वह अपना ईमान भी भेंट चढ़ा आए और अपनी मुराद भी न पाए।

وَلَبِئْسَ الْعَشِيْرُ ﴿١٣﴾ اِنَّ اللّٰهَ يُدْخِلُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ
جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ؕ اِنَّ اللّٰهَ يَفْعَلُ مَا يُرِيْدُ ﴿١٤﴾ مَنْ كَانَ
يَظُنُّ اَنْ لَّنْ يَّنْصُرَهُ اللّٰهُ فِي الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ فَلْيَمْدُدْ بِسَبَبٍ اِلَى
السَّمَآءِ ثُمَّ لْيَقْطَعْ فَلْيَنْظُرْ هَلْ يُذْهِبَنَّ كَيْدُهٗ مَا يَغِيْظُ ﴿١٥﴾
وَكَذٰلِكَ اَنْزَلْنٰهُ اٰيٰتٍۭ بَيِّنٰتٍ ۙ وَّاَنَّ اللّٰهَ يَهْدِيْ مَنْ يُّرِيْدُ ﴿١٦﴾

ही बुरा है उसका साथी।[19] (14) (इसके बरख़िलाफ़) अल्लाह उन लोगों को जो ईमान लाए और जिन्होंने नेक काम किए,[20] यक़ीनन ऐसी जन्नतों में दाख़िल करेगा जिनके नीचे नहरें बह रही होंगी। अल्लाह करता है जो कुछ चाहता है।[21] (15) जो शख़्स यह गुमान रखता हो कि अल्लाह दुनिया और आख़िरत में उसकी कोई मदद न करेगा, उसे चाहिए कि एक रस्सी के ज़रिए से आसमान तक पहुँचकर छेद करे, फिर देख ले कि क्या उसकी तदबीर किसी ऐसी चीज़ को रद्द कर सकती है जो उसको नागवार है।[22]

(16)—ऐसी ही खुली-खुली बातों के साथ हमने इस क़ुरआन को उतारा है, और हिदायत अल्लाह जिसे चाहता है, देता है।

19. यानी जिसने भी उसको इस रास्ते पर डाला, चाहे वह कोई इनसान हो या शैतान, वह सबसे बुरा काम बनानेवाला और सरपरस्त और सबसे बुरा दोस्त और साथी है।

20. यानी जिनका हाल उस मतलबपरस्त, शक और शुब्हे में पड़े और बे-यक़ीन मुसलमान का-सा नहीं है; बल्कि जो ठंडे दिल से ख़ूब सोच-समझकर ख़ुदा और रसूल और आख़िरत को मानने का फ़ैसला करते हैं, फिर पूरी मज़बूती के साथ सच के रास्ते पर चलते रहते हैं, चाहे अच्छे हालात से सामना हो या बुरे हालात से, चाहे मुसीबतों के पहाड़ टूट पड़ें या इनामों की बारिशें होने लगें।

21. यानी अल्लाह के इख़्तियारात लामहदूद (असीम) हैं। दुनिया में, आख़िरत में, या दोनों जगह, वह जिसको जो कुछ चाहता है देता है और जिससे जो कुछ चाहता है, रोक लेता है। वह देना चाहे तो कोई रोकनेवाला नहीं; न देना चाहे तो कोई दिलवानेवाला नहीं।

22. इस आयत की तफ़सीर में बहुत इख़्तिलाफ़ हुए हैं। अलग-अलग तफ़सीर लिखनेवालों के बयान किए हुए मतलबों का ख़ुलासा यह है—

(1) जिसका यह ख़याल हो कि अल्लाह उसकी (यानी मुहम्मद सल्ल॰ की) मदद न करेगा, वह छत से रस्सी बाँधकर ख़ुदकुशी कर ले।

إِنَّ الَّذِينَ آمَنُوا وَالَّذِينَ هَادُوا وَالصَّابِئِينَ

(17) जो लोग ईमान लाए[23] और जो यहूदी हुए[24] और साबिई[25]

(2) जिसका यह ख़याल हो कि अल्लाह उसकी (यानी मुहम्मद सल्ल॰ की) मदद न करेगा, वह किसी रस्सी के ज़रिए से आसमान पर जाए और मदद बन्द कराने की कोशिश कर देखे।
(3) जिसका यह ख़याल हो कि अल्लाह उसकी (यानी मुहम्मद सल्ल॰ की) मदद न करेगा, वह आसमान पर जाकर वह्य का सिलसिला काट देने की कोशिश कर देखे।
(4) जिसका यह ख़याल हो कि अल्लाह उसकी (यानी मुहम्मद सल्ल॰ की) मदद न करेगा, वह आसमान पर जाकर उसकी रोज़ी बन्द कराने की कोशिश कर देखे।
(5) जिसका यह ख़याल हो कि अल्लाह उसकी (यानी ख़ुद इस तरह का ख़याल करनेवाले की) मदद न करेगा, वह अपने घर की छत से रस्सी लटकाए और ख़ुदकुशी कर ले।
(6) जिसका यह ख़याल हो कि अल्लाह उसकी (यानी ख़ुद इस तरह का ख़याल करनेवाले की) मदद न करेगा, वह आसमान तक पहुँचकर मदद लाने की कोशिश कर देखे।

इनमें से पहले चार मतलब तो बिलकुल ही मौक़ा-महल से हटकर हैं। और आख़िरी दो मतलब अगरचे मौक़ा-महल से ज़्यादा क़रीब हैं, लेकिन कलाम के ठीक मक़सद तक नहीं पहुँचते। तक़रीर के सिलसिले को निगाह में रखा जाए तो साफ़ मालूम होता है कि यह गुमान करनेवाला शख़्स वही है जो किनारे पर खड़ा होकर बन्दगी करता है, जब तक हालात अच्छे रहते हैं मुत्मइन रहता है, और जब कोई आफ़त या मुसीबत आती है, या किसी ऐसी हालत से दोचार होता है जो उसे नागवार है तो ख़ुदा से फिर जाता है और एक-एक आस्ताने पर माथा रगड़ने लगता है। इस शख़्स की यह कैफ़ियत क्यों है? इसलिए कि वह अल्लाह के फ़ैसले पर राज़ी नहीं है और यह समझता है कि क़िस्मत के बनाव-बिगाड़ के ये रिश्ते अल्लाह के सिवा किसी और के हाथ में भी हैं, और अल्लाह से मायूस होकर दूसरे आस्तानों से उम्मीदें लगाता है। इस वजह से कहा जा रहा है कि जिस शख़्स के ये ख़यालात हों वह अपना सारा ज़ोर लगाकर देख ले, यहाँ तक कि अगर आसमान को फाड़कर थिगली (पैवन्द) लगा सकता हो तो यह भी करके देख ले कि क्या उसकी कोई तदबीर अल्लाह की तक़दीर के किसी ऐसे फ़ैसले को बदल सकती है जो उसको नागवार है। आसमान पर पहुँचने और चीरा लगाने से मुराद है वह बड़ी कोशिश जिसका इनसान तसव्वुर कर सकता हो। इन अलफ़ाज़ का कोई लफ़्ज़ी मतलब मुराद नहीं है।

23. यानी 'मुसलमान' जिन्होंने अपने-अपने ज़माने में ख़ुदा के तमाम नबियों और उसकी किताबों को माना, और मुहम्मद (सल्ल॰) के ज़माने में जिन्होंने पिछले नबियों के साथ आप (सल्ल॰) पर भी ईमान लाना क़बूल किया। उनमें सच्चे ईमानवाले भी शामिल थे और वे भी थे जो माननेवालों में शामिल तो हो जाते थे मगर 'किनारे' पर रहकर बन्दगी करते थे और मानने और न मानने के बीच शक व शुब्हे में थे।

24. तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-4 निसा, हाशिया-72।

25. 'साबिई' के नाम से पुराने ज़माने में दो गरोह मशहूर थे। एक हज़रत यह्या (अलैहि॰) की पैरवी करनेवाले जो इराक़ के ऊपरी हिस्से (यानी अल-जज़ीरा) के इलाक़े में अच्छी ख़ासी तादाद

وَالنَّصٰرٰی وَالْمَجُوْسَ وَالَّذِيْنَ اَشْرَكُوْٓا ۖ اِنَّ اللّٰهَ يَفْصِلُ بَيْنَهُمْ
يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَلٰی كُلِّ شَيْءٍ شَهِيْدٌ ﴿١٧﴾ اَلَمْ تَرَ اَنَّ اللّٰهَ يَسْجُدُ
لَهٗ مَنْ فِي السَّمٰوٰتِ وَمَنْ فِي الْاَرْضِ وَالشَّمْسُ وَالْقَمَرُ وَالنُّجُوْمُ

और नसारा[26] और मजूस,[27] और जिन लोगों ने शिर्क किया,[28] इन सबके बीच अल्लाह क़ियामत के दिन फ़ैसला कर देगा,[29] हर चीज़ अल्लाह की नज़र में है। (18) क्या तुम देखते नहीं हो कि अल्लाह के आगे सजदे में पड़े हैं[30] वे सब जो आसमानों में हैं[31] और

में पाए जाते थे, और हज़रत यह्या की पैरवी में बपतिस्मा के तरीक़े पर अमल करते थे। दूसरे सितारों की पूजा करनेवाले लोग जो अपने दीन को हज़रत शीस (अलैहि॰) और हज़रत इदरीस (अलैहि॰) की तरफ़ जोड़ते थे और माद्दी चीज़ों पर सैयारों (ग्रहों) की और सैयारों पर फ़रिश्तों की हुकूमत को मानते थे। उनका मरकज़ हर्रान था और इराक़ के कई हिस्सों में उनकी शाखाएँ फैली हुई थीं। यह दूसरा गरोह अपने फलसफ़े, साइंस और दवा-इलाज के कमालात की वजह से ज़्यादा मशहूर हुआ है। लेकिन ज़्यादा इमकान इस बात का है कि यहाँ पहला गरोह मुराद है; क्योंकि दूसरा गरोह शायद क़ुरआन उतरने के ज़माने में इस नाम से जाना भी न जाता था।

26. तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, हाशिया-36।

27. यानी आग की पूजा करनेवाले ईरानी लोग जो रौशनी और अंधेरे के दो ख़ुदा मानते थे और अपने आपको ज़रदुश्त की पैरवी करनेवाला कहते थे। उनके मज़हब और अख़लाक़ को मज़दक की गुमराहियों ने बुरी तरह बिगाड़कर रख दिया था, यहाँ तक कि सगी बहन से निकाह तक उनमें रिवाज पा गया था।

28. यानी अरब और दूसरे देशों के मुशरिक लोग जो ऊपर बयान किए गए गरोहों की तरह किसी ख़ास नाम से जाने न जाते थे। क़ुरआन मजीद उनको दूसरे गरोहों से अलग करने के लिए 'मुशरिकीन' और 'और वे लोग जिन्होंने शिर्क किया' के ख़ास नामों से याद करता है, अगरचे ईमानवालों के सिवा बाक़ी सबके ही अक़ीदों और आमाल में शिर्क दाख़िल हो चुका था।

29. यानी ख़ुदा के बारे में अलग-अलग इनसानी गरोहों के बीच जो झगड़ा है उसका फ़ैसला इस दुनिया में नहीं होगा, बल्कि क़ियामत के दिन होगा। वहीं इस बात का दो टूक फ़ैसला कर दिया जाएगा कि उनमें से कौन हक़ पर है और कौन बातिल (असत्य) पर। हालाँकि एक मानी के लिहाज़ से यह फ़ैसला इस दुनिया में भी ख़ुदा की किताबें करती रही हैं, लेकिन यहाँ फ़ैसले का लफ़्ज़ 'झगड़ा चुकाने' और दोनों गरोहों के बीच इनसाफ़ करने के मानी में इस्तेमाल हुआ है, जबकि एक के हक़ में और दूसरे के ख़िलाफ़ बाक़ायदा डिग्री दे दी जाए।

30. तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-13 रअद, हाशिए-24, 25; सूरा-16 नह्ल, हाशिए-41, 42।

31. यानी फ़रिश्ते, वे चीज़ें जो आसमान में हैं और वे सारी चीज़ें जो ज़मीन के अलावा दूसरी

وَالْجِبَالُ وَالشَّجَرُ وَالدَّوَآبُّ وَكَثِيرٌ مِّنَ النَّاسِ ؕ وَكَثِيرٌ حَقَّ

जो ज़मीन में हैं, सूरज और चाँद और तारे और पहाड़ और पेड़ और जानवर और बहुत-से इनसान[32] और बहुत-से वे लोग भी जो अज़ाब के हक़दार हो चुके हैं?[33] और

दुनियाओं में हैं, चाहे वे इनसान की तरह अक़्ल और इख़्तियार रखनेवाले हों या हैवान, पेड़-पौधे, जमादात (जड़ वस्तुएँ) और हवा और रौशनी की तरह बे-अक़्ल और बे-इख़्तियार।

32. यानी वे जो सिर्फ़ मजबूरी ही में नहीं, बल्कि अपने इरादे और मरज़ी से भी उसको सजदा करते हैं। उनके मुक़ाबले में दूसरा इनसानी गरोह जिसका बाद के जुमले में ज़िक्र आ रहा है, वह है जो अपने इरादे से ख़ुदा के आगे झुकने से इनकार करता है, मगर दूसरी बे-इख़्तियार चीज़ों की तरह वह भी फ़ितरत के क़ानून की गिरिफ़्त से आज़ाद नहीं है और सबके साथ मजबूरन सजदा करनेवालों में शामिल है। उसके अज़ाब का हक़दार होने की वजह यही है कि वह अपने अधिकार की हद तक बग़ावत का रवैया अपनाता है।

33. मतलब यह है कि अगरचे इन अलग-अलग गरोहों के झगड़े का फ़ैसला तो क़ियामत ही के दिन चुकाया जाएगा, लेकिन कोई आँखें रखता हो तो वह आज भी देख सकता है कि हक़ पर कौन है और आख़िरी फ़ैसला किसके हक़ में होना चाहिए। पूरी कायनात का निज़ाम इस बात पर गवाह है कि ज़मीन से आसमानों तक एक ही ख़ुदा की ख़ुदाई पूरे ज़ोर और पूरी हमागीरी (व्यापकता) के साथ चल रही है। ज़मीन के एक ज़र्रे से लेकर आसमान के बड़े-बड़े सैयारों तक सब एक क़ानून में जकड़े हुए हैं जिससे बाल बराबर भी हरकत करने का किसी को इख़्तियार नहीं है। ईमानवाला तो ख़ैर दिल से उसके आगे सिर झुकाता है, मगर वह नास्तिक जो उसके वुजूद तक का इनकार कर रहा है और वह मुशरिक जो एक-एक बे-इख़्तियार हस्ती के आगे झुक रहा है वह भी उसके हुक्म की पैरवी पर उसी तरह मजबूर है जिस तरह हवा और पानी। किसी फ़रिश्ते, किसी जिन्न, किसी नबी और वली और किसी देवी-देवता के पास ख़ुदाई की सिफ़ात और अधिकारों का मामूलीं-सा निशान तक नहीं है कि उसको ख़ुदा या माबूद होने का मक़ाम दिया जा सके, या तमाम जहान के ख़ुदा का हमजिंस या उसके बराबर ठहराया जा सके। कोई ऐसा क़ानून जिसका कोई हाकिम न हो, कोई ऐसी फ़ितरत जिसे कोई बनानेवाला न हो और कोई ऐसा निज़ाम जिसका कोई चलानेवाला न हो, इन सबके लिए यह मुमकिन ही नहीं है कि इतनी बड़ी कायनात को वुजूद में लाया जा सके और बाक़ायदगी के साथ ख़ुद ही चलाता रहे और क़ुदरत और हिकमत के वे हैरतअंगेज़ करिश्मे दिखा सके जो इस कायनात के कोने-कोने में हर तरफ़ नज़र आ रहे हैं। कायनात की यह खुली किताब सामने होते हुए भी जो शख़्स नबियों की बात नहीं मानता और अलग-अलग मनगढ़न्त अक़ीदे अपनाकर ख़ुदा के बारे में झगड़ता है उसका बातिल (असत्य) पर होना आज भी उसी तरह साबित है जिस तरह

عَلَيْهِ الْعَذَابُ ؕ وَمَنْ يُّهِنِ اللّٰهُ فَمَا لَهٗ مِنْ مُّكْرِمٍ ؕ اِنَّ اللّٰهَ يَفْعَلُ
مَا يَشَآءُ ۩ ﴿۱۸﴾ هٰذٰنِ خَصْمٰنِ اخْتَصَمُوْا فِيْ رَبِّهِمْ ۚ فَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا
قُطِّعَتْ لَهُمْ ثِيَابٌ مِّنْ نَّارٍ ؕ يُصَبُّ مِنْ فَوْقِ رُءُوْسِهِمُ
الْحَمِيْمُ ﴿۱۹﴾ يُصْهَرُ بِهٖ مَا فِيْ بُطُوْنِهِمْ وَالْجُلُوْدُ ﴿۲۰﴾ وَلَهُمْ مَّقَامِعُ مِنْ

السجدة ١

जिसे अल्लाह बेइज़्ज़त और रुसवा कर दे उसे फिर कोई इज़्ज़त देनेवाला नहीं है[34]। अल्लाह करता है जो कुछ चाहता है।[35]

(19-20) ये दो फ़रीक़ हैं जिनके बीच अपने रब के मामले में झगड़ा है।[36] इनमें से वे लोग जिन्होंने कुफ़्र (इनकार) किया, उनके लिए आग के लिबास काटे जा चुके हैं[37]। उनके सिरों पर खौलता हुआ पानी डाला जाएगा जिससे उनकी खालें ही नहीं पेट के अन्दर के हिस्से तक गल जाएँगे, (21) और उनकी ख़बर लेने के लिए लोहे के गुर्ज़

क़ियामत के दिन साबित होगा।

34. यहाँ रुसवाई और इज़्ज़त से मुराद हक़ का इनकार और उसकी पैरवी है; क्योंकि उसका लाज़िमी नतीजा रुसवाई और इज़्ज़त ही की शक्ल में ज़ाहिर होना है। जो शख़्स खुली-खुली और रौशन हक़ीक़तों को आँखें खोलकर न देखे और समझानेवाले की बात भी सुनकर न दे, वह ख़ुद ही ज़िल्लत और रुसवाई को अपने ऊपर दावत देता है, और अल्लाह वही चीज़ उसके नसीब में लिख देता है जो उसने ख़ुद माँगी है। फिर जब अल्लाह ही ने उसको हक़ की पैरवी की इज़्ज़त न दी तो अब कौन है जो उसको इस इज़्ज़त से नवाज़ दे।
35. यहाँ तिलावत का सजदा करना वाजिब (ज़रूरी) है, और सूरा हज के इस सजदे के बारे में उलमा एक राय हैं। तिलावत के सजदे की हिकमत और उसके अहकाम के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, हाशिया-157।
36. यहाँ ख़ुदा के बारे में झगड़ा करनेवाले तमाम गरोहों को उनकी तादाद ज़्यादा होने के बावजूद दो गरोहों में बाँट दिया गया है। एक गरोह वह जो नबियों की बात मानकर ख़ुदा की सही बन्दगी अपनाता है। दूसरा वह जो उनकी बात नहीं मानता और कुफ़्र (इनकार) की राह अपनाता है, चाहे उसके अन्दर आपस में कितने ही इख़्तिलाफ़ात हों और उसके कुफ़्र ने कितने ही अलग-अलग सूरतें अपना रखी हों।
37. मुस्तक़बिल (भविष्य) में जिस चीज़ का पेश आना बिलकुल क़तई और यक़ीनी हो उसको ज़ोर देने के लिए इस तरह बयान किया जाता है मानो वह पेश आ चुकी है। आग के कपड़ों से मुराद शायद वही चीज़ है जिसे सूरा-14 इबराहीम, आयत-50 में 'उनके कपड़े तारकोल के होंगे'

حَدِيۡدٍ۝۲۱ كُلَّمَاۤ اَرَادُوۡۤا اَنۡ يَّخۡرُجُوۡا مِنۡهَا مِنۡ غَمٍّ اُعِيۡدُوۡا
فِيۡهَا ۚ وَذُوۡقُوۡا عَذَابَ الۡحَرِيۡقِ۝۲۲ اِنَّ اللّٰهَ يُدۡخِلُ الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا
وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ جَنّٰتٍ تَجۡرِىۡ مِنۡ تَحۡتِهَا الۡاَنۡهٰرُ يُحَلَّوۡنَ فِيۡهَا
مِنۡ اَسَاوِرَ مِنۡ ذَهَبٍ وَّلُـؤۡلُؤًا ؕ وَلِبَاسُهُمۡ فِيۡهَا حَرِيۡرٌ۝۲۳
وَهُدُوۡۤا اِلَى الطَّيِّبِ مِنَ الۡقَوۡلِ ۖۚ وَهُدُوۡۤا اِلٰى صِرَاطِ الۡحَمِيۡدِ۝۲۴

(गदाएँ) होंगे। (22) जब कभी वे घबराकर जहन्नम से निकलने की कोशिश करेंगे, फिर उसी में धकेल दिए जाएँगे कि चखो अब जलने की सज़ा का मज़ा। (23) (दूसरी तरफ़) जो लोग ईमान लाए और जिन्होंने भले काम किए उनको अल्लाह ऐसी जन्नतों में दाख़िल करेगा जिनके नीचे नहरें बह रही होंगी। वहाँ वे सोने के कंगनों और मोतियों से सजाए जाएँगे[38] और उनके लिबास रेशम के होंगे। (24) उनको पाकीज़ा बात क़बूल करने की हिदायत दी गई[39] और उन्हें तारीफ़ के क़ाबिल ख़ूबियों के मालिक अल्लाह का रास्ता दिखाया गया।[40]

कहा गया है। तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-14 इबराहीम, हाशिया-58।

38. इसका मक़सद यह तसव्वुर दिलाना है कि उनको शाही लिबास पहनाए जाएँगे। क़ुरआन के उतरने के ज़माने में बादशाह और बड़े-बड़े रईस लोग सोने और जवाहरात के ज़ेवर पहनते थे, और ख़ुद हमारे ज़माने में भी हिन्दुस्तान के राजा-नवाब ऐसे ज़ेवर पहनते रहे हैं।

39. हालाँकि पाकीज़ा बात के अलफ़ाज़ आम हैं, मगर मुराद है वह कलिमए-तय्यिबा और सही अक़ीदा जिसको क़बूल करने की वजह से वे मोमिन (ईमानवाले) हुए।

40. जैसा कि परिचय में बयान किया गया है, हमारे नज़दीक यहाँ सूरा का वह हिस्सा ख़त्म हो जाता है जो मक्की दौर में उतरा था। इस हिस्से का मज़मून (विषय) और अन्दाज़े-बयान वही है जो मक्की सूरतों का हुआ करता है, और इसमें कोई अलामत भी ऐसी नहीं है जिसकी वजह से यह शक किया जा सके कि शायद यह पूरा हिस्सा, या इसका कोई हिस्सा मदीना में उतरा हो। सिर्फ़ आयत "हाज़ानि ख़स्मानिख़्त-त-समू फ़ी रब्बिहिम" (ये दोनों फ़रीक़ हैं जिनके बीच अपने रब के मामले में झगड़ा है) के बारे में कुछ तफ़सीर लिखनेवालों ने यह कहा है कि यह आयत मदीना में उतरी है। लेकिन इस बात की बुनियाद सिर्फ़ यह है कि उनके नज़दीक उन दो फ़रीक़ों (पक्षों) से मुराद बद्र की जंग के दोनों फ़रीक़ हैं, और यह कोई मज़बूत बुनियाद नहीं है। यहाँ मौक़ा-महल में कहीं कोई ऐसी चीज़ नहीं पाई जाती जो इस इशारे को इस जंग के दोनों

إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا وَيَصُدُّونَ عَنْ سَبِيلِ اللَّهِ وَالْمَسْجِدِ الْحَرَامِ
الَّذِي جَعَلْنَاهُ لِلنَّاسِ سَوَاءً الْعَاكِفُ فِيهِ وَالْبَادِ ۚ وَمَنْ يُرِدْ فِيهِ

(25) जिन लोगों ने कुफ़्र (इनकार) किया[41] और जो (आज) अल्लाह के रास्ते से रोक रहे हैं और उस मस्जिदे-हराम की ज़ियारत में रुकावट हैं[42] जिसे हमने सब लोगों के लिए बनाया है जिसमें मक़ामी बाशिन्दों और बाहर से आनेवालों के हक़ बराबर हैं[43] (उनका रवैया यक़ीनन सज़ा का हक़दार है)। इस (मस्जिदे-हराम) में जो भी सच्चाई से हटकर

फ़रीक़ों की तरफ़ फेरती हो। अलफ़ाज़ आम हैं और इबारत का मौक़ा-महल साफ़ बता रहा है कि इससे मुराद कुफ़्र और ईमान के उस आम झगड़े के फ़रीक़ हैं जो शुरू से चला आ रहा है और क़ियामत तक चलता रहेगा। बद्र की जंग के दोनों गरोहों से इसका ताल्लुक़ होता तो इसकी जगह सूरा-8 अनफ़ाल में थी, न कि इस सूरा में और बात के इस सिलसिले में। तफ़सीर का यह तरीक़ा अगर सही मान लिया जाए तो इसका मतलब यह होगा कि क़ुरआन की आयतें बिलकुल बिखरे रूप में उतरीं और फिर उनको बिना किसी जोड़ और मेल के बस यूँ ही जहाँ चाहा लगा दिया गया; हालाँकि क़ुरआन का नज़्मे-कलाम (क्रमबद्धता) ख़ुद इस नज़रिए का सबसे बड़ा रद्द है।

41. यानी मुहम्मद (सल्ल.) की दावत को मानने से इनकार कर दिया। आगे का मज़मून साफ़ बता रहा है कि इनसे मुराद मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ हैं।

42. यानी मुहम्मद (सल्ल.) और आप (सल्ल.) की पैरवी करनेवालों को हज और उमरा नहीं करने देते।

43. यानी जो किसी शख़्स या ख़ानदान या क़बीले की जायदाद नहीं है, बल्कि सबके लिए है और जिसकी ज़ियारत से रोकने का किसी को हक़ नहीं है।

यहाँ फ़िक़ही नज़रिए से दो सवाल पैदा होते हैं जिनके बारे में इस्लामी फ़क़ीहों (इस्लामी धर्मशास्त्रियों) के बीच इख़्तिलाफ़ पैदा हुए हैं—

एक यह कि 'मस्जिदे-हराम' से मुराद क्या है? सिर्फ़ मस्जिद या पूरा हरमे-मक्का?

दूसरा यह कि उसमें 'आकिफ़' (रहनेवाले) और 'बाद' (बाहर से आनेवाले) के हुक़ूक़ बराबर होने का क्या मतलब है?

एक गरोह कहता है कि इससे मुराद सिर्फ़ मस्जिद है, न कि पूरा हरम; जैसा कि क़ुरआन के ज़ाहिर अलफ़ाज़ से मालूम होता है। और उसमें हक़ों के बराबर होने से मुराद इबादत के हक़ में बराबरी है, जैसा कि नबी (सल्ल.) के इस इरशाद से मालूम होता है कि "ऐ अब्दे-मनाफ़ की औलाद, तुममें से जो कोई लोगों के मामलों पर किसी इख़्तियार का मालिक हो, उसे चाहिए कि किसी शख़्स को रात और दिन के किसी वक़्त में भी काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) करने या नमाज़ पढ़ने से मना न करे।" इस राय को माननेवाले कहते हैं कि मस्जिदे-हराम से पूरा हरम

मुराद लेना और फिर वहाँ तमाम हैसियतों से मक़ामी बाशिन्दों और बाहर से आनेवालों के हक़ों को बराबर ठहरा देना ग़लत है; क्योंकि मक्का के मकानों और ज़मीनों पर लोगों की मिलकियत और विरासत के हक़ और ख़रीदने-बेचने और किराया वग़ैरा पर देने के हक़ इस्लाम से पहले मौजूद थे और इस्लाम के बाद भी मौजूद रहे, यहाँ तक कि हज़रत उमर (रज़ि.) के ज़माने में सफ़वान-बिन-उमैया का मकान मक्का में जेल की तामीर (निर्माण) के लिए चार हज़ार दिरहम में ख़रीदा गया। लिहाज़ा यह बराबरी सिर्फ़ इबादत ही के मामले में है, न कि किसी और चीज़ में। यह इमाम शाफ़िई (रह.) और उनके हमख़याल लोगों का कहना है।

दूसरा गरोह कहता है कि मस्जिदे-हराम से मुराद पूरा मक्का है। इसकी पहली दलील यह है कि ख़ुद इस आयत में जिस चीज़ पर मक्का के मुशरिकों को मलामत की गई है वह मुसलमानों के हज में रुकावट बनना है, और उनके इस अमल को यह कहकर रद्द किया गया है कि वहाँ सबके हक़ बराबर हैं। अब यह ज़ाहिर है कि हज सिर्फ़ मस्जिद ही में नहीं होता, बल्कि सफ़ा-मरवा से लेकर मिना, मुज़दलफ़ा, अरफ़ात, वे मक़ामात हैं जहाँ हज की रस्में अदा होती हैं। फिर क़ुरआन में एक जगह नहीं, कई जगहों पर मस्जिदे-हराम बोलकर पूरा हरम मुराद लिया गया है। जैसे फ़रमाया, "मस्जिदे-हराम से रोकना और उसके रहनेवालों को वहाँ से निकालना अल्लाह के नज़दीक हराम महीने में जंग करने से बड़ा गुनाह है।" (सूरा-2 बक़रा, आयत-217) ज़ाहिर है कि यहाँ मस्जिद से नमाज़ पढ़नेवालों को निकालना नहीं, बल्कि मक्का से मुसलमान बाशिन्दों को निकालना मुराद है। दूसरी जगह फ़रमाया, "यह रिआयत उसके लिए है जिसके घरवाले मस्जिदे-हराम के रहनेवाले न हों।" (सूरा-2 बक़रा, आयत-196) यहाँ भी मस्जिदे-हराम से मुराद पूरा हरमे-मक्का है, न कि सिर्फ़ मस्जिद। इसलिए 'मस्जिदे-हराम' में बराबरी को सिर्फ़ मस्जिद में बराबरी तक महदूद नहीं ठहराया जा सकता, बल्कि यह हरमे-मक्का में बराबरी है।

फिर यह गरोह कहता है कि यह बराबरी सिर्फ़ इबादत और इज़्ज़त और एहतिराम ही में नहीं है, बल्कि हरमे-मक्का में तमाम हक़ों के एतिबार से है। यह सरज़मीन ख़ुदा की तरफ़ से सबके लिए वक़्फ़ है, इसलिए इसपर और इसकी इमारतों पर किसी के मालिकाना हक़ नहीं हैं। हर शख़्स हर जगह ठहर सकता है, कोई किसी को नहीं रोक सकता और न किसी बैठे हुए को उठा सकता है। इसके सुबूत में ये लोग बहुत-सी हदीसें और सहाबा के वाक़िआत पेश करते हैं। मिसाल के तौर पर—

अब्दुल्लाह-बिन-उमर की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "मक्का मुसाफ़िरों के उतरने की जगह है, न इसकी ज़मीनें बेची जाएँ और न इसके मकान किराए पर चढ़ाए जाएँ।"

(आलूसी रूहुल-मआनी, हिस्सा-17, पेज-138)

इबराहीम नख़ई की मुरसल रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "मक्का को अल्लाह ने हरम ठहरा दिया है, इसकी ज़मीन को बेचना और इसके मकानों का किराया वुसूल करना हलाल नहीं है।" (वाज़ेह रहे कि इबराहीम नख़ई की मुरसल हदीसें मरफ़ूअ के हुक्म में हैं; क्योंकि उनका यह क़ायदा मशहूर है और सब लोग इससे वाक़िफ़ हैं कि जब वे मुरसल रिवायत करते हैं तो दरअस्ल अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि.) के वास्ते से रिवायत करते हैं)। मुजाहिद ने भी लगभग इन्हीं अलफ़ाज़ में एक रिवायत नक़्ल की है।

अलक़मा-बिन-नज़ला की रिवायत है कि "अल्लाह के रसूल (सल्ल.) और अबू-बक्र (रज़ि.), उमर

بِإِلْحَادٍۭ بِظُلْمٍ نُّذِقْهُ مِنْ عَذَابٍ أَلِيمٍ ﴿٢٥﴾

ज़ुल्म का तरीक़ा अपनाएगा[44] उसे हम दर्दनाक अज़ाब का मज़ा चखाएँगे।

(रज़ि.) और उसमान (रज़ि.) के ज़माने में मक्का की ज़मीनें सवाइब (बंजर ज़मीनें या आम लोगों के लिए वक़्फ़) समझी जाती थीं जिसको ज़रूरत होती वह रहता था और जब ज़रूरत न रहती दूसरे को ठहरा देता था।"

अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि.) की रिवायत है कि हज़रत उमर (रज़ि.) ने हुक्म दे दिया था कि हज के ज़माने में मक्का का कोई शख़्स अपना दरवाज़ा बन्द न करे; बल्कि मुजाहिद की रिवायत तो यह है कि हज़रत उमर (सल्ल.) ने मक्कावालों को अपने मकानों के सेहन खुले छोड़ देने का हुक्म दे रखा था और वे उनपर दरवाज़े लगाने से मना करते थे, ताकि आनेवाला जहाँ चाहे ठहरे। यही रिवायत अता की है और वे कहते हैं कि सिर्फ़ सुहैल-बिन-अम्र को हज़रत उमर (रज़ि.) ने सेहन पर दरवाज़े लगाने की इजाज़त दी थी; क्योंकि उनको तिजारती कारोबार के सिलसिले में अपने ऊँट वहाँ बन्द करने होते थे।

अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि.) का कहना कि जो शख़्स मक्का के मकानों का किराया वुसूल करता है वह अपना पेट आग से भरता है।

अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि.) का कहना कि अल्लाह ने पूरे हरमे-मक्का को मस्जिद बना दिया है, जहाँ सबके हक़ बराबर हैं। मक्कावालों को बाहरवालों से किराया वुसूल करने का हक़ नहीं है। उमर-बिन-अब्दुल-अज़ीज़ का फ़रमान मक्का के अमीर (प्रमुख) के नाम है कि मक्का के मकानों पर किराया न लिया जाए; क्योंकि यह हराम है।

इन रिवायतों की बुनियाद पर बहुत-से ताबिईन इस तरफ़ गए हैं। और फ़क़ीहों में से इमाम मालिक, इमाम अबू-हनीफ़ा, सुफ़ियान सौरी, इमाम अहमद-बिन-हंबल, और इसहाक़-बिन-राहवैह की भी यही राय है कि मक्का की ज़मीन का बेचना, और कम-से-कम हज के ज़माने में मक्का के मकानों का किराया जाइज़ नहीं। अलबत्ता ज़्यादातर फ़क़ीहों ने मक्का के मकानों पर लोगों की मिलकियत मानी है और उनकी इमारत की हैसियत से, न कि ज़मीन की हैसियत से, बेचने को भी जाइज़ ठहराया है।

यही मसलक अल्लाह की किताब (क़ुरआन) और अल्लाह के रसूल की सुन्नत और ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन से ज़्यादा क़रीब मालूम होता है; क्योंकि अल्लाह तआला ने तमाम दुनिया के मुसलमानों पर हज इसलिए फ़र्ज़ नहीं किया है कि यह मक्कावालों के लिए आमदनी का ज़रिआ बने और जो मुसलमान फ़र्ज़ के एहसास से मजबूर होकर वहाँ जाएँ उन्हें वहाँ के ज़मीन-मालिक और मकान-मालिक ख़ूब किराए वुसूल कर-करके लूटें। वह एक वक़्फ़ जायदाद है तमाम ईमानवालों के लिए। उसकी ज़मीन किसी की मिलकियत नहीं है। हर ज़ियारत करनेवाले को हक़ है जहाँ जगह पाए, ठहर जाए।

44. इससे हर वह काम मुराद है जो सच्चाई से हटा हुआ हो और ज़ुल्म कहलाता हो, न कि कोई ख़ास काम। इस तरह के काम अगरचे हर हाल में गुनाह हैं, मगर हरम में उनका करना ज़्यादा सख़्त गुनाह है। आलिमों ने बे-ज़रूरत क़सम खाने तक को हरम में दीन के ख़िलाफ़ कामों में

रखा है और इस आयत के तहत माना है। इन आम गुनाहों के सिवा हरम की हुरमत (प्रतिष्ठा) के बारे में जो ख़ास हुक्म हैं उनकी ख़िलाफ़वर्ज़ी कहीं ज़्यादा इस हुक्म के तहत आती है। जैसे—
हरम के बाहर जिस शख़्स ने किसी को क़त्ल किया हो, या कोई और ऐसा जुर्म किया हो जिसपर हद्द (सज़ा) लाज़िम आती हो, और फिर वह हरम में पनाह ले ले तो जब तक वह वहाँ रहे उसपर हाथ न डाला जाएगा। हरम की यह हैसियत हज़रत इबराहीम (अलैहि.) के ज़माने से चली आती है, और मक्का की फ़तह के दिन सिर्फ़ कुछ देर के लिए उठाई गई, फिर हमेशा के लिए क़ायम हो गई। क़ुरआन का इरशाद है, "जो उसमें दाख़िल हो गया वह अम्न में आ गया।" (सूरा-3 आले-इमरान, आयत-97) हज़रत उमर (रज़ि.), अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि.) और अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि.) का यह कहना भरोसेमन्द रिवायतों में आया है कि अगर हम अपने बाप के क़ातिल को भी वहाँ पाएँ तो उसे हाथ न लगाएँ। (अल-आलूसी की तफ़सीर, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-97) इसी लिए ज़्यादातर ताबिईन और हनफ़ी, हंबली और अहले-हदीस इस बात को मानते हैं कि हरम के बाहर किए हुए जुर्म का क़िसास (ख़ून का बदला) हरम में नहीं लिया जा सकता। (इब्ने-कसीर की तफ़सीर, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-97 और हदीस : तिरमिज़ी)
वहाँ जंग और ख़ून-ख़राबा हराम है। मक्का की फ़तह के दूसरे दिन जो तक़रीर नबी (सल्ल.) ने की थी उसमें आप (सल्ल.) ने एलान फ़रमा दिया था कि "लोगो, अल्लाह ने मक्का को दुनिया की शुरुआत ही से हराम (प्रतिष्ठित) किया है और यह क़ियामत तक के लिए अल्लाह के हराम करने से हराम है। किसी शख़्स के लिए जो अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो, जाइज़ नहीं है कि यहाँ कोई ख़ून बहाए।" फिर नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि "अगर मेरी इस जंग को दलील बनाकर कोई शख़्स अपने लिए यहाँ ख़ून-ख़राबे को जाइज़ ठहराए तो उससे कहो कि अल्लाह ने अपने रसूल के लिए इसको जाइज़ किया था, न कि तुम्हारे लिए। और मेरे लिए भी यह सिर्फ़ एक दिन की एक घड़ी के लिए हलाल किया गया था, फिर आज उसका हराम होना उसी तरह क़ायम हो गया, जैसा कल था।"
वहाँ के क़ुदरती पेड़ों को नहीं काटा जा सकता, न अपने-आप उगनेवाली घास उखाड़ी जा सकती है, न परिन्दों और दूसरे जानवरों का शिकार किया जा सकता है, और न शिकार के मक़सद से यहाँ के जानवर को भगाया जा सकता है; ताकि हरम के बाहर उसका शिकार किया जाए। इससे सिर्फ़ साँप-बिच्छू और दूसरे तकलीफ़ पहुँचानेवाले जानवर अलग हैं। ख़ुद उग आनेवाली घास से ढेर की गई और सूखी घास अलग की गई है। इन बातों के बारे में सही हदीसों में साफ़-साफ़ अहकाम आए हैं।
वहाँ की गिरी-पड़ी चीज़ उठाना मना है, जैसा कि अबू-दाऊद में आया है कि "बेशक नबी (सल्ल.) ने हाजियों की गिरी-पड़ी चीज़ उठाने से मना कर दिया था।"
वहाँ जो शख़्स भी हज या उमरे की नीयत से आए वह इहराम के बिना दाख़िल नहीं हो सकता। अलबत्ता इसमें उलमा की राय अलग-अलग है कि दूसरे किसी मक़सद से दाख़िल होनेवाले के लिए भी इहराम बाँधकर जाना ज़रूरी है या नहीं। इब्ने-अब्बास (रज़ि.) की राय यह है कि किसी हाल में बिना इहराम के दाख़िल नहीं हो सकते। इमाम अहमद (रह.) और इमाम

وَإِذْ بَوَّأْنَا لِإِبْرَٰهِيمَ مَكَانَ ٱلْبَيْتِ أَن لَّا تُشْرِكْ بِى شَيْـًٔا وَطَهِّرْ بَيْتِىَ
لِلطَّآئِفِينَ وَٱلْقَآئِمِينَ وَٱلرُّكَّعِ ٱلسُّجُودِ ﴿٢٦﴾ وَأَذِّن فِى ٱلنَّاسِ بِٱلْحَجِّ
يَأْتُوكَ رِجَالًا وَعَلَىٰ كُلِّ ضَامِرٍ يَأْتِينَ مِن كُلِّ فَجٍّ عَمِيقٍ ﴿٢٧﴾ لِّيَشْهَدُوا

(26) याद करो वह वक़्त जबकि हमने इबराहीम के लिए इस घर (काबा) की जगह तय की थी (इस हिदायत के साथ) कि "मेरे साथ किसी चीज़ को शरीक न करो, और मेरे घर को तवाफ़ (परिक्रमा) करनेवालों और क़ियाम और रुकू और सजदे करनेवालों के लिए पाक रखो,[45] (27) और लोगों में हज के लिए आम एलान करा दो कि वे तुम्हारे पास हर दूर-दराज़ जगह से पैदल और ऊँटों[46] पर सवार आएँ;[47] (28) ताकि वे फ़ायदे

शाफ़िई (रह.) का भी एक-एक क़ौल (कथन) इसी बात की ताईद करता है। दूसरा ख़याल यह है कि सिर्फ़ वे लोग इहराम की क़ैद से आज़ाद हैं जिनको बार-बार अपने काम के लिए वहाँ जाना-आना पड़ता हो। बाक़ी सबको इहराम बाँधकर जाना चाहिए। यह इमाम अहमद (रह.) और इमाम शाफ़िई (रह.) का दूसरा क़ौल (कथन) है। तीसरा ख़याल यह है कि जो शख़्स मीक़ातों की हदों में रहता हो वह मक्का में बिना इहराम दाख़िल हो सकता है, मगर जो मीक़ात की हदों से बाहर का रहनेवाला हो वह बिना इहराम बाँधे नहीं जा सकता। यह इमाम अबू-हनीफ़ा (रह.) का क़ौल है।

45. क़ुरआन के कुछ तफ़सीर लिखनेवालों ने "पाक रखो" पर उस फ़रमान को ख़त्म कर दिया है जो हज़रत इबराहीम (अलैहि.) को दिया गया था और "हज के लिए आम एलान कर दो" का ख़िताब नबी (सल्ल.) की तरफ़ माना है। लेकिन बात का अन्दाज़ साफ़ बता रहा है कि यह ख़िताब भी हज़रत इबराहीम (अलैहि.) ही की तरफ़ है और उसी हुक्म का एक हिस्सा है जो उनको काबा के बनाने के वक़्त दिया गया था। इसके अलावा बात का मक़सद भी यहाँ यही बताना है कि पहले दिन ही से यह घर एक ख़ुदा की बन्दगी के लिए बनाया गया था और तमाम ख़ुदापरस्तों को यहाँ हज के लिए आने का आम एलान था।

46. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'ज़ामिर' इस्तेमाल हुआ है जो ख़ास तौर पर दुबले ऊँटों के लिए बोलते हैं। इसका मक़सद उन मुसाफ़िरों की तस्वीर खींचना है जो दूर-दराज़ की जगहों से चले आ रहे हों और रास्ते में उनके ऊँट चारा-पानी न मिलने की वजह से दुबले हो गए हों।

47. यहाँ वह हुक्म ख़त्म होता है जो इब्तिदा में हज़रत इबराहीम (अलैहि.) को दिया गया था, और आगे की बात इसपर इज़ाफ़ा है जो तशरीह के तौर पर कही गई है। हमारी इस राय की वजह यह है कि इस कलाम का ख़ातिमा "इस पुराने घर का तवाफ़ करें" पर हुआ है जो ज़ाहिर है कि काबा की तामीर के वक़्त न कहा गया होगा। (हज़रत इबराहीम के ज़रिए से काबे की तामीर के बारे में और ज़्यादा तफ़सीलात के लिए देखिए— सूरा-2 बक़रा, आयतें—125-129;

مَنَافِعَ لَهُمْ وَيَذْكُرُوا اسْمَ اللّٰهِ فِيْٓ اَيَّامٍ مَّعْلُوْمٰتٍ عَلٰى مَا رَزَقَهُمْ مِّنْۢ بَهِيْمَةِ الْاَنْعَامِ ۚ فَكُلُوْا مِنْهَا وَاَطْعِمُوا

देखें जो यहाँ उनके लिए रखे गए हैं;[48] और कुछ मुक़र्रर दिनों में उन जानवरों पर अल्लाह का नाम लें जो उसने उन्हें दिए हैं[49]। ख़ुद भी खाएँ और तंगदस्त

सूरा-3 आले-इमरान, आयतें—96, 97; सूरा-14 इबराहीम, आयतें— 35-41)।

48. इससे मुराद सिर्फ़ दीनी फ़ायदे ही नहीं हैं, बल्कि दुनियावी फ़ायदे भी हैं। यह इसी ख़ाना काबा और इसके हज की बरकत थी कि हज़रत इबराहीम (अलैहि.) के ज़माने से लेकर नबी (सल्ल.) के ज़माने तक ढाई हज़ार साल की मुद्दत में अरबों को एक मर्कज़े-वहदत (एकता-केन्द्र) हासिल रहा जिसने उनकी अरबियत (अरब होने) को क़बाइलियत (क़बाइली होने) में बिलकुल गुम हो जाने से बचाए रखा। उसके मर्कज़ (केन्द्र) से जुड़े होने और हज के लिए हर साल देश के तमाम हिस्सों से आते रहने की वजह से उनकी ज़बान एक रही, उनकी तहज़ीब एक रही, उनके अन्दर अरब होने का एहसास बाक़ी रहा और उनको ख़यालात, मालूमात और रहन-सहन के तरीक़ों के फैलाने के मौक़े मिलते रहे। फिर यह भी इसी हज की बरकत थी कि अरब की इस आम बद-अम्नी में कम-से-कम चार महीने ऐसे अम्न के मिल जाते थे जिनमें देश के हर हिस्से का आदमी सफ़र कर सकता था और तिजारती क़ाफ़िले भी ख़ैरियत के साथ गुज़र सकते थे। इसलिए अरब की मआशी (आर्थिक) ज़िन्दगी के लिए भी हज एक रहमत था। और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, हाशिए—80, 81; सूरा-5 माइदा, हाशिया-113।

इस्लाम के बाद हज के दीनी फ़ायदों के साथ उसके दुनियावी फ़ायदे भी कई गुने ज़्यादा हो गए। पहले वह सिर्फ़ अरब के लिए रहमत था। अब वह सारी दुनिया के अहले-तौहीद (एकेश्वरवादियों) के लिए रहमत हो गया।

49. जानवरों से मुराद मवेशी जानवर हैं, यानी ऊँट, गाय, भेड़, बकरी, जैसा कि सूरा-6 अनआम, आयतें—142-144 में साफ़-साफ़ बयान हुआ है।

उनपर अल्लाह का नाम लेने से मुराद अल्लाह के नाम पर और उसका नाम लेकर उन्हें ज़ब्ह करना है, जैसा कि बाद का जुमला ख़ुद बता रहा है। क़ुरआन मजीद में क़ुरबानी के लिए आम तौर पर 'जानवर पर अल्लाह का नाम लेने' के अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए गए हैं, और हर जगह इससे मुराद अल्लाह के नाम पर जानवर को ज़ब्ह करना ही है। इस तरह मानो इस हक़ीक़त पर ख़बरदार किया गया है कि अल्लाह का नाम लिए बिना, या अल्लाह के सिवा किसी और के नाम पर जानवर को ज़ब्ह करना ग़ैर-मुस्लिमों और मुशरिकों का तरीक़ा है। मुसलमान जब कभी जानवर को ज़ब्ह करेगा, अल्लाह का नाम लेकर करेगा और जब कभी क़ुरबानी करेगा, अल्लाह के लिए करेगा।

'अय्यामिम-मालूमात' (कुछ मुक़र्रर दिनों) से मुराद कौन-से दिन हैं? इसमें उलमा के बीच रायें

الْبَآئِسَ الْفَقِيْرَ۝۲۸

मुहताज को भी दें,[50]

अलग-अलग हैं। एक क़ौल यह है कि इनसे मुराद अरबी महीने ज़िलहिज्जा के पहले दस दिन हैं। इब्ने-अब्बास (रज़ि॰), हसन बसरी, इबराहीम नख़ई, क़तादा और कई दूसरे सहाबा और ताबिईन से यह बात बयान हुई है। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) भी इसी तरफ़ गए हैं। इमाम शाफ़िई (रह॰) और इमाम अहमद (रह॰) का भी एक क़ौल इसी की ताईद में है। दूसरा क़ौल यह है कि इससे मुराद क़ुरबानी का दिन (यानी 10 ज़िलहिज्जा) और इसके बाद के तीन दिन हैं। इसकी ताईद में इब्ने-अब्बास (रज़ि॰), इब्ने-उमर (रज़ि॰), इबराहीम नख़ई, हसन बसरी और अता के क़ौल पेश किए जाते हैं, और इमाम शाफ़िई (रह॰) और अहमद (रह॰) से भी एक-एक क़ौल इसके हक़ में मिलता है। तीसरा क़ौल यह है कि इससे मुराद तीन दिन हैं, क़ुरबानी का दिन और दो दिन उसके बाद। इसकी ताईद में हज़रत उमर (रज़ि॰), अली (रज़ि॰), इब्ने-उमर (रज़ि॰), इब्ने-अब्बास (रज़ि॰), अनस-बिन-मालिक (रज़ि॰), अबू-हुरैरा (रज़ि॰), सईद-बिन-मुसय्यब (रज़ि॰) और सईद-बिन-जुबैर (रज़ि॰) के क़ौल मिलते हैं। फ़ुक़हा में से सुफ़ियान सौरी (रह॰), इमाम मालिक (रह॰), इमाम अबू-यूसुफ़ (रह॰) और इमाम मुहम्मद (रह॰) ने यही क़ौल अपनाया है और हनफ़ी और मालिकी मसलक में इसी पर फ़तवा है। बाक़ी कुछ शाज़ (इक्का-दुक्का) क़ौल भी हैं। मिसाल के तौर पर किसी ने इन क़ुरबानी के दिनों को खींचकर मुहर्रम की पहली तारीख़ तक पहुँचा दिया है, किसी ने सिर्फ़ क़ुरबानी के दिन तक इसे महदूद कर दिया है, और किसी ने क़ुरबानी के दिन के बाद सिर्फ़ एक दिन और क़ुरबानी का माना है। लेकिन ये कमज़ोर क़ौल हैं जिनकी दलील मज़बूत नहीं है।

50. कुछ लोगों ने इस बात का यह मतलब लिया है कि खाना और खिलाना दोनों वाजिब हैं; क्योंकि यह बात हुक्म के अन्दाज़ में कही गई है। दूसरा गरोह इस तरफ़ गया है कि खाना मुस्तहब है और खिलाना वाजिब। यह राय इमाम शाफ़िई (रह॰) और इमाम मालिक (रह॰) की है। तीसरा गरोह कहता है कि खाना और खिलाना दोनों मुस्तहब हैं। खाना इसलिए मुस्तहब है कि जाहिलियत के ज़माने में लोग अपनी क़ुरबानी का गोश्त ख़ुद खाना मना समझते थे, और खिलाना इसलिए पसन्दीदा कि इसमें ग़रीबों की मदद है। यह इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) का क़ौल है। इब्ने-जरीर ने हसन बसरी, अता, मुजाहिद और इबराहीम नख़ई के ये क़ौल नक़्ल किए हैं कि 'फ़कुलू मिनहा' (उसमें से खाओ) में हुक्म देने के अन्दाज़ से खाने का वाजिब होना साबित नहीं होता। यह बात वैसी ही है जैसे फ़रमाया गया, "जब तुम इहराम की हालत से निकल आओ तो फिर शिकार करो।" (सूरा-5 माइदा, आयत-2) और "फिर जब नमाज़ ख़त्म हो जाए तो ज़मीन में फैल जाओ।" (सूरा-62 जुमुआ, आयत-10)। इसका यह मतलब नहीं है कि इहराम से निकलकर शिकार करना और जुमे की नमाज़ के बाद ज़मीन में फैल जाना वाजिब है, बल्कि मतलब यह है कि फिर ऐसा करने में कोई चीज़ रुकावट नहीं है। इसी तरह यहाँ भी चूँकि लोग अपनी क़ुरबानी का गोश्त ख़ुद खाने को मना समझते थे, इसलिए कहा गया कि

ثُمَّ لْيَقْضُوْا تَفَثَهُمْ وَلْيُوْفُوْا نُذُوْرَهُمْ وَلْيَطَّوَّفُوْا بِالْبَيْتِ الْعَتِيْقِ﴿٢٩﴾

(29) फिर अपना मैल-कुचैल दूर करें[51] और अपनी नज़्रें (मन्नतें) पूरी करें[52] और इस पुराने (प्राचीन) घर का तवाफ़ करें।[53]

नहीं, उसे खाओ, यानी इसकी कोई मनाही नहीं है।

तंगदस्त फ़क़ीर को खिलाने के बारे में जो कहा गया है इसका मतलब यह नहीं है कि ग़नी (मालदार) को नहीं खिलाया जा सकता। दोस्त, पड़ोसी, रिश्तेदार, चाहे मुहताज न हों, फिर भी उन्हें क़ुरबानी के गोश्त में से देना जाइज़ है। यह बात सहाबा किराम (रज़ि.) के अमल से साबित है। अलक़मा का बयान है कि हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि.) ने मेरे हाथ क़ुरबानी के जानवर भेजे और हिदायत की कि क़ुरबानी के दिन इन्हें ज़ब्ह करना, ख़ुद भी खाना, मिसकीनों को भी देना और मेरे भाई के घर भी भेजना। इब्ने-उमर (रज़ि.) का भी यही कहना है कि एक हिस्सा खाओ, एक हिस्सा पड़ोसियों को दो और एक हिस्सा मिसकीनों में बाँटो।

51. यानी क़ुरबानी के दिन (10 ज़िलहिज्जा) को क़ुरबानी से निबटकर इहराम खोल दें, हजामत कराएँ, नहाएँ-धोएँ और ये पाबन्दियाँ ख़त्म कर दें जो इहराम की हालत में लागू हो गई थीं। अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'तफ़स' इस्तेमाल किया गया है। लुग़त में तफ़स के अस्ल मानी उस ग़ुबार और मैल-कुचैल के हैं जो सफ़र में आदमी पर चढ़ जाता है। मगर हज के सिलसिले में जब मैल-कुचैल दूर करने का ज़िक्र किया गया है तो इसका मतलब वही लिया जाएगा जो ऊपर बयान हुआ है; क्योंकि हाजी जब तक हज की रस्मों और क़ुरबानी से फ़ारिग़ न हो जाए, वह न बाल कटवा सकता है, न नाख़ुन कटवा सकता है, और न जिस्म की दूसरी सफ़ाई कर सकता है। (इस सिलसिले में यह बात जान लेनी चाहिए कि क़ुरबानी से निबटने के बाद दूसरी तमाम पाबन्दियाँ तो ख़त्म हो जाती हैं, मगर बीवी के पास जाना उस वक़्त तक जाइज़ नहीं होता जब तक आदमी तवाफ़े-इफ़ाज़ा यानी तवाफ़े-ज़ियारत न कर ले)।

52. यानी जो नज़्र भी किसी ने इस मौक़े के लिए मानी हो।

53. काबा के लिए 'बैतुल-अतीक़' (पुराना या प्राचीन घर) का लफ़्ज़ अपने अन्दर बड़े मानी रखता है। 'अतीक़' अरबी ज़बान में तीन मानी के लिए इस्तेमाल होता है। एक पुराना, दूसरे आज़ाद जिसपर किसी की मिलकियत न हो, तीसरे इज़्ज़त और एहतिराम के क़ाबिल। ये तीनों ही मानी इस पाक घर पर बिलकुल फ़िट बैठते हैं।

तवाफ़ से मुराद तवाफ़े-इफ़ाज़ा यानी तवाफ़े-ज़ियारत है जो यौमुन-नहर (क़ुरबानी के दिन) को क़ुरबानी करने और इहराम खोल देने के बाद किया जाता है। यह हज के अरकान में से है। और चूँकि मैल-कुचैल दूर करने के हुक्म के फ़ौरन बाद इसका ज़िक्र किया गया है, इसलिए यह कहना इस बात की दलील है कि यह तवाफ़ क़ुरबानी करने और इहराम खोलकर नहा-धो लेने

ذٰلِكَ ۚ وَمَنْ يُّعَظِّمْ حُرُمٰتِ اللّٰهِ فَهُوَ خَيْرٌ لَّهٗ عِنْدَ رَبِّهٖ ؕ وَاُحِلَّتْ
لَكُمُ الْاَنْعَامُ اِلَّا مَا يُتْلٰى عَلَيْكُمْ فَاجْتَنِبُوا الرِّجْسَ مِنَ
الْاَوْثَانِ وَاجْتَنِبُوْا قَوْلَ الزُّوْرِ ۝٣٠ حُنَفَآءَ لِلّٰهِ غَيْرَ مُشْرِكِيْنَ بِهٖ ؕ

(30) यह था (काबा की तामीर का मक़सद), और जो कोई अल्लाह की क़ायम की हुई पाबन्दियों का एहतिराम करे तो यह उसके रब के नज़दीक ख़ुद उसी के लिए बेहतर है।[54]

और तुम्हारे लिए मवेशी जानवर हलाल किए गए,[55] सिवाय उन चीज़ों के जो तुम्हें बताई जा चुकी हैं।[56] तो बुतों की गन्दगी से बचो,[57] झूठी बातों से परहेज़ करो,[58]
(31) यकसू होकर अल्लाह के बन्दे बनो। उसके साथ किसी को शरीक न करो। और

के बाद किया जाना चाहिए।

54. बज़ाहिर यह एक आम नसीहत है जो अल्लाह की क़ायम की हुई तमाम पाबन्दियों का एहतिराम करने के लिए की गई है, मगर बयान के इस सिलसिले में वे पाबन्दियाँ पहले दर्जे में मुराद हैं जो मस्जिदे-हराम और हज, उमरे और हरमे-मक्का के मामले में क़ायम की गई हैं। साथ ही इसमें एक हलका इशारा इस तरफ़ भी है कि क़ुरैश ने हरम से मुसलमानों को निकालकर और उनपर हज का रास्ता बन्द करके और हज की रस्मों में मुशरिकाना और जाहिलाना रस्में मिलाकर और बैतुल्लाह में शिर्क की गन्दगी दाख़िल करके उन बहुत-सी पाबन्दियों को तोड़ डाला है जो इबराहीम (अलैहि॰) के वक़्त से क़ायम कर दी गई थीं।

55. इस मौक़े पर मवेशी जानवरों के हलाल (जाइज़) होने का ज़िक्र करने का मक़सद दो ग़लतफ़हमियों को दूर करना है। एक यह कि क़ुरैश और अरब के मुशरिक लोग बहीरा, साइबा, वसीला और हाम को भी अल्लाह की क़ायम की हुई पाबन्दियों में गिनते थे। इसलिए कहा गया कि ये उसकी क़ायम की हुई पाबन्दियाँ नहीं हैं, बल्कि उसने तमाम मवेशी जानवर हलाल किए हैं। दूसरे यह कि इहराम की हालत में जिस तरह शिकार हराम है, उस तरह कहीं यह न समझ लिया जाए कि मवेशी जानवरों को ज़ब्ह करना और उनको खाना भी हराम है। इसलिए बताया गया कि ये अल्लाह की क़ायम की हुई पाबन्दियों में से नहीं है।

56. इशारा है उस हुक्म की तरफ़ जो सूरा-6 अनआम और सूरा-16 नह्ल में आया है कि "अल्लाह ने जिन चीज़ों को हराम किया है वे हैं मुरदार, और बहाया हुआ ख़ून, और सूअर का गोश्त और वे जानवर जो अल्लाह के सिवा किसी और के नाम पर ज़ब्ह किया जाए।"
(सूरा-6 अनआम, आयत-145; सूरा-16 नह्ल, आयत-115)

57. यानी बुतों की पूजा से इस तरह बचो जैसे गन्दगी से आदमी घिन खाता है और दूर हटता है। मानो कि वे गन्दगी से भरे हुए हैं और क़रीब जाते ही आदमी उनसे गन्दा और नापाक हो जाएगा।

58. हालाँकि अलफ़ाज़ आम हैं, और उनसे हर झूठ, बोहतान और झूठी गवाही का हराम होना

وَمَنْ يُّشْرِكْ بِاللّٰهِ فَكَاَنَّمَا خَرَّ مِنَ السَّمَآءِ فَتَخْطَفُهُ الطَّيْرُ اَوْ تَهْوِيْ بِهِ
الرِّيْحُ فِيْ مَكَانٍ سَحِيْقٍ۝۳۱ ذٰلِكَ وَمَنْ يُّعَظِّمْ شَعَآئِرَ اللّٰهِ فَاِنَّهَا

जो कोई अल्लाह के साथ शिर्क करे तो मानो वह आसमान से गिर गया। अब या तो उसे परिन्दे उचक ले जाएँगे या हवा उसको ऐसी जगह ले जाकर फेंक देगी जहाँ उसके चीथड़े उड़ जाएँगे।[59]

(32) यह है अस्ल मामला (इसे समझ लो), और जो अल्लाह के मुक़र्रर किए

साबित होता है, मगर बात के इस सिलसिले में ख़ास तौर पर इशारा उन ग़लत अक़ीदों और हुक्मों और रस्मों और वहमों की तरफ़ है जिनपर कुफ़्र और शिर्क की बुनियाद है। अल्लाह के साथ दूसरों को शरीक ठहराना और उसकी हस्ती, सिफ़ात, अधिकारों और हक़ों में उसके बन्दों को हिस्सेदार बनाना वह सबसे बड़ा झूठ है जिससे यहाँ मना किया गया है। और फिर वह झूठ भी सीधे तौर पर इस हुक्म की चपेट में आता है जिसकी वजह से अरब के मुशरिक लोग बहीरा, साइबा और हाम वग़ैरा को हराम ठहराते थे, जैसा कि सूरा-16 नह्ल में कहा गया, "और यह जो तुम्हारी ज़बानें झूठे हुक्म लगाया करती हैं कि यह हलाल है और वह हराम तो इस तरह के हुक्म लगाकर अल्लाह पर झूठ न बाँधो।" (आयत-116)
इसके साथ झूठी क़सम और झूठी गवाही भी इसी हुक्म के तहत आती है, जैसा कि सही हदीसों में नबी (सल्ल॰) से रिवायत है कि आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "झूठी गवाही अल्लाह के साथ शिर्क के बराबर रखी गई है।" और फिर आप (सल्ल॰) ने सुबूत में यही आयत पेश की। इस्लामी क़ानून में यह जुर्म सज़ा के क़ाबिल है। इमाम अबू-यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद (रह॰) का फ़तवा यह है कि जो शख़्स अदालत में झूठा गवाह साबित हो जाए, उसकी सब तरफ़ चर्चा की जाए और लम्बी क़ैद की सज़ा दी जाए। यही हज़रत उमर (रज़ि॰) का क़ौल है और अमल भी। मकहूल की रिवायत है कि हज़रत उमर (रज़ि॰) ने फ़रमाया, "उसकी पीठ पर कोड़े मारे जाएँ, उसका सिर मूँडा जाए और मुँह काला किया जाए और लम्बी क़ैद की सज़ा दी जाए।" अब्दुल्लाह-बिन-आमिर अपने बाप से रिवायत करते हैं कि हज़रत उमर (रज़ि॰) की अदालत में एक शख़्स की झूठी गवाही साबित हो गई तो उन्होंने उसको एक दिन सबके सामने खड़ा रखकर एलान कराया कि यह फ़ुलाँ का बेटा फ़ुलाँ झूठा गवाह है, इसे पहचान लो, फिर उसको क़ैद कर दिया। मौजूदा ज़माने में ऐसे शख़्स का नाम अख़बारों में निकाल देना चर्चा करने के मक़सद को पूरा कर सकता है।

59. इस मिसाल में आसमान से मुराद है इनसान की फ़ितरी हालत जिसमें वह एक ख़ुदा के सिवा किसी का बन्दा नहीं होता और तौहीद के सिवा उसकी फ़ितरत किसी और मज़हब को नहीं जानती। अगर इनसान नबियों की दी हुई रहनुमाई क़बूल कर ले तो वह इसी फ़ितरी हालत पर इल्म और सूझ-बूझ के साथ क़ायम हो जाता है, और आगे उसकी उड़ान और ज़्यादा बुलन्दियों ही की तरफ़ होती है, न कि पस्तियों की तरफ़। लेकिन शिर्क (और सिर्फ़ शिर्क ही नहीं,

مِنۡ تَقۡوَى الۡقُلُوۡبِ۝۳۲ لَكُمۡ فِيۡهَا مَنَافِعُ اِلٰۤى اَجَلٍ مُّسَمًّى ثُمَّ مَحِلُّهَاۤ اِلَى

'शआइर' (निशानियों)[60] का एहतिराम करे तो यह दिलों के तक़वा (परहेज़गारी) से है।[61]
(33) तुम्हें एक मुक़र्रर वक़्त तक उन (क़ुरबानी के जानवरों) से फ़ायदा उठाने का हक़ है,[62]

नास्तिकता भी) अपनाते ही वह अपनी फ़ितरत के आसमान से यकायक गिर पड़ता है और फिर उसको दो सूरतों में से ज़रूर ही एक सूरत का सामना करना पड़ता है। एक यह कि शैतान और गुमराह करनेवाले इनसान जिनको इस मिसाल में शिकारी परिन्दे कहा गया है, उसकी तरफ़ झपटते हैं और हर एक उसे उचक ले जाने की कोशिश करता है। दूसरी यह कि उसकी अपनी मन की ख़ाहिशें और उसके अपने जज़बात और ख़यालात जिनकी मिसाल हवा से दी गई है, उसे उड़ाए-उड़ाए लिए फिरते हैं और आख़िरकार उसको किसी गहरे खड्ड में ले जाकर फेंक देते हैं। अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'सहीक़' इस्तेमाल हुआ है। 'सहीक़' का लफ़्ज़ 'सहक़' से निकला है जिसका अस्ल मतलब पीसना है। किसी जगह को सहीक़ उस सूरत में कहेंगे जबकि वह इतनी गहरी हो कि जो चीज़ उसमें गिरे वह चूर-चूर हो जाए। यहाँ ख़यालात और अख़लाक़ की पस्ती की मिसाल उस गहरे खड्ड से दी गई है जिसमें गिरकर आदमी के पुर्ज़े उड़ जाएँ।

60. यानी ख़ुदापरस्ती की निशानियाँ, चाहे वे आमाल (कर्म) हों जैसे नमाज़, रोज़ा, हज वग़ैरा, या चीज़ें हों जैसे मस्जिद और क़ुरबानी के ऊँट वग़ैरा। और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, हाशिया-5।

61. यानी यह एहतिराम दिल के तक़वा (परहेज़गारी) का नतीजा है और इस बात की निशानी है कि आदमी के दिल में कुछ-न-कुछ ख़ुदा का डर है, तभी तो वह उसकी निशानियों का एहतिराम कर रहा है। दूसरे लफ़्ज़ों में, अगर कोई शख़्स जान-बूझकर अल्लाह की निशानियों की तौहीन करे तो यह इस बात का खुला सुबूत है कि उसका दिल ख़ुदा के डर से ख़ाली हो चुका है, या तो वह ख़ुदा को सिरे से मानता ही नहीं, या मानता है तो उसके मुक़ाबले में बग़ावत का रवैया अपनाने पर उतर आया है।

62. पहली आयत में अल्लाह की निशानियों के एहतिराम का आम हुक्म देने और उसे दिल के तक़वा की अलामत ठहराने के बाद यह जुमला एक ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए कहा गया है। अल्लाह की निशानियों में क़ुरबानी के जानवर भी दाख़िल हैं, जैसा कि अरब के लोग मानते थे और क़ुरआन ख़ुद भी आगे चलकर कहता है कि "और इन क़ुरबानी के ऊँटों को हमने तुम्हारे लिए अल्लाह के शआइर (निशानियों) में शामिल किया है।" अब सवाल पैदा होता है कि अल्लाह के शआइर के एहतिराम का जो हुक्म ऊपर दिया गया है, क्या उसका तक़ाज़ा यह है कि क़ुरबानी के जानवरों को बैतुल्लाह (काबा) की तरफ़ जब ले जाने लगें तो उनको किसी तरह भी इस्तेमाल न किया जाए? उनपर सवारी करना, या सामान लादना, या उनके दूध पीना अल्लाह की निशानियों के एहतिराम के ख़िलाफ़ तो नहीं है? अरब के लोगों का यही ख़याल था। चुनाँचे वे उन जानवरों को बिलकुल कोतल (बिना किसी सवारी के) ले जाते थे। रास्ते में

الْبَيْتِ الْعَتِيْقِ ﴿٣٣﴾ وَلِكُلِّ أُمَّةٍ جَعَلْنَا مَنْسَكًا لِّيَذْكُرُوا اسْمَ

फिर उन (के क़ुरबान करने) की जगह इसी पुराने घर के पास है।[63]

(34) हर उम्मत (समुदाय) के लिए हमने क़ुरबानी का एक क़ायदा तय कर दिया है;

उनसे किसी तरह का फ़ायदा उठाना उनके नज़दीक गुनाह था। इसी ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए यहाँ कहा जा रहा है कि क़ुरबानी की जगह पहुँचने तक तुम उन जानवरों से फ़ायदा उठा सकते हो, ऐसा करना अल्लाह की निशानियों के एहतिराम के ख़िलाफ़ नहीं है। यही बात उन हदीसों से मालूम होती है जो इस मसले में हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) और हज़रत अनस (रज़ि.) से रिवायत हुई हैं। उनमें बयान हुआ है कि नबी (सल्ल.) ने देखा कि एक शख़्स ऊँट की रस्सी थामे पैदल चला जा रहा है और सख़्त तकलीफ़ में है। आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "इसपर सवार हो जा।" उसने अर्ज़ किया, "यह क़ुरबानी का ऊँट है।" आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "अरे, सवार हो जा।"

क़ुरआन के आलिमों में से इब्ने-अब्बास (रज़ि.), क़तादा, मुजाहिद, ज़हहाक और अता ख़ुरासानी इस तरफ़ गए हैं कि इस आयत में "एक मुक़र्रर वक़्त तक" से मुराद "जब तक कि जानवर को क़ुरबानी के लिए नामज़द और क़ुरबानी का नाम न दे दिया जाए" है। इस तफ़सीर के मुताबिक़ आदमी उन जानवरों से सिर्फ़ उस वक़्त तक फ़ायदा उठा सकता है जब तक कि वह उसे क़ुरबानी का नाम न दे दे। और ज्यों ही वह उसे क़ुरबानी का जानवर बनाकर बैतुल्लाह ले जाने की नीयत करे, फिर उसे कोई फ़ायदा उठाने का हक़ नहीं रहता। लेकिन यह तफ़सीर किसी तरह सही नहीं मालूम होती। अव्वल तो इस सूरत में इस्तेमाल और फ़ायदा उठाने की इजाज़त देना ही बे-मतलब है। क्योंकि 'क़ुरबानी' के सिवा दूसरे जानवरों से फ़ायदा उठाने या न उठाने के बारे में कोई शक पैदा ही कब हुआ था कि उसे इजाज़त के ज़रिए से खोलकर बयान करके दूर करने की ज़रूरत पड़ती। फिर आयत साफ़ तौर पर कह रही है कि इजाज़त उन जानवरों के इस्तेमाल की दी जा रही है जिन्हें 'अल्लाह की निशानियाँ' कहा जा सकता हो, और ज़ाहिर है कि यह सिर्फ़ इसी सूरत में हो सकता है जबकि उन्हें क़ुरबानी का जानवर ठहरा दिया जाए।

क़ुरआन के दूसरे आलिम जैसे उरवा-बिन-ज़ुबैर और अता-बिन-अबी- रबाह कहते हैं कि "मुक़र्रर वक़्त" से मुराद "क़ुरबानी का वक़्त" है। क़ुरबानी से पहले क़ुरबानी के जानवरों को सवारी के लिए भी इस्तेमाल कर सकते हैं, उनके दूध भी पी सकते हैं, उनके बच्चे भी ले सकते हैं और उनका ऊन, सूफ़, बाल वग़ैरा भी उतार सकते हैं। इमाम शाफ़िई (रह.) ने इसी तफ़सीर को इख़्तियार किया है। हनफ़ी मसलक को माननेवाले फ़क़ीह अगरचे पहली तफ़सीर को मानते हैं, लेकिन वे इसमें इतनी गुंजाइश निकाल देते हैं कि ज़रूरत के मुताबिक़ फ़ायदा उठाना जाइज़ है।

63. जैसा कि क़ुरआन में दूसरी जगह फ़रमाया, "(जानवर का) यह नज़राना काबा पहुँचाया जाएगा।" (सूरा-5 माइदा, आयत-95) इससे मुराद यह नहीं है कि काबा पर या मस्जिदे-हराम में क़ुरबानी की जाए, बल्कि हरम की हदों में क़ुरबानी करना मुराद है। यह एक और दलील है इस बात की कि क़ुरआन काबा या बैतुल्लाह या मस्जिदे-हराम बोलकर आम तौर से हरमे-मक्का

اللهِ عَلٰى مَا رَزَقَهُمْ مِّنْۢ بَهِيْمَةِ الْاَنْعَامِ ؕ فَاِلٰهُكُمْ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ فَلَهٗۤ
اَسْلِمُوْا ؕ وَبَشِّرِ الْمُخْبِتِيْنَ ۝۳۴ الَّذِيْنَ اِذَا ذُكِرَ اللّٰهُ وَجِلَتْ قُلُوْبُهُمْ
وَالصّٰبِرِيْنَ عَلٰى مَاۤ اَصَابَهُمْ وَالْمُقِيْمِي الصَّلٰوةِ ۙ وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ

ताकि (उस उम्मत के) लोग उन जानवरों पर अल्लाह का नाम लें जो उसने उनको दिए हैं।[64] (इन अलग-अलग तरीक़ों के अन्दर मक़सद एक ही है) तो तुम्हारा ख़ुदा एक ही ख़ुदा है और उसी के तुम फ़रमाँबरदार बनो। और ऐ नबी, ख़ुशख़बरी दे दो आजिज़ाना रविश (विनम्र रवैया) अपनानेवालों को,[65] (35) जिनका हाल यह है कि अल्लाह का ज़िक्र सुनते हैं तो उनके दिल काँप उठते हैं, जो मुसीबत भी उनपर आती है उसपर सब्र करते हैं, नमाज़ क़ायम करते हैं, और जो कुछ रोज़ी हमने उनको दी है उसमें से ख़र्च

मुराद लेता है, न कि सिर्फ़ वह इमारत।

64. इस आयत से दो बातें मालूम हुईं। एक यह कि क़ुरबानी अल्लाह की तमाम शरीअतों के इबादती निज़ाम (व्यवस्था) का एक लाज़िमी हिस्सा रही है। इबादत में तौहीद के बुनियादी तक़ाज़ों में से एक यह भी है कि इनसान ने जिन-जिन सूरतों से अल्लाह को छोड़कर दूसरों की बन्दगी की है, उन सबको दूसरों के लिए मना करके सिर्फ़ अल्लाह के लिए ख़ास कर दिया जाए। मिसाल के तौर इनसान ने दूसरों के आगे रुकू और सजदे किए हैं। अल्लाह की शरीअतों ने इसे अल्लाह के लिए ख़ास कर दिया। इनसान ने अल्लाह को छोड़कर दूसरों के आगे माली नज़राने पेश किए हैं। अल्लाह की शरीअतों ने इन्हें मना करके ज़कात और सदक़ा अल्लाह के लिए वाजिब कर दिया। इनसान ने झूठे माबूदों की तीर्थयात्रा की है। अल्लाह की शरीअतों ने किसी-न-किसी मक़ाम को मक़दिस या बैतुल्लाह ठहराकर उसकी ज़ियारत और तवाफ़ (परिक्रमा) का हुक्म दे दिया। इनसान ने दूसरों के नाम के रोज़े रखे हैं। अल्लाह की शरीअतों ने उन्हें भी अल्लाह के लिए ख़ास कर दिया। ठीक इसी तरह इनसान अपने ख़ुद के गढ़े माबूदों के लिए जानवरों की क़ुरबानियाँ भी करता रहा है और अल्लाह की शरीअतों ने उनको भी दूसरों के लिए बिलकुल हराम और अल्लाह के लिए वाजिब कर दिया।

दूसरी बात इस आयत से यह मालूम हुई कि अस्ल चीज़ अल्लाह के नाम पर क़ुरबानी है, न कि इस क़ायदे की ये तफ़सीलात कि क़ुरबानी कब की जाए और कहाँ की जाए और किस तरह की जाए। इन तफ़सीलात में अलग-अलग ज़मानों और अलग-अलग क़ौमों और देशों के नबियों की शरीअतों में हालात के लिहाज़ से फ़र्क़ रहे हैं, मगर सबकी रूह और सबका मक़सद एक ही रहा है।

65. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'मुख़्बितीन' इस्तेमाल किया गया है जिसका मतलब किसी एक लफ़्ज़ से पूरी तरह अदा नहीं होता। इसमें तीन मतलब शामिल हैं। घमण्ड और ग़ुरूरे-नफ़्स (अहंकार) को

يُنْفِقُوْنَ ﴿٣٥﴾ وَالْبُدْنَ جَعَلْنٰهَا لَكُمْ مِّنْ شَعَآئِرِ اللّٰهِ لَكُمْ فِيْهَا خَيْرٌ

करते हैं।[66]

(36) और (क़ुरबानी के) ऊँटों[67] को हमने तुम्हारे लिए अल्लाह के 'शआइर' में शामिल किया है, तुम्हारे लिए उनमें भलाई है[68]——

छोड़कर अल्लाह के मुक़ाबले में इज्ज़ (विनम्रता) अपनाना। उसकी बन्दगी और ग़ुलामी पर मुत्मइन हो जाना, उसके फ़ैसलों पर राज़ी हो जाना।

66. इससे पहले हम इस बात को साफ़ तौर पर बयान कर चुके हैं कि अल्लाह ने कभी हराम और नापाक माल को अपना रिज़्क़ नहीं कहा है। इसलिए आयत का मतलब यह है कि जो पाक रोज़ी हमने उन्हें दी है और जो हलाल कमाइयाँ उनको दी हैं, उनमें से वे ख़र्च करते हैं। फिर ख़र्च से मुराद भी हर तरह का ख़र्च नहीं है, बल्कि अपनी और अपने घरवालों की जाइज़ ज़रूरतें पूरी करना, रिश्तेदारों और पड़ोसियों और ज़रूरतमन्द लोगों की मदद करना, समाज सेवा के कामों में हिस्सा लेना और अल्लाह का बोलबाला करने के लिए माली क़ुरबानी देना मुराद है। फ़ुज़ूलख़र्ची और ऐशो-इशरत के ख़र्च, और दिखावे का ख़र्च वह चीज़ नहीं है जिसे क़ुरआन 'इनफ़ाक़' (अल्लाह के रास्ते में ख़र्च) क़रार देता हो, बल्कि यह उसकी ज़बान में फ़ुज़ूलख़र्ची है। इसी तरह कंजूसी और तंगदिली के साथ जो ख़र्च किया जाए कि आदमी अपने बाल-बच्चों को भी तंग रखे, ख़ुद भी अपनी हैसियत के मुताबिक़ अपनी ज़रूरतें पूरी न करे और अल्लाह के बन्दों की मदद भी अपनी हैसियत के मुताबिक़ करने से जी चुराए तो इस सूरत में अगरचे आदमी ख़र्च तो कुछ-न-कुछ करता ही है, मगर क़ुरआन की ज़बान में इस ख़र्च का नाम 'इनफ़ाक़' नहीं है। वह इसको 'कंजूसी' और 'दिल की तंगी' कहता है।

67. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'बुद्न' इस्तेमाल हुआ है जो अरबी ज़बान में ऊँटों के लिए ख़ास है। मगर नबी (सल्ल॰) ने क़ुरबानी के हुक्म में गाय को भी ऊँटों के साथ शामिल कर दिया है। जिस तरह एक ऊँट की क़ुरबानी सात आदमियों के लिए काफ़ी होती है, उसी तरह एक गाय की क़ुरबानी भी सात आदमी मिलकर कर सकते हैं। सहीह मुस्लिम में जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह की रिवायत है कि "अल्लाह के रसूल ने हमको हुक्म दिया कि हम क़ुरबानियों में शरीक हो जाया करें, ऊँट सात आदमियों के लिए और गाय सात आदमियों के लिए।"

68. यानी तुम उनसे बहुत फ़ायदे उठाते हो। यह इशारा है इस बात की तरफ़ कि तुम्हें उनकी क़ुरबानी क्यों करनी चाहिए। आदमी ख़ुदा की दी हुई जिन-जिन चीज़ों से फ़ायदा उठाता है, उनमें से हर एक की क़ुरबानी उसको अल्लाह के नाम पर करनी चाहिए, न सिर्फ़ नेमत के शुक्र के लिए बल्कि अल्लाह के सबसे बढ़कर होने और मालिक होने को मानने के लिए भी, ताकि आदमी दिल में भी और अमल से भी इस बात को क़बूल करे कि यह सब कुछ ख़ुदा का है जो उसने हमें दिया है। ईमान और इस्लाम नफ़्स (मन) की क़ुरबानी है। नमाज़ और रोज़ा जिस्म और ताक़तों की क़ुरबानी है। ज़कात उन मालों की क़ुरबानी है जो अलग-अलग शक्लों में

فَاذْكُرُوا اسْمَ اللّٰهِ عَلَيْهَا صَوَآفَّ ۚ فَإِذَا وَجَبَتْ جُنُوبُهَا فَكُلُوا

तो उन्हें खड़ा करके[69] उनपर अल्लाह का नाम लो,[70] और जब (क़ुरबानी के बाद) उनकी

हमको अल्लाह ने दिए हैं। जिहाद वक़्त और ज़ेहनी और जिस्मानी सलाहियतों की क़ुरबानी है। क़िताल फ़ी सबीलिल्लाह (अल्लाह के रास्ते में लड़ना) जान की क़ुरबानी है। ये सब एक-एक तरह की नेमत और एक-एक देन के शुक्रिए हैं। इसी तरह जानवरों की क़ुरबानी भी हमपर आइद की गई है, ताकि हम अल्लाह तआला की इस अज़ीमुश्शान नेमत पर उसका शुक्र अदा करें और उसकी बड़ाई मानें कि उसने अपने पैदा किए हुए बहुत-से जानवरों को हमारे लिए हमारी ख़िदमत में लगा दिया, जिनपर हम सवार होते हैं, जिनसे खेती-बाड़ी और बोझ ढोने का काम लेते हैं, जिनके गोश्त खाते हैं, जिनके दूध पीते हैं, जिनकी खालों और बालों और ख़ून और हड्डी, ग़रज़ एक-एक चीज़ से बे-हिसाब फ़ायदे उठाते हैं।

69. वाज़ेह रहे कि ऊँट की क़ुरबानी उसको खड़ा करके की जाती है। उसका एक पाँव बाँध दिया जाता है, फिर उसकी गर्दन में हलक़ के पास ज़ोर से नेज़ा मारा जाता है, जिससे ख़ून का एक फ़व्वारा निकल पड़ता है, फिर जब काफ़ी ख़ून निकल जाता है तब ऊँट ज़मीन पर गिर पड़ता है। यही मतलब है 'सवाफ़' (खड़ा करके) का। इब्ने-अब्बास, मुजाहिद, ज़ह्हाक वग़ैरा ने इसकी यही तशरीह की है, बल्कि नबी (सल्ल॰) के हवाले से भी यही साबित है। चुनाँचे बुख़ारी और मुस्लिम में रिवायत है कि इब्ने-उमर ने एक शख़्स को देखा जो अपने ऊँट को बिठाकर क़ुरबानी कर रहा था। इसपर उन्होंने कहा, "इसको पाँव बाँधकर खड़ा कर, यह है अबुल-क़ासिम (नबी सल्ल॰) की सुन्नत।" अबू-दाऊद में जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि॰) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के सहाबा ऊँट का बायाँ पाँव बाँधकर बाक़ी तीन पाँवों पर उसे खड़ा करते थे, फिर उसको नह्र (ज़ब्ह) करते थे। इसी मतलब की तरफ़ ख़ुद क़ुरआन भी इशारा कर रहा है, 'जब उनकी पीठें ज़मीन पर टिक जाएँ'। यह उसी सूरत में बोलेंगे, जबकि जानवर खड़ा हो और फिर ज़मीन पर गिरे। वरना लिटाकर क़ुरबानी करने की सूरत में तो पीठ वैसे ही टिकी हुई होती है।

70. ये अलफ़ाज़ फिर इस बात की दलील हैं कि अल्लाह का नाम लिए बिना ज़ब्ह करने से कोई जानवर हलाल नहीं होता, इसलिए अल्लाह तआला उनको "ज़ब्ह करो" कहने के बजाय "उनपर अल्लाह का नाम लो" फ़रमा रहा है, और मतलब इसका जानवरों को ज़ब्ह करना है। इससे ख़ुद-ब-ख़ुद यह बात निकलती है कि इस्लामी शरीअत में जानवर ज़ब्ह करने का कोई तसव्वुर (धारणा) अल्लाह का नाम लेकर ज़ब्ह करने के सिवा नहीं है।

ज़ब्ह करते वक़्त "बिसमिल्लाहि अल्लाहु-अक्बर" कहने का तरीक़ा भी इसी जगह से लिया गया है। आयत-36 में फ़रमाया, "उनपर अल्लाह का नाम लो।" और आयत-37 में फ़रमाया, "ताकि अल्लाह की दी हुई हिदायत पर तुम उसकी बड़ाई बयान करो।"

क़ुरबानी करते वक़्त अल्लाह का नाम लेने की अलग-अलग शक्लें हदीसों में लिखी हैं। मसलन

مِنۡهَا وَاَطۡعِمُوا الۡقَانِعَ وَالۡمُعۡتَرَّ ؕ كَذٰلِكَ سَخَّرۡنٰهَا لَـكُمۡ لَعَلَّكُمۡ
تَشۡكُرُوۡنَ ۝۳۶ لَنۡ يَّنَالَ اللّٰهَ لُحُوۡمُهَا وَلَا دِمَآؤُهَا وَلٰـكِنۡ يَّنَالُهُ
التَّقۡوٰى مِنۡكُمۡ ؕ كَذٰلِكَ سَخَّرَهَا لَـكُمۡ لِتُكَبِّرُوا اللّٰهَ عَلٰى مَا

पीठें ज़मीन पर टिक जाएँ[71] तो उनमें से ख़ुद भी खाओ और उनको भी खिलाओ जो क़नाअत (सन्तोष) किए बैठे हैं और उनको भी जो अपनी ज़रूरत पेश करें। इन जानवरों को हमने इस तरह तुम्हारे मातहत किया है, ताकि तुम शुक्रिया अदा करो।[72] (37) न उनके गोश्त अल्लाह को पहुँचते हैं, न ख़ून; मगर उसे तुम्हारा तक़वा पहुँचता है।[73] उसने उनको तुम्हारे इस तरह मातहत किया है, ताकि उसकी दी हुई हिदायत पर तुम उसकी बड़ाई

(1) "बिसमिल्लाहि वल्लाहु-अक्बर अल्लाहुम-म मिन-क व-ल-क" (अल्लाह के नाम के साथ, और अल्लाह सबसे बड़ा है। ऐ अल्लाह, तेरा ही माल है और तेरे ही लिए हाज़िर है)। (2) अल्लाहु-अकबर ला-इला-ह इल्लल्लाहु अल्ला-हुम्म मिन-क व ल-क। (अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह के सिवा कोई इबादत के लाइक़ नहीं। ऐ अल्लाह तेरा ही माल है और तेरे ही लिए हाज़िर है)। (3) "इन्नी वज्जहतु वजूहि-य लिल्लज़ी फ़-तरस-समावाति वल अर-ज़ हनीफ़ौं व मा अना मिनल मुशरिकीन। इन-न सलाती व नुसुकी व मह्या-य व ममाती लिल्लाहि रब्बिल आलमीन. ला शरी-क लहू व बिज़ालि-क उमिरतु व अना मिनल मुसलिमीन. अल्लाहुम-म मिन-क व-ल-क।" (मैंने यकसू होकर अपना रुख़ उस ज़ात की तरफ़ कर लिया जिसने ज़मीन और आसमानों को पैदा किया है, और मैं मुशरिकों में से नहीं हूँ। बेशक मेरी नमाज़ और क़ुरबानी और मेरा मरना और जीना सब अल्लाह, तमाम जहानों के मालिक, के लिए है, उसका कोई साझी नहीं। इसी का मुझे हुक्म दिया गया है और मैं फ़रमाँबरदारी में सिर झुका देनेवालों में से हूँ। ऐ अल्लाह, तेरा ही माल है और तेरे ही लिए हाज़िर है)।

71. टिकने का मतलब सिर्फ़ इतना ही नहीं है कि वे ज़मीन पर गिर जाएँ, बल्कि यह भी है कि वे गिरकर ठहर जाएँ, यानी तड़पना बन्द कर दें और जान पूरी तरह निकल जाए। अबू-दाऊद, तिरमिज़ी और मुसनद अहमद में नबी (सल्ल.) का यह इरशाद बयान है कि "जानवर से जो गोश्त इस हालत में काटा जाए कि अभी वह ज़िन्दा हो, वह मुरदार है।"

72. यहाँ फिर इशारा है इस बात की तरफ़ कि क़ुरबानी का हुक्म क्यों दिया गया है। फ़रमाया, इसलिए कि यह शुक्रिया है उस अज़ीमुश्शान नेमत का जो अल्लाह ने मवेशी जानवरों को तुम्हारी ख़िदमत के काम में लगाकर तुम्हें दी है।

73. जाहिलियत के ज़माने में अरब के लोग जिस तरह बुतों के नाम पर की गई क़ुरबानी का गोश्त बुतों पर ले जाकर चढ़ाते थे, उसी तरह अल्लाह के नाम की क़ुरबानी का गोश्त काबा के सामने लाकर रखते और ख़ून उसकी दीवारों पर लथेड़ते थे। उनके नज़दीक यह क़ुरबानी मानो इसलिए

هَدٰىكُمْ ۗ وَبَشِّرِ الْمُحْسِنِيْنَ ۝٣٧

बयान करो।[74] और ऐ नबी, ख़ुशख़बरी दे दो भले काम करनेवालों को।

की जाती थी कि अल्लाह के सामने उसका ख़ून और गोश्त पेश किया जाए। इस जहालत का परदा चाक करते हुए फ़रमाया कि अस्ल चीज़ जो अल्लाह के सामने पेश होती है वह जानवर का ख़ून और गोश्त नहीं, बल्कि तुम्हारा तक़वा है। अगर तुम नेमत के शुक्र के जज़्बे की वजह से ख़ालिस नीयत के साथ सिर्फ़ अल्लाह के लिए क़ुरबानी करोगे तो इस जज़्बे और नीयत और ख़ुलूस (निष्ठा) का नज़राना उसके सामने पहुँच जाएगा, वरना ख़ून और गोश्त यहीं धरा रह जाएगा। यही बात है जो हदीस में नबी (सल्ल.) के हवाले से लिखी है कि आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, ''अल्लाह तुम्हारी सूरतें और तुम्हारे रंग नहीं देखता, बल्कि तुम्हारे दिल और आमाल देखता है।''

74. यानी दिल से उसकी बड़ाई और बरतरी मानो और अमल से इसका एलान और इज़हार करो। फिर यह हुक्म क़ुरबानी के मक़सद और वजह की तरफ़ इशारा है। क़ुरबानी सिर्फ़ इसी लिए वाजिब नहीं की गई है कि यह जानवरों को ख़िदमत पर लगाने की नेमत पर अल्लाह का शुक्रिया है, बल्कि इसलिए भी वाजिब की गई है कि जिसके ये जानवर हैं और जिसने इन्हें हमारी ख़िदमत में लगाया है, उसके मालिकाना हुक़ूक़ को हम दिल से भी और अमल से भी मानें, ताकि हमें कभी यह भूल न हो जाए कि यह सब कुछ हमारा अपना माल है। इसी बात को वह जुमला अदा करता है जो क़ुरबानी करते वक़्त कहा जाता है कि ''अल्लाहुम-म मिन-क व-ल-क'' (ऐ अल्लाह, तेरा ही माल है और तेरे ही लिए हाज़िर है)।

यहाँ यह जान लेना चाहिए कि इस पैराग्राफ़ में क़ुरबानी का जो हुक्म दिया गया है वे सिर्फ़ हाजियों ही के लिए नहीं है, और सिर्फ़ मक्का में हज ही के मौक़े पर अदा करने के लिए नहीं है, बल्कि तमाम हैसियतवाले मुसलमानों के लिए आम है, जहाँ भी वे हों, ताकि वे जानवरों को ख़िदमत पर लगाए जाने की नेमत पर शुक्रिए और तकबीर (बड़ाई बयान करने) का फ़र्ज़ भी अदा करें और साथ-साथ अपने-अपने मक़ामों पर हाजियों के साथ इस अमल में शरीक भी हो जाएँ। हज की ख़ुशनसीबी न मिल सकी न सही, कम-से-कम हज के दिनों में सारी दुनिया के मुसलमान वे काम तो कर रहे हों जो हाजी अल्लाह के घर (काबा) के पास करें। इस बात को और ज़्यादा खोलकर कई सहीह हदीसों में बयान किया गया है, और बहुत-सी भरोसेमन्द रिवायतों से भी साबित हुआ है कि नबी (सल्ल.) ख़ुद मदीना तय्यिबा में ठहरने के पूरे ज़माने में हर साल बक़र-ईद के मौक़े पर क़ुरबानी करते रहे और मुसलमानों में आप (सल्ल.) ही की सुन्नत से यह तरीक़ा जारी हुआ। मुसनद अहमद और इब्ने-माजा में अबू-हुरैरा (रज़ि.) की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, ''जो शख़्स हैसियत रखता हो, फिर क़ुरबानी न करे, वह हमारी ईदगाह के क़रीब न आए।''

इस रिवायत के तमाम रिवायत करनेवाले भरोसेमन्द हैं। मुहद्दिसों (हदीस के आलिमों) में सिर्फ़ इस बात पर इख़्तिलाफ़ है कि यह मरफ़ूअ रिवायत है या मौक़ूफ़। तिरमिज़ी में इब्ने-उमर

إِنَّ اللَّهَ يُدٰفِعُ عَنِ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ۭ إِنَّ اللَّهَ لَا يُحِبُّ

(38) यक़ीनन[75] अल्लाह मुदाफ़अत (बचाव) करता है उन लोगों की तरफ़ से जो

(रज़ि॰) की रिवायत है, "नबी (सल्ल॰) मदीना में दस साल रहे और हर साल क़ुरबानी करते रहे।"

बुख़ारी में हज़रत अनस (रज़ि॰) की रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने बक़र-ईद के दिन फ़रमाया, "जिसने ईद की नमाज़ से पहले ज़ब्ह कर लिया उसे दोबारा क़ुरबानी करनी चाहिए, और जिसने नमाज़ के बाद क़ुरबानी की उसकी क़ुरबानी पूरी हो गई और उसने मुसलमानों का तरीक़ा पा लिया।"

और यह मालूम है कि 'यौमुन-नह्र' (क़ुरबानी के दिन) मक्का में कोई नमाज़ ऐसी नहीं होती जिससे पहले क़ुरबानी करना मुसलमानों के तरीक़े के ख़िलाफ़ हो और बाद में करना उसके मुताबिक़। लिहाज़ा ज़रूर ही यह इरशाद मदीना ही में हुआ है, न कि हज के मौक़े पर मक्का में।

मुस्लिम में जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि॰) की रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने मदीना में बक़र-ईद की नमाज़ पढ़ाई और कुछ लोगों ने यह समझकर कि आप (सल्ल॰) क़ुरबानी कर चुके हैं, अपनी-अपनी क़ुरबानियाँ कर लीं। इसपर आप (सल्ल॰) ने हुक्म दिया कि मुझसे पहले जिन लोगों ने क़ुरबानी कर ली है, वे फिर से क़ुरबानी करें।

इसलिए इस बात में कोई शक नहीं कि बक़र-ईद के दिन जो क़ुरबानी आम मुसलमान दुनिया भर में करते हैं, यह नबी (सल्ल॰) ही की जारी की हुई सुन्नत है। अलबत्ता अगर इख़्तिलाफ़ है तो इस बात में कि क्या यह वाजिब है या सिर्फ़ सुन्नत। इबराहीम नख़ई, इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰), इमाम मालिक (रह॰), इमाम मुहम्मद (रह॰), और एक रिवायत के मुताबिक़ इमाम अबू-यूसुफ़ (रह॰) भी, इसको वाजिब मानते हैं। मगर इमाम शाफ़िई (रह॰) और इमाम अहमद-बिन-हंबल (रह॰) के नज़दीक यह सिर्फ़ मुसलमानों की सुन्नत (तरीक़ा) है, और सुफ़ियान सौरी (रह॰) भी इस बात को मानते हैं कि अगर कोई न करे तो कोई हरज नहीं। फिर भी मुस्लिम आलिमों में से कोई भी इस बात को नहीं मानता कि अगर तमाम मुसलमान एकमत होकर इसे छोड़ दें तब भी कोई हरज नहीं। यह नई उपज सिर्फ़ हमारे ज़माने के कुछ लोगों को सूझी है जिनके लिए उनका नफ़्स ही क़ुरआन भी है और सुन्नत भी।

75. यहाँ से तक़रीर का रुख़ एक दूसरे मज़मून (विषय) की तरफ़ फिरता है। बात के सिलसिले को समझने के लिए यह बात ध्यान में ताज़ा कर लीजिए कि यह तक़रीर उस वक़्त की है जब हिजरत के बाद पहली बार हज का मौसम आया था। उस वक़्त एक तरफ़ तो मुहाजिर और मदीना के अनसार, दोनों को यह बात बहुत नागवार गुज़र रही थी कि वे हज की नेमत से महरूम कर दिए गए हैं और उनपर हरम की ज़ियारत का रास्ता ज़बरदस्ती बन्द कर दिया गया है। और दूसरी तरफ़ मुसलमानों के दिलों पर न सिर्फ़ उस ज़ुल्म के दाग़ ताज़ा थे जो मक्का में उनपर किए गए थे, बल्कि इस बात पर भी वे बहुत दुखी थे कि घर-द्वार छोड़कर जब वे मक्का

كُلَّ خَوَّانٍ كَفُوْرٍ ۝٣٨ أُذِنَ لِلَّذِيْنَ يُقٰتَلُوْنَ بِاَنَّهُمْ ظُلِمُوْا ۭ

ईमान लाए हैं।[76] यक़ीनन अल्लाह किसी ख़ियानत करनेवाले नाशुक्रे को पसन्द नहीं करता।[77] (39) इजाज़त दे दी गई उन लोगों को जिनके ख़िलाफ़ जंग की जा रही है;

से निकल गए तो अब मदीना में भी उनको चैन से नहीं बैठने दिया जा रहा है। इस मौक़े पर जो तक़रीर की गई उसके पहले हिस्से में काबा की तामीर, हज के इदारे और क़ुरबानी के तरीक़े पर तफ़सील से बातचीत करके बताया गया कि इन सब चीज़ों का अस्ल मक़सद क्या था और जाहिलियत ने उनको बिगाड़कर क्या-से-क्या कर दिया है। इस तरह मुसलमानों में यह जज़्बा पैदा कर दिया गया कि इन्तिक़ाम की नीयत से नहीं, बल्कि सुधार की नीयत से इस सूरतेहाल को बदलने के लिए उठें। और इसके साथ मदीना में क़ुरबानी का तरीक़ा जारी करके मुसलमानों को यह मौक़ा भी दे दिया गया कि हज के ज़माने में अपने-अपने घरों पर ही क़ुरबानी करके इस नेकी और ख़ुशनसीबी में हिस्सा ले सकें, जिससे दुश्मनों ने उनको महरूम करने की कोशिश की है, और हज से अलग एक मुस्तक़िल सुन्नत की हैसियत से क़ुरबानी जारी कर दी, ताकि जो हज का मौक़ा न पाए वह भी अल्लाह की नेमत के शुक्र और उसकी बड़ाई बयान करने का हक़ अदा कर सके। इसके बाद अब दूसरे हिस्से में मुसलमानों को उस ज़ुल्म के ख़िलाफ़ तलवार उठाने की इजाज़त दी जा रही है जो उनपर किया गया था और किया जा रहा था।

76. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'युदाफ़िउ' (वह बचाव करता है) इस्तेमाल हुआ है जो 'मुदाफ़अत' लफ़्ज़ से निकला है। इसका माद्दा (धातु) 'द-फ़-अ' है जिसका अस्ल मतलब किसी चीज़ को हटाना और दूर करना है। मगर जब 'द-फ़-अ' की जगह 'मुदाफ़अत' करना बोलेंगे तो उसमें दो मतलब शामिल हो जाएँगे। एक यह कि कोई दुश्मन ताक़त है जो हमला कर रही है और बचाव करनेवाला उसका मुक़ाबला कर रहा है। दूसरे यह कि यह मुक़ाबला बस एक दफ़ा ही होकर नहीं रह गया, बल्कि जब भी वह हमला करता है यह उसको हटा देता है। इन दो मतलबों को निगाह में रखकर देखा जाए तो ईमानवालों की तरफ़ से अल्लाह तआला के मुदाफ़अत (बचाव) करने का मतलब यह समझ में आता है कि कुफ़्र और ईमान की कशमकश में ईमानवाले बिलकुल अकेले नहीं होते, बल्कि अल्लाह ख़ुद उनके साथ एक फ़रीक़ (पक्ष) होता है। वह उनकी मदद और हिमायत करता है, उनके ख़िलाफ़ दुश्मनों की चालों का तोड़ करता है और नुक़सान पहुँचानेवालों के नुक़सान को उनसे हटाता रहता है। तो यह आयत हक़ीक़त में हक़परस्तों के लिए एक बहुत बड़ी ख़ुशख़बरी है जिससे बढ़कर उनका दिल मज़बूत करनेवाली कोई दूसरी चीज़ नहीं हो सकती।

77. यह वजह है इस बात की कि इस कशमकश में अल्लाह क्यों हक़परस्तों के साथ एक फ़रीक़ बनता है। इसलिए कि हक़ के ख़िलाफ़ टकरानेवाला दूसरा फ़रीक़ बेईमान है, और नेमत का नाशुक्रा है। वह हर उस अमानत में ख़ियानत कर रहा है जो अल्लाह ने उसके सुपुर्द की है, और हर उस नेमत का जवाब नाशुक्री और नमक-हरामी से दे रहा है जो अल्लाह ने उसको दी

وَاِنَّ اللّٰهَ عَلٰى نَصْرِهِمْ لَقَدِيْرُ ۙ الَّذِيْنَ اُخْرِجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ
بِغَيْرِ حَقٍّ اِلَّآ اَنْ يَّقُوْلُوْا رَبُّنَا اللّٰهُ ۗ وَلَوْلَا دَفْعُ اللّٰهِ النَّاسَ

क्योंकि उनपर ज़ुल्म किया गया है,[78] और अल्लाह यक़ीनन उनकी मदद की क़ुदरत रखता है।[79] (40) ये वे लोग हैं जो अपने घरों से नाहक़ निकाल दिए गए[80] सिर्फ़ इस क़ुसूर पर कि वे कहते थे कि "हमारा रब अल्लाह है।"[81] अगर अल्लाह लोगों को

है। लिहाज़ा अल्लाह उसको नापसन्द करता है और उसके ख़िलाफ़ जिद्दो-जुहद करनेवाले हक़परस्तों की मदद करता है।

78. जैसा कि परिचय में बयान किया जा चुका है, यह अल्लाह के रास्ते में क़िताल (जंग) करने के बारे में सबसे पहली आयत है जो उतरी है। इस आयत में सिर्फ़ इजाज़त दी गई थी। बाद में सूरा-2 बक़रा की वे आयतें उतरीं जिनमें जंग का हुक्म दे दिया गया, यानी "अल्लाह की राह में उनसे लड़ो जो तुमसे लड़ते हैं।" (आयत-190) और "उनसे लड़ो जहाँ भी तुम्हारी उनसे मुठभेड़ हो जाए और उन्हें निकालो, जहाँ से उन्होंने तुम्हें निकाला है।" (आयत-191) और "तुम उनसे लड़ते रहो यहाँ तक कि फ़ितना बाक़ी न रहे और दीन अल्लाह के लिए हो जाए।" (अयात-193) और "तुम्हें जंग का हुक्म दिया गया है और वह तुम्हें नापसन्द है।" (आयत-216) और "अल्लाह की राह में जंग करो और ख़ूब जान रखो कि अल्लाह सुननेवाला और जाननेवाला है।" (आयत-244)

इजाज़त और हुक्म में सिर्फ़ कुछ महीनों का फ़ासला है। इजाज़त हमारी तहक़ीक़ के मुताबिक़ अरबी महीने ज़िलहिज्जा 01 हिजरी में उतरी और हुक्म जंगे-बद्र से कुछ पहले रजब या शाबान 02 हिजरी में उतरा।

79. यानी इसके बावजूद कि ये कुछ मुट्ठी भर आदमी हैं, अल्लाह उनको तमाम दुश्मनों पर ग़ालिब कर सकता है। यह बात ध्यान में रहे कि जिस वक़्त तलवार उठाने की यह इजाज़त दी जा रही थी, मुसलमानों की सारी ताक़त सिर्फ़ मदीना के एक मामूली क़सबे तक महदूद थी और मुहाजिर और अनसार मिलकर भी एक हज़ार की तादाद तक न पहुँचते थे। और इस हालत में चैलेंज दिया जा रहा था क़ुरैश को जो अकेले न थे, बल्कि अरब के दूसरे मुशरिक क़बीले भी उनकी पीठ पर थे और बाद में यहूदी भी उनके साथ मिल गए। इस मौक़े पर यह इरशाद कि "अल्लाह यक़ीनन उनकी मदद पर पूरी क़ुदरत (सामर्थ्य) रखता है" बिलकुल मौक़े के मुताबिक़ था। इससे मुसलमानों की भी ढाढ़स बंधाई गई जिन्हें पूरे अरब की ताक़त के मुक़ाबले में तलवार लेकर उठ खड़े होने के लिए उभारा जा रहा था, और दुश्मनों को भी ख़बरदार कर दिया गया कि तुम्हारा मुक़ाबला अस्ल में उन मुट्ठी भर मुसलमानों से नहीं बल्कि ख़ुदा से है। उसके मुक़ाबले की हिम्मत हो तो सामने आ जाओ।

80. यह आयत साफ़ बताती है कि सूरा हज का यह हिस्सा ज़रूर हिजरत के बाद उतरा है।

81. जिस ज़ुल्म के साथ ये लोग निकाले गए उसका अन्दाज़ा करने के लिए नीचे के कुछ वाक़िआत पर नज़र डालिए—

بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ لَّهُدِّمَتْ صَوَامِعُ وَبِيَعٌ وَّصَلَوٰتٌ وَّمَسٰجِدُ

एक-दूसरे के ज़रिए से हटाता न रहे तो ख़ानक़ाहें और गिरजाघर और इबादतगाहें[82] और

हज़रत सुहैब रूमी (रज़ि॰) जब हिजरत करने लगे तो क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मनों ने उनसे कहा कि तुम यहाँ ख़ाली हाथ आए थे और अब ख़ूब मालदार हो गए हो। तुम जाना चाहो तो ख़ाली हाथ जा सकते हो। अपना माल नहीं ले जा सकते। हालाँकि उन्होंने जो कुछ कमाया था अपने हाथ की मेहनत से कमाया था, किसी का दिया हुआ नहीं खाते थे। आख़िर वे ग़रीब दामन झाड़कर खड़े हो गए और सबकुछ ज़ालिमों के हवाले करके इस हाल में मदीना पहुँचे कि जिस्म के कपड़ों के सिवा उनके पास कुछ न था।

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि॰) और उनके शौहर अबू-सलमा (रज़ि॰) अपने दूध पीते बच्चे को लेकर हिजरत के लिए निकले। बनी-मुग़ीरा (उम्मे-सलमा के ख़ानदान) ने रास्ता रोक लिया और अबू-सलमा (रज़ि॰) से कहा कि तुम्हारा जहाँ जी चाहे फिरते रहो, मगर हमारी लड़की को लेकर नहीं जा सकते। मजबूर होकर बेचारे बीवी को छोड़कर चले गए। फिर बनी-अब्दुल-असद (अबू-सलमा के ख़ानदान के लोग) आगे बढ़े और उन्होंने कहा कि बच्चा हमारे हवाले करो। इस तरह बच्चा भी माँ और बाप दोनों से छीन लिया गया। लगभग एक साल तक हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि॰) बच्चे और शौहर के ग़म में तड़पती रहीं, और आख़िर बड़ी मुसीबत से अपने बच्चे को हासिल करके मक्का से इस हाल में निकलीं कि अकेली औरत गोद में बच्चा लिए ऊँट पर सवार थी और उन रास्तों पर जा रही थी जिनसे हथियारबन्द क़ाफ़िले भी गुज़रते हुए डरते थे।

अय्याश-बिन-रबीआ (रज़ि॰), अबू-जह्ल के माँ-जाए भाई थे। हज़रत उमर (रज़ि॰) के साथ हिजरत करके मदीना पहुँच गए। पीछे-पीछे अबू-जह्ल अपने एक भाई को साथ लेकर जा पहुँचा और बात बनाई कि अम्माँ जान ने क़सम खाली है कि जब तक अय्याश की सूरत न देख लूँगी, न धूप से छाँव में जाऊँगी और न सिर में कंघी करूँगी। इसलिए तुम बस चलकर उन्हें सूरत दिखा दो, फिर वापस आ जाना। वे बेचारे माँ की मुहब्बत में साथ हो लिए। रास्ते में दोनों भाइयों ने उनको क़ैद कर लिया और मक्का में उन्हें लेकर इस तरह दाख़िल हुए कि वे रस्सियों में जकड़े हुए थे और दोनों भाई पुकारते जा रहे थे, "ऐ मक्कावालो, अपने-अपने नालायक़ लड़कों को यूँ सीधा करो जिस तरह हमने किया है।" काफ़ी मुद्दत तक ये बेचारे क़ैद रहे और आख़िरकार एक जाँबाज़ मुसलमान उनको निकाल लाने में कामयाब हुआ।

इस तरह के ज़ुल्मों से लगभग हर उस शख़्स को गुज़रना पड़ा जिसने मक्का से मदीना की तरफ़ हिजरत की। ज़ालिमों ने घर-द्वार छोड़ते वक़्त भी इन ग़रीबों को ख़ैरियत से न निकलने दिया।

82. अस्ल अरबी में "सवामिउ" और "बियउन" और "स-लवातुन" के अलफ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं। 'सौमआ' (बहुवचन 'सवामिउ') उस जगह को कहते हैं जहाँ राहिब, संन्यासी और दुनिया से अलग-थलग रहनेवाले फ़क़ीर रहते हों। 'बियअ' का लफ़्ज़ अरबी ज़बान में ईसाइयों की इबादतगाह के लिए इस्तेमाल होता है। 'स-लवात' से मुराद यहूदियों के नमाज़ पढ़ने की जगह है। यहूदियों के

يُذْكَرُ فِيهَا اسْمُ اللّٰهِ كَثِيرًا ۗ وَلَيَنْصُرَنَّ اللّٰهُ مَنْ يَّنْصُرُهٗ ۗ اِنَّ اللّٰهَ
لَقَوِيٌّ عَزِيزٌ ۝٤٠ اَلَّذِيْنَ اِنْ مَّكَّنّٰهُمْ فِي الْاَرْضِ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ
وَاٰتَوُا الزَّكٰوةَ وَاَمَرُوْا بِالْمَعْرُوْفِ وَنَهَوْا عَنِ الْمُنْكَرِ ۗ

मस्जिदें जिनमें अल्लाह का बहुत ज़्यादा नाम लिया जाता है, सब ढहा दी जाएँ।[83] अल्लाह ज़रूर उन लोगों की मदद करेगा जो उसकी मदद करेंगे।[84] अल्लाह बड़ा ताक़तवर और ज़बरदस्त है। (41) ये वे लोग हैं जिन्हें अगर हम ज़मीन में इक़्तिदार (सत्ताधिकार) दें तो वे नमाज़ क़ायम करेंगे, ज़कात देंगे, भलाई का हुक्म देंगे और बुराई से रोकेंगे।[85]

यहाँ इसका नाम 'सलौता' था जो आरामी ज़बान का लफ़्ज़ है। मुमकिन है कि अंग्रेज़ी लफ़्ज़ (Salute) और (Salutation) इसी से निकलकर लैटिन में और फिर अंग्रेज़ी में पहुँचा हो।

83. यानी यह अल्लाह की बड़ी मेहरबानी है कि उसने किसी एक गरोह या क़ौम को हमेशा रहनेवाले इक़्तिदार (सत्ता) का पट्टा नहीं लिखकर दे दिया, बल्कि वह वक़्त-वक़्त पर दुनिया में एक गरोह को दूसरे गरोह के ज़रिए से हटाता रहता है। वरना अगर एक ही गरोह को कहीं पट्टा मिल गया होता तो क़िले और महल और सियासत के ठिकाने और तिजारत और कल-कारख़ानों के मरकज़ ही तबाह न कर दिए जाते, बल्कि इबादतगाहें तक तबाह कर डाली जातीं। सूरा-2 बक़रा में इस बात को यूँ बयान किया गया है, "अगर ख़ुदा लोगों को एक दूसरे के ज़रिए से हटाता न रहता तो ज़मीन में फ़साद मच जाता। मगर अल्लाह दुनियावालों पर बड़ा मेहरबान है।" (आयत-251)

84. यह बात क़ुरआन मजीद में कई जगहों पर बयान हुई है कि जो लोग अल्लाह के बन्दों को तौहीद (एक ख़ुदा) की तरफ़ बुलाने और सच्चे दीन (इस्लाम) को क़ायम करने और बुराई की जगह भलाई को बढ़ावा देने की कोशिश करते हैं वे अस्ल में अल्लाह के मददगार हैं, क्योंकि यह अल्लाह का काम है जिसे अंजाम देने में वे उसका साथ देते हैं। और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए– तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, हाशिया-50।

85. यानी अल्लाह के मददगार और उसकी हिमायत और मदद के हक़दार लोगों की ये सिफ़तें हैं कि अगर दुनिया में उन्हें हुकूमत और सत्ता दी जाए तो उनका अपना किरदार अल्लाह की नाफ़रमानी, गुनाह और घमंड के बजाय नमाज़ क़ायम करने का हो, उनकी दौलत अय्याशियों और मनमानी के बजाय ज़कात देने में लगे, उनकी हुकूमत नेकी को दबाने के बजाय उसे बढ़ाने और फैलाने का काम करे, और उनकी ताक़त बुराइयों को फैलाने के बजाय उनके दबाने में इस्तेमाल हो। इस एक जुमले में इस्लामी हुकूमत के नस्बुल-ऐन (लक्ष्य) और उसके कारकुनों (कार्यकर्ताओं) की ख़ूबियों का सार निकालकर रख दिया गया है। कोई समझना चाहे तो इसी एक जुमले से समझ सकता है कि इस्लामी हुकूमत हक़ीक़त में किस चीज़ का नाम है।

وَلِلّٰهِ عَاقِبَةُ الْاُمُوْرِ ﴿٤١﴾ وَاِنْ يُّكَذِّبُوْكَ فَقَدْ كَذَّبَتْ قَبْلَهُمْ قَوْمُ
نُوْحٍ وَّعَادٌ وَّثَمُوْدُ ﴿٤٢﴾ وَقَوْمُ اِبْرٰهِيْمَ وَقَوْمُ لُوْطٍ ﴿٤٣﴾ وَّاَصْحٰبُ
مَدْيَنَ ۚ وَكُذِّبَ مُوْسٰى فَاَمْلَيْتُ لِلْكٰفِرِيْنَ ثُمَّ اَخَذْتُهُمْ ۚ
فَكَيْفَ كَانَ نَكِيْرِ ﴿٤٤﴾ فَكَاَيِّنْ مِّنْ قَرْيَةٍ اَهْلَكْنٰهَا وَهِيَ ظَالِمَةٌ فَهِيَ

और तमाम मामलों का अंजाम अल्लाह के हाथ में है।[86]

(42-44) ऐ नबी, अगर वे तुम्हें झुठलाते हैं[87] तो उनसे पहले नूह की क़ौम और आद और समूद और इबराहीम की क़ौम और लूत की क़ौम और मदयनवाले भी झुठला चुके हैं और मूसा भी झुठलाए जा चुके हैं। इन सब, हक़ का इनकार करनेवालों को मैंने पहले मुहलत दी, फिर पकड़ लिया।[88] अब देख लो कि मेरी सज़ा कैसी थी।[89] (45) कितनी ही क़ुसूरवार बस्तियाँ हैं जिनको हमने तबाह किया है और आज वे अपनी छतों पर उलटी

86. यानी यह फ़ैसला कि ज़मीन का इन्तिज़ाम किस वक़्त किसे सौंपा जाए, अस्ल में अल्लाह ही के हाथ में है। घमंडी लोग इस ग़लतफ़हमी में हैं कि ज़मीन और उसके बसनेवालों की क़िस्मतों के फ़ैसले करनेवाले वे ख़ुद हैं। मगर जो ताक़त एक ज़रा-से बीज को मोटा तनावर पेड़ बना देती है और एक मोटे तनावर पेड़ को जलाने के लाइक़ लकड़ी बना देती है, उसी को यह क़ुदरत हासिल है कि जिनके दबदबे को देखकर लोग समझते हों कि भला इनको कौन हिला सकेगा, उन्हें ऐसा गिराए कि दुनिया के लिए सबक़ लेने लाइक़ मिसाल बन जाएँ और जिन्हें देखकर कोई गुमान भी न कर सकता हो कि ये भी कभी उठ सकेंगे, उन्हें ऐसा सरबुलन्द करे कि दुनिया में उनकी महानता और बड़ाई के डंके बज जाएँ।

87. यानी मक्का के ग़ैर-मुस्लिम लोग।

88. यानी उनमें से किसी क़ौम को भी नबी को झुठलाते ही फ़ौरन नहीं पकड़ लिया गया था, बल्कि हर एक को सोचने-समझने के लिए काफ़ी वक़्त दिया गया और पकड़ उस वक़्त की गई जबकि इनसाफ़ के तक़ाज़े पूरे हो चुके थे। इसी तरह मक्का के इस्लाम-दुश्मन भी यह न समझें कि उनकी शामत आने में जो देर लग रही है वह इस वजह से है कि नबी का ख़बरदार करना सिर्फ़ ख़ाली-ख़ूली धमकियाँ हैं। अस्ल में सोचने-समझने की यह मुहलत है जो अल्लाह तआला अपने उसूल के मुताबिक़ उनको दे रहा है, और इस मुहलत से अगर उन्होंने फ़ायदा न उठाया तो उनका अंजाम भी वही होकर रहना है जो उनसे पहले के लोगों का हो चुका है।

89. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'नकीर' इस्तेमाल हुआ है जिसका पूरा मतलब सज़ा या दूसरे लफ़्ज़ से पूरी तरह अदा नहीं होता। यह लफ़्ज़ दो मतलब देता है। एक यह कि किसी शख़्स के बुरे रवैये

خَاوِيَةٌ عَلٰى عُرُوْشِهَا وَبِئْرٍ مُّعَطَّلَةٍ وَّقَصْرٍ مَّشِيْدٍ۝۴۵ اَفَلَمْ يَسِيْرُوْا
فِي الْاَرْضِ فَتَكُوْنَ لَهُمْ قُلُوْبٌ يَّعْقِلُوْنَ بِهَآ اَوْ اٰذَانٌ يَّسْمَعُوْنَ
بِهَا ۚ فَاِنَّهَا لَا تَعْمَى الْاَبْصَارُ وَلٰكِنْ تَعْمَى الْقُلُوْبُ الَّتِيْ
فِي الصُّدُوْرِ۝۴۶ وَيَسْتَعْجِلُوْنَكَ بِالْعَذَابِ وَلَنْ يُّخْلِفَ اللّٰهُ وَعْدَهٗ ۭ

पड़ी हैं, कितने ही कुँए[90] बेकार और कितने ही महल खण्डहर बने हुए हैं। (46) क्या ये लोग ज़मीन में चले-फिरे नहीं हैं कि इनके दिल समझनेवाले और इनके कान सुननेवाले होते? हक़ीक़त यह है कि आँखें अंधी नहीं होतीं, मगर वे दिल अंधे हो जाते हैं जो सीनों में हैं।[91]

(47) ये लोग अज़ाब के लिए जल्दी मचा रहे हैं।[92] अल्लाह हरगिज़ अपने वादे के

पर नागवारी ज़ाहिर की जाए। दूसरा यह कि उसको ऐसी सज़ा दी जाए जो उसकी हालत ख़राब कर दे। उसका हुलिया बिगाड़कर रख दिया जाए। कोई देखे तो पहचान न सके कि यह वही शख़्स है। इन दोनों मतलबों के लिहाज़ से इस जुमले का पूरा मतलब यह है कि ''अब देख लो कि उनके इस रवैये पर जब मेरा ग़ज़ब (प्रकोप) भड़का तो फिर मैंने उनकी हालत कैसी ख़राब कर दी।''

90. अरब में कुआँ और बस्ती लगभग एक-दूसरे के हममानी हैं। किसी क़बीले की बस्ती का नाम लेना हो तो कहते हैं ''फ़ुलाँ क़बीले का कुआँ।'' एक अरबी आदमी के सामने जब यह कहा जाएगा कि कुएँ बेकार पड़े हैं तो उसके ज़ेहन में उसका यह मतलब आएगा कि बस्तियाँ उजड़ी पड़ी हैं।

91. ध्यान रहे कि क़ुरआन साइंस की ज़बान में नहीं, बल्कि अदब (साहित्य) की ज़बान में बात करता है। यहाँ ख़ाह-मख़ाह ज़ेहन इस सवाल में न उलझ जाए कि सीनेवाला दिल कब सोचा करता है। अदबी ज़बान में एहसासात, जज़बात, ख़यालात, बल्कि दिमाग़ के लगभग तमाम ही काम सीने और दिल से ही जोड़े जाते हैं। यहाँ तक कि किसी चीज़ के 'याद होने' को भी यूँ कहते हैं कि ''वह तो मेरे सीने में महफ़ूज़ है।''

92. यानी बार-बार चैलेंज कर रहे हैं कि अगर तुम सच्चे नबी हो तो क्यों नहीं आ जाता हमपर वह अज़ाब जो ख़ुदा के भेजे हुए सच्चे नबी के झुठलाने पर आना चाहिए, और जिसकी धमकियाँ भी तुम हमको बार-बार दे चुके हो।

وَاِنَّ يَوۡمًا عِنۡدَ رَبِّكَ كَاَلۡفِ سَنَةٍ مِّمَّا تَعُدُّوۡنَ ﴿۴۷﴾ وَكَاَيِّنۡ مِّنۡ قَرۡيَةٍ
اَمۡلَيۡتُ لَهَا وَهِيَ ظَالِمَةٌ ثُمَّ اَخَذۡتُهَا ۚ وَاِلَيَّ الۡمَصِيۡرُ ﴿۴۸﴾ قُلۡ يٰۤاَيُّهَا
النَّاسُ اِنَّمَاۤ اَنَا لَـكُمۡ نَذِيۡرٌ مُّبِيۡنٌ ﴿۴۹﴾ فَالَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا وَعَمِلُوا
الصّٰلِحٰتِ لَهُمۡ مَّغۡفِرَةٌ وَّرِزۡقٌ كَرِيۡمٌ ﴿۵۰﴾ وَالَّذِيۡنَ سَعَوۡا فِىۡۤ اٰيٰتِنَا
مُعٰجِزِيۡنَ اُولٰۤٮِٕكَ اَصۡحٰبُ الۡجَحِيۡمِ ﴿۵۱﴾ وَمَاۤ اَرۡسَلۡنَا مِنۡ قَبۡلِكَ مِنۡ

ख़िलाफ़ न करेगा, मगर तेरे रब के यहाँ का एक दिन तुम्हारी गिनती के हज़ार साल के बराबर हुआ करता है।[93] (48) कितनी ही बस्तियाँ हैं जो ज़ालिम थीं, मैंने उनको पहले मुहलत दी, फिर पकड़ लिया। और सबको वापस तो मेरे ही पास आना है।

(49) ऐ नबी, कह दो कि "लोगो, मैं तो तुम्हारे लिए सिर्फ़ वह शख़्स हूँ जो (बुरा वक़्त आने से पहले) साफ़-साफ़ ख़बरदार कर देनेवाला हो।"[94] (50) फिर जो ईमान लाएँगे और भले काम करेंगे, उनके लिए मग़फ़िरत (माफ़ी) है और इज़्ज़त की रोज़ी।[95] (51) और जो हमारी आयतों को नीचा दिखाने की कोशिश करेंगे, वे दोज़ख़ के यार हैं।

(52) और ऐ नबी, तुमसे पहले हमने न कोई रसूल ऐसा भेजा है, न नबी[96] (जिसके

93. यानी इनसानी तारीख़ में ख़ुदा के फ़ैसले तुम्हारी घड़ियों और जन्तरियों के लिहाज़ से नहीं होते कि आज एक सही या ग़लत रवैया अपनाया और कल उसके अच्छे या बुरे नतीजे ज़ाहिर हो गए। किसी क़ौम से अगर यह कहा जाए कि फ़ुलाँ रवैया अपनाने का अंजाम तुम्हारी तबाही की सूरत में निकलेगा तो वह बड़ी ही बेवक़ूफ़ होगी अगर जवाब में यह दलील दे कि जनाब, इस रवैये को अपनाए हमें दस, बीस या पचास साल हो चुके हैं, अभी तक तो हमारा कुछ बिगड़ा नहीं। तारीख़ी (ऐतिहासिक) नतीजों के लिए दिन और महीने और साल तो दूर सदियाँ भी कोई बड़ी चीज़ नहीं हैं।

94. यानी मैं तुम्हारी क़िस्मतों के फ़ैसले करनेवाला नहीं हूँ, बल्कि सिर्फ़ ख़बरदार करनेवाला हूँ। मेरा काम इससे ज़्यादा कुछ नहीं है कि शामत आने से पहले तुमको ख़बरदार कर दूँ। आगे फ़ैसला करना अल्लाह का काम है। वही तय करेगा कि किसको कब तक मुहलत देनी है और कब किस सूरत में उसपर अज़ाब लाना है।

95. 'मग़फ़िरत' से मुराद है ग़लतियों और कमज़ोरियों और फिसलनों की अनदेखी। और 'इज़्ज़त की रोज़ी' (रिज़्क़े-करीम) के दो मतलब हैं। एक यह कि अच्छी रोज़ी दी जाए। दूसरा यह कि इज़्ज़त के साथ बिठाकर दी जाए।

96. रसूल और नबी के फ़र्क़ की तशरीह सूरा-19 मरयम, हाशिया-30 में की जा चुकी है।

رَّسُوْلٍ وَّلَا نَبِيٍّ اِلَّآ اِذَا تَمَنّٰٓى اَلْقَى الشَّيْطٰنُ فِيْٓ اُمْنِيَّتِهٖ ۚ فَيَنْسَخُ
اللّٰهُ مَا يُلْقِى الشَّيْطٰنُ ثُمَّ يُحْكِمُ اللّٰهُ اٰيٰتِهٖ ۗ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ۙ﴿٥٢﴾
لِّيَجْعَلَ مَا يُلْقِى الشَّيْطٰنُ فِتْنَةً لِّلَّذِيْنَ فِيْ قُلُوْبِهِمْ مَّرَضٌ
وَّالْقَاسِيَةِ قُلُوْبُهُمْ ۗ وَاِنَّ الظّٰلِمِيْنَ لَفِيْ شِقَاقٍۢ بَعِيْدٍ ۙ﴿٥٣﴾ وَّلِيَعْلَمَ

साथ यह मामला न पेश आया हो कि) जब उसने तमन्ना की,[97] शैतान ने उसकी तमन्ना में रुकावट डाली।[98] इस तरह जो कुछ भी शैतान रुकावटें डालता है, अल्लाह उनको मिटा देता है और अपनी आयतों को पुख़्ता कर देता है[99]। अल्लाह सब कुछ जाननेवाला और हिकमतवाला है।[100] (53) (वह इसलिए ऐसा होने देता है) ताकि शैतान की डाली हुई ख़राबी को फ़ितना बना दे उन लोगों के लिए जिनके दिलों को (निफ़ाक़ यानी कपटाचार का) रोग लगा हुआ है और जिनके दिल खोटे हैं—हक़ीक़त यह है कि ये ज़ालिम लोग दुश्मनी में बहुत दूर निकल गए हैं—(54) और इल्म रखनेवाले लोग जान लें

97. 'तमन्ना' का लफ़्ज़ अरबी ज़बान में दो मानी में इस्तेमाल होता है। एक मानी तो वही है जो उर्दू/हिन्दी में लफ़्ज़ तमन्ना के हैं, यानी किसी चीज़ की ख़ाहिश और आरज़ू। दूसरे मानी तिलावत के हैं, यानी किसी चीज़ को पढ़ना।

98. 'तमन्ना' का लफ़्ज़ अगर पहले मानी में लिया जाए तो मतलब होगा कि शैतान ने उसकी आरज़ू पूरी होने में बाधाएँ डालीं और रुकावटें पैदा कीं। दूसरे मानी में लिया जाए तो मुराद यह होगी कि जब भी उसने ख़ुदा का कलाम लोगों को सुनाया शैतान ने उसके बारे में तरह-तरह के शक-शुबहे और एतिराज़ पैदा किए। अजीब-अजीब मानी उसको पहनाए और एक सही मतलब के सिवा हर तरह के उलटे-सीधे मतलब लोगों को समझाए।

99. पहले मतलब के लिहाज़ से इसका मतलब यह है कि अल्लाह तआला शैतान के रुकावटें डालने के बावजूद आख़िरकार नबी की तमन्ना को (और आख़िर नबी की तमन्ना इसके सिवा क्या हो सकती है कि उसकी कोशिशें कामयाब हों और उसका मिशन फले-फूले) पूरा करता है और अपनी आयतों को (यानी उन वादों को जो उसने नबी से किए थे) पक्के और अटल वादे साबित कर देता है। दूसरे मानी के लिहाज़ से मतलब यह निकलता है कि शैतान के डाले हुए शकों और एतिराज़ों को अल्लाह दूर कर देता है और एक आयत के बारे में जो उलझनें वह लोगों के ज़ेहनों में डालता है उन्हें बाद की किसी और ज़्यादा वाज़ेह आयत से साफ़ कर दिया जाता है।

100. यानी वह जानता है कि शैतान ने कहाँ क्या रुकावट डाली और उसके क्या असरात हुए। और उसकी हिकमत (तत्वदर्शिता) हर शैतानी फ़ितने का तोड़ कर देती है।

الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْعِلْمَ اَنَّهُ الْحَقُّ مِنْ رَّبِّكَ فَيُؤْمِنُوْا بِهٖ فَتُخْبِتَ لَهٗ
قُلُوْبُهُمْ ۭ وَاِنَّ اللّٰهَ لَهَادِ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ۝

कि यह हक़ है तेरे रब की तरफ़ से और वे इसपर ईमान ले आएँ और उनके दिल उसके आगे झुक जाएँ। यक़ीनन अल्लाह ईमान लानेवालों को हमेशा सीधा रास्ता दिखा देता है।[101]

101. यानी शैतान की इन फ़ितनापरदाज़ियों को अल्लाह ने लोगों की आज़माइश और खरे को खोटे से जुदा करने का एक ज़रिआ बना दिया है। बिगड़ी हुई ज़ेहनियत के लोग इन्हीं चीज़ों से ग़लत नतीजे निकालते हैं और ये उनके लिए गुमराही का ज़रिआ बन जाती हैं। साफ़ ज़ेहन के लोगों को यही बातें नबी और अल्लाह की किताब के सच्चे होने का यक़ीन दिलाती हैं और वे महसूस कर लेते हैं कि ये सब शैतान की शरारतें हैं और यह चीज़ उन्हें मुत्मइन कर देती है कि यह दावत यक़ीनी तौर पर भलाई और सच्चाई की दावत है, वरना शैतान इसपर इतना ज़्यादा न तिलमिलाता।

बात के इस सिलसिले को नज़र में रखकर देखा जाए तो इन आयतों का मतलब साफ़ समझ में आ जाता है। नबी (सल्ल॰) की दावत उस वक़्त जिस मरहले में थी उसको देखकर सिर्फ़ ज़ाहिर को देखनेवाली तमाम निगाहें यह धोखा खा रही थीं कि नबी (सल्ल॰) अपने मक़सद में नाकाम हो गए। देखनेवाले जो कुछ देख रहे थे वह तो यही था कि एक शख़्स, जिसकी तमन्ना और आरज़ू यह थी कि उसकी क़ौम उसपर ईमान लाए, वह (अल्लाह की पनाह) तेरह साल सिर मारने के बाद आख़िरकार अपने मुट्ठी-भर पैरवी करनेवालों को लेकर वतन से निकल जाने पर मजबूर हो गया है। इस सूरते-हाल में जब लोग आप (सल्ल॰) के इस बयान को देखते थे कि मैं अल्लाह का नबी हूँ और उसकी ताईद (समर्थन) मेरे साथ है, और क़ुरआन के उन एलानों को देखते थे कि नबी को झुठला देनेवाली क़ौम पर अज़ाब आ जाता है तो उन्हें आप (सल्ल॰) की और क़ुरआन की सच्चाई में शक होने लगता था, और आप (सल्ल॰) के मुख़ालिफ़ इसपर बढ़-बढ़कर बातें बनाते थे कि कहाँ गई वह ख़ुदा की ताईद और क्या हुईं वे अज़ाब की धमकियाँ। अब क्यों नहीं आ जाता वह अज़ाब जिसके हमको डरावे दिए जाते थे। इन्हीं बातों का जवाब इससे पहले की आयतों में दिया गया था और इन्हीं के जवाब में ये आयतें भी उतरी हैं। पहले की आयतों में जवाब का रुख़ इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की तरफ़ था और इन आयतों में उसका रुख़ उन लोगों की तरफ़ है जो इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के प्रोपगंडे से मुतास्सिर हो रहे थे। पूरे जवाब का ख़ुलासा यह है–

"किसी क़ौम का अपने पैग़म्बर को झुठलाना इनसानी तारीख़ में कोई नया वाक़िआ नहीं है, पहले भी ऐसा ही होता रहा है। फिर इस झुठलाने का जो अंजाम हुआ वह तुम्हारी आँखों के सामने तबाह हो चुकी क़ौमों के खण्डहरों की सूरत में मौजूद है। सबक़ लेना चाहो तो उससे ले सकते हो। रही यह बात कि झुठलाते ही वह अज़ाब क्यों न आ गया जिसकी धमकियाँ क़ुरआन

की बहुत-सी आयतों में दी गई थीं तो आख़िर यह कब कहा गया था कि झुठलाने का हर अमल फ़ौरन ही अज़ाब ले आता है, और नबी ने यह कब कहा था कि अज़ाब लाना उसका अपना काम है। इसका फ़ैसला तो ख़ुदा के हाथ में है और वह जल्दबाज़ नहीं है। पहले भी वह अज़ाब लाने से पहले क़ौमों को मुहलत देता रहा है और अब भी दे रहा है। मुहलत का यह ज़माना अगर सदियों तक भी लम्बा हो तो यह इस बात की दलील नहीं है कि अज़ाब से डरानेवाली वे सब ख़बरें ख़ाली-ख़ूली धमकियाँ ही थीं जो पैग़म्बर के झुठलानेवालों पर अज़ाब आने के बारे में की गई थीं।

फिर यह बात भी कोई नई नहीं है कि पैग़म्बर की आरज़ुओं और तमन्नाओं के पूरे होने में रुकावटें आएँ, या उसकी दावत के ख़िलाफ़ झूठे इलज़ामों और तरह-तरह के शक-शुबहों और एतिराज़ों का एक तूफ़ान उठ खड़ा हो। यह सब कुछ भी तमाम पिछले पैग़म्बरों की दावतों के मुक़ाबले में हो चुका है। मगर आख़िरकार अल्लाह तआला इन शैतानी फ़ितनों को जड़ से ख़त्म कर देता है। रुकावटों के बावजूद हक़ (सत्य) की दावत फलती-फूलती है, और साफ़ और वाज़ेह आयतों के ज़रिए से शक और शुबहों के छेद भर दिए जाते हैं। शैतान और उसके चेले उन तदबीरों से अल्लाह की आयतों को नीचा दिखाना चाहते हैं, मगर अल्लाह उन्हीं को इनसानों के बीच खोटे और खरे में फ़र्क़ करने का ज़रिआ बना देता है। इस ज़रिए से खरे आदमी हक़ की दावत की तरफ़ खिंच आते हैं और खोटे लोग छँटकर अलग हो जाते हैं।''

यह है वह साफ़ और सीधा मतलब जो यहाँ मौक़ा और महल की रौशनी में इन आयतों से मिलता है। मगर अफ़सोस है कि एक रिवायत ने उनकी तफ़सीर में इतना बड़ा घपला डाल दिया कि न सिर्फ़ उनका मतलब कुछ-से-कुछ हो गया, बल्कि सारे दीन की बुनियाद ही ख़तरे में पड़ गई। हम उसका ज़िक्र यहाँ इसलिए करते हैं कि क़ुरआन का इल्म (ज्ञान) हासिल करनेवाले क़ुरआन के समझने में रिवायतों से मदद लेने के सही और ग़लत तरीक़ों का फ़र्क़ अच्छी तरह समझ सकें और उन्हें मालूम हो जाए कि रिवायतपरस्ती में ग़ैर-ज़रूरी तौर पर हद से आगे बढ़ जाने से क्या नतीजे पैदा होते हैं, और क़ुरआन की ग़लत तफ़सीर करनेवाली रिवायतों पर तनक़ीद (समीक्षा) करने का सही तरीक़ा क्या है।

क़िस्सा यह बयान किया जाता है कि नबी (सल्ल.) के दिल में यह तमन्ना पैदा हुई कि काश, क़ुरआन में कोई ऐसी बात नाज़िल हो (उतर आए) जिससे इस्लाम के ख़िलाफ़ क़ुरैश के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की नफ़रत दूर हो और वे कुछ क़रीब आ जाएँ। या कम से कम उनके दीन के ख़िलाफ़ ऐसी सख़्त तनक़ीद न हो जो उन्हें भड़का देनेवाली हो। यह तमन्ना नबी (सल्ल.) के दिल ही में थी कि एक दिन क़ुरैश की एक बड़ी मजलिस में बैठे हुए नबी (सल्ल.) पर सूरा-53 नज्म उतरी और आप (सल्ल.) ने उसे पढ़ना शुरू किया। जब आप (सल्ल.) ''अ-फ़-रऐतुमुल-ला-त वल उज़्ज़ा व मनातस-सालि-सतल-उख़रा'' (अब ज़रा बताओ कि ''तुमने कभी इस 'लात' इस 'उज़्ज़ा' और तीसरी एक देवी 'मनात' की हक़ीक़त पर कुछ ग़ौर भी किया है।'' (आयतें-19, 20) पर पहुँचे तो यकायक आप (सल्ल.) की ज़बान से ये अलफ़ाज़ निकले ''ये बुलन्द मर्तबा देवियाँ हैं, इनकी सिफ़ारिश ज़रूर पूरी हो सकती है।'' इसके बाद आगे फिर आप (सल्ल.) सूरा नज्म की आयतें पढ़ते चले गए, यहाँ तक कि जब सूरा के आख़िर में आप (सल्ल.) ने सजदा

किया तो मुशरिक और मुसलमान सब सजदे में गिर गए। क़ुरैश के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों ने कहा कि "अब हमारा मुहम्मद से क्या इख़्तिलाफ़ बाक़ी रह गया। हम भी तो यही कहते थे कि पैदा करनेवाला और रोज़ी देनेवाला अल्लाह ही है, अलबत्ता हमारे ये माबूद (उपास्य) उसके सामने हमारे सिफ़ारिशी हैं।" शाम को जिबरील आए और उन्होंने कहा, "यह आप (सल्ल。) ने क्या किया? ये दोनों जुमले तो मैं नहीं लाया था।" इसपर आप (सल्ल。) बहुत दुखी हुए और अल्लाह तआला ने वह आयत उतारी जो सूरा-17 बनी-इसराईल में है कि "और वे तो लगते थे कि तुम्हें फ़ितने में डालकर उस चीज़ से हटा देने को हैं जिसकी वह्य हमने तुम्हारी तरफ़ की है, ताकि तुम उससे अलग चीज़ गढ़कर हमपर थोपो, और तब वे तुम्हें अपना क़रीबी दोस्त बना लेते। अगर हम तुम्हें जमाए न रखते तो तुम उनकी तरफ़ थोड़ा झुकने के क़रीब जा पहुँचते। उस वक़्त हम तुम्हें ज़िन्दगी में भी दोहरा मज़ा चखाते और मौत के बाद भी दोहरा मज़ा चखाते। फिर तुम हमारे मुक़ाबले में अपना कोई मददगार न पाते।" (आयतें-73-75)। यह चीज़ बराबर नबी (सल्ल。) को रंजो-ग़म में मुब्तला किए रही, यहाँ तक कि सूरा-22 हज की यह आयत उतरी और इसमें आप (सल्ल。) को तसल्ली दी गई कि तुमसे पहले भी पैग़म्बरों के साथ ऐसा होता रहा है। उधर यह वाक़िआ कि क़ुरआन सुनकर नबी (सल्ल。) के साथ क़ुरैश के लोगों ने भी सजदा किया, हबशा के मुहाजिरों तक इस रंग में पहुँचा कि नबी (सल्ल。) और मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के बीच समझौता हो गया है। चुनाँचे बहुत-से मुहाजिर मक्का वापस आ गए। मगर यहाँ पहुँचकर उन्हें मालूम हुआ कि समझौते की ख़बर ग़लत थी, इस्लाम और कुफ़्र (अधर्म) की दुश्मनी ज्यों-की-त्यों क़ायम है।

यह क़िस्सा इब्ने-जरीर और बहुत-से तफ़सीर लिखनेवालों ने अपनी तफ़सीरों में, इब्ने-साद ने तबक़ात में, अल-वाहिदी ने असबाबुन-नुज़ूल में, मूसा-बिन-उक़बा ने मग़ाज़ी में, इब्ने-इसहाक़ ने सीरत में, और इब्ने-अबी-हातिम, इब्नुल-मुंज़िर, बज़्ज़ार, इब्ने-मर्दूया और तबरानी ने अपने हदीसों के मजमूओं (संग्रहों) में नक़्ल किया है। जिन सनदों से यह नक़्ल हुआ है वह मुहम्मद-बिन-क़ैस, मुहम्मद-बिन-कअब क़ुरज़ी, उरवा-बिन-ज़ुबैर, अबू-सॉलेह, अबुल-आलिया, सईद-बिन-जुबैर, ज़हहाक, अबू-बक्र-बिन-अब्दुर्रहमान-बिन-हारिस, क़तादा, मुजाहिद, सुद्दी, इब्ने-शिहाब ज़ोहरी, और इब्ने-अब्बास पर ख़त्म होती हैं (इब्ने-अब्बास के सिवा इनमें से कोई सहाबी नहीं है)। क़िस्से की तफ़सीलात में छोटे-छोटे इख़्तिलाफ़ों को छोड़कर दो बहुत बड़े इख़्तिलाफ़ हैं। एक यह कि बुतों की तारीफ़ में जो बातें नबी (सल्ल。) से जोड़ी गई हैं वे लगभग हर रिवायत में दूसरी रिवायत से अलग हैं। हमने उनका जाइज़ा लेने की कोशिश की तो पन्द्रह इबारतें अलग-अलग अलफ़ाज़ में पाईं। दूसरा बड़ा फ़र्क़ यह है कि किसी रिवायत के मुताबिक़ ये अलफ़ाज़ वह्य के दौरान में शैतान ने आप (सल्ल。) पर डाल दिए और आप (सल्ल。) समझे कि ये भी जिबरील लाए हैं। किसी रिवायत में है कि ये अलफ़ाज़ अपनी उस ख़ाहिश के असर से भूल से आप (सल्ल。) की ज़बान से निकल गए। किसी में है कि उस वक़्त आप (सल्ल。) को ऊँघ आ गई थी और इस हालत में ये अलफ़ाज़ निकले। किसी का बयान है कि आप (सल्ल。) ने ये जान-बूझकर कहे मगर सवाल और इनकार करने के अन्दाज़ में कहे। किसी का कहना है कि शैतान ने आप (सल्ल。) की आवाज़ में आवाज़ मिलाकर ये अलफ़ाज़ कह दिए और समझा यह गया कि आप (सल्ल。) ने कहे हैं। और किसी के नज़दीक कहनेवाला मुशरिकों में से कोई शख़्स था।

इब्ने-कसीर, बैहक़ी, क़ाज़ी अयाज़, इब्ने-ख़ुज़ैमा, क़ाज़ी अबू-बक्र इब्नुल-अरबी, इमाम राज़ी, क़ुरतुबी, बदरुद्दीन ऐनी, शौकानी, आलूसी वग़ैरा हज़रात इस क़िस्से को बिलकुल ग़लत क़रार देते हैं। इब्ने-कसीर कहते हैं कि "जितनी सनदों से यह रिवायत हुआ है, सब मुरसल और मुनक़तअ हैं। मुझे किसी सहीह, मुत्तसिल (क्रमबद्ध) सनद से यह नहीं मिला।" बैहक़ी कहते हैं कि "किसी बात को मुन्तक़िल किए जाने के जो उसूल हैं उनके मुताबिक़ यह क़िस्सा साबित नहीं है।" इब्ने-ख़ुज़ैमा से इसके बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि "यह ज़िन्दीक़ियों (अधर्मियों) का गढ़ा हुआ है।" क़ाज़ी अयाज़ कहते हैं कि "इसकी कमज़ोरी इसी से ज़ाहिर है कि 'सिहाह सित्ता' (भरोसेमन्द हदीसों की छः किताबों) के जमा करनेवालों में से किसी ने भी इसको अपने यहाँ नक़्ल नहीं किया और न यह किसी सहीह मुत्तसिल बे-ऐब सनद के साथ सिक़ा (भरोसेमन्द) रावियों से बयान हुआ है।" इमाम राज़ी, क़ाज़ी अबू-बक्र और आलूसी ने इसपर तफ़सीली बहस करके इसे बड़े ज़ोरदार तरीक़े से रद्द किया है। लेकिन दूसरी तरफ़ हाफ़िज़ इब्ने-हजर जैसे ऊँचे दर्जे के हदीस के आलिम और अबू-बक्र जस्सास जैसे नामवर फ़क़ीह और ज़मख़शरी जैसे अक़लियत-पसन्द (बुद्धिवादी) क़ुरआन के आलिम और इब्ने-जरीर जैसे क़ुरआन, इतिहास और फ़िक़्ह के बड़े आलिम इसको सही मानते हैं और इसी को इस आयत की तफ़सीर क़रार देते हैं। इब्ने-हजर की हदीस के आलिम और माहिर होने की हैसियत से दलील यह है कि–

"सईद-बिन-जुबैर के वास्ते के सिवा बाक़ी जिन तरीक़ों से यह रिवायत आई है वह या तो कमज़ोर हैं या मुनक़तअ (यानी बीच में रावियों का सिलसिला टूट गया है), मगर बहुत सारे तरीक़ों से इस क़िस्से का बयान किया जाना इस बात की दलील है कि इसकी कोई अस्ल है ज़रूर। इसके अलावा यह एक तरीक़े से सिलसिलेवार सहीह सनद के साथ भी नक़्ल हुआ है, जिसे बज़्ज़ार ने निकाला है (मुराद है यूसुफ़-बिन-हम्माद ने उमैया-बिन-ख़ालिद से उन्होंने शोअबा से, उन्होंने अबी-बिश्र से, उन्होंने सईद-बिन-जुबैर से, उन्होंनें इब्ने-अब्बास रज़ि॰ से रिवायत किया) और दो तरीक़ों से यह अगरचे मुरसल है, मगर इसके रिवायत करनेवाले बुख़ारी और मुस्लिम की शर्त के मुताबिक़ हैं। ये दोनों रिवायतें तबरी ने नक़्ल की हैं। एक यूनुस-बिन-यज़ीद से, उन्होंने इब्ने-शिहाब से, दूसरी मुअतमिर-बिन-सुलैमान से और हम्माद-बिन-सलमा से, उन्होंने दाऊद-बिन-अबी-हिन्द से, उन्होंने अबुल-आलिया से।"

जहाँ तक इस तफ़सीर के माननेवालों का ताल्लुक़ है, वे तो इसे सही मान ही बैठे हैं। लेकिन मुख़ालिफ़त करनेवालों ने भी आम तौर से इसपर तन्क़ीद का हक़ अदा नहीं किया है। एक गरोह इसे इसलिए रद्द करता है कि इसकी सनद उसके नज़दीक मज़बूत नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि अगर सनद मज़बूत होती तो ये लोग इस क़िस्से को सही मान लेते। दूसरा गरोह इसे इसलिए रद्द करता है कि इससे तो सारा दीन ही शक-शुबहे में पड़ जाता है और दीन की हर बात के बारे में शक पैदा हो जाता है कि न जाने और कहाँ-कहाँ शैतानी दख़लअन्दाज़ी और मन की ख़ाहिशों की मिलावटों का दख़ल हो गया हो। हालाँकि इस तरह से दलील देना उन लोगों को तो मुत्मइन कर सकता है जो ईमान लाने के पक्के इरादे पर क़ायम हों, मगर दूसरे लोग जो पहले से शक में मुब्तला हैं या जो अब खोजबीन करके फ़ैसला करना चाहते हैं कि

ईमान लाएँ या न लाएँ, उनके दिल में तो यह जज़बा पैदा नहीं हो सकता कि जो-जो चीज़ें इस दीन में शक व शुबहे पैदा करती हैं, उन्हें रद्द कर दें। वे तो कहेंगे कि जब कम-से-कम एक नामवर सहाबी और बहुत-से ताबिईन और तबअ-ताबिईन और कई भरोसेमन्द हदीस बयान करनेवालों की रिवायत से एक वाक़िआ साबित हो रहा है तो उसे सिर्फ़ इस वजह से क्यों रद्द कर दिया जाए कि उनसे आपके दीन में शक व शुबहा पैदा हो जाता है? इसके बजाय यह क्यों न समझा जाए कि आपके दीन में शक व शुबहा मौजूद है, जबकि इस वाक़िआ से यह बात साबित हो ही रही है कि इस दीन में शक व शुबहा मौजूद है?

अब देखना चाहिए कि तन्क़ीद का वह सही तरीक़ा क्या है, जिससे अगर इस क़िस्से को परखकर देखा जाए तो यह रद्द करने के क़ाबिल ठहरता है, चाहे इसकी सनद कितनी ही मज़बूत हो, या मज़बूत होती।

पहली चीज़ ख़ुद उसकी अन्दरूनी गवाही है जो उसे ग़लत साबित करती है। क़िस्से में बयान किया गया है कि यह वाक़िआ उस वक़्त पेश आया जब हबशा की हिजरत हो चुकी थी, और इस वाक़िए की ख़बर पाकर हबशा को हिजरत करनेवालों में से एक गरोह मक्का वापस आ गया। अब ज़रा तारीख़ों का फ़र्क़ देखिए—

- हबशा की हिजरत भरोसेमन्द तारीख़ी (ऐतिहासिक) रिवायतों के मुताबिक़ रजब, 5 नबवी में हुई, और हबशा को हिजरत करनेवालों का एक गरोह समझौते की ग़लत ख़बर सुनकर तीन महीने बाद (यानी उसी साल लगभग शव्वाल के महीने में) मक्का वापस आ गया। इससे मालूम हुआ कि यह वाक़िआ ज़रूर ही सन् 5 नबवी का है।
- सूरा-17 बनी-इसराईल जिसकी एक आयत के बारे में बयान किया जा रहा है कि वह नबी (सल्ल॰) के इस काम पर सज़ा के तौर पर उतरी थी, मेराज के बाद उतरी है, और मेराज का ज़माना बहुत ही भरोसेमन्द रिवायतों के मुताबिक़ सन् 11 या 12 नबवी का है। इसका मतलब यह हुआ कि इस काम पर 5-6 साल जब गुज़र चुके तब अल्लाह तआला ने नाराज़गी ज़ाहिर की।
- और यह आयत, जैसा कि इसका मौक़ा-महल साफ़-साफ़ बता रहा है कि सन् 1 हिजरी में उतरी है। यानी नाराज़गी पर भी जब और दो-ढाई साल बीत गए तब एलान किया गया कि यह मिलावट तो शैतान की गड़बड़ी से हो गई थी, अल्लाह ने इसे रद्द कर दिया है।

क्या कोई अक़्ल रखनेवाला आदमी यह मान सकता है कि मिलावट का काम आज हो, नाराज़गी और सज़ा छः (6) साल बाद और मिलावट को रद्द कर देने का एलान नौ साल बाद?

फिर इस क़िस्से में बयान किया गया है कि यह मिलावट सूरा-53 नज्म में हुई थी और इस तरह हुई कि शुरू से आप (सल्ल॰) अस्ल सूरा के अलफ़ाज़ पढ़ते चले आ रहे थे, यकायक "मनातस-सालिसतल-उख़रा" पर पहुँचकर आप (सल्ल॰) ने अपने तौर पर या शैतान के बहकावे की वजह से यह जुमला मिलाया, और आगे फिर सूरा नज्म की आयतें पढ़ते चले गए। इसके बारे में कहा जा रहा है कि मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ इसे सुनकर ख़ुश हो गए और उन्होंने कहा कि अब हमारा और मुहम्मद का इख़्तिलाफ़ ख़त्म हो गया। मगर सूरा नज्म में जो बात चली आ रही है उसमें इस जोड़े गए जुमले को शामिल करके तो देखिए—

''फिर तुमने कुछ ग़ौर भी किया इन लात और उज़्ज़ा पर और तीसरी एक और (देवी) मनात पर? ये बुलन्द दर्जे की देवियाँ हैं, इनकी सिफ़ारिश ज़रूर क़बूल हो सकती है। क्या तुम्हारे लिए तो हों बेटे और उस (अल्लाह) के लिए हों बेटियाँ? यह तो बड़ी बे-इनसाफ़ी का बँटवारा है। अस्ल में ये कुछ नहीं हैं मगर कुछ नाम जो तुमने और तुम्हारे बाप-दादा ने रख लिए हैं। अल्लाह ने इनके लिए कोई सनद नहीं उतारी। लोग सिर्फ़ अपने गुमान और मनमाने ख़यालात की पैरवी कर रहे हैं, हालाँकि उनके रब की तरफ़ से सही रहनुमाई आ गई है।''

देखिए इस इबारत में लाइन खींचे हुए जुमले ने कैसा खुला तज़ाद (विरोधाभास) पैदा कर दिया है। एक साँस में कहा जाता है कि वाक़ई तुम्हारी ये देवियाँ बुलन्द दर्जा रखती हैं, इनकी सिफ़ारिश ज़रूर क़बूल हो सकती है। दूसरी ही साँस में पलटकर उनपर चोट की जाती है कि बेवक़ूफ़ो, ये तुमने ख़ुदा के लिए बेटियाँ कैसी बना रखी हैं? अच्छी धांधली है कि तुम्हें तो मिलें बेटे और ख़ुदा के हिस्से में आएँ बेटियाँ! यह सब तुम्हारी मनगढ़न्त है जिसे ख़ुदा की तरफ़ से कोई भरोसेमन्द सनद हासिल नहीं है। थोड़ी देर के लिए इस सवाल को जाने दीजिए कि ये साफ़ बेतुकी बातें किसी अक़्ल रखनेवाले आदमी की ज़बान से निकल भी सकती हैं या नहीं। मान लीजिए कि शैतान ने ग़लबा पाकर ये अलफ़ाज़ ज़बान से निकलवा दिए। मगर क्या क़ुरैश की वह सारी भीड़ जो इसे सुन रही थी, बिलकुल ही पागल हो गई थी कि बाद के जुमलों में इन तारीफ़ी बातों का खुला इनकार सुनकर भी वह यही समझती रही कि हमारी देवियों की सचमुच तारीफ़ की गई है? सूरा नज्म के आख़िर तक का पूरा मज़मून इस एक तारीफ़ी जुमले के बिलकुल ख़िलाफ़ है। किस तरह माना जा सकता है कि क़ुरैश के लोग इसे आख़िर तक सुनने के बाद यह पुकार उठे होंगे कि चलो आज हमारा और मुहम्मद का इख़्तिलाफ़ ख़त्म हो गया?

यह तो है इस क़िस्से की अन्दरूनी गवाही जो इस बात को साबित कर रही है कि यह क़िस्सा बिलकुल बेमानी और बकवास है। इसके बाद दूसरी चीज़ देखने की यह है कि इसमें तीन आयतों के उतरने की जो वजह बयान की जा रही है, क्या क़ुरआन की तरतीब (क्रम) भी उसको क़बूल करती है? क़िस्से में बयान यह किया जा रहा है कि मिलावट सूरा-53 नज्म में की गई थी जो सन् 5 नबवी में उतरी। इस मिलावट पर सूरा-17 बनी-इसराईल वाली आयत में नाराज़गी ज़ाहिर की गई और फिर इसको रद्द करने और वाक़िए की वजह बयान करने का अमल सूरा-22 हज की इस आयत में किया गया। अब ज़रूर ही दो सूरतों में से कोई एक ही सूरत पेश आई होगी। या तो नाराज़गी ज़ाहिर करनेवाली और रद्द करनेवाली आयतें भी उसी ज़माने में उतरी हों जबकि मिलावट का वाक़िआ हुआ, या फिर नाराज़गी ज़ाहिर करनेवाली आयत सूरा-17 बनी-इसराईल के साथ और रद्द करनेवाली आयत सूरा-22 हज की साथ उतरी हो। अगर पहली सूरत है तो यह कितनी अजीब बात है कि ये दोनों आयतें सूरा-53 नज्म ही में शामिल न की गईं, बल्कि नाराज़गी ज़ाहिर करनेवाली आयत को 6 साल तक यूँ ही डाले रखा गया और सूरा-17 बनी-इसराईल जब उतरी तब कहीं उसमें लाकर चिपका दिया गया। फिर रद्द करनेवाली आयत दो-ढाई साल तक और पड़ी रही और सूरा-22 हज के उतरने तक उसे कहीं न जोड़ा गया। क्या क़ुरआन की तरतीब (संकलन) इसी तरह हुई है कि एक मौक़े की उतरी

आयतें अलग-अलग बिखरी पड़ी रहती थीं और सालों के बाद किसी को किसी सूरत में और किसी को किसी दूसरी सूरत में टाँक दिया जाता था? लेकिन अगर दूसरी सूरत है कि नाराज़गी ज़ाहिर करनेवाली आयत वाक़िए के 6 साल बाद और रद्द करनेवाली आयत 8, 9 साल बाद उतरी तो, उस बेतुकेपन के अलावा जिसका हम पहले ज़िक्र कर आए हैं, यह सवाल पैदा होता है कि सूरा-17 बनी-इसराईल और सूरा-22 हज में इनके उतरने का मौक़ा क्या है।

यहाँ पहुँचकर सही तौर पर जायज़ा लेने का तीसरा क़ायदा हमारे सामने आता है, यानी यह कि किसी आयत की जो तफ़सीर बयान की जा रही हो उसे देखा जाए कि क्या क़ुरआन का मौक़ा-महल भी इसे क़बूल करता है या नहीं। सूरा-17 बनी-इसराईल का आठवाँ रुकू (आयतें—71-77) पढ़कर देखिए, और उससे पहले और बाद के मज़मून पर निगाह डाल लीजिए। इस बात के सिलसिले में आख़िर क्या मौक़ा इस बात का नज़र आता है कि 6 साल पहले के एक वाक़िए पर नबी को डाँट बताई जाए (यह अलग बात है कि आयत "ये ज़रूर तुम्हें फ़ितने में डाल देते" में नबी पर डाँट है भी या नहीं, और आयत के अलफ़ाज़ ग़ैर-मुस्लिमों के फ़ितने में नबी के मुब्तला हो जाने को ग़लत बता रहे हैं या सही)। इसी तरह सूरा-22 हज आपके सामने मौजूद है। इस आयत से पहले का मज़मून भी पढ़िए और बाद का भी देखिए। क्या कोई सही वजह आपकी समझ में आती है कि इस मौक़ा-महल में यकायक यह मज़मून कैसे आ गया कि 'ऐ नबी, 9 साल पहले क़ुरआन में मिलावट कर बैठने की जो हरकत तुमसे हो गई थी उसपर घबराओ नहीं, पहले नबियों से भी शैतान ये हरकतें कराता रहा है, और जब कभी नबी इस तरह की हरकत कर जाते हैं तो अल्लाह उसको रद्द करके अपनी आयतों को फिर पक्की कर देता है।'

हम इससे पहले भी कई बार कह चुके हैं और यहाँ फिर दोहराते हैं कि कोई रिवायत, चाहे उसकी सनद सूरज से भी ज़्यादा रौशन हो, ऐसी सूरत में क़बूल किए जाने लायक़ नहीं हो सकती जबकि उसका मत्न (अस्ल इबारत) उसके ग़लत होने की खुली-खुली गवाही दे रहा हो और क़ुरआन के अलफ़ाज़, मौक़ा-महल, तरतीब, हर चीज़ उसे क़बूल करने से इनकार कर रही हो। ये दलीलें तो एक शक में पड़े हुए और बेलाग तहक़ीक़ करनेवाले को भी मुत्मइन कर देंगी कि यह क़िस्सा बिलकुल ग़लत है। रहा मोमिन (ईमानवाला) तो वह इसे हरगिज़ नहीं मान सकता जबकि वह खुले तौर पर यह देख रहा है कि यह रिवायत क़ुरआन की एक नहीं बीसियों आयतों से टकराती है। एक मुसलमान के लिए यह मान लेना बहुत आसान है कि ख़ुद इस रिवायत के बयान करनेवालों को शैतान ने बहका दिया, इसके मुक़ाबले कि वे यह मान लें कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) कभी अपनी मन-मरज़ी से क़ुरआन में एक लफ़्ज़ भी मिला सकते थे, या आप (सल्ल०) के दिल में एक पल के लिए भी यह ख़याल आ सकता था कि तौहीद के साथ शिर्क की कुछ मिलावट करके न माननेवालों को राज़ी किया जाए। या आप (सल्ल०) अल्लाह तआला के हुक्मों के बारे में कभी यह आरज़ू कर सकते थे कि काश, अल्लाह मियाँ ऐसी कोई बात न फ़रमा बैठें जिससे ग़ैर-मुस्लिम लोग नाराज़ हो जाएँ! या यह कि आप (सल्ल०) पर वह्य किसी ऐसे ग़ैर-महफ़ूज़ और शक व शुबहेवाले तरीक़े से आती थी कि जिबरील के साथ शैतान भी आप (सल्ल०) पर कोई लफ़्ज़ उतार दे और आप (सल्ल०) इसी ग़लतफ़हमी में रहें कि

यह भी जिबरील ही लाए हैं। इनमें से एक-एक बात क़ुरआन के खुले-खुले बयानों के बिलकुल ख़िलाफ़ है और उन साबितशुदा अक़ीदों के ख़िलाफ़ है जो हम क़ुरआन और मुहम्मद (सल्ल॰) के बारे में रखते हैं। ख़ुदा की पनाह उस रिवायतपरस्ती से जो महज़ सनद के मिल जाने या रिवायत करनेवालों के नेक होने या बयान करने के तरीक़ों की कसरत (अधिकता) देखकर किसी मुसलमान को ख़ुदा की किताब और उसके रसूल के बारे में ऐसी सख़्त बातें भी मानने पर आमादा कर दे।

मुनासिब मालूम होता है कि यहाँ उस शक को भी दूर कर दिया जाए जो हदीस बयान करनेवालों की इतनी बड़ी तादाद को इस क़िस्से की रिवायत में मुब्तला होते देखकर दिलों में पैदा होता है। एक शख़्स सवाल कर सकता है कि अगर इस क़िस्से की कोई अस्लियत नहीं है तो नबी (सल्ल॰) और क़ुरआन पर इतना बड़ा झूठा इलज़ाम हदीस के इतने रावियों (उल्लेखकर्ताओं) के ज़रिए से, जिनमें कुछ बड़े नामवर और भरोसेमन्द बज़ुर्ग हैं, फैल कैसे गया? इसका जवाब यह है कि इसकी वजहों का पता हमको ख़ुद हदीस ही के ज़ख़ीरे में मिल जाता है। बुख़ारी, मुस्लिम, अबू-दाऊद, नसई और मुसनद अहमद में अस्ल वाक़िआ इस तरह आया है कि नबी (सल्ल॰) ने सूरा-53 नज्म की तिलावत की, और आख़िर में जब आप (सल्ल॰) ने सजदा किया तो वहाँ मौजूद तमाम लोग, मुस्लिम और मुशरिक सब, सजदे में गिर गए। वाक़िआ बस इतना ही था और यह कोई हैरत की बात न थी। अव्वल तो क़ुरआन का ज़ोरे-कलाम और इन्तिहाई असरदार अन्दाज़े-बयान, फिर नबी (सल्ल॰) की ज़बान से इसका एक इलहाम की तरह अदा होना, उसको सुनकर अगर पूरी भीड़ पर एक बेख़ुदी की-सी हालत छा गई हो और आप (सल्ल॰) के साथ सारी भीड़ सजदे में गिर गई हो तो कुछ नामुमकिन नहीं है। यही तो वह चीज़ थी जिसपर क़ुरैश के लोग कहा करते थे कि यह शख़्स जादूगर है। अलबत्ता मालूम होता है कि बाद में क़ुरैश के लोग अपने वक़्ती असर पर कुछ पछताए से होंगे और उनमें से किसी ने या कुछ लोगों ने अपने इस काम की वजह यह बयान की होगी कि साहिब, हमारे कानों ने तो मुहम्मद की ज़बान से अपने माबूदों की तारीफ़ में कुछ बातें सुनी थीं, इसलिए हम भी उनके साथ सजदे में गिर गए। दूसरी तरफ़ यही वाक़िआ हबशा की तरफ़ हिजरत करनेवालों तक इस शक्ल में पहुँचा कि नबी (सल्ल॰) और क़ुरैश के बीच समझौता हो गया है; क्योंकि देखनेवाले ने आप (सल्ल॰) को और मुशरिकों और मुसलमानों सबको एक साथ सजदा करते देखा था। यह अफ़वाह ऐसी गर्म हुई कि हिजरत करनेवालों में से लगभग 33 आदमी मक्का में वापस आ गए। एक सदी के अन्दर इन तीनों बातों ने, यानी क़ुरैश का सजदा, उस सजदे की यह वजह बयान करना और हबशा के मुहाजिरों की वापसी, मिल-जुलकर एक क़िस्से की शक्ल इख़्तियार कर गई और कुछ भरोसेमन्द लोग तक इसकी रिवायत में मुब्तला हो गए। इनसान आख़िर इनसान है। बड़े-से-बड़े नेक और समझदार आदमी से भी कभी-कभी भूल-चूक हो जाती है और उसकी भूल आम लोगों की भूल से ज़्यादा नुक़सानदेह साबित होती है। अक़ीदत (श्रद्धा) में हद से आगे बढ़ जानेवाले लोग इन बुज़ुर्गों की सही बातों के साथ उनकी ग़लत बातों को भी आँखें बन्द करके मान लेते हैं। और बुरी फ़ितरत के लोग छाँट-छाँटकर उनकी ग़लतियाँ जमा करते हैं और उन्हें इस बात के लिए दलील बनाते हैं कि सब

وَلَا يَزَالُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا فِيْ مِرْيَةٍ مِّنْهُ حَتّٰى تَاْتِيَهُمُ السَّاعَةُ بَغْتَةً
اَوْ يَاْتِيَهُمْ عَذَابُ يَوْمٍ عَقِيْمٍ ﴿٥٥﴾ اَلْمُلْكُ يَوْمَئِذٍ لِّلّٰهِ ؕ يَحْكُمُ
بَيْنَهُمْ ؕ فَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ فِيْ جَنّٰتِ النَّعِيْمِ ﴿٥٦﴾
وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَكَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَا فَاُولٰٓئِكَ لَهُمْ عَذَابٌ مُّهِيْنٌ ﴿٥٧﴾
وَالَّذِيْنَ هَاجَرُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ثُمَّ قُتِلُوْٓا اَوْ مَاتُوْا لَيَرْزُقَنَّهُمُ اللّٰهُ
رِزْقًا حَسَنًا ؕ وَاِنَّ اللّٰهَ لَهُوَ خَيْرُ الرّٰزِقِيْنَ ﴿٥٨﴾ لَيُدْخِلَنَّهُمْ

(55) इनकार करनेवाले तो उसकी तरफ़ से शक ही में पड़े रहेंगे, यहाँ तक कि या तो उनपर क़ियामत की घड़ी अचानक आ जाए, या एक मनहूस (अशुभ)[102] दिन का अज़ाब आ जाए। (56) उस दिन बादशाही अल्लाह की होगी, और वह उनके बीच फ़ैसला कर देगा। जो ईमान रखनेवाले और भले काम करनेवाले होंगे वे नेमत भरी जन्नतों में जाएँगे, (57) और जिन्होंने कुफ़्र (इनकार) किया होगा और हमारी आयतों को झुठलाया होगा उनके लिए रुसवा कर देनेवाला अज़ाब होगा। (58) और जिन लोगों ने अल्लाह की राह में हिजरत की; फिर क़त्ल कर दिए गए या मर गए, अल्लाह उनको अच्छी रोज़ी देगा। और यक़ीनन अल्लाह ही बेहतरीन रोज़ी देनेवाला है। (59) वह उन्हें

कुछ जो उनके ज़रिए से हमें पहुँचा है, आग में झोंक देने के लायक़ है।

102. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'अक़ीम' इस्तेमाल हुआ है जिसका लफ़्ज़ी तर्जमा 'बाँझ' है। दिन को बाँझ कहने के दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि वह ऐसा मनहूस (अशुभ) दिन हो जिसमें कोई तदबीर काम न करे, हर कोशिश उलटी पड़े और हर उम्मीद मायूसी में बदल जाए। दूसरा यह कि वह ऐसा दिन हो जिसके बाद रात देखनी नसीब न हो। दोनों सूरतों में मुराद है वह दिन जिसमें किसी क़ौम की बरबादी का फ़ैसला हो जाए। जैसे जिस दिन नूह (अलैहि॰) की क़ौम पर तूफ़ान आया, वह उसके लिए 'बाँझ' दिन था। इसी तरह आद, समूद, क़ौमे-लूत, मदयनवालों और दूसरी सब तबाह हो चुकी क़ौमों के हक़ में अल्लाह का अज़ाब आने का दिन बाँझ ही साबित हुआ; क्योंकि उस 'आज' का कोई 'आनेवाला कल' फिर वे न देख सके, और कोई तदबीर उनके लिए मुमकिन न हुई जिससे वे अपनी क़िस्मत की बिगड़ी बना सकते।

مُّدْخَلًا يَّرْضَوْنَهٗ ؕ وَاِنَّ اللّٰهَ لَعَلِيْمٌ حَلِيْمٌ ﴿٥٩﴾ ذٰلِكَ ۚ وَمَنْ عَاقَبَ
بِمِثْلِ مَا عُوْقِبَ بِهٖ ثُمَّ بُغِيَ عَلَيْهِ لَيَنْصُرَنَّهُ اللّٰهُ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَعَفُوٌّ
غَفُوْرٌ ﴿٦٠﴾ ذٰلِكَ بِاَنَّ اللّٰهَ يُوْلِجُ الَّيْلَ فِى النَّهَارِ وَيُوْلِجُ النَّهَارَ فِى الَّيْلِ

ऐसी जगह पहुँचाएगा जिससे वे ख़ुश हो जाएँगे। बेशक अल्लाह अलीम (सब कुछ जाननेवाला) और हलीम (सहन करनेवाला) है।[103] (60) यह तो है उनका हाल, और जो कोई बदला ले, वैसा ही जैसा उसके साथ किया गया, और फिर उसपर ज़्यादती भी की गई हो तो अल्लाह उसकी मदद ज़रूर करेगा।[104] अल्लाह माफ़ करनेवाला और दरगुज़र करनेवाला है।[105]

(61) यह[106] इसलिए है कि रात से दिन और दिन से रात निकालनेवाला अल्लाह

---

103. 'अलीम' है, यानी वह जानता है कि किसने हक़ीक़त में उसी की राह में घर-बार छोड़ा है और वह किस इनाम का हक़दार है। 'हलीम' (सहनशील) है, यानी ऐसे लोगों की छोटी-छोटी ग़लतियों और कमज़ोरियों की वजह से उनकी बड़ी-बड़ी ख़िदमतों और क़ुरबानियों पर पानी फेर देनेवाला नहीं है। वह उनकी ग़लतियों की अनदेखी करेगा और उनके क़ुसूर माफ़ कर देगा।

104. पहले उन मज़लूमों का ज़िक्र था जो ज़ुल्म के मुक़ाबले में कोई जवाबी कार्रवाई न कर सके हों, और यहाँ उनका ज़िक्र है जो ज़ालिमों के मुक़ाबले में ताक़त इस्तेमाल करें।
इमाम शाफ़िई (रह०) ने इस आयत से यह दलील ली है कि क़िसास (ख़ून का बदला ख़ून) उसी शक्ल में लिया जाएगा जिस शक्ल में ज़ुल्म किया गया हो। जैसे किसी शख़्स ने अगर आदमी को डुबोकर मारा है तो उसे भी डुबोकर मारा जाएगा, और किसी ने जलाकर मारा है तो उसे भी जलाकर मारा जाएगा। लेकिन हनफ़ी मसलक के आलिम लोग इस बात को मानते हैं कि क़ातिल ने क़त्ल चाहे किसी तरीक़े से किया हो, उससे क़िसास उस एक ही तरीक़े से लिया जाएगा जो लोगों के दरमियान जाना-माना और राइज है।

105. इस आयत के दो मतलब हो सकते हैं और शायद दोनों ही मुराद हैं। एक यह कि ज़ुल्म के मुक़ाबले में जो मार-काट की जाएगी वह अल्लाह के यहाँ माफ़ है, अगरचे मार-काट अपनी जगह ख़ुद कोई अच्छी चीज़ नहीं है। दूसरा यह कि अल्लाह जिसके तुम बन्दे हो, माफ़ करनेवाला है, इसलिए तुमको भी, जहाँ तक भी तुम्हारे बस में हो, माफ़ करने और नज़र-अन्दाज़ कर देने से काम लेना चाहिए। ईमानवालों के अख़लाक़ का ज़ेवर यही है कि वे बरदाश्त करनेवाले, कुशादा दिल हों। बदला लेने का हक़ उन्हें ज़रूर हासिल है, मगर बिलकुल इन्तिक़ाम की ज़ेहनियत अपने ऊपर हावी कर लेना उनके लिए मुनासिब नहीं है।

106. इस पैराग्राफ़ का ताल्लुक़ ऊपर के पूरे पैराग्राफ़ से है, न कि सिर्फ़ क़रीब के आख़िरी जुमले से। यानी कुफ़्र (अधर्म) और ज़ुल्म का रवैया अपनानेवालों पर अज़ाब आना, ईमानवाले और

وَاَنَّ اللّٰهَ سَمِيۡعٌ بَصِيۡرٌ ﴿٦١﴾ ذٰلِكَ بِاَنَّ اللّٰهَ هُوَالۡحَقُّ وَاَنَّ مَا يَدۡعُوۡنَ مِنۡ
دُوۡنِهٖ هُوَالۡبَاطِلُ وَاَنَّ اللّٰهَ هُوَالۡعَلِىُّ الۡكَبِيۡرُ ﴿٦٢﴾ اَلَمۡ تَرَ اَنَّ اللّٰهَ اَنۡزَلَ
مِنَ السَّمَآءِ مَآءً فَتُصۡبِحُ الۡاَرۡضُ مُخۡضَرَّةً ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَطِيۡفٌ

ही है[107] और वह सब कुछ सुनने और सब कुछ देखनेवाला है।[108] (62) यह इसलिए कि अल्लाह ही हक़ (सत्य) है और वे सब बातिल (असत्य) हैं जिन्हें अल्लाह को छोड़कर ये लोग पुकारते हैं[109] और अल्लाह ही बुलन्द और बुज़ुर्ग है। (63) क्या तुम देखते नहीं हो कि अल्लाह आसमान से पानी बरसाता है और उसकी बदौलत ज़मीन हरी-भरी हो जाती है?[110] हक़ीक़त यह है कि वह बारीकियों तक पर नज़र रखनेवाला और बहुत

नेक बन्दों को इनाम देना, सताए गए हक़परस्तों की फ़रियाद सुनना और ताक़त से ज़ुल्म का मुक़ाबला करनेवाले हक़परस्तों की मदद करना, यह सब किस वजह से है? इसलिए कि अल्लाह की सिफ़तें ये और ये हैं।

107. यानी कायनात के पूरे निज़ाम (व्यवस्था) पर वही हुकूमत कर रहा है और रात-दिन का यह आना-जाना उसी के वश में है। इस ज़ाहिरी मतलब के साथ इस जुमले में एक हल्का-सा इशारा इस तरफ़ भी है कि जो ख़ुदा रात के अंधेरे में से दिन की रौशनी निकाल लाता है और चमकते हुए दिन पर रात का अन्धेरा छा देता है, वही ख़ुदा इस बात की क़ुदरत भी रखता है कि आज जिनकी हुकूमत और ताक़त का सूरज पूरी तरह चमक रहा है उनके ढलने और डूबने का मंज़र भी दुनिया को जल्द ही दिखा दे, और कुफ़्र (अधर्म) और जहालत (अज्ञान) का जो अंधेरा इस वक़्त हक़ और सच्चाई की पौ फटने का रास्ता रोक रहा है, वह देखते-ही-देखते उसके हुक्म से छँट जाए और वह दिन निकल आए जिसमें सच्चाई, इल्म और ख़ुदा की पहचान के नूर से दुनिया रौशन हो जाए।

108. यानी वह देखने और सुननेवाला है, अन्धा-बहरा नहीं है।

109. यानी हक़ीक़ी अधिकारों का मालिक और हक़ीक़ी रब वही है, इसलिए उसकी बन्दगी करनेवाले नुक़सान में नहीं रह सकते। और दूसरे तमाम माबूद सरासर बे-हक़ीक़त (मिथ्या) हैं, उनको जिन सिफ़ात और अधिकारों का मालिक समझ लिया गया है उनकी सिरे से कोई असलियत नहीं है, इसलिए ख़ुदा से मुँह मोड़कर उनके भरोसे पर जीनेवाले कभी कामयाब नहीं हो सकते।

110. यहाँ फिर ज़ाहिरी मतलब के पीछे एक हल्का-सा इशारा छिपा हुआ है। ज़ाहिरी मतलब तो महज़ अल्लाह की क़ुदरत का बयान है, मगर हल्का-सा इशारा इसमें यह है कि जिस तरह ख़ुदा की बरसाई हुई बारिश का एक छींटा पड़ते ही तुम देखते हो कि सूखी पड़ी हुई ज़मीन यकायक लहलहा उठती है, उसी तरह यह वह्य रूपी रहमत की बारिश जो आज हो रही है, बहुत जल्द

خَبِيْرٌ ﴿٦٣﴾ لَهٗ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ وَاِنَّ اللّٰهَ لَهُوَ
الْغَنِيُّ الْحَمِيْدُ ﴿٦٤﴾ اَلَمْ تَرَ اَنَّ اللّٰهَ سَخَّرَ لَكُمْ مَّا فِي الْاَرْضِ وَالْفُلْكَ
تَجْرِيْ فِي الْبَحْرِ بِاَمْرِهٖ ۭ وَيُمْسِكُ السَّمَاۗءَ اَنْ تَقَعَ عَلَي
الْاَرْضِ اِلَّا بِاِذْنِهٖ ۭ اِنَّ اللّٰهَ بِالنَّاسِ لَرَءُوْفٌ رَّحِيْمٌ ﴿٦٥﴾

ع ٨ ١٥

बाख़बर है।[111] (64) उसी का है जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है। बेशक वही बेनियाज़ और तारीफ़ के क़ाबिल है[112] (65) क्या तुम देखते नहीं हो कि उसने वह सब कुछ तुम्हारे काम में लगा रखा है जो ज़मीन में है, और उसी ने नाव को क़ायदे (नियम) का पाबन्द बनाया है कि वह उसके हुक्म से समन्दर में चलती है, और वही आसमान को इस तरह थामे हुए है कि उसकी इजाज़त के बिना वह ज़मीन पर नहीं गिर सकता?[113] सच तो यह है कि अल्लाह लोगों के लिए बड़ा मेहरबान और रहम करनेवाला है।

तुमको यह मंज़र (दृश्य) दिखाने वाली है कि यही अरब का बंजर रेगिस्तान इल्म और अख़्लाक़ और अच्छी तहज़ीब (सभ्यता) का ऐसा बाग़ बन जाएगा जो इससे पहले किसी ने कभी न देखा होगा।

111. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'लतीफ़' इस्तेमाल हुआ है, यानी ग़ैर-महसूस तरीक़ों से अपने इरादे पूरे करनेवाला है। उसकी तदबीरें ऐसी होती हैं कि लोग उनके शुरू में कभी उनके अंजाम के बारे में सोच भी नहीं सकते। लाखों बच्चे दुनिया में पैदा होते हैं, कौन जान सकता है कि उनमें से कौन इबराहीम है जो तीन चौथाई दुनिया का रूहानी पेशवा होगा और कौन चंगेज़ है जो एशिया और यूरोप को बरबाद कर डालेगा। ख़ुर्दबीन (सूक्ष्मदर्शी) जब ईजाद हुई थी उस वक़्त कौन सोच सकता था कि यह एटम बम और हाइड्रोजन बम तक पहुँचाएगी। कोलम्बस जब सफ़र पर निकल रहा था तो किसे मालूम था कि संयुक्त अमेरिकी गणराज्य (USA) की बुनियाद डाली जा रही है। ग़रज़ ख़ुदा की स्कीमें ऐसी-ऐसी मुश्किल और समझ में न आनेवाले तरीक़ों से पूरी होती हैं कि जब तक वे पूरी न हो जाएँ किसी को पता नहीं चलता कि यह किस चीज़ के लिए काम हो रहा है।
'ख़बीर' है, यानी वह अपनी दुनिया के हालात, मसलहतों और ज़रूरतों से बाख़बर है, और जानता है कि अपनी ख़ुदाई का काम किस तरह करे।

112. वही 'ग़नी' (निस्पृह) है, यानी सिर्फ़ उसी की हस्ती ऐसी है जो किसी की मुहताज नहीं। और वही 'हमीद' है, यानी तारीफ़ और हम्द उसी के लिए है और वह अपने आप में ख़ुद तारीफ़ के क़ाबिल है, चाहे कोई उसकी तारीफ़ करे या न करे।

113. आसमान से मुराद यहाँ पूरी ऊपरी दुनिया है जिसकी हर चीज़ अपनी-अपनी जगह थमी हुई है।

وَهُوَالَّذِيٓ اَحْيَاكُمْ ثُمَّ يُمِيْتُكُمْ ثُمَّ يُحْيِيْكُمْ ۭ اِنَّ الْاِنْسَانَ
لَكَفُوْرٌ ﴿٦٦﴾ لِكُلِّ اُمَّةٍ جَعَلْنَا مَنْسَكًا هُمْ نَاسِكُوْهُ فَلَا يُنَازِعُنَّكَ فِي
الْاَمْرِ وَادْعُ اِلٰى رَبِّكَ ۭ اِنَّكَ لَعَلٰى هُدًى مُّسْتَقِيْمٍ ﴿٦٧﴾ وَاِنْ

(66) वही है जिसने तुम्हें ज़िन्दगी दी है, वही तुमको मौत देता है और वही फिर तुमको ज़िन्दा करेगा। सच यह है कि इनसान बड़ा ही हक़ का इनकारी है।[114]

(67) हर उम्मत[115] के लिए हमने इबादत का एक तरीक़ा[116] मुक़र्रर किया है जिसकी वह पैरवी करती है; तो ऐ नबी, वह इस मामले में तुमसे झगड़ा न करें।[117] तुम अपने रब की तरफ़ दावत दो, यक़ीनन तुम सीधे रास्ते पर हो।[118] (68) और अगर वे

114. यानी यह सब कुछ देखते हुए भी उस हक़ीक़त का इनकार किए जाता है जिसे पैग़म्बरों (अलैहि०) ने पेश किया है।

115. यानी हर नबी की उम्मत (समुदाय)।

116. यहाँ अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'मन्सक' इस्तेमाल हुआ है। यह लफ़्ज़ क़ुरबानी के मानी में नहीं, बल्कि पूरे इबादती निज़ाम के मानी में है। इससे पहले इसी लफ़्ज़ का तर्जमा 'क़ुरबानी का क़ायदा' किया गया था, क्योंकि वहाँ बाद का जुमला ''ताकि लोग उन जानवरों पर अल्लाह का नाम लें जो उसने उनको दिए हैं'' उसके कई मानी में से सिर्फ़ क़ुरबानी मुराद होने को बयान कर रहा था। लेकिन यहाँ इसे महज़ 'क़ुरबानी' के मानी में लेने की कोई वजह नहीं है, बल्कि इबादत को भी अगर 'परस्तिश' के बजाय 'बन्दगी' के ज़्यादा वसीअ (व्यापक) मानी में लिया जाए तो मक़सद से ज़्यादा क़रीब होगा। इस तरह मन्सक (बन्दगी का तरीक़ा) का वही मतलब हो जाएगा जो 'शरीअत' और 'मिनहाज' का मतलब है, और यह उसी बात को दोहराना होगा जो सूरा-5 माइदा, आयत-48 में कही गई है कि ''हमने तुममें से हर एक के लिए एक शरीअत और एक राहे-अमल मुक़र्रर की।''

117. यानी जिस तरह पहले के पैग़म्बर अपने-अपने दौर की उम्मतों के लिए एक 'मन्सक' (इबादती निज़ाम) लाए थे, उसी तरह इस दौर की उम्मत के लिए तुम एक मन्सक लाए हो। अब किसी को तुमसे झगड़ा करने का कोई हक़ हासिल नहीं है, क्योंकि इस दौर के लिए यही सही मन्सक है। सूरा-45 जासिया, आयत-18 में इस मज़मून को यूँ बयान किया गया है, ''फिर (बनी-इसराईल के नबियों के बाद) ऐ नबी, हमने तुमको दीन के मामले में एक शरीअत (तरीक़े) पर क़ायम किया तो तुम उसी की पैरवी करो और उन लोगों की ख़ाहिशों की पैरवी न करो जो इल्म नहीं रखते।'' (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए– तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-42 शूरा, हाशिया-20)

118. यह जुमला उस मतलब को पूरी तरह खोलकर बयान कर रहा है जो पिछले जुमले की तफ़सीर में अभी हम बयान कर आए हैं।

جٰدَلُوْكَ فَقُلِ اللّٰهُ اَعْلَمُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ ۝٦٨ اَللّٰهُ يَحْكُمُ بَيْنَكُمْ يَوْمَ
الْقِيٰمَةِ فِيْمَا كُنْتُمْ فِيْهِ تَخْتَلِفُوْنَ ۝٦٩ اَلَمْ تَعْلَمْ اَنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُ مَا فِي
السَّمَآءِ وَالْاَرْضِ ؕ اِنَّ ذٰلِكَ فِيْ كِتٰبٍ ؕ اِنَّ ذٰلِكَ عَلَى اللّٰهِ يَسِيْرٌ ۝٧٠
وَيَعْبُدُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ مَا لَمْ يُنَزِّلْ بِهٖ سُلْطٰنًا وَّمَا لَيْسَ لَهُمْ بِهٖ
عِلْمٌ ؕ وَمَا لِلظّٰلِمِيْنَ مِنْ نَّصِيْرٍ ۝٧١ وَاِذَا تُتْلٰى عَلَيْهِمْ اٰيٰتُنَا بَيِّنٰتٍ

तुमसे झगड़ा करें तो कह दो कि "जो कुछ तुम कर रहे हो अल्लाह को ख़ूब मालूम है। (69) अल्लाह क़ियामत के दिन तुम्हारे बीच उन सब बातों का फ़ैसला कर देगा जिनमें तुम इख़्तिलाफ़ करते रहे हो।" (70) क्या तुम नहीं जानते कि आसमान और ज़मीन की हर चीज़ अल्लाह के इल्म में है? सब कुछ एक किताब में दर्ज है। अल्लाह के लिए यह कुछ भी मुश्किल नहीं है।[119]

(71) ये लोग अल्लाह को छोड़कर उनकी इबादत कर रहे हैं जिनके लिए न तो उसने कोई सनद (प्रमाण) उतारी है और न ये ख़ुद उनके बारे में कोई इल्म रखते हैं।[120] इन ज़ालिमों के लिए कोई मददगार नहीं है।[121] (72) और जब उनको हमारी साफ़-साफ़

119. बात के सिलसिले से इस पैराग्राफ़ का ताल्लुक़ समझने के लिए इस सूरा की आयतें-55-57 निगाह में रहनी चाहिएँ।

120. यानी न तो ख़ुदा की किसी किताब में यह कहा गया है कि हमने फ़ुलाँ-फ़ुलाँ को अपने साथ ख़ुदाई में साझीदार बनाया है इसलिए हमारे साथ तुम उनकी भी इबादत किया करो, और न उनको किसी इल्मी ज़रिए से यह मालूम हुआ है कि ये लोग ख़ुदाई में हिस्सेदार हैं और इस वजह से इनको इबादत का हक़ पहुँचता है। अब ये जो तरह-तरह के माबूद (उपास्य) गढ़े गए हैं, और उनकी सिफ़ात और अधिकारों के बारे में तरह-तरह के अक़ीदे बना लिए गए हैं, और उनके आस्तानों पर माथे टेके जा रहे हैं, दुआएँ माँगी जा रही हैं, चढ़ावे चढ़ाए जा रहे हैं, नियाज़ें दी जा रही हैं, तवाफ़ किए जा रहे हैं और एतिकाफ़ हो रहे हैं (यानी वहाँ दिन-रात ठहरकर इबादत किए जा रहे हैं), यह सब जहालत भरे गुमान की पैरवी के सिवा आख़िर और क्या है!

121. यानी ये बेवक़ूफ़ लोग समझ रहे हैं कि यह माबूद दुनिया और आख़िरत में उनके मददगार हैं, हालाँकि हक़ीक़त में उनका कोई भी मददगार नहीं है। न ये माबूद, क्योंकि उनके पास मदद की कोई ताक़त नहीं और न अल्लाह, क्योंकि उससे ये बग़ावत कर चुके हैं। इसलिए अपनी इस

تَعْرِفُ فِيْ وُجُوْهِ الَّذِيْنَ كَفَرُوا الْمُنْكَرَ ؕ يَكَادُوْنَ يَسْطُوْنَ بِالَّذِيْنَ
يَتْلُوْنَ عَلَيْهِمْ اٰيٰتِنَا ؕ قُلْ اَفَاُنَبِّئُكُمْ بِشَرٍّ مِّنْ ذٰلِكُمْ ؕ اَلنَّارُ ؕ
وَعَدَهَا اللّٰهُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا ؕ وَبِئْسَ الْمَصِيْرُ ﴿٧٢﴾ يٰۤاَيُّهَا النَّاسُ
ضُرِبَ مَثَلٌ فَاسْتَمِعُوْا لَهٗ ؕ اِنَّ الَّذِيْنَ تَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ لَنْ
يَّخْلُقُوْا ذُبَابًا وَّلَوِ اجْتَمَعُوْا لَهٗ ؕ وَاِنْ يَّسْلُبْهُمُ الذُّبَابُ شَيْـًٔا لَّا
يَسْتَنْقِذُوْهُ مِنْهُ ؕ ضَعُفَ الطَّالِبُ وَالْمَطْلُوْبُ ﴿٧٣﴾ مَا قَدَرُوا اللّٰهَ

आयतें सुनाई जाती हैं तो तुम देखते हो कि हक़ का इनकार करनेवालों के चेहरे बिगड़ने लगते हैं और ऐसा लगता है कि अभी वे उन लोगों पर टूट पड़ेंगे जो उन्हें हमारी आयतें सुनाते हैं। उनसे कहो, "मैं बताऊँ तुम्हें कि इससे ज़्यादा बुरी चीज़ क्या है?[122] आग, अल्लाह ने उसी का वादा उन लोगों के हक़ में कर रखा है जो हक़ को क़बूल करने से इनकार करें, और वह बहुत ही बुरा ठिकाना है।"

(73) लोगो, एक मिसाल दी जाती है, ग़ौर से सुनो। जिन माबूदों को तुम ख़ुदा को छोड़कर पुकारते हो वे सब मिलकर एक मक्खी भी पैदा करना चाहें तो नहीं कर सकते; बल्कि अगर मक्खी उनसे कोई चीज़ छीन ले जाए तो वे उसे छुड़ा भी नहीं सकते। मदद चाहनेवाले भी कमज़ोर और जिनसे मदद चाही जाती है वे भी कमज़ोर।[123] (74) इन लोगों

बेवक़ूफ़ी से ये आप अपने ही ऊपर ज़ुल्म कर रहे हैं।

122. यानी अल्लाह के कलाम की आयतें सुनकर जो ग़ुस्से की जलन तुमको होती है उससे बढ़कर चीज़, या यह कि उन आयतों को सुनानेवालों के साथ जो ज़्यादा-से-ज़्यादा बुराई तुम कर सकते हो उससे ज़्यादा बुरी चीज़, जिससे तुम्हारा सामना होनेवाला है।

123. यानी मदद चाहनेवाला तो इसलिए किसी बड़ी ताक़त की तरफ़ मदद के लिए हाथ फैलाता है कि वह कमज़ोर है। मगर इस ग़रज़ के लिए ये जिनके आगे हाथ फैला रहे हैं उनकी कमज़ोरी का हाल यह है कि वे एक मक्खी से भी नहीं निमट सकते। अब ग़ौर करो कि उन लोगों की कमज़ोरी का क्या हाल होगा जो ख़ुद भी कमज़ोर हों और उनकी उम्मीदों के सहारे भी कमज़ोर।

حَقَّ قَدْرِهٖ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَقَوِیٌّ عَزِیْزٌ ﴿۷۴﴾ اَللّٰهُ یَصْطَفِیْ مِنَ الْمَلٰٓئِكَةِ
رُسُلًا وَّمِنَ النَّاسِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ سَمِیْعٌۢ بَصِیْرٌ ﴿۷۵﴾ یَعْلَمُ مَا بَیْنَ
اَیْدِیْهِمْ وَمَا خَلْفَهُمْ ؕ وَاِلَى اللّٰهِ تُرْجَعُ الْاُمُوْرُ ﴿۷۶﴾

ने अल्लाह की क़द्र ही न पहचानी, जैसा कि उसके पहचानने का हक़ है। सच तो यह है कि क़ुव्वत और इज़्ज़तवाला तो अल्लाह ही है।

(75) हक़ीक़त यह है कि अल्लाह (अपने हुक्मों को भेजने के लिए) फ़रिश्तों में से भी पैग़ाम पहुँचानेवालों को चुनता है, और इनसानों में से भी।[124] वह सब कुछ सुनने और देखनेवाला है। (76) जो कुछ उनके सामने है उसे भी वह जानता है और जो कुछ उनसे ओझल है उससे भी वह वाक़िफ़ है,[125] और सारे मामले उसी की तरफ़ पलटते हैं।[126]

124. मतलब यह है कि मुशरिकों ने अल्लाह की पैदा की हुई चीज़ों में से जिन-जिन हस्तियों को माबूद बनाया है उनमें सबसे बढ़कर जानदार या फ़रिश्ते हैं या पैग़म्बर। और उनकी हैसियत भी इससे ज़्यादा कुछ नहीं है कि वे अल्लाह के हुक्म पहुँचाने का ज़रिआ हैं जिनको उसने इस काम के लिए चुन लिया है। सिर्फ़ यह बढ़ा हुआ दर्जा उनको ख़ुदा या ख़ुदाई में अल्लाह का साझीदार तो नहीं बना देता।

125. यह जुमला क़ुरआन मजीद में आम तौर से सिफ़ारिश के मुशरिकाना अक़ीदे (अनेकेश्वरवाद) को ग़लत ठहराने के लिए आया करता है। इसलिए इस जगह पर पिछले जुमले के बाद इसे कहने का मतलब यह हुआ कि फ़रिश्तों और पैग़म्बरों और नेक लोगों को अपने आप में ज़रूरतें पूरी करनेवाला और मुश्किलें हल करनेवाला समझकर न सही, अल्लाह के यहाँ सिफ़ारिशी समझकर भी अगर तुम पूजते हो तो यह ग़लत है; क्योंकि सब कुछ देखने और सब कुछ सुननेवाला सिर्फ़ अल्लाह तआला है, हर शख़्स के खुले और छिपे हालात वही जानता है, दुनिया की खुली-छिपी मसलहतों से भी वही वाक़िफ़ है, फ़रिश्तों और नबियों समेत किसी मख़लूक़ को भी ठीक मालूम नहीं है कि किस वक़्त क्या करना मुनासिब है और क्या मुनासिब नहीं है, इसलिए अल्लाह ने अपने सबसे क़रीबी जानदारों को भी यह हक़ नहीं दिया है कि वह उसकी इजाज़त के बिना जो सिफ़ारिश चाहें कर बैठें और उनकी सिफ़ारिश क़बूल हो जाए।

126. यानी कुछ भी करना बिलकुल उसके वश में है। कायनात के किसी छोटे या बड़े मामले का हल करनेवाला कोई दूसरा नहीं है कि उसके पास तुम अपनी दरख़ास्तें लेकर जाओ। हर मामला उसी के आगे फ़ैसले के लिए पेश होता है। इसलिए माँगने के लिए हाथ बढ़ाना है तो उसकी तरफ़ बढ़ाओ। उन बेबस हस्तियों से क्या माँगते हो जो ख़ुद अपनी भी कोई ज़रूरत आप पूरी कर लेने की क़ुदरत नहीं रखती हैं।

يَٰٓأَيُّهَا ٱلَّذِينَ ءَامَنُوا۟ ٱرْكَعُوا۟ وَٱسْجُدُوا۟ وَٱعْبُدُوا۟ رَبَّكُمْ
وَٱفْعَلُوا۟ ٱلْخَيْرَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُونَ ۩ ﴿٧٧﴾ وَجَٰهِدُوا۟ فِى ٱللَّهِ

السجدة عند الشافعي

(77) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, रुकू और सजदा करो, अपने रब की बन्दगी करो और नेक काम करो, शायद कि तुमको कामयाबी नसीब हो।[127] (78) अल्लाह की राह में

127. यानी कामयाबी की उम्मीद अगर की जा सकती है तो यही रवैया अपनाने से की जा सकती है। लेकिन जो शख़्स भी यह रवैया अपनाए उसे अपने अमल पर घमण्ड न होना चाहिए कि जब मैं ऐसा इबादतगुज़ार और नेकी करनेवाला हूँ तो ज़रूर कामयाबी पाऊँगा, बल्कि उसे अल्लाह की मेहरबानी का उम्मीदवार रहना चाहिए और उसी की रहमत से उम्मीदें लगानी चाहिएँ। वह कामयाब करे तब ही कोई शख़्स कामयाब हो सकता है। ख़ुद कामयाबी पा लेना किसी के बस की बात नहीं है।

"शायद तुमको कामयाबी नसीब हो" यह जुमला कहने का मतलब यह नहीं है कि इस तरह कामयाबी मिलने में शक व शुबहा है, बल्कि अस्ल में यह शाहाना अन्दज़े-बयान है। बादशाह अगर अपने किसी नौकर से यह कहे कि फ़ुलाँ काम करो, शायद कि तुम्हें फ़ुलाँ मंसब मिल जाए तो ख़ादिम के घर शहनाइयाँ बज जाती हैं; क्योंकि इशारे के रूप में यह एक वादा है और एक मेहरबान मालिक से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि किसी ख़िदमत पर एक बदले की उम्मीद वह ख़ुद दिलाए और फिर अपने वफ़ादार ख़ादिम को मायूस करे।

इमाम शाफ़िई, इमाम अहमद, अब्दुल्लाह-बिन-मुबारक और इसहाक़-बिन-राहवैह के नज़दीक सूरा हज की यह आयत भी सजदे की आयत है। मगर इमाम अबू-हनीफ़ा, इमाम मालिक, हसन बसरी, सईद-बिन-अल-मुसय्यब, सईद-बिन-जुबैर, इबराहीम नख़ई और सुफ़ियान सौरी इस जगह तिलावत के सजदे को नहीं मानते। दोनों तरफ़ की दलीलें हम यहाँ मुख़्तसर तौर पर बयान कर देते हैं।

पहले गरोह की सबसे पहली दलील आयत के ज़ाहिर से है कि इसमें सजदे का हुक्म है। दूसरी दलील उक़बा-बिन-आमिर (रज़ि॰) की वह रिवायत है जिसे अहमद, अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, इब्ने-मरदूया और बैहक़ी ने नक़्ल किया है कि "मैंने अर्ज़ किया, ऐ अल्लाह के रसूल, क्या सूरा हज को सारे क़ुरआन पर यह बढ़कर दर्जा हासिल है कि इसमें दो सजदे हैं? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, तो जो उनपर सजदा न करे वह उन्हें न पढ़े।" तीसरी दलील अबू-दाऊद और इब्ने-माजा की वह रिवायत है जिसमें अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने उनको सूरा हज में दो सजदे सिखाए थे। चौथी दलील यह है कि हज़रत उमर (रज़ि॰), हज़रत अली (रज़ि॰), हज़रत उसमान (रज़ि॰), इब्ने-उमर (रज़ि॰), इब्ने-अब्बास (रज़ि॰), अबू-दरदा (रज़ि॰), अबू-मूसा अशअरी (रज़ि॰) और अम्मार-बिन-यासिर (रज़ि॰) से यह रिवायत बयान हुई है कि सूरा हज में दो सजदे हैं।

حَقَّ جِهَادِهٖ ؕ هُوَاجْتَبٰىكُمْ وَمَا جَعَلَ عَلَيْكُمْ فِي الدِّيْنِ مِنْ

जिहाद करो, जैसा कि जिहाद करने का हक़ है।[128] उसने तुम्हें अपने काम के लिए चुन

दूसरे गरोह की दलील यह है कि आयत में सिर्फ़ सजदे का हुक्म नहीं, बल्कि रुकू और सजदे का एक साथ हुक्म है और क़ुरआन में रुकू और सजदों को मिलाकर जब बोला जाता है तो उससे मुराद नमाज़ ही होती है। फिर यह कि रुकू और सजदों का एक साथ होना नमाज़ ही के साथ ख़ास है। उक़बा-बिन-आमिर (रज़ि॰) की रिवायत के बारे में वे कहते हैं कि उसकी सनद कमज़ोर है। उसको इब्ने-लहीआ अबुल-मुसअब बसरी से रिवायत करता है और ये दोनों कमज़ोर रावी (उल्लेखकर्ता) हैं। ख़ासकर अबुल-मुसअब तो वह शख़्स है जो हज्जाज-बिन-यूसुफ़ के साथ काबा पर मिन्जनीक़ (पत्थर फेंकने का एक यन्त्र) से पत्थर बरसानेवालों में शामिल था। अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) वाली रिवायत को वे भरोसेमन्द नहीं मानते, क्योंकि उसको सईदुल-अतक़ी अब्दुल्लाह-बिन-मुनैन अल-किलाबी से रिवायत करता है और दोनों अनजाने हैं, कुछ पता नहीं कि कौन थे और किस दर्जे के आदमी थे। सहाबा (रज़ि॰) ने जो कहा है उसके सिलसिले में वे कहते हैं कि इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) ने सूरा हज में दो सजदे होने का यह मतलब साफ़ बताया है कि "पहला सजदा लाज़िमी है और दूसरा सजदा तालीमी।"

128. जिहाद से मुराद सिर्फ़ 'क़िताल' (जंग) नहीं है, बल्कि यह लफ़्ज़ जिद्दो-जुहद और कशमकश और इन्तिहाई कोशिश के मानी में इस्तेमाल होता है। फिर जिहाद और मुजाहिद में यह मानी भी शामिल है कि रुकावट डालनेवाली कुछ ताक़तें हैं जिनके मुक़ाबले में यह जिद्दो-जुहद ज़रूरी है। और इसके साथ 'फ़िल्लाह' (अल्लाह के लिए) की पाबन्दी यह तय कर देती है कि रुकावट डालनेवाली ताक़तें वे हैं जो अल्लाह की बन्दगी और उसकी ख़ुशी चाहने में, और उसकी राह पर चलने में रुकावट हैं, और जिद्दो-जुहद का मक़सद यह है कि उनके रुकावट डालने को शिकस्त देकर आदमी ख़ुद भी ठीक-ठीक अल्लाह की बन्दगी करे और दुनिया में भी उसका कलिमा बुलन्द और कुफ़्र और नास्तिकता की बातों को पछाड़ देने के लिए जान लड़ा दे। इस कोशिश और जिद्दो-जुहद का सबसे पहला निशाना आदमी का अपना नफ़्से-अम्मारा (बुराइयों पर उभारनेवाला आन्तरिक उत्प्रेरक) है जो हर वक़्त ख़ुदा से बग़ावत करने के लिए ज़ोर लगाता रहता है और आदमी को ईमान और फ़रमाँबरदारी के रास्ते से हटाने की कोशिश करता है। जब तक इसको क़ाबू में न कर लिया जाए, बाहर किसी जिद्दो-जुहद (बुराई से लड़ने) का इमकान नहीं है। इसी लिए एक जंग से वापस आनेवाले ग़ाज़ियों से नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "तुम छोटे जिहाद से बड़े जिहाद की तरफ़ वापस आ गए हो।" पूछा गया, "वह बड़ा जिहाद क्या है?" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "आदमी की ख़ुद अपने मन के ख़िलाफ़ जिद्दो-जुहद।" इसके बाद जिहाद का बड़ा मैदान पूरी दुनिया है जिसमें काम करनेवाली तमाम बग़ावत का मिज़ाज रखनेवाली, बग़ावत की तरफ़ माइल हो जानेवाली और बग़ावत पर उभारनेवाली ताक़तों के ख़िलाफ़ दिल और दिमाग़ और जिस्म और माल की सारी ताक़तों के साथ जिद्दो-जुहद करना जिहाद का वह हक़ है जिसे अदा करने की यहाँ माँग की जा रही है।

حَرَجٍ ۭ مِلَّةَ اَبِيْكُمْ اِبْرٰهِيْمَ ۭ هُوَ سَمّٰىكُمُ الْمُسْلِمِيْنَ ۙ مِنْ قَبْلُ

लिया है[129] और दीन में तुमपर कोई तंगी नहीं रखी।[130] क़ायम हो जाओ अपने बाप इबराहीम की मिल्लत पर।[131] अल्लाह ने पहले भी तुम्हारा नाम 'मुस्लिम' रखा था और

129. यानी तमाम इनसानों में से तुम लोग उस काम के लिए चुन लिए गए हो जिसका ज़िक्र ऊपर किया गया है। इस मज़मून को क़ुरआन मजीद में अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग तरीक़ों से बयान किया गया है। मसलन सूरा-2 बक़रा, आयत-143 में फ़रमाया, "हमने तुमको उम्मते-वसत (बेहतरीन उम्मत) बनाया।" और सूरा-3 आले-इमरान, आयत-110 में फ़रमाया, "तुम बेहतरीन उम्मत हो जिसे लोगों के लिए निकाला गया है।" यहाँ इस बात पर भी ख़बरदार कर देना मुनासिब मालूम होता है कि ये आयतें उन आयतों में से हैं जो सहाबा किराम की फ़ज़ीलत (श्रेष्ठता) की दलील देती हैं और उन लोगों की ग़लती साबित करती हैं जो सहाबा को लानत-मलामत करते हैं। ज़ाहिर है कि इस आयत में सीधे तौर पर सहाबा को ख़िताब किया गया है। दूसरे लोगों से यह बात उनके ज़रिए ही से पहुँचती है।

130. यानी तुम्हारी ज़िन्दगी को उन तमाम बेकार की पाबन्दियों से आज़ाद कर दिया गया है जो पिछली उम्मतों के फ़क़ीहों (धर्म-शास्त्रियों) और फ़रीसियों (पुरोहितों) और पापाओं (क़ानूनदानों) ने लागू कर दी थीं। न यहाँ सोचने-समझने पर वे पाबन्दियाँ हैं जो इल्म की तरक़्क़ी में रुकावट हों और न अमली ज़िन्दगी पर वे पाबन्दियाँ हैं जो तमद्दुनी और सामाजिक तरक़्क़ी में रुकावट बनें। एक सादा और आसान अक़ीदा और क़ानून तुमको दिया गया है जिसको लेकर तुम जितना आगे चाहो बढ़ सकते हो। यहाँ जिस बात को ईजाबी और मुसबत (सकारात्मक) अन्दाज़ में बयान किया गया है वही एक दूसरी जगह सलबी और मनफ़ी (नकारात्मक) अन्दाज़ में बयान हुई है कि "यह रसूल उनको जानी-मानी नेकियों का हुक्म देता है और उन बुराइयों से रोकता है जिनसे इनसानी फ़ितरत इनकार करती है और वे चीज़ें हलाल करता है जो पाकीज़ा हैं और वे चीज़ें हराम करता है जो गन्दी हैं और उनपर से वे भारी बोझ उतारता है जो उनपर लदे हुए थे और वे ज़ंजीरें खोलता है जिनमें वे जकड़े हुए थे।" (सूरा-7 आराफ़, आयत-157)

131. अगरचे इस्लाम को नूह की मिल्लत (तरीक़ा), मूसा की मिल्लत, ईसा की मिल्लत भी इसी तरह कहा जा सकता है जिस तरह इबराहीम की मिल्लत। लेकिन क़ुरआन मजीद में इसको बार-बार इबराहीम की मिल्लत कहकर इसकी पैरवी की दावत तीन वजहों से दी गई है। एक यह कि क़ुरआन ने सबसे पहले जिन्हें मुख़ातब किया वे अरब के लोग थे और वे हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को जिस तरह जानते थे किसी और को नहीं जानते थे। उनके इतिहास, रिवायतों और अक़ीदों में जिस शख़्सियत का असर और प्रभाव रचा-बसा था वह हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ही की शख़्सियत थी। दूसरी वजह यह है कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ही वे शख़्स थे जिनकी बुज़ुर्गी पर यहूदी, ईसाई, मुसलमान, अरब के मुशरिक और मशरिक़े-वुस्ता (मध्य-पूर्व) के साबिई, सब एकराय थे। नबियों में कोई दूसरा ऐसा न था और न है जिसपर

وَفِيْ هٰذَا لِيَكُوْنَ الرَّسُوْلُ شَهِيْدًا عَلَيْكُمْ وَتَكُوْنُوْا شُهَدَآءَ عَلَى
النَّاسِ ۖ فَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ وَاعْتَصِمُوْا بِاللّٰهِ ۭ
هُوَمَوْلٰىكُمْ ۚ فَنِعْمَ الْمَوْلٰى وَنِعْمَ النَّصِيْرُ ﴿٧٨﴾

इस (क़ुरआन) में भी (तुम्हारा यही नाम है),[132] ताकि रसूल तुमपर गवाह हो और तुम लोगों पर गवाह।[133] तो नमाज़ क़ायम करो, ज़कात दो और अल्लाह से जुड़ जाओ। वह है तुम्हारा सरपरस्त, बहुत ही अच्छा है वह सरपरस्त और बहुत ही अच्छा है वह मददगार।[134]

सब एक राय हों। तीसरी वजह यह है कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) उन सब मिल्लतों की पैदाइश से पहले गुज़रे हैं। यहूदियत, ईसाइयत और साबिइयत के बारे में तो मालूम ही है कि सब बाद की पैदावार हैं। रहे अरब के मुशरिक तो वे भी यह मानते थे कि उनके यहाँ बुतपरस्ती का रिवाज अम्र-बिन-लुहैय से शुरू हुआ जो बनी-ख़ुज़ाआ का सरदार था और मआब (मुआब) के इलाक़े से हुबल नामी बुत ले आया था। उसका ज़माना ज़्यादा-से-ज़्यादा 5-6 सौ साल ई॰पू॰ का है। इसलिए यह मिल्लत भी हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के सदियों बाद पैदा हुई। इस सूरते-हाल में क़ुरआन जब कहता है कि इन मिल्लतों के बजाय इबराहीम की मिल्लत को अपनाओ तो वह अस्ल में इस हक़ीक़त पर ख़बरदार करता है कि अगर हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) हक़ पर और हिदायत पर थे, और उन मिल्लतों में से किसी की पैरवी करनेवाले न थे तो ज़रूर फिर वही मिल्लत अस्ल मिल्लते-हक़ है, न कि ये बाद की मिल्लतें, और मुहम्मद (सल्ल॰) की दावत उसी मिल्लत की तरफ़ है। और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, हाशिए-134, 135; सूरा-3 आले-इमरान, हाशिए—58-79; तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, हाशिया-120।

132. 'तुम्हारा' का ख़िताब ख़ास तौर पर सिर्फ़ उन्हीं ईमानवालों की तरफ़ नहीं है जो इस आयत के नाज़िल होने (उतरने) के वक़्त मौजूद थे, या उसके बाद ईमानवालों की क़तार में शामिल हुए, बल्कि उसके मुख़ातब वे तमाम लोग हैं जो के इनसानी तारीख़ से तौहीद, आख़िरत, रिसालत और अल्लाह की किताबों के माननेवाले रहे हैं। कहने का मतलब यह है कि इस मिल्लते-हक़ (सत्यवादी समुदाय) के माननेवाले पहले भी 'नूही', 'इबराहीमी', 'मूसवी', 'मसीही' वग़ैरा नहीं कहलाते थे, बल्कि उनका नाम 'मुस्लिम' (अल्लाह का फ़रमाँबरदार) था, और आज भी वे 'मुहम्मदी' नहीं, बल्कि 'मुस्लिम' हैं। इस बात को न समझने की वजह से लोगों के लिए यह सवाल पहेली बन गया कि मुहम्मद (सल्ल॰) की पैरवी करनेवालों का नाम क़ुरआन से पहले किस किताब में मुस्लिम रखा गया था।

133. तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, हाशिया-144। इससे ज़्यादा

तफ़सील के साथ हमने अपनी किताब 'शहादते-हक़' में इस मज़मून पर रौशनी डाली है।

134. या दूसरे अलफ़ाज़ में अल्लाह का दामन मज़बूती के साथ थाम लो। हिदायत और ज़िन्दगी का क़ानून भी उसी से लो, फ़रमाँबरदारी भी उसी की करो, डर भी उसी का रखो, उम्मीदें भी उसी से लगाओ, मदद के लिए भी उसी के आगे हाथ फैलाओ और अपने तवक्कुल और भरोसे का सहारा भी उसी की ज़ात को बनाओ।

☆☆☆

23. अल-मोमिनून

परिचय

नाम

पहली ही आयत 'क़द अफ़्लहल-मोमिनून' (यक़ीनन कामयाबी पाई ईमानवालों ने) से लिया गया है।

उतरने का ज़माना

बयान के अन्दाज़ और मज़ामीन (विषयों) दोनों से यही मालूम होता है कि इस सूरा के उतरने का ज़माना मक्की दौर के बीच का दौर है। पसमंज़र (पृष्ठभूमि) में साफ़ महसूस होता है कि हालाँकि नबी (सल्ल॰) और मक्का के इस्लाम-दुश्मनों के बीच सख़्त कशमकश हो रही है, लेकिन अभी इस्लाम-दुश्मनों के ज़ुल्मो-सितम ने पूरा ज़ोर नहीं पकड़ा है। आयतें-75, 76 से साफ़ तौर पर यह गवाही मिलती है कि यह मक्का के उस भयंकर अकाल के ज़माने में उतरी है जो भरोसेमन्द रिवायतों के मुताबिक़ इसी बीच के दौर में पड़ा था। उरवा-बिन-ज़ुबैर की एक रिवायत से मालूम होता है कि उस वक़्त हज़रत उमर (रज़ि॰) ईमान ला चुके थे। वे अब्दुर्रहमान-बिन-अब्दुल-क़ारी के हवाले से हज़रत उमर (रज़ि॰) की कही हुई यह बात बयान करते हैं कि यह सूरा उनके सामने उतरी है। वे ख़ुद वह्य आने की कैफ़ियत को नबी (सल्ल॰) पर छाते हुए देख रहे थे, और जब नबी (सल्ल॰) उससे फ़ारिग़ हुए तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि मुझपर इस वक़्त दस ऐसी आयतें उतरी हैं कि अगर कोई उनके पैमाने पर पूरा उतर जाए तो यक़ीनन जन्नत में जाएगा। फिर आप (सल्ल॰) ने इस सूरा की इब्तिदाई आयतें सुनाईं।

(हदीस : अहमद, तिरमिज़ी, नसई, हाकिम)

मौज़ू (विषय) और बहसें

रसूल की पैरवी की दावत इस सूरत का मर्कज़ी मज़मून (केन्द्रीय विषय) है और पूरी तक़रीर इसी मरकज़ के आस-पास घूमती है।

बात की शुरुआत इस तरह होती है कि जिन लोगों ने इस पैग़म्बर की बात मान ली है, उनके अन्दर ये और ये ख़ूबियाँ पैदा हो रही हैं, और यक़ीनन ऐसे ही लोग दुनिया और आख़िरत की कामयाबी के हक़दार हैं।

इसके बाद इनसान की पैदाइश, आसमान और ज़मीन की पैदाइश, पेड़-पौधों और जानदारों की पैदाइश और कायनात (सृष्टि) की दूसरी निशानियों की तरफ़ ध्यान दिलाया गया है, जिसका मक़सद यह ज़ेहन में बिठाना है कि तौहीद (एकेश्वरवाद) और आख़िरत की जिन हक़ीक़तों को मानने के लिए यह पैग़म्बर तुमसे कहता है, उनके हक़ होने पर तुम्हारा अपना वुजूद और दुनिया का यह पूरा निज़ाम (व्यवस्था) गवाह है।

फिर पैग़म्बरों (अलैहि॰) और उनकी उम्मतों के क़िस्से शुरू किए गए हैं, जो बज़ाहिर तो क़िस्से ही नज़र आते हैं लेकिन अस्ल में इस अन्दाज़ से कुछ बातें सुननेवालों को समझाई गई हैं—

एक यह कि आज तुम लोग मुहम्मद (सल्ल॰) की दावत पर जो शक और एतिराज़ कर रहे हो, वे कुछ नए नहीं हैं। पहले भी जो पैग़म्बर दुनिया में आए थे, जिनको तुम ख़ुद अल्लाह का भेजा हुआ मानते हो, उन सबपर उनके ज़माने के जाहिलों ने यही एतिराज़ किए थे। अब देख लो कि इतिहास का सबक़ क्या बता रहा है। एतिराज़ करनेवाले सच्चे थे या पैग़म्बर?

दूसरी यह कि तौहीद और आख़िरत के बारे में जो तालीम मुहम्मद (सल्ल॰) दे रहे हैं, यही तालीम हर ज़माने के नबियों ने दी है। उससे अलग कोई निराली चीज़ आज नहीं पेश की जा रही है जो कभी दुनिया ने न सुनी हो।

तीसरी यह कि जिन क़ौमों ने नबियों की बात सुनकर न दी और उनकी मुख़ालिफ़त पर अड़ी रहीं, वे आख़िरकार तबाह होकर रहीं।

चौथी यह कि ख़ुदा की तरफ़ से हर ज़माने में एक ही दीन आता रहा है और तमाम पैग़म्बर एक ही उम्मत के लोग थे। उस एक दीन के सिवा जो अलग-अलग मज़हब तुम लोग दुनिया में देख रहे हो, ये सब लोगों के ख़ुद के गढ़े हुए हैं। इनमें से कोई भी अल्लाह की तरफ़ से नहीं है।

इन क़िस्सों के बाद लोगों को यह बताया गया है कि दुनियावी ख़ुशहाली, धन-दौलत, औलाद, नौकर-चाकर, ताक़त और हुकूमत वे चीज़ें नहीं हैं जो किसी शख़्स या गरोह के सीधे रास्ते पर होने का पक्का सुबूत हों और इस बात की दलील ठहराई जाएँ कि ख़ुदा उसपर मेहरबान है और उसका रवैया ख़ुदा को पसन्द है। इसी तरह किसी का ग़रीब और तंगहाल होना भी इस बात का सुबूत नहीं है कि ख़ुदा उससे और

उसके रवैये से नाराज़ है। अस्ल चीज़ जिसपर किसी का ख़ुदा की नज़र में प्यारा होने या उसके ग़ुस्से के हक़दार होने का दारोमदार है, वह आदमी का ईमान और उसकी ख़ुदातर्सी और सच्चाई है। ये बातें इसलिए कही गई हैं कि नबी (सल्ल॰) की दावत के मुक़ाबले में उस वक़्त जो रुकावट खड़ी की जा रही थी उसके अलमबरदार सब-के-सब मक्का के मुखिया लोग और बड़े-बड़े सरदार थे। वे अपनी जगह ख़ुद भी यह घमण्ड रखते थे, और उनके असर में रहनेवाले लोग भी इस ग़लतफ़हमी में मुब्तला थे कि नेमतों की बारिश जिन लोगों पर हो रही है और जो बढ़ते ही चले जा रहे हैं, उनपर ज़रूर ख़ुदा और देवताओं की मेहरबानी है। रहे ये टूटे-मारे लोग जो मुहम्मद (सल्ल॰) के साथ हैं, इनकी तो हालत ख़ुद ही यह बता रही है कि ख़ुदा इनके साथ नहीं है, और देवताओं की तो मार ही इनपर पड़ी हुई है।

इसके बाद मक्कावालों को अलग-अलग पहलुओं से नबी (सल्ल॰) की नुबूवत पर मुत्मइन करने की कोशिश की गई है। फिर उनको बताया गया है कि यह अकाल जो तुमपर टूटा है, यह एक तंबीह (चेतावनी) है। बेहतर है कि इसको देखकर संभलो और सीधे रास्ते पर आ जाओ। वरना इसके बाद इससे ज़्यादा सख़्त सज़ा आएगी जिसपर बिलबिला उठोगे।

फिर उनको नए सिरे से उन निशानियों की तरफ़ ध्यान दिलाया गया है जो कायनात में और ख़ुद उनके अपने वुजूद में मौजूद हैं। मक़सद यह है कि आँखें खोलकर देखो, जिस तौहीद और जिस मौत के बाद की ज़िन्दगी की हक़ीक़त से यह पैग़म्बर तुमको आगाह कर रहा है, क्या हर तरफ़ इसकी गवाही देनेवाली निशानियाँ फैली हुई नहीं हैं? क्या तुम्हारी अक़्ल और फ़ितरत इसके सही और सच्चे होने की गवाही नहीं देती?

फिर नबी (सल्ल॰) को हिदायत की गई है कि चाहे ये लोग तुम्हारे मुक़ाबले में कैसा ही बुरा रवैया अपनाएँ, तुम भले तरीक़ों ही से उनसे बचाव करना। शैतान कभी तुमको जोश में लाकर बुराई का जवाब बुराई से देने पर आमादा न करने पाए।

बात ख़त्म करते हुए हक़ (सत्य) की मुख़ालिफ़त करनेवालों को आख़िरत की पूछ-गच्छ से डराया गया है और उन्हें ख़बरदार किया गया है कि जो कुछ तुम हक़ की दावत और उसकी पैरवी करनेवालों के साथ कर रहे हो उसका सख़्त हिसाब तुमसे लिया जाएगा।

☆☆☆

آیاتُها ۱۱۸ ۲۳ سُوْرَةُ الْمُؤْمِنُوْنَ مَكِّيَّةٌ ۷۴ رُكُوْعَاتُها ٦

بِسْمِ اللهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

قَدْ اَفْلَحَ الْمُؤْمِنُوْنَ ۝۱

23. अल-मोमिनून

(मक्का में उतरी—आयतें-118)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) यक़ीनन कामयाबी पाई है ईमान लानेवालों ने[1]

1. ईमान लानेवालों से मुराद वे लोग हैं जिन्होंने मुहम्मद (सल्ल.) की दावत क़बूल कर ली, आपको अपना रहनुमा मान लिया और ज़िन्दगी के उस तरीक़े की पैरवी पर राज़ी हो गए जिसे आप (सल्ल.) ने पेश किया है।

अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'अफ़-ल-ह' इस्तेमाल हुआ है जो फ़लाह से बना है। इसका मतलब है कामयाबी और ख़ुशहाली। यह लफ़्ज़ 'ख़ुसरान' का उलट है, जो टोटे और घाटे और नाकामी के मानी में बोला जाता है। 'अफ़-लहर-रजुलु' का मतलब है फ़ुलाँ आदमी कामयाब हुआ, अपनी मुराद को पहुँचा, ख़ुशहाल हो गया, उसकी कोशिश कामयाब हुई, उसकी हालत अच्छी हो गई। 'क़द अफ़-ल-ह' (यक़ीनन कामयाबी पाई)। बात की शुरुआत इन अलफ़ाज़ से करने का सही मतलब उस वक़्त तक समझ में नहीं आ सकता जब तक वह माहौल निगाह में न रखा जाए जिसमें यह तक़रीर की जा रही थी। उस वक़्त एक तरफ़ इस्लामी दावत की मुख़ालिफ़त करनेवाले मक्का के सरदार थे, जिनकी तिजारतें चमक रही थीं, जिनके पास दौलत की रेल-पेल थी, जिनको दुनियावी ख़ुशहाली के सारे सामान हासिल थे। और दूसरी तरफ़ इस्लामी दावत की पैरवी करनेवाले थे, जिनमें से ज़्यादातर तो पहले ही ग़रीब और तंगहाल थे, और कुछ जो अच्छे खाते-पीते घरानों से ताल्लुक़ रखते थे या अपने कारोबार में पहले से कामयाब थे, उनको भी अब क़ौम की मुख़ालिफ़त ने बदहाल कर दिया था। इस सूरतेहाल में जब तक़रीर की शुरुआत इस जुमले से की गई कि "यक़ीनन कामयाबी पाई है ईमान लानेवालों ने" तो इससे ख़ुद-ब-ख़ुद यह मतलब निकला कि कामयाबी और नाकामी का तुम्हारा पैमाना ग़लत है, तुम्हारे अन्दाज़े ग़लत हैं, तुम्हारी निगाह दूर तक पहुँचनेवाली नहीं है, तुम अपनी जिस वक़्ती और महदूद ख़ुशहाली को कामयाबी समझ रहे हो वह कामयाबी नहीं नाकामी और घाटा है, और मुहम्मद (सल्ल.) के माननेवालों को जो तुम नाकाम और नामुराद समझ रहे हो, वे अस्ल में कामयाब और अपनी मुराद पा जानेवाले हैं। हक़ की इस दावत को मानकर उन्होंने घाटे का सौदा नहीं

الَّذِيْنَ هُمْ فِيْ صَلَاتِهِمْ خٰشِعُوْنَ ۝٢

जो : (2) अपनी[2] नमाज़ में ख़ुशू[3] अपनाते हैं,

किया है, बल्कि वह चीज़ पाई है जो दुनिया और आख़िरत दोनों में उनको क़ायम रहनेवाली ख़ुशहाली देगी। और उसे रद्द करके अस्ल में तुमने घाटे का सौदा किया है जिसके बुरे नतीजे तुम यहाँ भी देखोगे और दुनिया से गुज़रकर दूसरी ज़िन्दगी में भी देखते रहोगे।

यही इस सूरा का मर्कज़ी मज़मून (केन्द्रीय विषय) है और सारी तक़रीर शुरू से आख़िर तक इसी बात को ज़ेहन में बिठाने के लिए की गई है।

2. यहाँ से आयत-9 तक ईमान लानेवालों की जो सिफ़तें और ख़ूबियाँ बयान की गई हैं वे मानो दलीलें हैं इस दावे की कि उन्होंने ईमान लाकर हक़ीक़त में कामयाबी पाई है। दूसरे अलफ़ाज़ में मानो यूँ कहा जा रहा है कि ऐसे लोग आख़िर किस तरह कामयाब न हों जिनकी ये और ये ख़ूबियाँ हैं। इन ख़ूबियों के लोग नाकाम और नामुराद कैसे हो सकते हैं। कामयाबी इन्हें नसीब न होगी तो और किन्हें होगी?

3. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'ख़ाशिऊन' इस्तेमाल हुआ है जो 'ख़ुशू' से बना है। 'ख़ुशू' के अस्ल मानी हैं किसी के आगे झुक जाना, दब जाना, आजिज़ी और इंकिसारी करना (विनम्रता दिखाना)। इस कैफ़ियत का ताल्लुक़ दिल से भी है और जिस्म की ज़ाहिरी हालत से भी। दिल का ख़ुशू यह है कि आदमी किसी के रोब और बड़ाई और जलाल से मुतास्सिर हो। और जिस्म का ख़ुशू यह है कि जब वह उसके सामने जाए तो सिर झुक जाए, जिस्म के अंग ढीले पड़ जाएँ, निगाह झुक जाए, आवाज़ दब जाए और डर और रोब के वे सारे आसार उसपर छा जाएँ जो उस हालत में फ़ितरी तौर पर छा जाया करते हैं, जबकि आदमी किसी ज़बरदस्त ताक़त रखनेवाली हस्ती के सामने पेश हो। नमाज़ में ख़ुशू से मुराद दिल और जिस्म की यही कैफ़ियत है और यही नमाज़ की अस्ल रूह है। हदीस में आता है कि एक बार नबी (सल्ल.) ने एक आदमी को देखा कि नमाज़ पढ़ रहा है और साथ-साथ दाढ़ी के बालों से खेलता जाता है। इसपर आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "अगर इसके दिल में ख़ुशू होता तो इसके जिस्म पर भी ख़ुशू छाया होता।"

(रूहुल-मआनी, हिस्सा-18, पेज-3, अल्लामा आलूसी)

हालाँकि ख़ुशू का ताल्लुक़ हक़ीक़त में दिल से है और दिल का ख़ुशू आप-से-आप जिस्म पर छा जाता है, जैसा कि ऊपर बयान की गई हदीस से अभी मालूम हुआ। लेकिन शरीअत में नमाज़ के कुछ ऐसे आदाब (शिष्टाचार) भी मुक़र्रर कर दिए हैं जो एक तरफ़ दिल के ख़ुशू में मददगार होते हैं और दूसरी तरफ़ ख़ुशू की घटती-बढ़ती कैफ़ियतों में नमाज़ के अमल को कम-से-कम ज़ाहिरी हैसियत से एक ख़ास सतह पर क़ायम रखते हैं। इन आदाब में से एक यह है कि आदमी दाएँ-बाएँ न मुड़े और न सिर उठाकर ऊपर की तरफ़ देखे (ज़्यादा-से-ज़्यादा सिर्फ़ कनखियों से इधर-उधर देखा जा सकता है। हनफ़ी और शाफ़िई उलमा के नज़दीक निगाह सजदे की जगह से न हटनी चाहिए, मगर मालिकी आलिम इस बात को मानते हैं कि निगाह सामने की तरफ़ रहनी चाहिए।) नमाज़ में हिलना और अलग-अलग सम्तों (दिशाओं) में झुकना

وَالَّذِيْنَ هُمْ عَنِ اللَّغْوِ مُعْرِضُوْنَ ﴿٣﴾

(3) बेकार की बातों से दूर रहते हैं।[4]

भी मना है। कपड़ों को बार-बार समेटना, या उनको झाड़ना, या उनसे खेलना भी मना है। इस बात से भी मना किया गया है कि सजदे में जाते वक़्त आदमी अपने बैठने की जगह या सजदे की जगह साफ़ करने की कोशिश करे। तनकर खड़े होना, बहुत ऊँची आवाज़ से कड़ककर क़ुरआन पढ़ना, या गा-गाकर क़ुरआन पढ़ना भी नमाज़ के आदाब के ख़िलाफ़ है। ज़ोर-ज़ोर से जम्हाइयाँ लेना और डकारें मारना भी नमाज़ में बेअदबी है। जल्दी-जल्दी मारा-मार नमाज़ पढ़ना भी सख़्त नापसन्दीदा है। हुक्म यह है कि नमाज़ का हर अमल पूरी तरह सुकून और इत्मीनान से अदा किया जाए और एक अमल मिसाल के तौर पर रुकू या सजदा या क़ियाम (खड़े होना) या क़ुऊद (बैठना) जब तक पूरा न हो ले, दूसरा काम शुरू न किया जाए। नमाज़ में अगर कोई चीज़ तकलीफ़ दे रही हो तो उसे एक हाथ से हटाया जा सकता है, मगर बार-बार हाथों को हरकत देना, या दोनों हाथों को इस्तेमाल करना मना है।

इन ज़ाहिरी आदाब के साथ यह चीज़ भी बड़ी अहमियत रखती है कि आदमी नमाज़ में जान-बूझकर बेकार बातें सोचने से बचे। बिला इरादा ख़यालात ज़ेहन में आएँ और आते रहें तो यह इनसान के मन की एक फ़ितरी कमज़ोरी है। लेकिन आदमी की पूरी कोशिश यह होनी चाहिए कि नमाज़ के वक़्त उसका दिल अल्लाह से लगा हो और जो कुछ वह ज़बान से कह रहा हो वही दिल से भी कहे। इस बीच अगर बे-इख़्तियार दूसरे ख़यालात आ जाएँ तो जिस वक़्त भी आदमी को उनका एहसास हो उसी वक़्त उसे अपना ध्यान उनसे हटाकर नमाज़ की तरफ़ फेर लेना चाहिए।

4. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'लग़्व' इस्तेमाल हुआ है। 'लग़्व' हर उस बात और काम को कहते हैं जो फ़ुज़ूल, बेमतलब और बे-मक़सद हो। जिन बातों या कामों का कोई फ़ायदा न हो, जिनसे कोई फ़ायदेमन्द नतीजा न निकले, जिनकी कोई हक़ीक़ी ज़रूरत न हो, जिनसे कोई अच्छा मक़सद हासिल न हो, वे सब 'लग़्व' में शामिल हैं।

अस्ल अरबी में 'मुअरिज़ून' इस्तेमाल हुआ है। इसका तर्जमा हमने "दूर रहते हैं" किया है। मगर इससे बात पूरी तरह अदा नहीं होती। आयत का पूरा मतलब यह है कि वे 'लग़्व' बातों और कामों की तरफ़ ध्यान नहीं देते। उनकी तरफ़ रुख़ नहीं करते। उनमें कोई दिलचस्पी नहीं लेते। जहाँ ऐसी बातें हो रही हों या ऐसे काम हो रहे हों वहाँ जाने से बचते हैं, इनमें हिस्सा लेने से दूर रहते हैं, और अगर कहीं उनसे सामना हो ही जाए तो टल जाते हैं, कतरा कर निकल जाते हैं, या और कुछ नहीं तो उनसे अलग-थलग हो रहते हैं। इसी बात को दूसरी जगह यूँ बयान किया गया है कि "जब किसी ऐसी जगह से उनका गुज़र होता है जहाँ 'लग़्व' बातें हो रही हों, या 'लग़्व' काम हो रहे हों, वहां से शरीफ़ आदमियों की तरह गुज़र जाते हैं।

(क़ुरआन, सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयत-72)

وَالَّذِيْنَ هُمْ لِلزَّكٰوةِ فٰعِلُوْنَ ④

(4) ज़कात के तरीक़े पर अमल करते हैं।[5]

यह चीज़, जिसे इस छोटे-से जुमले में बयान किया गया है, अस्ल में ईमानवाले की सबसे अहम सिफ़ात में से है। ईमानवाला वह शख़्स होता है जिसे हर वक़्त अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास रहता है। वह समझता है कि दुनिया अस्ल में एक इम्तिहान की जगह है और जिस चीज़ को ज़िन्दगी और उम्र और वक़्त के अलग-अलग नामों से याद किया जाता है वह हक़ीक़त में एक नपी-तुली मुद्दत है जो उसे इम्तिहान के लिए दी गई है। यह एहसास उसको बिलकुल उस तालिबे-इल्म (विद्यार्थी) की तरह संजीदा और काम में लगा रहनेवाला बना देता है जो इम्तिहान के कमरे में बैठा अपना परचा हल कर रहा हो। जिस तरह उस तालिबे-इल्म (Student) को यह एहसास होता है कि इम्तिहान के ये कुछ घंटे उसके आगे की ज़िन्दगी का फ़ैसला करनेवाले हैं, और इस एहसास की वजह से वह उन घंटों का एक-एक पल अपने परचे को सही तरीक़े से हल करने की कोशिश में लगा डालना चाहता है और उनका कोई सेकेंड बेकार बरबाद करने के लिए आमादा नहीं होता, ठीक उसी तरह ईमानवाला भी दुनिया की इस ज़िन्दगी को उन्हीं कामों में लगाता है जो अंजाम के लिहाज़ से फ़ायदेमन्द हों। यहाँ तक कि वह तफ़रीहों और खेलों में भी उन चीज़ों को चुनता है जो सिर्फ़ वक़्त की बरबादी न हों, बल्कि किसी बेहतर मक़सद के लिए उसे तैयार करनेवाली हों। उसके नज़दीक वक़्त 'काटने' की चीज़ नहीं होती, बल्कि इस्तेमाल करने की चीज़ होती है।

इसके अलावा ईमानवाला एक अच्छी तबीअत, पाकीज़ा मिज़ाज, अच्छे ज़ौक़ का इनसान होता है। बेहूदगियों से उसकी तबीअत को किसी तरह का लगाव नहीं होता। वह फ़ायदेमन्द बातें कर सकता है, मगर बेकार की गप्पें नहीं हाँक सकता। वह ख़ुशमिज़ाजी और हलके-फुलके मज़ाक़ तक जा सकता है, मगर ठट्ठेबाज़ियाँ नहीं कर सकता, गन्दा मज़ाक़ और मसख़रापन बरदाश्त नहीं कर सकता, तफ़रीही बातों को अपना मशग़ला नहीं बना सकता। उसके लिए तो वह सोसायटी एक हमेशा का अज़ाब होती है जिसमें कान किसी वक़्त भी गालियों से, ग़ीबतों, तोहमतों और झूठी बातों से, गन्दे गानों और बेहूदा बातों से बचे न हों। उसको अल्लाह तआला जिस जन्नत की उम्मीद दिलाता है उसकी नेमतों में से एक नेमत यह भी बयान करता है कि "वहाँ तू कोई लग़्व बात न सुनेगा।" (क़ुरआन, सूरा-88 ग़ाशिया, आयत-11)

5. 'ज़कात देने' और 'ज़कात के तरीक़े पर अमल करने' में मतलब के लिहाज़ से बड़ा फ़र्क़ है जिसे नज़र-अन्दाज़ करके दोनों का एक ही मतलब समझ लेना सही नहीं है। आख़िर कोई बात तो है जिसकी वजह से यहाँ ईमानवालों की ख़ूबियाँ बयान करते हुए 'वे ज़कात देते हैं' का आम जाना-पहचाना अन्दाज़ छोड़कर "वे ज़कात के तरीक़े पर अमल करते हैं' का ग़ैर-मामूली अन्दाज़े-बयान अपनाया गया है। अरबी ज़बान में ज़कात का मतलब दो मानी से मिलकर बना है। एक 'पाकीज़गी' और दूसरा 'बढ़ना और फलना-फूलना'। किसी चीज़ की तरक़्क़ी में जो चीज़ें रुकावट हों उनको दूर करना, और उसके अस्ल जौहर को परवान चढ़ाना, ये दो बातें

وَالَّذِيْنَ هُمْ لِفُرُوْجِهِمْ حٰفِظُوْنَ ۝٥ اِلَّا عَلٰٓى اَزْوَاجِهِمْ اَوْ مَا
مَلَكَتْ اَيْمَانُهُمْ فَاِنَّهُمْ غَيْرُ مَلُوْمِيْنَ ۝٦ فَمَنِ ابْتَغٰى وَرَآءَ ذٰلِكَ

(5) अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त करते हैं,[6] (6) सिवाय अपनी बीवियों के और उन औरतों के जो उनकी मिलूकियत में हों कि उनपर (महफ़ूज़ न रखने में) वे मलामत (निन्दा) के क़ाबिल नहीं हैं, (7) अलबत्ता जो उसके अलावा कुछ और चाहें वही ज़्यादती

मिलकर ज़कात का पूरा ख़ाका बनाती हैं। फिर यह लफ़्ज़ जब इस्लामी ज़बान में बोला जाता है तो इससे दो मतलब लिए जाते हैं। एक वह माल जो तज़किया (पाक करने) के मक़सद से निकाला जाए। दूसरा अपने आपमें ख़ुद तज़किया का अमल। अगर 'ज़कातें अदा करते हैं' कहें तो इसका मतलब यह होगा कि वह तज़किया के मक़सद से अपने माल का एक हिस्सा देते या अदा करते हैं। इस तरह बात सिर्फ़ माल देने तक महदूद हो जाती है। लेकिन अगर 'ज़कात के तरीक़े पर अमल करते हैं' कहा जाए तो इसका मतलब यह होगा कि वे तज़किये का अमल करते हैं। और इस सूरत में बात सिर्फ़ माली ज़कात अदा करने तक महदूद न रहेगी, बल्कि नफ़्स का तज़किया, अख़लाक़ का तज़किया, ज़िन्दगी का तज़किया, माल का तज़किया, ग़रज़ हर पहलू के तज़किए तक फैल जाएगी। और इसके अलावा, इसका मतलब सिर्फ़ अपनी ही ज़िन्दगी के तज़किए तक महदूद न रहेगा, बल्कि अपने आसपास की ज़िन्दगी के तज़किए तक भी फैल जाएगा। इसलिए दूसरे अलफ़ाज़ में इस आयत का तर्जमा यूँ होगा कि "वे तज़किए का काम करनेवाले लोग हैं", यानी अपने आपको भी पाक करते हैं और दूसरों को पाक करने का काम भी अंजाम देते हैं, अपने अन्दर भी इनसानियत के जौहर को बढ़ाते हैं और बाहर की ज़िन्दगी में भी उसकी तरक़्क़ी के लिए कोशिश करते रहते हैं। यह बात क़ुरआन मजीद में दूसरी जगहों पर भी बयान की गई है। जैसे फ़रमाया, "कामयाबी पाई उस शख़्स ने जिसने पाकीज़गी अपनाई और अपने रब का नाम याद करके नमाज़ पढ़ी।" (सूरा-87 आला, आयत-14, 15) और फ़रमाया, "कामयाब हुआ वह जिसने नफ़्स का तज़किया किया, और नाकाम हुआ वह जिसने उसको दबा दिया।" (सूरा-91 शम्स, आयत-9, 10) मगर यह आयत इन दोनों के मुक़ाबले में ज़्यादा मानी और मतलब अपने अन्दर रखती है; क्योंकि वह सिर्फ़ अपने मन के तज़किए पर ज़ोर देती है, और यह ख़ुद अपनी जगह तज़किए के अमल की अहमियत बयान करती है जो अपनी ज़ात और समाज की ज़िन्दगी, दोनों ही के तज़किए को अपने दायरे में लेती है।

6. इसके दो मतलब हैं। एक यह कि अपने जिस्म के छिपाने लायक़ हिस्सों को छिपाकर रखते हैं, यानी नंगेपन से बचते हैं और अपने छिपाने लायक़ हिस्से दूसरों के सामने नहीं खोलते। दूसरा यह कि वे अपनी इज़्ज़त-आबरू को महफ़ूज़ रखते हैं, यानी जिंसी (यौन) मामलों में आज़ादी नहीं बरतते और शहवानी ताक़त के इस्तेमाल में बे-लगाम नहीं होते। (तशरीह के लिए देखिए—

فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْعٰدُوْنَۚ وَالَّذِيْنَ هُمْ لِاَمٰنٰتِهِمْ وَعَهْدِهِمْ

करनेवाले हैं,[7] (8) अपनी अमानतों और अपने किए हुए वादों और समझौतों का ख़याल

तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-24 नूर, हाशिए– 30-32)।

7. ऊपर से चली आ रही बात के दरमियान में यह बात उस ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए कही गई है जो 'शर्मगाहों की हिफ़ाज़त' के लफ़्ज़ से पैदा होती है। दुनिया में पहले भी यह समझा जाता रहा है और आज भी बहुत-से लोग इस ग़लतफ़हमी में मुब्तला हैं कि शहवानी ताक़त (यौन-शक्ति) अपने आपमें ख़ुद एक बुरी चीज़ है और उसकी माँगें पूरी करना, चाहे जाइज़ तरीक़े ही से क्यों न हो, बहरहाल नेक और अल्लाहवाले लोगों के लिए मुनासिब नहीं है। इस ग़लतफ़हमी को ताक़त पहुँच जाती अगर सिर्फ़ इतना ही कहकर बात ख़त्म कर दी जाती कि कामयाबी पानेवाले ईमानवाले अपनी शर्मगाहों को महफ़ूज़ रखते हैं; क्योंकि इसका मतलब यह लिया जा सकता था कि वे लंगोट-बन्द रहते हैं, राहिब और संन्यासी क़िस्म के लोग होते हैं, शादी-ब्याह के झगड़ों में नहीं पड़ते। इसलिए बीच में एक जुमला बढ़ाकर हक़ीक़त खोलकर रख दी गई कि जाइज़ जगह पर अपनी नफ़्स की ख़ाहिश पूरी करना मलामत के लाइक़ चीज़ नहीं है। अलबत्ता गुनाह यह है कि आदमी शहवानी ख़ाहिश पूरी करने के लिए इस जाइज़ और जाने-पहचाने तरीक़े से आगे बढ़ जाए।

बीच में आ जानेवाले इस जुमले से कुछ अहकाम (आदेश) निकलते हैं जिनको हम मुख़्तसर तौर पर यहाँ बयान करते हैं–

(1) शर्मगाहों की हिफ़ाज़त के आम हुक्म से दो तरह की औरतों को अलग किया गया है। एक 'अज़्वाज' (बीवियाँ), दूसरे 'मा म-ल-कत ऐमानुहुम' यानी 'जो औरतें तुम्हारी मिल्कियत में हों'। 'अज़्वाज' अरबी ज़बान के आम इस्तेमाल के मुताबिक़ भी और ख़ुद क़ुरआन के साफ़ बयानों के मुताबिक़ भी सिर्फ़ उन औरतों को कहते हैं जिनसे बाक़ायदा निकाह (विवाह) किया गया हो, और इसी के लिए उर्दू में 'बीवी' का लफ़्ज़ इस्तेमाल होता है। रहा लफ़्ज़ 'मा म-ल-कत ऐमानुहुम' तो अरबी ज़बान के मुहावरे और क़ुरआन में इसके इस्तेमाल, दोनों इसपर गवाह हैं कि यह लौंडी के लिए इस्तेमाल होता है, यानी वह औरत जो आदमी की मिल्कियत में हो। इस तरह यह आयत साफ़ बयान कर देती है कि निकाह करके लाई गई बीवी की तरह अपनी मिल्कियत में रहनेवाली लौंडी से भी जिंसी ताल्लुक़ (यौन-सम्बन्ध) बनाना जाइज़ है, और इसके जाइज़ होने की बुनियाद निकाह नहीं, बल्कि मिल्कियत है। अगर इसके लिए भी निकाह की शर्त होती तो उसे अज़्वाज से अलग बयान करने की कोई ज़रूरत न थी; क्योंकि निकाह में होने की सूरत में वह भी अज़्वाज में दाख़िल होती। आजकल के क़ुरआन के कुछ आलिम, जो लौंडी से जिंसी ताल्लुक़ बनाने को जाइज़ नहीं मानते हैं। क़ुरआन, सूरा-4 निसा की आयत-25, "और तुममें से जो कोई इतनी सकत न रखता हो कि पाकदामन, आज़ाद और ईमानवाली औरतों से निकाह कर सके" से दलील

लेकर यह साबित करने की कोशिश करते हैं कि लौंडी से जिंसी ताल्लुक़ भी सिर्फ़ निकाह ही करके बनाया जा सकता है, क्योंकि वहाँ यह हुक्म दिया गया है कि अगर तुम्हारी माली हालत किसी आज़ाद ख़ानदानी औरत से शादी करने के क़ाबिल न हो तो किसी लौंडी ही से निकाह कर लो। लेकिन इन लोगों की यह अजीब ख़ासियत है कि एक ही आयत के एक टुकड़े को अपने फ़ायदे का पाकर ले लेते हैं, और उसी आयत का जो टुकड़ा उनके मक़सद के ख़िलाफ़ पड़ता हो उसे जान-बूझकर छोड़ देते हैं। इस आयत में लौंडियों से निकाह करने की हिदायत जिन अलफ़ाज़ में दी गई है वे ये हैं, ''तो उन (लौंडियों) से निकाह कर लो, उनके सरपरस्तों की इजाज़त से और उनको भले तरीक़े से उनके महर अदा करो।'' ये अलफ़ाज़ साफ़ बता रहे हैं कि यहाँ ख़ुद लौंडी के मालिक के मामले की बात नहीं हो रही है, बल्कि किसी ऐसे शख़्स के मामले की बात हो रही है जो आज़ाद औरत से शादी का ख़र्च न बरदाश्त कर सकता हो और इस वजह से किसी दूसरे शख़्स की लौंडी से निकाह करना चाहे। वरना ज़ाहिर है कि अगर मामला अपनी ही लौंडी से निकाह करने का हो तो उसके 'अहल' (सरपरस्त) कौन हो सकते हैं जिनसे उसको इजाज़त लेने की ज़रूरत हो? मगर क़ुरआन से खेलनेवाले सिर्फ़ 'फ़न्किहूहुन-न' (उनसे शादी कर लो) को ले लेते हैं और उसके बाद ही 'बिइज़्नि अहलिहिन-न' (उनके सरपस्तों की इजाज़ात से) के जो अलफ़ाज़ मौजूद हैं, उन्हें अनदेखा कर देते हैं। इसके साथ ही वे एक आयत का ऐसा मतलब निकालते हैं जो उसी मामले के बारे में क़ुरआन मजीद की दूसरी आयतों से टकराता है। कोई आदमी अगर अपने ख़यालात की नहीं, बल्कि क़ुरआन पाक की पैरवी करना चाहता हो तो वह सूरा-4 निसा, आयतें–3-25; सूरा-33 अहज़ाब, आयतें–50-52 और सूरा-70 मआरिज, आयत-30 को सूरा-23 मोमिनून की इस आयत के साथ मिलाकर पढ़े। उसे ख़ुद मालूम हो जाएगा कि क़ुरआन का क़ानून इस मसले में क्या है। (इस मसले की और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए– तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-4 निसा, हाशिया-44; तफ़हीमात, उर्दू, हिस्सा-2, पेज 290-324; रसाइलो-मसाइल, उर्दू, पेज 324-333)

(2) ''इल्ला अला अज़्वाजिहिम अव मा म-ल-कत ऐमानुहुम'' (सिवाय अपनी बीवियों के और उन औरतों के जो तरीक़े के मुताबिक़ उनकी मिल्कियत में हों) में लफ़्ज़ 'अला' इस बात को साफ़ कर देता है कि बीच में आए हुए जुमले में इस बात के ज़रिए से जो क़ानून बयान किया जा रहा है, उसका ताल्लुक़ सिर्फ़ मर्दों से है। बाक़ी तमाम आयतें 'क़द अफ़्लहल-मुअमिनून' से लेकर 'ख़ालिदून' तक मुज़क्कर (पुल्लिंग) की ज़मीरों (सर्वनामों) के बावजूद इसमें मर्द-औरत दोनों शामिल हैं, क्योंकि अरबी ज़बान में औरतों और मर्दों का जब इकट्ठे ज़िक्र किया जाता है तो ज़मीर मुज़क्कर ही इस्तेमाल की जाती है। लेकिन यहाँ ''लिफ़ुरूजिहिम हाफ़िज़ून' के हुक्म से अलग करते हुए 'अला' का लफ़्ज़ इस्तेमाल करके यह बात साफ़ बयान कर दी गई कि यह अलग हुक्म मर्दों के लिए है, न कि औरतों के लिए। अगर 'उनपर' कहने के बजाय 'उनसे महफ़ूज़ न रखने में वे मलामत के क़ाबिल नहीं हैं' कहा जाता तो अलबत्ता यह हुक्म भी मर्द-औरत दोनों के लिए हो सकता था। यही वह बारीक नुक्ता है जिसे न समझने की वजह से एक औरत हज़रत उमर (रज़ि॰) के ज़माने में

अपने ग़ुलाम से जिस्मानी ताल्लुक़ बना बैठी थी। सहाबा किराम (रज़ि॰) की मजलिसे-शूरा (सलाहकार समिति) में जब उसका मामला पेश किया गया तो सबने एकराय होकर कहा कि "उसने अल्लाह तआला की किताब का ग़लत मतलब ले लिया।" यहाँ किसी को यह शक न हो कि अगर यह अलग हुक्म मर्दों के लिए ख़ास है तो फिर बीवियों के लिए उनके शौहर हलाल (जाइज़) कैसे हुए? यह शक इसलिए ग़लत है कि जब बीवियों के मामले में शौहरों को शर्मगाह की हिफ़ाज़त के हुक्म से अलग कर दिया गया तो अपने शौहरों के मामले में बीवियाँ आप-से-आप इस हुक्म से अलग हो गईं। उनके लिए फिर अलग से किसी साफ़ बयान की ज़रूरत न रही। इस तरह इस अलग हुक्म का असर अमली तौर पर सिर्फ़ मर्द और उसकी मिल्कियत में रहनेवाली औरत तक महदूद होकर रह जाता है, और औरत पर उसका ग़ुलाम हराम क़रार पाता है। औरत के लिए इस चीज़ को हराम करने की हिकमत यह है कि ग़ुलाम उसकी जिंसी ख़ाहिश तो पूरी कर सकता है, मगर उसका और घर का ज़िम्मेदार और सरपरस्त नहीं बन सकता, जिसकी वजह से ख़ानदानी ज़िन्दगी की चूल ढीली रह जाती है।

(3) "अलबत्ता जो उसके अलावा कुछ और चाहें वही ज़्यादती करनेवाले हैं।" इस जुमले ने ऊपर बयान की गई दोनों जाइज़ सूरतों के सिवा जिंसी ख़ाहिश पूरी करने की तमाम दूसरी सूरतों को हराम कर दिया, चाहे वह ज़िना (व्यभिचार) हो, या क़ौमे-लूत का अमल (गुदा मैथुन), या जानवरों के साथ सोहबत हो या कुछ और। सिर्फ़ एक हस्त-मैथुन (Masturbation) के मामले में फ़क़ीहों (इस्लाम की गहरी जानकारी रखनेवालों) के बीच इख़्तिलाफ़ है। इमाम अहमद-बिन-हंबल (रह॰) इसको जाइज़ ठहराते हैं। इमाम मालिक और इमाम शाफ़िई इसको बिलकुल हराम ठहराते हैं। और हनफ़ी आलिमों के नज़दीक हालाँकि यह हराम है, लेकिन वे कहते हैं कि अगर जज़्बात के सख़्त ग़लबे की हालत में आदमी से कभी-कभार यह हरकत हो जाए तो उम्मीद है कि उसे माफ़ कर दिया जाएगा।

(4) क़ुरआन के कुछ आलिमों ने 'मुतआ' (एक तयशुदा मुद्दत के लिए किसी औरत को बीवी की तरह रखना) का हराम होना भी इस आयत से साबित किया है। उनकी दलील यह है कि जिस औरत से मुतआ किया जाता है उसे न तो बीवी कह सकते हैं और न लौंडी। लौंडी तो वह ज़ाहिर है कि नहीं है। और बीवी इसलिए नहीं है कि बीवी होने के लिए जितने क़ानूनी हुक्म हैं उनमें से कोई भी उसपर चस्पाँ नहीं होता। न वह मर्द की वारिस होती है, न मर्द उसका वारिस होता है। न उसके लिए इद्दत है, न तलाक़, न नफ़क़ा (रोटी-कपड़े वग़ैरा का ख़र्च), न ईला, ज़िहार और लिआन वग़ैरा; बल्कि चार बीवियों की तयशुदा हद से भी वह अलग है। तो जब वह 'बीवी' और 'लौंडी', दोनों नहीं कही जा सकती तो ज़रूर ही वह 'उनके अलावा कुछ और' में गिनी जाएगी जिसके तलबगार को क़ुरआन 'हद से गुज़रनेवाला' क़रार देता है। यह दलील बहुत मज़बूत है, मगर इसमें कमज़ोरी का एक पहलू ऐसा है जिसकी वजह से यह कहना मुश्किल है कि मुतआ के हराम होने के बारे में यह आयत हुक्म की हैसियत रखती है। वह पहलू यह है कि नबी (सल्ल॰) ने मुतआ के हराम होने का आख़िरी और क़तई हुक्म मक्का की फ़तह के साल दिया है, और इससे पहले

इजाज़त के सुबूत सही हदीसों में पाए जाते हैं। अगर यह मान लिया जाए कि मुतआ के हराम होने का हुक्म क़ुरआन की इस आयत ही में आ चुका था, जो सबकी राय में मक्की है और हिजरत से कई साल पहले उतरी थी, तो यह कैसे सोचा जा सकता है कि नबी (सल्ल॰) उसे मक्का की फ़तह तक जाइज़ रखते। इसलिए यह कहना ज़्यादा सही है कि मुतआ का हराम होना क़ुरआन मजीद के किसी साफ़ हुक्म पर नहीं बल्कि नबी (सल्ल॰) की सुन्नत से है। सुन्नत में इसको साफ़-साफ़ बयान न किया गया होता तो सिर्फ़ इस आयत की बुनियाद पर इसके हराम होने का फ़ैसला कर देना मुश्किल था।

मुतआ का जब ज़िक्र आ गया है तो मुनासिब मालूम होता है कि दो बातों को और वाज़ेह कर दिया जाए। एक यह कि इसका हराम होना ख़ुद नबी (सल्ल॰) से साबित है। लिहाज़ा यह कहना कि इसे हज़रत उमर (रज़ि॰) ने हराम किया, दुरुस्त नहीं है। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने इस हुक्म को अपनी तरफ़ से नहीं दिया था, बल्कि वे सिर्फ़ इसको लागू करनेवाले और लोगों तक पहुँचानेवाले थे। चूँकि यह हुक्म नबी (सल्ल॰) ने आख़िरी ज़माने में दिया था और आम लोगों तक न पहुँचा था, इसलिए हज़रत उमर (रज़ि॰) ने इसे आम लोगों तक पहुँचाया और क़ानून के ज़रिए से इसे लागू किया। दूसरी यह कि शीआ लोगों ने मुतआ को बिलकुल मुबाह (जाइज़) ठहराने का जो मसलक अपनाया है, उसके लिए तो बहरहाल क़ुरआन और हदीस के साफ़ हुक्मों में सिरे से कोई गुंजाइश ही नहीं है। शुरू के ज़माने में सहाबा और ताबिईन और फ़क़ीहों में से कुछ बुज़ुर्ग जो इसे जाइज़ कहते थे, वे इसे सिर्फ़ मजबूरी और बहुत ज़रूरत की हालत में जाइज़ रखते थे। उनमें से कोई भी इसे निकाह की तरह बिलकुल मुबाह और आम हालात में इसपर अमल करने के क़ाइल न थे। इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) जिनका नाम इसे जाइज़ माननेवालों में सबसे ज़्यादा नुमायाँ करके पेश किया जाता है, अपनी राय को ख़ुद इन अलफ़ाज़ में साफ़-साफ़ वाज़ेह करते हैं, "यह तो मुर्दार की तरह है कि मजबूरी के सिवा किसी के लिए भी हलाल नहीं।" और यह फ़तवा भी उन्होंने उस वक़्त वापस ले लिया था जब उन्होंने देखा कि लोग जाइज़ होने की गुंजाइश से नाजाइज़ फ़ायदा उठाकर आज़ादी से मुतआ करने लगे हैं और ज़रूरत और मजबूरी तक उसपर बस नहीं करते। इस सवाल को अगर नज़र-अन्दाज़ भी कर दिया जाए कि इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) और उनके जैसा ख़याल रखनेवाले कुछ गिने-चुने लोगों ने इस मसलक से रुजू कर लिया था या नहीं, तो उनके मसलक को अपनानेवाला ज़्यादा-से-ज़्यादा मजबूरी की हालत में जाइज़ की हद तक जा सकता है। पूरी तरह जाइज़ होने और बिना ज़रूरत जिस्मानी ताल्लुक़, यहाँ तक कि बीवियों तक की मौजूदगी में भी मुतआ के तहत आनेवाली औरतों से फ़ायदा उठाना तो एक ऐसी आज़ादी है जिसे अच्छा और साफ़-सुथरा ज़ौक़ भी गवारा नहीं करता, कहाँ यह कि इसे मुहम्मद (सल्ल॰) की लाई हुई शरीअत से जोड़ दिया जाए और अहले-बैत के इमामों पर इसका इलज़ाम लगाया जाए। मेरा ख़याल है कि ख़ुद शीआ लोगों में से भी कोई शरीफ़ आदमी यह गवारा नहीं कर सकता कि कोई शख़्स उसकी बेटी या बहन के लिए निकाह के बजाय मुतआ का पैग़ाम दे। इसका मतलब यह हुआ कि मुतआ को जाइज़ ठहराने के लिए समाज में तवाइफ़ों की तरह औरतों का एक ऐसा निचला तबक़ा मौजूद रहना चाहिए जिससे

رٰعُوْنَ ﴿۸﴾ وَالَّذِيْنَ هُمْ عَلٰى صَلَوٰتِهِمْ يُحَافِظُوْنَ ﴿۹﴾ اُولٰٓئِكَ هُمُ

रखते हैं,[8] (9) और अपनी नमाज़ों की हिफ़ाज़त करते हैं।[9] (10-11) यही लोग वे वारिस

मुतआ के ज़रिए से जिस्मानी ताल्लुक़ बनाने का दरवाज़ा खुला रहे। या फिर यह कि मुतआ सिर्फ़ ग़रीब लोगों की बेटियों और बहनों के लिए हो और इससे फ़ायदा उठाना ख़ुशहाल तबक़े के मर्दों का हक़ हो। क्या ख़ुदा और रसूल की शरीअत से इस तरह के नाइनसाफ़ीवाले क़ानूनों की उम्मीद की जा सकती है? और क्या ख़ुदा और उसके रसूल से यह उम्मीद की जा सकती है कि वे किसी ऐसे काम को जाइज़ कर देंगे जिसे हर शरीफ़ औरत अपने लिए बेइज़्ज़ती भी समझे और बेहयाई भी?

8. 'अमानतों' का लफ़्ज़ उन तमाम अमानतों को अपने अन्दर समेटे हुए है जो अल्लाह तआला ने, या समाज ने, या लोगों ने किसी शख़्स के सिपुर्द की हों। और किए हुए वादों और समझौतों में वे सारे समझौते दाख़िल हैं जो इनसान और ख़ुदा के बीच, या इनसान और इनसान के बीच, या क़ौम और क़ौम के बीच तय पाए हों। ईमानवाले की ख़ूबी यह है कि वह कभी अमानत में ख़ियानत न करेगा और कभी अपनी बात से न फिरेगा। नबी (सल्ल॰) अकसर अपने ख़ुतबों में फ़रमाया करते थे, "जो अमानत की सिफ़त नहीं रखता वह ईमान नहीं रखता, और जो वादे का पास नहीं रखता वह दीन नहीं रखता।" (हदीस : बैहक़ी फ़ी शुअबिल-ईमान)। बुख़ारी और मुस्लिम दोनों की एक रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "चार आदतें हैं कि जिसमें वे चारों पाई जाएँ वह ख़ालिस मुनाफ़िक़ है और जिसमें कोई एक पाई जाए उसके अन्दर निफ़ाक़ की एक आदत मौजूद है जब तक कि वह उसे छोड़ न दे। जब कोई अमानत उसके सिपुर्द की जाए तो ख़ियानत करे। जब बोले तो झूठ बोले। जब अहद (वादा) करे तो तोड़ दे। और जब किसी से झगड़े तो (अख़लाक़ और ईमानदारी की) सारी हदें पार कर जाए।"

9. ऊपर ख़ुशू के ज़िक्र में 'नमाज़' फ़रमाया था और यहाँ 'नमाज़ों' का लफ़्ज़ जमा (बहुवचन) में कहा है। दोनों में फ़र्क़ यह है कि वहाँ नमाज़ की शक्ल मुराद थी और यहाँ एक-एक वक़्त की नमाज़ अलग-अलग मुराद है। 'नमाज़ों की हिफ़ाज़त' का मतलब यह है कि वे नमाज़ के वक़्तों, नमाज़ के आदाब, नमाज़ के अरकान और उसके हिस्सों, मतलब यह कि नमाज़ से ताल्लुक़ रखनेवाली हर चीज़ की पूरी निगरानी करते हैं। जिस्म और कपड़े पाक रखते हैं। वुज़ू ठीक तरह से करते हैं और इस बात का ख़याल रखते हैं कि कभी बे-वुज़ू नमाज़ न पढ़ बैठें। सही वक़्त पर नमाज़ अदा करने की फ़िक्र करते हैं। वक़्त टालकर नहीं पढ़ते। नमाज़ के तमाम अरकान पूरी तरह सुकून और इत्मीनान के साथ अदा करते हैं। एक बोझ की तरह जल्दी से उतारकर भाग नहीं जाते। और जो कुछ नमाज़ में पढ़ते हैं, वह इस तरह पढ़ते हैं कि जैसे बन्दा अपने ख़ुदा से कुछ अर्ज़ (निवेदन) कर रहा है, न इस तरह कि मानो एक रटी-रटाई इबादत को किसी न किसी तरह हवा में फूँक देना है।

الْوٰرِثُوْنَ ⑩ الَّذِيْنَ يَرِثُوْنَ الْفِرْدَوْسَ ۗ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ⑪ وَلَقَدْ

हैं जो विरासत में फ़िरदौस[10] पाएँगे और उसमें हमेशा रहेंगे।[11]

10. फ़िरदौस, आम तौर से जन्नत के लिए बोले जानेवाला लफ़्ज़ है जो क़रीब-क़रीब तमाम इनसानी ज़बानों में मिले-जुले तौर पर पाया जाता है। संस्कृत में प्रदीशा, पुरानी कलदानी ज़बान में परदेसा, पुरानी ईरानी (ज़िन्द) में पेरीदाइज़ा, इबरानी में परदेस, अरमनी में परदेज़, सुरयानी में फ़रदीसो, यूनानी में पारादाइसूस, लेटिन में पाराडाइसिस और अरबी में फ़िरदौस। यह लफ़्ज़ इन सब ज़बानों में एक ऐसे बाग़ के लिए बोला जाता है जिसके आसपास चारदीवारी खिंची हुई हो, कुशादा हो, आदमी के रहने की जगह से मिला हुआ हो, और उसमें हर तरह के फल, ख़ास तौर पर अंगूर पाए जाते हों; बल्कि कुछ ज़बानों में तो कुछ चुने हुए पालतू परिन्दों और जानवरों का भी पाया जाना उसके मानी में शामिल है। क़ुरआन से पहले अरब की जाहिलाना शाइरी में भी लफ़्ज़ फ़िरदौस इस्तेमाल होता था। और क़ुरआन में यह लफ़्ज़ कई बाग़ों के मजमूए के लिए आया है, जैसा कि सूरा-18 कह्फ़ में कहा गया, "उनकी मेज़बानी के लिए फ़िरदौस के बाग़ हैं।" (आयत-107) इससे जो नक़्शा ज़ेहन में आता है वह यह है कि फ़िरदौस एक बड़ी जगह है जिसमें बहुत-से बाग़ और चमन और गुलशन पाए जाते हैं।

ईमानवालों के फ़िरदौस का वारिस होने पर सूरा-20 ता-हा, हाशिया-83, और सूरा-21 अम्बिया, हाशिया-99 में काफ़ी रौशनी डाली जा चुकी है।

11. इन आयतों में चार अहम बातें बायन हुई हैं–

एक यह कि जो लोग भी क़ुरआन और मुहम्मद (सल्ल॰) की बात मानकर ये सिफ़ात अपने अन्दर पैदा कर लेंगे और इस रवैये के पाबन्द हो जाएँगे वे दुनिया और आख़िरत में कामयाबी पाएँगे, चाहे वे किसी क़ौम, नस्ल या देश के हों।

दूसरी यह कि कामयाबी सिर्फ़ ईमान के इक़रार, या सिर्फ़ अख़लाक़ और अमल की ख़ूबियों का नतीजा नहीं है, बल्कि दोनों के जमा होने का नतीजा है। जब आदमी ख़ुदा की भेजी हुई हिदायत को माने, फिर उसके मुताबिक़ अख़लाक़ और अमल की ख़ूबियाँ अपने अन्दर पैदा कर ले, तब वह फ़लाह (कामयाबी) पाएगा।

तीसरी यह कि फ़लाह सिर्फ़ दुनियावी और माद्दी (भौतिक) ख़ुशहाली और महदूद वक़्ती कामयाबियों का नाम नहीं है, बल्कि वह एक बहुत ज़्यादा कुशादा भलाई की हालत का नाम है जिसमें दुनिया और आख़िरत दोनों में पाइदार और हमेशा रहनेवाली कामयाबी और ख़ुशहाली शामिल है। यह चीज़ ईमान और नेक अमल के बिना नसीब नहीं होती। और इस उसूल को न तो गुमराहों की वक़्ती ख़ुशहालियाँ और कामयाबियाँ तोड़ती हैं और न नेक ईमानवालों की वक़्ती मुसीबतों को इस उसूल का तोड़नेवाला ठहराया जा सकता है।

चौथी यह कि ईमानवालों की इन सिफ़ात को नबी (सल्ल॰) के मिशन की सच्चाई के लिए दलील के तौर पर पेश किया गया है, और यही मज़मून आगे की तक़रीर से इन आयतों का

خَلَقْنَا الْاِنْسَانَ مِنْ سُلٰلَةٍ مِّنْ طِيْنٍ ﴿١٢﴾ ثُمَّ جَعَلْنٰهُ نُطْفَةً فِيْ
قَرَارٍ مَّكِيْنٍ ﴿١٣﴾ ثُمَّ خَلَقْنَا النُّطْفَةَ عَلَقَةً فَخَلَقْنَا الْعَلَقَةَ
مُضْغَةً فَخَلَقْنَا الْمُضْغَةَ عِظٰمًا فَكَسَوْنَا الْعِظٰمَ لَحْمًا ۗ ثُمَّ

(12) हमने इनसान को मिट्टी के सत् से बनाया, (13) फिर उसे एक महफ़ूज़ जगह टपकी हुई बूँद में तब्दील किया, (14) फिर उस बूँद को लोथड़े की शक्ल दी, फिर लोथड़े को बोटी बना दिया, फिर बोटी की हड्डियाँ बनाईं, फिर हड्डियों पर गोश्त चढ़ाया,[12] फिर उसे एक दूसरा ही जानदार बना खड़ा किया।[13] तो बड़ा ही

सिलसिला जोड़ता है। तीसरे रुकू (आयत-50) के ख़ातिमे तक की पूरी तक़रीर में दलीलों का सिलसिला कुछ इस अन्दाज़ में आया है कि पहले तजरिबाती दलील है, यानी यह कि इस नबी की तालीम ने ख़ुद तुम्हारी ही सोसाइटी के लोगों में यह सीरत और किरदार और ये अख़लाक़ और ख़ूबियाँ पैदा करके दिखाई हैं। अब तुम ख़ुद सोच लो कि यह तालीम हक़ (सत्य) न होती तो ऐसे अच्छे नतीजे किस तरह पैदा कर सकती थी। इसके बाद मुशाहदे (अवलोकन) से मुताल्लिक़ दलील है, यानी यह कि इनसान के अपने वुजूद में और आसपास की कायनात (सृष्टि) में जो निशानियाँ नज़र आती हैं वे सब तौहीद और आख़िरत की इस तालीम के हक़ होने की गवाही दे रही हैं जिसे मुहम्मद (सल्ल॰) पेश करते हैं। फिर तारीख़ी दलीलें आती हैं, जिनमें बताया गया है कि नबी और उसका इनकार करनेवालों की कशमकश आज नई नहीं है, बल्कि इन्हीं बुनियादों पर बहुत पुराने ज़माने से चली आ रही है और इस कशमकश का हर ज़माने में एक ही नतीजा निकलता रहा है जिससे साफ़ तौर पर मालूम हो जाता है कि दोनों गरोहों में से हक़ (सत्य) पर कौन है और बातिल (असत्य) पर कौन।

12. तशरीह के लिए देखिए— सूरा-22 हज के हाशिए— 5, 6 और 9।

13. यानी कोई ख़ाली ज़ेहनवाला आदमी बच्चे को माँ के पेट में पलते देखकर यह सोच भी नहीं सकता कि यहाँ वह इनसान तैयार हो रहा है जो बाहर जाकर अक़्ल और समझदारी और कारीगरी के ये कुछ कमाल दिखाएगा और ऐसी-ऐसी हैरत में डालनेवाली क़ुव्वतें और सलाहियतें उससे ज़ाहिर होंगी। वहाँ वह हड्डियों, गोश्त और खाल का एक पुलिन्दा-सा होता है जिसमें पैदाइश के आग़ाज़ तक ज़िन्दगी की इब्तिदाई ख़ुसूसियतों के सिवा कुछ नहीं होता। न सुनने की ताक़त, न देखने और बोलने की, न अक़्ल और समझ, न और कोई ख़ूबी। मगर बाहर आकर वह चीज़ ही कुछ और बन जाता है जिसका पेटवाले बच्चे से मेल नहीं होता। अब वह एक सुनने, देखने और बोलनेवाला वुजूद होता है। अब वह तजरिबे और मुशाहदे से इल्म हासिल करता है। अब उसके अन्दर एक ऐसी ख़ुदी उभरनी शुरू होती है जो बेदारी के पहले ही लम्हे से अपनी पहुँच की हर चीज़ पर हुक्म जताती और अपना ज़ोर मनवाने की कोशिश करती है।

اَنْشَاْنٰهُ خَلْقًا اٰخَرَ ؕ فَتَبٰرَكَ اللّٰهُ اَحْسَنُ الْخٰلِقِيْنَ ﴿١٤﴾ ثُمَّ اِنَّكُمْ
بَعْدَ ذٰلِكَ لَمَيِّتُوْنَ ﴿١٥﴾ ثُمَّ اِنَّكُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ تُبْعَثُوْنَ ﴿١٦﴾
وَلَقَدْ خَلَقْنَا فَوْقَكُمْ سَبْعَ طَرَآئِقَ ۖ وَمَا كُنَّا عَنِ الْخَلْقِ

बरकतवाला है[14] अल्लाह, सब कारीगरों से अच्छा कारीगर। (15) फिर उसके बाद तुमको ज़रूर मरना है, (16) फिर क़ियामत के दिन तुम ज़रूर उठाए जाओगे।

(17) और तुम्हारे ऊपर हमने सात रास्ते बनाए,[15] पैदा करने के काम से हम कुछ

फिर वह ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, उसके वुजूद में यह 'अलग ही चीज़' होने की कैफ़ियत ज़्यादा नुमायाँ और ज़्यादा बढ़ती चली जाती है। जवान होता है तो बचपन के मुक़ाबले कुछ और होता है। अधेड़ होता है तो जवानी के मुक़ाबले में कोई और चीज़ साबित होता है। बुढ़ापे को पहुँचता है तो नई नस्ल के लिए यह अन्दाज़ा करना भी मुश्किल हो जाता है कि उसका बचपन क्या था और जवानी कैसी थी। इतनी बड़ी तब्दीली कम-से-कम इस दुनिया के किसी दूसरे जानदार में नहीं होती। कोई शख़्स एक तरफ़ किसी पक्की उम्र के इनसान की ताक़तें और क़ाबिलियतें और काम देखे, और दूसरी तरफ़ यह सोच करके कि पचास-साठ साल पहले एक रोज़ जो बूँद टपककर माँ के पेट में गिरी थी उसके अन्दर यह कुछ भरा हुआ था, तो बे-इख़्तियार उसकी ज़बान से वही बात निकलेगी जो आगे के जुमले में आ रही है।

14. अस्ल अरबी में अलफ़ाज़ 'फ़-तबा-रकल्लाहु' आए हैं जिनका पूरा मतलब तर्जमे में बयान करना मुश्किल है। लुग़त (शब्दकोश) और ज़बान के इस्तेमाल के लिहाज़ से इसमें दो मतलब शामिल हैं। एक यह कि अल्लाह निहायत ही पाकीज़ा और कमियों से पाक है। दूसरा यह कि वह इतनी ज़्यादा भलाई और ख़ूबी का मालिक है कि जितना तुम उसका अन्दाज़ा करो उससे ज़्यादा ही उसको पाओ, यहाँ तक कि उसकी भलाई और ख़ैर का सिलसिला कहीं जाकर ख़त्म न हो। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-25 फ़ुरक़ान, हाशिए—1, 19)। इन दोनों मतलबों पर ग़ौर किया जाए तो यह बात समझ में आ जाती है कि इनसान की पैदाइश के मरहले बयान करने के बाद 'फ़-तबा-रकल्लाहु' का जुमला सिर्फ़ एक तारीफ़ी जुमला ही नहीं है, बल्कि यह दलील के बाद दलील का नतीजा भी है। इसमें मानो यह कहा जा रहा है कि जो ख़ुदा मिट्टी के सत् को तरक़्क़ी देकर एक पूरे इनसान के दर्जे तक पहुँचा देता है वह इससे कहीं ज़्यादा पाक है कि ख़ुदाई में कोई उसका साझेदार हो सके, और उससे बहुत ज़्यादा पाकीज़ा है कि उसी इनसान को फिर पैदा न कर सके, और उसकी ख़ैरात का यह बड़ा घटिया अन्दाज़ा है कि बस एक बार इनसान बना देने ही पर उसके कमालात ख़त्म हो जाएँ, उससे आगे वह कुछ न बना सके।

15. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'तराइक़' इस्तेमाल हुआ है जिसका मतलब रास्तों के भी हैं और तबक़ों के भी। अगर पहला मतलब लिया जाए तो शायद इससे मुराद सात सैयारों (ग्रहों) के घूमने के

غٰفِلِيْنَ﴿١٧﴾ وَاَنْزَلْنَا مِنَ السَّمَآءِ مَآءًۢ بِقَدَرٍ فَاَسْكَنّٰهُ فِى الْاَرْضِ

अनजान न थे।[16] (18) और आसमान से हमने ठीक हिसाब के मुताबिक़ एक ख़ास मिक़दार (मात्रा) में पानी उतारा और उसको ज़मीन में ठहरा दिया,[17] हम उसे जिस तरह

रास्ते हैं, और चूँकि उस ज़माने का इनसान सात सैयारों ही को जानता था, इसलिए सात ही रास्तों का ज़िक्र किया गया। इसका मतलब बहरहाल यह नहीं है कि इनके अलावा और दूसरे रास्ते नहीं हैं। और अगर दूसरा मतलब लिया जाए तो 'सब-अ तराइक़' का वही मतलब होगा जो 'सात आसमान परत-दर-परत' का मतलब है। और यह जो कहा गया कि 'तुम्हारे ऊपर' हमने सात रास्ते बनाए, तो इसका एक तो सीधा-सादा मतलब वही है जो ज़ाहिर अलफ़ाज़ से ज़ेहन में आता है, और दूसरा मतलब यह है कि तुमसे भी ज़्यादा बड़ी चीज़ हमने ये आसमान बनाए हैं, जैसा कि दूसरी जगह फ़रमाया, "आसमानों और ज़मीन का पैदा करना इनसानों को पैदा करने से ज़्यादा बड़ा काम है।" (क़ुरआन, सूरा-40 मोमिन, आयत-57)

16. दूसरा तर्जमा यह हो सकता है, "और अपनी पैदा की हुई चीज़ों की तरफ़ से हम ग़ाफ़िल नहीं थे, या नहीं हैं।" आयत के तर्जमे में जो मतलब लिया गया है उसके लिहाज़ से आयत का मतलब यह है कि यह सब कुछ जो हमने बनाया है, यह बस यूँ ही किसी अनाड़ी के हाथों अललटप नहीं बन गया है, बल्कि इसे एक सोची-समझी स्कीम पर पूरे इल्म के साथ बनाया गया है। अहम क़ानून इसमें काम कर रहे हैं, छोटे से लेकर बड़े तक सारे निज़ामे-कायनात (सृष्टि-व्यवस्था) में एक मुकम्मल ताल-मेल पाया जाता है, और इस अज़ीमुश्शान कारख़ाने में हर तरफ़ एक मक़सद नज़र आता है जो बनानेवाले की हिकमत की दलील दे रहा है। दूसरा मतलब लेने की सूरत में मतलब यह होगा कि इस कायनात में जितनी भी चीज़ें हमने पैदा की हैं उनकी किसी ज़रूरत से हम कभी ग़ाफ़िल और किसी भी हालत से कभी बे-ख़बर नहीं रहे हैं। किसी चीज़ को हमने अपनी स्कीम के ख़िलाफ़ बनने और चलने नहीं दिया है। किसी चीज़ की फ़ितरी ज़रूरतें पूरी करने में हमने कोताही नहीं की है। और एक-एक ज़र्रे और पत्ते की हालत से हम बाख़बर रहे हैं।

17. इससे मुराद अगरचे मौसमी बारिश भी हो सकती है, लेकिन आयत के अलफ़ाज़ पर ग़ौर करने से एक दूसरा मतलब भी समझ में आता है, और वह यह है कि कायनात के शुरू में अल्लाह तआला ने एक ही वक़्त में इतनी मिक़दार में ज़मीन पर पानी उतार दिया था जो क़ियामत तक इस ज़मीन की ज़रूरतों के लिए उसके इल्म में काफ़ी था। वह पानी ज़मीन ही के निचले हिस्सों में ठहर गया जिससे समन्दर और नदी-झरने वग़ैरा वुजूद में आए और ज़मीन के नीचे का पानी (Sub-soil water) पैदा हुआ। अब यह उसी पानी का उलट-फेर है जो गर्मी, सर्दी और हवाओं के ज़रिए से होता रहता है, उसी को बारिशें, बर्फ़ीले पहाड़, नदियाँ, झरने-चश्मे और कुएँ ज़मीन के अलग-अलग हिस्सों में फैलाते रहते हैं, और वही अनगिनत चीज़ों की पैदाइश और उनकी बनावट में शामिल होता और फिर हवा में घुलकर अस्ल भण्डार की तरफ़ वापस जाता

وَاِنَّا عَلٰى ذَهَابٍۭ بِهٖ لَقٰدِرُوْنَ ۝۱۸ فَاَنْشَاْنَا لَكُمْ بِهٖ جَنّٰتٍ مِّنْ نَّخِيْلٍ
وَّاَعْنَابٍ ۘ لَكُمْ فِيْهَا فَوَاكِهُ كَثِيْرَةٌ وَّمِنْهَا تَاْكُلُوْنَ ۝۱۹ وَشَجَرَةً

चाहें ग़ायब कर सकते हैं।[18] (19) फिर उस पानी के ज़रिए से हमने तुम्हारे लिए खजूर और अंगूर के बाग़ पैदा कर दिए, तुम्हारे लिए उन बाग़ों में बहुत-से मज़ेदार फल हैं[19] और उनसे तुम रोज़ी हासिल करते हो।[20] (20) और वह पेड़ भी हमने पैदा किया जो

रहता है। शुरू से आज तक पानी के इस भण्डार में न एक बूँद की कमी हुई है और न एक बूँद को बढ़ाने की ज़रूरत ही पेश आई। इससे भी ज़्यादा हैरत में डालनेवाली बात यह है कि पानी, जिसकी हक़ीक़त आज हर स्कूल के तालिबे-इल्म (विद्यार्थी) को मालूम है कि वह हाइड्रोजन और ऑक्सीजन, दो गैसों के मिलने से बना है, एक बार तो इतना बन गया कि उससे समुद्र भर गए, और अब उसके भण्डार में एक बूँद का भी इज़ाफ़ा नहीं होता। कौन था जिसने एक वक़्त में इतनी हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलाकर इतना ज़्यादा पानी बना दिया? और कौन है जो अब इन्हीं दोनों गैसों को उस ख़ास तनासुब (अनुपात) के साथ नहीं मिलने देता जिससे पानी बनता है, हालाँकि दोनों गैसें अब भी दुनिया में मौजूद हैं? और जब पानी भाप बनकर हवा में उड़ जाता है तो उस वक़्त कौन है जो ऑक्सीजन और हाइड्रोजन को अलग-अलग हो जाने से रोके रखता है? क्या नास्तिकों (ख़ुदा को न माननेवालों) के पास इसका कोई जवाब है? और क्या पानी और हवा और गर्मी और सर्दी के अलग-अलग ख़ुदा माननेवाले इसका कोई जवाब रखते हैं?

18. यानी उसे ग़ायब कर देने की कोई एक ही सूरत नहीं है, अनगिनत सूरतें हो सकती हैं, और उनमें से जिसको हम जब चाहें अपनाकर तुम्हें ज़िन्दगी के इस सबसे अहम वसीले (साधन) से महरूम (वंचित) कर सकते हैं। इस तरह यह आयत क़ुरआन की सूरा-67 मुल्क की उस आयत-30 से कहीं ज़्यादा मानी रखती है जिसमें कहा गया है कि "इनसे कहो, कभी तुमने सोचा कि अगर तुम्हारा यह पानी ज़मीन में बैठ जाए तो कौन है जो तुम्हें बहते चश्मे ला देगा?"

19. यानी खजूरों और अंगूरों के अलावा भी तरह-तरह के मेवे और फल।

20. यानी उन बाग़ों की पैदावार से, जो फल, अनाज, लकड़ी और दूसरी अलग-अलग शक्लों में हासिल होती है, तुम अपनी रोज़ी पैदा करते हो। अस्ल अरबी में 'मिन्हा ताकुलून' के अलफ़ाज़ आए हैं। इसमें 'मिन्हा' से मुराद 'जन्नात' (बाग़) हैं, न कि फल और 'ताकुलून' का मतलब सिर्फ़ यही नहीं है कि इन बाग़ों के फल तुम खाते हो, बल्कि इसके मतलब में रोज़ी हासिल करने के तमाम ज़रिए और तरीक़े भी आ जाते हैं। जिस तरह हम उर्दू और हिन्दी ज़बान में कहते हैं कि फ़ुलाँ शख़्स अपने फ़ुलाँ काम की रोटी खाता है उसी तरह अरबी ज़बान में भी

تَخْرُجُ مِنْ طُوْرِ سَيْنَآءَ تَنْۢبُتُ بِالدُّهْنِ وَصِبْغٍ لِّلْاٰكِلِيْنَ ﴿٢٠﴾ وَاِنَّ
لَكُمْ فِى الْاَنْعَامِ لَعِبْرَةً ۗ نُسْقِيْكُمْ مِّمَّا فِىْ بُطُوْنِهَا وَلَكُمْ فِيْهَا
مَنَافِعُ كَثِيْرَةٌ وَّمِنْهَا تَاْكُلُوْنَ ﴿٢١﴾ وَعَلَيْهَا وَعَلَى الْفُلْكِ تُحْمَلُوْنَ ﴿٢٢﴾
وَلَقَدْ اَرْسَلْنَا نُوْحًا اِلٰى قَوْمِهٖ فَقَالَ يٰقَوْمِ اعْبُدُوا اللّٰهَ مَا لَكُمْ

तूरे-सीना से निकलता है,[21] तेल भी लिए हुए उगता है और खानेवालों के लिए सालन भी।

(21) और हक़ीक़त यह है कि तुम्हारे लिए मवेशियों में भी एक सबक़ है। उनके पेटों में जो कुछ है, उसी में से एक चीज़ हम तुम्हें पिलाते हैं,[22] और तुम्हारे लिए उनमें बहुत-से दूसरे फ़ायदे भी हैं। उनको तुम खाते हो (22) और उनपर और नावों पर सवार भी किए जाते हो।[23]

(23) हमने नूह को उसकी क़ौम की तरफ़ भेजा।[24] उसने कहा, "ऐ मेरी क़ौम के

कहते हैं, "फ़ुलानुन याकुलु मिन् हिर्-फ़तिही।" (फ़ुलाँ अपने हुनर की रोज़ी खाता है।)

21. मुराद है ज़ैतून, जो रोम सागर के आसपास के इलाक़े की पैदावार में सबसे ज़्यादा अहम चीज़ है। इसका पेड़ डेढ़-डेढ़ दो-दो हज़ार साल तक चलता है, यहाँ तक कि फ़िलस्तीन के कुछ पेड़ों की लम्बाई और फैलाव देखकर अन्दाज़ा किया गया है कि वे हज़रत ईसा (अलैहि.) के ज़माने से अब तक चले आ रहे हैं। सीना पहाड़ से इसको जोड़ने की वजह शायद यह है कि वही इलाक़ा जिसका सबसे मशहूर और सबसे नुमायाँ मक़ाम सीना पहाड़ है, इस पेड़ के पाए जाने की अस्ली जगह है।

22. यानी दूध, जिसके बारे में क़ुरआन में दूसरी जगह कहा गया है कि ख़ून और गोबर के बीच यह एक तीसरी चीज़ है जो जानवर के खाने और चारे से पैदा कर दी जाती है।
(सूरा-16 नह्ल, आयत-66)

23. मवेशियों और कश्तियों का एक साथ ज़िक्र करने की वजह यह है कि अरबवाले सवारी और सामान ढोने के लिए ज़्यादातर ऊँट इस्तेमाल करते थे और ऊँटों के लिए 'रेगिस्तान के जहाज़' की कहावत बहुत पुरानी है। इस्लाम के पहले का एक अरब शायर (कवि) ज़ुरुम्मा कहता है—
सफ़ी-नतु बर्रिन तह-त ख़दयी ज़मामिहा
(रेगिस्तान का जहाज़, इसकी लगाम मेरे क़ाबू में है।)

24. हज़रत नूह (अलैहि.) का क़िस्सा क़ुरआन में कई जगहों पर आया है। देखिए— सूरा-7 आराफ़, आयतें—59-64; सूरा-10 यूनुस, आयतें—71-73; सूरा-11 हूद, आयतें—25-48; सूरा-17

مِّنْ اِلٰهٍ غَيْرُهٗ ۭ اَفَلَا تَتَّقُوْنَ ۝ فَقَالَ الْمَلَؤُا الَّذِيْنَ كَفَرُوْا مِنْ
قَوْمِهٖ مَا هٰذَآ اِلَّا بَشَرٌ مِّثْلُكُمْ ۙ يُرِيْدُ اَنْ يَّتَفَضَّلَ عَلَيْكُمْ ۭ وَلَوْ

लोगो, अल्लाह की बन्दगी करो, उसके सिवा तुम्हारे लिए कोई और माबूद नहीं है, क्या तुम डरते नहीं हो?"[25] (24) उसकी क़ौम के जिन सरदारों ने मानने से इनकार किया, वे कहने लगे कि "यह शख़्स कुछ नहीं है मगर एक इनसान तुम ही जैसा।[26] इसका मक़सद यह है कि तुमपर बरतरी और बड़ाई हासिल करे।[27] अल्लाह को अगर भेजना

बनी-इसराईल, आयत-3; सूरा-21 अम्बिया, आयतें—76, 77।

25. यानी क्या तुम्हें अपने अस्ली और हक़ीक़ी ख़ुदा को छोड़कर दूसरों की बन्दगी करते हुए डर नहीं लगता? क्या तुम इस बात से बिलकुल बेडर हो कि जो तुम्हारा और सारे जहान का मालिक और बादशाह है उसकी सल्तनत में रहकर उसके बजाय दूसरों की बन्दगी और फ़रमाँबरदारी करने और दूसरों को रब और ख़ुदा तस्लीम करने के क्या नतीजे होंगे?

26. यह ख़याल तमाम गुमराह लोगों में पाई जानेवाली गुमराहियों में से एक है कि इनसान नबी नहीं हो सकता और नबी इनसान नहीं हो सकता। इसी लिए क़ुरआन ने बार-बार इस जहालत भरे ख़याल का ज़िक्र करके इसको ग़लत बताया है और इस बात को पूरे ज़ोर के साथ बयान किया है कि तमाम नबी इनसान थे और इनसानों के लिए इनसान ही नबी होना चाहिए। (तफ़सीलात के लिए देखिए— सूरा-7 आराफ़, आयतें—63-69; सूरा-10 यूनुस, आयत-2; सूरा-11 हूद, आयतें—27, 31; सूरा-12 यूसुफ़, आयत-109; सूरा-13 रअद, आयत-38; सूरा-14 इबराहीम, आयतें—10-11; सूरा-16 नह्ल, आयत-43; सूरा-17 बनी-इसराईल, आयतें-94, 95; सूरा-18 कह्फ़, आयत-110; सूरा-21 अम्बिया, आयतें—3, 34; सूरा-23 मोमिनून, आयतें—33, 34, 47; सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयतें—7, 20; सूरा-26 शुअरा, आयतें-154, 186; सूरा-36 यासीन, आयत-15; सूरा-41 हा-मीम सजदा, आयत-6 हाशियों समेत)।

27. यह भी हक़ की मुख़ालिफ़त करनेवालों का बहुत पुराना हथियार है कि जो शख़्स भी इस्लाह के लिए कोशिश करने उठे उसपर फ़ौरन यह इलज़ाम लगा देते हैं कि कुछ नहीं, बस हुकूमत का भूखा है। यही इलज़ाम फ़िरऔन ने हज़रत मूसा (अलैहि०) और हारून (अलैहि०) पर लगाया था कि तुम इसलिए उठे हो कि तुम्हें मुल्क में बड़ाई हासिल हो जाए। (सूरा-10 यूनुस, आयत-78) यही इलज़ाम हज़रत ईसा (अलैहि०) पर लगाया गया कि यह आदमी यहूदियों का बादशाह बनना चाहता है। और इसी का शक नबी (सल्ल०) के बारे में क़ुरैश के सरदारों को था, चुनाँचे कई बार उन्होंने आप (सल्ल०) से यह सौदा करने की कोशिश की कि अगर हुकूमत चाहते हो तो 'अपोज़िशन' (विपक्ष) छोड़कर हुकूकत में शामिल हो जाओ, तुम्हें हम बादशाह बनाए लेते हैं। अस्ल बात यह है कि जो लोग सारी उम्र दुनिया और उसके माद्दी फ़ायदों और उसकी शानो-शौकत ही के लिए अपनी जान खपाते रहते हैं, उनके लिए यह सोचना बहुत मुश्किल

बल्कि नामुमकिन होता है कि इसी दुनिया में कोई इनसान अच्छी नीयत के साथ और बे-ग़रज़ होकर इनसानियत की भलाई की ख़ातिर भी अपनी जान खपा सकता है। वह ख़ुद चूँकि अपना असर और इक़्तिदार जमाने के लिए लुभावने नारे और सुधार के झूठे दावे दिन-रात इस्तेमाल करते रहते हैं, इसलिए यह मक्कारी और धोखा देना उनकी निगाह में बिलकुल एक फ़ितरी चीज़ होती है और वे समझते हैं कि सुधार का नाम मक्कारी और धोखे के सिवा किसी सच्चाई और ख़ुलूस के साथ कभी लिया ही नहीं जा सकता, यह नाम जो भी लेता है ज़रूर वह उनके अपने जैसा इनसान ही होगा। और मज़े की बात यह है कि सुधार करनेवालों के ख़िलाफ़ 'हुकूमत की भूख' का यह इलज़ाम हमेशा हुकूमत में बैठे लोग और उनके चापलूस लोग ही इस्तेमाल करते रहे हैं मानो ख़ुद उन्हें और उनके नामी-गिरामी आक़ाओं को जो हुकूमत हासिल है वह तो उनका पैदाइशी हक़ है, उसके हासिल करने और उसपर क़ब्ज़ा जमाए रहने में वे किसी इलज़ाम के हक़दार नहीं हैं, अलबत्ता बहुत ही क़ाबिले-मलामत है वह जिसके लिए यह 'नेमत' पैदाइशी हक़ न थी और अब ये लोग उसके अन्दर इस चीज़ की 'तलब' महसूस कर रहे हैं। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— हाशिया-36)।

इस जगह यह बात भी अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि जो शख़्स भी राइज निज़ामे-ज़िन्दगी की ख़राबियों को दूर करने के लिए उठेगा और उसके मुक़ाबले में इस्लाही नज़रिया और निज़ाम पेश करेगा, उसके लिए बहरहाल यह बात बहुत ज़रूरी होगी कि सुधार के रास्ते में जो ताक़तें भी रुकावट बनें उन्हें हटाने की कोशिश करे और उन ताक़तों को इक़्तिदार में लाए जो इस्लाही नज़रिए और निज़ाम को अमली तौर से लागू कर सकें। इसके अलावा ऐसे शख़्स की दावत जब भी कामयाब होगी, उसका क़ुदरती नतीजा यही होगा कि वह लोगों का इमाम और पेशवा बन जाएगा और नए निज़ाम में सत्ता की बागडोर या तो उसके अपने ही हाथों में होगी, या उसके हामियों और उसकी पैरवी करनेवालों के क़ब्ज़े में होगी। आख़िर नबियों और दुनिया के सुधारकों में से कौन है जिसकी कोशिशों का मक़सद अपनी दावत को अमली तौर से लागू करना न था, और कौन है जिसकी दावत की कामयाबी ने सचमुच उसको पेशवा नहीं बना दिया? फिर क्या यह हक़ीक़त किसी पर यह इलज़ाम चस्पाँ कर देने के लिए काफ़ी है कि वह अस्ल में हुकूमत का भूखा था और उसका अस्ल मक़सद वही पेशवाई थी जो उसने हासिल कर ली? ज़ाहिर है कि बुरी फ़ितरत रखनेवाले हक़ के दुश्मनों के सिवा इस सवाल का जवाब कोई भी 'हाँ' में नहीं देगा। हक़ीक़त यह है कि अपने आप में हुकूमत की तलब होना और किसी नेक मक़सद के लिए उसकी चाह करना दोनों में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है, इतना बड़ा फ़र्क़ जितना डाकू के ख़ंजर और डॉक्टर के नश्तर में है। अगर कोई शख़्स सिर्फ़ इस वजह से डाकू और डॉक्टर को एक कर दे कि दोनों जान-बूझकर जिस्म चीरते हैं और नतीजे में माल दोनों के हाथ आता है, तो यह सिर्फ़ उसके अपने ही दिमाग़ या दिल का क़ुसूर है। वरना दोनों की नीयत, दोनों के काम करने का ढंग और दोनों के पूरे किरदार में इतना फ़र्क़ होता है कि कोई अक़्ल रखनेवाला आदमी डाकू को डाकू और डॉक्टर को डॉक्टर समझने में ग़लती नहीं कर सकता।

شَآءَ اللّٰهُ لَاَنْزَلَ مَلٰٓئِكَةً ۚ مَّا سَمِعْنَا بِهٰذَا فِيْٓ اٰبَآئِنَا الْاَوَّلِيْنَ ﴿٢٤﴾ اِنْ هُوَ اِلَّا
رَجُلٌۢ بِهٖ جِنَّةٌ فَتَرَبَّصُوْا بِهٖ حَتّٰى حِيْنٍ ﴿٢٥﴾ قَالَ رَبِّ انْصُرْنِيْ بِمَا
كَذَّبُوْنِ ﴿٢٦﴾ فَاَوْحَيْنَآ اِلَيْهِ اَنِ اصْنَعِ الْفُلْكَ بِاَعْيُنِنَا وَوَحْيِنَا فَاِذَا جَآءَ
اَمْرُنَا وَفَارَ التَّنُّوْرُ ۙ فَاسْلُكْ فِيْهَا مِنْ كُلٍّ زَوْجَيْنِ اثْنَيْنِ وَاَهْلَكَ

होता तो फ़रिश्ते भेजता।[27अ] यह बात तो हमने कभी अपने बाप-दादा के वक़्तों में सुनी ही नहीं (कि इनसान रसूल बनकर आए) (25) कुछ नहीं, बस इस आदमी को ज़रा जुनून हो गया है। कुछ मुद्दत और देख लो (शायद ठीक हो जाए)।'' (26) नूह ने कहा, ''परवरदिगार, इन लोगों ने जो मुझे झुठलाया है, उसपर अब तू ही मेरी मदद कर।''[28] (27) हमने उसपर वह्य की कि ''हमारी निगरानी में और हमारी वह्य के मुताबिक़ नाव तैयार कर। फिर जब हमारा हुक्म आ जाए और तन्नूर (तंदूर) उबल पड़े[29] तो हर तरह के जानवरों में से एक-एक जोड़ा लेकर उसमें सवार हो जा, और अपने घरवालों को भी साथ

27अ. यह इस बात का खुला सुबूत है कि नूह (अलैहि॰) की क़ौम अल्लाह तआला के वुजूद का इनकार न करती थी और न इस बात से उसे इनकार था कि तमाम जहानों का रब वही है और सारे फ़रिश्ते उसके हुक्म के ग़ुलाम हैं। उस क़ौम की अस्ली गुमराही शिर्क थी, न कि ख़ुदा का इनकार। वह ख़ुदा की सिफ़ात और इख़्तियारों में और उसके हक़ों में दूसरों को उसका शरीक ठहराती थी।

28. यानी मेरी तरफ़ से इस झुठलाने का बदला ले। जैसा कि दूसरी जगह फ़रमाया, ''तो नूह ने अपने रब को पुकारा कि मैं दबा लिया गया हूँ, अब तू इनसे बदला ले।'' (सूरा-54 क़मर, आयत-10)। और सूरा-71 नूह, आयत-26 में फ़रमाया, ''और नूह ने कहा : ऐ मेरे परवरदिगार, इस ज़मीन पर हक़ के इनकारियों में से एक बसनेवाला भी न छोड़, अगर तूने उनको रहने दिया तो ये तेरे बन्दों को गुमराह कर देंगे और उनकी नस्ल से बदकार और हक़ के इनकारी ही पैदा होंगे।''

29. कुछ लोगों ने 'तन्नूर' से मुराद ज़मीन ली है, कुछ ने ज़मीन का सबसे ऊँचा हिस्सा मुराद लिया है, कुछ कहते हैं कि 'फ़ारत-तन्नूर' (तन्नूर उबल पड़े) का मतलब सुबह की पौ फटना है, और कुछ की राय में यह 'हंगामा गर्म हो जाने' की तरह का एक मुहावरा है। लेकिन कोई मुनासिब वजह नज़र नहीं आती कि क़ुरआन के अलफ़ाज़ को बिना किसी मुनासिब इशारे के किसी दूसरे मानी में लिया जाए, जबकि ज़ाहिरी मतलब लेने में कोई हरज नहीं है। ये अलफ़ाज़ पढ़कर पहले-पहल जो मतलब ज़ेहन में आता है वह यही है कि कोई ख़ास तन्नूर (तन्दूर) पहले से

إِلَّا مَنْ سَبَقَ عَلَيْهِ الْقَوْلُ مِنْهُمْ ۚ وَلَا تُخَاطِبْنِي فِي الَّذِينَ
ظَلَمُوا ۚ إِنَّهُم مُّغْرَقُونَ ﴿٢٧﴾ فَإِذَا اسْتَوَيْتَ أَنتَ وَمَن مَّعَكَ
عَلَى الْفُلْكِ فَقُلِ الْحَمْدُ لِلَّهِ الَّذِي نَجَّانَا مِنَ الْقَوْمِ
الظَّالِمِينَ ﴿٢٨﴾ وَقُل رَّبِّ أَنزِلْنِي مُنزَلًا مُّبَارَكًا وَأَنتَ خَيْرُ
الْمُنزِلِينَ ﴿٢٩﴾ إِنَّ فِي ذَٰلِكَ لَآيَاتٍ وَإِن كُنَّا لَمُبْتَلِينَ ﴿٣٠﴾

ले, सिवाय उनके जिनके ख़िलाफ़ पहले फ़ैसला हो चुका है, और ज़ालिमों के मामले में मुझसे कुछ न कहना, ये अब डूबनेवाले हैं। (28) फिर जब तू अपने साथियों सहित नाव में सवार हो जाए तो कह कि शुक्र है उस ख़ुदा का जिसने हमें ज़ालिम लोगों से नजात दी।[30] (29) और कह, परवरदिगार! मुझको बरकतवाली जगह उतार और तू बेहतरीन जगह देनेवाला है।"[31]

(30) इस क़िस्से में बड़ी निशानियाँ हैं,[32] और आज़माइश तो हम करके ही रहते हैं।[33]

नामज़द कर दिया गया था कि तूफ़ान की शुरुआत उसके नीचे से पानी उबलने पर होगी। दूसरा कोई मतलब सोचने की ज़रूरत उस वक़्त पेश आती है जबकि आदमी यह मानने के लिए तैयार न हो कि इतना बड़ा तूफ़ान एक तन्नूर (तन्दूर) के नीचे से पानी उबल पड़ने पर शुरू हुआ होगा। मगर ख़ुदा के मामले अजीब हैं। वह जब किसी क़ौम की शामत (विपत्ति) लाता है तो ऐसी तरफ़ से लाता है जिधर उसका वहम और गुमान भी नहीं जा सकता।

30. यह किसी क़ौम की इन्तिहाई बुरी आदतों, बुराइयों और शरारत का सुबूत है कि उसकी तबाही पर शुक्र अदा करने का हुक्म दिया जाए।

31. 'उतारने' से मुराद सिर्फ़ उतारना ही नहीं है, बल्कि अरबी मुहावरे के मुताबिक़ इसमें 'मेज़बानी' का मतलब भी शामिल है। यानी इस दुआ का मतलब यह है कि "ऐ ख़ुदा, हम तेरे मेहमान हैं और तू ही हमारा मेज़बान है।"

32. यानी सबक़आमोज़ हैं जो यह बताती हैं कि तौहीद की दावत देनेवाले पैग़म्बर हक़ पर थे और शिर्क पर अड़े रहनेवाले लोग बातिल (असत्य) पर, और यह कि आज वही सूरतेहाल मक्का में पाई जा रही है जो किसी वक़्त हज़रत नूह (अलैहि.) और उनकी क़ौम के बीच थी, और उसका अंजाम भी कुछ उससे अलग होनेवाला नहीं है, और यह कि ख़ुदा के फ़ैसले में चाहे देर कितनी ही लगे मगर फ़ैसला आख़िरकार होकर रहता है और वह ज़रूर ही हक़परस्तों (सत्यवादियों) के हक़ में और बातिलपरस्तों (असत्यवादियों) के ख़िलाफ़ होता है।

33. दूसरा तर्जमा यह भी हो सकता है कि "आज़माइश तो हमें करनी ही थी", या "आज़माइश

ثُمَّ اَنْشَاْنَا مِنْۢ بَعْدِهِمْ قَرْنًا اٰخَرِيْنَ ﴿٣١﴾ فَاَرْسَلْنَا فِيْهِمْ
رَسُوْلًا مِّنْهُمْ اَنِ اعْبُدُوا اللّٰهَ مَا لَكُمْ مِّنْ اِلٰهٍ غَيْرُهٗ ؕ اَفَلَا
تَتَّقُوْنَ ﴿٣٢﴾ وَقَالَ الْمَلَاُ مِنْ قَوْمِهِ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَكَذَّبُوْا
بِلِقَآءِ الْاٰخِرَةِ وَاَتْرَفْنٰهُمْ فِى الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۙ مَا هٰذَآ

(31) उनके बाद हमने एक दूसरे दौर की क़ौम उठाई।[34] (32) फिर उनमें ख़ुद उन्हीं की क़ौम का एक रसूल भेजा (जिसने उन्हें दावत दी) कि अल्लाह की बन्दगी करो, तुम्हारे लिए उसके सिवा कोई और माबूद नहीं है। क्या तुम डरते नहीं हो? (33) उसकी क़ौम के जिन सरदारों ने मानने से इनकार किया और आख़िरत की पेशी को झुठलाया, जिनको हमने दुनिया की ज़िन्दगी में ख़ुशहाल कर रखा था,[35] वे कहने लगे, "यह आदमी

तो हमें करनी ही है।" तीनों सूरतों में मक़सद इस हक़ीक़त पर ख़बरदार करना है कि अल्लाह तआला किसी क़ौम को भी अपनी ज़मीन और उसकी अनगिनत चीज़ों पर अधिकार देकर बस यूँ ही उसके हाल पर नहीं छोड़ देता, बल्कि उसकी आज़माइश करता है और देखता रहता है कि वह अपने अधिकार और हुकूमत को किस तरह इस्तेमाल कर रही है। नूह (अलैहि॰) की क़ौम के साथ जो कुछ हुआ इसी क़ानून के मुताबिक़ हुआ, और दूसरी कोई क़ौम भी अल्लाह की ऐसी चहेती नहीं है कि वह बस उसे नेमत की थाली पर हाथ मारने के लिए आज़ाद छोड़ दे। इस मामले से हर एक को लाज़िमी तौर पर वास्ता पेश आना है।

34. कुछ लोगों ने इससे मुराद समूद की क़ौम ली है, क्योंकि आगे चलकर ज़िक्र आ रहा है कि यह क़ौम 'सैहा' के अज़ाब से तबाह की गई, और दूसरी जगहों पर क़ुरआन में बताया गया है कि समूद वह क़ौम है जिसपर यह अज़ाब आया (सूरा-11 हूद, आयत-67; सूरा-15 हिज्र, आयत-83; सूरा-54 क़मर, आयत-31)। कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि यह ज़िक्र अस्ल में आद क़ौम का है, क्योंकि क़ुरआन के मुताबिक़ नूह की क़ौम के बाद यही क़ौम उठाई गई थी, "और याद करो जब नूह की क़ौम के बाद उसने तुमको ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) बनाया।" (सूरा-7 आराफ़, आयत-69)। सही बात यही दूसरी मालूम होती है, क्योंकि 'नूह की क़ौम के बाद' का इशारा इसी तरफ़ रहनुमाई करता है। रहा 'सैहा' (चीख़, आवाज़, शोर, बड़ा हंगामा) तो सिर्फ़ यह वजह उस क़ौम को समूद ठहरा देने के लिए काफ़ी नहीं है, इसलिए यह लफ़्ज़ जिस तरह उस तेज़ आवाज़ के लिए इस्तेमाल होता है जो आम तबाही लानेवाली हो, उसी तरह उस शोर और हंगामे के लिए भी इस्तेमाल होता है जो आम तबाही के वक़्त मचता है, चाहे तबाही की वजह कुछ ही हो।

35. ये ख़ासियतें क़ाबिले-ग़ौर हैं। पैग़म्बर की मुख़ालिफ़त के लिए उठनेवाले अस्ल लोग वे थे जिन्हें

إِلَّا بَشَرٌ مِّثْلُكُمْ ۙ يَأْكُلُ مِمَّا تَأْكُلُونَ مِنْهُ وَيَشْرَبُ مِمَّا تَشْرَبُونَ ﴿٣٣﴾

وَلَئِنْ أَطَعْتُم بَشَرًا مِّثْلَكُمْ إِنَّكُمْ إِذًا لَّخَاسِرُونَ ﴿٣٤﴾ أَيَعِدُكُمْ

कुछ नहीं है मगर एक इनसान तुम ही जैसा। जो कुछ तुम खाते हो, वही यह खाता है और जो कुछ तुम पीते हो वही यह पीता है। (34) अब अगर तुमने अपने ही जैसे एक इनसान की फ़रमाँबरदारी क़बूल कर ली तो तुम घाटे ही में रहे।[36] (35) यह तुम्हें ख़बर

क़ौम की सरदारी मिली हुई थी। वे सब जिस गुमराही में पड़े हुए थे वह यह थी कि वे आख़िरत को न मानते थे, इसलिए ख़ुदा के सामने किसी ज़िम्मेदारी और जवाबदेही का उन्हें डर न था, और इसी लिए वे दुनिया की इस ज़िन्दगी पर रीझे हुए थे और 'दुनियावी कामयाबी और भलाई' से ऊपर किसी क़द्र (मूल्य) को न मानते थे। फिर इस गुमराही में जिस चीज़ ने उनको बिलकुल ही डुबो दिया था वह ख़ुशहाली और दौलतमन्दी थी जिसे वे अपने हक़ पर होने की दलील समझते थे और यह मानने के लिए तैयार न थे कि वह अक़ीदा, वह निज़ामे-अख़लाक़, और ज़िन्दगी का वह तरीक़ा ग़लत भी हो सकता है जिसपर चलकर उन्हें दुनिया में ये कुछ कामयाबियाँ नसीब हो रही हैं। इनसानी इतिहास बार-बार इस हक़ीक़त को दोहराता रहा है कि हक़ की दावत की मुख़ालिफ़त करनेवाले हमेशा इन्हीं तीन ख़ासियतें रखनेवाले लोग हुए हैं। और यही उस वक़्त का मंज़र भी था, जबकि नबी (सल्ल॰) मक्का में सुधार की कोशिश कर रहे थे।

36. कुछ लोगों ने यह ग़लत समझ रखा है कि ये बातें वे लोग आपस में एक-दूसरे से करते थे। नहीं, यह बात अस्ल में आम लोगों से कही गई थी। क़ौम के सरदारों को जब ख़तरा हुआ कि आम लोग पैग़म्बर की पाकीज़ा शख़्सियत और दिल लगती बातों से मुतास्सिर हो जाएँगे, और उनके मुतास्सिर हो जाने के बाद हमारी सरदारी फिर किसपर चलेगी, तो उन्होंने ये तक़रीरें कर-करके आम लोगों को बहकाना शुरू किया। यह उसी मामले का एक दूसरा पहलू है जो ऊपर क़ौमे-नूह के सरदारों के ज़िक्र में बयान हुआ था। वे कहते थे कि यह ख़ुदा की तरफ़ से पैग़म्बरी-वैग़म्बरी कुछ नहीं है। सिर्फ़ हुकूमत की भूख है जो इस आदमी से ये बातें करा रही है। ये कहते हैं कि "भाइयो, ज़रा ग़ौर तो करो कि आख़िर यह आदमी तुमसे किस चीज़ में जुदा है। वैसा ही गोश्त-हड्डी का आदमी है, जैसे तुम हो। कोई फ़र्क़ इसमें और तुममें नहीं है। फिर क्यों यह बड़ा बने और तुम उसके कहे पर चलो? इन तक़रीरों में यह बात मानो बग़ैर किसी इख़्तिलाफ़ और झगड़े के तस्लीमशुदा थी कि हम जो तुम्हारे सरदार हैं तो हमें तो होना ही चाहिए, हमारे जिस्म और खाने-पीने के अन्दाज़ की तरफ़ देखने का सवाल पैदा नहीं होता। हमारी सरदारी पर कोई चर्चा नहीं हो रही है; क्योंकि वह तो आप-से-आप क़ायम और तस्लीमशुदा है। हालाँकि चर्चा जिसपर हो रही है, वह यह नई सरदारी है जो अब क़ायम होती नज़र आ रही है। इस तरह इन लोगों की बात नूह की क़ौम के सरदारों की बात से कुछ ज़्यादा अलग न थी, जिनके नज़दीक इलज़ाम के लायक़ अगर कोई चीज़ थी तो वह 'हुकूमत की भूख' थी, जो किसी नए आनेवाले के अन्दर महसूस हो या जिसके होने का शक किया जा सके। रहा

اَيَعِدُكُمْ اَنَّكُمْ اِذَا مِتُّمْ وَكُنْتُمْ تُرَابًا وَّعِظَامًا اَنَّكُمْ مُّخْرَجُوْنَ ۝۳۵
هَيْهَاتَ هَيْهَاتَ لِمَا تُوْعَدُوْنَ ۝۳۶ اِنْ هِيَ اِلَّا حَيَاتُنَا الدُّنْيَا
نَمُوْتُ وَنَحْيَا وَمَا نَحْنُ بِمَبْعُوْثِيْنَ ۝۳۷ اِنْ هُوَ اِلَّا رَجُلُ ٰافْتَرٰى
عَلَى اللّٰهِ كَذِبًا وَّمَا نَحْنُ لَهٗ بِمُؤْمِنِيْنَ ۝۳۸ قَالَ رَبِّ انْصُرْنِيْ بِمَا
كَذَّبُوْنِ ۝۳۹ قَالَ عَمَّا قَلِيْلٍ لَّيُصْبِحُنَّ نٰدِمِيْنَ ۝۴۰ فَاَخَذَتْهُمُ
الصَّيْحَةُ بِالْحَقِّ فَجَعَلْنٰهُمْ غُثَآءً ۚ فَبُعْدًا لِّلْقَوْمِ الظّٰلِمِيْنَ ۝۴۱

देता है कि जब तुम मरकर मिट्टी हो जाओगे और हड्डियों का पंजर बनकर रह जाओगे, उस वक़्त तुम (क़ब्रों से) निकाले जाओगे? (36) नामुमकिन, बिलकुल नामुमकिन है यह वादा जो तुमसे किया जा रहा है। (37) ज़िन्दगी कुछ नहीं है मगर बस यही दुनिया की ज़िन्दगी। यहीं हमको मरना और जीना है और हम हरगिज़ उठाए जानेवाले नहीं हैं। (38) यह शख़्स ख़ुदा के नाम पर सिर्फ़ झूठ गढ़ रहा है[36अ] और हम कभी इसकी माननेवाले नहीं हैं।" (39) रसूल ने कहा, "परवरदिगार, इन लोगों ने जो मुझे झुठलाया है इसपर अब तू ही मेरी मदद कर।" (40) जवाब में कहा गया, "क़रीब है वह वक़्त जब ये अपने किए पर पछताएँगे।" (41) आख़िरकार ठीक-ठीक हक़ (सत्य) के मुताबिक़ एक बड़े हंगामे ने उनको आ लिया और हमने उनको कचरा[37] बनाकर फेंक दिया—दूर हो ज़ालिम क़ौम!

उनका अपना पेट तो वे समझते थे कि हुकूमत और ताक़त हर हाल में उसकी फ़ितरी ख़ुराक (प्राकृतिक भोजन) है, जिससे अगर उनका पेट बदहज़मी की हद तक भी भर जाए तो उसपर एतिराज़ और सवाल नहीं किया जा सकता।"

36अ. ये अलफ़ाज़ साफ़ बताते हैं कि अल्लाह तआला के वुजूद का ये लोग भी इनकार नहीं करते थे, इनकी भी अस्ल गुमराही शिर्क ही थी। दूसरी जगहों पर भी क़ुरआन मजीद में इस क़ौम का यही जुर्म बयान किया गया है। देखिए— सूरा-7 आराफ़, आयत-70; सूरा-11 हूद, आयतें—53, 54; सूरा-41 हा-मीम सजदा, आयत-14; सूरा-46 अहक़ाफ़, आयतें—21, 22।

37. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'ग़ुसाअन' इस्तेमाल हुआ है जिसका मतलब है वह कूड़ा-करकट जो सैलाब के साथ बहता हुआ आता है और फिर किनारों पर लग-लगकर पड़ा सड़ता रहता है।

ثُمَّ اَنۡشَاۡنَا مِنۡۢ بَعۡدِهِمۡ قُرُوۡنًا اٰخَرِيۡنَؕ‏ ﴿۴۲﴾ مَا تَسۡبِقُ مِنۡ اُمَّةٍ
اَجَلَهَا وَمَا يَسۡتَاۡخِرُوۡنَؕ‏ ﴿۴۳﴾ ثُمَّ اَرۡسَلۡنَا رُسُلَنَا تَتۡرَا ؕ كُلَّمَا جَآءَ
اُمَّةً رَّسُوۡلُهَا كَذَّبُوۡهُ فَاَتۡبَعۡنَا بَعۡضَهُمۡ بَعۡضًا وَّجَعَلۡنٰهُمۡ
اَحَادِيۡثَ‌ ۚ فَبُعۡدًا لِّقَوۡمٍ لَّا يُؤۡمِنُوۡنَ‏ ﴿۴۴﴾ ثُمَّ اَرۡسَلۡنَا مُوۡسٰى
وَاَخَاهُ هٰرُوۡنَ ۙ بِاٰيٰتِنَا وَسُلۡطٰنٍ مُّبِيۡنٍۙ‏ ﴿۴۵﴾ اِلٰى فِرۡعَوۡنَ وَمَلَا۟ٮِٕهٖ
فَاسۡتَكۡبَرُوۡا وَكَانُوۡا قَوۡمًا عَالِيۡنَ‌ۚ‏ ﴿۴۶﴾ فَقَالُوۡۤا اَنُؤۡمِنُ لِبَشَرَيۡنِ

(42) फिर हमने उनके बाद दूसरी क़ौमें उठाईं। (43) कोई क़ौम न अपने वक़्त से पहले ख़त्म हुई और न उसके बाद ठहर सकी। (44) फिर हमने एक के बाद एक अपने रसूल भेजे। जिस क़ौम के पास भी उसका रसूल आया, उसने उसे झुठलाया और हम एक के बाद एक क़ौम को हलाक करते चले गए, यहाँ तक कि उनको बस कहानी ही बनाकर छोड़ा—फिटकार उन लोगों पर जो ईमान नहीं लाते।[38]

(45-46) फिर हमने मूसा और उसके भाई हारून को अपनी निशानियों और खुली सनद[39] के साथ फ़िरऔन और उसकी हुकूमत के सरदारों की तरफ़ भेजा। मगर उन्होंने घमंड किया और बड़ी शेख़ी बघारी।[40] (47) कहने लगे, "क्या हम अपने ही जैसे दो

38. या दूसरे लफ़्ज़ों में पैग़म्बरों की बात नहीं मानते।

39. 'निशानियों' के बाद 'खुली सनद' से मुराद या तो यह है कि उन निशानियों का उनके साथ होना ही इस बात की खुली सनद था कि वे अल्लाह के भेजे हुए पैग़म्बर हैं। या फिर निशानियों से मुराद असा (लाठी) के सिवा दूसरे वे तमाम मोजिज़े हैं जो मिस्र में दिखाए गए थे, और खुली सनद से मुराद असा है; क्योंकि उसके ज़रिए से जो मोजिज़े ज़ाहिर हुए, उनके बाद तो यह बात बिलकुल ही साफ़ हो गई थी कि ये दोनों भाई अल्लाह की तरफ़ से भेजे गए हैं। (तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, हाशिए-43, 44)

40. अस्ल अरबी में 'वकानू क़ौमन आलीन' के अलफ़ाज़ हैं, जिनके दो मतलब हो सकते हैं — एक यह कि वे बड़े घमण्डी, ज़ालिम और हद से आगे बढ़ जानेवाले थे; दूसरा यह कि वे बड़े ऊँचे बने और उन्होंने शेख़ी बघारी।

مِثْلِنَا وَقَوْمُهُمَا لَنَا عٰبِدُوْنَ ﴿٤٧﴾ فَكَذَّبُوْهُمَا فَكَانُوْا مِنَ
الْمُهْلَكِيْنَ ﴿٤٨﴾ وَلَقَدْ اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ لَعَلَّهُمْ
يَهْتَدُوْنَ ﴿٤٩﴾ وَجَعَلْنَا ابْنَ مَرْيَمَ وَاُمَّهٗٓ اٰيَةً وَّاٰوَيْنٰهُمَآ اِلٰى رَبْوَةٍ

आदमियों पर ईमान ले आएँ?[40अ] और आदमी भी वे जिनकी क़ौम हमारी ताबेदार है।"[41] (48) तो उन्होंने दोनों को झुठला दिया और हलाक होनेवालों में जा मिले।[42] (49) और मूसा को हमने किताब दी, ताकि लोग उससे हिदायत हासिल करें।

(50) और मरयम के बेटे और उसकी माँ को हमने एक निशानी बनाया[43] और उनको एक ऊँची सतह पर रखा जो इत्मीनान की जगह थी और चश्मे (स्रोत)

40अ. तशरीह के लिए देखिए— हाशिया-26।

41. अस्ल अलफ़ाज़ हैं, "जिनकी क़ौम हमारी इबादत करनेवाली है।" अरबी ज़बान में किसी का 'हुक्म का फ़रमाँबरदार' होना और 'उसका इबादतगुज़ार' होना, दोनों लगभग एक मानी और मतलब रखनेवाले अलफ़ाज़ हैं। जो किसी की बन्दगी और फ़रमाँबरदारी करता है वह मानो उसकी इबादत करता है। इससे बड़ी अहम रौशनी पड़ती है लफ़्ज़ 'इबादत' के मतलब पर और पैग़म्बरों (अलैहि॰) की इस दावत पर कि सिर्फ़ अल्लाह की इबादत करने और उसके सिवा हर एक की इबादत छोड़ देने की नसीहत जो वे करते थे उसका पूरा मतलब क्या था। 'इबादत' उनके नज़दीक सिर्फ़ 'पूजा' न थी। उनकी दावत यह नहीं थी कि सिर्फ़ पूजा अल्लाह की करो, बाक़ी बन्दगी और फ़रमाँबरदारी जिसकी चाहे करते रहो, बल्कि वह इनसान को अल्लाह का परस्तार भी बनाना चाहते थे और फ़रमाँबरदार भी, और इन दोनों मानी के लिहाज़ से दूसरों की इबादत को ग़लत ठहराते थे। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, हाशिया-50)।

42. मूसा (अलैहि॰) और फ़िरऔन के क़िस्से की तफ़सीलात के लिए देखिए— सूरा-2 बक़रा, आयतें—49, 50; सूरा-7 आराफ़, आयतें—103-136; सूरा-10 यूनुस, आयतें—75-92; सूरा-11 हूद, आयतें—96-99; सूरा-17 बनी-इसराईल, आयतें—101-104; सूरा-20 ता-हा, आयतें—9-80।

43. यह नहीं कहा कि एक निशानी मरयम के बेटे थे और एक निशानी ख़ुद मरयम और यह भी नहीं कहा कि मरयम के बेटे और उसकी माँ को दो निशानियाँ बनाया, बल्कि फ़रमाया यह है कि वे दोनों मिलकर एक निशानी बनाए गए। इसका मतलब इसके सिवा क्या हो सकता है कि बाप के बिना मरयम के बेटे का पैदा होना और मर्द से ताल्लुक़ के बिना मरयम (अलैहि॰) का हामिला (गर्भवती) होना ही वह चीज़ है जो इन दोनों को एक निशानी बनाती है। जो लोग

ذَاتِ قَرَارٍ وَّمَعِيْنٍ۝

उसमें जारी थे।[44]

हज़रत ईसा (अलैहि॰) के बाप के बिना पैदा होने का इनकार करते हैं, वे माँ और बेटे के एक निशानी होने का क्या मतलब बयान करेंगे? (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, हाशिए—44-53; सूरा-4 निसा, हाशिए-190, 212, 213; सूरा-19 मरयम, हाशिए— 15-22; सूरा-21 अम्बिया, हाशिए-89, 90)।

यहाँ दो बातें और भी ऐसी हैं जिनपर ध्यान देना चाहिए। एक यह कि हज़रत ईसा (अलैहि॰) और उनकी माँ का मामला जाहिल इनसानों की एक दूसरी कमज़ोरी की निशानदेही करता है। ऊपर जिन पैग़म्बरों का ज़िक्र था उनपर तो ईमान लाने से यह कहकर इनकार कर दिया गया कि तुम इनसान हो, भला इनसान भी कहीं नबी हो सकता है। मगर हज़रत ईसा (अलैहि॰) और उनकी माँ के जब लोग अक़ीदतमन्द हुए तो फिर ऐसे हुए कि उन्हें इनसान के दरजे से उठाकर ख़ुदा के दरजे तक पहुँचा दिया। दूसरी यह कि जिन लोगों ने हज़रत ईसा (अलैहि॰) की मोजिज़े के रूप में हुई पैदाइश और उनके पालने की तक़रीर से उसके मोजिज़ा होने का खुला सुबूत देख लेने के बावजूद ईमान लाने से इनकार किया और हज़रत मरयम (अलैहि॰) पर तोहमत लगाई, उनको फिर सज़ा भी ऐसी दी गई कि हमेशा-हमेशा के लिए दुनिया के सामने इबरत की एक मिसाल बन गए।

44. अलग-अलग लोगों ने इससे अलग-अलग जगहें मुराद ली हैं। कोई दमिश्क़ कहता है, कोई अर-रमला, कोई बैतुल-मक़दिस और कोई मिस्र। मसीही रिवायतों के मुताबिक़ हज़रत मरयम (अलैहि॰) हज़रत ईसा (अलैहि॰) की पैदाइश के बाद उनकी हिफ़ाज़त के लिए दो बार वतन छोड़ने पर मजबूर हुईं। पहले हीरोदेस बादशाह के दौर में वे उन्हें मिस्र ले गईं और उसकी मौत तक वहीं रहीं। फिर अज़ख़िलाऊस की हुकूमत के दौर में उनको गलील के शहर नासिरा में पनाह लेनी पड़ी। (मत्ती, 2:13-23)। अब यह बात यक़ीन के साथ नहीं कही जा सकती कि क़ुरआन का इशारा किस जगह की तरफ़ है। लुग़त (डिक्शनरी) में 'रबवह' उस ऊँची ज़मीन को कहते हैं जो हमवार हो और अपने आसपास के इलाक़े से ऊँची हो। आयत में अरबी लफ़्ज़ 'ज़ाति क़रार' इस्तेमाल हुआ है जिससे मुराद यह है कि उस जगह ज़रूरत की सब चीज़ें पाई जाती हों और रहनेवाला वहाँ आराम से जिन्दगी गुज़ार सकता हो। और 'मईन' से मुराद है बहता हुआ पानी या जारी चश्मा।

يٰٓاَيُّهَا الرُّسُلُ كُلُوْا مِنَ الطَّيِّبٰتِ وَاعْمَلُوْا صَالِحًا ؕ اِنِّيْ بِمَا
تَعْمَلُوْنَ عَلِيْمٌ ﴿٥١﴾ وَاِنَّ هٰذِهٖٓ اُمَّتُكُمْ اُمَّةً وَّاحِدَةً

(51) ऐ पैग़म्बरो,[45] खाओ पाक चीज़ें और अमल (कर्म) करो अच्छे,[46] तुम जो कुछ भी करते हो, मैं उसको ख़ूब जानता हूँ। (52) और यह तुम्हारी उम्मत एक ही उम्मत है

45. पिछले दो रुकूओं (आयतें 23-50) में कई पैग़म्बरों का ज़िक्र करने के बाद अब 'ऐ पैग़म्बरो' कहकर तमाम पैग़म्बरों को मुख़ातब करने का मतलब यह नहीं है कि कहीं ये सारे पैग़म्बर एक जगह मौजूद थे और इन सबको मुख़ातब करके यह बात कही गई, बल्कि इसका मक़सद यह बताना है कि हर ज़माने में अलग-अलग क़ौमों और अलग-अलग देशों में आनेवाले पैग़म्बरों को यही हिदायत की गई थी, और सबके सब वक़्त और जगहों के अलग-अलग होने के बावजूद एक ही हुक्म के मुख़ातब थे। बाद की आयत में चूँकि तमाम नबियों को एक उम्मत, एक जमाअत, एक गरोह बताया गया है, इसलिए बयान का अन्दाज़ यहाँ ऐसा अपनाया गया कि निगाहों के सामने उन सबके एक गरोह होने का नक़्शा खिंच जाए। मानो वे सारे-के-सारे एक जगह इकट्ठे हैं और सबको एक ही हिदायत दी जा रही है। मगर इस अन्दाज़े-बयान की बारीकी इस दौर के कुछ कम अक़्ल लोगों की समझ में न आ सकी और वे इससे यह नतीजा निकाल बैठे कि यह बात मुहम्मद (सल्ल॰) के बाद आनेवाले नबियों से कही गई है और इससे नबी (सल्ल॰) के बाद भी नुबूवत के सिलसिले के जारी रहने का सुबूत मिलता है। ताज्जुब है, जो लोग ज़बान और अदब (भाषा और साहित्य) की बारीकियों से इतने कोरे हैं, वे क़ुरआन की तफ़सीर करने की जुर्रत करते हैं।

46. पाक चीज़ों से मुराद ऐसी चीज़ें हैं जो अपने आप में ख़ुद भी पाकीज़ा हों और फिर हलाल (जाइज़) तरीक़े से भी हासिल हों। पाक चीज़ें खाने की हिदायत करके रहबानियत (संन्यास) और दुनियापरस्ती के बीच इस्लाम की दरमियानी राह की तरफ़ इशारा कर दिया गया। मुसलमान न तो राहिब या संन्यासी की तरह अपने आपको पाकीज़ा रोज़ी से महरूम करता है, और न दुनियापरस्त की तरह हराम-हलाल के फ़र्क़ के बिना हर चीज़ पर मुँह मार देता है।
नेक अमल से पहले पाक चीज़े खाने की हिदायत से साफ़ इशारा इस तरफ़ निकलता है कि हरामख़ोरी के साथ भले कामों का कोई मतलब नहीं है। भलाई के लिए पहली शर्त यह है कि आदमी हलाल रोज़ी खाए। हदीस में आता है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि "लोगो, अल्लाह ख़ुद पाक है इसलिए पाक चीज़ ही को पसन्द करता है।" फिर आप (सल्ल॰) ने यह आयत तिलावत फ़रमाई और उसके बाद फ़रमाया, "एक आदमी लम्बा सफ़र करके धूल में अटा उलझे बालों के साथ आता है और आसमान की तरफ़ हाथ उठाकर दुआएँ माँगता है, 'ऐ रब, ऐ रब,' मगर हाल यह होता है कि रोटी उसकी हराम, कपड़े उसके हराम और जिस्म उसका हराम की रोटियों से पला हुआ। अब किस तरह ऐसे आदमी की दुआ क़बूल हो।"
(हदीस : मुस्लिम, तिरमिज़ी, अहमद)

وَّ اَ نَا رَبُّكُمْ فَاتَّقُوْنِ ﴿٥٢﴾ فَتَقَطَّعُوْٓا اَمْرَهُمْ بَيْنَهُمْ زُبُرًا ۭ كُلُّ
حِزْبٍۢ بِمَا لَدَيْهِمْ فَرِحُوْنَ ﴿٥٣﴾ فَذَرْهُمْ فِيْ غَمْرَتِهِمْ حَتّٰى حِيْنٍ ﴿٥٤﴾

और मैं तुम्हारा रब हूँ, तो मुझी से तुम डरो।[47]

(53) मगर बाद में लोगों ने अपने दीन को आपस में टुकड़े-टुकड़े कर लिया। हर गरोह के पास जो कुछ है, उसी में वह मगन है[48] (54)– अच्छा, तो छोड़ो उन्हें, डूबे रहें अपनी ग़फ़लत में एक ख़ास वक़्त तक।[49]

47. ''तुम्हारी उम्मत एक ही उम्मत है,'' यानी तुम एक ही गरोह के लोग हो। 'उम्मत' का लफ़्ज़ लोगों के ऐसे गरोह के लिए बोला जाता है जो एक बुनियादी उसूल पर शरीक हो। नबी चूँकि ज़माना और जगहें अलग-अलग होने के बावजूद एक अक़ीदे, एक दीन और एक दावत पर जमा थे, इसलिए फ़रमाया गया कि उन सबकी एक ही उम्मत है। बाद का जुमला ख़ुद बता रहा है कि वह अस्ल उसूल क्या था जिसपर सब पैग़म्बर जमा थे। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए– सूरा-2 बक़रा, आयतें–130-133, 213; सूरा-3 आले-इमरान, आयतें–19, 20, 23 33-34, 64, 79-85; सूरा-4 निसा, आयतें–150-152; सूरा-7 आराफ़, आयतें–59, 65, 73, 85; सूरा-12 यूसुफ़, आयतें–37-40; सूरा-19 मरयम, आयतें–49-59; सूरा-21 अम्बिया, आयतें–71-93।

48. यहाँ सिर्फ़ वाक़िए को बयान करना ही नहीं है, बल्कि उस दलील देने के अन्दाज़ की एक कड़ी भी है जो सूरा के शुरू से चला आ रहा है। दलील का ख़ुलासा यह है कि जब नूह (अलैहि॰) से लेकर हज़रत ईसा (अलैहि॰) तक तमाम पैग़म्बर यही तौहीद और आख़िरत के अक़ीदे की तालीम देते रहे हैं तो यक़ीनन इससे साबित होता है कि इनसानों का अस्ल दीन (धर्म) यही इस्लाम है, और दूसरे तमाम मज़हब जो आज पाए जाते हैं वे इसी की बिगड़ी हुई सूरतें हैं, जो उसकी कुछ सच्चाइयों को मिटाकर और उसके अन्दर कुछ मनगढ़न्त बातों का इज़ाफ़ा करके बना ली गई हैं। अब अगर ग़लती पर हैं तो वे लोग हैं जो उन मज़हबों के दीवाने हो रहे हैं, न कि वह जो उनको छोड़कर अस्ल दीन की तरफ़ बुला रहा है।

49. पहले जुमले और दूसरे जुमले के बीच एक ख़ाली जगह है जिसे भरने के बजाय सुननेवाले की सोच पर छोड़ दिया गया है; क्योंकि इसको तक़रीर का पसमंज़र ख़ुद भर रहा है। पसमंज़र यह है कि ख़ुदा का एक बन्दा पाँच-छह साल से लोगों को अस्ल दीन की तरफ़ बुला रहा है, दलीलों से बात समझा रहा है, इतिहास से मिसालें पेश कर रहा है, उसकी दावत के असरात और नतीजे अमली तौर पर निगाहों के सामने आ रहे हैं, और फिर उसका निजी किरदार भी इस बात की ज़मानत दे रहा है कि वह एक भरोसेमन्द आदमी है। मगर इसके बावजूद लोग सिर्फ़ यही नहीं कि उस बातिल में मगन हैं जो उनको उनके बाप-दादा से विरासत में मिला था, और

اَيَحۡسَبُوۡنَ اَنَّمَا نُمِدُّهُمۡ بِهٖ مِنۡ مَّالٍ وَّبَنِيۡنَ ۝ۙ نُسَارِعُ لَهُمۡ فِى الۡخَيۡرٰتِ ؕ بَلْ لَّا يَشۡعُرُوۡنَ ۝

(55) क्या ये समझते हैं कि हम जो इन्हें माल और औलाद से मदद दिए जा रहे हैं (56) तो मानो इन्हें भलाइयाँ देने में सरगर्म हैं? नहीं, अस्ल मामले की इन्हें समझ नहीं है।[50]

सिर्फ़ इस हद तक भी नहीं कि वे उस हक़ (सत्य) को मानकर नहीं देते जो रौशन दलीलों के साथ पेश किया जा रहा है, बल्कि वे हाथ धोकर उस हक़ की तरफ़ बुलानेवाले के पीछे पड़ जाते हैं और हठधर्मी, ताने, मलामत, ज़ुल्म, झूठ ग़रज़ कोई बुरी-से-बुरी तदबीर भी उसकी दावत को नीचा दिखाने के लिए इस्तेमाल करने से नहीं चूकते। इस सूरते-हाल में अस्ल हक़ दीन के एक होने, और बाद के गढ़े हुए मज़हबों की हक़ीक़त बयान करने के बाद यह कहना कि ''छोड़ो इन्हें, डूबे रहें अपनी ग़फ़लत में'' ख़ुद-ब-ख़ुद इस मानी की दलील बन रहा है कि ''अच्छा अगर ये लोग नहीं मानते और अपनी गुमराहियों ही में मगन रहना चाहते हैं तो छोड़ो इन्हें।'' इस 'छोड़ो' को बिलकुल लफ़्ज़ी मानी में लेकर यह समझ बैठना कि ''अब तबलीग़ ही न करो,'' कलाम के तेवरों के न समझ पाने का सुबूत होगा। ऐसे मौक़ों पर यह बात तबलीग़ और नसीहत से रोकने के लिए नहीं, बल्कि ग़ाफ़िलों को झंझोड़ने के लिए कही जाया करती है। फिर 'एक ख़ास वक़्त तक' के अलफ़ाज़ में एक बड़ी गहरी चेतावनी छिपी है, जो यह बता रही है कि ग़फ़लत में इस तरह डूबे रहना ज़्यादा देर तक नहीं रह सकेगा। एक वक़्त आनेवाला है जब ये चौंक पड़ेंगे और इन्हें पता चल जाएगा कि बुलानेवाला जिस चीज़ की तरफ़ बुला रहा था, वह क्या चीज़ थी और यह जिस चीज़ में मगन थे, वह कैसी थी।

50. इस जगह पर सूरा की शुरू की आयतों पर फिर एक निगाह डाल लीजिए। उसी मज़मून (विषय) को अब फिर एक दूसरे अन्दाज़ से दोहराया जा रहा है। ये लोग 'फ़लाह' (कामयाबी), 'भलाई' और 'ख़ुशहाली' का महदूद माद्दी तसव्वुर रखते थे। इनके नज़दीक जिसने अच्छा खाना, अच्छा लिबास, अच्छा घर पा लिया, जिसको माल और औलाद मिल गई, और जिसे समाज में नाम और शोहरत और रुसूख़ और असर हासिल हो गया, उसने बस कामयाबी पा ली। और जो इसे न पा सका वह नाकाम और नामुराद रहा। इस बुनियादी ग़लतफ़हमी से वे फिर एक और इससे भी ज़्यादा बड़ी ग़लतफ़हमी में मुब्तला हो गए, और वह यह थी कि जिसे इस मानी में कामयाबी नसीब है वह ज़रूर सीधे रास्ते पर है, बल्कि ख़ुदा का प्यारा बन्दा है, वरना कैसे मुमकिन था कि उसे ये कामयाबियाँ हासिल होतीं। और इसके बरख़िलाफ़ जो इस कामयाबी से हमको खुले तौर पर महरूम नज़र आ रहा है वह यक़ीनन अक़ीदे और अमल में गुमराह और ख़ुदा (या ख़ुदाओं) के ग़ज़ब में गिरफ़्तार है। इस ग़लतफ़हमी को, जो अस्ल में माद्दापरस्ताना (भौतिकवादी) नज़रिया रखनेवालों की गुमराही की सबसे ज़्यादा अहम वजहों में

से है, क़ुरआन में जगह-जगह बयान किया गया है, अलग-अलग तरीक़ों से इसको रद्द किया गया है, और तरह-तरह से यह बताया गया है कि अस्ल हक़ीक़त क्या है। मिसाल के तौर पर देखिए– सूरा-2 बक़रा, आयतें–126, 212; सूरा-7 आराफ़, आयत-32; सूरा-9 तौबा, आयतें–55, 69, 85; सूरा-10 यूनुस, आयत-17; सूरा-11 हूद, आयतें–3, 27-31, 38, 39; सूरा-13 रअद, आयत-26; सूरा-18 कह्फ़, आयतें–28, 32-43, 103-105; सूरा-19 मरयम, आयतें–77-80; सूरा-20 ता-हा, आयतें–131, 132; सूरा-21 अम्बिया, आयत-44, हाशियों के साथ।

इस सिलसिले में कुछ अहम हक़ीक़तें ऐसी हैं कि जब तक आदमी उनको अच्छी तरह न समझ ले, उसका ज़ेहन कभी साफ़ नहीं हो सकता।

पहली यह कि 'इनसान की फ़लाह' इससे ज़्यादा कुशादा और इससे ज़्यादा बुलन्द चीज़ है कि उसे किसी एक आदमी या गरोह या क़ौम की सिर्फ़ माद्दी ख़ुशहाली और वक़्ती कामयाबी के मानी में लिया जाए।

दूसरी यह कि फ़लाह को इस महदूद मानी में लेने के बाद अगर इसी को हक़ और बातिल और भलाई और बुराई का पैमाना मान लिया जाए तो यह एक ऐसी बुनियादी गुमराही बन जाती है जिससे निकले बिना एक इनसान कभी अक़ीदे और सोच और अख़लाक़ और किरदार में सीधी राह पा ही नहीं सकता।

तीसरी यह कि दुनिया अस्ल में बदला मिलने की जगह नहीं, बल्कि इम्तिहान की जगह है। यहाँ अख़लाक़ी इनाम और सज़ा अगर है भी तो बहुत महदूद पैमाने पर और अधूरी शक्ल में है, और इम्तिहान का पहलू ख़ुद उसमें भी मौजूद है। इस हक़ीक़त को अनदेखा करके यह समझ लेना कि यहाँ जिसको जो नेमत भी मिल रही है वह 'इनाम' है, और उसका मिलना इनाम पानेवाले के हक़ पर होने और नेक और रब का प्यारा होने का सुबूत है, और जिसपर जो आफ़त भी आ रही है, वह 'सज़ा' है और इस बात की दलील है कि सज़ा पानेवाला बातिल (असत्य) पर है, नेक नहीं है, और अल्लाह के ग़ज़ब का शिकार है, यह सबकुछ अस्ल में एक बहुत बड़ी ग़लतफ़हमी, बल्कि बेवक़ूफ़ी है जिससे बढ़कर शायद ही कोई दूसरी चीज़ हक़ के बारे में हमारी सोच और अख़लाक़ के पैमाने को बिगाड़ देनेवाली हो। एक हक़ीक़त के तलबगार को पहले क़दम पर यह समझ लेना चाहिए कि यह दुनिया अस्ल में एक इम्तिहान की जगह है और यहाँ अनगिनत अलग-अलग शक्लों से लोगों का, क़ौमों का और तमाम इनसानों का इम्तिहान हो रहा है। इस इम्तिहान के बीच में जो अलग-अलग हालात लोगों को पेश आते हैं वे इनाम या सज़ा के आख़िरी फ़ैसले नहीं हैं कि उन्हीं को नज़रियों, अख़लाक़ और आमाल के सही और ग़लत होने का पैमाना बना लिया जाए और उन्हीं को ख़ुदा के यहाँ पसन्दीदा या नापसन्दीदा होने की निशानी ठहरा लिया जाए।

चौथी यह कि फ़लाह का दामन यक़ीनन हक़ और नेकी के साथ बंधा हुआ है, और बिना किसी शक और शुबहे के यह एक हक़ीक़त है कि झूठ और बुराई का अंजाम घाटा है। लेकिन इस दुनिया में चूँकि बातिल और बुराई के साथ कुछ दिनों की वक़्ती और दिखावटी कामयाबी और इसी तरह हक़ और नेकी के साथ ज़ाहिरी और वक़्ती घाटा मुमकिन है, और अकसर यह चीज़

إِنَّ الَّذِينَ هُم مِّنْ خَشْيَةِ رَبِّهِم مُّشْفِقُونَ ﴿٥٧﴾ وَالَّذِينَ هُم بِآيَاتِ رَبِّهِمْ يُؤْمِنُونَ ﴿٥٨﴾ وَالَّذِينَ هُم بِرَبِّهِمْ لَا يُشْرِكُونَ ﴿٥٩﴾

(57) हक़ीक़त में तो वे लोग जो अपने रब के ख़ौफ़ से डरे रहते हैं,[51] (58) जो अपने रब की आयतों पर ईमान लाते हैं,[52] (59) जो अपने रब के साथ किसी को शरीक नहीं

धोखा देनेवाली साबित होती है, इसलिए हक़ और बातिल और भलाई और बुराई की जाँच के लिए एक मुस्तक़िल कसौटी की ज़रूरत है जिसमें धोखे का ख़तरा न हो। पैग़म्बरों (अलैहि०) की तालीमात और आसमानी किताबें हमको वह कसौटी देती हैं, इनसानी आम अक़्ल (Common sense) उसके सही होने की तसदीक़ (पुष्टि) करती है और भलाई और बुराई के बारे में इनसानों के अन्दर जो जानने और मालूम करने की क़ुव्वतें और ख़यालात पाए जाते हैं उसपर गवाही देते हैं।

पाँचवीं यह कि जब कोई शख़्स या क़ौम एक तरफ़ तो हक़ (सत्य) से मुँह मोड़कर और ख़ुदा की नाफ़रमानी, ज़ुल्म और सरकशी में मुब्तला हो, और दूसरी तरफ़ उसपर नेमतों की बारिश हो रही हो, तो अक़्ल और क़ुरआन दोनों के मुताबिक़ यह इस बात की खुली निशानी है कि ख़ुदा ने उसको बहुत ही सख़्त आज़माइश में डाल दिया है और उसपर ख़ुदा की रहमत नहीं, बल्कि उसका ग़ज़ब (प्रकोप) छा गया है। उसे ग़लती पर चोट लगती तो इसका मतलब यह होता कि ख़ुदा अभी उसपर मेहरबान है, उसे ख़बरदार कर रहा है और संभलने का मौक़ा दे रहा है। लेकिन ग़लती पर 'इनाम' यह मतलब रखता है कि उसे सख़्त सज़ा देने का फ़ैसला कर लिया गया है और उसकी नाव इसलिए तैर रही है कि ख़ूब भरकर डूबे। इसके बरख़िलाफ़ जहाँ एक तरफ़ सच्ची ख़ुदापरस्ती हो, अख़लाक़ की पाकीज़गी हो, मामलात में सच्चाई और ईमानदारी हो, ख़ुदा के बन्दों के साथ अच्छा सुलूक और रहमत और मेहरबानी हो, और दूसरी तरफ़ मुसीबतें और परेशानियाँ उसपर मूसलाधार बरस रही हों और चोटों-पर-चोटें उसे लग रही हों, तो यह ख़ुदा के ग़ज़ब की नहीं, उसकी रहमत ही की निशानी है। सुनार उस सोने को तपा रहा है, ताकि ख़ूब निखर जाए और दुनिया पर उसका बिलकुल खरा होना साबित हो जाए। दुनिया के बाज़ार में उसकी क़ीमत न भी उठे तो परवाह नहीं। सुनार ख़ुद उसकी क़ीमत देगा, बल्कि अपनी मेहरबानी से और ज़्यादा देगा। उसकी मुसीबतें अगर ग़ज़ब का पहलू रखती हैं तो ख़ुद उसके लिए नहीं, बल्कि उसके दुश्मनों ही के लिए रखती हैं, या फिर उस सोसाइटी के लिए जिसमें नेक और भले लोग सताए जाएँ और बुरे लोग नवाज़े जाएँ।

51. यानी वे दुनिया में ख़ुदा से बेडर और बेफ़िक्र होकर नहीं रहते कि जो दिल चाहे करते रहें और कभी न सोचें कि ऊपर कोई ख़ुदा भी है जो ज़ुल्म और ज़्यादती पर पकड़नेवाला है, बल्कि उनके दिल में हर वक़्त उसका डर रहता है और वही उन्हें बुराइयों से रोकता रहता है।

52. आयतों से मुराद दोनों तरह की आयतें हैं, वे भी जो ख़ुदा की तरफ़ से उसके पैग़म्बर पेश करते हैं, और वे भी जो इनसान के अपने अन्दर और हर तरफ़ कायनात में फैली हुई हैं। किताब की आयतों पर ईमान लाना उनकी तसदीक़ (पुष्टि) करना है, और अपने अन्दर और

وَالَّذِيْنَ يُؤْتُوْنَ مَآ اٰتَوْا وَّقُلُوْبُهُمْ وَجِلَةٌ اَنَّهُمْ اِلٰى رَبِّهِمْ
رٰجِعُوْنَ ﴿٦٠﴾ اُولٰٓئِكَ يُسٰرِعُوْنَ فِى الْخَيْرٰتِ وَهُمْ لَهَا سٰبِقُوْنَ ﴿٦١﴾

करते,[53] (60) और जिनका हाल यह है कि देते हैं जो कुछ भी देते हैं और दिल उनके इस ख़याल से काँपते रहते हैं कि हमें अपने रब की तरफ़ पलटना है।[54] (61) वही भलाइयों की तरफ़ दौड़नेवाले और पहल करके उन्हें पा लेनेवाले हैं।——

बाहर की निशानियों पर ईमान लाना उन हक़ीक़तों पर ईमान लाना है जिनकी वे दलील दे रही हैं।

53. हालाँकि आयतों पर ईमान लाने से ख़ुद ही यह लाज़िम हो जाता है कि इनसान तौहीद का माननेवाला और उसपर यक़ीन रखनेवाला हो, लेकिन इसके बावजूद शिर्क न करने का ज़िक्र अलग से इसलिए किया गया है कि कई बार इनसान आयतों को मानकर भी किसी-न-किसी तरह के शिर्क में मुब्तला रहता है। मिसाल के तौर पर दिखावा, कि वह भी एक तरह का शिर्क है। या नबियों और नेक बुज़ुर्गों की तालीम को ऐसा बढ़ा-चढ़ा देना जो शिर्क तक पहुँचा दे। या अल्लाह के अलावा दूसरों से दुआ माँगना और मदद तलब करना। या अपनी मरज़ी और ख़ुशी से अल्लाह के अलावा दूसरों को रब बनाकर उनकी बन्दगी और फ़रमाँबरदारी करना और अल्लाह के क़ानून के बजाय दूसरे क़ानूनों की पैरवी। तो अल्लाह की आयतों पर ईमान के बाद शिर्क की मनाही का अलग से ज़िक्र करने का मतलब यह है कि वे अल्लाह के लिए अपनी बन्दगी, फ़रमाँबरदारी और इबादत को बिलकुल ख़ालिस कर लेते हैं, उसके साथ किसी और की बन्दगी का हलका-सा धब्बा भी लगा नहीं रखते।

54. अरबी ज़बान में 'देने' (ईता) का लफ़्ज़ सिर्फ़ माल या कोई माद्दी चीज़ देने ही के मानी में इस्तेमाल नहीं होता, बल्कि उन चीज़ों को देने के लिए भी इस्तेमाल होता है जो माद्दी नहीं होतीं। मिसाल के तौर पर किसी शख़्स की फ़रमाँबरदारी क़बूल कर लेने के लिए कहते हैं कि 'आतैतुहू मिन-नफ़सी-अल-क़बूल'। किसी शख़्स की बात मानने से इनकार कर देने के लिए कहते हैं कि 'आतैतुहू मिन-नफ़्सी अल-इबाअ-त'। तो इस देने का मतलब सिर्फ़ यही नहीं है कि वे अल्लाह के रास्ते में माल देते हैं, बल्कि इसका मतलब अल्लाह के सामने फ़रमाँबरदारी और बन्दगी पेश करना भी है।

इस मतलब के लिहाज़ से आयत का पूरा मतलब यह हुआ कि वे अल्लाह की फ़रमाँबरदारी में जो कुछ भी नेकियाँ करते हैं, जो कुछ भी काम अंजाम देते हैं, जो कुछ भी क़ुरबानियाँ करते हैं, उनपर वे फूलते नहीं हैं, परहेज़गार और अल्लाहवाले होने के घमण्ड और पिन्दार में मुब्तला नहीं होते, बल्कि अपनी क़ुदरत भर सब कुछ करके भी डरते रहते हैं कि ख़ुदा जाने यह क़बूल हो या न हो, हमारे गुनाहों के मुक़ाबले में वज़नदार साबित हो या न हो, हमारे रब के यहाँ हमारी माफ़ी के लिए काफ़ी हो या न हो। यही मतलब है जिसपर वह हदीस रौशनी डालती है जो अहमद, तिरमिज़ी, इब्ने-माजा, हाकिम और इब्ने-जरीर ने नक़्ल की है कि हज़रत आइशा (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) से पूछा कि "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या इसका मतलब यह है कि एक शख़्स

وَلَا نُكَلِّفُ نَفْسًا إِلَّا وُسْعَهَا وَلَدَيْنَا كِتٰبٌ يَّنْطِقُ بِالْحَقِّ

(62) हम किसी शख़्स पर उसकी क़ुदरत (सामर्थ्य) से ज़्यादा बोझ नहीं डालते,[55] और हमारे पास एक किताब है, जो (हर एक का हाल) ठीक-ठीक बता देनेवाली है,[56]

चोरी और ज़िना (व्यभिचार) और शराबख़ोरी करते हुए अल्लाह से डरे?" इस सवाल से मालूम हुआ कि हज़रत आइशा (रज़ि॰) इसे 'यातू-न मा अतौ' (करते हैं जो कुछ भी करते हैं) के मानी में ले रही थीं। जवाब में नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "नहीं, ऐ सिद्दीक़ की बेटी, इससे मुराद वह शख़्स है जो नमाज़ पढ़ता है, रोज़े रखता है, ज़कात देता है और फिर अल्लाह से डरता रहता है।" इस जवाब से पता चला कि आयत की सही क़िरअत 'यातू-न' नहीं बल्कि 'युअतू-न' है और यह 'युअतू-न' सिर्फ़ माल देने के महदूद मानी में नहीं है, बल्कि फ़रमाँबरदारी करने के वसीअ (व्यापक) मानी में है।

यह आयत बताती है कि एक ईमानवाला किस दिली कैफ़ियत के साथ अल्लाह की बन्दगी करता है। उसकी मुकम्मल तस्वीर हज़रत उमर (रज़ि॰) की वह हालत है कि उम्र भर की बेमिसाल ख़िदमतों के बाद जब दुनिया से विदा होने लगते हैं तो ख़ुदा की पूछ-गच्छ से डरते हुए जाते हैं और कहते हैं कि अगर आख़िरत में बराबर-सराबर भी छूट जाऊँ तो भी बहुत है। हज़रत हसन बसरी (रह॰) ने ख़ूब कहा है कि ईमानवाला ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी करता है, फिर भी डरता है, और मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) अल्लाह की नाफ़रमानी करता है, फिर भी निडर रहता है।

55. यहाँ जो बात चली आ रही है उसके पसमंज़र में यह जुमला अपने अन्दर बड़ा गहरा मानी रखता है जिसे अच्छी तरह समझने की कोशिश करनी चाहिए। पिछली आयतों में बताया गया है कि भलाइयाँ लूटनेवाले और आगे बढ़कर उन्हें पा लेनेवाले अस्ल में कौन लोग हैं और उनकी ख़ूबियाँ क्या हैं। इस बात के बाद फ़ौरन ही यह कहा है कि हम किसी को उसकी क़ुदरत से ज़्यादा की तकलीफ़ नहीं देते, यह मतलब रखता है कि यह सीरत, यह अख़लाक़ और यह किरदार कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो इनसान से परे की चीज़ हो। तुम ही जैसे हाड़-मांस के इनसान इस रास्ते पर चलकर दिखा रहे हैं। लिहाज़ा तुम यह नहीं कह सकते कि तुमसे किसी ऐसी चीज़ की माँग की जा रही है जो इनसान के बस से बाहर है। इनसान को तो क़ुदरत उस रवैये की भी हासिल है जिसपर तुम चल रहे हो, और उसकी भी हासिल है जिसपर तुम्हारी अपनी क़ौम के कुछ ईमानवाले चल रहे हैं। अब फ़ैसला जिस चीज़ पर है वह सिर्फ़ यह है कि इन दोनों इमकानी रवैयों में से कौन किसको चुनता है। इस चुनाव में ग़लती करके अगर आज तुम अपनी सारी मेहनतें और कोशिशें बुराइयाँ समेटने में लगा देते हो और भलाइयों से महरूम रह जाते हो तो कल अपनी इस बेवक़ूफ़ी का ख़मियाज़ा भुगतने से तुमको यह झूठा बहाना न बचा सकेगा कि भलाइयों तक पहुँचने का रास्ता हमारे बस से बाहर था। उस वक़्त यह बहाना पेश करोगे तो तुमसे पूछा जाएगा कि अगर यह रास्ता इनसानी क़ुदरत से बाहर था तो तुम ही जैसे बहुत-से इनसान इसपर चलने में कैसे कामयाब हो गए।

56. किताब से मुराद है आमालनामा जो हर एक शख़्स का अलग-अलग तैयार हो रहा है, जिसमें उसकी एक-एक बात, एक-एक हरकत, यहाँ तक कि ख़यालात और इरादों तक की एक-एक

وَهُمْ لَا يُظْلَمُوْنَ ۝٦٢ بَلْ قُلُوْبُهُمْ فِيْ غَمْرَةٍ مِّنْ هٰذَا
وَلَهُمْ اَعْمَالٌ مِّنْ دُوْنِ ذٰلِكَ هُمْ لَهَا عٰمِلُوْنَ ۝٦٣
حَتّٰٓى اِذَآ اَخَذْنَا مُتْرَفِيْهِمْ بِالْعَذَابِ اِذَا هُمْ يَجْـَٔرُوْنَ ۝٦٤

और लोगों पर ज़ुल्म बहरहाल नहीं किया जाएगा।[57] (63) मगर ये लोग इस मामले से बेख़बर हैं।[58] और इनके आमाल भी उस तरीक़े से (जिसका ऊपर ज़िक्र किया गया है) अलग हैं। वे अपने ये करतूत किए चले जाएँगे, (64) यहाँ तक कि जब हम उन अय्याशों को अज़ाब में पकड़ लेंगे[59] तो फिर वे डकराना शुरू कर देंगे[60]—

हालत लिखी जा रही है। इसी के बारे में सूरा-18 कह्फ़ में कहा गया है कि "और आमालनामा सामने रख दिया जाएगा, फिर तुम देखोगे कि मुजरिम लोग उसमें लिखी बातों से डर रहे होंगे और वे कह रहे होंगे कि 'हाय हमारी बदनसीबी! यह कैसी किताब है कि हमारी कोई छोटी या बड़ी हरकत ऐसी नहीं रही जो इसमें दर्ज न हो।' जो-जो कुछ उन्होंने किया था वे सब अपने सामने मौजूद पाएँगे, और तेरा रब किसी पर ज़ुल्म करनेवाला नहीं है।" (आयत-49) कुछ लोगों ने यहाँ किताब से मुराद क़ुरआन लेकर इस आयत का मतलब ही ग़लत कर दिया है।

57. यानी न तो किसी के ज़िम्मे कोई ऐसा इलज़ाम थोपा जाएगा जिसका वह हक़ीक़त में क़ुसूरवार न हो, न किसी की कोई ऐसी नेकी मारी जाएगी जिसके बदले का वह सचमुच हक़दार हो, न किसी को बेवजह सज़ा दी जाएगी और न किसी को हक़ के मुताबिक़ मुनासिब इनाम से महरूम रखा जाएगा।

58. यानी इस बात से कि जो कुछ वे कर रहे हैं, कह रहे हैं और सोच रहे हैं, यह सब कुछ कहीं लिखा जा रहा है और कभी इसका हिसाब होनेवाला है।

59. अस्ल अरबी में 'मुतूरफ़ीन' इस्तेमाल हुआ है जिसका तर्जमा हमने 'अय्याश' किया है। 'मुतूरफ़ीन' अस्ल में उन लोगों को कहते हैं जो दुनियावी धन-दौलत को पाकर मज़े कर रहे हों और अल्लाह और उसके बन्दों के हक़ों को भूले हुए हों। इस लफ़्ज़ का सही मतलब 'अय्याश' से अदा हो जाता है, शर्त यह है कि इसे सिर्फ़ शहवत पूरी करने (वासना-पूर्ति) के मानी में न लिया जाए, बल्कि ऐशपरस्ती के ज़्यादा वसीअ (व्यापक) मानी में लिया जाए।

अज़ाब से मुराद यहाँ शायद आख़िरत का अज़ाब नहीं है, बल्कि दुनिया का अज़ाब है जो इसी ज़िन्दगी में ज़ालिमों को देखना पड़े।

60. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'जुआर' इस्तेमाल किया गया है, जो बैल की उस आवाज़ को कहते हैं जो सख़्त तकलीफ़ के वक़्त वह निकालता है। यह लफ़्ज़ यहाँ सिर्फ़ रोने और फ़रियाद करने के मानी में नहीं, बल्कि उस शख़्स की फ़रियाद और चीख़-पुकार के मानी में बोला गया है जो किसी रहम का हक़दार न हो। इसमें नफ़रत, रुसवाई और तंज़ (व्यंग्य) का अन्दाज़ छिपा हुआ

لَا تَجْـَٔرُوا الْيَوْمَ ۖ اِنَّكُمْ مِّنَّا لَا تُنْصَرُوْنَ ۝٦٥ قَدْ كَانَتْ اٰيٰتِيْ
تُتْلٰى عَلَيْكُمْ فَكُنْتُمْ عَلٰٓى اَعْقَابِكُمْ تَنْكِصُوْنَ ۝٦٦
مُسْتَكْبِرِيْنَ ۖۗ بِهٖ سٰمِرًا تَهْجُرُوْنَ ۝٦٧ اَفَلَمْ يَدَّبَّرُوا الْقَوْلَ اَمْ
جَآءَهُمْ مَّا لَمْ يَاْتِ اٰبَآءَهُمُ الْاَوَّلِيْنَ ۝٦٨ اَمْ لَمْ

(65) अब[61] बन्द करो अपना रोना-चिल्लाना और फ़रियाद करना, हमारी तरफ़ से अब कोई मदद तुम्हें नहीं मिलनी। (66) मेरी आयतें सुनाई जाती थीं तो तुम (रसूल की आवाज़ सुनते ही) उलटे पाँवों भाग निकलते थे,[62] (67) अपने घमंड में उसको ख़ातिर ही में न लाते थे, अपनी चौपालों में उसपर बातें छाँटते[63] और बकवास किया करते थे।

(68) तो क्या इन लोगों ने कभी इस कलाम पर ग़ौर नहीं किया?[64] या वह कोई ऐसी बात लाया है जो कभी उनके बाप-दादा के पास न आई थी?[65] (69) या ये अपने

है। इसके अन्दर यह मतलब छिपा है कि "अच्छा, अब जो अपनी करतूतों का मज़ा चखने की नौबत आई तो बिलबिलाने लगे।"

61. यानी उस वक़्त उनसे यह कहा जाएगा।

62. यानी उसकी बात सुनना तक तुम्हें गवारा न था। यह तक बर्दाश्त न करते थे कि उसकी आवाज़ कान में पड़े।

63. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'सामिरन' इस्तेमाल किया गया है, जो लफ़्ज़ 'समर' से बना है। 'समर' का मतलब है रात के वक़्त बातचीत करना, गप्पें हाँकना, क़िस्से-कहानियाँ कहना। देहाती और क़स्बों की ज़िन्दगी में ये रातों की गप्पें आम तौर पर चौपालों में हुआ करती हैं और यही मक्कावालों का भी दस्तूर था।

64. यानी क्या उनके इस रवैये की वजह यह है कि इस कलाम को उन्होंने समझा ही नहीं, इसलिए वे इसे नहीं मानते? ज़ाहिर है कि यह वजह नहीं है। क़ुरआन कोई पहेली नहीं है, किसी ऐसी ज़बान में नहीं है जिसे समझा न जा सके। इसमें ऐसे मज़मून और बातें शामिल नहीं हैं जो आदमी की समझ से परे हों। वे उसकी एक-एक बात अच्छी तरह समझते हैं और मुख़ालिफ़त इसलिए करते हैं कि जो कुछ वह पेश कर रहा है उसे नहीं मानना चाहते, न कि इसलिए कि उन्होंने समझने की कोशिश की और समझ में न आया।

65. यानी क्या उनके इनकार की वजह यह है कि वह एक निराली बात पेश कर रहा है, जिसे इनसानी कानों ने कभी सुना ही न था? ज़ाहिर है कि यह वजह भी नहीं है। ख़ुदा की तरफ़ से नबियों का आना, किताबें लेकर आना, तौहीद की दावत देना, आख़िरत की पूछ-गच्छ से डराना

يَعْرِفُوْا رَسُوْلَهُمْ فَهُمْ لَهٗ مُنْكِرُوْنَ ۝٦٩

रसूल से कभी के वाक़िफ़ न थे कि (अनजाना आदमी होने के सबब) उससे बिदकते हैं?[66]

और अख़लाक़ की वे भलाइयाँ पेश करना जिनसे लोग वाक़िफ़ हैं, इनमें से कोई चीज़ भी ऐसी नहीं है जो इतिहास में आज पहली बार सामने आई हो, और उससे पहले कभी उसका ज़िक्र न सुना गया हो। उनके आसपास इराक़, सीरिया और मिस्र में नबियों पर नबी आए हैं, जिन्होंने यही बातें पेश की हैं और ये लोग उससे अनजान नहीं हैं। ख़ुद उनकी अपनी सरज़मीन में इबराहीम (अलैहि॰) और इसमाईल (अलैहि॰) आए, हूद (अलैहि॰) और सॉलेह (अलैहि॰) और शुऐब (अलैहि॰) आए, उनके नाम आज तक उनकी ज़बानों पर हैं, उनको ये ख़ुद अल्लाह की तरफ़ से भेजे हुए पैग़म्बर मानते हैं, और इनको यह भी मालूम है कि वे शिर्क करनेवाले न थे, बल्कि एक अल्लाह की बन्दगी सिखाते थे। इसलिए हक़ीक़त में इनके इनकार की यह वजह भी नहीं है कि एक बिलकुल ही अनोखी बात सुन रहे हैं जो कभी न सुनी गई थी। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— सूरा-25 फ़ुरक़ान, हाशिया-84; सूरा-32 सजदा, हाशिया-5, सूरा-34 सबा, हाशिया-35)।

66. यानी क्या इनके इनकार की वजह यह है कि एक बिलकुल अजनबी आदमी, जिसे ये कभी जानते न थे, अचानक इनके बीच आ खड़ा हुआ है और कहता है कि मेरी बातें मान लो और मेरी पैरवी करो। ज़ाहिर है कि यह बात भी नहीं है। जो शख़्स यह दावत पेश कर रहा है वह इनकी अपनी बिरादरी का आदमी है। उसकी ख़ानदानी शराफ़त इनसे छिपी नहीं है। उसकी निजी ज़िन्दगी इनसे छिपी हुई नहीं है। बचपन से जवानी और जवानी से बुढ़ापे की सरहद तक वह इनके सामने पहुँचा है। उसकी सच्चाई से, उसकी हक़परस्ती से, उसकी दियानतदारी से, उसकी बेदाग़ सीरत से ये ख़ूब वाक़िफ़ हैं। उसको ख़ुद 'अमीन' कहते रहे हैं। उसकी दियानत पर इनकी सारी बिरादरी भरोसा करती रही है। उसके बदतरीन दुश्मन तक यह मानते हैं कि वह कभी झूठ नहीं बोला है। उसकी पूरी जवानी पाकीज़गी और पाकदामनी के साथ गुज़री है। सबको मालूम है कि वह बहुत ही शरीफ़ और बहुत ही नेक आदमी है। नर्म दिल है। हक़-पसन्द है। अम्न-पसन्द है। झगड़ों से दूर रहता है। मामले में खरा है। क़ौलो-क़रार का पक्का है। ज़ुल्म न ख़ुद करता है, न ज़ालिमों का साथ देता है। किसी हक़दार का हक़ अदा करने में उसने कोताही नहीं की है। हर मुसीबत के मारे, बेकस और ज़रूरतमन्द के लिए उसका दरवाज़ा एक रहमो-करम करनेवाले हमदर्द का दरवाज़ा है। फिर वे यह भी जानते हैं कि पैग़म्बरी के दावे से एक दिन पहले तक भी किसी ने उसकी ज़बान से कोई ऐसी बात न सुनी थी जिससे शक किया जा सकता हो कि पैग़म्बरी के किसी दावे की तैयारियाँ की जा रही हैं। और जिस दिन उसने दावा किया उसके बाद से आज तक वह एक ही बात कहता रहा है। कोई पलटी उसने नहीं खाई है। कोई रद्दो-बदल अपने दावे और दावत में उसने नहीं किया है। कोई दरजा-ब-दरजा तरक़्क़ी उसके दावों में नज़र नहीं आती कि कोई यह गुमान कर सके कि आहिस्ता-आहिस्ता क़दम जमाकर दावों की घाटी में क़दम बढ़ाए जा रहे हैं। फिर उसकी

اَمۡ يَقُوۡلُوۡنَ بِهٖ جِنَّةٌ ؕ بَلۡ جَآءَهُمۡ بِالۡحَقِّ وَاَكۡثَرُهُمۡ لِلۡحَقِّ
كٰرِهُوۡنَ ۝ وَلَوِ اتَّبَعَ الۡحَقُّ اَهۡوَآءَهُمۡ لَفَسَدَتِ السَّمٰوٰتُ
وَالۡاَرۡضُ وَمَنۡ فِيۡهِنَّ ؕ بَلۡ اَتَيۡنٰهُمۡ بِذِكۡرِهِمۡ فَهُمۡ

(70) या ये इस बात को मानते हैं कि वह मजनून (दीवाना)[67] है? नहीं, बल्कि वह हक़ (सत्य) लाया है और हक़ ही उनमें से ज़्यादातर लोगों को नागवार है (71)—और हक़ अगर कहीं इनकी ख़ाहिशों के पीछे चलता तो ज़मीन और आसमान और उनकी सारी आबादी का निज़ाम छिन्न-भिन्न हो जाता[68]—नहीं, बल्कि हम उनका अपना ही ज़िक्र

ज़िन्दगी इस बात पर भी गवाह है कि जो कुछ उसने दूसरों से कहा है वह पहले ख़ुद करके दिखाया है। उसके कहने और करने में कोई टकराव नहीं है। उसके पास हाथी के दाँत नहीं हैं कि दिखाने के और हों और चबाने के और। वह देने के बाट अलग और लेने के अलग नहीं रखता। ऐसे जाने-बूझे और जाँचे-परखे आदमी के बारे में वे यह नहीं कह सकते कि "साहब दूध का जला छाछ को फूँक-फूँककर पीता है, बड़े-बड़े धोखेबाज़ आते हैं और दिल मोह लेनेवाली बातें करके पहले-पहले भरोसा जमा लेते हैं, बाद में मालूम होता है कि सब सिर्फ़ धोखा-ही-धोखा था, यह साहब भी क्या पता अस्ल में क्या हों और बनावटी मुखौटा उतरने के बाद क्या कुछ इनके अन्दर से निकल आए, इसलिए इनको मानते हुए हमारा तो माथा ठनकता है।" (इस सिलसिले में और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, हाशिया-21; सूरा-10 यूनुस, हाशिया-21; सूरा-17 बनी-इसराईल, हाशिया-105)।

67. यानी क्या इनके इनकार की वजह यह है कि सचमुच मुहम्मद (सल्ल॰) को मजनून (दीवाना) समझते हैं? ज़ाहिर है कि यह भी अस्ली वजह नहीं है, क्योंकि ज़बान से चाहे वे कुछ ही कहते रहें, दिलों में तो उनकी अक़्लमन्दी और समझदारी को मानते हैं। इसके अलावा एक पागल और एक होशमन्द आदमी का फ़र्क़ कोई ऐसा छिपा हुआ तो नहीं होता कि दोनों में फ़र्क़ करना मुश्किल हो। आख़िर एक हठधर्म और बेहया आदमी के सिवा कौन इस कलाम को सुनकर यह कह सकता है कि यह किसी दीवाने का कलाम है, और इस शख़्स की ज़िन्दगी को देखकर यह राय ज़ाहिर कर सकता है कि यह किसी होश गंवाए हुए आदमी की ज़िन्दगी है? बड़ा ही अजीब है वह जुनून (या पश्चिम के प्राच्यविदों की बकवास के मुताबिक़ मिरगी का वह दौरा) जिसमें आदमी की ज़बान से क़ुरआन जैसा कलाम निकले और जिसमें आदमी एक तहरीक (आन्दोलन) की ऐसी कामयाब रहनुमाई करे कि अपने ही देश की नहीं, दुनिया भर की क़िस्मत बदल डाले।

68. इस मुख़्तसर से जुमले में एक बड़ी बात कही गई है, जिसे अच्छी तरह समझने की कोशिश करनी चाहिए। दुनिया में नादान लोगों का आम तौर से यह रवैया होता है कि जो शख़्स उनसे हक़ बात कहता है, वे उससे नाराज़ हो जाते हैं। मानो उनका मतलब यह होता है कि बात वह

عَنْ ذِكْرِهِمْ مُّعْرِضُوْنَ ۞ اَمْ تَسْـَٔلُهُمْ خَرْجًا فَخَرَاجُ رَبِّكَ خَيْرٌ ۖ

उनके पास लाए हैं और वे अपने ज़िक्र से मुँह मोड़ रहे हैं।[69]

(72) क्या तू उनसे कुछ माँग रहा है? तेरे लिए तेरे रब का दिया ही बेहतर है और

कही जाए जो उनकी ख़ाहिश के मुताबिक़ हो, न कि वह जो हक़ीक़त और सच्चाई के मुताबिक़ हो। हालाँकि हक़ीक़त बहरहाल हक़ीक़त ही रहती है, चाहे वह किसी को पसन्द हो या नापसन्द। तमाम दुनिया मिलकर भी चाहे तो किसी वाक़िए को ग़ैर-वाक़िआ और किसी हक़ बात को ग़लत बात नहीं बना सकती, कहाँ यह कि हक़ीक़तें और वाक़िआत एक-एक शख़्स की ख़ाहिशों के मुताबिक़ ढला करें और हर पल अनगिनत एक-दूसरे से टकरानेवाली ख़ाहिशों से मेल खाते रहें। बेवक़ूफ़ी से भरे ज़ेहन कभी यह सोचने की तकलीफ़ भी गवारा नहीं करते कि हक़ीक़त और उनकी ख़ाहिश के बीच अगर फ़र्क़ है तो यह क़ुसूर हक़ीक़त का नहीं, बल्कि उनके अपने मन का है। वे उसकी मुख़ालिफ़त करके उसका कुछ न बिगाड़ सकेंगे, अपना ही कुछ बिगाड़ लेंगे। कायनात (सृष्टि) का यह अज़ीमुश्शान निज़ाम (व्यवस्था) जिन अटल हक़ीक़तों और क़ानूनों पर क़ायम है, उनके साये में रहते हुए इनसान के लिए इसके सिवा कोई चारा ही नहीं है कि अपने ख़यालात, ख़ाहिशों और रवैये को हक़ीक़त के मुताबिक़ बनाए, और इस मक़सद के लिए हर वक़्त दलील, तजरिबे और मुशाहिदे से यह जानने की कोशिश करता रहे कि सही बात क्या है। सिर्फ़ एक बेवक़ूफ़ ही यहाँ सोचने और अमल करने का यह रवैया अपना सकता है कि जो कुछ वह समझ बैठा है, या जो कुछ उसका जी चाहता है कि हो, या जो कुछ अपने तास्सुबात (दुराग्रहों) की बुनियाद पर वह मान चुका है कि है या होना चाहिए, उसपर जमकर रह जाए और उसके ख़िलाफ़ किसी की मज़बूत-से-मज़बूत और मुनासिब-से-मुनासिब दलील को भी सुनना गवारा न करे।

69. यहाँ लफ़्ज़ 'ज़िक्र' के तीन मतलब हो सकते हैं और तीनों ही सही बैठते हैं–

(1) 'ज़िक्र' फ़ितरत के बयान के मानी में। इस लिहाज़ से आयत का मतलब यह होगा कि हम किसी दूसरी दुनिया की बातें नहीं कर रहे हैं, बल्कि उनकी अपनी ही हक़ीक़त और फ़ितरत और उसकी माँगें उनके सामने पेश कर रहे हैं, ताकि वे अपने इस भूले हुए सबक़ को याद करें, मगर वे इसे क़बूल करने से कतरा रहे हैं। उनका यह भागना किसी ग़ैर-मुताल्लिक़ (असम्बद्ध) चीज़ से नहीं, बल्कि अपने ही 'ज़िक्र' से है।

(2) 'ज़िक्र' नसीहत के मानी में। इसके मुताबिक़ आयत की तफ़सीर यह होगी कि जो कुछ पेश किया जा रहा है यह उन्हीं के भले के लिए एक नसीहत है, और उनका यह भागना किसी और चीज़ से नहीं अपनी ही भलाई की बात से है।

(3) 'ज़िक्र' इज़्ज़त और क़द्रदानी के मानी में। इस मानी को अपनाया जाए तो आयत का मतलब यह होगा कि हम वह चीज़ उनके पास लाए हैं जिसे ये क़बूल करें तो इन्हीं को इज़्ज़त और सरबुलन्दी हासिल होगी। इससे उनका यह मुँह मोड़ना किसी और चीज़ से नहीं,

وَّهُوَ خَيْرُ الرّٰزِقِيْنَ ۝٧٢ وَاِنَّكَ لَتَدْعُوْهُمْ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ۝٧٣
وَاِنَّ الَّذِيْنَ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِالْاٰخِرَةِ عَنِ الصِّرَاطِ لَنٰكِبُوْنَ ۝٧٤

वह सबसे अच्छी रोज़ी देनेवाला है।[70] (73) तू तो उनको सीधे रास्ते की तरफ़ बुला रहा है। (74) मगर जो लोग आख़िरत को नहीं मानते, वे सीधे रास्ते से हटकर चलना चाहते हैं।[71]

अपनी ही तरक़्क़ी और अपने ही उठान के एक सुनहरे मौक़े से मुँह मोड़ना है।

70. यह नबी (सल्ल०) की पैग़म्बरी के हक़ में एक और दलील है। यानी यह कि नबी अपने इस काम में बिलकुल बे-ग़रज़ हैं। कोई शख़्स ईमानदारी के साथ यह इलज़ाम नहीं लगा सकता कि आप (सल्ल०) ये सारे पापड़ इसलिए बेल रहे हैं कि कोई मन में छिपा मक़सद आप (सल्ल०) के सामने है। अच्छी-ख़ासी तिजारत चमक रही थी, अब ग़रीबी में मुब्तला हो गए। क़ौम में इज़्ज़त के साथ देखे जाते थे। हर शख़्स हाथों-हाथ लेता था। अब गालियाँ और पत्थर खा रहे हैं, बल्कि जान तक के लाले पड़े हैं। चैन से अपने बीवी-बच्चों में हँसी-ख़ुशी दिन गुज़ार रहे थे। अब एक ऐसी सख़्त कशमकश में पड़ गए हैं जो किसी पल चैन नहीं लेने देती। इसपर और ज़्यादा यह कि बात वह लेकर उठे हैं जिसकी बदौलत सारा देश दुश्मन हो गया है, यहाँ तक कि ख़ुद अपने ही भाई-बन्द ख़ून के प्यासे हो रहे हैं। कौन कह सकता है कि यह एक ख़ुदग़रज़ आदमी के करने का काम है? ख़ुदग़रज़ आदमी अपनी क़ौम और क़बीले की तरफ़दारी का अलमबरदार बनकर अपनी क़ाबिलियत और जोड़-तोड़ से सरदारी हासिल करने की कोशिश करता, न कि वह बात लेकर उठता जो सिर्फ़ यही नहीं कि तमाम क़ौमी तरफ़दारियों के ख़िलाफ़ एक चैलेंज है, बल्कि सिरे से उस चीज़ की जड़ ही काट देती है जिसपर अरब के मुशरिक लोगों में उसके क़बीले की चौधराहट क़ायम है। यह वह दलील है जिसको क़ुरआन में न सिर्फ़ नबी (सल्ल०) की, बल्कि आम तौर से तमाम पैग़म्बरों (अलैहि०) की सच्चाई के सुबूत में बार-बार पेश किया गया है। तफ़सीलात के लिए देखिए— सूरा-6 अनआम, आयत-90; सूरा-10 यूनुस, आयत-72; सूरा-11 हूद, आयत-29, 51; सूरा-12 यूसुफ़, आयत-104; सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयत-57; सूरा-26 शुअरा, आयत-109, 127, 145, 164, 180; सूरा-34 सबा, आयत-47; सूरा-36 या०सीन०, आयत-21; सूरा-38 सॉद, आयत-86; सूरा-42 शूरा, आयत-23; सूरा-53 नज्म, आयत-40, हाशियों समेत।

71. यानी आख़िरत के इनकार ने उनको ग़ैर-ज़िम्मेदार और ज़िम्मेदारी का एहसास न होने ने उनको बेफ़िक्र बनाकर रख दिया है। जब वे सिरे से यही नहीं समझते कि उनकी इस ज़िन्दगी का कोई अंजाम और नतीजा भी है और किसी के सामने अपनी इस पूरी ज़िन्दगी के कारनामों का हिसाब भी देना है, तो फिर उन्हें इसकी क्या फ़िक्र हो सकती है कि हक़ क्या है और बातिल क्या। जानवरों की तरह उनका भी ज़्यादा-से-ज़्यादा मक़सद बस यह है कि तन और मन की

وَلَوْ رَحِمْنٰهُمْ وَكَشَفْنَا مَا بِهِمْ مِّنْ ضُرٍّ لَّلَجُّوْا فِيْ طُغْيَانِهِمْ
يَعْمَهُوْنَ ﴿٧٥﴾ وَلَقَدْ اَخَذْنٰهُمْ بِالْعَذَابِ فَمَا اسْتَكَانُوْا لِرَبِّهِمْ وَمَا
يَتَضَرَّعُوْنَ ﴿٧٦﴾ حَتّٰٓى اِذَا فَتَحْنَا عَلَيْهِمْ بَابًا ذَا عَذَابٍ شَدِيْدٍ اِذَا هُمْ

(75) अगर हम इनपर रहम करें और वह तकलीफ़, जिसमें आजकल ये मुब्तला हैं, दूर कर दें तो ये अपनी सरकशी में बिलकुल ही बहक जाएँगे।[72] (76) इनका हाल तो यह है कि हमने इन्हें तकलीफ़ में मुब्तला किया, फिर भी ये अपने रब के आगे न झुके और न आजिज़ी (विनम्रता) अपनाते हैं। (77) अलबत्ता जब नौबत यहाँ तक पहुँच जाएगी कि हम इनपर सख़्त अज़ाब का दरवाज़ा खोल दें तो यकायक तुम देखोगे कि इस

ज़रूरतें ख़ूब अच्छी तरह पूरी होती रहें। यह मक़सद हासिल हो तो फिर हक़ और बातिल की बहस उनके लिए बिलकुल बेकार है। और इस मक़सद के हासिल होने में कोई ख़राबी पैदा हो जाए तो ज़्यादा-से-ज़्यादा वे जो कुछ सोचेंगे वह सिर्फ़ यह कि उस ख़राबी की वजह क्या है और उसे किस तरह दूर किया जा सकता है। सीधा और सच्चा रास्ता इस सोच के लोग न चाह सकते हैं, न पा सकते हैं।

72. इशारा है उस तकलीफ़ और मुसीबत की तरफ़ जिसमें वे क़हत (अकाल) की वजह से पड़े हुए थे। इस क़हत के बारे में रिवायतें नक़्ल करते हुए कुछ लोगों ने दो क़हतों (अकालों) के क़िस्सों को गड्डमड्ड कर दिया है, जिसकी वजह से आदमी को यह समझना मुश्किल हो जाता है कि यह हिजरत से पहले का वाक़िआ है या बाद का। अस्ल मामला यह है कि नबी (सल्ल.) के दौर में मक्कावालों को दो बार क़हत का सामना करना पड़ा है। एक हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) को पैग़म्बर बनाए जाने के आग़ाज़ से कुछ मुद्दत बाद, दूसरा हिजरत के कई साल बाद जबकि सुमामा-बिन-उसाल ने यमामा से मक्का की तरफ़ अनाज का आना रोक दिया था। यहाँ ज़िक्र दूसरे क़हत का नहीं, बल्कि पहले क़हत का है। उसके बारे में हदीस की किताबों—बुख़ारी और मुस्लिम में इब्ने-मसऊद (रज़ि.) की यह रिवायत है कि जब क़ुरैश ने नबी (सल्ल.) की दावत क़बूल करने से लगातार इनकार किया और सख़्त मुख़ालिफ़त शुरू कर दी तो नबी (सल्ल.) ने दुआ की कि "ऐ अल्लाह, इनके मुक़ाबले में मेरी मदद यूसुफ़ के सात साला क़हत जैसे सात सालों से कर।" चुनाँचे ऐसा सख़्त क़हत शुरू हुआ कि मुरदार तक खाने की नौबत आ गई। इस क़हत की तरफ़ मक्की सूरतों में बहुत-से इशारे मिलते हैं। मिसाल के तौर पर देखिए—सूरा-6 अनआम, आयतें—42-44; सूरा-7 आराफ़, आयतें—94-99; सूरा-10 यूनुस, आयतें—11,

فِيهِ مُبْلِسُونَ ﴿٧٧﴾ وَهُوَ الَّذِي أَنْشَأَ لَكُمُ السَّمْعَ وَالْأَبْصَارَ وَالْأَفْئِدَةَ ۚ
قَلِيلًا مَّا تَشْكُرُونَ ﴿٧٨﴾ وَهُوَ الَّذِي ذَرَأَكُمْ فِي الْأَرْضِ وَإِلَيْهِ
تُحْشَرُونَ ﴿٧٩﴾ وَهُوَ الَّذِي يُحْيِي وَيُمِيتُ وَلَهُ اخْتِلَافُ اللَّيْلِ وَالنَّهَارِ ۚ

हालत में ये हर भलाई से मायूस हैं।[73]

(78) वह अल्लाह ही तो है जिसने तुम्हें सुनने और देखने की ताक़तें दीं और सोचने को दिल दिए। मगर तुम लोग कम ही शुक्रगुज़ार होते हो।[74] (79) वही है जिसने तुम्हें ज़मीन में फैलाया, और उसी की तरफ़ तुम समेटे जाओगे। (80) वही ज़िन्दगी देता है और वही मौत देता है। रात-दिन का आना-जाना उसी की क़ुदरत के क़ब्ज़े में है।[75] क्या

12, 21; सूरा-16 नह्ल, आयतें—112, 113; सूरा-44 दुख़ान, आयतें 10-16, हाशियों समेत।

73. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'मुबलिसून' इस्तेमाल हुआ है जिसका पूरा मतलब मायूसी से अदा नहीं हो सकता। 'ब-ल-स' और 'इबलास' का लफ़्ज़ कई मानी में इस्तेमाल होता है। हैरत की वजह से दंग होकर रह जाना, डर और दहशत के मारे दम-ब-ख़ुद रह जाना, रंज और ग़म के मारे हिम्मत हार जाना, हर तरफ़ से नाउम्मीद होकर हिम्मत तोड़ बैठना। और इसी का एक पहलू मायूसी और नामुरादी की वजह से तैश में आ जाना भी है, जिसकी वजह से शैतान का नाम इबलीस रखा गया है। इस नाम में यह मतलब छिपा है कि मायूसी और नाकामी (Frustration) की वजह से उसका ज़ख़्मी घमण्ड इतना ज़्यादा बेक़ाबू हो गया है कि अब वह जान से हाथ धोकर हर बाज़ी खेल जाने और हर जुर्म कर गुज़रने पर तुला हुआ है।

74. मतलब यह है कि बदनसीबो, यह आँख-कान और दिल-दिमाग़ तुमको क्या इसलिए दिए गए थे कि तुम इनसे बस वह काम लो जो जानवर लेते हैं? क्या इनका सिर्फ़ यही इस्तेमाल है कि तुम जानवरों की तरह तन और मन की माँगें पूरी करने के ज़रिए ही तलाश करते रहो और हर वक़्त अपनी ज़िन्दगी का मेयार ऊँचा करने की तदबीरें ही सोचते रहा करो? क्या इससे बढ़कर भी कोई नाशुक्री हो सकती है कि तुम बनाए तो गए थे इनसान और बनकर रह गए निरे हैवान? जिन आँखों से सब कुछ देखा जाए मगर हक़ीक़त की तरफ़ रहनुमाई करनेवाली निशानियाँ ही न देखी जाएँ, जिन कानों से सब कुछ सुना जाए मगर एक सबक़आमोज़ बात ही न सुनी जाए, और जिस दिल और दिमाग़ से सब कुछ सोचा जाए मगर बस यही न सोचा जाए कि मुझे यह वुजूद कैसे मिला है, किसलिए मिला है और क्या मेरी ज़िन्दगी का कोई मक़सद है। अफ़सोस है अगर वे फिर एक बैल के बजाय एक इनसान के ढाँचे में हों।

75. इल्म के ज़रिए (शुऊर और सोचने-समझने की ताक़त) और उनके सही इस्तेमाल से इनसान की ग़फ़लत पर ख़बरदार करने के बाद अब उन निशानियों की तरफ़ ध्यान दिलाया गया है जिनको अगर खुली आँखों से देखा जाए और जिनकी निशानदेही से अगर सही तौर पर दलील

اَفَلَا تَعْقِلُوْنَ﴿۸۰﴾ بَلْ قَالُوْا مِثْلَ مَا قَالَ الْاَوَّلُوْنَ﴿۸۱﴾ قَالُوْٓا ءَ اِذَا
مِتْنَا وَ كُنَّا تُرَابًا وَّعِظَامًا ءَ اِنَّا لَمَبْعُوْثُوْنَ﴿۸۲﴾ لَقَدْ وُعِدْنَا نَحْنُ
وَاٰبَآؤُنَا هٰذَا مِنْ قَبْلُ اِنْ هٰذَآ اِلَّآ اَسَاطِيْرُ الْاَوَّلِيْنَ﴿۸۳﴾ قُلْ لِّمَنِ
الْاَرْضُ وَمَنْ فِيْهَآ اِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ﴿۸۴﴾ سَيَقُوْلُوْنَ لِلّٰهِ ؕ قُلْ
اَفَلَا تَذَكَّرُوْنَ﴿۸۵﴾ قُلْ مَنْ رَّبُّ السَّمٰوٰتِ السَّبْعِ وَرَبُّ الْعَرْشِ

तुम्हारी समझ में यह बात नहीं आती?[76] (81) मगर ये लोग वही कुछ कहते हैं जो इनके पहले के लोग कह चुके हैं। (82) ये कहते हैं, "क्या जब हम मरकर मिट्टी हो जाएँगे और हड्डियों का पंजर बनकर रह जाएँगे तो हमको फिर ज़िन्दा करके उठाया जाएगा? (83) हमने भी यह वादे बहुत सुने हैं और हमसे पहले हमारे बाप-दादा भी सुनते रहे हैं। ये सिर्फ़ पुराने ज़माने की कहानियाँ हैं।"[77]

(84) इनसे कहो, बताओ अगर तुम जानते हो, कि यह ज़मीन और इसकी सारी आबादी किसकी है? (85) ये ज़रूर कहेंगे, अल्लाह की। कहो, फिर तुम होश में क्यों नहीं आते?[78] (86) इनसे पूछो, सातों आसमानों और अर्शे-अज़ीम (महान सिंहासन) का

ली जाए, या खुले कानों से किसी समझ में आनेवाली दलील को सुना जाए, तो आदमी हक़ तक पहुँच सकता है। यह भी मालूम कर सकता है कि दुनिया का यह कारख़ाना बेख़ुदा या बहुत-से ख़ुदाओं का पैदा किया हुआ और बनाया हुआ नहीं है, बल्कि एक ख़ुदा की ताक़त और कारीगरी की बुनियाद पर क़ायम है। और यह भी जान सकता है कि यह बेमक़सद नहीं है, निरा खेल और सिर्फ़ एक बेकार का जादू नहीं है, बल्कि एक हिकमत (तत्वदर्शिता) पर बना हुआ निज़ाम है, जिसमें इनसान जैसे अधिकार रखनेवाले जानदार का ग़ैर-जवाबदेह होना और बस यूँ ही मरकर मिट्टी हो जाना मुमकिन नहीं है।

76. वाज़ेह रहे कि यहाँ तौहीद और मौत के बाद की ज़िन्दगी, दोनों पर एक साथ दलील दी जा रही है, और आगे तक जिन निशानियों की तरफ़ ध्यान दिलाया गया है उनसे शिर्क के ग़लत होने और आख़िरत के इनकार के ग़लत होने दोनों पर दलील लाई जा रही है।

77. ख़याल रहे कि उनका आख़िरत को नामुमकिन समझना सिर्फ़ आख़िरत ही का इनकार न था, बल्कि ख़ुदा की क़ुदरत और हिकमत का भी इनकार था।

78. यानी क्यों यह बात नहीं समझते कि फिर ख़ुदा के सिवा कोई बन्दगी का हक़दार भी नहीं है,

الْعَظِيْمِ ۝٨٦ سَيَقُوْلُوْنَ لِلّٰهِ ۭ قُلْ اَفَلَا تَتَّقُوْنَ ۝٨٧ قُلْ مَنْۢ بِيَدِهٖ
مَلَكُوْتُ كُلِّ شَيْءٍ وَّهُوَ يُجِيْرُ وَلَا يُجَارُ عَلَيْهِ اِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۝٨٨
سَيَقُوْلُوْنَ لِلّٰهِ ۭ قُلْ فَاَنّٰى تُسْحَرُوْنَ ۝٨٩ بَلْ اَتَيْنٰهُمْ بِالْحَقِّ وَاِنَّهُمْ

मालिक कौन है? (87) ये ज़रूर कहेंगे, अल्लाह।[79] कहो, फिर तुम डरते क्यों नहीं?[80] (88) इनसे कहो, बताओ अगर तुम जानते हो कि हर चीज़ पर इक़्तिदार[81] किसका है? और कौन है वह जो पनाह देता है और उसके मुक़ाबले में कोई पनाह नहीं दे सकता? (89) ये ज़रूर कहेंगे कि यह बात तो अल्लाह ही के लिए है। कहो, फिर कहाँ से तुमको धोखा लगता है?[82] (90) जो हक़ बात है वह हम उनके सामने ले आए हैं, और कोई

और उसके लिए ज़मीन की इस आबादी को दोबारा पैदा कर देना भी मुश्किल नहीं है।

79. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'लिल्लाह' इस्तेमाल हुआ है, यानी "ये सब चीज़ें भी अल्लाह की हैं।" हमने तर्जमे में सिर्फ़ उर्दू और हिन्दी ज़बान की ख़ूबसूरती के लिए वह अन्दाज़े-बयान अपनाया है।

80. यानी, फिर क्यों तुम्हें उससे बग़ावत करते और उसके सिवा दूसरों की बन्दगी करते हुए डर नहीं लगता? और तुम्हारे अन्दर यह डर क्यों नहीं पैदा होता कि आसमान और ज़मीन के बादशाह ने अगर कभी हमसे हिसाब लिया तो हम क्या जवाब देंगे?

81. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'म-लकूत' इस्तेमाल हुआ है जिसमें 'मुल्क' (बादशाही) और 'मिल्क' (मालिकियत), दोनों मतलब शामिल हैं, और इस लफ़्ज़ म-लकूत में ये मानी शामिल हैं कि ये चीज़ें उसे मुकम्मल तौर पर हासिल हैं। इस तफ़सील के लिहाज़ से आयत में पेश किए गए सवाल का पूरा मतलब यह है कि "हर चीज़ पर मुकम्मल इक़्तिदार किसका है और हर चीज़ पर पूरे-पूरे मालिकाना अधिकार किसको हासिल हैं?"

82. अस्ल अरबी में अलफ़ाज़ हैं 'अन्ना तुस-हरून' जिनका लफ़्ज़ी तर्जमा है "तुमपर कहाँ से जादू किया गया है।" जादू की हक़ीक़त यह है कि वह एक चीज़ को उसकी अस्ल शक्ल और सही सूरत के ख़िलाफ़ बनाकर दिखाता है और देखनेवाले के ज़ेहन में यह ग़लत असर पैदा करता है कि उस चीज़ की असलियत वह है जो बनावटी तौर पर जादूगर पेश कर रहा है। इसलिए आयत में जो सवाल किया गया है उसका मतलब यह है कि किसने तुमपर यह जादू कर दिया है कि ये सब बातें जानने के बावुजूद हक़ीक़त तुम्हारी समझ में नहीं आती? किसका जादू तुमपर चल गया है कि जो मालिक नहीं हैं वे तुम्हें मालिक या उसके साझीदार नज़र आते हैं और जिन्हें कोई इक़्तिदार हासिल नहीं है वे अस्ल इक़्तिदारवाले की तरह, बल्कि उससे भी बढ़कर तुमको बन्दगी के हक़दार महसूस होते हैं? किसने तुम्हारी आँखों पर पट्टी बाँध दी है कि

لَكٰذِبُوْنَ۝ مَا اتَّخَذَ اللّٰهُ مِنْ وَّلَدٍ وَّمَا كَانَ مَعَهٗ مِنْ اِلٰهٍ اِذًا لَّذَهَبَ

शक नहीं कि ये लोग झूठे हैं।[83] (91) अल्लाह ने किसी को अपनी औलाद नहीं बनाया है,[84] और कोई दूसरा ख़ुदा उसके साथ नहीं है। अगर ऐसा होता तो हर ख़ुदा अपनी

जिस ख़ुदा के बारे में तुम ख़ुद मानते हो कि उसके मुक़ाबले में कोई पनाह देनेवाला नहीं है उससे ग़द्दारी और बेवफ़ाई करते हो और फिर भरोसा उनकी पनाह पर कर रहे हो जो उससे तुमको नहीं बचा सकते? किसने तुमको इस धोखे में डाल दिया है कि जो हर चीज़ का मालिक है वह तुमसे कभी न पूछेगा कि तुमने मेरी चीज़ों को किस तरह इस्तेमाल किया, और जो सारी कायनात का बादशाह है वह कभी तुमसे इसकी पूछ-गच्छ न करेगा कि मेरी बादशाही में तुम अपनी बादशाहियाँ चलाने और दूसरों की बादशाहियाँ मानने के कैसे हक़दार हो गए? यह सवाल उस हालत में और भी ज़्यादा मानी अपने अन्दर रखता है जब यह बात सामने रहे कि मक्का के क़ुरैश के लोग नबी (सल्ल॰) पर जादू का इलज़ाम रखते थे। इस तरह मानो सवाल के इन्हीं अलफ़ाज़ में यह बात भी कह दी गई कि "बेवक़ूफ़ो! जो शख़्स तुम्हें अस्ल हक़ीक़त (वह हक़ीक़त जिसे तुम्हारे अपने मानने के मुताबिक़ हक़ीक़त होना चाहिए) बताता है वह तो तुमको नज़र आता है जादूगर, और जो लोग तुम्हें रात-दिन हक़ीक़त के ख़िलाफ़ बातें मनवाते रहते हैं, यहाँ तक कि जिन्होंने तुमको साफ़-साफ़ अक़्ल और दलील के ख़िलाफ़, तजरिबे और मुशाहदे के ख़िलाफ़, तुम्हारी अपनी मानी हुई सच्चाइयों के ख़िलाफ़, सरासर झूठी और बेअस्ल बातों को माननेवाला बना दिया है, उनके बारे में कभी तुम्हें यह शक नहीं होता कि अस्ल जादूगर तो वे हैं।

83. यानी अपनी इस बात में झूठे कि अल्लाह के सिवा किसी और को भी ख़ुदाई (ख़ुदाई की सिफ़ात, इख़्तियारात और हक़, या उनमें से कोई हिस्सा) हासिल है। और अपनी इस बात में झूठे कि मरने के बाद ज़िन्दगी मुमकिन नहीं है। उनका झूठ उन बातों से साबित है जिन्हें वे ख़ुद मानते और तस्लीम करते हैं। एक तरफ़ यह मानना कि ज़मीन और आसमान का मालिक और कायनात की हर चीज़ पर अधिकार रखनेवाला अल्लाह है, और दूसरी तरफ़ यह कहना कि ख़ुदाई अकेले उसी की नहीं है, बल्कि दूसरों का भी (जो हर हाल में उसकी मिल्कियत में और उसके मातहत ही होंगे) उसमें कोई हिस्सा है, ये दोनों बातें साफ़ तौर पर एक-दूसरे से टकराती हैं। इसी तरह एक तरफ़ यह कहना कि हमको और इस अज़ीमुश्शान कायनात को ख़ुदा ने पैदा किया है, और दूसरी तरफ़ यह कहना कि ख़ुदा अपनी ही पैदा की हुई चीज़ों और लोगों को दोबारा पैदा नहीं कर सकता, अक़्ल के बिलकुल ख़िलाफ़ है। लिहाज़ा उनकी अपनी मानी हुई सच्चाइयों से यह साबित है कि शिर्क और आख़िरत का इनकार, दोनों ही झूठे अक़ीदे हैं, जो उन्होंने अपना रखे हैं।

84. यहाँ किसी को यह ग़लतफ़हमी न हो कि यह बात सिर्फ़ ईसाइयत को रद्द करने के लिए कही गई है। नहीं, अरब के मुशरिक लोग भी अपने माबूदों को ख़ुदा की औलाद बताते थे, और

كُلُّ اِلٰهٍ بِمَا خَلَقَ وَلَعَلَا بَعْضُهُمْ عَلٰى بَعْضٍ ؕ سُبْحٰنَ اللّٰهِ عَمَّا
يَصِفُوْنَ ﴿٩١﴾ عٰلِمِ الْغَيْبِ وَالشَّهَادَةِ فَتَعٰلٰى عَمَّا يُشْرِكُوْنَ ﴿٩٢﴾

पैदा की हुई चीज़ों को लेकर अलग हो जाता, और फिर वे एक-दूसरे पर चढ़ दौड़ते।[85] पाक है अल्लाह उन बातों से जो ये लोग बनाते हैं। (92) खुले और छिपे का जाननेवाला,[86] वह बहुत बुलन्द है उस शिर्क से जो ये लोग कर रहे हैं।

दुनिया के ज़्यादातर मुशरिक इस गुमराही में उनके हम-ख़याल रहे हैं। चूँकि ईसाइयों का ईसा (अलैहि॰) को 'अल्लाह का बेटा' मानने का अक़ीदा ज़्यादा मशहूर हो गया है, इसलिए क़ुरआन के कुछ बड़े आलिमों तक को यह ग़लतफ़हमी हो गई कि यह आयत इसी के रद्द में उतरी है। हालाँकि शुरू से बात का रुख़ मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की तरफ़ है और आख़िर तक सारी बातें उन्हीं को सामने रखकर की गई हैं। इस मौक़े पर यकायक ईसाइयों की तरफ़ बात का रुख़ फिर जाना बेमतलब है। अलबत्ता इसके साथ-साथ इसमें उन तमाम लोगों के अक़ीदों को भी रद्द किया गया है जो ख़ुदा से अपने माबूदों या पेशवाओं का रिश्ता जोड़ते हैं, चाहे वे ईसाई हों, अरब के मुशरिक हों या कोई और।

85. यानी यह किसी तरह मुमकिन न था कि कायनात की अलग-अलग ताक़तों और अलग-अलग हिस्सों के बनानेवाले और मालिक अलग-अलग ख़ुदा होते और फिर उनके बीच ऐसा भरपूर तआवुन (सहयोग) होता जैसा कि तुम इस दुनिया के पूरे निज़ाम (व्यवस्था) की अनगिनत ताक़तों और बेहद और बेहिसाब चीज़ों में, और अनगिनत तारों और सैयारों में पा रहे हो। निज़ाम की बाक़ायदगी और निज़ाम के हिस्सों में तालमेल इस बात की दलील है कि इख़्तिदार और हुकूमत एक ही जगह पर और एक ही हस्ती के हाथ में है। अगर इख़्तिदार और ताक़त कई लोगों के बीच बँटी हुई होती तो इन इख़्तिदार और ताक़त रखनेवालों में इख़्तिलाफ़ का सामने आना यक़ीनी तौर पर ज़रूरी था। और यह इख़्तिलाफ़ उनके बीच जंग और टकराव तक पहुँचे बिना न रह सकता था। यही बात क़ुरआन में एक दूसरी जगह इस तरह बयान हुई है कि "अगर ज़मीन और आसमान में अल्लाह के सिवा दूसरे ख़ुदा भी होते तो दोनों का निज़ाम बिगड़ जाता।"(सूरा-21 अम्बिया, आयत-22) और यही दलील क़ुरआन में एक दूसरी जगह इस तरह आई है कि "अगर अल्लाह के साथ दूसरे ख़ुदा भी होते, जैसाकि ये लोग कहते हैं, तो ज़रूर वे अर्श के मालिक के मक़ाम पर पहुँचने की कोशिश करते।"(सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-42)। (तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, हाशिया-47; सूरा-21 अम्बिया, हाशिया-22)।

86. इसमें एक हल्का-सा इशारा छिपा है उस ख़ास तरह के शिर्क की तरफ़ जिसने पहले शफ़ाअत (सिफ़ारिश) के मुशरिकोंवाले अक़ीदे से शुरुआत की, और फिर अल्लाह के अलावा दूसरों के लिए इल्मे-ग़ैब (जो कुछ हुआ है, जो कुछ हो रहा है और जो कुछ होगा) को साबित करने की शक्ल इख़्तियार कर ली। यह आयत इस शिर्क के दोनों पहलुओं को रद्द कर देती है। (तशरीह

قُلْ رَّبِّ اِمَّا تُرِيَنِّىْ مَا يُوْعَدُوْنَ﴿۹۳﴾ رَبِّ فَلَا تَجْعَلْنِىْ فِى الْقَوْمِ
الظّٰلِمِيْنَ﴿۹۴﴾ وَاِنَّا عَلٰٓى اَنْ نُّرِيَكَ مَا نَعِدُهُمْ لَقٰدِرُوْنَ﴿۹۵﴾ اِدْفَعْ بِالَّتِىْ
هِىَ اَحْسَنُ السَّيِّئَةَ ؕ نَحْنُ اَعْلَمُ بِمَا يَصِفُوْنَ﴿۹۶﴾ وَقُلْ رَّبِّ اَعُوْذُ
بِكَ مِنْ هَمَزٰتِ الشَّيٰطِيْنِ﴿۹۷﴾ وَاَعُوْذُ بِكَ رَبِّ اَنْ يَّحْضُرُوْنِ﴿۹۸﴾

(93) ऐ नबी, दुआ करो कि "परवरदिगार, जिस अज़ाब की इनको धमकी दी जा रही है, वे अगर मेरी मौजूदगी में तू लाए, (94) तो ऐ मेरे रब, मुझे इन ज़ालिम लोगों में शामिल न कीजियो।"[87] (95) और हक़ीक़त यह है कि हम तुम्हारी आँखों के सामने ही वह चीज़ ले आने की पूरी क़ुदरत रखते हैं जिसकी धमकी हम उन्हें दे रहे हैं।

(96) ऐ नबी, बुराई को उस तरीक़े से दूर करो जो बेहतरीन हो। जो कुछ बातें वे तुमपर बनाते हैं वे हमें ख़ूब मालूम हैं। (97) और दुआ करो कि "परवरदिगार, मैं शैतानों की उकसाहटों से तेरी पनाह माँगता हूँ, (98) बल्कि ऐ मेरे रब, मैं तो इससे भी तेरी पनाह माँगता हूँ कि वे मेरे पास आएँ।"[88]

के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-20 ता-हा, हाशिए-85, 86; सूरा-21 अम्बिया, हाशिया-27)।

87. इसका यह मतलब नहीं है कि अल्लाह की पनाह, उस अज़ाब में नबी (सल्ल॰) के मुब्तला हो जाने का सचमुच कोई ख़तरा था, या यह कि अगर आप यह दुआ न माँगते तो इसमें मुब्तला हो जाते; बल्कि इस तरह का अन्दाज़े-बयान यह तसव्वुर दिलाने के लिए अपनाया गया है कि ख़ुदा का अज़ाब है ही डरने के लायक़ चीज़। वह कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसकी माँग की जाए, और अगर अल्लाह अपनी रहमत और अपने इल्म की वजह से उसके लाने में देर करे तो इत्मीनान के साथ शरारतों और नाफ़रमानियों का सिलसिला जारी रखा जाए। हक़ीक़त में वह ऐसी भयानक चीज़ है कि गुनाहगारों ही को नहीं, नेक और भले लोगों को भी अपनी सारी नेकियों के बावजूद उससे पनाह माँगनी चाहिए। इसके अलावा इसमें एक पहलू यह भी है कि इजतिमाई गुनाहों की सज़ा में जब अज़ाब की चक्की चलती है तो सिर्फ़ बुरे लोग ही उसमें नहीं पिसते, बल्कि उनके साथ-साथ भले लोग भी कई बार लपेटे में आ जाते हैं। लिहाज़ा एक गुमराह और बदकार समाज में रहनेवाले हर नेक और भले आदमी को हर वक़्त ख़ुदा की पनाह माँगते रहना चाहिए। कुछ पता नहीं कि कब किस सूरत में ज़ालिमों पर अल्लाह के क़हर का कोड़ा बरसना शुरू हो जाए और कौन उसकी चपेट में आ जाए।

88. तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, हाशिए-71, 72; सूरा-7 आराफ़, हाशिए-138, 150-153; सूरा-10 यूनुस, हाशिया-39; सूरा-15 हिज्र, हाशिया-48; सूरा-16 नह्ल,

حَتّٰۤى اِذَا جَآءَ اَحَدَهُمُ الْمَوْتُ قَالَ رَبِّ ارْجِعُوْنِ ﴿٩٩﴾ لَعَلِّيْۤ اَعْمَلُ صَالِحًا فِيْمَا تَرَكْتُ كَلَّا ؕ

(99) (ये लोग अपनी करनी से बाज़ न आएँगे) यहाँ तक कि जब इनमें से किसी को मौत आ जाएगी तो कहना शुरू करेगा कि "ऐ मेरे रब, मुझे उसी दुनिया में वापस भेज दीजिए[89] जिसे मैं छोड़ आया हूँ, (100) उम्मीद है कि अब मैं भले काम करूँगा"[90]—हरगिज़ नहीं,[91]

हाशिए—122-124; सूरा-17 बनी-इसराईल, हाशिए—58-63; सूरा-41 हा-मीम सजदा, हाशिए—36-41।

89. अस्ल अरबी में 'रब्बिर-जिऊनि' के अलफ़ाज़ हैं। अल्लाह तआला को मुख़ातब करके जमा (बहुवचन) लफ़्ज़ में दरख़ास्त करने की एक वजह तो यह हो सकती है कि यह एहतिराम के लिए हो, जैसाकि तमाम ज़बानों में तरीक़ा है। और दूसरी वजह कुछ लोगों ने यह भी बयान की है कि यह लफ़्ज़ दुआ को बार-बार दुहराने का तसव्वुर दिलाने के लिए है। यानी वह "इरजिअनी इरजिअनी" (मुझे वापस भेज दे, मुझे वापस भेज दे) का मतलब अदा करता है। इसके अलावा क़ुरआन के कुछ आलिमों ने यह ख़याल भी ज़ाहिर किया है कि 'रब्बि' का ख़िताब अल्लाह तआला से है और "इरजिऊनि' का ख़िताब उन फ़रिश्तों से जो उस मुजरिम रूह को गिरफ़्तार करके लिए जा रहे होंगे। यानी बात यूँ है, "हाय मेरे रब, मुझको वापस कर दो।"

90. यह बात क़ुरआन मजीद में कई जगहों पर आई है कि मुजरिम लोग मौत की सरहद में दाख़िल होने के वक़्त से लेकर आख़िरत में जहन्नम में डाले जाने तक, बल्कि उसके बाद भी, बार-बार यही दरख़ास्तें करते रहेंगे कि हमें बस एक बार दुनिया में और भेज दिया जाए, अब हमारी तौबा है, अब हम कभी नाफ़रमानी नहीं करेंगे, अब हम सीधी राह चलेंगे (तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयतें—27, 28; सूरा-7 आराफ़, आयत-53; सूरा-14 इबराहीम, आयतें—44, 45; सूरा-23 मोमिनून, आयतें—105-115; सूरा-26 शुअरा, आयत-102; सूरा-32 सजदा, आयतें—12-14; सूरा-35 फ़ातिर, आयत-37; सूरा-39 ज़ुमर, आयतें—58, 59; सूरा-40 मोमिन, आयतें—10-12; सूरा-42 शूरा, आयत-44; हाशियों समेत)।

91. यानी उसको वापस नहीं भेजा जाएगा। नए सिरे से अमल करने के लिए कोई दूसरा मौक़ा अब उसे नहीं दिया जा सकता। इसकी वजह यह है कि इस दुनिया में दोबारा इम्तिहान के लिए आदमी को अगर वापस भेजा जाए तो यक़ीनन दो सूरतों में से एक ही सूरत अपनानी होगी। या तो उसकी याददाश्त और शुऊर में वे सब मुशाहिदे महफ़ूज़ हों जो मरने के बाद उसने किए। या उन सबको मिटाकर उसे फिर पहले जैसा ही ख़ाली ज़ेहन पैदा किया जाए, जैसा वह पहली ज़िन्दगी में था। पहली सूरत में इम्तिहान का मक़सद ही ख़त्म हो जाता है; क्योंकि इस दुनिया में तो आदमी का इम्तिहान है ही इस बात का कि वह हक़ीक़त को देखे बिना अपनी

اِنَّهَا كَلِمَةٌ هُوَ قَآئِلُهَا ؕ وَمِنْ وَّرَآئِهِمْ بَرْزَخٌ اِلٰى يَوْمِ يُبْعَثُوْنَ ﴿١٠٠﴾
فَاِذَا نُفِخَ فِى الصُّوْرِ فَلَآ اَنْسَابَ بَيْنَهُمْ يَوْمَئِذٍ وَّلَا يَتَسَآءَلُوْنَ ﴿١٠١﴾

यह तो बस एक बात है जो वह बक रहा है।[92] अब इन सब (मरनेवालों) के पीछे एक बरज़ख़ रोक बनी है दूसरी ज़िन्दगी के दिन तक।[93] (101) फिर ज्यों ही सूर फूँक दिया गया, उनके बीच फिर कोई रिश्ता न रहेगा और न वे एक-दूसरे को पूछेंगे।[94] (102) उस

अक़्ल से हक़ को पहचानकर उसे मानता है या नहीं, और फ़रमाँबरदारी और नाफ़रमानी की आज़ादी रखते हुए इन दोनों राहों में से किस राह को चुनता है। अब अगर उसे हक़ीक़त भी दिखा दी जाए और गुनाह का अंजाम अमली तौर पर दिखलाकर नाफ़रमानी के चुनाव की राह भी उसपर बन्द कर दी जाए तो फिर इम्तिहान की जगह में उसे भेजना बेकार है। इसके बाद कौन ईमान न लाएगा और कौन फ़रमाँबरदारी से मुँह मोड़ सकेगा। रही दूसरी सूरत, तो यह आज़माए हुए को फिर आज़माने जैसा है। जो शख़्स एक बार इसी इम्तिहान में नाकाम हो चुका है, उसे फिर ठीक बिलकुल वैसा ही एक और इम्तिहान देने के लिए भेजना बेकार है; क्योंकि वह फिर वही कुछ करेगा जैसा पहले कर चुका है। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, हाशिया-228; सूरा-6 अनआम, हाशिए-6, 139-140; सूरा-10 यूनुस, हाशिया-26)।

92. यह तर्जमा भी हो सकता है कि "यह तो अब उसे कहना ही है।" मतलब यह है कि उसकी यह बात ध्यान देने के क़ाबिल नहीं है। शामत आ जाने के बाद अब वह यह न कहेगा तो और क्या कहेगा। मगर यह सिर्फ़ कहने की बात है। पलटेगा तो फिर वही कुछ करेगा, जो करके आया है। लिहाज़ा इसे बकने दो। वापसी का दरवाज़ा इसपर नहीं खोला जा सकता।

93. 'बरज़ख़' फ़ारसी लफ़्ज़ 'परदा' की अरबी शक्ल है। आयत का मतलब यह है कि अब इनके और दुनिया के बीच एक रोक है जो इन्हें वापस जाने नहीं देगी, और वे फ़ैसले के दिन तक वहाँ ठहरे रहेंगे।

94. इसका मतलब यह नहीं है कि बाप-बाप न रहेगा और बेटा-बेटा न रहेगा; बल्कि मतलब यह है कि उस वक़्त न बाप बेटे के काम आएगा, न बेटा बाप के। हर एक अपने हाल में कुछ इस तरह गिरफ़्तार होगा कि दूसरे को पूछने तक का होश न होगा, कहाँ यह कि उसके साथ कोई हमदर्दी या उसकी कोई मदद कर सके। क़ुरआन में दूसरी जगहों पर इस बात को यूँ बयान किया गया है कि "कोई जिगरी दोस्त अपने दोस्त को न पूछेगा।" (सूरा-70 मआरिज, आयत-10) और "उस दिन मुजरिम का जी चाहेगा कि अपनी औलाद और बीवी और भाई और अपनी हिमायत करनेवाले सबसे क़रीबी ख़ानदान और दुनिया भर के सब लोगों को फ़िदये में दे दे और अपने आपको अज़ाब से बचा ले।" (सूरा-70 मआरिज, आयतें—11-14)। और "वह दिन कि आदमी अपने भाई और माँ और बाप और बीवी और औलाद से भागेगा। उस दिन हर शख़्स अपने हाल में ऐसा घिरा होगा कि उसे किसी का होश न रहेगा।"

(सूरा-80 अ-ब-स, आयतें—34-37)

فَمَنْ ثَقُلَتْ مَوَازِيْنُهٗ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ۝١٠٢ وَمَنْ خَفَّتْ
مَوَازِيْنُهٗ فَاُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ خَسِرُوْٓا اَنْفُسَهُمْ فِيْ جَهَنَّمَ خٰلِدُوْنَ۝١٠٣
تَلْفَحُ وُجُوْهَهُمُ النَّارُ وَهُمْ فِيْهَا كٰلِحُوْنَ۝١٠٤ اَلَمْ تَكُنْ اٰيٰتِيْ تُتْلٰى
عَلَيْكُمْ فَكُنْتُمْ بِهَا تُكَذِّبُوْنَ۝١٠٥ قَالُوْا رَبَّنَا غَلَبَتْ عَلَيْنَا
شِقْوَتُنَا وَكُنَّا قَوْمًا ضَآلِّيْنَ۝١٠٦ رَبَّنَآ اَخْرِجْنَا مِنْهَا فَاِنْ عُدْنَا فَاِنَّا
ظٰلِمُوْنَ۝١٠٧ قَالَ اخْسَـُٔوْا فِيْهَا وَلَا تُكَلِّمُوْنِ۝١٠٨ اِنَّهٗ كَانَ فَرِيْقٌ مِّنْ

वक़्त जिनके पलड़े भारी होंगे[95] वही कामयाबी पाएँगे। (103) और जिनके पलड़े हलके होंगे, वही लोग होंगे जिन्होंने अपने आपको घाटे में डाल लिया।[96] वे जहन्नम में हमेशा रहेंगे। (104) आग उनके चेहरों की खाल चाट जाएगी और उनके जबड़े बाहर निकल आएँगे।[97] (105)—"क्या तुम वही लोग नहीं हो कि मेरी आयतें तुम्हें सुनाई जाती थीं तो तुम उन्हें झुठलाते थे?" (106) वे कहेंगे, "ऐ हमारे रब, हमारी बदनसीबी हमपर छा गई थी। हम सचमुच गुमराह लोग थे। (107) ऐ परवरदिगार, अब हमें यहाँ से निकाल दे, फिर हम ऐसा क़ुसूर करें तो ज़ालिम होंगे।" (108) अल्लाह तआला जवाब देगा, "दूर हो मेरे सामने से, पड़े रहो इसी में और मुझसे बात न करो।[98] (109) तुम वही लोग तो हो

95. यानी जिनके अच्छे आमाल वज़नी होंगे, जिनकी नेकियों का पलड़ा बुराइयों के पलड़े से भारी होगा।

96. सूरा के शुरू में, और फिर चौथे रुकू (आयतें—51-77) में कामयाबी और घाटे का जो पैमाना पेश किया जा चुका है, उसे ज़ेहन में फिर ताज़ा कर लीजिए।

97. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'कालिहून' इस्तेमाल किया गया है। 'कालिह' अरबी ज़बान में उस चेहरे को कहते हैं जिसकी खाल अलग हो गई हो और दाँत बाहर आ गए हों, जैसे बकरे की भुनी हुई सिरी। अब्दुल्लाह- बिन-मसऊद (रज़ि॰) से किसी ने 'कालिह' का मतलब पूछा तो उन्होंने कहा, "क्या तुमने भुनी हुई सिरी नहीं देखी?"

98. यानी अपनी रिहाई के लिए कोई गुज़ारिश और फ़रियाद न करो। अपने बहाने और मजबूरियाँ पेश न करो। यह मतलब नहीं है कि हमेशा के लिए बिलकुल चुप हो जाओ। कुछ रिवायतों में आया है कि यह उनकी आख़िरी बात होगी जिसके बाद उनकी ज़बानें हमेशा के लिए बन्द होंगी, मगर यह बात बज़ाहिर क़ुरआन के ख़िलाफ़ पड़ती है; क्योंकि आगे ख़ुद क़ुरआन ही

عِبَادِيْ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَآ اٰمَنَّا فَاغْفِرْ لَنَا وَارْحَمْنَا وَاَنْتَ خَيْرُ
الرّٰحِمِيْنَ ﴿١٠٩﴾ فَاتَّخَذْتُمُوْهُمْ سِخْرِيًّا حَتّٰٓى اَنْسَوْكُمْ ذِكْرِيْ وَكُنْتُمْ
مِّنْهُمْ تَضْحَكُوْنَ ﴿١١٠﴾ اِنِّيْ جَزَيْتُهُمُ الْيَوْمَ بِمَا صَبَرُوْٓا ۙ اَنَّهُمْ هُمُ
الْفَآئِزُوْنَ ﴿١١١﴾ قٰلَ كَمْ لَبِثْتُمْ فِي الْاَرْضِ عَدَدَ سِنِيْنَ ﴿١١٢﴾
قَالُوْا لَبِثْنَا يَوْمًا اَوْ بَعْضَ يَوْمٍ فَسْئَلِ الْعَآدِّيْنَ ﴿١١٣﴾ قٰلَ اِنْ
لَّبِثْتُمْ اِلَّا قَلِيْلًا لَّوْ اَنَّكُمْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ﴿١١٤﴾ اَفَحَسِبْتُمْ

कि मेरे कुछ बन्दे जब कहते थे कि ऐ हमारे परवरदिगार, हम ईमान लाए, हमें माफ़ कर दे, हमपर रहम कर, तू सब रहम करनेवालों से अच्छा रहम करनेवाला है, (110) तो तुमने उनका मज़ाक़ बना लिया। यहाँ तक कि उनकी ज़िद ने तुम्हें यह भी भुला दिया कि मैं भी कोई हूँ, और तुम उनपर हँसते रहे। (111) आज उनके उस सब्र का मैंने यह फल दिया है कि वही कामयाब हैं।[99] (112) फिर अल्लाह तआला उनसे पूछेगा, "बताओ, ज़मीन में तुम कितने साल रहे?" (113) वे कहेंगे, "एक दिन या दिन का भी कुछ हिस्सा हम वहाँ ठहरे हैं,[100] गिनती करनेवालों से पूछ लीजिए।" (114) कहा जाएगा, "थोड़ी ही देर ठहरे हो ना! काश, तुमने यह उस वक़्त जाना होता।[101] (115) क्या तुमने

उनकी और अल्लाह की बातचीत नक़्ल कर रहा है। लिहाज़ा या तो ये रिवायतें ग़लत हैं या फिर इनका मतलब यह है कि उसके बाद वे रिहाई के लिए कोई गुज़ारिश और फ़रियाद न कर सकेंगे।

99. फिर इसी बात को दोहराया गया है कि कामयाबी का हक़दार कौन है और घाटे का हक़दार कौन।

100. तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-20 ता-हा, हाशिया-80।

101. यानी दुनिया में हमारे नबी तुमको बताते रहे कि यह दुनिया की ज़िन्दगी सिर्फ़ इम्तिहान की कुछ गिनी-चुनी घड़ियाँ हैं, इन्हीं को अस्ल ज़िन्दगी और बस एक ही ज़िन्दगी न समझ बैठो। अस्ल ज़िन्दगी आख़िरत की ज़िन्दगी है, जहाँ तुम्हें हमेशा रहना है। यहाँ के वक़्ती फ़ायदों और थोड़े दिनों की लज़्ज़तों के लिए वह काम न करो जो आख़िरत की हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी में तुम्हारे मुस्तक़बिल को बरबाद कर देनेवाले हों। मगर उस वक़्त तुमने उनकी बात सुनकर न दी। तुम आख़िरत की इस दुनिया का इनकार करते रहे। तुमने मौत के बाद की ज़िन्दगी को

اَفَحَسِبْتُمْ اَنَّمَا خَلَقْنٰكُمْ عَبَثًا وَّاَنَّكُمْ اِلَيْنَا لَا تُرْجَعُوْنَ ﴿۱۱۵﴾ فَتَعٰلَى اللّٰهُ
الْمَلِكُ الْحَقُّ ۚ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ رَبُّ الْعَرْشِ الْكَرِيْمِ ﴿۱۱۶﴾ وَمَنْ يَّدْعُ
مَعَ اللّٰهِ اِلٰـهًا اٰخَرَ ۙ لَا بُرْهَانَ لَهٗ بِهٖ ۙ فَاِنَّمَا حِسَابُهٗ عِنْدَ رَبِّهٖ ۭ اِنَّهٗ لَا
يُفْلِحُ الْكٰفِرُوْنَ ﴿۱۱۷﴾ وَقُلْ رَّبِّ اغْفِرْ وَارْحَمْ وَاَنْتَ خَيْرُ الرّٰحِمِيْنَ ﴿۱۱۸﴾

यह समझ रखा था कि हमने तुम्हें बेकार ही पैदा किया है[102] और तुम्हें हमारी तरफ़ कभी पलटना ही नहीं है?''

(116) तो बुलन्द और बाला है अल्लाह,[103] हक़ीक़ी बादशाह, कोई ख़ुदा उसके सिवा नहीं, मालिक है बुज़ुर्ग अर्श का। (117) और जो कोई अल्लाह के साथ किसी और माबूद को पुकारे, जिसके लिए उसके पास कोई दलील नहीं,[104] तो उसका हिसाब उसके रब के पास है।[105] ऐसे इनकार करनेवाले कभी कामयाबी नहीं पा सकते।[106]

(118) ऐ नबी, कहो, ''मेरे रब माफ़ कर और रहम कर, और तू सब रहम करनेवालों से अच्छा रहम करनेवाला है।''[107]

एक मनगढ़न्त कहानी समझा। तुम अपने इस ख़याल पर अड़े रहे कि जीना-मरना जो कुछ है बस इसी दुनिया में है, और जो कुछ मज़े लूटने हैं यहीं लूट लेने चाहिएँ। अब पछताने से क्या होता है। होश आने का वक़्त तो वह था जब तुम दुनिया की कुछ दिनों की ज़िन्दगी के मज़े पर यहाँ की हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी के फ़ायदों को क़ुरबान कर रहे थे।

102. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ ''अ-बसा' इस्तेमाल किया गया है, जिसका एक मतलब तो है ''खेल के तौर पर'। और दूसरा मतलब है ''खेल के लिए'। पहली सूरत में आयत का मतलब यह होगा कि ''क्या तुमने यह समझा था कि हमने तुम्हें यूँ ही तफ़रीह के तौर पर बना दिया है, तुम्हारे बनाने का कोई मक़सद नहीं है, सिर्फ़ एक बेमक़सद मख़लूक़ (सृष्टि) बनाकर फैला दी गई है।'' दूसरी सूरत में मतलब यह होगा, ''क्या तुम यह समझते थे कि तुम बस खेल-कूद और तफ़रीह और ऐसे ही फ़ुज़ूल कामों के लिए पैदा किए गए हो, जिनका कभी कोई नतीजा निकलनेवाला नहीं है।''

103. यानी बहुत बुलन्द और बरतर है इससे कि कोई बेकार काम उससे हो, और बहुत बुलन्द है इससे कि उसके बन्दे और उसकी मिल्कियत में रहनेवाले उसकी ख़ुदाई में उसके शरीक हों।

104. दूसरा तर्जमा यह भी हो सकता है कि ''जो कोई अल्लाह के साथ किसी और माबूद को पुकारे, उसके लिए अपने इस अमल के हक़ में कोई दलील नहीं है।''

105. यानी वह हिसाब-किताब और पूछ-गच्छ से बच नहीं सकता।

106. यह फिर उसी बात को दोहराया गया है कि अस्ल में कामयाबी पानेवाले कौन हैं और इससे महरूम रहनेवाले कौन।

107. यहाँ इस दुआ के लतीफ़ मानी निगाह में रहे। अभी ऊपर यह ज़िक्र आ चुका है कि आख़िरत में अल्लाह तआला नबी (सल्ल॰) और सहाबा किराम (रज़ि॰) के दुश्मनों को माफ़ करने से यह कहकर इनकार कर देगा कि मेरे जो बन्दे यह दुआ माँगते थे, तुम उनका मज़ाक़ उड़ाते थे। उसके बाद अब नबी (सल्ल॰) को (और उन्हीं के साथ सहाबा किराम को भी) यह हुक्म दिया जा रहा है कि तुम ठीक वही दुआ माँगो जिसका हम अभी ज़िक्र ऊपर कर आए हैं। हमारे साफ़ डराने के बावजूद अब अगर ये तुम्हारा मज़ाक़ उड़ाएँ तो आख़िरत में अपने ख़िलाफ़ मानो ख़ुद ही एक मज़बूत मुक़द्दमा तैयार कर देंगे।

☆☆☆

24. अन-नूर

परिचय

नाम

इस सूरा का नाम इसकी आयत-35 "अल्लाहु नूरुस्समावाति वल अर्ज़" (अल्लाह आसमानों और ज़मीन का नूर है) से लिया गया है।

उतरने का ज़माना

इस बात पर क़ुरआन के सभी आलिम एक राय हैं कि यह सूरा बनी-मुस्तलिक़ की जंग के बाद उतरी है। ख़ुद क़ुरआन के बयान से ज़ाहिर होता है कि यह सूरा 'इफ़्क' (झूठ और तुहमत के वाक़िए) के सिलसिले में उतरी है, (जिसका ज़िक्र तफ़सील के साथ आयतें—11-20 में आया है) और वह वाक़िआ तमाम भरोसेमन्द रिवायतों के मुताबिक़ बनी-मुस्तलिक़ की जंग के सफ़र में पेश आया था। लेकिन इख़्तिलाफ़ इस बात में है कि क्या यह जंग 05 हि॰ में अहज़ाब की जंग से पहले हुई थी या 06 हि॰ में अहज़ाब की लड़ाई के बाद। अस्ल वाक़िआ क्या है, इसकी सच्चाई जानना इसलिए ज़रूरी है कि परदे के हुक्म क़ुरआन मजीद की दो ही सूरतों में आए हैं, एक यह सूरा नूर और दूसरी सूरा-33 अहज़ाब जो सभी आलिमों के नज़दीक अहज़ाब की लड़ाई के मौक़े पर उतरी है। अब अगर अहज़ाब की जंग पहले हो तो इसका मतलब यह है कि परदे के हुक्मों की शुरुआत उन हिदायतों से हुई जो सूरा अहज़ाब में आई हैं, और ये हिदायतें मुकम्मल उन हुक्मों से हुई जो इस सूरा में आई हैं। और अगर बनी-मुस्तलिक़ की लड़ाई से पहले हो तो हुक्मों की तरतीब (क्रम) उलट जाती है और शुरुआत सूरा नूर से मानकर इनका पूरा होना सूरा अहज़ाबवाले हुक्मों पर मानना पड़ता है। इस तरह उस शरई हिकमत का समझना मुश्किल हो जाता है जो हिजाब के हुक्मों में पाई जाती है। इसी मक़सद के लिए हम आगे बढ़ने से पहले इस सूरा के उतरने के ज़माने की हक़ीक़त मालूम कर लेना ज़रूरी समझते हैं।

इब्ने-सअद का बयान है कि बनी-मुस्तलिक़ की लड़ाई शाबान 05 हि॰ में पेश आई

और फिर ज़ी-क़ादा 05 हि॰ में अहज़ाब (या ख़न्दक़) की लड़ाई हुई। इसकी ताईद में सबसे बड़ी गवाही यह है कि इफ़्क के वाक़िए के सिलसिले में हज़रत आइशा (रज़ि॰) से जो रिवायतें बयान हुई हैं उनमें से कुछ में हज़रत सअद-बिन-उबादा (रज़ि॰) और सअद-बिन-मुआज़ (रज़ि॰) के झगड़े का ज़िक्र आता है, और तमाम भरोसेमन्द रिवायतों के मुताबिक़ हज़रत सअद-बिन-मुआज़ (रज़ि॰) का इन्तिक़ाल बनी-क़ुरैज़ा की जंग में हुआ था जो कि अहज़ाब की जंग के ठीक बाद हुई है। इसलिए 06 हि॰ में उनके मौजूद होने का कोई इमकान नहीं।

दूसरी तरफ़ मुहम्मद-बिन-इसहाक़ का बयान है कि अहज़ाब की जंग शव्वाल 05 हि॰ में हुई है और बनी-मुस्तलिक़ की जंग शाबान 06 हि॰ में पेश आई। इसकी ताईद वे बहुत-सी भरोसेमन्द रिवायतें करती हैं जो इस सिलसिले में हज़रत आइशा (रज़ि॰) और दूसरे लोगों से बयान हुई हैं। उनसे मालूम होता है कि 'इफ़्क' के वाक़िए से पहले हिजाब के बारे में हुक्म (आदेश) उतर चुके थे, और वे सूरा-33 अहज़ाब में पाए जाते हैं। उनसे यह भी मालूम होता है कि उस वक़्त हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) से नबी (सल्ल॰) का निकाह हो चुका था, और वह अहज़ाब की जंग के बाद ज़ी-क़ादा 5 हि॰ का वाक़िआ है और सूरा अहज़ाब में इसका ज़िक्र भी आता है। इसके अलावा इन रिवायतों से यह भी मालूम होता है कि हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) की बहन हम्ना-बिन्ते-जह्श ने हज़रत आइशा (रज़ि॰) पर तुहमत लगाने में सिर्फ़ इस वजह से हिस्सा लिया था कि हज़रत आइशा (रज़ि॰) उनकी बहन की सौतन थीं, और ज़ाहिर है कि बहन की सौतन के ख़िलाफ़ इस तरह के जज़्बात पैदा होने के लिए सौतनपन का रिश्ता शुरू होने के बाद कुछ-न-कुछ मुद्दत दरकार होती है। ये सब बातें इब्ने-इसहाक़ की रिवायत को मज़बूत कर देती हैं।

इस रिवायत को क़बूल करने में सिर्फ़ यह चीज़ रुकावट बनती है कि 'इफ़्क' के वाक़िए के ज़माने में हज़रत सअद-बिन-मुआज़ (रज़ि॰) की मौजूदगी का ज़िक्र आया है। मगर इस मुश्किल को जो चीज़ दूर कर देती है वह यह है कि इस वाक़िए के बारे में हज़रत आइशा (रज़ि॰) से जो रिवायतें बयान हुई हैं, उनमें से कुछ में हज़रत सअद-बिन-मुआज़ (रज़ि॰) का ज़िक्र है और कुछ में उनके बजाय हज़रत उसैद-बिन-हुज़ैर का और यह दूसरी रिवायत उन दूसरे वाक़िआत के साथ पूरी तरह मेल खा जाती है जो इस सिलसिले में ख़ुद हज़रत आइशा (रज़ि॰) ही से बयान हुई हैं। वरना सिर्फ़ सअद-बिन-मुआज़ (रज़ि॰) की ज़िन्दगी के ज़माने के मुताबिक़ करने के लिए अगर बनी-मुस्तलिक़ की जंग और 'इफ़्क' के क़िस्से को अहज़ाब और क़ुरैज़ा की लड़ाइयों से पहले के वाक़िआत मान लिया जाए तो इस पेचीदगी का कोई हल नहीं मिलता कि फिर

हिजाब (परदा करने) की आयत के उतरने के बारे में और हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के निकाह का वाक़िआ उससे भी पहले पेश आना चाहिए, हालाँकि क़ुरआन और बहुत-सी सहीह रिवायतें, दोनों इसपर गवाह हैं कि हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) का निकाह और परदे के बारे में हुक्म अहज़ाब और क़ुरैज़ा के बाद के वाक़िआत हैं। इसी वजह से इब्ने-हज़्म और इब्ने-क़य्यिम और तहक़ीक़ करनेवाले कुछ दूसरे लोगों ने मुहम्मद-बिन-इसहाक़ की रिवायत ही को सही ठहराया है, और हम भी उसी को सही समझते हैं।

तारीख़ी पसमंज़र (ऐतिहासिक पृष्ठभूमि)

अब यह तहक़ीक़ हो जाने के बाद कि यह सूरा नूर 06 हि० के आख़िरी आधे में सूरा-33 अहज़ाब के कई महीने बाद उतरी है, हमें उन हालात पर एक निगाह डाल लेनी चाहिए जिनमें यह सूरा उतरी है।

बद्र की जंग में मिली जीत से अरब में इस्लामी तहरीक (आन्दोलन) की जो उठान शुरू हुई थी, वह ख़न्दक़ की जंग तक पहुँचते-पहुँचते इस हद तक बढ़ चुकी थी कि शिर्क करनेवाले, यहूदी, मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) और ढुलमुल यक़ीन ईमानवाले मुसलमान सब ही यह महसूस करने लगे थे कि इस नई उभरती हुई ताक़त को सिर्फ़ हथियारों और फ़ौजों के बल पर हराया नहीं जा सकता। ख़न्दक़ की लड़ाई में ये लोग एकजुट होकर 10 हज़ार फ़ौज के साथ मदीना पर चढ़ आए थे, मगर एक महीने तक सिर मारने के बाद आख़िरकार नाकाम होकर चले गए थे, और उनके जाते ही नबी (सल्ल०) ने एलानिया कह दिया कि "इस साल के बाद अब क़ुरैश तुमपर चढ़ाई नहीं करेंगे, बल्कि तुम उनपर चढ़ाई करोगे।" (इब्ने-हिशाम, हिस्सा-3, पेज 266)

यह मानो इस बात का एलान था कि इस्लाम-मुख़ालिफ़ ताक़तों की पहल करने की ताक़त ख़त्म हो चुकी है। अब इस्लाम बचाव की नहीं, बल्कि आगे बढ़ने के लिए लड़ाई लड़ेगा और कुफ़्र को आगे बढ़ने के बजाय बचाव की लड़ाई लड़नी पड़ेगी। यह हालात का बिलकुल सही जाइज़ा था जिसे दूसरा गरोह भी अच्छी तरह महसूस कर रहा था।

इस्लाम की इस दिनों-दिन बढ़ती तरक़्क़ी की अस्ल वजह मुसलमानों की तादाद न थी। बद्र से ख़न्दक़ तक हर लड़ाई में इस्लाम-दुश्मन उनसे कई गुना ज़्यादा ताक़त लेकर आए थे, और तादाद के लिहाज़ से भी मुसलमान इस वक़्त अरब में मुश्किल से 1/10 फ़ीसद थे। इस तरक़्क़ी की वजह मुसलमानों के पास बहुत ज़्यादा हथियार होना भी नहीं था। हर तरह के साज़ो-सामान में इस्लाम-दुश्मन ही का पलड़ा भारी था। माली ताक़त और असर और पहुँच के एतिबार से भी मुसलमानों का उनसे कोई मुक़ाबला न था।

दुश्मनों के पास पूरे अरब के माली और मआशी (आर्थिक) वसाइल थे, और मुसलमान भूखों मर रहे थे। उनके पीछे पूरे अरब के मुशरिक लोग और अहले-किताब के क़बीले थे, और मुसलमान एक नए दीन की दावत देकर पुराने निज़ाम (व्यवस्था) के सारे तरफ़दारों की हमदर्दियाँ खो चुके थे। इन हालात में जो चीज़ मुसलमानों को बराबर आगे बढ़ाए लिए जा रही थी, वह अस्ल में मुसलमानों की अख़लाक़ी बरतरी थी जिसे इस्लाम के तमाम दुश्मन ख़ुद भी महसूस कर रहे थे। एक तरफ़ वे देखते थे कि नबी (सल्ल०) और सहाबा किराम (रज़ि०) की बेदाग़ ज़िन्दगियाँ हैं, जिनकी सफ़ाई, पाकीज़गी और मज़बूती दिलों को जीतती चली जा रही है। और दूसरी तरफ़ उन्हें साफ़ नज़र आ रहा था कि इनफ़िरादी और इजतिमाई अख़लाक़ की पाकीज़गी ने मुसलमानों के अन्दर इन्तिहाई आला दर्जे की एकता और नज़्म व ज़ब्त (अनुशासन) भी पैदा कर दिया है जिसके सामने मुशरिकों और यहूदियों का ढीला-ढाला निज़ामे-जमाअत अम्न और जंग दोनों हालतों में हार खाता चला जाता है।

घटिया लोगों की ख़ासियत होती है कि जब वे दूसरों की ख़ूबियाँ और अपनी कमज़ोरियाँ साफ़ तौर पर देख लेते हैं, और यह भी जान लेते हैं कि उनकी ख़ूबियाँ उन्हें बढ़ा रही हैं और उनकी अपनी कमज़ोरियाँ उन्हें गिरा रही हैं तो उन्हें यह फ़िक्र नहीं होती कि अपनी कमज़ोरियाँ दूर करें और उनकी ख़ूबियाँ अपनाएँ, बल्कि वे इस फ़िक्र में लग जाते हैं कि जिस तरह भी हो सके उनके अन्दर भी अपने ही जैसी बुराइयाँ पैदा कर दें, और यह न हो सके तो कम-से-कम उनके ऊपर ख़ूब गन्दगी उछालें, ताकि दुनिया को उनकी ख़ूबियाँ बेदाग़ नज़र न आएँ। यही ज़ेहनियत (मानसिकता) थी जिसने इस मरहले पर इस्लाम-दुश्मनों की सरगर्मियों का रुख़ जंगी कार्रवाइयों से हटाकर घटिया क़िस्म के हमलों और अन्दरूनी शरारतों की तरफ़ फेर दिया, और चूँकि यह काम बाहर के दुश्मनों के मुक़ाबले में ख़ुद मुसलमानों के अन्दर के मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) ज़्यादा अच्छी तरह कर सकते थे, इसलिए जाने-अनजाने काम का तरीक़ा यह तय किया कि मदीना के मुनाफ़िक़ अन्दर से फ़ितने उठाएँ और यहूदी और मुशरिक लोग बाहर से उनका ज़्यादा-से-ज़्यादा फ़ायदा उठाने की कोशिश करें।

यह नई तदबीर पहली बार ज़ीक़ादा 05 हि० में सामने आई जबकि नबी (सल्ल०) ने अरब से तबनियत[1] की जहालत भरी रस्म ख़त्म करने के लिए ख़ुद मुँह बोले बेटे (ज़ैद-बिन-हारिसा) की तलाक़शुदा बीवी (ज़ैनब बिन्ते-जह्श) से निकाह किया। इस मौक़े

1. दूसरे के बेटे को अपना बेटा बनाना और ख़ानदान में उसे बिलकुल अपने सगे बेटे की हैसियत देना।

पर मदीना के मुनाफ़िक़ प्रोपेगण्डे का एक बड़ा तूफ़ान लेकर उठ खड़े हुए और बाहर से यहूदियों और मुशरिकों ने भी उनकी आवाज़ में आवाज़ मिलाकर झूठे इलज़ाम और तुहमतें लगानी शुरू कर दीं। उन्होंने अजीब-अजीब क़िस्से गढ़-गढ़कर फैला दिए कि मुहम्मद (सल्ल॰) किस तरह अपने मुँह बोले बेटे की बीवी को देखकर उसपर आशिक़ हो गए और किस तरह बेटे को उनके इश्क़ का इल्म हुआ और वह तलाक़ देकर बीवी से अलग हो गया और फिर किस तरह उन्होंने ख़ुद अपनी बहू से शादी कर ली। ये क़िस्से इतने ज़्यादा फैलाए गए कि मुसलमान तक उनके असरात से न बच सके। चुनाँचे हदीस और क़ुरआन के आलिमों के एक गरोह ने हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) और ज़ैद (रज़ि॰) के बारे में जो रिवायतें नक़्ल की हैं उनमें आजतक उन मनगढ़न्त क़िस्सों के हिस्से पाए जाते हैं और पश्चिम के इस्लाम-दुश्मन अहले-इल्म उनको ख़ूब नमक-मिर्च लगाकर अपनी किताबों में पेश करते हैं। हालाँकि हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) की सगी फूफी (उमैमा-बिन्ते-अब्दुल-मुत्तलिब) की बेटी थीं। बचपन से जवानी तक उनकी सारी उम्र नबी (सल्ल॰) की आँखों के सामने गुज़री थी। उनको इत्तिफ़ाक़ से एक दिन देख लेने और अल्लाह की पनाह उनपर आशिक़ हो जाने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। फिर इस वाक़िए से एक ही साल पहले नबी (सल्ल॰) ने ख़ुद उनको मजबूर करके हज़रत ज़ैद (रज़ि॰) से उनकी शादी की थी। उनके भाई अब्दुल्लाह-बिन-जह्श इस शादी से नाराज़ थे। ख़ुद हज़रत ज़ैनब इसपर राज़ी न थीं; क्योंकि एक आज़ाद किए हुए ग़ुलाम की बीवी बनना क़ुरैश के सबसे इज़्ज़तदार और शरीफ़ घराने की बेटी फ़ितरी तौर पर क़बूल न कर सकती थी। मगर नबी (सल्ल॰) ने सिर्फ़ इसलिए कि मुसलमानों में सामाजिक बराबरी क़ायम करने की शुरुआत ख़ुद अपने ख़ानदान से करें, उन्हें हुक्म देकर इसपर राज़ी किया था। ये सारी बातें दोस्त और दुश्मन सबको मालूम थीं, और यह भी किसी से छिपा हुआ न था कि हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) का अपने ख़ानदान पर फ़ख़्र करना ही वह अस्ल वजह थी जिसकी बुनियाद पर उनका और ज़ैद-बिन-हारिसा का निबाह न हो सका और आख़िरकार तलाक़ तक नौबत पहुँची। मगर इसके बावजूद बेशर्म झूठे इलज़ाम और तुहमत लगानेवालों ने नबी (सल्ल॰) पर निहायत बुरे अख़लाक़ी इलज़ाम लगाए और उनको इतना ज़्यादा फैलाया कि आज तक उनका यह प्रोपेगण्डा अपना रंग दिखा रहा है।

इसके बाद दूसरा हमला बनी-मुस्तलिक़ की लड़ाई के मौक़े पर किया गया, और यह पहले से भी ज़्यादा सख़्त था।

बनी-मुस्तलिक़ क़बीला बनी-ख़ुज़ाआ की एक शाखा थी जो लाल सागर के तट पर

जद्दा और राबिग़ के बीच क़ुदैद के इलाक़े में रहती थी। उसके चश्मे का नाम 'मुरैसीअ' था जिसके आस-पास इस क़बीले के लोग आबाद थे। इस हिसाब से हदीसों में इस मुहिम का नाम मुरैसीअ की जंग भी आया है।

शाबान 06 हि॰ में नबी (सल्ल॰) को ख़बर मिली कि ये लोग मुसलमानों के ख़िलाफ़ जंग की तैयारियाँ कर रहे हैं और दूसरे क़बीलों को भी जमा करने की कोशिश में लगे हुए हैं। यह ख़बर पाते ही आप (सल्ल॰) एक लश्कर लेकर उनकी तरफ़ रवाना हो गए, ताकि फ़ितने के सिर उठाने से पहले ही उसे कुचल दिया जाए। इस मुहिम में अब्दुल्लाह-बिन-उबई भी मुनाफ़िक़ों की एक बड़ी तादाद लेकर आप (सल्ल॰) के साथ हो गया। इब्ने-सअद का बयान है कि इससे पहले किसी जंग में मुनाफ़िक़ इतनी ज़्यादा तादाद में शामिल न हुए थे। मुरैसीअ के मक़ाम पर नबी (सल्ल॰) ने अचानक दुश्मन को जा लिया, और थोड़ी-सी ज़ोर-आज़माइश के बाद पूरे क़बीले को माल और सामान समेत गिरफ़्तार कर लिया। इस मुहिम से निबटकर अभी मुरैसीअ ही पर इस्लामी फ़ौज पड़ाव डाले हुए थी कि एक दिन हज़रत उमर (रज़ि॰) के एक नौकर (जहजाह-बिन-मसऊद ग़िफ़ारी) और ख़ज़रज क़बीले के एक हलीफ़ (समझौता करनेवाले) सिनान-बिन-दबर जुहनी के बीच पानी पर झगड़ा हो गया। एक ने अनसार को पुकारा। दूसरे ने मुहाजिरों को आवाज़ दी। लोग दोनों तरफ़ से जमा हो गए और मामला रफ़ा-दफ़ा कर दिया गया। लेकिन अब्दुल्लाह-बिन-उबई ने जो अनसार के क़बीले ख़ज़रज से ताल्लुक़ रखता था, बात का बतंगड़ बना दिया। उसने अनसार को यह कह-कहकर भड़काना शुरू किया कि "ये मुहाजिर हमपर टूट पड़े हैं और हमारे दुश्मन बन बैठे हैं। हमारी और इन क़ुरैशी कंगलों की मिसाल ऐसी है कि कुत्ते को पाल, ताकि तुझी को भँभोड़ खाए। यह सब कुछ तुम्हारा अपना किया-धरा है। तुम लोगों ने ख़ुद ही उन्हें लाकर अपने यहाँ बसाया है और उनको अपने माल-जायदाद में हिस्सेदार बनाया है। आज अगर तुम उनसे हाथ खींच लो तो ये चलते-फिरते नज़र आएँ।" फिर उसने क़सम खाकर कहा कि "मदीना वापस पहुँचने के बाद जो हममें से इज़्ज़तवाला है, वह नीच लोगों को निकाल बाहर कर देगा।"[2] उसकी इन बातों की ख़बर जब नबी (सल्ल॰) को पहुँची तो हज़रत उमर (रज़ि॰) ने मशवरा दिया कि इस शख़्स को क़त्ल करा देना चाहिए। मगर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "उमर, दुनिया क्या कहेगी कि मुहम्मद ख़ुद अपने ही साथियों को क़त्ल कर रहा है।" फिर आप (सल्ल॰) ने फ़ौरन ही उस जगह से निकल चलने का हुक्म दे दिया और दूसरे दिन दोपहर तक किसी जगह पड़ाव न किया, ताकि लोग ख़ूब थक जाएँ और किसी को बैठकर

2. सूरा-63 मुनाफ़िक़ून में अल्लाह तआला ने ख़ुद उसकी कही हुई यह बात नक़्ल की है।

कानाफूसी करने और बातें बनाने और सुनने का मौक़ा न मिले। रास्ते में उसैद-बिन-हुज़ैर ने अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के नबी, आज आपने अपने मामूल (नियम) के ख़िलाफ़ बे-वक़्त निकल चलने का हुक्म दे दिया?" आप (सल्ल॰) ने जवाब दिया, "तुमने सुना नहीं कि तुम्हारे साहब ने क्या बातें की हैं?" उन्होंने पूछा, "कौन साहब?" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अब्दुल्लाह-बिन-उबई।" उन्होंने अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल, उस आदमी को जाने दीजिए, आप जब मदीना तशरीफ़ लाए हैं तो हम लोग उसे अपना बादशाह बनाने का फ़ैसला कर चुके थे और उसके लिए ताज तैयार हो रहा था। आपके आने से उसका बना-बनाया खेल बिगड़ गया। इसी की जलन वह निकाल रहा है।"

यह शोशा अभी ताज़ा ही था कि इसी सफ़र में उसने एक और ख़तरनाक फ़ितना उठा दिया, और फ़ितना भी ऐसा कि अगर नबी (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के जाँनिसार सहाबा इन्तिहाई सब्र, बर्दाश्त और हिकमत और सूझ-बूझ से काम न लेते तो मदीना की नई-नई मुस्लिम सोसाइटी में सख़्त ख़ानाजंगी (गृहयुद्ध) छिड़ जाती। यह हज़रत आइशा (रज़ि॰) पर तुहमत का फ़ितना था। इसका वाक़िआ ख़ुद उन्हीं की ज़बान से सुनिए जिससे पूरी सूरते-हाल सामने आ जाएगी। बीच-बीच में जो बातें खोलकर बयान करने लायक़ होंगी उन्हें हम दूसरी भरोसेमन्द रिवायतों की मदद से ब्रैकेट में बढ़ाते जाएँगे, ताकि हज़रत सिद्दीक़ा (रज़ि॰) के बयान में ख़लल न आए। फ़रमाती हैं—

"अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) का क़ायदा था कि जब आप (सल्ल॰) सफ़र पर जाने लगते तो क़ुरआ डालकर फ़ैसला फ़रमाते कि आप (सल्ल॰) की बीवियों में से कौन आप (सल्ल॰) के साथ जाए।[3] बनी-मुस्तलिक़ की लड़ाई के मौक़े पर पर्ची मेरे नाम निकली और मैं नबी (सल्ल॰) के साथ गई। वापसी पर जब हम मदीना के क़रीब थे, एक मंज़िल पर रात के वक़्त अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने पड़ाव किया, और अभी रात का कुछ हिस्सा बाक़ी था कि वहाँ से कूच की तैयारियाँ शुरू हो गईं। मैं उठकर अपनी ज़रूरत के लिए गई और जब पलटने लगी तो ठहरने की जगह के क़रीब पहुँचकर मुझे महसूस हुआ

---

3. यह क़ुरआ-अन्दाज़ी (पर्ची डालना) लॉटरी जैसी न थी। अस्ल में तमाम बीवियों के हक़ बराबर थे। उनमें से किसी को किसी पर तरजीह (प्राथमिकता) देने की कोई मुनासिब वजह न थी। अब अगर नबी (सल्ल॰) ख़ुद किसी को चुनते तो दूसरी बीवियों का दिल टूटता, और उनमें आपस में जलन और दुश्मनी पैदा होने के लिए भी यह एक सबब बन जाता। इसलिए आप (सल्ल॰) क़ुरआ-अन्दाज़ी से इसका फ़ैसला फ़रमाते थे। शरीअत में क़ुरआ-अन्दाज़ी ऐसी ही हालतों के लिए है, जबकि कुछ आदमियों का जाइज़ हक़ बिलकुल बराबर हो, और किसी को किसी पर तरजीह देने के लिए कोई मुनासिब वजह मौजूद न हो, मगर हक़ किसी एक ही को दिया जा सकता हो।

कि मेरे गले का हार टूटकर कहीं गिर पड़ा है। मैं उसे तलाश करने में लग गई, और इतने में क़ाफ़िला रवाना हो गया। क़ायदा यह था कि मैं चलते वक़्त अपने हौदे में बैठ जाती थी और चार आदमी उसे उठाकर ऊँट पर रख देते थे। हम औरतें उस ज़माने में खाने की कमी की वजह से बहुत हलकी-फुलकी थीं। मेरा हौदा उठाते वक़्त किसी को यह महसूस ही न हुआ कि मैं उसमें नहीं हूँ। वे बेख़बरी में ख़ाली हौदा ऊँटपर रखकर चल पड़े। मैं जब हार लेकर पलटी तो वहाँ कोई न था। आख़िर अपनी चादर ओढ़कर वहीं लेट गई और दिल में सोच लिया कि आगे जाकर जब ये लोग मुझे न पाएँगे तो ख़ुद ही ढूँढते हुए आ जाएँगे। इसी हालत में मुझको नींद आ गई। सुबह के वक़्त सफ़वान-बिन-मुअत्तल सलमी उस जगह से गुज़रे जहाँ मैं सो रही थी और मुझे देखते ही पहचान गए, क्योंकि परदे का हुक्म आने से पहले वे मुझे कई बार देख चुके थे। (यह साहब बद्री सहाबियों में से थे। इनको सुबह देर तक सोने की आदत थी,[4] इसलिए यह भी लश्करगाह में कहीं पड़े सोते रह गए थे और अब उठकर मदीना जा रहे थे।) मुझे देखकर उन्होंने ऊँट रोक लिया और फ़ौरन उनकी ज़बान से निकला, "इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन! अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की बीवी यहीं रह गईं!" इस आवाज़ से मेरी आँख खुल गई और मैंने उठकर फ़ौरन अपने मुँह पर चादर डाल ली। उन्होंने मुझसे कोई बात न की, लाकर अपना ऊँट मेरे पास बिठा दिया और अलग हटकर खड़े हो गए। मैं ऊँट पर सवार हो गई और वे नकेल पकड़कर रवाना हो गए। दोपहर के क़रीब हमने लश्कर को जा लिया जबकि वह अभी एक जगह जाकर ठहरा ही था और लश्करवालों को अभी यह पता न चला था कि मैं पीछे छूट गई हूँ। इसपर तुहमत लगानेवालों ने तुहमत लगा दी और उनमें सबसे आगे-आगे अब्दुल्लाह-बिन-उबई था। मगर मैं इससे बेख़बर थी कि मुझपर क्या बातें बन रही हैं।

(दूसरी रिवायतों में आया है कि जिस वक़्त सफ़वान के ऊँट पर हज़रत आइशा

---

4. अबू-दाऊद और हदीसों की दूसरी किताबों में यह ज़िक्र आता है कि उनकी बीवी ने नबी (सल्ल॰) से उनकी शिकायत की थी कि ये कभी सुबह की नमाज़ वक़्त पर नहीं पढ़ते। उन्होंने मजबूरी पेश की कि ऐ अल्लाह के रसूल, यह मेरा ख़ानदानी ऐब है, देर तक सोते रहने की इस कमज़ोरी को मैं किसी तरह दूर नहीं कर सकता। इसपर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अच्छा जब आंख खुले, नमाज़ अदा कर लिया करो। हदीस के कुछ आलिमों ने उनके क़ाफ़िले से पीछे रह जाने की यही वजह बयान की है। मगर हदीस के कुछ दूसरे आलिम इसकी वजह यह बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने उनको इस काम पर लगाया था कि रात के अंधेरे में कूच करने की वजह से अगर किसी की कोई चीज़ छूट गई हो तो सुबह उसे तलाश करके लेते आएँ।

(रज़ि॰) उस जगह पर पहुँचीं जहाँ लश्कर ठहरा हुआ था और मालूम हुआ कि वे इस तरह पीछे छूट गई थीं, उसी वक़्त अब्दुल्लाह-बिन-उबई पुकार उठा कि "ख़ुदा की क़सम, यह बचकर नहीं आई है, लो देखो, तुम्हारे नबी की बीवी ने रात एक और शख़्स के साथ गुज़ारी और अब वह इसे एलानिया लिए चला आ रहा है।")

"मदीना पहुँचकर मैं बीमार हो गई और एक महीने के लगभग पलंग पर पड़ी रही। शहर में इस तुहमत की ख़बरें उड़ रही थीं। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के कानों तक भी बात पहुँच चुकी थी, मगर मुझे कुछ पता न था। अलबत्ता जो चीज़ मुझे खटकती थी वह यह कि अल्लाह के रसूल का वह ध्यान मेरी तरफ़ न था जो बीमारी के ज़माने में हुआ करता था। आप (सल्ल॰) घर में आते तो बस घरवालों से यह पूछकर रह जाते कि 'कैसी हैं यह?' ख़ुद मुझसे कोई बात न करते। इससे मुझे शक होता कि कोई बात है ज़रूर। आख़िर आप (सल्ल॰) से इजाज़त लेकर मैं अपनी माँ के घर चली गई, ताकि वे बीमारी में मेरी देखभाल अच्छी तरह कर सकें।

एक दिन रात के वक़्त ज़रूरत से मदीना के बाहर गई। उस वक़्त तक हमारे घरों में ये टॉयलेट न थे और हम लोग जंगल ही जाया करते थे। मेरे साथ मिस्तह-बिन-उसासा की माँ भी थीं जो मेरे बाप की ख़ाला-ज़ाद (ख़लेरी) बहन थीं। (दूसरी रिवायतों से मालूम होता है कि इस पूरे ख़ानदान का ख़र्च हज़रत अबू-बक्र ने अपने ज़िम्मे ले रखा था, मगर इस एहसान के बावजूद मिस्तह भी उन लोगों में शरीक हो गए थे जो हज़रत आइशा के ख़िलाफ़ इस झूठे इलज़ाम को फैला रहे थे।) रास्ते में उनको ठोकर लगी और फ़ौरन ही उनके मुँह से निकला, नाश हो मिस्तह का। मैंने कहा, अच्छी माँ हो जो बेटे को कोसती हो, और बेटा भी वह जिसने बद्र की जंग में हिस्सा लिया है। उन्होंने कहा, "बिटिया, क्या तुझे उसकी बातों की कुछ ख़बर नहीं?" फिर उन्होंने सारा क़िस्सा सुनाया कि झूठा इलज़ाम और बुहतान लगानेवाले लोग मेरे बारे में क्या बातें उड़ा रहे हैं। (मुनाफ़िक़ों के सिवा ख़ुद मुसलमानों में से जो लोग इस फ़ितने में शामिल हो गए थे उनमें मिस्तह, मशहूर इस्लामी शाइर हस्सान-बिन-साबित (रज़ि॰) और हमना-बिन्ते-जह्श, हज़रत ज़ैनब की बहन का हिस्सा सबसे नुमायाँ था।) यह दास्तान सुनकर मेरा ख़ून सूख गया, वह ज़रूरत भी भूल गई जिसके लिए आई थी, सीधी घर गई और रात भर रो-रोकर काटी।"

आगे चलकर हज़रत आइशा (रज़ि॰) फ़रमाती हैं, "मेरे पीछे अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने अली (रज़ि॰) और उसामा-बिन-ज़ैद (रज़ि॰) को बुलाया और उनसे मशवरा किया। उसामा (रज़ि॰) ने मेरे हक़ में अच्छी बात कही और अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल, भलाई के सिवा आपकी बीवी में कोई चीज़ हमने नहीं पाई। यह सब कुछ झूठ

और बेबुनियाद है जो उड़ाया जा रहा है।" रहे अली (रज़ि॰) तो उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल, औरतों की कमी नहीं है, आप इसकी जगह दूसरी बीवी कर सकते हैं, और जाँच-पड़ताल करना चाहें तो ख़िदमत करनेवाली लौंडी को बुलाकर पूछ लें।" चुनाँचे लौंडी को बुलाया गया और पूछ-गच्छ की गई। उसने कहा, "उस ख़ुदा की क़सम जिसने आपको हक़ के साथ भेजा है, मैंने उनमें कोई बुराई नहीं देखी जिसे बताया जा सके। बस इतना ऐब है कि मैं आटा गूंधकर किसी काम से जाती हूँ और कह जाती हूँ कि बीबी ज़रा आटे का ध्यान रखना, मगर वे सो जाती हैं और बकरी आकर आटा खा जाती है।" उसी दिन अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने ख़ुतबे में फ़रमाया, "मुसलमानो! कौन है जो उस शख़्स के हमलों से मेरी इज़्ज़त बचाए जिसने मेरे घरवालों पर इलज़ाम लगाकर मुझे तकलीफ़ पहुँचाने की हद कर दी है। ख़ुदा की क़सम, मैंने न तो अपनी बीवी ही में कोई बुराई देखी है, और न उस आदमी में जिसके बारे में तुहमत लगाई जाती है। वह तो कभी मेरी ग़ैर-मौजूदगी में मेरे घर आया भी नहीं।" इसपर उसैद-बिन-हुज़ैर (कुछ रिवायतों में सअद-बिन-मुआज़)[5] ने उठकर कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल, अगर वह हमारे क़बीले का आदमी है तो हम उसकी गर्दन मार दें, और अगर हमारे भाई ख़ज़रजवालों में से है तो आप हुक्म दें और हम हुक्म पर अमल करने के लिए हाज़िर हैं।" यह सुनते ही ख़ज़रज के सरदार सअद-बिन-उबादा (रज़ि॰) उठ खड़े हुए और कहने लगे, "झूठ कहते हो, तुम हरगिज़ उसे नहीं मार सकते। तुम उसकी गर्दन मारने का नाम सिर्फ़ इसलिए ले रहे हो कि वह ख़ज़रज में से है। अगर वह तुम्हारे क़बीले का आदमी होता तो तुम कभी यह न कहते कि हम उसकी गर्दन मार देंगे।"[6] उसैद-बिन-हुज़ैर ने जवाब में कहा, "तुम मुनाफ़िक़ हो इसी लिए मुनाफ़िक़ों की तरफ़दारी करते हो।" इसपर मस्जिद में एक

---

5. शायद इस इख़्तिलाफ़ की वजह यह है कि हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने नाम लेने के बजाय 'औस का सरदार' के अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए होंगे। किसी रावी (बयान करनेवाले) ने इससे हज़रत सअद-बिन-मुआज़ (रज़ि॰) को समझ लिया, क्योंकि अपनी ज़िन्दगी में वही औस क़बीले के सरदार थे और इतिहास में वही इस हैसियत से ज़्यादा मशहूर हैं। हालाँकि अस्ल में इस वाक़िए के वक़्त उनके चचेरे भाई उसैद-बिन-हुज़ैर औस के सरदार थे।
6. हज़रत सअद-बिन-उबादा (रज़ि॰) अगरचे बहुत ही नेक और सच्चे मुसलमानों में से थे, नबी (सल्ल॰) से गहरी अक़ीदत और मुहब्बत रखते थे और मदीना में जिन लोगों के ज़रिए से इस्लाम फैला था उनमें एक नुमायाँ शख़्स वे भी थे, लेकिन इन सब ख़ूबियों के बावजूद उनके अन्दर क़ौमी ग़ैरत (और अरब में उस वक़्त क़ौम का मतलब क़बीला था) बहुत ज़्यादा थी। इसी वजह से उन्होंने अब्दुल्लाह-बिन-उबई का बचाव किया; क्योंकि वह उनके क़बीले का आदमी था। इसी

हंगामा मच गया, हालाँकि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) मिंबर पर बैठे हुए थे। क़रीब था कि औस और ख़ज़रज मस्जिद ही में लड़ पड़ते। मगर अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने उनको ठंडा किया और फिर मिंबर से उतर आए।

हज़रत आइशा के क़िस्से की बाक़ी तफ़सीलात हम तफ़सीर के बीच में उस जगह नक़्ल करेंगे जहाँ अल्लाह तआला की तरफ़ से उनके बरी होने की आयत उतरी है। यहाँ जो कुछ बताना चाहते हैं वह यह है कि अब्दुल्ला-बिन-उबई ने यह शोशा छोड़कर एक ही वक़्त में कई शिकार करने की कोशिश की। एक तरफ़ उसने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) और हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) की इज़्ज़त पर हमला किया। दूसरी तरफ़ उसने इस्लामी तहरीक के निहायत आला और बुलन्द अख़लाक़ी वक़ार को गिराने की कोशिश की। तीसरी तरफ़ उसने यह एक ऐसी चिंगारी फेंकी थी कि अगर इस्लाम अपने माननेवालों की काया न पलट चुका होता तो मुहाजिर और अनसार और ख़ुद अनसार के भी दोनों क़बीले आपस में लड़ मरते।

मौज़ू (विषय) और बहसें (वार्ताएँ)

ये थे वे हालात जिनमें पहले हमले के मौक़े पर सूरा-33 अहज़ाब की आयतें-28-73 उतरीं और दूसरे हमले के मौक़े पर यह सूरा नूर उतरी। इस पसमंज़र को निगाह में रखकर इन दोनों सूरतों को तरतीब के साथ पढ़ा जाए तो वह हिकमत अच्छी तरह समझ में आ जाती है जो उनके हुक्मों में छिपी है।

मुनाफ़िक़ लोग मुसलमानों को उस मैदान में हरा देना चाहते थे जिसमें वे दूसरों से बढ़कर थे। अल्लाह तआला ने, बजाय इसके कि वह उनके अख़लाक़ी हमलों पर एक ग़ज़बनाक तक़रीर फ़रमाता, या मुसलमानों को जवाबी हमले करने पर उकसाता, सारा ध्यान मुसलमानों को यह तालीम देने पर लगाया कि तुम्हारे अख़लाक़ी मोर्चे में जहाँ-जहाँ

वजह से मक्का की जीत के मौक़े पर उनकी ज़बान से यह जुमला निकल गया कि "आज मार-काट का दिन है। यहाँ जो काम हराम हैं, आज उन्हें जाइज़ किया जाएगा।" और इसपर नाराज़ होकर नबी (सल्ल॰) ने उनसे उनका लश्कर का झण्डा वापस ले लिया। फिर आख़िरकार यही वह सबब था जिसकी वजह से उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के इन्तिक़ाल के बाद सक़ीफ़ा-बनी-साअदा में यह दावा किया कि ख़िलाफ़त (हुकूमत) अनसार का हक़ है, और जब उनकी बात न चली और अनसार और मुहाजिर सबने हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) के हाथ पर बैअत कर ली तो अकेले वही एक थे जिन्होंने बैअत से इनकार कर दिया और मरते दम तक क़ुरैशी ख़लीफ़ा की ख़िलाफ़त तस्लीम न की। (देखिए— इब्ने-हजर की 'अल-इसाबा' और अब्दुल-बर्र की 'अल-इस्तीआब', सअद-बिन-उबादा के बारे में, पेज॰ 10-11)

कमियाँ पाई जाती हैं उनको दूर करो और इस मोर्चे को और ज़्यादा मज़बूत कर लो। अभी आप देख चुके हैं कि हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के निकाह के मौक़े पर मुनाफ़िक़ों और इस्लाम-दुश्मनों ने क्या तूफ़ान उठाया था। अब ज़रा सूरा-33 अहज़ाब निकालकर पढ़िए। वहाँ आप देखेंगे कि ठीक उसी तूफ़ान का ज़माना था जबकि समाजी इस्लाह के बारे में नीचे लिखी हिदायतें दी गईं—

(1) नबी (सल्ल०) की पाक बीवियों को हुक्म दिया गया कि अपने घरों में वक़ार और इज़्ज़त के साथ बैठो, बनाव-सिंगार करके बाहर न निकलो, और पराए मर्दों से बात करने का मौक़ा हो तो दबी ज़बान से बात न करो कि कोई शख़्स ग़लत उम्मीदें लगा ले। (आयतें—32, 33)

(2) नबी (सल्ल०) के घरों में पराए मर्दों के बिना इजाज़त दाख़िल हो जाने को रोक दिया गया, और हिदायत की गई कि पाक बीवियों से कोई चीज़ माँगनी हो तो परदे के पीछे से माँगो। (आयत-53)

(3) ग़ैर-महरम मर्दों (यानी वे मर्द जिनसे शादी हो सकती हो) और महरम रिश्तेदारों (जिनसे निकाह हराम है) के बीच फ़र्क़ क़ायम किया गया और हुक्म दिया गया कि पाक बीवियों के सिर्फ़ महरम रिश्तेदार ही आज़ादी के साथ आप (सल्ल०) के घरों में आ-जा सकते हैं। (आयत-55)

(4) मुसलमानों को बताया गया कि नबी की बीवियाँ तुम्हारी माएँ हैं और ठीक उसी तरह एक मुसलमान के लिए हमेशा के लिए हराम हैं जिस तरह उसकी सगी माँ होती है। इसलिए उनके बारे में हर मुसलमान अपनी नीयत को बिलकुल पाक रखे। (आयतें-53, 54)

(5) मुसलमानों को ख़बरदार कर दिया गया कि नबी (सल्ल०) को तकलीफ़ देना दुनिया और आख़िरत में ख़ुदा की लानत और रुसवा कर देनेवाले अज़ाब का सबब है, और इसी तरह किसी मुसलमान की इज़्ज़त पर हमला करना और उसपर नाहक़ इलज़ाम लगाना भी सख़्त गुनाह है। (आयतें— 57, 58)

(6) तमाम मुसलमान औरतों को हुक्म दे दिया गया कि जब बाहर निकलने की ज़रूरत पेश आए तो चादरों से अपने आपको अच्छी तरह ढाँककर और घूँघट डालकर निकला करें। (आयत-59)

फिर जब 'इफ़्क' (झूठी तुहमत लगाने) वाले वाक़िए से मदीना के समाज में एक हलचल मच गई तो यह सूरा नूर अख़लाक़, रहन-सहन और क़ानून के ऐसे हुक्मों और हिदायतों के साथ उतारी गई कि जिनका मक़सद यह था कि अव्वल तो मुस्लिम समाज

को बुराइयों की पैदावार और उनके फैलाव से बचाकर रखा जाए, और अगर वे पैदा हो ही जाएँ तो फिर उनका पूरा-पूरा इलाज किया जाए। इन हुक्मों और हिदायतों को हम उसी तरतीब के साथ यहाँ ख़ुलासे के तौर पर बयान करते हैं जिसके साथ वे इस सूरा में उतरी हैं; ताकि पढ़नेवाले अन्दाज़ा कर सकें कि क़ुरआन ठीक नफ़सियाती (मनोवैज्ञानिक) मौक़े पर इनसानी ज़िन्दगी के सुधार और तामीर के लिए किस तरह क़ानूनी, अख़लाक़ी और समाजी तदबीरें एक साथ पेश करता है—

(1) ज़िना (व्यभिचार) जिसे सामाजिक जुर्म पहले ही ठहराया जा चुका था (सूरा-4 निसा, आयतें—15, 16), अब उसको फ़ौजदारी जुर्म ठहराकर उसकी सज़ा सौ (100) कोड़े तय कर दी गई।

(2) बदकार मर्दों और औरतों के सामाजिक बायकॉट का हुक्म दिया गया और उनके साथ निकाह का रिश्ता जोड़ने से ईमानवालों को मना कर दिया गया।

(3) जो शख़्स दूसरे पर ज़िना (व्यभिचार) का इलज़ाम लगाए और फिर सुबूत में चार गवाह न पेश कर सके, उसके लिए अस्सी (80) कोड़ों की सज़ा तय की गई।

(4) शौहर अगर बीवी पर तुहमत लगाए तो उसके लिए 'लिआन' का क़ायदा मुक़र्रर किया गया।

(5) हज़रत आइशा (रज़ि॰) पर मुनाफ़िक़ों के झूठे इलज़ाम को ग़लत बताते हुए यह हिदायत की गई कि आँखें बन्द करके हर शरीफ़ आदमी के ख़िलाफ़ हर तरह की तुहमतें क़बूल न कर लिया करो, और न उनको फैलाते फिरो। इस तरह की अफ़वाहें अगर उड़ रही हों तो उन्हें दबाना और उनको ख़त्म करना चाहिए, न यह कि एक मुँह से लेकर दूसरा मुँह उसे आगे फूँकना शुरू कर दे। इसी सिलसिले में यह बात एक उसूली हक़ीक़त के तौर पर समझाई गई कि पाक-साफ़ आदमी का जोड़ पाक-साफ़ औरत ही से लग सकता है, बुरी औरत के तौर-तरीक़ों से उसका मिज़ाज कुछ दिन भी मेल नहीं खा सकता। और ऐसा ही हाल पाक-साफ़ औरत का भी होता है कि उसकी रूह पाक-साफ़ मर्द ही से मेल खा सकती है, न कि बुरे आदमी से। अब अगर रसूल (सल्ल॰) को तुम जानते हो कि वे एक पाकीज़ा, बल्कि सबसे ज़्यादा पाकीज़ा, इनसान हैं तो किस तरह यह बात तुम्हारी अक़्ल में समा गई कि एक गन्दी औरत उनकी सबसे ज़्यादा चहेती बीवी बन सकती थी। जो औरत अमली तौर से ज़िना तक कर गुज़रे, उसके आम तौर-तरीक़े कब ऐसे हो सकते हैं कि रसूल (सल्ल॰) जैसा पाकीज़ा इनसान उसके साथ यूँ निबाह करे; तो सिर्फ़ यह बात कि एक कमीने आदमी ने एक बेहूदा इलज़ाम किसी पर लगा दिया है, उसे

मानने लायक़ तो दूर ध्यान देने और मुमकिन समझ लेने के लिए भी काफ़ी नहीं है। आँखें खोलकर देखो कि इलज़ाम लगानेवाला है कौन और इलज़ाम लगा किस पर रहा है।

(6) जो लोग बेहूदा ख़बरें और बुरी अफ़वाहें फैलाएँ और मुस्लिम समाज में गन्दी बातों और गन्दी चीज़ों को रिवाज देने की कोशिश करें, उनके बारे में बताया गया कि हिम्मत बढ़ाने के नहीं, बल्कि सज़ा के हक़दार हैं।

(7) यह बुनियादी उसूल मुक़र्रर किया गया कि मुस्लिम मुआशरे में समाजी ताल्लुक़ात की बुनियाद इस बात पर हो कि लोग आपस में एक-दूसरे के बारे में अच्छा गुमान रखें। हर शख़्स बेगुनाह समझा जाए जब तक कि उसके गुनहगार होने का सुबूत न मिले; न यह कि हर शख़्स गुनहगार समझा जाए जब तक कि उसका बेगुनाह होना साबित न हो जाए।

(8) लोगों को आम हिदायत की गई कि एक-दूसरे के घरों में बेझिझक न घुस जाया करें, बल्कि इजाज़त लेकर जाएँ।

(9) औरतों और मर्दों को नज़रें नीची रखने का हुक्म दिया गया और एक-दूसरे को घूरने या ताक-झाँक करने से मना कर दिया गया।

(10) औरतों को हुक्म दिया गया कि अपने घरों में सिर और सीना ढाँककर रखें।

(11) औरतों को यह भी हुक्म दिया गया कि अपने महरम रिश्तेदारों और घरेलू नौकरों के सिवा किसी के सामने बन-सँवरकर न आएँ।

(12) उनको यह भी हुक्म दिया गया कि बाहर निकलें तो न सिर्फ़ यह कि अपने बनाव-सिंगार को छिपाकर निकलें, बल्कि बजनेवाले ज़ेवर भी पहनकर न निकलें।

(13) समाज में औरतों और मर्दों के-बिन-ब्याहे बैठे रहने का तरीक़ा नापसन्दीदा ठहराया गया और हुक्म दिया गया कि जिनकी शादी न हुई हो उन लोगों के निकाह किए जाएँ; यहाँ तक कि लौंडियों और ग़ुलामों को भी बिन-ब्याहा न रहने दिया जाए। इसलिए कि बग़ैर शादी के अकेले रहना बेशर्मी और बेहयाई के फलने-फूलने का सबब होता। ऐसे लोग और कुछ नहीं तो बुरी ख़बरें सुनने और फैलाने ही में दिलचस्पी लेने लगते हैं।

(14) लौंडियों और ग़ुलामों को आज़ाद करने के लिए मुकातबत (यानी लिखा-पढ़ी करके और दे-दिलाकर आज़ादी) की राह निकाल दी गई और मालिकों के अलावा दूसरों को भी हुक्म दिया गया कि वे ऐसे ग़ुलामों और लौंडियों की माली मदद करें जो अपने मालिकों से लिखा-पढ़ी करके और दे-दिलाकर आज़ाद होना चाहते हैं।

(15) लौंडियों से बदकारी का धंधा कराना मना कर दिया गया। अरब में यह पेशा लौंडियों ही से कराने का रिवाज था, इसलिए इसकी मनाही अस्ल में देह-व्यापार की क़ानूनी बन्दिश थी।

(16) घरेलू रहन-सहन में घर के नौकरों और नाबालिग़ बच्चों के लिए यह क़ायदा मुक़र्रर कर किया गया कि वे तन्हाई के वक़्तों में (यानी सुबह, दोपहर और रात के वक़्त) घर के किसी मर्द या औरत के कमरे में अचानक न घुस जाया करें। औलाद तक को इजाज़त लेकर आने की आदत डाली जाए।

(17) बूढ़ी औरतों को यह छूट दी गई कि अगर वे अपने घर में सिर से दुपट्टा उतारकर रख दें तो कोई हरज नहीं, मगर हुक्म दिया गया कि 'तबर्रुज' (बन-ठनकर अपने आपको दिखाने) से बचें। साथ ही उन्हें नसीहत की गई कि बुढ़ापे में भी अगर वे दुपट्टे अपने ऊपर डाले ही रहें तो बेहतर है।

(18) अन्धे, लंगड़े-लूले और बीमार को यह छूट दी गई कि वे खाने की कोई चीज़ किसी के यहाँ से बिना इजाज़त खा ले तो उसकी गिनती चोरी और ख़ियानत (बेईमानी) में न होगी। उसपर कोई पकड़ न की जाए।

(19) क़रीबी रिश्तेदारों और बे-तकल्लुफ़ दोस्तों को यह हक़ दिया गया कि वे एक-दूसरे के यहाँ बिना इजाज़त भी खा सकते हैं, और यह ऐसा ही है जैसे वे अपने घर में खा सकते हैं। इस तरह समाज के लोगों को एक-दूसरे से बहुत क़रीब कर दिया गया और उनके बीच से पराएपन के परदे हटा दिए गए, ताकि आपस की मुहब्बत बढ़े और आपसी ख़ुलूस के ताल्लुक़ात उन दरारों को बन्द कर दें जिनसे कोई फ़ितना फैलानेवाला फूट डाल सकता हो।

इन हिदायतों के साथ-साथ मुनाफ़िक़ों और ईमानवालों की वे खुली-खुली निशानियाँ और अलामतें बयान कर दी गई हैं जिनसे हर मुसलमान यह जान सके कि समाज में सच्चे ईमानवाले कौन लोग हैं और मुनाफ़िक़ कौन? दूसरी तरफ़ मुसलमानों के जमाअती नज़्मो-ज़ब्त (सामाजिक अनुशासन) को और कस दिया गया और इसके लिए कुछ और ज़ाब्ते बना दिए गए, ताकि वह ताक़त और ज़्यादा मज़बूत हो जाए जिससे भड़ककर इस्लाम-दुश्मन और मुनाफ़िक़ लोग फ़साद फैला रहे थे।

इस तमाम बहस में नुमायाँ चीज़ देखने की यह है कि पूरी सूरा नूर उस तलख़ी और कड़वाहट से ख़ाली है जो शर्मनाक और बेहूदा हमलों के जवाब में पैदा हुआ करती है। एक तरफ़ उन हालात को देखिए, जिनमें यह सूरत उतरी है और दूसरी तरफ़ इस सूरा में बयान की गई बातों और बात के अन्दाज़ को देखिए। इतनी ज़्यादा भड़काऊ हालत में

कैसे ठंडे तरीक़े से क़ानून बनाए जा रहे हैं, इस्लाह और सुधार के लिए अहकाम और हिकमत से भरी हिदायतें दी जा रही हैं और तालीम और नसीहत का हक़ अदा किया जा रहा है। इससे सिर्फ़ यही सबक़ नहीं मिलता कि हमको फ़ितनों के मुक़ाबले में सख़्त-से-सख़्त भड़का देनेवाले और जोश दिलानेवाले मौक़ों पर भी किस तरह ठंडे ग़ौर-फ़िक्र, कुशादा दिली और हिकमत और सूझ-बूझ से काम लेना चाहिए, बल्कि इससे इस बात का सुबूत भी मिलता है कि यह कलाम मुहम्मद (सल्ल॰) का अपना गढ़ा हुआ नहीं है, किसी ऐसी हस्ती ही का उतारा हुआ है जो बहुत बुलन्द मक़ाम से इनसानी हालात और मामलात को देख रही है और अपने आप में इन हालात और मामलों से कोई असर न लेकर ख़ालिस हिदायत देने और रहनुमाई करने का फ़र्ज़ अदा कर रही है। अगर यह नबी (सल्ल॰) का अपना कलाम होता तो आप (सल्ल॰) की इन्तिहाई सूझ-बूझ के बावजूद इसमें उस फ़ितरी तलख़ी का कुछ-न-कुछ असर तो ज़रूर पाया जाता जो ख़ुद अपनी इज़्ज़त और पाकदामनी पर घटिया हमलों को सुनकर एक शरीफ़ आदमी के जज़बात में लाज़िमन पैदा हो जाया करती है।

☆☆☆

آيَاتُهَا ٦٤ ٢٤ سُوْرَةُ النُّوْرِ مَدَنِيَّةٌ ١٠٢ رُكُوْعَاتُهَا ٩

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

سُوْرَةٌ اَنْزَلْنٰهَا وَفَرَضْنٰهَا وَاَنْزَلْنَا فِيْهَاۤ اٰيٰتٍۭ بَيِّنٰتٍ لَّعَلَّكُمْ تَذَكَّرُوْنَ ① اَلزَّانِيَةُ وَالزَّانِيْ فَاجْلِدُوْا كُلَّ وَاحِدٍ مِّنْهُمَا مِائَةَ جَلْدَةٍ ۪

24. अन-नूर

(मदीना में उतरी--आयतें-64)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) यह एक सूरा है जिसको हमने (ख़ुदा ने) उतारा है, और इसे हमने फ़र्ज़ किया है, और इसमें हमने साफ़-साफ़ हिदायतें उतारी हैं,[1] शायद कि तुम सबक़ लो।

(2) ज़िना (व्यभिचार) करनेवाली औरत और ज़िना करनेवाले मर्द, दोनों में से हर एक को सौ कोड़े मारो।[2]——

1. इन सब जुमलों में 'हमने' पर ज़ोर है। यानी इसका उतारनेवाला कोई और नहीं, बल्कि 'हम' हैं। इसलिए इसे किसी बेज़ोर नसीहत करनेवाले की बात की तरह एक हलकी चीज़ न समझ बैठना। ख़ूब जान लो कि इसका उतारनेवाला वह है जिसके क़ब्ज़े में तुम्हारी जानें और क़िस्मतें हैं, और जिसकी पकड़ से तुम मरकर भी नहीं छूट सकते।
   दूसरे जुमले में बताया गया है कि जो बातें इस सूरा में कही गई हैं वे 'सिफ़ारिशें' नहीं हैं कि आपका जी चाहे तो मानें वरना जो कुछ चाहें करते रहें, बल्कि ये तयशुदा हुक्म हैं जिनकी पैरवी करना ज़रूरी है। अगर मोमिन (ईमानवाले) और मुस्लिम हो तो तुम्हारा फ़र्ज़ है कि उनके मुताबिक़ अमल करो।
   तीसरे जुमले में बताया गया है कि जो हिदायतें इस सूरा में दी जा रही हैं उनमें कोई बात छिपी हुई नहीं है। साफ़-साफ़ और खुली-खुली हिदायतें हैं जिनके बारे में तुम यह बहाना नहीं कर सकते कि फ़ुलाँ बात हमारी समझ ही में नहीं आई थी तो हम अमल कैसे करते।
   बस यह इस मुबारक फ़रमान की शुरुआती बात (Preamble) है जिसके बाद हुक्म शुरू हो जाते हैं। शुरू में कही गई इस बात का अन्दाज़े-बयान ख़ुद बता रहा है कि सूरा नूर के हुक्मों को अल्लाह तआला कितनी अहमियत देकर पेश कर रहा है। क़ुरआन की कोई दूसरी सूरा जिसमें समाजी हिदायतें दी गई हों, ऐसी नहीं है जिसकी शुरुआत में इतनी ज़ोरदार बात कही गई हो।
2. इस मसले के बहुत-से क़ानूनी, अख़लाक़ी और तारीख़ी पहलू हैं जो तशरीह (व्याख्या) चाहते हैं

जिनको अगर तफ़सील के साथ बयान न किया जाए तो मौजूदा ज़माने में एक आदमी के लिए ख़ुदा के इस क़ानून का समझना मुश्किल है। इसलिए नीचे हम इसके अलग-अलग पहलुओं पर एक सिलसिले के साथ रौशनी डालेंगे—

(1) ज़िना (व्यभिचार) का आम मतलब जिससे हर शख़्स वाक़िफ़ है, यह है कि "एक मर्द और एक औरत, बिना इसके कि उनके बीच मियाँ-बीवी का जाइज़ रिश्ता हो, आपस में हमबिस्तरी (सम्भोग) करें।" इस काम का अख़लाक़ी तौर से बुरा होना, या मज़हबी तौर से गुनाह होना, या सामाजिक हैसियत से बुरा होना और एतिराज़ के क़ाबिल होना, एक ऐसी चीज़ है जिसपर पुराने ज़माने से आज तक तमाम इनसानी समाज एक राय रहे हैं, और इसमें सिवाय उन अलग-अलग बिखरे हुए लोगों के जिन्होंने अपनी अक़्ल को अपनी नफ़्सपरस्ती और अपने मन की ख़ाहिशों की बन्दगी का ग़ुलाम बना दिया है, या जिन्होंने पागलपन की उपज को फ़लसफ़ा (दर्शन) समझ रखा है, किसी ने आज तक इख़्तिलाफ़ नहीं किया है। सारी दुनिया की इस बात पर एक राय हो जाने की वजह यह है कि इनसानी फ़ितरत ख़ुद ज़िना के हराम (अवैध) होने का तक़ाज़ा करती है। इनसानी नस्ल का बाक़ी रहना और इनसानी तमद्दुन (संस्कृति) का क़ायम होना, दोनों का दारोमदार इस बात पर है कि औरत और मर्द सिर्फ़ लुत्फ़ और लज़्ज़त के लिए मिलने और फिर अलग हो जाने में आज़ाद न हों, बल्कि हर जोड़े का आपसी ताल्लुक़ एक ऐसे मुस्तक़िल और हमेशा रहनेवाले और पुख़्ता वादे पर क़ायम हो जो समाज में जाना-माना भी हो और जिसे समाज की ज़मानत भी हासिल हो। इसके बिना इनसानी नस्ल एक दिन के लिए भी नहीं चल सकती; क्योंकि इनसान का बच्चा अपनी ज़िन्दगी और अपनी इनसानी नशो-नमा (लालन-पालन और पलने-बढ़ने) के लिए कई साल की हमदर्दी भरी देखभाल और तरबियत का मुहताज होता है, और अकेली औरत इस बोझ को उठाने के लिए कभी तैयार नहीं हो सकती जब तक कि वह मर्द उसका साथ न दे जो उस बच्चे के वुजूद में आने का सबब बना हो। इसी तरह उस मुआहदे के बिना इनसानी तमद्दुन भी बाक़ी नहीं रह सकता; क्योंकि तमद्दुन की तो पैदाइश ही एक मर्द और एक औरत के मिलकर रहने, एक घर और एक ख़ानदान वुजूद में लाने, और फिर ख़ानदानों के बीच रिश्ते और राब्ते पैदा होने से हुई है। अगर औरत और मर्द घर और ख़ानदान के बनाने को नज़र-अन्दाज़ करके सिर्फ़ मज़े और लज़्ज़त के लिए आज़ादाना मिलने लगें तो सारे इनसान बिखरकर रह जाएँ, इजतिमाई ज़िन्दगी की जड़ कट जाए, और वह बुनियाद ही बाक़ी न रहे जिसपर तहज़ीब और तमद्दुन (संस्कृति और सभ्यता) की यह इमारत उठी है। इन वजहों से औरत और मर्द का ऐसा आज़ादाना ताल्लुक़ जिसकी बुनियाद किसी मालूम और जाने-पहचाने और तस्लीमशुदा मुआहिदे पर न हो, इनसानी फ़ितरत के ख़िलाफ़ है। इन्हीं वजहों से इनसान इसको हर ज़माने में एक बड़ा ऐब, एक बड़ी बद-अख़लाक़ी, और मज़हबी ज़बान में सख़्त गुनाह समझता रहा है। और इन्हीं वजहों से हर ज़माने में इनसानी समाजों ने निकाह (विवाह) को रिवाज देने के साथ-साथ ज़िना (व्यभिचार) की रोकथाम की भी किसी-न-किसी तौर पर ज़रूर कोशिश की है। अलबत्ता इस कोशिश की शक्लों में अलग-अलग क़ानूनों और अख़लाक़ी और सामाजिक और मज़हबी निज़ामों

(व्यवस्थाओं) में फ़र्क़ रहा है जिसकी बुनियाद अस्ल में इस फ़र्क़ पर है कि जाति और समाज के लिए ज़िना के नुक़सानदेह होने का एहसास कहीं कम है और कहीं ज़्यादा, कहीं वाज़ेह है और कहीं दूसरे मसलों में उलझकर रह गया है।

(2) ज़िना के हराम होने पर सब लोगों के एक राय होने के बाद इख़्तिलाफ़ जिस बात में हुआ है वह उसके जुर्म, यानी क़ानूनी तौर पर उसपर सज़ा का हक़दार होने का मामला है, और यही वह मक़ाम है जहाँ से इस्लाम और दूसरे मज़हबों और क़ानूनों का फ़र्क़ शुरू होता है। इनसानी फ़ितरत से क़रीब जो समाज रहे हैं, उन्होंने हमेशा ज़िना, यानी औरत और मर्द के नाजाइज़ ताल्लुक़, को अपने आपमें एक जुर्म समझा है और उसके लिए सख़्त सज़ाएँ रखी हैं। लेकिन ज्यों-ज्यों इनसानी समाजों को तमद्दुन (संस्कृति) ख़राब करता गया है, रवैया नर्म होता चला गया है।

इस मामले में सबसे पहली कोताही जो आम तौर से की गई, यह थी कि 'सिर्फ़ ज़िना' (Fornication) और 'दूसरे की बीवी के साथ ज़िना' (Adultery) में फ़र्क़ करके, पहले को एक मामूली-सी ग़लती, और सिर्फ़ दूसरे को सज़ा के क़ाबिल जुर्म ठहरा दिया गया।

मुख़्तलिफ़ क़ानूनों में ज़िना जिस चीज़ को कहते हैं, वह सिर्फ़ यह है कि "कोई मर्द, चाहे वह कुँआरा हो या शादीशुदा, किसी ऐसी औरत से हमबिस्तरी करे जो किसी दूसरे शख़्स की बीवी न हो।" इसमें अस्ल एतिबार मर्द की हालत का नहीं, बल्कि औरत की हालत का किया गया है। औरत अगर बेशौहर है तो उससे हमबिस्तरी सिर्फ़ ज़िना है, यह देखे बिना कि मर्द चाहे बीवी रखता हो या न रखता हो। क़दीम (प्राचीन) मिस्र, बाबिल, आशूर (असीरिया) और भारत के क़ानूनों में इसकी सज़ा बहुत हलकी थी। इसी क़ायदे को यूनान और रोम ने अपनाया, और इसी से आख़िरकार यहूदी भी मुतास्सिर हो गए। बाइबल में यह सिर्फ़ एक ऐसा क़ुसूर है जिससे मर्द पर सिर्फ़ माली जुर्माना ज़रूर लग सकता है। किताब 'निर्गमन' में इसके बारे में जो हुक्म है उसके अलफ़ाज़ ये हैं–

"अगर कोई आदमी किसी कुँआरी को जिसकी निस्बत (यानी मंगनी) न हुई हो, फुसलाकर उससे हमबिस्तरी कर ले तो वह ज़रूर ही उसे मह्र देकर उससे ब्याह कर ले, लेकिन अगर उसका बाप हरगिज़ राज़ी न हो कि उस लड़की को उसे दे तो वह कुँआरियों के मह्र के बराबर (यानी जितना मह्र किसी कुँआरी लड़की को दिया जाता हो) उसे नक़दी दे।"

(अध्याय- 22, आयत-16, 17)

किताब 'इस्तिसना' में यही हुक्म ज़रा अलग अलफ़ाज़ में बयान हुआ है, और फिर खोलकर बयान किया गया है कि मर्द से लड़की के बाप को पचास मिस्क़ाल चाँदी हर्जाना दिलवाया जाए (अध्याय-22, आयतें-28, 29) अलबत्ता अगर कोई शख़्स काहिन (यानी पुरोहित, Priest) की बेटी से ज़िना करे तो उसके लिए यहूदी क़ानून में फाँसी की सज़ा है, और लड़की के लिए ज़िन्दा जलाने की (Everyman's Talmud, p. 319-20)

यह सोच और ख़याल हिन्दुओं के ख़याल से कितना ज़्यादा मिलता-जुलता है इसका अन्दाज़ा करने के लिए मनुस्मृति से मुक़ाबला करके देखिए। वहाँ लिखा है कि–

"जो व्यक्ति अपनी जाति की कुँआरी लड़की से उसकी मरज़ी (सहमति) से ज़िना (व्यभिचार)

करे, वह किसी दण्ड का पात्र नहीं है। लड़की का पिता राज़ी हो तो वह उसको बदले में कुछ देकर विवाह कर ले। अलबंत्ता अगर लड़की ऊँची जाति की हो और पुरुष निचली जाति का तो लड़की को घर से निकाल देना चाहिए और पुरुष को अंग काटने का दण्ड देना चाहिए।'' (अध्याय-8, श्लोक-365, 366) और यह दण्ड जीवित जला दिए जाने के दण्ड में परिवर्तित किया जा सकता है जबकि लड़की ब्राह्मण हो। (श्लोक- 377)

अस्ल में इन सब क़ानूनों में दूसरे की बीवी के साथ ज़िना ही अस्ली और बड़ा जुर्म था यानी यह कि कोई शख़्स (चाहे वह शादीशुदा हो या ग़ैर-शादीशुदा) किसी ऐसी औरत से हमबिस्तरी करे जो दूसरे की बीवी हो। इस काम के जुर्म होने की बुनियाद यह न थी कि एक मर्द और औरत ने ज़िना का जुर्म किया है, बल्कि यह थी कि उन दोनों ने मिलकर एक शख़्स को इस ख़तरे में डाल दिया है कि उसे किसी ऐसे बच्चे को पालना पड़े जो उसका नहीं है। यानी ज़िना नहीं, बल्कि नसब (वंश) के गड्ड-मड्ड हो जाने का ख़तरा और एक के बच्चे का दूसरे के ख़र्च पर पलना और उसका वारिस होना जुर्म की अस्ल बुनियाद था जिसकी वजह से औरत और मर्द दोनों मुजरिम ठहरते थे। मिस्रवालों के यहाँ इसकी सज़ा यह थी कि मर्द को लाठियों से ख़ूब पीटा जाए और औरत की नाक काट दी जाए। लगभग ऐसी ही सज़ाएँ बाबिल, अशूर और प्राचीन ईरान में भी राइज थीं। हिन्दुओं के यहाँ औरत की सज़ा यह थी कि उसको कुत्तों से फड़वा दिया जाए और मर्द की यह कि उसे लोहे के गर्म पलंग पर लिटाकर चारों तरफ़ आग जला दी जाए। यूनान और रोम में शुरू में एक मर्द को यह हक़ हासिल था कि अगर वह अपनी बीवी के साथ किसी को ज़िना करते देख ले तो उसे क़त्ल कर दे, या चाहे तो उससे माली हर्जाना वुसूल कर ले। फिर पहली शताब्दी ई॰ पू॰ में क़ैसर ऑगस्टस ने यह क़ानून बनाया कि मर्द की आधी जायदाद ज़ब्त करके उसे देश-निकाला दे दिया जाए, और औरत का आधा महर ख़त्म और उसकी आधी जायदाद ज़ब्त करके उसे भी मुल्क के किसी दूर-दराज़ इलाक़े में भेज दिया जाए। क़ुस्तनतीन ने इस क़ानून को बदलकर औरत और मर्द दोनों के लिए मौत की सज़ा मुक़र्रर की। लिओ (Leo) और मारसियन (Marcian) के दौर में इस सज़ा को उम्रक़ैद में बदल दिया गया। फिर क़ैसर जसटिनीन ने इसमें कुछ और कमी करके यह क़ायदा मुक़र्रर कर दिया कि औरत को कोड़ों से पीटकर किसी राहिबख़ाने (संन्यास-गृह) में डाल दिया जाए और उसके शौहर को यह हक़ दिया जाए कि चाहे तो दो साल के अन्दर उसे निकलवा ले, वरना सारी उम्र वहीं पड़ा रहने दे।

यहूदी क़ानून में दूसरे की औरत के बारे में जो अहकाम (आदेश) पाए जाते हैं वे ये हैं—

''अगर कोई किसी ऐसी औरत से हमबिस्तरी करे जो लौंडी और किसी आदमी की मंगेतर हो और न तो उसका फ़िद्‌या ही दिया गया हो और न वह आज़ाद की गई हो तो उन दोनों को सज़ा मिले, लेकिन वे जान से न मारे जाएँ, इसलिए कि औरत आज़ाद न थी।''

(अहबार,19:20)

''जो आदमी दूसरे की बीवी से, यानी अपने पड़ोसी की बीवी से ज़िना (व्यभिचार) करे, वे व्यभिचारी और व्यभिचारिणी दोनों ज़रूर जान से मार दिए जाएँ।'' (अहबार, 20:10)

''अगर कोई मर्द किसी शौहरवाली औरत से ज़िना करते पकड़ा जाए तो वे दोनों मार डाले जाएँ।'' (इस्तिसना, 22:22)

''अगर कोई कुँआरी लड़की किसी शख़्स से जुड़ गई हो (यानी उसकी मंगेतर हो) और कोई दूसरा आदमी उसे शहर में पाकर उससे हमबिस्तरी करे तो तुम उन दोनों को उस शहर के फाटक पर निकाल लाना और उनको तुम संगसार कर देना कि वे मर जाएँ। लड़की को इसलिए कि वह शहर में होते हुए न चिल्लाई और मर्द को इसलिए कि उसने अपने पड़ोसी की बीवी को बेइज़्ज़त किया, पर अगर उस आदमी को वही लड़की जिसका रिश्ता तय हो चुका हो, किसी मैदान या खेत में मिल जाए और वह आदमी उससे ज़बरदस्ती सहवास (बलात्कार) करे तो सिर्फ़ वह आदमी ही जिसने सहवास किया मार डाला जाए, पर उस लड़की से कुछ न करना।'' (इसतिसना, 22:22-26)

लेकिन हज़रत ईसा (अलैहि॰) के ज़माने से बहुत पहले यहूदी आलिम, फ़क़ीह, हाकिम और आम लोग, सब इस क़ानून को अमली तौर पर ख़त्म कर चुके थे। यह हालाँकि बाइबल में लिखा हुआ था और ख़ुदाई हुक्म इसी को समझा जाता था, मगर इसे अमली तौर से लागू करने को कोई तैयार न था, यहाँ तक कि यहूदियों के इतिहास में इसकी कोई मिसाल तक न पाई जाती थी कि यह हुक्म कभी लागू किया गया हो। हज़रत ईसा (अलैहि॰) जब हक़ की दावत लेकर उठे और यहूदियों के आलिमों ने देखा कि इस सैलाब को रोकने की कोई तदबीर काम नहीं कर रही है तो वे एक चाल के तौर पर ज़िना करनेवाली एक औरत को उनके पास पकड़ लाए और कहा कि इसका फ़ैसला कीजिए (यूहन्ना, अध्याय-8, आयतें 1-11) इससे उनका मक़सद यह था कि हज़रत ईसा (अलैहि॰) को कुएँ या खाई, दोनों में से किसी एक में कूदने पर मजबूर कर दें। अगर वे रज्म (संगसार करने) के सिवा कोई और सज़ा देने के लिए कहें तो उनको यह कहकर बदनाम किया जाए कि लीजिए, ये निराले पैग़म्बर साहब आए हैं जिन्होंने दुनियावी फ़ायदों के लिए ख़ुदा का क़ानून बदल डाला और अगर वे रज्म (पत्थर मार-मारकर मार डालने) का हुक्म दे दें तो एक तरफ़ रूमी क़ानून से उनको टकरा दिया जाए और दूसरी तरफ़ क़ौम से कहा जाए कि मानो इन पैग़म्बर साहब को, देख लेना, अब तौरात की पूरी शरीअत (क़ानून) तुम्हारी पीठों और जानों पर बरसेगी। लेकिन हज़रत ईसा (अलैहि॰) ने एक ही जुमले में उनकी चाल को उन्हीं पर उलट दिया। हज़रत ईसा ने फ़रमाया, ''तुममें से जो ख़ुद पाकदामन हो वह आगे बढ़कर इसे पत्थर मारे।'' यह सुनते ही फ़क़ीहों (क़ानूनदानों) की सारी भीड़ छँट गई, एक-एक मुँह छिपाकर चला गया और 'दीन और शरीअत रखने का दावा करनेवालों' की अख़लाक़ी हालत बिलकुल बेनक़ाब होकर रह गई। फिर जब औरत अकेली खड़ी रह गई तो उन्होंने उसे नसीहत की और तौबा कराके वापस भेज दिया; क्योंकि न हज़रत ईसा क़ाज़ी (जज) थे कि इस मुक़द्दमे का फ़ैसला करते, न उसके ख़िलाफ़ किसी ने गवाही दी थी, और न कोई इस्लामी हुकूमत ख़ुदा का क़ानून लागू करने के लिए मौजूद थी।

हज़रत ईसा (अलैहि॰) के इस वाक़िए से और उनकी कुछ और बहुत-सी बातों से जो अलग-अलग मौक़ों पर उन्होंने कहीं, ईसाइयों ने ग़लत नतीजा निकालकर ज़िना के जुर्म का

एक और तसव्वुर क़ायम कर लिया। उनके यहाँ ज़िना अगर ग़ैर-शादीशुदा मर्द ग़ैर-शादीशुदा औरत से करे तो यह गुनाह तो है, मगर इस जुर्म पर सज़ा नहीं होगी। और अगर इस काम को करनेवालों में का कोई एक शख़्स, चाहे वह औरत हो या मर्द, शादीशुदा हो या दोनों शादीशुदा हों तो यह जुर्म है, मगर इसको जुर्म बनानेवाली चीज़ अस्ल में 'अहद तोड़ना' है, न कि सिर्फ़ ज़िना। उनके नज़दीक जिसने भी शादीशुदा होकर ज़िना का जुर्म किया, वह इसलिए मुजरिम है कि उसने उस वफ़ादारी के अहद (प्रतिज्ञा) को तोड़ दिया जो क़ुरबानगाह के सामने उसने पादरी के वास्ते से अपनी बीवी या अपने शौहर के साथ बाँधा था। मगर इस जुर्म की कोई सज़ा इसके सिवा नहीं है कि ज़िना करनेवाले मर्द की बीवी अपने शौहर के ख़िलाफ़ बेवफ़ाई का दावा करके अलग होने (तलाक़) की डिग्री हासिल कर ले और ज़िना करनेवाली औरत का शौहर एक तरफ़ अपनी बीवी पर दावा करके अलग होने की डिग्री (तलाक़) ले और दूसरी तरफ़ उस शख़्स से भी हर्जाना लेने का हक़दार हो जिसने उसकी बीवी को ख़राब किया। बस यह सज़ा है जो मसीही क़ानून शादीशुदा ज़िना करनेवालों और ज़िना करनेवालियों को देता है, और ग़ज़ब यह है कि यह सज़ा भी दोधारी तलवार है। अगर एक औरत अपने शौहर के ख़िलाफ़ 'बेवफ़ाई' का दावा करके अलग होने की डिग्री हासिल कर ले तो वह बेवफ़ा शौहर से तो नजात हासिल कर लेगी, लेकिन मसीही क़ानून के मुताबिक़ फिर वह उम्र भर कोई दूसरी शादी नहीं कर सकेगी। और ऐसा ही अंजाम उस मर्द का भी होगा जो बीवी पर 'बेवफ़ाई' का दावा करके अलग होने की डिग्री ले; क्योंकि मसीही क़ानून उसको भी दूसरी शादी का हक़ नहीं देता। मानो मियाँ-बीवी में से जिसको भी तमाम उम्र राहिब (जोगी) बनकर रहना हो, वह अपने जीवन-साथी की बेवफ़ाई का शिकवा मसीही अदालत में ले जाए।

मौजूदा ज़माने के मग़रिबी (पश्चिमी) क़ानून जिनकी पैरवी अब ख़ुद मुसलमानों के भी बहुत-से देश कर रहे हैं, उनकी बुनियाद भी इन्हीं मुख़्तलिफ़ तसव्वुरों पर है। उनके नज़दीक ज़िना, ऐब या बदअख़लाक़ी या गुनाह जो कुछ भी हो, जुर्म बहरहाल नहीं है। उसे अगर कोई चीज़ जुर्म बना सकती है तो वह ज़ोर-ज़बरदस्ती है जबकि दूसरे शख़्स की मरज़ी के ख़िलाफ़ ज़बरदस्ती उससे हमबिस्तरी की जाए। रहा किसी शादीशुदा मर्द का ज़िना कर बैठना तो वह अगर शिकायत की वजह है तो उसकी बीवी के लिए है, वह चाहे तो उसका सुबूत देकर तलाक़ हासिल कर ले। और ज़िना करनेवाली अगर शादीशुदा औरत है तो उसके शौहर को न सिर्फ़ उसके ख़िलाफ़, बल्कि ज़िना करनेवाले मर्द के ख़िलाफ़ भी शिकायत की वजह पैदा होती है, और दोनों पर दावा करके वह बीवी से तलाक़ और ज़िना करनेवाले मर्द से हर्जाना वुसूल कर सकता है।

(3) इस्लामी क़ानून इन सब बातों के बरख़िलाफ़ ज़िना को अपने आपमें ख़ुद एक सज़ा के क़ाबिल जुर्म ठहराता है और शादीशुदा होकर ज़िना करना उसके नज़दीक जुर्म की शिद्दत को और ज़्यादा बढ़ा देता है, न इस बुनियाद पर कि मुजरिम ने किसी से 'अहद तोड़ा', या किसी दूसरे के बिस्तर पर हाथ मारा, बल्कि इस बुनियाद पर कि उसके लिए अपनी ख़ाहिशों को पूरा करने का एक जाइज़ ज़रिआ मौजूद था और फिर भी उसने नाजाइज़ ज़रिआ

अपनाया। इस्लामी क़ानून ज़िना को इस नज़रिए से देखता है कि यह वह काम है जिसकी अगर आज़ादी हो जाए तो एक तरफ़ इनसानी नस्ल की और दूसरी तरफ़ इनसानी तहज़ीब की जड़ कट जाए। नस्ल के बाक़ी रहने और तहज़ीब को क़ायम रखने, दोनों के लिए ज़रूरी है कि औरत और मर्द का ताल्लुक़ सिर्फ़ क़ानून के मुताबिक़ भरोसेमन्द ताल्लुक़ तक महदूद हो। और उसे महदूद रखना मुमकिन नहीं है, अगर उसके साथ-साथ आज़ादी से किसी और से ताल्लुक़ बनाने की भी खुली गुंजाइश मौजूद रहे; क्योंकि घर और ख़ानदान की ज़िम्मेदारियों का बोझ संभाले बिना जहाँ लोगों को मन की ख़ाहिशों को पूरा करने के मौक़े हासिल रहें, वहाँ उनसे उम्मीद नहीं की जा सकती कि इन्हीं ख़ाहिशों को पूरा करने के लिए वे फिर इतनी भारी ज़िम्मेदारियों का बोझ उठाने पर आमादा होंगे। यह ऐसा ही है जैसे ट्रेन में बैठने के लिए टिकट की शर्त बेमतलब है, अगर बिना टिकट सफ़र करने की आज़ादी भी लोगों को हासिल रहे। टिकट की शर्त अगर ज़रूरी है तो उसे असरदार बनाने के लिए बिना टिकट सफ़र जुर्म होना चाहिए। फिर अगर कोई आदमी पैसा न होने की वजह से बेटिकट सफ़र करे तो कम दर्जे का मुजरिम है, और मालदार होते हुए भी यह हरकत करे तो जुर्म और ज़्यादा सख़्त हो जाता है।

(4) इस्लाम इनसानी समाज को ज़िना के ख़तरे से बचाने के लिए सिर्फ़ क़ानूनी सज़ा के हथियार पर बस नहीं करता, बल्कि इसके लिए बड़े पैमाने पर इसके सुधार और इसे रोकने की तदबीरें इस्तेमाल करता है और यह क़ानूनी सज़ा उसने सिर्फ़ एक आख़िरी रास्ते के तौर पर रखी है। इसका मक़सद यह नहीं है कि लोग यह जुर्म करते रहें और दिन-रात उनपर कोड़े बरसाने के लिए नज़रें गड़ी रहें, बल्कि इसका मक़सद यह है कि लोग यह जुर्म न करें और किसी को इसपर सज़ा देने की नौबत ही न आने पाए। वह सबसे पहले आदमी के अपने नफ़्स (मन) को सुधारता है, उसके दिल में ग़ैब की बातें जाननेवाले और सब कुछ करने की क़ुदरत रखनेवाले ख़ुदा का डर बिठाता है, उसे आख़िरत की पूछ-गच्छ का एहसास दिलाता है जिससे मरकर भी आदमी का पीछा नहीं छूट सकता। उसमें अल्लाह के क़ानून पर चलने का जज़्बा पैदा करता है जो ईमान का लाज़िमी तक़ाज़ा है, और फिर उसे बार-बार ख़बरदार करता है कि ज़िना करना और पाकबाज़ी को छोड़ देना उन बड़े गुनाहों में से है जिनपर अल्लाह सख़्त पूछ-गच्छ करेगा। यह बात सारे क़ुरआन में जगह-जगह आपके सामने आती है। इसके बाद वह आदमी के लिए शादी की तमाम मुमकिन आसानियाँ पैदा करता है। एक बीवी से इत्मीनान न हो तो चार-चार तक से जाइज़ ताल्लुक़ का मौक़ा देता है। दिल न मिलें तो मर्द को तलाक़ देने (शादी का रिश्ता तोड़ने) और औरत को ख़ुलअ (तलाक़ लेने) की आसानियाँ देता है। और आपस में अगर मन-मुटाव हो तो इस सूरत में ख़ानदानी पंचायत से लेकर सरकारी अदालत तक जाने का रास्ता खोल देता है, ताकि या तो सुलह-सफ़ाई हो जाए, या फिर मियाँ-बीवी एक-दूसरे से आज़ाद होकर जहाँ दिल मिले निकाह कर लें। यह सब कुछ आप सूरा-2 बक़रा; सूरा-4 निसा; सूरा-65 तलाक़ में देख सकते हैं। और इसी सूरा नूर में आप अभी देखेंगे कि मर्दों और औरतों के बिन-ब्याहे बैठे रहने को नापसन्द किया गया है और साफ़ हुक्म दे दिया गया है कि ऐसे लोगों के निकाह

कर दिए जाएँ, यहाँ तक कि लौंडियों और ग़ुलामों को भी बिन-ब्याहा न छोड़ा जाए। फिर वह समाज से उन बातों और वजहों का ख़ातिमा करता है जो ज़िना पर उभारनेवाले, उसके लिए उकसानेवाले और उसके मौक़े पैदा करनेवाले हो सकते हैं। ज़िना की सज़ा बयान करने से एक साल पहले सूरा-33 अहज़ाब में औरतों को हुक्म दे दिया गया था कि घर से निकलें तो चादरें ओढ़कर और घूँघट डालकर निकलें, और मुसलमान औरतों के लिए जिस नबी का घर नमूने का घर था, उसकी औरतों को हिदायत कर दी गई थी कि घरों में इज़्ज़त और सुकून के साथ बैठो, अपनी ख़ूबसूरती और हुस्न की नुमाइश न करो, और बाहर के मर्द तुमसे कोई चीज़ लें तो परदे के पीछे से लें। यह नमूना देखते-देखते उन तमाम ईमानवाली औरतों में फैल गया जिनके नज़दीक जाहिलियत के ज़माने की बेहया औरतें नहीं, बल्कि नबी (सल्ल०) की बीवियाँ और बेटियाँ ही इस लायक़ थीं कि उनको नमूना बनाकर उनके रास्ते पर चला जाए। इस तरह फ़ौजदारी क़ानून की सज़ा मुक़र्रर करने से पहले औरतों और मर्दों का घुलना-मिलना बन्द कर दिया गया, बनी-संवरी औरतों का बाहर निकलना बन्द कर दिया गया, और उन सब बातों और वजहों और ज़रिओं का दरवाज़ा बन्द कर दिया गया जो ज़िना के मौक़े देते और उसकी आसानियाँ पैदा करते हैं। इन सबके बाद जब ज़िना की फ़ौजदारी सज़ा मुक़र्रर की गई तो आप देखते हैं कि उसके साथ-साथ इसी सूरा नूर में बेहयाई और बेशर्मी के फैलाने को भी रोका जा रहा है, जिस्म-फ़रोशी (Prostitution) की क़ानूनी बन्दिश भी की जा रही है, औरतों और मर्दों पर बदकारी के बेसुबूत इलज़ाम लगाने और उनकी चर्चाएँ करने के लिए भी सख़्त सज़ा रखी जा रही है, निगाहें नीची करने का हुक्म देकर निगाहों पर पहरे भी बिठाए जा रहे हैं, ताकि नज़रबाज़ी से हुस्नपरस्ती तक और हुस्नपरस्ती से इश्क़बाज़ी तक नौबत न पहुँचे और औरतों को यह हुक्म भी दिया जा रहा है कि अपने घरों में महरम (शौहर और वे क़रीबी रिश्तेदार जिनसे निकाह को शरीअत ने हराम किया है) और ग़ैर-महरम (वे लोग जिनसे निकाह हो सकता है) रिश्तेदारों के बीच फ़र्क़ करें और ग़ैर-महरमों के सामने बन-संवरकर न आएँ। इससे आप उस पूरी स्कीम को जो इस्लाह और सुधार के लिए पेश की गई है, समझ सकते हैं जिसके एक हिस्से के तौर पर ज़िना की क़ानूनी सज़ा मुक़र्रर की गई है। यह सज़ा इसलिए है कि सुधार की तमाम अन्दरूनी और बाहरी तदबीरें अपनाने के बावजूद जो बिगड़ैल लोग खुले हुए जाइज़ रास्तों को छोड़कर नाजाइज़ तरीक़े से ही अपने मन की ख़ाहिश पूरी करने पर अड़े हों, उनकी खाल उधेड़ दी जाए, और एक बदकार को सज़ा देकर समाज के उन बहुत-से लोगों का नफ़सियाती (मनोवैज्ञानिक) ऑपरेशन कर दिया जाए जो इस तरह के रुझान रखते हों। यह सज़ा सिर्फ़ एक मुजरिम की सज़ा ही नहीं है, बल्कि इस बात का अमली एलान भी है कि मुस्लिम समाज बदकारों की तफ़रीहगाह (मनोरंजन-स्थल) नहीं है जिसमें मज़े लूटनेवाले और मज़े लूटनेवालियाँ अख़लाक़ी पाबन्दियों से आज़ाद होकर मज़े लूटते फिरें। इस नज़रिए से कोई शख़्स इस्लाम की इस स्कीम को समझे जो उसने इस्लाह और सुधार के लिए पेश की है तो वह आसानी से महसूस कर लेगा कि इस पूरी स्कीम का एक हिस्सा भी अपनी जगह से न हटाया जा सकता है और न कम-ज़्यादा किया जा सकता है। इसमें रद्दो-बदल का ख़याल या

तो वह नादान कर सकता है जो इसे समझने की सलाहियत रखे बिना सुधारक बन बैठा हो, या फिर वह बिगाड़ फैलानेवाला ऐसा कर सकता है जिसकी अस्ल नीयत उस मक़सद को बदल देने की हो जिसके लिए यह स्कीम उस ख़ुदा ने पेश की है जो निहायत हिकमतवाला है।

(5) ज़िना (व्यभिचार) को सज़ा के क़ाबिल जुर्म तो 03 हि॰ में ही ठहरा दिया गया था, लेकिन उस वक़्त यह एक 'क़ानूनी' जुर्म न था जिसपर हुकूमत की पुलिस और अदालत कोई कार्रवाई करे, बल्कि इसकी हैसियत एक 'सामाजिक' या 'ख़ानदानी' जुर्म की-सी थी जिसपर ख़ानदान के लोग ही को ख़ुद अपने तौर पर सज़ा दे लेने का अधिकार था। हुक्म यह था कि अगर चार गवाह इस बात की गवाही दे दें कि उन्होंने एक मर्द और एक औरत को ज़िना करते देखा है तो दोनों को मारा-पीटा जाए और औरत को घर में क़ैद कर दिया जाए। इसके साथ यह इशारा भी कर दिया गया था कि यह क़ायदा 'दूसरा हुक्म' आने तक के लिए है, (देखिए– तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयतें-15, 16) इसके ढाई-तीन साल बाद यह दूसरा हुक्म उतरा जो आप इस आयत में पा रहे हैं, और इसने पिछले हुक्म को रद्द करके ज़िना को एक ऐसा क़ानूनी जुर्म (Cognizable Offence) ठहरा दिया जिसमें सरकार कार्रवाई करे।

(6) इस आयत में ज़िना की जो सज़ा मुक़र्रर की गई है वह अस्ल में 'सिर्फ़ ज़िना' की सज़ा है, शादीशुदा होने की हालत में ज़िना कर बैठने की सज़ा नहीं है जो इस्लामी क़ानून की निगाह में ज़्यादा सख़्त जुर्म है। यह बात ख़ुद क़ुरआन ही के एक इशारे से मालूम होती है कि वह यहाँ उस ज़िना की सज़ा बयान कर रहा है जिसके दोनों मुजरिम ग़ैर-शादीशुदा हों। सूरा-4 निसा में पहले कहा गया–

"तुम्हारी औरतों में से जो बदकारी कर बैठें, उनपर अपने में से चार आदमियों की गवाही लो, और अगर ये गवाही दे दें तो उनको घरों में बन्द रखो, यहाँ तक कि उन्हें मौत आ जाए, या अल्लाह उनके लिए कोई रास्ता निकाल दे।" (आयत-15)

इसके बाद थोड़ी दूर आगे चलकर फिर कहा गया–

"और तुममें से जो लोग इतनी क़ुदरत न रखते हों कि ईमानवालों में से मुहसनात (आज़ाद औरतों जो ग़ुलाम न हों) के साथ निकाह करें तो ये तुम्हारी ईमानवाली लौंडियों से निकाह कर लें.......फिर अगर ये (लौंडियाँ) मुहसना हो जाने के बाद कोई बदचलनी का काम कर बैठें तो उनपर उस सज़ा की बनिस्बत आधी सज़ा है जो मुहसनात को (ऐसे जुर्म पर) दी जाए।" (आयत-25)

इनमें से पहली आयत में उम्मीद दिलाई गई है कि ज़िना करनेवाली औरतें जिनको फ़ौरन क़ैद करने का हुक्म दिया जा रहा है, उनके लिए अल्लाह तआला बाद में कोई रास्ता पैदा करेगा। इससे मालूम हुआ कि सूरा नूर का यह दूसरा हुक्म वही चीज़ है जिसका वादा सूरा-4 निसा की ऊपर बयान की गई आयत में किया गया था। दूसरी आयत में शादीशुदा लौंडी के ज़िना कर बैठने की सज़ा बयान की गई है। यहाँ एक ही आयत और एक ही बयान के एक ही सिलसिले में दो जगह 'मुहसनात' का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है और

लाज़िमन यह मानना पड़ेगा कि दोनों जगह इसका एक ही मतलब है। अब शुरू के जुमले को देखिए तो वहाँ कहा जा रहा है कि जो लोग "मुहसनात से निकाह करने की क़ुदरत (सामर्थ्य) न रखते हों।" ज़ाहिर है कि इससे मुराद शादीशुदा औरत नहीं हो सकती, बल्कि एक आज़ाद ख़ानदान की बिन-ब्याही औरत ही हो सकती है। इसके बाद आख़िरी जुमले में कहा जाता है कि लौंडी निकाह कर लेने के बाद अगर ज़िना करे तो उसको उस सज़ा से आधी सज़ा दी जाए जो 'मुहसनात' को इस जुर्म पर मिलनी चाहिए। मौक़ा-महल साफ़ बताता है कि इस जुमले में भी मुहसनात का मतलब वही है जो पहले जुमले में था, यानी शादीशुदा औरत नहीं, बल्कि आज़ाद ख़ानदान की हिफ़ाज़त में रहनेवाली बिन-ब्याही औरत। इस तरह सूरा-4 निसा की ये दोनों आयतें मिलकर इस बात की तरफ़ इशारा कर देती हैं कि सूरा नूर का यह हुक्म जिसका वहाँ वादा किया गया था, ग़ैर-शादीशुदा लोगों के ज़िना कर बैठने की सज़ा बयान करता है। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-4 निसा, हाशिया-46)

(7) यह बात कि शादीशुदा होने पर ज़िना करने की सज़ा क्या है, क़ुरआन मजीद नहीं बताता, बल्कि इसकी जानकारी हमें हदीस से हासिल होती है। बहुत-सी भरोसेमन्द रिवायतों से साबित होता है कि नबी (सल्ल.) ने न सिर्फ़ अपनी ज़बान से इसकी सज़ा रज्म (पत्थर मार-मारकर मार डालना) बयान की है, बल्कि अमली तौर से कई मुक़द्दमों में यही सज़ा लागू भी की है। फिर आप (सल्ल.) के बाद आप (सल्ल.) के चारों ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन ने अपने-अपने दौर में यही सज़ा लागू की और इसी के क़ानूनी सज़ा होने का बार-बार एलान किया। सहाबा किराम और ताबिईन इस मामले में एक राय थे। किसी एक शख़्स का भी कोई क़ौल (कथन) ऐसा मौजूद नहीं है जिससे यह नतीजा निकाला जा सके कि शुरू के दौर में किसी को इसके एक साबित-शुदा शरई हुक्म होने में कोई शक था। उनके बाद तमाम ज़मानों और देशों के इस्लामी फ़क़ीह (धर्मशास्त्री) इस बात पर एक राय रहे हैं कि यह एक साबित-शुदा सुन्नत है; क्योंकि इसके सही होने के इतने मुसलसल चले आ रहे और मज़बूत सुबूत मौजूद हैं जिनके होते कोई इल्म रखनेवाला इससे इनकार नहीं कर सकता। मुस्लिम उम्मत के पूरे इतिहास में सिवाय ख़ारिजियों और कुछ मुअतज़ला के किसी ने भी इससे इनकार नहीं किया है, और उनके इनकार की बुनियाद भी यह नहीं थी कि नबी (सल्ल.) से इस हुक्म के सुबूत में वे किसी कमज़ोरी की निशानदेही कर सके हों, बल्कि वे इसे 'क़ुरआन के ख़िलाफ़' ठहराते थे। हालाँकि यह क़ुरआन को समझने में उनकी अपनी ग़लती थी। वे कहते थे कि क़ुरआन 'अज़-ज़ानी वज़-ज़ानिया' (ज़िना करनेवाला और ज़िना करनेवाली) के आम अलफ़ाज़ इस्तेमाल करके इसकी सज़ा सौ कोड़े बयान करता है। इसलिए क़ुरआन के मुताबिक़ हर तरह के 'ज़ानी' (व्यभिचारी) और 'ज़ानिया' (व्यभिचारिणी) की सज़ा यही है और इससे शादीशुदा ज़ानी को अलग करके उसकी कोई और सज़ा तय करना अल्लाह के क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी है। मगर उन्होंने यह नहीं सोचा कि क़ुरआन के अलफ़ाज़ जो क़ानूनी वज़्न रखते हैं, वही क़ानूनी वज़्न उनकी उस तशरीह का भी है जो नबी (सल्ल.) ने की हो; शर्त यह है कि वह आप (सल्ल.) से साबित हो। क़ुरआन ने ऐसे ही आम अलफ़ाज़

में 'अस-सारिक़ वस-सारिक़ा' (चोर और चोरनी) का हुक्म भी हाथ काटना बयान किया है। इस हुक्म को अगर उन तशरीहों (व्याख्याओं) के दायरे से अलग कर दिया जाए जो नबी (सल्ल.) से साबित हैं तो इसके अलफ़ाज़ के आम होने का तक़ाज़ा यह है कि आप एक सूई या एक बेर की चोरी पर भी आदमी को 'चोर' ठहरा दें और फिर पकड़कर उसका हाथ कन्धे के पास से काट दें। दूसरी तरफ़ लाखों रुपये की चोरी करनेवाला भी अगर गिरफ़्तार होते ही कह दे कि मैंने अपने आप को सुधार लिया है और अब मैं चोरी से तौबा करता हूँ तो आपको उसे छोड़ देना चाहिए; क्योंकि क़ुरआन कहता है, "फिर जो ज़ुल्म करने के बाद तौबा करे और अपने को सुधार ले तो अल्लाह उसे माफ़ कर देगा।" (सूरा-5 माइदा, आयत-39) इसी तरह क़ुरआन सिर्फ़ दूध पिलानेवाली माँ और उस रिश्ते से हुई बहन का हराम होना बयान करता है, दूध के रिश्ते से हुई बेटी का हराम होना इस दलील के हिसाब से क़ुरआन के ख़िलाफ़ होना चाहिए। क़ुरआन सिर्फ़ दो बहनों के (एक के निकाह में) जमा करने से मना करता है। ख़ाला और भाँजी, और फूफी और भतीजी के जमा करने को जो शख़्स हराम कहे उसपर क़ुरआन के ख़िलाफ़ हुक्म लगाने का इलज़ाम लगना चाहिए। क़ुरआन सिर्फ़ उस हालत में सौतेली बेटी को हराम करता है जबकि उसने सौतेले बाप के घर में परवरिश पाई हो। पूरी तरह उसका हराम होना क़ुरआन के ख़िलाफ ठहरना चाहिए। क़ुरआन सिर्फ़ उस वक़्त रहन (गिरवी) की इजाज़त देता है जबकि आदमी सफ़र में हो और क़र्ज़ की दस्तावेज़ लिखनेवाला न मिले। अपने शहर में रहते हुए और लिखनेवाले के मुहैया होने की सूरत में रहन का जाइज़ होना क़ुरआन के ख़िलाफ़ होना चाहिए। क़ुरआन आम लफ़्ज़ों में हुक्म देता है, "गवाह बनाओ जबकि आपस में ख़रीद-फ़रोख़्त करो।" अब वह तमाम ख़रीद-फ़रोख़्त नाजाइज़ होनी चाहिए जो रात-दिन हमारी दुकानों पर गवाही के बिना हो रही है। ये सिर्फ़ कुछ मिसालें हैं जिनपर एक निगाह डाल लेने से ही उन लोगों की दलीलों की ग़लती मालूम हो जाती है जो 'रज्म' के हुक्म को क़ुरआन के ख़िलाफ़ कहते हैं। शरीअत के निज़ाम (व्यवस्था) में नबी का यह मंसब नाक़ाबिले-इनकार है कि वह ख़ुदा का हुक्म पहुँचाने के बाद हमें बताए कि इस हुक्म का मक़सद क्या है, इसपर अमल करने का तरीक़ा क्या है, इसे किन मामलों के लिए समझा जाए, और किन मामलों के लिए दूसरा हुक्म है। इस मंसब का इनकार सिर्फ़ दीन के उसूल ही के ख़िलाफ़ नहीं है, बल्कि इससे इतनी अमली ख़राबियाँ और पेचीदगियाँ पैदा होती हैं कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती।

(8) क़ानूनी तौर पर ज़िना किसे कहते हैं, इस बात में इस्लामी आलिमों के बीच रायें अलग-अलग हैं। हनफ़ी मसलक के आलिम ज़िना के बारे में कहते हैं कि "एक मर्द का किसी ऐसी औरत से अगले हिस्से (योनि) में सोहबत (संभोग) करना जो न तो उसके निकाह या उसकी मिलकियत में हो और न इस बात के शक की कोई मुनासिब वजह हो कि उसने उसे अपने निकाह में या अपनी लौंडी समझते हुए उससे सोहबत की है।" इस राय के मुताबिक़ पिछले हिस्से में सोहबत करना, अमले-क़ौमे-लूत (मर्द के साथ मर्द का ताल्लुक़) जानवरों से सोहबत करना वग़ैरा ज़िना के दायरे से बाहर हो जाते हैं और सिर्फ़ औरत से अगले हिस्से में सोहबत करना ही ज़िना कहलाएगा जबकि शरई (क़ानूनी) हक़ या

उसके शक के बिना यह काम किया गया हो। इसके बरख़िलाफ़ शाफ़िई मसलक के आलिम ज़िना के बारे में यूँ बयान करते हैं, "शर्मगाह को ऐसी शर्मगाह में दाख़िल करना जो शरई तौर पर हराम हो, मगर तबीअत जिसकी तरफ़ राग़िब (प्रवृत्त) हो सकती हो।" और मालिकी मसलक के आलिमों के नज़दीक ज़िना यह है, "शरई हक़ या उसके शक के बिना आगे या पीछे से मर्द या औरत से सोहबत करना।" इन दोनों रायों के मुताबिक़ अमले-क़ौमे-लूत (मर्द का मर्द के साथ सोहबत करना) भी ज़िना में शामिल हो जाता है। लेकिन सही बात यह है कि ये दोनों रायें ज़िना लफ़्ज़ के जाने-माने मानी से हटी हुई हैं। क़ुरआन मजीद हमेशा अलफ़ाज़ को उनके जाने-माने और आम मानी में इस्तेमाल करता है, सिवाय इसके कि वह किसी लफ़्ज़ को अपना ख़ास मानी दे रहा हो, और ख़ास मानी की सूरत में वह ख़ुद अपने ख़ास मतलब को ज़ाहिर कर देता है। यहाँ ऐसा कोई इशारा नहीं है कि लफ़्ज़ ज़िना को किसी ख़ास मानी में इस्तेमाल किया गया हो, लिहाज़ा उसे जाने-माने मतलब ही में लिया जाएगा, और वह औरत से फ़ितरी मगर नाजाइज़ ताल्लुक़ तक ही महदूद है, शहवत पूरी करने (वासनापूर्ति) की दूसरी सूरतों पर लागू नहीं होता। इसके अलावा यह बात मालूम है कि अमले-क़ौमे-लूत (मर्द के साथ मर्द का ताल्लुक़) की सज़ा के बारे में सहाबा किराम के बीच इख़्तिलाफ़ हुआ है। अगर इस काम का शुमार भी इस्लामी इस्तिलाह (परिभाषा) के मुताबिक़ ज़िना में होता तो ज़ाहिर है कि इख़्तिलाफ़ की कोई वजह न थी।

(9) क़ानूनी तौर पर ज़िना के एक अमल को सज़ा के लायक़ ठहराने के लिए सिर्फ़ मर्द के लिंग के अगले हिस्से (सुपारी) का शर्मगाह में दाख़िल हो जाना काफ़ी है। पूरा दाख़िल करना या इस काम को पूरे तौर पर करना इसके लिए ज़रूरी नहीं है। इसके बरख़िलाफ़ अगर मर्द की सुपारी शर्मगाह में दाख़िल न हो तो सिर्फ़ एक बिस्तर पर एक साथ पाया जाना, या एक-दूसरे से खेलते हुए देखा जाना, या बिना कपड़ों की हालत में पाया जाना किसी को ज़ानी (व्यभिचारी) क़रार देने के लिए काफ़ी नहीं है। और इस्लामी शरीअत इस हद तक भी नहीं जाती कि कोई जोड़ा ऐसी हालत में पाया जाए तो उसका मेडिकल चेकअप कराके ज़िना का सुबूत जुटाया जाए और फिर उसे ज़िना की सज़ा दी जाए। जो लोग इस तरह की बेहयाई में मुब्तला पाए जाएँ, उनपर सिर्फ़ वह सज़ा है जिसका फ़ैसला हालात के लिहाज़ से जज ख़ुद करेगा, या जिसके लिए इस्लामी हुकूमत की मजलिसे-शूरा (सलाहकार समिति) कोई सज़ा तय करेगी। यह सज़ा अगर कोड़ों की शक्ल में हो तो दस कोड़ों से ज़्यादा नहीं लगाए जा सकते; क्योंकि हदीस में साफ़ तौर से कहा गया है, "अल्लाह की मुक़र्रर की हुई सज़ाओं के सिवा किसी और जुर्म में दस कोड़ों से ज़्यादा न मारे जाएँ।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अबू-दाऊद) और अगर कोई शख़्स पकड़ा न गया हो, बल्कि ख़ुद शर्मिन्दा होकर ऐसे किसी क़ुसूर को क़बूल करे तो उसके लिए सिर्फ़ तौबा की नसीहत काफ़ी है। अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) ने बयान किया है कि एक शख़्स ने हाज़िर होकर अर्ज़ किया कि "शहर के बाहर मैं एक औरत से सब कुछ कर गुज़रा सिवाय सोहबत के। अब आप जो चाहें मुझे सज़ा दें।" हज़रत उमर (रज़ि॰) ने कहा, "जब ख़ुदा ने परदा डाल दिया था तो तू भी परदा पड़ा रहने देता।" नबी (सल्ल॰) चुप रहे और वह शख़्स चला गया। फिर आप

(सल्ल.) ने उसे वापस बुलाया और यह आयत पढ़ी, "नमाज़ क़ायम करो दिन के दोनों किनारों पर और कुछ रात गुज़रने पर। बेशक नेकियाँ बुराइयों को दूर कर देती हैं।" (सूरा-11 हूद, आयत-114) एक आदमी ने पूछा, "क्या यह इसी के लिए ख़ास है?" नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "नहीं, सबके लिए है।" (हदीस : मुस्लिम, तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, नसई) यही नहीं, बल्कि शरीअत इसको भी जाइज़ नहीं रखती कि कोई शख़्स अगर जुर्म को खोलकर बयान किए बिना अपने मुजरिम होने का इक़रार करे तो खोज लगाकर उससे पूछा जाए कि तूने कौन-सा जुर्म किया है। नबी (सल्ल.) की ख़िदमत में एक आदमी ने हाज़िर होकर अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं सज़ा (हद) का हक़दार हो गया हूँ। मुझपर सज़ा (हद) जारी फ़रमाइए।" मगर आप (सल्ल.) ने उससे नहीं पूछा कि तूने क्या गुनाह किया है। फिर नमाज़ पढ़ चुकने के बाद वह आदमी फिर उठा और कहने लगा, "मैं मुजरिम हूँ, मुझे सज़ा दीजिए।" नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "क्या तूने अभी हमारे साथ नमाज़ नहीं पढ़ी है?" उसने कहा, "जी हाँ।" आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "बस तो अल्लाह ने तेरा क़ुसूर माफ़ कर दिया।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अहमद)

(10) किसी शख़्स (मर्द या औरत) को मुजरिम ठहराने के लिए सिर्फ़ यह बात काफ़ी नहीं है कि उससे ज़िना का काम हुआ है, बल्कि इसके लिए मुजरिम में कुछ शर्तें पाई जानी चाहिएँ। ये शर्तें सिर्फ़ ज़िना के मामले में और हैं, शादीशुदा होने के बावजूद ज़िना करने के मामले में और।

सिर्फ़ ज़िना के मामले में शर्त यह है कि मुजरिम समझदार और बालिग़ हो। अगर किसी पागल या किसी बच्चे से यह ग़लती हो जाए तो वह ज़िना की सज़ा का हक़दार नहीं है।

और शादीशुदा होकर ज़िना करनेवाले के लिए समझदार और बालिग़ होने के अलावा कुछ और शर्तें हैं जिनको हम नीचे बयान करते हैं–

पहली शर्त यह है कि मुजरिम आज़ाद हो। इस शर्त पर सबकी एक राय है, क्योंकि क़ुरआन ख़ुद इशारा करता है कि ग़ुलाम को रज्म (संगसारी) की सज़ा नहीं दी जाएगी। अभी यह बात गुज़र चुकी है कि लौंडी अगर निकाह के बाद ज़िना कर बैठे तो उसे ग़ैर-शादीशुदा आज़ाद औरत के मुक़ाबले में आधी सज़ा देनी चाहिए। फ़क़ीहों ने इसे माना है कि क़ुरआन का यही क़ानून ग़ुलाम पर भी लागू होगा। दूसरी शर्त यह है कि मुजरिम बाक़ायदा शादीशुदा हो। इस शर्त पर भी सब एक राय हैं, और इस शर्त के मुताबिक़ कोई ऐसा शख़्स जो मालिकाना हक़ की बुनियाद पर ताल्लुक़ क़ायम कर चुका हो, या जिसका निकाह किसी ग़लत तरीक़े से हुआ हो, शादीशुदा न माना जाएगा, यानी उससे अगर ज़िना हो जाए तो उसको रज्म की नहीं, बल्कि कोड़ों की सज़ा दी जाएगी।

तीसरी शर्त यह है कि उसका सिर्फ़ निकाह ही न हुआ हो, बल्कि निकाह के बाद जिस्मानी ताल्लुक़ भी क़ायम हो चुका हो। सिर्फ़ निकाह का बन्धन किसी मर्द को 'मुहसिन' (सुरक्षा देनेवाला), या औरत को 'मुहसना' (सुरक्षित) नहीं बना देता कि ज़िना कर बैठने की सूरत में उसको संगसार कर दिया जाए। इस शर्त पर भी ज़्यादातर फ़क़ीह एक राय हैं। मगर इमाम अबू-हनीफ़ा और इमाम मुहम्मद इसमें इतना इज़ाफ़ा और करते हैं कि एक मर्द या एक

औरत को मुहसिन/मुहसना सिर्फ़ उसी सूरत में ठहराया जाएगा जबकि निकाह और जिस्मानी ताल्लुक़ के वक़्त मियाँ-बीवी आज़ाद, बालिग़ और समझदार हों। इस शर्त से जो फ़र्क़ पड़ता है वह यह है कि अगर एक मर्द का निकाह एक ऐसी औरत से हुआ हो जो लौंडी हो, या नाबालिग़ हो, या पागल हो तो चाहे वह इस हालत में अपनी बीवी से लज़्ज़त ले भी चुका हो, फिर भी वह ज़िना कर बैठने की हालत में संगसार किए जाने का हक़दार न होगा। यही मामला औरत का भी है कि अगर उसको अपने नाबालिग़ या पागल या ग़ुलाम शौहर से लज़्ज़त पाने का मौक़ा मिल चुका हो, फिर भी वह ज़िना कर बैठने की हालत में रज्म की हक़दार न होगी। ग़ौर किया जाए तो महसूस होता है कि यह एक बहुत ही मुनासिब इज़ाफ़ा है जो इन दोनों दूरअन्देश बुज़ुर्गों ने किया है।

चौथी शर्त यह है कि मुजरिम मुसलमान हो। इसमें फ़क़ीहों के बीच इख़्तिलाफ़ है। इमाम शाफ़िई, इमाम अबू-यूसुफ़ और इमाम अहमद इसको नहीं मानते। उनके नज़दीक ज़िम्मी (इस्लामी राज्य में रहनेवाला ग़ैर- मुस्लिम) भी अगर शादीशुदा होते हुए ज़िना कर बैठे तो रज्म (संगसार) किया जाएगा। लेकिन इमाम अबू-हनीफ़ा और इमाम मालिक इस बात पर एक राय हैं कि शादीशुदा के ज़िना कर बैठने की सज़ा रज्म सिर्फ़ मुसलमान के लिए है। इसकी दलीलों में सबसे ज़्यादा मुनासिब और वज़नी दलील यह है कि एक आदमी को संगसारी जैसी भयानक सज़ा देने के लिए ज़रूरी है कि वह पूरी तरह 'एहसान' (सुरक्षा) की हालत में हो और फिर भी ज़िना करने से बाज़ न आए। 'एहसान' का मतलब है 'अख़लाक़ी क़िला-बन्दी' और यह तीन घेरों से पूरा होता है। सबसे पहला घेरा यह है कि आदमी ख़ुदा पर ईमान रखता हो, आख़िरत की जवाबदेही और अल्लाह की शरीअत को मानता हो। दूसरा घेरा यह है कि वह समाज का आज़ाद सदस्य हो, किसी दूसरे की ग़ुलामी में न हो जिसकी पाबन्दियाँ उसे अपनी ख़ाहिशों को पूरा करने के लिए जाइज़ तदबीरें अपनाने में रुकावट बनती हैं, और लाचारी और मजबूरी उससे गुनाह करा सकती है, और कोई ख़ानदान उसे अपने अख़लाक़ और अपनी इज़्ज़त की हिफ़ाज़त में मदद देनेवाला नहीं होता। तीसरा घेरा यह है कि उसका निकाह हो चुका हो और उसे नफ़्स (मन) की तसकीन (सन्तुष्टि) का जाइज़ ज़रिआ हासिल हो। ये तीनों घेरे जब पाए जाते हैं, तब 'क़िला-बन्दी' पूरी होती है और तब ही वह शख़्स सही तौर पर संगसारी का हक़दार ठहर सकता है जिसने नाजाइज़ शहवत पूरी करने के लिए तीन-तीन घेरे तोड़ डाले। लेकिन जहाँ पहला और सबसे बड़ा घेरा, यानी ख़ुदा और आख़िरत और ख़ुदा के क़ानून पर ईमान ही मौजूद न हो, वहाँ यक़ीनी तौर पर क़िला-बन्दी मुकम्मल नहीं है और इस वजह से फ़ुजूर (अल्लाह का क़ानून तोड़ने) का जुर्म भी उस शिद्दत को पहुँचा हुआ नहीं है जो उसे इन्तिहाई सज़ा का हक़दार बना दे। इस दलील की ताईद (समर्थन) इब्ने-उमर (रज़ि.) की यह रिवायत करती है जिसे इसहाक़-बिन-राहवया ने अपनी 'मुसनद' में और दारे-क़ुतनी ने अपनी 'सुनन' में नक़्ल किया है कि "जिसने अल्लाह के साथ शिर्क किया, वह मुहसन नहीं है।" अगरचे इस बात में इख़्तिलाफ़ है कि क्या इब्ने-उमर (रज़ि.) ने इस रिवायत में नबी (सल्ल.) का क़ौल नक़्ल किया है या यह उनका अपना फ़तवा है। लेकिन इस कमज़ोरी के बावजूद इसका मज़मून

अपने मतलब के लिहाज़ से निहायत मज़बूत है। इसके जवाब में अगर यहूदियों के उस मुक़द्दमे से दलील लाई जाए जिसमें नबी (सल्ल.) ने रज्म का हुक्म लागू किया था तो हम कहेंगे कि यह दलील सही नहीं है। इसलिए कि उस मुक़द्दमे के बारे में तमाम भरोसेमन्द रिवायतों को जमा करने से साफ़ मालूम होता है कि उसमें नबी (सल्ल.) ने उनपर इस्लाम का मुल्की क़ानून (Law of the Land) नहीं, बल्कि उनका अपना मज़हबी क़ानून (Personal Law) लागू किया था। बुख़ारी और मुस्लिम दोनों में यह रिवायत है कि जब यह मुक़द्दमा आप (सल्ल.) के पास लाया गया तो आपने यहूदियों से पूछा, "तुम्हारी किताब तौरात में इसका क्या हुक्म है?" फिर जब यह बात साबित हो गई कि उनके यहाँ रज्म का हुक्म है तो नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "मैं वही फ़ैसला करता हूँ जो तौरात में है।" और एक दूसरी रिवायत में है कि आप (सल्ल.) ने इस मुक़द्दमे का फ़ैसला करते हुए फ़रमाया, "ऐ अल्लाह, मैं पहला शख़्स हूँ जिसने तेरे हुक्म को ज़िन्दा किया जबकि उन्होंने इसे मुर्दा कर दिया था।" (हदीस : मुस्लिम, अबू-दाऊद, अहमद)

(11) ज़िना करनेवाले को मुजरिम ठहराने के लिए यह भी ज़रूरी है कि उसने अपनी आज़ाद मरज़ी से यह काम किया हो। ज़ोर-ज़बरदस्ती से अगर किसी शख़्स को इस काम पर मजबूर किया गया हो तो वह न मुजरिम है, न सज़ा का हक़दार। इस मामले में शरीअत का सिर्फ़ यह आम क़ायदा ही लागू नहीं होता कि "आदमी ज़बरदस्ती कराए गए कामों की ज़िम्मेदारी से बरी है," बल्कि आगे चलकर इसी सूरा में ख़ुद क़ुरआन उन औरतों की माफ़ी का एलान करता है जिनको ज़िना पर मजबूर किया गया हो। साथ ही कई हदीसों में साफ़-साफ़ बयान हुआ है कि ज़ोर-ज़बरदस्ती से ज़िना (बलात्कार) की सूरत में सिर्फ़ ज़ोर-ज़बरदस्ती करनेवाले को सज़ा दी गई और जिसपर ज़ोर-ज़बरदस्ती की गई थी, उसे छोड़ दिया गया। तिरमिज़ी और अबू-दाऊद की रिवायत है कि एक औरत अंधेरे में नमाज़ के लिए निकली। रास्ते में एक आदमी ने उसको गिरा लिया और ज़बरदस्ती उसकी इज़्ज़त लूटी। उसके शोर मचाने पर लोग आ गए और मुजरिम पकड़ा गया। नबी (सल्ल.) ने उसको संगसार करा दिया और औरत को छोड़ दिया। बुख़ारी की रिवायत है कि हज़रत उमर (रज़ि.) की ख़िलाफ़त के ज़माने में एक आदमी ने एक लड़की की ज़ोर-ज़बरदस्ती से इज़्ज़त लूटी। हज़रत उमर (रज़ि.) ने उसे कोड़े लगवाए और लड़की को छोड़ दिया। इन दलीलों की बुनियाद पर औरत के मामले में जो क़ानून है उसपर सब एक राय हैं, लेकिन इख़्तिलाफ़ इस बात में हुआ है कि क्या मर्द के मामले में भी ज़ोर-ज़बरदस्ती का एतिबार किया जाएगा या नहीं? इमाम अबू-यूसुफ़ (रह.), इमाम मुहम्मद (रह.), इमाम शाफ़िई (रह.) और इमाम हसन-बिन-सॉलिह (रह.) कहते हैं कि मर्द भी अगर ज़िना करने पर मजबूर किया गया हो तो माफ़ किया जाएगा। इमाम ज़ुफ़र (रह.) कहते हैं कि उसे माफ़ नहीं किया जाएगा, क्योंकि वह इस काम को इसके बग़ैर नहीं कर सकता जब कि उसके ख़ास हिस्से (अंग) में तनाव पैदा न हो और उसमें तनाव और जोश पैदा होना इस बात की दलील है कि उसकी अपनी शहवत (जिंसी ख़ाहिश) इसका सबब हुई थी। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह.) कहते हैं कि अगर हुकूमत या उसके किसी अधिकारी ने आदमी को ज़िना पर मजबूर किया हो तो सज़ा नहीं दी जाएगी;

क्योंकि जब ख़ुद हुकूमत ही जुर्म पर मजबूर करनेवाली हो तो उसे सज़ा देने का हक़ नहीं रहता। लेकिन अगर हुकूमत के सिवा किसी और ने मजबूर किया हो तो ज़िना करनेवाले को सज़ा दी जाएगी; क्योंकि ज़िना बहरहाल वह अपनी शहवत (कामोत्तेजना) के बिना नहीं कर सकता था, और शहवत ज़बरदस्ती पैदा नहीं की जा सकती।

इन तीनों बातों में से पहली बात ही ज़्यादा सही है, और इसकी दलील यह है कि ज़िना करनेवाले के ख़ास हिस्से (अंग) का तनाव चाहे जिंसी ख़ाहिश की दलील हो, मगर मरज़ी और चाहत की लाज़िमी दलील नहीं है। मान लीजिए कि एक ज़ालिम किसी शरीफ़ आदमी को ज़बरदस्ती पकड़कर क़ैद कर देता है और उसके साथ एक जवान, ख़ूबसूरत औरत को भी बेलिबास करके एक ही कमरे में बन्द रखता है और उसे उस वक़्त तक रिहा नहीं करता जब तक वह बदकारी न कर गुज़रे। इस हालत में अगर ये दोनों ज़िना कर बैठते हैं और वह ज़ालिम उसके चार गवाह बनाकर उन्हें अदालत में पेश कर दे तो क्या यह इनसाफ़ होगा कि उनके हालात को नज़र-अन्दाज़ करके उन्हें संगसार कर दिया जाए या उनपर कोड़े बरसाए जाएँ? इस तरह के हालात अक़्ली या फ़ितरी तौर पर मुमकिन हैं जिनमें शहवत (काम-वासना) पैदा हो सकती है, बिना इसके कि उसमें आदमी की अपनी मरज़ी या ख़ाहिश का दख़ल हो। अगर किसी शख़्स को क़ैद करके शराब के सिवा पीने को कुछ न दिया जाए, और इस हालत में वह शराब पी ले तो क्या सिर्फ़ इस दलील से उसको सज़ा दी जा सकती है कि हालात तो सचमुच उसके लिए मजबूरी के थे, मगर हलक़ से शराब का घूँट वह अपने इरादे के बिना न उतार सकता था? जुर्म साबित होने के लिए सिर्फ़ इरादे का पाया जाना काफ़ी नहीं है, बल्कि इसके लिए आज़ाद इरादा ज़रूरी है। जो शख़्स ज़बरदस्ती ऐसे हालात में मुब्तला किया गया हो कि वह जुर्म का इरादा करने पर मजबूर हो जाए, वह कुछ सूरतों में तो बिलकुल मुजरिम नहीं होता, और कुछ सूरतों में उसका जुर्म बहुत हलका हो जाता है।

(12) इस्लामी क़ानून हुकूमत के सिवा किसी को यह इख़्तियार नहीं देता कि वह ज़ानी (व्यभिचारी) और ज़ानिया (व्यभिचारिणी) के ख़िलाफ़ कार्रवाई करे, और अदालत के सिवा किसी को यह हक़ नहीं देता कि वह इसपर सज़ा दे। इस बात पर पूरी उम्मत के उलमा और फ़क़ीह एक राय हैं कि इस आयत में जिसपर इस वक़्त बात हो रही है, "इनको कोड़े मारो" का हुक्म आम लोगों को नहीं, बल्कि इस्लामी हुकूमत के अधिकारियों और जजों को दिया गया है। अलबत्ता ग़ुलाम के बारे में इख़्तिलाफ़ है कि उसपर उसका मालिक सज़ा जारी कर सकता है या नहीं। हनफ़ी मसलक के तमाम आलिम इसपर एक राय हैं कि ग़ुलाम के मालिक को सज़ा देने का इख़्तियार नहीं है। शाफ़िई उलमा कहते हैं कि उसको इख़्तियार है। और मालिकी मसलक के उलमा कहते हैं कि ग़ुलाम के मालिक को चोरी की सज़ा में हाथ काटने का तो हक़ नहीं है, मगर ज़िना, क़ज़्फ़ (तुहमत लगाने) और शराब पीने पर वह सज़ा (इस्लाम की बताई हुई सज़ा) जारी कर सकता है।

(13) इस्लामी क़ानून ज़िना की सज़ा को मुल्क के क़ानून का एक हिस्सा क़रार देता है, इसलिए मुल्क की तमाम जनता पर यह हुक्म जारी होगा, चाहे वह मुस्लिम हो या ग़ैर-मुस्लिम। इससे इमाम मालिक के सिवा शायद फ़ुक़हा में से किसी ने इख़्तिलाफ़ नहीं किया है। रज्म की

सज़ा ग़ैर-मुस्लिमों पर जारी करने में इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) का इख़्तिलाफ़ इस बुनियाद पर नहीं है कि यह मुल्क का क़ानून नहीं है, बल्कि इस बुनियाद पर है कि उनके नज़दीक रज्म की शर्तों में से एक शर्त ज़िना करनेवाले का पूरा मुहसिन होना है और एहसान की तकमील (पूर्णता) इस्लाम के बिना नहीं होती, इस वजह से वह ज़िना करनेवाले ग़ैर-मुस्लिम को रज्म की सज़ा से अलग कर देते हैं। इसके बरख़िलाफ़ इमाम मालिक (रह॰) के नज़दीक यह हुक्म मुसलमानों के लिए है, न कि ग़ैर-मुस्लिमों के लिए। इसलिए वह ज़िना की सज़ा को मुसलमानों के निजी क़ानून (Personal Law) का एक हिस्सा क़रार देते हैं। रहा 'मुस्तामन' (जो किसी दूसरे देश से इस्लामी मुल्क में इजाज़त लेकर आया हो) तो इमाम शाफ़िई (रह॰) और इमाम अबू-यूसुफ़ (रह॰) के नज़दीक वह भी अगर दारुल-इस्लाम (इस्लामी राज्य) में ज़िना करे तो उसपर हद (सज़ा) जारी की जाएगी। लेकिन इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) और इमाम मुहम्मद कहते हैं कि उसपर सज़ा जारी नहीं कर सकते।

(14) इस्लामी क़ानून यह लाज़िम नहीं करता कि कोई शख़्स अपने जुर्म का ख़ुद इक़रार करे, या जो लोग किसी शख़्स के ज़िना के जुर्म को जानते हों, वे ज़रूर ही इसकी ख़बर हाकिमों तक पहुँचाएँ। अलबत्ता जब हाकिम को इसकी ख़बर हो जाए तो फिर इस जुर्म के लिए माफ़ी की कोई गुंजाइश नहीं है। हदीस में आता है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "तुममें से जो शख़्स इन गन्दे कामों में से कोई काम कर बैठे तो अल्लाह के डाले हुए परदे में छिपा रहे। लेकिन अगर वह हमारे सामने अपना परदा खोलेगा तो हम उसपर अल्लाह की किताब का क़ानून लागू करके छोड़ेंगे।" (अहकामुल-क़ुरआन लिल-जस्सास) अबू-दाऊद में है कि माइज़-बिन-मालिक असलमी जब ज़िना कर बैठे तो हज़्ज़ाल-बिन-नुऐम ने उनसे कहा कि जाकर नबी (सल्ल॰) के सामने अपने इस जुर्म को क़बूल कर लो। चुनाँचे उन्होंने जाकर नबी (सल्ल॰) से अपना जुर्म बयान कर दिया। इसपर नबी (सल्ल॰) ने एक तरफ़ तो उन्हें रज्म की सज़ा दी और दूसरी तरफ़ हज़्ज़ाल से फ़रमाया, "काश, तुम उसका परदा ढाँक देते तो तुम्हारे लिए ज़्यादा अच्छा था!" अबू-दाऊद और नसई में एक और हदीस है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "सज़ाओं को आपस ही में माफ़ कर दिया करो। मगर जिस सज़ा (यानी ऐसा जुर्म जिसपर सज़ा ज़रूरी हो) का मामला मुझ तक पहुँच जाएगा, फिर वह वाजिब हो जाएगी।"

(15) इस्लामी क़ानून में यह जुर्म ऐसा नहीं है जिसपर दोनों फ़रीक़ों (पक्षों) के बीच समझौता हो जाए। हदीस की लगभग तमाम किताबों में यह वाक़िआ मौजूद है कि एक लड़का एक शख़्स के यहाँ मज़दूरी पर काम करता था और वह उसकी बीवी से ज़िना कर बैठा। लड़के के बाप ने सौ बकरियाँ और एक लौंडी देकर उस शख़्स को राज़ी किया। मगर जब यह मुक़द्दमा नबी (सल्ल॰) के पास आया तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "तेरी बकरियाँ और तेरी लौंडी तुझी को वापस," और फिर आप (सल्ल॰) ने ज़िना करनेवाले लड़के और औरत दोनों पर हद (सज़ा) जारी फ़रमा दी। इससे सिर्फ़ यही नहीं मालूम होता कि इस जुर्म में राज़ीनामे की कोई गुंजाइश नहीं, बल्कि यह भी मालूम होता है कि इस्लामी क़ानून में इस्मतों (अस्मिताओं) का मुआवज़ा माली हर्जानों की शक्ल में नहीं दिलवाया जा सकता। आबरू की

क़ीमत का यह शर्मनाक तसव्वुर (परिकल्पना) मग़रिबी (पश्चिमी) क़ानूनों ही को मुबारक रहे।

(16) इस्लामी हुकूमत किसी शख़्स के ख़िलाफ़ ज़िना के जुर्म में कोई कार्रवाई न करेगी जब तक कि उसके जुर्म का सुबूत न मिल जाए। जुर्म के सुबूत के बिना किसी की बदकारी चाहे कितने ही ज़रिओं से अधिकारियों की जानकारी में हो, वे बहरहाल उसपर सज़ा जारी नहीं कर सकते। मदीना में एक औरत थी जिसके बारे में रिवायतें हैं कि वह खुली-खुली बेहया और बदकार औरत थी। बुख़ारी की एक रिवायत में है, "इस्लाम क़बूल करने के बाद भी वह बदकारी करती फिरती थी।" दूसरी रिवायत में है, "इस्लाम क़बूल करने के बाद भी वह अलानिया बदकारी करती थी।" इब्ने-माजा की रिवायत है, "उसकी बातचीत और हावभाव से शक हो गया था और कौन उसके पास आता है (यह भी उसको शक के घेरे में लाता है)।" लेकिन चूँकि उसके ख़िलाफ़ बदकारी का सुबूत न था, इसलिए उसे कोई सज़ा न दी गई। हालाँकि उसके बारे में नबी (सल्ल॰) की ज़बान से ये अलफ़ाज़ तक निकल गए थे कि "अगर मैं सुबूत के बिना रज्म करनेवाला होता तो इस औरत को ज़रूर रज्म करा देता।"

(17) ज़िना के जुर्म का पहला मुमकिन सुबूत यह है कि गवाही उसपर क़ायम हो। इसके बारे में क़ानून के अहम हिस्से ये हैं—

(क) क़ुरआन साफ़ बयान करता है कि ज़िना के लिए कम-से-कम चार चश्मदीद गवाह होने चाहिएँ। इसको सूरा निसा-4 आयत-15 में बयान किया जा चुका है और आगे इसी सूरा नूर में भी दो जगह बयान किया जा रहा है। गवाही के बिना क़ाज़ी (न्यायाधीश) सिर्फ़ अपनी जानकारी की बुनियाद पर फ़ैसला नहीं कर सकता, चाहे वह अपनी आँखों से जुर्म होते हुए देख चुका हो।

(ख) गवाह ऐसे लोग होने चाहिएँ जो इस्लामी क़ानूनी गवाही के मुताबिक़ भरोसे के लायक़ हों। मसलन यह कि वे पहले किसी मुक़द्दमे में झूठे गवाह साबित न हो चुके हों, ख़ियानत (ख़ुर्द-बुर्द) करनेवाले न हों, पहले के सज़ा पाए हुए न हों, मुलज़िम से उनकी दुश्मनी साबित न हो, वग़ैरा। बहरहाल नाक़ाबिले-भरोसा गवाही की बुनियाद पर न तो किसी को रज्म किया जा सकता है और न किसी की पीठ पर कोड़े बरसाए जा सकते हैं।

(ग) गवाहों को इस बात की गवाही देनी चाहिए कि उन्होंने मुलज़िम और मुलज़िमा को ठीक सोहबत की हालत में देखा है, यानी "इस तरह जैसे सुर्मेदानी में सलाई और कुँए में रस्सी।"

(घ) गवाहों को इस बात में एक होना चाहिए कि उन्होंने कब, कहाँ, किसको, किससे ज़िना करते देखा है। इन बुनियादी बातों में इख़्तिलाफ़ उनकी गवाही को ख़त्म कर देता है।

गवाही की ये शर्तें ख़ुद ज़ाहिर कर रही हैं कि इस्लामी क़ानून का मक़सद यह नहीं है कि टकटकियाँ लगी हों और रोज़ लोगों की पीठों पर कोड़े बरसते रहें, बल्कि वह ऐसी हालत ही में यह सख़्त सज़ा देता है जबकि तमाम सुधार और रोकथाम की तदबीरों के बावजूद इस्लामी समाज में कोई जोड़ा ऐसा बेहया हो कि चार-चार आदमी उसको जुर्म करते देख लें।

(18) इस बात में उलमा के बीच इख़्तिलाफ़ है कि क्या सिर्फ़ हमल (गर्भ) का पाया जाना जबकि औरत का कोई शौहर, या लौंडी का कोई मालिक लोगों के इल्म और जानकारी में न

हो ज़िना के सुबूत के लिए क़रीने की गवाही (परिस्थितिजन्य साक्ष्य) के तौर पर काफ़ी है या नहीं ? हज़रत उमर (रज़ि॰) की राय यह है कि यह औरत के मुजरिम होने के लिए काफ़ी (पर्याप्त) सुबूत है और इसी को मालिकी उलमा ने अपनाया है। मगर ज़्यादातर फ़क़ीहों की राय यह है कि सिर्फ़ हमल इतना मज़बूत सुबूत नहीं है कि इसकी बुनियाद पर किसी को रज्म (संगसार) कर दिया जाए या किसी की पीठ पर सौ कोड़े बरसा दिए जाएँ। इतनी बड़ी सज़ा देने के लिए ज़रूरी है कि या तो गवाही मौजूद हो, या फिर इक़रार। इस्लामी क़ानून के बुनियादी उसूलों में से एक यह है कि शक का फ़ायदा मुलज़िम को मिलना चाहिए यानी शक की बुनियाद पर किसी को सज़ा देने के बजाय उसे माफ़ करना चाहिए। नबी (सल्ल॰) का इरशाद है कि "सज़ाओं को टालो, जहाँ तक भी उन्हें टालने की गुंजाइश पाओ।" (हदीस : इब्ने-माजा) एक दूसरी हदीस में है, "मुसलमानों से सज़ाओं को दूर रखो, जहाँ तक भी मुमकिन हो। अगर किसी मुलज़िम के लिए सज़ा से बचने का कोई रास्ता निकलता है तो उसे छोड़ दो; क्योंकि हाकिम का माफ़ कर देने में ग़लती कर जाना इससे बेहतर है कि वह सज़ा देने में ग़लती कर जाए।" (हदीस : तिरमिज़ी) इस क़ायदे के लिहाज़ से हमल की मौजूदगी, चाहे शक के लिए कितनी ही मज़बूत बुनियाद हो ज़िना का यक़ीनी सुबूत बहरहाल नहीं है, इसलिए कि लाख में एक दर्जे की हद तक इस बात का भी इमकान है कि मर्द से जिस्मानी ताल्लुक़ बनाए बिना किसी औरत के पेट में किसी मर्द के नुत्फ़े (वीर्य) का कोई जुज़ (अंश) पहुँच जाए और वह हामिला (गर्भवती) हो जाए। इतने हलके-से शक का इमकान भी इसके लिए काफ़ी होना चाहिए कि मुलज़िमा को ज़िना की भयानक सज़ा से माफ़ रखा जाए।

(19) इस बात में भी उलमा के बीच इख़्तिलाफ़ है कि अगर ज़िना के गवाहों में इख़्तिलाफ़ हो जाए, या और किसी वजह से उनकी गवाहियों से जुर्म साबित न हो तो क्या उलटे गवाह झूठे इलज़ाम की सज़ा पाएँगे? फ़क़ीहों का एक गरोह कहता है कि इस सूरत में वे क़ाज़िफ़ (झूठा इलज़ाम लगानेवाले) ठहरेंगे और उन्हें 80 कोड़ों की सज़ा दी जाएगी। दूसरा गरोह कहता है कि उनको सज़ा नहीं दी जाएगी; क्योंकि वे गवाह की हैसियत से आए हैं, न कि मुद्दई की हैसियत से। और अगर इस तरह गवाहों को सज़ा दी जाए तो फिर ज़िना की गवाही हासिल होने का दरवाज़ा ही बन्द हो जाएगा। आख़िर किसकी शामत ने धक्का दिया है कि सज़ा का ख़तरा मोल लेकर गवाही देने आए जबकि इस बात का यक़ीन किसी को भी नहीं हो सकता कि चारों गवाहों में से कोई टूट न जाएगा।

हमारे नज़दीक यही दूसरी राय मुनासिब है, क्योंकि शक का फ़ायदा जिस तरह मुलज़िम को मिलना चाहिए, उसी तरह गवाहों को भी मिलना चाहिए। अगर उनकी गवाही की कमज़ोरी इस बात के लिए काफ़ी नहीं है कि मुलज़िम को ज़िना की ख़ौफ़नाक सज़ा दे डाली जाए तो इसे इस बात के लिए भी काफ़ी न होना चाहिए कि गवाहों पर क़ज़्फ़ (झूठा इलज़ाम लगाने) की भयानक सज़ा बरसा दी जाए, सिवाय इसके कि उनका साफ़ तौर से झूठा होना साबित हो जाए।

पहली राय की ताईद में दो बड़ी दलीलें दी जाती हैं। एक यह कि क़ुरआन ज़िना की झूठी

तुहमत को सज़ा का हक़दार ठहराता है। लेकिन यह दलील इसलिए ग़लत है कि क़ुरआन ख़ुद क़ाज़िफ़ (तुहमत लगानेवाले) और गवाह के बीच फ़र्क़ कर रहा है, और गवाह सिर्फ़ इस बुनियाद पर क़ाज़िफ़ नहीं ठहराया जा सकता कि अदालत ने उसकी गवाही को जुर्म के सुबूत के लिए काफ़ी नहीं पाया। दूसरी दलील यह दी जाती है कि मुग़ीरा-बिन-शोबा के मुक़द्दमे में हज़रत उमर (रज़ि॰) ने अबू-बकरा और उनके दो साथी गवाहों को क़ज़्फ़ की सज़ा दी थी। लेकिन इस मुक़द्दमे की पूरी तफ़सीलात देखने से मालूम हो जाता है कि यह मिसाल हर उस मुक़द्दमे पर चस्पाँ नहीं होती जिसमें जुर्म के सुबूत के लिए गवाहियाँ नाकाफ़ी पाई जाएँ। मुक़द्दमे के वाक़िआत ये हैं कि बसरा के गवर्नर मुग़ीरा-बिन-शोबा से अबू-बकरा के ताल्लुक़ात पहले से ख़राब थे। दोनों के मकान एक ही सड़क पर आमने-सामने थे। एक दिन अचानक हवा के ज़ोर से दोनों के कमरों की खिड़कियाँ खुल गईं। अबू-बकरा अपनी खिड़की बन्द करने के लिए उठे तो उनकी निगाह सामने के कमरे पर पड़ी और उन्होंने हज़रत मुग़ीरा को एक औरत के साथ सोहबत करते हुए देखा। अबू-बकरा के पास उनके तीन दोस्त (नाफ़िअ-बिन-कलदा ज़ियाद और शिब्ल-बिन-माबद) बैठे थे। उन्होंने कहा कि आओ, देखो और गवाह रहो कि मुग़ीरा क्या कर रहे हैं। दोस्तों ने पूछा, "यह औरत कौन है?" अबू-बकरा ने कहा, "उम्मे-जमील।" दूसरे दिन इसकी शिकायत हज़रत उमर (रज़ि॰) के पास भेजी गई। उन्होंने फ़ौरन हज़रत मुग़ीरा को उनके ओहदे से हटाकर हज़रत अबू-मूसा अशअरी (रज़ि॰) को बसरा का गवर्नर मुक़र्रर किया और मुलज़िम को गवाहों समेत मदीना तलब कर लिया। पेशी पर अबू-बकरा और दो गवाहों ने कहा कि "हमने मुग़ीरा को उम्मे-जमील के साथ अमली तौर से सोहबत करते देखा।" मगर ज़ियाद ने कहा कि "औरत साफ़ नज़र नहीं आती थी और मैं यक़ीन से नहीं कह सकता कि वह उम्मे-जमील थी।" मुग़ीरा-बिन-शोबा ने जिरह में यह साबित कर दिया कि जिस रुख़ से ये लोग उन्हें देख रहे थे उससे देखनेवाला औरत को अच्छी तरह नहीं देख सकता था। उन्होंने यह भी साबित किया कि उनकी बीवी और उम्मे-जमील की शक्ल एक-दूसरे से बहुत मिलती-जुलती है। हालात ख़ुद बता रहे थे कि हज़रत उमर (रज़ि॰) की हुकूमत में, एक सूबे का गवर्नर, ख़ुद अपने सरकारी मकान में, जहाँ उसकी बीवी उसके साथ रहती थी, एक ग़ैर औरत को बुलाकर ज़िना नहीं कर सकता था। इसलिए अबू-बकरा और उनके साथियों का यह समझना कि मुग़ीरा अपने घर में अपनी बीवी के बजाय उम्मे-जमील से सोहबत कर रहे हैं, एक निहायत नामुनासिब बदगुमानी के सिवा और कुछ न था। यही वजह है कि हज़रत उमर (रज़ि॰) ने सिर्फ़ मुलज़िम को बरी करने ही पर बस नहीं किया, बल्कि अबू-बकरा, नाफ़िअ और शिब्ल को तुहमत की (सज़ा) भी दी। यह फ़ैसला इस मुक़द्दमे के ख़ास हालात की बुनियाद पर था, न कि इस बुनियादी उसूल पर कि जब कभी गवाहियों से ज़िना का जुर्म साबित न हो तो गवाह ज़रूर पीट डाले जाएँ। (मुक़द्दमे की तफ़सीलात के लिए देखिए—अहकामुल-क़ुरआन, इब्नुल-अरबी, हिस्सा-2, पेज-88, 89)

(20) गवाही के सिवा दूसरी चीज़ जिससे ज़िना का जुर्म साबित हो सकता है, वह मुजरिम का अपना इक़रार है। यह इक़रार साफ़ और खुले अलफ़ाज़ में इस बात का होना चाहिए कि

उसने ज़िना किया है, यानी उसे यह तस्लीम करना चाहिए कि उसने एक ऐसी औरत से जो उसके लिए हराम थी, 'सुर्मेदानी में सलाई डालने जैसा' अमल किया है। और अदालत को पूरी तरह यह इत्मीनान कर लेना चाहिए कि मुजरिम किसी बाहरी दबाव के बिना ख़ुद से पूरे होशो-हवास में यह इक़रार कर रहा है।

कुछ फ़क़ीहों का कहना है कि एक इक़रार काफ़ी नहीं है, बल्कि मुजरिम को चार बार अलग-अलग इक़रार करना चाहिए (यह इमाम अबू-हनीफ़ा, इमाम अहमद, इब्ने-अबी-लैला, इसहाक़-बिन-राहवया और हसन-बिन-सालिह का मसलक है) और कुछ कहते हैं कि एक ही इक़रार काफ़ी है (इमाम मालिक, इमाम शाफ़िई, उसमान अल-बत्ती और हसन बसरी वग़ैरा इसी को मानते हैं) फिर ऐसी सूरत में जबकि जुर्म को साबित करनेवाले दूसरे सुबूत के बिना सिर्फ़ मुजरिम के अपने ही इक़रार पर फ़ैसला किया गया हो, अगर ठीक सज़ा के दौरान में भी मुजरिम अपने इक़रार से फिर जाए तो सज़ा को रोक देना चाहिए, चाहे यह बात साफ़-साफ़ ही क्यों न ज़ाहिर हो रही हो कि वह मार की तकलीफ़ से बचने के लिए इक़रार से पलट रहा है। यह पूरा क़ानून उन नज़ीरों से लिया गया है जो ज़िना के मुक़द्दमों के बारे में हदीसों में पाए जाते हैं। सबसे बड़ा मुक़द्दमा माइज़-बिन-मालिक असलमी का है जिसे कई सहाबा से बहुत-से रिवायत करनेवालों ने नक़्ल किया है और हदीस की लगभग तमाम किताबों में इसकी रिवायतें मौजूद हैं। यह शख़्स असलम क़बीले का एक यतीम लड़का था जिसने हज़रत हज़्ज़ाल-बिन-नुऐम के यहाँ परवरिश पाई थी। यहाँ वह एक आज़ाद की हुई लौंडी से ज़िना कर बैठा। हज़रत हज़्ज़ाल ने कहा कि जाकर नबी (सल्ल॰) को अपने इस गुनाह की ख़बर दे, शायद कि ख़ुद तेरे लिए मग़फ़िरत की दुआ कर दें। उसने जाकर मस्जिदे-नबवी में नबी (सल्ल॰) से कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मुझे पाक कर दीजिए, मैंने ज़िना किया है।" आप (सल्ल॰) ने मुँह फेर लिया और फ़रमाया, "अरे चला जा और अल्लाह से तौबा-इस्तिग़फ़ार कर।" मगर उसने फिर सामने आकर वही बात कही और आप (सल्ल॰) ने फिर मुँह फेर लिया। उसने तीसरी बार वही बात कही और आप (सल्ल॰) ने फिर मुँह फेर लिया। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने उसको ख़बरदार किया कि देख अब चौथी बार अगर तूने इक़रार किया तो अल्लाह के रसूल तुझे रज्म करा देंगे। मगर वह न माना और फिर उसने अपनी बात दोहराई। अब नबी (सल्ल॰) उसकी तरफ़ मुतवज्जेह हुए और उससे कहा, "शायद तूने चुम्बन वग़ैरा लिया होगा या छेड़-छाड़ की होगी या बुरी नज़र डाली होगी (और तू समझ बैठा होगा कि यह ज़िना करना है)" उसने कहा, "नहीं।" आप (सल्ल॰) ने पूछा, "क्या तू उससे हमबिस्तर हुआ?" उसने कहा, "हाँ।" फिर पूछा, "क्या तूने उससे सोहबत की?" उसने कहा, "हाँ।" फिर पूछा, "क्या तूने उससे मिलन (सम्भोग) किया?" उसने कहा, "हाँ।" फिर आप (सल्ल॰) ने वह लफ़्ज़ इस्तेमाल किया जो अरबी ज़बान में साफ़-साफ़ सोहबत करने के लिए बोला जाता है और गन्दा समझा जाता है। ऐसा लफ़्ज़ नबी (सल्ल॰) की ज़बान से न पहले कभी सुना गया, न इसके बाद किसी ने सुना। अगर एक शख़्स की जान का मामला न होता तो आप (सल्ल॰) की मुबारक ज़बान से कभी ऐसा लफ़्ज़ न निकल सकता था। मगर उसने उसके जवाब में भी, 'हाँ' कह दिया। नबी (सल्ल॰)

ने पूछा, "क्या इस हद तक कि तेरी वह चीज़ उसकी उस चीज़ में ग़ायब हो गई?" उसने कहा, "हाँ।" फिर पूछा, "क्या इस तरह ग़ायब हो गई जैसे सुर्मेदानी में सलाई और कुएँ में रस्सी?" उसने कहा, "हाँ।" पूछा, "क्या तू जानता है कि ज़िना किसे कहते हैं?" उसने कहा, "जी हाँ, मैंने उसके साथ हराम तरीक़े से वह काम किया जो शौहर हलाल तरीक़े से अपनी बीवी के साथ करता है।" आप (सल्ल॰) ने पूछा, "क्या तेरी शादी हो चुकी है?" उसने कहा, "जी हाँ।" आप (सल्ल॰) ने पूछा, "तूने शराब तो नहीं पी ली है?" उसने कहा, "नहीं।" एक आदमी ने उठकर उसका मुँह सूँघा और बताया कि वह सही कह रहा है। फिर आप (सल्ल॰) ने उसके मुहल्लेवालों से पूछा कि यह पागल तो नहीं है? उन्होंने कहा, "हमने इसकी अक़्ल में कोई ख़राबी नहीं देखी।" आप (सल्ल॰) ने हज़्ज़ाल से फ़रमाया, "काश! तुमने इसका परदा ढाँक दिया होता तो तुम्हारे लिए अच्छा था।" फिर आप (सल्ल॰) ने माइज़ को रज्म करने का फ़ैसला सुना दिया और उसे शहर के बाहर ले जाकर संगसार कर दिया गया। जब पत्थर पड़ने शुरू हुए तो माइज़ भागा और उसने कहा, "लोगो, मुझे अल्लाह के रसूल के पास वापस ले चलो, मेरे क़बीले के लोगों ने मुझे मरवा दिया। उन्होंने मुझे धोखा दिया कि अल्लाह के रसूल मुझे क़त्ल नहीं कराएँगे।" मगर मारनेवालों ने उसे मार डाला। बाद में जब नबी (सल्ल॰) को इसकी ख़बर दी गई तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "तुम लोगों ने उसे छोड़ क्यों नहीं दिया? मेरे पास ले आए होते, शायद वह तौबा करता और अल्लाह उसकी तौबा क़बूल कर लेता।"

दूसरा वाक़िआ ग़ामिदिया का है जो क़बीला 'ग़ामिद' (क़बीला 'जुहैना' की एक शाख़) की एक औरत थी। उसने भी आकर चार बार इक़रार किया कि वह ज़िना कर बैठी है और उसके पेट में नाजाइज़ बच्चा है। आप (सल्ल॰) ने उससे भी पहले इक़रार पर फ़रमाया, "अरी चली जा, अल्लाह से माफ़ी माँग और तौबा कर।" मगर उसने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या आप मुझे माइज़ की तरह टालना चाहते हैं? मैं ज़िना के नतीजे में हामिला (गर्भवती) हूँ।" यहाँ चूँकि इक़रार के साथ हमल भी मौजूद था, इसलिए आप (सल्ल॰) ने उतनी ज़्यादा तफ़सील से जिरह न की जो माइज़ से की थी। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अच्छा नहीं मानती तो जा, बच्चा पैदा होने के बाद आना।" बच्चा पैदा होने के बाद वह बच्चे को लेकर आई और कहा, "अब मुझे पाक कर दीजिए।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जा और इसको दूध पिला। दूध छूटने के बाद आना।" फिर वह दूध छुड़ाने के बाद आई और रोटी का एक टुकड़ा भी साथ लेती आई। बच्चे को रोटी का टुकड़ा खिलाकर नबी (सल्ल॰) को दिखाया और अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल! अब इसका दूध छूट गया है और देखिए यह रोटी खाने लगा है।" तब आपने बच्चे को पालने के लिए एक आदमी के हवाले किया और उसको रज्म करने का हुक्म दिया।

इन दोनों वाक़िआत में साफ़-साफ़ चार इक़रारों का ज़िक्र है। और अबू-दाऊद में हज़रत बुरैदा (रज़ि॰) की रिवायत है कि सहाबा किराम का आम ख़याल यही था कि अगर माइज़ और ग़ामिदिया चार बार इक़रार न करते तो उन्हें रज्म न किया जाता। अलबत्ता तीसरा वाक़िआ (जिसका ज़िक्र हम ऊपर नम्बर-15 में कर चुके हैं) उसमें सिर्फ़ ये अलफ़ाज़ मिलते

हैं कि "जाकर उसकी बीवी से पूछ, और अगर वह इक़रार करे तो उसे रज्म कर दे।" इसमें चार इक़रारों का ज़िक्र नहीं है, और इसी से फ़क़ीहों के एक गरोह ने दलील ली है कि एक ही इक़रार काफ़ी है।

(21) ऊपर हमने जिन तीन मुक़द्दमों की मिसालें पेश की हैं, उनसे यह साबित होता है कि इक़रार करनेवाले मुजरिम से यह नहीं पूछा जाएगा कि उसने किसके साथ ज़िना किया है; क्योंकि इस तरह एक के बजाय दो को सज़ा देनी पड़ेगी, और शरीअत लोगों को सज़ाएँ देने के लिए बेचैन नहीं है। अलबत्ता अगर मुजरिम ख़ुद यह बताए कि इस बुरे काम में दूसरा साथी फ़ुलाँ है तो उससे पूछा जाएगा। अगर वह भी क़बूल करे तो उसे सज़ा दी जाएगी, लेकिन अगर वह इनकार कर दे तो सिर्फ़ इक़रार करनेवाला मुजरिम ही सज़ा का हक़दार होगा।

इस बात में उलमा के बीच इख़्तिलाफ़ है कि इस दूसरी सूरत में (यानी जबकि दूसरा फ़रीक़ इस बात को तस्लीम न करे कि उसने उसके साथ ज़िना किया है) उसपर ज़िना की हद (सज़ा) जारी की जाएगी या तुहमत लगाने की सज़ा। इमाम मालिक (रह॰) और इमाम शाफ़िई (रह॰) के नज़दीक वह ज़िना की सज़ा पाने का हक़दार है; क्योंकि उसी जुर्म का उसने इक़रार किया है। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) और इमाम औज़ाई की राय में उसपर तुहमत लगाने की सज़ा जारी की जाएगी; क्योंकि दूसरे फ़रीक़ के इनकार ने उसके ज़िना के जुर्म में शक पैदा कर दिया है। अलबत्ता उसका तुहमत लगाने का जुर्म बहरहाल साबित है। और इमाम मुहम्मद (रह॰) का फ़तवा यह है (इमाम शाफ़िई की भी एक राय इसकी ताईद में है) कि उसे ज़िना की भी सज़ा दी जाएगी और तुहमत लगाने की भी; क्योंकि ज़िना के अपने जुर्म का उसने ख़ुद इक़रार किया है, और दूसरे फ़रीक़ पर वह अपना इलज़ाम साबित नहीं कर सका है। नबी (सल्ल॰) की अदालत में इस क़िस्म का एक मुक़द्दमा आया था। उसकी एक रिवायत जो मुसनद अहमद और अबू-दाऊद में सहल-बिन-सअद से रिवायत हुई है, उसमें ये अलफ़ाज़ हैं, "एक शख़्स ने आकर नबी (सल्ल॰) के सामने इक़रार किया कि वह फ़ुलाँ औरत से ज़िना कर बैठा है। आपने औरत को बुलाकर पूछा। उसने इनकार कर दिया। आपने उस मर्द को सज़ा दी और औरत को छोड़ दिया।" इस रिवायत में यह नहीं बताया गया है कि उसको कौन-सी सज़ा दी (यानी ज़िना करने की या तुहमत लगाने की) दूसरी रिवायत अबू-दाऊद और नसई ने इब्ने-अब्बास से नक़्ल की है और उसमें यह है कि पहले उसके इक़रार पर आप (सल्ल॰) ने ज़िना की सज़ा दी, फिर औरत से पूछा और उसके इनकार पर उस शख़्स को तुहमत की सज़ा के तौर पर कोड़े लगवाए। लेकिन यह रिवायत सनद के लिहाज़ से भी कमज़ोर है; क्योंकि इसके रिवायत करनेवाले क़ासिम-बिन-फ़ैयाज़ को कई मुहद्दिसों (हदीसों के आलिमों) ने भरोसे लायक़ नहीं बताया है, और क़ियास (गुमान) के भी ख़िलाफ़ है, इसलिए कि नबी (सल्ल॰) से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि आप (सल्ल॰) ने उसे कोड़े लगवाने के बाद औरत से पूछा होगा। खुली अक़्ल और इनसाफ़ का तक़ाज़ा जिसे नबी (सल्ल॰) नज़र-अन्दाज़ नहीं कर सकते थे, यह था कि जब उसने औरत का नाम ले दिया था तो औरत से पूछे बिना उसके मुक़द्दमे का फ़ैसला न किया जाता। इसी

की ताईद सहल-बिन-सअद वाली रिवायत भी कर रही है। लिहाज़ा दूसरी रिवायत भरोसे के लायक़ नहीं है।

(22) जुर्म के सुबूत के बाद ज़ानी (व्यभिचारी) और ज़ानिया (व्यभिचारिणी) को क्या सज़ा दी जाएगी, इस मामले में फ़क़ीहों के बीच रायें अलग-अलग हैं, उनमें से कुछ नीचे दी जा रही हैं–

शादीशुदा मर्द-औरत के लिए ज़िना की सज़ा : इमाम अहमद, दाऊद ज़ाहिरी और इसहाक़-बिन-राहवया के नज़दीक सौ कोड़े लगाना और उसके बाद संगसार करना है।

बाक़ी तमाम फ़क़ीह इस बात पर एक राय हैं कि उनकी सज़ा सिर्फ़ संगसार करना है। रज्म और कोड़ों की सज़ा को एक साथ जमा नहीं किया जाएगा।

ग़ैर-शादीशुदा की सज़ा : इमाम शाफ़िई, इमाम अहमद, इसहाक़-बिन-राहवया, दाऊद ज़ाहिरी, सुफ़ियान सौरी, इब्ने-अबी-लैला और हसन-बिन-सॉलिह के नज़दीक सौ कोड़े और एक साल के लिए जलावतन किया जाना, मर्द-औरत दोनों के लिए।

इमाम मालिक और इमाम औज़ाई के नज़दीक मर्द के लिए 100 कोड़े और एक साल के लिए जलावतन किया जाना और औरत के लिए सिर्फ़ कोड़े।

(जलावतन करने से मुराद इन सबके नज़दीक यह है कि मुजरिम को उसकी बस्ती से निकालकर कम-से-कम इतनी दूरी पर भेज दिया जाए जिसपर नमाज़ में क़स्र वाजिब होता है। मगर ज़ैद-बिन-अली और इमाम जाफ़र सादिक़ के नज़दीक क़ैद कर देने से भी जलावतन करने का मक़सद पूरा हो जाता है)

इमाम अबू-हनीफ़ा और उनके शागिर्द इमाम अबू-यूसुफ़, इमाम ज़ुफ़र और इमाम मुहम्मद कहते हैं कि इस सूरत में ज़िना की सज़ा मर्द और औरत दोनों के लिए सिर्फ़ सौ कोड़े है। उसपर किसी और सज़ा, मसलन क़ैद या जलावतनी का इज़ाफ़ा सज़ा (क़ुरआन औरा हदीस की तयशुदा सज़ा) नहीं, बल्कि ताज़ीर (हाकिम या क़ाज़ी की अपनी तरफ़ से दी हुई सज़ा) है। क़ाज़ी अगर यह देखे कि मुजरिम बदचलन है, या मुजरिम मर्द और मुजरिम औरत के ताल्लुक़ात बहुत गहरे हैं तो ज़रूरत के मुताबिक़ वह उन्हें जलावतन भी कर सकता है और क़ैद भी कर सकता है।

('हद' और 'ताज़ीर' में फ़र्क़ यह है कि 'हद' एक मुक़र्रर सज़ा है जो जुर्म की शर्तें पूरी होने के बाद ज़रूर दी जाएगी। और ताज़ीर उस सज़ा को कहते हैं जो क़ानून में मिक़दार और कैफ़ियत के लिहाज़ से बिलकुल तय न कर दी गई हो, बल्कि जिसे अदालत मुक़द्दमे के हालात के लिहाज़ से घटा-बढ़ा सकती हो)

इन अलग-अलग मसलकों में से हर एक ने अलग-अलग हदीसों का सहारा लिया है जिनको हम नीचे दर्ज करते हैं–

हज़रत उबादा-बिन-सामित की रिवायत जिसे मुस्लिम, अबू-दाऊद, इब्ने-माजा, तिरमिज़ी और इमाम अहमद ने नक़्ल किया है। उसमें ये अलफ़ाज़ हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मुझसे लो, मुझसे लो, अल्लाह ने ज़ानिया (ज़िना करनेवाली) औरतों के लिए तरीक़ा मुक़र्रर कर दिया। ग़ैर-शादीशुदा मर्द की ग़ैर-शादीशुदा औरत से बदकारी के लिए सौ कोड़े और एक

साल के लिए जलावतन करना, और शादीशुदा मर्द की शादीशुदा औरत से बदकारी के लिए सौ कोड़े और संगसार करना।'' (यह हदीस हालाँकि सनद के एतिबार से सही है, मगर बहुत-सी ऐसी सही रिवायतें हैं जो हमें बताती हैं कि इनपर न नबी (सल्ल.) के ज़माने में कभी अमल हुआ, न ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन के ज़माने में, और न फ़क़ीहों में से किसी ने ठीक इसके मज़मून के मुताबिक़ फ़तवा दिया। इस्लामी फ़िक़्ह (क़ानून) में जिस बात पर सब उलमा की एक राय है वह यह है कि ज़िना करनेवाले मर्द और औरत के मुहसिन (शादीशुदा) और ग़ैर-मुहसिन (ग़ैर-शादीशुदा) होने का अलग-अलग एतिबार किया जाएगा। ग़ैर-शादीशुदा मर्द चाहे शादीशुदा औरत से ज़िना करे या ग़ैर-शादीशुदा से दोनों हालतों में उसकी सज़ा एक है, और शादीशुदा मर्द चाहे शादीशुदा औरत से ज़िना करे या ग़ैर-शादीशुदा से, दोनों हालतों में उसको एक ही सज़ा दी जाएगी। यही मामला औरत का भी है। वह शादीशुदा हो तो हर हालत में एक ही सज़ा पाएगी चाहे उससे ज़िना करनेवाला मर्द शादीशुदा हो या ग़ैर-शादीशुदा, और कुँआरी होने की सूरत में भी उसके लिए एक ही सज़ा है बिना इस बात का ख़याल किए कि उसके साथ ज़िना करनेवाला मुहसिन है या ग़ैर-मुहसिन।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) और हज़रत ज़ैद-बिन-ख़ालिद जुहनी की रिवायत जिसे बुख़ारी, मुस्लिम, अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने-माजा और इमाम अहमद (रह.) ने नक़्ल किया है, इसमें यह है कि दो आराबी (अरब के देहाती) नबी (सल्ल.) के पास मुक़द्दमा लाए। एक ने कहा कि मेरा बेटा इस शख़्स के यहाँ मज़दूरी पर काम करता था। वह इसकी बीवी से जिस्मानी ताल्लुक़ बना बैठा। मैंने इसको सौ बकरियाँ और एक लौंडी देकर राज़ी किया, मगर इल्म रखनेवालों ने बताया कि यह अल्लाह की किताब के ख़िलाफ़ है। आप हमारे बीच अल्लाह की किताब के मुताबिक़ फ़ैसला कर दें। दूसरे ने भी कहा कि आप अल्लाह की किताब के मुताबिक़ फ़ैसला कर दें। नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, ''मैं अल्लाह की किताब ही के मुताबिक़ फ़ैसला करूँगा। बकरियाँ और लौंडी तुझी को वापस। तेरे बेटे के लिए सौ कोड़े और एक साल की जलावतनी।'' फिर आप (सल्ल.) ने क़बीला असलम के एक आदमी से कहा, ''ऐ उनैस, तू जाकर इसकी बीवी से पूछ। अगर वह क़बूल करे तो उसे रज्म कर दे।'' चुनाँचे उसने क़बूल कर लिया और रज्म कर दी गई। (इसमें रज्म से पहले कोड़े लगाने का कोई ज़िक्र नहीं है। और ग़ैर-शादीशुदा मर्द को शादीशुदा औरत से बदकारी करने पर कोड़े और जलावतनी की सज़ा दी गई है।)

माइज़ और ग़ामिदिया के मुक़द्दमों की जितनी रूदादें हदीसों की अलग-अलग किताबों में बयान हुई हैं, उनमें से किसी में भी यह नहीं मिलता कि नबी (सल्ल.) ने रज्म कराने से पहले उनको सौ कोड़े भी लगवाए हों।

कोई रिवायत किसी हदीस में नहीं मिलती कि नबी (सल्ल.) ने किसी मुक़द्दमे में रज्म के साथ कोड़ों की भी सज़ा सुनाई हो। एहसान (शादी-होने) की हालत में ज़िना करने के तमाम मुक़द्दमों में आप (सल्ल.) ने सिर्फ़ रज्म की सज़ा दी है।

हज़रत उमर (रज़ि.) का मशहूर ख़ुतबा जिसमें उन्होंने पूरे ज़ोर के साथ शादी के बाद ज़िना

करने की सज़ा रज्म बयान की है, बुख़ारी, मुस्लिम और तिरमिज़ी और नसई ने अलग-अलग सनदों से नक़्ल किया है और इमाम अहमद ने भी उसकी कई रिवायतें ली हैं, मगर उसकी किसी रिवायत में भी रज्म के साथ कोड़ों का ज़िक्र नहीं है।

ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन में से सिर्फ़ हज़रत अली (रज़ि.) ने कोड़ों की सज़ा और संगसारी को एक सज़ा में जमा किया है। इमाम अहमद और बुख़ारी आमिर शअबी से यह वाक़िआ नक़्ल करते हैं कि शुराहा नाम की एक औरत ने नाजाइज़ हमल (गर्भ) का इक़रार किया। हज़रत अली (रज़ि.) ने जुमेरात के दिन उसे कोड़े लगवाए और जुमे के दिन उसको रज्म कराया, और फ़रमाया, ''हमने इसे अल्लाह की किताब के मुताबिक़ कोड़े लगाए हैं और अल्लाह के रसूल की सुन्नत के मुताबिक़ संगसार करते हैं।'' इस एक वाक़िए के सिवा ख़िलाफ़ते-राशिदा के दौर का कोई दूसरा वाक़िआ कोड़ों के साथ रज्म के हक़ में नहीं मिलता।

जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि.) की एक रिवायत जिसे अबू-दाऊद और नसई ने नक़्ल किया है, यह बताती है कि एक आदमी ने ज़िना का जुर्म किया और नबी (सल्ल.) ने उसको सिर्फ़ कोड़ों की सज़ा दी, फिर मालूम हुआ कि वह शादीशुदा था, तब आप (सल्ल.) ने उसे रज्म कराया। इसके अलावा कई रिवायतें हम पहले नक़्ल कर आए हैं जिनसे मालूम होता है कि ग़ैर शादीशुदा ज़िना करनेवालों को आप (सल्ल.) ने सिर्फ़ कोड़ों की सज़ा दी। मसलन वह आदमी जिसने नमाज़ के लिए जाती हुई औरत से ज़िना-बिल-जब्र (बलात्कार) किया था, और वह आदमी जिसने ज़िना का इक़रार किया और औरत ने इनकार किया।

हज़रत उमर (रज़ि.) ने रबीआ-बिन-उमैया-बिन-ख़ल्फ़ को शराब पीने के जुर्म में जलावतन किया और वह भागकर रोमियों से जा मिला। इसपर हज़रत उमर (रज़ि.) ने फ़रमाया कि आइन्दा मैं किसी को जलावतनी की सज़ा नहीं दूँगा। इसी तरह हज़रत अली (रज़ि.) ने ग़ैर-शादीशुदा मर्द-औरत को ज़िना के जुर्म में जलावतन करने से इनकार कर दिया और फ़रमाया कि इसमें फ़ितने का अन्देशा है। (अहकामुल-क़ुरआन, जस्सास, हिस्सा-3, पेज-315)

इन तमाम रिवायतों पर कुल मिलाकर नज़र डालने से साफ़ महसूस होता है कि इमाम अबू-हनीफ़ा (रह.) और उनके साथियों का मसलक ही सही है, यानी शादीशुदा होने के बाद ज़िना की सज़ा सिर्फ़ रज्म है, और महज़ ज़िना की सज़ा सिर्फ़ 100 कोड़े। कोड़ों और रज्म को एक साथ देने पर तो नबी (सल्ल.) के दौर से लेकर हज़रत उसमान (रज़ि.) के ज़माने तक कभी अमल ही नहीं हुआ। रहा कोड़ों और जलावतनी को जमा करना तो इसपर कभी अमल हुआ है और कभी नहीं हुआ। इससे हनफ़ी मसलक का सही होना साफ़ साबित हो जाता है।

(28) कोड़े की मार की कैफ़ियत के बारे में पहला इशारा ख़ुद क़ुरआन के लफ़्ज़ 'फ़ज्लिदू' में मिलता है। 'जल्द' का लफ़्ज़ 'जिल्द' यानी खाल से लिया गया है। इससे तमाम अहले-लुग़त (ज़बान के माहिर) और तफ़सीर लिखनेवाले आलिमों ने यही मतलब लिया है कि मार ऐसी होनी चाहिए जिसका असर जिल्द (खाल) तक रहे। गोश्त तक न पहुँचे। ऐसी चोट जिससे गोश्त के टुकड़े उड़ जाएँ, या खाल फटकर अन्दर तक ज़ख़्म पड़ जाए, क़ुरआन के ख़िलाफ़

है।

मार के लिए चाहे कोड़ा इस्तेमाल किया जाए या छड़ी, दोनों सूरतों में उन्हें औसत दर्जे का होना चाहिए। न बहुत मोटा और सख़्त, और न बहुत पतला और नर्म। मुवत्ता में इमाम मालिक (रह.) की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने कोड़े मारने के लिए कोड़ा मँगवाया और वह बहुत ज़्यादा इस्तेमाल होने की वजह से बहुत कमज़ोर हो चुका था। आपने फ़रमाया, "इससे ज़्यादा सख़्त लाओ।" फिर एक नया कोड़ा लाया गया जो अभी इस्तेमाल से नर्म नहीं पड़ा था। आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "दोनों के बीच का लाओ।" फिर ऐसा कोड़ा लाया गया जो सवारी में इस्तेमाल हो चुका था। उससे आप (सल्ल.) ने कोड़े लगवाए। इसी मज़मून (विषय) से मिलती-जुलती रिवायत अबू-उसमान अन-नहदी ने हज़रत उमर (रज़ि.) के बारे में भी बयान की है कि वे औसत दर्जे का कोड़ा इस्तेमाल करते थे (अहकामुल-क़ुरआन, जस्सास, हिस्सा-3, पेज-322) गाँठ लगा हुआ कोड़ा या दो-तीन तहोंवाला नुकीला कोड़ा भी इस्तेमाल करना मना है।

मार भी औसत दर्जे की होनी चाहिए। हज़रत उमर (रज़ि.) मारनेवाले को हिदायत करते थे कि "इस तरह मार कि तेरी बग़ल न खुले।" यानी पूरी ताक़त से हाथ को तानकर न मार (अहकामुल-क़ुरआन, इब्ने-अरबी, हिस्सा-2, पेज-84; अहकामुल-क़ुरआन, जस्सास, हिस्सा-3, पेज-322)

तमाम फ़क़ीह इस बात पर एक राय हैं कि मार ऐसी नहीं होनी चाहिए जिससे ज़ख़्म पड़ जाए। एक ही जगह नहीं मारना चाहिए, बल्कि तमाम जिस्म पर मार को फैला देना चाहिए। सिर्फ़ मुँह और शर्मगाह को (और हनफ़ी उलमा के नज़दीक सिर को भी) बचा लेना चाहिए, बाक़ी हर हिस्से पर कुछ-न-कुछ मार पड़नी चाहिए। हज़रत अली (रज़ि.) ने एक आदमी को कोड़े लगवाते वक़्त कहा, "हर हिस्से को उसका हक़ दे और सिर्फ़ मुँह और शर्मगाह को बचा ले।" दूसरी रिवायत में है कि "सिर्फ़ सिर और शर्मगाह को बचा ले।" (अहकामुल-क़ुरआन, जस्सास, हिस्सा-3, पेज-321) नबी (सल्ल.) का इरशाद है कि "जब तुममें से कोई मारे तो मुँह पर न मारे।" (हदीस : अबू-दाऊद)

मर्द को खड़ा करके मारना चाहिए और औरत को बिठाकर। इमाम अबू-हनीफ़ा के ज़माने में कूफ़ा के क़ाज़ी (न्यायाधीश) इब्ने-अबी-लैला ने एक औरत को खड़ा करके पिटवाया। इसपर इमाम अबू-हनीफ़ा ने सख़्त पकड़ की और उनके फ़ैसले को एलानिया ग़लत ठहराया। (इससे अदालत की तौहीन के क़ानून के मामले में भी इमाम साहब के मसलक पर रौशनी पड़ती है) कोड़े की मार के वक़्त औरत अपने पूरे कपड़े पहने रहेगी, बल्कि उसके कपड़े अच्छी तरह बाँध दिए जाएँगे; ताकि उसका जिस्म खुल न जाए। सिर्फ़ मोटे कपड़े उतरवा दिए जाएँगे। मर्द के मामले में आलिमों की राय अलग-अलग है। कुछ फ़क़ीह कहते हैं कि वह सिर्फ़ पाजामा पहने रहेगा, और कुछ कहते हैं कि कुर्ता भी न उतरवाया जाएगा। हज़रत अबू-उबैदा-बिन-अल-जर्राह ने एक ज़िना करनेवाले को कोड़े की सज़ा का हुक्म सुनाया। उसने कहा, "इस गुनहगार जिस्म को अच्छी तरह मार खानी चाहिए," और यह कहकर वह कुर्ता उतारने लगा। हज़रत अबू-उबैदा ने फ़रमाया, "इसे कुर्ता न उतारने दो।"

(अहकामुल-क़ुरआन, जस्सास, हिस्सा-3, पेज-322) हज़रत अली के ज़माने में एक आदमी को कोड़े लगवाए गए और वह चादर ओढ़े हुए था।

सख़्त सर्दी और सख़्त गर्मी के वक़्त मारना मना है। जाड़े में गर्म वक़्त और गर्मी में ठण्ड के वक़्त मारने का हुक्म है।

बाँधकर मारने की भी इजाज़त नहीं है, सिवाय यह कि मुजरिम भागने की कोशिश करे। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) फ़रमाते हैं, "इस उम्मत में नंगा करके और टकटकी (पलंग वग़ैरा) पर बाँधकर मारना हलाल नहीं है।"

फ़क़ीहों ने इसको जाइज़ रखा है कि एक दिन में कम-से-कम बीस कोड़े मारे जाएँ। लेकिन बेहतर यही है कि एक साथ पूरी सज़ा दे दी जाए।

मार का काम उजड्ड जल्लादों से नहीं लेना चाहिए, बल्कि गहरी सूझ-बूझ रखनेवाले आदमियों को यह काम करना चाहिए जो जानते हों कि शरीअत का तक़ाज़ा पूरा करने के लिए किस तरह मारना मुनासिब है। इब्ने-क़य्यिम ने 'ज़ादुल-मआद' में लिखा है कि नबी (सल्ल॰) के ज़माने में हज़रत अली (रज़ि॰), हज़रत ज़ुबैर (रज़ि॰), मिक़दाद-बिन-अम्र (रज़ि॰), मुहम्मद-बिन-मसलमा (रज़ि॰), आसिम-बिन-साबित (रज़ि॰) और ज़ह्हाक-बिन-सुफ़ियान (रज़ि॰) जैसे नेक और क़ाबिले-एहतिराम लोगों से जल्लाद का काम लिया जाता था। (हिस्सा-1, पेज-44, 45)

अगर मुजरिम बीमार हो और उसके ठीक होने की उम्मीद न हो, या बहुत बूढ़ा हो तो सौ शाख़ोंवाली एक डाली, या सौ तीलियोंवाला एक झाड़ू लेकर सिर्फ़ एक बार मार देना चाहिए, ताकि क़ानून का तक़ाज़ा पूरा कर दिया जाए। नबी (सल्ल॰) के ज़माने में एक बीमार बूढ़ा ज़िना के जुर्म में पकड़ा गया था और आप (सल्ल॰) ने उसके लिए इसी सज़ा का हुक्म दिया था (हदीस : अहमद, अबू-दाऊद, नसई, इब्ने-माजा) हामिला (गर्भवती) औरत को कोड़ों की सज़ा देनी हो तो बच्चा पैदा होने के बाद निफ़ास (यानी पैदाइश के बाद के कुछ दिन जिसमें कि औरत के पेट से ख़ून वग़ैरा निकलता रहता है) का ज़माना गुज़र जाने तक इन्तिज़ार करना होगा और रज्म करना हो तो जब तक उसके बच्चे का दूध न छूट जाए, सज़ा नहीं दी जा सकती।

अगर ज़िना गवाहियों से साबित हो तो गवाह मारने की शुरुआत करेंगे, और अगर इक़रार की बुनियाद पर सज़ा दी जा रही हो तो क़ाज़ी ख़ुद शुरुआत करेगा, ताकि गवाह अपनी गवाही को और जज अपने फ़ैसलों को खेल न समझ बैठें। शुराहा के मुक़द्दमे में जब हज़रत अली (रज़ि॰) ने रज्म का फ़ैसला किया तो फ़रमाया, "अगर इसके जुर्म का कोई गवाह होता तो उसी को मार की शुरुआत करनी चाहिए थी, मगर इसको इक़रार की बुनियाद पर सज़ा दी जा रही है, इसलिए मैं ख़ुद शुरुआत करूँगा।" हनफ़ी आलिमों के नज़दीक ऐसा करना वाजिब है। शाफ़िई आलिम इसको वाजिब नहीं मानते, मगर सबके नज़दीक बेहतर यही है।

कोड़ों की मार के क़ानून की इन तफ़सीलात को देखिए और फिर उन लोगों की जुरअत और हिम्मत की दाद दीजिए जो इसे तो वहशियाना (बर्बरतापूर्ण) सज़ा कहते हैं, मगर कोड़ों

की वह सज़ा उनके नज़दीक बड़ी मुहज़्ज़ब (शिष्ट) सज़ा है जो आज जेलों में दी जा रही है। मौजूदा क़ानून के मुताबिक़ सिर्फ़ अदालत ही नहीं, जेल का एक मामूली सुपरिंटेंडेंट भी एक क़ैदी को हुक्म न मानने या गुस्ताख़ी के क़ुसूर में 30 बेंतें मारने तक की सज़ा दे सकता है। यह बेंत लगाने के लिए एक आदमी ख़ास तौर पर तैयार किया जाता है और वह हमेशा इसकी मश्क़ (अभ्यास) करता रहता है। इस मक़सद के लिए बेंतें भी ख़ास तौर पर भिगो-भिगोकर तैयार की जाती हैं, ताकि जिस्म को छुरी की तरह काट दें। मुजरिम को नंगा करके टकटकी से बाँध दिया जाता है, ताकि वह तड़प भी न सके। सिर्फ़ एक पतला-सा कपड़ा उसकी शर्मगाह को छुपाने के लिए रहने दिया जाता है और वह टिंकचर आयोडीन से भिगो दिया जाता है। जल्लाद दूर से भागता हुआ आता है और पूरी ताक़त से मारता है। चोट जिस्म के एक ही ख़ास हिस्से (यानी कूल्हे) पर लगातार लगाई जाती है, यहाँ तक कि गोश्त क़ीमा होकर उड़ता चला जाता है और कई बार हड्डी नज़र आने लगती है। अकसर ऐसा होता है कि ताक़तवर-से-ताक़तवर आदमी भी पूरी तीस बेंतों की मार झेलने से पहले ही बेहोश हो जाता है और उसके ज़ख़्म भरने में एक मुद्दत लग जाती है। इस 'मुहज़्ज़ब' (सभ्य) सज़ा को जो लोग आज जेलों में ख़ुद लागू कर रहे हैं, उनका यह मुँह है कि इस्लाम की मुक़र्रर की हुई कोड़ों की सज़ा को 'वहशियाना' सज़ा के नाम से याद करें! फिर उनकी पुलिस मुजरिम साबित हो चुके लोगों को नहीं, बल्कि सिर्फ़ उन लोगों को जिनपर सिर्फ़ शक है, तफ़तीश की ख़ातिर (ख़ास तौर से सियासी जुर्म के शुबहों में) जैसे-जैसे अज़ाब (यातना) देती है वे आज किसी से छिपे हुए नहीं हैं।

(24) रज्म की सज़ा में जब मुजरिम मर जाए तो फिर उससे पूरी तरह मुसलमानों का-सा मामला किया जाएगा। उसको ग़ुस्ल और कफ़न दिया जाएगा। उसके जनाज़े की नमाज़ पढ़ी जाएगी। उसको इज़्ज़त के साथ मुसलमानों के क़ब्रिस्तान में दफ़्न किया जाएगा। उसके लिए मग़फ़िरत की दुआ की जाएगी और किसी के लिए जाइज़ न होगा कि उसका ज़िक्र बुराई के साथ करे। बुख़ारी में जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह अनसारी (रज़ि॰) की रिवायत है कि जब रज्म से माइज़-बिन-मालिक की मौत हो गई तो नबी (सल्ल॰) ने उसको "भलाई के साथ याद किया और उसके जनाज़े की नमाज़ ख़ुद पढ़ाई।" मुस्लिम में हज़रत बुरैदा की रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "माइज़-बिन-मालिक के हक़ में मग़फ़िरत की दुआ करो, उसने ऐसी तौबा की है कि अगर एक पूरी उम्मत में बाँट दी जाए तो सबके लिए काफ़ी हो।" इसी रिवायत में यह भी ज़िक्र है कि ग़ामिदिया जब रज्म से मर गई तो नबी (सल्ल॰) ने ख़ुद उसके जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई, और जब हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद ने उसका ज़िक्र बुराई से किया तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "ख़ालिद, अपनी ज़बान रोको, उस हस्ती की क़सम जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है, उसने ऐसी तौबा की थी कि अगर ज़ालिमाना तरीक़े से टैक्स वुसूल करनेवाला भी वह तौबा करता तो माफ़ कर दिया जाता।" अबू-दाऊद में हज़रत

अबू-हुरैरा (रज़ि.) की रिवायत है कि माइज़ के वाक़िए के बाद एक दिन नबी (सल्ल.) रास्ते से गुज़र रहे थे। आप (सल्ल.) ने दो आदमियों को माइज़ का ज़िक्र बुराई से करते सुना। कुछ क़दम आगे जाकर एक गधे की लाश पड़ी दिखाई दी। नबी (सल्ल.) ठहर गए और उन दोनों आदमियों से कहा, "आप लोग इसमें से कुछ खा लें।" उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के नबी! इसे कौन खा सकता है?" आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "अपने भाई की आबरू से जो कुछ आप अभी खा रहे थे वह इसे खाने के मुक़ाबले में ज़्यादा बुरी चीज़ थी।" मुस्लिम में इमरान-बिन-हुसैन की रिवायत है कि हज़रत उमर (रज़ि.) ने ग़ामिदिया के जनाज़े की नमाज़ के मौक़े पर अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या अब इस ज़िना करनेवाली की नमाज़े-जनाज़ा पढ़ी जाएगी?" आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "इसने वह तौबा की है कि अगर तमाम मदीनावालों में बाँट दी जाए तो सबके लिए काफ़ी हो।" बुख़ारी में हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) की रिवायत है कि एक आदमी को शराब पीने के जुर्म में सज़ा दी जा रही थी। किसी की ज़बान से निकला, "ख़ुदा तुझे रुसवा करे।" इसपर नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "इस तरह न कहो, उसके ख़िलाफ़ शैतान की मदद न करो।" अबू-दाऊद में इसपर इतना इज़ाफ़ा है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "बल्कि यूँ कहो : 'ऐ अल्लाह, उसे माफ़ कर दे, ऐ अल्लाह उसपर रहम कर।"

यह है इस्लाम में सज़ा की अस्ल रूह। इस्लाम किसी बड़े-से-बड़े मुजरिम को भी दुश्मनी के जज़बे से सज़ा नहीं देता, बल्कि उसके लिए भलाई के जज़बे से देता है, और जब सज़ा दे चुकता है तो फिर उसे रहम और हमदर्दी की निगाह से देखता है। यह तंगनज़री सिर्फ़ मौजूदा तहज़ीब ने पैदा की है कि हुकूमत की फ़ौज या पुलिस जिसे मार दे, और कोई अदालती जाँच जिसके मारने को जाइज़ ठहरा दे, उसके बारे में यह तक गवारा नहीं किया जाता कि कोई उसका जनाज़ा उठाए या किसी की ज़बान से उसका ज़िक्र भलाई के साथ सुना जाए। इसपर अख़लाक़ी जुरअत (यह मौजूदा तहज़ीब में ढिठाई का मुहज़्ज़ब नाम है) का यह हाल है कि दुनिया को रवादारी (उदारता) की नसीहतें की जाती हैं।

(25) मुहर्रमात (वे क़रीबी रिश्तेदार औरतें जिनसे निकाह हराम है) से ज़िना के बारे में शरीअत का क़ानून तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-4 निसा, हाशिया-33 में और हमजिंस-परस्ती (समलैंगिकता) के बारे में शरीअत का फ़ैसला तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, हाशिया-68 में बयान किया जा चुका है। रहा जानवर से बदकारी करना तो कुछ फ़क़ीह इसको भी ज़िना के दायरे में रखते हैं और इसके करनेवाले को ज़िना की सज़ा का हक़दार ठहराते हैं। मगर इमाम अबू-हनीफ़ा (रह.), इमाम अबू-यूसुफ़ (रह.), इमाम मुहम्मद (रह.), इमाम ज़ुफ़र (रह.), इमाम मालिक (रह.) और इमाम शाफ़िई कहते हैं कि यह ज़िना नहीं है, इसलिए इसके करनेवाले को क़ुरआन और हदीस की तय की हुई सज़ा नहीं दी जाएगी, बल्कि हाकिम या क़ाज़ी या मुल्क की मजलिसे-शूरा (सलाहकार-समिति) ज़रूरत समझे तो इसके लिए कोई मुनासिब सज़ा तय कर सकती है।

وَّلَا تَأْخُذْكُمْ بِهِمَا رَأْفَةٌ فِيْ دِيْنِ اللّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ تُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۚ

और उनपर तरस खाने का जज़्बा अल्लाह के दीन के मामले में तुमको रोक न दे, अगर तुम अल्लाह तआला और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते हो।[3]

3. सबसे पहली चीज़ जो इस आयत में ध्यान देने के क़ाबिल है वह यह है कि यहाँ फ़ौजदारी क़ानून को 'अल्लाह का दीन' कहा जा रहा है। मालूम हुआ कि सिर्फ़ नमाज़ और रोज़ा और हज और ज़कात ही दीन नहीं हैं, मुल्क का क़ानून भी दीन है। दीन को क़ायम करने का मतलब सिर्फ़ नमाज़ ही क़ायम करना नहीं है, बल्कि अल्लाह का क़ानून और शरीअत का निज़ाम (व्यवस्था) क़ायम करना भी है। जहाँ यह चीज़ क़ायम न हो वहाँ नमाज़ अगर क़ायम हो भी तो मानो अधूरा दीन क़ायम हुआ। जहाँ इसको रद्द करके दूसरा कोई क़ानून अपनाया जाए वहाँ कुछ और नहीं ख़ुद अल्लाह का दीन रद्द कर दिया गया।

दूसरी चीज़ जो इसमें ध्यान देने लायक़ है वह अल्लाह तआला की यह डरावा (चेतावनी) है कि ज़िना करनेवाले मर्द और औरत पर मेरी बताई हुई सज़ा लागू करने में मुजरिम के लिए रहम और तरस का जज़बा तुम्हारा हाथ न पकड़े। इस बात को और ज़्यादा खोलकर नबी (सल्ल.) ने इस हदीस में बयान किया है। आप (सल्ल.) फ़रमाते हैं, "क़ियामत के दिन एक हाकिम लाया जाएगा जिसने हद (ख़ुदा की तय की हुई सज़ा) में से एक कोड़ा कम कर दिया था। पूछा जाएगा कि यह हरकत तूने क्यों की थी? वह कहेगा, आपके बन्दों पर रहम खाकर। कहा जाएगा, अच्छा तो तू उनके लिए मुझसे ज़्यादा रहीम (रहम करनेवाला) था! फिर हुक्म होगा, ले जाओ इसे जहन्नम में। एक और हाकिम लाया जाएगा जिसने हद (सज़ा) पर एक कोड़े का इज़ाफ़ा कर दिया था। पूछा जाएगा, तूने यह किस लिए किया था? वह कहेगा, ताकि लोग आपकी नाफ़रमानियों से बचें रहें। कहा जाएगा, अच्छा तू उनके मामले में मुझसे ज़्यादा हिकमतवाला था! फिर हुक्म होगा, ले जाओ इसे जहन्नम में।" (तफ़सीर कबीर, हिस्सा-6, पेज-225)

यह तो उस सूरत में है जबकि घटाने-बढ़ाने का काम रहम या मस्लहत की बुनियाद पर हो। लेकिन अगर कहीं अहकाम में रद्दो-बदल मुजरिमों के मर्तबे की बुनियाद पर होने लगे तो फिर यह एक इन्तिहाई बुरा जुर्म है। बुख़ारी और मुस्लिम में हज़रत आइशा (रज़ि.) की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने ख़ुतबे में फ़रमाया, "लोगो! तुमसे पहले जो उम्मतें गुज़री हैं वे हलाक हो गईं, इसलिए कि जब उनमें कोई इज़्ज़तवाला चोरी करता तो वे उसे छोड़ देते थे और जब कोई कमज़ोर आदमी चोरी करता तो उसपर हद (सज़ा) जारी करते थे।" एक और रिवायत में है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "एक सज़ा जारी करना ज़मीन पर रहनेवालों के लिए चालीस दिन की बारिश से ज़्यादा फ़ायदेमन्द है।" (हदीस : नसई और इब्ने-माजा)

क़ुरआन के कुछ आलिमों ने इस आयत का मतलब यह लिया है कि मुजरिम को जुर्म साबित

وَلْيَشْهَدْ عَذَابَهُمَا طَآئِفَةٌ مِّنَ الْمُؤْمِنِيْنَ ۝٢ اَلزَّانِيْ لَا يَنْكِحُ اِلَّا زَانِيَةً
اَوْ مُشْرِكَةً ۫ وَّالزَّانِيَةُ لَا يَنْكِحُهَاۤ اِلَّا زَانٍ اَوْ مُشْرِكٌ ۚ وَحُرِّمَ ذٰلِكَ عَلَى

और उनको सज़ा देते वक़्त ईमानवालों का एक गरोह मौजूद रहे।[4]

(3) ज़िना (व्यभिचार) करनेवाला निकाह न करे मगर ज़िना करनेवाली औरत के साथ या शिर्क करनेवाली औरत के साथ; और ज़िना करनेवाली औरत के साथ निकाह न करे मगर ज़िना करनेवाला मर्द या मुशरिक मर्द; और यह हराम कर दिया गया है

होने के बाद छोड़ न दिया जाए और न सज़ा में कमी की जाए, बल्कि पूरे सौ कोड़े मारे जाएँ। और कुछ ने यह मतलब लिया है कि हल्की मार न मारी जाए जिसकी कोई तकलीफ़ ही मुजरिम महसूस न करे। आयत के अलफ़ाज़ में ये दोनों मतलब शामिल हैं, बल्कि सच तो यह है कि दोनों ही मुराद मालूम होते हैं। और इसके अलावा यह मुराद भी है कि ज़िना करनेवाले को वही सज़ा दी जाए जो अल्लाह ने तय की है, उसे किसी और सज़ा से न बदल दिया जाए। कोड़ों के बजाय कोई और सज़ा देना अगर रहम और हमदर्दी की वजह से हो तो गुनाह है, और अगर इस ख़याल की बुनियाद पर हो कि कोड़ों की सज़ा एक वहशियाना सज़ा है तो यह बिलकुल कुफ़्र है जो एक पल के लिए भी ईमान के साथ एक सीने में जमा नहीं हो सकता। ख़ुदा को ख़ुदा भी मानना और उसको (अल्लाह की पनाह) वहशी भी कहना सिर्फ़ उन्हीं लोगों के लिए मुमकिन है जो सबसे निचले दर्जे के मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) हैं।

4. यानी सज़ा एलानिया तौर पर आम लोगों के सामने दी जाए, ताकि एक तरफ़ मुजरिम की रुसवाई हो और दूसरी तरफ़ आम लोगों को नसीहत। इससे सज़ा के बारे में इस्लामी नज़रिए पर साफ़ रौशनी पड़ती है। सूरा-5 माइदा में चोरी की सज़ा बयान करते हुए ख़ुदा ने फ़रमाया था, "उनके किए का बदला और अल्लाह की तरफ़ से जुर्म को रोकनेवाली सज़ा।" (आयत-38) और अब यहाँ हिदायत की जा रही है कि ज़िना करनेवाले को एलानिया तौर पर लोगों के सामने सज़ा दी जाए। इससे मालूम हुआ कि इस्लामी क़ानून में सज़ा के तीन मक़सद हैं। एक यह कि मुजरिम से उस ज़्यादती का बदला लिया जाए और उसको उस बुराई का मज़ा चखाया जाए जो उसने किसी दूसरे शख़्स या समाज के साथ की थी। दूसरा यह कि उसे दोबारा जुर्म करने से बाज़ रखा जाए। तीसरा यह कि उसकी सज़ा को एक सबक़ बना दिया जाए, ताकि समाज में जो दूसरे लोग बुरे रुझानात (प्रवृत्तियाँ) रखनेवाले हों, उनके दिमाग़ का ऑपरेशन हो जाए और वे इस तरह के किसी जुर्म की जुरअत न कर सकें। इसके अलावा एलानिया तौर पर सज़ा देने का एक फ़ायदा यह भी है कि इस सूरत में अधिकारी सज़ा देने में बेजा छूट या बेजा सख़्ती करने की कम ही जुरअत कर सकते हैं।

الْمُؤْمِنِيْنَ۝ وَالَّذِيْنَ يَرْمُوْنَ الْمُحْصَنٰتِ ثُمَّ لَمْ يَاْتُوْا بِاَرْبَعَةِ
شُهَدَآءَ فَاجْلِدُوْهُمْ ثَمٰنِيْنَ جَلْدَةً وَّلَا تَقْبَلُوْا لَهُمْ شَهَادَةً اَبَدًا ۚ

ईमानवालों पर।[5]

(4) और जो लोग पाकदामन औरतों पर तोहमत लगाएँ, फिर चार गवाह लेकर न आएँ, उनको अस्सी कोड़े मारो और उनकी गवाही कभी क़बूल न करो, और

---

5. यानी तौबा न करनेवाले ज़ानी (व्यभिचारी) के लिए अगर मुनासिब है तो ज़ानिया (व्यभिचारिणी) ही मुनासिब है, या फिर मुशरिक औरत। किसी नेक ईमानवाली औरत के लिए वह मुनासिब नहीं है, और हराम है ईमानवालों के लिए कि वे जानते-बूझते अपनी लड़कियाँ ऐसे बदकारों को दें। इसी तरह तौबा न करनेवाली ज़ानिया (व्यभिचारिणी) औरतों के लिए अगर मुनासिब हैं तो उन्हीं जैसे ज़ानी या फिर मुशरिक। किसी नेक ईमानवाले के लिए वे मुनासिब नहीं हैं, और हराम है ईमानवालों के लिए कि जिन औरतों की बदचलनी का हाल उन्हें मालूम हो उनसे वे जान-बूझकर निकाह करें। यह हुक्म उन्हीं मर्दों और औरतों के लिए है जो अपनी बुरी रविश पर क़ायम हों। जो लोग तौबा करके अपना सुधार कर लें, उनके लिए यह हुक्म नहीं है; क्योंकि तौबा और सुधार करने के बाद 'ज़ानी' (व्यभिचारी) होने की सिफ़त उनके साथ लगी नहीं रहती।

ज़ानी (व्यभिचारी) के साथ निकाह के हराम होने का मतलब इमाम अहमद-बिन-हंबल ने यह लिया है कि सिरे से निकाह का बन्धन बँधता ही नहीं। लेकिन सही यह है कि इससे मुराद सिर्फ़ मनाही है, न यह कि इस हुक्म के ख़िलाफ़ अगर कोई निकाह करे तो वह क़ानूनी तौर पर निकाह ही न हो और इस निकाह के बावजूद दोनों फ़रीक़ ज़ानी समझे जाएँ। नबी (सल्ल.) ने यह बात एक उसूल के तौर पर फ़रमाई है कि "हराम हलाल को हराम नहीं कर देता।" (हदीस : तबरानी, दारे-क़ुतनी) यानी एक ग़ैर-क़ानूनी काम किसी दूसरे क़ानूनी काम को ग़ैर-क़ानूनी नहीं बना देता। इसलिए किसी शख़्स के ज़िना का जुर्म करने से यह ज़रूरी नहीं हो जाता कि वह निकाह भी करे तो उसकी गिनती ज़िना ही में हो और निकाह के बन्धन का दूसरा फ़रीक़ जो बदकार नहीं है, वह भी बदकार ठहरे। उसूली तौर पर बग़ावत के सिवा कोई ग़ैर-क़ानूनी अमल अपने करनेवाले को क़ानून की हदों से बाहर (Outlaw) नहीं बना देता है कि फिर उसका कोई काम भी क़ानूनी न हो सके। इस चीज़ को निगाह में रखकर अगर आयत पर ग़ौर किया जाए तो अस्ल मक़सद साफ़ तौर पर यह मालूम होता है कि जिन लोगों की बदकारी जानी-मानी हो उनको निकाह के लिए चुनना एक गुनाह है जिससे ईमानवालों को परहेज़ करना चाहिए; क्योंकि इससे बदकारों की हिम्मत बढ़ती है, हालाँकि शरीअत उन्हें समाज का एक घिनावना और क़ाबिले-नफ़रत हिस्सा ठहराना चाहती है।

وَأُولَٰٓئِكَ هُمُ ٱلْفَٰسِقُونَ ۝٤ إِلَّا ٱلَّذِينَ تَابُوا۟ مِنۢ بَعْدِ ذَٰلِكَ

वे ख़ुद ही फ़ासिक़ (गुनाहगार) हैं, (5) सिवाय उन लोगों के जो इस हरकत के बाद तौबा

इसी तरह इस आयत से यह नतीजा भी नहीं निकलता कि मुस्लिम ज़ानी (व्यभिचारी) का निकाह मुशरिक औरत से, और मुस्लिम ज़ानिया (व्यभिचारिणी) का निकाह मुशरिक मर्द से सही है। इस आयत का मंशा अस्ल में यह बताना है कि ज़िना इतना ज़्यादा गन्दा काम है कि जो शख़्स मुसलमान होते हुए यह कर गुज़रे वह इस क़ाबिल नहीं रहता कि मुस्लिम समाज के पाक और भले लोगों से उसका रिश्ता हो। उसे या तो अपने ही जैसे ज़िना करनेवालों में जाना चाहिए, या फिर उन मुशरिकों में जो सिरे से अल्लाह के अहकाम पर यक़ीन ही नहीं रखते।
आयत के मक़सद को सही तौर से वे हदीसें बयान करती हैं जो इस सिलसिले में नबी (सल्ल.) से रिवायत हुई हैं। मुसनद अहमद और नसई में अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस (रज़ि.) की रिवायत है कि उम्मे-महज़ूल नाम की एक औरत थी जो जिस्म-फ़रोशी का पेशा करती थी। एक मुसलमान ने उससे निकाह करना चाहा और नबी (सल्ल.) से इजाज़त चाही। आप (सल्ल.) ने मना कर दिया और यही आयत पढ़ी। तिरमिज़ी और अबू-दाऊद में है कि मरसद-बिन-अबी-मरसद एक सहाबी थे जिनके इस्लाम लाने से पहले के ज़माने में मक्का की एक बदकार औरत इनाक़ से नाजाइज़ ताल्लुक़ात रह चुके थे। बाद में उन्होंने चाहा कि उससे निकाह कर लें और नबी (सल्ल.) से इजाज़त माँगी। दो बार पूछने पर आप (सल्ल.) चुप रहे। तीसरी बार फिर पूछा तो आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "ऐ मरसद, ज़िना करनेवाली या मुशरिक औरत से सिर्फ़ ज़ानी ही निकाह करता है, इसलिए तुम उससे निकाह न करो।" इसके अलावा बहुत-सी रिवायतें हज़रत अब्दुल्लाह- बिन-उमर (रज़ि.) और हज़रत अम्मार-बिन-यासिर (रज़ि.) से बयान हुई हैं कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "जो आदमी दय्यूस हो (यानी जिसे मालूम हो कि उसकी बीवी बदकार है और यह जानकर भी वह उसका शौहर बना रहे) वह जन्नत में दाख़िल नहीं हो सकता।" (हदीस : अहमद, नसई, अबू-दाऊद, तियालिसी) शैख़ैन यानी अबू-बक्र (रज़ि.) और उमर (रज़ि.) का तर्ज़े-अमल यह रहा है कि जो ग़ैर-शादीशुदा मर्द-औरत ज़िना के इलज़ाम में गिरफ़्तार होते, उनको वे पहले कोड़ों की सज़ा देते थे और फिर उन्हीं का आपस में निकाह कर देते थे। इब्ने-उमर (रज़ि.) की रिवायत है कि एक दिन एक आदमी बड़ी परेशानी की हालत में हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) के पास आया और कुछ इस तरह बात करने लगा कि उसकी ज़बान पूरी तरह खुलती न थी। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) ने हज़रत उमर (रज़ि.) से कहा कि इसे अलग ले जाकर मामला पूछो। हज़रत उमर (रज़ि.) के पूछने पर उसने बताया कि एक आदमी उसके घर मेहमान के तौर पर आया था, वह उसकी लड़की से जिस्मानी ताल्लुक़ बना बैठा। हज़रत उमर (रज़ि.) ने कहा, "तेरा बुरा हो, तूने अपनी लड़की का परदा ढाँक न दिया?" आख़िरकार लड़के और लड़की पर मुक़द्दमा क़ायम हुआ, दोनों पर हद (सज़ा) जारी की गई और फिर उन दोनों का आपस में निकाह करके हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) ने एक साल के लिए उनको शहर से निकाल दिया। ऐसे ही और कुछ वाक़िआत क़ाज़ी अबू-बक्र-बिन-अल-अरबी ने अपनी किताब अहकामुल-क़ुरआन में नक़्ल किए हैं। (हिस्सा-2, पेज-86)

وَاَصۡلَحُوۡا ۚ فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوۡرٌ رَّحِيۡمٌ ۝ وَالَّذِيۡنَ يَرۡمُوۡنَ اَزۡوَاجَهُمۡ

कर लें और सुधार कर लें कि अल्लाह ज़रूर (उनके हक़ में) बहुत माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।[6]

(6) और जो लोग अपनी बीवियों पर इलज़ाम लगाएँ और उनके पास ख़ुद उनके

6. इस हुक्म का मंशा यह है कि समाज में लोगों की आशनाइयों (प्रेम-प्रसंगों) और नाजाइज़ ताल्लुक़ात की चर्चाएँ बिलकुल बन्द कर दी जाएँ; क्योंकि इससे अनगिनत बुराइयाँ फैलती हैं और उनमें सबसे बड़ी बुराई यह है कि इस तरह ग़ैर-महसूस तरीक़े पर ज़िना को बढ़ावा देनेवाला एक आम माहौल बनता चला जाता है। एक शख़्स मज़े ले-लेकर किसी के सही या ग़लत, गन्दे वाक़िआत दूसरों के सामने बयान करता है। दूसरे उसमें नमक-मिर्च लगाकर और लोगों तक उन्हें पहुँचाते हैं, और साथ-साथ कुछ और लोगों के बारे में भी अपनी मालूमात या बदगुमानियाँ बयान कर देते हैं। इस तरह न सिर्फ़ यह कि शहवानी जज़्बात (कामुक भावनाओं) की एक आम हवा चल पड़ती है, बल्कि बुरे रुझान रखनेवाले मर्दों और औरतों को यह भी मालूम हो जाता है कि समाज में कहाँ-कहाँ उनके लिए क़िस्मत आज़माई के मौक़े मौजूद हैं। शरीअत इस चीज़ का रास्ता पहले ही क़दम पर रोक देना चाहती है। एक तरफ़ वह हुक्म देती है कि अगर कोई ज़िना करे और गवाहियों से उसका जुर्म साबित हो जाए तो उसको वह इन्तिहाई सज़ा दो जो किसी और जुर्म पर नहीं दी जाती। और दूसरी तरफ़ वह फ़ैसला करती है कि जो शख़्स किसी पर ज़िना का इलज़ाम लगाए वह या तो गवाहियों से अपना इलज़ाम साबित करे, वरना उसपर अस्सी कोड़े बरसा दो; ताकि आगे कभी वह अपनी ज़बान से ऐसी बात बिना सुबूत निकालने की जुरअत न करे। मान लीजिए, अगर इलज़ाम लगानेवाले ने किसी को अपनी आँखों से भी बदकारी करते देख लिया हो, तब भी उसे चुप रहना चाहिए और दूसरों तक उसे न पहुँचाना चाहिए, ताकि गन्दगी जहाँ है वहीं पड़ी रहे, आगे न फैल सके। अलबत्ता अगर उसके पास गवाह मौजूद हैं तो समाज में बेहूदा चर्चाएँ करने के बजाय मामला अधिकारियों के पास ले जाए और अदालत में मुलज़िम का जुर्म साबित करके उसे सज़ा दिलवा दे।

इस क़ानून को पूरी तरह समझने के लिए ज़रूरी है कि इसकी तफ़सीलात निगाह में रहें। इसलिए हम नीचे उनको यहाँ नम्बरवार बयान करते हैं—

(1) आयत में अलफ़ाज़ 'वल्लज़ी-न यरमू-न' इस्तेमाल हुए हैं जिनका मतलब है 'वे लोग जो इलज़ाम लगाएँ'। लेकिन मौक़ा-महल यह बताता है कि यहाँ इलज़ाम से मुराद हर तरह का इलज़ाम नहीं, बल्कि ख़ास तौर पर ज़िना का इलज़ाम है। पहले ज़िना का हुक्म बयान हुआ है और आगे 'लिआन' का हुक्म आ रहा है। इन दोनों के बीच इस हुक्म का आना साफ़ इशारा कर रहा है कि यहाँ 'इलज़ाम' से मुराद किस तरह का इलज़ाम है। फिर अलफ़ाज़ 'यरमूनल-मुहसनात' यानी 'इलज़ाम लगाएँ पाकदामन औरतों पर' से भी यह इशारा निकलता है कि मुराद वह इलज़ाम है जो पाकदामनी के ख़िलाफ़ हो। उसपर यह और कि इलज़ाम

लगानेवालों से अपने इलज़ाम के सुबूत में चार गवाह लाने की माँग की गई है जो पूरे इस्लामी क़ानून में सिर्फ़ ज़िना की गवाही में ज़रूरी होते हैं। इन इशारों की बुनियाद पर तमाम उम्मत के आलिम इस बात पर एक राय हैं कि इस आयत में सिर्फ़ ज़िना के इलज़ाम का हुक्म बयान हुआ है जिसके लिए मुस्लिम आलिमों ने 'क़ज़्फ़' की मुस्तक़िल इस्तिलाह (Term) तय कर दी है, ताकि दूसरे क़िस्म की तुहमतें लगाना (जैसे किसी को चोर, या शराबी, या सूद खानेवाला, या काफ़िर कह देना) इस हुक्म के दायरे में न आएँ। 'क़ज़्फ़' के सिवा दूसरी तुहमतों की सज़ा क़ाज़ी (हाकिम) ख़ुद तय कर सकता है, या हुकूमत की मजलिसे-शूरा (सलाहकार-समिति) ज़रूरत के मुताबिक़ उनके लिए तौहीन (मानहानि) और आम हैसियत की बहाली के लिए कोई आम क़ानून बना सकती है।

(2) आयत में अगरचे अलफ़ाज़ 'यर्मूनल-मुहसनाति' (पाकदामन औरतों पर इलज़ाम लगाएँ) इस्तेमाल हुए हैं, लेकिन फ़क़ीह लोग इस बात पर एक राय हैं कि हुक्म सिर्फ़ औरतों ही पर इलज़ाम लगाने तक महदूद नहीं है, बल्कि पाकदामन मर्दों पर भी इलज़ाम लगाने का यही हुक्म है। इसी तरह अगरचे इलज़ाम लगानेवालों के लिए 'अल्लज़ी-न यर्मून' मुज़क्कर (पुलिंग) का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है, लेकिन यह सिर्फ़ मर्दों ही के लिए ख़ास नहीं है, बल्कि औरतें भी अगर 'क़ज़्फ़' का जुर्म करें तो उनपर भी यही हुक्म लगेगा; क्योंकि जुर्म की संगीनी में झूठा इलज़ाम लगानेवाले या जिसपर यह इलज़ाम लगाया जाए, दोनों के मर्द या औरत होने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। लिहाज़ा क़ानून की शक्ल यह होगी कि जो मर्द या औरत भी किसी पाकदामन मर्द या औरत पर ज़िना का इलज़ाम लगाए उसका यह हुक्म है। (यह बात याद रहे कि यहाँ 'मुहसिन' और 'मुहसना' से मुराद शादीशुदा मर्द-औरत नहीं, बल्कि पाकदामन मर्द-औरत हैं)

(3) यह हुक्म सिर्फ़ उसी सूरत में लागू होगा जबकि इलज़ाम लगानेवाले ने पाकदामन मर्द या पाकदामन औरतों पर इलज़ाम लगाया हो। जो पाकदामन न हो, उसपर इलज़ाम लगाने की सूरत में यह हुक्म लागू नहीं हो सकता। बदचलन अगर बदकारी में मशहूर हो तब तो उसपर 'इलज़ाम' लगाने का सवाल ही पैदा नहीं होता, लेकिन अगर वह ऐसा न हो तो उसके ख़िलाफ़ बिना सुबूत इलज़ाम लगानेवाले के लिए क़ाज़ी ख़ुद सज़ा तय कर सकता है, या ऐसी सूरतों के लिए मजलिसे-शूरा ज़रूरत के मुताबिक़ क़ानून बना सकती है।

(4) 'क़ज़्फ़' (ज़िना के झूठे इलज़ाम) पर सज़ा वाजिब होने के लिए सिर्फ़ यह बात काफ़ी नहीं है कि किसी ने किसी पर बदकारी का बिना सुबूत इलज़ाम लगाया है, बल्कि उसके लिए कुछ शर्तें इलज़ाम लगानेवाले में और कुछ उसमें जिसपर इलज़ाम लगाया गया है और कुछ ख़ुद इस झूठे इलज़ाम लगाने की हरकत में पाई जानी ज़रूरी हैं।

झूठा इलज़ाम लगानेवाले में जो शर्तें पाई जानी चाहिएँ वे ये हैं— पहली यह कि वह बालिग़ हो। बच्चा अगर झूठा इलज़ाम लगाए तो उसे हाकिम अपनी समझ से कोई छोटी-मोटी सज़ा दे सकता है, मगर उसपर क़ुरआन और हदीस की बताई हुई सज़ा लागू नहीं की जा सकती। दूसरी यह कि वह सही-सलामत अक़्ल रखता हो। पागल को झूठे इलज़ाम लगाने की सज़ा नहीं दी जा सकती। इसी तरह हराम नशे के सिवा किसी दूसरी तरह के नशे की हालत में,

मसलन क्लोरोफ़ार्म के असर में इलज़ाम लगानेवाले को भी मुजरिम नहीं ठहराया जा सकता। तीसरी यह कि उसने अपने आज़ाद इरादे से (फ़ुक़हा की ज़बान में ताइअन) यह हरकत की हो। किसी की ज़बरस्ती करने से झूठा इलज़ाम लगानेवाला मुजरिम नहीं ठहराया जा सकता। चौथी यह कि झूठा इलज़ाम लगानेवाला जिसपर इलज़ाम लगा रहा है, उसका अपना बाप या दादा न हो; क्योंकि उनपर क़ज़्फ़ की सज़ा जारी नहीं की जा सकती। इनके अलावा हनफ़ी आलिमों के नज़दीक एक पाँचवीं शर्त यह भी है कि वह बोल सकता हो, गूँगा अगर इशारों में इलज़ाम लगाए तो उसपर क़ज़्फ़ की सज़ा वाजिब न होगी। लेकिन इमाम शाफ़िई को इससे इख़्तिलाफ़ है। वे कहते हैं कि अगर गूँगे का इशारा बिलकुल साफ़ और वाज़ेह हो जिसे देखकर हर आदमी समझ ले कि वह क्या कहना चाहता है तो वह काज़िफ़ (इलज़ाम लगानेवाला) है; क्योंकि उसका इशारा एक शख़्स को बदनाम और रुसवा कर देने में साफ़ और खुली-खुली बातों से किसी तरह कम नहीं है। इसके बरख़िलाफ़ हनफ़ी आलिमों के नज़दीक सिर्फ़ इशारे का साफ़ होना इतनी मज़बूत बुनियाद नहीं है कि इसकी बिना पर एक आदमी को 80 कोड़ों की सज़ा दे डाली जाए। वे इसपर सिर्फ़ ताज़ीर देते हैं, यानी हाकिम अपनी समझ से कोई और सज़ा दे सकता है।

जिसपर इलज़ाम लगाया गया हो उसको सज़ा देने के लिए उसमें जो शर्तें पाई जानी चाहिएँ वे ये हैं—

पहली शर्त यह है कि वह आक़िल हो, यानी उसपर अक़्ल की हालत में ज़िना करने का इलज़ाम लगाया गया हो। पागल पर (चाहे वह बाद में ठीक हो गया हो या न हुआ हो) इलज़ाम लगानेवाला क़ज़्फ़ की सज़ा का हक़दार नहीं है; क्योंकि पागल अपनी इज़्ज़त की हिफ़ाज़त का एहतिमाम नहीं कर सकता, और उसपर अगर ज़िना की गवाही क़ायम भी हो जाए तो न वह ज़िना की सज़ा का हक़दार होता है, न उसकी इज़्ज़त पर कोई दाग़ आता है। लिहाज़ा उसपर इलज़ाम लगानेवाला भी क़ज़्फ़ की सज़ा का हक़दार न होना चाहिए। लेकिन इमाम मालिक (रह.) और इमाम लैस-बिन-सअद कहते हैं कि मजनून (पागल) पर झूठा इलज़ाम लगानेवाला हद (सज़ा) का हक़दार है; क्योंकि बहरहाल वह एक बेसुबूत इलज़ाम लगा रहा है।

दूसरी शर्त यह है कि वह बालिग़ हो। यानी उसपर बालिग़ होने की हालत में ज़िना करने का इलज़ाम लगाया गया हो। बच्चे पर इलज़ाम लगाना, या जवान पर इस बात का इलज़ाम लगाना कि उसने बचपन में यह हरकत की थी, क़ज़्फ़ की सज़ा का हक़दार नहीं बना देता; क्योंकि पागल की तरह बच्चा भी अपनी इज़्ज़त की हिफ़ाज़त का एहतिमाम नहीं कर सकता, न उसे ज़िना की सज़ा दी जा सकती है, और न उसकी इज़्ज़त को बट्टा लगता है। लेकिन इमाम मालिक (रह.) कहते हैं कि बालिग़ होने के क़रीब-क़रीब उम्र के लड़के पर अगर ज़िना कर बैठने का इलज़ाम लगाया जाए तब तो इलज़ाम लगानेवाला सज़ा (सज़ा) का हक़दार नहीं है, लेकिन अगर ऐसी उम्र की लड़की पर ज़िना कराने का इलज़ाम लगाया जाए जिसके साथ सोहबत (संभोग) मुमकिन हो तो उसपर झूठा इलज़ाम लगानेवाला सज़ा का हक़दार है; क्योंकि इससे न सिर्फ़ लड़की बल्कि उसके ख़ानदान तक की इज़्ज़त पर दाग़

लगता है और लड़की का मुस्तक़बिल ख़राब हो जाता है।
तीसरी शर्त यह है कि वह मुसलमान हो, यानी उसपर इस्लाम में रहते हुए ज़िना करने का इलज़ाम लगाया गया हो। ग़ैर-मुस्लिम पर इलज़ाम या मुस्लिम पर यह इलज़ाम कि उसने कुफ़्र की हालत में ऐसा किया था, सज़ा पाने की वजह नहीं बन सकता।
चौथी शर्त यह है कि वह आज़ाद हो। लौंडी या ग़ुलाम पर इलज़ाम, या आज़ाद पर यह इलज़ाम कि उसने ग़ुलामी की हालत में यह हरकत की थी, सज़ा की वजह नहीं बन सकता; क्योंकि ग़ुलाम की बेबसी और कमज़ोरी यह इमकान पैदा कर देती है कि वह अपनी इज़्ज़त का एहतिमाम न कर सके। ख़ुद क़ुरआन में भी ग़ुलामी की हालत को एहसान (सुरक्षित होने) की हालत नहीं बताया गया है, चुनाँचे सूरा-4 निसा में 'मुहसनात' (सुरक्षित औरतें) का लफ़्ज़ लौंडी के मुक़ाबले में इस्तेमाल हुआ है। लेकिन दाऊद ज़ाहिरी इस दलील को नहीं मानते। वे कहते हैं कि लौंडी और ग़ुलाम पर झूठा इलज़ाम लगानेवाला भी सज़ा (सज़ा) का हक़दार है।
पाँचवीं शर्त यह है कि वह पाकबाज़ हो, यानी उसका दामन ज़िना और ज़िना जैसी दूसरी बातों से पाक हो। ज़िना से पाक होने का मतलब यह है कि उसपर पहले कभी ज़िना का जुर्म साबित न हो चुका हो। ज़िना जैसी बातों से पाक होने का मतलब यह है कि वह फ़ासिद निकाह, या ख़ुफ़िया निकाह, या वह मिलकियत जिसमें शक-शुब्हा पाया जाए, या निकाह के धोखे में सोहबत (संभोग) न कर चुका हो, न उसकी ज़िन्दगी के हालात ऐसे हों जिनमें उसपर बदचलनी और अपनी इज़्ज़त मिट्टी में मिला देने का इलज़ाम लग सकता हो, और न ज़िना से कमतर दर्जे की बद-अख़लाक़ियों का इलज़ाम उसपर पहले कभी साबित हो चुका हो; क्योंकि इन सब सूरतों में उसकी इज़्ज़त दाग़दार हो जाती है, और ऐसी दाग़दार इज़्ज़त पर इलज़ाम लगानेवाला 80 कोड़ों की सज़ा का हक़दार नहीं हो सकता, यहाँ तक कि अगर क़ज़्फ़ की सज़ा लागू होने से पहले इलज़ाम लगाए गए शख़्स के ख़िलाफ़ ज़िना के किसी जुर्म की गवाही क़ायम हो जाए, तब भी इलज़ाम लगानेवाला छोड़ दिया जाएगा; क्योंकि वह शख़्स पाकदामन न रहा जिसपर उसने इलज़ाम लगाया था। मगर इन पाँचों सूरतों में सज़ा (यानी क़ुरआन और हदीस की तय की हुई सज़ा) न होने का मतलब यह नहीं है कि पागल, या बच्चे, या ग़ैर-मुस्लिम, या ग़ुलाम, या दाग़दार दामनवाले आदमी पर बिना सुबूत ज़िना का इलज़ाम लगा देनेवाला किसी और सज़ा का हक़दार भी नहीं है।
अब वे शर्तें लीजिए जो ख़ुद झूठे इलज़ाम लगाने की हरकत में पाई जानी चाहिएँ। इस तरह के किसी इलज़ाम को दो चीज़ों में से कोई एक चीज़ क़ज़्फ़ (बुहतान) बना सकती है। या तो इलज़ाम लगानेवाले ने इलज़ाम लगाए गए शख़्स पर ऐसी सोहबत (रति-क्रिया) का इलज़ाम लगाया हो जो अगर गवाहियों से साबित हो जाए तो उसपर सज़ा वाजिब हो जाए जिसपर इलज़ाम लगाया है। या फिर उसने उस शख़्स को जिसपर इलज़ाम लगाया गया वलदुज़्ज़िना (नाजाइज़ औलाद) ठहराया हो। लेकिन दोनों सूरतों में इलज़ाम साफ़ और वाज़ेह होना चाहिए। इशारों का एतिबार नहीं है जिनसे ज़िना या ख़ानदान पर ताना कसना मुराद होने का दारोमदार इलज़ाम लगानेवाले की नीयत पर है। मिसाल के तौर पर किसी को

फ़ासिक़, फ़ाजिर, बदकार, बदचलन वग़ैरा अलफ़ाज़ से याद करना, या किसी औरत को रंडी, कस्बन, या छिनाल कहना, या किसी सैयद को पठान कह देना इशारा है जिससे खुले तौर पर झूठा इलज़ाम लगाना लाज़िम नहीं आता। इसी तरह जो अलफ़ाज़ सिर्फ़ गाली के तौर पर इस्तेमाल होते हैं, मसलन हरामी या हरामज़ादा वग़ैरा, उनको भी साफ़ तौर पर झूठा इलज़ाम नहीं ठहराया जा सकता। अलबत्ता 'तारीज़' के मामले में फ़क़ीहों के दरमियान इख़्तिलाफ़ है कि क्या वह भी क़ज़्फ़ (ज़िना का इलज़ाम) है या नहीं। मिसाल के तौर कहनेवाला किसी को मुख़ातब करके यूँ कहे कि "हाँ, मगर मैं तो ज़ानी (व्यभिचारी) नहीं हूँ", या "मेरी माँ ने तो ज़िना कराके मुझे नहीं जना है।" इमाम मालिक कहते हैं कि इस तरह की तारीज़ जिससे साफ़ समझ में आ जाए कि कहनेवाले की मुराद सामनेवाले को ज़ानी या ज़िना की पैदावार ठहराना है, क़ज़्फ़ है जिसपर सज़ा (सज़ा) वाजिब हो जाती है। लेकिन इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) और उनके असहाब और इमाम शाफ़िई (रह॰), सुफ़ियान सौरी, इब्ने-शुबरुमा और हसन-बिन-सॉलिह इस बात को मानते हैं कि तारीज़ में बहरहाल शक की गुंजाइश है और शक के साथ सज़ा जारी नहीं की जा सकती। इमाम अहमद (रह॰) और इसहाक़-बिन-राहवया कहते हैं कि तारीज़ अगर लड़ाई-झगड़े में हो तो क़ज़्फ़ है और हंसी-मज़ाक़ में हो तो क़ज़्फ़ नहीं है। चारों ख़लीफ़ा में से हज़रत उमर (रज़ि॰) और हज़रत अली (रज़ि॰) ने ताज़ीर पर सज़ा जारी की है। हज़रत उमर (रज़ि॰) के ज़माने में दो आदमियों के बीच गाली-गलौच हो गई। एक ने दूसरे से कहा, "न मेरा बाप बदकार था, न मेरी माँ बदकार थी।" मामला हज़रत उमर (रज़ि॰) के पास आया। उन्होंने वहाँ मौजूद लोगों से पूछा, आप लोग इससे क्या समझते हैं? कुछ लोगों ने कहा कि इसने अपने बाप और माँ की तारीफ़ की है, उसके माँ-बाप पर तो हमला नहीं किया। कुछ दूसरे लोगों ने कहा कि इसके लिए अपने माँ-बाप की तारीफ़ करने के लिए क्या यही अलफ़ाज़ रह गए थे? इन ख़ास अलफ़ाज़ को इस मौक़े पर इस्तेमाल करने से साफ़ मुराद यही है कि उसके माँ-बाप ज़ानी (बदकार) थे। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने दूसरे गरोह की बात को सही माना और सज़ा जारी कर दी। (अहकामुल-क़ुरआन, जस्सास, हिस्सा-3, पेज-330) इस बात में भी इख़्तिलाफ़ है कि अगर कोई शख़्स किसी मर्द पर यह इलज़ाम लगाता है कि उसने किसी दूसरे मर्द से जिस्मानी ताल्लुक़ बनाया है तो क्या यह क़ज़्फ़ है या नहीं। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) इसको क़ज़्फ़ नहीं मानते। इमाम अबू-यूसुफ़ (रह॰), इमाम मुहम्मद (रह॰), इमाम मालिक (रह॰) और इमाम शाफ़िई (रह॰) इसे क़ज़्फ़ ठहराते हैं और इसपर सज़ा का हुक्म लगाते हैं।

(5) क़ज़्फ़ (ज़िना का झूठा इलज़ाम लगाने) के जुर्म में क्या सरकार सज़ा दिलाने के लिए कार्रवाई कर सकती है या नहीं, इस बात में फ़क़ीहों के बीच इख़्तिलाफ़ है। इब्ने-अबी लैला कहते हैं कि यह अल्लाह का हक़ है, इसलिए झूठा इलज़ाम लगानेवाले पर बहरहाल सज़ा जारी की जाएगी, चाहे जिसपर इलज़ाम लगाया गया हो, वह शख़्स इसकी माँग करे या न करे। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) और उनके साथियों के नज़दीक यह इस मानी में तो अल्लाह का हक़ ज़रूर है कि जब जुर्म साबित हो जाए तो सज़ा जारी करना वाजिब है, लेकिन उसपर मुक़द्दमा चलाने का दारोमदार इलज़ाम का शिकार बने शख़्स की माँग पर है, और

इस लिहाज़ से यह आदमी का हक़ है। यही राय इमाम शाफ़िई (रह॰) और इमाम औज़ाई की भी है। इमाम मालिक के नज़दीक इसमें तफ़सील है। अगर हाकिम के सामने झूठा इलज़ाम लगाया जाए तो इस जुर्म में सरकार कार्रवाई करेगी और इसपर कार्रवाई करना उस शख़्स के मुतालबे का मुहताज नहीं है जिसपर इलज़ाम लगाया गया है।

(6) क़ज़्फ़ का जुर्म क़ाबिले-राज़ीनामा (Compoundable Offence) नहीं है। इलज़ाम का शिकार शख़्स अदालत में दावा लेकर न आए तो यह दूसरी बात है, लेकिन अदालत में मामला आ जाने के बाद इलज़ाम लगानेवाले को मजबूर किया जाएगा कि वह अपना इलज़ाम साबित करे, और साबित न होने की सूरत में उसपर सज़ा जारी की जाएगी। न अदालत उसको माफ़ कर सकती है और न ख़ुद इलज़ाम का शिकार शख़्स, न किसी माली जुर्माने पर मामला ख़त्म हो सकता है। न तौबा करके या माफ़ी माँगकर वह सज़ा से बच सकता है। नबी (सल्ल॰) की यह हिदायत पहले गुज़र चुकी है कि "हुदूद (सज़ाओं) को आपस ही में माफ़ कर दो, मगर जिस हद (सज़ा) का मामला मेरे पास पहुँच गया, वह फिर वाजिब हो गई।"

(7) हनफ़ी आलिमों के नज़दीक क़ज़्फ़ की सज़ा की माँग या तो ख़ुद इलज़ाम का शिकार बना शख़्स कर सकता है या फिर वह जिसके नसब (वंश) पर इससे बट्टा लगता हो और माँग करने के लिए ख़ुद इलज़ाम का शिकार शख़्स मौजूद न हो, जैसे बाप, माँ, औलाद और औलाद की औलाद। मगर इमाम मालिक (रह॰) और इमाम शाफ़िई (रह॰) के नज़दीक यह हक़ विरासत की तरह एक से दूसरे को पहुँच सकता है। इलज़ाम का शिकार शख़्स मर जाए तो उसका हर क़ानूनी वारिस सज़ा की माँग कर सकता है। अलबत्ता अजीब बात है कि इमाम शाफ़िई (रह॰) बीवी और शौहर को इससे अलग करते हैं और दलील यह है कि मौत के बाद मियाँ-बीवी का रिश्ता ख़त्म हो जाता है और बीवी या शौहर में से किसी एक पर इलज़ाम आने से दूसरे के नसब पर कोई आँच नहीं आती। हालाँकि दोनों ही दलीलें कमज़ोर हैं। सज़ा की माँग को विरासत के क़ाबिल मानकर यह कहना कि यह हक़ बीवी और शौहर को इसलिए नहीं पहुँचता कि मौत के साथ मियाँ-बीवी का रिश्ता ख़त्म हो जाता है ख़ुद क़ुरआन के ख़िलाफ़ है; क्योंकि क़ुरआन ने एक के मरने के बाद दूसरे को उसका वारिस ठहराया है। रही यह बात कि मियाँ-बीवी में से किसी एक पर इलज़ाम आने से दूसरे के नसब पर कोई आँच नहीं आती तो यह शौहर के मामले में चाहे सही हो, मगर बीवी के मामले में तो बिलकुल ग़लत है। जिसकी बीवी पर इलज़ाम रखा जाए उसकी तो पूरी औलाद का नसब शक के घेरे में आ जाता है। इसके अलावा यह ख़याल भी सही नहीं है कि क़ज़्फ़ की सज़ा सिर्फ़ नसब पर दाग़ लगने की वजह से वाजिब ठहराई गई है। नसब के साथ इज़्ज़त पर धब्बा लगना भी इसकी एक अहम वजह है, और एक शरीफ़ मर्द या औरत के लिए यह कुछ कम बेइज़्ज़ती नहीं है कि उसकी बीवी या उसके शौहर को बदकार ठहरा दिया जाए। लिहाज़ा अगर क़ज़्फ़ की सज़ा की माँग विरासत की तरह हो तो मियाँ-बीवी को इससे अलग करने की कोई मुनासिब वजह नहीं हो सकती।

(8) यह बात साबित हो जाने के बाद कि एक शख़्स ने ज़िना का झूठा इलज़ाम लगाया है जो

चीज़ उसे सज़ा से बचा सकती है वह सिर्फ़ यह है कि वह चार गवाह ऐसे लाए जो अदालत में यह गवाही दें कि उन्होंने इलज़ाम के शिकार शख़्स को फ़ुलाँ मर्द या फ़ुलाँ औरत के साथ अमली तौर से ज़िना करते देखा है। हनफ़ी आलिमों के नज़दीक ये चारों गवाह एक ही वक़्त में अदालत में आने चाहिएँ और उन्हें एक साथ गवाही देनी चाहिए; क्योंकि अगर ये एक के बाद एक आगे-पीछे आएँ तो उनमें से हर एक क़ाज़िफ़ (बेसुबूत इलज़ाम लगानेवाला) होता चला जाएगा और उसके लिए फिर चार गवाहों की ज़रूरत होगी। लेकिन यह एक कमज़ोर बात है। सही बात वही है जो इमाम शाफ़िई (रह.) और उसमान अल-बत्ती ने कही है कि गवाहों के एक साथ आने या अलग-अलग करके आने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, बल्कि ज़्यादा बेहतर यह है कि दूसरे मुक़द्दमों की तरह गवाह एक के बाद एक आए और गवाही दे।

हनफ़ी आलिमों के नज़दीक इन गवाहों का इनसाफ़-पसन्द होना ज़रूरी नहीं है। अगर इलज़ाम लगानेवाला चार फ़ासिक़ (ख़ुदा का नाफ़रमान) गवाह भी ले आए तो वह क़ज़्फ़ की सज़ा से बच जाएगा, और साथ ही इलज़ाम का शिकार शख़्स भी ज़िना की सज़ा से बचा रहेगा; क्योंकि गवाह आदिल (इनसाफ़ की बात कहनेवाले) नहीं हैं। अलबत्ता काफ़िर या अंधे, या ग़ुलाम, या क़ज़्फ़ के जुर्म में पहले के सज़ा पाए हुए गवाह पेश करके इलज़ाम लगानेवाला सज़ा से नहीं बच सकता। मगर इमाम शाफ़िई (रह.) कहते हैं कि इलज़ाम लगानेवाला अगर फ़ासिक़ गवाह पेश करे तो वह और उसके गवाह सब सज़ा के हक़दार होंगे। और यही राय इमाम मालिक की भी है। इस मामले में हनफ़ी आलिमों का मसलक ही सही से ज़्यादा क़रीब मालूम होता है। गवाह अगर आदिल (इनसाफ़ की बात कहनेवाले) हों तो इलज़ाम लगानेवाला झूठे इलज़ाम के जुर्म से बरी हो जाएगा और इलज़ाम के शिकार शख़्स पर ज़िना का जुर्म साबित हो जाएगा। लेकिन अगर गवाह आदिल न हों तो झूठा इलज़ाम लगानेवाले का झूठ और इलज़ाम के शिकार शख़्स के ज़िना का अमल, और गवाहों का सच और झूठ, सारी ही चीज़ें शक के घेरे में आ जाएँगी और शक की बुनियाद पर किसी को भी सज़ा का हक़दार न ठहराया जा सकेगा।

(9) जो शख़्स ऐसी गवाही पेश न कर सके जो उसे क़ज़्फ़ के जुर्म से बरी कर सकती हो, उसके लिए क़ुरआन ने तीन हुक्म साबित किए हैं : एक यह कि उसे 80 कोड़े लगाए जाएँ। दूसरा यह कि उसकी गवाही कभी न क़बूल की जाए। तीसरा यह कि वह फ़ासिक़ (अल्लाह का नाफ़रमान) है। इसके बाद क़ुरआन कहता है, "सिवाय उन लोगों के जो इसके बाद तौबा करें और सुधार कर लें कि अल्लाह बहुत माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।" यहाँ सवाल पैदा होता है कि इस जुमले में तौबा और सुधार से जिस माफ़ी का ज़िक्र किया गया है, उसका ताल्लुक़ इन तीनों हुक्मों में से किसके साथ है। फ़क़ीहों का इसपर इत्तिफ़ाक़ (मतैक्य) है कि पहले हुक्म से इसका ताल्लुक़ नहीं है, यानी तौबा से हद (सज़ा) ख़त्म न होगी और मुजरिम को कोड़ों की सज़ा बहरहाल दी जाएगी। फ़क़ीह इसपर भी एक राय हैं कि इस मानी का ताल्लुक़ आख़िरी हुक्म से है, यानी तौबा और सुधार कर लेने के बाद मुजरिम फ़ासिक़ न रहेगा और अल्लाह तआला उसे माफ़ कर देगा। (इस बात में इख़्तिलाफ़

सिर्फ़ इस पहलू से है कि क्या मुजरिम झूठा इलज़ाम लगाने ही से फ़ासिक़ होता है या अदालती फ़ैसला होने के बाद फ़ासिक़ ठहरता है। इमाम शाफ़िई (रह.) और लैस-बिन-सअद के नज़दीक वह इलज़ाम लगाने ही से फ़ासिक़ हो जाता है, इसलिए वे उसको उसी वक़्त से गवाही के नाक़ाबिल ठहरा देते हैं। इसके बरख़िलाफ़ इमाम अबू-हनीफ़ा (रह.) और उनके साथी और इमाम मालिक (रह.) कहते हैं कि वह अदालती फ़ैसला लागू हो जाने के बाद फ़ासिक़ होता है, इसलिए वह हुक्म लागू होने से पहले तक उसको गवाही देने लायक़ समझते हैं। लेकिन सच तो यह है कि मुजरिम का अल्लाह की नज़र में फ़ासिक़ होना झूठा इलज़ाम लगाने का नतीजा है और लोगों की नज़रों में फ़ासिक़ होने का दारोमदार इस बात पर है कि अदालत में उसका जुर्म साबित हो और वह सज़ा पा जाए।)

अब रह जाता है बीच का हुक्म, यानी यह कि "झूठा इलज़ाम लगानेवाले की गवाही कभी क़बूल न की जाए।" फ़क़ीहों के बीच इसपर बड़ा इख़्तिलाफ़ पाया जाता है कि "इल्लल्लज़ी-न ताबू" (सिवाय उन लोगों के जो तौबा कर लें) के जुमले का ताल्लुक़ इस हुक्म से भी है या नहीं। एक गरोह कहता है कि इस जुमले का ताल्लुक़ सिर्फ़ आख़िरी हुक्म से है, यानी जो शख़्स तौबा और सुधार कर लेगा वह अल्लाह और लोगों के नज़दीक फ़ासिक़ न रहेगा, लेकिन पहले दोनों हुक्म इसके बावजूद बाक़ी रहेंगे, यानी मुजरिम पर सज़ा भी जारी की जाएगी और वह हमेशा के लिए गवाही देने के क़ाबिल न रहेगा। इस गरोह में क़ाज़ी शुरैह, सईद-बिन-मसय्यब, सईद-बिन-जुबैर हसन बसरी, इबराहीम नख़ई, इब्ने-सीरीन, मकहूल, अब्दुर्रहमान-बिन-ज़ैद, अबू-हनीफ़ा, अबू-यूसुफ़, ज़ुफ़र, मुहम्मद, सुफ़ियान सौरी और हसन-बिन-सॉलिह जैसे बड़े आलिम लोग शामिल हैं। दूसरा गरोह कहता है कि "इल्लल्लज़ी-न ताबू" का ताल्लुक़ पहले हुक्म से तो नहीं है, मगर आख़िरी दोनों हुक्मों से है, यानी तौबा के बाद झूठे इलज़ाम पर सज़ा पानेवाले मुजरिम की गवाही भी क़बूल की जाएगी और वह फ़ासिक़ भी न समझा जाएगा। इस गरोह में अता, ताऊस, मुजाहिद, शअबी, क़ासिम-बिन-मुहम्मद, सालिम, ज़ुहरी, इक्रिमा, उमर-बिन-अज़ीज़, इब्ने-अबी-नुजैह, सुलैमान-बिन-यसार, मसरूक़, ज़ह्हाक, मालिक-बिन-अनस, उसमान अल-बत्ती, लैस-बिन-सअद, शाफ़िई, अहमद-बिन- हंबल और इब्ने-जरीर तबरी जैसे बुज़ुर्ग शामिल हैं। ये लोग अपनी ताईद में दूसरी दलीलों के साथ हज़रत उमर (रज़ि.) के उस फ़ैसले को भी पेश करते हैं जो उन्होंने मुग़ीरा-बिन-शोबा के मुक़द्दमे में किया था, क्योंकि उसकी कुछ रिवायतों में यह ज़िक्र है कि सज़ा जारी करने के बाद हज़रत उमर (रज़ि.) ने अबू-बकरा और उनके दोनों साथियों से कहा, "अगर तुम तौबा कर लो (या 'अपना झूठ क़बूल कर लो') तो मैं आगे तुम्हारी गवाही क़बूल करूँगा वरना नहीं।" दोनों साथियों ने इक़रार कर लिया, मगर अबू-बकरा अपनी बात पर अड़े रहे। बज़ाहिर यह एक बड़ी मज़बूत ताईद मालूम होती है, लेकिन मुग़ीरा-बिन-शोबा के मुक़द्दमे की रूदाद हम पहले लिख चुके हैं। उसपर ग़ौर करने से साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि उस मिसाल से इस मामले में दलील लेना दुरुस्त नहीं है। वहाँ इस बात पर सब एक राय थे कि हमबिस्तरी की हरकत तो हुई है और ख़ुद मुग़ीरा-बिन-शोबा को भी उससे इनकार न था। बहस इसमें थी कि औरत कौन थी। मुग़ीरा-बिन-शोबा कहते

थे कि वह उनकी अपनी बीवी थीं जिन्हें ये लोग उम्मे-जमील समझ बैठे। साथ ही यह बात भी साबित हो गई थी कि हज़रत मुग़ीरा की बीवी और उम्मे-जमील आपस में इतनी ज़्यादा मिलती-जुलती थीं कि वाक़िआ जितनी रौशनी में जितने फ़ासले से देखा गया उसमें यह ग़लतफ़हमी हो सकती थी कि औरत उम्मे-जमील है। मगर इशारे सारे के सारे मुग़ीरा-बिन-शोबा के हक़ में थे और ख़ुद इस्तिग़ासे का भी एक गवाह इक़रार कर चुका था कि औरत साफ़ नज़र न आती थी। इसी वजह से हज़रत उमर (रज़ि.) ने मुग़ीरा के हक़ में फ़ैसला दिया और अबू-बकरा को सज़ा देने के बाद वह बात कही जो ऊपर बयान की गई रिवायतों में बयान हुई है। इन हालात को देखते हुए साफ़ मालूम होता है कि हज़रत उमर (रज़ि.) का मंशा अस्ल में यह था कि तुम लोग मान लो कि तुमने बेवजह बदगुमानी की थी और आगे के लिए ऐसी बदगुमानियों की बुनियाद पर लोगों के ख़िलाफ़ इलज़ाम लगाने से तौबा करो, वरना आइन्दा तुम्हारी गवाही कभी क़बूल न की जाएगी। इससे यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि जो शख़्स साफ़ झूठा साबित हो जाए वह भी हज़रत उमर (रज़ि.) के नज़दीक तौबा करके गवाही के क़ाबिल हो सकता था। हक़ीक़त यह है कि इस मसले में पहले गरोह ही की राय ज़्यादा वज़नी है। आदमी की तौबा का हाल ख़ुदा के सिवा कोई नहीं जान सकता। हमारे सामने जो शख़्स तौबा करेगा हम उसे इस हद तक रिआयत दे सकते हैं कि उसे फ़ासिक़ के नाम से याद न करें, लेकिन इस हद तक रिआयत नहीं दे सकते कि जिसकी ज़बान का एतिबार एक बार जाता रहा है, उसपर फिर सिर्फ़ इसलिए एतिबार करने लगें कि वह हमारे सामने तौबा कर रहा है। इसके अलावा ख़ुद क़ुरआन की इबारत का अन्दाज़े-बयान भी यही बता रहा है कि "सिवाय उनके जो तौबा कर लें" का ताल्लुक़ सिर्फ़ "उलाइ-क हुमुल-फ़ासिक़ून" (वे ख़ुद ही गुनाहगार हैं) से है। इसलिए कि इबारत में पहली दो बातें हुक्म के अलफ़ाज़ में कही गई हैं, "उनको अस्सी (80) कोड़े मारो" और "उनकी गवाही कभी क़बूल न करो।" और तीसरी बात ख़बर के अलफ़ाज़ में कही गई है, "वे ख़ुद ही फ़ासिक़ हैं।" इस तीसरी बात के बाद फ़ौरन यह फ़रमाना कि "सिवाय उन लोगों के जो तौबा कर लें" ख़ुद ज़ाहिर कर देता है कि यह इस्तिसना (अपवाद) आख़िरी जुमले से जो ख़बर के तौर पर कहा गया है, ताल्लुक़ रखता है, न कि पहले दो हुक्मी (आदेशात्मक) जुमलों से। फिर भी अगर यह मान लिया जाए कि यह इस्तिसना आख़िरी जुमले तक महदूद नहीं है तो फिर कोई वजह समझ में नहीं आती कि वह "गवाही क़बूल न करो" के जुमले तक पहुँचकर रुक कैसे गया, "अस्सी कोड़े मारो" के जुमले तक भी क्यों न पहुँच गया।

(10) सवाल किया जा सकता है कि "इल्लल्लज़ी-न ताबू" (सिवाय उनके जो तौबा कर लें) का इस्तिसना आख़िर पहले हुक्म से भी मुताल्लिक़ क्यों न मान लिया जाए? क़ज़्फ़ आख़िर एक तरह की तौहीन ही तो है। एक आदमी उसके बाद अपना क़ुसूर मान ले जिसपर झूठा इलज़ाम लगाया उससे माफ़ी माँग ले और आगे के लिए इस हरकत से तौबा कर ले तो आख़िर क्यों न उसे छोड़ दिया जाए जबकि अल्लाह तआला ख़ुद हुक्म बयान करने के बाद फ़रमा रहा है कि "सिवाय उन लोगों के जो इस हरकत के बाद तौबा कर लें और सुधार

कर लें कि अल्लाह ज़रूर (उनके हक़ में) बहुत माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।" यह तो एक अजीब बात होगी कि अल्लाह माफ़ कर दे और बन्दे माफ़ न करें। इसका जवाब यह है कि तौबा अस्ल में सिर्फ़ ज़बान से कह देने का नाम नहीं है, बल्कि दिल में शर्मिन्दगी के एहसास और सुधार के पक्के इरादे और भलाई की तरफ़ पलटने का नाम है, और इस चीज़ का हाल अल्लाह के सिवा कोई नहीं जान सकता। इसी लिए तौबा से दुनियावी सज़ाएँ माफ़ नहीं होतीं, बल्कि सिर्फ़ आख़िरत में मिलनेवाली सज़ा माफ़ होती है, और इसी लिए अल्लाह तआला ने यह नहीं फ़रमाया कि अगर वे तौबा कर लें तो तुम उन्हें छोड़ दो, बल्कि यह फ़रमाया है कि जो लोग तौबा कर लेंगे मैं उनके लिए माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला हूँ। अगर तौबा से दुनियावी सज़ाएँ भी माफ़ होने लगें तो आख़िर वह कौन-सा मुजरिम है जो सज़ा से बचने के लिए तौबा न कर लेगा?

(11) यह भी सवाल किया जा सकता है कि एक शख़्स का अपने इलज़ाम के सुबूत में गवाही न ला सकना लाज़िमी तौर से यही मतलब तो नहीं रखता कि वह झूठा हो। क्या यह मुमकिन नहीं है कि उसका इलज़ाम सचमुच सही हो और वह सुबूत जुटाने में नाकाम रहे? फिर क्या वजह है कि उसे सिर्फ़ सुबूत न दे सकने की बुनियाद पर फ़ासिक़ (गुनहगार) ठहराया जाए, और वह भी लोगों के नज़दीक ही नहीं, अल्लाह के नज़दीक भी? इसका जवाब यह है कि एक शख़्स ने अगर अपनी आँखों से भी किसी को बदकारी करते देख लिया हो, फिर भी वह उसकी चर्चा करने और गवाही के बिना उसपर इलज़ाम लगाने में गुनहगार है। अल्लाह की शरीअत यह नहीं चाहती कि एक शख़्स अगर एक कोने में गन्दगी लिए बैठा हो तो दूसरा शख़्स उसे उठाकर सारे समाज में फैलाना शुरू कर दे। इस गन्दगी की मौजूदगी की अगर उसको जानकारी है तो उसके लिए दो ही रास्ते हैं। या उसको जहाँ वह पड़ी है, वहीं पड़ी रहने दे या फिर उसकी मौजूदगी का सुबूत दे; ताकि इस्लामी हुकूमत के अधिकारी उसे साफ़ कर दें। इन दो रास्तों के सिवा कोई तीसरा रास्ता उसके लिए नहीं है। अगर वह पब्लिक में उसकी चर्चा करेगा तो महदूद गन्दगी को बड़े पैमाने पर फैलाने का मुजरिम होगा और अगर वह क़ाबिले-इत्मीनान गवाही के बिना अधिकारियों तक मामला ले जाएगा तो अधिकारी उस गन्दगी को साफ़ न कर सकेंगे। नतीजा इसका यह होगा कि इस मुक़द्दमे की नाकामी गन्दगी फैलने की वजह भी बनेगी और बदकारों में जुरअत भी पैदा कर देगी। इसी लिए सुबूत और गवाही के बिना ज़िना का इलज़ाम लगानेवाला बहरहाल गुनहगार है, चाहे वह अपनी जगह सच्चा ही क्यों न हो।

(12) क़ज़्फ़ की सज़ा के बारे में हनफ़ी फ़क़ीहों की राय यह है कि झूठा इलज़ाम लगानेवाले को बदकार के मुक़ाबले हलकी मार मारी जाए। यानी कोड़े तो अस्सी (80) ही हों, मगर चोट इतनी सख़्त न होनी चाहिए जितनी ज़िना करनेवाले को लगाई जाती है। इसलिए कि जिस इलज़ाम के क़ुसूर में उसे सज़ा दी जा रही है उसमें उसका झूठा होना बहरहाल यक़ीनी नहीं है।

(13) ज़िना (व्यभिचार) का झूठा इलज़ाम बार-बार लगाने के बारे में हनफ़ी उलमा और दूसरे ज़्यादातर फ़क़ीहों की राय यह है कि इलज़ाम लगानेवाले ने सज़ा पाने से पहले या सज़ा के

وَلَمْ يَكُنْ لَّهُمْ شُهَدَآءُ اِلَّآ اَنْفُسُهُمْ فَشَهَادَةُ اَحَدِهِمْ اَرْبَعُ
شَهٰدٰتٍۭ بِاللّٰهِ ۙ اِنَّهٗ لَمِنَ الصّٰدِقِيْنَ ۞ وَالْخَامِسَةُ اَنَّ لَعْنَتَ اللّٰهِ

अपने सिवा दूसरे कोई गवाह न हों तो उनमें से एक शख़्स की गवाही (यह है कि वह) चार बार अल्लाह की क़सम खाकर गवाही दे कि वह (अपने इलज़ाम में) सच्चा है (7) और पाँचवीं बार कहे कि उसपर अल्लाह की लानत हो अगर वह (अपने इलज़ाम

दौरान में चाहे कितनी ही बार एक शख़्स पर इलज़ाम लगाया हो, उसपर एक ही सज़ा जारी की जाएगी। और अगर सज़ा जारी होने के बाद वह अपने पिछले इलज़ाम ही को दोहराता रहे तो जो सज़ा उसे दी जा चुकी है वही काफ़ी होगी। अलबत्ता अगर सज़ा जारी करने के बाद वह उस आदमी पर ज़िना का एक नया इलज़ाम लगा दे तो फिर नए सिरे से मुक़द्दमा क़ायम किया जाएगा। मुग़ीरा-बिन-शोबा के मुक़द्दमे में सज़ा पाने के बाद अबू-बकरा खुल्लम-खुल्ला कहते रहे कि "मैं गवाही देता हूँ कि मुग़ीरा ने ज़िना किया था।" हज़रत उमर (रज़ि.) ने इरादा किया कि उनपर फिर मुक़द्दमा क़ायम करें। मगर चूँकि वे पिछला इलज़ाम ही दोहरा रहे थे, इसलिए हज़रत अली (रज़ि.) ने राय दी कि इसपर दूसरा मुक़द्दमा नहीं चलाया जा सकता, और हज़रत उमर (रज़ि.) ने उनकी राय क़बूल कर ली। इसके बाद फ़क़ीह इस बात पर लगभग एक राय हो गए कि सज़ा पाए हुए क़ाज़िफ़ (बेसुबूत इलज़ाम लगानेवाले) को सिर्फ़ नए इलज़ाम ही पर पकड़ा जा सकता है, पिछले इलज़ाम के दोहराने पर नहीं।

(14) कई लोगों पर ज़िना का इलज़ाम लगाने के मामले में फ़क़ीहों के बीच इख़्तिलाफ़ है। हनफ़ी उलमा कहते हैं कि अगर एक शख़्स बहुत-से लोगों पर भी इलज़ाम लगाए, चाहे एक लफ़्ज़ में या अलग-अलग अलफ़ाज़ में तो उसपर एक ही सज़ा लगाई जाएगी सिवाय इसके कि सज़ा लगने के बाद वह फिर किसी पर नया इलज़ाम लगाए। इसलिए कि आयत के अलफ़ाज़ ये हैं, "जो लोग पाकदामन औरतों पर इलज़ाम लगाएँ।" इससे मालूम हुआ कि एक शख़्स ही नहीं, एक जमाअत पर इलज़ाम लगानेवाला भी सिर्फ़ एक ही सज़ा का हक़दार होता है। और इसलिए भी कि ज़िना का कोई इलज़ाम ऐसा नहीं हो सकता जो कम-से-कम दो लोगों (मर्द-औरत) पर न लगता हो। मगर इसके बावजूद अल्लाह ने एक ही सज़ा का हुक्म दिया, औरत पर इलज़ाम के लिए अलग और मर्द पर इलज़ाम के लिए अलग सज़ा का हुक्म नहीं दिया। इसके बरख़िलाफ़ इमाम शाफ़िई (रह.) कहते हैं कि एक जमाअत पर इलज़ाम लगानेवाला चाहे एक लफ़्ज़ में इलज़ाम लगाए या अलग-अलग अलफ़ाज़ में, उसपर हर शख़्स के लिए अलग-अलग पूरी सज़ा दी जाएगी। यही राय उसमान अल-बत्ती की भी है। और इब्ने-अबी-लैला का क़ौल (कथन) जिसमें शअबी और औज़ाई भी उनके साथ हैं, यह है कि एक लफ़्ज़ में पूरी जमाअत को ज़ानी (व्यभिचारी) कहनेवाला एक सज़ा का हक़दार है, और अलग-अलग अलफ़ाज़ में हर एक को कहनेवाला हर एक के लिए अलग सज़ा का हक़दार।

عَلَيْهِ إِنْ كَانَ مِنَ الْكٰذِبِيْنَ ۞٧ وَيَدْرَؤُا عَنْهَا الْعَذَابَ أَنْ تَشْهَدَ
أَرْبَعَ شَهٰدٰتٍۭ بِاللّٰهِ ۙ إِنَّهُ لَمِنَ الْكٰذِبِيْنَ ۞٨ وَالْخَامِسَةَ
أَنَّ غَضَبَ اللّٰهِ عَلَيْهَآ إِنْ كَانَ مِنَ الصّٰدِقِيْنَ ۞٩ وَلَوْلَا
فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَتُهُ وَأَنَّ اللّٰهَ تَوَّابٌ حَكِيْمٌ ۞١٠ ع

में) झूठा हो। (8) और औरत से सज़ा इस तरह टल सकती है कि वह चार बार अल्लाह की क़सम खाकर गवाही दे कि यह शख़्स (अपने इलज़ाम में) झूठा है (9) और पाँचवीं बार कहे कि उस बन्दी पर अल्लाह का ग़ज़ब (प्रकोप) टूटे अगर वह (अपने इलज़ाम में) सच्चा हो।[7] (10) तुम लोगों पर अल्लाह की मेहरबानी और उसका रहम न होता और यह बात न होती कि अल्लाह बड़ा तौबा क़बूल करनेवाला और हिकमतवाला है, (तो बीवियों पर इलज़ाम का मामला तुम्हें बड़ी उलझन में डाल देता)।

---

7. ये आयतें पिछली आयतों के कुछ मुद्दत बाद उतरी हैं। क़ज़्फ़ की सज़ा का हुक्म जब उतरा तो लोगों में यह सवाल पैदा हो गया कि ग़ैर-मर्द और औरत की बदचलनी देखकर तो आदमी सब्र कर सकता है, गवाह मौजूद न हों तो ज़बान पर ताला लगा ले और मामले को अनदेखा कर दे। लेकिन अगर वह ख़ुद अपनी बीवी की बदचलनी देख ले तो क्या करे? क़त्ल कर दे तो उलटा सज़ा का हक़दार ठहरे। गवाह ढूँढ़ने जाए तो उनके आने तक मुजरिम कब ठहरा रहेगा? सब्र करे तो आख़िर कैसे करे? तलाक़ देकर औरत को विदा कर सकता है, मगर इस तरह न उस औरत को किसी तरह की जिस्मानी या अख़लाक़ी सज़ा मिलेगी, न उसके आशना को। और अगर उसे नाजाइज़ हमल ठहरा हो तो ग़ैर का बच्चा अलग गले पड़ा, यह सवाल शुरू में तो हज़रत सअद-बिन-उबादा ने एक फ़र्ज़ी सवाल की हैसियत से पेश किया और यहाँ तक कह दिया कि मैं अगर, ख़ुदा न करे, अपने घर में यह मामला देखूँ तो गवाहों की तलाश में नहीं जाऊँगा, बल्कि तलवार से उसी वक़्त मामला तय कर दूँगा (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम), लेकिन थोड़ा ही वक़्त बीता था कि कुछ ऐसे मुक़द्दमे अमली तौर पर पेश आ गए जिनमें शौहरों ने अपनी आँखों से यह मामला देखा और नबी (सल्ल.) के पास इसकी शिकायत ले गए। अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि.) और इब्ने-उमर (रज़ि.) की रिवायतें हैं कि अनसार में से एक शख़्स (शायद उवैमिर अजलानी) ने हाज़िर होकर अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल, अगर एक शख़्स अपनी बीवी के साथ ग़ैर-मर्द को पाए और मुँह से बात निकाले तो आप क़ज़्फ़ की सज़ा जारी कर देंगे, क़त्ल कर दे तो आप उसे क़त्ल की सज़ा देंगे, चुप रहे तो ग़ुस्से में मुब्तला रहे। आख़िर वह क्या करे? उसपर नबी ने दुआ की कि 'ऐ अल्लाह इस मसले का फ़ैसला फ़रमा' (हदीस : मुस्लिम, बुख़ारी, अबू-दाऊद, अहमद, नसई) इब्ने-अब्बास (रज़ि.) की रिवायत है कि

हिलाल-बिन-उमैया ने आकर अपनी बीवी का मामला पेश किया जिसे उन्होंने ख़ुद अपनी आँखों से बदकारी करते देखा था। नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "सुबूत लाओ वरना तुमपर क़ज़्फ़ की सज़ा जारी होगी।" सहाबा के बीच इसपर आम परेशानी फैल गई, और हिलाल ने कहा, उस ख़ुदा की क़सम! जिसने आपको नबी बनाकर भेजा है, मैं बिलकुल सही वाक़िआ बयान कर रहा हूँ जिसे मेरी आँखों ने देखा और कानों ने सुना है। मुझे यक़ीन है कि अल्लाह तआला मेरे मामले में ऐसा हुक्म उतारेगा जो मेरी पीठ कोड़ों से बचा देगा। इसपर यह आयत उतरी (हदीस : बुख़ारी, अहमद, अबू-दाऊद) इसमें मामला निबटाने का जो तरीक़ा बताया गया है उसे इस्लामी क़ानून की ज़बान में 'लिआन' कहा जाता है।

यह हुक्म आ जाने के बाद नबी (सल्ल.) ने जिन मुक़द्दमों का फ़ैसला फ़रमाया उनकी तफ़सीली रूदादें हदीस की किताबों में लिखी हैं और वहीं से लिआन के तफ़सीली क़ानून और कार्रवाई के तरीक़े लिए गए हैं।

हिलाल-बिन-उमैया के मुक़द्दमे की जो तफ़सीलात 'सिहाह सित्ता' (हदीस की छह भरोसेमन्द किताबें) और मुसनद अहमद और तफ़सीर इब्ने-जरीर में इब्ने-अब्बास (रज़ि.) और अनस-बिन-मालिक (रज़ि.) से रिवायत हुई हैं। उनमें बयान किया गया है कि इस आयत के उतरने के बाद हिलाल और उनकी बीवी, दोनों नबी (सल्ल.) की अदालत में हाज़िर किए गए। नबी (सल्ल.) ने पहले अल्लाह का हुक्म सुनाया। फिर फ़रमाया, "अच्छी तरह समझ लो कि आख़िरत का अज़ाब दुनिया के अज़ाब से ज़्यादा सख़्त चीज़ है।" हिलाल ने अर्ज़ किया, "मैंने इसपर बिलकुल सही इलज़ाम लगाया है।" औरत ने कहा, "यह बिलकुल झूठ है।" नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "अच्छा तो इन दोनों में आपस में 'लिआन' कराया जाए।" चुनाँचे पहले हिलाल उठे और उन्होंने क़ुरआनी हुक्म के मुताबिक़ क़समें खानी शुरू कीं। नबी (सल्ल.) इस बीच बार-बार फ़रमाते रहे, "अल्लाह को मालूम है कि तुममें से एक ज़रूर झूठा है। फिर क्या तुममें से कोई तौबा करेगा?" पाँचवीं क़सम से पहले वहाँ मौजूद लोगों ने हिलाल से कहा, "ख़ुदा से डरो, दुनिया का अज़ाब आख़िरत के अज़ाब से हलका है। यह पाँचवीं क़सम तुमपर अज़ाब वाजिब कर देगी।" मगर हिलाल ने कहा, "जिस ख़ुदा ने यहाँ मेरी पीठ बचाई है वह आख़िरत में भी मुझे अज़ाब नहीं देगा।" यह कहकर उन्होंने पाँचवीं क़सम भी खा ली। फिर औरत उठी और उसने भी क़समें खानी शुरू कीं। पाँचवीं क़सम से पहले उसे भी रोककर कहा गया कि "ख़ुदा से डर, आख़िरत के अज़ाब के मुक़ाबले में दुनिया का अज़ाब बरदाश्त कर लेना आसान है। यह आख़िरी क़सम तुझपर अल्लाह के अज़ाब को वाजिब कर देगी।" यह सुनकर वह कुछ देर रुकती और झिझकती रही। लोगों ने समझा कि वह अपना गुनाह क़बूल करना चाहती है। मगर फिर कहने लगी, "मैं हमेशा के लिए अपने क़बीले को रुसवा नहीं करूँगी।" और पाँचवीं क़सम भी खा गई। इसके बाद नबी (सल्ल.) ने दोनों के बीच जुदाई करा दी और फ़ैसला फ़रमाया कि "इसका बच्चा (जो उस वक़्त पेट में था) उसका ताल्लुक़ उसकी माँ से जोड़ा जाएगा, बाप का नहीं पुकारा जाएगा। किसी को इसपर या उसके बच्चे पर इलज़ाम लगाने का हक़ न होगा जो इसपर या इसके बच्चे पर इलज़ाम लगाएगा वह क़ज़्फ़ की सज़ा का हक़दार होगा और उसको इद्दत के ज़माने के ख़र्च और रहने की सुहूलत का कोई हक़ हिलाल

पर हासिल नहीं है, क्योंकि यह तलाक़ या मौत के बिना शौहर से अलग की जा रही है।" फिर आप (सल्ल.) ने लोगों से कहा कि इसके यहाँ जब बच्चा हो तो देखो वह किसपर गया है। अगर इस-इस शक्ल का हो तो हिलाल का है, और अगर उस सूरत का हो तो उस आदमी का है जिसके बारे में इसपर इलज़ाम लगाया गया है। बच्चा पैदा होने के बाद देखा गया कि वह दूसरे आदमी की शक्ल का था। इसपर नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "अगर क़समें न होतीं (या एक दूसरी रिवायत के मुताबिक़, अगर अल्लाह की किताब पहले ही फ़ैसला न कर चुकी होती) तो मैं इस औरत से बुरी तरह पेश आता।"

उवैमिर अजलानी के मुक़द्दमे की रूदाद सहल-बिन-सअद साइदी (रज़ि.) और इब्ने-उमर (रज़ि.) से बुख़ारी, मुस्लिम, अबू-दाऊद, नसई, इब्ने-माजा और मुसनद अहमद में मिलती है। उसमें बयान हुआ है कि उवैमिर और उनकी बीवी, दोनों मस्जिदे-नबवी में बुलाए गए। आपस में लिआन करने से पहले नबी (सल्ल.) ने उनको भी ख़बरदार करते हुए तीन बार फ़रमाया, "अल्लाह ख़ूब जानता है कि तुममें से एक ज़रूर झूठा है। फिर क्या तुममें से कोई तौबा करेगा?" जब किसी ने तौबा न की तो दोनों में लिआन कराया गया (यानी दोनों को क़समें दिलाई गईं) उसके बाद उवैमिर ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अब अगर मैं इस औरत को रखूँ तो झूठा हूँ।" यह कहकर उन्होंने तीन तलाक़ें दे दीं, बिना इसके कि नबी (सल्ल.) ने उनको ऐसा करने का हुक्म दिया होता। सहल-बिन-सअद कहते हैं कि इन तलाक़ों को नबी (सल्ल.) ने लागू कर दिया और उन दोनों के बीच जुदाई करा दी और फ़रमाया कि "यह जुदाई है हर ऐसे जोड़े के मामले में जो आपस में लिआन करे।" और सुन्नत यह क़ायम हो गई कि लिआन करनेवाले मियाँ-बीवी को जुदा कर दिया जाए, फिर ये दोनों कभी आपस में शादी नहीं कर सकते। मगर इब्ने-उमर सिर्फ़ इतना बयान करते हैं कि नबी (सल्ल.) ने उनके बीच जुदाई करा दी। सहल-बिन-सअद यह भी बयान करते हैं कि औरत के पेट में बच्चा था और उवैमिर ने कहा कि यह बच्चा मेरा नहीं है। इस बुनियाद पर बच्चे का ताल्लुक़ माँ से ठहराया गया और सुन्नत यह जारी हुई कि इस तरह का बच्चा माँ से मीरास पाएगा और माँ ही उससे मीरास पाएगी।

इन दोनों मुक़द्दमों के अलावा बहुत-सी रिवायतें हमको हदीस की किताबों में ऐसी भी मिलती हैं जिनमें यह साफ़ तौर से बयान नहीं किया गया है कि ये किन लोगों के मुक़द्दमों की हैं। हो सकता है कि उनमें से कुछ इन्हीं दोनों मुक़द्दमों से ताल्लुक़ रखती हों, मगर कुछ में कुछ दूसरे मुक़द्दमों का भी ज़िक्र है और उनसे लिआन के क़ानून के कुछ अहम बिन्दुओं पर रौशनी पड़ती है।

इब्ने-उमर एक मुक़द्दमे की रूदाद बयान करते हुए कहते हैं कि मियाँ-बीवी जब लिआन कर चुके तो नबी (सल्ल.) ने उनके बीच जुदाई करा दी (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, नसई, अहमद, इब्ने-जरीर) इब्ने-उमर की एक और रिवायत है कि एक आदमी और उसकी बीवी के बीच लिआन कराया गया। फिर उसने पेट में बच्चा होने से इनकार किया। नबी (सल्ल.) ने उनके बीच जुदाई करा दी और फ़ैसला फ़रमाया कि बच्चा सिर्फ़ माँ का होगा (हदीस : सिहाह सित्ता और अहमद) इब्ने-उमर ही की एक और रिवायत है कि आपस में लिआन के बाद नबी (सल्ल.)

ने फ़रमाया, "तुम्हारा हिसाब अब अल्लाह के ज़िम्मे है, तुममें से एक बहरहाल झूठा है।" फिर आप (सल्ल.) ने मर्द से फ़रमाया, "अब यह तेरी नहीं रही। न तू इसपर कोई हक़ जता सकता है, न किसी तरह की ज़्यादती या इन्तिक़ामी हरकत इसके ख़िलाफ़ कर सकता है।" मर्द ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! और मेरा माल (यानी वह महर तो मुझे दिलवाइए जो मैंने इसे दिया था)?" आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "माल वापस लेने का तुझे कोई हक़ नहीं है, अगर तूने इसपर सच्चा इलज़ाम लगाया है तो वह माल उस लज़्ज़त का बदल है जो तूने हलाल करके इससे उठाई, और अगर तूने इसपर झूठा इलज़ाम लगाया है तो माल तुझसे और भी ज़्यादा दूर चला गया। वह इसके मुक़ाबले तुझसे ज़्यादा दूर है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अबू-दाऊद)
दारे-क़ुतनी ने अली-बिन-अबी-तालिब (रज़ि.) और इब्ने-मसऊद (रज़ि.) का क़ौल (कथन) नक़्ल किया है, "सुन्नत यह मुक़र्रर हो चुकी है कि लिआन करनेवाले मियाँ-बीवी फिर कभी आपस में इकट्ठे नहीं हो सकते।" (यानी उनका दोबारा निकाह फिर कभी नहीं हो सकता) और दारे-क़ुतनी ही हज़रत अब्दुल्ला-बिन-अब्बास (रज़ि.) से रिवायत नक़्ल करते हैं कि नबी (सल्ल.) ने ख़ुद फ़रमाया है कि ये दोनों फिर कभी इकट्ठे नहीं हो सकते।
क़बीसा-बिन-ज़ुऐब की रिवायत है कि हज़रत उमर (रज़ि.) के ज़माने में एक आदमी ने अपनी बीवी के पेट के बच्चे को नाजाइज़ क़रार दिया। फिर मान लिया कि यह बच्चा उसका अपना है। फिर बच्चा जनने के बाद कहने लगा कि यह बच्चा मेरा नहीं है। मामला हज़रत उमर (रज़ि.) की अदालत में पेश हुआ। उन्होंने उसपर क़ज़्फ़ की सज़ा जारी की और फ़ैसला किया कि बच्चे का ताल्लुक़ उसी से जोड़ा जाएगा। (हदीस : दारे-क़ुतनी, बैहिक़ी)
इब्ने-अब्बास (रज़ि.) रिवायत करते हैं कि एक आदमी ने हाज़िर होकर अर्ज़ किया कि "मेरी एक बीवी है जो मुझे बहुत प्यारी है। मगर उसका हाल यह है कि किसी हाथ लगानेवाले का हाथ नहीं झटकती (वाज़ेह रहे कि यह इशारा था जिसका मतलब ज़िना भी हो सकता है और ज़िना से कमतर दर्जे की अख़लाक़ी कमज़ोरी भी) नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "तलाक़ दे दे।" उसने कहा, "मगर मैं उसके बिना नहीं रह सकता।" आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "तो उसे रखे रह।" (यानी आप सल्ल. ने उससे इस इशारे की तशरीह नहीं कराई और उसकी बात को ज़िना का इलज़ाम मानते हुए लिआन का हुक्म नहीं दिया।) (हदीस : नसई)
अबू-हुरैरा (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि एक आराबी (देहाती) ने हाज़िर होकर अर्ज़ किया, "मेरी बीवी ने काला लड़का जना है और मुझे नहीं लगता कि वह मेरा है।" (यानी सिर्फ़ लड़के के रंग ने उसे शक में डाला था वरना बीवी पर ज़िना का इलज़ाम लगाने के लिए उसके पास कोई और वजह न थी।) आप (सल्ल.) ने पूछा, "तेरे पास कुछ ऊँट तो होंगे?" उसने अर्ज़ किया, "हाँ," आप (सल्ल.) ने पूछा, "उनके रंग क्या हैं?" कहने लगा, 'सुर्ख़।' आप (सल्ल.) ने पूछा, "उनमें कोई मटमैला भी है?" कहने लगा, "हाँ, कुछ ऐसे भी हैं।" आप (सल्ल.) ने पूछा, "यह रंग कहाँ से आया?" कहने लगा, "शायद कोई रग खींच ले गई (यानी उनके बाप-दादा में से कोई इस रंग का होगा और उसी का असर उनमें आ गया)।" फ़रमाया, "शायद इस बच्चे को भी कोई रग खींच ले गई।" और आप (सल्ल.) ने उसे बच्चे का बाप होने से इनकार की इजाज़त न दी। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अहमद, अबू-दाऊद)

अबू-हुरैरा (रज़ि.) की एक रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने लिआनवाली आयत पर बात करते हुए फ़रमाया, "जो औरत किसी ख़ानदान में ऐसा बच्चा घुसा लाए जो उस ख़ानदान का नहीं है (यानी नाजाइज़ हमल को शौहर के सिर मढ़ दे), उसका अल्लाह से कुछ ताल्लुक़ नहीं। अल्लाह उसको जन्नत में हरगिज़ दाख़िल न करेगा, और जो मर्द अपने बच्चे का बाप होने से इनकार करे, हालाँकि बच्चा उसको देख रहा हो, अल्लाह क़ियामत के दिन उससे परदा करेगा और उसे तमाम अगले-पिछले इनसानों के सामने रुसवा कर देगा।" (हदीस : अबू-दाऊद, नसई, दारमी)

लिआनवाली आयत और ये रिवायतें और मिसालें और शरीअत के आम उसूल इस्लाम में लिआन के क़ानून के वे स्रोत हैं जिनकी रौशनी में फ़क़ीहों ने लिआन का तफ़सीली ज़ाब्ता बनाया है, जिसकी अहम दफ़आत (धाराएँ) ये हैं—

(1) जो आदमी अपनी बीवी की बदकारी देखे और लिआन का रास्ता अपनाने के बजाए बीवी से ज़िना करनेवाले को क़त्ल कर डाले, उसके बारे में इख़्तिलाफ़ है। एक गरोह कहता है कि उसे क़त्ल किया जाएगा; क्योंकि उसको अपने आप सज़ा जारी करने का हक़ न था। दूसरा गरोह कहता है कि उसे क़त्ल नहीं किया जाएगा और न उसकी इस हरकत पर कोई पकड़ होगी, बशर्ते उसका सच्चा होना साबित हो जाए (यानी यह कि उसने सचमुच ज़िना करने ही पर यह हरकत की)। इमाम अहमद और इसहाक़-बिन-राहवया कहते हैं कि उसे इस बात के दो गवाह लाने होंगे कि क़त्ल का सबब यही था। मालिकी आलिमों में से इब्नुल-क़ासिम और इब्ने-हबीब इसपर यह शर्त भी लगाते हैं कि ज़िना करनेवाला जिसे क़त्ल किया गया, वह शादीशुदा हो, वरना कुँआरे ज़ानी को क़त्ल करने पर उससे क़िसास लिया जाएगा। मगर आम फ़क़ीहों का मसलक यह है कि उसको क़िसास से सिर्फ़ उस सूरत में माफ़ किया जाएगा जबकि वह ज़िना के चार गवाह पेश करे, या क़त्ल होनेवाला मरने से पहले ख़ुद यह बात क़बूल कर चुका हो कि वह उसकी बीवी से ज़िना कर रहा था, और इसके अलावा यह कि क़त्ल होनेवाला शादीशुदा हो। (नैलुल-औतार, हिस्सा-6, पेज-228)

(2) लिआन घर बैठे आपस ही में नहीं हो सकता। इसके लिए अदालत में जाना ज़रूरी है।

(3) लिआन की माँग का हक़ सिर्फ़ मर्द ही के लिए नहीं है, बल्कि औरत भी अदालत में इसकी माँग कर सकती है जबकि शौहर उसपर बदकारी का इलज़ाम लगाए या उसके बच्चे का बाप मानने से इनकार करे।

(4) क्या लिआन हर मियाँ और बीवी के बीच हो सकता है या इसके लिए दोनों में कुछ शर्तें हैं? इस मसले में फ़क़ीहों के बीच इख़्तिलाफ़ पाया जाता है। इमाम शाफ़िई (रह.) कहते हैं कि जिसकी क़सम क़ानूनी हैसियत से भरोसेमन्द हो और जिसको तलाक़ देने का अधिकार हो वह लिआन कर सकता है, मानो उनके नज़दीक सिर्फ़ आक़िल और बालिग़ होना लिआन के लायक़ होने के लिए काफ़ी है, चाहे मियाँ-बीवी मुस्लिम हों या ग़ैर-मुस्लिम, गुलाम हों या आज़ाद, उनकी गवाही क़बूल की जाने लायक़ हों या न हों, और मुस्लिम शौहर की बीवी मुसलमान हो या ज़िम्मी। लगभग यही राय इमाम मालिक (रह.) और इमाम अहमद (रह.) की भी है। मगर हनफ़ी आलिम कहते हैं कि लिआन सिर्फ़ ऐसे आज़ाद मुसलमान मियाँ-बीवी ही में हो सकता है जो क़ज़्फ़ के जुर्म में सज़ा न पा चुके हों। अगर औरत और

मर्द दोनों ग़ैर-मुस्लिम हों, या ग़ुलाम हों, या क़ज़्फ़ के जुर्म में पहले सज़ा पा चुके हों तो उनके बीच लिआन नहीं हो सकता। इसके अलावा अगर औरत कभी इससे पहले हराम या मशकूक (संदिग्ध) तरीक़े पर किसी मर्द के साथ ताल्लुक़ जोड़ चुकी हो, तब भी लिआन दुरुस्त न होगा। ये शर्तें हनफ़ी आलिमों ने इस बुनियाद पर लगाई हैं कि उनके नज़दीक लिआन के क़ानून और क़ज़्फ़ के क़ानून में इसके सिवा कोई फ़र्क़ नहीं है कि ग़ैर आदमी अगर बेसुबूत इलज़ाम लगाता है तो उसके लिए सज़ा है और शौहर ऐसा करे तो वह लिआन करके छूट सकता है। बाक़ी तमाम हैसियतों से लिआन और क़ज़्फ़ एक ही चीज़ है। इसके अलावा हनफ़ी आलिमों के नज़दीक चूँकि लिआन की क़समें गवाही की हैसियत रखती हैं, इसलिए वे किसी ऐसे शख़्स को इसकी इजाज़त नहीं देते जो गवाही देने के लायक़ न हो। मगर हक़ीक़त यह है कि इस मसले में हनफ़ी आलिमों का मसलक कमज़ोर है और सही बात वही है जो इमाम शाफ़िई (रह०) ने फ़रमाई है।

इसकी पहली वजह यह है कि क़ुरआन ने बीवी के बारे में बेसुबूत इलज़ाम के मसले को क़ज़्फ़वाली आयत का एक हिस्सा नहीं बनाया है, बल्कि उसके लिए अलग से क़ानून बयान किया है। इसलिए उसको क़ज़्फ़ के क़ानून के तहत लाकर वे तमाम शर्तें उसमें शामिल नहीं की जा सकतीं जो क़ज़्फ के लिए मुक़र्रर की गई हैं। लिआनवाली आयत के अलफ़ाज़ क़ज़्फ़वाली आयत के अलफ़ाज़ से अलग हैं और दोनों अलग-अलग हुक्म हैं, इसलिए लिआन का क़ानून लिआनवाली आयत ही से निकालना चाहिए, न कि क़ज़्फ़वाली आयत से। मसलन क़ज़्फ़वाली आयत में सज़ा का हक़दार वह आदमी है जो पाकदामन औरतों (मुहसनात) पर इलज़ाम लगाए, लेकिन लिआनवाली आयत में पाकदामन बीवी की शर्त कहीं नहीं है। एक औरत चाहे कभी गुनहगार भी रही हो, अगर बाद में वह तौबा करके किसी आदमी से निकाह कर ले और फिर उसका शौहर उसपर बेवजह इलज़ाम लगाए तो लिआनवाली आयत यह नहीं कहती कि उस औरत पर तुहमत रखने की या उसकी औलाद के नसब से इनकार कर देने की शौहर को खुली छूट दे दो; क्योंकि उसकी ज़िन्दगी कभी दाग़दार रह चुकी है।

दूसरी और इतनी ही अहम वजह यह है कि बीवी पर ज़िना के इलज़ाम और अजनबी औरत पर ज़िना के इलज़ाम में ज़मीन और आसमान का फ़र्क़ है। इसलिए इन दोनों के बारे में क़ानून का मिज़ाज भी एक नहीं हो सकता। ग़ैर-औरत से आदमी का कोई ताल्लुक़ नहीं। न जज़्बात का, न इज़्ज़त का, न समाज का, न हक़ों का और न नस्ल और वंश का। उसके चाल-चलन से अगर एक आदमी को कोई बड़ी-से-बड़ी और अहम दिलचस्पी हो सकती है तो बस यह कि समाज को बद-अख़लाक़ी से पाक देखने का जोश उसपर चढ़ा हो। इसके बरख़िलाफ़ अपनी बीवी से आदमी का ताल्लुक़ एक तरह का नहीं, कई तरह का है और बहुत गहरा है। वह उसकी औलाद और उसके माल और उसके घर की अमानतदार है। उसकी ज़िन्दगी की साथी है। उसके राज़ों की हिफ़ाज़त करनेवाली है। उसके निहायत गहरे और नाज़ुक जज़्बात उससे जुड़े हैं। उसकी बदचलनी से आदमी की ग़ैरत (आत्मसम्मान) और इज़्ज़त पर, उसके फ़ायदों पर और उसकी आनेवाली नस्ल पर सख़्त चोट लगती है। ये

दोनों मामले आख़िर एक किस हैसियत से हैं कि दोनों के लिए क़ानून का मिज़ाज एक ही हो। क्या एक ज़िम्मी, या एक ग़ुलाम, या एक सज़ा पाए हुए आदमी के लिए उसकी बीवी का मामला किसी आज़ाद गवाही के लायक़ मुसलमान के मामले से कुछ भी अलग या अहमियत और नतीजों में कुछ भी कम है? अगर वह अपनी आँखों से किसी के साथ अपनी बीवी को ताल्लुक़ बनाते हुए देख ले, या उसको यक़ीन हो कि उसकी बीवी के पेट में जो बच्चा है वह किसी ग़ैर का है तो कौन-सी मुनासिब वजह है कि उसे लिआन का हक़ न दिया जाए? और यह हक़ उससे छीन लेने के बाद हमारे क़ानून में उसके लिए और क्या चारा है? क़ुरआन मजीद का मंशा तो साफ़ यह मालूम होता है कि वह शादीशुदा जोड़ों को उस पेचीदगी से निकालने की एक सूरत पैदा करना चाहता है जिसमें बीवी की सचमुच की बदकारी या नाजाइज़ बच्चे से एक शौहर, और शौहर के झूठे इलज़ाम या औलाद का बाप होने से बेजा इनकार की बदौलत एक बीवी मुब्तला हो जाए। यह ज़रूरत सिर्फ़ गवाही के क़ाबिल आज़ाद मुसलमानों के लिए ख़ास नहीं है, और क़ुरआन के अलफ़ाज़ में भी कोई चीज़ ऐसी नहीं है जो उसको सिर्फ़ उन्हीं तक महदूद करनेवाली हो। रही यह दलील कि क़ुरआन ने लिआन की क़समों को गवाही ठहराया है, इसलिए गवाही की शर्तें यहाँ लागू होंगी तो इसका तक़ाज़ा फिर यह है कि अगर आदिल (इनसाफ़ की बात करनेवाला) और गवाही के लायक़ शौहर क़समें खा ले और औरत क़सम खाने से कतराए तो औरत को संगसार कर दिया जाए; क्योंकि उसकी बदकारी पर गवाही क़ायम हो चुकी है। लेकिन यह अजीब बात है कि इस सूरत में हनफ़ी आलिम रज्म का हुक्म नहीं लगाते। यह इस बात का खुला सुबूत है कि वे ख़ुद भी इन क़समों को ठीक गवाही की हैसियत नहीं देते, बल्कि सच यह है कि ख़ुद क़ुरआन भी इन क़समों के लिए गवाही का लफ़्ज़ इस्तेमाल करने के बावजूद गवाही नहीं ठहराता वरना औरत को चार के बजाए आठ क़समें खाने का हुक्म देता।

(5) लिआन सिर्फ़ इशारे या शक के ज़ाहिर करने पर लाज़िम नहीं आता, बल्कि सिर्फ़ उस सूरत में लाज़िम आता है जबकि शौहर खुले तौर पर ज़िना का इलज़ाम लगाए या साफ़ अलफ़ाज़ में बच्चे को अपना बच्चा मानने से इनकार कर दे। इमाम मालिक (रह॰) और लैस-बिन-सअद इसके अलावा यह शर्त और बढ़ाते हैं कि क़सम खाते वक़्त शौहर को यह कहना चाहिए कि उसने अपनी आँखों से बीवी को ज़िना करते हुए देखा है। लेकिन यह क़ैद बेबुनियाद है। इसकी कोई अस्ल न क़ुरआन में है और न हदीस में।

(6) अगर इलज़ाम लगाने के बाद शौहर क़सम खाने से कतराए तो इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) और उनके साथी कहते हैं कि उसे क़ैद कर दिया जाएगा और जब तक वह लिआन न करे या अपने इलज़ाम का झूठा होना न मान ले, उसे न छोड़ा जाएगा, और झूठ मान लेने की सूरत में उसको क़ज़्फ़ की सज़ा (अस्सी कोड़ों की सज़ा) दी जाएगी। इसके बरख़िलाफ़ इमाम मालिक (रह॰), इमाम शाफ़िई (रह॰), हसन-बिन-सॉलिह और लैस-बिन-सअद की राय यह है कि लिआन से कतराना ख़ुद ही झूठ का इक़रार है, इसलिए क़ज़्फ़ की सज़ा वाजिब आ जाती है।

(7) अगर शौहर के क़सम खा चुकने के बाद औरत लिआन से कतराए तो हनफ़ी आलिमों की राय यह है कि उसे क़ैद कर दिया जाए और उस वक़्त तक न छोड़ा जाए जब तक वह लिआन न कर ले या फिर ज़िना के जुर्म का इक़रार न कर ले। दूसरी तरफ़ ऊपर जिनका ज़िक्र हुआ वे इमाम कहते हैं कि इस सूरत में उसे रज्म कर दिया जाएगा। उनकी दलील क़ुरआन के इस इरशाद से है कि औरत से अज़ाब सिर्फ़ इस सूरत में टलेगा जबकि यह भी क़सम खा ले। अब चूँकि वह क़सम नहीं खाती इसलिए वह ज़रूर अज़ाब की हक़दार है। लेकिन इस दलील में कमज़ोरी यह है कि क़ुरआन यहाँ 'अज़ाब' किस तरह का होगा इसे तय नहीं करता, बल्कि सिर्फ़ सज़ा का ज़िक्र करता है। अगर कहा जाए कि सज़ा से मुराद यहाँ ज़िना ही की सज़ा हो सकती है तो इसका जवाब यह है कि ज़िना की सज़ा के लिए क़ुरआन ने साफ़ अलफ़ाज़ में चार गवाहों की शर्त लगाई है। इस शर्त को सिर्फ़ एक आदमी की चार क़समें पूरा नहीं कर देतीं। शौहर की क़समें इस बात के लिए तो काफ़ी हैं कि वह ख़ुद क़ज़्फ़ की सज़ा से बच जाए और औरत पर लिआन का हुक्म लग सके, मगर इस बात के लिए काफ़ी नहीं हैं कि उनसे औरत पर ज़िना का इलज़ाम साबित हो जाए। औरत का जवाबी क़समें खाने से इनकार शक ज़रूर पैदा करता है, और बड़ा मज़बूत शक पैदा कर देता है, लेकिन शक और शुब्हों की बुनियाद पर हुदूद (सज़ाएँ) जारी नहीं की जा सकतीं। इस मामले को मर्द के क़ज़्फ़ (बेसुबूत इलज़ाम) की सज़ा के जैसा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि उसका क़ज़्फ़ तो साबित है, जभी तो उसको लिआन पर मजबूर किया जाता है। मगर इसके बरख़िलाफ़ औरत पर ज़िना (बदकारी) का इलज़ाम साबित नहीं है, क्योंकि वह उसके अपने इक़रार या चार आँखों देखी गवाही देनेवालों के बिना साबित नहीं हो सकता।

(8) अगर लिआन के वक़्त औरत के पेट में बच्चा हो तो इमाम अहमद (रह॰) के नज़दीक लिआन अपने आपमें ख़ुद इस बात के लिए काफ़ी है कि मर्द उस बच्चे से ख़ुद को अलग कर ले और बच्चा उसका न माना जाए, इस बात से अलग कि मर्द ने बच्चे को क़बूल करने से इनकार किया हो या न किया हो। इमाम शाफ़िई (रह॰) कहते हैं कि मर्द का ज़िना का इलज़ाम लगाना और बच्चे को अपना न मानना दोनों एक चीज़ नहीं हैं, इसलिए मर्द जब तक बच्चे की ज़िम्मेदारी क़बूल करने से साफ़ तौर से इनकार न कर दे वह ज़िना का इलज़ाम लगाने के बावजूद उसी का माना जाएगा, क्योंकि औरत के बदकार होने से यह लाज़िम नहीं आता कि उसको बच्चा भी ज़िना ही का हो।

(9) इमाम मालिक (रह॰), इमाम शाफ़िई (रह॰), और इमाम अहमद (रह॰) हमल के दौरान में मर्द को बच्चे को अपनाने से इनकार की इजाज़त देते हैं और इस बुनियाद पर लिआन को जाइज़ रखते हैं। मगर इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) कहते हैं कि अगर मर्द के इलज़ाम की बुनियाद ज़िना न हो, बल्कि सिर्फ़ यह हो कि उसने औरत को ऐसी हालत में हामिला पाया जबकि उसके ख़याल में हमल उसका नहीं हो सकता तो इस सूरत में लिआन के मामले को बच्चा पैदा होने तक टाल देना चाहिए, क्योंकि बहुत बार ऐसा भी होता है कि कोई बीमारी हमल का शक पैदा कर देती है और हक़ीक़त में हमल होता नहीं है।

(10) अगर बाप बच्चे को अपना बताने से इनकार करे तो इस बात पर सब एक राय हैं कि उसके लिए लिआन करना ज़रूरी हो जाता है। और इस बात में भी सब एक राय हैं कि एक बार बच्चे को क़बूल कर लेने के बाद (चाहे यह क़बूल कर लेना साफ़ अलफ़ाज़ में हो या क़बूल कर लेने की दलील देनेवाले काम जैसे पैदाइश पर मुबारकबाद लेने या बच्चे के साथ एक बाप की-सी मुहब्बत का बरताव करने और उसकी परवरिश से दिलचस्पी लेने की सूरत में) फिर बाप को इस बात का हक़ नहीं रहता कि वह बच्चे को अपना मानने से इनकार करे, और अगर फिर भी वह इनकार करे तो क़ज़्फ़ की सज़ा का हक़दार हो जाता है। मगर इस बात में इख़्तिलाफ़ है कि बाप को किस वक़्त तक अपना मानने से इनकार का हक़ हासिल रहता है। इमाम मालिक (रह॰) के नज़दीक अगर शौहर उस ज़माने में घर पर मौजूद रहा है जबकि बीवी हामिला थी तो हमल के ज़माने से लेकर बच्चा पैदा होने तक उसके लिए इनकार का मौक़ा है, उसके बाद वह इनकार का हक़ नहीं रखता। अलबत्ता अगर वह ग़ायब था और उसके पीछे बच्चा पैदा हुआ तो जिस वक़्त उसे ख़बर हो वह इनकार कर सकता है। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) के नज़दीक अगर पैदाइश के बाद एक दो दिन के अन्दर वह इनकार करे तो लिआन करके वह बच्चे की ज़िम्मेदारी से आज़ाद हो जाएगा, लेकिन अगर साल दो साल बाद इनकार करे तो लिआन होगा, मगर वह बच्चे की ज़िम्मेदारी से बरी न हो सकेगा। इमाम अबू-यूसुफ़ (रह॰) के नज़दीक बच्चे की पैदाइश के बाद, या पैदा होने की ख़बर मिलने के बाद चालीस दिन के अन्दर-अन्दर बाप को इस बात का हक़ है कि वह उस बच्चे को अपना मानने से इनकार कर दे, इसके बाद यह हक़ ख़त्म हो जाएगा, मगर यह चालीस दिन की क़ैद बेमतलब है। सही बात वही है जो इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) ने कही है कि बच्चा पैदा होने के बाद या उसकी ख़बर मिलने के बाद एक-दो दिन के अन्दर-अन्दर ही उसे अपना मानने से इनकार किया जा सकता है, सिवाय इसके कि उसमें कोई ऐसी रुकावट हो जिसे सही और मुनासिब रुकावट माना जा सके।

(11) अगर शौहर तलाक़ देने के बाद तलाक़-शुदा बीवी पर ज़िना का इलज़ाम लगाए तो इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) के नज़दीक लिआन नहीं होगा, बल्कि उसपर क़ज़्फ़ का मुक़द्दमा क़ायम किया जाएगा; क्योंकि लिआन मियाँ-बीवी के लिए है और तलाक़ पाई हुई औरत उसकी बीवी नहीं है। सिवाय यह कि तलाक़ रजई (वह तलाक़ जिसमें दोबारा मिलन की गुंजाइश होती है) हो और रुजू की मुद्दत के अन्दर वह इलज़ाम लगाए। मगर इमाम मालिक के नज़दीक यह क़ज़्फ़ सिर्फ़ उस सूरत में है जबकि किसी हमल या बच्चे के क़बूल करने या न करने का मसला बीच में न हो। वरना मर्द को बाइन तलाक़ (वह तलाक़ जिसके बाद मिलन की गुंजाइश नहीं रहती) के बाद भी लिआन का हक़ हासिल है; क्योंकि वह औरत को बदनाम करने के लिए नहीं, बल्कि ख़ुद एक ऐसे बच्चे की ज़िम्मेदारी से बचने के लिए लिआन कर रहा है जिसे वह अपना नहीं समझता। लगभग यही राय इमाम शाफ़िई (रह॰) की भी है।

(12) लिआन के क़ानूनी नतीजों में से कुछ पर सभी उलमा एक राय हैं और कुछ में फ़क़ीहों के बीच इख़्तिलाफ़ है।

اِنَّ الَّذِیْنَ جَآءُوْ بِالْاِفْكِ عُصْبَةٌ مِّنْكُمْ ؕ لَا تَحْسَبُوْهُ شَرًّا لَّكُمْ ؕ

(11) जो लोग यह बुहतान (मिथ्यारोप) गढ़ लाए हैं[8] वे तुम्हारे ही अन्दर का एक

जिन नतीजों पर सब एक राय हैं वे ये हैं—

औरत और मर्द दोनों किसी सज़ा के हक़दार नहीं रहते। मर्द बच्चे को अपना मानने से इनकार करे तो बच्चा सिर्फ़ माँ का माना जाएगा, न बाप का नाम उसे मिलेगा, न उससे मीरास पाएगा। माँ उसकी वारिस होगी और वह माँ का वारिस होगा। औरत को बदकार और उसके बच्चे को नाजाइज़ कहने का किसी को हक़ न होगा, चाहे लिआन के वक़्त उसके हालात ऐसे ही क्यों न हों कि लोगों को उसके बदकार होने में शक न रहे। जो शख़्स लिआन के बाद उसपर या उसके बच्चे पर पिछला इलज़ाम लगाएगा वह सज़ा का हक़दार होगा। औरत का महर ख़त्म न होगा। औरत इद्दत के दौरान में मर्द से गुज़ारे का ख़र्च और रहने का ठिकाना पाने की हक़दार होगी। औरत उस मर्द के लिए हराम हो जाएगी।

इख़्तिलाफ़ दो मसलों में है। एक यह कि लिआन के बाद औरत और मर्द में जुदाई कैसे होगी? दूसरे यह कि लिआन की बुनियाद पर अलग हो जाने के बाद क्या उन दोनों का फिर मिल जाना मुमकिन है? पहले मसले में इमाम शाफ़िई (रह.) कहते हैं कि जिस वक़्त मर्द लिआन कर चुकेगा उसी वक़्त दोनों ख़ुद-ब-ख़ुद अलग हो जाते हैं, चाहे औरत जवाबी लिआन करे या न करे। इमाम मालिक (रह.), लैस-बिन-सअद और ज़ुफ़र कहते हैं कि मर्द और औरत दोनों जब लिआन कर चुकें तब अलग होते हैं। और इमाम अबू-हनीफ़ा (रह.), अबू-यूसुफ़ और मुहम्मद कहते हैं कि लिआन से दोनों ख़ुद ही अलग नहीं हो जाते, बल्कि अदालत के अलग कराने से होते हैं। अगर शौहर ख़ुद तलाक़ दे दे तो बेहतर, वरना अदालत का हाकिम (न्यायाधीश) उनके बीच जुदाई का एलान करेगा। दूसरे मसले में इमाम मालिक, अबू-यूसुफ़, ज़ुफ़र, सुफ़ियान सौरी, इसहाक़-बिन-राहवया, शाफ़िई, अहमद-बिन-हंबल और हसन-बिन-ज़ियाद कहते हैं कि लिआन से जो मियाँ-बीवी अलग हुए हों, वे फिर हमेशा के लिए एक-दूसरे पर हराम हो जाते हैं, दोबारा वे आपस में निकाह करना भी चाहें तो किसी हाल में नहीं कर सकते। यही राय हज़रत उमर (रज़ि.), हज़रत अली (रज़ि.) और अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि.) की भी है। इसके बरख़िलाफ़ सईद-बिन-मुसय्यब (रह.), इबराहीम नख़ई (रह.), शअबी (रह.), सईद-बिन-जुबैर (रह.), अबू-हनीफ़ा (रह.) और मुहम्मद (रह.) की राय यह है कि अगर शौहर अपना झूठ मानकर सज़ा पा गया तो फिर इन दोनों के बीच दोबारा निकाह हो सकता है। वे कहते हैं कि उनको एक-दूसरे के लिए हराम करने वाली चीज़ लिआन है। जब तक वे उसपर क़ायम रहें हुरमत भी क़ायम रहेगी। मगर जब शौहर अपना झूठ मानकर सज़ा पा गया तो लिआन ख़त्म हो गया और एक के लिए दूसरे का हराम होना भी ख़त्म हो गया।

8. इशारा है उस इलज़ाम की तरफ़ जो हज़रत आइशा (रज़ि.) पर लगाया गया था। अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'इफ़्क' इस्तेमाल हुआ है जिसका तर्जमा 'बुहतान' किया गया है। 'इफ़्क' का लफ़्ज़

इस्तेमाल करना ख़ुद अल्लाह तआला की तरफ़ से इस इलज़ाम को पूरी तरह ग़लत बताना है। 'इफ़्क' का मतलब है बात को उलट देना, हक़ीक़त के ख़िलाफ़ कुछ-से-कुछ बना देना। इसी मतलब के एतिबार से यह लफ़्ज़ बिलकुल झूठ और बुहतान के मानी में बोला जाता है। और अगर किसी इलज़ाम के लिए बोला जाए तो इसका मतलब सरासर बुहतान होता है।

यहाँ से उस वाक़िए पर चर्चा शुरू होती है जो इस सूरा के उतरने की अस्ल वजह थी। परिचय में हम इसका शुरू का क़िस्सा ख़ुद हज़रत आइशा (रज़ि॰) की ज़बानी नक़्ल कर आए हैं। बाद की दास्तान भी उन्हीं की ज़बान से सुनिए। फ़रमाती हैं—

''इस बुहतान की अफ़वाहें कम-ज़्यादा एक महीने तक शहर में उड़ती रहीं। नबी (सल्ल॰) सख़्त परेशानी में मुब्तला रहे। मैं रोती रही। मेरे माँ-बाप इन्तिहाई परेशानी और रंजो-ग़म में डूबे रहे। आख़िर एक दिन नबी (सल्ल॰) तशरीफ़ लाए और मेरे पास बैठे। इस पूरी मुद्दत में आप कभी मेरे पास न बैठे थे। मेरे माँ-बाप (हज़रत अबू-बक्र रज़ि॰ और उम्मे-रूमान) ने महसूस किया कि आज कोई फ़ैसलाकुन बात होनेवाली है। इसलिए वे दोनों भी पास आकर बैठ गए। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, 'आइशा! मुझे तुम्हारे बारे में ये ख़बरें पहुँची हैं। अगर तुम बेगुनाह हो तो उम्मीद है कि अल्लाह तुम्हारा बरी होना ज़ाहिर कर देगा। और अगर सचमुच तुम किसी गुनाह में मुब्तला हुई हो तो अल्लाह से तौबा करो और माफ़ी माँगो, बन्दा जब अपने गुनाह को क़बूल करके तौबा करता है तो अल्लाह माफ़ कर देता है।' यह बात सुनकर मेरे आँसू सूख गए। मैंने अपने वालिद से अर्ज़ किया कि आप अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की बात का जवाब दें। उन्होंने फ़रमाया, "बेटी, मेरी कुछ समझ ही में नहीं आता कि मैं क्या कहूँ।" मैंने अपनी माँ से कहा कि आप ही कुछ कहें। उन्होंने भी यही कहा कि "मैं हैरान हूँ, क्या कहूँ।" इसपर मैं बोली कि आप लोगों के कानों में एक बात पड़ गई है और दिलों में बैठ चुकी है, अब अगर मैं कहूँ कि मैं बेगुनाह हूँ—और अल्लाह जानता है कि मैं बेगुनाह हूँ—तो आप लोग न मानेंगे, और अगर मैं ख़ाह-मख़ाह एक ऐसी बात को क़बूल कर लूँ जो मैंने नहीं की—और अल्लाह जानता है कि मैंने नहीं की—तो आप लोग मान लेंगे। मैंने उस वक़्त हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) का नाम याद करने की कोशिश की, मगर याद न आया। आख़िर मैंने कहा कि इस हालत में मेरे लिए इसके सिवा और क्या रास्ता है कि वही बात कहूँ जो हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) के वालिद ने कही थी कि ''फ़सबरुन-जमील'' (सब्रे-जमील, इशारा है उस वाक़िए की तरफ़ जबकि हज़रत याक़ूब के सामने उनके बेटे बिनयमीन पर चोरी का इलज़ाम बयान किया गया था। सूरा-12 यूसुफ़, आयतें-79-83 में इसका ज़िक्र गुज़र चुका है) यह कहकर मैं लेट गई और दूसरी तरफ़ करवट ले ली। मैं उस वक़्त अपने दिल में कह रही थी कि अल्लाह मेरी बेगुनाही को जानता है और वह ज़रूर हक़ीक़त खोल देगा। अगरचे यह बात मैं सोच भी न सकती थी कि मेरे हक़ में वह्य उतरेगी जो क़ियामत तक पढ़ी जाएगी। मैं अपने आपको इससे कमतर समझती थी कि अल्लाह ख़ुद मेरी तरफ़ से बोले। मगर मेरा यह गुमान था कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) कोई ख़ाब देखेंगे जिसमें अल्लाह तआला मेरा बेगुनाह होना ज़ाहिर कर देगा। इतने में एकाएक नबी (सल्ल॰) पर वह कैफ़ियत छा गई जो वह्य उतरते वक़्त हुआ करती थी, यहाँ तक कि सख़्त जाड़े के ज़माने में भी मोती की तरह आप (सल्ल॰) के चेहरे से पसीने की बूँदें टपकने लगती थीं। हम सब चुप हो गए। मुझे तो बिलकुल डर न था, मगर मेरे माँ-बाप का हाल यह था कि

بَلْ هُوَخَيْرٌ لَّكُمْ ۚ لِكُلِّ امْرِئٍ مِّنْهُمْ مَّا اكْتَسَبَ مِنَ الْاِثْمِ ۚ

टोला हैं।[9] इस वाक़िए को अपने लिए बुरा न समझो, बल्कि यह भी तुम्हारे लिए भलाई ही है।[10] जिसने उसमें जितना हिस्सा लिया उसने उतना ही गुनाह समेटा और जिस शख़्स

काटो तो बदन में लहू नहीं। ये डर रहे थे कि देखिए अल्लाह क्या हक़ीक़त खोलता है। जब वह कैफ़ियत दूर हुई तो नबी (सल्ल॰) बेहद ख़ुश थे। आप (सल्ल॰) ने हँसते हुए पहली बात जो फ़रमाई वह यह थी कि "मुबारक हो आइशा, अल्लाह ने तुम्हारे बेगुनाह होने की आयत उतार दी।" और इसके बाद नबी (सल्ल॰) ने दस आयतें सुनाईं (आयत नम्बर 11 से 21 तक) मेरी माँ ने कहा, "उठो और अल्लाह के रसूल का शुक्रिया अदा करो।" मैंने कहा, "मैं न इनका शुक्रिया अदा करूँगी, न आप दोनों का, बल्कि अल्लाह का शुक्र अदा करती हूँ जिसने मेरे बेक़ुसूर होने की बात उतारी। आप लोगों ने तो इस बुहतान का इनकार तक न किया।" (मालूम रहे कि यह किसी एक रिवायत का तर्जमा नहीं है, बल्कि हदीस और सीरत की किताबों में जितनी रिवायतें हज़रत आइशा से इस सिलसिले में बयान हुई हैं उन सबको जमा करके हमने उनका ख़ुलासा पेश किया है)

इस मौक़े पर यह बारीक नुक्ता भी समझ लेना चाहिए कि हज़रत आइशा (रज़ि॰) के बेगुनाह होने को बयान करने से पहले पूरे एक रुकू में ज़िना (व्यभिचार) और क़ज़्फ़ और लिआन (ज़िना का इलज़ाम लगाना) के अहकाम बयान करके अल्लाह तआला ने अस्ल में इस हक़ीक़त पर ख़बरदार किया है कि ज़िना के इलज़ाम का मामला कोई हँसी-दिल्लगी का मामला नहीं है जिसे महफ़िल का रंग बदलने के लिए इस्तेमाल किया जाए। यह एक इन्तिहाई संगीन बात है। इलज़ाम लगानेवाले का इलज़ाम अगर सच्चा है तो वह गवाही लाए। ज़िना करनेवाले मर्द-औरत को बहुत भयानक सज़ा दी जाएगी। अगर झूठा है तो इलज़ाम लगानेवाला इस लायक़ है कि उसकी पीठ पर अस्सी कोड़े बरसा दिए जाएँ, ताकि आगे से वह या कोई और ऐसी जुरअत न करे। और यह इलज़ाम अगर शौहर लगाए तो अदालत में लिआन करके उसे मामला साफ़ करना होगा। इस बात को ज़बान से निकालकर कोई शख़्स भी ख़ैरियत से बैठा नहीं रह सकता। इसलिए कि यह मुस्लिम समाज है जिसे दुनिया में भलाई क़ायम करने के लिए बरपा किया गया है। इसमें न ज़िना ही तफ़रीह बन सकती है और न उसकी चर्चाएँ ही हँसी-दिल्लगी की बातें बन सकती हैं।

9. रिवायतों में सिर्फ़ कुछ आदमियों के नाम मिलते हैं जो ये अफ़वाहें फैला रहे थे। अब्दुल्लाह-बिन-उबई, ज़ैद-बिन-रिफ़ाआ (जो शायद रिफ़ाआ-बिन-ज़ैद यहूदी मुनाफ़िक़ का बेटा था), मिस्तह-बिन-उसासा, हस्सान-बिन-साबित (रज़ि॰) और हमना-बिन्ते-जहश इनमें से पहले दो मुनाफ़िक़ थे और बाक़ी तीन ईमानवाले थे जो ग़लती और कमज़ोरी से इस फ़ितने में पड़ गए थे। इनके सिवा और जो लोग इस गुनाह में कम या ज़्यादा मुब्तला हुए, उनका ज़िक्र हदीस और सीरत की किताबों में नज़र से नहीं गुज़रा।

10. मतलब यह है कि घबराओ नहीं, मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) ने अपनी समझ से तो यह बड़े ज़ोर का वार तुमपर किया है, मगर अल्लाह चाहेगा तो यह उन्हीं पर उलटा पड़ेगा और तुम्हारे

लिए फ़ायदेमन्द साबित होगा। जैसा कि हम परिचय में बयान कर आए हैं, मुनाफ़िक़ों ने यह बेबुनियाद अफ़वाह इसलिए उड़ाई थी कि मुसलमानों को उस मैदान में हरा दें जो उनकी बरतरी (श्रेष्ठता) का अस्ल मैदान था, यानी अख़लाक़ जिसमें बढ़ा हुआ होने ही की वजह से वे हर मैदान में अपने मुख़ालिफ़ से बाज़ी लिए जा रहे थे। लेकिन अल्लाह तआला ने इसको भी मुसलमानों के लिए भलाई का ज़रिआ बना दिया। इस मौक़े पर एक तरफ़ नबी (सल्ल.) ने, दूसरी तरफ़ हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) और उनके ख़ानदानवालों ने और तीसरी तरफ़ आम ईमानवालों ने जो रवैया अपनाया, उससे यह बात दिन के उजाले की तरह साबित हो गई कि ये लोग बुराई से कितने ज़्यादा पाक, कैसे सब्र और बरदाश्त से काम लेनेवाले, कैसे इनसाफ़पसन्द और कितने ज़्यादा पाक-साफ़ दिल रखनेवाले हैं। नबी (सल्ल.) का एक इशारा उन लोगों की गरदनें उड़ा देने के लिए काफ़ी था जिन्होंने आप (सल्ल.) की इज़्ज़त पर हमला किया था, मगर महीना भर तक आप (सल्ल.) सब्र से सबकुछ बरदाश्त करते रहे, और जब अल्लाह का हुक्म आ गया तो सिर्फ़ उन तीन मुसलमानों को जिनपर क़ज़्फ़ का जुर्म साबित हो गया था, सज़ा लगवा दी। मुनाफ़िक़ों को फिर भी कुछ न कहा। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) का अपना रिश्तेदार जिसका और जिसके घर भर का ख़र्च भी वे उठाते थे, उनके दिल और जिगर पर यह तीर चलाता रहा, मगर अल्लाह के उस नेक बन्दे ने इसपर भी न बिरादरी का ताल्लुक़ ख़त्म किया, न उसकी और उसके ख़ानदान की मदद ही बन्द की। नबी (सल्ल.) की पाक बीवियों में से किसी ने भी सौतन की बदनामी में ज़र्रा बराबर हिस्सा न लिया, बल्कि किसी ने इसपर अपनी ज़रा-सी भी पसन्दीदगी, या कम-से-कम इसे मान लेने का इज़हार तक न किया, यहाँ तक कि हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) की सगी बहन हमना-बिन्त-जह्श सिर्फ़ उनकी ख़ातिर उनकी सौतन को बदनाम कर रही थीं, मगर ख़ुद उन्होंने सौतन के लिए अच्छी बात ही कही। हज़रत आइशा (रज़ि.) की अपनी रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की पाक बीवियों में सबसे ज़्यादा ज़ैनब ही से मेरा मुक़ाबला रहता था, मगर हज़रत आइशा (रज़ि.) पर लगाए गए 'झूठ और बुहतान' के वाक़िए के सिलसिले में जब अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने उनसे पूछा कि आइशा के बारे में तुम क्या जानती हो तो उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल, ख़ुदा की क़सम, मैं उसके अन्दर भलाई के सिवा और कुछ नहीं जानती। हज़रत आइशा (रज़ि.) की अपनी शरीफ़ मिज़ाजी का हाल यह था कि हज़रत हस्सान-बिन-साबित (रज़ि.) ने उन्हें बदनाम करने में नुमायाँ तौर से हिस्सा लिया, मगर ये हमेशा उनके साथ इज़्ज़त और नर्मी के साथ पेश आती रहीं। लोगों ने याद दिलाया कि यह तो वही आदमी है जिसने आपको बदनाम किया था तो यह जवाब देकर उनका मुँह बन्द कर दिया कि यह वह शख़्स है जो इस्लाम-दुश्मन शाइरों को अल्लाह के रसूल (सल्ल.) और इस्लाम की तरफ़ से मुँह तोड़ जवाब दिया करता था। यह था उन लोगों का हाल जिनका इस मामले से सीधा ताल्लुक़ था, और आम मुसलमानों के मन की पाकीज़गी का अन्दाज़ा इससे किया जा सकता है कि हज़रत अबू-अय्यूब अनसारी से उनकी बीवी ने जब इन अफ़वाहों का ज़िक्र किया तो वे कहने लगे, "अय्यूब की माँ, अगर तुम आइशा की जगह उस मौक़े पर होतीं तो क्या ऐसी हरकत करतीं?" वे बोलीं, "ख़ुदा की क़सम, मैं यह हरकत हरगिज़ न करती!" हज़रत अय्यूब ने कहा, "तो आइशा तुमसे बहुत ज़्यादा बेहतर हैं। और मैं कहता हूँ

وَالَّذِىۡ تَوَلّٰى كِبۡرَهٗ مِنۡهُمۡ لَهٗ عَذَابٌ عَظِيۡمٌ ۝١١ لَوۡلَاۤ اِذۡ

ने इस ज़िम्मेदारी का बड़ा हिस्सा अपने सिर लिया[11] उसके लिए तो बड़ा अज़ाब है।

कि अगर सफ़वान की जगह मैं होता तो इस तरह का ख़याल तक न कर सकता था। सफ़वान तो मुझसे अच्छा मुसलमान है।" इस तरह मुनाफ़िक़ जो कुछ चाहते थे, नतीजा उसके बिलकुल उलट निकला और मुसलमानों का अख़लाक़ी तौर पर दूसरों से बढ़कर होना पहले से ज़्यादा नुमायाँ हो गया।

फिर इसमें भलाई का एक और पहलू भी था, और वह यह कि यह वाक़िआ इस्लाम के क़ानूनों और हुक्मों और सामाजिक ज़ाब्तों में बड़े अहम इज़ाफ़ों का सबब बन गया। इसकी बदौलत मुसलमानों को अल्लाह तआला की तरफ़ से ऐसी हिदायतें मिलीं जिनपर अमल करके मुस्लिम समाज को हमेशा के लिए बुराइयों को पैदा होने और उनको फैलने से बचाया जा सकता है, और पैदा हो जाएँ तो उनको वक़्त पर दूर किया जा सकता है।

इसके अलावा इसमें भलाई का पहलू यह भी था कि तमाम मुसलमानों को यह बात अच्छी तरह मालूम हो गई कि नबी (सल्ल.) को ग़ैब का इल्म नहीं है जो कुछ अल्लाह बताता है वही कुछ जानते हैं, उसके सिवा आप (सल्ल.) का इल्म उतना ही कुछ है जितना एक आदमी का हो सकता है। एक महीने तक आप (सल्ल.) हज़रत आइशा (रज़ि.) के मामले में सख़्त परेशान रहे। कभी नौकरानी से पूछते थे, कभी दूसरी बीवियों (रज़ि.) से, कभी हज़रत अली (रज़ि.) से और कभी हज़रत उसामा (रज़ि.) से। आख़िरकार हज़रत आइशा (रज़ि.) से फ़रमाया तो यह फ़रमाया कि अगर तुमने यह गुनाह किया है तो तौबा करो और नहीं किया तो उम्मीद है कि अल्लाह तुम्हारी बेगुनाही साबित कर देगा। अगर नबी (सल्ल.) ग़ैब की बातें जाननेवाले होते तो यह परेशानी और यह पूछ-गच्छ और यह तौबा की नसीहत क्यों होती? अलबत्ता जब अल्लाह ने वह्य के ज़रिए से हक़ीक़त बता दी तो आप (सल्ल.) को यह इल्म हासिल हो गया जो महीने भर तक हासिल न था। इस तरह अल्लाह तआला ने सीधे तौर पर तजरिबे और मुशाहदे के ज़रिए से मुसलमानों को उस ग़ुलू (अति) और मुबालग़े (अतिशयोक्ति) से बचाने का इन्तिज़ाम कर दिया जिसमें अक़ीदत का अन्धा जोश आम तौर से अपने पेशवाओं के मामले में लोगों को मुब्तला कर देता है। नामुमकिन नहीं कि महीना भर तक वह्य न भेजने में अल्लाह तआला के सामने यह भी एक मस्लहत रही हो। पहले दिन ही वह्य आ जाती तो यह फ़ायदा हासिल न हो सकता। (इल्मे-ग़ैब के बारे में और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-27 नम्ल, आयतें—65, 66 उनके हाशिए समेत।)

11. यानी अब्दुल्लाह-बिन-उबई जो उस इलज़ाम का अस्ल गढ़नेवाला और फ़ितने की अस्ल जड़ था। कुछ रिवायतों में ग़लती से यह बात आ गई है कि यह आयत हज़रत हस्सान-बिन-साबित (रज़ि.) के बारे में उतरी थी, मगर यह रिवायत करनेवालों की अपनी ही ग़लतफ़हमी है वरना हज़रत हस्सान (रज़ि.) की कमज़ोरी इससे ज़्यादा कुछ न थी कि वे मुनाफ़िक़ों के फैलाए हुए इस फ़ितने में मुब्तला हो गए। हाफ़िज़ इब्ने-कसीर ने सही कहा है कि अगर यह रिवायत बुख़ारी में

سَمِعْتُمُوْهُ ظَنَّ الْمُؤْمِنُوْنَ وَالْمُؤْمِنٰتُ بِاَنْفُسِهِمْ خَيْرًا ۙ وَّقَالُوْا

(12) जिस वक़्त तुम लोगों ने इसे सुना था उसी वक़्त क्यों न ईमानवाले मर्दों और ईमानवाली औरतों ने अपने आपसे अच्छा गुमान किया[12] और क्यों न कह दिया कि यह

न होती तो ज़िक्र के क़ाबिल तक न थी। इस सिलसिले में सबसे बड़ा झूठ, बल्कि बुहतान यह है कि बनी-उमैया ने इस आयत को हज़रत अली (रज़ि.) पर चस्पाँ किया है। बुख़ारी, तबरानी और बैहक़ी में हिशाम-बिन-अब्दुल-मलिक उमवी की कही हुई यह बात लिखी है कि 'अल्लज़ी तवल्ला किब-रहू' (जिसने इसकी ज़िम्मेदारी का बड़ा हिस्सा अपने सिर लिया) से मुराद हज़रत अली-बिन-अबी-तालिब हैं। हालाँकि हज़रत अली (रज़ि.) का सिरे से इस फ़ितने में कोई हिस्सा ही न था। बात सिर्फ़ इतनी थी कि उन्होंने जब नबी (सल्ल.) को बहुत परेशान देखा तो नबी (सल्ल.) के मशवरा लेने पर अर्ज़ कर दिया कि अल्लाह तआला ने इस मामले में आपपर कोई तंगी तो नहीं रखी है। औरतें बहुत हैं। आप चाहें तो आइशा को तलाक़ देकर दूसरा निकाह कर सकते हैं। इसका यह मतलब हरगिज़ न था कि हज़रत अली (रज़ि.) ने उस इलज़ाम को सच बताया था जो हज़रत आइशा (रज़ि.) पर लगाया जा रहा था। उनका मक़सद सिर्फ़ नबी (सल्ल.) की परेशानी को दूर करना था।

12. दूसरा तर्जमा यह भी हो सकता है कि अपने लोगों, या अपनी मिल्लत और अपने समाज के लोगों से अच्छा गुमान क्यों न किया। आयत के अलफ़ाज़ में दोनों मतलब आ जाते हैं, और इस दो मतलबोंवाले जुमले के इस्तेमाल में एक बारीक नुक्ता (Point) है जिसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। जो सूरते-हाल हज़रत आइशा (रज़ि.) और सफ़वान-बिन-मुअत्तल के साथ पेश आई थी, वह यही तो थी कि क़ाफ़िले की एक औरत (इस बात से अलग कि वे रसूल की बीवी थीं) इत्तिफ़ाक़ से पीछे रह गई थीं और क़ाफ़िले ही का एक आदमी जो ख़ुद इत्तिफ़ाक़ से पीछे रह गया था, उन्हें देखकर अपने ऊँट पर उन्हें बिठा लाया। अब अगर कोई शख़्स यह कहता है कि अल्लाह की पनाह, ये दोनों अकेले एक-दूसरे को पाकर गुनाह में मुब्तला हो गए तो उसका यह कहना अपने ज़ाहिर अलफ़ाज़ के पीछे दो और ग़लत बातें भी रखता है। एक यह कि कहनेवाला (चाहे मर्द हो या औरत) अगर ख़ुद इस जगह होता तो कभी गुनाह किए बिना न रहता, क्योंकि वह अगर गुनाह से रुका हुआ है तो सिर्फ़ इसलिए कि उसे मुख़ालिफ़ जिंस का कोई शख़्स इस तरह तन्हाई में हाथ न आ गया, वरना ऐसे सुनहरे मौक़े को वह छोड़नेवाला न था। दूसरी यह कि जिस समाज से वह ताल्लुक़ रखता है उसकी अख़लाक़ी हालत के बारे में उसका गुमान यह है कि यहाँ कोई औरत भी ऐसी नहीं है और न कोई मर्द ऐसा है जिसे इस तरह का कोई मौक़ा पेश आ जाए और वह गुनाह न करे। यह तो उस सूरत में है जबकि मामला सिर्फ़ एक मर्द और औरत का हो। और मान लीजिए कि अगर वह मर्द और औरत दोनों एक ही जगह के रहनेवाले हों, और औरत जो इत्तिफ़ाक़ से क़ाफ़िले से पीछे रह गई थी, उस मर्द के किसी दोस्त या रिश्तेदार या पड़ोसी या जाननेवाले की बीवी, बहन या बेटी हो

هٰذَآ اِفْكٌ مُّبِيْنٌ۝١٢ لَوْلَا جَآءُوْ عَلَيْهِ بِاَرْبَعَةِ شُهَدَآءَ ۚ فَاِذْ لَمْ يَاْتُوْا

खुली तोहमत है?[13] (13) वे लोग (अपने इलज़ाम के सुबूत में) चार गवाह क्यों न लाए?

तो मामला और भी ज़्यादा सख़्त हो जाता है। इसका मतलब फिर यह हो जाता है कि कहनेवाला ख़ुद अपने बारे में भी और अपने समाज के बारे में भी ऐसी सख़्त घिनौनी सोच रखता है जिसे शराफ़त से दूर का वास्ता भी नहीं। कौन भला आदमी यह सोच सकता है कि उसके दोस्त या पड़ोसी या जाननेवाले के घर की कोई औरत अगर इत्तिफ़ाक़ से कहीं भूली-भटकी उसे रास्ते में मिल जाए तो वह पहला काम बस उसकी इज़्ज़त पर हाथ डालने ही का करेगा, फिर कहीं उसे घर पहुँचाने की तदबीर सोचेगा, लेकिन यहाँ तो मामला इससे हज़ार गुना ज़्यादा सख़्त था। औरत कोई और न थीं, अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की बीवी थीं जिन्हें हर मुसलमान अपनी माँ से बढ़कर एहतिराम के लायक़ समझता था जिन्हें अल्लाह ने ख़ुद हर मुसलमान पर माँ की तरह हराम ठहरा दिया था, मर्द न सिर्फ़ यह कि उसी क़ाफ़िले का एक आदमी, उसी फ़ौज का एक सिपाही और उसी शहर का एक बाशिन्दा था, बल्कि वह मुसलमान था, उस औरत के शौहर को अल्लाह का रसूल और अपना रहनुमा और पेशवा मानता था और उनके फ़रमान पर जान क़ुरबान करने के लिए बद्र की लड़ाई जैसी ख़तरनाक मुहिम में शरीक हो चुका था। इस सूरते-हाल में तो इस बात का ज़ेहनी पसमंज़र घिनौनेपन की उस इन्तिहा पर पहुँच जाता है जिससे बढ़कर किसी गन्दी सोच का तसव्वुर नहीं किया जा सकता। इसी लिए अल्लाह तआला फ़रमा रहा है कि मुस्लिम समाज के जिन लोगों ने यह बात ज़बान से निकाली या उसे कम-से-कम शक के क़ाबिल समझा उन्होंने ख़ुद अपने आपका भी बहुत बुरा तसव्वुर क़ायम किया और अपने समाज के लोगों को भी बड़े घटिया अख़लाक़ और किरदार का मालिक समझा।

13. यानी यह बात तो सोचने के क़ाबिल तक न थी। उसे तो सुनते ही हर मुसलमान को सरासर झूठ और बुहतान कह देना चाहिए था, मुमकिन है कोई शख़्स यहाँ यह सवाल करे कि जब यह बात थी तो ख़ुद अल्लाह के रसूल (सल्ल.) और हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने इसे क्यों न पहले दिन ही झुठला दिया और क्यों उन्होंने उसे इतनी अहमियत दी? इसका जवाब यह है कि शौहर और बाप की पोज़ीशन आम आदमियों से बिलकुल अलग होती है। अगरचे एक शौहर से बढ़कर कोई अपनी बीवी को नहीं जान सकता और एक शरीफ़ और नेक बीवी के बारे में कोई सही दिमाग़वाला शौहर लोगों के बुहतानों पर हक़ीक़त में बदगुमान नहीं हो सकता, लेकिन अगर उसकी बीवी पर इलज़ाम लगा दिया जाए तो वह इस मुश्किल में पड़ जाता है कि उसे बुहतान कहकर रद्द भी कर दे तो कहनेवालों की ज़बान न रुकेगी, बल्कि वे उसपर एक और रद्दा यह चढ़ाएँगे कि बीवी ने मियाँ साहब की अक़्ल पर कैसा परदा डाल रखा है, सब कुछ कर रही है और मियाँ यह समझते हैं कि मेरी बीवी बड़ी पाकदामन है। ऐसी ही मुश्किल माँ-बाप को पेश आती है। वे बेचारे अपनी बेटी की पाकदामनी पर सिर्फ़ झूठे इलज़ाम को झुठलाने के लिए अगर ज़बान खोलें भी तो बेटी की पोज़ीशन साफ़ नहीं होती। कहनेवाले यही कहेंगे कि माँ-बाप

بِالشُّهَدَآءِ فَاُولٰٓئِكَ عِنْدَ اللّٰهِ هُمُ الْكٰذِبُوْنَ۝۱۳ وَلَوْلَا فَضْلُ اللّٰهِ
عَلَيْكُمْ وَرَحْمَتُهٗ فِى الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ لَمَسَّكُمْ فِىْ مَآ اَفَضْتُمْ فِيْهِ
عَذَابٌ عَظِيْمٌ۝۱۴ اِذْ تَلَقَّوْنَهٗ بِاَلْسِنَتِكُمْ وَتَقُوْلُوْنَ بِاَفْوَاهِكُمْ مَّا
لَيْسَ لَكُمْ بِهٖ عِلْمٌ وَّتَحْسَبُوْنَهٗ هَيِّنًا ۖ وَّهُوَ عِنْدَ اللّٰهِ عَظِيْمٌ۝۱۵

अब कि वे गवाह नहीं लाए हैं, अल्लाह के नज़दीक वही झूठे हैं।[14] (14) अगर तुम लोगों पर दुनिया और आख़िरत में अल्लाह की मेहरबानी और रहम व करम न होता तो जिन बातों में तुम पड़ गए थे, उनके बदले में बड़ा अज़ाब तुम्हें आ लेता। (15) (ज़रा सोचो तो, उस वक़्त तुम कैसी भारी ग़लती कर रहे थे) जबकि तुम्हारी एक ज़बान से दूसरी ज़बान उस झूठ को लेती चली जा रही थी और तुम अपने मुँह से यह कुछ कहे जा रहे थे जिसके बारे में तुम्हें कोई इल्म न था। तुम इसे एक मामूली बात समझ रहे थे, हालाँकि अल्लाह के नज़दीक यह बड़ी बात थी।

हैं, अपनी बेटी की तरफ़दारी न करेंगे तो और क्या करेंगे। यही चीज़ थी जो अल्लाह के रसूल (सल्ल.) और हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) और उनकी बीवी उम्मे-रूमान को अन्दर-ही-अन्दर ग़म से घुलाए दे रही थी। वरना हक़ीक़त में कोई शक उनको न था। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने तो ख़ुतबे ही में साफ़ फ़रमा दिया था कि मैंने न अपनी बीवी में कोई बुराई देखी है और न उस आदमी में जिसके बारे में यह इलज़ाम लगाया जा रहा है।

14. 'अल्लाह के नज़दीक' यानी अल्लाह के क़ानून में, या अल्लाह के क़ानून के मुताबिक़। वरना ज़ाहिर है कि अल्लाह के इल्म में तो इलज़ाम अपने आपमें ख़ुद झूठा था, उसका झूठ होना इस वजह से न था कि ये लोग गवाह नहीं लाए हैं।

इस जगह किसी शख़्स को यह ग़लतफ़हमी न हो कि यहाँ इलज़ाम के ग़लत होने की दलील और बुनियाद सिर्फ़ गवाहों की ग़ैर-मौजूदगी को ठहराया जा रहा है और मुसलमानों से कहा जा रहा है कि तुम भी सिर्फ़ इस वजह से इसको खुला बुहतान ठहराओ कि इलज़ाम लगानेवाले चार गवाह नहीं लाए हैं। यह ग़लतफ़हमी उस हक़ीक़त को निगाह में न रखने से पैदा होती है जो अस्ल में वहाँ पेश आई थी। इलज़ाम लगानेवालों ने इलज़ाम इस वजह से नहीं लगाया था कि उन्होंने, या उनमें से किसी शख़्स ने वह बात देखी थी जो वे ज़बान से निकाल रहे थे, बल्कि सिर्फ़ इस बुनियाद पर इतना बड़ा इलज़ाम गढ़ डाला था कि हज़रत आइशा (रज़ि.) क़ाफ़िले से पीछे रह गई थीं और सफ़वान बाद में उनको अपने ऊँट पर सवार करके क़ाफ़िले में ले आए।

وَلَوْلَآ إِذْ سَمِعْتُمُوهُ قُلْتُم مَّا يَكُونُ لَنَآ أَن نَّتَكَلَّمَ بِهَٰذَا سُبْحَٰنَكَ
هَٰذَا بُهْتَٰنٌ عَظِيمٌ ﴿١٦﴾ يَعِظُكُمُ ٱللَّهُ أَن تَعُودُوا۟ لِمِثْلِهِۦٓ أَبَدًا إِن
كُنتُم مُّؤْمِنِينَ ﴿١٧﴾ وَيُبَيِّنُ ٱللَّهُ لَكُمُ ٱلْءَايَٰتِ ۚ وَٱللَّهُ عَلِيمٌ
حَكِيمٌ ﴿١٨﴾ إِنَّ ٱلَّذِينَ يُحِبُّونَ أَن تَشِيعَ ٱلْفَٰحِشَةُ فِى ٱلَّذِينَ ءَامَنُوا۟

(16) क्यों न इसे सुनते ही तुमने कह दिया कि ''हमें ऐसी बात ज़बान से निकालना ज़ेब (शोभा) नहीं देता, अल्लाह पाक है, यह तो एक बड़ी तोहमत है।'' (17) अल्लाह तुमको नसीहत करता है कि आगे कभी ऐसी हरकत न करना अगर तुम ईमानवाले हो। (18) अल्लाह तुम्हें साफ़-साफ़ हिदायतें देता है, और वह सब कुछ जाननेवाला और हिकमतवाला है।[15]

(19) जो लोग चाहते हैं कि ईमान लानेवालों के गरोह में बेहयाई फैले, वे दुनिया

अक़्ल रखनेवाला कोई आदमी भी इस मौक़े पर यह नहीं सोच सकता था कि हज़रत आइशा (रज़ि॰) का इस तरह पीछे रह जाना, अल्लाह की पनाह, किसी साँठ-गाँठ का नतीजा था। साँठ-गाँठ करनेवाले इस तरीक़े से तो साँठ-गाँठ नहीं किया करते कि फ़ौज के सरदार की बीवी चुपके से क़ाफ़िले के पीछे एक आदमी के साथ रह जाए और फिर वही आदमी उसको अपने ऊँट पर बिठाकर दिन-दहाड़े, ठीक दोपहर के वक़्त लिए हुए खुल्लम-खुल्ला फ़ौज के पड़ाव पर पहुँचे। यह सूरते-हाल ख़ुद ही दोनों के बेक़ुसूर होने की दलील दे रही थी। इस हालत में अगर इलज़ाम लगाया जा सकता था तो सिर्फ़ इस बुनियाद पर ही लगाया जा सकता था कि कहनेवालों ने अपनी आँखों से कोई मामला देखा हो। वरना हालात जिनपर ज़ालिमों ने इलज़ाम की बुनियाद रखी थी, किसी शक और शुब्हे की गुंजाइश न रखते थे।

15. इन आयतों से, और ख़ास तौर से अल्लाह तआला के इस फ़रमान से कि ''ईमानवाले मर्दों और ईमानवाली औरतों ने अपने लोगों से अच्छा गुमान क्यों न किया'' यह बुनियादी उसूल निकलता है कि मुस्लिम समाज में तमाम मामलों की बुनियाद अच्छे गुमान पर होनी चाहिए, और बदगुमानी सिर्फ़ उस हालत में की जानी चाहिए जबकि उसके लिए कोई ऐसी बुनियाद हो जो उस गुमान को साबित और पक्का करती हो। उसूल यह है कि हर शख़्स बेगुनाह है जब तक कि उसके मुजरिम होने या उसपर जुर्म का शक करने के लिए कोई मुनासिब वजह मौजूद न हो। और हर शख़्स अपनी बात में सच्चा है जबतक कि इस बात की कोई दलील न हो कि अब वह शख़्स भरोसे के लाइक़ नहीं रहा है।

لَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۙ فِى الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ ؕ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ وَاَنْتُمْ لَا
تَعْلَمُوْنَ ۝١٩ وَلَوْلَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَتُهٗ وَاَنَّ اللّٰهَ رَءُوْفٌ
رَّحِيْمٌ ۝٢٠ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَتَّبِعُوْا خُطُوٰتِ الشَّيْطٰنِ ؕ وَمَنْ

और आख़िरत में दर्दनाक सज़ा के हक़दार हैं,[16] अल्लाह जानता है और तुम नहीं जानते।[17] (20) अगर अल्लाह की मेहरबानी और उसका रहम व करम तुमपर न होता और यह बात न होती कि अल्लाह बड़ा मेहरबान और रहम करनेवाला है (तो यह चीज़ जो अभी तुम्हारे अन्दर फैलाई गई थी, बहुत बुरे नतीजे दिखा देती)।

(21) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, शैतान के रास्ते पर न चलो। उसकी पैरवी कोई

16. मौक़ा-महल के लिहाज़ से तो आयत का सीधा-सीधा मतलब यह है कि जो लोग इस तरह के इलज़ाम गढ़कर और उन्हें फैलाकर मुस्लिम समाज में बदअख़लाक़ी (अनैतिकता) फैलाने और मुस्लिम उम्मत के अख़लाक़ पर धब्बा लगाने की कोशिशें कर रहे हैं, वे सज़ा के हक़दार हैं। लेकिन आयत के अलफ़ाज़ बेहूदगी (अश्लीलता) फैलाने की तमाम सूरतों पर हावी हैं। इसके तहत अमली तौर से बदकारी के अड्डे क़ायम करना भी आ जाता है और बदअख़लाक़ी पर उभारनेवाले और उसके लिए जज़बात को उकसानेवाले क़िस्से, अशआर, गाने, तस्वीरें और खेल-तमाशे भी आ जाते हैं। साथ ही वे क्लब और होटल और दूसरे इदारे भी इनकी चपेट में आ जाते हैं जिनमें औरतों-मर्दों के मिले-जुले नाच और तफ़रीहों का इन्तिज़ाम किया जाता है। क़ुरआन साफ़ कह रहा है कि ये सब लोग मुजरिम हैं। सिर्फ़ आख़िरत ही में नहीं, दुनिया में भी इनको सज़ा मिलनी चाहिए। लिहाज़ा एक इस्लामी हुकूमत का फ़र्ज़ है कि बेहयाई फैलानेवाले उन तमाम ज़रिओं और दरवाज़ों को बन्द करे। जिन कामों और हरकतों को क़ुरआन यहाँ पब्लिक के ख़िलाफ़ जुर्म क़रार दे रहा है और फ़ैसला कर रहा है कि उनको करनेवाले सज़ा के हक़दार हैं, उनको इस्लामी हुकूमत की सज़ाओं से मुताल्लिक़ क़ानून में सज़ा के लायक़ ठहराया जाना चाहिए जिनपर पुलिस कार्रवाई कर सके।

17. यानी तुम लोग नहीं जानते कि इस तरह की एक-एक हरकत के असरात समाज में कहाँ-कहाँ तक पहुँचते हैं, कितने लोगों को मुतास्सिर करते हैं और कुल मिलाकर उनका किस क़द्र नुक़सान समाजी ज़िन्दगी को उठाना पड़ता है। इस चीज़ को अल्लाह ही ख़ूब जानता है। इसलिए अल्लाह पर भरोसा करो और जिन बुराइयों की वह निशानदेही कर रहा है, उन्हें पूरी ताक़त से मिटाने और दबाने की कोशिश करो। ये छोटी-छोटी बातें नहीं हैं जिन्हें बरदाश्त कर लिया जाए। अस्ल में ये बड़ी बातें हैं जिनके करनेवालों को सख़्त सज़ा मिलनी चाहिए।

يَّتَّبِعْ خُطُوٰتِ الشَّيْطٰنِ فَاِنَّهٗ يَاْمُرُ بِالْفَحْشَآءِ وَالْمُنْكَرِ ؕ وَلَوْلَا
فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَتُهٗ مَا زَكٰى مِنْكُمْ مِّنْ اَحَدٍ اَبَدًا ۙ
وَّلٰكِنَّ اللّٰهَ يُزَكِّيْ مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿۲۱﴾ وَلَا يَاْتَلِ اُولُوا
الْفَضْلِ مِنْكُمْ وَالسَّعَةِ اَنْ يُّؤْتُوْٓا اُولِي الْقُرْبٰى وَالْمَسٰكِيْنَ
وَالْمُهٰجِرِيْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۖ وَلْيَعْفُوْا وَلْيَصْفَحُوْا ؕ
اَلَا تُحِبُّوْنَ اَنْ يَّغْفِرَ اللّٰهُ لَكُمْ ؕ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿۲۲﴾

करेगा तो वह तो उसे बेहयाई और बुराई ही का हुक्म देगा। अगर अल्लाह की मेहरबानी और उसका रहम व करम तुमपर न होता तो तुममें से कोई शख़्स पाक न हो सकता।[18] मगर अल्लाह ही जिसे चाहता है पाक कर देता है, और अल्लाह सुननेवाला और जाननेवाला है।[19]

(22) तुममें से जो लोग हैसियतवाले और क़ुदरत रखनेवाले हैं वे इस बात की क़सम न खा बैठें कि अपने रिश्तेदारों, मिस्कीनों और अल्लाह के रास्ते में हिजरत करनेवाले लोगों की मदद न करेंगे। उन्हें माफ़ कर देना चाहिए और अनदेखी कर देनी चाहिए। क्या तुम नहीं चाहते कि अल्लाह तुम्हें माफ़ करे? और अल्लाह की सिफ़त यह है कि वह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।[20]

18. यानी शैतान तो तुम्हें बुराई की गन्दगियों में लथपथ करने के लिए इस तरह तुला बैठा है कि अगर अल्लाह अपनी मेहरबानी से तुमको अच्छे और बुरे का फ़र्क़ न समझाए और तुमको सुधार की तालीम और ताक़त न दे तो तुममें से कोई शख़्स भी अपने बल-बूते पर पाक न हो सके।
19. यानी अल्लाह की यह मरज़ी कि वह किसे पाकीज़गी दे, अन्धा-धुन्ध नहीं है, बल्कि इल्म (ज्ञान) की बुनियाद पर है। अल्लाह जानता है कि किसमें भलाई की तलब मौजूद है और कौन बुराई पसन्द करता है। हर शख़्स अपनी तन्हाइयों में जो बातें करता है, उन्हें अल्लाह सुन रहा होता है। हर शख़्स अपने दिल में भी जो कुछ सोचा करता है, अल्लाह उससे बेख़बर नहीं रहता। इसी सीधे तौर पर इल्म की बुनियाद पर अल्लाह फ़ैसला करता है कि किसे पाकीज़गी दे और किसे न दे।
20. हज़रत आइशा (रज़ि॰) फ़रमाती हैं कि ऊपर बयान की गई आयतों में जब अल्लाह तआला ने मेरा बेगुनाह होना बयान कर दिया तो हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने क़सम खा ली कि वे आइन्दा

के लिए मिस्तह-बिन-उसासा की मदद से हाथ खींच लेंगे, क्योंकि उन्होंने रिश्तेदारी का कोई लिहाज़ न किया और न उन एहसानों ही की कुछ शर्म की जो वे सारी उम्र उनपर और उनके ख़ानदान पर करते रहे थे। इसपर यह आयत उतरी और इसको सुनते ही हज़रत अबू-बक्र ने फ़ौरन कहा, "क्यों नहीं, अल्लाह की क़सम हम ज़रूर चाहते हैं कि ऐ हमारे रब, तू हमारी ग़लतियाँ माफ़ फ़रमाए।" चुनाँचे उन्होंने फिर मिस्तह की मदद शुरू कर दी और पहले से ज़्यादा उनपर एहसान करने लगे। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) की रिवायत है कि यह क़सम हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) के अलावा कुछ और सहाबा ने भी खा ली थी कि जिन-जिन लोगों ने इस बुहतान में हिस्सा लिया है उनकी वे कोई मदद न करेंगे। इस आयत के उतरने के बाद उन सबने अपने अहद (प्रतिज्ञा) से रुजू कर लिया। इस तरह देखते-ही-देखते वह कड़वाहट दूर हो गई जो इस फ़ितने ने फैला दी थी।

यहाँ एक सवाल पैदा होता है कि अगर कोई शख़्स किसी बात की क़सम खा ले, फिर बाद में उसे मालूम हो कि उसमें भलाई नहीं है और वह उससे रुजू करके वह बात अपना ले जिसमें भलाई है तो क्या उसे क़सम तोड़ने का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) अदा करना चाहिए या नहीं। फ़क़ीहों का एक गरोह कहता है कि भलाई को अपना लेना ही क़सम का कफ़्फ़ारा है, उसके सिवा किसी और कफ़्फ़ारे की ज़रूरत नहीं। ये लोग इस आयत से दलील लेते हैं कि अल्लाह तआला ने हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) को क़सम तोड़ देने का हुक्म दिया और कफ़्फ़ारा अदा करने की हिदायत नहीं की। इसके अलावा नबी (सल्ल॰) की इस हिदायत को भी वे दलील में पेश करते हैं कि "जो शख़्स किसी बात की क़सम खा ले, फिर उसे मालूम हो कि दूसरी बात इससे बेहतर है तो उसे वही बात करनी चाहिए जो बेहतर है, और यह बेहतर बात को अपना लेना ही उसका कफ़्फ़ारा है।" दूसरा गरोह कहता है कि क़सम तोड़ने के लिए अल्लाह तआला क़ुरआन मजीद में एक साफ़ और मुकम्मल हुक्म उतार चुका है (सूरा-2 बक़रा, आयत-225, सूरा-5 माइदा, आयत-89) जिसे इस आयत ने न तो रद्द ही किया है और न साफ़ अलफ़ाज़ में उसके अन्दर कोई बदलाव ही किया है। इसलिए वह हुक्म अपनी जगह बाक़ी है। अल्लाह तआला ने यहाँ हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) को क़सम तोड़ देने के लिए तो ज़रूर कहा है, मगर यह नहीं कहा कि तुमपर कोई कफ़्फ़ारा वाजिब नहीं है। रही नबी (सल्ल॰) की हिदायत तो उसका मतलब सिर्फ़ यह है कि एक ग़लत या नामुनासिब बात की क़सम खा लेने से जो गुनाह होता है, वह मुनासिब बात अपना लेने से धुल जाता है। इस हिदायत का मक़सद क़सम के कफ़्फ़ारे को ख़त्म कर देना नहीं है, चुनाँचे दूसरी हदीस इसको और साफ़ तौर से बयान कर देती है जिसमें नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है, "जिसने किसी बात की क़सम खा ली हो, फिर उसे मालूम हो कि दूसरी बात इससे बेहतर है, उसे चाहिए कि वही बात करे जो बेहतर है और अपनी क़सम का कफ़्फ़ारा अदा करे।" इससे मालूम हुआ कि क़सम तोड़ने का कफ़्फ़ारा और चीज़ है और भलाई न करने के गुनाह का कफ़्फ़ारा और चीज़। एक चीज़ का कफ़्फ़ारा भलाई को अपना लेना है और दूसरी चीज़ का कफ़्फ़ारा वह है जो क़ुरआन ने ख़ुद मुक़र्रर कर दिया है। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए—तफ़हीमुल- क़ुरआन, तफ़सीर सूरा-38 सॉद, हाशिया-46)

إِنَّ الَّذِيْنَ يَرْمُوْنَ الْمُحْصَنٰتِ الْغٰفِلٰتِ الْمُؤْمِنٰتِ لُعِنُوْا فِي الدُّنْيَا
وَالْاٰخِرَةِ ۠ وَلَهُمْ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ﴿٢٣﴾ يَّوْمَ تَشْهَدُ عَلَيْهِمْ اَلْسِنَتُهُمْ
وَاَيْدِيْهِمْ وَاَرْجُلُهُمْ بِمَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ﴿٢٤﴾ يَوْمَئِذٍ يُّوَفِّيْهِمُ اللّٰهُ
دِيْنَهُمُ الْحَقَّ وَيَعْلَمُوْنَ اَنَّ اللّٰهَ هُوَالْحَقُّ الْمُبِيْنُ ﴿٢٥﴾ اَلْخَبِيْثٰتُ
لِلْخَبِيْثِيْنَ وَالْخَبِيْثُوْنَ لِلْخَبِيْثٰتِ ۚ وَالطَّيِّبٰتُ لِلطَّيِّبِيْنَ
وَالطَّيِّبُوْنَ لِلطَّيِّبٰتِ ۚ اُولٰٓئِكَ مُبَرَّءُوْنَ مِمَّا يَقُوْلُوْنَ ؕ لَهُمْ مَّغْفِرَةٌ

(23) जो लोग पाकदामन, बेख़बर,[21] ईमानवाली औरतों पर तोहमतें लगाते हैं, उनपर दुनिया और आख़िरत में लानत की गई और उनके लिए बड़ा अज़ाब है। (24) वे उस दिन को भूल न जाएँ जबकि उनकी अपनी ज़बानें और उनके अपने हाथ-पाँव उनके करतूतों की गवाही देंगे।[21अ] (25) उस दिन अल्लाह वह बदला उन्हें भरपूर दे देगा जिसके वे हक़दार हैं और उन्हें मालूम हो जाएगा कि अल्लाह ही हक़ है, सच को सच कर दिखानेवाला।

(26) गन्दी औरतें गन्दे मर्दों के लिए हैं और गन्दे मर्द गन्दी औरतों के लिए। पाकीज़ा औरतें पाकीज़ा मर्दों के लिए हैं और पाकीज़ा मर्द पाकीज़ा औरतों के लिए। उनका दामन पाक है उन बातों से जो बनानेवाले बनाते हैं,[22] उनके लिए मग़फ़िरत है

21. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'ग़ाफ़िलात' इस्तेमाल हुआ है जिससे मुराद हैं वे सीधी-सादी शरीफ़ औरतें जो छल-बट्टे नहीं जानतीं, जिनके दिल पाक हैं, जिन्हें पता नहीं कि बदचलनी क्या होती है और कैसे की जाती है; जिनके दिमाग़ के किसी कोने में भी यह अन्देशा नहीं गुज़रता कि कभी कोई उनपर भी इलज़ाम लगा बैठेगा। हदीस में आता है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "पाकदामन औरतों पर तुहमत लगाना उन सात बड़े गुनाहों में से है जो तबाह कर देनेवाले हैं।" और तबरानी में हज़रत हुज़ैफ़ा की रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "एक पाकदामन औरत पर तुहमत लगाना सौ साल के आमाल को बरबाद कर देने के लिए काफ़ी है।"

21अ. तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-36 या-सीन, हाशिया-55; सूरा-41 हा-मीम सजदा, हाशिया-25।

22. इस आयत में एक उसूली बात समझाई गई है कि नापाकों (गन्दों) का जोड़ नापाकों ही से लगता है, और पाकीज़ा लोग पाकीज़ा लोगों ही से फ़ितरी तौर पर मेल खाते हैं। एक बदकार

आदमी सिर्फ़ एक ही बुराई नहीं किया करता है कि और तो सब हैसियतों से वह बिलकुल ठीक हो, मगर बस एक बुराई में पड़ा हो। उसके तो रंग-ढंग, आदतों, ख़सलतों हर चीज़ में बहुत-सी बुराइयाँ होती हैं, जो उसकी एक बड़ी बुराई को सहारा देती और परवरिश करती हैं। यह किसी तरह मुमकिन नहीं है कि एक आदमी में एकाएक कोई एक बुराई किसी ग़ैब से आए हुए गोले की तरह फट पड़े जिसकी कोई निशानी उसके चाल-चलन में और उसके रंग-ढंग में न पाई जाती हो। यह एक नफ़सियाती (मनोवैज्ञानिक) हक़ीक़त है जिसको आप हर वक़्त इनसानी ज़िन्दगियों में देखते रहते हैं। अब किस तरह आपकी समझ में यह बात आती है कि एक पाकीज़ा इनसान जिसकी सारी ज़िन्दगी से तुम वाक़िफ़ हो, किसी ऐसी औरत से निबाह कर ले और सालों निहायत मुहब्बत के साथ निबाह किए चला जाता रहे जो बदकार हो। क्या आप सोच सकते हैं कि कोई औरत ऐसी भी हो सकती है कि जो बदकार भी हो और फिर उसकी चाल-ढाल, रंग-ढंग और बातचीत के अन्दाज़ किसी चीज़ से भी उसके बुरे लक्षण ज़ाहिर न होते हों? या एक शख़्स पाक-साफ़ मन और बुलन्द अख़लाक़वाला भी हो और फिर ऐसी औरत से ख़ुश भी रहे जिसके ये रंग-ढंग हों? यह बात यहाँ इसलिए समझाई जा रही है कि आगे से अगर किसी पर कोई इलज़ाम लगाया जाए तो लोग अन्धों की तरह उसे बस सुनते ही न मान लिया करें, बल्कि आँखें खोलकर देखें कि किसपर इलज़ाम लगाया जा रहा है, क्या इलज़ाम लगाया जा रहा है, और वह किसी तरह वहाँ चस्पाँ भी होता है या नहीं? बात लगती हुई हो तो आदमी एक हद तक उसे मान सकता है, या कम-से-कम मुमकिन और हो सकनेवाली समझ सकता है। मगर एक अनोखी बात जिसकी सच्चाई की ताईद करनेवाले आसार कहीं न पाए जाते हों, सिर्फ़ इसलिए कैसे मान ली जाए कि किसी पागल या गन्दी ज़ेहनियतवाले ने उसे मुँह से निकाल दिया है।

कुछ तफ़सीर लिखनेवालों ने इस आयत का यह मतलब भी बयान किया है कि बुरी बातें बुरे लोगों के लिए हैं (यानी वे उनके हक़दार हैं) और भली बातें भले लोगों के लिए हैं, और भले लोग इससे पाक हैं कि वे बातें उनपर चस्पाँ हों जो बुरी बातें बोलनेवाले उनके बारे में कहते हैं। कुछ दूसरे लोगों ने इसका मतलब यह लिया है कि बुरे आमाल बुरे ही लोगों को सजते हैं और अच्छे आमाल अच्छे ही लोगों को शोभा देते हैं। नेक और भले लोग इससे पाक हैं कि वे बुरे आमाल उनपर चस्पाँ हों जो जोड़नेवाले उनसे जोड़ते हैं। कुछ और लोगों ने इसका मतलब यह लिया है कि बुरी बातें बुरे ही लोगों के करने की हैं और भले लोग भली बातें ही किया करते हैं। भले लोग इससे पाक हैं कि वे इस तरह की बातें करें जैसी ये झूठा इलज़ाम लगानेवाले लोग कर रहे हैं। आयत के अलफ़ाज़ में इन सब तफ़सीरों की गुंजाइश है। लेकिन इन अलफ़ाज़ को पढ़कर पहला मतलब जो ज़ेहन में आता है वह वही है जो हम पहले बयान कर चुके हैं और मौक़ा-महल के लिहाज़ से भी जो गहरे मानी उसमें हैं वे इन दूसरे मतलबों में नहीं हैं।

وَّرِزْقٌ كَرِيْمٌ ۝٢٦ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَدْخُلُوْا بُيُوْتًا غَيْرَ بُيُوْتِكُمْ

और अच्छी रोज़ी।

(27) ऐ लोगो[23] जो ईमान लाए हो, अपने घरों के सिवा दूसरे घरों में दाख़िल न

23. इस सूरा के शुरू में जो हुक्म दिए गए थे, वे इसलिए थे कि समाज में बुराई ज़ाहिर हो जाए तो उसकी रोक-थाम कैसे की जाए। अब वे हुक्म दिए जा रहे हैं जिनका मक़सद यह है कि समाज में सिरे से बुराइयों की पैदाइश ही को रोक दिया जाए और रहन-सहन के तौर-तरीक़ों का सुधार करके उन वजहों को दूर कर दिया जाए जिनसे इस तरह की ख़राबियाँ पैदा होती हैं। इन हुक्मों को पढ़ने से पहले दो बातें अच्छी तरह ज़ेहन में बिठा लेनी चाहिएँ—

पहली बात यह कि हज़रत आइशा (रज़ि.) पर लगाए गए झूठ इलज़ाम (इफ़्क) के वाक़िए पर तबसिरा करने के फ़ौरन बाद ये हुक्म बयान करना साफ़ तौर पर इस बात की निशानदेही करता है कि अल्लाह तआला की जाँच-पड़ताल में रसूल (सल्ल.) की बीवी जैसी बुलन्द शख़सियत पर एक खुले बुहतान का इस तरह समाज के अन्दर दाख़िल हो जाना अस्ल में एक शहवानी (कामुक) माहौल की मौजूदगी का नतीजा था, और अल्लाह तआला के नज़दीक इस शहवानी माहौल को बदल देने का कोई तरीक़ा इसके सिवा न था कि लोगों को एक-दूसरे के घरों में बेधड़क आना-जाना बन्द किया जाए, अजनबी औरतों और मर्दों के एक-दूसरे को देखने से और आज़ादी के साथ मर्द-औरतों के मेल-जोल से रोका जाए। औरतों को कुछ क़रीबी रिश्तेदारों के सिवा ग़ैर-महरम रिश्तेदारों और अजनबियों के सामने बन-सँवरकर आने से मना कर दिया जाए, जिस्म-फ़रोशी को पूरी तरह बन्द कर दिया जाए, मर्दों और औरतों को ज़्यादा देर तक बिना शादी के न रहने दिया जाए, और लौंडी-ग़ुलामों तक के अकेलेपन और बेशादी रहने का इलाज किया जाए और उनकी शादी कराने का इन्तिज़ाम किया जाए। दूसरे अलफ़ाज़ में, यूँ समझिए कि औरतों का बेपरदा रहना, और समाज में बहुत-से लोगों का बेशादी के रहना, अल्लाह तआला के इल्म में वे बुनियादी वजहें हैं जिनसे सामाजिक माहौल में एक महसूस न होनेवाली शहवानियत (कामुकता) हर वक़्त जारी रहती, और इसी शहवानियत की बदौलत लोगों की आँखें, उनके कान, उनकी ज़बानें, उनके दिल, सबके सब किसी हक़ीक़ी या ख़याली फ़ितने (Scandal) में पड़ने के लिए हर वक़्त तैयार रहते हैं। इस ख़राबी के सुधार के लिए अल्लाह तआला की हिकमत में उन हुक्मों से ज़्यादा सही, मुनासिब और असर करनेवाली कोई दूसरी तदबीर न थी, वरना वह उनके सिवा कुछ दूसरे हुक्म देता।

दूसरी बात जो इस मौक़े पर समझ लेनी चाहिए वह यह है कि अल्लाह की शरीअत किसी बुराई को सिर्फ़ हराम कर देने, या उसे जुर्म ठहराकर उसकी सज़ा तय कर देने पर बस नहीं करती, बल्कि वह उन वजहों को भी ख़त्म कर देने की फ़िक्र करती है जो किसी शख़्स को उस बुराई में मुब्तला होने पर उकसाते हों, या उसके लिए मौक़े देते हों, या उसपर मजबूर कर देते हों। साथ ही शरीअत जुर्म के साथ जुर्म की वजहों, जुर्म को उभारनेवाली चीज़ों और जुर्म के ज़रिओं (संसाधनों) पर भी पाबन्दी लगाती है, ताकि आदमी को अस्ल जुर्म की ऐन हद पर पहुँचने से

حَتّٰى تَسْتَاْنِسُوْا وَتُسَلِّمُوْا عَلٰٓى اَهْلِهَا ؕ ذٰلِكُمْ خَيْرٌ لَّكُمْ لَعَلَّكُمْ تَذَكَّرُوْنَ ۝ فَاِنْ لَّمْ تَجِدُوْا فِيْهَآ اَحَدًا فَلَا تَدْخُلُوْهَا حَتّٰى يُؤْذَنَ

हुआ करो जब तक कि घरवालों की रज़ामन्दी न ले लो[24] और घरवालों पर सलाम न भेज लो, यह तरीक़ा तुम्हारे लिए बेहतर है। उम्मीद है कि तुम इसका ख़याल रखोगे।[25] (28) फिर अगर वहाँ किसी को न पाओ, तो दाख़िल न हो जब तक कि तुमको इजाज़त

पहले काफ़ी फ़ासले ही पर रोक दिया जाए। वह इसे पसन्द नहीं करती कि लोग हर वक़्त जुर्म की सरहदों पर टहलते रहें और रोज़ पकड़े जाएँ और सज़ाएँ पाया करें। वह सिर्फ़ हिसाब लेनेवाली (Prosecutor) ही नहीं है, बल्कि हमदर्द, सुधारक और मददगार भी है, इसलिए वे तमाम तालीमी, अख़लाक़ी और सामाजिक तदबीरें इस मक़सद के लिए इस्तेमाल करती है कि लोगों को बुराइयों से बचने में मदद दी जाए।

24. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'हत्ता तस्तानिसू' इस्तेमाल हुआ है जिसको आम तौर से लोगों ने 'हत्ता तस्ताज़िनू' के मानी में ले लिया है, लेकिन हक़ीक़त में दोनों लफ़्ज़ों में एक बारीक फ़र्क़ है जिसको नज़र-अन्दाज़ न करना चाहिए। अगर 'हत्ता तस्ताज़िनू' कहा जाता तो आयत का मतलब यह होता कि "लोगों के घरों में न दाख़िल हो, जब तक कि इजाज़त न ले लो।" इस अन्दाज़े-बयान को छोड़कर अल्लाह तआला ने 'हत्ता तस्तानिसू' के अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए हैं। 'इस्तीनास' का माद्दा (धातु) 'उंस' है जो उर्दू ज़बान में भी उसी मानी में बोला जाता है जिसमें अरबी में इस्तेमाल होता है। इस माद्दे से जब 'इस्तीनास' का लफ़्ज़ बोलेंगे तो इसके मानी होंगे 'उंस' (लगाव) मालूम करना या अपने से 'मानूस' (लगाव रखनेवाला) करना तो आयत का सही मतलब यह है कि "लोगों के घरों में न दाख़िल हो जब तक कि उनको मानूस न कर लो या उनका उंस मालूम न कर लो" यानी यह मालूम न कर लो कि तुम्हारा आना घरवाले को नागवार तो नहीं है, वह पसन्द करता है कि तुम उसके घर में दाख़िल हो। इसी लिए हमने इसका तर्जमा 'इजाज़त लेने' के बजाय 'रज़ामन्दी लेने' के अलफ़ाज़ से किया है; क्योंकि यह मतलब अस्ल से ज़्यादा क़रीब है।

25. जाहिलियत के ज़माने में अरबवालों का तरीक़ा यह था कि वे "हुय्यीतुम सबाहन, हुय्यीतुम मसाअन" (Good morning, Good evening) कहते हुए बेधड़क एक-दूसरे के घर में घुस जाते थे और बहुत बार तो घरवालों पर और घर की औरतों पर ऐसी हालत में निगाह पड़ जाती थी जिस हालत में नहीं पड़नी चाहिए। अल्लाह तआला ने इसके सुधार के लिए यह उसूल मुक़र्रर किया कि हर किसी को अपने रहने की जगह में तन्हाई (Privacy) का हक़ हासिल है और किसी दूसरे शख़्स के लिए जाइज़ नहीं है कि वह उसकी तन्हाई में उसकी मरज़ी और इजाज़त के बिना ख़लल डाले। इस हुक्म के उतरने पर नबी (सल्ल०) ने समाज में जो आदाब (शिष्टाचार) और क़ायदे जारी किए उन्हें हम नीचे सिलसिलेवार बयान करते हैं–

(1) नबी (सल्ल०) ने तन्हाई (Privacy) के इस हक़ को सिर्फ़ घरों में दाख़िल होने के सवाल तक महदूद नहीं रखा, बल्कि इसे एक आम हक़ ठहराया जिसके मुताबिक़ दूसरे के घर में झाँकना, बाहर से निगाह डालना, यहाँ तक कि दूसरे का ख़त उसकी इजाज़त के बिना पढ़ना भी मना है। हज़रत सौबान (नबी सल्ल० के आज़ाद किए हुए ग़ुलाम) की रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जब निगाह दाख़िल हो गई तो फिर ख़ुद दाख़िल होने के लिए इजाज़त माँगने का क्या मौक़ा रहा।" (हदीस : अबू-दाऊद) हज़रत हुज़ैल-बिन-शुरहबील कहते हैं कि एक आदमी नबी (सल्ल०) के यहाँ हाज़िर हुआ और बिलकुल दरवाज़े पर खड़ा होकर इजाज़त माँगने लगा। नबी (सल्ल०) ने उससे कहा, "परे हटकर खड़े हो, इजाज़त माँगने का हुक्म तो इसी लिए है कि निगाह न पड़े।" (हदीस : अबू-दाऊद) नबी (सल्ल०) का अपना क़ायदा यह था कि जब किसी के यहाँ तशरीफ़ ले जाते थे तो दरवाज़े के बिलकुल सामने खड़े न होते; क्योंकि उस ज़माने में घरों के दरवाज़ों पर परदे न लटकाए जाते थे। नबी (सल्ल०) दरवाज़े के दाएँ या बाएँ खड़े होकर इजाज़त माँगा करते थे (हदीस : अबू-दाऊद) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के ख़ादिम (सेवक) हज़रत अनस (रज़ि०) फ़रमाते हैं कि एक आदमी ने नबी (सल्ल०) के कमरे में बाहर से झाँका। नबी (सल्ल०) उस वक़्त एक तीर हाथ में लिए हुए थे। आप इस तरह उसकी तरफ़ बढ़े जैसे कि उसके पेट में भोंक देंगे (हदीस : अबू-दाऊद) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन- अब्बास (रज़ि०) की रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिसने अपने भाई की इजाज़त के बिना उसके ख़त में नज़र दौड़ाई वह मानो आग में झाँकता है।" (हदीस : अबू-दाऊद) हदीस : बुख़ारी और मुस्लिम में है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर कोई शख़्स तेरे घर में झाँके और तू एक कंकरी मारकर उसकी आँख फोड़ दे तो कुछ गुनाह नहीं।" इसी मज़मून की एक और हदीस में है कि "जिसने किसी के घर में झाँका और घरवालों ने उसकी आँख फोड़ दी तो उनकी कोई पकड़ नहीं होगी।" इमाम शाफ़िई (रह०) ने इस इरशाद को बिलकुल लफ़्ज़ी मानी में लिया है और वे झाँकनेवाले की आँख फोड़ देने को जाइज़ रखते हैं। लेकिन हनफ़ी आलिम इसका मतलब यह लेते हैं कि यह हुक्म सिर्फ़ निगाह डालने की हालत में नहीं है, बल्कि इस हालत में है कि जबकि कोई शख़्स घर में बिना इजाज़त घुस आए और घरवालों के रोकने पर वह न माने और घरवाले उसको रोकने की कोशिश करें। इस टकराव और ज़ोर-आज़माइश में उसकी आँख फूट जाए या कोई और अंग टूट जाए तो घरवालों की कोई पकड़ न होगी (अहकामुल-क़ुरआन, जस्सास, हिस्सा-3, पेज-385)

(2) फ़क़ीहों ने देखने ही के हुक्म में सुनने को भी शामिल किया है। मसलन अन्धा आदमी अगर बिना इजाज़त आए तो उसकी निगाह न पड़ेगी, मगर उसके कान तो घरवालों की बातें बिना इजाज़त सुनेंगे। यह चीज़ भी नज़र ही की तरह तन्हाई के हक़ में नामुनासिब दख़ल-अन्दाज़ी है।

(3) इजाज़त लेने का हुक्म सिर्फ़ दूसरों के घर जाने की हालत ही में नहीं है, बल्कि ख़ुद अपनी माँ-बहनों के पास जाने की हालत में भी है। एक आदमी ने नबी (सल्ल०) से पूछा, "क्या मैं अपनी माँ के पास जाते वक़्त भी इजाज़त लूँ?" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाँ!" उसने

कहा, "मेरे सिवा उनकी ख़िदमत करनेवाला और कोई नहीं है, क्या हर बार जब मैं उनके पास जाऊँ तो इजाज़त लूँ?" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क्या तू पसन्द करता है कि अपनी माँ को बेलिबास देखे?" (इब्ने-जरीर, अता-बिन-यसार से मुर्सलन रिवायत) अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) का क़ौल है, "अपनी माँ-बहनों के पास भी जाओ तो इजाज़त लेकर जाओ" (इब्ने-कसीर), बल्कि इब्ने-मसऊद तो कहते हैं कि अपने घर में अपनी बीवी के पास जाते हुए भी आदमी को कम-से-कम खँखार देना चाहिए। उनकी बीवी ज़ैनब की रिवायत है कि हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) जब कभी घर में आने लगते तो पहले कोई ऐसी आवाज़ कर देते थे जिससे मालूम हो जाए कि वे आ रहे हैं। वे इसे पसन्द न करते थे कि अचानक घर में आन खड़े हों। (इब्ने-जरीर)

(4) इजाज़त माँगने के हुक्म से सिर्फ़ यह सूरत अलग है कि किसी के घर पर अचानक कोई मुसीबत आ जाए, मसलन आग लग जाए या कोई चोर घुस आए। ऐसे मौक़े पर मदद के लिए बिना इजाज़त जा सकते हैं।

(5) पहले-पहले जब इजाज़त लेने का क़ायदा मुक़र्रर किया गया तो लोग उसके आदाब न जानते थे। एक बार एक शख़्स नबी (सल्ल०) के यहाँ आया और दरवाज़े पर से पुकारकर कहने लगा, "क्या मैं घुस आऊँ?" नबी (सल्ल०) ने अपनी लौंडी रौज़ा से फ़रमाया, "यह आदमी इजाज़त माँगने का तरीक़ा नहीं जानता। ज़रा उठकर उसे बता कि यूँ कहना चाहिए, अस्सलामु अलैकुम, क्या मैं आ जाऊँ?" (हदीस : इब्ने-जरीर, अबू-दाऊद) जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह कहते हैं कि मैं अपने मरहूम बाप के क़र्ज़ों के सिलसिले में नबी (सल्ल०) के यहाँ गया और दरवाज़ा खटखटाया। आप (सल्ल०) ने पूछा, "कौन है?" मैंने अर्ज़ किया, "मैं हूँ।" आपने दो तीन बार फ़रमाया, "मैं हूँ? मैं हूँ?" यानी इस मैं हूँ से कोई क्या समझे कि तुम कौन हो (हदीस : अबू-दाऊद) एक साहब कलदा-बिन-हंबल एक काम से नबी (सल्ल०) के यहाँ गए और सलाम के बिना यूँ ही जा बैठे। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "बाहर जाओ, और अस्सलामु अलैकुम कहकर अन्दर आओ।" (हदीस : अबू-दाऊद) इजाज़त लेने का सही तरीक़ा यह था कि आदमी अपना नाम बताकर इजाज़त माँगे। हज़रत उमर (रज़ि०) के बारे में रिवायत है कि वे नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर होते तो कहते "अस्सलामु अलै-क ऐ अल्लाह के रसूल, क्या उमर अन्दर आ सकता है?" (हदीस : अबू-दाऊद) इजाज़त लेने के लिए नबी (सल्ल०) ने ज़्यादा-से-ज़्यादा तीन बार पुकारने की हद तय कर दी और फ़रमाया, "अगर तीसरी बार पुकारने पर भी जवाब न आए तो वापस हो जाओ।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अबू-दाऊद) यही नबी (सल्ल०) का अपना तरीक़ा भी था। एक बार आप हज़रत सअद-बिन-उबादा के यहाँ गए और 'अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह' कहकर दो बार इजाज़त माँगी, मगर अन्दर से जवाब न आया। तीसरी बार जवाब न मिलने पर आप (सल्ल०) वापस हो गए। हज़रत सअद अन्दर से दौड़कर आए और अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं आपकी आवाज़ सुन रहा था, मगर मेरा जी चाहता था कि आपकी मुबारक ज़बान से मेरे लिए जितनी बार भी सलाम और रहमत की दुआ निकल जाए अच्छा है, इसलिए मैं बहुत धीरे-धीरे जवाब देता रहा।" (हदीस : अबू-दाऊद, अहमद) यह तीन बार पुकारना लगातार न होना चाहिए, बल्कि ज़रा ठहर-ठहरकर पुकारना चाहिए, ताकि घर

لَكُمْ ؕ وَاِنْ قِيْلَ لَكُمُ ارْجِعُوْا فَارْجِعُوْا هُوَ اَزْكٰى لَكُمْ ؕ وَاللّٰهُ بِمَا
تَعْمَلُوْنَ عَلِيْمٌ ۝٢٨ لَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ تَدْخُلُوْا بُيُوْتًا غَيْرَ
مَسْكُوْنَةٍ فِيْهَا مَتَاعٌ لَّكُمْ ؕ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ مَا تُبْدُوْنَ وَمَا

न दे दी जाए,[26] और अगर तुमसे कहा जाए कि वापस चले जाओ, तो वापस हो जाओ। यह तुम्हारे लिए ज़्यादा पाकीज़ा तरीक़ा है,[27] और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसे ख़ूब जानता है। (29) अलबत्ता तुम्हारे लिए इसमें कोई हरज नहीं है कि ऐसे घरों में दाख़िल हो जाओ जो किसी के रहने की जगह न हों और जिनमें तुम्हारे फ़ायदे (या काम) की कोई चीज़ हो,[28] तुम जो कुछ ज़ाहिर करते हो और जो कुछ छिपाते हो सबकी

का मालिक अगर कोई ऐसा काम कर रहा है जिसकी वजह से वह जवाब नहीं दे सकता तो उसे काम से निबटने का मौक़ा मिल जाए।

(6) इजाज़त या तो ख़ुद घरवाले की भरोसे लायक़ है या फिर किसी ऐसे शख़्स की जिसके बारे में आदमी सही तौर पर यह समझ रहा हो कि वह घरवाले की तरफ़ से इजाज़त दे रहा है, मसलन घरेलू नौकर या कोई और ज़िम्मेदार क़िस्म का शख़्स। कोई छोटा-सा बच्चा अगर कह दे कि आ जाओ तो उसपर भरोसा करके दाख़िल न हो जाना चाहिए।

(7) इजाज़त माँगने में नामुनासिब तौर से अड़ जाना, या इजाज़त न मिलने की हालत में दरवाज़े पर जमकर खड़े हो जाना जाइज़ नहीं है। अगर तीन बार इजाज़त माँगने के बाद घरवाले की तरफ़ से इजाज़त न मिले, या वह मिलने से इनकार कर दे तो वापस चले जाना चाहिए।

26. यानी किसी के ख़ाली घर में दाख़िल हो जाना जाइज़ नहीं है, यह और बात है कि घर के मालिक ने आदमी को ख़ुद इस बात की इजाज़त दी हो। मसलन उसने आपसे कह दिया हो कि अगर मैं मौजूद न हूँ तो आप मेरे कमरे में बैठ जाइएगा, या वह किसी और जगह पर हो और आपकी ख़बर मिलने पर वह कहला भेजे कि आप तशरीफ़ रखिए, मैं अभी आता हूँ। वरना सिर्फ़ यह बात कि मकान में कोई नहीं है, या अन्दर से कोई नहीं बोलता, किसी के लिए यह जाइज़ नहीं कर देती कि वह बिना इजाज़त दाख़िल हो जाए।

27. यानी इसपर बुरा न मानना चाहिए। एक आदमी को हक़ है कि वह किसी से न मिलना चाहे तो इनकार कर दे, या कोई काम मुलाक़ात में रुकावट हो तो मजबूरी ज़ाहिर कर दे। ''इरजिऊ'' (वापस हो जाओ) के हुक्म का फ़क़ीहों ने यह मतलब लिया है कि इस सूरत में दरवाज़े के सामने डटकर खड़े हो जाने की इजाज़त नहीं है, बल्कि आदमी को वहाँ से हट जाना चाहिए। किसी शख़्स को यह हक़ नहीं है कि दूसरे को मुलाक़ात पर मजबूर करे, या उसके दरवाज़े पर ठहरकर उसे परेशान करने की कोशिश करे।

28. इससे मुराद हैं होटल, सराय, मेहमानख़ाने, दुकानें, मुसाफ़िरख़ाने वग़ैरा, जहाँ लोगों के लिए

تَكۡتُمُوۡنَ۝۲۹ قُلۡ لِّلۡمُؤۡمِنِيۡنَ يَغُضُّوۡا مِنۡ اَبۡصَارِهِمۡ وَيَحۡفَظُوۡا

अल्लाह को ख़बर है।

(30) ऐ नबी, ईमानवाले मर्दों से कहो कि अपनी नज़रें बचाकर रखें[29] और अपनी

आने की आम इजाज़त हो।

29. अस्ल अरबी में अलफ़ाज़ हैं, ''यग़ुज़्ज़ू मिन अबूसारिहिम।'' 'ग़ज़्ज़' का मतलब है किसी चीज़ को कम करना, घटाना और नीचे करना। 'ग़ज़्ज़े-बसर' का तर्जमा आम तौर पर निगाह नीची करना या रखना किया जाता है। लेकिन अस्ल में इस हुक्म का मतलब हर वक़्त नीचे ही देखते रहना नहीं है, बल्कि पूरी तरह निगाह भरकर न देखना, और निगाहों को देखने के लिए बिलकुल आज़ाद न छोड़ देना है। यह मतलब 'नज़र बचाने' से ठीक अदा होता है, यानी जिस चीज़ को देखना मुनासिब न हो उससे नज़र हटा ली जाए, चाहे इसके लिए आदमी निगाह नीची करे या किसी और तरफ़ उसे बचा ले जाए। 'मिन अबूसारिहिम' (अपनी नज़रों में से) में लफ़्ज़ 'मिन' (से) 'कुछ' के मानी में इस्तेमाल हुआ है, यानी हुक्म तमाम नज़रों को बचाने का नहीं है, बल्कि 'कुछ' नज़रों को बचाने का है। दूसरे अलफ़ाज़ में अल्लाह तआला का मक़सद यह नहीं है कि किसी चीज़ को भी निगाह भरकर न देखा जाए, बल्कि वह सिर्फ़ एक ख़ास दायरे में निगाह पर यह पाबन्दी लगाना चाहता है। अब यह बात मौक़ा-महल से मालूम होती है कि यह पाबन्दी जिस चीज़ पर लगाई गई है वह है मर्दों का औरतों को देखना, या दूसरे लोगों के छिपाने लायक़ अंगों पर निगाह डालना, या गन्दे मनाज़िर पर निगाह जमाना।

अल्लाह की किताब के इस हुक्म की जो तशरीह नबी (सल्ल.) ने की है, उसकी तफ़सीलात नीचे दी जा रही हैं—

(1) आदमी के लिए यह बात हलाल नहीं है कि वह अपनी बीवी या अपनी महरम औरतों के सिवा किसी दूसरी औरत को निगाह भरकर देखे। एक बार अचानक नज़र पड़ जाए तो वह माफ़ है, लेकिन यह माफ़ नहीं है कि आदमी ने पहली नज़र में जहाँ कोई कशिश महसूस की हो, वहाँ फिर नज़र दौड़ाए। नबी (सल्ल.) ने इस तरह की नज़रबाज़ी को आँख की बदकारी बताया है। आप (सल्ल.) का फ़रमान है कि आदमी अपने तमाम हवास (इन्द्रियों) से बदकारी करता है। देखना आँख की बदकारी है। लगावट की बातचीत ज़बान की बदकारी है। आवाज़ से मज़ा लेना कानों की बदकारी है। हाथ लगाना और नाजाइज़ मक़सद के लिए चलना हाथ-पाँव की बदकारी है। बदकारी की ये सारी शुरुआती बातें जब पूरी हो चुकती हैं, तब शर्मगाहें या तो इसको पूरा कर देती हैं या पूरा करने से रह जाती हैं (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अबू-दाऊद) हज़रत बुरैदा की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने हज़रत अली (रज़ि.) से फ़रमाया, ''ऐ अली, एक नज़र के बाद दूसरी नज़र न डालना। पहली नज़र तो माफ़ है, मगर दूसरी माफ़ नहीं।'' (हदीस : अहमद, तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, दारमी) हज़रत जरीर-बिन-अब्दुल्लाह बजली कहते हैं कि मैंने नबी (सल्ल.) से पूछा, ''अचानक निगाह पड़

जाए तो क्या करूँ।" फ़रमाया, "फ़ौरन निगाह फेर लो, या नीची कर लो।" (हदीस : मुस्लिम, अहमद, अबू-दाऊद, नसई) अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि.) रिवायत करते हैं कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "अल्लाह तआला फ़रमाता है कि निगाहें इबलीस के ज़हरीले तीरों में से एक तीर है। जो शख़्स मुझसे डरकर उसको छोड़ देगा मैं उसके बदले उसे ऐसा ईमान दूँगा जिसकी मिठास वह अपने दिल में पाएगा।" (हदीस : तबरानी) अबू-उमामा की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "जिस मुसलमान की निगाह किसी औरत की ख़ूबसूरती पर पड़े और वह निगाह हटा ले तो अल्लाह उसकी इबादत में लुत्फ़ और लज़्ज़त पैदा कर देता है।" (हदीस : मुसनद अहमद) इमाम जाफ़र सादिक़ अपने बाप इमाम मुहम्मद बाक़र से और वे हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह अनसारी (रज़ि.) से रिवायत करते हैं कि हिज्जतुल-वदाअ के मौक़े पर नबी (सल्ल.) के चचेरे भाई फ़ज़्ल-बिन-अब्बास (जो उस वक़्त एक नौजवान लड़के थे) मशअरे-हराम से वापसी के वक़्त नबी (सल्ल.) के साथ ऊँट पर सवार थे। रास्ते से जब औरतें गुज़रने लगीं तो फ़ज़्ल उनकी तरफ़ देखने लगे। नबी (सल्ल.) ने उनके मुँह पर हाथ रखा और उसे दूसरी तरफ़ फेर दिया (हदीस : अबू-दाऊद) इसी हिज्जतुल-वदाअ का क़िस्सा है कि ख़सअम नामक क़बीले की एक औरत रास्ते में नबी (सल्ल.) को रोककर हज के बारे में एक मसला पूछने लगी और फ़ज़्ल-बिन-अब्बास (रज़ि.) ने उसपर निगाहें गाड़ दीं। नबी (सल्ल.) ने उनका मुँह पकड़कर दूसरी तरफ़ कर दिया।

(हदीस : बुख़ारी, अबू-दाऊद, तिरमिज़ी)

(2) इससे किसी को यह ग़लतफ़हमी न हो कि औरतों को खुले मुँह फिरने की आम इजाज़त थी, तभी तो 'ग़ज़्ज़े-बसर' (निगाहें बचाने) का हुक्म दिया गया, वरना अगर चेहरे के परदे को रिवाज दिया जा चुका होता तो फिर नज़र बचाने या न बचाने का क्या सवाल। यह दलील अक़्ली हैसियत से भी ग़लत है और हक़ीक़त के एतिबार से भी। अक़्ली हैसियत से यह इसलिए ग़लत है कि चेहरे के परदे का आम चलन हो जाने के बावजूद ऐसे मौक़े पेश आ सकते हैं जबकि अचानक किसी औरत और मर्द का आमना-सामना हो जाए। और एक परदा करनेवाली औरत को भी कई बार ऐसी ज़रूरत पड़ सकती है कि वह मुँह खोले। और मुसलमान औरतों में परदे का रिवाज हो जाने के बावजूद बहरहाल ग़ैर-मुस्लिम औरतें तो बेपरदा ही रहेंगी। लिहाज़ा सिर्फ़ निगाहें बचाने का हुक्म इस बात की दलील नहीं बन सकता कि इससे औरतों का खुले मुँह फिरना ज़रूरी हो जाए। और सच्चाई के एतिबार से यह इसलिए ग़लत है कि सूरा-33 अहज़ाब में हिजाब के हुक्मों को उतारने के बाद जो परदा मुस्लिम समाज में रिवाज पा गया था, उसमें चेहरे का परदा शामिल था और नबी (सल्ल.) के मुबारक दौर में उसका राइज होना बहुत-सी रिवायतों से साबित है। 'इफ़्क' के वाक़िए के बारे में हज़रत आइशा (रज़ि.) का बयान जो बहुत भरोसेमन्द सनदों से बयान हुआ है, उसमें वे फ़रमाती हैं कि "जंगल से वापस आकर जब मैंने देखा कि क़ाफ़िला चला गया है तो मैं बैठ गई और नींद इस तरह छाई कि वहीं पड़कर सो गई। सुबह को सफ़वान-बिन-मुअत्तल वहाँ से गुज़रा तो दूर से किसी को पड़े देखकर उधर आ गया। वह मुझे देखते ही पहचान गया; क्योंकि हिजाब के हुक्म से पहले वह मुझे देख चुका था। मुझे पहचानकर जब उसने

'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन' पढ़ा तो उसकी आवाज़ से मेरी आँख खुल गई और मैंने अपनी चादर से अपना मुँह ढाँक लिया।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अहमद, इब्ने-जरीर, सीरत इब्ने-हिशाम) अबू-दाऊद, किताबुल-जिहाद में एक वाक़िआ बयान हुआ है कि एक औरत, उम्मे-ख़ल्लाद का लड़का एक जंग में शहीद हो गया था। वे उसके बारे में पूछने के लिए नबी (सल्ल.) के पास आईं, मगर इस हाल में भी चेहरे पर नक़ाब पड़ी हुई थी। कुछ सहाबा ने हैरत के साथ कहा कि इस वक़्त भी तुम्हारे चेहरे पर नक़ाब है? यानी बेटे के शहीद होने की ख़बर सुनकर तो एक माँ को तन-बदन का होश नहीं रहता, और तुम इस इत्मीनान के साथ परदे में आई हो। जवाब में वे कहने लगीं, "मैंने बेटा तो ज़रूर खो दिया है, मगर अपनी हया तो नहीं खो दी।" अबू-दाऊद ही में हज़रत आइशा (रज़ि.) की रिवायत है कि एक औरत ने परदे के पीछे से हाथ बढ़ाकर अल्लाह के रसूल (सल्ल.) को दरख़्वास्त दी। नबी (सल्ल.) ने पूछा, "यह औरत का हाथ है या मर्द का?" उसने कहा, "औरत ही का है।" फ़रमाया, "औरत का हाथ है तो कम-से-कम नाख़ून ही मेंहदी से रंग लिए होते।" रहे हज के मौक़े के वे दो वाक़िआत जिनका हमने ऊपर ज़िक्र किया है तो वे नबी (सल्ल.) के दौर में चेहरे का परदा न होने की दलील नहीं बन सकते; क्योंकि इहराम के लिबास में नक़ाब का इस्तेमाल मना है। फिर भी इस हालत में भी एहतियातपसन्द औरतें ग़ैर-मर्दों के सामने चेहरा खोल देना पसन्द नहीं करती थीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) की रिवायत है कि "हिज्जतुल-वदाअ के सफ़र में हम लोग इहराम की हालत में मक्का की तरफ़ जा रहे थे। जब मुसाफ़िर हमारे पास से गुज़रने लगते तो हम औरतें अपने सिर से चादरें खींचकर मुँह पर डाल लेतीं, और जब वे गुज़र जाते तो हम मुँह खोल देती थीं।"

(हदीस : अबू-आऊद)

(3) निगाहें बचाने के इस हुक्म से सिर्फ़ वे हालात अलग हैं जिनमें किसी औरत को देखने की काई हक़ीक़ी ज़रूरत हो। मसलन कोई आदमी किसी औरत से निकाह करना चाहता हो। इस ग़रज़ के लिए औरत को देख लेने की न सिर्फ़ इजाज़त है, बल्कि ऐसा करना कम-से-कम पसन्दीदा तो ज़रूर है। मुग़ीरा-बिन-शोबा (रज़ि.) की रिवायत है कि मैंने एक जगह निकाह का पैग़ाम दिया। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने पूछा, "तुमने लड़की को देख भी लिया है?" मैंने अर्ज़ किया, "नहीं!" फ़रमाया, "उसे देख लो। इस तरह ज़्यादा उम्मीद की जा सकती है कि तुम्हारे बीच निबाह होगा।" (हदीस : अहमद, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने-माजा, दारमी) अबू-हुरैरा (रज़ि.) की रिवायत है कि एक आदमी ने कहीं शादी का पैग़ाम दिया। नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "लड़की को देख लो, क्योंकि अनसार की आँखों में कुछ ख़राबी होती है।" (हदीस : मुस्लिम, नसई, अहमद) जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि.) कहते हैं कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "तुममें से जब कोई आदमी किसी औरत से निकाह करना चाहता हो तो जहाँ तक हो सके उसे देखकर यह इत्मीनान कर लेना चाहिए कि क्या औरत में ऐसी कोई ख़ूबी है जो उसके साथ निकाह करने पर आमादा करनेवाली हो?" (हदीस : अहमद, अबू-दाऊद) मुसनद अहमद में अबू-हुमैदा की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने इस ग़रज़ के लिए देखने की इजाज़त को "फ़ला जुना-ह अलैहि" के अलफ़ाज़ में बयान

فُرُوْجَهُمْ ۭ ذٰلِكَ اَزْكٰى لَهُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ خَبِيْرٌۢ بِمَا يَصْنَعُوْنَ ۝۳۰

शर्मगाहों की हिफ़ाज़त करें,[30] यह उनके लिए ज़्यादा पाकीज़ा तरीक़ा है, जो कुछ वे करते हैं अल्लाह उससे बाख़बर रहता है।

किया है जिसका मतलब है "ऐसा कर लेने में कोई हरज नहीं है।" साथ ही इसकी भी इजाज़त दी कि लड़की की बेख़बरी में भी उसको देखा जा सकता है। इसी से फ़क़ीहों ने यह उसूल निकाला है कि ज़रूरत से देखने की दूसरी सूरतें भी जाइज़ हैं। जैसे किसी जुर्म की जाँच-पड़ताल के सिलसिले में किसी मुश्तबह (सन्दिग्ध) औरत को देखना, या अदालत में गवाही के मौक़े पर क़ाज़ी (जज) का किसी गवाह औरत को देखना, या इलाज के लिए डॉक्टर का मरीज़ औरत को देखना वग़ैरा।

(4) निगाह बचाने के हुक्म का मंशा यह भी है कि आदमी किसी औरत या मर्द के सतर (छिपाने लायक़ अंगों) पर निगाह न डाले। नबी (सल्ल.) का फ़रमान है, "कोई मर्द किसी मर्द के सतर को न देखे, और कोई औरत किसी औरत के सतर को न देखे।" (हदीस : अहमद, मुस्लिम, अबू-दाऊद, तिरमिज़ी) हज़रत अली (रज़ि.) की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने मुझसे फ़रमाया, "किसी ज़िन्दा या मुर्दा इनसान की जाँघ पर निगाह न डालो।" (हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

30. शर्मगाहों (गुप्तांगों) की हिफ़ाज़त से मुराद सिर्फ़ नाजाइज़ शहवानी जज़्बात (कामुक भावनाओं) से बचना ही नहीं है, बल्कि अपने सतर को दूसरों के सामने खोलने से परहेज़ भी है। मर्द के लिए सतर की हदें नबी (सल्ल.) ने नाभि से घुटने तक तय की हैं। आप (सल्ल.) का फ़रमान है, "मर्द का सतर उसकी नाभि से घुटने तक है।" (हदीस : दारे-क़ुतनी, बैहक़ी) जिस्म के इस हिस्से को बीवी के सिवा किसी दूसरे के सामने जान-बूझकर खोलना हराम है। हज़रत जरहद असलमी जो असहाबे-सुफ़्फ़ा में से एक बुज़ुर्ग थे, रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की मजलिस में एक बार मेरी जाँघ खुली हुई थी। नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि जाँघ छुपाने के क़ाबिल चीज़ है?" (हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, मुवत्ता) हज़रत अली (रज़ि.) की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "अपनी जाँघ कभी न खोलो।" (हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा) सिर्फ़ दूसरों के सामने ही नहीं, तन्हाई में भी नंगा रहना मना है। चुनाँचे अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की हिदायत है, "ख़बरदार! कभी नंगे न रहो; क्योंकि तुम्हारे साथ वे हैं जो कभी तुमसे अलग नहीं होते (यानी भलाई और रहमत के फ़रिश्ते), सिवाय उस वक़्त जब तुम पेशाब-पाख़ाना करते हो या अपनी बीवियों के पास जाते हो। लिहाज़ा उनसे शर्म करो और उनके एहतिराम का ख़याल रखो।" (हदीस : तिरमिज़ी) एक और हदीस में है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "अपने सतर को अपनी बीवी और लौंडी के सिवा हर एक से बचाकर रखो।" सवाल करनेवाले ने पूछा,, "और जब हम तन्हाई में हों?" फ़रमाया, "तो बुज़ुर्ग और बरकतवाला अल्लाह इसका ज़्यादा हक़दार है कि उससे शर्म की जाए।" (हदीस :

وَقُلْ لِّلْمُؤْمِنٰتِ يَغْضُضْنَ مِنْ اَبْصَارِهِنَّ

(31) और ऐ नबी, ईमानवाली औरतों से कह दो कि अपनी नज़रें बचाकर रखें,[31]

अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, इब्ने-माजा)

31. औरतों के लिए भी 'ग़ज़्ज़े-बसर' (निगाहें बचाने) के हुक्म वही हैं जो मर्दों के लिए हैं यानी, उन्हें जान-बूझकर ग़ैर-मर्दों को न देखना चाहिए। निगाह पड़ जाए तो हटा लेनी चाहिए, और दूसरों के सतर (शर्मगाहों) को देखने से बचना चाहिए। लेकिन मर्द के औरत को देखने के मुक़ाबले में औरत के मर्द को देखने के मामले में हुक्म थोड़े-से अलग हैं। एक तरफ़ हदीस में हमको यह वाक़िआ मिलता है कि हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि.) और हज़रत मैमूना (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के पास बैठी थीं, इतने में हज़रत इब्ने-उम्मे-मकतूम (रज़ि.) आ गए। नबी (सल्ल.) ने दोनों बीवियों से फ़रमाया, "इनसे परदा करो!" बीवियों ने अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल, क्या ये अन्धे नहीं हैं? न हमें देखेंगे, न पहचानेंगे।" फ़रमाया, "क्या तुम दोनों भी अन्धी हो? क्या तुम इन्हें नहीं देखतीं?" हज़रत उम्मे-सलमा बताती हैं कि "यह वाक़िआ उस ज़माने का है जब परदे का हुक्म आ चुका था।" (हदीस : अहमद, अबू-दाऊद, तिरमिज़ी) और इसकी ताईद (समर्थन) मुवत्ता की यह रिवायत करती है कि हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास एक अन्धा आदमी आया तो उन्होंने उससे परदा किया। पूछा गया कि आप इससे परदा क्यों करती हैं, यह तो आपको नहीं देख सकता। जवाब में उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "लेकिन मैं तो उसे देख सकती हूँ।" दूसरी तरफ़ हमें हज़रत आइशा (रज़ि.) की यह रिवायत मिलती है कि सन् 7 हि. में कुछ हब्शी मदीना आए और उन्होंने मस्जिदे-नबवी के अहाते में एक तमाशा किया। नबी (सल्ल.) ने ख़ुद हज़रत आइशा (रज़ि.) को यह तमाशा दिखाया। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अहमद) तीसरी तरफ़ हम देखते हैं कि फ़ातिमा- बिन्ते-क़ैस को जब उनके शौहर ने तीन तलाक़ें दे दीं तो सवाल पैदा हुआ कि वे इद्दत कहाँ गुज़ारें। पहले नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "उम्मे-शरीक अनसारिया के यहाँ रहो।" फिर फ़रमाया, "उनके यहाँ मेरे सहाबा बहुत जाते रहते हैं (क्योंकि वे एक बड़ी मालदार और लोगों की माल से मदद करनेवाली औरत थीं, बहुत-से लोग उनके यहाँ मेहमान रहते और वे उनकी ख़ातिरदारी करती थीं) लिहाज़ा तुम इब्ने-उम्मे-मकतूम के यहाँ रहो, वे अन्धे आदमी हैं, तुम उनके यहाँ बिना किसी झिझक के रह सकोगी।" (हदीस : मुस्लिम, अबू-दाऊद) इन रिवायतों को इकट्ठा करने से मालूम होता है कि औरतों के मर्दों को देखने के मामले में उतनी सख़्ती नहीं है जितनी मर्दों के औरतों को देखने के मामले में है। एक मजलिस में आमने-सामने बैठकर देखना मना है। रास्ता चलते हुए या दूर से कोई जाइज़ क़िस्म का खेल-तमाशा देखते हुए मर्दों पर निगाह पड़ना मना नहीं है। और कोई हक़ीक़ी ज़रूरत पेश आ जाए तो एक घर में रहते हुए भी देखने में कोई हरज नहीं है। इमाम ग़ज़ाली और इब्ने-हजर अस्क़लानी ने भी रिवायतों से क़रीब-क़रीब यही नतीजा निकाला है। शौकानी नैलुल-औतार में इब्ने-हजर की लिखी हुई यह बात नक़्ल करते हैं कि

وَيَحْفَظْنَ فُرُوْجَهُنَّ

और अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त करें,[32]

"जाइज़ होने की ताईद इस बात से भी होती है कि औरतों के बाहर निकलने के मामले में हमेशा जाइज़ होने पर ही अमल रहा है। मस्जिदों में, बाज़ारों में और सफ़रों में औरतें तो नक़ाब मुँह पर डालकर जाती थीं कि मर्द उनको न देखें, मगर मर्दों को कभी यह हुक्म नहीं दिया गया कि वे भी नक़ाब ओढ़ें; ताकि औरतें उनको न देखें। इससे मालूम होता है कि दोनों के मामले में हुक्म अलग-अलग है।" (हिस्सा-6, पेज-101) फिर भी यह किसी तरह भी जाइज़ नहीं है कि औरतें इत्मीनान से मर्दों को घूरें और उनकी ख़ूबसूरती से आँखें सेंकें।

32. यानी नाजाइज़ शहवतरानी (यौन-इच्छा) पूरी करने से भी बचें और अपना सतर (शर्मगाहें) दूसरों के सामने खोलने से भी। इस मामले में औरतों के लिए भी वही हुक्म हैं जो मर्दों के लिए हैं। लेकिन औरत के सतर की हदें मर्दों से अलग हैं। और औरत का सतर मर्दों के लिए अलग है और औरतों के लिए अलग।

मर्दों के लिए औरत का सतर हाथ और मुँह के सिवा उसका पूरा जिस्म है जिसे शौहर के सिवा किसी दूसरे मर्द, यहाँ तक कि बाप और भाई के सामने भी न खुलना चाहिए, और औरत को ऐसा बारीक या चुस्त लिबास भी न पहनना चाहिए जिससे बदन अन्दर से झलके या बदन की बनावट नुमायाँ हो। हज़रत आइशा (रज़ि.) की रिवायत है कि उनकी बहन हज़रत असमा-बिन्ते-अबी-बक्र (रज़ि.) अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के सामने आईं और वे बारीक कपड़े पहने हुए थीं। नबी (सल्ल.) ने फ़ौरन मुँह फेर लिया और फ़रमाया, "ऐ असमा, औरत जब बालिग़ हो जाए तो जाइज़ नहीं है कि मुँह और हाथ के सिवा उसके जिस्म का कोई हिस्सा दिखाई दे।" (हदीस : अबू-दाऊद) इसी तरह का एक और वाक़िआ इब्ने-जरीर ने हज़रत आइशा (रज़ि.) से रिवायत किया है कि उनके यहाँ उनके अख़ियानी (माँ एक, मगर बाप अलग-अलग के रिश्ते से) भाई अब्दुल्लाह-बिन-तुफ़ैल की बेटी आई हुई थीं। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) घर में तशरीफ़ लाए तो उन्हें देखकर मुँह फेर लिया। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! यह मेरी भतीजी है।" आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "जब औरत बालिग़ हो जाए तो उसके लिए हलाल नहीं है कि वह ज़ाहिर करे अपने मुँह के सिवा और अपने हाथ के सिवा, और हाथ की हद आप (सल्ल.) ने ख़ुद अपनी कलाई पर हाथ रखकर इस तरह बताई कि आप (सल्ल.) की मुट्ठी और हथेली के बीच सिर्फ़ एक मुट्ठी की जगह और बाक़ी थी।" इस मामले में सिर्फ़ इतनी छूट है कि अपने महरम रिश्तेदारों (जैसे बाप-भाई वग़ैरा) के सामने औरत अपने जिस्म का उतना हिस्सा खोल सकती है जिसे घर के काम-काज करते हुए खोलने की ज़रूरत पेश आती है, जैसे आटा गूंधते हुए आस्तीनें ऊपर चढ़ा लेना, या घर का फ़र्श धोते हुए पाँयचे कुछ ऊपर कर लेना।

और औरत के लिए औरत के सतर की हदें वही हैं जो मर्द के लिए मर्द के सतर की हैं, यानी

وَلَا يُبْدِيْنَ زِيْنَتَهُنَّ اِلَّا مَا ظَهَرَ مِنْهَا

और[33] अपना बनाव-सिंगार न दिखाएँ[34] सिवाय उसके जो ख़ुद ज़ाहिर हो जाए,[35]—

नाभि से लेकर घुटने के बीच का हिस्सा। इसका यह मतलब नहीं है कि औरतों के सामने औरत आधी नंगी रहे, बल्कि मतलब सिर्फ़ यह है कि लाफ़ (नाभि) और घुटने के बीच का हिस्सा ढाँकना फ़र्ज़ है और दूसरे हिस्सों का ढाँकना फ़र्ज़ नहीं है।

33. यह बात निगाह में रहे कि अल्लाह की शरीअत औरतों से सिर्फ़ उतनी ही माँग नहीं करती जो मर्दों से उसने की है, यानी नज़र बचाना और शर्मगाहों की हिफ़ाज़त करना, बल्कि वह उनसे कुछ और माँगें भी करती है, जो उसने मर्दों से नहीं की हैं। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि इस मामले में औरत और मर्द बराबर नहीं हैं।

34. 'बनाव-सिंगार' हमने 'ज़ीनत' का तर्जमा किया है जिसके लिए दूसरा लफ़्ज़ 'सजावट' भी है। इसमें तीन चीज़ें आती हैं : ख़ुशनुमा कपड़े, ज़ेवर, और सिर, मुँह और हाथ-पाँव वग़ैरा की तरह-तरह की सजावटें जो आम तौर से औरतें दुनिया में करती हैं जिनके लिए मौजूदा ज़माने में मेक-अप (MAKE-UP) का लफ़्ज़ बोला जाता है। यह बनाव-सिंगार किसको न दिखाया जाए, इसकी तफ़सील आगे आ रही है।

35. इस आयत के मतलब को तफ़सीरों के अलग-अलग बयानात ने अच्छा-ख़ासा पेचीदा बना दिया है। वरना अपनी जगह बात बिलकुल साफ़ है। पहले जुमले में कहा गया है कि "ला युब्दी-न ज़ी-न-तहुन-न" (वे अपने बनाव-सिंगार को ज़ाहिर न करें।) और दूसरे जुमले में 'इल-ल' (सिवाय इसके) कहकर इस मना की हुई बात से जिस चीज़ को अलग किया गया है, वह है "जो कुछ इस बनाव-सिंगार में से ज़ाहिर हो या ज़ाहिर हो जाए।" इससे साफ़ मतलब यह मालूम होता है कि औरतों को ख़ुद इसका इज़हार और इसकी नुमाइश नहीं करनी चाहिए, अलबत्ता जो आप-से-आप ज़ाहिर हो जाए (जैसे चादर का हवा से उड़ जाना और किसी बनाव-सिंगार का खुल जाना) या जो आप-से-आप ज़ाहिर हो (जैसे वह चादर जो ऊपर से ओढ़ी जाती है; क्योंकि बहरहाल उसका छिपाना तो मुमकिन नहीं है, और औरत के जिस्म पर होने की वजह से बहरहाल वह भी अपने अन्दर एक कशिश रखती है) उसपर ख़ुदा की तरफ़ से कोई पकड़ नहीं है। यही मतलब इस आयत का हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰), हसन बसरी, इब्ने-सीरीन और इबराहीम नख़ई ने बयान किया है। इसके बरख़िलाफ़ कुछ तफ़सीर लिखनेवालों ने "सिवाय इसके जो ख़ुद ज़ाहिर हो जाए" का मतलब लिया है "जिसे आदत के तौर पर इनसान ज़ाहिर करता है" और फिर वे इसमें मुँह और हाथों को उनकी तमाम सजावटों समेत शामिल कर देते हैं। यानी उनके नज़दीक यह जाइज़ है कि औरत अपने मुँह को मिस्सी और सुर्मे और लाली-पावडर से, और अपने हाथों को अंगूठी, छल्ले और चूड़ियों और कंगन वग़ैरा से सजाकर लोगों के सामने खोले फिरे। यह मतलब इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) और उनके शागिर्दों से बयान हुआ है और हनफ़ी आलिमों के एक अच्छे-ख़ासे गरोह ने इसे क़बूल किया है (अहकामुल-क़ुरआन, जस्सास, हिस्सा-3, पेज-388, 389) लेकिन हमारी समझ में यह बिलकुल

وَلْيَضْرِبْنَ بِخُمُرِهِنَّ عَلَىٰ جُيُوبِهِنَّ ۖ وَلَا يُبْدِينَ زِينَتَهُنَّ إِلَّا

और अपने सीनों पर अपनी ओढ़नियों के आँचल डाले रहें।[36] वे अपना बनाव-सिंगार न

नहीं आता कि "मा ज़-ह-र" (जो ज़ाहिर हो जाए) का मतलब "मा युज़हिरु" (जो कुछ ज़ाहिर किया जाए) अरबी के किस क़ायदे के मुताबिक़ हो सकता है। "ज़ाहिर होने" और "ज़ाहिर करने" में खुला हुआ फ़र्क़ है, और हम देखते हैं कि क़ुरआन साफ़-साफ़ "ज़ाहिर करने" से रोककर "ज़ाहिर होने" के मामले में छूट दे रहा है। इस छूट को "ज़ाहिर करने" की हद तक बढ़ा देना क़ुरआन के भी ख़िलाफ़ है और उन रिवायतों के भी ख़िलाफ़ जिनसे साबित होता है कि नबी (सल्ल॰) के दौर में हिजाब का हुक्म आ जाने के बाद औरतें खुले मुँह नहीं फिरती थीं, और हिजाब के हुक्म में चेहरे का परदा भी शामिल था, और इहराम के सिवा दूसरी तमाम हालतों में नक़ाब को औरतों के लिबास का एक हिस्सा बना दिया गया था। फिर इससे भी ज़्यादा ताज्जुब करने लायक़ बात यह है कि इस छूट के हक़ में दलील के तौर पर यह बात पेश की जाती है कि चेहरा और हाथ औरत के सतर में दाख़िल नहीं हैं। हालाँकि सतर और हिजाब में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। सतर तो वह चीज़ है जिसे महरम मर्दों के सामने खोलना भी जाइज़ नहीं है। रहा हिजाब तो वह सतर से बढ़कर एक चीज़ है जिसे औरतों और ग़ैर-महरम मर्दों के बीच रोक बना दिया गया है, और यहाँ बात सतर की नहीं, बल्कि हिजाब के हुक्मों की है।

36. जाहिलियत के दौर में औरतें सिरों पर एक तरह के कसावे-से बाँधे रखती थीं जिनकी गाँठ जूड़े की तरह पीछे चोटी पर लगाई जाती थी। सामने गिरेबान का एक हिस्सा खुला रहता था, जिससे गला और सीने का ऊपरी हिस्सा साफ़ नुमायाँ होता था। छातियों पर क़मीस के सिवा और कोई चीज़ न होती थी। और पीछे दो-दो, तीन-तीन चोटियाँ लहराती रहती थीं। (तफ़सीर कश्शाफ़, हिस्सा-2, पेज-90; इब्ने-कसीर, हिस्सा-3, पेज-283, 284) इस आयत के उतरने के बाद मुसलमान औरतों में दुपट्टे का रिवाज हुआ, जिसका मक़सद यह नहीं था कि आजकल की लड़कियों की तरह बस उसे बल देकर गले का हार बना लिया जाए, बल्कि यह था कि उसे ओढ़कर सिर, कमर, सीना, सब अच्छी तरह ढाँक लिए जाएँ। ईमानवाली औरतों ने क़ुरआन का यह हुक्म सुनते ही फ़ौरन जिस तरह इसपर अमल किया, उसकी तारीफ़ करते हुए हज़रत आइशा (रज़ि॰) फ़रमाती हैं कि जब सूरा-24 नूर उतरी तो अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से उसको सुनकर लोग अपने घरों की तरफ़ पलटे और जाकर उन्होंने अपनी बीवियों, बेटियों, बहनों को इसकी आयतें सुनाईं। अनसार की औरतों में से कोई ऐसी न थी जो आयत "और अपने सीनों पर अपने दुपट्टों के आँचल डाले रहें" के अलफ़ाज़ सुनकर अपनी जगह बैठी रह गई हो। हर एक उठी और किसी ने अपनी कमर का दुपट्टा खोलकर और किसी ने अपनी चादर उठाकर फ़ौरन उसका दुपट्टा बनाया और ओढ़ लिया। दूसरे दिन सुबह की नमाज़ के वक़्त जितनी औरतें मस्जिदे-नबवी में हाज़िर हुईं, सब दुपट्टे ओढ़े हुए थीं।" इसी सिलसिले की एक और रिवायत में हज़रत आइशा (रज़ि॰) और ज़्यादा तफ़सील यह बताती हैं कि औरतों ने बारीक कपड़े छोड़कर

لِبُعُوْلَتِهِنَّ اَوْ اٰبَآئِهِنَّ اَوْ اٰبَآءِ بُعُوْلَتِهِنَّ اَوْ اَبْنَآئِهِنَّ اَوْ اَبْنَآءِ
بُعُوْلَتِهِنَّ اَوْ اِخْوَانِهِنَّ ———

ज़ाहिर करें मगर इन लोगों के सामने[37] – शौहर, बाप, शौहरों के बाप,[38] अपने बेटे, शौहरों के बेटे,[39] भाई,[40] ———

अपने मोटे कपड़े छाँटे और उनके दुपट्टे बनाए।

(इब्ने-कसीर, हिस्सा-3, पेज-284, हदीस : अबू-दाऊद, किताबुल-लिबास)

यह बात कि दुपट्टा बारीक कपड़े का न होना चाहिए, इन हुक्मों के मिज़ाज और मक़सद पर ग़ौर करने से ख़ुद ही आदमी की समझ में आ जाती है, चुनाँचे अनसार की औरतों ने हुक्म सुनते ही समझ लिया था कि इसका मंशा किस तरह के कपड़े का दुपट्टा बनाने से पूरा हो सकता है। लेकिन नबी (सल्ल.) ने इस बात को भी सिर्फ़ लोगों की समझ पर नहीं छोड़ दिया, बल्कि ख़ुद इसको साफ़-साफ़ बयान कर दिया। देहिया कल्बी कहते हैं कि नबी (सल्ल.) के पास मिस्र की बनी हुई बारीक मलमल (क़बाती) आई। आप (सल्ल.) ने उसमें से एक टुकड़ा मुझे दिया और फ़रमाया, "एक हिस्सा फाड़कर अपना कुर्ता बना लो और एक हिस्सा अपनी बीवी को दुपट्टा बनाने के लिए दे दो, मगर उनसे कह देना कि इसके नीचे एक और कपड़ा लगा लें; ताकि जिस्म की बनावट अन्दर से न झलके।" (हदीस : अबू-दाऊद, किताबुल-लिबास)

37. यानी जिस दायरे में औरत अपनी पूरी सज-धज के साथ आज़ादी के साथ रह सकती है, उसमें ये लोग आते हैं। इस दायरे से बाहर जो लोग भी हैं, चाहे वे रिश्तेदार हों या अजनबी, बहरहाल एक औरत के लिए जाइज़ नहीं है कि वह उनके सामने बन-संवरकर आए। "और अपना बनाव-सिंगार न दिखाएँ सिवाय उसके जो ख़ुद ज़ाहिर हो जाए" के जुमले में जो हुक्म दिया गया था, उसका मतलब यहाँ खोल दिया गया है कि इस महदूद दायरे से बाहर जो लोग भी हों, उनके सामने एक औरत को अपना बनाव-सिंगार जान-बूझकर या बेपरवाही के साथ ख़ुद न ज़ाहिर करना चाहिए। अलबत्ता जो उनकी कोशिश के बावजूद या उनके इरादे के बिना ज़ाहिर हो जाए, या जिसका छिपाना मुमकिन न हो, वह अल्लाह के यहाँ माफ़ है।

38. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'आबा' इस्तेमाल हुआ है जिसके मानी में सिर्फ़ बाप ही नहीं, बल्कि दादा, परदादा और नाना, परनाना भी शामिल हैं। लिहाज़ा एक औरत अपनी दधियाल और ननिहाल, और अपने शौहर की दधियाल और ननिहाल के इन सब बुज़ुर्गों के सामने उसी तरह आ सकती है जिस तरह अपने बाप और ससुर क सामने आ सकती है।

39. बेटों में पोते, परपोते और नवासे, परनवासे सब शामिल हैं। और इस मामले में सगे-सौतेले का कोई फ़र्क़ नहीं है। अपने सौतेले बच्चों की औलाद के सामने औरत उसी तरह आज़ादी के साथ ज़ीनत ज़ाहिर कर सकती है जिस तरह ख़ुद अपनी औलाद और औलाद की औलाद के सामने कर सकती है।

40. 'भाइयों' में सगे और सौतेले और माँ-जाए भाई सब शामिल हैं।

اَوْ بَنِيْٓ اِخْوَانِهِنَّ اَوْ بَنِيْٓ اَخَوٰتِهِنَّ

भाइयों के बेटे,[41] बहनों के बेटे,[42]

41. भाई-बहनों के बेटों से मुराद तीनों तरह के भाई-बहनों की औलाद है, यानी उनके पोते-परपोते और नवासे-परनवासे सब इसमें शामिल हैं।

42. यहाँ चूँकि रिश्तेदारी का दायरा ख़त्म हो रहा है और आगे ग़ैर-रिश्तेदार लोगों का ज़िक्र है, इसलिए आगे बढ़ने से पहले तीन मसलों को अच्छी तरह समझ लीजिए; क्योंकि उनको न समझने से कई उलझनें पैदा होती हैं—

पहला मसला यह है कि कुछ लोग बनाव-सिंगार ज़ाहिर करने की आज़ादी को सिर्फ़ उन रिश्तेदारों तक महदूद समझते हैं जिनका नाम यहाँ लिया गया है, बाक़ी सब लोगों को, यहाँ तक कि सगे चचा और सगे मामूँ तक को, उन रिश्तेदारों में गिनते हैं जिनसे परदा किया जाना चाहिए और दलील यह देते हैं कि उनका नाम क़ुरआन में नहीं लिया गया है। लेकिन यह बात सही नहीं है। सगे चचा और मामूँ तो एक तरफ़, नबी (सल्ल॰) ने तो रज़ाई (दूध के रिश्ते से) चचा और मामूँ से भी परदा करने की हज़रत आइशा (रज़ि॰) को इजाज़त न दी। हदीस की किताबों सिहाह सित्ता और मुसनद अहमद में हज़रत आइशा (रज़ि॰) की अपनी रिवायत है कि अबुल-क़ुऐस के भाई अफ़ला उनके यहाँ आए और अन्दर आने की इजाज़त माँगी। चूँकि परदे का हुक्म आ चुका था, इसलिए हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने इजाज़त न दी। उन्होंने कहलाकर भेजा कि तुम मेरी भतीजी हो; क्योंकि मेरे भाई अबुल-क़ुऐस की बीवी का तुमने दूध पिया है। लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि॰) को इसमें झिझक हो रही थी कि यह रिश्ता भी ऐसा है जिसमें परदा उठा देना जाइज़ हो। इतने में नबी (सल्ल॰) तशरीफ़ ले आए और आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि वे तुम्हारे पास आ सकते हैं। इससे मालूम हुआ कि नबी (सल्ल॰) ने ख़ुद इस आयत को इस मानी में नहीं लिया है कि इसमें जिन-जिन रिश्तेदारों का ज़िक्र आया है उनसे परदा न हो और बाक़ी सबसे हो, बल्कि आप (सल्ल॰) ने इससे यह उसूल लिया है कि जिन-जिन रिश्तेदारों से एक औरत का निकाह हराम है, वे सब इसी आयत के हुक्म में दाख़िल हैं। मसलन चचा, मामूँ, दामाद और दूध के रिश्तेदार। ताबिईन में से हज़रत हसन बसरी ने भी यही राय ज़ाहिर की है, और इसी की ताईद अल्लामा अबू-बक्र जस्सास ने अहकामुल-क़ुरआन में की है। (हिस्सा-3, पेज-390)

दूसरा मसला यह है कि जो रिश्तेदार हमेशा के लिए हराम न हों (यानी जिनसे एक कुँआरी या बेवा औरत का निकाह जाइज़ हो) वे न तो महरम रिश्तेदारों के हुक्म में हैं कि औरतें बेधड़क उनके सामने अपने बनाव-सिंगार के साथ आएँ और न बिलकुल अजनबियों के हुक्म में कि औरतें उनसे वैसा ही मुकम्मल परदा करें, जैसा कि ग़ैरों से किया जाता है। इन दोनों इन्तिहाओं के बीच ठीक-ठीक क्या रवैया होना चाहिए, यह शरीअत में तय नहीं किया गया है; क्योंकि इसे तय नहीं किया जा सकता। इसकी हदें अलग-अलग रिश्तेदारों के मामले में उनके रिश्ते, उनकी उम्र, औरत की उम्र, ख़ानदानी ताल्लुक़ात और दोनों फ़रीक़ों के हालात (मसलन एक ही मकान

में मिल-जुलकर रहना या अलग-अलग मकानों में रहना) के लिहाज़ से ज़रूर ही अलग-अलग होंगे और होने चाहिएँ। इस मामले में नबी (सल्ल.) का अपना रवैया जो कुछ था, उससे हमको यही रहनुमाई मिलती है। बहुत-सी हदीसों से साबित है कि हज़रत असमा बिन्ते-अबी-बक्र (रज़ि.) जो नबी (सल्ल.) की साली थीं, आप (सल्ल.) के सामने होती थीं, और आख़िर वक़्त तक आप (सल्ल.) के और उनके बीच कम-से-कम चेहरे और हाथों की हद तक कोई परदा न था। हिज्जतुल-वदाअ नबी (सल्ल.) के इन्तिक़ाल से सिर्फ़ कुछ महीने पहले का वाक़िआ है और उस वक़्त भी यही हालत क़ायम थी। (देखिए— हदीस : अबू-दाऊद, किताबुल-हज) इसी तरह हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि.) जो अबू-तालिब की बेटी और नबी (सल्ल.) की चचेरी बहन थीं, आख़िर वक़्त तक नबी (सल्ल.) के सामने होती रहीं, और कम-से-कम मुँह और चेहरे का परदा उन्होंने आप (सल्ल.) से कभी नहीं किया। मक्का की फ़तह के मौक़े का एक वाक़िआ वे ख़ुद बयान करती हैं जिससे इसका सुबूत मिलता है। (देखिए— हदीस : अबू-दाऊद, किताबुस-सौम) दूसरी तरफ़ हम देखते हैं कि हज़रत अब्बास (रज़ि.) अपने बेटे फ़ज़्ल को और रबीआ-बिन-हारिस-बिन-अब्दुल-मुत्तलिब (नबी सल्ल. के सगे चचेरे भाई) अपने बेटे अब्दुल-मुत्तलिब को नबी (सल्ल.) के यहाँ यह कहकर भेजते हैं कि अब तुम लोग जवान हो गए हो, तुम्हें जब तक रोज़गार न मिले तुम्हारी शादियाँ नहीं हो सकतीं। लिहाज़ा तुम अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के पास जाकर नौकरी की दरख़ास्त करो। ये दोनों हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) के मकान पर नबी (सल्ल.) की ख़िदमत में हाज़िर होते हैं। हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) फ़ज़्ल की सगी फुफेरी बहन हैं, और अब्दुल-मुत्तलिब-बिन-रबीआ के बाप से भी उनका वही रिश्ता है जो फ़ज़्ल से। लेकिन वे उन दोनों के सामने नहीं होतीं और नबी (सल्ल.) की मौजूदगी में उनके साथ परदे के पीछे से बात करती हैं (हदीस : अबू-दाऊद, किताबुल-ख़िराज) इन दोनों तरह के वाक़िआत को मिलाकर देखा जाए तो मसले की सूरत वही कुछ समझ में आती है जो ऊपर हम बयान कर आए हैं।

तीसरा मसला यह है कि जहाँ रिश्ते में शक पड़ जाए, वहाँ महरम रिश्तेदार से भी एहतियात के तौर पर परदा करना चाहिए। हदीस की किताबों बुख़ारी, मुस्लिम और अबू-दाऊद में है कि उम्मुल-मोमिनीन हज़रत सौदा (रज़ि.) का एक भाई लौंडीज़ादा था (यानी उनके बाप की लौंडी के पेट से था)। उसके बारे में हज़रत सअद-बिन-अबी-वक़्क़ास (रज़ि.) को उनके भाई उतबा ने वसीयत की कि इस लड़के को अपना भतीजा समझकर इसकी सरपरस्ती करना; क्योंकि वह अस्ल में मेरे ख़ून से है। यह मुक़द्दमा नबी (सल्ल.) के पास आया तो आप (सल्ल.) ने हज़रत सअद (रज़ि.) का दावा यह कहकर ख़ारिज कर दिया कि "बेटा उसका जिसके बिस्तर पर वह पैदा हुआ, रहा ज़ानी (व्यभिचारी) तो उसके हिस्से में कंकर-पत्थर।" लेकिन साथ ही आप (सल्ल.) ने हज़रत सौदा (रज़ि.) से फ़रमाया कि "इस लड़के से परदा करना"; क्योंकि यह इत्मीनान न रहा था कि वह सचमुच उनका भाई है।

اَوْ نِسَآئِهِنَّ

अपने मेल-जोल की औरतें,[43]

43. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'निसाइहिन-न' इस्तेमाल हुआ है जिसका लफ़्ज़ी तर्जमा है 'उनकी औरतें।' इससे कौन औरतें मुराद हैं यह बहस तो बाद की है। सबसे पहले जो बात ग़ौर करने और ध्यान देने की है वह यह है कि सिर्फ़ 'औरतों' (अन-निसा) का लफ़्ज़ इस्तेमाल नहीं किया जिससे मुसलमान औरत के लिए तमाम औरतों और हर तरह की औरतों के सामने बेपरदा होना और बनाव-सिंगार को ज़ाहिर करना जाइज़ हो जाता, बल्कि 'निसाइहिन-न' (उनकी औरतें) कहकर औरतों के साथ उसकी आज़ादी को बहरहाल एक ख़ास दायरे तक महदूद कर दिया है, यह देखे बग़ैर कि वह दायरा कोई-सा हो। अब रहा यह सवाल कि यह कौन-सा दायरा है, और वे कौन औरतें हैं जिनके लिए 'निसाइहिन-न' (उनकी औरतें) बोला गया है। इसमें फ़क़ीहों और क़ुरआन की तफ़सीर लिखनेवालों की रायें अलग-अलग हैं—

एक गरोह कहता है कि इससे मुराद सिर्फ़ मुसलमान औरतें हैं। ग़ैर-मुस्लिम औरतें चाहे वे ज़िम्मी हों या किसी और तरह की, उनसे मुसलमान औरतों को उसी तरह परदा करना चाहिए जिस तरह मर्दों से किया जाता है। इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) मुजाहिद और इब्ने-जुरैज की यही राय है, और ये लोग अपनी ताईद में यह वाक़िआ भी पेश करते हैं कि हज़रत उमर (रज़ि॰) ने हज़रत अबू-उबैदा (रज़ि॰) को लिखा, "मैंने सुना है मुसलमानों की कुछ औरतें ग़ैर-मुस्लिम औरतों के साथ हम्मामों में जाने लगी हैं; हालाँकि जो औरत अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखती हो उसके लिए हलाल नहीं है कि उसके जिस्म पर उसकी मिल्लतवालों के सिवा किसी और की नज़र पड़े।" यह ख़त जब हज़रत अबू-उबैदा (रज़ि॰) को मिला तो वे एकदम घबराकर खड़े हो गए और कहने लगे, "ऐ अल्लाह, जो मुसलमान औरत सिर्फ़ गोरी होने के लिए इन हम्मामों में जाए, उसका मुँह आख़िरत में काला हो जाए।"

(इब्ने-जरीर, बैहक़ी, इब्ने-कसीर)

दूसरा गरोह कहता है कि इससे मुराद तमाम औरतें हैं। इमाम राज़ी के नज़दीक यही सही मसलक है। लेकिन यह बात समझ में नहीं आती कि अगर सचमुच अल्लाह तआला का मंशा भी यही था तो फिर 'निसाइहिन-न' (उनकी औरतें) कहने का क्या मतलब? इस सूरत में तो सिर्फ़ 'अन-निसा' कहना चाहिए था।

तीसरी राय यह है और यही मुनासिब भी है और क़ुरआन के अलफ़ाज़ से ज़्यादा क़रीब भी कि इससे अस्ल में उनके मेल-जोल की औरतें, उनकी जानी-बूझी औरतें, उनसे ताल्लुक़ात रखनेवाली और उनके काम-काज में हिस्सा लेनेवाली औरतें मुराद हैं, चाहे वे मुस्लिम हों या ग़ैर-मुस्लिम। और मक़सद उन औरतों को इस दायरे से बाहर करना है जो या तो अजनबी हों कि उनके अख़लाक़ और तहज़ीब (संस्कृति) का हाल मालूम न हो, या जिनके ज़ाहिरी हालात के बारे में शक व शुब्हा हों और उनपर भरोसा न किया जा सके। इस राय की ताईद उन सहीह हदीसों से

اَوْ مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُهُنَّ اَوِ التّٰبِعِيْنَ غَيْرِ اُولِى الْاِرْبَةِ

अपनी मिलकियत में रहनेवाले (लौंडी-गुलाम),[44] वे मातहत मर्द जो किसी और तरह की

भी होती है जिनमें नबी (सल्ल॰) की पाक बीवियों के पास ज़िम्मी औरतों के आने का ज़िक्र आता है। इस मामले में अस्ल चीज़ जिसका लिहाज़ किया जाएगा वह मज़हब का फ़र्क़ नहीं, बल्कि अख़लाक़ी हालत है। शरीफ़, हयावाली और अच्छी आदतोंवाली औरतें जो जाने-पहचाने और भरोसे के क़ाबिल ख़ानदानों से ताल्लुक़ रखनेवाली हों, उनसे मुसलमान औरतें पूरी तरह घुल-मिल सकती हैं, चाहे वे ग़ैर-मुस्लिम ही क्यों न हों। लेकिन बेशर्म, आबरू लुटानेवाली और बुरे रंग-ढंगवाली औरतें, चाहे 'मुसलमान' ही क्यों न हों, हर शरीफ़ औरत को उनसे परदा करना चाहिए; क्योंकि अख़लाक़ के लिए उनका साथ ग़ैर-मर्दों के साथ से कुछ कम तबाह करनेवाला नहीं है। रहीं अनजानी औरतें जिनकी हालत मालूम नहीं है तो उनसे मुलाक़ात की हद हमारे नज़दीक वही है जो ग़ैर-महरम रिश्तेदारों के सामने आज़ादी की ज़्यादा-से-ज़्यादा हद हो सकती है, यानी यह कि औरत सिर्फ़ मुँह और हाथ उनके सामने खोले, बाक़ी अपना सारा जिस्म और बनाव-सिंगार छिपाकर रखे।

44. इस हुक्म का मतलब समझने में भी फ़क़ीहों के बीच इख़्तिलाफ़ पैदा हुआ है। एक गरोह इससे मुराद सिर्फ़ वे लौंडियाँ लेता है जो किसी औरत की मिलकियत में हों। इन लोगों के नज़दीक अल्लाह के फ़रमान का मतलब यह है कि लौंडी चाहे शिर्क करनेवाली हो या अहले-किताब में से, उसकी मालिक मुसलमान औरत उसके सामने तो अपना बनाव-सिंगार ज़ाहिर कर सकती है, मगर गुलाम चाहे वह औरत का अपनी मिलकियत में ही क्यों न हो, परदे के मामले में उसकी हैसियत वही है जो किसी आज़ाद अजनबी मर्द की है। यह अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰), मुजाहिद, हसन बसरी, इब्ने-सीरीन, सईद-बिन-मुसय्यब, ताऊस और इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) का मसलक है, और एक क़ौल इमाम शाफ़िई (रह॰) का भी इसी की ताईद में है। इन बुज़ुर्गों की दलील यह है कि ग़ुलाम के लिए उसकी मालिक औरत महरम नहीं है। अगर वह आज़ाद हो जाए तो अपनी इसी पिछली मालिका से निकाह कर सकता है। लिहाज़ा सिर्फ़ गुलामी इस बात की वजह नहीं बन सकती कि औरत उसके सामने वह आज़ादी बरते जिसकी इजाज़त महरम मर्दों के सामने बरतने के लिए दी गई है। रहा यह सवाल कि आयत में ''मा म-ल-कत ऐमानुहुन-न'' (जो उन औरतों की मिलकियत हों) के अलफ़ाज़ आम हैं जो लौंडी और गुलाम दोनों के लिए इस्तेमाल होते हैं। फिर इसे लौंडियों के लिए ख़ास करने की क्या दलील है? इसका जवाब वे यह देते हैं कि ये अलफ़ाज़ अगरचे आम हैं, मगर मौक़ा-महल उनका मतलब लौंडियों के लिए ख़ास कर रहा है। पहले 'निसाइहिन-न' (उनकी औरतें) कहा, फिर ''मा म-ल-कत ऐमानुहुन-न'' (जो उन औरतों की मिलकियत हों) कहा गया। 'निसाइहिन-न' के अलफ़ाज़ सुनकर आम आदमी यह समझ सकता था कि इससे मुराद वे औरतें हैं जो किसी औरत की मिलने-जुलनेवाली या रिश्तेदार हों। इससे यह ग़लतफ़हमी पैदा हो सकती थी कि

مِنَ الرِّجَالِ اَوِ الطِّفْلِ الَّذِيْنَ لَمْ يَظْهَرُوْا عَلٰى عَوْرٰتِ

ग़रज़ न रखते हों,[45] और वे बच्चे जो औरतों की छिपी बातों से अभी वाक़िफ़ न हुए

शायद लौंडियाँ इसमें शामिल न हों। इसलिए "मा म-ल-कत ऐमानुहन-न" (जो उन औरतों की मिलूकियत हों) कहकर यह बात साफ़ कर दी गई कि आज़ाद औरतों की तरह लौंडियों के सामने भी बनाव-सिंगार को ज़ाहिर किया जा सकता है।

दूसरा गरोह कहता है कि इस इजाज़त में लौंडी और ग़ुलाम दोनों शामिल हैं। यह हज़रत आइशा (रज़ि॰) और उम्मे-सलमा (रज़ि॰) और कुछ अहले-बैत इमामों की राय है और इमाम शाफ़िई (रह॰) का मशहूर क़ौल भी यही है। उनकी दलील सिर्फ़ लफ़्ज़ "मा म-ल-कत ऐमानुहुन-न" (जो उन औरतों की मिलूकियत हों) के आम होने ही से नहीं है, बल्कि वह सुन्नत से भी अपनी ताईद में सुबूत पेश करते हैं। मसलन यह वाक़िआ कि नबी (सल्ल॰) एक ग़ुलाम अब्दुल्लाह-बिन-मुसअदा अल-फ़ज़ारी को लिए हुए हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) के यहाँ तशरीफ़ ले गए। वे उस वक़्त एक ऐसी चादर ओढ़े हुए थीं जिससे सिर ढाँकतीं थीं तो पाँव खुल जाते थे और पाँव ढाँकतीं तो सिर खुल जाता था। नबी (सल्ल॰) ने उनकी घबराहट देखकर फ़रमाया, "कोई हरज नहीं, यहाँ बस तुम्हारा बाप है और तुम्हारा ग़ुलाम।" (हदीस : अबू-दाऊद, बैहक़ी, अनस-बिन-मालिक की रिवायत से। इब्ने-असाकर ने अपनी तारीख़ (इतिहास) में लिखा है कि यह ग़ुलाम नबी (सल्ल॰) ने हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) को दे दिया था। उन्होंने उसे पाला-पोसा और फिर आज़ाद कर दिया, मगर इस एहसान का जो बदला उसने दिया वह यह था कि सिफ़्फ़ीन की जंग के ज़माने में वह हज़रत अली (रज़ि॰) का बदतरीन दुश्मन और अमीर मुआविया (रज़ि॰) का जोशीला हामी था। इसी तरह वह नबी (सल्ल॰) के इस फ़रमान से भी दलील लेते हैं कि "जब तुममें से कोई अपने ग़ुलाम से मुकातबत (कुछ माल के बदले उसे आज़ाद करने के मुआहदे की लिखा-पढ़ी) करे और वह माल देने की ताक़त रखता हो तो उसे चाहिए कि ऐसे ग़ुलाम से परदा करे।" (हदीस : अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, इब्ने-माजा)

45. मूल अरबी में "अत्ताबिई-न ग़ैरि उलिल-इरबति मिनर-रिजालि" के अलफ़ाज़ हैं जिनका लफ़्ज़ी तर्जमा होगा, "मर्दों में से वह मर्द जो मातहत हों, ख़ाहिश न रखनेवाले।" इन अलफ़ाज़ से ज़ाहिर होता है कि महरम मर्दों के सिवा दूसरे किसी मर्द के सामने एक मुसलमान औरत सिर्फ़ उस सूरत में अपना बनाव-सिंगार ज़ाहिर कर सकती है जबकि उसमें दो बातें पाई जाती हों : एक यह कि वह ताबिअ यानी अधीन और मातहत हो। दूसरी यह कि वह ख़ाहिश न रखनेवाला हो, यानी अपनी उम्र या जिस्मानी तौर पर नाअहल होने, या अक़्ली कमज़ोरी, या ग़रीबी और मिस्कीनी, या मातहती और ग़ुलामी की वजह से जिसमें यह ताक़त या जुरअत न हो कि घर के मालिक की बीवी, बेटी, बहन या माँ के बारे में कोई बुरी नीयत दिल में ला सके। इस हुक्म को जो शख़्स भी फ़रमाँबरदारी की नीयत से, न कि नाफ़रमानी की गुंजाइशें ढूँढ़ने की नीयत से पढ़ेगा, वह पहली नज़र ही में महसूस कर लेगा कि आजकल के बावर्ची (रसोइए), शोफ़र और

दूसरे जवान-जवान नौकर तो बहरहाल इस दायरे में नहीं आते। तफ़सीर लिखनेवालों और फ़क़ीहों ने इसकी जो तशरीहें (व्याख्याएँ) की हैं, उनपर एक नज़र डाल लेने से मालूम हो सकता है कि इल्म रखनेवाले इन अलफ़ाज़ का क्या मतलब समझते रहे हैं–

इब्ने-अब्बास : इससे मुराद वह सीधा-साधा बुद्धू आदमी है जो औरतों से दिलचस्पी न रखता हो।

क़तादा : ऐसा ज़रूरतमन्द आदमी जो पेट की रोटी पाने के लिए तुम्हारे साथ लगा रहे।

मुजाहिद : बेवक़ूफ़ जो रोटी चाहता है और औरतों का तलबगार नहीं है।

शअबी : वह जो घर के मालिक का मातहत और मुहताज हो और जिसकी इतनी हिम्मत ही न हो कि औरतों पर निगाह डाल सके।

इब्ने-ज़ैद : वह जो किसी ख़ानदान के साथ लगा रहे, यहाँ तक कि मानो उस घर का एक मेम्बर बन गया हो और उसी घर में पला-बढ़ा हो। जो घरवालों की औरतों पर निगाह न रखता हो, न इसकी हिम्मत ही कर सकता हो। वह उनके साथ इसलिए लगा रहता हो कि उनसे उसको रोटी मिलती है।

ताऊस और ज़ुहरी : बेवक़ूफ़ आदमी जिसमें न औरतों की तरफ़ दिलचस्पी हो और न इसकी हिम्मत। (इब्ने-जरीर, हिस्सा-18, पेज-95-96; इब्ने-कसीर, हिस्सा-3, पेज-285)

इन तशरीहों (व्याख्याओं) से भी ज़्यादा वाज़ेह तशरीह वह वाक़िआ है जो नबी (सल्ल.) के ज़माने में पेश आया था और जिसे बुख़ारी, मुस्लिम, अबू-दाऊद, नसई और अहमद वग़ैरा हदीस के आलिमों ने हज़रत आइशा (रज़ि.) और उम्मे-सलमा (रज़ि.) से रिवायत किया है। मदीना तय्यिबा में एक किन्नर (हिजड़ा) था जिसे नबी (सल्ल.) की पाक बीवियाँ और दूसरी औरतें ''औरतों से दिलचस्पी न रखनेवाला'' समझकर अपने यहाँ आने देती थीं। एक दिन जब नबी (सल्ल.) उम्मुल-मोमिनीन हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि.) के यहाँ तशरीफ़ ले गए तो नबी (सल्ल.) ने उसको हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि.) के भाई अब्दुल्लाह-बिन-अबी-उमैया से बातें करते सुन लिया। वह कह रहा था कि कल अगर ताइफ़ फ़तह हो जाए तो ग़ैलान सक़फ़ी की बेटी बादिया को हासिल किए बिना न रहना। फिर उसने बादिया की ख़ूबसूरती और उसके जिस्म की तारीफ़ करनी शुरू की और उसके छिपे हिस्सों तक की ख़ूबी बयान कर डाली। नबी (सल्ल.) ने ये बातें सुनीं तो फ़रमाया, ''अल्लाह के दुश्मन! तूने तो उसमें नज़रें गाड़ दीं।'' फिर आप (सल्ल.) ने हुक्म दिया कि इससे परदा करो, आगे से यह घरों में न आने पाए। इसके बाद आप (सल्ल.) ने उसे मदीना से बाहर निकाल दिया और दूसरे किन्नरों को भी घरों में घुसने से मना कर दिया; क्योंकि उनको किन्नर समझकर औरतें उनसे एहतियात न करती थीं और वे एक घर की औरतों का हाल दूसरे मर्दों से बयान करते थे। इससे मालूम हुआ कि 'ग़ैरि उलिल-इरबति' (औरतों से दिलचस्पी न रखनेवाला) होने के लिए सिर्फ़ इतनी बात काफ़ी नहीं है कि एक आदमी जिस्मानी तौर पर बदकारी के लायक़ नहीं है। अगर उसमें दबी हुई जिंसी ख़ाहिशें मौजूद हैं और वह औरतों से दिलचस्पी रखता है तो बहरहाल वह बहुत-से फ़ितनों का सबब बन सकता है।

الِنّسَآءِ ۖ وَلَا يَضْرِبْنَ بِاَرْجُلِهِنَّ لِيُعْلَمَ مَا يُخْفِيْنَ مِنْ زِيْنَتِهِنَّ ؕ

हों।[46] वे अपने पाँव ज़मीन पर मारती हुई न चला करें कि अपनी जो ज़ीनत (सजावट) उन्होंने छिपा रखी हो, उसका लोगों को पता चल जाए।[47]

46. यानी जिनमें अभी जिंसी एहसासात (यौन-संवेदनाएँ) पैदा न हुए हों। इस दायरे में ज़्यादा-से-ज़्यादा दस-बारह साल की उम्र तक के लड़के आ सकते हैं। इससे ज़्यादा उम्र के लड़के अगरचे नाबालिग़ हों, मगर उनमें जिंसी एहसासात पैदा होने शुरू हो जाते हैं।

47. नबी (सल्ल.) ने इस हुक्म को सिर्फ़ ज़ेवरों की झंकार तक महदूद नहीं रखा है, बल्कि इससे यह उसूल निकाला है कि निगाह के सिवा दूसरे हवास (इन्द्रियों) को जोश दिलानेवाली चीज़ें भी उस मक़सद के ख़िलाफ़ हैं जिसके लिए अल्लाह तआला ने औरतों को बनाव-सिंगार को ज़ाहिर करने से मना किया है। चुनाँचे आप (सल्ल.) ने औरतों को हुक्म दिया कि ख़ुशबू लगाकर बाहर न निकलें। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "अल्लाह की बन्दियों को अल्लाह की मस्जिदों में आने से मना न करो, मगर वे ख़ुशबू लगाकर न आएँ।" (हदीस : अबू-दाऊद, अहमद) इसी मज़मून की एक दूसरी हदीस में है कि एक औरत मस्जिद से निकलकर जा रही थी कि हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) उसके पास से गुज़रे और उन्होंने महसूस किया कि वह ख़ुशबू लगाए हुए है। उन्होंने उसे रोककर पूछा, "ऐ सख़्त सज़ा देनेवाले ख़ुदा की बन्दी, क्या तू मस्जिद से आ रही है?" उसने कहा, "हाँ!" बोले, "मैंने अपने प्यारे अबुल-क़ासिम (हज़रत मुहम्मद सल्ल.) को यह फ़रमाते सुना है कि जो औरत मस्जिद में ख़ुशबू लगाकर आए, उसकी नमाज़ उस वक़्त तक क़बूल नहीं होती जब तक वह घर जाकर नापाकी से पाक होनेवाला ग़ुस्ल न कर ले।" (हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा, अहमद, नसई) अबू-मूसा अशअरी फ़रमाते हैं कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि जो औरत इत्र लगाकर रास्ते से गुज़रे, ताकि लोग उसकी ख़ुशबू का मज़ा लें तो वह ऐसी और ऐसी है। उसके लिए आप (सल्ल.) ने बड़े सख़्त अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए।" (हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, नसई) आप (सल्ल.) की हिदायत यह थी कि औरतों को वह ख़ुशबू इस्तेमाल करनी चाहिए जिसका रंग तेज़ हो और महक हलकी हो। (हदीस : अबू-दाऊद)

इसी तरह नबी (सल्ल.) ने इस बात को भी नापसन्द किया कि औरतें बेज़रूरत अपनी आवाज़ मर्दों को सुनाएँ। ज़रूरत पड़ने पर बात करने की इजाज़त तो ख़ुद क़ुरआन में दी गई है, और लोगों को दीनी मसले ख़ुद नबी (सल्ल.) की पाक बीवियाँ बताया करती थीं। लेकिन जहाँ इसकी न ज़रूरत हो और न कोई दीनी या अख़लाक़ी फ़ायदा, वहाँ इस बात को पसन्द नहीं किया गया है कि औरतें अपनी आवाज़ ग़ैर-मर्दों को सुनाएँ। चुनाँचे नमाज़ में अगर इमाम भूल जाए तो मर्दों को हुक्म है कि 'सुब्हानल्लाह' कहें, मगर औरतों को हिदायत की गई है कि अपने एक हाथ पर दूसरा हाथ मारकर इमाम को ख़बरदार करें।

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अहमद, तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, नसई, इब्ने-माजा)

وَتُوْبُوْٓا اِلَى اللّٰهِ جَمِيْعًا اَيُّهَ الْمُؤْمِنُوْنَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ﴿٣١﴾

ऐ ईमानवालो, तुम सब मिलकर अल्लाह से तौबा करो,[48] उम्मीद है कि कामयाबी पाओगे।[49]

48. यानी उन भूलों और ग़लतियों से तौबा करो जो इस मामले में अब तक करते रहे हो, और आगे के लिए अपने रवैये में सुधार उन हिदायतों के मुताबिक़ कर लो जो अल्लाह और उसके रसूल ने दी हैं।

49. इस मौक़े पर मुनासिब मालूम होता है कि उन दूसरे सुधारों का भी एक ख़ुलासा दे दिया जाए जिन्हें इन हुक्मों के उतरने के बाद क़ुरआन की रूह के मुताबिक़ नबी (सल्ल.) ने इस्लामी समाज में राइज किए—

(1) नबी (सल्ल.) ने महरम (जिनसे शादी नहीं हो सकती) रिश्तेदारों की ग़ैर-मौजूदगी में दूसरे लोगों को (चाहे वे रिश्तेदार ही क्यों न हों) किसी औरत से अकेले मिलने और उसके पास तन्हा बैठने से मना कर दिया। हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि.) की रिवायत है कि आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, ''जिन औरतों के शौहर बाहर गए हुए हों उनके पास न जाओ; क्योंकि शैतान तुममें से हर एक शख़्स के अन्दर ख़ून की तरह दौड़ रहा है।'' (हदीस : तिरमिज़ी) इन्हीं हज़रत जाबिर की दूसरी रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, ''जो शख़्स अल्लाह और आख़िरत के दिनपर ईमान रखता हो, वह कभी किसी औरत से तन्हाई में न मिले जब तक कि उसके साथ उस औरत का महरम न हो; क्योंकि तीसरा उस वक़्त शैतान होता है।'' (हदीस : अहमद) क़रीब-क़रीब इसी मज़मून की एक और रिवायत इमाम अहमद ने आमिर-बिन-रबीआ से नक़्ल की है। इस मामले में नबी (सल्ल.) की अपनी एहतियात का यह हाल था कि एक बार रात के वक़्त आप (सल्ल.) हज़रत सफ़िया (रज़ि.) के साथ उनके मकान की तरफ़ जा रहे थे। रास्ते में दो अनसारी पास से गुज़रे। आप (सल्ल.) ने उनको रोककर उनसे फ़रमाया, ''ये मेरे साथ मेरी बीवी सफ़िया हैं।'' उन्होंने कहा, ''सुब्हानल्लाह! ऐ अल्लाह के रसूल, भला आपके बारे में भी कोई बदगुमानी हो सकती है?'' फ़रमाया, ''शैतान आदमी के अन्दर ख़ून की तरह गर्दिश करता है, मुझे अन्देशा हुआ कहीं वह तुम्हारे दिल में कोई बुरा गुमान न डाल दे।'' (हदीस : अबू-दाऊद, किताबुस-सौम)

(2) नबी (सल्ल.) ने इसको भी जाइज़ नहीं रखा कि किसी मर्द का हाथ किसी ग़ैर-महरम औरत के जिस्म को लगे। चुनाँचे आप (सल्ल.) मर्दों से बैअत तो हाथ में हाथ लेकर करते थे, लेकिन औरतों से बैअत लेने का यह तरीक़ा आप (सल्ल.) ने कभी नहीं अपनाया। हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि ''नबी (सल्ल.) का हाथ कभी किसी ग़ैर-औरत के जिस्म को नहीं लगा। आप (सल्ल.) औरत से सिर्फ़ ज़बानी अहद (वचन) लेते थे और जब वह अहद कर चुकती थी तो फ़रमाते, जाओ, बस तुम्हारी बैअत हो गई।''

(हदीस : अबू-दाऊद, किताबुल-ख़िराज)

(3) नबी (सल्ल.) ने औरत को महरम के बिना अकेले या ग़ैर-महरम के साथ सफ़र करने से सख़्ती के साथ मना कर दिया। बुख़ारी और मुस्लिम में इब्ने-अब्बास (रज़ि.) की रिवायत है

कि नबी (सल्ल.) ने ख़ुतबे में फ़रमाया, "कोई मर्द किसी औरत से तन्हाई में न मिले जब तक कि उसके साथ उसका कोई महरम न हो, और कोई औरत सफ़र न करे जब तक कि उसका कोई महरम उसके साथ न हो।" एक शख़्स ने उठकर अर्ज़ किया कि मेरी बीवी हज को जा रही है और मेरा नाम फ़ुलाँ मुहिम पर जानेवालों में लिखा जा चुका है। नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "अच्छा तो तुम अपनी बीवी के साथ हज को चले जाओ।" (हदीस : बुख़ारी) इस मज़मून (विषय) की कई हदीसें इब्ने-उमर (रज़ि.), अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि.) और अबू-हुरैरा (रज़ि.) से हदीस की भरोसेमन्द किताबों में रिवायत हुई हैं, जिनमें सिर्फ़ सफ़र की मुद्दत या सफ़र की दूरी के एतिबार से इख़्तिलाफ़ बयान हुआ है, मगर इस बात में इत्तिफ़ाक़ है कि किसी ईमानवाली औरत के लिए जो अल्लाह और आख़िरत के दिन को मानती हो, महरम के बिना सफ़र करना जाइज़ नहीं है। इनमें से किसी हदीस में बारह मील या उससे ज़्यादा के सफ़र पर पाबन्दी का ज़िक्र है, किसी में एक दिन, किसी में एक रात-दिन, किसी में दो दिन और किसी में तीन दिन की हद बताई गई है। लेकिन इस इख़्तिलाफ़ की वजह से न ये हदीसें नाक़ाबिले-भरोसा हो जाती हैं और न इसकी वजह से यही ज़रूरी है कि हम उनमें से किसी एक रिवायत को दूसरी रिवायतों पर तरजीह देकर उस हद को क़ानूनी मिक़्दार (मात्रा) ठहराने की कोशिश करें जो इस रिवायत में बयान हुई हो। इसलिए कि इस इख़्तिलाफ़ की यह मुनासिब वजह समझ में आ सकती है कि अलग-अलग मौक़ों पर जैसी सूरते-हाल नबी (सल्ल.) के सामने पेश हुई हो, उसी के मुताबिक़ आप (सल्ल.) ने हुक्म बयान फ़रमाया हो। मसलन कोई औरत तीन दिन के सफ़र पर जा रही हो और आप (सल्ल.) ने उसे महरम के बग़ैर जाने से मना फ़रमाया हो, और कोई एक दिन के सफ़र पर जा रही हो और आप (सल्ल.) ने उसे भी रोक दिया हो। इसमें अलग-अलग पूछनेवालों के अलग-अलग हालात और हर एक को आप (सल्ल.) के मुख़्तलिफ़ जवाबात अस्ल चीज़ नहीं हैं, बल्कि अस्ल चीज़ वह क़ायदा है जो ऊपर इब्ने-अब्बासवाली रिवायत में बयान हुआ है, यानी सफ़र जिसे आम तौर पर सफ़र कहा जाता है, महरम के बिना औरत को न करना चाहिए।

(4) नबी (सल्ल.) ने औरतों और मर्दों के मेल-जोल और गड्ड-मड्ड को रोकने की अमली तौर से भी कोशिश की और ज़बानी तौर से भी उससे मना किया। इस्लामी ज़िन्दगी में जुमा और जमाअत की जो अहमियत है, किसी इल्म रखनेवाले से छिपी नहीं है। जुमा को अल्लाह ने ख़ुद फ़र्ज़ किया है, और जमाअत से नमाज़ पढ़ने की अहमियत का इससे अन्दाज़ा किया जा सकता है कि अगर कोई आदमी बिना किसी मजबूरी के मस्जिद में हाज़िर न हो और अपने घर में नमाज़ पढ़े तो नबी (सल्ल.) के कहने के मुताबिक़ उसकी नमाज़ क़बूल ही नहीं होती (हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा, दारे-क़ुतनी, हाकिम, इब्ने-अब्बास की रिवायत से) लेकिन नबी (सल्ल.) ने औरतों पर जुमा की नमाज़ को फ़र्ज़ नहीं ठहराया (हदीस : अबू-दाऊद में उम्मे-अतिया की रिवायत, दारे-क़ुतनी और बैहक़ी में जाबिर की रिवायत, अबू-दाऊद, हाकिम में तारिक़-बिन-शिहाब की रिवायत) और जमाअत से नमाज़ पढ़ने में औरतों का शरीक होना न सिर्फ़ यह कि लाज़िम नहीं रखा, बल्कि इसकी इजाज़त इन अलफ़ाज़ में दी कि अगर ये आना चाहें तो उन्हें रोको नहीं। फिर इसके साथ यह भी साफ़ बता दिया कि उनके लिए घर

की नमाज़ मस्जिद की नमाज़ से बेहतर है। इब्ने-उमर (रज़ि.) और अबू-हुरैरा (रज़ि.) की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "अल्लाह की बन्दियों को अल्लाह की मस्जिदों में आने से मना न करो।" (हदीस : अबू-दाऊद) दूसरी रिवायतें इब्ने-उमर (रज़ि.) से इन अलफ़ाज़ और इनसे मिलते-जुलते अलफ़ाज़ में हैं, "औरतों को रात के वक़्त मस्जिदों में आने की इजाज़त दो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी, नसई, अबू-दाऊद) और एक रिवायत इन अलफ़ाज़ में है, "अपनी औरतों को मस्जिदों में आने से रोको नहीं, अगरचे उनके घर उनके लिए ज़्यादा बेहतर हैं।" (हदीस : अहमद, अबू-दाऊद) उम्मे-हुमैद साइदिया कहती हैं कि मैंने अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल, मुझे आपके पीछे नमाज़ पढ़ने का बड़ा शौक़ है।" आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "तुम्हारा अपने कमरे में नमाज़ पढ़ना बरामदे में नमाज़ पढ़ने से बेहतर है, और तुम्हारा अपने घर में नमाज़ पढ़ना अपने मुहल्ले की मस्जिद में नमाज़ पढ़ने से बेहतर है, और तुम्हारा अपने मुहल्ले की मस्जिद में नमाज़ पढ़ना जामेअ मस्जिद में नमाज़ पढ़ने से बेहतर है।" (हदीस : अहमद, तबरानी) लगभग इसी बात को बयान करनेवाली रिवायत अबू-दाऊद में अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि.) से रिवायत हुई है और हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि.) की रिवायत में नबी (सल्ल.) के अलफ़ाज़ ये हैं, "औरतों के लिए बेहतरीन मस्जिद उनके घरों के अन्दरूनी हिस्से हैं।" (हदीस : अहमद, तबरानी) लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि.) बनी उमैया के दौर की हालत देखकर फ़रमाती हैं, "अगर नबी (सल्ल.) औरतों के ये रंग-ढंग देखते जो अब हैं तो उनका मस्जिदों में आना उसी तरह बन्द कर देते जिस तरह बनी-इसराईल की औरतों का आना बन्द किया गया था।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अबू-दाऊद) मस्जिदे-नबवी में नबी (सल्ल.) ने औरतों के दाख़िल होने के लिए एक अलग दरवाज़ा ख़ास कर दिया था और हज़रत उमर (रज़ि.) अपनी हुकूमत के दौर में मर्दों को उस दरवाज़े से आने-जाने की सख़्ती से मनाही करते थे। (हदीस : अबू-दाऊद) जमाअत में औरतों की सफ़ें मर्दों से पीछे रखी जाती थीं और नमाज़ के ख़त्म होने पर नबी (सल्ल.) सलाम फेरने के बाद कुछ देर ठहरते थे, ताकि मर्दों के उठने से पहले औरतें उठकर चली जाएँ। (हदीस : अहमद और बुख़ारी, उम्मे-सलमा की रिवायत से) आप (सल्ल.)का फ़रमान था कि मर्दों की बेहतरीन सफ़ सबसे आगे की सफ़ है और सबसे बुरी सफ़ सबसे पीछे (यानी औरतों से क़रीब) की सफ़। (हदीस : मुस्लिम, अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, नसई, अहमद) ईदुल-फ़ित्र और ईदुल-अज़हा की नमाज़ों में औरतें शरीक होती थीं, मगर उनकी जगह मर्दों से अलग थी और नबी (सल्ल.) ख़ुतबे के बाद औरतों की तरफ़ जाकर उनको अलग ख़िताब फ़रमाते थे (हदीस : अबू-दाऊद, जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह की रिवायत, बुख़ारी और मुस्लिम, इब्ने-अब्बास की रिवायत) एक बार मस्जिदे-नबवी के बाहर नबी (सल्ल.) ने देखा कि रास्ते में मर्द और औरत सब गड्ड-मड्ड हो गए हैं। इसपर आप (सल्ल.) ने औरतों से फ़रमाया, "ठहर जाओ, तुम्हारे लिए सड़क के बीच में चलना ठीक नहीं है, किनारे पर चलो।" ये फ़रमान सुनते ही औरतें किनारे होकर दीवारों के साथ चलने लगीं (हदीस : अबू-दाऊद) इन हुक्मों से साफ़ मालूम होता है कि औरतों और मर्दों की मिली-जुली महफ़िल इस्लाम के मिज़ाज से कितनी ज़्यादा दूरी रखती है। जो दीन ख़ुदा के घर में इबादत के मौक़े पर भी मर्दों और औरतों दोनों को गड्ड-मड्ड नहीं होने देता, उसके बारे में कौन सोच सकता

है कि वह कॉलेजों में, दफ़्तरों में, क्लबों और जलसों में इसी गड्ड-मड्ड को जाइज़ रखेगा।

(5) औरतों को एक हद में रहते हुए बनाव-सिंगार करने की नबी (सल्ल.) ने न सिर्फ़ इजाज़त दी है, बल्कि कई बार ख़ुद इसकी हिदायत दी है; मगर इसमें हद से गुज़र जाने को बड़ी सख़्ती के साथ रोका है। उस ज़माने में जिस तरह के बनाव-सिंगार अरब की औरतों में राइज थे, उनमें से नीचे लिखी चीज़ों को नबी (सल्ल.) ने लानत के क़ाबिल और क़ौमों को हलाक करनेवाली बताया—

अपने बालों में दूसरे बाल मिलाकर उनको ज़्यादा लम्बा और घना दिखाने की कोशिश करना; जिस्म के अलग-अलग हिस्सों को गोदना और बनावटी तिल बनाना; बाल उखाड़-उखाड़कर भौंहें ख़ास तरह की बनाना और रोम नोच-नोचकर मुँह साफ़ करना; दाँतों को घिस-घिसकर बारीक बनाना, या दाँतों के बीच बनावटी दरारें पैदा करना; ज़ाफ़रान (केसर) या दर्स वग़ैरा के बनावटी उबटन मलकर चेहरे पर बनावटी रंग पैदा करना— ये हुक्म सिहाह सित्ता और मुसनद अहमद में हज़रत आइशा (रज़ि.), हज़रत असमा बिन्ते-अबी-बक्र (रज़ि.), हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि.), अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि.), अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि.) और अमीर मुआविया (रज़ि.) से भरोसेमन्द सनदों के साथ रिवायत हुई हैं।

अल्लाह और रसूल (सल्ल.) की इन साफ़-साफ़ हिदायतों को देख लेने के बाद एक ईमानवाले इनसान के लिए दो ही रास्ते रह जाते हैं— या तो वह इनकी पैरवी करे और अपनी, अपने घर की और अपने समाज की ज़िन्दगी को उन अख़लाक़ी फ़ितनों से पाक कर दे जिनको रोकने के लिए अल्लाह ने क़ुरआन में और उसके रसूल ने हदीस में इतने ज़्यादा तफ़सीली हुक्म दिए हैं; या फिर अगर वह अपने मन की कमज़ोरी की वजह से इनकी या इनमें से किसी की ख़िलाफ़वर्ज़ी करता है तो कम-से-कम उसे गुनाह समझते हुए करे और उसको गुनाह माने, और ख़्वाह-मख़्वाह के मतलब निकालकर गुनाह को सवाब बनाने की कोशिश न करे। इन दोनों सूरतों को छोड़कर जो लोग क़ुरआन और हदीस के साफ़-साफ़ हुक्मों के ख़िलाफ़ मग़रिबी (पश्चिमी) समाज के रंग-ढंग अपना लेने ही पर बस नहीं करते, बल्कि फिर उन्हीं को ठीक इस्लाम साबित करने की कोशिश शुरू कर देते हैं और खुल्लम-खुल्ला दावे करते फिरते हैं कि इस्लाम में सिरे से परदे का हुक्म मौजूद ही नहीं है, वह गुनाह और नाफ़रमानी पर जहालत और मुनाफ़क़त (कपटाचार) से भरी ढिठाई का और इज़ाफ़ा कर लेते हैं, जिसकी क़द्र न दुनिया में कोई शरीफ़ आदमी कर सकता है, न आख़िरत में ख़ुदा से इसकी उम्मीद की जा सकती है। लेकिन मुसलमानों में तो मुनाफ़िक़ों से भी चार क़दम आगे बढ़कर ऐसे लोग भी मौजूद हैं जो ख़ुदा और रसूल के उन हुक्मों को ग़लत और उन तरीक़ों को सही और हक़ के मुताबिक़ समझते हैं जो उन्होंने ग़ैर-मुस्लिम क़ौमों से सीखे हैं। ये लोग हक़ीक़त में मुसलमान नहीं हैं; क्योंकि इसके बाद भी अगर वे मुसलमान हों तो फिर इस्लाम और कुफ़्र के अलफ़ाज़ बिलकुल बे-मतलब हो जाते हैं। अगर ये लोग अपने नाम बदल देते और खुल्लम-खुल्ला इस्लाम से निकल जाते तो हम कम-से-कम

وَاَنۡكِحُوا الۡاَيَامٰى مِنۡكُمۡ وَالصّٰلِحِيۡنَ مِنۡ عِبَادِكُمۡ وَاِمَآئِكُمۡ‌ ؕ اِنۡ يَّكُوۡنُوۡا فُقَرَآءَ

(32) तुममें से जो लोग मुजर्रद (बिना जोड़े के) हों,[50] और तुम्हारे लौंडी-ग़ुलामों में से जो नेक हों,[51] उनके निकाह कर दो।[52] अगर वे ग़रीब हों तो अल्लाह अपनी मेहरबानी

उनकी अख़लाक़ी जुरअत को मान लेते। लेकिन उनका हाल यह है कि ये ख़यालात रखते हुए भी वे मुसलमान बने फिरते हैं। इनसानियत की इससे ज़्यादा नीच क़िस्म शायद दुनिया में और कोई नहीं पाई जाती। इस सीरत और किरदार के लोगों से कोई जालसाज़ी, कोई फ़रेब, कोई दग़ाबाज़ी और कोई ख़ियानत भी उम्मीद के ख़िलाफ़ नहीं है।

50. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'अयामा' इस्तेमाल हुआ है जिसे आम तौर पर लोग सिर्फ़ बेवा औरतों के मानी में ले लेते हैं। हालाँकि अस्ल में इसके दायरे में ऐसे तमाम मर्द और औरतें आ जाती हैं जिनका जोड़ा न हो। 'अयामा' जमा (बहुवचन) है 'अय्यिम' का, और 'अय्यिम' हर उस मर्द को कहते हैं जिसकी कोई बीवी न हो, और हर उस औरत को कहते हैं जिसका कोई शौहर न हो। इसी लिए हमने इसका तर्जमा 'बिना जोड़े के' किया है।

51. यानी जिनका रवैया तुम्हारे साथ भी अच्छा हो, और जिनमें तुम यह सलाहियत (क्षमता) भी पाओ कि वे शादीशुदा ज़िन्दगी निबाह लेंगे। मालिक के साथ जिस लौंडी या ग़ुलाम का रवैया ठीक न हो और जिसके मिज़ाज को देखते हुए यह उम्मीद भी न हो कि शादी होने के बाद अपने जीवन-साथी के साथ उसका निबाह हो सकेगा, उसका निकाह कर देने की ज़िम्मेदारी मालिक पर नहीं डाली गई है; क्योंकि इस हालत में वह एक-दूसरे शख़्स की ज़िन्दगी ख़राब करने का ज़रिआ बन जाएगा, यह शर्त आज़ाद आदमियों के मामले में नहीं लगाई गई; क्योंकि आज़ाद आदमी के निकाह में हिस्सा लेनेवाले की ज़िम्मेदारी अस्ल में एक सलाहकार, एक मददगार और एक पहचान के ज़रिए से ज़्यादा नहीं होती। अस्ल रिश्ता निकाह करनेवाले और जिससे निकाह किया जा रहा हो, उनकी अपनी ही रज़ामन्दी से होता है। लेकिन ग़ुलाम या लौंडी का रिश्ता करने की पूरी ज़िम्मेदारी उसके मालिक पर होती है। वह अगर जान-बूझकर किसी ग़रीब को एक बदमिज़ाज और बुरी आदतवाले आदमी के साथ बंधवा दे तो उसका सारा वबाल उसी के सिर होगा।

52. बज़ाहिर यहाँ हुक्म देने का अन्दाज़ देखकर आलिमों के एक गरोह ने यह समझ लिया कि ऐसा करना वाजिब है। हालाँकि मामला जिस तरह का है वह ख़ुद बता रहा है कि यह हुक्म ज़रूरी होने के मानी में नहीं हो सकता। ज़ाहिर है कि किसी शख़्स का निकाह कर देना दूसरों पर वाजिब कैसे हो सकता है। आख़िर किसका किससे निकाह कर देना वाजिब हो? और मान लीजिए कि अगर वाजिब हो भी तो ख़ुद उस शख़्स की क्या हैसियत रही जिसका निकाह करना है? क्या दूसरे लोग जहाँ भी उसका निकाह करना चाहें, उसे क़बूल कर लेना चाहिए? अगर यह

يُغْنِهِمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ ۗ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ۝٣٢ وَلْيَسْتَعْفِفِ
الَّذِيْنَ لَا يَجِدُوْنَ نِكَاحًا حَتّٰى يُغْنِيَهُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ ۗ

से उनको मालदार कर देगा,[53] अल्लाह बड़ी समाईवाला और जाननेवाला है। (33) और जो निकाह का मौक़ा न पाएँ, उन्हें चाहिए कि पाकदामनी इख़्तियार करें, यहाँ तक कि अल्लाह अपनी मेहरबानी से उनको मालदार कर दे।[54]

उसपर फ़र्ज़ है तो मानो उसके निकाह में उसकी अपनी कोई मरज़ी का दख़ल नहीं और अगर उसे इनकार का हक़ है तो जिनपर यह काम वाजिब है, वे आख़िर अपनी ज़िम्मेदारी किस तरह पूरी करें? इन्हीं पहलुओं को ठीक-ठीक समझकर ज़्यादतर फ़क़ीहों ने यह राय क़ायम की है कि अल्लाह तआला का यह हुक्म इस काम को वाजिब (ज़रूरी) नहीं, बल्कि नुमाइन्दगी का काम ठहराता है, यानी इसका मतलब अस्ल में यह है कि मुसलमानों को आम तौर पर यह फ़िक्र होनी चाहिए कि उनके समाज में लोग बिन ब्याहे न बैठे रहें। ख़ानदानवाले, दोस्त, पड़ोसी सब इस मामले में दिलचस्पी लें और जिसका कोई न हो उसको हुकूमत इस काम में मदद दे।

53. इसका यह मतलब नहीं है जिसका भी निकाह हो जाएगा अल्लाह उसको मालदार बना देगा, बल्कि कहने का मतलब यह है कि लोग इस मामले में बहुत ज़्यादा हिसाबी बनकर न रह जाएँ। इसमें लड़कीवालों के लिए भी हिदायत है कि नेक और शरीफ़ आदमी अगर उनके यहाँ पैग़ाम दे तो सिर्फ़ उसकी ग़रीबी देखकर इनकार न कर दें। लड़केवालों को भी नसीहत है कि किसी नौजवान को सिर्फ़ इसलिए न बिठा रखें कि अभी वह बहुत नहीं कमा रहा है। और नौजवानों को भी नसीहत है कि ज़्यादा ख़ुशहाली के इन्तिज़ार में अपनी शादी के मामले को ख़ाह-मख़ाह न टालते रहें। थोड़ी आमदनी भी हो तो अल्लाह के भरोसे पर शादी कर डालनी चाहिए। कई बार तो ख़ुद शादी ही आदमी के हालात दुरुस्त करने का ज़रिआ बन जाती है। बीवी की मदद से ख़र्चे क़ाबू में आ जाते हैं। ज़िम्मेदारियाँ सिर पर आ जाने के बाद आदमी ख़ुद भी पहले से ज़्यादा मेहनत और कोशिश करने लगता है। बीवी रोज़ी के कामों में भी हाथ बटा सकती है। और सबसे ज़्यादा यह कि आगे की ज़िन्दगी में किसके लिए क्या लिखा है, इसे कोई भी नहीं जान सकता। अच्छे हालात बुरे हालात में भी बदल सकते हैं और बुरे हालात अच्छे हालात में भी तब्दील हो सकते हैं। इसलिए आदमी को ज़रूरत से ज़्यादा हिसाब लगाने से बचना चाहिए।

54. इन आयतों की बेहतरीन तफ़सीर वे हदीसें हैं जो इस सिलसिले में नबी (सल्ल.) से रिवायत हुई हैं। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि.) की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "नौजवानो, तुममें से जो शख़्स शादी कर सकता हो उसे कर लेनी चाहिए; क्योंकि यह निगाह को बदनज़री से बचाने और आदमी की पाकबाज़ी क़ायम रखने का बड़ा ज़रिआ है। और जो न

وَالَّذِيْنَ يَبْتَغُوْنَ الْكِتٰبَ مِمَّا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ فَكَاتِبُوْهُمْ اِنْ

और तुम्हारे ममलूकों (ग़ुलामों और लौंडियों) में से जो मुकातबत (लिखा-पढ़ी[55] की दरख़ास्त करें[56] उनसे मुकातबत कर लो। अगर तुम्हें मालूम हो कि उनके अन्दर

कर सकता हो वह रोज़े रखे; क्योंकि रोज़े आदमी की तबीअत के जोश को ठण्डा कर देते हैं।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) रिवायत करते हैं कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "तीन आदमी हैं जिनकी मदद अल्लाह के ज़िम्मे है, एक वह शख़्स जो पाकदामन रहने के लिए निकाह करे, दूसरा वह मुकातब (वह ग़ुलाम जो लिखा-पढ़ी करके आज़ाद होना चाहे) जो लिखा-पढ़ी के मुताबिक़ माल अदा करने की नीयत रखे, तीसरा वह शख़्स जो अल्लाह की राह में जिहाद के लिए निकले।" (हदीस : तिरमिज़ी, नसई, इब्ने-माजा, अहमद और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-25)

55. 'मुकातबत' का लफ़्ज़ी मतलब तो है 'लिखा-पढ़ी', मगर शरीअत की ज़बान में यह लफ़्ज़ इस मानी में बोला जाता है कि कोई ग़ुलाम या लौंडी अपनी आज़ादी के लिए अपने मालिक को एक मुआवज़ा अदा करने की पेशकश करे और जब मालिक उसे क़बूल कर ले तो दोनों के बीच शर्तों की लिखा-पढ़ी हो जाए। इस्लाम में ग़ुलामों की आज़ादी के लिए जो सूरतें रखी गई हैं यह उनमें से एक है। ज़रूरी नहीं है कि मुआवज़ा माल ही की शक्ल में हो। मालिक के लिए कोई ख़ास काम कर देना भी मुआवज़ा बन सकता है, शर्त यह है कि दोनों इसपर राज़ी हो जाएँ। मुआहदा (अनुबन्ध) हो जाने के बाद मालिक को यह हक़ नहीं रहता कि ग़ुलाम की आज़ादी में बेजा रुकावटें डाले। वह उसको किताबत का माल जुटाने के लिए काम करने का मौक़ा देगा और तयशुदा मुद्दत के अन्दर जब भी ग़ुलाम अपने ज़िम्मे की रक़म या ख़िदमत अंजाम दे दे, वह उसको आज़ाद कर देगा। हज़रत उमर (रज़ि.) के ज़माने का एक वाक़िआ है कि एक ग़ुलाम ने अपनी मालिकिन से मुकातबत की (आज़ाद होने के लिए लिखा-पढ़ी की) और तयशुदा मुद्दत से पहले ही किताबत का माल जुटाकर उसके पास ले गया। मालिकिन ने कहा कि मैं तो एकमुश्त न लूँगी, बल्कि साल-के-साल और महीने-के-महीने क़िस्तों की सूरत में लूँगी। ग़ुलाम ने हज़रत उमर (रज़ि.) से शिकायत की। उन्होंने फ़रमाया, "यह रक़म बैतुल-माल में दाख़िल कर दे और जा तू आज़ाद है।" और फिर उसकी मालिकिन को कहला भेजा कि तेरी रक़म यहाँ जमा हो चुकी है, अब तू चाहे एकमुश्त ले ले वरना हम तुझे साल-के-साल और महीने-के-महीने देते रहेंगे।" (दारे-क़ुतनी, अबू-सईद मक़बरवी की रिवायत)

56. इस आयत का मतलब फ़क़ीहों के एक गरोह ने यह लिया है कि जब कोई लौंडी या ग़ुलाम मुकातबत की दरख़ास्त करे तो मालिक पर उसका क़बूल करना वाजिब है। यह अता, अम्र-बिन-दीनार, इब्ने-सीरीन, मसरूक़, ज़ह्हाक, इक्रिमा, ज़ाहिरिया और इब्ने-जरीर तबरी का

मसलक है और इमाम शाफ़िई (रह॰) भी पहले इसी को मानते थे। दूसरा गरोह कहता है कि यह वाजिब नहीं है बल्कि मुस्तहब (पसन्दीदा) है और ऐसा करने के लिए उभारनेवाला है। इस गरोह में शअबी, मुक़ातिल-बिन-हय्यान, हसन बसरी, अब्दुर्रहमान-बिन-ज़ैद, सुफ़ियान सौरी, अबू-हनीफ़ा (रह॰) और मालिक-बिन-अनस जैसे बुज़ुर्ग शामिल हैं, और आख़िर में इमाम शाफ़िई (रह॰) भी इसी को मानने लगे थे। पहले गरोह की राय की ताईद दो चीज़ें करती हैं। एक यह कि आयत के अलफ़ाज़ हैं 'कातिबूहुम' (उनसे मुकातबत कर लो) ये अलफ़ाज़ साफ़ तौर पर इस बात की दलील देते हैं कि ये अल्लाह तआला का हुक्म है। दूसरी यह कि भरोसेमन्द रिवायतों से साबित है कि मशहूर फ़िक़्ह और हदीस के आलिम हज़रत मुहम्मद-बिन-सीरीन के बाप सीरीन ने अपने मालिक हज़रत अनस से जब मुकातबत की दरख़ास्त की और उन्होंने क़बूल करने से इनकार कर दिया तो सीरीन हज़रत उमर (रज़ि॰) के पास अपनी शिकायत ले गए। उन्होंने वाक़िआ सुना तो दुर्रा लेकर हज़रत अनस पर पिल पड़े और फ़रमाया, "अल्लाह का हुक्म है कि मुकातबत कर लो।" (हदीस : बुख़ारी) इस वाक़िए से दलील ली जाती है कि यह हज़रत उमर (रज़ि॰) का निजी अमल नहीं था, बल्कि सहाबा की मौजूदगी में ऐसा किया गया था और किसी ने इसपर अपना इख़्तिलाफ़ ज़ाहिर नहीं किया। लिहाज़ा यह इस आयत की भरोसेमन्द तफ़सीर है। दूसरे गरोह की दलील यह है कि अल्लाह तआला ने सिर्फ़ 'उनसे मुकातबत कर लो' नहीं फ़रमाया है, बल्कि यह फ़रमाया कि "उनसे मुकातबत कर लो, अगर उनके अन्दर भलाई पाओ।" यह भलाई पाने की शर्त ऐसी है जिसका दारोदार मालिक की राय पर है, और कोई तयशुदा पैमाना इसका नहीं है जिसे कोई अदालत जाँच सके। क़ानूनी हुक्मों की यह शान नहीं हुआ करती। इसलिए इस हुक्म को नसीहत और हिदायत ही के मानी में लिया जाएगा, न कि क़ानूनी हुक्म के मानी में। और सीरीन की मिसाल का जवाब वे यह देते हैं कि उस ज़माने में कोई एक ग़ुलाम तो न था जिसने मुकातबत की दरख़ास्त की हो। हज़ारों ग़ुलाम नबी (सल्ल॰) के दौर में और ख़िलाफ़ते-राशिदा के दौर में मौजूद थे, और बहुत-से ग़ुलामों ने मुकातबत की है। सीरीनवाले वाक़िए के सिवा कोई मिसाल हमको नहीं मिलती कि किसी मालिक को अदालती हुक्म के ज़रिए से मुकातबत पर मजबूर किया गया हो। लिहाज़ा हज़रत उमर (रज़ि॰) के इस अमल को एक अदालती अमल समझने के बजाय हम इस मानी में लेते हैं कि वे मुसलमानों के बीच सिर्फ़ एक क़ाज़ी (जज) ही न थे, बल्कि मिल्लत के लोगों के साथ उनका ताल्लुक़ बाप और औलाद के जैसा था। कई बार वे बहुत-से ऐसे मामलों में भी दख़ल देते थे जिनमें एक बाप तो दख़ल दे सकता है, मगर अदालत का एक जज नहीं दे सकता।

عَلِمْتُمْ فِيهِمْ خَيْرًا ۖ وَّآتُوهُم مِّن مَّالِ اللَّهِ الَّذِي آتَاكُمْ ۚ

भलाई है,[57] और उनको उस माल में से दो जो अल्लाह ने तुम्हें दिया है।[58]

57. भलाई से मुराद तीन चीज़ें हैं—

एक यह कि ग़ुलाम में किताबत का माल अदा करने की सलाहियत हो, यानी वह कमाकर या मेहनत करके अपनी आज़ादी का फ़िदया अदा कर सकता हो, जैसा कि एक मुरसल हदीस में है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अगर तुम्हें मालूम हो कि वह कमा सकता है तो मुकातबत करो। यह न हो कि उसे लोगों से भीख माँगते फिरने के लिए छोड़ दो।"

(इब्ने-कसीर, ब-हवाला हदीस अबू-दाऊद)

दूसरी यह कि उसमें इतनी ईमानदारी और सच्चाई पाई जाती हो कि उसकी बात पर भरोसा करके मुआहदा किया जा सके। ऐसा न हो कि मुकातबत करके वह मालिक की ख़िदमत से छुट्टी भी पा ले और जो कुछ इस बीच कमाए उसे खा-पीकर बराबर भी कर दे।

तीसरी यह कि मालिक उसमें ऐसे बुरे अख़लाक़ी रुझान, या इस्लाम और मुसलमानों के ख़िलाफ़ दुश्मनी के ऐसे तल्ख़ जज़्बात न पाता हो जिनकी बुनियाद पर यह अन्देशा हो कि उसकी आज़ादी मुस्लिम समाज के लिए ख़तरनाक होगी। दूसरे अलफ़ाज़ में उससे यह उम्मीद की जा सकती हो कि मुस्लिम समाज का एक अच्छा आज़ाद शहरी बन सकेगा, न कि आस्तीन का साँप बनकर रहेगा। यह बात ध्यान में रहे कि मामला जंगी क़ैदियों का भी था जिनके बारे में ये एहतियातें बरतने की ज़रूरत थी।

58. यह आम हुक्म है जो ग़ुलामों के मालिकों के लिए भी है, आम मुसलमानों के लिए भी और इस्लामी हुकूमत के लिए भी।

ग़ुलामों के मालिकों को हिदायत है कि किताबत के माल में से कुछ-न-कुछ माफ़ कर दो, चुनाँचे कई रिवायतों से साबित है कि सहाबा किराम अपने मुकातबों (लिखा-पढ़ी करके आज़ाद होनेवाले ग़ुलामों) को किताबत के माल का एक बड़ा हिस्सा माफ़ कर दिया करते थे, यहाँ तक कि हज़रत अली (रज़ि॰) ने तो हमेशा चौथाई हिस्सा माफ़ किया है और इसी की ताकीद की है।

(इब्ने-जरीर)

आम मुसलमानों को हिदायत है कि जो मुकातब भी अपना किताबत का माल अदा करने के लिए उनसे दरख़ास्त करे, वे दिल खोलकर उसकी मदद करें। क़ुरआन मजीद में ज़कात ख़र्च करने की जो मदें बताई गई हैं, उनमें से एक 'फ़िर-रिक़ाब' भी है, यानी "गर्दनों को ग़ुलामी के बन्धन से रिहा कराना।" (सूरा-9 तौबा, आयत-60) और अल्लाह तआला के नज़दीक 'फ़क्कु र-क़-बह' (गर्दन का बन्धन खोलना) एक बड़ी नेकी का काम है। (सूरा-90 बलद, आयत-13) हदीस में है कि एक देहाती ने आकर नबी (सल्ल॰) से अर्ज़ किया कि मुझे वह अमल बताइए जो मुझको जन्नत में पहुँचा दे। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "तूने बड़े कम अलफ़ाज़ में बहुत बड़ी बात पूछ डाली। ग़ुलाम आज़ाद कर, ग़ुलामों को आज़ादी हासिल करने में मदद दे, किसी

को जानवर दे तो ख़ूब दूध देनेवाला दे और तेरा जो रिश्तेदार तेरे साथ ज़ुल्म से पेश आए, उसके साथ नेकी कर। और अगर यह नहीं कर सकता तो भूखे को खाना खिला, प्यासे को पानी पिला, भलाई की नसीहत कर, बुराई से मना कर। और अगर यह भी नहीं कर सकता तो अपनी ज़बान को रोककर रख। खुले तो भलाई के लिए खुले वरना बन्द रहे।"

(हदीस : बैहक़ी फ़ी शुअबिल-ईमान)

इस्लामी हुकूमत को भी हिदायत है कि बैतुल-माल में जो ज़कात जमा हो, उसमें से मुकातब ग़ुलामों की रिहाई के लिए एक हिस्सा ख़र्च करें।

इस मौक़े पर यह बात बता देने के लायक़ है कि पुराने ज़माने में ग़ुलाम तीन तरह के होते थे। एक जंगी क़ैदी, दूसरे आज़ाद आदमी जिनको पकड़-पकड़कर ग़ुलाम बनाकर बेच डाला जाता था। तीसरे वे जो नस्लों से ग़ुलाम चले आ रहे थे और कुछ पता न था कि उनके बाप-दादा कब ग़ुलाम बनाए गए थे और दोनों क़िस्मों में से किस तरह के ग़ुलाम थे। इस्लाम जब आया तो अरब और उसके बाहर, दुनिया भर का समाज इन तमाम तरह के ग़ुलामों से भरा हुआ था और सारा मआशी (आर्थिक) और सामाजिक निज़ाम मज़दूरों और नौकरों से ज़्यादा इन ग़ुलामों के सहारे चल रहा था। इस्लाम के सामने पहला सवाल यह था कि ये ग़ुलाम जो पहले से चले आ रहे हैं, इनका क्या किया जाए। और दूसरा सवाल यह था कि आगे के लिए ग़ुलामी के मसले का क्या हल है। पहले सवाल के जवाब में इस्लाम ने यह नहीं किया कि एक बार ही में पुराने ज़माने के तमाम ग़ुलामों पर से लोगों के मालिकाना हक़ों को ख़त्म कर देता; क्योंकि इससे न सिर्फ़ यह कि पूरा सामाजिक निज़ाम नाकारा हो जाता, बल्कि अरब को अमेरिका की अन्दरूनी जंग से भी कहीं ज़्यादा सख़्त तबाह कर देनेवाली घरेलू जंग का सामना करना पड़ता और फिर भी अस्ल मसला हल न होता जिस तरह अमेरिका में हल न हो सका और काले लोगों (Negroes) की बेइज़्ज़ती का मसला बहरहाल बाक़ी रह गया। सुधार के इस बेवक़ूफ़ी भरे तरीक़े को छोड़कर इस्लाम ने 'फ़क्कु र-क़-बह' (गर्दनों को आज़ाद कराने) की एक ज़बरदस्त अख़लाक़ी तहरीक (आन्दोलन) शुरू की और नसीहत और उभारनेवाले मज़हबी हुक्मों और मुल्की क़ानूनों के ज़रिए से लोगों को इस बात पर उभारा कि या तो आख़िरत की नजात के लिए अपनी मरज़ी और ख़ुशी से ग़ुलामों को आज़ाद करें, या अपने क़ुसूरों के कफ़्फ़ारे अदा करने के लिए मज़हबी हुक्मों के तहत उन्हें रिहा करें, या माली मुआवज़ा लेकर उनको छोड़ दें। इस तहरीक में नबी (सल्ल॰) ने ख़ुद तरेसठ (63) ग़ुलाम आज़ाद किए। आप (सल्ल॰) की बीवियों में से सिर्फ़ एक बीवी हज़रत आइशा (रज़ि॰) के आज़ाद किए हुए ग़ुलामों की तादाद 67 (सड़सठ) थी। नबी (सल्ल॰) के चचा हज़रत अब्बास (रज़ि॰) ने अपनी ज़िन्दगी में सत्तर (70) ग़ुलामों को आज़ाद किया। हकीम-बिन-हिज़ाम ने सौ (100), अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) ने एक हज़ार, ज़ुल-कलाअ हिमयरी (रज़ि॰) ने आठ हज़ार, और अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि॰) ने तीस हज़ार ग़ुलामों को रिहाई दी। ऐसे ही वाक़िआत दूसरे सहाबा की ज़िन्दगी में भी मिलते हैं जिनमें हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) और हज़रत उसमान (रज़ि॰) के नाम बहुत नुमायाँ हैं। ख़ुदा की ख़ुशनूदी हासिल करने का एक आम शौक़ था जिसकी बदौलत लोग बहुतायत से ख़ुद अपने

وَلَا تُكْرِهُوْا فَتَيٰتِكُمْ عَلَى الْبِغَآءِ اِنْ اَرَدْنَ تَحَصُّنًا لِّتَبْتَغُوْا عَرَضَ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۭ وَمَنْ يُّكْرِهْهُّنَّ فَاِنَّ اللّٰهَ مِنْۢ بَعْدِ

और अपनी लौंडियों को अपने दुनियावी फ़ायदों के लिए बदकारी के धंधे (वेश्यावृत्ति) पर मजबूर न करो जबकि वे ख़ुद पाकदामन रहना चाहती हों,[59] और जो कोई उनको मजबूर करे तो इस ज़बरदस्ती के बाद अल्लाह उनके लिए माफ़ करनेवाला

गुलाम भी आज़ाद करते थे और दूसरों से भी गुलाम ख़रीद-ख़रीदकर आज़ाद करते चले जाते थे। इस तरह जहाँ तक पिछले दौर के गुलामों का ताल्लुक़ है, वे ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन का ज़माना ख़त्म होने से पहले ही लगभग सबके सब रिहा हो चुके थे।

अब रह गया आगे का मसला। इसके लिए इस्लाम ने गुलामी की इस शक्ल को तो बिलकुल हराम ठहरा दिया और क़ानूनी तौर पर बिलकुल बन्द कर दिया कि किसी आज़ाद आदमी को पकड़कर गुलाम बनाया और बेचा और ख़रीदा जाए। अलबत्ता जंगी क़ैदियों को सिर्फ़ उस हालत में गुलाम बनाकर रखने की इजाज़त (हुक्म नहीं, बल्कि इजाज़त) दी जबकि उनकी हुकूमत हमारे जंगी क़ैदियों से उनका तबादला करने पर राज़ी न हो, और वे ख़ुद भी अपना फ़िदया अदा न करें। फिर इन गुलामों के लिए एक तरफ़ इस बात का मौक़ा खुला रखा गया कि वे अपने मालिकों से मुकातबत (लिखा-पढ़ी) करके रिहाई हासिल कर लें। और दूसरी तरफ़ वे तमाम हिदायतें उनके हक़ में मौजूद रहें जो पुराने गुलामों के बारे में थीं कि नेकी का काम समझकर अल्लाह को राज़ी और ख़ुश करने के लिए उन्हें आज़ाद किया जाए, या गुनाहों के क़फ़्फ़ारे (प्रायश्चित) में उनको आज़ादी दे दी जाए, या कोई शख़्स अपनी ज़िन्दगी तक अपने गुलाम को गुलाम रखे और बाद के लिए वसीयत कर दे कि उसके मरते ही वह आज़ाद हो जाएगा (जिसे इस्लामी फ़िक़्ह की ज़बान में 'तदबीर' और ऐसे गुलाम को 'मुदब्बर' कहते हैं), या कोई शख़्स अपनी लौंडी से हमबिस्तरी करे और उसके यहाँ औलाद हो जाए, इस सूरत में मालिक के मरते ही वह आप-से-आप आज़ाद हो जाएगी, चाहे मालिक ने वसीयत की हो या न की हो—यह हल है जो इस्लाम ने गुलामी के मसले का किया है। एतिराज़ करनेवाले जाहिल लोग इसको समझे बिना एतिराज़ जड़ते हैं, और उज़्र पेश करनेवाले लोग इसका उज़्र पेश करते-करते आख़िरकार इस बात ही का इनकार कर बैठते हैं कि इस्लाम ने गुलामी को किसी-न-किसी रूप में बाक़ी रखा था।

59. इसका यह मतलब नहीं है कि अगर लौंडियाँ ख़ुद पाकदामन न रहना चाहती हों तो उनको जिस्म-फ़रोशी पर मजबूर किया जा सकता है; बल्कि इसका मतलब यह है कि अगर लौंडी ख़ुद अपनी मरज़ी से बदकारी कर बैठे तो वह अपने जुर्म की आप ज़िम्मेदार है, क़ानून उसके जुर्म पर उसी को पकड़ेगा, लेकिन अगर उसका मालिक ज़ोर-ज़बरदस्ती करके उससे यह धँधा कराए तो ज़िम्मेदारी मालिक की है और वही पकड़ा जाएगा, और ज़ाहिर है कि ज़ोर-ज़बरदस्ती का

सवाल पैदा ही उस वक़्त होता है जबकि किसी को उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ किसी काम पर मजबूर किया जाए। रहा 'दुनियावी फ़ायदों की ख़ातिर' का जुमला तो अस्ल में यह हुक्म के सुबूत के लिए शर्त और क़ैद के तौर पर इस्तेमाल नहीं हुआ है कि अगर मालिक उसकी कमाई न खा रहा हो तो लौंडी को जिस्म-फ़रोशी पर मजबूर करने में वह मुजरिम न हो, बल्कि इसका मक़सद उस कमाई को भी हराम कमाई के दायरे में शामिल करना है जो इस नाजाइज़ ज़ोर-ज़बरदस्ती के ज़रिए से हासिल की गई हो।

लेकिन इस हुक्म का पूरा मक़सद सिर्फ़ इसके अलफ़ाज़ और मौक़ा-महल से समझ में नहीं आ सकता। इसे अच्छी तरह समझने के लिए ज़रूरी है कि उन हालात को भी निगाह में रखा जाए जिनमें यह उतरा है। उस वक़्त अरब में जिस्म-फ़रोशी की दो सूरतें राइज थीं। एक घर में बैठकर धँधा करना, और दूसरा बाक़ायदा चकला।

'घर में बैठकर' धँधा करनेवाली ज़्यादातर आज़ाद हो चुकी लौंडियाँ होती थीं, जिनका कोई सरपरस्त न होता या ऐसी आज़ाद औरतें होती थीं जिनकी देख-रेख और परवरिश करनेवाला कोई ख़ानदान या क़बीला न होता। ये किसी घर में बैठ जातीं और कई-कई मर्दों से एक साथ उनका समझौता हो जाता कि वे उनको ख़र्च देंगे और अपनी ज़रूरत पूरी करते रहेंगे। जब बच्चा पैदा होता तो औरत उन मर्दों में से जिसके बारे में कह देती यह बच्चा उसका है, उसी का बच्चा वह मान लिया जाता था। यह मानो समाज में एक तस्लीमशुदा इदारा (संस्थान) था जिसे इस्लाम से पहले जाहिली ज़माने के लोग एक तरह की 'शादी' समझते थे। इस्लाम ने आकर शादी के सिर्फ़ उस जाने-माने और राइज तरीक़े को क़ानूनी शादी क़रार दिया जिसमें एक औरत का सिर्फ़ एक शौहर होता है, और इस तरह बाक़ी तमाम शक्लें ज़िना (व्यभिचार) के तहत आकर आप-से-आप जुर्म हो गईं। (हदीस : अबू-दाऊद)

दूसरी शक्ल, यानी खुली जिस्म-फ़रोशी, पूरी-की-पूरी लौंडियों के ज़रिए से होती थी। इसके दो तरीक़े थे। एक यह कि लोग अपनी जवान लौंडियों पर एक भारी रक़म की ज़िम्मेदारी लाद देते थे कि हर महीने इतना कमाकर हमें दिया करो, और वे बेचारियाँ बदकारी करा-कराकर यह मुतालबा पूरा करती थीं। इसके सिवा न किसी दूसरे ज़रिए से वे इतना कमा सकती थीं, न मालिक ही यह समझते थे कि वे किसी पाकीज़ा कमाई के ज़रिए से यह रक़म लाया करती हैं, और न जवान लौंडियों पर आम मज़दूरी की दर से कई-कई गुना रक़में लादने की कोई दूसरी मुनासिब वजह ही हो सकती थी। दूसरा तरीक़ा यह था कि लोग अपनी जवान-जवान और ख़ूबसूरत लौंडियों को कोठों पर बिठा देते थे और उनके दरवाज़ों पर झण्डे लगा देते थे जिन्हें देखकर दूर ही से मालूम हो जाता था कि 'ज़रूरतमन्द' आदमी कहाँ अपनी ज़रूरत पूरी कर सकता है। ये औरतें 'क़लीक़ियात' कहलाती थीं और उनके घर 'मवाख़ीर' के नाम से मशहूर थे। बड़े-बड़े इज़्ज़तदार रईसों ने इस तरह के चकले खोल रखे थे। ख़ुद अब्दुल्लाह-बिन-उबई (मुनाफ़िक़ों का सरदार, वही साहब जिन्हें नबी सल्ल॰ के तशरीफ़ लाने से पहले मदीनावाले अपना बादशाह बनाना तय कर चुके थे, और वही साहब जो हज़रत आइशा पर तुहमत लगाने में सबसे आगे-आगे थे), मदीना में उनका एक बाक़ायदा चकला मौजूद था, जिसमें छः ख़ूबसूरत लौंडियाँ रखी गई थीं। उनके ज़रिए से वह सिर्फ़ दौलत ही नहीं कमाते थे, बल्कि अरब के अलग-अलग हिस्सों से आनेवाले इज़्ज़तदार मेहमानों की ख़ातिरदारी भी उन्हीं से किया करते थे

और उनकी नाजाइज़ औलाद से अपने ख़ादिमों और नौकरों की फ़ौज भी बढ़ाते थे। इन्हीं लौंडियों में से एक जिसका नाम मुआज़ा था, मुसलमान हो गई और उसने तौबा करनी चाही। इब्ने-उबई ने उसपर सख़्ती की। उसने जाकर हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) से शिकायत की। उन्होंने मामला नबी (सल्ल.) तक पहुँचाया और आप (सल्ल.) ने हुक्म दे दिया कि लौंडी उस ज़ालिम के क़ब्ज़े से निकाल ली जाए (इब्ने-जरीर, हिस्सा-18, पेज—55-58, 103, 104; अल-इस्तीआब, इब्ने- अब्दुल-बिर्र, हिस्सा-2, पेज-762; इब्ने-कसीर, हिस्सा-3, पेज-288, 289) यही ज़माना था जब अल्लाह की तरफ़ से यह आयत उतरी। इस पसमंज़र को निगाह में रखा जाए तो साफ़ मालूम हो जाता है कि अस्ल मक़सद सिर्फ़ लौंडियों को बदकारी के जुर्म पर मजबूर करने से रोकना नहीं है, बल्कि इस्लामी हुकूमत की हदों में जिस्म-फ़रोशी (Prostitution) के कारोबार को क़ानून के बिलकुल ख़िलाफ़ ठहराना है, और साथ-साथ उन औरतों के लिए माफ़ी का एलान भी है जो इस कारोबार में ज़बरदस्ती इस्तेमाल की गई हों।

अल्लाह तआला की तरफ़ से यह फ़रमान आ जाने के बाद नबी (सल्ल.) ने एलान फ़रमा दिया कि "इस्लाम में जिस्म-फ़रोशी के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।" (हदीस : अबू-दाऊद)। दूसरा हुक्म जो आप (सल्ल.) ने दिया, वह यह था कि बदकारी के ज़रिए से हासिल होनेवाली आमदनी हराम, नापाक और बिलकुल मना है। राफ़िअ-बिन-ख़दीज की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने बदकारी के मुआवज़े को नापाक और बदतरीन आमदनी क़रार दिया। (हदीस : अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, नसई) अबू-जुहैफ़ा कहते हैं कि नबी (सल्ल.) ने जिस्म-फ़रोशी के पेशे से कमाई हुई आमदनी को हराम ठहराया (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अहमद) अबू-मसऊद, उक़्बा-बिन-अम्र की रिवायत है कि आप (सल्ल.) ने बदकारी के मुआवज़े का लेन-देन मना ठहराया (हदीस : सिहाह सित्ता और अहमद) तीसरा हुक्म आप (सल्ल.) ने यह दिया कि लौंडी से जाइज़ तौर पर सिर्फ़ हाथ-पाँव की ख़िदमत ली जा सकती है और मालिक कोई ऐसी रक़म उसपर नहीं लगा सकता, या उससे वुसूल नहीं कर सकता जिसके बारे में वह जानता न हो कि यह रक़म वह कहाँ से और क्या करके लाती है। राफ़ेअ-बिन-ख़दीज कहते हैं कि "अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने लौंडी से कोई आमदनी वुसूल करने से मना किया, जब तक यह न मालूम हो कि यह आमदनी उसे कहाँ से हासिल होती है।" (हदीस : अबू-दाऊद, किताबुल-इजारा) राफ़ेअ-बिन-रिफ़ाआ अनसारी की रिवायत में इससे ज़्यादा साफ़ हुक्म है कि "अल्लाह के नबी (सल्ल.) ने हमको लौंडी की कमाई से मना किया, सिवाय उसके जो वह हाथ की मेहनत से हासिल करे और आप (सल्ल.) ने हाथ के इशारे से बताया कि यूँ, जैसे रोटी पकाना, सूत कातना, या ऊन और रूई धुनकना।" (हदीस : मुसनद अहमद, अबू-दाऊद, किताबुल-इजारा) इसी मानी में एक रिवायत अबू-दाऊद और मुसनद अहमद में हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) से भी रिवायत हुई है जिसमें लौंडियों की कमाई और बदकारी की आमदनी वुसूल करने से मना किया गया है। इस तरह नबी (सल्ल.) ने क़ुरआन की इस आयत के मंशा के मुताबिक़ जिस्म-फ़रोशी की उन तमाम शक्लों को मज़हबी और दीनी तौर पर नाजाइज़ और क़ानूनी तौर पर मना क़रार दे दिया जो उस वक़्त अरब में राइज थीं, बल्कि इससे भी आगे बढ़कर, अब्दुल्लाह-बिन-उबई की लौंडी मुआज़ा के मामले में जो कुछ आप (सल्ल.) ने फ़ैसला किया, उससे मालूम होता है

اِكْرَاهِهِنَّ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿٣٣﴾ وَلَقَدْ اَنْزَلْنَآ اِلَيْكُمْ اٰيٰتٍ مُّبَيِّنٰتٍ
وَّمَثَلًا مِّنَ الَّذِيْنَ خَلَوْا مِنْ قَبْلِكُمْ وَمَوْعِظَةً لِّلْمُتَّقِيْنَ ﴿٣٤﴾ اَللّٰهُ

ع ١٠

और रहम करनेवाला है।

(34) हमने साफ़-साफ़ हिदायत देनेवाली आयतें तुम्हारे पास भेज दी हैं, और उन क़ौमों की इबरतनाक मिसालें भी हम तुम्हारे सामने पेश कर चुके हैं जो तुमसे पहले हो गुज़री हैं, और वे नसीहतें हमने कर दी हैं जो डरनेवालों के लिए होती हैं।[60]

(35) अल्लाह[61] ———

कि जिस लौंडी से उसका मालिक ज़बरदस्ती पेशा कराए, उसपर से मालिक की मिल्कियत भी ख़त्म हो जाती है। यह इमाम ज़ुहरी की रिवायत है जिसे इब्ने-कसीर ने मुसनद अब्दुर्रज़्ज़ाक़ के हवाले से नक़्ल किया है।

60. इस आयत का ताल्लुक़ सिर्फ़ ऊपर की आख़िरी आयत ही से नहीं है, बल्कि बहस के उस पूरे सिलसिले से है जो सूरा के शुरू से यहाँ तक चला आ रहा है। साफ़-साफ़ हिदायतें देनेवाली आयतों से मुराद वे आयतें हैं जिनमें ज़िना और क़ज़्फ़ और लिआन का क़ानून बयान किया गया है, बदकार मर्दों और औरतों से ईमानवालों को शादी-ब्याह के मामले में कोई रिश्ता न रखने की हिदायत की गई है, शरीफ़ लोगों पर बेबुनियाद तुहमतें लगाने और समाज में बेहयाई फैलाने से रोका गया है, मर्दों और औरतों को निगाहें बचाने और शर्मगाहों की हिफ़ाज़त की ताकीद की गई है। औरतों के लिए परदे की हदें क़ायम की गई हैं। शादी के क़ाबिल लोगों के अकेले (बेशादी के) बैठे रहने को नापसन्द किया गया है। ग़ुलामों की आज़ादी के लिए किताबत (लिखा-पढ़ी) की सूरत पेश की गई है और समाज को जिस्म-फ़रोशी की लानत से पाक करने का हुक्म दिया गया है। इन बातों के बाद कहा जा रहा है कि ख़ुदा से डरकर सीधी राह अपनानेवालों को जिस तरह तालीम दी जाती है वह तो हमने दे दी है। अब अगर तुम इस तालीम के ख़िलाफ़ चलोगे तो इसका साफ़ मतलब यह है कि तुम उन क़ौमों का-सा अंजाम देखना चाहते हो जिनकी इबरतनाक मिसालें ख़ुद इसी क़ुरआन में हम तुम्हारे सामने पेश कर चुके हैं—शायद एक हुक्मनामे के ख़त्म होने पर इससे ज़्यादा सख़्त तंबीह (चेतावनी) के अलफ़ाज़ और कोई नहीं हो सकते। मगर दाद देनी पड़ती है उस क़ौम को जो माशाअल्लाह ईमानवाली भी हो और इस हुक्मनामे की तिलावत भी करे और फिर ऐसी सख़्त चेतावनियों के बावजूद इस हुक्मनामे की ख़िलाफ़वर्ज़ी भी करती रहे!

61. यहाँ से बात का रुख़ मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) की तरफ़ फिरता है जो इस्लामी समाज में फ़ितनों-पर-फ़ितने उठाए चले जा रहे थे और इस्लाम, इस्लामी तहरीक और इस्लामी हुकूमत और समाज को नुक़सान पहुँचाने में उसी तरह सरगर्म थे जिस तरह बाहर के खुले-खुले इस्लाम-मुख़ालिफ़ दुश्मन सरगर्म थे। ये लोग ईमान के दावेदार थे, मुसलमानों में शामिल थे,

نُوۡرُ السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ ؕ مَثَلُ نُوۡرِهٖ كَمِشۡكٰوةٍ فِيۡهَا مِصۡبَاحٌ ؕ

आसमानों और ज़मीन का नूर है।[62] (कायनात में) उसके नूर की मिसाल ऐसी है जैसे

मुसलमानों के साथ और ख़ास तौर से अनसार के साथ, रिश्ते और बिरादरी के ताल्लुक़ात रखते थे, इसी लिए उनको मुसलमानों में अपने फ़ितने फैलाने का ज़्यादा मौक़ा मिलता था, और कुछ सच्चे मुसलमान तक अपनी सादगी या कमज़ोरी की वजह से उनके हथियार भी बन जाते थे और उनका बचाव करनेवाले भी। लेकिन हक़ीक़त में उनकी दुनियापरस्ती ने उनकी आँखें अंधी कर रखी थीं और ईमान के दावे के बावजूद वे उस नूर से बिलकुल अनजान थे जो क़ुरआन और मुहम्मद (सल्ल॰) की बदौलत दुनिया में फैल रहा था। इस मौक़े पर उनको ख़िताब किए बिना उनके बारे में जो कुछ कहा जा रहा है, उसका मक़सद तीन बातें बताना है। पहली यह कि उनको समझाया जाए, क्योंकि अल्लाह तआला की रहमत और उसके रब होने का सबसे पहला तक़ाज़ा यह है कि जो बन्दा भी बहका और भटका हुआ हो, उसकी तमाम शरारतों और ख़राबियों के बावजूद उसे आख़िर वक़्त तक समझाने की कोशिश की जाए। दूसरी यह कि ईमान और निफ़ाक़ (कपटाचार) का फ़र्क़ साफ़-साफ़ खोलकर बयान कर दिया जाए, ताकि किसी अक़्ल और समझ रखनेवाले इनसान के लिए मुस्लिम समाज के ईमानवाले और मुनाफ़िक़ लोगों के बीच फ़र्क़ करना मुश्किल न रहे, और इस फ़र्क़ के साफ़-साफ़ और पूरी तरह बयान कर देने के बावजूद जो शख़्स मुनाफ़िक़ों के फन्दे में फँसे या उनका साथ दे, वह अपने इस अमल का पूरी तरह ज़िम्मेदार हो। तीसरी यह कि मुनाफ़िक़ों को साफ़-साफ़ ख़बरदार कर दिया जाए कि अल्लाह के जो वादे ईमानवालों के लिए हैं, वे सिर्फ़ उन्हीं लोगों को पहुँचते हैं जो सच्चे दिल से ईमान लाएँ और फिर उस ईमान के तक़ाज़े पूरे करें। ये वादे उन सब लोगों के लिए नहीं हैं जो सिर्फ़ मुसलमानों की गिनती में शामिल हों। लिहाज़ा मुनाफ़िक़ों (दिखावटी ईमानवालों) और फ़ासिक़ों (अल्लाह के खुले नाफ़रमानों) को यह उम्मीद न रखनी चाहिए कि वे इन वादों में से कोई हिस्सा पा सकेंगे।

62. आसमानों और ज़मीन का लफ़्ज़ क़ुरआन मजीद में आम तौर से 'कायनात' (सृष्टि) के मानी में इस्तेमाल होता है। लिहाज़ा दूसरे अलफ़ाज़ में आयत का तर्जमा यह भी हो सकता है कि अल्लाह सारी कायनात का नूर है।

नूर से मुराद वह चीज़ है जिसकी बदौलत चीज़ें ज़ाहिर होती हैं यानी जो आप-से-आप ज़ाहिर हो और दूसरी चीज़ों को ज़ाहिर करे। इनसान के ज़ेहन में नूर और रौशनी का अस्ल मतलब यही है। कुछ न सूझने की कैफ़ियत का नाम इनसान ने अंधेरा और तारीकी और ज़ुलमत रखा है, और इसके बरख़िलाफ़ जब सबकुछ सुझाई देने लगे और हर चीज़ ज़ाहिर हो जाए तो आदमी कहता है कि रौशनी हो गई। अल्लाह तआला के लिए लफ़्ज़ 'नूर' का इस्तेमाल इसी बुनियादी मतलब के लिहाज़ से किया गया है, न इस मानी में कि, अल्लाह की पनाह, वह कोई किरण है जो एक लाख छियासी (86) हज़ार मील प्रति सेकेंड के हिसाब से चलती है और हमारी आँख के परदे पर पड़कर दिमाग़ के उस हिस्से पर असर डालती है जो देखने का अमल करता है।

اَلْمِصْبَاحُ فِىْ زُجَاجَةٍؕ اَلزُّجَاجَةُ كَاَنَّهَا كَوْكَبٌ دُرِّىٌّ يُّوْقَدُ مِنْ شَجَرَةٍ مُّبٰرَكَةٍ زَيْتُوْنَةٍ لَّا شَرْقِيَّةٍ وَّلَا غَرْبِيَّةٍۙ يَّكَادُ زَيْتُهَا يُضِىْٓءُ

एक ताक़ में चिराग़ रखा हुआ हो, चिराग़ एक फ़ानूस में हो, फ़ानूस का हाल यह हो कि जैसे मोती की तरह चमकता हुआ तारा, और वह चिराग़ ज़ैतून के एक ऐसे मुबारक[63] पेड़ के तेल से रौशन किया जाता हो जो न पूरबी हो न पश्चिमी,[64] जिसका तेल आप-

रौशनी की यह ख़ास कैफ़ियत उस मानी की हक़ीक़त में शामिल नहीं है जिसके लिए इनसानी ज़ेहन ने यह लफ़्ज़ गढ़ा है, बल्कि उसपर इस लफ़्ज़ को हम उन रौशनियों के मानी में बोलते हैं जो इस माद्दी दुनिया में हमारे तजरिबे में आती हैं। अल्लाह तआला के लिए इनसानी ज़बान के जितने अलफ़ाज़ भी बोले जाते हैं, वे अपने अस्ल बुनियादी मतलब के लिहाज़ से बोले जाते हैं, न कि उनके माद्दी मानी के एतिबार से। मिसाल के तौर पर हम अल्लाह के लिए देखने का लफ़्ज़ बोलते हैं। इसका मतलब यह नहीं होता कि वह इनसानों और जानवरों की तरह आँख नाम के एक हिस्से के ज़रिए से देखता है। हम उसके लिए सुनने का लफ़्ज़ बोलते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि वह हमारी तरह कानों के ज़रिए से सुनता है। उसके लिए हम पकड़ और गिरिफ़्त के अलफ़ाज़ बोलते हैं। यह इस मानी में नहीं है कि वह हाथ नाम के एक आला (यन्त्र) से पकड़ता है। ये सब अलफ़ाज़ उसके लिए हमेशा एक निराली शान में बोले जाते हैं और सिर्फ़ एक कम अक़्ल आदमी ही इस ग़लतफ़हमी में पड़ सकता है कि सुनने, देखने और पकड़ने की कोई दूसरी सूरत उस महदूद और ख़ास तरह की सुनने, देखने और पकड़ने की ताक़त के सिवा होना नामुमकिन है जो हमारे तजरिबे में आती है। इसी तरह 'नूर' के बारे में भी यह समझना महज़ एक तंग सोच है कि उसके मानी के तहत सिर्फ़ वह किरण ही आ सकती है जो किसी चमकनेवाले सितारे (ग्रह) से निकलकर आँख के परदे पर पड़े। अल्लाह तआला को नूर कहने का मतलब इस महदूद मानी में नहीं है, बल्कि वह मुकम्मल तौर से नूर है। यानी इस कायनात में वही एक अस्ल 'ज़ाहिर होने का सबब' है, बाक़ी यहाँ अंधेरे और ज़ुलमत के सिवा कुछ नहीं है। दूसरी रौशनी देनेवाली चीज़ें भी उसी की दी हुई रौशनी से चमकनेवाली और रौशन करनेवाली हैं, वरना उनके पास अपना कुछ नहीं जिससे वे यह करिश्मा दिखा सकें।

नूर का लफ़्ज़ इल्म के लिए भी इस्तेमाल होता है, और इसके बरख़िलाफ़ जाहिलियत को अंधकार और ज़ुलमत कहा जाता है। अल्लाह तआला इस मानी में भी कायनात का नूर है कि यहाँ हक़ीक़तों का इल्म और सीधे रास्ते का इल्म अगर मिल सकता है तो उसी से मिल सकता है। उससे फ़ायदा हासिल किए बिना जहालत का अंधेरा और उसके नतीजे में गुमराही के सिवा और कुछ मुमकिन नहीं है।

63. मुबारक, यानी अपने अन्दर बहुत-से फ़ायदे रखनेवाला।

64. यानी जो खुले मैदान में या ऊँची जगह पर हो, जहाँ सुबह से शाम तक उसपर धूप पड़ती हो।

وَلَوْ لَمْ تَمْسَسْهُ نَارٌ ۚ نُورٌ عَلَىٰ نُورٍ ۚ يَهْدِي اللَّهُ لِنُورِهِ مَنْ

ही-आप भड़का पड़ता हो, चाहे आग उसको न लगे, (इस तरह कि) रौशनी-पर-रौशनी (बढ़ने के तमाम साधन जमा हो गए हों)।[65] अल्लाह अपने नूर की तरफ़ जिसकी चाहता

किसी आड़ में न हो कि उसपर सिर्फ़ सुबह की या सिर्फ़ शाम की धूप पड़े। ज़ैतून के ऐसे पेड़ का तेल ज़्यादा पतला होता है और ज़्यादा तेज़ रौशनी देता है। सिर्फ़ पूरब या पश्चिम दिशावाले पेड़ इसके मुक़ाबले में गाढ़ा तेल देते हैं और चिराग़ में उनकी रौशनी हलकी रहती है।

65. इस मिसाल में चिराग़ से अल्लाह तआला के वुजूद को और ताक़ से कायनात की मिसाल दी गई है, और फ़ानूस से मुराद यह परदा है जिसमें हज़रते-हक़ (अल्लाह तआला) ने अपने आपको दुनिया की निगाह से छिपा रखा है। मानो यह परदा हक़ीक़त में छिपाने का नहीं, शिद्दत के साथ ज़ाहिर होने का परदा है। दुनिया की निगाह जो इसको देखने की सकत नहीं रखती, उसकी वजह यह नहीं है कि बीच में अंधेरा रुकावट बना हुआ है, बल्कि अस्ल वजह यह है कि बीच का परदा शफ़्फ़ाफ़ (पारदर्शी) है और इस शफ़्फ़ाफ़ (पारदर्शी) परदे से गुज़रकर आनेवाला नूर ऐसा तेज़, फैला हुआ और छाया हुआ है कि महदूद ताक़त रखनेवाली आँखों की रौशनियाँ इसको समझ पाने में बेबस रह गई हैं। आँख की ये कमज़ोर रौशनियाँ सिर्फ़ उन महदूद रौशनियों को समझ सकती हैं जिनके अन्दर कमी-ज़्यादती होती रहती है जो कभी मिट जाती हैं और कभी पैदा हो जाती हैं, जिनके मुक़ाबले में कोई अंधेरा मौजूद होता है और अपनी ज़िद (विपरीत) के सामने आकर वे नुमायाँ होती हैं। लेकिन मुतलक़ (मुकम्मल) नूर जिसके जैसा कोई नहीं जो कभी मिटता नहीं जो सदा एक ही शान से हर तरफ़ छाया रहता है, उसको समझ पाना इनके बस से बाहर है।

रही यह बात कि ''चिराग़ ज़ैतून के एक ऐसे पेड़ के तेल से रौशन किया जाता हो जो न पूरबी हो न पश्चिमी,'' तो यह सिर्फ़ चिराग़ की रौशनी के कमाल और उसकी शिद्दत का तसव्वुर दिलाने के लिए है। पुराने ज़माने में ज़्यादा-से-ज़्यादा रौशनी ज़ैतून के तेल के चिराग़ों से हासिल की जाती थी, और उनमें सबसे ज़्यादा रौशनीवाला वह चिराग़ होता था जो ऊँची और खुली जगह के पेड़ से निकाले हुए तेल का हो। मिसाल में यह बात कहने का मतलब यह नहीं है कि अल्लाह का वुजूद जिसे चिराग़ से मिसाल दी गई है, किसी और चीज़ से ताक़त (Energy) हासिल कर रहा है, बल्कि कहने का मतलब यह है कि मिसाल में मामूली चिराग़ नहीं, बल्कि उस सबसे ज़्यादा रौशन चिराग़ का तसव्वुर करो जो तुम्हारे देखने में आता है। जिस तरह ऐसा चिराग़ सारे मकान को जगमगा देता है, उसी तरह अल्लाह के वुजूद ने सारी कायनात को जगमगा रखा है।

और यह जो फ़रमाया कि ''उसका तेल आप से आप भड़का पड़ता हो, चाहे आग उसको न लगे,'' इसका मक़सद भी चिराग़ की रौशनी के ज़्यादा-से-ज़्यादा तेज़ होने का तसव्वुर दिलाना है। यानी मिसाल में इस बेहद तेज़ रौशनी के चिराग़ का तसव्वुर करो जिसमें ऐसा पतला और

يَّشَآءُ ۭ وَيَضْرِبُ اللّٰهُ الْاَمْثَالَ لِلنَّاسِ ۭ وَاللّٰهُ بِكُلِّ شَيْءٍ
عَلِيْمٌ ﴿٣٥﴾ فِيْ بُيُوْتٍ اَذِنَ اللّٰهُ اَنْ تُرْفَعَ وَيُذْكَرَ فِيْهَا اسْمُهٗ ۙ

है रहनुमाई फ़रमाता है,[66] वह लोगों को मिसालों से बात समझाता है, वह हर चीज़ को ख़ूब जानता है।[67] (36-37) (उसके नूर की तरफ़ हिदायत पानेवाले) उन घरों में पाए जाते हैं, जिन्हें बुलन्द करने की और जिनमें अपने नाम की याद का अल्लाह ने हुक्म

ऐसा जल्दी भड़क उठनेवाला तेल पड़ा हुआ हो। ये तीनों चीज़ें यानी ज़ैतून, और उसका पूरबी या पश्चिमी न होना, और उसके तेल का आग लगे बिना ही आप-से-आप भड़का पड़ना, अपने आप में मिसाल के अस्ल हिस्से नहीं हैं, बल्कि मिसाल के पहले हिस्से यानी चिराग़ से जुड़े हिस्से हैं। मिसाल के अस्ल हिस्से तीन हैं, चिराग़, ताक़ और शफ़्फ़ाफ़ (पारदर्शी) फ़ानूस।

आयत का यह जुमला भी ध्यान देने के क़ाबिल है कि ''इसके नूर की मिसाल ऐसी है।'' इससे वह ग़लतफ़हमी दूर हो जाती है जो ''अल्लाह आसमानों और ज़मीन का नूर है'' के अलफ़ाज़ से किसी को हो सकती थी। इससे मालूम हुआ कि अल्लाह को 'नूर' कहने का मतलब यह नहीं है कि, अल्लाह की पनाह, उसकी हक़ीक़त ही बस 'नूर' होना है। हक़ीक़त में तो वह एक मुकम्मल वुजूद है जो इल्मवाला, क़ुदरतवाला, हिकमतवाला वग़ैरा होने के साथ-साथ नूरवाला भी है। लेकिन ख़ुद उसको नूर सिर्फ़ उसके नूरानियत (रौशन करने के गुण) में मुकम्मल होने की वजह से कहा गया है, जैसे किसी की फ़य्याज़ी (दानशीलता) का हाल बयान करने के लिए उसको ख़ुद 'फ़ैज़' कह दिया जाए, या उसकी ख़ूबसूरती में सबसे बढ़कर होने को बयान करने के लिए ख़ुद उसी को 'हुस्न' कह दिया जाए।

66. यानी अगरचे अल्लाह का यह मुकम्मल नूर सारे जहाँ को रौशन कर रहा है, मगर इसका एहसास हर एक को नसीब नहीं होता। उसके एहसास की ख़ुशनसीबी और उसके फ़ैज़ (मेहरबानी) से फ़ायदा उठाने की नेमत अल्लाह ही जिसको चाहता है, देता है। वरना जिस तरह अंधे के लिए दिन-रात बराबर हैं, उसी तरह समझ न रखनेवाले इनसान के लिए बिजली और सूरज और चाँद-तारों की रौशनी तो रौशनी है, मगर अल्लाह का नूर उसको सुझाई नहीं देता। इस पहलू से उस बदनसीब के लिए कायनात में हर तरफ़ अंधेरा-ही-अंधेरा है। आँखों का अंधा अपने पास की चीज़ नहीं देख सकता, यहाँ तक कि जब उससे टकरा कर चोट खा जाता है, तब उसे पता चलता है कि यह चीज़ यहाँ मौजूद थी। इसी तरह बसीरत (अन्तर्दृष्टि) न रखनेवाला उन हक़ीक़तों को भी नहीं देख सकता जो ठीक उसके पहलू में अल्लाह के नूर से जगमगा रही हों। उसे उनका पता सिर्फ़ उस वक़्त चलता है जब वह उनसे टकराकर अपनी शामत में गिरफ़्तार हो चुका होता है।

67. इसके दो मतलब हैं। एक यह कि वह जानता है किस हक़ीक़त को किस मिसाल से बेहतरीन तरीक़े से समझाया जा सकता है। दूसरा यह कि वह जानता है कि कौन इस नेमत का हक़दार

يُسَبِّحُ لَهٗ فِيْهَا بِالْغُدُوِّ وَالْاٰصَالِ ﴿٣٦﴾ رِجَالٌ ۙ لَّا تُلْهِيْهِمْ تِجَارَةٌ وَّلَا
بَيْعٌ عَنْ ذِكْرِ اللّٰهِ وَاِقَامِ الصَّلٰوةِ وَاِيْتَآءِ الزَّكٰوةِ ۙ يَخَافُوْنَ يَوْمًا
تَتَقَلَّبُ فِيْهِ الْقُلُوْبُ وَالْاَبْصَارُ ﴿٣٧﴾ لِيَجْزِيَهُمُ اللّٰهُ اَحْسَنَ مَا عَمِلُوْا
وَيَزِيْدَهُمْ مِّنْ فَضْلِهٖ ۭ وَاللّٰهُ يَرْزُقُ مَنْ يَّشَآءُ بِغَيْرِ حِسَابٍ ﴿٣٨﴾

दिया है।[68] उनमें ऐसे लोग सुबह-शाम उसकी तसबीह (महिमागान) करते हैं जिन्हें तिजारत और ख़रीदना-बेचना अल्लाह की याद से और नमाज़ क़ायम करने और ज़कात देने से ग़ाफ़िल नहीं कर देता। वे उस दिन से डरते रहते हैं, जिसमें दिल उलटने और दीदे पथरा जाने की नौबत आ जाएगी, (38) (और ये यह सब कुछ इसलिए करते हैं) ताकि अल्लाह उनके बेहतरीन आमाल का बदला उनको दे और अपनी मेहरबानी से और भी नवाज़े, अल्लाह जिसे चाहता है बेहिसाब देता है।[69] (39) (इसके बरख़िलाफ़)

है और कौन नहीं है। जो शख़्स सच्चाई की रौशनी का तलबगार ही न हो और हर वक़्त अपने दुनियावी फ़ायदों ही में गुम और माद्दी लज़्ज़तों और फ़ायदों ही की खोज में डूबा रहता हो, उसे ज़बरदस्ती सच्चाई की रौशनी दिखाने की अल्लाह को कोई ज़रूरत नहीं है। इस देन का हक़दार तो वही है जिसे अल्लाह जानता है कि वह उसका तलबगार और सच्चा तलबगार है।

68. कुछ तफ़सीर लिखनेवालों ने इन 'घरों' से मुराद मस्जिदें ली हैं, और उनको बुलन्द करने से मुराद उनको तामीर करना और उनका एहतिराम करना लिया है और कुछ दूसरे तफ़सीर लिखनेवाले उलमा इससे मुराद ईमानवालों के घर लेते हैं और उन्हें बुलन्द करने का मतलब उनके नज़दीक उन्हें अख़्लाक़ी हैसियत से बुलन्द करना है। "उनमें अपने नाम की याद की अल्लाह ने इजाज़त दी है" ये अलफ़ाज़ बज़ाहिर मस्जिदवाली तफ़सीर की ज़्यादा ताईद करते नज़र आते हैं, मगर ग़ौर करने से मालूम होता है कि ये दूसरी तफ़सीर की भी उतनी ही ताईद करते हैं जितनी पहली तफ़सीर की। इसलिए कि अल्लाह की शरीअत काहिनों से मुतास्सिर मज़हबों की तरह इबादत को सिर्फ़ इबादतगाहों तक ही महदूद नहीं रखती, जहाँ काहिन या पुजारी तबक़े के किसी फ़र्द की पेशवाई के बिना बन्दगी की रस्में अदा नहीं की जा सकतीं, बल्कि यहाँ मस्जिद की तरह घर भी इबादतगाह है और हर शख़्स अपना पुरोहित आप है। चूँकि इस सूरा में तमाम घरेलू ज़िन्दगी को बेहतर-से-बेहतर बनाने के लिए हिदायतें दी गई हैं, इसलिए दूसरी तफ़सीर हमको मौक़े और महल के लिहाज़ से ज़्यादा दुरुस्त मालूम होती है, अगरचे पहली तफ़सीर को भी रद्द कर देने के लिए कोई मुनासिब दलील नहीं है। क्या हरज है कि अगर इससे मुराद ईमानवालों के घर और उनकी मस्जिदें, दोनों ही हों।

69. यहाँ उन सिफ़ात की तशरीह कर दी गई है जो अल्लाह के नूर का एहसास करने और उसके

وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اَعْمَالُهُمْ كَسَرَابٍۭ بِقِيْعَةٍ يَّحْسَبُهُ الظَّمْاٰنُ
مَآءً ۭ حَتّٰٓى اِذَا جَآءَهٗ لَمْ يَجِدْهُ شَيْـًٔـا وَّوَجَدَ اللّٰهَ عِنْدَهٗ فَوَفّٰىهُ
حِسَابَهٗ ۭ وَاللّٰهُ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ۝ اَوْ كَظُلُمٰتٍ فِيْ بَحْرٍ لُّجِّيٍّ

जिन्होंने इनकार किया[70] उनके आमाल की मिसाल ऐसी है जैसे बिना पानी के रेगिस्तान में सराब (मरीचिका) कि प्यासा उसको पानी समझे हुए था, मगर जब वहाँ पहुँचा तो कुछ न पाया, बल्कि वहाँ उसने अल्लाह को मौजूद पाया जिसने उसका पूरा-पूरा हिसाब चुका दिया, और अल्लाह को हिसाब लेते देर नहीं लगती।[71] (40) या फिर उसकी मिसाल ऐसी है

फ़ैज़ (दानशीलता) से फ़ायदा उठाने के लिए दरकार हैं। अल्लाह की बाँट अंधी बाँट नहीं है कि यूँ ही जिसे चाहा मालामाल कर दिया और जिसे चाहा धुत्कार दिया। वह जिसे देता है कुछ देखकर ही देता है, और हक़ (सत्य) की नेमत देने के मामले में जो कुछ वह देखता है, वह यह है कि आदमी के दिल में उसकी मुहब्बत और उससे दिलचस्पी और उसका डर और उसके इनाम की तलब और उसके ग़ज़ब (प्रकोप) से बचने की ख़्वाहिश मौजूद है। वह दुनियापरस्ती में गुम नहीं है, बल्कि सारी मसरूफ़ियतों के बावजूद उसके दिल में अपने ख़ुदा की याद बसी रहती है। वह पस्तियों में पड़ा नहीं रहना चाहता, बल्कि उस बुलन्दी को अमली तौर पर अपनाता है जिसकी तरफ़ उसका मालिक उसकी रहनुमाई करे। वह इसी कुछ दिनों की ज़िन्दगी के फ़ायदों का तलबगार नहीं है, बल्कि उसकी निगाह आख़िरत की हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी पर जमी हुई है। यही कुछ देखकर फ़ैसला किया जाता है कि आदमी को अल्लाह के नूर से फ़ायदा उठाने का मौक़ा दिया जाए। फिर जब अल्लाह देने पर आता है तो इतना देता है कि आदमी का अपना दामन ही तंग हो तो दूसरी बात है, वरना उसकी देन के लिए कोई हद और इन्तिहा नहीं है।

70. यानी हक़ की उस सच्ची तालीम को सच्चे दिल से क़बूल करने से इनकार कर दिया जो अल्लाह की तरफ़ से उसके पैग़म्बरों ने दी है और जो उस वक़्त अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) दे रहे थे। ऊपर की आयतें ख़ुद बता रही हैं कि अल्लाह का नूर पानेवालों से मुराद सच्चे और नेक ईमानवाले हैं। इसलिए अब उनके मुक़ाबले में उन लोगों की हालत बताई जा रही है जो इस नूर को पाने के असली और सिर्फ़ एक ही ज़रिए, यानी रसूल ही को मानने और उसकी पैरवी करने से इनकार कर दें, चाहे दिल से इनकार करें और सिर्फ़ ज़बान से इक़रार करते हों, या दिल और ज़बान दोनों ही से इनकार करते हों।

71. इस मिसाल में उन लोगों का हाल बयान हुआ है जो कुफ़्र (इनकार) और निफ़ाक़ (दिखावटी इक़रार मगर दिल में इनकार, कपट) के बावजूद बज़ाहिर कुछ अच्छे काम भी करते हों और कुल मिलाकर आख़िरत को भी मानते हों, और इस ग़लतफ़हमी में पड़े हों कि सच्चे ईमान और ईमानवालों की सिफ़ात और रसूल की पैरवी के बिना उनके ये आमाल आख़िरत में उनके लिए

يَّغْشٰىهُ مَوْجٌ مِّنْ فَوْقِهٖ مَوْجٌ مِّنْ فَوْقِهٖ سَحَابٌ ۚ ظُلُمٰتٌۢ بَعْضُهَا فَوْقَ بَعْضٍ ۚ اِذَآ اَخْرَجَ يَدَهٗ لَمْ يَكَدْ يَرٰىهَا ۚ وَمَنْ لَّمْ يَجْعَلِ اللّٰهُ لَهٗ نُوْرًا فَمَا لَهٗ مِنْ نُّوْرٍ ۝۴۰

जैसे एक गहरे समन्दर में अंधेरा कि ऊपर एक मौज छाई हुई है, उसपर एक और मौज, और उसके ऊपर बादल, अंधेरे-पर-अंधेरा छाया हुआ है, आदमी अपना हाथ निकाले तो उसे भी न देखने पाए।[72] जिसे अल्लाह नूर न दे, उसके लिए फिर कोई नूर नहीं।[73]

कुछ फ़ायदेमन्द होंगे। मिसाल के अन्दाज़ में उनको बताया जा रहा है कि तुम अपने जिन ज़ाहिरी और दिखावटी भलाई के कामों से आख़िरत में फ़ायदे की उम्मीद रखते हो, उनकी हक़ीक़त सराब (मरीचिका) से ज़्यादा नहीं है। रेगिस्तान में चमकती हुई रेत को दूर से देखकर जिस तरह प्यासा यह समझता है कि पानी का एक तालाब मौजें मार रहा है और वह मुँह उठाए उसकी तरफ़ प्यास बुझाने की उम्मीद लिए हुए दौड़ता चला जाता है, उसी तरह तुम इन आमाल के झूठे भरोसे पर मौत की मंज़िल का सफ़र तय करते चले जा रहे हो। मगर जिस तरह चमकती रेत के पीछे दौड़नेवाला जब उस जगह पहुँचता है, जहाँ उसे तालाब नज़र आ रहा था तो कुछ नहीं पाता। इसी तरह जब तुम मौत की मंज़िल में दाख़िल हो जाओगे तो तुम्हें पता चल जाएगा कि यहाँ कोई ऐसी चीज़ मौजूद नहीं है जिसका तुम कोई फ़ायदा उठा सको, बल्कि इसके बरख़िलाफ़ अल्लाह तुम्हारे कुफ़्र (इनकार) और निफ़ाक़ (कपटाचार) का, और उन बुरे कामों का जो तुम इन दिखावटी नेकियों के साथ कर रहे थे, हिसाब लेने और पूरा-पूरा बदला देने के लिए मौजूद है।

72. इस मिसाल में हक़ के तमाम इनकारियों और मुनाफ़िक़ों की हालत बयान की गई है जिनमें दिखावटी नेकियाँ करनेवाले भी शामिल हैं। इन सबके बारे में बताया जा रहा है कि वे अपनी पूरी ज़िन्दगी बिलकुल और पूरी तरह जहालत की हालत में गुज़ार रहे हैं, चाहे वे दुनियावालों की नज़र में बहुत बड़े आलिम (ज्ञानवान) और उलूमो-फ़ुनून (विज्ञान व कलाओं) के उस्तादों-के-उस्ताद ही क्यों न हों। उनकी मिसाल उस आदमी की-सी है जो किसी ऐसी जगह फँसा हुआ हो जहाँ पूरी तरह अंधेरा हो, रौशनी की एक किरण तक न पहुँच सकती हो। वे समझते हैं कि एटम बम और हाइड्रोजन बम और आवाज़ से तेज़ रफ़्तार हवाई जहाज़, और चाँद तक पहुँचनेवाली हवाइयाँ बना लेने का नाम इल्म (विज्ञान) है। उनके नज़दीक मआशी और माली मामलों में और क़ानून और फ़लसफ़े में महारत का नाम इल्म है। मगर हक़ीक़ी इल्म एक और चीज़ है, और उसकी उनको हवा तक नहीं लगी है। उस इल्म के एतिबार से वे कोरे जाहिल हैं, और एक अनपढ़ देहाती इल्मवाला है अगर वह हक़ की पहचान रखता हो।

73. यहाँ पहुँचकर वह अस्ल मक़सद खोल दिया गया है जिसकी तमहीद (भूमिका) "अल्लाह

اَلَمْ تَرَ اَنَّ اللّٰهَ يُسَبِّحُ لَهٗ مَنْ فِی السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَالطَّيْرُ صٰٓفّٰتٍؕ
كُلٌّ قَدْ عَلِمَ صَلَاتَهٗ وَتَسْبِيْحَهٗؕ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌۢ بِمَا يَفْعَلُوْنَ۝۴۱ وَلِلّٰهِ
مُلْكُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِۚ وَاِلَى اللّٰهِ الْمَصِيْرُ۝۴۲ اَلَمْ تَرَ اَنَّ اللّٰهَ يُزْجِیْ
سَحَابًا ثُمَّ يُؤَلِّفُ بَيْنَهٗ ثُمَّ يَجْعَلُهٗ رُكَامًا فَتَرَى الْوَدْقَ يَخْرُجُ مِنْ
خِلٰلِهٖۚ وَيُنَزِّلُ مِنَ السَّمَآءِ مِنْ جِبَالٍ فِيْهَا مِنْۢ بَرَدٍ فَيُصِيْبُ بِهٖ

(41) क्या[74] तुम देखते नहीं हो कि अल्लाह की तसबीह कर रहे हैं वे सब जो आसमानों और ज़मीन में हैं और वे परिन्दे जो पंख फैलाए उड़ रहे हैं? हर एक अपनी नमाज़ और तसबीह का तरीक़ा जानता है, और ये सब जो कुछ करते हैं, अल्लाह उससे बाख़बर रहता है। (42) आसमानों और ज़मीन की बादशाही अल्लाह ही के लिए है और उसी की तरफ़ सबको पलटना है।

(43) क्या तुम देखते नहीं हो कि अल्लाह बादल को धीरे-धीरे चलाता है, फिर उसके टुकड़ों को आपस में जोड़ता है, फिर उसे समेटकर एक घना बादल बना देता है, फिर तुम देखते हो कि उसके ख़ोल में से बारिश की बूँदें टपकती चली आती हैं। और वह आसमान से, उन पहाड़ों की बदौलत जो उसमें बुलन्द हैं,[75] ओले बरसाता है, फिर जिसे

आसमानों और ज़मीन का नूर है'' की बात से उठाई गई थी। जब कायनात में कोई नूर हक़ीक़त में अल्लाह के नूर के सिवा नहीं है, और सब कुछ उसी नूर की बदौलत ज़ाहिर हो रहा है तो जो शख़्स अल्लाह से नूर न पाए, वह अगर पूरी तरह अंधेरे में पड़ा न होगा तो और क्या होगा। कहीं और तो रौशनी मौजूद ही नहीं है कि उससे एक किरण भी वह पा सके।

74. ऊपर ज़िक्र आ चुका है कि अल्लाह सारी कायनात का नूर है, मगर उस नूर को पाने का मौक़ा सिर्फ़ नेक ईमानवालों ही को मिलता है, बाक़ी सब लोग इस मुकम्मल नूर के तहत होते हुए भी अंधों की तरह अंधेरे में भटकते रहते हैं। अब इस नूर की तरफ़ रहनुमाई करनेवाली अनगिनत निशानियों में से सिर्फ़ कुछ को बतौर नमूना पेश किया जा रहा है कि दिल की आँखें खोलकर कोई उन्हें देखे तो हर वक़्त हर तरफ़ अल्लाह को काम करते देख सकता है। मगर जो दिल के अंधे हैं, वे अपने सिर के दीदे फाड़-फाड़कर भी देखते हैं तो उन्हें बायलॉजी (Biology) और ज़ूलॉजी (Zoology) और तरह-तरह की दूसरी लॉजियाँ (Lologies) तो अच्छी ख़ासी काम करती नज़र आती हैं, मगर अल्लाह कहीं काम करता नज़र नहीं आता।

75. इससे मुराद सर्दी से जमे हुए बादल भी हो सकते हैं जिन्हें अलामत के तौर पर आसमान के

مَنْ يَّشَآءُ وَيَصْرِفُهٗ عَنْ مَّنْ يَّشَآءُ ؕ يَكَادُ سَنَا بَرْقِهٖ يَذْهَبُ
بِالْاَبْصَارِ ﴿٤٣﴾ يُقَلِّبُ اللّٰهُ الَّيْلَ وَالنَّهَارَ ؕ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَعِبْرَةً لِّاُولِي
الْاَبْصَارِ ﴿٤٤﴾ وَاللّٰهُ خَلَقَ كُلَّ دَآبَّةٍ مِّنْ مَّآءٍ ۚ فَمِنْهُمْ مَّنْ يَّمْشِيْ عَلٰى
بَطْنِهٖ ۚ وَمِنْهُمْ مَّنْ يَّمْشِيْ عَلٰى رِجْلَيْنِ ۚ وَمِنْهُمْ مَّنْ يَّمْشِيْ عَلٰٓى
اَرْبَعٍ ؕ يَخْلُقُ اللّٰهُ مَا يَشَآءُ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ﴿٤٥﴾ لَقَدْ
اَنْزَلْنَآ اٰيٰتٍ مُّبَيِّنٰتٍ ؕ وَاللّٰهُ يَهْدِيْ مَنْ يَّشَآءُ اِلٰى صِرَاطٍ
مُّسْتَقِيْمٍ ﴿٤٦﴾ وَيَقُوْلُوْنَ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَبِالرَّسُوْلِ وَاَطَعْنَا ثُمَّ يَتَوَلّٰى
فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ مِّنْ بَعْدِ ذٰلِكَ ؕ وَمَآ اُولٰٓئِكَ بِالْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٤٧﴾ وَاِذَا دُعُوْٓا

चाहता है उनको नुक़सान पहुँचाता है और जिसे चाहता है उनसे बचा लेता है। उसकी बिजली की चमक निगाहों को चका-चौंध किए देती है। (44) रात और दिन का उलट-फेर वही कर रहा है। इसमें एक सबक़ है आँखोंवालों के लिए।

(45) और अल्लाह ने हर जानदार एक तरह के पानी से पैदा किया, कोई पेट के बल चल रहा है तो कोई दो टाँगों पर और कोई चार टाँगों पर। जो कुछ वह चाहता है पैदा करता है, वह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है।

(46) हमने साफ़-साफ़ हक़ीक़त बतानेवाली आयतें उतार दी हैं, आगे सीधे रास्ते की तरफ़ हिदायत अल्लाह ही जिसे चाहता है देता है।

(47) ये लोग कहते हैं कि हम ईमान लाए अल्लाह और रसूल पर और हमने फ़रमाँबरदारी क़बूल की, मगर इसके बाद इनमें से एक गरोह (फ़रमाँबरदारी से) मुँह मोड़ जाता है। ऐसे लोग हरगिज़ ईमानवाले नहीं हैं।[76] (48) जब इनको बुलाया जाता है

पहाड़ कहा गया हो और ज़मीन के पहाड़ भी हो सकते हैं जो आसमान में बुलन्द हैं जिनकी चोटियों पर जमी हुई बर्फ़ के असर से कई बार हवा इतनी ठण्डी हो जाती है कि बादलों में जमाव पैदा होने लगता है और ओलों की शक्ल में बारिश होने लगती है।

76. यानी फ़रमाँबरदारी से मुँह मोड़ना उनके ईमान के दावे को ख़ुद झुठला देता है, और इस

إِلَى اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ لِيَحْكُمَ بَيْنَهُمْ اِذَا فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ مُّعْرِضُوْنَ ﴿٤٨﴾
وَاِنْ يَّكُنْ لَّهُمُ الْحَقُّ يَاْتُوْٓا اِلَيْهِ مُذْعِنِيْنَ ﴿٤٩﴾ اَفِيْ قُلُوْبِهِمْ مَّرَضٌ

अल्लाह और रसूल की तरफ़ ताकि रसूल इनके आपस के मुक़द्दमे का फ़ैसला करे[77] तो इनमें से एक गरोह कतरा जाता है।[78] (49) अलबत्ता अगर हक़ इनकी तरफ़दारी में हो तो रसूल के पास बड़े फ़रमाँबरदार बनकर आ जाते हैं।[79] (50) क्या इनके दिलों को

हरकत से यह बात खुल जाती है कि उन्होंने झूठ कहा, जब कहा कि हम ईमान लाए और हमने फ़रमाँबरदारी क़बूल की।

77. ये अलफ़ाज़ साफ़ बताते हैं कि रसूल का फ़ैसला अल्लाह का फ़ैसला है और उसका हुक्म अल्लाह का हुक्म है। रसूल की तरफ़ बुलाया जाना सिर्फ़ रसूल ही की तरफ़ बुलाया जाना नहीं, बल्कि अल्लाह और रसूल दोनों की तरफ़ बुलाया जाना है। इसके अलावा इस आयत और ऊपरवाली आयत से यह बात बिना किसी शक के बिलकुल साफ़ हो जाती है कि अल्लाह और रसूल की फ़रमाँबरदारी के बिना ईमान का दावा बेमतलब है और अल्लाह और रसूल की फ़रमाँबरदारी का कोई मतलब इसके सिवा और कुछ नहीं कि मुसलमान फ़र्द (व्यक्ति) की हैसियत से भी और क़ौम की हैसियत से भी उस क़ानून के आगे झुक जाएँ जो अल्लाह और उसके रसूल ने उनको दिया है। यह रवैया अगर वे नहीं अपनाते तो उनका ईमान का दावा एक झूठा दावा है। (यह क़िस्सा दूसरी जगह पर भी कुछ फ़र्क़ के साथ आया है। देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयतें—59-61, हाशिए—89-92 के समेत।)

78. वाज़ेह रहे कि यह मामला सिर्फ़ नबी (सल्ल॰) की ज़िन्दगी ही के लिए न था, बल्कि आप (सल्ल॰) के बाद जो भी इस्लामी हुकूमत में जज या क़ाज़ी के ओहदे पर हो और अल्लाह की किताब और अल्लाह के रसूल की सुन्नत के मुताबिक़ फ़ैसले करे तो उसकी अदालत का सम्मन (Sommon) अस्ल में अल्लाह और रसूल की अदालत का सम्मन है, और उससे मुँह मोड़नेवाला हक़ीक़त में उससे नहीं, बल्कि अल्लाह और रसूल से मुँह मोड़नेवाला है। इस बात की यह तशरीह ख़ुद नबी (सल्ल॰) से एक मुर्सल हदीस में बयान हुई है जिसे हसन बसरी (रह॰) ने रिवायत किया है कि "जो शख़्स मुसलमानों के अदालती अधिकारियों में से किसी अधिकारी की तरफ़ बुलाया जाए और वह हाज़िर न हो तो वह ज़ालिम है, उसका कोई हक़ नहीं है।" (अहकामुल-क़ुरआन, जस्सास, हिस्सा-3, पेज-405) दूसरे अलफ़ाज़ में ऐसा आदमी सज़ा का भी हक़दार है, और इसके अलावा इसका भी हक़दार है कि उसे पूरी तरह ग़लत मानकर उसके ख़िलाफ़ एकतरफ़ा फ़ैसला दे दिया जाए।

79. यह आयत इस हक़ीक़त को साफ़-साफ़ खोलकर बयान कर रही है कि जो शख़्स शरीअत की फ़ायदेमन्द बातों को ख़ुशी से लपककर ले ले, मगर जो कुछ ख़ुदा की शरीअत में उसके मक़सदों और ख़ाहिशों के ख़िलाफ़ हो, उसे रद्द कर दे और उसके मुक़ाबले में दुनिया के दूसरे क़ानूनों को

اَمِ ارْتَابُوْۤا اَمْ يَخَافُوْنَ اَنْ يَّحِيْفَ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ وَرَسُوْلُهٗ ؕ بَلْ
اُولٰٓئِكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ﴿٥٠﴾ اِنَّمَا كَانَ قَوْلَ الْمُؤْمِنِيْنَ اِذَا دُعُوْۤا اِلَى اللّٰهِ
وَرَسُوْلِهٖ لِيَحْكُمَ بَيْنَهُمْ اَنْ يَّقُوْلُوْا سَمِعْنَا وَاَطَعْنَا ؕ وَاُولٰٓئِكَ
هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ﴿٥١﴾ وَمَنْ يُّطِعِ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ وَيَخْشَ اللّٰهَ وَيَتَّقْهِ
فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْفَآئِزُوْنَ ﴿٥٢﴾ وَاَقْسَمُوْا بِاللّٰهِ جَهْدَ اَيْمَانِهِمْ لَئِنْ

(मुनाफ़क़त का) रोग लगा हुआ है? या ये शक में पड़े हुए हैं? या इनको यह डर है कि अल्लाह और उसका रसूल उनपर ज़ुल्म करेगा? अस्ल बात यह है कि ज़ालिम तो ये लोग ख़ुद हैं।[80] (51) ईमान लानेवालों का काम तो यह है कि जब वे अल्लाह और रसूल की तरफ़ बुलाए जाएँ, ताकि रसूल उनके मुक़द्दमे का फ़ैसला करे तो वे कहें कि हमने सुना और मान लिया। ऐसे ही लोग कामयाब होनेवाले हैं, (52) और कामयाब वही हैं जो अल्लाह और रसूल की फ़रमाँबरदारी करें और अल्लाह से डरें और उसकी नाफ़रमानी से बचें।

(53) ये (मुनाफ़िक़) अल्लाह के नाम से कड़ी-कड़ी क़समें खाकर कहते हैं कि "आप

अहमियत दे तो वह ईमानवाला नहीं, बल्कि मुनाफ़िक़ है। उसका ईमान का दावा झूठा है; क्योंकि वह ईमान ख़ुदा और रसूल पर नहीं, अपने फ़ायदों और ख़ाहिशों पर रखता है। इस रवैये के साथ ख़ुदा की शरीअत के किसी हिस्से को अगर वह मान भी रहा है तो ख़ुदा की निगाह में इस तरह के मानने की कोई क़द्र-क़ीमत नहीं।

80. यानी इस रवैये की तीन वजहें ही हो सकती हैं—एक यह कि आदमी सिरे से ईमान ही न लाया हो और मुनाफ़िक़ाना तरीक़े पर सिर्फ़ धोखा देने और मुस्लिम समाज में शामिल होने का नाजाइज़ फ़ायदा उठाने के लिए मुसलमान हो गया हो। दूसरी यह कि ईमान ले आने के बावजूद उसे इस बात में अभी तक शक हो कि रसूल ख़ुदा का रसूल है या नहीं, और क़ुरआन ख़ुदा की किताब है या नहीं, और आख़िरत सचमुच आनेवाली है भी या यह सिर्फ़ एक गढ़ी हुई कहानी है, बल्कि ख़ुदा भी हक़ीक़त में मौजूद है या यह भी एक ख़याल है जो किसी ज़रूरत से गढ़ लिया गया है। तीसरी यह कि वह ख़ुदा को ख़ुदा और रसूल को रसूल मानकर भी उनसे ज़ुल्म का अन्देशा रखता हो और यह समझता हो कि ख़ुदा की किताब ने फ़ुलाँ हुक्म देकर तो हमें मुसीबत में डाल दिया और ख़ुदा के रसूल का फ़ुलाँ फ़रमान या फ़ुलाँ तरीक़ा तो हमारे लिए सख़्त नुक़सानदेह है। इन तीनों सूरतों में से जो सूरत भी हो, ऐसे लोगों के ज़ालिम होने में कोई

اَمَرْتَهُمْ لَيَخْرُجُنَّ ؕ قُلْ لَّا تُقْسِمُوْا ۚ طَاعَةٌ مَّعْرُوْفَةٌ ؕ اِنَّ اللّٰهَ خَبِيْرٌۢ
بِمَا تَعْمَلُوْنَ ۝٥٣ قُلْ اَطِيْعُوا اللّٰهَ وَاَطِيْعُوا الرَّسُوْلَ ۚ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَاِنَّمَا
عَلَيْهِ مَا حُمِّلَ وَعَلَيْكُمْ مَّا حُمِّلْتُمْ ؕ وَاِنْ تُطِيْعُوْهُ تَهْتَدُوْا ؕ وَمَا عَلَى
الرَّسُوْلِ اِلَّا الْبَلٰغُ الْمُبِيْنُ ۝٥٤ وَعَدَ اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مِنْكُمْ

हुक्म दें तो हम घरों से निकल खड़े हों।" इनसे कहो, "क़समें न खाओ, तुम्हारी फ़रमाँबरदारी का हाल मालूम है,[81] तुम्हारे करतूतों से अल्लाह बेख़बर नहीं है।"[82] (54) कहो, "अल्लाह के फ़रमाँबरदार बनो और रसूल के हुक्म को माननेवाले बनकर रहो। लेकिन अगर तुम मुँह फेरते हो तो ख़ूब समझ लो कि रसूल पर जिस फ़र्ज़ का बोझ रखा गया है, उसका ज़िम्मेदार वह है और तुमपर जिस फ़र्ज़ का बोझ डाला गया है, उसके ज़िम्मेदार तुम। उसकी फ़रमाँबरदारी करोगे तो ख़ुद ही हिदायत पाओगे। वरना रसूल की ज़िम्मेदारी इससे ज़्यादा कुछ नहीं है कि साफ़-साफ़ हुक्म पहुँचा दे।"

(55) अल्लाह ने वादा किया है तुममें से उन लोगों के साथ जो ईमान लाएँ और

शक नहीं। इस तरह के ख़यालात रखकर जो शख़्स मुसलमानों में शामिल होता है, ईमान का दावा करता है और मुस्लिम समाज का एक मेम्बर बनकर तरह-तरह के नाजाइज़ फ़ायदे इस समाज से उठाता है, वह बहुत बड़ा धोखेबाज़, बेईमान और जालसाज़ है। वह अपने आपपर भी ज़ुल्म करता है कि उसे दिन-रात के झूठ से घटिया और गिरी हुई सिफ़ात का पुतला बनाता चला जाता है। और उन मुसलमानों पर भी ज़ुल्म करता है जो उसके ज़ाहिरी कलिमा-ए-शहादत पर भरोसा करके उसे अपनी मिल्लत का एक हिस्सा मान लेते हैं और फिर उसके साथ तरह-तरह के समाजी, तमद्दुनी, सियासी और अख़लाक़ी रिश्ते भी जोड़ लेते हैं।

81. दूसरा मतलब यह भी हो सकता है कि ईमानवालों से जो फ़रमाँबरदारी चाहिए है, वह जानी-मानी फ़रमाँबरदारी है जो हर शक-शुब्हे से ऊपर हो, न कि वह फ़रमाँबरदारी जिसका यक़ीन दिलाने के लिए क़समें खाने की ज़रूरत पड़े और फिर भी यक़ीन न आ सके। जो लोग हक़ीक़त में हुक्म के पाबन्द होते हैं, उनका रवैया किसी से छिपा हुआ नहीं होता। हर शख़्स उनके रवैये को देखकर महसूस कर लेता है कि ये फ़रमाँबरदार लोग हैं। उनके बारे में किसी शक और शुबहे की गुंजाइश ही नहीं होती कि उसे दूर करने के लिए क़समें खाने की ज़रूरत पड़े।

82. यानी ये धोखेबाज़ियाँ दुनियावालों के मुक़ाबले में तो शायद चल भी जाएँ, मगर ख़ुदा के मुक़ाबले में कैसे चल सकती हैं जो खुले और छिपे सब हालात, बल्कि दिलों में छिपे इरादों और ख़यालात, तक को जानता है।

وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ لَيَسْتَخْلِفَنَّهُمْ فِي الْاَرْضِ كَمَا اسْتَخْلَفَ الَّذِيْنَ
مِنْ قَبْلِهِمْ ۖ وَلَيُمَكِّنَنَّ لَهُمْ دِيْنَهُمُ الَّذِي ارْتَضٰى لَهُمْ وَلَيُبَدِّلَنَّهُمْ
مِّنْۢ بَعْدِ خَوْفِهِمْ اَمْنًا ۚ يَعْبُدُوْنَنِيْ لَا يُشْرِكُوْنَ بِيْ شَيْـًٔا ۚ

अच्छे काम करें कि वह उनको उसी तरह ज़मीन में ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) बनाएगा जिस तरह उनसे पहले गुज़रे हुए लोगों को बना चुका है। उनके लिए उनके उस दीन को मज़बूत बुनियादों पर क़ायम कर देगा जिसे अल्लाह तआला ने उनके लिए पसन्द किया है, और उनकी (मौजूदा) डर की हालत को अम्न से बदल देगा। बस वे मेरी बन्दगी करें और मेरे साथ किसी को शरीक न करें।[83]

83. जैसा कि इस बात के सिलसिले के शुरू में हम इशारा कर चुके हैं, यह बात कहने का मक़सद मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) को ख़बरदार करना है कि अल्लाह ने मुसलमानों को ख़िलाफ़त (अल्लाह का प्रतिनिधित्व) देने का जो वादा किया है, वह सिर्फ़ नाम के मुसलमानों के लिए नहीं किया है, बल्कि उन मुसलमानों के लिए है जो ईमान में सच्चे हों, अख़लाक़ और आमाल के एतिबार से नेक हों, अल्लाह के पसन्दीदा दीन की पैरवी करनेवाले हों, और हर तरह के शिर्क से पाक होकर ख़ालिस अल्लाह की बन्दगी और ग़ुलामी के पाबन्द हों। इन सिफ़ात से ख़ाली और सिर्फ़ ज़बान से ईमान के दावेदार लोग न इस वादे के लायक़ हैं और न यह उनसे किया ही गया है। इसलिए वे इसमें हिस्सेदार होने की उम्मीद न रखें।

कुछ लोग ख़िलाफ़त को सिर्फ़ हुकूमत और फ़रमाँरवाई और ग़लबे के मानी में ले लेते हैं, फिर इस आयत से यह नतीजा निकालते हैं कि जिसको भी दुनिया में यह चीज़ हासिल है वह ईमानवाला और नेक और अल्लाह के पसन्दीदा दीन की पैरवी करनेवाला और सच पर चलनेवाला और शिर्क से बचनेवाला है। और फिर इसपर यह सितम ढाते हैं कि अपने इस ग़लत नतीजे को ठीक बिठाने के लिए ईमान, नेकी, दीने-हक़, अल्लाह की इबादत और शिर्क, हर चीज़ का मतलब बदलकर वह कुछ बना डालते हैं जो उनके इस नज़रिए के मुताबिक़ हो। यह क़ुरआन में किया जानेवाला सबसे बुरा फेर-बदल है जो यहूदियों और ईसाइयों के फेर-बदल से भी बाज़ी ले गया है। इसने क़ुरआन की एक आयत का वह मतलब निकाल लिया है जो पूरे क़ुरआन की तालीम को बिगाड़ डालता है और इस्लाम की किसी एक चीज़ को भी उसकी जगह पर बाक़ी नहीं रहने देता। ख़िलाफ़त की इस तारीफ़ के बाद लाज़िमी तौर पर वे सब लोग इस आयत के तहत आ जाते हैं जिन्होंने कभी दुनिया में ग़लबा और इक़्तिदार पाया है या आज पाए हुए हैं, चाहे वे ख़ुदा, वह्य, रिसालत, आख़िरत हर चीज़ का इनकार करते हों और ख़ुदा की नाफ़रमानियों और गुनाहों की उन तमाम गन्दगियों में बुरी तरह लिथड़े हुए हों जिन्हें क़ुरआन ने बड़े गुनाह ठहराया है, जैसे सूद (ब्याज), ज़िना, शराब और जुआ। अब अगर ये सब

लोग नेक और भले ईमानवाले हैं और इसी लिए ख़िलाफ़त के ऊँचे ओहदे पर बिठाए गए हैं तो फिर ईमान का मतलब क़ुदरती क़ानूनों को मानने और सलाह (नेकी) का मतलब उन क़ानूनों को कामयाबी के साथ इस्तेमाल करने के सिवा और क्या हो सकता है? और अल्लाह का पसन्दीदा दीन इसके सिवा और क्या हो सकता है कि फ़ितरी उलूम में महारत हासिल करके उद्योग-धंधे, तिजारत, कारोबार और सियासत में ख़ूब तरक़्क़ी की जाए? और अल्लाह की बन्दगी का मतलब फिर इसके सिवा और क्या रह जाता है कि उन उसूलों और नियमों की पाबन्दी की जाए जो इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) और इजतिमाई (सामाजिक) कोशिशों की कामयाबी के लिए फ़ितरी तौर पर फ़ायदेमन्द और ज़रूरी हैं? और शिर्क फिर इसके सिवा और किस चीज़ का नाम रह जाता है कि उन फ़ायदेमन्द क़ायदे-क़ानून के साथ कोई शख़्स या क़ौम कुछ नुक़सानदेह तरीक़े भी अपना ले? मगर क्या कोई शख़्स जिसने खुले दिल और खुली आँखों से कभी क़ुरआन को समझकर पढ़ा हो, यह मान सकता है कि क़ुरआन में सचमुच ईमान और नेक अमल और दीने-हक़ और अल्लाह की इबादत और तौहीद और शिर्क का यही मतलब है? यह मतलब या तो वह शख़्स ले सकता है जिसने कभी पूरा क़ुरआन समझकर न पढ़ा हो और सिर्फ़ कोई आयत कहीं से और कोई कहीं से लेकर उसको अपने नज़रियों और ख़यालों के मुताबिक़ ढाल लिया हो, या फिर वह शख़्स यह हरकत कर सकता है जो क़ुरआन को पढ़ते हुए उन सब आयतों को अपने ख़याल और दावे में सरासर बेमतलब और ग़लत बताता चला गया हो जिनमें अल्लाह तआला को एक अकेला रब और माबूद और उसकी उतारी हुई वह्य को हिदायत का एक ही ज़रिआ और उसके भेजे हुए हर पैग़म्बर को ऐसा रहनुमा मानने की दावत दी गई है जिसकी पैरवी हर हाल में ज़रूरी है और मौजूदा दुनियावी ज़िन्दगी के ख़त्म होने पर एक दूसरी ज़िन्दगी के सिर्फ़ मान लेने ही की माँग नहीं की गई है, बल्कि यह भी साफ़-साफ़ कहा गया है कि जो लोग उस ज़िन्दगी में अपनी जवाबदेही के ख़याल से इनकार करनेवाले या उस तरफ़ से बेपरवाह होकर सिर्फ़ इस दुनिया की कामयाबियों को अपना मक़सद समझते हुए काम करेंगे, वे कामयाबी से महरूम रहेंगे। क़ुरआन में इन बातों को इतना ज़्यादा और ऐसे अलग-अलग तरीक़ों से और ऐसे खुले और साफ़ अलफ़ाज़ में बार-बार दोहराया गया है कि हमारे लिए यह मान लेना मुश्किल है कि इस किताब को ईमानदारी के साथ पढ़नेवाला कोई शख़्स कभी उन ग़लतफ़हमियों में भी पड़ सकता है जिनमें ख़िलाफ़त से मुताल्लिक़ आयत के यह नए तफ़सीर लिखनेवाले मुब्तला हुए हैं; हालाँकि लफ़्ज़ ख़िलाफ़त और इसतिख़्लाफ़ (ख़लीफ़ा बनाए जाने) के जिस मानी पर उन्होंने यह सारी इमारत खड़ी की है, वह उनका अपना गढ़ा हुआ है, क़ुरआन का जाननेवाला कोई शख़्स इस आयत में वह मानी कभी नहीं ले सकता।

क़ुरआन अस्ल में ख़िलाफ़त और इसतिख़्लाफ़ को तीन अलग-अलग मानी में इस्तेमाल करता है और हर जगह मौक़ा-महल से पता चल जाता है कि कहाँ किस मानी में यह लफ़्ज़ बोला गया है—

इसका एक मतलब है, "वह शख़्स जिसे ख़ुदा के दिए हुए अधिकार हासिल हों।" इस मानी में आदम की पूरी औलाद ज़मीन में ख़लीफ़ा है।

दूसरा मतलब है, "ख़ुदा के इक़्तिदारे-आला (संप्रभुता) को मानते हुए उसके शरई हुक्म (न कि

सिर्फ़ क़ुदरती हुक्म) के तहत ख़िलाफ़त के अधिकारों को इस्तेमाल करना।" इस मानी में सिर्फ़ नेक ईमानवाला ही ख़लीफ़ा क़रार पाता है; क्योंकि वह सही तौर पर ख़िलाफ़त का हक़ अदा करता है। और इसके बरख़िलाफ़ हक़ का इनकारी और फ़ासिक़ (अल्लाह का नाफ़रमान) ख़लीफ़ा नहीं, बल्कि बाग़ी है; क्योंकि वह मालिक के मुल्क में उसके दिए हुए अधिकारों को नाफ़रमानी के तरीक़े पर इस्तेमाल करता है।

तीसरा मतलब है, "एक दौर की ग़ालिब क़ौम के बाद दूसरी क़ौम का उसकी जगह लेना।" पहले दोनों मतलबों में ख़िलाफ़त 'नियाबत' (प्रतिनिधित्व) के मानी में है और यह आख़िरी मतलब ख़िलाफ़त यानी 'जानशीनी' (उत्तराधिकार) से लिया गया है। और इस लफ़्ज़ के ये दोनों मतलब अरबी ज़बान में जाने-माने हैं।

अब जो शख़्स भी यहाँ इस मौक़ा-महल में ख़लीफ़ा बनाए जाने की जानकारी देनेवाली आयत को पढ़ेगा, वह एक पल के लिए भी इस बात में शक नहीं कर सकता कि इस जगह ख़िलाफ़त का लफ़्ज़ उस हुकूमत के मानी में इस्तेमाल हुआ है जो अल्लाह के शरई हुक्म के मुताबिक़ (न कि सिर्फ़ क़ुदरती क़ानून के मुताबिक़) उसकी नियाबत का ठीक-ठीक हक़ अदा करनेवाली हो। इसी लिए हक़ के इनकारी तो एक तरफ़, इस्लाम का दावा करनेवाले मुनाफ़िक़ों तक को इस वादे में शरीक करने से इनकार किया जा रहा है। इसी लिए फ़रमाया जा रहा है कि इसके हक़दार सिर्फ़ ईमान और अच्छे कामों की सिफ़ात रखनेवाले लोग हैं। इसी लिए ख़िलाफ़त के क़ायम होने का फल यह बताया जा रहा है कि अल्लाह का पसन्द किया हुआ दीन, यानी इस्लाम, मज़बूत बुनियादों पर क़ायम हो जाएगा और इसी लिए इस इनाम को देने की शर्त यह बताई जा रही है कि ख़ालिस अल्लाह की बन्दगी पर क़ायम रहो जिसमें शिर्क की ज़र्रा बराबर मिलावट न होने पाए। इस वादे को यहाँ से उठाकर बैनुल-अक़वामी (अन्तर्राष्ट्रीय) चौराहे पर ले पहुँचना और अमेरिका से लेकर रूस तक जिसकी बड़ाई का डंका भी दुनिया में बज रहा हो, उसके सामने उसे भेंट कर देना जहालत की इन्तिहा के सिवा और कुछ नहीं है। इन सब ताक़तों को भी अगर ख़िलाफ़त का बुलन्द मंसब हासिल है तो आख़िर फ़िरऔन और नमरूद ही ने क्या क़ुसूर किया था कि अल्लाह तआला ने उन्हें लानत का हक़दार ठहरा दिया? (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए—तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-21 अम्बिया, हाशिया-99)

इस जगह एक और बात भी ज़िक्र करने के लायक़ है। यह वादा बाद के मुसलमानों को तो दूसरों के ज़रिए से पहुँचता है, सीधे तौर पर यह उन लोगों से किया गया है, जो नबी (सल्ल॰) के दौर में मौजूद थे। वादा जब किया गया था, उस वक़्त सचमुच मुसलमानों पर ख़ौफ़ की हालत छाई हुई थी और इस्लाम ने अभी हिजाज़ की ज़मीन में भी मज़बूत जड़ नहीं पकड़ी थी। उसके कुछ साल बाद डर की यह हालत न सिर्फ़ अम्न से बदल गई, बल्कि इस्लाम अरब से निकलकर एशिया और अफ़्रीक़ा के बड़े हिस्से पर छा गया और उसकी जड़ें अपनी पैदाइश की ज़मीन ही में नहीं, पूरी दुनिया में जम गईं। यह इस बात का तारीख़ी सुबूत है कि अल्लाह तआला ने अपना यह वादा अबू-बक्र (रज़ि॰), उमर फ़ारूक़ (रज़ि॰) और उसमान ग़नी (रज़ि॰) के ज़माने में पूरा कर दिया। इसके बाद कोई इनसाफ़-पसन्द आदमी मुश्किल ही से इस बात में शक कर सकता है कि इन तीनों लोगों की ख़िलाफ़त पर ख़ुद क़ुरआन की तसदीक़ (पुष्टि) की

وَمَنْ كَفَرَ بَعْدَ ذٰلِكَ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْفٰسِقُوْنَ۝ وَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ

और जो उसके बाद कुफ़्र करे[84] तो ऐसे ही लोग नाफ़रमान हैं। (56) नमाज़ क़ायम करो,

मुहर लगी हुई है और उनके अच्छे ईमानवाले होने की गवाही अल्लाह तआला ख़ुद दे रहा है। इसमें अगर किसी को शक हो तो नहजुल-बलाग़ा में हज़रत अली (रज़ि०) की वह तक़रीर पढ़ ले जो उन्होंने हज़रत उमर (रज़ि०) को ईरानियों के मुक़ाबले पर ख़ुद जाने के इरादे से रोकने के लिए की थी। इसमें वे फ़रमाते हैं–

"इस काम के फलने-फूलने या कम होने का दारोमदार लोगों के ज़्यादा या कम होने पर नहीं है। यह तो अल्लाह का दीन है जिसको उसने बढ़ाया और अल्लाह का लश्कर है जिसकी उसने ताईद और मदद की; यहाँ तक कि यह तरक़्क़ी करके इस मंज़िल तक महुँच गया। हमसे तो अल्लाह ख़ुद फ़रमा चुका है, "अल्लाह ने वादा किया है तुममें से उन लोगों के साथ जो ईमान लाएँ और अच्छे काम करें कि वह उनको ज़रूर ज़मीन में ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) बनाएगा ....।" अल्लाह इस वादे को पूरा करके रहेगा और अपने लश्कर की ज़रूर मदद करेगा। इस्लाम में क़य्यिम का मक़ाम वही है जो मोतियों के हार में धागे का मक़ाम है। धागा टूटते ही मोती बिखर जाते हैं और इन्तिज़ाम छिन्न-भिन्न हो जाता है और बिखर जाने के बाद फिर जमा होना मुश्किल हो जाता है। इसमें शक नहीं कि अरब तादाद में कम हैं। मगर इस्लाम ने उनको तादाद में बढ़ा दिया और इजतिमाअ (एक साथ होने) ने उनको क़वी (ताक़तवर) बना दिया है। आप यहाँ धुरी बनकर जमे बैठे रहें और अरब की चक्की को अपने आस-पास घुमाते रहें और यहीं से बैठे-बैठे जंग की आग भड़काते रहें, वरना आप अगर एक बार यहाँ से हट गए तो हर तरफ़ से अरब का निज़ाम (व्यवस्था) टूटना शुरू हो जाएगा और नौबत यह आ जाएगी कि आपको सामने के दुश्मनों के मुक़ाबले पीछे के ख़तरों की ज़्यादा फ़िक्र लगी होगी। और उधर ईरानी आप ही के ऊपर नज़र जमा देंगे कि यह अरब की जड़ है, इसे काट दो तो बेड़ा पार है। इसलिए वे सारा ज़ोर आपको ख़त्म कर देने पर लगा देंगे। रही वह बात जो आपने फ़रमाई है कि इस वक़्त अजम के लोग बहुत बड़ी तादाद में उमड़ आए हैं तो इसका जवाब यह है कि इससे पहले भी हम उनसे लड़ते रहे हैं तो कुछ तादाद में ज़्यादा होने के बल पर नहीं लड़ते रहे हैं, बल्कि अल्लाह की ताईद और मदद ही ने आज तक हमें कामयाब कराया है।"

देखनेवाला ख़ुद ही देख सकता है कि इस तक़रीर में हज़रत अली (रज़ि०) किसको 'इस्तिख़्लाफ़' की आयत के दायरे में रख रहे हैं।

84. कुफ़्र से मुराद यहाँ नेमत की नाशुक्री भी हो सकती है और हक़ (सत्य) का इनकार भी। पहले मतलब के लिहाज़ से इसमें वे लोग आते हैं जो ख़िलाफ़त की नेमत पाने के बाद हक़ और सच्चाई के रास्ते से हट जाएँ। और दूसरे मतलब के लिहाज़ से इसमें वे मुनाफ़िक़ आएँगे जो अल्लाह का यह वादा सुन लेने के बाद भी अपना मुनाफ़िक़ोंवाला रवैया न छोड़ें।

وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ وَاَطِيْعُوا الرَّسُوْلَ لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ ۝٥٦ لَا تَحْسَبَنَّ الَّذِيْنَ
كَفَرُوْا مُعْجِزِيْنَ فِي الْاَرْضِ ۚ وَمَاْوٰىهُمُ النَّارُ ؕ وَلَبِئْسَ الْمَصِيْرُ ۝٥٧
يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لِيَسْتَاْذِنْكُمُ الَّذِيْنَ مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ وَالَّذِيْنَ لَمْ
يَبْلُغُوا الْحُلُمَ مِنْكُمْ ثَلٰثَ مَرّٰتٍ ؕ مِنْ قَبْلِ صَلٰوةِ الْفَجْرِ وَحِيْنَ
تَضَعُوْنَ ثِيَابَكُمْ مِّنَ الظَّهِيْرَةِ وَمِنْۢ بَعْدِ صَلٰوةِ الْعِشَآءِ ؕ ثَلٰثُ

ज़कात दो और रसूल का कहा मानो, उम्मीद है तुमपर रहम किया जाएगा। (57) जो लोग कुफ़्र कर रहे हैं उनके बारे में इस ग़लतफ़हमी में न रहो कि वे ज़मीन में अल्लाह को बेबस कर देंगे। उनका ठिकाना दोज़ख़ है, और वह बड़ा ही बुरा ठिकाना है।

(58) ऐ लोगो[85] जो ईमान लाए हो, ज़रूरी है कि तुम्हारी मिलूकियत में रहनेवाले[86] और तुम्हारे वे बच्चे जो अभी अक़्ल की हद को नहीं पहुँचे हैं[87] तीन वक़्तों में इजाज़त लेकर तुम्हारे पास आया करें– सुबह की नमाज़ से पहले, और दोपहर को जबकि तुम कपड़े उतारकर रख देते हो, और इशा की नमाज़ के बाद। ये तीन वक़्त तुम्हारे लिए

85. यहाँ से फिर समाजी हुक्मों का सिलसिला शुरू होता है। कुछ नामुमकिन नहीं कि सूरा नूर का यह हिस्सा ऊपर की तक़रीर के कुछ मुद्दत बाद उतरा हो।

86. ज़्यादातर तफ़सीर लिखनेवालों और फ़क़ीहों के नज़दीक इससे मुराद लौंडियाँ और ग़ुलाम दोनों हैं; क्योंकि यहाँ आम लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है। मगर इब्ने-उमर (रज़ि.) और मुजाहिद इस आयत में 'ममलूकों' से मुराद सिर्फ़ ग़ुलाम लेते हैं और लौंडियों को इससे अलग रखते हैं। हालाँकि आगे जो हुक्म बयान किया गया है, उसको देखते हुए इस तरह ख़ास करने की कोई वजह नज़र नहीं आती। तन्हाई के वक़्तों में जिस तरह ख़ुद अपने बच्चों का अचानक आ जाना मुनासिब नहीं है, उसी तरह ख़ादिमा का भी आ जाना नामुनासिब है।
इस बात पर सभी एक राय हैं कि इस आयत का हुक्म बालिग़ और नाबालिग़ दोनों तरह के ममलूकों (ख़ादिमों और सेवकों) के लिए आम है।

87. दूसरा तर्जमा यह भी हो सकता है कि बालिग़ों का-सा ख़ाब देखने की उम्र को नहीं पहुँचे हैं। इसी से फ़क़ीहों ने लड़कों के मामले में एहतिलाम (स्वप्नदोष) को बालिग़ होने की शुरुआत माना है और इसपर सब एक राय हैं। लेकिन जो तर्जमा हमने मत्न (मूल) में अपनाया है, वह इस वजह से तरजीह (प्राथमिकता) देने के लायक़ है कि यह हुक्म लड़कों और लड़कियों, दोनों के लिए है, और एहतिलाम को बालिग़ होने की अलामत ठहरा देने के बाद हुक्म सिर्फ़ लड़कों

عَوْرٰتٍ لَّكُمْ ۭ لَيْسَ عَلَيْكُمْ وَلَا عَلَيْهِمْ جُنَاحٌۢ بَعْدَهُنَّ ۭ
طَوّٰفُوْنَ عَلَيْكُمْ بَعْضُكُمْ عَلٰى بَعْضٍ ۭ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ

परदे के वक़्त हैं।[88] इनके बाद ये बिना इजाज़त आएँ तो न तुमपर कोई गुनाह है, न उनपर,[89] तुम्हें एक-दूसरे के पास बार-बार आना ही होता है।[90] इस तरह अल्लाह तुम्हारे

के लिए ख़ास हो जाता है; क्योंकि लड़की के मामले में माहवारी के दिनों (मासिक-धर्म) की शुरुआत बालिग़ होने की अलामत है, न कि एहतिलाम। लिहाज़ा हमारे नज़दीक हुक्म का मंशा यह है कि जब तक घर के बच्चे उस उम्र को न पहुँचें जिसमें उनके अन्दर जिंसी शऊर बेदार हुआ करता है, वे इस क़ायदे की पाबन्दी करें और जब उस उम्र को पहुँच जाएँ तो फिर उनके लिए वह हुक्म है जो आगे आ रहा है।

88. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'औरात' इस्तेमाल हुआ है और कहा गया है कि "ये तीन वक़्त तुम्हारे लिए औरात हैं।" औरत उर्दू में तो औरत के लिए बोला जाता है, मगर अरबी में इसका मतलब ख़लल (दख़ल-अन्दाज़ी) और ख़तरे की जगह हैं, और उस चीज़ के लिए भी यह लफ़्ज़ बोला जाता है जिसका खुल जाना आदमी के लिए शर्म का सबब हो, या जिसका ज़ाहिर हो जाना उसको नागवार हो। इसके अलावा इस मानी में भी इसका इस्तेमाल होता है कि कोई चीज़ ग़ैर-महफ़ूज़ हो। ये सब मतलब आपस में एक-दूसरे से मेल खाते हैं और आयत के मानी में किसी-न-किसी हद तक सभी शामिल हैं। मतलब यह है कि इन वक़्तों में तुम लोग अकेले, या अपनी बीवियों के साथ ऐसी हालतों में होते हो जिनमें घर के बच्चों और नौकरों का अचानक तुम्हारे पास आ जाना मुनासिब नहीं है। लिहाज़ा उनको यह हिदायत करो कि इन तीन वक़्तों में जब वे तुम्हारी तन्हाई की जगह आने लगें तो पहले इजाज़त ले लिया करें।

89. यानी इन तीन वक़्तों के सिवा दूसरे वक़्तों में नाबालिग़ बच्चे और घर के नौकर-चाकर हर वक़्त औरतों और मर्दों के पास उनके कमरे में या उनकी तन्हाई की जगह बिना इजाज़त आ जा सकते हैं। इस सूरत में अगर तुम किसी नामुनासिब हालत में हो और वे बिना इजाज़त आ जाएँ तो तुम्हें डाँट-डपट करने का हक़ नहीं है; क्योंकि फिर यह तुम्हारी अपनी बेवक़ूफ़ी होगी कि काम-काज के वक़्तों में अपने आपको ऐसी नामुनासिब हालत में रखो। अलबत्ता अगर ऊपर बयान किए गए तन्हाई के तीन वक़्तों में वे बिना इजाज़त आ जाएँ तो वे क़ुसूरवार हैं; अगर तुम्हारी तरबियत और तालीम के बावजूद यह हरकत करें, वरना तुम ख़ुद गुनाहगार हो, अगर तुमने अपने बच्चों और अपने नौकर-चाकर को यह अदब नहीं सिखाया।

90. यह वजह है उस आम इजाज़त की जो बताए गए तीन वक़्तों के सिवा तमाम वक़्तों में बच्चों और नौकर-चाकरों को बिना इजाज़त आने के लिए दी गई है। इससे फ़िक़्ह के उसूल के इस मसले पर रौशनी पड़ती है कि शरीअत के हुक्मों में बड़ी मस्लहत और हिकमत पाई जाती है और हर हुक्म की कोई-न-कोई वजह ज़रूर है, चाहे वह बयान की गई हो या न की गई हो।

الْاٰيٰتِ ؕ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ۞ وَاِذَا بَلَغَ الْاَطْفَالُ مِنْكُمُ الْحُلُمَ

लिए अपने हुक्मों को साफ़-साफ़ बयान करता है, और वह सब कुछ जाननेवाला और हिकमतवाला है। (59) और जब तुम्हारे बच्चे अक़्ल की हद को पहुँच जाएँ[91] तो चाहिए

91. यानी बालिग़ हो जाएँ। जैसा कि ऊपर हाशिया-87 में बयान किया जा चुका है, लड़कों के मामले में एहतिलाम और लड़कियों के मामले में माहवारी की शुरुआत बालिग़ होने की अलामत है। लेकिन जिन लड़कों और लड़कियों में किसी वजह से देर तक ये जिस्मानी तब्दीलियाँ न हों, उनके मामले में फ़क़ीहों के बीच इख़्तिलाफ़ है। इमाम शाफ़िई (रह.), इमाम अबू-यूसुफ़ (रह.), इमाम मुहम्मद (रह.), और इमाम अहमद (रह.) के नज़दीक इस सूरत में पन्द्रह (15) साल के लड़के और लड़की को बालिग़ समझा जाएगा, और इमाम अबू-हनीफ़ा (रह.) का भी एक क़ौल इसी की ताईद में है। लेकिन इमाम अबू-हनीफ़ा (रह.) का मशहूर क़ौल यह है कि इस सूरत में सतरह (17) साल की लड़की और अठारह (18) साल के लड़के को बालिग़ ठहराया जाएगा। ये दोनों रायें किसी नस्स (क़ुरआन या हदीस के वाज़ेह हुक्म) की बुनियाद पर नहीं, बल्कि फ़क़ीहों के अपने इजतिहाद का नतीजा हैं। लिहाज़ा ज़रूरी नहीं कि तमाम दुनिया में हमेशा पन्द्रह (15) या अठारह (18) साल की उम्र ही को एहतिलाम से न गुज़रनेवाले लड़कों और माहवारी न होनेवाली लड़कियों के मामले में बालिग़ होने की हद माना जाए। दुनिया के अलग-अलग देशों में, और अलग-अलग ज़मानों में जिस्मानी नशो-नमा (विकास) के हालात अलग-अलग हुआ करते हैं। अस्ल चीज़ यह है कि आम तौर से किसी देश में जिन उमरों के लड़के-लड़कियों को एहतिलाम और माहवारी होने शुरू होते हों, उनका औसत फ़र्क़ निकाल लिया जाए, और फिर जिन लड़कों-लड़कियों में किसी ग़ैर-मामूली वजह से ये अलामतें अपने तयशुदा वक़्त पर न ज़ाहिर हों, उनके लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा तयशुदा उम्र पर इस औसत का इज़ाफ़ा करके उसे बालिग़ होने की उम्र ठहरा दिया जाए। मिसाल के तौर पर किसी देश में आम तौर से कम-से-कम बारह (12) और ज़्यादा-से-ज़्यादा पन्द्रह (15) साल के लड़के को एहतिलाम हुआ करता हो तो औसत फ़र्क़ डेढ़ साल होगा, और ग़ैर-मामूली क़िस्म के लड़कों के लिए हम साढ़े सोलह (16) साल की उम्र को बालिग़ होने की उम्र ठहरा सकेंगे। इसी क़ायदे पर अलग-अलग देशों के क़ानून बनानेवाले अपने यहाँ के हालात का लिहाज़ करते हुए एक हद मुक़र्रर कर सकते हैं।

पन्द्रह (15) साल की हद के हक़ में एक हदीस पेश की जाती है, और वह इब्ने-उमर (रज़ि.) की यह रिवायत है कि "मैं चौदह (14) साल का था जब उहुद की जंग के मौक़े पर नबी (सल्ल.) के सामने पेश हुआ और आप (सल्ल.) ने मुझे जंग में शरीक होने की इजाज़त न दी, फिर ख़न्दक़ (खाई) की जंग के मौक़े पर जबकि मैं पन्द्रह (15) साल का था, मुझे दोबारा पेश किया गया और नबी (सल्ल.) ने मुझको जंग में हिस्सा लेने की इजाज़त दे दी। (हदीस : सिहाह सित्ता और मुसनद अहमद) लेकिन यह रिवायत दो वजहों से दलील बनाने के क़ाबिल नहीं है।

فَلْيَسْتَأْذِنُوا كَمَا اسْتَأْذَنَ الَّذِينَ مِن قَبْلِهِمْ ۚ كَذَٰلِكَ يُبَيِّنُ
اللَّهُ لَكُمْ آيَاتِهِ ۗ وَاللَّهُ عَلِيمٌ حَكِيمٌ ﴿٥٩﴾ وَالْقَوَاعِدُ مِنَ النِّسَاءِ اللَّاتِي
لَا يَرْجُونَ نِكَاحًا فَلَيْسَ عَلَيْهِنَّ جُنَاحٌ أَن يَضَعْنَ ثِيَابَهُنَّ غَيْرَ

कि उसी तरह इजाज़त लेकर आया करें जिस तरह उनके बड़े इजाज़त लेते रहे हैं। इस तरह अल्लाह अपनी आयतें तुम्हारे सामने खोलता है, और वह जाननेवाला और हिकमतवाला है।

(60) और जो औरतें जवानी से गुज़री बैठी हों,[92] निकाह की उम्मीदवार न हों, वे अगर अपनी चादरें उतारकर रख दें[93] तो उनपर कोई गुनाह नहीं, शर्त यह है कि ज़ीनत

एक यह कि उहुद की जंग शव्वाल 3 हिजरी का वाक़िआ है और ख़न्दक़ की जंग मुहम्मद-बिन-इसहाक़ के कहने के मुताबिक़ शव्वाल 5 हिजरी में और इब्ने-सअद के कहने के मुताबिक़ ज़ीक़ादा 5 हिजरी में पेश आई। दोनों वाक़िआत के बीच पूरे दो साल या उससे ज़्यादा का फ़र्क़ है। अब अगर उहुद की जंग के ज़माने में इब्ने-उमर (रज़ि.) 14 साल के थे तो किस तरह मुमकिन है कि ख़न्दक़ की जंग के ज़माने में वे सिर्फ़ 15 साल के हों? हो सकता है कि उन्होंने 13 साल 11 महीने की उम्र को 14 साल, और 15 साल 11 महीने की उम्र को 15 साल कह दिया हो। दूसरी वजह यह है कि लड़ाई के लिए बालिग़ होना और चीज़ है और सामाजिक मामलों में क़ानूनी तौर से बालिग़ होना और चीज़। इन दोनों में कोई लाज़िमी ताल्लुक़ नहीं है कि एक को दूसरे के लिए दलील बनाया जा सके। इसलिए सही यह है कि वह लड़का जिसे अभी एहतिलाम न होता हो, उसके लिए 15 साल की उम्र मुक़र्रर करना एक अन्दाज़े का और इजतिहादी हुक्म है, कोई क़ुरआन या हदीस से साबित-शुदा हुक्म नहीं है।

92. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'क़वाइदु मिनन-निसाइ' के अलफ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं, यानी ''औरतों में से जो बैठ चुकी हों'' या ''बैठी हुई औरतें।'' इससे मुराद है औरत का उस उम्र को पहुँच जाना जिसमें वह बच्चा पैदा करने के क़ाबिल न रहे, उसकी अपनी ख़ाहिशें भी मर चुकी हों और उसको देखकर मर्दों में भी कोई जिंसी जज़्बा न पैदा हो सकता हो। इसी मतलब की तरफ़ बाद का जुमला इशारा कर रहा है।

93. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं, ''य-ज़अ-न सियाबहुन-न'' (अपने कपड़े उतार दें) मगर ज़ाहिर है कि इससे मुराद सारे कपड़े उतारकर बेलिबास हो जाना तो नहीं हो सकता। इसी लिए तमाम फ़क़ीहों और तफ़सीर लिखनेवालों ने एक राय होकर इससे मुराद वे चादरें ली हैं जिनसे ज़ीनत (बनाव-सिंगार) छिपाने का हुक्म सूरा-33 अहज़ाब की आयत, ''अपने ऊपर अपनी चादरों के पल्लू लटका लिया करें '' में दिया गया था।

مُتَبَرِّجٰتٍۭ بِزِيْنَةٍ ؕ وَاَنْ يَّسْتَعْفِفْنَ خَيْرٌ لَّهُنَّ ؕ وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٦٠﴾
لَيْسَ عَلَى الْاَعْمٰى حَرَجٌ وَّلَا عَلَى الْاَعْرَجِ حَرَجٌ وَّلَا عَلَى الْمَرِيْضِ
حَرَجٌ وَّلَا عَلٰٓى اَنْفُسِكُمْ اَنْ تَاْكُلُوْا مِنْۢ بُيُوْتِكُمْ اَوْ بُيُوْتِ اٰبَآئِكُمْ اَوْ
بُيُوْتِ اُمَّهٰتِكُمْ اَوْ بُيُوْتِ اِخْوَانِكُمْ اَوْ بُيُوْتِ اَخَوٰتِكُمْ اَوْ بُيُوْتِ
اَعْمَامِكُمْ اَوْ بُيُوْتِ عَمّٰتِكُمْ اَوْ بُيُوْتِ اَخْوَالِكُمْ اَوْ بُيُوْتِ خٰلٰتِكُمْ اَوْ
مَا مَلَكْتُمْ مَّفَاتِحَهٗٓ اَوْ صَدِيْقِكُمْ ؕ لَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ تَاْكُلُوْا

(सौन्दर्य) की नुमाइश करनेवाली न हों।[94] लेकिन फिर भी वे भी हयादारी ही बरतें तो उनके हक़ में अच्छा है, और अल्लाह सब कुछ सुनता और जानता है।

(61) कोई हरज नहीं अगर कोई अन्धा, या लंगड़ा, या रोगी (किसी के घर से खा ले) और न तुम्हारे ऊपर इसमें कोई हरज है कि अपने घरों से खाओ या अपने बाप-दादा के घरों से, या अपनी माँ-नानी के घरों से, या अपने भाइयों के घरों से, या अपनी बहनों के घरों से, या अपने चचाओं के घरों से, या अपनी फूफियों के घरों से, या अपने मामुओं के घरों से, या अपनी ख़ालाओं के घरों से, या उन घरों से जिनकी कुंजियाँ तुम्हारे हवाले हों, या अपने दोस्तों के घरों से।[95] इसमें भी कोई हरज नहीं कि तुम लोग

94. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं, "ग़ै-र मु-त-बर्रिजातिम बिज़ी-नतिन" (ज़ीनत के साथ तबर्रुज करनेवाली न हों) अरबी लफ़्ज़ 'तबर्रुज' का मतलब है ज़ाहिर करना या नुमाइश करना। बारिज उस खुली नाव, कश्ती या जहाज़ को कहते हैं जिसपर छत न हो। इसी मानी में औरत के लिए यह लफ़्ज़ उस वक़्त बोलते हैं जबकि वह मर्दों के सामने अपनी ख़ूबसूरती और अपने सिंगार की नुमाइश करे। इसलिए आयत का मतलब यह है कि चादर उतार देने की यह इजाज़त उन बूढ़ी औरतों को दी जा रही है जिनके अन्दर बन-ठनकर रहने का शौक़ बाक़ी न रहा हो और जिनके जिंसी जज़्बात ठण्डे पड़ चुके हों। लेकिन अगर इस आग में कोई चिंगारी अभी बाक़ी हो और वह सिंगार की नुमाइश की शक्ल इख़्तियार कर रही हो तो फिर इस इजाज़त से फ़ायदा नहीं उठाया जा सकता।

95. इस आयत को समझने के लिए तीन बातों को समझ लेना ज़रूरी है— पहली बात यह कि आयत के दो हिस्से हैं। पहला हिस्सा बीमार, लंगड़े, अंधे और इसी तरह के दूसरे मजबूर लोगों

جَمِيۡعًا اَوۡ اَشۡتَاتًا ؕ فَاِذَا دَخَلۡتُمۡ بُيُوۡتًا فَسَلِّمُوۡا عَلٰٓى اَنۡفُسِكُمۡ تَحِيَّةً
مِّنۡ عِنۡدِ اللّٰهِ مُبٰرَكَةً طَيِّبَةً ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الۡاٰيٰتِ

मिलकर खाओ या अलग-अलग।[96] अलबत्ता जब घरों में दाख़िल हुआ करो तो अपने लोगों को सलाम किया करो, अच्छी दुआ, अल्लाह की तरफ़ से मुक़र्रर की हुई, बड़ी बरकतवाली और पाकीज़ा। इस तरह अल्लाह तआला तुम्हारे सामने आयतें बयान करता

के बारे में है, और दूसरा आम लोगों के बारे में। दूसरी यह कि क़ुरआन की अख़लाक़ी तालीमात से अरबवालों की ज़ेहनियत में जो ज़बरदस्त इन्क़िलाब पैदा हुआ था, उसकी वजह से हराम और हलाल और जाइज़-नाजाइज़ के फ़र्क़ के मामले में उनका एहसास बहुत बढ़ गया था। इब्ने-अब्बास (रज़ि.) के कहने के मुताबिक़, अल्लाह ने जब उनको हुक्म दिया कि "एक-दूसरे के माल नाजाइज़ तरीक़ों से न खाओ" तो लोग एक-दूसरे के यहाँ खाना-खाने में भी एहतियात बरतने लगे थे, यहाँ तक कि बिलकुल क़ानूनी शर्तों के मुताबिक़ घरवाले की दावत या इजाज़त जब तक न हो, वे समझते थे कि किसी रिश्तेदार या दोस्त के यहाँ खाना भी नाजाइज़ है। तीसरी यह कि इसमें अपने घरों से खाने का जो ज़िक्र है, वह इजाज़त देने के लिए नहीं, बल्कि मन में यह बात बिठाने के लिए है कि अपने रिश्तेदारों और दोस्तों के यहाँ खाना भी ऐसा ही है जैसे अपने घर में खाना, वरना ज़ाहिर है कि अपने घर से खाने के लिए किसी से इजाज़त की ज़रूरत न थी। इन तीन बातों को समझ लेने के बाद आयत का यह मतलब साफ़ समझ में आ जाता है कि जहाँ तक मजबूर आदमी का ताल्लुक़ है, वे अपनी भूख मिटाने के लिए हर घर और हर जगह से खा सकता है, उसकी मजबूरी अपने आपमें ख़ुद सारे समाज पर उसका हक़ क़ायम कर देती है। इसलिए जहाँ से भी उसको खाने को मिले वह उसके लिए जाइज़ है। रहे आम आदमी तो उनके लिए उनके अपने घर और उन लोगों के घर जिनका ज़िक्र किया गया है, बराबर हैं। उनमें से किसी के यहाँ खाने के लिए इस तरह की शर्तों की कोई ज़रूरत नहीं है कि घरवाला बाक़ायदा इजाज़त दे तो खाएँ, वरना बेईमानी होगी। आदमी अगर इनमें से किसी के यहाँ जाए और घर का मालिक मौजूद न हो और उसके बीवी-बच्चे खाने को कुछ दें तो बेझिझक खाया जा सकता है।

जिन रिश्तेदारों के नाम यहाँ लिए गए हैं, उनमें औलाद का ज़िक्र इसलिए नहीं किया गया कि आदमी की औलाद का घर, उसका अपना ही घर है।

दोस्तों के मामले में यह बात ध्यान में रहे कि उनसे मुराद बे-तकल्लुफ़ और जिगरी दोस्त हैं जिनकी ग़ैर-मौजूदगी में अगर यार लोग उनका हलवा उड़ा जाएँ तो नागवार गुज़रना तो दूर की बात, उन्हें इसपर उलटी ख़ुशी हो।

96. पुराने ज़माने के अरबवालों में कुछ क़बीलों की तहज़ीब (सभ्यता) यह थी कि हर एक अलग-अलग खाना लेकर बैठे और खाए। वे मिलकर एक ही जगह खाना बुरा समझते थे, जैसा

ع ١٤

لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ۝٦١ اِنَّمَا الْمُؤْمِنُوْنَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ
وَاِذَا كَانُوْا مَعَهٗ عَلٰۤى اَمْرٍ جَامِعٍ لَّمْ يَذْهَبُوْا حَتّٰى يَسْتَاْذِنُوْهُ ؕ اِنَّ
الَّذِيْنَ يَسْتَاْذِنُوْنَكَ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ ۚ فَاِذَا
اسْتَاْذَنُوْكَ لِبَعْضِ شَاْنِهِمْ فَاْذَنْ لِّمَنْ شِئْتَ مِنْهُمْ وَاسْتَغْفِرْ

है, उम्मीद है कि तुम समझ-बूझ से काम लोगे।

(62) ईमानवाले[97] तो अस्ल में वही हैं जो अल्लाह और उसके रसूल को दिल से मानें और जब किसी इजतिमाई काम के मौक़े पर रसूल के साथ हों तो उससे इजाज़त लिए बिना न जाएँ।[98] जो लोग तुमसे इजाज़त माँगते हैं वही अल्लाह और रसूल के माननेवाले हैं, तो जब ये अपने किसी काम से इजाज़त माँगें[99] तो जिसे तुम चाहो इजाज़त दे दिया करो[100] और ऐसे लोगों के लिए अल्लाह से मग़फ़िरत (माफ़ी) की दुआ

कि कुछ ग़ैर-मुस्लिमों के यहाँ आज भी बुरा समझा जाता है। इसके बरख़िलाफ़ कुछ क़बीले अकेले खाने को बुरा समझते थे, यहाँ तक कि फ़ाक़ा कर जाते थे, अगर कोई साथ खानेवाला न हो। यह आयत इसी तरह की पाबन्दियों को ख़त्म करने के लिए है।

97. ये आख़िरी हिदायतें हैं जो मुसलमानों की जमाअत का नज़्म और ज़ब्त (अनुशासन) पहले से ज़्यादा कस देने के लिए दी जा रही हैं।

98. यही हुक्म नबी (सल्ल.) के बाद आप (सल्ल.) के जानशीनों और इस्लामी निज़ामे-जमाअत के अधिकारियों का भी है। जब किसी इजतिमाई मक़सद के लिए मुसलमानों को जमा किया जाए, चाहे जंग का मौक़ा हो या अम्न की हालत का, बहरहाल उनके लिए यह जाइज़ नहीं है कि अमीर की इजाज़त के बिना वापस चले जाएँ या तितर-बितर हो जाएँ।

99. इसमें इस बात पर ख़बरदार किया गया है कि किसी हक़ीक़ी ज़रूरत के बिना इजाज़त माँगना तो सिरे से ही नाजाइज़ है। इजाज़त लेने का पहलू सिर्फ़ इस सूरत में निकलता है जबकि जाने के लिए कोई हक़ीक़ी ज़रूरत पड़ जाए।

100. यानी ज़रूरत बयान करने पर भी इजाज़त देने या न देने का दारोमदार रसूल की और रसूल के बाद अमीरे-जमाअत की मरज़ी पर है। अगर वह समझता हो कि इजतिमाई ज़रूरत उस शख़्स की इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) ज़रूरत के मुक़ाबले में ज़्यादा अहम है तो वह पूरा हक़ रखता है कि इजाज़त न दे, और इस सूरत में एक ईमानवाले को उससे कोई शिकायत नहीं होनी

لَهُمُ اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوۡرٌ رَّحِيۡمٌ ۝ لَا تَجۡعَلُوۡا دُعَآءَ الرَّسُوۡلِ
بَيۡنَكُمۡ كَدُعَآءِ بَعۡضِكُمۡ بَعۡضًا ؕ قَدۡ يَعۡلَمُ اللّٰهُ الَّذِيۡنَ يَتَسَلَّلُوۡنَ

किया करो,[101] अल्लाह यक़ीनन बहुत माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।

(63) मुसलमानो, अपने बीच रसूल के बुलाने को आपस में एक दूसरे का-सा बुलाना न समझ बैठो।[102] अल्लाह उन लोगों को ख़ूब जानता है जो तुममें ऐसे हैं कि एक-दूसरे

चाहिए।

101. इसमें फिर ख़बरदार किया गया है कि इजाज़त माँगने में अगर ज़रा-सी बहानेबाज़ी का भी दख़ल हो, या इजतिमाई ज़रूरतों पर इन्फ़िरादी ज़रूरतों को आगे रखने का जज़्बा काम कर रहा हो तो यह एक गुनाह है। इसलिए रसूल और उसके जानशीन को सिर्फ़ इजाज़त देने ही पर बस न करना चाहिए, बल्कि जिसे भी इजाज़त दे, साथ-के-साथ यह भी कह दे कि ख़ुदा तुम्हें माफ़ करे।

102. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'दुआ' इस्तेमाल हुआ है जिसका मतलब बुलाना भी है और दुआ करना और पुकारना भी। इसके अलावा 'दुआअर-रसूलि' का मतलब रसूल का बुलाना या दुआ करना भी हो सकता है और रसूल को पुकारना भी। इन अलग-अलग मतलबों के लिहाज़ से आयत के तीन मतलब हो सकते हैं और तीनों ही सही और मुनासिब हैं—

एक यह कि "रसूल के बुलाने को आम आदमियों में से किसी के बुलाने की तरह न समझो।" यानी रसूल का बुलावा ग़ैर-मामूली अहमियत रखता है। दूसरा कोई बुलाए और तुम हाज़िर न हो तो तुम्हें आज़ादी है; लेकिन रसूल बुलाए और तुम न जाओ, या दिल में ज़र्रा बराबर भी तंगी महसूस करो तो ईमान जाने का ख़तरा है।

दूसरा यह कि "रसूल की दुआ को आम आदमियों की-सी दुआ न समझो।" वह तुमसे ख़ुश होकर दुआ दें तो तुम्हारे लिए इससे बड़ी कोई नेमत नहीं, और नाराज़ होकर बद्दुआ दे दें तो तुम्हारी इससे बढ़कर कोई बदनसीबी नहीं।

तीसरा यह कि "रसूल को पुकारना आम आदमियों के एक-दूसरे को पुकारने जैसा न होना चाहिए।" यानी तुम आम आदमियों को जिस तरह उनके नाम लेकर ऊँची आवाज़ में पुकारते हो, उस तरह अल्लाह के रसूल (सल्ल.) को न पुकारा करो। इस मामले में उनके अदब और एहतिराम का बहुत ज़्यादा ध्यान रखना चाहिए; क्योंकि ज़रा-सी बेअदबी भी अल्लाह के यहाँ पकड़ से न बच सकेगी।

ये तीनों मतलब अगरचे मानी के लिहाज़ से सही हैं और क़ुरआन के अलफ़ाज़ में तीनों आ जाते हैं, लेकिन बाद की बात से पहला मतलब ही मेल खाता है।

مِنۡكُمۡ لِوَاذًا ۚ فَلۡيَحۡذَرِ الَّذِيۡنَ يُخَالِفُوۡنَ عَنۡ اَمۡرِهٖۤ اَنۡ تُصِيۡبَهُمۡ
فِتۡنَةٌ اَوۡ يُصِيۡبَهُمۡ عَذَابٌ اَلِيۡمٌ ﴿۶۳﴾ اَلَاۤ اِنَّ لِلّٰهِ مَا فِى السَّمٰوٰتِ
وَالۡاَرۡضِ ؕ قَدۡ يَعۡلَمُ مَاۤ اَنۡتُمۡ عَلَيۡهِ ؕ وَيَوۡمَ يُرۡجَعُوۡنَ اِلَيۡهِ
فَيُنَبِّئُهُمۡ بِمَا عَمِلُوۡا ؕ وَاللّٰهُ بِكُلِّ شَىۡءٍ عَلِيۡمٌ ﴿۶۴﴾

ع ۱۵

की आड़ लेते हुए चुपके से सटक जाते हैं।[103] रसूल के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी करनेवालों को डरना चाहिए कि वे किसी फ़ितने में न पड़ जाएँ[104] या उनपर दर्दनाक अज़ाब न आ जाए। (64) ख़बरदार रहो, आसमान और ज़मीन में जो कुछ है अल्लाह का है। तुम जिस डगर पर भी हो अल्लाह उसको जानता है। जिस दिन लोग उसकी तरफ़ पलटेंगे वह उन्हें बता देगा कि वे क्या कुछ करके आए हैं। वह हर चीज़ का इल्म रखता है।

---

103. यह मुनाफ़िक़ों की एक और अलामत बताई गई है कि इस्लाम के इजतिमाई कामों के लिए जब बुलाया जाता है तो वे आ तो जाते हैं; क्योंकि मुसलमानों में किसी-न-किसी वजह से शामिल रहना चाहते हैं, लेकिन यह हाज़िरी उनको सख़्त नागवार होती है और किसी-न-किसी तरह छिप-छिपाकर निकल भागते हैं।

104. इमाम जाफ़र सादिक़ (रज़ि.) ने फ़ितने का मतलब 'ज़ालिमों का ग़लबा' लिया है। यानी अगर मुसलमान अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के हुक्मों की ख़िलाफ़वर्ज़ी करेंगे तो उनपर जाबिर और ज़ालिम हुक्मराँ सवार कर दिए जाएँगे। बहरहाल फ़ितने की यह भी एक सूरत हो सकती है और इसके सिवा दूसरी अनगिनत सूरतें भी मुमकिन हैं। मिसाल के तौर पर आपस की फूट और अन्दरूनी झगड़े, अख़लाक़ी गिरावट, जमाअती निज़ाम का बिगाड़, अन्दरूनी फूट, सियासी और माद्‌दी ताक़त का टूट जाना, दूसरों के ग़ुलाम हो जाना वग़ैरा।

☆☆☆

25. अल-फ़ुरक़ान

परिचय

नाम

पहली ही आयत "तबा-र-कल-लज़ी नज़्ज़-लल-फ़ुरक़ा-न" यानी "बहुत ही बरकतवाला है वह जिसने यह फ़ुरक़ान (कसौटी) उतारा" से लिया गया है। यह भी क़ुरआन की अकसर सूरतों के नामों की तरह अलामत के तौर पर है, न कि मज़मून के उनवान (विषय के शीर्षक) के तौर पर। फिर भी सूरा के मज़मून के साथ यह नाम एक क़रीबी ताल्लुक़ रखता है, जैसा कि आगे चलकर मालूम होगा।

उतरने का ज़माना

अन्दाज़े-बयान और मज़ामीन (विषयों) पर ग़ौर करने से साफ़ महसूस होता है कि इसके उतरने का ज़माना भी वही है जो सूरा-23 मोमिनून वग़ैरा का है, यानी मक्का में रहने का बीच का दौर। इब्ने-जरीर और इमाम राज़ी ने ज़ह्हाक-बिन-मुज़ाहिम और मुक़ातिल-बिन-सुलैमान की यह रिवायत नक़्ल की है कि यह सूरा, सूरा-4 निसा से 8 साल पहले उतरी थी। इस हिसाब से भी इसके उतरने का ज़माना वही बीच का दौर क़रार पाता है। (इब्ने-जरीर, हिस्सा-19, पेज-28-30; तफ़सीर कबीर, हिस्सा-6, पेज-358)

मज़मून (विषय) और मबाहिस (वार्ताएँ)

इसमें उन शुब्हों और एतिराज़ों पर बात की गई है जो क़ुरआन और मुहम्मद (सल्ल॰) की पैग़म्बरी और आप (सल्ल॰) की पेश की हुई तालीम पर मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की तरफ़ से पेश किए जाते थे। उनमें से एक-एक का जंचा-तुला जवाब दिया गया है और साथ-साथ हक़ की दावत से मुँह मोड़ने के बुरे नतीजे भी साफ़-साफ़ बता दिए गए हैं। आख़िर में सूरा-23 मोमिनून की तरह ईमानवालों की अख़लाक़ी ख़ूबियों का एक नक़्शा खींचकर आम लोगों के सामने रख दिया गया है कि इस कसौटी पर कसकर देख लो, कौन खोटा है और कौन खरा। एक तरफ़ इस सीरत

और किरदार के लोग हैं जो मुहम्मद (सल्ल॰) की तालीम से अब तक तैयार हुए हैं और आगे तैयार करने की कोशिश हो रही है। दूसरी तरफ़ अख़लाक़ का वह नमूना है जो आम अरबवालों में पाया जाता है और जिसे बनाए रखने के लिए जाहिलियत के अलमबरदार एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रहे हैं। अब ख़ुद फ़ैसला करो कि इन दोनों नमूनों में से किसे पसन्द करते हो? यह एक ऐसा सवाल था जो बिना लफ़्ज़ों के अरबवालों के सामने रख दिया गया और कुछ साल के अन्दर एक छोटी-सी तादाद को छोड़कर सारी क़ौम ने इसका जो जवाब दिया वह वक़्त की किताब में लिखा जा चुका है।

☆☆☆

آیَاتُهَا ٧٧ سُوْرَةُ الْفُرْقَانِ مَكِّيَّةٌ ٤٢ رُكُوْعَاتُهَا ٦

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

تَبٰرَكَ الَّذِيْ ———

25. अल-फ़ुरक़ान

(मक्का में उतरी—आयतें-77)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) बहुत बरकतवाला[1] है वह ———

1. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'तबा-र-क' इस्तेमाल हुआ है जिसका पूरा मतलब किसी एक लफ़्ज़ तो दूर एक जुमले में भी अदा होना मुश्किल है। इसका माद्दा (धातु) 'ब र क' है, जिससे दो मसदर (मूलस्रोत) 'ब-र-कतुन' और 'बुरूक' निकले हैं। 'ब-र-कतुन' में बढ़ने, बहुतायत होने और ज़्यादा होने का तसव्वुर है और 'बुरूक' में जमे रहने, बाक़ी रहने और लाज़िम होने का तसव्वुर। फिर जब इस मसदर से 'तबा-र-क' का लफ़्ज़ बनाया जाता है तो इसमें इन्तिहा पर होने और मुकम्मल होने का तसव्वुर और शामिल हो जाता है और इसका मतलब इन्तिहाई बहुतायत और इन्तिहाई दर्जे का टिकाऊपन हो जाता है। यह लफ़्ज़ अलग-अलग मौक़ों पर अलग-अलग हैसियतों से किसी चीज़ की बहुतायत के लिए, या उसके टिकाऊपन और बाक़ी रहने की कैफ़ियत बयान करने के लिए बोला जाता है। मसलन कभी इससे मुराद बुलन्दी में बहुत बढ़ जाना होता है। जैसे कहते हैं, 'तबारकतन-नख़्लः' यानी फ़ुलाँ खजूर का पेड़ बहुत ऊँचा हो गया। इसमई कहता है कि एक बद्दू एक ऊँचे टीले पर चढ़ गया और अपने साथियों से कहने लगा, 'तबारकतु अलैकुम' (मैं तुमसे ऊँचा हो गया हूँ)। कभी इसे बड़ाई और बुज़ुर्गी में बढ़ जाने के लिए बोलते हैं। कभी इसको फ़ायदा पहुँचाने और भलाई में बढ़े हुए होने के लिए इस्तेमाल करते हैं। कभी इससे पाकीज़गी और तक़द्दुस (पावनता) में मुकम्मल होना मुराद होता है। और यही कैफ़ियत इसके मानी जमाव और ज़रूरी होने की भी है। मौक़ा और महल बता देता है कि किस जगह इस लफ़्ज़ का इस्तेमाल किस मक़सद के लिए किया गया है। यहाँ जो बात आगे चलकर कही जा रही है उसको निगाह में रखा जाए तो मालूम होता है कि इस जगह अल्लाह तआला के लिए 'तबा-र-क' एक मानी में नहीं, बहुत-से मानी में इस्तेमाल हुआ है। जैसे—

(1) बहुत एहसान करनेवाला और बहुत भला करनेवाला, इसलिए कि उसने अपने बन्दे को फ़ुरक़ान की अज़ीमुश्शान नेमत से नवाज़कर दुनिया भर को ख़बरदार करने का इन्तिज़ाम

نَزَّلَ الْفُرْقَانَ عَلٰى عَبْدِهٖ لِيَكُوْنَ لِلْعٰلَمِيْنَ نَذِيْرًا ۝١ الَّذِيْ لَهٗ مُلْكُ

जिसने यह फ़ुरक़ान[2] अपने बन्दे पर उतारा है[3] ताकि सारे जहानवालों के लिए ख़बरदार कर देनेवाला हो[4]—(2) वह जो ज़मीन और आसमानों की बादशाही का

किया।

(2) बहुत बुज़ुर्गीवाला और अज़ीम (महान), इसलिए कि ज़मीन व आसमान की बादशाही उसी की है।

(3) बहुत पाकीज़ा और पाक, इसलिए कि उसका वुजूद शिर्क के हर धब्बे से पाक है। न कोई उसके जैसा है कि ख़ुदावन्दी (प्रभुत्व) की सिफ़त में उसके जैसी मिसाल बन सके और न उसके लिए मिट जाना और बदलाव कि उसे जानशीनी के लिए बेटे की ज़रूरत हो।

(4) बहुत ही बुलन्द और बरतर, इसलिए कि बादशाही सारी की सारी उसी की है और किसी दूसरे का यह मर्तबा नहीं कि उसके इख़्तियारात (अधिकारों) में उसका साझी हो सके।

(5) पूरी क़ुदरत रखनेवाला होने के एतिबार से बुलन्द और बरतर, इसलिए कि वह कायनात (सृष्टि) की हर चीज़ को पैदा करनेवाला और हर चीज़ की तक़दीर तय करनेवाला है (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, हाशिया-14; सूरा-25 फ़ुरक़ान, हाशिया-19)

2. यानी क़ुरआन मजीद। 'फ़ुरक़ान' मसदर है माद्दा 'फ़ र क़' से, जिसका मतलब है दो चीज़ों को अलग करना, या एक ही चीज़ के हिस्सों का अलग-अलग होना। क़ुरआन मजीद के लिए इस लफ़्ज़ का इस्तेमाल या तो 'फ़ारिक़' (अलग-अलग करनेवाला) के मानी में हुआ है, या 'मफ़रूक़' (अलग-अलग किया हुआ) के मानी में, या फिर इसको मुबालग़ा (अतिशयोक्ति) के लिए इस्तेमाल किया जाता है, यानी फ़र्क़ करने के मामले में उसका कमाल इतना बढ़ा हुआ है कि मानो वह ख़ुद ही फ़र्क़ है। अगर इसे पहले और तीसरे मानी में लिया जाए तो इसका सही तर्जमा कसौटी और फ़ैसला कर डालनेवाली चीज़ और फ़ैसले का पैमाना (Criterion) होगा। और अगर दूसरे मानी में लिया जाए तो इसका मतलब अलग-अलग हिस्सों पर मुश्तमिल (आधारित) और अलग-अलग वक़्तों में आनेवाले हिस्सों पर मुश्तमिल चीज़ के होंगे। क़ुरआन मजीद को इन दोनों ही लिहाज़ से 'अल-फ़ुरक़ान' कहा गया है।

3. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'नज़्ज़-ल' इस्तेमाल हुआ है, जिसका मतलब है थोड़ा-थोड़ा करके उतरना। बात के इस तरह शुरू करने की मुनासिबत आगे चलकर आयत-32 को पढ़ने से मालूम होगी, जहाँ मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के इस एतिराज़ पर बहस की गई है कि "यह क़ुरआन पूरा-का-पूरा एक ही वक़्त में क्यों न उतार दिया गया?"

4. यानी ख़बरदार करनेवाला, चौंकानेवाला, ग़फ़लत और गुमराही के बुरे नतीजों से डरानेवाला। इससे मुराद 'फ़ुरक़ान' भी हो सकता है और वह 'बन्दा' भी जिसपर फ़ुरक़ान उतारा गया। अलफ़ाज़ ऐसे हैं कि दोनों ही मुराद हो सकते हैं और हक़ीक़त के एतिबार से चूँकि दोनों एक हैं

السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَلَمْ يَتَّخِذْ وَلَدًا وَّلَمْ يَكُنْ لَّهٗ شَرِيْكٌ فِي

मालिक[5] है, जिसने किसी को बेटा नहीं बनाया है,[6] जिसके साथ बादशाही में कोई साझी

और एक ही काम के लिए भेजे गए हैं, इसलिए कहना चाहिए कि दोनों ही मुराद हैं। फिर यह जो फ़रमाया कि सारे जहानवालों के लिए ख़बरदार करनेवाला हो, तो इससे मालूम हुआ कि क़ुरआन की दावत और मुहम्मद (सल्ल॰) की रिसालत (पैग़म्बरी) किसी एक देश के लिए नहीं, पूरी दुनिया के लिए है और अपने ही ज़माने के लिए नहीं, बल्कि आनेवाले तमाम ज़मानों के लिए है। यह बात कई जगहों पर क़ुरआन में बयान हुई है। मसलन फ़रमाया, "ऐ इनसानो! मैं तुम सब की तरफ़ अल्लाह का रसूल हूँ।" (सूरा-7 आराफ़, आयत-158) "मेरी तरफ़ यह वह्य के ज़रिए से क़ुरआन भेजा गया है ताकि इसके ज़रिए से मैं तुम्हें और जिस-जिस को यह पहुँचे सबको ख़बरदार कर दूँ।" (सूरा-6 अनआम, आयत-19) "हमने तुमको सारे ही इनसानों के लिए ख़ुशख़बरी देनेवाला और ख़बरदार करनेवाला बनाकर भेजा है।" (सूरा-34 सबा, आयत-28) "और हमने तुमको तमाम दुनियावालों के लिए रहमत बनाकर भेजा है।" (सूरा-21 अम्बिया, आयत-107) और इसी बात को ख़ूब खोल-खोलकर नबी (सल्ल॰) ने हदीसों में बार-बार बयान किया है कि "मैं काले और गोरे सबकी तरफ़ भेजा गया हूँ।" और "पहले एक नबी ख़ास तौर पर अपनी ही क़ौम की तरफ़ भेजा जाता था और मैं आम तौर पर तमाम इनसानों की तरफ़ भेजा गया हूँ।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम) और "मैं तमाम दुनियावालों की तरफ़ भेजा गया हूँ और ख़त्म कर दिए गए मेरे आने पर पैग़म्बर।" (हदीस : मुस्लिम)

5. दूसरा तर्जमा यह भी हो सकता है कि "आसमानों और ज़मीन की बादशाही उसी के लिए है," यानी वही इसका हक़दार है और उसी के लिए वह ख़ास है, किसी दूसरे को न इसका हक़ पहुँचता है और न किसी दूसरे का इसमें कोई हिस्सा है।

6. यानी न तो किसी से उसका कोई ख़ानदानी ताल्लुक़ है और न किसी को उसने अपना मुँह बोला बेटा बनाया है। कोई हस्ती कायनात में ऐसी नहीं है कि अल्लाह तआला से नस्ली ताल्लुक़ की बुनियाद पर उसको माबूद होने का हक़ पहुँचता हो। उसका वुजूद अपने-आप में निराला है, कोई उसके जैसा नहीं और कोई ख़ुदाई ख़ानदान नहीं है कि अल्लाह की पनाह, एक ख़ुदा से कोई नस्ल चली हो और बहुत-से ख़ुदा पैदा होते चले गए हों। इसलिए शिर्क करनेवाले वे तमाम लोग सरासर जाहिल और गुमराह हैं जिन्होंने फ़रिश्तों, या जिन्नों, या कुछ इनसानों को ख़ुदा की औलाद समझा और इस बुनियाद पर उन्हें देवता और माबूद ठहरा लिया। इसी तरह वे लोग भी निरी जहालत और गुमराही में मुब्तला हैं जिन्होंने नस्ली ताल्लुक़ की बुनियाद पर न सही, किसी ख़ासियत की बुनियाद पर ही सही, अपनी जगह यह समझ लिया कि सारे जहान के ख़ुदा ने किसी शख़्स को अपना बेटा बना लिया है। "बेटा बना लेने" के इस तसव्वुर (धारणा) को जिस पहलू से भी देखा जाए यह सरासर अक़्ल के ख़िलाफ़ नज़र आता है, यह तो बहुत दूर की बात है कि उसे हक़ीक़त मान लिया जाए। जिन लोगों ने यह तसव्वुर गढ़ा उनके घटिया

الْمُلْكِ وَخَلَقَ كُلَّ شَيْءٍ فَقَدَّرَهٗ تَقْدِيْرًا ۝٢ وَاتَّخَذُوْا مِنْ دُوْنِهٖٓ

नहीं है,[7] जिसने हर चीज़ को पैदा किया, फिर उसकी एक तक़दीर मुक़र्रर की।[8] (3) लोगों

ज़ेहन, अल्लाह के वुजूद की बुलन्दी और बड़ाई का तसव्वुर कर ही नहीं सकते थे। उन्होंने उस बेमिसाल और बेनियाज़ (निस्पृह) हस्ती को इनसानों के जैसा समझ लिया जो या तो तन्हाई से घबराकर किसी दूसरे के बच्चे को गोद ले लेते हैं, या मुहब्बत के जज़बात की ज़्यादती से किसी को बेटा बना लेते हैं, या 'बेटा बनाने' की इसलिए ज़रूरत महसूस करते हैं कि मरने के बाद कोई तो उनका वारिस और उनके नाम और काम को ज़िन्दा रखनेवाला हो। यही तीन वजहें हैं जिनकी बुनियाद पर इनसानी ज़ेहन में बेटा बनाने का ख़याल पैदा होता है और उनमें से जिस वजह को भी अल्लाह से जोड़ा जाए, सख़्त जहालत और गुस्ताख़ी और कमअक़्ली है। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-10 यूनुस, हाशिए—66-68)

7. अस्ल लफ़्ज़ 'मुल्क' इस्तेमाल हुआ है जो अरबी ज़बान में बादशाही, इक़्तिदारे-आला (सम्प्रभुत्व) और हाकिमिय्यत (Sovereignity) के लिए बोला जाता है। मतलब यह है कि अल्लाह ही सारी कायनात का अकेला और पूरी तरह मालिक है और हुकूमत के अधिकारों में बाल बराबर भी किसी का कोई हिस्सा नहीं है। यह चीज़ आप-से-आप इस बात को लाज़िम कर देती है कि फिर माबूद (उपास्य) भी उसके सिवा कोई नहीं है। इसलिए कि इनसान जिसको भी माबूद बनाता है यह समझकर बनाता है कि उसके पास कोई ताक़त है, जिसकी वजह से वह हमें किसी तरह का फ़ायदा या नुक़सान पहुँचा सकता है और हमारी क़िस्मतों पर अच्छा या बुरा असर डाल सकता है। बेज़ोर और बेअसर हस्तियों को पनाहगाह बनाने के लिए कोई बेवक़ूफ़-से-बेवक़ूफ़ इनसान भी कभी तैयार नहीं हो सकता। अब अगर यह मालूम हो जाए कि अल्लाह तआला के सिवा इस कायनात में किसी के पास भी कोई ज़ोर नहीं है तो फिर न कोई गर्दन उसके सिवा किसी के आगे आजिज़ी और नियाज़ (विनम्रता) ज़ाहिर करने के लिए झुकेगी, न कोई हाथ उसके सिवा किसी के आगे नज़्र (भेंट) पेश करने के लिए बढ़ेगा, न कोई ज़बान उसके सिवा किसी की हम्द (तारीफ़ और शुक्र) के तराने गाएगी या दुआ और दरख़ास्त के लिए खुलेगी और न दुनिया का कोई नादान-से-नादान आदमी भी कभी यह बेवक़ूफ़ी करेगा कि वह अपने हक़ीक़ी ख़ुदा के सिवा किसी और की फ़रमाँबरदारी और बन्दगी करे, या किसी को अपने-आप में हुक्म चलाने का हक़दार माने। इस बात को और ज़्यादा ताक़त ऊपर के इस जुमले से पहुँचती है कि "आसमानों और ज़मीन की बादशाही उसी की है और उसी के लिए है।"

8. दूसरा तर्जमा यह भी हो सकता है कि "हर चीज़ को एक ख़ास अन्दाज़े पर रखा" या "हर चीज़ के लिए ठीक-ठीक पैमाना तय कर दिया।" लेकिन चाहे कोई तर्जमा भी किया जाए, बहरहाल उससे पूरा मतलब अदा नहीं होता। पूरा मतलब यह है कि अल्लाह तआला ने सिर्फ़ यही नहीं किया कि वह कायनात की हर चीज़ को वुजूद में लाया है, बल्कि वही है जिसने एक-एक चीज़ के लिए सूरत, साख़्त, क़ुव्वत व सलाहियत, आदतें और ख़ासियतें, काम और

اِلٰهَةً لَّا يَخْلُقُوْنَ شَيْـًٔا وَّهُمْ يُخْلَقُوْنَ وَلَا يَمْلِكُوْنَ لِاَنْفُسِهِمْ
ضَرًّا وَّلَا نَفْعًا وَّلَا يَمْلِكُوْنَ مَوْتًا وَّلَا حَيٰوةً وَّلَا نُشُوْرًا ۝٣

ने उसे छोड़कर ऐसे माबूद बना लिए जो किसी चीज़ को पैदा नहीं करते, बल्कि ख़ुद पैदा किए जाते हैं,[9] जो ख़ुद अपने लिए भी किसी फ़ायदे या नुक़सान का इख़्तियार नहीं रखते, जो न मार सकते हैं, न जिला सकते हैं, न मरे हुए को फिर उठा सकते हैं।[10]

काम करने का ढंग, दुनिया में बाक़ी रहने की मुद्दत, तरक़्क़ी की हद और दूसरी वे तमाम तफ़सीलात तय की हैं जो उन चीज़ों से ताल्लुक़ रखती हैं और फिर उसी ने इस दुनिया में वे असबाब और वसाइल (साधन-संसाधन) और मौक़े पैदा किए हैं जिनकी बदौलत हर चीज़ यहाँ अपने-अपने दायरे में अपने हिस्से का काम कर रही है।

इस एक आयत में तौहीद (एकेश्वरवाद) की पूरी तालीम समेट दी गई है। क़ुरआन मजीद की ऐसी आयतों में से, जो अपने अन्दर कई गहरे मतलब रखती हैं, यह एक अज़ीमुश्शान आयत है जिसके कुछ लफ़्ज़ों में इतना बड़ा मज़मून (विषय) समो दिया गया है कि एक पूरी किताब भी उसकी गहराइयों को समेटने के लिए काफ़ी नहीं हो सकती। हदीस में आता है कि "नबी (सल्ल॰) का यह तरीक़ा था कि आप (सल्ल॰) के ख़ानदान (बनी-अब्दुल-मुत्तलिब) में जब किसी बच्चे की ज़बान खुल जाती थी तो आप (सल्ल॰) उसे यह आयत सिखाते थे।" (अब्दुर्रज़्ज़ाक, इब्ने-अबी-शैबा, अम्र-बिन-शुऐब की अपने दादा की रिवायत से) इससे मालूम हुआ कि आदमी के ज़ेहन में तौहीद का पूरा तसव्वुर बिठाने के लिए यह आयत एक ज़रिआ है। हर मुसलमान को चाहिए कि उसके बच्चे जब होशियार होने लगें तो शुरू ही में उनके मन में यह बात बिठा दे।

9. अपने अन्दर कई मानी को समेटे हुए अलफ़ाज़ हैं जो हर तरह के जाली माबूदों पर हावी हैं। वे भी जिनको अल्लाह ने पैदा किया और इनसान उनको माबूद मान बैठा, मसलन फ़रिश्ते, जिन्न, पैग़म्बर, नेक बुज़ुर्ग, सूरज, चाँद, सितारे, पेड़, नदियाँ और जानवर वग़ैरा। और वे भी जिनको इनसान ख़ुद बनाता है और ख़ुद ही माबूद बना लेता है, मसलन पत्थर और लकड़ी के बुत।
10. ख़ुलासा यह कि अल्लाह तआला ने अपने एक बन्दे पर फ़ुरक़ान इसलिए उतारा कि हक़ीक़त तो थी वह और लोग उसको भुलाकर पड़ गए इस गुमराही में। लिहाज़ा एक बन्दा ख़बरदार करनेवाला बनाकर उठाया गया है, ताकि लोगों को इस बेवक़ूफ़ी के बुरे नतीजों से ख़बरदार करे और उसपर थोड़ा-थोड़ा करके यह फ़ुरक़ान उतारना शुरू किया गया है ताकि इसके ज़रिए से वह हक़ को बातिल से और खरे को खोटे से अलग करके दिखा दे।

وَقَالَ الَّذِينَ كَفَرُوٓا إِنْ هٰذَآ إِلَّآ إِفْكٌ افْتَرٰىهُ وَأَعَانَهُ عَلَيْهِ
قَوْمٌ اٰخَرُونَ ۛ فَقَدْ جَآءُو ظُلْمًا وَّزُورًا ﴿٤﴾ وَقَالُوٓا أَسَاطِيرُ
الْأَوَّلِينَ اكْتَتَبَهَا فَهِيَ تُمْلٰى عَلَيْهِ بُكْرَةً وَّأَصِيلًا ﴿٥﴾ قُلْ
أَنْزَلَهُ الَّذِي يَعْلَمُ السِّرَّ فِي السَّمٰوٰتِ وَالْأَرْضِ ۗ إِنَّهُ كَانَ

(4) जिन लोगों ने नबी की बात मानने से इनकार कर दिया है, वे कहते हैं कि यह फ़ुरक़ान एक मनगढ़न्त चीज़ है जिसे इस आदमी ने आप ही गढ़ लिया है और कुछ दूसरे लोगों ने इस काम में इसकी मदद की है। बड़ा ज़ुल्म[11] और सख़्त झूठ है जिसपर ये लोग उतर आए हैं। (5) कहते हैं, "ये पुराने लोगों की लिखी हुई चीज़ें हैं जिन्हें यह शख़्स नक़्ल कराता है और वे इसे सुबह-शाम सुनाई जाती हैं।" (6) ऐ नबी, इनसे कहो, "इसे उतारा है उसने जो ज़मीन और आसमानों का राज़ (भेद) जानता है।"[12] हक़ीक़त यह है

11. दूसरा तर्जमा "बड़ी बेइनसाफ़ी की बात" भी हो सकता है।

12. यह वही एतिराज़ है जो इस ज़माने के मग़रिबी मुस्तशरिक़ीन (पश्चिम के ग़ैर-मुस्लिम आलिम जो इस्लाम का आलोचनात्मक अध्ययन करनेवाले हैं) क़ुरआन मजीद के ख़िलाफ़ पेश करते हैं। लेकिन यह अजीब बात है कि नबी (सल्ल॰) के ज़माने के दुश्मनों में से किसी ने भी यह नहीं कहा कि तुम बचपन में बुहैरा राहिब से जब मिले थे उस वक़्त ये सारी बातें तुमने सीख ली थीं और न यह कहा कि जवानी में जब तुम तिजारती सफ़रों के सिलसिले में बाहर जाया करते थे, उस ज़माने में तुमने ईसाई राहिबों और यहूदी रिब्बियों से ये जानकारियाँ हासिल की थीं। इसलिए कि इन सारे सफ़रों का हाल उनको मालूम था। ये सफ़र अकेले नहीं हुए थे, उनके अपने क़ाफ़िलों के साथ हुए थे और वे जानते थे कि उनमें कुछ सीख आने का इलज़ाम हम लगाएँगे तो हमारे अपने ही शहर में सैकड़ों ज़बानें हमको झुठला देंगी। इसके अलावा मक्का का हर आदमी पूछेगा कि अगर ये मालूमात इस आदमी को बारह-तेरह साल की उम्र ही में बुहैरा से हासिल हो गई थीं, या 25 साल की उम्र से, जबकि उसने तिजारती सफ़र शुरू किए थे, हासिल होनी शुरू हो गई थीं तो आख़िर यह आदमी कहीं बाहर तो नहीं रहता था, हमारे ही दरमियान रहता-बसता था। क्या वजह है कि चालीस साल की उम्र तक उसका यह सारा इल्म छिपा रहा और कभी एक लफ़्ज़ भी इसकी ज़बान से ऐसा न निकला जो इस इल्म को ज़ाहिर करता? यही वजह है कि मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों ने इतने सफ़ेद झूठ की जुरअत न की और उसे बाद के ज़्यादा बेशर्म लोगों के लिए छोड़ दिया। वे जो बात कहते थे वह पैग़म्बरी से पहले के बारे में नहीं, बल्कि पैग़म्बरी के दावे के बारे में थी। उनका कहना यह था कि यह आदमी अनपढ़ है।

ख़ुद पढ़ करके नई मालूमात हासिल नहीं कर सकता। पहले इसने कुछ सीखा न था। चालीस साल की उम्र तक उन बातों में से कोई बात भी न जानता था जो आज इसकी ज़बान से निकल रही हैं। अब आख़िर ये जानकारियाँ आ कहाँ से रही हैं? जहाँ से ये बातें ली जा रही हैं वे ज़रूर कुछ पिछले ज़माने के लोगों की किताबें हैं जिनमें से बीच-बीच में से कुछ हिस्से रातों को चुपके-चुपके तर्जमा और नक़्ल कराए जाते हैं, उन्हें किसी से यह शख़्स पढ़वाकर सुनता है और फिर उन्हें याद करके हमें दिन को सुनाता है। रिवायतों से मालूम होता है कि इस सिलसिले में वे कुछ आदमियों के नाम भी लेते थे जो अहले-किताब (यहूदी और ईसाई) थे, पढ़े-लिखे थे और मक्का में रहते थे, यानी अद्दास (हुवैतिब-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा का आज़ाद किया हुआ ग़ुलाम), यसार (अला-बिन-अल-हज़्रमी का आज़ाद किया हुआ ग़ुलाम) और जब्र (आमिर-बिन-रबीआ का आज़ाद किया हुआ ग़ुलाम)।

बज़ाहिर बड़ा वज़नी एतिराज़ मालूम होता है। वह्य के दावे को रद्द करने के लिए उन चीज़ों की निशानदेही कर देने से बढ़कर जिनसे नबी ये बातें हासिल करता है और कौन-सा एतिराज़ वज़नी हो सकता है। मगर आदमी पहली ही नज़र में यह देखकर हैरान रह जाता है कि जवाब में सिरे से कोई दलील पेश नहीं की गई, बल्कि सिर्फ़ यह कहकर बात ख़त्म कर दी गई कि तुम सच्चाई पर ज़ुल्म कर रहे हो, खुली बेइनसाफ़ी की बात कह रहे हो, सख़्त झूठ का तूफ़ान उठा रहे हो, यह तो उस ख़ुदा का कलाम है जो आसमान और ज़मीन का राज़ (भेद) जानता है। क्या यह हैरत की बात नहीं कि सख़्त मुख़ालिफ़त के माहौल में ऐसा ज़ोरदार एतिराज़ पेश किया जाए और उसको यूँ नफ़रत से रद्द कर दिया जाए? क्या सचमुच यह ऐसा ही बेमतलब और बेवज़्न एतिराज़ था कि इसके जवाब में बस 'झूठ और ज़ुल्म' कह देना काफ़ी था? आख़िर वजह क्या है कि इस मुख़्तसर से जवाब के बाद न आम लोगों ने किसी तफ़सीली और साफ़ जवाब की माँग की, न नए-नए ईमान लानेवालों के दिलों में कोई शक पैदा हुआ और न मुख़ालिफ़त करनेवालों ही में से किसी को यह कहने की हिम्मत हुई कि देखो, हमारे इस वज़नी एतिराज़ का जवाब बन नहीं पड़ रहा है और सिर्फ़ झूठ और ज़ुल्म कहकर बात टाली जा रही है?

इस गुत्थी का हल हमें उसी माहौल से मिल जाता है जिसमें इस्लाम के मुख़ालिफ़ों ने यह एतिराज़ किया था—

पहली बात यह थी कि मक्का के ये ज़ालिम सरदार जो एक-एक मुसलमान को मारते-कूटते और तंग करते फिर रहे थे, उनके लिए यह बात कुछ मुश्किल न थी कि जिन-जिन लोगों के बारे में वे कहते थे कि ये पुरानी-पुरानी किताबों के तर्जमे कर-कर के मुहम्मद (सल्ल०) को याद कराया करते हैं, उनके घरों पर और ख़ुद नबी (सल्ल०) के घर पर छापा मारते और वह सारा ज़ख़ीरा बरामद करके आम लोगों के सामने ला रखते जो उनके दावे के मुताबिक़ इस काम के लिए जुटाया गया था। वे ठीक उस वक़्त छापा मार सकते थे जबकि यह काम किया जा रहा हो और एक भीड़ को दिखा सकते थे कि लो देखो, ये नुबूवत (पैग़म्बरी) की तैयारियाँ हो रही हैं। बिलाल (रज़ि०) को तपती हुई रेत पर घसीटनेवालों के लिए ऐसा करने में कोई दस्तूर और क़ानून रुकावट न था और ऐसा करके वे हमेशा के लिए मुहम्मद (सल्ल०) की पैग़म्बरी के ख़तरे

को मिटा सकते थे। मगर वे बस ज़बानी एतिराज़ ही करते रहे और एक दिन भी यह फ़ैसलाकुन क़दम उठाकर उन्होंने न दिखाया।

दूसरी बात यह थी कि इस सिलसिले में वे जिन लोगों के नाम लेते थे वे कहीं बाहर के न थे, उसी मक्का शहर के रहनेवाले थे। उनकी क़ाबिलियतें किसी से छिपी हुई न थीं। हर शख़्स जो थोड़ी-सी अक़्ल भी रखता था, यह देख सकता था कि मुहम्मद (सल्ल.) जो चीज़ पेश कर रहे हैं वह किस दर्जे की है, किस शान की ज़बान है, किस बुलन्दी का अदब (साहित्य) है, बात में कितना ज़ोर और असर है, कैसे बुलन्द ख़यालात और कैसी बातें हैं और वे किस दर्जे के लोग हैं जिनके बारे में कहा जाता है कि मुहम्मद (सल्ल.) उनसे यह सबकुछ हासिल कर-करके ला रहे हैं। इसी वजह से किसी ने भी इस एतिराज़ को काई वज़न न दिया। हर शख़्स समझता था कि इन बातों से बस दिल के जले फफोले फोड़े जा रहे हैं, वरना इस बात में किसी शक के क़ाबिल भी जान नहीं है। जो लोग इन लोगों को जानते न थे वे भी आख़िर इतनी ज़रा-सी बात तो सोच सकते थे कि अगर ये लोग ऐसी ही क़ाबिलियत रखते थे तो आख़िर उन्होंने ख़ुद अपना चिराग़ क्यों न जलाया? एक-दूसरे आदमी के चिराग़ के लिए तेल जुटाने की उन्हें ज़रूरत क्या पड़ी थी? और वह भी चुपके-चुपके कि इस काम की चर्चा का ज़रा-सा हिस्सा भी उनको न मिले?

तीसरी बात यह थी कि वे सब लोग, जिनका इस सिलसिले में नाम लिया जा रहा था, दूसरे देशों से आए हुए ग़ुलाम थे, जिनको उनके मालिकों ने आज़ाद कर दिया था। अरब की क़बीलेवाली ज़िन्दगी में कोई शख़्स भी किसी ताक़तवर क़बीले की हिमायत के बिना न जी सकता था। आज़ाद हो जाने पर भी ग़ुलाम अपने पिछले मालिकों की सरपरस्ती में रहते थे और उनकी हिमायत ही समाज में उनके लिए ज़िन्दगी का सहारा होती थी। अब यह ज़ाहिर बात थी कि अगर मुहम्मद (सल्ल.) उन लोगों की बदौलत, अल्लाह की पनाह, एक झूठी पैग़म्बरी की दुकान चला रहे थे तो ये लोग किसी ख़ुलूस (निष्ठा) और अच्छी नीयत के साथ तो इस साज़िश में आपके साझी न हो सकते थे। आख़िर ऐसे आदमी के वे मुख़लिस (निष्ठावान) साथी और सच्चे अक़ीदतमन्द कैसे हो सकते थे, जो रात को उन्हीं से कुछ बातें सीखता हो और दिन को दुनिया-भर के सामने यह कहकर पेश करता हो कि यह ख़ुदा की तरफ़ से मुझपर वह्य उतरी है। इसलिए उनकी साझेदारी किसी लालच और किसी ग़रज़ ही की बुनियाद पर हो सकती थी। मगर समझ-बूझ रखनेवाला कौन आदमी यह मान सकता था कि ये लोग ख़ुद अपने सरपरस्तों को नाराज़ करके मुहम्मद (सल्ल.) के साथ इस साज़िश में शरीक हो गए होंगे? आख़िर क्या लालच हो सकता था जिसकी वजह से वे ऐसे आदमी के साथ मिल जाते जो सारी क़ौम के ग़ज़ब (प्रकोप) और तानों और दुश्मनी का शिकार था और अपने सरपरस्तों से कट जाने के नुक़सान को ऐसे मुसीबत के मारे आदमी से हासिल होनेवाले किसी फ़ायदे की उम्मीद पर गवारा कर लेते? फिर यह भी सोचने की बात थी कि उनके सरपरस्तों को यह मौक़ा तो आख़िर हासिल ही था कि मार-कूटकर उनसे इस साज़िश को क़बूल करा लें। इस मौक़े से उन्होंने क्यों न फ़ायदा उठाया और क्यों न सारी क़ौम के सामने ख़ुद उन्हीं से यह क़बूल करवा लिया कि हमसे सीख-सीखकर यह पैग़म्बरी की दुकान चमकाई जा रही है?

غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۝٦ وَقَالُوْا مَالِ هٰذَا الرَّسُوْلِ يَاْكُلُ الطَّعَامَ
وَيَمْشِيْ فِي الْاَسْوَاقِ ۭ لَوْلَآ اُنْزِلَ اِلَيْهِ مَلَكٌ فَيَكُوْنَ مَعَهٗ

कि वह बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।[13]

(7) कहते हैं, "यह कैसा रसूल है जो खाना खाता है और बाज़ारों में चलता-फिरता है?[14] क्यों न इसके पास कोई फ़रिश्ता भेजा गया जो इसके साथ रहता और (न

सबसे ज़्यादा अजीब बात यह थी कि वे सब मुहम्मद (सल्ल॰) पर ईमान लाए और उस मिसाली अक़ीदत में शामिल हुए जो सहाबा किराम (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) की पाक हस्ती से रखते थे। क्या यह मुमकिन है कि बनावटी और साज़िशी पैग़म्बरी पर ख़ुद वही लोग ईमान लाएँ और गहरी अक़ीदत के साथ ईमान लाएँ, जिन्होंने उसके बनाने की साज़िश में ख़ुद हिस्सा लिया हो? और मान लीजिए कि अगर यह मुमकिन भी था तो उन लोगों को ईमानवालों की जमाअत में कोई नुमायाँ रुतबा तो मिला होता। यह कैसे हो सकता था कि पैग़म्बरी का कारोबार तो चले अद्दास, यसार और जब्र के बल-बूते पर और नबी के दाहिने हाथ और मददगार बनें अबू-बक्र (रज़ि॰) और उमर (रज़ि॰) और अबू-उबैदा (रज़ि॰)?

इसी तरह यह बात भी बड़ी हैरानी की थी कि अगर कुछ आदमियों की मदद से रातों को बैठ-बैठकर नुबूवत (पैग़म्बरी) के इस कारोबार का सामान तैयार किया जाता था तो वह ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰), अली-बिन-अबी-तालिब (रज़ि॰), अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) और दूसरे उन लोगों से किस तरह छिप सकता था जो रात-दिन मुहम्मद (सल्ल॰) के साथ लगे रहते थे? इस इलज़ाम में नाम के लिए भी सच्चाई की कोई बात होती तो कैसे मुमकिन था कि ये लोग इतने ज़्यादा ख़ुलूस के साथ नबी (सल्ल॰) पर ईमान लाते और आप (सल्ल॰) की हिमायत में हर तरह के ख़तरे और नुक़सान बरदाश्त करते? यह वजहें थीं जिनकी बुनियाद पर हर सुननेवाले की निगाह में यह एतिराज़ आप ही बेवज़न था। इसलिए क़ुरआन में इसको किसी वज़नी एतिराज़ की हैसियत से, जवाब देने के लिए नक़्ल नहीं किया गया है, बल्कि यह बताने के लिए इसका ज़िक्र किया गया है कि देखो, हक़ (सच) की दुश्मनी में यह लोग कैसे अंधे हो गए हैं और कितने साफ़ झूठ और बेइनसाफ़ी पर उतर आए हैं।

13. इस जगह यह जुमला अपने अन्दर कई मतलब रखता है। मतलब यह है कि क्या शान है ख़ुदा के रहम और माफ़ करने की सिफ़त की, जो लोग हक़ (सत्य) को नीचा दिखाने के लिए ऐसे-ऐसे झूठ के तूफ़ान उठाते हैं उनको भी वह मुहलत (छूट) देता है और सुनते ही अज़ाब का कोड़ा नहीं बरसा देता। इस चेतावनी के साथ इसमें एक पहलू नसीहत का भी है कि ज़ालिमो, अब भी अगर अपनी दुश्मनी ख़त्म कर दो और हक़ बात को सीधी तरह मान लो तो जो कुछ आज तक करते रहे हो, वह सब माफ़ हो सकता है।

14. यानी पहले तो इनसान का रसूल होना ही अजीब बात है। ख़ुदा का पैग़ाम लेकर आता तो कोई फ़रिश्ता आता, न कि एक हाड़-माँस का आदमी जो ज़िन्दा रहने के लिए खाने-पीने का

نَذِيْرًا ۝ اَوْ يُلْقٰٓى اِلَيْهِ كَنْزٌ اَوْ تَكُوْنُ لَهٗ جَنَّةٌ يَّاْكُلُ مِنْهَا ؕ
وَقَالَ الظّٰلِمُوْنَ اِنْ تَتَّبِعُوْنَ اِلَّا رَجُلًا مَّسْحُوْرًا ۝٨

माननेवालों को) धमकाता?[15] (8) या और कुछ नहीं तो इसके लिए कोई ख़ज़ाना ही उतार दिया जाता, या इसके पास कोई बाग़ ही होता जिससे यह (इत्मीनान की) रोज़ी हासिल करता।"[16] और ये ज़ालिम कहते हैं, "तुम लोग तो एक जादू के मारे आदमी[17]

मुहताज हो। फिर भी अगर आदमी ही रसूल बनाया गया था तो कम-से-कम वह बादशाहों और दुनिया के बड़े लोगों की तरह एक आला दर्जे की हस्ती होना चाहिए था जिसे देखने के लिए आँखें तरसतीं और जिसके सामने हाज़िर होने का नसीब बड़ी कोशिशों से किसी को मिलता, न यह कि एक ऐसा आम आदमी सारे जहानों के ख़ुदा का पैग़म्बर बना दिया जाए जो बाज़ारों में चलता-फिरता हो। भला इस आदमी को कौन ख़ातिर में लाएगा जिसे हर राह चलता रोज़ देखता हो और किसी पहलू से भी उसके अन्दर कोई ग़ैर-मामूलीपन न पाता हो। दूसरे अलफ़ाज़ में उनकी राय में पैग़म्बर की ज़रूरत अगर थी तो आम लोगों को हिदायत देने के लिए नहीं, बल्कि अजूबा दिखाने या ठाठ-बाट से धौंस जमाने के लिए थी। (तशरीह के लिए देखिए—तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, हाशिया-26)

15. यानी अगर आदमी ही को नबी बनाया गया था तो एक फ़रिश्ता उसके साथ कर दिया जाता जो हर वक़्त कोड़ा हाथ में लिए रहता और लोगों से कहता कि मानो इसकी बात, वरना अभी ख़ुदा का अज़ाब बरसा देता हूँ। यह तो बड़ी अजीब बात है कि कायनात का मालिक एक ऐसे आदमी को पैग़म्बरी का इतना अहम और बुलन्द मंसब देकर बस यूँ ही अकेला छोड़ दे और वह लोगों से गालियाँ और पत्थर खाता फिरे।

16. यह मानो आख़िरी दर्जे में उनकी माँग थी कि अल्लाह मियाँ कम-से-कम इतना तो करते कि अपने पैग़म्बर के लिए रोज़ी का कोई अच्छा इन्तिज़ाम कर देते। यह क्या माजरा है कि ख़ुदा का रसूल हमारे मामूली रईसों से भी गया गुज़रा हो! न उसके पास ख़र्च के लिए माल मौजूद, न फल खाने को कोई बाग़ नसीब और दावा यह कि हम सारे जहानों के रब अल्लाह के पैग़म्बर हैं।

17. यानी दीवाना। अरबवालों के नज़दीक दीवानगी की दो ही वजहें थीं। या तो किसी पर जिन्न का साया हो या किसी दुश्मन ने जादू करके पागल बना दिया हो। एक तीसरी वजह उनके नज़दीक और भी थी और वह यह कि किसी देवी-देवता की शान में कोई आदमी गुस्ताख़ी कर बैठा हो और उसकी मार पड़ गई हो। मक्का के इस्लाम-दुश्मन रह-रहकर ये तीनों वजहें नबी (सल्ल॰) के बारे में बयान करते थे। कभी कहते कि इस आदमी पर किसी जिन्न का क़ब्ज़ा हो गया है। कभी कहते कि किसी दुश्मन ने बेचारे पर जादू कर दिया है और कभी कहते कि हमारे देवताओं में से किसी की बेअदबी करने का ख़मियाज़ा है जो बेचारा भुगत रहा है। लेकिन साथ

ع ١٦

اُنْظُرْ كَيْفَ ضَرَبُوْا لَكَ الْاَمْثَالَ فَضَلُّوْا فَلَا يَسْتَطِيْعُوْنَ سَبِيْلًا ۟

के पीछे लग गए हो।" (9) देखो कैसी-कैसी अजीब दलीलें ये लोग तुम्हारे आगे पेश कर रहे हैं, ऐसे बहके हैं कि कोई ठिकाने की बात इनको नहीं सूझती।[18]

ही इतना होशियार भी मानते थे कि एक इदारा और दफ़्तर इस आदमी ने क़ायम कर रखा है और पुरानी-पुरानी किताबों की इबारतें निकलवा-निकलवाकर याद करता है। इसके अलावा वह आप (सल्ल.) को जादूगर भी कहते थे, यानी आप (सल्ल.) उनके नज़दीक जादू का शिकार भी थे और जादूगर भी। इसपर एक और रद्दा शाइर होने की तुहमत का भी था।

18. ये एतिराज़ भी जवाब देने के लिए नहीं, बल्कि यह बताने के लिए नक़्ल किए जा रहे हैं कि एतिराज़ करनेवाले दुश्मनी और तास्सुब में कितने ज़्यादा अंधे हो चुके हैं। उनकी जो बातें ऊपर नक़्ल की गई हैं उनमें से कोई भी इस लायक़ नहीं है कि उसपर संजीदगी (गम्भीरता) के साथ चर्चा की जाए। उनका बस ज़िक्र कर देना ही यह बताने के लिए काफ़ी है कि मुख़ालिफ़त करनेवालों का दामन सही और अक़्ली दलीलों से कितना ख़ाली है और ये कैसी लचर और बेहूदा बातों से दलीलों से भरी एक उसूली दावत का मुक़ाबला कर रहे हैं। एक शख़्स कहता है, "लोगो, यह शिर्क (अनेकेश्वरवाद) जिसपर तुम्हारे मज़हब (धर्म) और तमद्दुन (संस्कृति) की बुनियाद क़ायम है, एक ग़लत अक़ीदा (धारणा) है और उसके ग़लत होने की ये और ये दलीलें हैं।" जवाब में शिर्क के सही होने पर कोई दलील क़ायम नहीं की जाती, बस फबती कस दी जाती है कि "यह जादू का मारा हुआ आदमी है।" वह कहता है, "कायनात का सारा निज़ाम (व्यवस्था) तौहीद पर चल रहा है और ये-ये हक़ीक़तें हैं जो इसकी गवाही देती हैं।" जवाब में शोर उठता है, "जादूगर है!" वह कहता है, "तुम दुनिया में बेनकेल के ऊँट बनाकर नहीं छोड़ दिए गए हो, तुम्हें अपने रब के पास पलटकर जाना है। दूसरी ज़िन्दगी में अपने कामों का हिसाब देना है और इस हक़ीक़त पर ये अख़लाक़ी और ये ऐतिहासिक और ये इल्मी (ज्ञानपरक) और अक़्ली बातें दलील दे रही हैं।" जवाब में कहा जाता है, "शाइर है।" वह कहता है, "मैं अल्लाह की तरफ़ से तुम्हारे लिए सच्ची तालीम लेकर आया हूँ और यह है वह तालीम।" जवाब में उस तालीम पर तो कोई बात नहीं होती है और न उसका जाइज़ा लिया जाता है, बस बिना सुबूत एक इलज़ाम लगा दिया जाता है कि यह सब कुछ कहीं से नक़्ल कर लिया गया है। वह अपने पैग़म्बर होने के सुबूत में ख़ुदा के मोजिज़ाना कलाम (चमत्कारिक बातों) को पेश करता है, ख़ुद अपनी ज़िन्दगी और अपनी सीरत और किरदार को पेश करता है और उस अख़लाक़ी इंक़िलाब को पेश करता है जो उसके असर से उसकी पैरवी करनेवालों की ज़िन्दगी में हो रहा था। मगर मुख़ालिफ़त करनेवाले इनमें से किसी चीज़ को भी नहीं देखते। पूछते हैं तो यह पूछते हैं कि तुम खाते क्यों हो? बाज़ारों में क्यों चलते-फिरते हो? तुम्हारे साथ कोई फ़रिश्ता क्यों नहीं है? तुम्हारे पास कोई ख़ज़ाना या बाग़ क्यों नहीं है? ये बातें ख़ुद ही बता रही थीं कि दोनों में से कौन हक़ पर है और कौन उसके मुक़ाबले में बेबस होकर बेतुकी हाँक रहा है।

تَبٰرَكَ الَّذِیْۤ اِنْ شَآءَ جَعَلَ لَكَ خَیْرًا مِّنْ ذٰلِكَ جَنّٰتٍ تَجْرِیْ
مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ۙ وَیَجْعَلْ لَّكَ قُصُوْرًا ۝١٠ بَلْ كَذَّبُوْا بِالسَّاعَةِ ۫

(10) बड़ा बरकतवाला[19] है वह जो अगर चाहे तो उनकी बताई हुई चीज़ों से भी ज़्यादा बढ़-चढ़कर तुमको दे सकता है, (एक नहीं) बहुत-से बाग़ जिनके नीचे नहरें बहती हों, और बड़े-बड़े महल।

(11) अस्ल बात यह है कि ये लोग "उस घड़ी"[20] को झुठला चुके हैं[21]— और जो

19. अस्ल अरबी में यहाँ फिर वही 'तबा-र-क' का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है और बाद का मज़मून बता रहा है कि इस जगह इसका मतलब है "बड़े वसीअ ज़रिओं (व्यापक साधनों) का मालिक है", "बेइन्तिहा क़ुदरत रखनेवाला है", "इससे बहुत बुलन्द है कि किसी के लिए भलाई करना चाहे और न कर सके।"

20. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'अस्साअत' इस्तेमाल हुआ है। साअत का मतलब घड़ी और वक़्त है और 'अल' उसपर अहद (दौर) का है, यानी वह ख़ास घड़ी जो आनेवाली है, जिसके बारे में हम पहले ही तुमको ख़बर दे चुके हैं। क़ुरआन मजीद में जगह-जगह यह लफ़्ज़ एक इस्तिलाह (पारिभाषिक शब्द) के तौर पर उस ख़ास वक़्त के लिए बोला गया है जबकि क़ियामत क़ायम होगी, तमाम पहले और बाद के लोग नए सिरे से ज़िन्दा करके उठाए जाएँगे, सबको इकट्ठा करके अल्लाह तआला हिसाब लेगा और हर एक को उसके अक़ीदे और अमल के लिहाज़ से इनाम या सज़ा देगा।

21. यानी जो बातें ये कर रहे हैं उनकी वजह यह नहीं है कि उनको सचमुच किसी मानने लायक़ बुनियाद पर क़ुरआन के जाली होने का शक है, या उनको हक़ीक़त में यह गुमान है कि जिन आज़ाद किए हुए ग़ुलामों के नाम ये लेते हैं, वही तुमको सिखाते-पढ़ाते हैं, या उन्हें तुम्हारे पैग़म्बर (रसूल) होने पर ईमान लाने से बस इस चीज़ ने रोक रखा है कि तुम खाना-खाते और बाज़ारों में चलते-फिरते हो, या वे तुम्हारी हक़ की तालीम को मान लेने के लिए तैयार थे, मगर सिर्फ़ इसलिए रुक गए थे कि न कोई फ़रिश्ता तुम्हारे साथ था और न तुम्हारे लिए कोई ख़ज़ाना उतारा गया था। अस्ल वजह इनमें से कोई भी नहीं है, बल्कि आख़िरत का इनकार है जिसकी वजह से ये हक़ (सत्य) और बातिल (असत्य) के मामले को संजीदगी (गम्भीरता) से लेते ही नहीं। इसी का नतीजा है कि वे सिरे से किसी सोच-विचार और जाँच-पड़ताल की ज़रूरत ही महसूस नहीं करते और अक़्ल को अपील करनेवाली तुम्हारी दावत को रद्द करने के लिए ऐसी-ऐसी दलीलें पेश करने लगते हैं जिनपर हँसी आती है। उनके ज़ेहन इस ख़याल से ख़ाली हैं कि इस ज़िन्दगी के बाद कोई और ज़िन्दगी भी है जिसमें उन्हें ख़ुदा के सामने जाकर अपने आमाल (कर्मों) का हिसाब देना होगा। वे समझते हैं कि इस चार दिन की ज़िन्दगी के बाद मरकर सबको मिट्टी हो जाना है। बुतपरस्त भी मिट्टी हो जाएगा और ख़ुदापरस्त भी और ख़ुदा का इनकार करनेवाला भी। नतीजा किसी चीज़ का भी कुछ नहीं निकलना है। फिर क्या

وَاَعْتَدْنَا لِمَنْ كَذَّبَ بِالسَّاعَةِ سَعِيْرًا ﴿١١﴾ اِذَا رَاَتْهُمْ مِّنْ
مَّكَانٍۢ بَعِيْدٍ سَمِعُوْا لَهَا تَغَيُّظًا وَّزَفِيْرًا ﴿١٢﴾ وَاِذَآ اُلْقُوْا مِنْهَا مَكَانًا
ضَيِّقًا مُّقَرَّنِيْنَ دَعَوْا هُنَالِكَ ثُبُوْرًا ﴿١٣﴾ لَا تَدْعُوا الْيَوْمَ ثُبُوْرًا
وَّاحِدًا وَّادْعُوْا ثُبُوْرًا كَثِيْرًا ﴿١٤﴾ قُلْ اَذٰلِكَ خَيْرٌ اَمْ جَنَّةُ الْخُلْدِ الَّتِيْ

उस घड़ी को झुठलाए उसके लिए हमने भड़कती हुई आग तैयार कर रखी है। (12) वह जब दूर से उनको देखेगी[22] तो यह उसके ग़ुस्से और जोश की आवाज़ें सुन लेंगे। (13) और जब ये हाथ-पैर बाँधकर उसमें एक तंग जगह ठूंसे जाएँगे तो अपनी मौत को पुकारने लगेंगे। (14) (उस वक़्त उनसे कहा जाएगा कि) आज एक मौत को नहीं, बहुत-सी मौतों को पुकारो।

(15) इनसे पूछो, यह अंजाम अच्छा है या वह हमेशा रहनेवाली जन्नत जिसका वादा

फ़र्क़ पड़ जाता है बहुत-से ख़ुदाओं को माननेवाला होकर मरने और एक ख़ुदा को माननेवाला या ख़ुदा का इनकार करनेवाला होकर मरने में। सही और ग़लत के फ़र्क़ की अगर उनके नज़दीक कोई ज़रूरत है तो इस दुनिया की कामयाबी और नाकामी के लिहाज़ से है। और यहाँ वे देखते हैं कि किसी अक़ीदे या अख़लाक़ी उसूल का भी कोई तयशुदा नतीजा नहीं है जो पूरी यकसानी के साथ हर शख़्स और हर रवैये के मामले में निकलता हो। नास्तिक, आग की पूजा करनेवाले, ईसाई, यहूदी, सितारों को पूजनेवाले, बुतपरस्त, सब अच्छे और बुरे दोनों ही तरह के हालात से दोचार होते हैं। कोई एक अक़ीदा नहीं जिसके बारे में तजरिबा बताता हो कि उसे अपना लेनेवाला, या रद्द कर देनेवाला लाज़िमी तौर पर इस दुनिया में ख़ुशहाल या बदहाल रहता हो। बुरे काम करनेवाले और भले काम करनेवाले भी यहाँ हमेशा अपने आमाल का एक ही लगा-बंधा नतीजा नहीं देखते। एक बदकार मज़े कर रहा है और दूसरा सज़ा पा रहा है। एक नेक आदमी मुसीबत झेल रहा है और दूसरा इज़्ज़त और एहतिराम पा रहा है। इसलिए दुनियावी नतीजों के एतिबार से किसी ख़ास अख़लाक़ी रवैये के बारे में भी आख़िरत का इनकार करनेवाले इस बात पर मुत्मइन नहीं हो सकते कि वह भला है या बुरा है। इस सूरते-हाल में जब कोई शख़्स उनको एक अक़ीदे और एक अख़लाक़ी उसूल की तरफ़ दावत देता है तो चाहे वह कैसे ही संजीदा और मुनासिब दलीलों से अपनी दावत पेश करे, आख़िरत का इनकार करनेवाला एक शख़्स कभी संजीदगी के साथ इसपर ग़ौर नहीं करेगा, बल्कि बचकाना एतिराज़ करके उसे टाल देगा।

22. आग का किसी को देखना मुमकिन है कि अलामती तौर पर हो, जैसे हम कहते हैं कि वे मस्जिद के मीनार तुमको देख रहे हैं और हो सकता है कि अस्ल मानी में हो, यानी जहन्नम की

وَعِدَ الْمُتَّقُوْنَ ۚ كَانَتْ لَهُمْ جَزَآءً وَّمَصِيْرًا ﴿١٥﴾ لَهُمْ فِيْهَا
مَا يَشَآءُوْنَ خٰلِدِيْنَ ۚ كَانَ عَلٰى رَبِّكَ وَعْدًا مَّسْئُوْلًا ﴿١٦﴾

ख़ुदा से डरनेवाले परहेज़गारों से किया गया है? जो उनके अमल का बदला और उनके सफ़र की आख़िरी मंज़िल होगी, (16) जिसमें उनकी हर ख़ाहिश पूरी होगी, जिसमें वे हमेशा-हमेशा रहेंगे, जिसका देना तुम्हारे रब के ज़िम्मे एक ऐसा वादा है जिसे पूरा करना ज़रूरी है।[23]

आग दुनिया की आग की तरह बेशुऊर न हो, बल्कि देख-भालकर जलानेवाली हो।

23. अस्ल अरबी में अलफ़ाज़ हैं 'वअ्‌दम-मसऊला', यानी ऐसा वादा जिसके पूरा करने की माँग की जा सकती हो।

यहाँ एक शख़्स यह सवाल उठा सकता है कि जन्नत का यह वादा और दोज़ख़ का यह डरावा किसी ऐसे शख़्स पर क्या असर डाल सकता है जो क़ियामत और दोबारा जी उठकर एक जगह जमा होने और जन्नत-जहन्नम का पहले ही इनकार करता हो? इस लिहाज़ से तो यह बज़ाहिर एक मौक़ा-महल से हटी हुई बात मालूम होती है, लेकिन थोड़ा-सा ग़ौर किया जाए तो बात आसानी से समझ में आ सकती है। अगर मामला यह हो कि मैं एक बात मनवाना चाहता हूँ और दूसरा नहीं मानना चाहता तो बहस और दलील का अन्दाज़ कुछ और होता है। लेकिन अगर मैं सामनेवाले से इस अन्दाज़ में बात कर रहा हूँ कि जिस मसले पर बात हो रही है, मेरी बात मानने न मानने का नहीं, बल्कि तुम्हारे अपने फ़ायदे का है, तो सामनेवाला चाहे कैसा ही हठधर्म हो, एक बार सोचने पर मजबूर हो जाता है। यहाँ बात का अन्दाज़ यही दूसरा है। इस सूरत में सामनेवाले को ख़ुद अपनी भलाई के नज़रिए से यह सोचना पड़ता है कि दूसरी ज़िन्दगी के होने का चाहे सुबूत मौजूद न हो, मगर बहरहाल उसके न होने का भी कोई सुबूत नहीं है और इमकान दोनों ही का है। अब अगर दूसरी ज़िन्दगी नहीं है, जैसा कि हम समझ रहे हैं, तो हमें भी मरकर मिट्टी हो जाना है और आख़िरत के माननेवाले को भी। इस सूरत में दोनों बराबर रहेंगे। लेकिन अगर कहीं बात वही सच निकली जो यह आदमी कह रहा है तो यक़ीनन फिर हमारी ख़ैर नहीं है। इस तरह बात का यह अन्दाज़ सामनेवाले की हठधर्मी में एक दरार डाल देता है और यह दरार उस वक़्त और चौड़ी हो जाती है जब क़ियामत, दोबारा ज़िन्दा होकर सबका इकट्ठा होना, हिसाब और जन्नत-जहन्नम का ऐसा तफ़सीली नक़्शा पेश किया जाने लगता है कि जैसे कोई वहाँ का आँखों देखा हाल बयान कर रहा हो। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए– तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-41 हा-मीम सजदा, आयत-52, हाशिया-69; सूरा-46 अहक़ाफ़, आयत-10)

وَيَوْمَ يَحْشُرُهُمْ وَمَا يَعْبُدُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ فَيَقُوْلُ ءَاَنْتُمْ اَضْلَلْتُمْ
عِبَادِيْ هٰٓؤُلَآءِ اَمْ هُمْ ضَلُّوا السَّبِيْلَ ﴿١٧﴾ قَالُوْا سُبْحٰنَكَ مَا كَانَ يَنْۢبَغِيْ
لَنَآ اَنْ نَّتَّخِذَ مِنْ دُوْنِكَ مِنْ اَوْلِيَآءَ وَلٰكِنْ مَّتَّعْتَهُمْ

(17) और वही दिन होगा जबकि (तुम्हारा रब) इन लोगों को घेर लाएगा और इनके उन माबूदों[24] को भी बुला लेगा जिन्हें आज ये अल्लाह को छोड़कर पूज रहे हैं, फिर वह उनसे पूछेगा, "क्या तुमने मेरे इन बन्दों को गुमराह किया था? या ये ख़ुद सीधे रास्ते से भटक गए थे?"[25] (18) वे कहेंगे, "पाक है आपकी ज़ात! हमारी तो यह भी मजाल न थी कि आपके सिवा किसी को अपना मौला (सरपरस्त) बनाएँ। मगर आपने इनको और

24. आगे की बात से यह ख़ुद ज़ाहिर हो रहा है कि यहाँ माबूदों से मुराद बुत नहीं हैं, बल्कि फ़रिश्ते, पैग़म्बर, वली, शहीद और नेक लोग हैं जिन्हें अलग-अलग क़ौमों के मुशरिक (अनेकेश्वरवादी) लोग माबूद बना बैठे हैं। बज़ाहिर एक शख़्स 'वमा यअ्बुदू-न' के अलफ़ाज़ पढ़कर यह समझता है कि इससे मुराद बुत हैं, क्योंकि अरबी ज़बान में आम तौर पर 'मा' बेजान और बे-अक़्ल चीज़ों (जैसे जानवरों) के लिए और 'मन' अक़्ल रखनेवाली चीज़ों के लिए बोला जाता है, जैसे हम उर्दू/हिन्दी में 'क्या है' बेजान और बे-अक़्ल चीज़ों के लिए और 'कौन है' जानदार चीज़ों के लिए बोलते हैं। मगर उर्दू/हिन्दी की तरह अरबी में भी ये अलफ़ाज़ बिलकुल इन मानी के लिए ख़ास नहीं हैं। कई बार हम उर्दू/हिन्दी में किसी इनसान के बारे में उसको घटिया ज़ाहिर करने के लिए कहते हैं 'वह क्या है' और मुराद यह होती है कि उसकी हैसियत कुछ भी नहीं है। वह कोई बड़ी हस्ती नहीं है। ऐसा ही हाल अरबी ज़बान का भी है। चूँकि मामला अल्लाह के मुक़ाबले में उसकी मख़लूक़ (पैदा किए हुए लोगों) को माबूद बनाने का है, इसलिए चाहे फ़रिश्तों और बुज़ुर्ग इनसानों की हैसियत अपने आपमें ख़ुद बहुत बुलन्द हो मगर अल्लाह के मुक़ाबले में तो मानो कुछ भी नहीं है। इसी लिए मौक़ा-महल को देखते हुए उनके लिए 'मन' की जगह 'मा' का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है।

25. यह बात कई जगहों पर क़ुरआन में आई है। मिसाल के तौर पर सूरा-34 सबा में है—
"जिस दिन वह उन सबको इकट्ठा करेगा, फिर फ़रिश्तों से पूछेगा, क्या ये लोग तुम्हारी ही बन्दगी कर रहे थे? वे कहेंगे, पाक है आपकी ज़ात, हमारा ताल्लुक़ तो आपसे है, न कि इनसे। ये लोग तो जिन्नों (यानी शैतानों) की बन्दगी कर रहे थे। इनमें से ज़्यादातर उन्हीं पर ईमान रखते थे।" (आयतें—40-41)
इसी तरह सूरा-5 माइदा में है—
"और जब अल्लाह पूछेगा, ऐ मरयम के बेटे ईसा, क्या तूने लोगों से यह कहा था कि अल्लाह

وَاٰبَآءَهُمْ حَتّٰى نَسُوا الذِّكْرَ ۚ وَكَانُوْا قَوْمًا بُوْرًا ⑱
فَقَدْ كَذَّبُوْكُمْ بِمَا تَقُوْلُوْنَ ۙ فَمَا تَسْتَطِيْعُوْنَ صَرْفًا وَّلَا
نَصْرًا ۚ وَمَنْ يَّظْلِمْ مِّنْكُمْ نُذِقْهُ عَذَابًا كَبِيْرًا ⑲ وَمَآ اَرْسَلْنَا
قَبْلَكَ مِنَ الْمُرْسَلِيْنَ اِلَّآ اِنَّهُمْ لَيَاْكُلُوْنَ الطَّعَامَ

इनके बाप-दादा को ज़िन्दगी गुज़ारने का बहुत सामान दे दिया, यहाँ तक कि ये सबक़ भूल गए और शामतज़दा होकर रहे।"[26] (19) यूँ झुठला देंगे वे (तुम्हारे माबूद) तुम्हारी उन बातों को जो आज तुम कह रहे हो,[27] फिर तुम न अपनी शामत को टाल सकोगे, न कहीं से मदद पा सकोगे और जो भी तुममें से ज़ुल्म[28] करे, उसे हम सख़्त अज़ाब का मज़ा चखाएँगे।

(20) ऐ नबी, तुमसे पहले जो रसूल भी हमने भेजे थे, वे सब भी खाना खानेवाले

को छोड़कर मुझे और मेरी माँ को माबूद बना लो? वह अर्ज़ करेगा, पाक है आपकी ज़ात, मेरे लिए यह कब दुरुस्त था कि वह बात कहता जिसके कहने का मुझे हक़ न था .... मैंने तो इनसे बस वही कुछ कहा था जिसका आपने मुझे हुक्म दिया था, यह कि अल्लाह की बन्दगी करो जो मेरा रब भी है और तुम्हारा रब भी।" (आयतें—116-117)

26. यानी ये तंगदिल और छिछोरे लोग थे। आपने रोज़ी दी थी कि शुक्र करें, ये खा-पीकर नमक हराम हो गए और वे सब नसीहतें भुला बैठें, जो आपके भेजे हुए पैग़म्बरों ने उनको की थीं।

27. यानी तुम्हारा यह मज़हब, जिसको तुम सच्चा समझे बैठे हो, बिलकुल बेबुनियाद साबित होगा और तुम्हारे वे माबूद जिनपर तुम्हें भरोसा है कि ये ख़ुदा के यहाँ तुम्हारे सिफ़ारिशी हैं, उलटे तुमको क़ुसूरवार ठहराकर ज़िम्मेदारी से अलग हो जाएँगे। तुमने जो कुछ भी अपने माबूदों को ठहरा रखा है, अपने तौर पर ही ठहरा रखा है। उनमें से किसी ने भी तुमसे यह न कहा था कि हमें यह कुछ मानो और इस तरह हमें कुछ भेंट किया करो और हमसे कुछ माँगा करो और हम ख़ुदा के यहाँ तुम्हारी सिफ़ारिश करने का ज़िम्मा लेते हैं। ऐसी कोई बात किसी फ़रिश्ते या किसी बुज़ुर्ग की तरफ़ से न यहाँ तुम्हारे पास मौजूद है, न क़ियामत में तुम इसे साबित कर सकोगे, बल्कि वे सब-के-सब ख़ुद तुम्हारी आँखों के सामने इन बातों को ग़लत बता देंगे और तुम अपने कानों से सुन लोगे कि उन्होंने उसे बिलकुल नकार दिया है।

28. यहाँ ज़ुल्म से मुराद हक़ीक़त और सच्चाई पर ज़ुल्म है, यानी कुफ़्र और शिर्क। मौक़ा-महल से ख़ुद ज़ाहिर हो रहा है कि नबी को न माननेवाले और ख़ुदा के बजाय दूसरों को माबूद बना बैठनेवाले और आख़िरत का इनकार करनेवाले 'ज़ुल्म' करनेवाले ठहराए जा रहे हैं।

وَيَمْشُوْنَ فِي الْأَسْوَاقِ ۭ وَجَعَلْنَا بَعْضَكُمْ لِبَعْضٍ فِتْنَةً ۭ

और बाज़ारों में चलने-फिरनेवाले लोग ही थे।[29] अस्ल में हमने तुम लोगों को एक-दूसरे के लिए आज़माइश का ज़रिआ बना दिया है।[30]————

29. यह जवाब है मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की उस बात का जो वे कहते थे कि यह कैसा पैग़म्बर है जो खाना खाता और बाज़ारों में चलता-फिरता है। इस मौक़े पर यह बात ज़ेहन में रहे कि मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ हज़रत नूह (अलैहि॰), हज़रत इबराहीम (अलैहि॰), हज़रत इसमाईल (अलैहि॰), हज़रत मूसा (अलैहि॰) और बहुत-से दूसरे पैग़म्बरों को न सिर्फ़ जानते थे, बल्कि उनको पैग़म्बर भी मानते थे। इसलिए फ़रमाया गया कि आख़िर मुहम्मद (सल्ल॰) के बारे में यह निराला एतिराज़ क्यों उठा रहे हो? पहले कौन-सा नबी (पैग़म्बर) ऐसा आया है जो खाना न खाता हो और बाज़ारों में न चलता-फिरता हो? और तो और, ख़ुद मरयम के बेटे ईसा (अलैहि॰), जिनको ईसाइयों ने ख़ुदा का बेटा बना रखा है (और जिनका बुत मक्का के ग़ैर-मुस्लिमों ने भी काबा में रख छोड़ा था) इंजीलों के अपने बयान के मुताबिक़ खाना भी खाते थे और बाज़ारों में चलते-फिरते भी थे।

30. यानी पैग़म्बर और ईमानवालों के लिए हक़ के इनकारी आज़माइश हैं और इनकार करनेवालों के लिए पैग़म्बर और ईमानवाले। इनकार करनेवालों ने ज़ुल्मो-सितम और जाहिलाना दुश्मनी की जो भट्टी गर्म कर रखी है वही तो वह ज़रिआ है जिससे साबित होगा कि रसूल और उसके सच्चे ईमानवाले पैरोकार खरा सोना हैं। खोट जिसमें भी होगी वह उस भट्टी से सही सलामत न गुज़र सकेगा और इस तरह सच्चे ईमानवालों का एक चुना हुआ गरोह छँटकर निकल आएगा, जिसके मुक़ाबले में फिर दुनिया की कोई ताक़त न ठहर सकेगी। यह भट्टी गर्म न हो तो हर तरह के खोटे और खरे आदमी नबी के आसपास इकट्ठे हो जाएँगे और दीन की शुरुआत ही एक कमज़ोर जमाअत से होगी। दूसरी तरफ़ इनकार करनेवालों के लिए भी रसूल और रसूल के साथी एक कड़ी आज़माइश हैं। एक आम इनसान का अपनी ही बिरादरी के दरमियान से यकायक नबी बनाकर उठा दिया जाना, उसके पास कोई फ़ौज-फ़र्रा और माल-दौलत न होना, उसके साथ अल्लाह के कलाम और पाकीज़ा सीरत (आचरण) के सिवा कोई अजूबा चीज़ न होना, उसके शुरू के पैरोकारों में ज़्यादातर ग़रीबों, ग़ुलामों और नई उम्र के लोगों का शामिल होना और अल्लाह तआला का इन कुछ मुट्ठी-भर इनसानों को मानो भेड़ियों के दरमियान बेसहारा छोड़ देना, यही वह छलनी है जो ग़लत तरह के आदमियों को दीन की तरफ़ आने से रोकती है और सिर्फ़ ऐसे ही लोगों को छान-छानकर आगे गुज़ारती है जो हक़ को पहचाननेवाले और सच्चाई को माननेवाले हों। यह छलनी अगर न लगाई जाती और रसूल बड़ी शान-शौकत के साथ आकर हुकूमत के तख़्त पर बैठ जाता, ख़ज़ानों के मुँह उसके माननेवालों के लिए खोल दिए जाते और सबसे पहले बड़े-बड़े रईस आगे बढ़कर उसके हाथ पर बैअत (फ़रमाँबरदारी का अहद) करते, तो आख़िर कौन-सा दुनियापरस्त और मतलब का बन्दा इनसान इतना बेवक़ूफ़ हो

ع 11 17

أَتَصْبِرُونَ ۚ وَكَانَ رَبُّكَ بَصِيرًا ﴿٢٠﴾

وَقَالَ الَّذِينَ لَا يَرْجُونَ لِقَاءَنَا لَوْلَا أُنزِلَ عَلَيْنَا الْمَلَٰئِكَةُ أَوْ نَرَىٰ

رَبَّنَا ۗ لَقَدِ اسْتَكْبَرُوا فِي أَنفُسِهِمْ وَعَتَوْ عُتُوًّا كَبِيرًا ﴿٢١﴾ يَوْمَ

क्या तुम सब्र करते हो?[31] तुम्हारा रब सबकुछ देखता है।[32]

(21) जो लोग हमारे सामने पेश होने का अन्देशा नहीं रखते वे कहते हैं, "क्यों न फ़रिश्ते हमारे पास भेजे जाएँ?[33] या फिर हम अपने रब को देखें।"[34] बड़ा घमण्ड ले बैठे ये अपने आप में[35] और हद से गुज़र गए ये अपनी सरकशी में। (22) जिस दिन ये

सकता था कि उसपर ईमान लानेवालों में शामिल न हो जाता। इस हालत में तो सच्चाई-पसन्द लोग सबसे पीछे रह जाते और दुनिया के तलबगार बाज़ी ले जाते।

31. यानी इस मस्लहत को समझ लेने के बाद क्या अब तुमको सब्र आ गया कि आज़माइश की यह हालत उस भले मक़सद के लिए इन्तिहाई ज़रूरी है जिसके लिए तुम काम कर रहे हो? क्या अब तुम वे चोटें खाने पर राज़ी हो जो इस आज़माइश के दौर में लगनी ज़रूरी हैं?

32. इसके दो मतलब हैं और शायद दोनों ही मुराद हैं। एक यह कि तुम्हारा रब जो कुछ कर रहा है कुछ देखकर ही कर रहा है, उसकी नगरी अंधेर नगरी नहीं है। दूसरा यह कि जिस ख़ुलूस और सच्चाई के साथ इस मुश्किल काम को तुम कर रहे हो वह भी तुम्हारे रब की निगाह में है और तुम्हारी अच्छी कोशिशों का मुक़ाबला जिन ज़्यादतियों और बेईमानियों से किया जा रहा है, वह भी उससे कुछ छिपा हुआ नहीं है। लिहाज़ा पूरा इत्मीनान रखो कि न तुम अपनी ख़िदमतों की क़द्र से महरूम रहोगे और न वे अपनी ज़्यादतियों की सज़ा से बचे रह जाएँगे।

33. यानी अगर सचमुच ख़ुदा का इरादा यह है कि हम तक अपना पैग़ाम पहुँचाए तो एक नबी को वास्ता बनाकर सिर्फ़ उसके पास फ़रिश्ता भेज देना काफ़ी नहीं है, हर शख़्स के पास एक फ़रिश्ता आना चाहिए जो उसे बताए कि तेरा रब तुझे यह हिदायत देता है। या फ़रिश्तों का एक झुण्ड आम भीड़ में हम सबके सामने आ जाए और ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचा दे। एक दूसरी जगह भी उनके इस एतिराज़ को नक़्ल किया गया है—

"जब कोई आयत उनके सामने पेश होती है तो कहते हैं कि हम हरगिज़ न मानेंगे जबतक हमें वही कुछ न दिया जाए जो अल्लाह के रसूलों को दिया गया है। हालाँकि अल्लाह ज़्यादा बेहतर जानता है कि अपना पैग़ाम पहुँचाने का क्या इन्तिज़ाम करे।"

(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-124)

34. यानी अल्लाह मियाँ ख़ुद तशरीफ़ ले आएँ और फ़रमाएँ कि बन्दो, मेरी तुमसे यह गुज़ारिश है।

35. दूसरा तर्जमा यह भी हो सकता है, "बड़ी चीज़ समझ लिया अपनी समझ से उन्होंने अपने आपको।"

يَرَوْنَ الْمَلٰٓئِكَةَ لَا بُشْرٰى يَوْمَئِذٍ لِّلْمُجْرِمِيْنَ وَيَقُوْلُوْنَ حِجْرًا مَّحْجُوْرًا ﴿٢٢﴾
وَقَدِمْنَآ اِلٰى مَا عَمِلُوْا مِنْ عَمَلٍ فَجَعَلْنٰهُ هَبَآءً مَّنْثُوْرًا ﴿٢٣﴾ اَصْحٰبُ الْجَنَّةِ
يَوْمَئِذٍ خَيْرٌ مُّسْتَقَرًّا وَّاَحْسَنُ مَقِيْلًا ﴿٢٤﴾ وَيَوْمَ تَشَقَّقُ السَّمَآءُ
بِالْغَمَامِ وَنُزِّلَ الْمَلٰٓئِكَةُ تَنْزِيْلًا ﴿٢٥﴾ اَلْمُلْكُ يَوْمَئِذِ الْحَقُّ لِلرَّحْمٰنِ ۭ
وَكَانَ يَوْمًا عَلَى الْكٰفِرِيْنَ عَسِيْرًا ﴿٢٦﴾ وَيَوْمَ يَعَضُّ الظَّالِمُ عَلٰى يَدَيْهِ

फ़रिश्तों को देखेंगे, वह मुजरिमों के लिए किसी ख़ुशख़बरी का दिन न होगा,[36] चीख़ उठेंगे कि ख़ुदा की पनाह, (23) और जो कुछ भी इनका किया-धरा है, उसे लेकर हम धूल की तरह उड़ा देंगे।[37] (24) बस वही लोग जो जन्नत के हक़दार हैं, उस दिन अच्छी जगह ठहरेंगे और दोपहर गुज़ारने को अच्छी जगह पाएँगे।[38] (25) आसमान को चीरता हुआ एक बादल उस दिन ज़ाहिर होगा और फ़रिश्तों के परे-के-परे उतार दिए जाएँगे। (26) उस दिन हक़ीक़ी बादशाही सिर्फ़ रहमान[39] की होगी और वह इनकार करनेवालों के लिए बड़ा सख़्त दिन होगा। (27) ज़ालिम इनसान अपना हाथ चबाएगा और कहेगा,

36. यही बात सूरा-6 अनआम, आयत-8 और सूरा-15 हिज्र, आयतें—7, 8 और आयतें—51-64 में तफ़सील के साथ बयान हो चुकी है। इसके अलावा सूरा-17 बनी-इसराईल, आयतें—90-95 में भी इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की बहुत-सी अजीब-अजीब माँगों के साथ इसका ज़िक्र करके जवाब दिया गया है।

37. तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-14 इबराहीम, हाशिए—25, 26।

38. यानी हश्र के मैदान में जन्नत के हक़दार लोगों के साथ मुजरिमों से अलग बरताव होगा। वे इज़्ज़त के साथ बिठाए जाएँगे और हश्र के दिन की सख़्त दोपहर गुज़ारने के लिए उनको आराम की जगह दी जाएगी। उस दिन की सारी सख़्तियाँ मुजरिमों के लिए होंगी, न कि नेक और भले काम करनेवालों के लिए। जैसाकि हदीस में आया है, नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "क़सम है उस हस्ती की जिसके हाथ में मेरी जान है, क़ियामत का अज़ीमुश्शान और भयानक दिन एक ईमानवाले के लिए बहुत हल्का कर दिया जाएगा, यहाँ तक कि इतना हल्का जितना दुनिया में एक फ़र्ज़ नमाज़ पढ़ने का वक़्त होता है।" (हदीस : मुसनद अहमद)

39. यानी वे सारी ग़ैर-हक़ीक़ी बादशाहियाँ और रियासतें ख़त्म हो जाएँगी जो दुनिया में इनसान को धोखे में डालती हैं। वहाँ सिर्फ़ एक बादशाही रह जाएगी और वह वही अल्लाह की बादशाही है जो इस कायनात का हक़ीक़ी बादशाह है। सूरा-40 मोमिन में कहा गया है—

يَقُوْلُ يٰلَيْتَنِى اتَّخَذْتُ مَعَ الرَّسُوْلِ سَبِيْلًا ۝٢٧ يٰوَيْلَتٰى لَيْتَنِىْ لَمْ
اَتَّخِذْ فُلَانًا خَلِيْلًا ۝٢٨ لَقَدْ اَضَلَّنِىْ عَنِ الذِّكْرِ بَعْدَ اِذْ جَآءَنِىْ ۗ وَكَانَ
الشَّيْطٰنُ لِلْاِنْسَانِ خَذُوْلًا ۝٢٩ وَقَالَ الرَّسُوْلُ يٰرَبِّ اِنَّ قَوْمِى
اتَّخَذُوْا هٰذَا الْقُرْاٰنَ مَهْجُوْرًا ۝٣٠ وَكَذٰلِكَ جَعَلْنَا لِكُلِّ نَبِىٍّ عَدُوًّا

"काश, मैंने रसूल का साथ दिया होता! (28) हाय मेरी कमबख़्ती! काश, मैंने फ़ुलाँ शख़्स को दोस्त न बनाया होता! (29) उसके बहकावे में आकर मैंने वह नसीहत न मानी जो मेरे पास आई थी, शैतान इनसान के हक़ में बड़ा ही बेवफ़ा निकला।"[40] (30) और रसूल कहेगा कि "ऐ मेरे रब, मेरी क़ौम के लोगों ने इस क़ुरआन को मज़ाक़ की चीज़[41] बना लिया था।"

(31) ऐ नबी, हमने तो इसी तरह मुजरिमों को हर नबी का दुश्मन बनाया है[42] और

"वह दिन जबकि ये सब लोग बेनक़ाब होंगे, अल्लाह से उनकी कोई चीज़ छिपी हुई न होगी। पूछा जाएगा, आज बादशाही किस की है? हर तरफ़ से जवाब आएगा, अकेले अल्लाह की जो सबपर ग़ालिब (प्रभावी) है।" (आयत-16)

हदीस में इस बात को और ज़्यादा खोल दिया गया है। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अल्लाह तआला एक हाथ में आसमानों और दूसरे हाथ में ज़मीन को लेकर फ़रमाएगा, मैं हूँ बादशाह, मैं हूँ हुकूमत करनेवाला, अब कहाँ हैं वे ज़मीन के बादशाह? कहाँ हैं वे जब्बार (ताक़त और क़ुव्वतवाले), कहाँ हैं तकब्बुर करनेवाले (अहंकारी) लोग?" (यह रिवायत मुसनद अहमद, बुख़ारी, मुस्लिम और अबू-दाऊद में थोड़े-थोड़े लफ़्ज़ी फ़र्क़ के साथ बयान हुई है।)

40. हो सकता है कि यह भी इस्लाम-दुश्मन ही की बात का एक हिस्सा हो और हो सकता है कि यह उसकी बात पर अल्लाह तआला का अपना कहना हो। इस दूसरी हालत में मुनासिब तर्जमा यह होगा, "और शैतान तो है ही इनसान को ठीक वक़्त पर धोखा देनेवाला।"

41. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'महजूर' इस्तेमाल हुआ है जिसके कई मतलब हैं। अगर इसे 'हज्र' से लिया हुआ माना जाए तो मतलब होगा छोड़ा हुआ, यानी लोगों ने क़ुरआन को ध्यान देने के क़ाबिल ही न समझा, न उसे क़बूल किया और न उससे कोई असर लिया। और अगर 'हुज्र' से निकला हुआ माना जाए तो इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि उन्होंने इसे बेसिर-पैर की बड़बड़ाहट और बकवास समझा। दूसरा यह कि उन्होंने उसे अपनी बेमतलब की बड़बड़ाहट और अपनी बकवास का निशाना बना लिया और उसपर तरह-तरह की बातें छाँटते रहे।

42. यानी आज जो दुश्मनी तुम्हारे साथ की जा रही है यह कोई नई बात नहीं है। पहले भी ऐसा ही होता रहा है कि जब कोई नबी हक़ और सच्चाई की दावत देने उठा तो वक़्त के सारे

مِّنَ الْمُجْرِمِيْنَ ۭ وَكَفٰى بِرَبِّكَ هَادِيًا وَّنَصِيْرًا ۝۳۱

तुम्हारे लिए तुम्हारा रब ही रहनुमाई और मदद को काफ़ी है।[43]

मुजरिमाना काम करनेवाले लोग हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गए। यह बात सूरा-6 अनआम, आयतें—112-113 में भी गुज़र चुकी है।

और यह जो फ़रमाया कि हमने उनको दुश्मन बनाया है, तो इसका मतलब यह है कि हमारा क़ुदरती क़ानून यही कुछ है। लिहाज़ा हमारी इस मरज़ी पर सब्र करो और फ़ितरत के क़ानून के तहत जिन हालात का सामना होना ज़रूरी है, उनका मुक़ाबला ठण्डे दिल और मज़बूत इरादे के साथ करते चले जाओ। इस बात की उम्मीद न रखो कि इधर तुमने हक़ (सत्य) पेश किया और उधर एक दुनिया-की-दुनिया उसे क़बूल करने के लिए उमड़ आएगी और सारे बुरे काम करनेवाले अपने-अपने बुरे कामों से तौबा करके उसे हाथों-हाथ लेने लगेंगे।

43. रहनुमाई से मुराद सिर्फ़ हक़ का इल्म दे देना ही नहीं है, बल्कि इस्लामी तहरीक (आन्दोलन) को कामयाबी के साथ चलाने के लिए और दुश्मनों की चालों को नाकाम करने के लिए वक़्त पर सही तदबीरें सुझाना भी है। और मदद से मुराद हर तरह की मदद है। हक़ और बातिल की कशमकश में जितने मोरचे भी खुलें, हर एक पर हक़परस्तों की ताईद (समर्थन) में मदद पहुँचाना अल्लाह का काम है। दलील की लड़ाई हो तो वही हक़परस्तों को मज़बूत दलील देता है। अख़लाक़ की लड़ाई हो तो वही हर पहलू से हक़परस्तों को अख़लाक़ी बुलन्दी अता करता है। एकता और मज़बूती का मुक़ाबला हो तो वही बातिलपरस्तों के दिल फाड़ता और हक़परस्तों के दिल जोड़ता है। इनसानी ताक़त का मुक़ाबला हो तो वही हर मरहले पर मुनासिब और सही लोगों और गरोहों को ला-लाकर हक़परस्तों की जमाअत को बढ़ाता है। माद्दी चीज़ों (भौतिक संसाधनों) की ज़रूरत हो तो वही हक़परस्तों के थोड़े माल व असबाब में इतनी बरकत देता है कि बातिल-परस्तों के माल व असबाब की बहुतायत उनके मुक़ाबले में सिर्फ़ धोखे की टट्टी साबित होती है। कहने का मतलब यह है कि कोई पहलू और रहनुमाई का ऐसा नहीं है जिसमें हक़परस्तों के लिए अल्लाह काफ़ी न हो और उन्हें किसी दूसरे सहारे की ज़रूरत हो, शर्त यह है कि वे अल्लाह के काफ़ी होने पर ईमान और भरोसा रखें और हाथ-पर-हाथ धरे न बैठे रहें, बल्कि सरगर्मी के साथ बातिल के मुक़ाबले में हक़ की सरबुलन्दी के लिए जानें लड़ाएँ।

यह बात निगाह में रहे कि आयत का यह दूसरा हिस्सा न होता तो पहला हिस्सा इन्तिहाई दिल तोड़नेवाला था। इससे बढ़कर हिम्मत तोड़नेवाली चीज़ और क्या हो सकती है कि एक शख़्स को यह ख़बर दी जाए कि हमने जान-बूझकर तेरे सिपुर्द एक ऐसा काम किया है जिसे शुरू करते ही दुनिया-भर के दुश्मन तुझसे लिपट जाएँगे। लेकिन इस ख़बर का सारा भयानकपन तसल्ली के ये बोल सुनकर दूर हो जाता है कि इस जानलेवा कशमकश के मैदान में उतारकर हमने तुझे अकेला नहीं छोड़ दिया है, बल्कि हम ख़ुद तेरी मदद को मौजूद हैं। ईमान दिल में हो तो इससे बढ़कर हिम्मत दिलानेवाली बात और क्या हो सकती है कि सारे जहानों का रब ख़ुदा हमारी

وَقَالَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا لَوْلَا نُزِّلَ عَلَيْهِ الْقُرْاٰنُ جُمْلَةً وَّاحِدَةً ۚ كَذٰلِكَ ۚ
لِنُثَبِّتَ بِهٖ فُؤَادَكَ وَرَتَّلْنٰهُ تَرْتِيْلًا ﴿٣٢﴾ وَلَا يَاْتُوْنَكَ بِمَثَلٍ اِلَّا جِئْنٰكَ

(32) इनकार करनेवाले कहते हैं, "इस आदमी पर सारा क़ुरआन एक ही वक़्त में क्यों न उतार दिया गया?"[44]— हाँ, ऐसा इसलिए किया गया है कि इसको अच्छी तरह हम तुम्हारे ज़ेहन में बिठाते रहें[45] और (इसी ग़रज़ के लिए) हमने इसको एक ख़ास तरतीब (क्रम) के साथ अलग-अलग हिस्सों की शक्ल दी है। (33) और (इसमें यह मस्लहत भी है कि) जब कभी वह तुम्हारे सामने कोई निराली बात (या अजीब सवाल)

मदद और रहनुमाई का ज़िम्मा ले रहा है। इसके बाद तो सिर्फ़ एक कमज़ोर एतिक़ाद रखनेवाला बुज़दिल ही मैदान में आगे बढ़ने से हिचकिचा सकता है।

44. यह मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों का बड़ा दिलपसन्द एतिराज़ था, जिसे वे अपने नज़दीक बहुत ज़ोरदार एतिराज़ समझकर बार-बार दोहराते थे और क़ुरआन में भी इसको कई जगहों पर नक़्ल करके इसका जवाब दिया गया है (तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, हाशिए—101-106; सूरा-17 बनी-इसराईल, हाशिया-119)। उनके सवाल का मतलब यह था कि अगर यह आदमी ख़ुद सोच-सोचकर, या किसी से पूछ-पूछकर और किताबों में से नक़्ल कर-करके ये बातें नहीं ला रहा है, बल्कि यह सचमुच अल्लाह की किताब है, तो पूरी किताब इकट्ठी एक वक़्त में क्यों नहीं आ जाती?! ख़ुदा तो जानता है कि पूरी बात क्या है जो वह कहना चाहता है। वह उतारनेवाला होता तो सबकुछ एक ही वक़्त में कह देता। यह जो सोच- सोचकर कभी कोई बात लाई जाती है और कभी कुछ, यह इस बात की खुली निशानी है कि वह्य ऊपर से नहीं आती, यहीं कहीं से हासिल की जाती है, या ख़ुद गढ़-गढ़कर लाई जाती है।

45. दूसरा तर्जमा यह भी हो सकता है कि "इसके ज़रिए से हम तुम्हारा दिल मज़बूत करते रहें" या "तुम्हारी हिम्मत बँधाते रहें।" आयत के अलफ़ाज़ में दोनों मतलब आ जाते हैं और दोनों ही मुराद भी हैं। इस तरह एक ही जुमले में क़ुरआन को थोड़ा-थोड़ा करके उतारने की बहुत-सी हिकमतें बयान कर दी गई हैं—

(1) उसका हर लफ़्ज़ याददाश्त में महफ़ूज़ हो सके, क्योंकि उसकी तबलीग़ व इशाअत (प्रचार-प्रसार) लिखी हुई नहीं, बल्कि एक अनपढ़ नबी के ज़रिए से अनपढ़ क़ौम में ज़बानी तक़रीर की शक्ल में हो रही है।

(2) उसकी तालीमात अच्छी तरह ज़ेहन में बैठ सकें, इसके लिए ठहर- ठहरकर थोड़ी-थोड़ी बात कहना और एक ही बात को अलग-अलग वक़्तों में अलग-अलग तरीक़ों से बयान करना ज़्यादा फ़ायदेमन्द है।

(3) ज़िन्दगी गुज़ारने के उसके बताए हुए तरीक़े पर दिल जमता जाए। इसके लिए हुक्मों और

بِالْحَقِّ وَاَحْسَنَ تَفْسِيْرًا ﴿٣٣﴾ اَلَّذِيْنَ يُحْشَرُوْنَ عَلٰى وُجُوْهِهِمْ اِلٰى جَهَنَّمَ ۙ

लेकर आए, उसका ठीक जवाब उसी वक़्त हमने तुम्हें दे दिया और बेहतरीन तरीक़े से बात खोल दी।[46]— (34) जो लोग औंधे मुँह जहन्नम की तरफ़ धकेले जानेवाले हैं उनका

हिदायतों को थोड़ा-थोड़ा करके उतारना ज़्यादा हिकमत के मुताबिक़ है, वरना अगर सारा क़ानून और ज़िन्दगी का पूरा निज़ाम (व्यवस्था) एक बार में बयान करके उसे क़ायम करने का हुक्म दे दिया जाए तो होश उड़ जाएँ। इसके अलावा यह भी एक हक़ीक़त है कि हर हुक्म अगर मुनासिब मौक़े पर दिया जाए तो उसकी हिकमत और रूह ज़्यादा अच्छी तरह समझ में आती है, इसके मुक़ाबले में कि तमाम हुक्म दफ़ावार देकर एक वक़्त में दे दिए गए हों।

(4) इस्लामी तहरीक (आन्दोलन) के दौरान में जबकि हक़ (सत्य) और बातिल (असत्य) की लगातार कशमकश चल रही हो, नबी और उसके पैरोकारों की हिम्मत बँधाई जाती रहे। इसके लिए ख़ुदा की तरफ़ से, बार-बार, वक़्त-वक़्त पर, मौक़े-मौक़े से पैग़ाम आना ज़्यादा कारगर है, बजाय इसके कि बस एक बार एक लम्बा-चौड़ा हिदायतनामा देकर उम्र-भर के लिए दुनिया-भर की मुख़ालिफ़तों और रुकावटों का मुक़ाबला करने के लिए यूँ ही छोड़ दिया जाए। पहली सूरत में आदमी महसूस करता है कि जिस ख़ुदा ने उसे इस काम पर लगाया है वह उसकी तरफ़ ध्यान लगाए हुए है, उसके काम से दिलचस्पी ले रहा है, उसके हालात पर निगाह रखता है, उसकी मुश्किलों में रहनुमाई कर रहा है और हर ज़रूरत के मौक़े पर उसे अपने सामने हाज़िरी और बात का मौक़ा देकर उसके साथ अपने ताल्लुक़ को ताज़ा करता रहता है। यह चीज़ हौसला बढ़ानेवाली और इरादे को मज़बूत रखनेवाली है। दूसरी सूरत में आदमी को यूँ महसूस होता है कि बस वह है और तूफ़ान की मौजें।

46. क़ुरआन के उतरने में दर्जा-ब-दर्जा आगे बढ़ने का तरीक़ा अपनाने की यह एक और हिकमत है। क़ुरआन मजीद उतरने की वजह यह नहीं है कि अल्लाह तआला 'हिदायत' (मार्गदर्शन) के बारे में एक किताब लिखना चाहता है और उसकी इशाअत (प्रकाशन) के लिए उसने नबी को नुमाइन्दा बनाया है। बात अगर यही होती तो यह माँग दुरुस्त होती कि पूरी किताब लिखकर एक ही वक़्त में नुमाइन्दे के हवाले कर दी जाए। लेकिन अस्ल में इसके उतरने की वजह यह है कि अल्लाह तआला कुफ़्र (ख़ुदा का इनकार) और जाहिलियत (अज्ञानता) और फ़िस्क़ (ख़ुदा की नाफ़रमानी) के मुक़ाबले में ईमान और इस्लाम और फ़रमाँबरदारी और परहेज़गारी की एक तहरीक (आन्दोलन) चलाना चाहता है और इसके लिए उसने एक नबी को दावत देनेवाला और रहनुमा बनाकर उठाया है। इस तहरीक के दौरान में अगर एक तरफ़ रहनुमाई करनवाले और उसके पैरोकारों को ज़रूरत के मुताबिक़ तालीम और हिदायतें देना उसने अपने ज़िम्मे लिया है तो दूसरी तरफ़ यह काम भी अपने ही ज़िम्मे रखा है कि मुख़ालिफ़त करनेवाले जब भी कोई एतिराज़ या शक या उलझन पेश करें उसे वह साफ़ कर दे। और जब भी वे किसी बात का

أُولَٰٓئِكَ شَرٌّ مَّكَانًا وَّأَضَلُّ سَبِيلًا ﴿٣٤﴾ وَلَقَدْ آتَيْنَا مُوسَى
الْكِتَٰبَ وَجَعَلْنَا مَعَهُۥٓ أَخَاهُ هَٰرُونَ وَزِيرًا ﴿٣٥﴾ فَقُلْنَا اذْهَبَآ
إِلَى الْقَوْمِ الَّذِينَ كَذَّبُوا بِـَٔايَٰتِنَا فَدَمَّرْنَٰهُمْ تَدْمِيرًا ﴿٣٦﴾

ठिकाना बहुत बुरा और उनका रास्ता बहुत ही ग़लत है।[47]

(35) हमने मूसा को किताब[48] दी और उसके साथ उसके भाई हारून को मददगार के तौर पर लगाया (36) और उनसे कहा कि जाओ उस क़ौम की तरफ़ जिसने हमारी आयतों को झुठला दिया है।[49] आख़िरकार उन लोगों को हमने तबाह करके रख दिया।

ग़लत मतलब निकालें तो वह उसका सही मतलब और मानी बता दे। इन अलग-अलग ज़रूरतों के लिए जो तक़रीरें अल्लाह की तरफ़ से उतर रही हैं उनके मजमूए (संग्रह) का नाम क़ुरआन है और यह क़ानून या अख़लाक़ या फ़लसफ़े (दर्शन) की किताब नहीं, बल्कि तहरीक की किताब है जिसके वुजूद में आने की सही फ़ितरी सूरत यही है कि तहरीक के पहले लम्हे के साथ शुरू हो और आख़िरी पलों तक जैसे-जैसे तहरीक चलती रहे यह भी साथ-साथ मौक़ा और ज़रूरत के मुताबिक़ उतरती रहे। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, पेज-13-25 मुक़द्दिमा)

47. यानी जो लोग सीधी बात को उलटी तरह सोचते हैं और उलटे नतीजे निकालते हैं उनकी अक़्ल औंधी है। इसी वजह से वे क़ुरआन के सच होने पर दलील देनेवाली हक़ीक़तों को उसके झुठलाने पर दलील बता रहे हैं और इसी वजह से वे औंधे मुँह जहन्नम की तरफ़ घसीटे जाएँगे।

48. यहाँ किताब से मुराद शायद वह किताब नहीं जो तौरात के नाम से जानी जाती है और मिस्र से निकलने के बाद हज़रत मूसा (अलैहि॰) को दी गई थी, बल्कि इससे मुराद वे हिदायतें हैं जो पैग़म्बरी के मंसब पर मामूर (नियुक्त) होने के वक़्त से लेकर मिस्र से निकलने तक हज़रत मूसा (अलैहि॰) को दी जाती रहीं। उनमें वे तक़रीरें भी शामिल हैं जो हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने फ़िरऔन के दरबार में कीं और वे हिदायतें भी शामिल हैं जो फ़िरऔन के ख़िलाफ़ जिद्दो-जुहद के दौरान में उनको दी जाती रहीं। क़ुरआन मजीद में जगह-जगह इन चीज़ों का ज़िक्र है, मगर ज़्यादा इमकान है कि ये चीज़ें तौरात में शामिल नहीं की गईं। तौरात की शुरुआत उन दस हुक्मों से होती है जो मिस्र से निकलने के बाद सीना पहाड़ पर पत्थर की तख़्तियों की शक्ल में मूसा (अलैहि॰) को दिए गए थे।

49. यानी उन आयतों को जो हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) और यूसुफ़ (अलैहि॰) के ज़रिए से उनको पहुँची थीं और जिनकी तबलीग़ बाद में एक मुद्दत तक बनी-इसराईल के नेक और भले लोग करते रहे।

وَقَوْمَ نُوحٍ لَّمَّا كَذَّبُوا الرُّسُلَ أَغْرَقْنَٰهُمْ وَجَعَلْنَٰهُمْ لِلنَّاسِ ءَايَةً ۖ
وَأَعْتَدْنَا لِلظَّٰلِمِينَ عَذَابًا أَلِيمًا ﴿٣٧﴾ وَعَادًا وَثَمُودَا۟ وَأَصْحَٰبَ الرَّسِّ
وَقُرُونًۢا بَيْنَ ذَٰلِكَ كَثِيرًا ﴿٣٨﴾ وَكُلًّا ضَرَبْنَا لَهُ الْأَمْثَٰلَ ۖ وَكُلًّا تَبَّرْنَا
تَتْبِيرًا ﴿٣٩﴾ وَلَقَدْ أَتَوْا عَلَى الْقَرْيَةِ الَّتِىٓ أُمْطِرَتْ مَطَرَ السَّوْءِ ۚ أَفَلَمْ

---

(37) यही हाल नूह की क़ौम का हुआ जब उन्होंने रसूलों को झुठलाया।[50] हमने उनको डुबो दिया और दुनिया भर के लोगों के लिए सबक़ लेने लायक़ निशानी बना दिया और उन ज़ालिमों के लिए एक दर्दनाक अज़ाब हमने जुटा रखा है।[51] (38) इसी तरह आद और समूद और अर-रसवाले[52] और बीच की सदियों के बहुत-से लोग तबाह किए गए। (39) उनमें से हर एक को हमने (पहले तबाह होनेवालों की) मिसालें दे-देकर समझाया और आख़िरकार हर एक को तबाह व बरबाद कर दिया। (40) और उस बस्ती पर तो इनका गुज़र हो चुका है जिसपर बहुत ही बुरी बारिश बरसाई गई थी।[53] क्या इन्होंने

---

50. चूँकि उन्होंने सिरे से यही बात मानने से इनकार कर दिया था कि बशर (इनसान) कभी रसूल बनकर आ सकता है, इसलिए उनको झुठलाना अकेले हज़रत नूह (अलैहि.) को झुठलाना ही न था, बल्कि अपने आपमें नुबूवत (पैग़म्बरी) के मंसब को झुठलाना था।
51. यानी आख़िरत का अज़ाब।
52. अर-रस्सवालों के बारे में यह पता न चल सका कि ये कौन लोग थे। तफ़सीर लिखनेवाले आलिमों ने अलग-अलग रिवायतें बयान की हैं मगर उनमें कोई चीज़ इत्मीनान के क़ाबिल नहीं है। ज़्यादा-से-ज़्यादा जो कुछ कहा जा सकता है वह यही है कि यह एक ऐसी क़ौम थी जिसने अपने पैग़म्बर को कुएँ में फेंककर या लटकाकर मारा था। 'रस्स' अरबी ज़बान में पुराने कुएँ या अंधे कुएँ को कहते हैं।
53. यानी लूत (अलैहि.) की क़ौम की बस्ती। बदतरीन बारिश से मुराद पत्थरों की बारिश है जिसका ज़िक्र कई जगह क़ुरआन मजीद में आया है। हिजाज़वालों के क़ाफ़िले फ़िलस्तीन और शाम (सीरिया) जाते हुए इस इलाक़े से गुज़रते थे और न सिर्फ़ तबाही के आसार देखते थे, बल्कि आस-पास के रहनेवालों से लूत की क़ौम की इबरत देनेवाली दास्तानें भी सुनते रहते थे।

يَكُوْنُوْا يَرَوْنَهَا ۚ بَلْ كَانُوْا لَا يَرْجُوْنَ نُشُوْرًا ۝٤٠ وَاِذَا رَاَوْكَ اِنْ
يَّتَّخِذُوْنَكَ اِلَّا هُزُوًا ۭ اَهٰذَا الَّذِيْ بَعَثَ اللّٰهُ رَسُوْلًا ۝٤١ اِنْ كَادَ
لَيُضِلُّنَا عَنْ اٰلِهَتِنَا لَوْلَآ اَنْ صَبَرْنَا عَلَيْهَا ۭ وَسَوْفَ يَعْلَمُوْنَ
حِيْنَ يَرَوْنَ الْعَذَابَ مَنْ اَضَلُّ سَبِيْلًا ۝٤٢ اَرَءَيْتَ مَنِ اتَّخَذَ

उसका हाल देखा न होगा? मगर ये मौत के बाद दूसरी ज़िन्दगी की उम्मीद ही नहीं रखते।[54]

(41) ये लोग जब तुम्हें देखते हैं तो तुम्हारा मज़ाक़ बना लेते हैं। (कहते हैं) "क्या यह शख़्स है जिसे ख़ुदा ने रसूल बनाकर भेजा है? (42) इसने तो हमें गुमराह करके अपने माबूदों से फेर ही दिया होता अगर हम उनकी अक़ीदत (श्रद्धा) पर जम न गए होते।"[55] अच्छा, वह वक़्त दूर नहीं है जब अज़ाब देखकर इन्हें ख़ुद मालूम हो जाएगा कि कौन गुमराही में दूर निकल गया था।

(43) कभी तुमने उस शख़्स के हाल पर ग़ौर किया है जिसने अपने नफ़्स (मन) की

54. यानी चूँकि ये आख़िरत को नहीं मानते हैं, इसलिए इन पुरानी निशानियों को इन्होंने सिर्फ़ एक तमाशाई की हैसियत से देखा, उनसे कोई सीख न ली। इससे मालूम हुआ कि आख़िरत के माननेवालों की निगाह और उसका इनकार करनेवाले की निगाह में कितना बड़ा फ़र्क़ होता है। एक तमाशा देखता है या ज़्यादा-से-ज़्यादा यह कि इतिहास लिखता है। दूसरा इन्हीं चीज़ों से अख़लाक़ी सबक़ लेता है और दुनिया की ज़िन्दगी के अलावा पाई जोनवाली हक़ीक़तों तक पहुँचता है।

55. इस्लाम-दुश्मनों की ये दोनों बातें एक-दूसरे से टकराती हैं। पहली बात से मालूम होता है कि ये नबी (सल्ल.) को हक़ीर (तुच्छ) समझ रहे हैं, मज़ाक़ उड़ाकर आप (सल्ल.) की क़द्र कम करना चाहते हैं, मानो उनके नज़दीक नबी (सल्ल.) ने अपनी हैसियत से बहुत बड़ा दावा कर दिया था। दूसरी बात से मालूम होता है कि वे आप (सल्ल.) की दलीलों की ताक़त और आप (सल्ल.) की शख़्सियत का लोहा मान रहे हैं और ख़ुद-ब-ख़ुद क़बूल कर लेते हैं कि अगर हम तास्सुब और हठधर्मी से काम लेकर अपने ख़ुदाओं की बन्दगी पर जम न गए होते तो यह शख़्स हमारे क़दम उखाड़ चुका होता। ये एक-दूसरे से टकरानेवाली बातें ख़ुद बता रही हैं कि इस्लामी तहरीक ने उन लोगों को कितना ज़्यादा बौखला दिया था। खिसियाने होकर मज़ाक़ भी उड़ाते थे तो एहसासे-कमतरी (हीनभावना) अनचाहे उनकी ज़बान से वे बातें निकलवा देता था, जिनसे साफ़ ज़ाहिर हो जाता था कि दिलों में वे इस ताक़त से कितने ज़्यादा ख़ौफ़ खाए हुए हैं।

اِلٰهَهٗ هَوٰىهُ ؕ اَفَاَنْتَ تَكُوْنُ عَلَيْهِ وَكِيْلًا ۝ اَمْ تَحْسَبُ اَنَّ
اَكْثَرَهُمْ يَسْمَعُوْنَ اَوْ يَعْقِلُوْنَ ؕ اِنْ هُمْ اِلَّا كَالْاَنْعَامِ بَلْ هُمْ
اَضَلُّ سَبِيْلًا ۝ اَلَمْ تَرَ اِلٰى رَبِّكَ كَيْفَ مَدَّ الظِّلَّ ۚ وَلَوْ

ख़्वाहिश को अपना ख़ुदा बना लिया हो?[56] क्या तुम ऐसे शख़्स को सीधे रास्ते पर लाने का ज़िम्मा ले सकते हो? (44) क्या तुम समझते हो कि इनमें से अकसर लोग सुनते और समझते हैं? ये तो जानवरों की तरह हैं, बल्कि उनसे भी गए गुज़रे।[57]

(45) तुमने देखा नहीं कि तुम्हारा रब किस तरह साया फैला देता है? अगर वह

56. नफ़्स (मन) की ख़्वाहिश को ख़ुदा बना लेने से मुराद उसकी बन्दगी करना है और यह भी हक़ीक़त के एतिबार से वैसा ही शिर्क है जैसा बुत को पूजना या किसी मख़्लूक़ (सृष्टि) को माबूद (पूज्य) बनाना। हज़रत अबू-उमामा (रज़ि॰) की रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया— "इस आसमान के नीचे अल्लाह तआला के सिवा जितने माबूद भी पूजे जा रहे हैं, उनमें अल्लाह के नज़दीक सबसे बुरा माबूद वह मन की ख़्वाहिश है जिसकी पैरवी की जा रही हो।" (हदीस : तबरानी)

और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-18 कहफ़, हाशिया-50।

जो शख़्स अपने मन की ख़्वाहिश को अक़्ल के मातहत रखता हो और अक़्ल से काम लेकर फ़ैसला करता हो कि उसके लिए सही राह कौन-सी है और ग़लत कौन-सी, वह अगर किसी तरह के शिर्क और कुफ़्र में मुब्तला भी हो तो उसको समझाकर सीधी राह पर लाया जा सकता है और यह एतिमाद भी किया जा सकता है कि जब वह सीधी राह अपनाने का फ़ैसला कर लेगा तो उसपर जमा रहेगा। लेकिन मन का बन्दा और ख़्वाहिशों का ग़ुलाम एक बेनकेल के ऊँट की तरह है। उसे तो उसकी ख़्वाहिशें जिधर-जिधर ले जाएँगी वह उनके साथ-साथ भटकता फिरेगा। उसको सिरे से यह फ़िक्र ही नहीं है कि सही और ग़लत, हक़ और बातिल में फ़र्क़ करे और एक को छोड़कर दूसरे को अपनाए। फिर भला कौन उसे समझाकर सही रास्ते को माननेवाला बना सकता है और अगर मान लो कि वह बात मान भी ले तो उसे किसी ज़ाबिते और क़ानून का पाबन्द बना देना किसी इनसान के बस में नहीं है।

57. यानी जिस तरह भेड़-बकरियों को यह पता नहीं होता कि हाँकनेवाला उन्हें चरागाह की तरफ़ ले जा रहा है या बूचड़ख़ाने की तरफ़। वे बस आँखें बन्द करके हाँकनेवाले के इशारों पर चलती रहती हैं, इसी तरह ये आम लोग भी अपने मन और अपने गुमराह लीडरों के इशारों पर आँखें बन्द किए चले जा रहे हैं, कुछ नहीं जानते कि ये उन्हें कामयाबी की तरफ़ हाँक रहे हैं या तबाही और बरबादी की तरफ़। इस हद तक तो उनकी हालत भेड़-बकरियों के जैसी है। लेकिन भेड़-बकरियों को अल्लाह ने अक़्ल और समझ नहीं दी है। वे अगर चरवाहे और क़साई में फ़र्क़

شَآءَ لَجَعَلَهٗ سَاكِنًا ۚ ثُمَّ جَعَلْنَا الشَّمْسَ عَلَيْهِ دَلِيْلًا ﴿٤٥﴾ ثُمَّ
قَبَضْنٰهُ اِلَيْنَا قَبْضًا يَّسِيْرًا ﴿٤٦﴾

चाहता तो उसे हमेशा रहनेवाला साया बना देता। हमने सूरज को उसपर दलील बनाया,[58]
(46) फिर (जैसे-जैसे सूरज उठता जाता है) हम उस साए को धीरे-धीरे अपनी तरफ़
समेटते चले जाते हैं।[59]

नहीं करतीं तो कुछ ऐब नहीं। अलबत्ता अफ़सोस है उन इनसानों पर जो ख़ुदा से अक़्ल और समझ की नेमतें पाकर भी अपने आपको भेड़-बकरियों के जैसी ग़फ़लत और नासमझी में मुब्तला कर लें।

कोई शख़्स यह न समझे कि इस तक़रीर का मंशा तबलीग़ को बेनतीजा कोशिश ठहराना है और नबी (सल्ल०) को मुख़ातब करके ये बातें इसलिए कही जा रही हैं कि लोगों को समझाने की फ़ुज़ूल कोशिश छोड़ दें। नहीं, यह तक़रीर अस्ल में सुननेवालों के लिए ही है, अगरचे बात बज़ाहिर नबी (सल्ल०) से कही जा रही है। अस्ल में मक़सद उनको सुनाना है कि ग़ाफ़िलो, यह किस हाल में पड़े हुए हो! क्या ख़ुदा ने तुम्हें समझ-बूझ इसलिए दी थी कि दुनिया में जानवरों की तरह ज़िन्दगी गुज़ारो?

58. यहाँ लफ़्ज़ दलील ठीक उसी मानी में इस्तेमाल हुआ है जिसमें अंग्रेज़ी लफ़्ज़ पायलट (Pilot) इस्तेमाल होता है। मल्लाहों की ज़बान में दलील उस शख़्स को कहते हैं जो कश्तियों को रास्ता बताता हुआ चले। साये पर सूरज को दलील बनाने का मतलब यह है कि साये का फैलना और सिकुड़ना सूरज के उभरने और ढलने और निकलने और डूबने के मातहत है।

साये से मुराद रौशनी और अंधेरे के बीच में वह दरमियानी हालत है जो सुबह के वक़्त सूरज निकलने से पहले होती है और दिन-भर मकानों में, दीवारों की ओट में और पेड़ों के नीचे रहती है।

59. अपनी तरफ़ समेटने से मुराद ग़ायब करना और मिटा देना है; क्योंकि हर चीज़ जो मिटती है वह अल्लाह ही की तरफ़ पलटती है। हर चीज़ उसी की तरफ़ से आती है और उसी की तरफ़ जाती है।

इस आयत के दो रुख़ (पहलू) हैं। एक ज़ाहिरी और दूसरा छिपा हुआ। ज़ाहिर के एतिबार से ये ग़फ़लत में पड़े हुए मुशरिकों को बता रही है कि अगर तुम दुनिया में जानवरों की तरह न जीते और कुछ अक़्ल और समझ की आँखों से काम लेते तो यही साया जिसको तुम हर वक़्त देखते हो, तुम्हें यह सबक़ देने के लिए काफ़ी था कि नबी जिस तौहीद (एकेश्वरवाद) की तालीम तुम्हें दे रहा है, वह बिलकुल सच्ची है। तुम्हारी सारी ज़िन्दगी इसी साये के घटने-बढ़ने से जुड़ी है। हमेशा के लिए साया हो जाए तो ज़मीन पर कोई जानदार, बल्कि पेड़-पौधे तक बाक़ी न रह सकें; क्योंकि सूरज की रौशनी और गर्मी ही पर इन सबकी ज़िन्दगी का दारोमदार है। साया

وَهُوَ الَّذِیۡ جَعَلَ لَکُمُ الَّیۡلَ لِبَاسًا وَّ النَّوۡمَ سُبَاتًا وَّ جَعَلَ النَّہَارَ
نُشُوۡرًا ﴿۴۷﴾ وَ ہُوَ الَّذِیۡۤ اَرۡسَلَ الرِّیٰحَ بُشۡرًۢا بَیۡنَ یَدَیۡ رَحۡمَتِہٖ ۚ

(47) और वह अल्लाह ही है जिसने रात को तुम्हारे लिए लिबास,[60] और नींद को मौत का-सा सुकून, और दिन को जी उठने का वक़्त बनाया।[61]

(48) और वही है जो अपनी रहमत के आगे-आगे हवाओं को ख़ुशख़बरी बनाकर

बिलकुल न रहे तब भी ज़िन्दगी मुश्किल है; क्योंकि हर वक़्त सूरज के सामने रहने और उसकी किरणों से कोई पनाह न पा सकने की सूरत में न जानदार ज़्यादा देर तक बाक़ी रह सकते हैं और न पेड़-पौधे, बल्कि पानी तक की ख़ैर नहीं। धूप और साये में एकदम बदलाव होते रहें तब भी ज़मीन पर बसनेवाले जानदार इन झटकों को ज़्यादा देर तक नहीं सहार सकते। मगर एक हिकमतवाला ख़ालिक़ (स्रष्टा) और पूरी क़ुदरत रखनेवाला ख़ुदा है जिसने ज़मीन और सूरज के बीच ऐसा तालमेल बनाए रखा है जो लगातार एक लगे-बंधे तरीक़े से धीरे-धीरे साया डालता और बढ़ाता और घटाता है और तदरीज (दर्जे और सिलसिले) के साथ धूप निकालती और चढ़ाती और उतारती रहती है। यह हिकमतवाला निज़ाम न अंधी फ़ितरत के हाथों ख़ुद-ब-ख़ुद क़ायम हो सकता था और न बहुत-से इख़्तियारात रखनेवाले ख़ुदा इसे क़ायम करके यूँ एक लगातार बाक़ायदगी के साथ चला सकते थे।

मगर इन ज़ाहिरी अलफ़ाज़ के पीछे छिपा हुआ एक और हल्का-सा इशारा भी झलक रहा है और वह यह कि कुफ़्र और शिर्क की जहालत का यह साया जो इस वक़्त छाया हुआ है, कोई हमेशा रहनेवाली चीज़ नहीं है। हिदायत का सूरज, क़ुरआन और मुहम्मद (सल्ल.) की सूरत में निकल चुका है। बज़ाहिर साया दूर-दूर तक फैला दिखाई देता है, मगर ज्यों-ज्यों यह सूरज चढ़ेगा, साया सिमटता चला जाएगा। अलबत्ता ज़रा सब्र की ज़रूरत है। ख़ुदा का क़ानून कभी एकदम तब्दीलियाँ नहीं लाता। माद्दी (भौतिक) दुनिया में जिस तरह सूरज धीरे-धीरे ही चढ़ता और साया धीरे-धीरे ही सिकुड़ता है, उसी तरह सोच और अमल की दुनिया में भी हिदायत के सूरज का चढ़ना और गुमराही के साये का घटना धीरे-धीरे ही होगा।

60. यानी ढाँकने और छिपानेवाली चीज़।

61. इस आयत के तीन पहलू हैं। एक पहलू से यह तौहीद (एकेश्वरवाद) पर दलील दे रही है। दूसरे पहलू से यह हर दिन के इनसानी तजरिबे और मुशाहदे से मौत के बाद की ज़िन्दगी के इमकान की दलील भी जुटा रही है और तीसरे पहलू से यह एक लतीफ़ अन्दाज़ में ख़ुशख़बरी दे रही है कि जाहिलियत की रात ख़त्म हो चुकी, अब इल्म और समझ और हिदायत और सूझने-बूझने का चमकदार दिन निकल आया है और ज़रूरी है कि नींद के मतवाले देर या सवेर जागें। अलबत्ता जिनके लिए रात की नींद मौत की नींद थी वे न जागेंगे और उनका न जागना ख़ुद उन्हीं के लिए ज़िन्दगी खो देना है, दिन का कारोबार उनकी वजह से बन्द न हो जाएगा।

وَاَنۡزَلۡنَا مِنَ السَّمَآءِ مَآءً طَهُوۡرًا ۝٤٨ لِّنُحۡیِۦَ بِهٖ بَلۡدَةً مَّیۡتًا
وَّنُسۡقِیَهٗ مِمَّا خَلَقۡنَاۤ اَنۡعَامًا وَّاَنَاسِیَّ كَثِیۡرًا ۝٤٩ وَلَقَدۡ
صَرَّفۡنٰهُ بَیۡنَهُمۡ لِیَذَّكَّرُوۡا ۖ فَاَبٰۤی اَكۡثَرُ النَّاسِ اِلَّا كُفُوۡرًا ۝٥٠

भेजता है। फिर आसमान से पाक पानी[62] बरसाता है (49) ताकि एक मुर्दा इलाक़े को उसके ज़रिए से ज़िन्दगी दे और अपनी मख़लूक़ (सृष्टि) में से बहुत-से जानवरों और इनसानों को सैराब (सिंचित) करे।[63] (50) इस करिश्मे को हम बार-बार उनके सामने लाते हैं[64] ताकि वे कुछ सबक़ लें, मगर ज़्यादातर लोग (ख़ुदा का) इनकार और (उसकी) नाशुक्री के सिवा कोई दूसरा रवैया अपनाने से इनकार कर देते हैं।[65]

---

62. यानी ऐसा पानी जो हर तरह की गन्दगियों से भी पाक होता है और हर तरह की ज़हरीली चीज़ों और कीटाणुओं से भी पाक, जिसकी बदौलत गन्दगियाँ धुलती हैं और इनसान, जानवर, पेड़-पौधे सबको ज़िन्दगी देनेवाला ख़ालिस जौहर हासिल होता है।

63. इस आयत के भी वही तीन पहलू हैं जो ऊपरवाली आयत के थे। इसमें तौहीद की दलीलें भी हैं और आख़िरत की दलीलें भी और इन दोनों बातों के साथ इसमें यह लतीफ़ (सूक्ष्म) बात भी छिपी है कि जाहिलियत का दौर हक़ीक़त में सूखे और अकाल का दौर था, जिसमें इनसानियत की ज़मीन बंजर होकर रह गई थी। अब यह अल्लाह की मेहरबानी है कि यह नुबूवत (पैग़म्बरी) की रहमत का बादल ले आया जो वह्य के इल्म का ख़ालिस आबे-हयात (अमृत) बरसा रहा है, सब नहीं तो ख़ुदा के बहुत-से बन्दे तो इससे फ़ायदा उठाएँगे ही।

64. अस्ल अरबी के अलफ़ाज़ 'लक़द सर्रफ़नाहु' इस्तेमाल हुए हैं। इसके तीन मतलब हो सकते हैं। एक यह कि बारिश के इस मज़मून (विषय) को हमने बार-बार क़ुरआन में बयान करके हक़ीक़त समझाने की कोशिश की है। दूसरा यह कि हम बार-बार गर्मी और सूखे मौसम के, मौसमी हवाओं और घटाओं के और बरसात और उससे पैदा होनेवाली ज़िन्दगी की रौनक़ के करिश्मे उनको दिखाते रहते हैं। तीसरा यह कि हम बारिश को घुमाते रहते हैं। यानी हमेशा हर जगह एक जैसी बारिश नहीं होती, बल्कि कभी कहीं बिलकुल सूखा होता है, कभी कहीं कम बारिश होती है, कभी कहीं मुनासिब बारिश होती है, कभी कहीं तूफ़ान और सैलाब की नौबत आ जाती है और इन सब हालतों के अनगिनत अलग-अलग नतीजे उनके सामने आते रहते हैं।

65. अगर पहले पहलू (यानी तौहीद की दलील के नज़रिए) से देखा जाए तो आयत का मतलब यह है कि लोग आँखें खोलकर देखें तो सिर्फ़ बारिश के इन्तिज़ाम ही में अल्लाह के वुजूद और उसकी सिफ़ात और उसके सारे जहानों के अकेले रब होने पर दलील देनेवाली इतनी निशानियाँ

मौजूद हैं कि सिर्फ़ वही उनको पैग़म्बर की तालीम तौहीद के सच्चे होने का इत्मीनान दिला सकती हैं। मगर बावजूद इसके कि हम बार-बार इस बात की तरफ़ ध्यान दिलाते हैं और बावजूद इसके कि दुनिया में पानी बाँटने के ये करिश्मे नित नए अन्दाज़ से एक-के-बाद एक उनकी निगाहों के सामने आते रहते हैं, ये ज़ालिम कोई सबक़ नहीं लेते। न हक़ और सच्चाई को मानकर देते हैं, न अक़्ल और फ़िक्र की उन नेमतों का शुक्र अदा करते हैं जो हमने उनको दी हैं और न इस एहसान के लिए शुक्रगुज़ार होते हैं कि जो कुछ वे ख़ुद नहीं समझ रहे थे, उसे समझाने के लिए क़ुरआन में बार-बार कोशिश की जा रही है।

दूसरे पहलू (यानी आख़िरत की दलील के नज़रिए) से देखा जाए तो इसका मतलब यह है कि हर साल हक़ के इन इनकारियों के सामने गर्मी और सूखे से अनगिनत जानदारों पर मौत छा जाने और फिर बरसात की बरकत से मुर्दा पेड़-पौधों और कीड़ों-मकोड़ों के जी उठने का मंज़र आता रहता है, मगर सबकुछ देखकर भी ये बेवक़ूफ़ मौत के बाद की ज़िन्दगी को नामुमकिन ही कहते चले जाते हैं। बार-बार इन्हें हक़ीक़त की इस खुली निशानी की तरफ़ ध्यान दिलाया जाता है, मगर कुफ़्र और इनकार की बर्फ़ है कि किसी तरह नहीं पिघलती, अक़्ल और देखने की ताक़त की नेमत की नाशुक्री है कि किसी तरह ख़त्म नहीं होती और याद दिलाने और तालीम देने की नाशुक्री है कि बराबर हुए चली जाती है।

अगर तीसरे पहलू (यानी सूखे मौसम से जाहिलियत की और रहमत की बारिश से वह्य और पैग़म्बरी की मिसाल) को निगाह में रखकर देखा जाए तो आयत का मतलब यह है कि इनसानी इतिहास के दौरान में बार-बार यह मंज़र सामने आता रहा है कि जब कभी दुनिया नबी और अल्लाह की किताब की नेमत (अनुग्रह) से महरूम हुई, इनसानियत बंजर हो गई और फ़िक्र और अख़लाक़ (सोच और अमल) की ज़मीन में काँटेदार झाड़ियों के सिवा कुछ न उगा। और जब कभी वह्य और पैग़म्बरी का अमृत इस सरज़मीन को मिल गया, इनसानियत का चमन लहलहा उठा। जहालत और ला-इल्मी की जगह इल्म ने ले ली। ज़ुल्म-ज़्यादती की जगह इनसाफ़ क़ायम हुआ। बुराइयों और गुनाहों की जगह अख़लाक़ी ख़ूबियों के फूल खिले। जिस कोने में जितना भी उसका फ़ायदा पहुँचा, बुराई कम हुई और भलाई में इज़ाफ़ा हुआ। नबियों का आना हमेशा एक ख़ुशगवार और फ़ायदेमन्द फ़िक्री (वैचारिक) और अख़लाक़ी इंक़िलाब ही की वजह बना है, कभी इससे बुरे नतीजे ज़ाहिर नहीं हुए। और नबियों की हिदायत से महरूम होकर या उससे मुँह फेरकर हमेशा इनसानियत ने नुक़सान ही उठाया है, कभी इससे अच्छे नतीजे नहीं निकले। यह मंज़र इतिहास भी बार-बार दिखाता है और क़ुरआन भी इसकी तरफ़ बार-बार ध्यान दिलाता है, मगर लोग फिर भी सबक़ नहीं लेते। एक आज़माई हुई हक़ीक़त है जिसकी सच्चाई पर हज़ारों साल के इनसानी तजरिबे की मुहर लग चुकी है, मगर इसका इनकार किया जा रहा है और आज ख़ुदा ने नबी (पैग़म्बर) और किताब की नेमत से जिस बस्ती को नवाज़ा है, वह इसका शुक्र अदा करने के बजाय उलटी नाशुक्री करने पर तुली हुई है।

وَلَوْ شِئْنَا لَبَعَثْنَا فِيْ كُلِّ قَرْيَةٍ نَّذِيْرًا ﴿٥١﴾ فَلَا تُطِعِ الْكٰفِرِيْنَ
وَجَاهِدْهُمْ بِهٖ جِهَادًا كَبِيْرًا ﴿٥٢﴾ وَهُوَ الَّذِيْ مَرَجَ الْبَحْرَيْنِ
هٰذَا عَذْبٌ فُرَاتٌ وَّهٰذَا مِلْحٌ اُجَاجٌ ۚ وَجَعَلَ بَيْنَهُمَا بَرْزَخًا
وَّحِجْرًا مَّحْجُوْرًا ﴿٥٣﴾ وَهُوَ الَّذِيْ خَلَقَ مِنَ الْمَآءِ بَشَرًا فَجَعَلَهٗ نَسَبًا

(51) अगर हम चाहते तो एक-एक बस्ती में एक-एक ख़बरदार करनेवाला उठा खड़ा करते।[66] (52) तो ऐ नबी, इनकार करनेवालों की बात हरगिज़ न मानो और इस क़ुरआन को लेकर उनके साथ बड़ा जिहाद[67] करो।

(53) और वही है जिसने दो समन्दरों को मिला रखा है। एक मज़ेदार और मीठा, दूसरा तल्ख़ और खारा। और दोनों के बीच एक परदा पड़ा है। एक रुकावट है जो उन्हें गड्ड-मड्ड होने से रोके हुए है।[68]

(54) और वही है जिसने पानी से एक बशर (इनसान) पैदा किया, फिर उससे नसब

66. यानी ऐसा करना हमारी क़ुदरत से बाहर न था, चाहते तो जगह-जगह नबी (पैग़म्बर) पैदा कर सकते थे, मगर हमने ऐसा नहीं किया और दुनिया-भर के लिए एक ही नबी भेज दिया। जिस तरह एक सूरज सारी दुनिया के लिए काफ़ी हो रहा है उसी तरह यह अकेला हिदायत का सूरज ही सब दुनियावालों के लिए काफ़ी है।

67. 'बड़ा जिहाद' के तीन मतलब हैं। एक, इन्तिहाई कोशिश, जिसमें आदमी कोशिश करने और जान लगा देने में कोई कसर उठा न रखे। दूसरा, बड़े पैमाने पर जिद्दो-जुहद जिसमें आदमी अपने तमाम साधन लाकर डाल दे। तीसरा, हर तरह की जिद्दो-जुहद जिसमें आदमी कोशिश का कोई पहलू और मुक़ाबले का कोई मोरचा न छोड़े, जिस-जिस मोरचे पर दुश्मन ताक़तें काम कर रही हों, उसपर अपनी ताक़त भी लगा दे और जिस-जिस पहलू से भी हक़ की सरबुलन्दी के लिए काम करने की ज़रूरत हो करे। इसमें ज़बान और क़लम का जिहाद भी शामिल है और जान-माल का भी और हथियारों का भी।

68. यह कैफ़ियत हर उस जगह सामने आती है जहाँ कोई बड़ी नदी समन्दर में आकर गिरती है। इसके अलावा ख़ुद समन्दर में भी अलग-अलग जगहों पर मीठे पानी के चश्मे (स्रोत) पाए जाते हैं जिनका पानी समन्दर के बेहद खारे पानी के बीच भी अपनी मिठास पर क़ायम रहता है। तुर्की के समन्दरी कमांडर सैयदी अली रईस (कातिब रूमी) अपनी किताब 'मिरातुल-ममालिक' में, जो 16वीं सदी ईसवी में लिखी गई है, फ़ारस की खाड़ी के अन्दर ऐसे ही एक मक़ाम की निशानदेही करता है। उसने लिखा है कि वहाँ खारे पानी के नीचे मीठे पानी के चश्मे (स्रोत) हैं,

وَّصِهْرًا ۭ وَكَانَ رَبُّكَ قَدِيْرًا ۝ وَيَعْبُدُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ مَا لَا يَنْفَعُهُمْ

(वंश) और ससुराल के दो अलग-अलग सिलसिले चलाए।[69] तेरा रब बड़ा ही क़ुदरतवाला है। (55) उस ख़ुदा को छोड़कर लोग उनको पूज रहे हैं जो न उनको फ़ायदा पहुँचा

जिनसे मैं ख़ुद अपने जहाज़ के लिए पीने का पानी हासिल करता रहा हूँ। मौजूदा ज़माने में जब अमेरिकी कम्पनी ने सऊदी अरब में तेल निकालने का काम शुरू किया तो शुरू में वह भी फ़ारस की खाड़ी के इन्हीं चश्मों (स्रोतों) से पानी हासिल करती थी। बाद में ज़हरान के पास कुएँ खोद लिए गए और उनसे पानी लिया जाने लगा। बहरैन के क़रीब भी समन्दर के तल में मीठे पानी के चश्मे (स्रोत) हैं जिनसे लोग कुछ मुद्दत पहले तक पीने का पानी हासिल करते रहे हैं।

यह तो है आयत का ज़ाहिरी मज़मून, जो अल्लाह की क़ुदरत के एक करिश्मे से उसके अकेले माबूद और अकेले रब होने पर दलील दे रहा है। मगर इसके अन्दर से भी एक बारीक इशारा एक दूसरी बात की तरफ़ निकलता है और वह यह है कि इनसानी समाज का समन्दर चाहे कितना ही खारा और कड़ुवा हो जाए, अल्लाह जब चाहे उसके तल से अच्छे लोगों के एक गरोह का मीठा चश्मा (स्रोत) निकाल सकता है और समन्दर के खारे पानी की मौजें चाहे कितना ही ज़ोर मार लें, वे उस चश्मे को हड़प कर जाने में कामयाब नहीं हो सकतीं।

69. यानी अपने आपमें यही करिश्मा क्या कम था कि ख़ुदा एक मामूली पानी की बूँद से इनसान जैसी हैरतअंगेज़ मख़लूक़ बना खड़ी करता है, मगर इसपर एक और करिश्मा यह कि उसने इनसान का भी एक नमूना नहीं, बल्कि दो अलग नमूने (औरत और मर्द) बनाए जो इनसानियत में एक जैसे, मगर जिस्मानी और नफ़सियाती (मनोवैज्ञानिक) ख़ासियतों में बिलकुल अलग हैं और इस अलग होने की वजह से एक-दूसरे के मुख़ालिफ़ और एक-दूसरे के उलट नहीं, बल्कि एक-दूसरे का पूरा जोड़ हैं। फिर इन जोड़ों को मिलाकर वह अजीब तवाज़ुन (सन्तुलन) के साथ (जिसमें किसी दूसरे की तदबीर का थोड़ा-सा भी दख़ल नहीं है) दुनिया में मर्द भी पैदा कर रहा है और औरतें भी, जिनसे रिश्तों का एक सिलसिला बेटों और पोतों का चलता है जो दूसरे घरों से बहुएँ लाते हैं और ताल्लुक़ात का एक दूसरा सिलसिला बेटियों और नवासियों का चलता है जो दूसरे घरों की बहुएँ बनकर जाती हैं। इस तरह ख़ानदान से ख़ानदान जुड़कर पूरे-पूरे देश एक नस्ल और एक समाज से जुड़ जाते हैं।

यहाँ भी एक छिपा हुआ हल्का-सा इशारा इस बात की तरफ़ है कि दुनिया के इस सारे कारख़ाने में जो हिकमत काम कर रही है उसके काम का अन्दाज़ ही कुछ ऐसा है कि यहाँ इख़्तिलाफ़ (चीज़ों के एक-दूसरे के बरख़िलाफ़ होने) और फिर एक-दूसरे के बरख़िलाफ़ होनेवालों के जोड़ से ही सारे नतीजे निकलते हैं। लिहाज़ा जिस इख़्तिलाफ़ (भिन्नता) का तुम्हें सामना है उसपर घबराओ नहीं, यह भी एक फलदायक चीज़ है।

وَلَا يَضُرُّهُمْ ۗ وَكَانَ الْكَافِرُ عَلٰى رَبِّهٖ ظَهِيْرًا ۝ وَمَآ اَرْسَلْنٰكَ اِلَّا
مُبَشِّرًا وَّ نَذِيْرًا ۝ قُلْ مَآ اَسْـَٔلُكُمْ عَلَيْهِ مِنْ اَجْرٍ

सकते हैं, न नुक़सान और ऊपर से यह और भी कि इनकार करनेवाला अपने रब के मुक़ाबले में हर बाग़ी (विद्रोही) का मददगार बना हुआ है।[70]

(56) ऐ नबी, तुमको तो हमने बस एक ख़ुशख़बरी देनेवाला और ख़बरदार करनेवाला बनाकर भेजा है।[71] (57) इनसे कह दो कि "मैं इस काम पर तुमसे कोई

70. यानी अल्लाह का कलिमा बुलन्द (बोलबाला) करने और उसके हुक्मों और क़ानूनों को लागू करने के लिए जो कोशिश भी कहीं हो रही हो, हक़ के इनकारियों की हमदर्दियाँ इस कोशिश के साथ नहीं, बल्कि उन लोगों के साथ होंगी जो उसे नीचा दिखाने पर तुले हों। इसी तरह अल्लाह की फ़रमाँबरदारी से नहीं, बल्कि उसकी नाफ़रमानी ही से हक़ के इनकारियों की सारी दिलचस्पियाँ जुड़ी होंगी। ख़ुदा की नाफ़रमानी का काम जो जहाँ भी कर रहा हो, हक़ का इनकारी अगर अमली तौर पर उसका साझी न हो सकेगा तो कम-से-कम ज़िन्दाबाद का नारा ही लगा देगा, ताकि ख़ुदा के बाग़ियों (विद्रोहियों) की हिम्मत बढ़े। इसके बरख़िलाफ़ अगर कोई ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी का काम कर रहा हो तो हक़ का इनकारी उसको रोकने में ज़रा भी देर न करेगा। ख़ुद रुकावट न डाल सकता हो तो उसका हौसला तोड़ने के लिए जो कुछ भी कर सकता है, कर गुज़रेगा, चाहे वह नाक-भौंह चढ़ाने की हद तक ही सही। ख़ुदा की नाफ़रमानी की हर ख़बर उसके लिए दिली ख़ुशख़बरी होगी और ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी की हर ख़बर उसे तीर बनकर लगेगी।

71. यानी तुम्हारा काम न किसी ईमान लानेवाले को इनाम देना है, न किसी इनकार करनेवाले को सज़ा देना। तुम किसी को ईमान की तरफ़ खींच लाने और इनकार से ज़बरदस्ती रोक देने पर नहीं लगाए गए हो। तुम्हारी ज़िम्मेदारी इससे ज़्यादा कुछ नहीं कि जो सीधी राह क़बूल करे उसे अच्छे अंजाम की ख़ुशख़बरी दे दो और जो अपनी बुरी डगर पर चलता रहे, उसको अल्लाह की पकड़ से डरा दो।

इस तरह की बातें क़ुरआन में जहाँ भी आई हैं वे अस्ल में ख़ुदा के इनकारियों से कही गई हैं और मक़सद अस्ल में उनको यह बताना है कि नबी (पैग़म्बर) एक सच्चे दिल से इस्लाह और सुधार करनेवाला है, उसकी अपनी कोई दुनियावी ग़रज़ नहीं है, बल्कि लोगों की भलाई के लिए ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचाता है और लोगों को उनके अंजाम का भला और बुरा बता देता है। वह तुम्हें ज़बरदस्ती तो उस पैग़ाम के क़बूल करने पर मजबूर नहीं करता कि तुम ख़ाह-मख़ाह उसपर बिगड़ने और लड़ने पर तुल जाते हो। तुम मानोगे तो अपना ही भला करोगे, उसे कुछ न दे दोगे। न मानोगे तो अपना नुक़सान करोगे, उसका कुछ न बिगाड़ोगे। वह पैग़ाम पहुँचाकर अपना फ़र्ज़ पूरा कर चुका। अब तुम्हारा मामला ख़ुदा से है--- इस बात को न समझने की

إِلَّا مَنْ شَآءَ أَنْ يَّتَّخِذَ إِلَىٰ رَبِّهِ سَبِيلًا ۝ وَتَوَكَّلْ عَلَى الْحَيِّ الَّذِي لَا يَمُوتُ
وَسَبِّحْ بِحَمْدِهِ ۚ وَكَفَىٰ بِهِ بِذُنُوبِ عِبَادِهِ خَبِيرًا ۝ الَّذِي خَلَقَ السَّمٰوٰتِ
وَالْأَرْضَ وَمَا بَيْنَهُمَا فِي سِتَّةِ أَيَّامٍ ثُمَّ اسْتَوَىٰ عَلَى الْعَرْشِ ۚ الرَّحْمٰنُ

मुआवज़ा नहीं माँगता, मेरा मुआवज़ा बस यही है कि जिसका जी चाहे वह अपने रब का रास्ता अपना ले।"[71अ]

(58) ऐ नबी, उस ख़ुदा पर भरोसा रखो जो ज़िन्दा है और कभी मरनेवाला नहीं। उसकी हम्द (तारीफ़) के साथ उसकी तसबीह (महिमागान) करो। अपने बन्दों के गुनाहों से बस उसी का बाख़बर होना काफ़ी है। (59) वह जिसने छः दिनों में ज़मीन और आसमानों को और उन सारी चीज़ों को बनाकर रख दिया जो आसमानों और ज़मीन के बीच हैं, फिर आप ही 'अर्श' (कायनात के राज-सिंहासन) पर विराजमान हुआ।[72] रहमान,

वजह से कई बार लोग इस ग़लतफ़हमी में पड़ जाते हैं कि मुसलमानों के मामले में भी नबी का काम बस ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचा देने और अच्छे अंजाम की ख़ुशख़बरी सुना देने तक ही है। हालाँकि क़ुरआन जगह-जगह और बार-बार साफ़-साफ़ बयान करता है, कि मुसलमानों के लिए नबी सिर्फ़ ख़ुशख़बरी देनेवाला ही नहीं है बल्कि तालीम देनेवाला और उनका तज़किया (विकास) करनेवाला और अपने अमल से नमूना पेश करनेवाला भी है। हाकिम और क़ाज़ी और ऐसा अमीर भी है जिसकी पैरवी करना लाज़िमी है और उसकी ज़बान से निकला हुआ हर फ़रमान उनके लिए क़ानून का दर्जा रखता है, जिसके आगे उनको दिल की पूरी रज़ामन्दी से सिर झुकाना चाहिए। लिहाज़ा सख़्त ग़लती करता है वह शख़्स जो "मा अलर-रसूलि इल्लल बलाग़" (रसूल का काम सिर्फ़ पहुँचा देना है) और "मा अरसलना-क इल्ला मुबश्शिरवँ व नज़ीरा" (हमने तुम्हें सिर्फ़ ख़ुशख़बरी देनेवाला और आगाह करनेवाला बनाकर भेजा है) और इसी तरह की दूसरी आयतों को नबी और ईमानवालों के आपसी ताल्लुक़ पर चस्पाँ करता है।

71अ. तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, हाशिया-70।

72. अल्लाह तआला के अर्श पर विराजमान होने की तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, हाशिए—41-42; सूरा-10 यूनुस, हाशिया-4; सूरा-11 हूद, हाशिया-7।
ज़मीन और आसमान को छः दिनों में पैदा करने की बात मुतशाबिहात (उपलक्षित आयतों) में से है जिसका ठीक-ठीक मतलब निकालना मुश्किल है। मुमकिन है कि एक दिन से मुराद एक दौर हो और मुमकिन है कि इससे मुराद वक़्त की इतनी ही मिक़दार हो जिसे हम दुनिया में दिन का लफ़्ज़ कहते हैं (तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-41 हा-मीम सजदा, हाशिए—11-15)।

فَسْـَٔلْ بِهٖ خَبِيْرًا ﴿۵۹﴾ وَاِذَا قِيْلَ لَهُمُ اسْجُدُوْا لِلرَّحْمٰنِ قَالُوْا وَمَا الرَّحْمٰنُ ۗ
اَنَسْجُدُ لِمَا تَاْمُرُنَا وَزَادَهُمْ نُفُوْرًا ﴿۶۰﴾ تَبٰرَكَ الَّذِيْ جَعَلَ فِي السَّمَآءِ بُرُوْجًا
وَّجَعَلَ فِيْهَا سِرٰجًا وَّقَمَرًا مُّنِيْرًا ﴿۶۱﴾ وَهُوَ الَّذِيْ جَعَلَ الَّيْلَ وَالنَّهَارَ

उसकी शान बस किसी जाननेवाले से पूछो।

(60) इन लोगों से जब कहा जाता है कि उस रहमान को सजदा करो तो कहते हैं, "रहमान क्या होता है? क्या जिसे तू कह दे, उसी को हम सजदा करते फिरें?"[73] यह दावत उनकी नफ़रत में उल्टा और बढ़ोत्तरी कर देती है।[74]

(61) बड़ा बरकतवाला है वह जिसने आसमान में बुर्ज बनाए[75] और उसमें एक चिराग़[76] और एक चमकता चाँद रौशन किया। (62) वही है जिसने रात और दिन को

73. यह बात अस्ल में वे सिर्फ़ गुस्ताख़ाना रवैये और सरासर हठधर्मी की वजह से कहते थे, जिस तरह फ़िरऔन ने हज़रत मूसा (अलैहि॰) से कहा था कि "यह रब्बुल-आलमीन क्या होता है?" हालाँकि न मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ रहमान (दयावान) अल्लाह से बेख़बर थे और न फ़िरऔन ही अल्लाह रब्बुल-आलमीन से अनजान था। क़ुरआन के कुछ आलिमों ने इसका यह मतलब निकाला है कि अरबवालों के यहाँ अल्लाह तआला के लिए 'रहमान' का मुबारक नाम आम न था, इसलिए उन्होंने यह एतिराज़ किया। लेकिन आयत के बयान का अन्दाज़ ख़ुद बता रहा है कि यह एतिराज़ न जानने की वजह से नहीं, बल्कि जाहिलियत की हठधर्मी और सरकशी की वजह से था, वरना उसपर गिरिफ़्त करने के बजाय अल्लाह तआला नरमी के साथ उन्हें समझा देता कि यह भी हमारा ही एक नाम है, इसपर कान न खड़े करो। इसके अलावा यह बात तारीख़ी (ऐतिहासिक) तौर पर साबित है कि अरब में अल्लाह तआला के लिए पुराने ज़माने से रहमान का लफ़्ज़ जाना-माना और इस्तेमाल में था। देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-32 सजदा, हाशिया-5; सूरा-34 सबा, हाशिया-35।

74. तमाम इस्लामी उलमा इस बात पर एकराय हैं कि यहाँ सजदा-ए-तिलावत है यानी इस आयत के पढ़नेवाले और सुननेवाले को सजदा करना चाहिए। साथ ही यह भी सुन्नत है कि आदमी जब इस आयत को सुने तो जवाब में कहे, "ज़ा-द-नल्लाहु ख़ुज़ूअम-मा ज़ा-द लिल-आदाइ नुफ़ूरा" यानी "अल्लाह करे हमारा ख़ुज़ू (आजिज़ी) उतना ही बढ़े जितना दुश्मनों का नुफ़ूर (सरकशी) बढ़ता है।"

75. तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-15 हिज्र, हाशिए—8-12।

76. यानी सूरज, जैसाकि सूरा-71 नूह, आयत-16 में साफ़-साफ़ फ़रमाया "व ज-अ-लश्शम-स सिराजा" (और उसने सूरज को चिराग़ बनाया)

خِلْفَةً لِّمَنْ اَرَادَ اَنْ يَّذَّكَّرَ اَوْ اَرَادَ شُكُوْرًا ﴿٦٢﴾ وَعِبَادُ
الرَّحْمٰنِ الَّذِيْنَ يَمْشُوْنَ عَلَى الْاَرْضِ هَوْنًا وَّاِذَا

एक-दूसरे की जगह लेनेवाला (जानशीन) बनाया, हर उस शख़्स के लिए जो सबक़ लेना चाहे, या शुक्रगुज़ार होना चाहे।[77]

(63) रहमान के (असली) बन्दे वे हैं[78] जो ज़मीन पर नर्म चाल चलते हैं[79] और

---

77. ये दो दर्जे हैं जो अपनी क़िस्म के लिहाज़ से अलग और अपने मिज़ाज के एतिबार से एक-दूसरे के लिए ज़रूरी हैं। रात-दिन के आने-जाने के निज़ाम (व्यवस्था) पर ग़ौर करने का पहला नतीजा यह है कि आदमी उससे तौहीद (ख़ुदा के एक होने) का सबक़ ले और अगर ख़ुदा से ग़फ़लत में पड़ा हुआ था तो चौंक जाए। और दूसरा नतीजा यह है कि ख़ुदा की रुबूबियत (रब होने) का एहसास करके आजिज़ी (विनम्रता) से सिर झुका दे और सरापा शुक्रगुज़ारी (की अलामत) बन जाए।

78. यानी जिस रहमान (दयावान ख़ुदा) को सजदा करने के लिए तुमसे कहा जा रहा है और तुम इससे मुँह फेर रहे हो उसके पैदाइशी बन्दे तो सभी हैं, मगर उसके प्यारे और पसन्दीदा बन्दे वे हैं जो सोचते-समझते हुए बन्दगी अपनाकर ये और ये ख़ूबियाँ अपने अन्दर पैदा करते हैं। साथ ही वह सजदा जिसकी तुम्हें दावत दी जा रही है उसके नतीजे ये हैं जो उसकी बन्दगी क़बूल करनेवालों की ज़िन्दगी में नज़र आते हैं और उससे इनकार के नतीजे वे हैं जो तुम लोगों की ज़िन्दगी में ज़ाहिर हैं। इस जगह पर अस्ल मक़सद सीरत और अख़लाक़ (चरित्र और आचरण) के दो नमूनों का तक़ाबुल (तुलना) है। एक वह नमूना जो मुहम्मद (सल्ल॰) की पैरवी क़बूल करनेवालों में पैदा हो रहा था और दूसरा वह जो जाहिलियत (अज्ञान) पर जमे हुए लोगों में हर तरफ़ पाया जाता था। लेकिन इस तक़ाबुल (तुलना) के लिए तरीक़ा यह अपनाया गया कि सिर्फ़ पहले नमूने की नुमायाँ ख़ासियतों को सामने रख दिया और दूसरे नमूने को हर देखनेवाली आँख और सोचनेवाले ज़ेहन पर छोड़ दिया कि वह आप ही सामनेवाले की तस्वीर को देखे और आप ही दोनों में फ़र्क़ महसूस करे। उसके बयान की ज़रूरत न थी; क्योंकि वे आस-पास सारे समाज में पाए जाते थे।

79. यानी घमण्ड के साथ अकड़ते और ऐंठते हुए नहीं चलते, ज़ालिमों और बिगाड़ फैलानेवालों की तरह अपनी चाल से अपना ज़ोर जताने की कोशिश नहीं करते, बल्कि उनकी चाल एक शरीफ़ और सही फ़ितरत रखनेवाले और नेक मिज़ाज आदमी की-सी चाल होती है। 'नर्म चाल' से मुराद कमज़ोरों और रोगियोंवाली चाल नहीं है और न वह चाल है जो एक दिखावा करनेवाला आदमी अपनी इन्किसारी (विनम्रता) दिखलाने या अपनी ख़ुदातरसी ज़ाहिर करने के लिए बनावटी तौर पर अपनाता है। नबी (सल्ल॰) ख़ुद इस तरह मज़बूत क़दम रखते हुए चलते थे कि मानो ढलान की तरफ़ उतर रहे हैं। हज़रत उमर (रज़ि॰) के बारे में रिवायतों में आया है कि

خَاطَبَهُمُ الْجٰهِلُوْنَ قَالُوْا سَلٰمًا ۝ وَالَّذِيْنَ يَبِيْتُوْنَ لِرَبِّهِمْ

जाहिल उनके मुँह आएँ तो कह देते हैं कि तुमको सलाम।[80] (64) जो अपने रब के आगे

उन्होंने एक जवान आदमी को मरियल चाल चलते हुए देखा तो रोककर पूछा, "क्या तुम बीमार हो?" उसने कहा, "नहीं!" उन्होंने दुर्रा उठाकर उसे धमकाया और बोले, मज़बूती के साथ चलो। इससे मालूम हुआ कि नर्म चाल से मुराद एक भले मानुस की-सी फ़ितरी चाल है, न कि वह जो बनावट से आजिज़ीवाली बनाई गई हो या जिससे ख़्वाह-मख़्वाह की मिसकीनी और कमज़ोरी टपकती हो।

मगर सोचने के लायक़ पहलू यह है कि आदमी की चाल में आख़िर वह क्या अहमियत है जिसकी वजह से अल्लाह के नेक बन्दों की ख़ूबियों को गिनाते हुए सबसे पहले इसका ज़िक्र किया गया? इस सवाल पर अगर ज़रा ग़ौर किया जाए तो मालूम होता है कि आदमी की चाल सिर्फ़ उसके चलने के ढंग ही का नाम नहीं है, बल्कि हक़ीक़त में वह उसके ज़ेहन और उसकी सीरत और किरदार को सबसे पहली बयान करनेवाली भी होती है। एक चालाक और मक्कार आदमी की चाल, एक गुण्डे बदमाश की चाल, एक ज़ालिम और जाबिर (दुष्ट) की चाल, एक घमण्डी की चाल, एक बावक़ार (गौरवशाली) तहज़ीबवाले आदमी की चाल, एक ग़रीब मिसकीन की चाल और इसी तरह अलग-अलग तरह के दूसरे इनसानों की चालें एक-दूसरे से इतनी ज़्यादा अलग होती हैं कि हर एक को देखकर आसानी से अन्दाज़ा किया जा सकता है कि किस चाल के पीछे किस तरह की शख़्सियत छिपी है। इसलिए आयत का मतलब यह है कि रहमान के बन्दों को तो तुम आम आदमियों के बीच चलते-फिरते देखकर ही बिना किसी पहले से जान-पहचान के अलग पहचान लोगे कि ये किस ढंग के लोग हैं। इस बन्दगी ने उनकी ज़ेहनियत और उनकी सीरत को जैसा कुछ बना दिया है उसका असर उनकी चाल तक में नुमायाँ है। एक आदमी उन्हें देखकर पहली नज़र में जान सकता है कि ये शरीफ़ और नर्मदिल और हमदर्द लोग हैं, इनसे किसी बुराई की उम्मीद नहीं की जा सकती। (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, हाशिया-43; सूरा-31 लुक़मान, हाशिया-33)

80. जाहिल से मुराद अनपढ़ या इल्म न रखनेवाला आदमी नहीं, बल्कि वह शख़्स है जो जहालत और हठधर्मी पर उतर आए और किसी शरीफ़ आदमी से बदतमीज़ी का बरताव करने लगे। रहमान (दयावान ख़ुदा) के बन्दों का तरीक़ा यह है कि वे गाली का जवाब गाली से और बुहतान (तुहमत) का जवाब बुहतान (मिथ्यारोप) से और इसी तरह की हर बेहूदगी का जवाब वैसी ही बेहूदगी से नहीं देते, बल्कि जो उनके साथ यह रवैया अपनाता है, वे उसको सलाम करके अलग हो जाते हैं। जैसाकि सूरा-28 क़सस, आयत-55 में फ़रमाया—

"और जब वे कोई बेहूदा बात सुनते हैं तो उसे नज़र-अन्दाज़ कर देते हैं, कहते हैं : भाई हमारे आमाल हमारे लिए और तुम्हारे आमाल तुम्हारे लिए, सलाम है तुमको, हम जाहिलों के मुँह नहीं लगते।" (तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, हाशिए—72-78)

سُجَّدًا وَّقِيَامًا ﴿٦٤﴾ وَالَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَا اصْرِفْ عَنَّا عَذَابَ
جَهَنَّمَ ۖ اِنَّ عَذَابَهَا كَانَ غَرَامًا ﴿٦٥﴾ اِنَّهَا سَآءَتْ مُسْتَقَرًّا وَّمُقَامًا ﴿٦٦﴾
وَالَّذِيْنَ اِذَآ اَنْفَقُوْا لَمْ يُسْرِفُوْا وَلَمْ يَقْتُرُوْا وَكَانَ بَيْنَ ذٰلِكَ

सजदे में और खड़े होकर रातें गुज़ारते हैं।[81] (65) जो दुआएँ करते हैं कि "ऐ हमारे रब, जहन्नम के अज़ाब से हमको बचा ले, उसका अज़ाब तो जान का लागू है, (66) वह तो बड़ा ही बुरा ठिकाना और मक़ाम है।"[82] (67) जो ख़र्च करते हैं तो न फ़ुज़ूलख़र्ची करते हैं न कंजूसी, बल्कि उनका ख़र्च दोनों इन्तिहाओं के बीच एतिदाल (सन्तुलन) पर क़ायम

81. यानी वह उनके दिन की ज़िन्दगी थी और यह उनकी रातों की ज़िन्दगी है। उनकी रातें न अय्याशी में गुज़रती हैं, न नाच गाने में, न खेल-तमाशे में, न गप्पों और क़िस्से-कहानियों में और न डाके डालने और चोरियाँ करने में। जाहिलियत के इन जाने-माने मशग़लों के बरख़िलाफ़ ये इस समाज के वे लोग हैं जिनकी रातें ख़ुदा के सामने खड़े और बैठे और लेटे दुआ और इबादत करने में गुज़रती हैं। क़ुरआन मजीद में जगह-जगह उनकी ज़िन्दगी के इस पहलू को नुमायाँ करके पेश किया गया है। मसलन सूरा-32 सजदा में फ़रमाया—
"उनकी पीठें बिस्तरों से अलग रहती हैं, अपने रब को डर और लालच के साथ पुकारते हैं।" (आयत-16)

और सूरा-51 ज़ारियात में फ़रमाया—
"ये जन्नतवाले वे लोग थे जो रातों को कम ही सोते थे और सुबह के वक़्तों में मग़फ़िरत की दुआएँ माँगा करते थे।" (आयतें—17-18)
और सूरा-39 ज़ुमर में कहा गया—
"क्या उस शख़्स का अंजाम किसी मुशरिक जैसा हो सकता है जो अल्लाह का फ़रमाँबरदार हो, रात के वक़्तों में सजदे करता और (ख़ुदा की इबादत में) खड़ा रहता हो, आख़िरत से डरता हो और अपने रब की रहमत की आस लगाए हुए हो?" (आयत-9)

82. यानी यह इबादत उनमें कोई घमण्ड पैदा नहीं करती। उन्हें इस बात का कोई घमण्ड नहीं होता कि हम तो अल्लाह के प्यारे हैं और उसके चहेते हैं, भला आग हमें कहाँ छू सकती है, बल्कि अपनी सारी नेकियों और इबादतों के बावजूद वे इस डर से काँपते रहते हैं कि कहीं हमारे अमल की कमियाँ हमको अज़ाब में मुब्तला न कर दें। वे अपनी परहेज़गारी के ज़ोर से जन्नत जीत लेने का ख़याल नहीं रखते, बल्कि अपनी इनसानी कमज़ोरियों को मानते हुए अज़ाब से बच निकलने ही को बहुत कुछ समझते हैं और इसके लिए भी उनका भरोसा अपने अमल पर नहीं, बल्कि अल्लाह के रहमो-करम पर होता है।

قَوَامًا ﴿٦٧﴾ وَالَّذِيْنَ لَا يَدْعُوْنَ مَعَ اللّٰهِ اِلٰهًا اٰخَرَ وَلَا يَقْتُلُوْنَ النَّفْسَ
الَّتِيْ حَرَّمَ اللّٰهُ اِلَّا بِالْحَقِّ وَلَا يَزْنُوْنَ ۚ وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ يَلْقَ اَثَامًا ﴿٦٨﴾

रहता है।[83] (68) जो अल्लाह के सिवा किसी और माबूद (पूज्य) को नहीं पुकारते, अल्लाह की हराम की हुई किसी जान को नाहक़ हलाक नहीं करते, और न ज़िना (बदकारी) करते हैं।[84]—यह काम जो कोई करे वह अपने गुनाह का बदला पाएगा।

---

83. यानी न तो उनका हाल यह है कि अय्याशी और जुआ, शराब, दोस्ती-यारी और मेलों-ठेलों और शादी-ब्याह में बेझिझक और बेरोक-टोक रुपया ख़र्च करें और अपनी हैसियत से बढ़कर अपनी शान दिखाने के लिए खाने, कपड़े और मकान और सजावट पर दौलत लुटाएँ और न उनकी कैफ़ियत यह है कि दौलत के पुजारी की तरह पैसा जोड़-जोड़कर रखें, न ख़ुद खाएँ, न बाल-बच्चों की ज़रूरतें अपनी हैसियत के मुताबिक़ पूरी करें और न भलाई के किसी काम में ख़ुशदिली के साथ कुछ दें। अरब में ये दोनों तरह के नमूने बहुत बड़ी तादाद में पाए जाते थे। एक तरफ़ ये लोग थे जो ख़ूब दिल खोलकर ख़र्च करते थे, मगर उनके हर ख़र्च का मक़सद या तो ख़ुद अपना ऐशो-आराम था, या बिरादरी में नाक ऊँची रखना और अपनी फ़ैयाज़ी (दानशीलता) और दौलतमन्दी के डंके बजवाना। दूसरी तरफ़ वे कंजूस थे जिनकी कंजूसी मशहूर थी। बीच का रवैया बहुत ही कम लोगों में पाया जाता था और इन कम लोगों में उस वक़्त सबसे ज़्यादा नुमायाँ नबी (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के सहाबा थे।

इस मौक़े पर यह जान लेना चाहिए कि 'इसराफ़' (फ़ुज़ूलख़र्ची) क्या चीज़ है और बुख़्ल (कंजूसी) क्या चीज़। इस्लामी नज़रिए से इसराफ़ तीन चीज़ों का नाम है। पहली, नाजाइज़ कामों में दौलत ख़र्च करना, चाहे वह एक पैसा ही क्यों न हो। दूसरी, जाइज़ कामों में ख़र्च करते हुए हद से आगे निकल जाना, चाहे इस लिहाज़ से कि आदमी अपनी हैसियत से ज़्यादा ख़र्च करे, या इस लिहाज़ से कि आदमी को जो दौलत उसकी ज़रूरत से बहुत ज़्यादा मिल गई हो उसे वह अपने ही ऐश और ठाठ-बाट में ख़र्च करता चला जाए। तीसरी नेकी के कामों में ख़र्च करना, मगर अल्लाह के लिए नहीं, बल्कि दिखावे के लिए। इसके बरख़िलाफ़ बुख़्ल (कंजूसी) दो चीज़ों को कहते हैं। एक यह कि आदमी अपनी और अपने बाल-बच्चों की ज़रूरतों पर अपनी सकत और हैसियत के मुताबिक़ ख़र्च न करे। दूसरी यह कि नेकी और भलाई के कामों में उसके हाथ से पैसा न निकले। इन दोनों इन्तिहाओं के दरमियान बीच का रास्ता इस्लाम का रास्ता है जिसके बारे में नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं—

"अपने माली मामलों में बीच की राह अपनाना आदमी के अक़्लमन्द होने की अलामतों में से है।" (हदीस : अहमद, तबरानी)

84. यानी वे उन तीन बड़े गुनाहों से परहेज़ करते हैं जिनमें अरबवाले बहुत ज़्यादा मुब्तला हैं। एक अल्लाह के साथ किसी को शरीक करना, दूसरा किसी को नाहक़ क़त्ल करना, तीसरा ज़िना

(बदकारी)। इसी बात को नबी (सल्ल०) ने बहुत-सी हदीसों में बयान किया है। मसलन अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) की रिवायत है कि एक बार आप (सल्ल०) से पूछा गया कि सबसे बड़ा गुनाह क्या है? फ़रमाया, "यह कि तू किसी को अल्लाह के बराबर का ठहराए, हालाँकि तुझे पैदा अल्लाह ने किया है।" पूछा गया, "इसके बाद?" फ़रमाया, "यह कि तू अपने बच्चे को इस डर से क़त्ल कर डाले कि वह तेरे साथ खाने में शरीक हो जाएगा।" पूछा गया, "इसके बाद?" फ़रमाया, "यह कि तू अपने पड़ोसी की बीवी से बदकारी करे।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी, नसई, अहमद)

अगरचे बड़े गुनाह और भी बहुत-से हैं, लेकिन अरब की सोसाइटी पर उस वक़्त सबसे ज़्यादा यही तीन गुनाह छाए हुए थे, इसलिए मुसलमानों की इस ख़ासियत को नुमायाँ किया गया कि पूरे समाज में ये कुछ लोग हैं जो इन बुराइयों से बच गए हैं।

यहाँ यह सवाल किया जा सकता है कि मुशरिकों के नज़दीक तो शिर्क से बचना एक बहुत बड़ा ऐब था, फिर इसे मुसलमानों की एक ख़ूबी की हैसियत से उनके सामने पेश करने की कौन-सी मुनासिब वजह हो सकती थी? इसका जवाब यह है कि अरब के लोग हालाँकि शिर्क में मुब्तला थे और सख़्त तास्सुब (पक्षपात) की हद तक मुब्तला थे, मगर अस्ल में उसकी जड़ें ऊपरी सतह ही तक महदूद थीं, कुछ गहरी उतरी हुई न थीं और दुनिया में कभी कहीं भी शिर्क की जड़ें इनसानी फ़ितरत में गहरी उतरी हुई नहीं होतीं। इसके बरख़िलाफ़ ख़ालिस ख़ुदापरस्ती की बड़ाई उनके ज़ेहन की गहराइयों में रची हुई मौजूद थी जिसको उभारने के लिए ऊपर की सतह को बस ज़रा ज़ोर से खुरच देने की ज़रूरत थी। जाहिलियत के इतिहास के कई वाक़िआत इन दोनों बातों की गवाही देते हैं। मसलन अब्रहा के हमले के मौक़े पर क़ुरैश का बच्चा-बच्चा यह जानता था कि इस बला को ये बुत नहीं टाल सकते जो काबा में रखे हुए हैं, बल्कि सिर्फ़ अल्लाह तआला ही टाल सकता है जिसका यह घर है। आजतक वे अशआर और क़सीदे महफ़ूज़ हैं जो हाथियोंवालों की तबाही पर उस ज़माने के शाइरों ने कहे थे। उनका लफ़्ज़-लफ़्ज़ गवाही देता है कि वे लोग इस वाक़िए को सिर्फ़ अल्लाह तआला की क़ुदरत का करिश्मा समझते थे और इस बात का हल्का-सा गुमान भी न रखते थे कि इसमें उनके माबूदों का कोई रोल है। इसी मौक़े पर शिर्क का यह बदतरीन करिश्मा भी क़ुरैश और अरब के तमाम मुशरिकों के सामने आया था कि अब्रहा जब मक्का की तरफ़ जाते हुए ताइफ़ के क़रीब पहुँचा तो ताइफ़वालों ने इस डर से कि यह कहीं उनके माबूद 'लात' के मन्दिर को भी न गिरा दे, अपनी ख़िदमतें काबा को ढहाने के लिए उसके आगे पेश कर दीं और अपने कुछ गाइड उसके साथ कर दिए ताकि वे पहाड़ी रास्तों से उसके लश्कर को सही-सलामत मक्का तक पहुँचा दें। इस वाक़िए की कड़वी याद मुद्दतों तक क़ुरैश को सताती रही और सालों तक वे उस आदमी की क़ब्र पर पत्थर मारते रहे जो ताइफ़ के रहबरों का सरदार था। इसके अलावा क़ुरैश और दूसरे अरबवाले अपने दीन (मज़हब) को हज़रत इबराहीम (अलैहि०) से जोड़ते थे, अपनी बहुत-सी मज़हबी और सामाजिक रस्मों और ख़ास तौर से हज के मनासिक (रस्मों) को हज़रत इबराहीम (अलैहि०) के दीन का हिस्सा ठहराते थे और यह बात भी मानते थे कि हज़रत इबराहीम (अलैहि०) ख़ालिस ख़ुदापरस्त थे, बुतों की पूजा उन्होंने कभी नहीं की। उनके यहाँ की रिवायतों

में ये तफ़सीलात भी महफ़ूज़ थीं कि बुतपरस्ती उनके यहाँ कब से जारी हुई और कौन-सा बुत कब, कहाँ से, कौन लाया। अपने माबूदों की जैसी कुछ इज़्ज़त एक आम अरब के दिल में थी उसका अन्दाज़ा इससे लगाया जा सकता है कि जब कभी उसकी दुआओं और तमन्नाओं के ख़िलाफ़ कोई घटना घट जाती तो कई बार वह अपने माबूद की तौहीन भी कर डालता था और उसको भेंट चढ़ाने से हाथ खींच लेता था। एक अरब अपने बाप के क़ातिल से बदला लेना चाहता था। ज़ुलख़-ल-सा नाम के बुत के आस्ताने पर जाकर उसने फ़ाल खुलवाई। जवाब निकला, यह काम न किया जाए। इसपर अरबवासी ग़ुस्से में आ गया। कहने लगा, "ऐ ज़ुलख़-ल-सा! अगर मेरी जगह तू होता और तेरा बाप मारा गया होता तो तू हरगिज़ यह झूठी बात न कहता कि ज़ालिमों से बदला न लिया जाए।"

एक और अरब साहब अपने ऊँटों का झुंड 'सअद' नामी अपने माबूद के आस्ताने पर ले गए, ताकि उनके लिए बरकत हासिल करें। यह एक लम्बा-तड़ंगा बुत था जिसपर क़ुरबानियों का ख़ून लिथड़ा हुआ था। ऊँट उसे देखकर भड़क गए और हर तरफ़ भाग निकले। अरब अपने ऊँटों को इस तरह तितर-बितर होते देखकर ग़ुस्से में आ गया। बुत पर पत्थर मारता जाता था और कहता जाता था कि "ख़ुदा तेरा सत्यानाश करे। मैं आया था बरकत लेने के लिए और तूने मेरे रहे-सहे ऊँट भी भगा दिए।"

कई बुत ऐसे थे जिनकी असलियत के बारे में बहुत ही गन्दे-गन्दे क़िस्से मशहूर थे। मसलन 'असाफ़' और 'नाइला' जिनकी मूर्तियाँ 'सफ़ा' और 'मरवा' पर रखी हुई थीं। उनके बारे में मशहूर था कि ये दोनों अस्ल में एक औरत और एक मर्द थे जो काबा में ज़िना (व्यभिचार) कर बैठे थे और ख़ुदा ने उनको पत्थर बना दिया।

यह हक़ीक़त जिन माबूदों की हो, ज़ाहिर है कि उनकी कोई हक़ीक़ी इज़्ज़त तो इबादत करनेवालों के दिलों में नहीं हो सकती। इन अलग-अलग पहलुओं को निगाह में रखा जाए तो यह बात आसानी से समझ में आ जाती है कि ख़ालिस ख़ुदापरस्ती की एक गहरी क़द्र और इज़्ज़त तो दिलों में मौजूद थी, मगर एक तरफ़ जहालत भरी क़दामत-परस्ती (रूढ़िवादिता) ने इसको दबा रखा था और दूसरी तरफ़ क़ुरैश के पुरोहित उसके ख़िलाफ़ तास्सुबात भड़काते रहते थे; क्योंकि बुतों की अक़ीदत ख़त्म हो जाने से उनको डर था कि अरब में उनको जो मर्कज़ियत (केन्द्रीयता) हासिल है वह ख़त्म हो जाएगी और उनकी आमदनी में भी फ़र्क़ आ जाएगा। इन सहारों पर जो शिर्कवाला मज़हब क़ायम था, वह तौहीद की दावत के मुक़ाबले में किसी वक़ार (गरिमा) के साथ खड़ा नहीं हो सकता था। इसी लिए क़ुरआन ने ख़ुद मुशरिकों को मुख़ातब करके बिना झिझक कहा कि तुम्हारे समाज में मुहम्मद (सल्ल.) की पैरवी करनेवालों को जिन वजहों से बरतरी (श्रेष्ठता) हासिल है उनमें से एक सबसे अहम वजह उनका शिर्क से पाक होना और ख़ालिस अल्लाह की बन्दगी पर क़ायम हो जाना है। इस पहलू से मुसलमानों की बरतरी को ज़बान से मानने के लिए चाहे मुशरिक तैयार न हों, मगर दिलों में वे इसका वज़न ज़रूर महसूस करते थे।

يُّضٰعَفْ لَهُ الْعَذَابُ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ وَيَخْلُدْ فِيْهٖ
مُهَانًا ﴿٦٩﴾ اِلَّا مَنْ تَابَ وَاٰمَنَ وَعَمِلَ عَمَلًا صَالِحًا

(69) क़ियामत के दिन उसे बढ़ाकर अज़ाब दिया जाएगा[85] और उसी में वह हमेशा रुसवाई के साथ पड़ा रहेगा। (70) यह और बात है कि कोई (इन गुनाहों के बाद) तौबा कर चुका हो और ईमान लाकर अच्छे काम करने लगा हो।[86]

85. इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि अज़ाब का सिलसिला टूटने न पाएगा, बल्कि एक के बाद दूसरा अज़ाब जारी रहेगा। दूसरा यह कि जो शख़्स कुफ़्र या शिर्क या नास्तिकता और ख़ुदा के इनकार के साथ क़त्ल और ज़िना (बदकारी) और दूसरे गुनाहों का बोझ लिए हुए ख़ुदा के यहाँ जाएगा उसको बग़ावत की सज़ा अलग मिलेगी और एक-एक जुर्म की सज़ा अलग-अलग। उसका हर छोटा-बड़ा क़ुसूर हिसाब में आएगा। कोई एक ख़ता भी माफ़ न होगी। क़त्ल की सज़ा एक नहीं होगी, बल्कि हर क़त्ल की अलग सज़ा उसको भुगतनी होगी। ज़िना की सज़ा भी एक नहीं होगी, बल्कि जितनी बार उसने यह जुर्म किया है उसकी अलग-अलग सज़ा पाएगा। और यही हाल दूसरे तमाम जुर्मों और गुनाहों के मामले में भी होगा।

86. यह ख़ुशख़बरी है उन लोगों के लिए जिनकी ज़िन्दगी पहले तरह-तरह के जुर्मों से भरी रही हो और अब वे अपने सुधार के लिए तैयार हों। यही आम माफ़ी (General Amnesty) का एलान था जिसने उस बिगड़े हुए समाज के लाखों लोगों को सहारा देकर हमेशा के बिगाड़ से बचा लिया। इसी ने उनको उम्मीद की रौशनी दिखाई और हालत के सुधार पर आमादा किया। वरना अगर उनसे यह कहा जाता कि जो गुनाह तुम कर चुके हो उनकी सज़ा से अब तुम किसी तरह नहीं बच सकते, तो यह उन्हें मायूस करके हमेशा के लिए बुराई के भँवर में फँसा देता और कभी उनका सुधार न हो पाता। मुजरिम इनसान को सिर्फ़ माफ़ी की उम्मीद ही जुर्म के चक्कर से निकाल सकती है। मायूस होकर वह इबलीस (शैतान) बन जाता है।

तौबा की इस नेमत ने अरब के बिगड़े हुए लोगों को किस तरह संभाला, इसका अन्दाज़ा उन बहुत-से वाक़िआत से होता है जो नबी (सल्ल॰) के ज़माने में पेश आए। मिसाल के तौर पर एक वाक़िआ पेश है जिसे इब्ने-जरीर और तबरानी ने रिवायत किया है। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) कहते हैं कि एक दिन मस्जिदे-नबवी से इशा की नमाज़ पढ़कर पलटा तो देखा कि एक औरत मेरे दरवाज़े पर खड़ी है। मैं उसको सलाम करके अपने कमरे में चला गया और दरवाज़ा बन्द करके नफ़्ल नमाज़ें पढ़ने लगा। कुछ देर के बाद उसने दरवाज़ा खटखटाया। मैंने उठकर दरवाज़ा खोला और पूछा कि क्या चाहती है? वह कहने लगी, "मैं आपसे एक सवाल करने आई हूँ। मुझसे ज़िना का जुर्म हुआ। नाजाइज़ गर्भ हुआ। बच्चा पैदा हुआ तो मैंने उसे मार डाला। अब मैं यह मालूम करना चाहती हूँ कि मेरा गुनाह माफ़ होने की भी कोई सूरत है?" मैंने कहा, "हरगिज़ नहीं!" वह बड़े पछतावे के साथ आहें भरती हुई वापस चली गई और कहने

فَاُولٰٓئِكَ يُبَدِّلُ اللّٰهُ سَيِّاٰتِهِمْ حَسَنٰتٍ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا

ऐसे लोगों की बुराइयों को अल्लाह भलाइयों से बदल देगा।[87] और वह बड़ा माफ़

लगी कि "अफ़सोस, यह ख़ूबसूरती आग के लिए पैदा हुई थी।" सुबह नबी (सल्ल.) के पीछे जब मैं नमाज़ पढ़ चुका तो मैंने आप (सल्ल.) को रात का क़िस्सा सुनाया। आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "बड़ा ग़लत जवाब दिया ऐ अबू-हुरैरा तुमने, क्या यह आयत क़ुरआन में तुमने नहीं पढ़ी?—जो अल्लाह के सिवा किसी और माबूद को नहीं पुकारते, अल्लाह की हराम की हुई किसी जान को नाहक़ क़त्ल नहीं करते और न ज़िना (व्यभिचार) करते हैं – यह काम जो कोई करे वह अपने गुनाह का बदला पाएगा, क़ियामत के दिन उसको दोहरा अज़ाब दिया जाएगा और इसी में वह हमेशा ज़िल्लत (अपमान) के साथ पड़ा रहेगा, सिवाय इसके कि कोई (इन गुनाहों के बाद) तौबा कर चुका हो और ईमान लाकर नेक अमल करने लगा हो।" (सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयतें—68-70)— नबी (सल्ल.) का यह जवाब सुनकर मैं निकला और उस औरत को तलाश करना शुरू किया। रात को इशा ही के वक़्त वह मिली। मैंने उसे ख़ुशख़बरी दी और बताया कि नबी (सल्ल.) ने तेरे सवाल का यह जवाब दिया है। वह सुनते ही सजदे में गिर गई और कहने लगी कि शुक्र है उस अल्लाह पाक का जिसने मेरे लिए माफ़ी का दरवाज़ा खोला। फिर उसने गुनाह से तौबा की और अपनी लौंडी को उसके बेटे समेत आज़ाद कर दिया।

इससे मिलता-जुलता वाक़िआ हदीसों में एक बूढ़े का आया है जिसने आकर नबी (सल्ल.) से पूछा था कि "ऐ अल्लाह के रसूल! सारी ज़िन्दगी गुनाहों में गुज़री है। कोई गुनाह ऐसा नहीं जो मैं न कर चुका हूँ। अपने गुनाह ज़मीन पर बसनेवाले तमाम लोगों पर भी बाँट दूँ तो सबको ले डूबें। क्या अब भी मेरी माफ़ी की कोई सूरत है?" आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "क्या तूने इस्लाम क़बूल कर लिया है?" उसने कहा, "मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं।" फ़रमाया, "जा, अल्लाह माफ़ करनेवाला और तेरी बुराइयों को भलाई से बदल देनेवाला है।" उसने पूछा, "मेरे सारे जुर्म और क़ुसूर?" फ़रमाया, "हाँ, तेरे सारे जुर्म और क़ुसूर।" (इब्ने-कसीर, इब्ने-अबी-हातिम के हवाले से)

87. इसके दो मतलब हैं। एक यह कि जब वे तौबा कर लेंगे तो कुफ़्र की ज़िन्दगी में जो बुरे काम वे पहले किया करते थे, उनकी जगह अब फ़रमाँबरदारी और ईमान की ज़िन्दगी में अल्लाह तआला की मेहरबानी से नेक और भले काम करने लगेंगे और तमाम बुराइयों की जगह भलाइयाँ ले लेंगी। दूसरा यह कि तौबा के नतीजे में सिर्फ़ इतना ही न होगा कि उनके आमालनामे से वे तमाम क़ुसूर काट दिए जाएँगे जो उन्होंने कुफ़्र और गुनाह की ज़िन्दगी में किए थे, बल्कि उनकी जगह हर एक के आमालनामे में यह नेकी लिख दी जाएगी कि यह वह बन्दा है जिसने ये ख़ुदा से बग़ावत और नाफ़रमानी को छोड़कर फ़रमाँबरदारी अपना ली। फिर जितनी बार भी वह अपनी पहले की ज़िन्दगी के बुरे कामों को याद करके शर्मिन्दा हुआ होगा और उसने अपने ख़ुदा से माफ़ी माँगी होगी, उसके हिसाब में उतनी ही नेकियाँ लिख दी

رَّحِيْمًا ۞ وَمَنْ تَابَ وَعَمِلَ صَالِحًا فَاِنَّهٗ يَتُوْبُ اِلَى اللّٰهِ
مَتَابًا ۞ وَالَّذِيْنَ لَا يَشْهَدُوْنَ الزُّوْرَ ۙ وَاِذَا مَرُّوْا بِاللَّغْوِ

करनेवाला और रहम करनेवाला है। (71) जो शख़्स तौबा करके भला रवैया अपनाता है वह तो अल्लाह की तरफ़ पलट आता है जैसाकि पलटने का हक़ है।[88]— (72) (और रहमान के बन्दे वे हैं) जो झूठ के गवाह नहीं बनते[89] और किसी लग़्व (बेकार) चीज़ पर

जाएँगी, क्योंकि भूल पर शर्मसार होना और माफ़ी माँगना अपने आपमें ख़ुद एक नेकी है। इस तरह उसके आमालनामे में तमाम पिछली बुराइयों की जगह भलाइयाँ ले लेंगी और उसका अंजाम सिर्फ़ सज़ा से बच जाने तक ही महदूद न रहेगा, बल्कि वह उलटा इनामों से नवाज़ा जाएगा।

88. यानी फ़ितरत के एतिबार से भी बन्दे के लिए असली लौटने की जगह उसी की बारगाह है और अख़लाक़ी हैसियत से भी वही एक बारगाह है जिसकी तरफ़ उसे पलटना चाहिए और नतीजे के एतिबार से भी उस बारगाह की तरफ़ पलटना फ़ायदेमन्द है, वरना कोई दूसरी जगह ऐसी नहीं है जिधर पलटकर वह सज़ा से बच सके या सवाब पा सके। इसके अलावा इसका मतलब यह भी है कि वह पलटकर एक ऐसी बारगाह की तरफ़ जाता है जो वाक़ई है ही पलटने के क़ाबिल जगह, बेहतरीन बारगाह, जहाँ से तमाम भलाइयाँ मिलती हैं, जहाँ से क़ुसूरों पर शर्मसार होनेवाले धुतकारे नहीं जाते, बल्कि माफ़ी और इनाम से नवाज़े जाते हैं, जहाँ माफ़ी माँगनेवाले के जुर्म नहीं गिने जाते, बल्कि यह देखा जाता है कि उसने तौबा करके अपना सुधार कितना कर लिया, जहाँ ग़ुलाम को वह मालिक मिलता है जो इन्तिक़ाम पर जला-भुना नहीं बैठा है, बल्कि अपने हर शर्मसार ग़ुलाम के लिए रहमत का दामन खोले हुए है।

89. इसके भी दो मतलब हैं। एक यह कि वे किसी झूठी बात की गवाही नहीं देते और किसी ऐसी चीज़ को सच और हक़ीक़त नहीं ठहराते जिसके हक़ीक़त होने का उन्हें इल्म न हो, या जिसके हक़ीक़त के ख़िलाफ़ होने का उन्हें इत्मीनान हो। दूसरा यह कि वे झूठ को नहीं देखते, उसके तमाशाई नहीं बनते, उसको देखने का इरादा नहीं करते। इस दूसरे मतलब के एतिबार से 'झूठ' का लफ़्ज़ बातिल और बुराई के मानी में है। इनसान जिस बुराई की तरफ़ भी जाता है, लज़्ज़त और लुभावनेपन या ज़ाहिरी फ़ायदे के उस झूठे मुलम्मे (चमक-दमक) की वजह से जाता है जो शैतान ने उसपर चढ़ा रखा है। यह मुलम्मा उतर जाए तो हर बुराई सरासर खोट ही खोट है, जिसपर इनसान कभी नहीं रीझ सकता। लिहाज़ा हर बातिल, हर गुनाह और हर बुराई इस लिहाज़ से झूठ है कि वह अपनी झूठी चमक-दमक की वजह ही से अपनी तरफ़ खींचती है। ईमानवाला चूँकि हक़ को अच्छी तरह पहचान लेता है, इसलिए वह इस झूठ को हर रूप में पहचान जाता है, चाहे वह कैसी ही दिलफ़रेब दलीलों, या नज़रफ़रेब आर्ट, या कानों को लुभानेवाली आवाज़ों का रूप लेकर आए।

مَرُّوْا كِرَامًا ﴿٧٢﴾ وَالَّذِيْنَ اِذَا ذُكِّرُوْا بِاٰيٰتِ رَبِّهِمْ لَمْ يَخِرُّوْا
عَلَيْهَا صُمًّا وَّعُمْيَانًا ﴿٧٣﴾ وَالَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَا هَبْ لَنَا
مِنْ اَزْوَاجِنَا وَذُرِّيّٰتِنَا قُرَّةَ اَعْيُنٍ وَّاجْعَلْنَا لِلْمُتَّقِيْنَ

उनका गुज़र हो जाए तो शरीफ़ आदमियों की तरह गुज़र जाते हैं।[90] (73) जिन्हें अगर उनके रब की आयतें सुनाकर नसीहत की जाती है तो वे उसपर अंधे और बहरे बनकर नहीं रह जाते।[91] (74) जो दुआएँ माँगा करते हैं, "ऐ हमारे रब, हमें अपनी बीवियों और अपनी औलाद से आँखों की ठण्डक दे[92] और हमको परहेज़गारों का

90. 'लग़्व' का लफ़्ज़ उस 'झूठ' पर भी हावी है जिसकी तशरीह ऊपर की जा चुकी है और इसके साथ तमाम फ़ुज़ूल और बेमतलब और बेफ़ायदा बातें और काम भी इसके मानी में शामिल हैं। अल्लाह के नेक बन्दों की ख़ासियत यह है कि वे जान-बूझकर इस तरह की चीज़ें देखने या सुनने या उनमें हिस्सा लेने के लिए नहीं जाते और अगर कभी उनके रास्ते में ऐसी कोई चीज़ आ जाए तो एक उचटती नज़र तक डाले बिना उसपर से इस तरह गुज़र जाते हैं जैसे एक सफ़ाई-पसन्द आदमी गन्दगी के ढेर से गुज़र जाता है। गन्दगी और बदबू से दिलचस्पी एक बुरा ज़ौक़ रखनेवाला और गन्दा आदमी तो ले सकता है मगर एक अच्छा ज़ौक़ रखनेवाला और तहज़ीबयाफ़्ता इनसान मजबूरी के बिना उसके पास से भी गुज़रना गवारा नहीं कर सकता, कहाँ यह कि वह बदबू से फ़ायदा उठाने के लिए एक साँस भी वहाँ ले। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, हाशिया-4)

91. अस्ल अरबी में अलफ़ाज़ हैं, "लम यख़िर-रू अलैहा सुम्मवँ-व उमयाना" जिनका लफ़्ज़ी तर्जमा यह है, "वे उनपर अंधे-बहरे बनकर नहीं गिरते।" लेकिन यहाँ 'गिरने' का लफ़्ज़ अपने लफ़्ज़ी मानी के लिए नहीं बल्कि मुहावरे के तौर पर इस्तेमाल हुआ है। जैसे हम उर्दू/हिन्दी में कहते हैं "जिहाद का हुक्म सुनकर बैठे रह गए।" इसमें बैठे रहने का लफ़्ज़ अपने लफ़्ज़ी मानी में नहीं, बल्कि जिहाद के लिए हरकत न करने के मानी में इस्तेमाल हुआ है। तो आयत का मतलब यह है कि वे ऐसे लोग नहीं हैं जो अल्लाह की आयतें सुनकर टस-से-मस न हों, बल्कि वे उनका गहरा असर क़बूल करते हैं। जो हिदायत उन आयतों में आई हो उसकी पैरवी करते हैं, जिस चीज़ को फ़र्ज़ ठहराया गया हो उसे पूरा करते हैं, जिस चीज़ की बुराई बयान की गई हो उससे रुक जाते हैं और जिस अज़ाब से डराया गया हो उसके बारे में सोचने तक से काँप उठते हैं।

92. यानी उनको ईमान और अच्छे काम करने की तौफ़ीक़ (ख़ुशनसीबी) दे और उनके अन्दर पाकीज़ा अख़लाक़ पैदा कर दे; क्योंकि एक ईमानवाले को बीवी-बच्चों के हुस्नो-जमाल से नहीं, बल्कि उनकी अच्छी और नेक आदतों से ठण्डक हासिल होती है। उसके लिए इससे बढ़कर कोई चीज़ तकलीफ़देह नहीं हो सकती कि जो दुनिया में उसको सबसे ज़्यादा प्यारे हैं उन्हें जहन्नम

إِمَامًا ۞ أُولَٰئِكَ يُجْزَوْنَ الْغُرْفَةَ بِمَا صَبَرُوا وَيُلَقَّوْنَ

इमाम बना।''[93] —(75) ये हैं वे लोग जो अपने सब्र[94] का फल बुलन्द मंज़िल की शक्ल

का ईंधन बनने के लिए तैयार होते देखे। ऐसी हालत में तो बीवी की ख़ूबसूरती और बच्चों की जवानी और क़ाबिलियत उसके लिए और भी ज़्यादा रूह को तकलीफ़ देनेवाली होगी; क्योंकि वह हर वक़्त इस रंज में मुब्तला रहेगा कि ये सब अपनी इन ख़ूबियों के बावजूद अल्लाह के अज़ाब में गिरफ़्तार होनेवाले हैं।

यहाँ ख़ास तौर पर यह बात निगाह में रहनी चाहिए कि जिस वक़्त ये आयतें उतरी हैं वह वक़्त वह था जबकि मक्का के मुसलमानों में से कोई एक भी ऐसा न था जिसके बहुत क़रीबी और प्यारे रिश्तेदार कुफ़्र और जाहिलियत में मुब्तला न हों। कोई मर्द ईमान ले आया था तो उसकी बीवी अभी ग़ैर-मुस्लिम थी। कोई औरत ईमान ले आई थी तो उसका शौहर अभी ईमान से दूर था। कोई नौजवान ईमान ले आया था तो उसके माँ-बाप और भाई-बहन, सब-के-सब कुफ़्र में पड़े थे और कोई बाप ईमान ले आया था तो उसके अपने जवान-जवान बच्चे कुफ़्र पर क़ायम थे। इस हालत में हर मुसलमान एक सख़्त रूहानी तकलीफ़ में मुब्तला था और उसके दिल से वह दुआ निकलती थी जिसको बेहतरीन तरीक़े से इस आयत में बयान किया गया है। 'आँखों की ठण्डक' ने इस कैफ़ियत की तस्वीर खींच दी है कि अपने प्यारों को कुफ़्र और जाहिलियत में मुब्तला देखकर एक आदमी को ऐसी तकलीफ़ हो रही है जैसे उसकी आँखें दुखने की वजह से उबल आई हों और खटक से सूइयाँ-सी चुभ रही हों। बात के इस सिलसिले में उनकी इस कैफ़ियत को अस्ल में यह बताने के लिए बयान किया गया है कि वे जिस दीन पर ईमान लाए हैं पूरे ख़ुलूस (निष्ठा) के साथ लाए हैं। उनकी हालत उन लोगों की-सी नहीं है जिनके ख़ानदान के लोग अलग-अलग मज़हबों और पार्टियों में शामिल रहते हैं और सब मुत्मइन रहते हैं कि चलो, हर बैंक में हमारा कुछ-न-कुछ सरमाया मौजूद है।

93. यानी हम तक़्वा (परहेज़गारी) और ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी में सबसे बढ़ जाएँ, भलाई और नेकी में सबसे आगे निकल जाएँ, सिर्फ़ नेक ही न हों, बल्कि नेक लोगों के पेशवा हों और हमारी बदौलत दुनिया-भर में नेकी फैले। इस चीज़ का ज़िक्र भी यहाँ अस्ल में यह बताने के लिए किया गया है कि ये वे लोग हैं जो माल-दौलत और शानो-शौकत में नहीं, बल्कि नेकी और परहेज़गारी में एक-दूसरे से बढ़ जाने की कोशिश करते हैं। मगर हमारे ज़माने में अल्लाह के कुछ बन्दे ऐसे हैं जिन्होंने इस आयत को भी इमामत की उम्मीदवारी और रियासत की तलब के जाइज़ होने की दलील के तौर पर इस्तेमाल किया है। उनके नज़दीक आयत का मतलब यह है कि ''या अल्लाह परहेज़गार लोगों को हमारी प्रजा और हमको उनका हाकिम बना दे।'' इस समझदारी की दाद 'उम्मीदवारों' के सिवा और कौन दे सकता है।

94. सब्र का लफ़्ज़ यहाँ अपने तमाम मानी के साथ इस्तेमाल हुआ है। हक़ (सत्य) के दुश्मनों के ज़ुल्मों को मर्दानगी के साथ बरदाश्त करना। दीने-हक़ (इस्लाम) को क़ायम और सरबुलन्द करने की जिद्दो-जुहद में हर तरह की मुसीबतों और तकलीफ़ों को सह जाना। हर डर और लालच के

فِيهَا تَحِيَّةً وَّسَلٰمًا ﴿٧٥﴾ خٰلِدِينَ فِيهَا ۚ حَسُنَتْ مُسْتَقَرًّا
وَّمُقَامًا ﴿٧٦﴾ قُلْ مَا يَعْبَؤُا بِكُمْ رَبِّي لَوْلَا دُعَآؤُكُمْ ۚ
فَقَدْ كَذَّبْتُمْ فَسَوْفَ يَكُونُ لِزَامًا ﴿٧٧﴾

में पाएँगे।[95] आदाब और सलाम से उनका इस्तिक़बाल (स्वागत) होगा। (76) वे हमेशा-हमेशा वहाँ रहेंगे। क्या ही अच्छा है वह ठिकाना और वह मक़ाम।

(77) ऐ नबी, लोगों से कहो, ''मेरे रब को तुम्हारी क्या ज़रूरत पड़ी है अगर तुम उसको न पुकारो।[96] अब कि तुमने झुठला दिया है, जल्द ही वह सज़ा पाओगे कि जान छुड़ानी मुश्किल होगी।''

मुक़ाबले में सीधे रास्ते पर जमे रहना। शैतान की तमाम उकसाहटों और मन की सारी ख़ाहिशों के ख़िलाफ़ फ़र्ज़ को पूरा करना। हराम से परहेज़ करना और अल्लाह की क़ायम की हुई हदों पर क़ायम रहना। गुनाह के सारे मज़ों और फ़ायदों को ठुकरा देना और नेकी और सच्चाई के हर नुक़सान और उसकी बदौलत हासिल होनेवाली हर महरूमी को बरदाश्त कर जाना। ग़रज़ इस एक लफ़्ज़ के अन्दर दीन और दीनी रवैये और दीनी अख़लाक़ की एक दुनिया-की-दुनिया समोकर रख दी गई है।

95. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'गुरफ़ा' इस्तेमाल हुआ है जिसका मतलब ऊँची और बुलन्द इमारत है। इसका तर्जमा आम तौर पर 'बाला-ख़ाना' किया जाता है जिससे आदमी के ज़ेहन में किसी दो मंज़िला कोठे की-सी तस्वीर आ जाती है, हालाँकि हक़ीक़त यह है कि दुनिया में इनसान जो बड़ी-से-बड़ी और ऊँची-से-ऊँची इमारतें बनाता है, यहाँ तक कि ताजमहल और अमेरिका के 'गगन भेदी' (Sky-scrapers) तक जन्नत के उन महलों की सिर्फ़ एक भौंडी-सी नक़्ल हैं जिसका एक धुंधला-सा नक़्शा इनसान के लाशुऊर (अवचेतन) में महफ़ूज़ चला आता है।

96. यानी अगर तुम अल्लाह से दुआएँ न माँगो और उसकी इबादत न करो और अपनी ज़रूरतों के लिए उसको मदद के लिए न पुकारो, तो फिर तुम्हारा कोई वज़न भी अल्लाह तआला की निगाह में नहीं है, जिसकी वजह से वह मक्खी के पर के बराबर भी तुम्हारी परवाह करे। महज़ मख़लूक़ होने की हैसियत से तुममें और पत्थरों में कोई फ़र्क़ नहीं। तुमसे अल्लाह की कोई ज़रूरत अटकी हुई नहीं है कि तुम बन्दगी न करोगे तो उसका कोई काम रुका रह जाएगा। उसके ध्यान को जो चीज़ तुम्हारी तरफ़ मोड़ती है वह तुम्हारा उसकी तरफ़ हाथ फैलाना और उससे दुआएँ माँगना ही है। यह काम न करोगे तो कूड़े-करकट की तरह फेंक दिए जाओगे।

☆☆☆

26. अश-शुअरा

परिचय

नाम

आयत-224, ''वश-शुअराउ यत्तबिउहुमुल-ग़ावून'' (रहे शाइर तो उनके पीछे बहके हुए लोग चला करते हैं) से लिया गया है।

उतरने का ज़माना

मज़मून और बयान के अन्दाज़ से महसूस होता है और रिवायतें इसकी ताईद करती हैं कि इस सूरा के उतरने का ज़माना मक्का के बीच का दौर है। इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) का बयान है कि पहले सूरा-20 ता-हा उतरी, फिर सूरा-56 वाक़िआ और उसके बाद सूरा-26 शुअरा (रूहुल-मआनी, हिस्सा-19, पेज-64) और सूरा-20 ता-हा के बारे में यह मालूम है कि वह हज़रत उमर (रज़ि॰) के इस्लाम क़बूल करने से पहले उतर चुकी थी।

मौज़ू (विषय) और बहसें

तक़रीर का पसमंज़र यह है कि मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ नबी (सल्ल॰) की तबलीग़ और नसीहतों का मुक़ाबला लगातार मुख़ालिफ़त और इनकार से कर रहे थे और इसके लिए तरह-तरह के बहाने तराशे चले जाते थे। कभी कहते कि तुमने हमें कोई निशानी तो दिखाई ही नहीं, फिर हमें कैसे यक़ीन आए कि तुम नबी हो। कभी आप (सल्ल॰) को शाइर और काहिन बताकर आप (सल्ल॰) की तालीम और नसीहत को बातों में उड़ा देने की कोशिश करते और कभी यह कहकर आप (सल्ल॰) के मिशन की अहमियत को कम करने की कोशिश करते कि इनके पैरोकार या तो कुछ नादान नौजवान हैं, या फिर हमारे समाज के निचले तबक़े के लोग, हालाँकि अगर इस तालीम में कोई जान होती तो क़ौम के इज़्ज़तदार और बड़े लोग इसको क़बूल करते। नबी (सल्ल॰) उन लोगों को अक़्ली दलीलों के साथ उनके अक़ीदों की ग़लती और तौहीद (एकेश्वरवाद) और आख़िरत की सच्चाई समझाने की कोशिश करते-करते थके जाते थे,

मगर ये हठधर्मी की नित नई शक्लें अपनाते न थकते थे। यही चीज़ नबी (सल्ल.) के लिए दिली तकलीफ़ बनी हुई थी और इस ग़म में आप (सल्ल.) की जान घुली जाती थी।

इन हालात में यह सूरत उतरी। बात की शुरुआत इस तरह होती है कि तुम इनके पीछे अपनी जान क्यों घुलाते हो? इनके ईमान न लाने की वजह यह नहीं है कि इन्होंने कोई निशानी नहीं देखी है, बल्कि इसकी वजह यह है कि ये हठधर्म हैं, समझाने से नहीं मानना चाहते, कोई ऐसी निशानी चाहते हैं जो ज़बरदस्ती उनकी गर्दनें झुका दे, और वह निशानी अपने वक़्त पर जब आ जाएगी तो इन्हें ख़ुद मालूम हो जाएगा कि जो बात इन्हें समझाई जा रही थी वह कैसी सच्ची थी। इस शुरुआती बात के बाद आयत-191 तक जो बात लगातार बयान हुई है वह यह है कि सच के तलबगार लोगों के लिए तो ख़ुदा की ज़मीन पर हर तरफ़ निशानियाँ-ही-निशानियाँ फैली हुई हैं जिन्हें देखकर वे हक़ीक़त को पहचान सकते हैं, लेकिन हठधर्म लोग कभी किसी चीज़ को देखकर भी ईमान नहीं लाए हैं, न ज़मीन और आसमान में फैली हुई निशानियाँ देखकर और न नबियों के मोजिज़े (चमत्कार) देखकर। वे तो हमेशा उस वक़्त तक अपनी गुमराही पर जमे रहे हैं जबतक ख़ुदा के अज़ाब ने आकर उनको पकड़ में नहीं ले लिया है। इसी के पेशेनज़र इतिहास की सात क़ौमों के हालात पेश किए गए हैं, जिन्होंने उसी हठधर्मी से काम लिया था जिससे मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ काम ले रहे थे और इस तारीख़ी (ऐतिहासिक) बयान के सिलसिले में कुछ बातें ज़ेहन में बिठाई गई हैं—

एक यह कि निशानियाँ दो तरह की हैं। एक तरह की निशानियाँ वे हैं जो ख़ुदा की ज़मीन पर हर तरफ़ फैली हुई हैं, जिन्हें देखकर अक़्ल रखनेवाला हर आदमी पता लगा सकता है कि नबी जिस चीज़ की तरफ़ बुला रहा है वह हक़ है या नहीं। दूसरी तरह की निशानियाँ वे हैं जो फ़िरऔन और उसकी क़ौम ने देखीं, नूह (अलैहि.) की क़ौम ने देखीं, आद और समूद ने देखीं, लूत (अलैहि.) की क़ौम और ऐकावालों ने देखीं। अब फ़ैसला करना ख़ुद इस्लाम-मुख़ालिफ़ों का अपना काम है कि वे किस तरह की निशानी देखना चाहते हैं।

दूसरी यह कि हर ज़माने में इस्लाम को न माननेवालों की ज़ेहनियत एक-सी रही है। उनकी हुज्जतें (कुतर्क) एक ही तरह की थीं। उनके एतिराज़ एक जैसे थे। ईमान न लाने के लिए उनके हीले-बहाने एक जैसे थे और आख़िरकार उनका अंजाम भी एक जैसा ही रहा। इसके बरख़िलाफ़ हर ज़माने में नबियों और पैग़म्बरों की तालीम एक थी। उनकी सीरत और अख़लाक़ का रंग एक था। अपने मुख़ालिफ़ों के मुक़ाबले में उनकी दलील

और हुज्जत का अन्दाज़ एक था और उन सबके साथ अल्लाह की रहमत का मामला भी एक था। ये दोनों नमूने इतिहास में मौजूद हैं। इस्लाम को न माननेवाले ख़ुद देख सकते हैं कि उनकी अपनी तस्वीर किस नमूने से मिलती है और मुहम्मद (सल्ल॰) की हस्ती में किस नमूने की निशानियाँ पाई जाती हैं।

तीसरी बात जो बार-बार दोहराई गई है वह यह है कि ख़ुदा ज़बरदस्त, क़ुदरत और ताक़त रखनेवाला भी है और रहम करनेवाला भी। इतिहास में उसके क़हर (प्रकोप) की मिसालें भी मौजूद हैं और रहमत (दया) की भी। अब यह बात लोगों को ख़ुद ही तय करनी चाहिए कि वे अपने आपको इस रहम का हक़दार बनाते हैं या क़हर का।

आयत-192 से आख़िर तक की आयतों में इस बहस को समेटते हुए कहा गया है कि तुम लोग अगर निशानियाँ ही देखना चाहते हो तो आख़िर वह भयानक निशानियाँ देखने पर क्यों अड़े हो जो तबाह हो चुकी क़ौमों ने देखी हैं। इस क़ुरआन को देखो जो तुम्हारी अपनी ज़बान में है। मुहम्मद (सल्ल॰) को देखो। उनके साथियों को देखो। क्या यह कलाम (वाणी) किसी शैतान या जिन्न का कलाम हो सकता है? क्या इस कलाम का पेश करनेवाला तुम्हें काहिन नज़र आता है? क्या मुहम्मद और उनके साथी तुम्हें वैसे ही नज़र आते हैं जैसे शाइर और उनके जैसे लोग हुआ करते हैं? ज़िद और हठधर्मी की बात दूसरी है, मगर अपने दिलों को टटोलकर देखो कि वे क्या गवाहियाँ देते हैं। अगर दिलों में तुम ख़ुद जानते हो कि कहानत और शाइरी से उसका कोई दूर का ताल्लुक़ भी नहीं है तो फिर यह भी जान लो कि तुम ज़ुल्म कर रहे हो और ज़ालिमों का-सा अंजाम देखकर रहोगे।

☆☆☆

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

☆☆☆

۲٦ سُوْرَةُ الشُّعَرَاۤءِ مَكِّيَّةٌ ٤٧ آيَاتُهَا ٢٢٧ رُكُوْعَاتُهَا ١١

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

طٰسٓمٓ ① تِلْكَ اٰيٰتُ الْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ ② لَعَلَّكَ بَاخِعٌ نَّفْسَكَ اَلَّا

26. अश-शुअरा

(मक्का में उतरी--आयतें-227)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) ता-सीम-मीम। (2) ये खुली किताब की आयतें हैं।[1]

(3) ऐ नबी, शायद तुम इस ग़म में अपनी जान खो दोगे कि ये लोग ईमान नहीं

1. यानी ये आयतें, जो इस सूरा में पेश की जा रही हैं, उस किताब की आयतें हैं जो अपना मंशा और मक़सद साफ़-साफ़ खोलकर बयान करती हैं, जिसे पढ़कर या सुनकर हर शख़्स समझ सकता है कि वह किस चीज़ की तरफ़ बुलाती है, किस चीज़ से रोकती है, किसे हक़ (सत्य) कहती है और किसे बातिल (असत्य) ठहराती है। मानना या न मानना अलग बात है, मगर कोई शख़्स यह बहाना कभी नहीं बना सकता कि इस किताब की तालीम उसकी समझ में नहीं आई और वह इससे यह मालूम ही न कर सका कि वह उसको क्या चीज़ छोड़ने और क्या अपनाने की दावत दे रही है।

अस्ल अरबी में क़ुरआन को 'अल-किताबुल-मुबीन' कहा गया है। इसका एक दूसरा मतलब भी है, और वह यह कि इसका अल्लाह की किताब होना बिलकुल खुली और वाज़ेह (स्पष्ट) बात है। इसकी ज़बान, इसका बयान, इसके मज़ामीन (विषय), इसकी पेश की हुई हक़ीक़तें और इसके उतरने के हालात, सब-के-सब साफ़-साफ़ दलील दे रहे हैं कि यह सारे जहानों के ख़ुदा ही की किताब है। इस लिहाज़ से हर जुमला, जो इस किताब में आया है, एक निशानी और एक मोजिज़ा (आयत) है। कोई शख़्स अक़्ल और समझ से काम ले तो उसे मुहम्मद (सल्ल०) की पैग़म्बरी का यक़ीन करने के लिए किसी और निशानी की ज़रूरत नहीं, खुली किताब की यही आयतें (निशानियाँ) उसे मुत्मइन करने के लिए काफ़ी हैं।

यह छोटा-सा शुरुआती जुमला अपने दोनों मानी के लिहाज़ से उस बात के साथ पूरी तरह मेल खाता है जो आगे इस सूरा में बयान हुई है। मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ नबी (सल्ल०) से मोजिज़ा माँगते थे, ताकि उस निशानी को देखकर उन्हें इत्मीनान हो कि वाक़ई आप (सल्ल०) यह पैग़ाम ख़ुदा की तरफ़ से लाए हैं। फ़रमाया गया कि अगर हक़ीक़त में किसी को ईमान लाने के लिए निशानी की तलब है तो खुली किताब की ये आयतें मौजूद हैं। इसी तरह इस्लाम

يَكُوْنُوْا مُؤْمِنِيْنَ۝٣ اِنْ نَّشَاْ نُنَزِّلْ عَلَيْهِمْ مِّنَ السَّمَآءِ اٰيَةً فَظَلَّتْ
اَعْنَاقُهُمْ لَهَا خٰضِعِيْنَ۝٤ وَمَا يَاْتِيْهِمْ مِّنْ ذِكْرٍ مِّنَ الرَّحْمٰنِ

लाते।[2] (4) हम चाहें तो आसमान से ऐसी निशानी उतार सकते हैं कि इनकी गर्दनें उसके आगे झुक जाएँ।[3] (5) इन लोगों के पास रहमान (दयावान ख़ुदा) की तरफ़ से जो

को न माननेवाले नबी (सल्ल॰) पर इलज़ाम रखते थे कि आप शाइर या काहिन हैं। फ़रमाया गया कि यह किताब कोई पहेली तो नहीं है। साफ़-साफ़ खोलकर अपनी तालीम पेश कर रही है। ख़ुद ही देख लो कि यह तालीम किसी शाइर या काहिन की हो सकती है?

2. नबी (सल्ल॰) की इस हालत का ज़िक्र क़ुरआन मजीद में अलग-अलग जगहों पर किया गया है। मसलन सूरा-18 कह्फ़ में फ़रमाया, "शायद तुम इनके पीछे ग़म के मारे अपनी जान खो देनेवाले हो अगर ये इस तालीम पर ईमान न लाए।" (आयत-6) और सूरा-35 फ़ातिर में कहा गया, "इन लोगों की हालत पर रंज और अफ़सोस में तुम्हारी जान न घुले।" (आयत-8)। इससे अन्दाज़ा होता है कि उस दौर में अपनी क़ौम की गुमराही, उसकी अख़लाक़ी गिरावट, उसकी हठधर्मी और उसके सुधार की हर कोशिश के मुक़ाबले में उसकी मुख़ालिफ़त और दुश्मनी का रंग देख-देखकर नबी (सल्ल॰) सालों अपने दिन-रात किस घुटन और दिल तोड़नेवाली हालत में गुज़ारते रहे हैं। अस्ल अरबी में जो अलफ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं यानी 'बाख़िउन- नफ़-स-क' इनका मतलब यह है कि तुम अपने आपको क़त्ल किए दे रहे हो।

3. यानी कोई ऐसी निशानी उतार देना जो इस्लाम के तमाम मुख़ालिफ़ों को ईमान और फ़रमाँबरदारी का रवैया अपनाने पर मजबूर कर दे, अल्लाह तआला के लिए कुछ भी मुश्किल नहीं है। अगर वह ऐसा नहीं करता तो इसकी वजह यह नहीं है कि यह काम उसकी क़ुदरत से बाहर है, बल्कि इसकी वजह यह है कि इस तरह का ज़बरदस्ती थोपा हुआ ईमान उसको नहीं चाहिए। वह चाहता है कि लोग अक़्ल और समझ से काम लेकर उन आयतों की मदद से हक़ को पहचानें जो अल्लाह की किताब में पेश की गई हैं, जो तमाम कायनात में हर तरफ़ फैली हुई हैं, जो ख़ुद उनके अपने वुजूद में पाई जाती हैं। फिर जब उनका दिल गवाही दे कि वाक़ई हक़ वही है जो ख़ुदा के पैग़म्बरों (अलैहि॰) ने पेश किया है और उसके ख़िलाफ़ जो अक़ीदे और तरीक़े चल रहे हैं वे बातिल हैं, तो जान-बूझकर बातिल को छोड़ दें और हक़ को अपना लें। यही अपनी मरज़ी से अपनाया हुआ ईमान और बातिल का छोड़ना और हक़ की पैरवी करना वह चीज़ है जो अल्लाह तआला इनसान से चाहता है। इसी लिए उसने इनसान को इरादे और इख़्तियार की आज़ादी दी है। इसी वजह से उसने इनसान को यह क़ुदरत दी है कि सही और ग़लत, जिस राह पर भी वह जाना चाहे जा सके। इसी वजह से उसने इनसान के अन्दर भलाई और बुराई दोनों के रुझानात रख दिए हैं, फ़ुजूर (नाफ़रमानी) और तक़वा (परहेज़गारी) की दोनों राहें उसके सामने खोल दी हैं, शैतान को बहकाने की आज़ादी दी है, पैग़म्बरी और वह्य और भलाई की तरफ़ बुलाने का सिलसिला सीधा रास्ता दिखाने के लिए क़ायम किया है, और

مُحۡدَثٍ اِلَّا كَانُوۡا عَنۡهُ مُعۡرِضِيۡنَ۝۵ فَقَدۡ كَذَّبُوۡا فَسَيَاۡتِيۡهِمۡ
اَنۡۢبٰٓـؤُا مَا كَانُوۡا بِهٖ يَسۡتَهۡزِءُوۡنَ۝۶ اَوَلَمۡ يَرَوۡا اِلَى الۡاَرۡضِ كَمۡ

नई नसीहत भी आती है ये उससे मुँह मोड़ लेते हैं। (6) अब जबकि ये झुठला चुके हैं, जल्द ही इनको इस चीज़ की हक़ीक़त (अलग-अलग तरीक़ों से) मालूम हो जाएगी जिसका ये मज़ाक़ उड़ाते रहे हैं।[4]

(7) और क्या इन्होंने कभी ज़मीन पर निगाह नहीं डाली कि हमने कितनी ज़्यादा

इनसान को रास्ते को चुनने के लिए सारी मुनासिब सलाहियतें देकर इस इम्तिहान के मक़ाम पर खड़ा कर दिया है कि वह ख़ुदा के इनकार और नाफ़रमानी का रास्ता अपनाता है या उसे मानने और उसकी फ़रमाँबरदारी का। इस इम्तिहान का सारा मक़सद ही ख़त्म हो जाए अगर अल्लाह कोई ऐसी तदबीर अपनाए जो इनसान को ईमान और ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी पर मजबूर कर देनेवाली हो। ज़ोर-ज़बरदस्तीवाला ईमान ही चाहिए होता तो निशानियाँ उतारकर मजबूर करने की क्या ज़रूरत थी, अल्लाह तआला इनसान को उसी फ़ितरत और साख़्त (स्वरूप) पर पैदा कर सकता था जिसमें कुफ़्र, नाफ़रमानी और बुराई का कोई इमकान ही न होता, बल्कि फ़रिश्तों की तरह इनसान भी पैदाइशी फ़रमाँबरदार होता। यही हक़ीक़त है जिसकी तरफ़ कई मौक़ों पर क़ुरआन में इशारा किया गया है। मसलन कहा गया, "अगर तुम्हारा रब चाहता तो ज़मीन के रहनवाले सब-के-सब लोग ईमान ले आते। अब क्या तुम लोगों को ईमान लाने पर मजबूर करोगे?" (सूरा-10 यूनुस, आयत-99) और, "अगर तेरा रब चाहता तो तमाम इनसानों को एक ही उम्मत बना सकता था। वे तो अलग-अलग राहों पर ही चलते रहेंगे (और गुमराहियों से) सिर्फ़ वही बचेंगे जिनपर तेरे रब की रहमत है। इसी लिए तो उसने उनको पैदा किया था।" (सूरा-11 हूद, आयत-119) और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए—तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-10 यूनुस, हाशिए—101-102; सूरा-11 हूद, हाशिया-116।

4. यानी जिन लोगों का हाल यह हो कि सही तरीक़े से उनको समझाने और सीधी राह दिखाने की जो कोशिश भी की जाए उसका मुक़ाबला बेरुख़ी और बेतवज्जोही से करें, उनका इलाज यह नहीं है कि उनके दिल में ज़बरदस्ती ईमान उतारने के लिए आसमान से निशानियाँ उतारी जाएँ, बल्कि ऐसे लोग इस बात के हक़दार हैं कि जब एक तरफ़ उन्हें समझाने का हक़ पूरा-पूरा अदा कर दिया जाए और दूसरी तरफ़ वे बेरुख़ी से गुज़रकर झुठलाने और साफ़-साफ़ झुठलाने पर, और इससे भी आगे बढ़कर हक़ीक़त का मज़ाक़ उड़ाने पर उतर आएँ, तो उनका बुरा अंजाम उन्हें दिखा दिया जाए। यह बुरा अंजाम इस शक्ल में उन्हें दिखाया जा सकता है कि दुनिया में वह हक़ उनकी आँखों के सामने उनके सारी रुकावटें डालने के बावजूद ग़ालिब (प्रभावी) आ जाए जिसका वे मज़ाक़ उड़ाते थे। इसकी शक्ल यह भी हो सकती है कि उनपर एक दर्दनाक अज़ाब टूट पड़े और वे तबाह-बरबाद करके रख दिए जाएँ और वह इस शक्ल में भी उनके सामने आ सकता है कि कुछ साल अपनी ग़लतफ़हमियों में मुब्तला रहकर वे मौत की न टल

اَنۡۢبَتۡنَا فِيۡهَا مِنۡ كُلِّ زَوۡجٍ كَرِيۡمٍ ۝٧ اِنَّ فِىۡ ذٰلِكَ لَاٰيَةً ‌ؕ وَمَا
كَانَ اَكۡثَرُهُمۡ مُّؤۡمِنِيۡنَ ۝٨ وَاِنَّ رَبَّكَ لَهُوَ الۡعَزِيۡزُ الرَّحِيۡمُ ۝٩

मिक़दार (मात्रा) में हर तरह की उम्दा वनस्पतियाँ उसमें पैदा की हैं? (8) यक़ीनन इसमें एक निशानी है,[5] मगर इनमें से ज़्यादातर माननेवाले नहीं। (9) और हक़ीक़त यह है कि तेरा रब ज़बरदस्त भी है और रहम करनेवाला भी।[6]

सकनेवाली मंज़िल से गुज़रें और आख़िरकार उनपर साबित हो जाए कि वह सरासर बातिल था जिसकी राह में उन्होंने अपनी ज़िन्दगी की तमाम पूंजी खपा दी और हक़ वही था जिसे ख़ुदा के पैग़म्बर (अलैहि॰) पेश करते थे और जिसे ये उम्र भर ठहाकों में उड़ाते रहे। इस बुरे अंजाम के सामने आने की चूंकि बहुत-सी शक्लें हैं और अलग-अलग लोगों के सामने वह अलग-अलग सूरतों से आ सकता है और आता रहा है, इसलिए आयत में 'नबा' (ख़बर) को जगह जमा (बहुवचन) लफ़्ज़ 'अंबा' (ख़बरें) कहा गया, यानी जिस चीज़ का ये मज़ाक़ उड़ा रहे हैं उसकी हक़ीक़त आख़िरकार बहुत-सी अलग-अलग शक्लों में उन्हें मालूम होगी।

5. यानी हक़ की खोज के लिए किसी को निशानी की ज़रूरत हो तो कहीं दूर जाने की ज़रूरत नहीं। आँखें खोलकर ज़रा इस ज़मीन ही के फलने-फूलने को देख ले, उसे मालूम हो जाएगा कि कायनात का निज़ाम (सृष्टि की व्यवस्था) की जो हक़ीक़त (तौहीद, एकेश्वरवाद) ख़ुदा के पैग़म्बर (अलैहि॰) पेश करते हैं वह सही है, या वे नज़रियात सही हैं जो शिर्क करनेवाले या ख़ुदा का इनकार करनेवाले बयान करते हैं। ज़मीन से उगनेवाली बेशुमार तरह-तरह की चीज़ें जिस बहुतायत से उग रही हैं, जिन माद्दों (तत्वों) और क़ुव्वतों की बदौलत उग रही हैं, जिन क़ानूनों के तहत उग रही हैं, फिर उनकी ख़ासियतों और ख़ूबियों में और बेशुमार जानदारों की अनगिनत ज़रूरतों में जो खुला तालमेल पाया जाता है, इन सारी चीज़ों को देखकर एक बेवक़ूफ़ ही इस नतीजे पर पहुँच सकता है कि यह सबकुछ एक हिकमतवाले (तत्वदर्शी) की हिकमत, किसी अलीम (सर्वज्ञानी) के इल्म, किसी क़ुदरतवाले और ताक़तवाले की क़ुदरत और किसी पैदा करनेवाले की स्कीम के बिना बस यूँ ही आपसे आप हो रहा है। या इन सारी स्कीमों को बनाने और चलानेवाला कोई एक ख़ुदा नहीं है, बल्कि बहुत-से ख़ुदाओं की तदबीर ने ज़मीन, सूरज और चाँद और हवा और पानी के बीच यह तालमेल और इन वसाइल (संसाधनों) से पैदा होनेवाले पेड़-पौधों और बेहद और बेहिसाब अलग-अलग तरह के जानदारों की ज़रूरतों के दरमियान यह तालमेल पैदा कर रखा है। अक़्ल रखनेवाला एक इनसान अगर वह किसी हठधर्मी और पेशगी तास्सुब में पड़ा हुआ नहीं है, इस मंज़र को देखकर बेइख़्तियार पुकार उठेगा कि यक़ीनन यह ख़ुदा होने और एक ख़ुदा के होने की खुली-खुली निशानियाँ हैं। इन निशानियों के होते हुए और किस मोजिज़े (चमत्कार) की ज़रूरत है जिसे देखे बिना आदमी को तौहीद (ख़ुदा के एक होने) की सच्चाई का यक़ीन न आ सकता हो?

6. यानी उसकी क़ुदरत तो ऐसी ज़बरदस्त है कि किसी को सज़ा देना चाहे तो पल भर में मिटाकर रख दे। मगर इसके बावजूद यह सरासर उसका रहम है कि सज़ा देने में जल्दी नहीं करता।

وَإِذْ نَادَىٰ رَبُّكَ مُوسَىٰٓ أَنِ ائْتِ الْقَوْمَ الظّٰلِمِينَ ﴿١٠﴾

(10) इन्हें उस वक़्त का क़िस्सा सुनाओ जबकि तुम्हारे रब ने मूसा को पुकारा,[7] "ज़ालिम

सालों और सदियों ढील देता है, सोचने-समझने और संभलने की मुहलत दिए जाता है, और उम्र-भर की नाफ़रमानियों को एक तौबा पर माफ़ कर देने के लिए तैयार रहता है।

7. ऊपर की छोटी-सी शुरुआती तक़रीर के बाद अब तारीख़ी (ऐतिहासिक) बयान का आग़ाज़ हो रहा है, जिसकी शुरुआत हज़रत मूसा (अलैहि॰) और फ़िरऔन के क़िस्से से की गई है। इसका मक़सद ख़ास तौर पर यह सबक़ देना है–

(i) यह कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) को जिन हालात का सामना हुआ था वे उन हालात के मुक़ाबले में कई गुना सख़्त थे जिनसे नबी (सल्ल॰) को जूझना पड़ रहा था। हज़रत मूसा (अलैहि॰) एक गुलाम क़ौम के आदमी थे जो फ़िरऔन और उसकी क़ौम से बुरी तरह दबी हुई थी। इसके बरख़िलाफ़ नबी (सल्ल॰) क़ुरैश ख़ानदान के एक आदमी थे और आप (सल्ल॰) का ख़ानदान क़ुरैश के दूसरे ख़ानदानों के साथ बिलकुल बराबर की पोज़ीशन रखता था। हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने ख़ुद उस फ़िरऔन के घर में परवरिश पाई थी और एक क़त्ल के इलज़ाम में दस साल छिपे रहने के बाद उन्हें हुक्म दिया गया था कि उसी बादशाह के दरबार में जा खड़े हों जिसके यहाँ से वे जान बचाकर भाग गए थे। नबी (सल्ल॰) को ऐसी किसी नाज़ुक सूरते-हाल का सामना न था। फिर फ़िरऔन की सल्तनत उस वक़्त दुनिया की सबसे बड़ी ताक़तवर सल्तनत थी। क़ुरैश की ताक़त का उसकी ताक़त से कोई जोड़ न था। इसके बावजूद फ़िरऔन हज़रत मूसा (अलैहि॰) का कुछ न बिगाड़ सका और आख़िरकार उनसे टकराकर तबाह हो गया। इससे अल्लाह तआला क़ुरैश के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों को यह सबक़ देना चाहता है कि जिस की पीठ पर अल्लाह का हाथ हो उसका मुक़ाबला करके कोई जीत नहीं सकता। जब फ़िरऔन मूसा (अलैहि॰) को कोई नुक़सान न पहुँचा सका तो तुम बेचारे क्या हस्ती हो कि मुहम्मद (सल्ल॰) के मुक़ाबले में बाज़ी जीत जाओगे।

(ii) जो निशानियाँ हज़रत मूसा (अलैहि॰) के ज़रिए से फ़िरऔन को दिखाई गईं इससे ज़्यादा खुली निशानियाँ और क्या हो सकती हैं। फिर हज़ारों आदमियों की भीड़ में फ़िरऔन ही के चैलेंज पर खुल्लम-खुल्ला जादूगरों से मुक़ाबला कराके यह साबित भी कर दिया गया कि जो कुछ हज़रत मूसा (अलैहि॰) दिखा रहे हैं, वह जादू नहीं है। जादू की कला के जो माहिर फ़िरऔन की अपनी क़ौम से ताल्लुक़ रखते थे और उसके अपने बुलाए हुए थे, उन्होंने ख़ुद यह तसदीक़ (पुष्टि) कर दी कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) की लाठी का अजगर बन जाना एक हक़ीक़ी तब्दीली है और यह सिर्फ़ अल्लाह के मोजिज़े (चमत्कार) से हो सकता है, जादूगरी के ज़रिए से ऐसा होना किसी तरह मुमकिन नहीं। जादूगरों ने ईमान लाकर और अपनी जान को ख़तरे में डालकर इस बात में किसी शक की गुंजाइश भी बाक़ी नहीं छोड़ी कि हज़रत मूसा की पेश की हुई निशानी सचमुच मोजिज़ा है, जादूगरी नहीं है। लेकिन इसपर भी जो लोग हठधर्मी में मुब्तला थे, उन्होंने नबी की सच्चाई मानकर न दी। अब तुम यह कैसे कह

قَوْمَ فِرْعَوْنَ ۭ اَلَا يَتَّقُوْنَ ⑪ قَالَ رَبِّ اِنِّيْٓ اَخَافُ اَنْ يُّكَذِّبُوْنِ ⑫
وَيَضِيْقُ صَدْرِيْ وَلَا يَنْطَلِقُ لِسَانِيْ فَاَرْسِلْ اِلٰى هٰرُوْنَ ⑬

क़ौम के पास जा—(11) फ़िरऔन की क़ौम के पास[8]—क्या वे नहीं डरते?"[9] (12) उसने अर्ज़ किया, "ऐ मेरे रब, मुझे डर है कि वे मुझे झुठला देंगे। (13) मेरा सीना घुटता है और मेरी ज़बान नहीं चलती। आप हारून की तरफ़ रिसालत (पैग़म्बरी) भेजें।[10]

सकते हो कि तुम्हारा ईमान लाना हक़ीक़त में कोई महसूस होनेवाला मोजिज़ा और माद्दी निशानी देखने पर टिका है। तास्सुब, जाहिली ग़ैरत और मतलब-परस्ती (स्वार्थपरता) से आदमी पाक हो और खुले दिल से हक़ और बातिल का फ़र्क़ समझकर ग़लत बात को छोड़ने और सही बात क़बूल करने के लिए कोई शख़्स तैयार हो तो उसके लिए वही निशानियाँ काफ़ी हैं जो इस किताब में और इसके लानेवाले की ज़िन्दगी में और ख़ुदा की लम्बी-चौड़ी कायनात में हर आँखोंवाला हर वक़्त देख सकता है। वरना एक हठधर्म आदमी जिसे हक़ की तलाश ही न हो और मन की ख़ाहिशों की बन्दगी में मुब्तला होकर जिसने फ़ैसला कर लिया हो कि किसी ऐसी सच्चाई को क़बूल न करेगा, जिससे उसके फ़ायदों पर चोट पड़ती हो, वह कोई निशानी देखकर भी ईमान न लाएगा, चाहे ज़मीन और आसमान ही उसके सामने क्यों न उलट दिए जाएँ।

(iii) इस हठधर्मी का जो अंजाम फ़िरऔन ने देखा वह कोई ऐसा अंजाम तो नहीं है जिसे देखने के लिए दूसरे लोग बेताब हों। अपनी आँखों से ख़ुदाई ताक़त की निशानियाँ देख लेने के बाद जो नहीं मानते, वे फिर ऐसे ही अंजाम से दोचार होते हैं। अब क्या तुम लोग इससे सबक़ हासिल करने के बजाय इसका मज़ा चखना ही पसन्द करते हो?

यह क़िस्सा क़ुरआन में कई जगहों पर आया है। देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयतें—103-137; सूरा-10 यूनुस, आयतें—75-92; सूरा-17 बनी-इसराईल, आयतें—101-104; सूरा-20 ता-हा, आयतें—9-79।

8. बयान का यह अन्दाज़ फ़िरऔन की क़ौम के इन्तिहाई ज़ुल्म को ज़ाहिर करता है। उसका तारुफ़ (परिचय) ही 'ज़ालिम क़ौम' के लक़ब से कराया गया है। मानो उसका अस्ल नाम ज़ालिम क़ौम है और 'फ़िरऔन की क़ौम' उसका तर्जमा और तफ़सीर।

9. यानी ऐ मूसा, देखो कैसी अजीब बात है कि ये लोग अपने आपको पूरी तरह मालिक समझते हुए दुनिया में ज़ुल्मो-सितम ढाए जा रहे हैं और इस बात से निडर हैं कि ऊपर कोई ख़ुदा भी है जो उनसे पूछ-गच्छ करनेवाला है।

10. सूरा-20 ता-हा, आयतें—25-46 और सूरा-28 क़सस, आयतें—28-42 में इसकी जो तफ़सील आई है उसे इन आयतों के साथ मिलाकर देखा जाए तो मालूम होता है कि हज़रत मूसा (अलैहि०) अव्वल तो इतने बड़े मिशन पर अकेले जाते हुए घबराते थे ('मेरा सीना घुटता है' के

وَلَهُمْ عَلَيَّ ذَنْبٌ فَأَخَافُ أَنْ يَّقْتُلُوْنِ ﴿١٤﴾ قَالَ كَلَّا ۚ فَاذْهَبَا

(14) और मुझपर उनके यहाँ एक जुर्म का इलज़ाम भी है, इसलिए मैं डरता हूँ कि वे मुझे क़त्ल कर देंगे।"[11] (15) फ़रमाया, "हरगिज़ नहीं, तुम दोनों जाओ हमारी

अलफ़ाज़ इसी की निशानदेही करते हैं), दूसरे उनको यह भी एहसास था कि वे रवानी (प्रवाह) के साथ तक़रीर नहीं कर सकते। इसलिए उन्होंने अल्लाह तआला से दरख़ास्त की कि हज़रत हारून को उनके साथ मददगार की हैसियत से नबी बनाकर भेजा जाए, क्योंकि वे बोलने में ज़्यादा माहिर हैं, जब ज़रूरत पेश आएगी तो वे उनकी ताईद और तसदीक़ करके उनकी पीठ मज़बूत करेंगे। मुमकिन है कि शुरू में हज़रत मूसा (अलैहि॰) की दरख़ास्त यही रही हो कि उनके बजाय हज़रत हारून (अलैहि॰) को इस मंसब पर मुक़र्रर किया जाए, और बाद में जब उन्होंने महसूस किया हो कि अल्लाह की मरज़ी उन्हीं को मुक़र्रर करने की है तो फिर यह दरख़ास्त की हो कि हारून (अलैहि॰) को उनका वज़ीर और मददगार बनाया जाए। यह शक इस वजह से होता है कि यहाँ हज़रत मूसा (अलैहि॰) उनको वज़ीर बनाने की दरख़ास्त नहीं कर रहे हैं, बल्कि यह अर्ज़ कर रहे हैं कि "फ़-अरसिल इला हारू-न" (आप हारून की तरफ़ रिसालत भेजें) और सूरा-20 ता-हा में वे यह गुज़ारिश करते हैं कि "मेरे लिए मेरे ख़ानदान में से एक वज़ीर मुक़र्रर कर दीजिए, मेरे भाई हारून को।" इसके अलावा सूरा-28 क़सस में वे यह अर्ज़ करते हैं, "मेरे भाई हारून मुझसे ज़्यादा बोलने में माहिर हैं, लिहाज़ा आप उन्हें मददगार के तौर पर मेरे साथ भेजिए ताकि वे मेरी तसदीक़ करें।" इससे ऐसा लगता है कि शायद ये बाद में बयान की गई दोनों दरख़ास्तें बाद की थीं, और पहली बात वही थी जो हज़रत मूसा (अलैहि॰) से इस सूरा में नक़्ल हुई है।

बाइबल (निर्गमन, अध्याय 4) का बयान इससे अलग है। वह कहती है कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने फ़िरऔन की क़ौम के झुठलाने और अपनी ज़बान के अटक जाने की मजबूरी पेश करके यह मंसब क़बूल करने से बिलकुल ही इनकार कर दिया था और कहा था कि ऐ ख़ुदावन्द, मैं तेरी मिन्नत करता हूँ। किसी और के हाथ से जिसे तू चाहे यह पैग़ाम भेज। फिर अल्लाह तआला ने अपनी तरफ़ से ख़ुद हारून को उनके लिए मददगार बनाकर उन्हें इस बात पर राज़ी किया कि दोनों भाई मिलकर फ़िरऔन के पास जाएँ। (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए– तफ़हीमुल-क़ुरआन, हिस्सा-3, सूरा-20 ता-हा, हाशिया-19)

11. यह इशारा है उस वाक़िए की तरफ़ जो सूरा-28 क़सस, आयत-14 में बयान हुआ है। हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने फ़िरऔन की क़ौम के एक शख़्स को एक इसराईली से लड़ते देखकर एक घूँसा मार दिया था जिससे वह मर गया था। फिर जब हज़रत मूसा (अलैहि॰) को मालूम हुआ कि इस वाक़िए की ख़बर फ़िरऔन की क़ौम के लोगों को हो गई है और वे बदला लेने की तैयारी कर रहे हैं तो वे देश छोड़कर मदयन की तरफ़ चले गए। अब आठ-दस साल छिपे रहने के बाद यकायक उन्हें यह हुक्म दिया गया कि तुम ख़ुदा का पैग़ाम लेकर उसी फ़िरऔन के

بِاٰيٰتِنَآ اِنَّا مَعَكُمْ مُّسْتَمِعُوْنَ ﴿۱۵﴾ فَاْتِيَا فِرْعَوْنَ فَقُوْلَآ اِنَّا
رَسُوْلُ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ﴿۱۶﴾ اَنْ اَرْسِلْ مَعَنَا بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ ﴿۱۷﴾
قَالَ اَلَمْ نُرَبِّكَ فِيْنَا وَلِيْدًا وَّلَبِثْتَ فِيْنَا مِنْ عُمُرِكَ سِنِيْنَ ﴿۱۸﴾
وَفَعَلْتَ فَعْلَتَكَ الَّتِيْ فَعَلْتَ وَاَنْتَ مِنَ الْكٰفِرِيْنَ ﴿۱۹﴾ قَالَ

निशानियाँ[12] लेकर, हम तुम्हारे साथ सबकुछ सुनते रहेंगे। (16) फ़िरऔन के पास जाओ और उससे कहो, हमें रब्बुल-आलमीन (सारे जहानों के रब) ने इसलिए भेजा है (17) कि तू बनी-इसराईल को हमारे साथ जाने दे।''[13]

(18) फ़िरऔन ने कहा, ''क्या हमने तुझको अपने यहाँ बच्चा-सा नहीं पाला था?[14] तूने अपनी उम्र के कई साल हमारे यहाँ गुज़ारे, (19) और उसके बाद कर गया जो कुछ कि कर गया,[15] तू बड़ा एहसान भूल जानेवाला आदमी है।'' (20) मूसा ने जवाब दिया,

---

दरबार में जा खड़े हो जिसके यहाँ तुम्हारे ख़िलाफ़ क़त्ल का मुक़द्दमा पहले से मौजूद है तो हज़रत मूसा को फ़ितरी तौर पर यह ख़तरा हुआ कि पैग़ाम सुनाने की नौबत आने से पहले ही वह मुझे उस क़त्ल के इलज़ाम में फाँस लेगा।

12. निशानियों से मुराद, 'लाठी' और, 'चमकता हाथ' के मोजिज़े हैं जिनके दिए जाने की तफ़सील सूरा-7 आराफ़, आयतें—100-126; सूरा-20 ता-हा, आयतें—1-24; सूरा-27 नम्ल, आयतें—1-14 और सूरा-28 क़सस, आयतें—29-42 में बयान हुई है।

13. हज़रत मूसा (अलैहि०) और हारून (अलैहि०) की दावत के दो हिस्से थे, एक फ़िरऔन को अल्लाह की बन्दगी की तरफ़ बुलाना, जो तमाम नबियों (अलैहि०) की दावत का अस्ल मक़सद रहा है। दूसरा, बनी-इसराईल को फ़िरऔन की ग़ुलामी के बन्धन से निकालना, जो ख़ास तौर पर इन्हीं दोनों लोगों का मिशन था। क़ुरआन मजीद में किसी जगह सिर्फ़ पहले हिस्से का ज़िक्र किया गया है (मसलन सूरा-79 नाज़िआत में) और किसी जगह सिर्फ़ दूसरे हिस्से का।

14. इससे एक इशारा इस ख़याल की ताईद में निकलता है कि यह फ़िरऔन वह फ़िरऔन न था जिसके घर में हज़रत मूसा (अलैहि०) ने परवरिश पाई थी, बल्कि यह उसका बेटा था। अगर यह वही फ़िरऔन होता तो कहता कि मैंने तुझे पाला था। लेकिन यह कहता है कि हमारे यहाँ तू रहा है और हमने तेरी परवरिश की है। (इस मसले पर तफ़सीली बहस के लिए देखिए—तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, हाशिए—85, 93)

15. इशारा है उसी क़त्ल के वाक़िए की तरफ़ जो हज़रत मूसा (अलैहि०) से हो गया था।

فَعَلْتُهَآ اِذًا وَّاَنَا مِنَ الضَّآلِّيْنَ ۞ فَفَرَرْتُ مِنْكُمْ لَمَّا خِفْتُكُمْ
فَوَهَبَ لِيْ رَبِّيْ حُكْمًا وَّجَعَلَنِيْ مِنَ الْمُرْسَلِيْنَ۞ وَتِلْكَ
نِعْمَةٌ تَمُنُّهَا عَلَيَّ اَنْ عَبَّدْتَّ بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ ۞ قَالَ فِرْعَوْنُ

"उस वक़्त वह काम मैंने अनजाने में कर दिया था।[16] (21) फिर मैं तुम्हारे डर से भाग गया। उसके बाद मेरे रब ने मुझको हुक्म अता किया[17] और मुझे रसूलों (पैग़म्बरों) में शामिल कर लिया। (22) रहा तेरा एहसान, जो तूने मुझपर जताया है, तो उसकी हक़ीक़त यह है कि तूने बनी-इसराईल को ग़ुलाम बना लिया था।"[18] (23) फ़िरऔन ने कहा,[19]

16. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं 'व अना मिनज़-ज़ाल्लीन' यानी "मैं उस वक़्त ज़लालत में था।" या, "मैंने उस वक़्त यह काम ज़लालत की हालत में किया था।" इस लफ़्ज़, 'ज़लालत' का मतलब हर हाल में, 'गुमराही' ही नहीं होता, बल्कि अरबी ज़बान में इसे जानकारी का न होना, नादानी, ग़लती, भूल, अनजाने में, वग़ैरा मानी में भी इस्तेमाल किया जाता है। जो वाक़िआ सूरा-28 क़सस में बयान हुआ है उसपर ग़ौर करने से यहाँ, 'ज़लालत' का मतलब, 'ग़लती' या, 'अनजाने में' लेना ही ज़्यादा सही है। हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने उस क़िब्ती को एक इसराईली पर ज़ुल्म करते देखकर सिर्फ़ एक घूँसा मारा था। ज़ाहिर है कि घूँसे से आम तौर पर आदमी मरता नहीं है, न क़त्ल की नीयत से घूँसा मारा जाता है। इत्तिफ़ाक़ की बात है कि इससे वह आदमी मर गया। इसलिए सही सूरते-वाक़िआ यही है कि यह क़त्ले-अम्द (जान-बूझकर किया गया क़त्ल) नहीं बल्कि क़त्ले-ख़ता (ग़लती से किया गया क़त्ल) था। क़त्ल हुआ ज़रूर, मगर जान-बूझकर क़त्ल की नीयत से नहीं हुआ, न कोई ऐसा ज़रिआ इस्तेमाल किया गया जो क़त्ल की ग़रज़ से इस्तेमाल किया जाता है या जिससे क़त्ल हो जाने की उम्मीद की जा सकती है।
17. यानी इल्म (ज्ञान), गहरी सूझबूझ और पैग़म्बरी। हुक्म का मतलब हिकमत और सूझबूझ भी है, और वह अधिकार (Authority) भी जो अल्लाह की तरफ़ से पैग़म्बर को दिया जाता है, जिसकी बुनियाद पर वह इख़्तियार के साथ बोलता है।
18. यानी तेरे घर में परवरिश पाने के लिए मैं क्यों आता अगर तूने बनी-इसराईल पर ज़ुल्म न ढाया होता। तेरे ही ज़ुल्म की वजह से तो मेरी माँ ने मुझे टोकरी में डालकर नदी में बहाया था। वरना क्या मेरी परवरिश के लिए मेरा अपना घर मौजूद न था? इसलिए उस परवरिश का एहसान जताना तेरे लिए मुनासिब नहीं।
19. बीच में यह तफ़सील छोड़ दी गई है कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने अपने आपको रब्बुल-आलमीन (सारे जहानों के रब) के रसूल की हैसियत से पेश करके फ़िरऔन को वह पैग़ाम पहुँचाया जिसके लिए वे भेजे गए थे। यह बात आप-से-आप ज़ाहिर है कि नबी ने ज़रूर

وَمَا رَبُّ الْعٰلَمِيْنَ ﴿٢٣﴾ قَالَ رَبُّ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَمَا بَيْنَهُمَا ۭ
اِنْ كُنْتُمْ مُّوْقِنِيْنَ ﴿٢٤﴾ قَالَ لِمَنْ حَوْلَهٗٓ اَلَا تَسْتَمِعُوْنَ ﴿٢٥﴾
قَالَ رَبُّكُمْ وَرَبُّ اٰبَاۗىِٕكُمُ الْاَوَّلِيْنَ ﴿٢٦﴾ قَالَ اِنَّ رَسُوْلَكُمُ

"और यह रब्बुल-आलमीन क्या होता है?"[20] (24) मूसा ने जवाब दिया, "आसमानों और ज़मीन का रब, और उन सब चीज़ों का रब जो आसमान और ज़मीन के बीच हैं, अगर तुम यक़ीन लानेवाले हो।"[21] (25) फ़िरऔन ने अपने आस-पास के लोगों से कहा, "सुनते हो?" (26) मूसा ने कहा, "तुम्हारा रब भी और तुम्हारे उन बाप-दादाओं का रब भी जो गुज़र चुके हैं।"[22] (27) फ़िरऔन ने (वहाँ मौजूद लोगों से) कहा, "तुम्हारे ये

वह पैग़ाम पहुँचा दिया होगा जिसपर वे मुक़र्रर किए गए थे, इसलिए उसका ज़िक्र करने की ज़रूरत न थी। उसे छोड़कर अब वह बातचीत नक़्ल की जाती है जो उस पैग़ाम को पहुँचाने के बाद फ़िरऔन और मूसा के बीच हुई।

20. फ़िरऔरन का यह सवाल हज़रत मूसा (अलैहि०) की इस बात पर था कि मैं रब्बुल-आलमीन (तमाम जहानवालों के मालिक और हाकिम) की तरफ़ से भेजा गया हूँ और इसलिए भेजा गया हूँ कि तू बनी-इसराईल को मेरे साथ जाने दे। यह पैग़ाम पूरी तरह सियासी पैग़ाम था। इसका साफ़ मतलब यह था कि हज़रत मूसा (अलैहि०) जिस ख़ुदा की नुमाइन्दगी (प्रतिनिधित्व) के दावेदार हैं वह सारे जहानवालों पर हाकिमियत और इक़्तिदारे-आला (सम्प्रभुत्व) रखता है और फ़िरऔन को अपने मातहत बताकर उसकी हुकूमत और इक़्तिदार में सबसे बुलन्द एक हाकिम की हैसियत से न सिर्फ़ यह कि दख़ल-अन्दाज़ी कर रहा है, बल्कि उसके नाम यह फ़रमान भेज रहा है कि तू अपनी प्रजा (जनता) के एक हिस्से को मेरे नामज़द किए हुए नुमाइन्दे के हवाले कर दे ताकि वह उसे तेरी सल्तनत से निकालकर ले जाए। इसपर फ़िरऔन पूछता है कि यह सारे जहानवालों का मालिक और बादशाह है कौन जो मिस्र के बादशाह को उसकी प्रजा के एक मामूली शख़्स के हाथों यह हुक्म भेज रहा है।

21. यानी मैं ज़मीन पर बसनेवाले किसी जानदार और मिट जानेवाली बादशाही के किसी दावेदार की तरफ़ से नहीं आया हूँ, बल्कि उसकी तरफ़ से आया हूँ जो आसमान और ज़मीन का मालिक है। अगर तुम इस बात का यक़ीन रखते हो कि इस कायनात का कोई पैदा करनेवाला और मालिक और हाकिम है तो तुम्हें यह समझने में कोई मुश्किल नहीं होनी चाहिए कि सारे जहानवालों का रब कौन है।

22. हज़रत मूसा (अलैहि०) का यह ख़िताब फ़िरऔन के दरबारियों से था, जिनसे फ़िरऔन ने कहा था कि "सुनते हो!" हज़रत मूसा (अलैहि०) ने उनसे कहा कि मैं उन झूठे रबों को नहीं मानता जो आज हैं और कल न थे, और कल थे मगर आज नहीं हैं। तुम्हारा यह फ़िरऔन जो आज

الَّذِيْٓ اُرْسِلَ اِلَيْكُمْ لَمَجْنُوْنٌ ﴿٢٧﴾ قَالَ رَبُّ الْمَشْرِقِ وَالْمَغْرِبِ
وَمَا بَيْنَهُمَاؕ اِنْ كُنْتُمْ تَعْقِلُوْنَ ﴿٢٨﴾ قَالَ لَئِنِ اتَّخَذْتَ اِلٰهًا
غَيْرِيْ لَاَجْعَلَنَّكَ مِنَ الْمَسْجُوْنِيْنَ ﴿٢٩﴾ قَالَ اَوَلَوْ جِئْتُكَ

पैग़म्बर साहब, जो तुम्हारी तरफ़ भेजे गए हैं, बिलकुल ही पागल मालूम होते हैं।''
(28) मूसा ने कहा, ''पूरब और पश्चिम और जो कुछ उनके बीच है सबका रब, अगर
आप लोग कुछ अक़्ल रखते हैं।''[23] (29) फ़िरऔन ने कहा, ''अगर तूने मेरे सिवा किसी
और को माबूद माना तो तुझे भी उन लोगों में शामिल कर दूँगा जो क़ैदख़ानों में पड़े सड़
रहे हैं।''[24] (30) मूसा ने कहा, ''अगरचे मैं ले आऊँ तेरे सामने एक खुली और

तुम्हारा रब बना बैठा है, कल न था और कल तुम्हारे बाप-दादा जिन फ़िरऔनों को रब बनाए बैठे थे, वे आज नहीं हैं। मैं सिर्फ़ उस रब की बादशाही को मानता हूँ जो आज भी तुम्हारा और इस फ़िरऔन का रब है और इससे पहले जो तुम्हारे और इसके बाप-दादा गुज़र चुके हैं उन सबका रब भी था।

23. यानी मुझे तो पागल ठहराया जा रहा है, लेकिन आप लोग अगर अक़्लवाले हैं तो ख़ुद सोचिए कि हक़ीक़त में रब यह बेचारा फ़िरऔन है जो ज़मीन के एक ज़रा-से हिस्से पर बादशाह बना बैठा है, या वह जो पूरब और पश्चिम का मालिक और मिस्र समेत हर उस चीज़ का मालिक है जो पूरब और पश्चिम से घिरी हुई है। मैं तो बादशाही उसी की मानता हूँ और उसी की तरफ़ से यह हुक्म उसके एक बन्दे को पहुँचा रहा हूँ।

24. इस बातचीत को समझने के लिए यह बात ध्यान में रहनी चाहिए कि आज की तरह पुराने ज़माने में भी, 'माबूद' (पूज्य) का तसव्वुर (धारणा) सिर्फ़ मज़हबी मानी तक महदूद (सीमित) था। यानी यह कि उसे बस पूजा-पाठ और भेंट-चढ़ावों का हक़ पहुँचता है, और अपने फ़ितरत से परे ग़लबे और इक़्तिदार (पराभौतिक वर्चस्व और सत्ता) की वजह से उसका यह मंसब भी है कि इनसान अपने मामलों में उससे मदद चाहने के लिए दुआएँ माँगें। लेकिन किसी माबूद की यह हैसियत कि वह क़ानूनी और सियासी मानी में भी सबसे ऊपर है, और उसे यह हक़ भी पहुँचता है कि दुनिया के मामलों में वह जो हुक्म चाहे दे, और इनसानों का यह फ़र्ज़ है कि उसने जिन कामों को करने का हुक्म दिया है उन्हें करने और जिन कामों से रोका है, उन्हें न करने को सबसे बढ़कर क़ानून मानकर उसके आगे झुक जाएँ। यह चीज़ ज़मीन के ग़ैर-हक़ीक़ी (अवास्तविक) बादशाहों ने न पहले कभी मानकर दी थी, न आज वे इसे मानने के लिए तैयार हैं। वे हमेशा से यही कहते चले आए हैं कि दुनिया के मामलों में हम पूरी तरह अपनी मरज़ी के मालिक हैं, किसी माबूद को हमारी सियासत और हमारे क़ानून में दख़ल देने का कोई हक़ नहीं है। दुनियावी हुकूमतों और बादशाहतों से पैग़म्बर (अलैहि०) और उनकी पैरवी करनेवाले

بِشَىۡءٍ مُّبِيۡنٍ ۞ قَالَ فَاۡتِ بِهٖۤ اِنۡ كُنۡتَ مِنَ الصّٰدِقِيۡنَ ۞

वाज़ेह चीज़ भी?"[25] (31) फ़िरऔन ने कहा, "अच्छा तो ले आ, अगर तू सच्चा है।"[26]

सुधारकों के टकराव की अस्ल वजह यही रही है। उन्होंने इनसे सारे जहानों के ख़ुदा की हाकिमियत और बालादस्ती (प्रभुत्व) को मनवाने की कोशिश की है, और ये इसके जवाब में न सिर्फ़ यह कि पूरी तरह ख़ुद के हाकिम होने का दावा पेश करती रही हैं, बल्कि उन्होंने हर उस शख़्स को मुजरिम और बाग़ी ठहराया जो उनके सिवा किसी और को क़ानून और सियासत के मैदान में माबूद माने। इस तशरीह से फ़िरऔन की इस बातचीत का सही मतलब अच्छी तरह समझ में आ सकता है। अगर मामला सिर्फ़ पूजा-पाठ और भेंट-चढ़ावे का होता तो उसको इससे कोई बहस न थी कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) दूसरे देवताओं को छोड़कर सारे जहानों के रब, एक अल्लाह को इसका हक़दार समझते हैं। अगर सिर्फ़ इस मानी में एक अल्लाह की इबादत की दावत मूसा (अलैहि॰) ने उसको दी होती तो उसे ग़ज़बनाक होने की कोई ज़रूरत न थी। ज़्यादा-से-ज़्यादा अगर वह कुछ करता तो बस यह कि अपने बाप-दादा का दीन छोड़ने से इनकार कर देता, या हज़रत मूसा (अलैहि॰) से कहता कि मेरे धर्म के पण्डितों से मुनाज़रा (शास्त्रार्थ) कर लो। लेकिन जिस चीज़ ने उसे ग़ज़बनाक कर दिया वह यह थी कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने रब्बुल-आलमीन के नुमाइन्दे की हैसियत से अपने आपको पेश करके उसे इस तरह एक सियासी हुक्म पहुँचाया कि मानो वह एक मातहत हाकिम है और एक बड़े हाकिम का पैग़म्बर आकर उससे हुक्म मानने की माँग कर रहा है। इस मानी में वह अपने ऊपर किसी की सियासी और क़ानूनी बरतरी (श्रेष्ठता) मानने के लिए तैयार न था, बल्कि वह यह भी गवारा न कर सकता था कि उसकी प्रजा में से कोई शख़्स उसके बजाय किसी और को उससे बढ़कर हाकिम माने। इसी लिए उसने पहले, 'रब्बुल-आलमीन' के अलफ़ाज़ को चुनौती दी, क्योंकि उसकी तरफ़ से लाए हुए पैग़ाम में सिर्फ़ मज़हबी माबूदियत (माबूद होने) का नहीं, बल्कि खुला-खुला सबसे ऊँचे सियासी इक़्तिदार का रंग नज़र आता था। फिर जब हज़रत मूसा ने बार-बार तशरीह करके बताया कि जिस रब्बुल-आलमीन का पैग़ाम वे लाए हैं वह कौन है, तो उसने साफ़-साफ़ धमकी दे दी कि मिस्र में तुमने मेरे इक़्तिदार के सिवा किसी और के इक़्तिदार का नाम भी लिया तो जेल की हवा खाओगे।

25. यानी क्या तू उस सूरत में भी मेरी बात मानने से इनकार करेगा और मुझे जेल भेजेगा जबकि मैं इस बात की एक खुली निशानी पेश कर दूँ कि मैं वाक़ई उस ख़ुदा का भेजा हुआ हूँ जो तमाम जहानों का रब, आसमानों और ज़मीन का रब और पूरब और पश्चिम का रब है?

26. हज़रत मूसा (अलैहि॰) के सवाल पर फ़िरऔन का यह जवाब ख़ुद ज़ाहिर करता है कि उसका हाल पुराने और नए ज़माने के आम मुशरिकों से अलग न था। वह दूसरे तमाम मुशरिकों की तरह फ़ितरत से परे (पराभौतिक) मानी में इस बात को मानता था कि अल्लाह ही अस्ल इलाह है और उन ही की तरह यह भी मानता था कि कायनात में अल्लाह की क़ुदरत सब देवताओं से बढ़कर है। इसी वजह से हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने उससे कहा कि अगर तुझे इस बात का

فَأَلْقَىٰ عَصَاهُ فَإِذَا هِيَ ثُعْبَانٌ مُّبِينٌ ﴿٣٢﴾ وَنَزَعَ يَدَهُ فَإِذَا هِيَ بَيْضَاءُ
لِلنَّاظِرِينَ ﴿٣٣﴾ قَالَ لِلْمَلَإِ حَوْلَهُ إِنَّ هَٰذَا لَسَاحِرٌ عَلِيمٌ ﴿٣٤﴾ يُرِيدُ أَن يُخْرِجَكُم

(32) (उसकी ज़बान से यह बात निकलते ही) मूसा ने अपनी लाठी (असा) फेंकी और यकायक वह एक खुला अजगर था।[27] (33) फिर उसने अपना हाथ (बग़ल से) खींचा और वह सब देखनेवालों के सामने चमक रहा था।[28]

(34) फ़िरऔन अपने आस-पास के सरदारों से बोला, "यह आदमी यक़ीनन एक माहिर जादूगर है। (35) चाहता है कि अपने जादू के ज़ोर से तुमको तुम्हारे देश से

यक़ीन नहीं है कि मैं ख़ुदा का भेजा हुआ हूँ तो मैं ऐसी खुली निशानियाँ पेश करूँ जिनसे साबित हो जाए कि मैं अल्लाह ही का भेजा हुआ हूँ और इसी वजह से फ़िरऔन ने भी जवाब दिया कि अगर तुम अपने इस दावे में सच्चे हो तो लाओ कोई निशानी। वरना ज़ाहिर है कि अगर अल्लाह तआला की हस्ती या उसके कायनात का मालिक होने ही में उसे शक होता तो निशानी का सवाल पैदा ही न हो सकता था। निशानी की बात तो उसी सूरत में बीच में आ सकती थी जबकि अल्लाह तआला का वुजूद और उसका क़ादिरे-मुतलक़ (सर्वशक्तिमान) होना तो तसलीमशुदा हो, और बहस इस बात में हो कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) उसके भेजे हुए हैं या नहीं।

27. क़ुरआन मजीद में किसी जगह इसके लिए 'हय्यतुन' (साँप) और किसी जगह 'जान्नुन' (जो आम तौर से छोटे साँपों के लिए बोला जाता है) के अलफ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं, और यहाँ उसे "सुअबानुन" (अजगर) कहा जा रहा है। इसकी वजह इमाम राज़ी इस तरह बयान करते हैं कि 'हय्यतुन' अरबी में साँप की हर जाति के लिए बोला जा सकता है, चाहे छोटा हो या बड़ा और 'सुअबानुन' का लफ़्ज़ इसलिए इस्तेमाल किया गया कि डील-डौल के लिहाज़ से वह अजगर की तरह था और 'जान्नुन' का लफ़्ज़ इस वजह से इस्तेमाल किया गया कि उसकी फुरती और तेज़ी छोटे साँप जैसी थी।

28. क़ुरआन के कुछ आलिमों ने यहूदी रिवायतों से मुतास्सिर होकर 'बैज़ा' का मानी 'सफ़ेद' किया है और इसका मतलब यह लिया है कि बग़ल से निकालते ही भला-चंगा हाथ बर्स के दाग़ की तरह सफ़ेद हो गया। लेकिन इब्ने-जरीर, इब्ने-कसीर, ज़मख़शरी, राज़ी, अबू-सऊद इमादी, आलूसी और दूसरे बड़े-बड़े क़ुरआन के आलिम इस बात पर एक राय हैं कि यहाँ 'बैज़ा' का मतलब 'रौशन और चमकदार' है। ज्यों ही हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने बग़ल से हाथ निकाला यकायक सारा माहौल जगमगा उठा और यूँ महसूस हुआ जैसे सूरज निकल आया। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-20 ता-हा, हाशिया-13)

مِّنْ اَرْضِكُمْ بِسِحْرِهٖ ۖ فَمَاذَا تَاْمُرُوْنَ ﴿٣٥﴾ قَالُوْٓا اَرْجِهْ وَاَخَاهُ
وَابْعَثْ فِي الْمَدَآئِنِ حٰشِرِيْنَ ﴿٣٦﴾ يَاْتُوْكَ بِكُلِّ سَحَّارٍ عَلِيْمٍ ﴿٣٧﴾

निकाल दे।[29] अब बताओ तुम क्या हुक्म देते हो?"[30] (36) उन्होंने कहा, "इसे और इसके भाई को रोक लीजिए और शहरों में हरकारे भेज दीजिए (37) कि हर माहिर जादूगर को

29. दोनों मोजिज़ों (चमत्कारों) की अज़मत (महानता) का अन्दाज़ा इससे किया जा सकता है कि या तो एक लम्हा पहले वह अपनी प्रजा के एक शख़्स को भरे दरबार में पैग़म्बरी की बातें और बनी-इसराईल की रिहाई की माँग करते देखकर पागल ठहरा रहा था (क्योंकि उसके नज़दीक एक ग़ुलाम क़ौम के शख़्स का उस जैसे ताक़तवर बादशाह के सामने ऐसी जुरअत करना पागलपन के सिवा और कुछ न हो सकता था) और उसे धमकी दे रहा था कि अगर तूने मेरे सिवा किसी को माबूद माना तो जेल में सड़ा-सड़ाकर मार दूँगा, या अब उन निशानियों को देखते ही उसपर ऐसा डर छाया कि उसे अपनी बादशाही और अपना देश छिनने का ख़तरा महसूस होने लगा और बदहवासी में उसे यह भी एहसास न रहा कि मैं भरे दरबार में अपने नौकरों के सामने कैसी बेतुकी बातें कर रहा हूँ। बनी-इसराईल जैसी दबी हुई क़ौम के दो आदमी वक़्त के सबसे बड़े ताक़तवर बादशाह के सामने खड़े थे। कोई लाव-लश्कर (दल-बल) उनके साथ न था। कोई जान उनकी क़ौम में न थी। किसी बग़ावत का नामो-निशान तक देश के किसी कोने में न था। देश से बाहर किसी दूसरी हुकूमत की ताक़त भी उनकी पीठ पर न थी। इस हालत में सिर्फ़ एक लाठी का अजगर बनते देखकर और एक हाथ को चमकते देखकर यकायक उसका चीख़ उठना कि ये दो बेसरो-सामान आदमी मेरी सल्तनत का तख़्ता उलट देंगे और पूरे हुक्मराँ तबक़े को सत्ता से बेदख़ल कर देंगे, आख़िर क्या मतलब रखता है? फ़िरऔन का यह कहना कि यह आदमी जादू के ज़ोर से ऐसा कर डालेगा, और ज़्यादा बौखलाहट की दलील है। जादू के ज़ोर से दुनिया में कभी कोई सियासी इंक़िलाब नहीं हुआ, कोई देश जीता नहीं गया, कोई जंग नहीं जीती गई, जादूगर तो उसके अपने देश में मौजूद थे और बड़े-बड़े करिश्मे (चमत्कार) दिखा सकते थे। मगर वह ख़ुद जानता था कि तमाशा दिखाकर इनाम लेने से बढ़कर उनकी कोई औक़ात नहीं है। सल्तनत तो बहुत दूर की बात, वे बेचारे तो सल्तनत के किसी पुलिस कॉंस्टेबल को भी चैलेंज देने की हिम्मत न कर सकते थे।

30. यह जुमला फ़िरऔन की बौखलाहट को और भी ज़ाहिर करता है। कहाँ तो वह इलाह (माबूद) बना हुआ था और ये सब उसके बन्दे थे। कहाँ अब इलाह साहब मारे डर के बन्दों से पूछ रहे हैं कि तुम्हारा क्या हुक्म है। दूसरे अलफ़ाज़ में मानो वह यह कह रहा था कि मेरी अक़्ल तो अब कुछ काम नहीं करती, तुम बताओ कि इस ख़तरे का मुक़ाबला मैं कैसे करूँ।

فَجُمِعَ السَّحَرَةُ لِمِيقَاتِ يَوْمٍ مَّعْلُوْمٍ ۝٣٨ وَّقِيْلَ لِلنَّاسِ هَلْ اَنْتُمْ مُّجْتَمِعُوْنَ ۝٣٩ لَعَلَّنَا نَتَّبِعُ السَّحَرَةَ اِنْ كَانُوْا هُمُ الْغٰلِبِيْنَ ۝٤٠ فَلَمَّا جَآءَ السَّحَرَةُ قَالُوْا لِفِرْعَوْنَ اَئِنَّ لَنَا لَاَجْرًا اِنْ كُنَّا نَحْنُ الْغٰلِبِيْنَ ۝٤١

आपके पास ले आएँ।" (38) चुनाँचे एक दिन तय हो चुके वक़्त पर[31] जादूगर इकट्ठे कर लिए गए (39) और लोगों से कहा गया, "तुम इजतिमा (जन-सभा) में चलोगे?[32] (40) शायद कि हम जादूगरों के दीन ही पर रह जाएँ, अगर वे ग़ालिब (प्रभावी) रहे।"[33]

(41) जब जादूगर मैदान में आए तो उन्होंने फ़िरऔन से कहा, "हमें इनाम तो मिलेगा अगर हम ग़ालिब रहे?"[34]

---

31. सूरा-20 ता-हा में गुज़र चुका है कि इस मुक़ाबले के लिए क़िब्तियों की क़ौमी ईद का दिन (यौमुज़-ज़ीनत) मुक़र्रर किया गया था, ताकि देश के कोने-कोने से मेलों-ठेलों की ख़ातिर आनेवाले सब लोग यह अज़ीमुश्शान 'दंगल' देखने के लिए इकट्ठा हो जाएँ, और इसके लिए वक़्त भी दिन चढ़े का तय हुआ था, ताकि दिन की रौशनी में सबकी आँखों के सामने दोनों तरफ़ की ताक़त का मुज़ाहरा (प्रदर्शन) हो और रौशनी की कमी की वजह से किसी तरह का शक-शुब्हा पैदा होने की गुंजाइश न रहे।

32. यानी सिर्फ़ एलान और इशतिहार पर ही बस नहीं किया गया बल्कि आदमी इस ग़रज़ के लिए छोड़े गए कि लोगों को उकसा-उकसाकर यह मुक़ाबला देखने के लिए लाएँ। इससे मालूम होता है कि भरे दरबार में जो मोजिज़े (चमत्कार) हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने दिखाए थे उनकी ख़बर आम लोगों में फैल चुकी थी और फ़िरऔन को यह अन्देशा हो गया था कि इससे देश के रहनेवाले मुतास्सिर होते चले जा रहे हैं। इसलिए उसने चाहा कि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इकट्ठा हों और ख़ुद देख लें कि लाठी का साँप बन जाना कोई बड़ी बात नहीं है। हमारे देश का हर जादूगर यह कमाल दिखा सकता है।

33. यह जुमला इस ख़याल की तसदीक़ (पुष्टि) करता है कि दरबार में मौजूद जिन लोगों ने हज़रत मूसा (अलैहि॰) का मोजिज़ा (चमत्कार) देखा था और बाहर जिन लोगों तक उसकी पक्की ख़बरें पहुँची थीं, उनके अक़ीदे अपने बाप-दादा के दीन पर से डगमगाए जा रहे थे, और अब उनके दीन का दारोमदार बस इसपर रह गया था कि किसी तरह जादूगर भी वह काम कर दिखाएँ जो मूसा (अलैहि॰) ने किया है। फ़िरऔन और उसके दरबारी उसे ख़ुद एक फ़ैसलाकुन मुक़ाबला समझ रहे थे। उनके अपने भेजे हुए आदमी आम लोगों के ज़ेहन में यह बात बिठाते फिरते थे कि अगर जादूगर कामयाब हो गए तो हम मूसा (अलैहि॰) के दीन में जाने से बच जाएँगे, वरना हमारे दीन और ईमान की ख़ैर नहीं है।

34. ये थे मुशरिकों के दीन के वे तरफ़दार जो मूसा (अलैहि॰) के हमले से अपने दीन को बचाने के लिए इस फ़ैसलाकुन मुक़ाबले के वक़्त इन पाकीज़ा जज़बात के साथ आए थे कि अगर हमने

قَالَ نَعَمْ وَاِنَّكُمْ اِذًا لَّمِنَ الْمُقَرَّبِيْنَ۝ قَالَ لَهُمْ مُّوْسٰى اَلْقُوْا مَآ
اَنْتُمْ مُّلْقُوْنَ۝ فَاَلْقَوْا حِبَالَهُمْ وَعِصِيَّهُمْ وَقَالُوْا بِعِزَّةِ فِرْعَوْنَ
اِنَّا لَنَحْنُ الْغٰلِبُوْنَ۝ فَاَلْقٰى مُوْسٰى عَصَاهُ فَاِذَا هِىَ تَلْقَفُ مَا

(42) उसने कहा, "हाँ, और तुम तो उस वक़्त क़रीबी लोगों में शामिल हो जाओगे।"[35] (43) मूसा ने कहा, "फेंको जो तुम्हें फेंकना है।" (44) उन्होंने फ़ौरन अपनी रस्सियाँ और लाठियाँ फेंक दीं और बोले, "फ़िरऔन के इक़बाल (प्रताप) से हम ही ग़ालिब रहेंगे।"[36] (45) फिर मूसा ने अपनी लाठी फेंकी तो यकायक वह उनके झूठे करिश्मों को

पाला मार लिया तो सरकार से कुछ इनाम मिल जाएगा।

35. और यह था वह बड़े-से-बड़ा इनाम जो धर्म और समाज के इन ख़ादिमों को वक़्त के बादशाह के यहाँ से मिल सकता था। यानी रुपया-पैसा ही नहीं मिलेगा, दरबार में कुर्सी भी मिल जाएगी। इस तरह फ़िरऔन और उसके जादूगरों ने पहले ही मरहले पर नबी और जादूगर का बड़ा अख़लाक़ी फ़र्क़ ख़ुद खोलकर रख दिया। एक तरफ़ वह हौसला था कि बनी-इसराईल जैसी पिसी हुई क़ौम का एक शख़्स दस साल तक क़त्ल के इलज़ाम में छिपा रहने के बाद फ़िरऔन के दरबार में बेझिझक आ खड़ा होता है और धड़ल्ले के साथ कहता है कि मैं सारे जहानों के रब अल्लाह का भेजा हुआ हूँ, बनी-इसराईल को मेरे हवाले कर। फ़िरऔन से आमने-सामने बहस करने में वह ज़रा-सी भी झिझक महसूस नहीं करता। उसकी धमकियों को वह बाल बराबर भी अहमियत नहीं देता। दूसरी तरफ़ यह कम-हिम्मती है कि उसी फ़िरऔन के यहाँ बाप-दादा के दीन को बचाने की ख़िदमत पर बुलाए जा रहे हैं, फिर भी हाथ जोड़कर कहते हैं कि सरकार, कुछ इनाम तो मिल जाएगा ना? और जवाब में यह सुनकर फूले नहीं समाते कि पैसा भी मिलेगा और बादशाह के क़रीबियों में होने का मौक़ा भी मिलेगा। ये दो मुक़ाबिल के किरदार आप-से-आप ज़ाहिर कर रहे थे कि नबी किस शान का इनसान होता है और उसके मुक़ाबले में जादूगरों की हस्ती क्या होती है। जब तक कोई आदमी बेहयाई की सारी हदों को न फलाँग जाए, वह नबी को जादूगर कहने की जुरअत नहीं कर सकता।

36. यहाँ यह ज़िक्र छोड़ दिया है कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) की ज़बान से यह जुमला सुनते ही जब जादूगरों ने अपनी रस्सियाँ और लाठियाँ फेंकीं तो यकायक वे बहुत-से साँपों की शक्ल में हज़रत मूसा (अलैहि॰) की तरफ़ लपकती नज़र आईं। इसकी तफ़सील क़ुरआन मजीद में दूसरी जगहों पर बयान हो चुकी है। सूरा-7 आराफ़ में है, "जब उन्होंने अपने अंक्षर फेंके तो लोगों की आँखों पर जादू कर दिया, सबको डराकर रख दिया, और बड़ा भारी जादू बना लाए।" सूरा-20 ता-हा, आयतें—66, 67 में उस वक़्त का नक़्शा यह खींचा गया है कि "यकायक उनके जादू से मूसा को यूँ महसूस हुआ कि उनकी रस्सियाँ और लाठियाँ दौड़ी चली आ रही हैं, इससे मूसा

يَأْفِكُوْنَ ۝٤٥ فَأُلْقِيَ السَّحَرَةُ سٰجِدِيْنَ ۝٤٦ قَالُوْٓا اٰمَنَّا بِرَبِّ
الْعٰلَمِيْنَ ۝٤٧ رَبِّ مُوْسٰى وَهٰرُوْنَ ۝٤٨ قَالَ اٰمَنْتُمْ لَهٗ قَبْلَ اَنْ
اٰذَنَ لَكُمْ ۚ اِنَّهٗ لَكَبِيْرُكُمُ الَّذِيْ عَلَّمَكُمُ السِّحْرَ ۚ فَلَسَوْفَ
تَعْلَمُوْنَ ۬ لَاُقَطِّعَنَّ اَيْدِيَكُمْ وَاَرْجُلَكُمْ مِّنْ خِلَافٍ

हड़प करती चली जा रही थी। (46) इसपर सारे जादूगर बे-क़ाबू होकर सजदे में गिर पड़े (47) और बोल उठे कि "मान गए हम रब्बुल-आलमीन को—(48) मूसा और हारून के रब को।"[37] (49) फ़िरऔन ने कहा, "तुम मूसा की बात मान गए इससे पहले कि मैं तुम्हें इजाज़त देता! ज़रूर यह तुम्हारा बड़ा है, जिसने तुम्हें जादू सिखाया है।[38] अच्छा, अभी तुम्हें मालूम हुआ जाता है; मैं तुम्हारे हाथ-पाँव मुख़ालिफ़ सिमतों (विपरीत दिशाओं)

अपने दिल में डर से गए।"

37. यह हज़रत मूसा (अलैहि॰) के मुक़ाबले में उनकी तरफ़ से सिर्फ़ हार क़बूल करना नहीं था कि कोई शख़्स यह कहकर पीछा छुड़ा लेता कि एक बड़े जादूगर ने छोटे जादूगरों को नीचा दिखा दिया, बल्कि उनका सजदे में गिरकर सारे जहानों के रब अल्लाह पर ईमान ले आना मानो हज़ारों मिस्रवासियों के सामने इस बात का एलान और इक़रार था कि मूसा (अलैहि॰) जो कुछ लाए हैं यह हमारे फ़न (कला) की चीज़ नहीं है, यह काम तो सिर्फ़ सारे जहानों के रब अल्लाह ही की क़ुदरत से हो सकता है।

38. यहाँ चूँकि बयान के सिलसिले के मुताबिक़ सिर्फ़ यह दिखाना है कि एक ज़िद्दी और हठधर्म आदमी किस तरह एक साफ़-साफ़ मोजिज़े को देखकर, और उसके मोजिज़ा होने पर ख़ुद जादूगरों की गवाही सुनकर भी उसे जादू कहे जाता है, इसलिए फ़िरऔन का सिर्फ़ इतना ही जुमला नक़्ल करने पर बस किया गया है। लेकिन सूरा-7 आराफ़ में तफ़सील के साथ यह बताया गया है कि फ़िरऔन ने बाज़ी हारती देखकर फ़ौरन ही एक सियासी साज़िश की कहानी गढ़ ली। उसने कहा, "यह एक साज़िश है जो तुम लोगों ने मिलकर इस राजधानी में तैयार की है, ताकि इसके मालिकों को इक़्तिदार से बेदख़ल कर दो।" (सूरा-7 आराफ़, आयत-123) इस तरह फ़िरऔन ने आम लोगों को यह यक़ीन दिलाने की कोशिश की कि जादूगरों का यह ईमान मोजिज़े की वजह से नहीं है, बल्कि महज़ मिलीभगत है। यहाँ आने से पहले इन जादूगरों और मूसा के बीच मामला तय हो गया था कि यूँ वे मूसा के मुक़ाबले में आकर हार जाएँगे, और नतीजे में जो सियासी इंक़िलाब आएगा उसके मज़े वह और ये मिलकर लूटेंगे।

وَّلَاُوصَلِّبَنَّكُمۡ اَجۡمَعِيۡنَ ﴿۴۹﴾ قَالُوۡا لَا ضَيۡرَ ۡ اِنَّاۤ اِلٰى رَبِّنَا مُنۡقَلِبُوۡنَ ﴿۵۰﴾
اِنَّا نَطۡمَعُ اَنۡ يَّغۡفِرَ لَنَا رَبُّنَا خَطٰيٰنَاۤ اَنۡ كُنَّاۤ اَوَّلَ الۡمُؤۡمِنِيۡنَ ﴿۵۱﴾ ع ٣ ١٨

से कटवाऊँगा और तुम सबको सूली चढ़ा दूँगा।"[39] (50) उन्होंने जवाब दिया, "कुछ परवाह नहीं, हम अपने रब के पास पहुँच जाएँगे। (51) और हमें उम्मीद है कि हमारा रब हमारे गुनाह माफ़ कर देगा, क्योंकि सबसे पहले हम ईमान लाए हैं।"[40]

---

39. यह भयानक धमकी फ़िरऔन ने अपने इस नज़रिए को कामयाब करने के लिए दी थी कि जादूगर अस्ल में मूसा (अलैहि॰) के साथ साज़िश करके आए हैं। उसके सामने यह मक़सद था कि इस तरह ये लोग जान बचाने के लिए साज़िश को क़बूल कर लेंगे और वह ड्रामाई असर ख़त्म हो जाएगा जो हारते ही उनके सजदे में गिरकर ईमान ले आने से उन हज़ारों देखनेवालों पर पड़ा था जो ख़ुद उसकी दावत पर यह फ़ैसला चुका देनेवाला मुक़ाबला देखने के लिए इकट्ठे हुए थे और जिन्हें ख़ुद उसके भेजे हुए लोगों ने यह ख़याल दिलाया था कि मिस्रवालों का दीन और ईमान बस इन जादूगरों के सहारे लटक रहा है, ये कामयाब हों तो क़ौम अपने बाप-दादा के दीन (धर्म) पर क़ायम रह सकेगी, वरना मूसा (अलैहि॰) के पैग़ाम का सैलाब उसे और उसके साथ फ़िरऔन की सल्तनत को भी बहा ले जाएगा।

40. यानी हमें अपने रब की तरफ़ पलटना तो बहरहाल एक-न-एक दिन ज़रूर है। अब अगर तू क़त्ल कर देगा तो इससे ज़्यादा कुछ न होगा कि वह दिन जो कभी आना था, आज आ जाएगा। इस सूरत में डरने का क्या सवाल? हमें तो इससे अल्लाह से अपनी ग़लतियों की माफ़ी और रहमत की उम्मीद है, क्योंकि आज इस जगह हक़ीक़त खुलते ही हमने मान लेने में एक पल की भी देर न की और इस पूरी भीड़ में सबसे पहले आगे बढ़कर हम ईमान ले आए।

जादूगरों के इस जवाब ने दो बातें उन तमाम लोगों के सामने खोलकर रख दीं जिन्हें फ़िरऔन ने ढिंढोरे पीट-पीटकर इकट्ठा किया था।

एक यह कि फ़िरऔन बेहद झूठा, हठधर्म और मक्कार है। जो मुक़ाबला उसने ख़ुद फ़ैसले के लिए कराया था, उसमें मूसा (अलैहि॰) की खुली-खुली जीत को सीधी तरह मान लेने के बजाय अब उसने फ़ौरन एक झूठी साज़िश की कहानी गढ़ ली और क़त्ल और सज़ा की धमकी देकर ज़बरदस्ती उसका इक़रार कराने की कोशिश की। इस कहानी में ज़र्रा बराबर भी कोई सच्चाई होती तो मुमकिन न था कि जादूगर हाथ-पाँव कटवाने और सूली पर चढ़ जाने के लिए यूँ तैयार हो जाते। ऐसी किसी साज़िश से अगर कोई सल्तनत मिल जाने का लालच था तो अब उसके लिए कोई गुंजाइश बाक़ी नहीं रही, क्योंकि सल्तनत के मज़े तो जो लूटेगा सो लूटेगा, इन बेचारों के हिस्से में तो सिर्फ़ कट-कटकर जान देना ही रह गया है। इस भयानक ख़तरे का सामना करके भी उन जादूगरों का अपने ईमान पर क़ायम रहना इस बात की खुली दलील है कि साज़िश का इलज़ाम सरासर झूठा है और सच्ची बात यही है कि जादूगर अपने फ़न (कला) में

وَاَوْحَيْنَآ اِلٰى مُوْسٰى اَنْ اَسْرِ بِعِبَادِيْٓ اِنَّكُمْ مُّتَّبَعُوْنَ۝ فَاَرْسَلَ

(52) हमने[41] मूसा को वह्य भेजी कि "रातों-रात मेरे बन्दों को लेकर निकल जाओ, तुम्हारा पीछा किया जाएगा।"[42] (53) इसपर फ़िरऔन ने (फ़ौजें इकट्ठा करने के लिए)

माहिर होने की वजह से ठीक-ठीक जान गए हैं कि जो कुछ मूसा (अलैहि॰) ने दिखाया है वह हरगिज़ जादू नहीं है, बल्कि सचमुच सारे जहानों के रब, अल्लाह ही की क़ुदरत का करिश्मा है। दूसरी बात जो उस वक़्त देश के कोने-कोने से सिमटकर आए हुए हज़ारों आदमियों के सामने खुलकर आ गई वह यह थी कि अल्लाह रब्बुल-आलमीन पर ईमान लाते ही जादूगरों में कैसा ज़बरदस्त अख़लाक़ी इंक़िलाब पैदा हो गया। कहाँ तो उनके ज़ेहन और फ़िक्र की पस्ती का यह हाल था कि बाप-दादा के दीन की मदद के लिए आए थे और फ़िरऔन के आगे हाथ जोड़-जोड़कर इनाम माँग रहे थे और कहाँ अब देखते-ही-देखते उनकी हिम्मत और इरादे की बुलन्दी इस दर्जे को पहुँच गई कि वही फ़िरऔन उनकी निगाह में कुछ न रहा, उसकी बादशाही की सारी ताक़त को उन्होंने ठोकर मार दी और अपने ईमान की ख़ातिर वे मौत और बुरी-से-बुरी जिस्मानी सज़ाओं की तकलीफ़ें तक बरदाश्त करने के लिए तैयार हो गए। इससे बढ़कर मिस्रियों के शिर्कवाले मज़हब की बेइज़्ज़ती और मूसा (अलैहि॰) के लाए हुए सच्चे दीन की असरदार तबलीग़ इस नाज़ुक नफ़सियाती (मनोवैज्ञानिक) मौक़े पर शायद ही कोई और हो सकती थी।

41. ऊपर के वाक़िआत के बाद हिजरत का ज़िक्र शुरू हो जाने से किसी को यह ग़लतफ़हमी न हो कि इसके बाद बस फ़ौरन ही ख़ुदा की तरफ़ से हज़रत मूसा (अलैहि॰) को बनी-इसराईल को लेकर मिस्र से निकल जाने का हुक्म दे दिया गया। अस्ल में यहाँ कई साल का इतिहास बीच में छोड़ दिया गया है जिसे सूरा-7 आराफ़, आयतें—127-141 और सूरा-10 यूनुस, आयतें—83-92 में बयान किया जा चुका है, और जिसका एक हिस्सा आगे सूरा-40 मोमिन, आयतें—10-50 और सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयतें—46-56 में आ रहा है। यहाँ चूँकि बात के सिलसिले को देखते हुए मक़सद सिर्फ़ यह बताना है कि जिस फ़िरऔन ने साफ़-साफ़ निशानियाँ देख लेने के बावजूद यह हठधर्मी दिखाई थी, उसका अंजाम आख़िरकार क्या हुआ, और जिस दावत के पीछे अल्लाह तआला की ताक़त थी वह किस तरह कामयाब हुई, इसलिए फ़िरऔन और हज़रत मूसा (अलैहि॰) की कशमकश के इब्तिदाई मरहले का ज़िक्र करने के बाद अब बात को मुख़्तसर (संक्षिप्त) करके उसका आख़िरी मंज़र दिखाया जा रहा है।

42. ध्यान रहे कि बनी-इसराईल की आबादी मिस्र में किसी एक जगह इकट्ठी न थी, बल्कि देश के तमाम शहरों और बस्तियों में बँटी हुई थी और ख़ास तौर से मंफ़ (Mamphis) से रअमसीस तक उस इलाक़े में उनकी बड़ी तादाद आबाद थी जिसे 'जुशन' कहा जाता था। लिहाज़ा हज़रत मूसा (अलैहि॰) को जब हुक्म दिया गया होगा कि अब तुम्हें बनी-इसराईल को लेकर मिस्र से निकल जाना है तो उन्होंने बनी-इसराईल की तमाम बस्तियों में हिदायतें भेज दी होंगी कि सब

فِرْعَوْنُ فِي الْمَدَآئِنِ حٰشِرِيْنَ ﴿٥٣﴾ اِنَّ هٰٓؤُلَآءِ لَشِرْذِمَةٌ قَلِيْلُوْنَ ﴿٥٤﴾
وَاِنَّهُمْ لَنَا لَغَآئِظُوْنَ ﴿٥٥﴾ وَاِنَّا لَجَمِيْعٌ حٰذِرُوْنَ ﴿٥٦﴾ فَاَخْرَجْنٰهُمْ مِّنْ
جَنّٰتٍ وَّعُيُوْنٍ ﴿٥٧﴾ وَّكُنُوْزٍ وَّمَقَامٍ كَرِيْمٍ ﴿٥٨﴾ كَذٰلِكَ ۭ وَاَوْرَثْنٰهَا بَنِيْٓ

शहरों में हरकारे भेज दिए (54) (और कहला भेजा) कि "ये कुछ मुट्ठी-भर लोग हैं, (55) और इन्होंने हमको बहुत नाराज़ किया है, (56) और हम एक ऐसी जमाअत हैं जिसकी आदत हर वक़्त चौकन्ना रहना है।"[43] (57-58) इस तरह हम उन्हें उनके बाग़ों और चश्मों (जल-स्रोतों) और ख़ज़ानों और उनकी बेहतरीन ठहरने की जगहों से निकाल लाए।[44] (59) यह तो हुआ उनके साथ, और (दूसरी तरफ़) बनी-इसराईल को हमने इन

लोग अपनी-अपनी जगह हिजरत के लिए तैयार हो जाएँ, और एक ख़ास रात मुक़र्रर कर दी होगी कि उस रात हर बस्ती के मुहाजिर निकल खड़े हों। यह कहना कि "तुम्हारा पीछा किया जाएगा" इस बात की तरफ़ इशारा करता है कि हिजरत के लिए रात को निकलने की हिदायत क्यों की गई थी। यानी इससे पहले कि फ़िरऔन लश्कर लेकर तुम्हारा पीछा करने के लिए निकले तुम रातों-रात अपना रास्ता इस हद तक तय कर लो कि उससे बहुत आगे निकल चुके हो।

43. ये बातें फ़िरऔन के उस छिपे हुए डर को ज़ाहिर करती हैं जिसपर वह निडरता का दिखावटी परदा डाल रहा था। एक तरफ़ वह जगह-जगह से फ़ौजें भी फ़ौरी मदद के लिए बुला रहा था जो इस बात की खुली निशानी थी कि उसे बनी-इसराईल से ख़तरा महसूस हो रहा है। दूसरी तरफ़ वह इस बात को छिपाना भी चाहता था कि लम्बी मुद्दत से दबी और पिसी हुई ऐसी क़ौम, जो बेहद रुसवाई की गुलामी में ज़िन्दगी गुज़ार रही थी, उससे फ़िरऔन जैसा ज़ालिम बादशाह कोई ख़तरा महसूस कर रहा है। यहाँ तक कि उसे फ़ौरन मदद के लिए फ़ौजें मंगाने की ज़रूरत पेश आ गई है। इसलिए वह अपना पैग़ाम इस अन्दाज़ में भेजता है कि ये बनी-इसराईल बेचारे चीज़ ही क्या हैं, कुछ मुट्ठी भर लोग हैं जो हमारा बाल भी बाँका नहीं कर सकते, लेकिन उन्होंने ऐसी हरकतें की हैं कि हमें उनपर गुस्सा आ गया है, इसलिए हम उन्हें सज़ा देना चाहते हैं, और फ़ौजें हम किसी डर की वजह से इकट्ठी नहीं कर रहे हैं, बल्कि यह सिर्फ़ एहतियाती कार्रवाई है, हमारी समझदारी का तक़ाज़ा यही है कि कोई दूर-से-दूर का भी इमकानी ख़तरा हो तो हम वक़्त पर उसको कुचल डालने के लिए तैयार रहें।

44. यानी फ़िरऔन ने तो यह काम अपने नज़दीक बड़ी अक़्लमन्दी का किया था कि दूर-दूर से फ़ौजें बुलाकर बनी-इसराईल को दुनिया से मिटा देने का सामान किया, लेकिन ख़ुदाई तदबीर ने उसकी चाल उसपर यूँ उलट दी कि फ़िरऔन की हुकूमत के बड़े-बड़े लोग अपनी-अपनी जगह छोड़कर उस जगह जा पहुँचे जहाँ उन्हें और उनके सारे लाव-लश्कर को एक साथ डूबना था।

إِسْرَآءِيلَ ﴿٥٩﴾ فَأَتْبَعُوهُم مُّشْرِقِينَ ﴿٦٠﴾ فَلَمَّا تَرَآءَ ٱلْجَمْعَانِ قَالَ
أَصْحَٰبُ مُوسَىٰٓ إِنَّا لَمُدْرَكُونَ ﴿٦١﴾ قَالَ كَلَّآ ۖ إِنَّ مَعِىَ رَبِّى سَيَهْدِينِ ﴿٦٢﴾

सब चीज़ों का वारिस कर दिया।[45]

(60) सुबह होते ही ये लोग उनका पीछा करने को चल पड़े। (61) जब दोनों गरोहों का आमना-सामना हुआ तो मूसा के साथी चीख़ उठे कि "हम तो पकड़े गए।" (62) मूसा ने कहा, "हरगिज़ नहीं! मेरे साथ मेरा रब है। वह ज़रूर मेरी रहनुमाई

अगर वे बनी-इसराईल का पीछा न करते तो नतीजा सिर्फ़ इतना ही होता कि एक क़ौम देश छोड़कर निकल जाती। इससे बढ़कर उनका कोई नुक़सान न होता और वे पहले की तरह अपनी ऐशगाहों में बैठे ज़िन्दगी के मज़े लूटते रहते। लेकिन उन्होंने इन्तिहाई दर्जे की होशियारी दिखाने के लिए यह फ़ैसला किया कि बनी-इसराईल को सही-सलामत न जाने दें, बल्कि उनके हिजरत करनेवाले क़ाफ़िलों पर अचानक हमला करके हमेशा के लिए उनको ख़त्म कर दें। इस ग़रज़ के लिए उनके शहज़ादे और बड़े-बड़े सरदार और दरबारी ख़ुद बादशाह समेत अपने महलों से निकल आए, और इसी नादानी ने यह दोहरा नतीजा दिखाया कि बनी-इसराईल मिस्र से निकल भी गए और मिस्र की ज़ालिम फ़िरऔनी सल्तनत का मक्खन दरिया की भेंट भी चढ़ गया।

45. क़ुरआन के कुछ आलिमों ने इस आयत का यह मतलब लिया है कि जिन बाग़ों, चश्मों (जल-स्रोतों), ख़ज़ानों और बेहतरीन ठिकानों से ये ज़ालिम लोग निकले थे उन्हीं का वारिस अल्लाह तआला ने बनी-इसराईल को कर दिया। यह मतलब अगर लिया जाए तो इसका मतलब लाज़िमन यह होना चाहिए कि फ़िरऔन के डूब जाने पर बनी-इसराईल फिर वापस मिस्र पहुँच गए हों और फ़िरऔनवालों की दौलत और हुकूमत उनके क़ब्ज़े में आ गई हो। लेकिन यह चीज़ इतिहास से भी साबित नहीं है और ख़ुद क़ुरआन मजीद के दूसरे बयानों से भी इस आयत का यह मतलब मेल नहीं खाता। सूरा-2 बक़रा, सूरा-5 माइदा, सूरा-7 आराफ़ और सूरा-20 ता-हा में जो हालात बयान किए गए हैं, उनसे साफ़ मालूम होता है कि फ़िरऔन के डूब जाने के बाद बनी-इसराईल मिस्र की तरफ़ पलटने के बजाय अपनी मंज़िल (फ़िलस्तीन) ही की तरफ़ चल पड़े और फिर हज़रत दाऊद (अलैहि.) के ज़माने (1013-973 ई.पू.) तक उनके इतिहास में जो वाक़िआत भी पेश आए, वे सब उस इलाक़े में पेश आए जो आज जज़ीरा-नुमाए (प्रायद्वीप) सीना, उत्तरी अरब, पूर्वी जॉर्डन और फ़िलस्तीन (Palestine) के नामों से जाना जाता है। इसलिए हमारे नज़दीक आयत का सही मतलब यह नहीं है कि अल्लाह तआला ने वही बाग़ और चश्मे (जल-स्रोत) और ख़ज़ाने और महल बनी-इसराईल को दे दिए जिनसे फ़िरऔन और उसकी क़ौम के सरदार और अमीर लोग निकाले गए थे, बल्कि इसका मतलब यह है कि अल्लाह तआला ने एक तरफ़ फ़िरऔनवालों को इन नेमतों से महरूम किया और दूसरी तरफ़ बनी-इसराईल को यही नेमतें दे दीं। यानी वे फ़िलस्तीन की सरज़मीन में बाग़ों, चश्मों, ख़ज़ानों

فَاَوْحَيْنَآ اِلٰى مُوْسٰٓى اَنِ اضْرِبْ بِّعَصَاكَ الْبَحْرَ ۭ فَانْفَلَقَ
فَكَانَ كُلُّ فِرْقٍ كَالطَّوْدِ الْعَظِيْمِ ﴿۶۳﴾ وَاَزْلَفْنَا ثَمَّ الْاٰخَرِيْنَ ﴿۶۴﴾

करेगा।''[46] (63) हमने मूसा को वह्य के ज़रिए से हुक्म दिया कि ''मार अपनी लाठी समन्दर पर।'' यकायक समन्दर फट गया और उसका हर टुकड़ा एक अज़ीमुश्शान पहाड़ की तरह हो गया।[47] (64) उसी जगह हम दूसरे गरोह को भी क़रीब ले

और बेहतरीन ठिकानों के मालिक हुए। इसी मतलब की ताईद सूरा-7 आराफ़ की ये आयतें—136, 137 करती हैं, ''तब हमने उनसे इन्तिक़ाम लिया और उन्हें समन्दर में डुबो दिया, क्योंकि उन्होंने हमारी निशानियों को झुठलाया था और उनसे बेपरवाह हो गए थे और उनके बजाय हमने उन लोगों को जो कमज़ोर बनाकर रखे गए थे, उस देश के पूरब और पश्चिम का वारिस बना दिया जिसे हमने बरकतों से मालामाल किया था।'' यह 'बरकतों से मालामाल सरज़मीन' की मिसाल क़ुरआन मजीद में आम तौर से फ़िलस्तीन ही के लिए इस्तेमाल हुई है और किसी इलाक़े का नाम लिए बिना जब उसकी यह ख़ूबी बयान की जाती है तो इससे यही इलाक़ा मुराद होता है। मसलन सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-1 में फ़रमाया, ''मस्जिदे- अक़सा की तरफ़ जिसके आसपास को हमने बरकत दी।'' और सूरा-21 अम्बिया, आयत-71 में कहा गया, ''और हम उसे और लूत को बचाकर उस सर-ज़मीन की तरफ़ निकाल ले गए जिसमें हमने दुनियावालों के लिए बरकतें रखी हैं।'' और ''और सुलैमान के लिए हमने तेज़ हवा को बस में कर दिया था जो उसके हुक्म से उस सर-ज़मीन की तरफ़ चलती थी जिसमें हमने बरकतें रखी हैं।'' (सूरा-21 अम्बिया, आयत-81) इसी तरह सूरा-34 सबा, आयत-18 में भी ''वह बस्ती जिसमें हमने बरकतें रखी हैं'' के अलफ़ाज़ शाम (सीरिया) और फ़िलस्तीन ही की बस्तियों के बारे में इस्तेमाल हुए हैं।

46. यानी मुझे इस आफ़त से बचने की राह बताएगा।

47. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं, ''कत्तौदिल-अज़ीम''। 'तौद' अरबी ज़बान में कहते ही बड़े पहाड़ को हैं। अरबी लुग़त (शब्दकोश) लिसानुल-अरब में है, 'अत्तौद—अल-जबलुल-अज़ीम' (यानी तौद का मतलब बड़ा पहाड़) इसके लिए फिर 'अज़ीम' (बड़ा) की सिफ़त लाने का मतलब यह हुआ कि पानी दोनों तरफ़ बहुत ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों की तरह खड़ा हो गया था। फिर जब हम इस बात पर ग़ौर करते हैं कि समन्दर हज़रत मूसा (अलैहि०) के असा (लाठी) मारने से फटा था, और यह काम एक तरफ़ बनी-इसराईल के पूरे क़ाफ़िले को गुज़ारने के लिए किया गया था और दूसरी तरफ़ इसका मक़सद फ़िरऔन के लश्कर को डुबोना था, तो इससे साफ़ मालूम होता है कि असा (लाठी) की चोट लगने पर पानी बहुत ऊँचे पहाड़ों की शक्ल में खड़ा हो गया और इतनी देर तक खड़ा रहा कि हज़ारों-लाखों बनी-इसराईल का मुहाजिर क़ाफ़िला उसमें से गुज़र भी गया और फिर फ़िरऔन का पूरा लश्कर उसके बीच पहुँच भी गया। ज़ाहिर है कि फ़ितरत के आम

وَأَنجَيْنَا مُوسَىٰ وَمَن مَّعَهُۥٓ أَجْمَعِينَ ۝٦٥ ثُمَّ أَغْرَقْنَا ٱلْـَٔاخَرِينَ ۝٦٦ إِنَّ فِى ذَٰلِكَ
لَـَٔايَةً ۖ وَمَا كَانَ أَكْثَرُهُم مُّؤْمِنِينَ ۝٦٧ وَإِنَّ رَبَّكَ لَهُوَ ٱلْعَزِيزُ ٱلرَّحِيمُ ۝٦٨

आए।[48] (65) मूसा और उन सब लोगों को जो उसके साथ थे हमने बचा लिया, (66) और दूसरों को डुबो दिया।

(67) इस वाक़िए में एक निशानी है,[49] मगर इन लोगों में से ज़्यादातर माननेवाले नहीं हैं। (68) और हक़ीक़त यह है कि तेरा रब ज़बरदस्त भी है और रहमवाला भी।

क़ानून के तहत जो तूफ़ानी हवाएँ चलती हैं वे चाहे कैसी ही तेज़ क्यों न हों, उनके असर से कभी समन्दर का पानी इस तरह आलीशान पहाड़ों की तरह इतनी देर तक खड़ा नहीं रहा करता। इसपर सूरा-20 ता-हा का यह बयान भी है कि "उनके लिए समन्दर में सूखा रास्ता बना दे।" (आयत-77) इसका मतलब यह है कि समन्दर पर लाठी मारने से सिर्फ़ इतना ही नहीं हुआ कि समन्दर का पानी हटकर दोनों तरफ़ पहाड़ों की तरह खड़ा हो गया, बल्कि बीच में जो रास्ता निकला वह सूख भी गया, यानी कोई कीचड़ ऐसी न रही जो चलने में रुकावट बनती। इसके साथ सूरा-44 दुख़ान, आयत-24 के ये अलफ़ाज़ भी ध्यान देने के लायक़ हैं कि अल्लाह तआला ने हज़रत मूसा (अलैहि॰) को हिदायत की कि समन्दर पार कर लेने के बाद, "उसको उसी हाल में रहने दे, फ़िरऔन का लश्कर यहाँ डूबनेवाला है।" इससे मालूम होता है कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) अगर दूसरे तट पर पहुँचकर समन्दर पर लाठी मार देते तो दोनों तरफ़ खड़ा हुआ पानी फिर मिल जाता। इसलिए अल्लाह तआला ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया, ताकि फ़िरऔन का लश्कर इस रास्ते में उतर आए और फिर पानी दोनों तरफ़ से आकर उसे डुबो दे। यह साफ़-साफ़ एक मोजिज़े (चमत्कार) का बयान है और इससे उन लोगों के ख़याल की ग़लती बिलकुल वाज़ेह (स्पष्ट) हो जाती है जो इस वाक़िए का मतलब आम फ़ितरी क़ानूनों के मुताबिक़ बयान करने की कोशिश करते हैं। (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-20 ता-हा, हाशिया-53)

48. यानी फ़िरऔन और उसके लश्कर को।

49. यानी क़ुरैश के लिए इसमें यह सबक़ है कि हठधर्म लोग खुले-खुले मोजिज़े देखकर भी किस तरह ईमान लाने से इनकार ही किए जाते हैं और फिर इस हठधर्मी का अंजाम कैसा दर्दनाक होता है। फ़िरऔन और उसकी क़ौम के तमाम सरदारों और हज़ारों लश्करियों की आँखों पर ऐसी पट्टी बंधी हुई थी कि सालों तक जो निशानियाँ उनको दिखाई जाती रहीं उनको तो वे अनदेखा करते ही रहे थे, आख़िर में ठीक डूबने के वक़्त भी उनको यह न सूझा कि समन्दर इस क़ाफ़िले के लिए फट गया है, पानी पहाड़ों की तरह दोनों तरफ़ खड़ा है और बीच में सूखी सड़क-सी बनी हुई है। ये खुली निशानियाँ देखकर भी उनको अक़्ल न आई कि मूसा (अलैहि॰) के साथ ख़ुदाई ताक़त काम कर रही है और वे उस ताक़त से लड़ने जा रहे हैं। होश उनको

وَاتْلُ عَلَيْهِمْ نَبَاَ اِبْرٰهِيْمَ ﴿٦٩﴾ اِذْ قَالَ لِاَبِيْهِ وَقَوْمِهٖ

(69) और इन्हें इबराहीम का क़िस्सा सुनाओ[50] (70) जबकि उसने अपने बाप और

आया भी तो उस वक़्त जब पानी ने दोनों तरफ़ से उनको दबोच लिया था और वह ख़ुदा के ग़ज़ब (प्रकोप) में घिर चुके थे। उस वक़्त फ़िरऔन चीख़ उठा, "मैं ईमान ले आया कि उस (अल्लाह) के सिवा कोई माबूद नहीं, जिसपर बनी-इसराईल ईमान लाए और अब मैं फ़रमाँबरदारों में से हूँ।" (सूरा-10 यूनुस, आयत-90)
दूसरी तरफ़ ईमानवालों के लिए भी इसमें यह निशानी है कि ज़ुल्म और उसकी ताक़तें चाहे बज़ाहिर कैसी ही छाई हुई नज़र आती हों, आख़िरकार अल्लाह तआला की मदद से सच का यूँ बोलबाला होता है और बातिल (झूठ) इस तरह नाकाम होकर रहता है।

50. यहाँ हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की पाक ज़िन्दगी के उस दौर का क़िस्सा बयान हुआ है जबकि पैग़म्बरी मिलने के बाद शिर्क और तौहीद (अनेकेश्वरवाद और एकेश्वरवाद) के मसले पर उनकी अपने ख़ानदान और क़ौम से कशमकश शुरू हुई थी। उस दौर के इतिहास के अलग-अलग हिस्से क़ुरआन मजीद में इन जगहों पर बयान हुए हैं : सूरा-2 बक़रा, आयतें—252-260; सूरा-6 अनआम, आयतें—75-83; सूरा-19 मरयम, आयतें—41-50; सूरा-21 अम्बिया, आयतें—51-70; सूरा-37 साफ़्फ़ात, आयतें—83-113; सूरा-60 मुम्तहिना, आयतें—4-6। इबराहीम (अलैहि॰) की ज़िन्दगी के इस दौर का इतिहास ख़ास तौर पर जिस वजह से क़ुरआन मजीद बार-बार सामने लाता है वह यह है कि अरब के लोग आम तौर से और क़ुरैश के लोग ख़ास तौर से अपने आपको हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) का पैरोकार समझते और कहते थे और यह दावा करते थे कि इबराहीमी तरीक़ा ही उनका मज़हब है। अरब के मुशरिक लोगों के अलावा ईसाई और यहूदियों का भी यह दावा था कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) उनके दीन के पेशवा हैं। इसपर क़ुरआन मजीद जगह-जगह उन लोगों को ख़बरदार करता है कि इबराहीम (अलैहि॰) जो दीन लेकर आए थे वह यही ख़ालिस इस्लाम था जिसे अरबी पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) लाए हैं और जिससे आज तुम लोग कशमकश कर रहे हो। वे मुशरिक न थे, बल्कि उनकी सारी लड़ाई शिर्क ही के ख़िलाफ़ थी और इस लड़ाई की बदौलत उन्हें अपने बाप, ख़ानदान, क़ौम, वतन सबको छोड़कर शाम (सीरिया), फ़िलस्तीन और हिजाज़ में परदेसी की ज़िन्दगी गुज़ारनी पड़ी थी। इसी तरह वे यहूदी और ईसाई भी न थे, बल्कि यहूदियत और ईसाइयत तो उनके सदियों बाद वुजूद में आईं। इस ऐतिहासिक दलील का कोई जवाब न मुशरिकों के पास था, न यहूदियों और ईसाइयों के पास; क्योंकि मुशरिक यह भी मानते थे कि अरब में बुतों की पूजा हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के कई सदी बाद शुरू हुई थी और यहूदी और ईसाई भी इससे इनकार न कर सकते थे कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) का ज़माना यहूदियत और ईसाइयत की पैदाइश से बहुत पहले था। इससे ख़ुद-ब-ख़ुद यह नतीजा निकलता था कि जिन ख़ास अक़ीदों और आमाल पर ये लोग अपने दीन का दारोमदार रखते हैं वह उस पुराने दीन के टुकड़े नहीं हैं जो शुरू से चला आ रहा था और सही दीन वही है जो इन

مَا تَعْبُدُوْنَ ۝ قَالُوْا نَعْبُدُ اَصْنَامًا فَنَظَلُّ لَهَا عٰكِفِيْنَ ۝
قَالَ هَلْ يَسْمَعُوْنَكُمْ اِذْ تَدْعُوْنَ ۝ اَوْ يَنْفَعُوْنَكُمْ اَوْ يَضُرُّوْنَ ۝
قَالُوْا بَلْ وَجَدْنَآ اٰبَآءَنَا كَذٰلِكَ يَفْعَلُوْنَ ۝ قَالَ اَفَرَءَيْتُمْ مَّا

अपनी क़ौम से पूछा था कि "ये क्या चीज़ें हैं जिनको तुम पूजते हो?"[51] (71) उन्होंने जवाब दिया, "कुछ बुत हैं जिनकी हम पूजा करते हैं और उन्हीं की सेवा में हम लगे रहते हैं।"[52] (72) उसने पूछा, "क्या ये तुम्हारी सुनते हैं जब तुम इन्हें पुकारते हो? (73) या ये तुम्हें कुछ फ़ायदा या नुक़सान पहुँचाते हैं?" (74) उन्होंने जवाब दिया, "नहीं, बल्कि हमने बाप-दादा को ऐसा ही करते पाया है।"[53] (75-76) इसपर इबराहीम ने कहा,

मिलावटों से पाक हो और उसकी बुनियाद ख़ालिस (विशुद्ध) ख़ुदापरस्ती पर हो। इसी बुनियाद पर क़ुरआन कहता है–

"इबराहीम न यहूदी था, न ईसाई बल्कि वह तो एक यकसू मुस्लिम (ख़ुदा का फ़रमाँबरदार) था और वह मुशरिकों में से भी न था। हक़ीक़त में इबराहीम से ताल्लुक़ रखने का सबसे ज़्यादा हक़ उन्हीं को पहुँचता है जिन्होंने उसके तरीक़े की पैरवी की, (और अब यह हक़) इस नबी और इसके साथ ईमान लानेवालों को (पहुँचता है)।" (सूरा-3 आले-इमरान, आयतें–67-68)

51. हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के इस सवाल का मंशा यह मालूम करना न था कि वे किन चीज़ों की इबादत करते हैं; क्योंकि उन बुतों को तो वे ख़ुद भी देख रहे थे जिनकी पूजा वहाँ होती थी। उनका मंशा अस्ल में उन लोगों को इस तरफ़ ध्यान दिलाना था कि इन माबूदों की हक़ीक़त क्या है जिनके आगे वे सिर झुकाते हैं। इसी सवाल को सूरा-21 अम्बिया, आयत-52 में इन अलफ़ाज़ में नक़्ल किया गया है–

"ये कैसे बुत हैं जिनपर तुम लोग फ़िदा हो रहे हो?"

52. यह जवाब भी सिर्फ़ यह ख़बर देने के लिए न था कि हम बुतों की पूजा करते हैं; क्योंकि पूछनेवाला और जिससे पूछा गया दोनों के सामने यह हक़ीक़त ज़ाहिर थी। इस जवाब की अस्ल रूह अपने अक़ीदे पर उनका जमे रहना और इत्मीनान था। मानो अस्ल में वे यह कह रहे थे कि हाँ, हम भी जानते हैं कि ये लकड़ी और पत्थर के बुत हैं जिनकी हम पूजा कर रहे हैं, मगर हमारा दीन और ईमान यही है कि हम इनकी पूजा और सेवा में लगे रहें।

53. यानी हमारी इस इबादत की वजह यह नहीं है कि ये हमारी अर्ज़ियाँ, दुआएँ और फ़रियादें सुनते हैं या हमें फ़ायदा और नुक़सान पहुँचाते हैं, इसलिए हमने इनको पूजना शुरू कर दिया है, बल्कि अस्ल वजह इस इबादत की यह है कि बाप-दादा के वक़्तों से यूँ ही होता चला आ रहा है। इस तरह उन्होंने ख़ुद यह मान लिया कि उनके मज़हब के लिए बाप-दादा के पीछे आँख

كُنْتُمْ تَعْبُدُوْنَ ۝ اَنْتُمْ وَاٰبَآؤُكُمُ الْاَقْدَمُوْنَ ۝ فَاِنَّهُمْ عَدُوٌّ لِّيْٓ

"कभी तुमने (आँखें खोलकर) उन चीज़ों को देखा भी जिनकी बन्दगी तुम और तुम्हारे पिछले बाप-दादा करते रहे?[54] (77) मेरे तो ये सब दुश्मन हैं,[55] सिवाय एक

बन्द करके चलने के सिवा कोई दलील नहीं है। दूसरे अलफ़ाज़ में मानो वे यह कह रहे थे कि आख़िर तुम नई बात हमें क्या बताने चले हो? क्या हम ख़ुद नहीं देखते कि ये लकड़ी और पत्थर के बुत हैं? क्या हम नहीं जानते कि लकड़ियाँ सुना नहीं करतीं और पत्थर किसी का काम बनाने या बिगाड़ने के लिए नहीं उठा करते? मगर ये हमारे बुज़ुर्ग जो सदियों से नस्ल-पर-नस्ल इनकी पूजा करते चले आ रहे हैं तो क्या वे सब तुम्हारे नज़दीक बेवक़ूफ़ थे? ज़रूर कोई वजह होगी कि वे इन बेजान बुतों की पूजा करते रहे। इसलिए हम भी उनके भरोसे पर यह काम कर रहे हैं।

54. यानी क्या एक मज़हब की सच्चाई के लिए बस यह दलील काफ़ी है कि वह बाप-दादा के वक़्तों से चला आ रहा है? क्या नस्ल-पर-नस्ल बस यूँ ही आँखें बन्द करके मक्खी-पर-मक्खी मारती चली जाए और कोई आँखें खोलकर न देखे कि जिनकी बन्दगी हम कर रहे हैं, उनके अन्दर सचमुच ख़ुदा होने की कोई सिफ़त (गुण) पाई जाती है या नहीं और वे हमारी क़िस्मतें बनाने और बिगाड़ने के कुछ इख़्तियार रखते भी हैं या नहीं?

55. यानी मैं जब ग़ौर करता हूँ तो मुझे यह नज़र आता है कि अगर मैं उनकी पूजा करूँगा तो मेरी दुनिया और आख़िरत दोनों बरबाद हो जाएँगी। मैं उनकी इबादत को सिर्फ़ बेफ़ायदा और बेनुक़सान ही नहीं समझता, बल्कि उलटा नुक़सानदेह समझता हूँ। इसलिए मेरे नज़दीक तो इनको पूजना दुश्मन को पूजना है। इसके अलावा हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की इस बात में उस बात की तरफ़ भी इशारा है जो सूरा-19 मरयम में कही गई है, "और उन्होंने अल्लाह के सिवा दूसरे माबूद बना लिए हैं ताकि वे उनके लिए ताक़त का ज़रिआ हों। हरगिज़ नहीं! जल्द ही वह वक़्त आएगा जबकि वे इनकी इबादत का इनकार कर देंगे और उलटे इनके मुख़ालिफ़ होंगे। यानी क़ियामत के दिन वे उनके ख़िलाफ़ गवाही देंगे और साफ़ कह देंगे कि न हमने उनसे कभी कहा कि हमारी इबादत करो, न हमें ख़बर कि ये हमारी इबादत करते थे।" (आयतें—81-82)

यहाँ तबलीग़ की हिकमत का भी एक प्वाइंट ध्यान देने के क़ाबिल है। हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने यह नहीं फ़रमाया कि ये तुम्हारे दुश्मन हैं, बल्कि यह फ़रमाया कि वे मेरे दुश्मन हैं। अगर वे कहते कि ये तुम्हारे दुश्मन हैं तो सामनेवाले के लिए ज़िद में मुब्तला हो जाने का ज़्यादा मौक़ा था। वे इस बहस में पड़ जाते कि बताओ, वे हमारे दुश्मन कैसे हो गए। इसके बरख़िलाफ़ जब उन्होंने कहा कि वे मेरे दुश्मन हैं तो इससे सामनेवाले के लिए यह सोचने का मौक़ा पैदा हो गया कि वह भी इसी तरह अपने भले-बुरे की फ़िक्र करे जिस तरह इबराहीम (अलैहि॰) ने की है। इस तरीक़े से हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने मानो हर इनसान के उस फ़ितरी जज़्बे से अपील की, जिसकी बुनियाद पर वह ख़ुद अपना भला चाहनेवाला होता है और

إِلَّا رَبَّ الْعٰلَمِيْنَ ﴿٧٧﴾ الَّذِيْ خَلَقَنِيْ فَهُوَ يَهْدِيْنِ ﴿٧٨﴾ وَالَّذِيْ هُوَ يُطْعِمُنِيْ
وَيَسْقِيْنِ ﴿٧٩﴾ وَإِذَا مَرِضْتُ فَهُوَ يَشْفِيْنِ ﴿٨٠﴾ وَالَّذِيْ يُمِيْتُنِيْ ثُمَّ يُحْيِيْنِ ﴿٨١﴾

रब्बुल-आलमीन[56] के, (78) जिसने मुझे पैदा किया,[57] फिर वही मेरी रहनुमाई करता है। (79) जो मुझे खिलाता और पिलाता है (80) और जब बीमार हो जाता हूँ तो वही मुझे अच्छा करता है।[58] (81) जो मुझे मौत देगा और फिर दोबारा मुझको ज़िन्दगी देगा।

जान-बूझकर कभी अपना बुरा नहीं चाहता। उन्होंने उसे बताया कि मैं तो इनकी इबादत में सरासर नुक़सान देखता हूँ और जानते-बूझते मैं अपना बुरा नहीं चाह सकता। इसलिए देख लो कि मैं ख़ुद इनकी बन्दगी और पूजा से पूरी तरह परहेज़ करता हूँ। इसके बाद सामनेवाला फ़ितरी तौर पर यह सोचने पर मजबूर था कि उसकी अपनी भलाई किस चीज़ में है, कहीं ऐसा तो नहीं कि वह अनजाने में अपना बुरा कर रहा हो।

56. यानी उन तमाम माबूदों में से, जिनकी दुनिया में बन्दगी और पूजा की जाती है, सिर्फ़ सारे जहानों का रब एक अल्लाह है जिसकी बन्दगी में मुझे अपनी भलाई नज़र आती है और जिसकी इबादत मेरे नज़दीक एक दुश्मन की नहीं, बल्कि अपने अस्ल रब की इबादत है। इसके बाद हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) कुछ जुमलों में वे वजहें बयान करते हैं जिनकी बुनियाद पर सिर्फ़ सारे जहानों का रब अल्लाह ही इबादत का हक़दार है, और इस तरह अपने सामनेवालों को यह एहसास दिलाने की कोशिश करते हैं कि तुम्हारे पास तो अल्लाह को छोड़कर दूसरे माबूदों की इबादत के लिए कोई मुनासिब और अक़्ल में आनेवाली वजह सिवाय बुज़र्गों की अंधी पैरवी के नहीं है जिसे तुम बयान कर सको, मगर मेरे पास सिर्फ़ एक अल्लाह की इबादत करने के लिए बहुत ही समझ में आनेवाली वजहें मौजूद हैं, जिनसे तुम इनकार भी नहीं कर सकते।

57. यह सबसे पहली वजह है जिसकी बुनियाद पर अल्लाह और सिर्फ़ एक अल्लाह ही इबादत का हक़दार है। जिन लोगों को यह समझाया जा रहा था, वे भी इस बात को जानते और मानते थे कि अल्लाह तआला उनका पैदा करनेवाला है और वे यह भी मानते थे कि उनके पैदा करने में किसी दूसरे का कोई हिस्सा नहीं है। यहाँ तक कि अपने माबूदों के बारे में भी हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की क़ौम समेत तमाम मुशरिकों का यह अक़ीदा रहा है कि वे ख़ुद अल्लाह तआला के बनाए हुए हैं सिवाय नास्तिकों के और किसी को भी दुनिया में अल्लाह के कायनात का पैदा करनेवाला होने से इनकार नहीं रहा। इसलिए हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की पहली दलील यह थी कि मैं सिर्फ़ उसकी इबादत को सही और हक़ के मुताबिक़ समझता हूँ जिसने मुझे पैदा किया है। दूसरी कोई हस्ती मेरी इबादत की कैसे हक़दार हो सकती है जबकि मेरे पैदा करने में उसका कोई हिस्सा नहीं। मख़्लूक़ (सृष्टि) को अपने पैदा करनेवाले की बन्दगी तो करनी ही चाहिए, लेकिन जो पैदा करनेवाला नहीं है उसकी बन्दगी वह क्यों करे?

58. यह दूसरी वजह है अल्लाह और अकेले अल्लाह ही के इबादत का हक़दार होने की। अगर उसने इनसान को बस पैदा ही करके छोड़ दिया होता और आगे उसकी ख़बरगीरी और देखभाल

وَالَّذِيْٓ اَطْمَعُ اَنْ يَّغْفِرَ لِيْ خَطِيْٓـَٔتِيْ يَوْمَ الدِّيْنِ ﴿٨٢﴾

(82) और जिससे मैं उम्मीद रखता हूँ कि बदले के दिन में वह मेरी ख़ता माफ़ कर देगा।"[59]

से वह बिलकुल बेताल्लुक़ रहता, तब भी कोई मुनासिब वजह इस बात की हो सकती थी कि इनसान उसके अलावा किसी दूसरी तरफ़ भी सहारे ढूंढ़ने के लिए रुजू करता। लेकिन उस ख़ुदा ने तो पैदा करने के साथ रहनुमाई, परवरिश, देख-भाल, हिफ़ाज़त और ज़रूरत पूरी करने का ज़िम्मा भी ख़ुद ही ले लिया है। जिस लम्हे इनसान दुनिया में क़दम रखता है, उसी वक़्त एक तरफ़ उसकी माँ के सीने में दूध पैदा हो जाता है तो दूसरी तरफ़ कोई अनदेखी ताक़त उसे दूध चूसने और हलक़ से उतारने का तरीक़ा सिखा देती है। फिर इस तरबियत और रहनुमाई का सिलसिला पैदाइश के पहले दिन से शुरू होकर मौत की आख़िरी घड़ी तक बराबर जारी रहता है। ज़िन्दगी के हर मरहले में इनसान को अपने वुजूद और पलने-बढ़ने, बाक़ी रहने और तरक़्क़ी के लिए जिस-जिस तरह के सरो-सामान की ज़रूरत पेश आती है वह सब उसके पैदा करनेवाले ने ज़मीन से लेकर आसमान तक हर तरफ़ जुटा दिया है। इस सरो-सामान से फ़ायदा उठाने और काम लेने के लिए जिन-जिन ताक़तों और क़ाबिलियतों की उसको ज़रूरत पेश आती है वह सब भी उसके वुजूद में रख दी हैं और ज़िन्दगी के हर मैदान में जिस-जिस तरह की रहनुमाई उसको दरकार होती है उसका भी पूरा इन्तिज़ाम उस ख़ुदा ने कर दिया है। इसके साथ उसने इनसानी वुजूद की हिफ़ाज़त के लिए और उसको आफ़तों से, बीमारियों से, जानलेवा कीटाणुओं से, और ज़हरीले असरात से बचाने के लिए ख़ुद उसके जिस्म में इतने ज़बरदस्त इन्तिज़ाम किए हैं कि इनसान का इल्म अभी तक उन सबको जान भी नहीं सका है। अगर ये क़ुदरती इन्तिज़ाम मौजूद न होते तो एक मामूली काँटा चुभ जाना भी इनसान के लिए जानलेवा साबित होता और अपने इलाज के लिए आदमी की कोई कोशिश भी कामयाब न हो सकती। पैदा करनेवाले की हर मामले में रहमत और रबूबियत (पालन-पोषण) जब हर पल हर पहलू से इनसान का सहारा बन रही है तो इससे बड़ी बेवक़ूफ़ी और जहालत और क्या हो सकती है और इससे बढ़कर एहसान भुला देना भी और क्या हो सकता है कि इनसान उसको छोड़कर किसी दूसरी हस्ती के आगे अपना सिर झुकाए और ज़रूरत पूरी करने और मुश्किल हल करने के लिए किसी और का दामन थामे।

59. यह तीसरी वजह है जिसकी बुनियाद पर अल्लाह तआला के सिवा दूसरे की इबादत दुरुस्त नहीं हो सकती। इनसान का मामला अपने ख़ुदा के साथ सिर्फ़ इस दुनिया और इसकी ज़िन्दगी तक महदूद नहीं है कि वुजूद की सरहद में क़दम रखने से शुरू होकर मौत की आख़िरी हिचकी पर वह ख़त्म हो जाए, बल्कि इसके बाद उसका अंजाम भी सरासर ख़ुदा ही के हाथ में है। वही ख़ुदा जो इनसान को वुजूद में लाया है, आख़िरकार उसे इस दुनिया से वापस बुला लेता है और कोई ताक़त दुनिया में ऐसी नहीं है जो इनसान की इस वापसी को रोक सके। आज तक किसी दवा या डॉक्टर या देवी-देवता की दख़ल-अन्दाज़ी उस हाथ को पकड़ने में कामयाब नहीं हो सकी है जो इनसान को यहाँ से निकाल ले जाता है, यहाँ तक कि वे बहुत-से इनसान भी जिन्हें

رَبِّ هَبْ لِيْ حُكْمًا وَّأَلْحِقْنِيْ بِالصّٰلِحِيْنَ ۝ وَاجْعَلْ لِّيْ لِسَانَ صِدْقٍ

(83) (इसके बाद इबराहीम ने दुआ की), "ऐ मेरे रब, मुझे हुक्म अता कर।[60] और मुझको नेक लोगों के साथ मिला।[61] (84) और बाद के आनेवालों में मुझको सच्ची

माबूद बनाकर इनसानों ने पूज डाला है, ख़ुद अपनी मौत को भी नहीं टाल सके हैं। सिर्फ़ ख़ुदा ही इस बात का फ़ैसला करनेवाला है कि किस शख़्स को कब इस दुनिया से वापस बुलाना है और जिस वक़्त जिसका बुलावा भी उसके यहाँ से आ जाता है उसे चाहे-अनचाहे जाना ही पड़ता है। फिर वही ख़ुदा है जो अकेला इस बात का फ़ैसला करेगा कि कब इन तमाम इनसानों को जो दुनिया में पैदा हुए थे दोबारा वुजूद में लाए और उनसे उनकी दुनिया की ज़िन्दगी का हिसाब ले। उस वक़्त भी किसी की ताक़त न होगी कि मौत के बाद उठने से किसी को बचा सके या ख़ुद बच सके। हर एक को उसके हुक्म पर उठना ही होगा और उसकी अदालत में हाज़िर होना पड़ेगा। फिर वही अकेला ख़ुदा उस अदालत का क़ाज़ी और हाकिम होगा। कोई दूसरा उसके अधिकारों में ज़र्रा बराबर भी शरीक न होगा। सज़ा देना या माफ़ करना बिलकुल उसके अपने हाथ में होगा। किसी की यह ताक़त न होगी कि जिसे वह सज़ा देना चाहे उसको माफ़ करा ले जाए, या जिसे वह माफ़ करना चाहे उसे सज़ा दिलवा सके। दुनिया में जिनको माफ़ करवा लेने का मालिक समझा जाता है वह ख़ुद अपनी माफ़ी के लिए भी उसी की मेहरबानी की आस लगाए बैठे होंगे। इन हक़ीक़तों के होते हुए जो शख़्स ख़ुदा के सिवा किसी की बन्दगी करता है, वह अपने बुरे अंजाम का ख़ुद सामान करता है। दुनिया से लेकर आख़िरत तक आदमी की सारी क़िस्मत तो हो ख़ुदा के हाथ में, और इसी क़िस्मत के बनाव की ख़ातिर आदमी जाए उनके पास जिनके बस में कुछ नहीं है, इससे बढ़कर आमाल की ख़राबी और क्या हो सकती है!

60. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'हुक्म' इस्तेमाल हुआ है। 'हुक्म' से मुराद 'नुबूवत' (पैग़म्बरी) यहाँ दुरुस्त नहीं है, क्योंकि जिस वक़्त की यह दुआ है उस वक़्त हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को पैग़म्बरी मिल चुकी थी और अगर मान लीजिए कि यह दुआ उससे पहले की भी हो तो पैग़म्बरी किसी के माँगने पर उसे नहीं दी जाती, बल्कि वह एक वहबी (दी जानेवाली) चीज़ है जो अल्लाह तआला ख़ुद ही जिसे चाहता है देता है। इसलिए यहाँ हुक्म से मुराद इल्म, हिकमत, सही समझ और फ़ैसला करने की क़ुव्वत ही लेना दुरुस्त है और हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की यह दुआ लगभग इसी मानी में है जिसमें नबी (सल्ल॰) से यह दुआ मिलती है कि "अरिनल-अश्या-अ कमा हि-य" यानी हमको इस क़ाबिल बना कि हम हर चीज़ को उसी नज़र से देखें जैसी कि वह अस्ल में है और हर मामले में वही राय क़ायम करें जैसी कि उसकी हक़ीक़त के लिहाज़ से क़ायम की जानी चाहिए।

61. यानी दुनिया में मुझे अच्छा समाज दे और आख़िरत में मेरा अंजाम नेक लोगों के साथ कर। जहाँ तक आख़िरत का ताल्लुक़ है, नेक लोगों के साथ किसी का अंजाम होना और उसका नजात पाना एक ही बात है, इसलिए यह तो हर उस इनसान की दुआ होनी ही चाहिए जो मौत

فِي الْاٰخِرِيْنَ ﴿٨٤﴾ وَاجْعَلْنِيْ مِنْ وَّرَثَةِ جَنَّةِ النَّعِيْمِ ﴿٨٥﴾
وَاغْفِرْ لِاَبِيْٓ اِنَّهٗ كَانَ مِنَ الضَّآلِّيْنَ ﴿٨٦﴾ وَلَا تُخْزِنِيْ

नामवरी दे।[62] (85) और मुझे नेमत भरी जन्नत के वारिसों में शामिल कर। (86) और मेरे बाप को माफ़ कर दे कि बेशक वह गुमराह लोगों में से है[63] (87) और मुझे उस दिन

के बाद की ज़िन्दगी और इनाम और सज़ा पर यक़ीन रखता हो। लेकिन दुनिया में भी एक पाकीज़ा रूह की दिली तमन्ना यही होती है कि अल्लाह तआला उसे एक बदअख़लाक़ और ख़ुदा के नाफ़रमान और बिगड़े हुए समाज में ज़िन्दगी गुज़ारने की मुसीबत से नजात दे और उसको नेक लोगों के साथ मिलाए। समाज का बिगाड़ जहाँ चारों तरफ़ फैला हो वहाँ एक आदमी के लिए सिर्फ़ यही चीज़ हर वक़्त तकलीफ़ का सबब नहीं होती कि वह अपने आसपास गन्दगी-ही-गन्दगी फैली हुई देखता है, बल्कि उसके लिए ख़ुद पाकीज़ा रहना और अपने आपको गन्दगी की छींटों से बचाकर रखना भी मुश्किल होता है। इसलिए एक नेक और भला आदमी उस वक़्त तक बेचैन ही रहता है जब तक या तो उसका अपना समाज पाक-साफ़ न हो जाए, या फिर उससे निकलकर वह कोई दूसरा ऐसा समाज न पा ले जो हक़ और सच्चाई के उसूलों पर चलनेवाला हो।

62. यानी बाद की नस्लें मुझे भलाई के साथ याद करें। मैं दुनिया से वह काम करके न जाऊँ कि इनसानी नस्ल मेरे बाद मेरी गिनती उन ज़ालिमों में करे जो ख़ुद बिगड़े हुए थे और दुनिया को बिगाड़कर चले गए, बल्कि मुझसे वे कारनामे हों जिनकी वजह से रहती दुनिया तक मेरी ज़िन्दगी दुनियावालों के लिए रौशनी का मीनार बनी रहे और मुझे इनसानियत पर एहसान करनेवालों में गिना जाए। यह सिर्फ़ शुहरत और नामवरी की दुआ नहीं है, बल्कि सच्ची शुहरत और हक़ीक़ी नामवरी की दुआ है जो ज़रूर ही ठोस ख़िदमतों और क़ीमती कारनामों ही के नतीजे में हासिल होती है। किसी शख़्स को इस चीज़ का हासिल होना अपने अन्दर दो फ़ायदे रखता है। दुनिया में इसका फ़ायदा यह है कि इनसानी नस्लों को बुरी मिसालों के मुक़ाबले में एक नेक मिसाल मिलती है, जिससे वह भलाई का सबक़ हासिल करती हैं और हर नेक आदमी को सीधे रास्ते पर चलने में इससे मदद मिलती है और आख़िरत में इसका फ़ायदा यह है कि एक आदमी की छोड़ी हुई नेक मिसाल से क़ियामत तक जितने लोगों को भी हिदायत मिल गई हो, उनका सवाब (इनाम) उस शख़्स को भी मिलेगा और क़ियामत के दिन उसके अपने आमाल के साथ अल्लाह के करोड़ों बन्दों की यह गवाही भी उसके हक़ में मौजूद होगी कि वह दुनिया में भलाई के चश्मे की नहर जारी करके आया है जिनसे नस्ल-पर-नस्ल अपनी प्यास बुझाती रही है।

63. क़ुरआन के कुछ आलिमों ने हज़रत इबराहीम (अलैहि०) की इस दुआ-ए-मग़फ़िरत (अल्लाह से माफ़ी और नजात की दुआ) का यह मतलब बयान किया है कि मग़फ़िरत बहरहाल इस्लाम की

يَوْمَ يُبْعَثُوْنَ ﴿٨٧﴾ يَوْمَ لَا يَنْفَعُ مَالٌ وَّلَا بَنُوْنَ ﴿٨٨﴾ إِلَّا مَنْ أَتَى اللّٰهَ بِقَلْبٍ سَلِيْمٍ ﴿٨٩﴾

रुसवा न कर जबकि सब लोग ज़िन्दा करके उठाए जाएँगे[64] (88) जबकि न माल कोई फ़ायदा देगा न औलाद, (89) सिवाय इसके कि कोई शख़्स भला-चंगा दिल लिए हुए अल्लाह के सामने हाज़िर हो।''[65]

शर्त के साथ जुड़ी है, इसलिए उनका अपने बाप के लिए मग़फ़िरत की दुआ करना मानो इस बात की दुआ करना था कि अल्लाह तआला उसे इस्लाम लाने की तौफ़ीक़ (ताक़त) दे। लेकिन क़ुरआन मजीद में उसके बारे में अलग-अलग जगहों पर जो साफ़ बयान मिलते हैं वे इस मतलब व मानी से मेल नहीं खाते। क़ुरआन का कहना है कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) अपने बाप के ज़ुल्म से तंग आकर जब घर से निकलने लगे तो उन्होंने जाते वक़्त फ़रमाया, ''आपको सलाम है, मैं आपके लिए अपने रब से माफ़ी और नजात की दुआ करूँगा, वह मेरे ऊपर बहुत मेहरबान है।'' इसी वादे की वजह से उन्होंने यह दुआ-ए-मग़फ़िरत न सिर्फ़ अपने बाप के लिए की, बल्कि एक दूसरी जगह पर बयान हुआ है कि माँ और बाप दोनों के लिए की, ''रब्बनग़-फ़िरली वलिवालिदय-य'' (सूरा-14 इबराहीम, आयत-41) यानी ''ऐ मेरे रब, मेरी और मेरे माँ-बाप की मग़फ़िरत फ़रमा!'' लेकिन बाद में उन्हें ख़ुद यह एहसास हो गया कि हक़ का एक दुश्मन, चाहे वह एक ईमानवाले का बाप ही क्यों न हो, दुआ-ए-मग़फ़िरत का हक़दार नहीं है, ''इबराहीम का अपने बाप के लिए दुआ-ए-मग़फ़िरत करना सिर्फ़ उस वादे की वजह से था जो उसने उससे किया था। मगर जब यह बात उसपर खुल गई कि वह ख़ुदा का दुश्मन है तो उसने उससे अलग होने का एलान कर दिया।'' (सूरा-9 तौबा, आयत-114)

64. यानी क़ियामत के दिन यह रुसवाई मुझे न दिखा कि हश्र के मैदान में शुरू और आख़िर के तमाम लोगों के सामने इबराहीम का बाप सज़ा पा रहा हो और इबराहीम खड़ा देख रहा हो।

65. इन दो जुमलों के बारे में यह बात यक़ीन के साथ नहीं कही जा सकती कि ये हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की दुआ का हिस्सा हैं या इन्हें अल्लाह तआला ने उनकी बात पर इज़ाफ़ा करते हुए इरशाद फ़रमाया है। अगर पहली बात मानी जाए तो इसका मतलब यह है कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) अपने बाप के लिए यह दुआ करते वक़्त ख़ुद भी इन हक़ीक़तों का एहसास रखते थे और दूसरी बात मानी जाए तो इसका मतलब यह होगा कि उनकी दुआ पर तबसिरा (टिप्पणी) करते हुए अल्लाह तआला यह फ़रमा रहा है कि क़ियामत के दिन आदमी के काम अगर कोई चीज़ आ सकती है तो वह माल और औलाद नहीं, बल्कि सिर्फ़ भला-चंगा दिल है, ऐसा दिल जो कुफ़्र और शिर्क और ख़ुदा की नाफ़रमानी, बिगाड़ और सरकशी से पाक हो। माल और औलाद भी साफ़-सुथरे दिल के साथ ही फ़ायदेमन्द हो सकते हैं, इसके बिना नहीं। माल सिर्फ़ उस सूरत में वहाँ फ़ायदेमन्द होगा जबकि आदमी ने दुनिया में ईमान और ख़ुलूस

وَأُزْلِفَتِ الْجَنَّةُ لِلْمُتَّقِيْنَ ۙ﴿٩٠﴾ وَبُرِّزَتِ الْجَحِيْمُ لِلْغٰوِيْنَ ۙ﴿٩١﴾ وَقِيْلَ
لَهُمْ اَيْنَ مَا كُنْتُمْ تَعْبُدُوْنَ ۙ﴿٩٢﴾ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ ؕ هَلْ يَنْصُرُوْنَكُمْ
اَوْ يَنْتَصِرُوْنَ ؕ﴿٩٣﴾ فَكُبْكِبُوْا فِيْهَا هُمْ وَالْغَاوٗنَ ۙ﴿٩٤﴾ وَجُنُوْدُ
اِبْلِيْسَ اَجْمَعُوْنَ ؕ﴿٩٥﴾ قَالُوْا وَهُمْ فِيْهَا يَخْتَصِمُوْنَ ۙ﴿٩٦﴾ تَاللّٰهِ اِنْ
كُنَّا لَفِيْ ضَلٰلٍ مُّبِيْنٍ ۙ﴿٩٧﴾ اِذْ نُسَوِّيْكُمْ بِرَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ﴿٩٨﴾ وَمَاۤ

(90) (उस दिन[66]) जन्नत परहेज़गारों के क़रीब ले आई जाएगी। (91) और जहन्नम बहके हुए लोगों के सामने खोल दी जाएगी[67] (92) और उनसे पूछा जाएगा कि "अब कहाँ हैं वे जिनकी तुम ख़ुदा को छोड़कर इबादत किया करते थे? (93) क्या वे तुम्हारी कुछ मदद कर रहे हैं या ख़ुद अपना बचाव कर सकते हैं?" (94-95) फिर वे माबूद और ये बहके हुए लोग, और इबलीस के लश्कर सब-के-सब उसमें ऊपर तले धकेल दिए जाएँगे।[68] (96-97) वहाँ ये सब आपस में झगड़ेंगे और ये बहके हुए लोग (अपने माबूदों से) कहेंगे कि "ख़ुदा की क़सम, हम तो खुली गुमराही में मुब्तला थे (98) जबकि तुमको रब्बुल-आलमीन की बराबरी का दर्जा दे रहे थे। (99) और वे

(निष्ठा) के साथ उसे अल्लाह की राह में ख़र्च किया हो, वरना करोड़पति आदमी भी वहाँ कंगाल होगा। औलाद भी सिर्फ़ उसी हालत में वहाँ काम आ सकेगी जबकि आदमी ने दुनिया में उसे अपनी हद तक ईमान और अच्छे कामों की तालीम दी हो, वरना बेटा अगर नबी और पैग़म्बर भी हो तो वह बाप सज़ा पाने से नहीं बच सकता जिसका अपना ख़ातिमा कुफ़्र और ख़ुदा की नाफ़रमानी पर हुआ हो और औलाद की नेकी में जिसका अपना कोई हिस्सा न हो।

66. यहाँ से आख़िरी पैराग्राफ़ तक की पूरी इबारत हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की बात का हिस्सा नहीं मालूम होती, बल्कि इसका मज़मून साफ़ ज़ाहिर कर रहा है कि यह अल्लाह तआला का अपना इरशाद है।

67. यानी एक तरफ़ परहेज़गार लोग जन्नत में दाख़िल होने से पहले ही यह देख रहे होंगे कि कैसी नेमतों से भरी जगह है जहाँ अल्लाह की मेहरबानी से हम जानेवाले हैं और दूसरी तरफ़ गुमराह लोग अभी हश्र के मैदान ही में होंगे कि उनके सामने उस जहन्नम का भयानक मंज़र पेश कर दिया जाएगा जिसमें उन्हें जाना है।

68. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'कुबकिबू' आया है जिसमें दो मतलब शामिल हैं। एक यह कि एक के ऊपर एक धकेल दिया जाएगा, दूसरा यह कि वे जहन्नम की गहराई तक लुढ़कते चले जाएँगे।

اَضَلَّنَآ اِلَّا الْمُجْرِمُوْنَ﴿٩٩﴾ فَمَا لَنَا مِنْ شَافِعِيْنَ﴿١٠٠﴾ وَلَا صَدِيْقٍ حَمِيْمٍ﴿١٠١﴾

मुजरिम लोग ही थे जिन्होंने हमको इस गुमराही में डाला।[69] (100) अब न हमारा कोई सिफ़ारिशी है[70] (101) और न कोई जिगरी दोस्त।[71]

69. ये पैरोकारों और अक़ीदतमन्दों (श्रद्धालुओं) की तरफ़ से उन लोगों की ख़ातिरदारी हो रही होगी जिन्हें यही लोग दुनिया में बुज़ुर्ग, पेशवा और रहनुमा मानते रहे थे, जिनके हाथ-पाँव चूमे जाते थे, जिनकी कथनी और करनी को दलील माना जाता था, जिनके सामने भेंटें चढ़ाई जाती थीं। आख़िरत में जाकर जब हक़ीक़त खुलेगी और पीछे चलनेवालों को मालूम हो जाएगा कि आगे चलनेवाले ख़ुद कहाँ आए हैं और हमें कहाँ ले आए हैं तो यही अक़ीदतमन्द उनको मुजरिम ठहराएँगे और उनपर लानत भेजेंगे। क़ुरआन मजीद में जगह-जगह आख़िरत की दुनिया का यह इबरतनाक नक़्शा खींचा गया है ताकि आँखें बन्द करके पीछे चलनेवाले दुनिया में आँखें खोलें और किसी के पीछे चलने से पहले देख लें कि वह ठीक भी जा रहा है या नहीं।

सूरा-7 आराफ़ में कहा गया, "हर गरोह जहन्नम में दाख़िल होगा तो अपने साथ के गरोह पर लानत करता जाएगा। यहाँ तक कि जब सब वहाँ इकट्ठे हो जाएँगे तो हर बादवाला गरोह पहलेवाले गरोह के बारे में कहेगा कि ऐ हमारे रब, ये हैं वे लोग जिन्होंने हमें गुमराह किया था, अब इन्हें आग का दोहरा अज़ाब दे। रब फ़रमाएगा, सभी के लिए दोहरा अज़ाब है, मगर तुम जानते नहीं हो।" (आयत-38)

सूरा-41 हा-मीम-सजदा में कहा गया है, "और हक़ के इनकारी उस वक़्त कहेंगे कि ऐ परवरदिगार, उन जिन्नों और इनसानों को हमारे सामने ला जिन्होंने हमें गुमराह किया था, ताकि हम उन्हें पाँवों तले रौंद डालें और वे पस्त और रुसवा होकर रहें।" (आयत-29)

यही बात सूरा-33 अहज़ाब में कही गई है, "और वे कहेंगे कि ऐ रब, हमने अपने सरदारों और बड़ों की पैरवी की और उन्होंने हमें सीधे रास्ते से भटका दिया। ऐ रब, इनको दो गुना अज़ाब दे और इनपर सख़्त लानत कर।" (आयतें—67-68)

70. यानी जिन्हें हम दुनिया में सिफ़ारिशी समझते थे और जिनके बारे में हमारा यह अक़ीदा था कि उनका दामन जिसने थाम लिया बस उसका बेड़ा पार है, उनमें से आज कोई भी सिफ़ारिश की कोशिश के लिए ज़बान खोलनेवाला नहीं है।

71. यानी कोई ऐसा भी नहीं है जो हमारा दुख बाँटनेवाला और हमारे लिए कुढ़नेवाला हो, चाहे हमको छुड़ा न सके मगर कम-से-कम उसे हमारे साथ कोई हमदर्दी ही हो। क़ुरआन मजीद यह बताता है कि आख़िरत में दोस्तियाँ सिर्फ़ ईमानवालों ही की बाक़ी रह जाएँगी। रहे गुमराह लोग, तो दुनिया में चाहे कैसे ही जिगरी दोस्त रहे हों, वहाँ पहुँचकर एक-दूसरे के जानी दुश्मन होंगे, एक-दूसरे को मुजरिम ठहराएँगे और अपनी बरबादी का ज़िम्मेदार ठहराकर हर एक-दूसरे को ज़्यादा-से-ज़्यादा सज़ा दिलवाने की कोशिश करेगा, "दोस्त उस दिन एक-दूसरे के दुश्मन होंगे सिवाय परहेज़गारों के (कि उनकी दोस्तियाँ क़ायम रहेंगी)।" (सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयत-67)

فَلَوْ اَنَّ لَنَا كَرَّةً فَنَكُوْنَ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ۝١٠٢ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيَةً ؕ وَمَا
كَانَ اَكْثَرُهُمْ مُّؤْمِنِيْنَ۝١٠٣ وَاِنَّ رَبَّكَ لَهُوَ الْعَزِيْزُ الرَّحِيْمُ۝١٠٤

(102) काश, हमें एक बार फिर पलटने का मौक़ा मिल जाए तो हम मोमिन (ईमानवाले) हों।''[72]

(103) यक़ीनन इसमें एक बड़ी निशानी है,[73] मगर इनमें से ज़्यादातर लोग ईमान लानेवाले नहीं। (104) और हक़ीक़त यह है कि तेरा रब ज़बरदस्त भी है और रहम करनेवाला भी।

72. इस तमन्ना का जवाब भी क़ुरआन में दे दिया गया है कि ''अगर उन्हें पिछली ज़िन्दगी की तरफ़ वापस भेज दिया जाए तो वही कुछ करेंगे जिससे उन्हें मना किया गया है।'' (सूरा-6 अनआम, आयत-28) रहा यह सवाल कि उन्हें वापसी का मौक़ा क्यों न दिया जाएगा, इसकी वजहों पर तफ़सीली चर्चा हम सूरा-23 मोमिनून, हाशिए—90 से 92 में कर चुके हैं।

73. हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के इस क़िस्से में निशानी के दो पहलू हैं। एक यह कि अरब के मुशरिक लोग और ख़ास तौर से क़ुरैश के लोग एक तरफ़ तो हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की पैरवी का दावा और उनके साथ अपना रिश्ता जोड़ने पर फ़ख़्र (गर्व) करते हैं, मगर दूसरी तरफ़ उसी शिर्क में मुब्तला हैं जिसके ख़िलाफ़ जिद्दो-जुहद करते इबराहीम (अलैहि॰) की उम्र बीत गई थी, और उनके लाए हुए दीन की दावत आज जो नबी पेश कर रहा है उसके ख़िलाफ़ ठीक वही कुछ कर रहे हैं जो हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की क़ौम ने उनके साथ किया था। उनको याद दिलाया जाता है कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) तो शिर्क के दुश्मन और तौहीद (एक अल्लाह को मानने) की दावत के अलमबरदार थे, तुम ख़ुद भी जानते और मानते हो कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) मुशरिक न थे, मगर फिर भी तुम अपनी ज़िद पर क़ायम हो। दूसरा पहलू इस क़िस्से में निशानी का यह है कि इबराहीम (अलैहि॰) की क़ौम दुनिया से मिट गई और ऐसी मिटी कि उसका नामो-निशान तक बाक़ी न रहा, इसमें से अगर किसी को बाक़ी रहना नसीब हुआ तो सिर्फ़ इबराहीम (अलैहि॰) और उनके मुबारक बेटों (इसमाईल और इसहाक़ अलैहि॰) की औलाद ही को नसीब हुआ। क़ुरआन में हालाँकि उस अज़ाब का ज़िक्र नहीं किया गया है जो हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के निकल जाने के बाद उनकी क़ौम पर आया, लेकिन उसकी गिनती अज़ाब भोगनेवाली क़ौमों ही में की गई है, ''क्या इन्हें उन लोगों की ख़बर नहीं पहुँची जो इनसे पहले गुज़र चुके हैं, नूह की क़ौम की, आद और समूद की क़ौम की, और इबराहीम की क़ौम की, और मदयनवालों की और उन बस्तियों की जिन्हें उलट दिया गया?''

(सूरा-9 तौबा, आयत-70)

كَذَّبَتْ قَوْمُ نُوحِ ٱلْمُرْسَلِينَ ۝١٠٥ إِذْ قَالَ لَهُمْ أَخُوهُمْ نُوحٌ أَلَا تَتَّقُونَ ۝١٠٦

(105) नूह की क़ौम[74] ने रसूलों को झुठलाया।[75] (106) याद करो जबकि उनके भाई नूह ने उनसे कहा था, "क्या तुम डरते नहीं हो?[76]

74. नूह और उनकी क़ौम का क़िस्सा क़ुरआन में कुछ फ़र्क़ के साथ कई जगहों पर आया है। देखिए– सूरा-7 आराफ़, आयतें–59-64; सूरा-10 यूनुस, आयतें–71-73; सूरा-11 हूद, आयतें–25-45; सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-3; सूरा-21 अम्बिया, आयतें–76-77; सूरा-23 मोमिनून, आयतें–23-30; सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयत-37। इसके अलावा नूह (अलैहि०) के क़िस्से की तफ़सीलात के लिए क़ुरआन मजीद के ये मक़ामात भी ध्यान में रहें, सूरा-29 अन्कबूत, आयतें–14-15; सूरा-37 साफ़्फ़ात, आयतें–75-82; सूरा-54 क़मर, आयतें–9-15; सूरा-71 नूह, पूरी सूरा।

75. हालाँकि उन्होंने एक ही पैग़म्बर को झुठलाया था, लेकिन चूँकि पैग़म्बर को झुठलाना अस्ल में उस दावत और पैग़ाम को झुठलाना है जिसे लेकर वह अल्लाह तआला की तरफ़ से आता है, इसलिए जो शख़्स या गरोह किसी एक पैग़म्बर का भी इनकार कर दे वह अल्लाह तआला की निगाह में तमाम पैग़म्बरों का इनकार करनेवाला है। यह एक बड़ी अहम उसूली हक़ीक़त है जिसे क़ुरआन में जगह-जगह अलग-अलग तरीक़ों से बयान किया गया है। यहाँ तक कि वे लोग भी इनकारी ठहराए गए हैं जो सिर्फ़ एक पैग़म्बर का इनकार करते हों और बाक़ी तमाम पैग़म्बरों को मानते हों, इसलिए कि जो शख़्स अस्ल रिसालत के पैग़ाम का माननेवाला है वह तो लाज़िमन हर पैग़म्बर को मानेगा। मगर जो शख़्स किसी पैग़म्बर का इनकार करता है वह अगर दूसरे पैग़म्बरों को मानता भी है तो किसी तरफ़दारी या बाप-दादा की पैरवी की बुनियाद पर मानता है, पैग़म्बरी के अस्ल पैग़ाम को नहीं मानता, वरना मुमकिन न था कि वही हक़ (सत्य) एक पेश करे तो यह उसे मान ले और वही दूसरा पेश करे तो यह उसका इनकार कर दे।

76. दूसरी जगहों पर हज़रत नूह (अलैहि०) की अपनी क़ौम से शुरुआती बात इन अलफ़ाज़ में बयान हुई है, "अल्लाह की बन्दगी करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई माबूद नहीं है, तो क्या तुम डरते नहीं हो?" (सूरा-23 मोमिनून, आयत-23) "अल्लाह की बन्दगी करो और उससे डरो और मेरा कहा मानो।" (सूरा-7 नूह, आयत-3) इसलिए यहाँ हज़रत नूह (अलैहि०) के यह कहने का मतलब सिर्फ़ डर नहीं बल्कि अल्लाह का डर है। यानी क्या तुम अल्लाह से निडर हो गए? उसके सिवा दूसरों की बन्दगी करते हुए तुम कुछ नहीं सोचते कि इस बाग़ियाना रवैये का अंजाम क्या होगा?

दावत के शुरू में डर का एहसास कराने की हिकमत यह है कि जब तक किसी शख़्स या गरोह को उसके ग़लत रवैये के बुरे अंजाम का ख़तरा महसूस न कराया जाए, वह सही बात और उसकी दलीलों की तरफ़ ध्यान देने पर आमादा नहीं होता। सीधे रास्ते की तलाश आदमी के दिल में पैदा ही उस वक़्त होती है जब उसको यह फ़िक्र लग जाती है कि कहीं मैं किसी टेढ़े रास्ते पर तो नहीं जा रहा हूँ जिसमें तबाही का अन्देशा हो।

إِنِّي لَكُمْ رَسُولٌ أَمِينٌ ﴿١٠٧﴾ فَاتَّقُوا اللَّهَ وَأَطِيعُونِ ﴿١٠٨﴾ وَمَا أَسْأَلُكُمْ
عَلَيْهِ مِنْ أَجْرٍ ۖ إِنْ أَجْرِيَ إِلَّا عَلَىٰ رَبِّ الْعَالَمِينَ ﴿١٠٩﴾ فَاتَّقُوا اللَّهَ

(107) मैं तुम्हारे लिए एक अमानतदार रसूल हूँ,[77] (108) इसलिए तुम अल्लाह से डरो और मेरा कहा मानो।[78] (109) मैं इस काम पर तुमसे किसी बदले का तलबगार नहीं हूँ। मेरा इनाम तो रब्बुल-आलमीन के ज़िम्मे है।[79] (110) तो तुम अल्लाह से डरो और

77. इसके दो मतलब हैं। एक यह कि मैं अपनी तरफ़ से कोई बात बनाकर या घटा-बढ़ाकर बयान नहीं करता, बल्कि जो कुछ ख़ुदा की तरफ़ से मुझपर उतरता है वही पूरा-का-पूरा तुम तक पहुँचा देता हूँ और दूसरा मतलब यह है कि मैं एक ऐसा पैग़म्बर हूँ जिसे तुम पहले से एक अमानतदार और सच्चे आदमी की हैसियत से जानते हो। जब मैं लोगों के मामले में ख़ियानत (बेईमानी) करनेवाला नहीं हूँ, तो ख़ुदा के मामले में कैसे ख़ियानत कर सकता हूँ। लिहाज़ा तुम्हें समझना चाहिए कि जो कुछ मैं ख़ुदा की तरफ़ से पेश कर रहा हूँ उसमें भी वैसा ही अमानतदार हूँ जैसा दुनिया के मामलों में आज तक तुमने मुझे अमानतदार पाया है।

78. यानी मेरे अमानतदार पैग़म्बर होने का लाज़िमी तक़ाज़ा यह है कि तुम दूसरे सब माबूदों की फ़रमाँबरदारी छोड़कर सिर्फ़ मेरी फ़रमाँबरदारी करो और जो हुक्म मैं तुम्हें देता हूँ उनके आगे सिर झुका दो; क्योंकि मैं सारे जहानों के मालिक अल्लाह की मरज़ी का नुमाइन्दा हूँ। मेरी फ़रमाँबरदारी ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी है और मेरी नाफ़रमानी सिर्फ़ मेरी नाफ़रमानी नहीं है, बल्कि सीधे तौर पर ख़ुदा की नाफ़रमानी है। दूसरे अलफ़ाज़ में, इसका मतलब यह है कि पैग़म्बर का हक़ सिर्फ़ इतना ही नहीं है कि जिन लोगों की तरफ़ वह पैग़म्बर बनाकर भेजा गया है वे उसकी सच्चाई क़बूल कर लें और उसे सच्चा पैग़म्बर मान लें, बल्कि उसको ख़ुदा का सच्चा रसूल मानते ही आप-से-आप यह भी लाज़िम आ जाता है कि उसका हुक्म माना जाए और हर क़ानून को छोड़कर सिर्फ़ उसी के लाए हुए क़ानून की पैरवी की जाए। पैग़म्बर को पैग़म्बर न मानना, या पैग़म्बर मानकर उसकी फ़रमाँबरदारी न करना, दोनों सूरतें अस्ल में ख़ुदा से बग़ावत के बराबर हैं और दोनों का नतीजा ख़ुदा के ग़ज़ब (प्रकोप) में घिर जाना है। इसी लिए ईमान और फ़रमाँबरदारी की माँग करने से पहले, "अल्लाह से डरो" का ख़बरदार कर देनेवाला जुमला कहा गया, ताकि हर सुननेवाला अच्छी तरह कान खोलकर सुन ले कि पैग़म्बर की पैग़म्बरी न मानने या उसकी पैरवी क़बूल न करने का नतीजा क्या होगा।

79. यह अपनी सच्चाई पर हज़रत नूह (अलैहि.) की दूसरी दलील है। पहली दलील यह थी कि पैग़म्बरी के दावे से पहले मेरी सारी ज़िन्दगी तुम्हारे बीच गुज़री है और आज तक तुम मुझे एक अमानतदार आदमी की हैसियत से जानते हो और दूसरी दलील यह है कि मैं एक बेग़रज़ आदमी हूँ। तुम किसी ऐसे निजी फ़ायदे की निशानदेही नहीं कर सकते जो इस काम से मुझे हासिल हो रहा हो या जिसको हासिल करने की मैं कोशिश कर रहा हूँ। इस बेग़रज़ाना

(निस्स्वार्थ) तरीक़े से किसी निजी फ़ायदे के बिना जब मैं इस सच्चाई के पैग़ाम के काम में रात-दिन अपनी जान खपा रहा हूँ, अपने वक़्त और अपनी मेहनतें लगा रहा हूँ और हर तरह की तकलीफ़ें उठा रहा हूँ, तो तुम्हें मान लेना चाहिए कि मैं इस काम में मुख़लिस (निष्ठावान) हूँ, ईमानदारी के साथ जिस चीज़ को हक़ जानता हूँ और जिसकी पैरवी में अल्लाह के बन्दों की भलाई देखता हूँ वही पेश कर रहा हूँ, कोई मन में छिपी ख़ाहिश इसकी वजह नहीं है कि उसकी ख़ातिर मैं झूठ गढ़कर लोगों को धोखा दूँ।

ये दोनों दलीलें उन अहम दलीलों में से हैं जो क़ुरआन मजीद ने बार-बार पैग़म्बर (अलैहि०) की सच्चाई के सुबूत में पेश की हैं और जिनको वह पैग़म्बरी के परखने की कसौटी ठहराता है। पैग़म्बरी से पहले जो शख़्स एक समाज में सालों ज़िन्दगी गुज़ार चुका हो और लोगों ने हमेशा हर मामले में उसे सच्चा और ईमानदार आदमी पाया हो, उसके बारे में कोई तास्सुब से पाक आदमी मुश्किल ही से यह शक कर सकता है कि वह यकायक ख़ुदा के नाम से इतना बड़ा झूठ बोलने पर उतर आएगा कि उसे पैग़म्बर न बनाया गया हो और वह कहे कि ख़ुदा ने मुझे पैग़म्बर बनाया है। फिर दूसरी इससे भी ज़्यादा अहम बात यह है कि ऐसा सफ़ेद झूठ कोई शख़्स नेक नीयती के साथ नहीं गढ़ा करता। ज़रूर कोई मन की ख़ाहिश ही इस धोखेबाज़ी की वजह होती है और जब कोई शख़्स अपने फ़ायदों के लिए इस तरह की धोखेबाज़ी करता है तो छिपाने की तमाम कोशिशों के बावजूद उसके आसार नुमायाँ होकर रहते हैं। उसे अपने कारोबार को बढ़ाने के लिए तरह-तरह के हथकण्डे इस्तेमाल करने पड़ते हैं, जिनके घिनौने पहलू आसपास के समाज में छिपाए नहीं छिप सकते और इसके अलावा वह अपनी पीरी की दुकान चमकाकर कुछ-न-कुछ अपना भला करता नज़र आता है। नज़राने वुसूल किए जाते हैं, लंगर जारी होते हैं, जायदादें बनती हैं, ज़ेवर तैयार किए जाते हैं और फ़क़ीरी का आस्ताना देखते-ही-देखते शाही दरबार बनता चला जाता है। लेकिन जहाँ इसके बरख़िलाफ़ पैग़म्बरी का दावा करनेवाले शख़्स की निजी ज़िन्दगी ऐसी अख़लाक़ी ख़ूबियों से भरी नज़र आए कि उसमें कहीं ढूँढ़े से भी किसी धोखे के हथकण्डे का निशान न मिल सके और इस काम से कोई निजी फ़ायदा उठाना तो एक तरफ़, वह अपना सबकुछ उसी बे-ग़रज़ ख़िदमत की भेंट चढ़ा दे, वहाँ झूठ का शक करना किसी समझदार इनसान के लिए मुमकिन नहीं रहता। कोई शख़्स जो अक़्ल भी रखता हो और बे-इनसाफ़ भी न हो, यह सोच नहीं सकता कि आख़िर एक अच्छा-भला समझदार आदमी, जो इत्मीनान की ज़िन्दगी जी रहा था, क्यों बे-वजह एक झूठा दावा लेकर उठे जबकि उसे कोई फ़ायदा इस झूठ से न हो, बल्कि वह उलटा अपना माल, अपना वक़्त और अपनी सारी क़ुव्वतें और मेहनतें इस काम में खपा रहा हो और बदले में दुनिया भर की दुश्मनी मोल ले रहा हो। निजी फ़ायदे की क़ुरबानी आदमी के मुख़लिस (सच्चा) होने की सबसे ज़्यादा नुमायाँ दलील होती है। यह क़ुरबानी करते जिसको सालों बीत जाएँ उसे बदनीयत या ख़ुदग़रज़ समझना ख़ुद उस शख़्स की अपनी बदनीयती का सुबूत होता है जो ऐसे आदमी पर यह इलज़ाम लगाए। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए-- तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, हाशिया-70)

وَاَطِيۡعُوۡنِ ؕ‏ ﴿۱۱۰﴾ قَالُوۡۤا اَنُؤۡمِنُ لَكَ وَاتَّبَعَكَ الۡاَرۡذَلُوۡنَ ؕ‏ ﴿۱۱۱﴾ قَالَ وَمَا

(बेखटके) मेरी फ़रमाँबरदारी करो।"[80] (111) उन्होंने जवाब दिया, "क्या हम तुझे मान लें, हालाँकि तेरी पैरवी सबसे निचले दर्जे के लोगों ने अपनाई है?"[81] (112) नूह ने कहा, "मैं

80. इस जुमले का दोहराना बेवजह नहीं है। पहले यह एक और वजह से कहा गया था और यहाँ एक दूसरी वजह से इसको दोहराया गया है। ऊपर, "मैं तुम्हारे लिए एक अमानतदार पैग़म्बर हूँ," से "इसलिए तुम अल्लाह से डरो" के जुमले का जोड़ यह था कि जो शख़्स अल्लाह की तरफ़ से एक अमानतदार पैग़म्बर है, जिसकी ईमानदारी के बारे में तुम लोग ख़ुद भी जानते हो, उसे झुठलाते हुए ख़ुदा से डरो और यहाँ "मैं इस काम पर तुमसे किसी बदले का तलबगार नहीं हूँ" से इस जुमले का जोड़ यह है कि जो शख़्स अपने किसी निजी फ़ायदे के बिना सिर्फ़ लोगों के सुधार के लिए पूरे ख़ुलूस के साथ काम कर रहा है, उसकी नीयत पर हमला करते हुए ख़ुदा से डरो। इस बात को इतना ज़ोर देकर बयान करने की वजह यह थी कि हज़रत नूह (अलैहि॰) सच्चे दिल से हक़ की जो दावत दे रहे थे उसमें कीड़े डालने के लिए क़ौम के सरदार उनपर यह इलज़ाम लगाते थे कि यह शख़्स अस्ल में यह सारी दौड़-धूप अपनी बड़ाई के लिए कर रहा है, "यह चाहता है कि तुमपर फ़ज़ीलत (बड़ाई) हासिल कर ले।" (सूरा-23 मोमिनून, आयत-24)

81. ये लोग, जिन्होंने हज़रत नूह (अलैहि॰) को हक़ की दावत का यह जवाब दिया, उनकी क़ौम के सरदार, हैसियतवाले और इज़्ज़तदार लोग थे, जैसाकि दूसरी जगह पर इसी क़िस्से के सिलसिले में बयान हुआ है, "उसकी क़ौम के ग़ैर-मुस्लिम सरदारों ने कहा, हमें तो तुम इसके सिवा कुछ नज़र नहीं आते कि बस एक इनसान हो हम जैसे, और हम देख रहे हैं कि तुम्हारी पैरवी सिर्फ़ उन लोगों ने बे-समझे-बूझे अपना ली है जो हमारे यहाँ के निचले दर्जे के लोग हैं और हम कोई चीज़ भी ऐसी नहीं पाते जिसमें तुम लोग हमसे बढ़े हुए हो।" (सूरा-11 हूद, आयत-27) इससे मालूम हुआ कि हज़रत नूह (अलैहि॰) पर ईमान लानेवाले ज़्यादातर ग़रीब लोग, छोटे-छोटे पेशावर लोग, या ऐसे नौजवान थे जिनकी क़ौम में कोई हैसियत न थी। रहे ऊँचे तबक़े के हैसियत, रुसूख़वाले और ख़ुशहाल लोग, तो वे उनकी मुख़ालिफ़त पर कमर कसे हुए थे और वही अपनी क़ौम के आम लोगों को तरह-तरह के धोखे दे-देकर अपने पीछे लगाए रखने की कोशिश कर रहे थे। इस सिलसिले में जो दलीलें वे हज़रत नूह (अलैहि॰) के ख़िलाफ़ पेश करते थे, उनमें से एक दलील यह थी कि अगर नूह की दावत में कोई वज़न होता तो क़ौम के बड़े लोग, आलिम, मज़हबी पेशवा, इज़्ज़तदार और समझदार लोग उसे क़बूल करते। लेकिन उनमें से तो कोई भी इस आदमी पर ईमान नहीं लाया है। इसके पीछे लगे हैं निचले दर्जे के कुछ नादान लोग जो कोई समझ-बूझ नहीं रखते। अब क्या हम जैसे ऊँचे दर्जे के लोग इन नासमझ और मामूली लोगों के साथ में शामिल हो जाएँ?

ठीक यही बात क़ुरैश के इस्लाम-मुख़ालिफ़ नबी (सल्ल॰) के बारे में कहते थे कि इनकी पैरवी करनेवाले या तो ग़ुलाम और ग़रीब लोग हैं या कुछ नादान लड़के, क़ौम के बड़े और इज़्ज़तदार

عِلۡمِیۡ بِمَا کَانُوۡا یَعۡمَلُوۡنَ ﴿۱۱۲﴾ اِنۡ حِسَابُہُمۡ اِلَّا عَلٰی رَبِّیۡ لَوۡ تَشۡعُرُوۡنَ ﴿۱۱۳﴾
وَ مَاۤ اَنَا بِطَارِدِ الۡمُؤۡمِنِیۡنَ ﴿۱۱۴﴾ اِنۡ اَنَا اِلَّا نَذِیۡرٌ مُّبِیۡنٌ ﴿۱۱۵﴾ قَالُوۡا لَئِنۡ لَّمۡ

क्या जानूँ कि उनके अमल कैसे हैं? (113) उनका हिसाब तो मेरे रब के ज़िम्मे है। काश, तुम कुछ समझ से काम लो![82] (114) मेरा यह काम नहीं है कि जो ईमान लाएँ उनको मैं धुतकार दूँ। (115) मैं तो बस एक साफ़-साफ़ ख़बरदार कर देनेवाला आदमी हूँ।"[83]

लोगों में से कोई भी इनके साथ नहीं है। अबू-सुफ़ियान ने रूम के बादशाह हिरक़्ल के सवालों का जवाब देते हुए भी यही कहा था कि "मुहम्मद की पैरवी हममें से कमज़ोर और ग़रीब लोगों ने क़बूल की है।" यानी उन लोगों के सोचने का ढंग यह था कि हक़ (सत्य) सिर्फ़ वह है जिसे क़ौम के बड़े लोग हक़ मानें; क्योंकि वही अक़्ल और समझ-बूझ रखते हैं, रहे छोटे लोग, तो उनका छोटा होना ही इस बात की दलील है कि वे बेअक़्ल हैं और उनकी राय की कोई अहमियत नहीं है, इसलिए उनका किसी बात को मान लेना और बड़े लोगों का रद्द कर देना साफ़ तौर पर यह मानी रखता है कि वह एक बेवज़न बात है, बल्कि मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ तो इससे भी आगे बढ़कर यह दलील लाते थे कि पैग़म्बर भी कोई मामूली आदमी नहीं हो सकता, ख़ुदा को अगर सचमुच कोई पैग़म्बर भेजना मंज़ूर होता तो किसी बड़े मालदार आदमी को बनाता, "वे (मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़) कहते हैं कि यह क़ुरआन हमारे दोनों शहरों (मक्का और ताइफ़) के किसी बड़े आदमी पर क्यों न उतारा गया?"

(सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयत-3)

82. यह उनके एतिराज़ का पहला जवाब है, जैसाकि ऊपर बयान हुआ, उनके एतिराज़ की बुनियाद इस ग़लतफ़हमी पर थी कि जो लोग ग़रीब, मज़दूर और छोटे दर्जे का काम करनेवाले हैं या समाज के निचले तबक़े से ताल्लुक़ रखते हैं, उनमें कोई ज़ेहनी सलाहियत नहीं होती, और वे इल्म, अक़्ल और समझ-बूझ से ख़ाली होते हैं, इसलिए न उनके ईमान की बुनियाद किसी गहरी सोच-समझ पर क़ायम, न उनका एतिक़ाद (अक़ीदा) भरोसे के क़ाबिल और न उनके आमाल का कोई वज़न। हज़रत नूह (अलैहि०) इसके जवाब में फ़रमाते हैं कि मेरे पास यह जानने का कोई ज़रिआ नहीं कि जो शख़्स मेरे पास आकर ईमान लाता है और एक अक़ीदा क़बूल करके उसके मुताबिक़ अमल करने लगता है, उसके इस अमल की तह में कौन-सी बातें और वजहें काम कर रही हैं और वे कितनी कुछ क़द्रो-क़ीमत रखती हैं। इन चीज़ों का देखना और उनका हिसाब लगाना तो ख़ुदा का काम है, मेरा और तुम्हारा काम नहीं है।

83. यह उनके एतिराज़ का दूसरा जवाब है। उनके एतिराज़ में यह बात भी छिपी हुई थी कि ईमान लानेवालों का जो गरोह हज़रत नूह (अलैहि०) के आसपास इकट्ठा हो रहा है यह चूँकि हमारे समाज के निचले तबक़े के लोगों में से है, इसलिए ऊँचे तबक़ों में से कोई शख़्स इस गरोह में शामिल होना गवारा नहीं कर सकता। दूसरे अलफ़ाज़ में, मानो वे यह कह रहे थे कि

ऐ नूह! क्या तुमपर ईमान लाकर हम अपने आपको निचले और बेअक़्ल लोगों में गिनवाएँ? क्या हम ग़ुलामों, नौकरों, मज़दूरों और कामगारों की लाइन में आ बैठें? हज़रत नूह (अलैहि०) इसका जवाब यह देते हैं कि मैं आख़िर यह बेअक़्ली का काम कैसे कर सकता हूँ कि जो लोग मेरी बात नहीं मानते उनके तो पीछे फिरता रहूँ और जो मेरी बात मानते हैं उन्हें धक्के देकर निकाल दूँ। मेरी हैसियत तो एक ऐसे बेलाग आदमी की है जिसने खुल्लम-खुल्ला खड़े होकर पुकार दिया है कि जिस तरीक़े पर तुम लोग चल रहे हो यह ग़लत है और इसपर चलने का अंजाम तबाही है और जिस तरीक़े की तरफ़ मैं रहनुमाई कर रहा हूँ, उसी में तुम सबकी नजात है। अब जिसका जी चाहे मेरी इस चेतावनी को क़बूल करके सीधे रास्ते पर आए और जिसका जी चाहे आँखें बन्द करके तबाही की राह पर चलता रहे। मैं यह नहीं कर सकता कि जो अल्लाह के बन्दे मेरी इस चेतावनी को सुनकर सीधा रास्ता अपनाने के लिए मेरे पास आएँ उनकी ज़ात-बिरादरी, ख़ानदान और पेशा पूछूँ और अगर वे आप लोगों की निगाह में 'नीच' हों तो उनको वापस करके इस इन्तिज़ार में बैठा रहूँ कि 'शरीफ़' लोग कब तबाही का रास्ता छोड़कर नजात की राह पर क़दम रखते हैं।

ठीक यही मामला इन आयतों के उतरने के ज़माने में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) और मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के बीच चल रहा था और उसी को निगाह में रखने से यह समझ में आ सकता है कि हज़रत नूह (अलैहि०) और उनकी क़ौम के सरदारों की बातचीत यहाँ क्यों सुनाई जा रही है। मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के बड़े-बड़े सरदार पैग़म्बर (सल्ल०) से कहते थे कि हम आख़िर बिलाल, अम्मार और सुहैब (रज़ि०) जैसे ग़ुलामों और कामगार लोगों के साथ कैसे बैठ सकते हैं। यानी उनका मतलब यह था कि ईमान लानेवालों की लाइन में से ये ग़रीब लोग निकाले जाएँ, तब कोई इमकान इसका निकल सकता है कि इज़्ज़तदार लोग इधर का रुख़ करें, वरना यह किसी तरह मुमकिन नहीं है कि महमूद और अयाज़ एक लाइन में खड़े हो जाएँ। इसपर नबी (सल्ल०) को अल्लाह की तरफ़ से बिलकुल साफ़ और दोटूक अलफ़ाज़ में यह हिदायत दी गई कि हक़ (सत्य) से मुँह मोड़नेवाले घमण्डियों की ख़ातिर ईमान क़बूल करनेवाले ग़रीबों को धक्के नहीं दिए जा सकते—

"ऐ नबी! जिसने बेपरवाही दिखाई तुम उसके पीछे पड़ते हो! हालाँकि अगर वह न सुधरे तो तुमपर उसकी क्या ज़िम्मेदारी है और जो तुम्हारे पास दौड़ा आता है इस हाल में कि वह अल्लाह से डर रहा है, तुम उससे बेरुख़ी बरतते हो? हरगिज़ नहीं, यह तो एक नसीहत है जिसका जी चाहे इसे क़बूल करे।" (सूरा-80 अ-ब-स, आयतें—5-13)

"न दूर फेंको उन लोगों को जो रात-दिन अपने रब को पुकारते हैं सिर्फ़ उसकी ख़ुशनूदी की ख़ातिर। उनका कोई हिसाब तुम्हारे ज़िम्मे नहीं और तुम्हारा कोई हिसाब उनके ज़िम्मे नहीं। इसपर भी अगर तुम उन्हें दूर फेंकोगे तो ज़ालिमों में गिने जाओगे। हमने तो इस तरह इन लोगों में से कुछ को कुछ के ज़रिए से आज़माइश में डाल दिया है ताकि वे कहें,—क्या हमारे बीच बस यही लोग रह गए थे जिनपर अल्लाह की मेहरबानी हुई?— हाँ, क्या अल्लाह अपने शुक्रगुज़ार बन्दों को इनसे ज़्यादा नहीं जानता!" (सूरा-6 अनआम, आयत-52)

تَنْتَهِ يٰنُوْحُ لَتَكُوْنَنَّ مِنَ الْمَرْجُوْمِيْنَ ﴿١١٦﴾ قَالَ رَبِّ اِنَّ قَوْمِيْ
كَذَّبُوْنِ ﴿١١٧﴾ فَافْتَحْ بَيْنِيْ وَبَيْنَهُمْ فَتْحًا وَّنَجِّنِيْ وَمَنْ مَّعِيَ مِنَ

(116) उन्होंने कहा, "ऐ नूह, अगर तू न माना तो फिटकारे हुए लोगों में शामिल होकर रहेगा।"[84] (117) नूह ने दुआ की, "ऐ मेरे रब, मेरी क़ौम ने मुझे झुठला दिया।[85] (118) अब मेरे और उनके बीच दोटूक फ़ैसला कर दे और मुझे और जो ईमानवाले मेरे

84. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं 'ल-तकूनन-न मिनल-मरजूमीन'। इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि तुमको रज्म किया जाएगा, यानी पत्थर मार-मारकर मार डाला जाएगा। दूसरा मतलब यह हो सकता है कि तुमपर हर तरफ़ से गालियों की बौछार की जाएगी, जहाँ जाओगे धुतकारे और फिटकारे जाओगे। अरबी मुहावरे के लिहाज़ से इन अलफ़ाज़ के ये दोनों मतलब लिए जा सकते हैं।

85. यानी आख़िरी और पूरे तौर पर झुठला दिया है जिसके बाद अब किसी तसदीक़ और ईमान की उम्मीद बाक़ी नहीं रही। ज़ाहिरी बात से कोई शख़्स इस शक में न पड़े कि बस पैग़म्बर और क़ौम के सरदारों के बीच ऊपर की बातचीत हुई और उनकी तरफ़ से पहली बार झुठलाने के बाद पैग़म्बर ने अल्लाह के सामने रिपोर्ट पेश कर दी कि ये मेरी बात नहीं मानते, अब आप मेरे और उनके मुक़द्दमे का फ़ैसला कर दें। क़ुरआन मजीद में अलग-अलग जगहों पर उस लम्बी कशमकश का ज़िक्र किया गया है जो हज़रत नूह (अलैहि॰) की दावत और उनकी क़ौम के कुफ़्र पर अड़े रहने के बीच सदियों चलती रही। सूरा-29 अनूकबूत में बताया गया है कि इस कशमकश (संघर्ष) का ज़माना साढ़े नौ सौ साल तक फैला हुआ रहा है, "और वह पचास साल कम एक हज़ार साल उनके बीच रहा।" (आयत-14) हज़रत नूह (अलैहि॰) ने इस ज़माने में पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनके इजतिमाई रवैये को देखकर न सिर्फ़ यह अन्दाज़ा कर लिया कि उनके अन्दर हक़ को क़बूल करने की कोई सलाहियत बाक़ी नहीं रही है, बल्कि यह राय भी क़ायम कर ली कि आगे उनकी नस्लों से भी नेक और ईमानदार आदमियों के उठने की उम्मीद नहीं है, "अगर तू उन्हें छोड़ देगा तो वे तरे बन्दों को गुमराह करेंगे और उनकी नस्ल से जो भी पैदा होगा बुरे काम करनेवाला और हक़ का सख़्ती से इनकार करनेवाला होगा।" (सूरा-71 नूह, आयत-27) ख़ुद अल्लाह तआला ने भी हज़रत नूह (अलैहि॰) की इस राय को दुरुस्त ठहरा दिया और अपने मुकम्मल इल्म (पूर्ण ज्ञान) की बुनियाद पर फ़रमाया, "तेरी क़ौम में से जो लोग ईमान ला चुके, बस वे ला चुके। अब कोई ईमान लानेवाला नहीं है। लिहाज़ा अब उनके करतूतों पर ग़म खाना छोड़ दे।" (सूरा-11 हूद, आयत-36)

النصف

الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿١١٨﴾ فَأَنْجَيْنٰهُ وَمَنْ مَّعَهٗ فِي الْفُلْكِ الْمَشْحُوْنِ ﴿١١٩﴾ ثُمَّ
أَغْرَقْنَا بَعْدُ الْبٰقِيْنَ ﴿١٢٠﴾ إِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيَةً ۭ وَمَا كَانَ أَكْثَرُهُمْ
ع ١٨/٦ ١٠ مُّؤْمِنِيْنَ ﴿١٢١﴾ وَإِنَّ رَبَّكَ لَهُوَ الْعَزِيْزُ الرَّحِيْمُ ﴿١٢٢﴾ كَذَّبَتْ عَادُ
الْمُرْسَلِيْنَ ﴿١٢٣﴾ إِذْ قَالَ لَهُمْ أَخُوْهُمْ هُوْدٌ أَلَا تَتَّقُوْنَ ﴿١٢٤﴾ إِنِّيْ لَكُمْ

साथ हैं उनको नजात दे।''[86] (119) आख़िरकार हमने उसको और उसके साथियों को एक भरी हुई नाव में बचा लिया।[87] (120) और उसके बाद बाक़ी लोगों को डुबो दिया।

(121) यक़ीनन इसमें एक निशानी है, मगर इनमें से ज़्यादातर लोग माननेवाले नहीं। (122) और हक़ीक़त यह है कि तेरा रब ज़बरदस्त भी है और रहम करनेवाला भी।

(123) आद ने रसूलों (पैग़म्बरों) को झुठलाया।[88] (124) याद करो जबकि उनके भाई हूद ने उनसे कहा था,[89] ''क्या तुम डरते नहीं? (125) मैं तुम्हारे लिए एक

86. यानी सिर्फ़ यही फ़ैसला न कर दे कि हक़ पर कौन है और बातिल पर कौन, बल्कि वह फ़ैसला इस शक्ल में लागू कर कि बातिल-परस्त (असत्यवादी) तबाह कर दिए जाएँ और हक़-परस्त (सत्यवादी) बचा लिए जाएँ। ये अलफ़ाज़ कि ''मुझे और मेरे ईमानवाले साथियों को बचा ले'' ख़ुद-ब-ख़ुद अपने अन्दर ये मतलब रखते हैं कि बाक़ी लोगों पर अज़ाब उतार और उन्हें ग़लत हर्फ़ की तरह मिटाकर रख दे।

87. 'भरी हुई नाव' से मुराद यह है कि वह नाव ईमान लानेवाले इनसानों और तमाम जानवरों से भर गई थी, जिनका एक-एक जोड़ा साथ रख लेने की हिदायत की गई थी। इसकी तफ़सील के लिए देखिए– सूरा-11 हूद, आयत-40।

88. यह क़िस्सा कुछ फ़र्क़ के साथ क़ुरआन में कई जगहों पर आया है। देखिए– सूरा-7 आराफ़, आयतें–65-72; सूरा-11 हूद, आयतें–50-60। इसके अलावा इस क़िस्से की तफ़सीलात के लिए क़ुरआन मजीद के नीचे लिखे मक़ामात भी निगाह में रहें– सूरा-41 हा-मीम सजदा, आयतें–13-16; सूरा-46 अहक़ाफ़, आयतें–21-26; सूरा-51 ज़ारियात, आयतें–41-45; सूरा-54 क़मर, आयतें–18-22; सूरा-69 हाक़्क़ा, आयतें–4-8; सूरा-89 फ़ज्र, आयतें–6-8।

89. हज़रत हूद (अलैहि॰) की इस तक़रीर को समझने के लिए ज़रूरी है कि उस क़ौम के बारे में वे मालूमात हमारी निगाह में रहें जो क़ुरआन मजीद ने अलग-अलग जगहों पर हमें दी हैं। उनमें बताया गया है–

नूह (अलैहि॰) की क़ौम की तबाही के बाद दुनिया में जिस क़ौम को तरक़्क़ी दी गई वह यही

رَسُوۡلٌ اَمِيۡنٌ ۙ﴿۱۲۵﴾ فَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاَطِيۡعُوۡنِ ۚ﴿۱۲۶﴾ وَمَاۤ اَسۡـَٔـلُكُمۡ عَلَيۡهِ مِنۡ
اَجۡرٍ ۚ اِنۡ اَجۡرِىَ اِلَّا عَلٰى رَبِّ الۡعٰلَمِيۡنَ ؕ﴿۱۲۷﴾ اَتَبۡنُوۡنَ بِكُلِّ رِيۡعٍ اٰيَةً

अमानतदार रसूल हूँ। (126) इसलिए तुम अल्लाह से डरो और मेरा कहा मानो। (127) मैं इस काम पर तुमसे किसी बदले का तलबगार नहीं हूँ। मेरा इनाम तो सारे जहानों के रब के ज़िम्मे है। (128) यह तुम्हारा क्या हाल है कि हर ऊँचे मक़ाम पर

थी, "याद करो (अल्लाह की उस मेहरबानी और इनाम को) नूह की क़ौम के बाद उसने तुमको ख़लीफ़ा बनाया।" (सूरा-7 आराफ़, आयत-69)
जिस्मानी हैसियत से ये बड़े सेहतमन्द और ताक़तवर लोग थे–
"और तुम्हें जिस्मानी बनावट में ख़ूब सेहतमन्द किया।" (सूरा-7 आराफ़, आयत-69)
अपने दौर में यह बेमिसाल क़ौम थी। कोई दूसरी क़ौम इसकी टक्कर की न थी–
"जिसके जैसी देशों में कोई क़ौम पैदा नहीं की गई।" (सूरा-89 फ़ज्र, आयत-8)
इसका रहन-सहन बड़ा शानदार था, ऊँचे-ऊँचे सुतूनों (स्तम्भों) की बुलन्द इमारतें बनाना उसकी वह ख़ासियत थी जिसके लिए वह उस वक़्त की दुनिया में मशहूर थी–
"तूने देखा नहीं कि तेरे रब ने क्या किया सुतूनोंवाले आदे-इरम के साथ?" (सूरा-89 फ़ज्र, आयतें–6-7)
इस माद्दी तरक़्क़ी (भौतिक विकास) और जिस्मानी सेहत ने उनको बहुत घमण्डी बना दिया था और उन्हें अपनी ताक़त का बड़ा घमण्ड था–
"रहे आद, तो उन्होंने ज़मीन में हक़ की राह से हटकर घमण्ड का रवैया अपनाया और कहने लगे कि कौन है हमसे ज़्यादा ताक़तवर?" (सूरा-41 हा-मीम सजदा, आयत-15)
उनका सियासी निज़ाम कुछ बड़े-बड़े ज़ालिमों के हाथ में था जिनके आगे कोई दम न मार सकता था–
"और उन्होंने हर ज़ालिम सच के दुश्मन के हुक्म की पैरवी की।" (सूरा-11 हूद, आयत-59)
मज़हबी हैसियत से ये अल्लाह तआला के वुजूद का इनकार करनेवाले न थे, बल्कि शिर्क में मुब्तला थे। उनको इस बात से इनकार था कि बन्दगी सिर्फ़ अल्लाह की होनी चाहिए–
"उन्होंने (हूद से) कहा, क्या तू हमारे पास इसलिए आया है कि हम सिर्फ़ एक अल्लाह की बन्दगी करें और उनको छोड़ दें जिनकी इबादत हमारे बाप-दादा करते थे?" (सूरा-7 आराफ़, आयत-70)
इन ख़ासियतों को नज़र में रखने से हज़रत हूद (अलैहि॰) की यह दावती तक़रीर अच्छी तरह समझ में आ सकती है।

تَعْبَثُوْنَ ﴿١٢٨﴾ وَتَتَّخِذُوْنَ مَصَانِعَ لَعَلَّكُمْ تَخْلُدُوْنَ ﴿١٢٩﴾
وَاِذَا بَطَشْتُمْ بَطَشْتُمْ جَبَّارِيْنَ ﴿١٣٠﴾ فَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاَطِيْعُوْنِ ﴿١٣١﴾

बेकार ही एक यादगार इमारत बना डालते हो,[90] (129) और बड़े-बड़े महल तामीर करते हो मानो तुम्हें हमेशा रहना है।[91] (130) और जब किसी पर हाथ डालते हो तो इन्तिहाई ज़ालिम बनकर डालते हो।[92] (131) तो तुम लोग अल्लाह से डरो और मेरा कहा मानो।

90. यानी सिर्फ़ अपनी बड़ाई और ख़ुशहाली का दिखावा करने के लिए ऐसी शानदार इमारतें बनाते हो जिनका कोई इस्तेमाल नहीं, जिनकी कोई ज़रूरत नहीं, जिनका कोई फ़ायदा इसके सिवा नहीं कि वे बस तुम्हारी दौलत और शान दिखाने के लिए एक निशानी के तौर पर खड़ी रहें।

91. यानी तुम्हारी दूसरी तरह की इमारतें ऐसी हैं जो हालाँकि इस्तेमाल के लिए हैं, मगर उनको शानदार, सजी हुई और मज़बूत बनाने में तुम इस तरह अपनी दौलत, मेहनत और क़ाबिलियतें लगाते हो जैसे दुनिया में हमेशा रहने का सामान कर रहे हो, जैसे तुम्हारी ज़िन्दगी का मक़सद बस यहीं के ऐश का एहतिमाम करना है और इससे आगे कोई चीज़ नहीं है जिसकी तुम्हें फ़िक्र हो।

इस सिलसिले में यह बात ध्यान में रहनी चाहिए कि बे-ज़रूरत या ज़रूरत से ज़्यादा शानदार इमारतें बनाना कोई ऐसा निराला काम नहीं है कि जिसका पाया जाना किसी क़ौम में इस तरह हो सकता हो कि उसकी और सब चीज़ें तो ठीक हों और बस यही एक काम वह ग़लत करती हो। यह सूरते-हाल तो एक क़ौम में पैदा ही उस वक़्त होती है जब एक तरफ़ उसमें दौलत की रेल-पेल होती है और दूसरी तरफ़ उसके अन्दर ख़ुदग़रज़ी और दुनियापरस्ती की शिद्दत बढ़ते-बढ़ते जुनून की हद तक पहुँच जाती है और जब यह हालत किसी क़ौम में पैदा होती है तो उसका सारा समाजी निज़ाम बिगड़ जाता है। हज़रत हूद (अलैहि॰) ने अपनी क़ौम के इमारतें बनाने पर जो पकड़ की उसका मक़सद यह नहीं था कि उनके नज़दीक सिर्फ़ ये इमारतें ही अपने आपमें क़ाबिले-एतिराज़ थीं, बल्कि अस्ल में वे कुल मिलाकर उनके समाजी और तहज़ीबी बिगाड़ पर गिरिफ़्त कर रहे थे और उन इमारतों का ज़िक्र उन्होंने इस हैसियत से किया था कि सारे देश में हर तरफ़ ये बड़े-बड़े फोड़े उस फ़साद (ख़राबी) की सबसे नुमायाँ निशानी के तौर पर उभरे हुए नज़र आते थे।

92. यानी अपना मेयारे-ज़िन्दगी ऊँचा उठाने में तो तुम इस क़द्र आगे बढ़ गए हो कि रहने के लिए तुमको मकान नहीं महल और कोठियाँ चाहिए हैं और उनसे जब तुम्हें तसकीन (सन्तुष्टि) नहीं होती तो बिना ज़रूरत के आलीशान इमारतें बना डालते हो, जिनका कोई इस्तेमाल ताक़त और दौलत के दिखावे के सिवा नहीं है। लेकिन इनसानियत के लिहाज़ से तुम्हारा मेयार इतना गिरा हुआ है कि कमज़ोरों के लिए तुम्हारे दिलों में कोई रहम नहीं, ग़रीबों के लिए तुम्हारी सरज़मीन में कोई इनसाफ़ नहीं, आसपास की कमज़ोर क़ौमें हों या ख़ुद अपने देश के निचले तबक़े, सब

وَاتَّقُوا الَّذِيٓ اَمَدَّكُمْ بِمَا تَعْلَمُوْنَ ﴿١٣٢﴾ اَمَدَّكُمْ بِاَنْعَامٍ وَّبَنِيْنَ ﴿١٣٣﴾
وَّجَنّٰتٍ وَّعُيُوْنٍ ﴿١٣٤﴾ اِنِّيْٓ اَخَافُ عَلَيْكُمْ عَذَابَ يَوْمٍ عَظِيْمٍ ﴿١٣٥﴾ قَالُوْا
سَوَآءٌ عَلَيْنَآ اَوَعَظْتَ اَمْ لَمْ تَكُنْ مِّنَ الْوٰعِظِيْنَ ﴿١٣٦﴾ اِنْ هٰذَآ اِلَّا
خُلُقُ الْاَوَّلِيْنَ ﴿١٣٧﴾ وَمَا نَحْنُ بِمُعَذَّبِيْنَ ﴿١٣٨﴾ فَكَذَّبُوْهُ فَاَهْلَكْنٰهُمْ ؕ

(132) डरो उससे जिसने वह कुछ तुम्हें दिया है, जो तुम जानते हो। (133) तुम्हें जानवर दिए, औलादें दीं, (134) बाग़ दिए और (पानी के) चश्मे दिए। (135) मुझे तुम्हारे बारे में एक बड़े दिन के अज़ाब का डर है।" (136) उन्होंने जवाब दिया, "तू नसीहत कर या न कर, हमारे लिए सब बराबर है। (137) ये बातें तो यूँ ही होती चली आई हैं।[93] (138) और हम अज़ाब में मुब्तला होनेवाले नहीं हैं।" (139) आख़िरकार उन्होंने उसे झुठला दिया और हमने उनको हलाक कर दिया।[94]

तुम्हारे ज़ुल्म और ज़ोर-ज़बरदस्ती की चक्की में पिस रहे हैं और कोई तुम्हारी ज़्यादतियों से बचा नहीं रह गया है।

93. इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि जो कुछ हम कर रहे हैं यह आज कोई नई चीज़ नहीं है, सदियों से हमारे बाप-दादा यही कुछ करते चले आ रहे हैं। यही उनका दीन (मज़हब) था, यही उनका तमद्दुन (तहज़ीब) था और ऐसे ही उनके अख़लाक़ और मामलात थे। कौन-सी आफ़त उनपर टूट पड़ी थी कि अब हम उसके टूट पड़ने का अन्देशा करें। ज़िन्दगी गुज़ारने के इस ढंग में कोई ख़राबी होती तो पहले ही अज़ाब आ चुका होता जिससे तुम डराते हो। दूसरा मतलब यह भी हो सकता है कि जो बातें तुम कर रहे हो ऐसी ही बातें पहले भी बहुत-से मज़हबी ख़ब्ती और अख़लाक़ की बातें बघारनेवाले करते रहे हैं, मगर दुनिया की गाड़ी जिस तरह चल रही थी उसी तरह चले जा रही है। तुम जैसे लोगों की बातें न मानने का नतीजा कभी यह न निकला कि यह गाड़ी किसी दुख से दोचार होकर उलट गई हो।

94. इस क़ौम के हलाक होने की जो तफ़सील क़ुरआन मजीद में बयान की गई है वह यह है कि अचानक ज़ोर की आँधी उठी। ये लोग दूर से उसको अपनी घाटियों की तरफ़ आते देखकर समझे कि घटा छाई है। ख़ुशियाँ मनाने लगे कि अब ख़ूब बारिश होगी। मगर वह था ख़ुदा का अज़ाब। आठ दिन और सात रातों तक लगातार ऐसी तूफ़ानी हवा चलती रही, जिसने हर चीज़ को तबाह कर डाला। उसके ज़ोर का हाल यह था कि उसने आदमियों को उठा-उठाकर फेंक दिया। उसकी गर्मी और ख़ुश्की का यह हाल था कि जिस चीज़ पर गुज़र गई उसे तोड़-फोड़कर रख दिया और यह तूफ़ान उस वक़्त तक न थमा जब तक इस ज़ालिम क़ौम का एक-एक

إِنَّ فِي ذَٰلِكَ لَآيَةً ۖ وَمَا كَانَ أَكْثَرُهُم مُّؤْمِنِينَ ﴿١٣٩﴾ وَإِنَّ
رَبَّكَ لَهُوَ الْعَزِيزُ الرَّحِيمُ ﴿١٤٠﴾ كَذَّبَتْ ثَمُودُ الْمُرْسَلِينَ ﴿١٤١﴾
إِذْ قَالَ لَهُمْ أَخُوهُمْ صَالِحٌ أَلَا تَتَّقُونَ ﴿١٤٢﴾ إِنِّي لَكُمْ

ع ۸

यक़ीनन इसमें एक निशानी है, मगर इनमें से ज़्यादातर लोग माननेवाले नहीं हैं। (140) और हक़ीक़त यह है कि तेरा रब ज़बरदस्त भी है और रहम करनेवाला भी।

(141) समूद ने रसूलों (पैग़म्बरों) को झुठलाया।[95] (142) याद करो जबकि उनके भाई सॉलेह ने उनसे कहा, "क्या तुम डरते नहीं? (143) मैं तुम्हारे लिए एक अमानतदार

आदमी ख़त्म न हो गया। बस इनकी बस्तियों के खण्डहर ही उनके अंजाम की दास्तान सुनाने के लिए खड़े रह गए और आज खण्डहर भी बाक़ी नहीं हैं। अहक़ाफ़ का पूरा इलाक़ा एक भयानक रेगिस्तान बन चुका है। (तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-46 अहक़ाफ़, हाशिया-25)

95. यह क़िस्सा क़ुरआन में कुछ फ़र्क़ के साथ कई जगहों पर आया है। जैसे— सूरा-7 आराफ़, आयतें—73-79; सूरा-11 हूद, आयतें—61-68; सूरा-15 हिज्र, आयतें—80-84; सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-59 और ज़्यादा तफ़सील के लिए क़ुरआन के ये मक़ामात भी सामने रहें— सूरा-27 नम्ल, आयतें—45-53; सूरा-51 ज़ारियात, आयतें—43-45; सूरा-54 क़मर, आयतें—23-31; सूरा-46 हाक़्क़ा, आयतें—4-5; सूरा-89 फ़ज्र, आयत-9, सूरा-91 शम्स, आयत-11।

इस क़ौम के बारे में क़ुरआन मजीद में अलग-अलग जगहों पर जो साफ़-साफ़ बयान आए हैं उनसे मालूम होता है कि आद के बाद जिस क़ौम को तरक़्क़ी दी गई वह यही थी, "आद के बाद उसने तुम्हें ख़लीफ़ा बनाया।" (सूरा-7 आराफ़, आयत-74) मगर इसकी तमद्दुनी (तहज़ीबी) तरक़्क़ी ने भी आख़िरकार वही शक्ल इख़्तियार की जो आद की तरक़्क़ी ने की थी, यानी मेयारे-ज़िन्दगी ऊँचे-से-ऊँचा और इनसानियत का मेयार नीचे-से-नीचा होता चला गया। एक तरफ़ मैदानी इलाक़ों में शानदार महल और पहाड़ों में एलोरा और अजनता की गुफाओं जैसे मकान बन रहे थे। दूसरी तरफ़ समाज में शिर्क और बुतपरस्ती का ज़ोर था और ज़मीन ज़ुल्मो-सितम से भर रही थी। क़ौम के सबसे ज़्यादा बिगाड़ फैलानेवाले लोग उसके लीडर बने हुए थे। ऊँचे तबक़े अपनी बड़ाई के घमण्ड में चूर थे। हज़रत सॉलेह (अलैहि.) की हक़ की दावत ने अगर अपनी तरफ़ खींचा तो निचले तबक़े के कमज़ोर लोगों को खींचा। ऊँचे तबक़ों ने उसे मानने से सिर्फ़ इसलिए इनकार कर दिया कि "जिस चीज़ पर तुम ईमान लाए हो उसको हम नहीं मान सकते।" (सूरा-7 आराफ़, आयत-76)

رَسُوْلٌ اَمِيْنٌ ﴿١٤٣﴾ فَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاَطِيْعُوْنِ ﴿١٤٤﴾ وَمَآ اَسْـَٔلُكُمْ عَلَيْهِ مِنْ
اَجْرٍ ۚ اِنْ اَجْرِيَ اِلَّا عَلٰى رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ﴿١٤٥﴾ اَتُتْرَكُوْنَ فِيْ مَا هٰهُنَآ
اٰمِنِيْنَ ﴿١٤٦﴾ فِيْ جَنّٰتٍ وَّعُيُوْنٍ ﴿١٤٧﴾ وَّزُرُوْعٍ وَّنَخْلٍ طَلْعُهَا هَضِيْمٌ ﴿١٤٨﴾
وَتَنْحِتُوْنَ مِنَ الْجِبَالِ بُيُوْتًا فٰرِهِيْنَ ﴿١٤٩﴾ فَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاَطِيْعُوْنِ ﴿١٥٠﴾

रसूल हूँ।[96] (144) लिहाज़ा तुम अल्लाह से डरो और मेरा कहा मानो। (145) मैं इस काम पर तुमसे किसी बदले का तलबगार नहीं हूँ, मेरा इनाम तो सारे जहानों के रब के ज़िम्मे है। (146) क्या तुम उन सब चीज़ों के बीच, जो यहाँ हैं, बस यूँ ही इत्मीनान से रहने दिए जाओगे?[97] (147) इन बाग़ों और चश्मों में? (148) इन खेतों और नख़लिस्तानों में जिनके गुच्छे रस भरे हैं?[98] (149) तुम पहाड़ खोद-खोदकर घमण्ड के साथ उनमें इमारतें बनाते हो।[99] (150) अल्लाह से डरो और मेरा कहा मानो। (151) उन

96. हज़रत सॉलेह (अलैहि०) की अमानतदारी और दियानतदारी और ग़ैर-मामूली क़ाबिलियत की गवाही ख़ुद उस क़ौम के लोगों की ज़बान से क़ुरआन मजीद इन अलफ़ाज़ में नक़्ल करता है, "उन्होंने कहा, ऐ सॉलेह, इससे पहले तो तुम हमारे बीच ऐसे आदमी थे जिससे हमारी बड़ी उम्मीदें जुड़ी थीं।" (सूरा-11 हूद, आयत-62)
97. यानी क्या तुम्हारा ख़याल यह है कि तुम्हारा यह ऐश हमेशा रहनेवाला है? क्या इसको कभी ख़त्म नहीं होना है? क्या तुमसे कभी इन नेमतों का हिसाब न लिया जाएगा और कभी इन आमाल की पूछ-गच्छ न होगी जिनको तुम कर रहे हो?
98. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'हज़ीम' इस्तेमाल हुआ है जिससे मुराद खजूर के ऐसे गुच्छे हैं जो फलों से लदकर झुक गए हों और जिनके फल पकने के बाद नरमी और रस की वजह से फटे पड़ते हों।
99. जिस तरह आद के तमद्दुन (तहज़ीब) की सबसे नुमायाँ ख़ासियत यह थी कि वे ऊँचे-ऊँचे सुतूनोंवाली इमारतें बनाते थे, इसी तरह समूद की तहज़ीब की सबसे ज़्यादा नुमायाँ ख़ासियत, जिसकी वजह से वे पुराने ज़माने की क़ौमों में मशहूर थे, यह थी कि वे पहाड़ों को तराश-तराशकर उनके अन्दर इमारतें बनाते थे। चुनाँचे सूरा-89 फ़ज्र, आयत-7 में जिस तरह आद को, 'ज़ातुल-इमाद' (सुतूनोंवाले) का लक़ब दिया गया है, उसी तरह समूद का ज़िक्र इस हवाले से किया गया है कि "वे जिन्होंने घाटी में चट्टानें तराशी हैं।" (सूरा-89, आयत-9) इसके अलावा क़ुरआन में यह भी बताया गया है कि वे अपने यहाँ मैदानी इलाक़ों में भी बड़े-बड़े महल बनाते थे, "तुम उसके समतल मैदानों में महल बनाते हो।" (सूरा-7 आराफ़, आयत-74)

और इन तामीरात (निर्माणों) का मक़सद क्या था? क़ुरआन इसपर लफ़्ज़ 'फ़ारिहीन' से रौशनी डालता है। यानी यह सबकुछ अपनी बड़ाई, अपनी दौलत और ताक़त और अपने हुनर के कमाल की नुमाइश के लिए था, कोई हक़ीक़ी ज़रूरत उनके पीछे न थी। एक बिगड़ी हुई तहज़ीब की शान यही होती है। एक तरफ़ समाज के ग़रीब लोग सिर छिपाने तक को ढंग की जगह नहीं पाते, दूसरी तरफ़ बड़े और मालदार लोग रहने के लिए जब ज़रूरत से ज़्यादा महल बना चुकते हैं तो बे-ज़रूरत नुमाइशी यादगारें बनाने लगते हैं।

समूद की इन इमारतों में से कुछ अब भी बाक़ी हैं जिन्हें 1959 ई॰ के दिसम्बर में मैंने ख़ुद देखा है। यह जगह मदीना तय्यिबा और तबूक के बीच हिजाज़ की मशहूर जगह अल-उला (जिसे नबी सल्ल॰ के दौर में क़ुरा की वादी कहा जाता था) से कुछ क़दम के फ़ासले पर उत्तर की तरफ़ है। आज भी उस जगह को मक़ामी लोग, 'अल-हिज्र' और, 'मदाइने-सॉलेह' के नामों ही से याद करते हैं। इस इलाक़े में अल-उला तो अब भी एक बहुत ही हरी-भरी घाटी है, जिसमें बहुत ज़्यादा पानी के चश्मे और बाग़ हैं, मगर अल-हिज्र के आसपास बड़ी वीरानी पाई जाती है। आबादी बराए नाम है। हरियाली बहुत कम है। कुछ कुएँ हैं। उन्हीं में से एक कुएँ के बारे में मक़ामी आबादी में यह कहावत चली आ रही है कि हज़रत सॉलेह (अलैहि॰) की ऊँटनी उसी से पानी पीती थी। अब वह तुर्की दौर की एक वीरान छोटी-सी फ़ौजी चौकी के अन्दर पाया जाता है और बिलकुल सूखा पड़ा है। इस इलाक़े में जब हम दाख़िल हुए तो अल-उला के क़रीब पहुँचते ही हर तरफ़ हमें ऐसे पहाड़ नज़र आए जो बिलकुल खील-खील हो गए हैं। साफ़ महसूस होता था कि किसी भयानक ज़लज़ले ने उन्हें ज़मीन की सतह से चोटी तक झिंझोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर रखा है। इसी तरह के पहाड़ हमें पूरब की तरफ़ अल-उला से ख़ैबर जाते हुए लगभग 50 मील तक और उत्तर की तरफ़ उर्दुन के राज्य की सीमाओं में 30-40 मील अन्दर तक मिलते चले गए। इसका मतलब यह है कि तीन-चार सौ मील लम्बा और 100 मील चौड़ा एक इलाक़ा था जिसे एक बड़े ज़लज़ले ने हिलाकर रख दिया था।

समूद की जो इमारतें हमने हिज्र में देखी थीं, उसी तरह की कुछ इमारतें हमको, 'अक़बा' की खाड़ी के किनारे मदयन के मक़ाम पर, और उर्दुन के राज्य में पेट्रा (Petra) के मक़ाम पर भी मिलीं। ख़ास तौर से पेट्रा में समूद की इमारतें और नबतियों की बनाई हुई इमारतें साथ-साथ मौजूद हैं और उनकी तराश-ख़राश और बनाने के ढंग में इतना साफ़ फ़र्क़ है कि हर शख़्स एक नज़र देखकर ही समझ सकता है कि ये दोनों न एक ज़माने की हैं और न यह एक ही क़ौम के ज़रिए से तामीर हुईं। इस्लाम का तंक़ीदी मुताला करनेवाले अंग्रेज़ मुस्तशरिक़ डाटी (Daughty) क़ुरआन को झूठा साबित करने के लिए हिज्र की इमारतों के बारे में यह दावा करता है कि ये समूद की नहीं बल्कि नबतियों की बनाई हुई इमारतें हैं। लेकिन दोनों क़ौमों की इमारतों का फ़र्क़ इतना खुला हुआ है कि एक अंधा ही उन्हें एक क़ौम की इमारतें कह सकता है। मेरा अन्दाज़ा यह है कि पहाड़ तराशकर उनके अन्दर इमारतें बनाने का हुनर समूद से शुरू हुआ, उसके हज़ारों साल बाद नबतियों ने दूसरी और पहली सदी ई॰पू॰ में इसे तरक़्क़ी दी, और फिर एलोरा में (जिसकी गुफाएँ पेट्रा से लगभग सात सौ साल बाद की हैं) ये हुनर अपने कमाल को पहुँच गया।

وَلَا تُطِيْعُوْٓا اَمْرَ الْمُسْرِفِيْنَ ﴿۱۵۱﴾ الَّذِيْنَ يُفْسِدُوْنَ فِي الْاَرْضِ وَلَا
يُصْلِحُوْنَ ﴿۱۵۲﴾ قَالُوْٓا اِنَّمَآ اَنْتَ مِنَ الْمُسَحَّرِيْنَ ﴿۱۵۳﴾ مَآ اَنْتَ اِلَّا بَشَرٌ
مِّثْلُنَا ۚ فَاْتِ بِاٰيَةٍ اِنْ كُنْتَ مِنَ الصّٰدِقِيْنَ ﴿۱۵۴﴾ قَالَ هٰذِهٖ نَاقَةٌ لَّهَا

बे-लगाम लोगों का कहना न मानो (152) जो ज़मीन में फ़साद फैलाते हैं और कोई सुधार नहीं करते।''[100] (153) उन्होंने जवाब दिया, ''तू तो बस एक जादू का मारा आदमी है।[101] (154) तू हम जैसे एक इनसान के सिवा और क्या है। ला कोई निशानी अगर तू सच्चा है।''[102] (155) सॉलेह ने कहा, ''यह ऊँटनी है।[103] एक दिन इसके पीने

100. यानी अपने उन अमीरों और रईसों और उन रहनुमाओं और हाकिमों के पीछे चलना छोड़ दो जिनकी रहनुमाई में तुम्हारा यह बिगड़ा हुआ ज़िन्दगी का निज़ाम चल रहा है। ये हदें पार करनेवाले लोग हैं, अख़लाक़ की सारी हदें फलाँगकर बेनकेल के ऊँट बन चुके हैं। इनके हाथों से कोई सुधार नहीं हो सकता। ये जिस निज़ाम को चलाएँगे उसमें बिगाड़ ही फैलेगा। तुम्हारे लिए कामयाबी और नजात की कोई सूरत अगर है तो सिर्फ़ यह कि अपने अन्दर ख़ुदा का डर पैदा करो और बिगाड़ फैलानेवालों की पैरवी छोड़कर मेरा कहा मानो, क्योंकि मैं ख़ुदा का रसूल हूँ, मेरी अमानतदारी और ईमानदारी को तुम पहले से जानते हो, और मैं एक बेग़रज़ आदमी हूँ, अपने किसी निजी फ़ायदे के लिए सुधार का यह काम करने नहीं उठा हूँ—यह था वह मुख़्तसर मनशूर (घोषणा पत्र) जो हज़रत सॉलेह (अलैहि०) ने अपनी क़ौम के सामने पेश किया, इसमें सिर्फ़ मज़हबी तबलीग़ ही न थी, समाजी और अख़्लाक़ी सुधार और सियासी इंक़िलाब की दावत भी साथ-साथ मौजूद थी।

101. 'जादू का मारा' यानी दीवाना और मजनून, जिसकी अक़्ल मारी गई हो। पुराने ख़यालात के मुताबिक़ पागलपन या तो किसी जिन्न के असर से होता था या जादू के असर से। इसलिए वे जिसे पागल कहना चाहते थे उसको या तो 'मजनून' (जिन्न का मारा) कहते थे या 'मसहूर' और 'मुसह्हर' (जादू का मारा)

102. यानी बज़ाहिर तो हममें और तुझमें कोई फ़र्क़ नज़र नहीं आता कि हम तुझे ख़ुदा का पैग़म्बर मान लें। लेकिन अगर तू अल्लाह की तरफ़ से भेजे जाने और उसकी तरफ़ से पैग़म्बर बनाए जाने के दावे में सच्चा है तो कोई ऐसा महसूस मोजिज़ा पेश कर जिससे हमें यक़ीन आ जाए कि सचमुच कायनात के पैदा करनेवाले और ज़मीन और आसमान के मालिक ने तुझको हमारे पास भेजा है।

103. मोजिज़े (चमत्कार) की माँग पर ऊँटनी पेश करने से साफ़ ज़ाहिर होता है कि वह सिर्फ़ एक आम ऊँटनी न थी जैसी हर अरब के पास वहाँ पाई जाती थी, बल्कि ज़रूर उसकी पैदाइश और उसके ज़ाहिर होने में या उसकी बनावट में कोई ऐसी चीज़ थी जिसे मोजिज़े की माँग पर पेश

شِرْبٌ وَّلَكُمْ شِرْبُ يَوْمٍ مَّعْلُوْمٍ ﴿١٥٥﴾ وَلَا تَمَسُّوْهَا بِسُوْٓءٍ

का है और एक दिन तुम सबके पानी लेने का।[104] (156) उसको हरगिज़ न छेड़ना वरना

करना मुनासिब होता। अगर हज़रत सॉलेह (अलैहि॰) इस माँग के जवाब में यूँ ही किसी ऊँटनी को पकड़कर खड़ा कर देते तो ज़ाहिर है कि यह एक बिलकुल बेकार हरकत होती, जिसकी किसी पैग़म्बर से तो बहुत दूर, एक आम समझदार आदमी से भी उम्मीद नहीं की जा सकती। यह बात यहाँ तो सिर्फ़ बात के मौक़ा-महल ही के तक़ाज़े से समझ में आती है, लेकिन दूसरी जगहों पर क़ुरआन में साफ़-साफ़ इस ऊँटनी के वुजूद को मोजिज़ा कहा गया है। सूरा-7 आराफ़, आयत-73 और सूरा-11 हूद, आयत-64 में फ़रमाया गया, ''यह अल्लाह की ऊँटनी तुम्हारे लिए निशानी के तौर पर है।'' और सूरा-17 बनी-इसराईल में इससे भी ज़्यादा ज़ोरदार अलफ़ाज़ में कहा गया है—

''हमको निशानियाँ भेजने से किसी चीज़ ने नहीं रोका मगर इस बात ने कि पहले लोग उनको झुठला चुके हैं और हम समूद के सामने आँखों देखते ऊँटनी ले आए फिर भी उन्होंने उसके साथ ज़ुल्म किया। निशानियाँ तो हम डराने ही के लिए भेजते हैं (तमाशा दिखाने के लिए तो नहीं भेजते)।'' (आयत-59)

इसपर वह चैलेंज और है जो ऊँटनी को मैदान में ले आने के बाद उस इनकार करनेवाली क़ौम को दिया गया। वह चैलेंज ऐसा ही था कि सिर्फ़ एक मोजिज़ा पेश करके ही ऐसा चैलेंज दिया जा सकता था।

104. यानी एक दिन अकेले यह ऊँटनी तुम्हारे कुओं और पानी के चश्मों से पानी पिएगी और एक दिन सारी क़ौम के आदमी और जानवर पिएँगे। ख़बरदार, उसकी बारी के दिन कोई आदमी पानी लेने की जगह फटकने भी न पाए। यह चैलेंज अपने आपमें ख़ुद बहुत सख़्त था। लेकिन अरब के ख़ास हालात में तो किसी क़ौम के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा चैलेंज हो नहीं सकता था। वहाँ तो पानी ही के मसले पर ख़ून-ख़राबे हो जाते थे, क़बीला क़बीले से लड़ जाता था और जान जोखिम में डालकर किसी कुएँ या चश्मे का पानी लेने का हक़ हासिल किया जाता था। इस सरज़मीन में किसी शख़्स का उठकर यह कह देना कि एक दिन मेरी अकेली ऊँटनी पानी पिएगी और बाक़ी सारी क़ौम के आदमी और जानवर सिर्फ़ दूसरे दिन ही पानी ले सकेंगे, यह मतलब रखता था कि वह अस्ल में पूरी क़ौम को लड़ाई का चैलेंज दे रहा है। एक ज़बरदस्त लश्कर के बिना कोई आदमी अरब में यह बात ज़बान से न निकाल सकता था और कोई क़ौम यह बात उस वक़्त तक न सुन सकती थी जब तक वह अपनी आँखों से यह न देख रही हो कि चैलेंज देनेवाले के पीछे इतने तलवारवाले और तीरन्दाज़ मौजूद हैं जो मुक़ाबले पर उठनेवालों को कुचलकर रख देंगे। लेकिन हज़रत सॉलेह (अलैहि॰) ने बिना किसी लाव-लश्कर के अकेले उठकर यह चैलेंज अपनी क़ौम को दिया और क़ौम ने न सिर्फ़ यह कि उसको कान लटकाकर सुना, बल्कि बहुत दिनों तक डर के मारे वह उसपर अमल भी करती रही।

فَيَأْخُذَكُمْ عَذَابُ يَوْمٍ عَظِيمٍ ﴿١٥٦﴾ فَعَقَرُوهَا فَأَصْبَحُوا
نَادِمِينَ ﴿١٥٧﴾ فَأَخَذَهُمُ الْعَذَابُ ۗ إِنَّ فِي ذَٰلِكَ لَآيَةً ۖ وَمَا
كَانَ أَكْثَرُهُم مُّؤْمِنِينَ ﴿١٥٨﴾ وَإِنَّ رَبَّكَ لَهُوَ الْعَزِيزُ الرَّحِيمُ ﴿١٥٩﴾

एक बड़े दिन का अज़ाब तुमको आ लेगा।" (157) मगर उन्होंने उसकी कूचें काट दीं[105] और आख़िरकार पछताते रह गए। (158) अज़ाब ने उन्हें आ लिया।[106]

यक़ीनन इसमें एक निशानी है, मगर इनमें से ज़्यादातर माननेवाले नहीं। (159) और हक़ीक़त यह है कि तेरा रब ज़बरदस्त भी है और रहम करनेवाला भी।

सूरा-7 आराफ़, आयत-73 और सूरा-11 हूद, आयत-64 में इसपर इतना इज़ाफ़ा है कि "यह अल्लाह की ऊँटनी तुम्हारे लिए निशानी के तौर पर है, छोड़ दो इसे कि अल्लाह की ज़मीन में चरती फिरे, हरगिज़ इसे बुरे इरादे से न छूना।" यानी चैलेंज सिर्फ़ इतना ही न था कि हर दूसरे दिन अकेली यह ऊँटनी दिन भर सारे इलाक़े के पानी की मालिक रहेगी, बल्कि उसपर यह चैलेंज और भी था कि यह तुम्हारे खेतों और बाग़ों और नख़लिस्तानों और चरागाहों में दनदनाती फिरेगी, जहाँ चाहेगी जाएगी, जो कुछ चाहेगी खाएगी, ख़बरदार जो किसी ने उसे छेड़ा।

105. यह मतलब नहीं है कि जिस वक़्त उन्होंने हज़रत सॉलेह (अलैहि॰) से यह चैलेंज सुना उसी वक़्त वे ऊँटनी पर पिल पड़े और उसकी कोचें काट डालीं, बल्कि काफ़ी मुद्दत तक यह ऊँटनी सारी क़ौम के लिए एक मसला बनी रही, लोग उसपर दिलों में खौलते रहे, मशवरे होते रहे, और आख़िरकार एक मनचले सरदार ने इस काम का बेड़ा उठाया कि वह क़ौम को इस बला से नजात दिलाएगा। सूरा-91 शम्स, में इस आदमी का ज़िक्र इन अलफ़ाज़ में किया गया है, "जब उस क़ौम का सबसे ज़्यादा बदनसीब (अभागा) आदमी।" (आयत-12) और सूरा-54 क़मर में कहा गया है, "उन्होंने अपने साथी से गुज़ारिश की, आख़िरकार वह यह काम अपने ज़िम्मे लेकर उठा और उसने कूचें काट डालीं।" (आयत-29)

106. क़ुरआन में दूसरी जगहों पर इस अज़ाब की जो तफ़सील बयान हुई है वह यह है कि जब ऊँटनी मार डाली गई तो हज़रत सॉलेह (अलैहि॰) ने एलान किया, "तीन दिन अपने घरों में मज़े कर लो।" (सूरा-11 हूद, आयत-65) इस नोटिस की मुद्दत ख़त्म होने पर रात के पिछले पहर सुबह के क़रीब एक ज़बरदस्त धमाका हुआ और उसके साथ ऐसा सख़्त ज़लज़ला आया जिसने देखते-ही-देखते पूरी क़ौम को तबाह करके रख दिया। सुबह हुई तो हर तरफ़ इस तरह कुचली हुई लाशें पड़ी थीं कि जैसे बाड़े की बाड़ में लगी हुई सूखी झाड़ियाँ जानवरों के रौंदने से कुचलकर रह गई हों। न उनके पत्थर के महल उन्हें इस आफ़त से बचा सके, न पहाड़ों में खोदी हुई गुफाएँ– "हमने उनपर बस एक ही धमाका छोड़ा, फिर वे बाड़ेवाले की रौंदी हुई बाड़

كَذَّبَتْ قَوْمُ لُوْطِ ۨالْمُرْسَلِيْنَ ﴿١٦٠﴾ اِذْ قَالَ لَهُمْ اَخُوْهُمْ لُوْطٌ اَلَا
تَتَّقُوْنَ ﴿١٦١﴾ اِنِّيْ لَكُمْ رَسُوْلٌ اَمِيْنٌ ﴿١٦٢﴾ فَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاَطِيْعُوْنِ ﴿١٦٣﴾ وَمَآ
اَسْـَٔلُكُمْ عَلَيْهِ مِنْ اَجْرٍ ۚ اِنْ اَجْرِيَ اِلَّا عَلٰى رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ﴿١٦٤﴾
اَتَاْتُوْنَ الذُّكْرَانَ مِنَ الْعٰلَمِيْنَ ﴿١٦٥﴾ وَتَذَرُوْنَ مَا خَلَقَ لَكُمْ رَبُّكُمْ

(160) लूत की क़ौम ने रसूलों (पैग़म्बरों) को झुठलाया।[107] (161) याद करो जबकि उनके भाई लूत ने उनसे कहा था, "क्या तुम डरते नहीं? (162) मैं तुम्हारे लिए एक अमानतदार रसूल हूँ। (163) इसलिए तुम अल्लाह से डरो और मेरा कहा मानो। (164) मैं इस काम पर तुमसे किसी बदले का तलबगार नहीं हूँ, मेरा इनाम तो सारे जहानों के रब के ज़िम्मे है। (165) क्या तुम दुनिया के जानदारों में से मर्दों के पास जाते हो[108] (166) और तुम्हारी बीवियों में तुम्हारे रब ने तुम्हारे लिए जो कुछ पैदा किया है,

की तरह चूरा होकर रह गए।" (सूरा-54 क़मर, आयत-31) और, "आख़िरकार एक दहला देनेवाली आफ़त ने उन्हें आ लिया और वे अपने घरों में औंधे पड़े-के-पड़े रह गए।" (सूरा-7 आराफ़, आयत-78) और, "आख़िरकार एक ज़बरदस्त धमाके ने सुबह होते-होते उन्हें आ लिया और उनकी कमाई उनके कुछ काम न आई।" (सूरा-15 हिज्र, आयतें—83-84)

107. यह क़िस्सा क़ुरआन में थोड़े फ़र्क़ के साथ कई जगहों पर आया है। जैसे— सूरा-7 आराफ़, आयतें—80-84; सूरा-11 हूद, आयतें—74-83; सूरा-15 हिज्र, आयतें—57-77; सूरा-21 अम्बिया, आयतें—71-75; सूरा-27 नम्ल, आयतें—54-58; सूरा-29 अनूकबूत, आयतें—28-35; सूरा-37 साफ़्फ़ात, आयतें—133-138; सूरा-54 क़मर, आयतें—33-39।

108. इसके दो मतलब हो सकते हैं, एक यह कि सारे इनसानों में से तुमने सिर्फ़ मर्दों को इस ग़रज़ के लिए छाँट लिया है कि उनसे नफ़्स (मन) की ख़ाहिश पूरी करो, हालाँकि दुनिया में बहुत औरतें मौजूद हैं। दूसरा मतलब यह है कि दुनिया भर में एक तुम्हीं ऐसे लोग हो जो जिंसी ख़ाहिश पूरी करने के लिए मर्दों के पास जाते हो, वरना इनसानों में कोई दूसरी क़ौम ऐसी नहीं है, बल्कि जानवरों में भी कोई जानवर ऐसा काम नहीं करता। इस दूसरे मतलब को सूरा-7 आराफ़, आयत-80 और सूरा-29 अनूकबूत, आयत-28 में और ज़्यादा खोलकर इस तरह बयान किया गया है, "क्या तुम वह बेहयाई का काम करते हो जो तुमसे पहले दुनियावालों में से किसी ने नहीं किया?"

مِّنْ اَزْوَاجِكُمْ ؕ بَلْ اَنْتُمْ قَوْمٌ عٰدُوْنَ ﴿١٦٦﴾ قَالُوْا لَئِنْ لَّمْ تَنْتَهِ
يٰلُوْطُ لَتَكُوْنَنَّ مِنَ الْمُخْرَجِيْنَ ﴿١٦٧﴾ قَالَ اِنِّيْ لِعَمَلِكُمْ مِّنَ
الْقَالِيْنَ ﴿١٦٨﴾ رَبِّ نَجِّنِيْ وَاَهْلِيْ مِمَّا يَعْمَلُوْنَ ﴿١٦٩﴾ فَنَجَّيْنٰهُ وَاَهْلَهٗ

उसे छोड़ देते हो?[109] बल्कि तुम लोग तो हद से ही गुज़र गए हो।"[110] (167) उन्होंने कहा, "ऐ लूत, अगर तू ये बातें करने से न माना तो जो लोग हमारी बस्तियों से निकाले गए हैं उनमें तू भी शामिल होकर रहेगा।"[111] (168) उसने कहा, "तुम्हारे करतूतों पर जो लोग कुढ़ रहे हैं मैं उनमें शामिल हूँ। (169) ऐ परवरदिगार, मुझे और मेरे घरवालों को इनके बुरे कामों (कर्मों) से नजात दे।"[112] (170) आख़िरकार हमने उसे और उसके

109. इसके भी दो मतलब हो सकते हैं, एक यह कि इस ख़ाहिश को पूरा करने के लिए जो बीवियाँ ख़ुदा ने पैदा की थीं, उन्हें छोड़कर तुम ग़ैर-फ़ितरी ज़रिए यानी मर्दों को इस ग़रज़ के लिए इस्तेमाल करते हो। दूसरा मतलब यह भी हो सकता है कि ख़ुद उन बीवियों के अन्दर ख़ुदा ने इस ख़ाहिश के पूरा करने का जो फ़ितरी रास्ता रखा था उसे छोड़कर तुम ग़ैर-फ़ितरी रास्ता अपनाते हो। इस दूसरे मतलब में यह इशारा निकलता है कि वे ज़ालिम लोग अपनी औरतों से भी ग़ैर-फ़ितरी ताल्लुक़ बनाते थे। नामुमकिन नहीं कि वे यह हरकत फ़ैमिली प्लानिंग (परिवार नियोजन) के लिए करते हों।

110. यानी तुम्हारा सिर्फ़ यही एक जुर्म नहीं है। तुम्हारी ज़िन्दगी का तो सारा ढब ही हद से ज़्यादा बिगड़ चुका है। क़ुरआन मजीद में दूसरी जगहों पर उनके इस आम बिगाड़ की कैफ़ियत इस तरह बयान की गई है, "क्या तुम्हारा यह हाल हो गया है कि खुल्लम-खुल्ला देखनेवालों की निगाहों के सामने बेहयाई का काम करते हो?" (सूरा-27 नम्ल, आयत-54) और सूरा-29 अनूकबूत, आयत-29 में कहा गया, "क्या तुम ऐसे बिगड़ गए हो कि मर्दों से हमबिस्तरी करते हो, रास्तों पर डाके मारते हो और अपनी मजलिसों में खुले आम बुरे काम करते हो?" (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-15 हिज्र, हाशिया-39)

111. यानी तुझे मालूम है कि इससे पहले जिसने भी हमारे ख़िलाफ़ ज़बान खोली है, या हमारी हरकतों की मुख़ालिफ़त की है, या हमारी मरज़ी के ख़िलाफ़ काम किया है, वह हमारी बस्तियों से निकाला गया है। अब अगर तू ये बातें करेगा तो तेरा अंजाम भी ऐसा ही होगा। सूरा-7 आराफ़, आयत-82 और सूरा-27 नम्ल, आयत-56 में बयान हुआ है कि हज़रत लूत (अलैहि०) को यह नोटिस देने से पहले उस शरारती क़ौम के लोग आपस में यह तय कर चुके थे कि "लूत और उसके ख़ानदानवालों और साथियों को अपनी बस्ती से निकाल बाहर करो। ये लोग बड़े पाकबाज़ बनते हैं। इन 'नेक लोगों' को बाहर का रास्ता दिखाओ।"

112. इसका यह मतलब भी हो सकता है कि हमें उनके बुरे कामों के बुरे अंजाम से बचा और यह

اَجْمَعِیْنَ ﴿١٧٠﴾ اِلَّا عَجُوْزًا فِی الْغٰبِرِیْنَ ﴿١٧١﴾ ثُمَّ دَمَّرْنَا الْاٰخَرِیْنَ ﴿١٧٢﴾ وَاَمْطَرْنَا
عَلَیْهِمْ مَّطَرًا ۚ فَسَآءَ مَطَرُ الْمُنْذَرِیْنَ ﴿١٧٣﴾ اِنَّ فِیْ ذٰلِكَ لَاٰیَةً ؕ وَمَا
ع ٩ ١٦ ١٣ كَانَ اَكْثَرُهُمْ مُّؤْمِنِیْنَ ﴿١٧٤﴾ وَاِنَّ رَبَّكَ لَهُوَ الْعَزِیْزُ الرَّحِیْمُ ﴿١٧٥﴾

सब घरवालों को बचा लिया, (171) सिवाय एक बुढ़िया के जो पीछे रह जानेवालों में थी।[113] (172) फिर बाक़ी लोगों को हमने तबाह कर दिया (173) और उनपर बरसाई एक बरसात, बड़ी ही बुरी बारिश थी जो उन डराए जानेवालों पर बरसी।[114]

(174) यक़ीनन इसमें एक निशानी है, मगर इनमें से ज़्यादातर माननेवाले नहीं। (175) और हक़ीक़त यह है कि तेरा रब ज़बरदस्त भी है और रहम करनेवाला भी।

मतलब भी लिया जा सकता है कि इस बदकिरदार और बदचलन बस्ती में जो अख़लाक़ी गन्दगियाँ फैली हुई हैं, उनकी छूत कहीं हमारे बाल-बच्चों को न लग जाए, ईमानवालों की अपनी नस्लें कहीं इस बिगड़े हुए माहौल से मुतास्सिर न हो जाएँ, इसलिए ऐ परवरदिगार, हमें इस हर वक़्त के अज़ाब से नजात दे जो इस नापाक समाज में ज़िन्दगी गुज़ारने से हम पर गुज़र रहा है।

113. इससे मुराद हज़रत लूत (अलैहि०) की बीवी है। सूरा-66 तहरीम में हज़रत नूह (अलैहि०) और हज़रत लूत (अलैहि०) की बीवियों के बारे में कहा गया है कि "ये दोनों औरतें हमारे दो नेक बन्दों के घर में थीं, मगर इन्होंने उनके साथ ख़ियानत (बेईमानी) की।" (आयत-10) यानी दोनों ईमान से ख़ाली थीं और अपने नेक शौहरों का साथ देने के बजाय उन दोनों ने अपनी ख़ुदा की नाफ़रमान क़ौम का साथ दिया। इसी वजह से जब अल्लाह तआला ने लूत (अलैहि०) की क़ौम पर अज़ाब उतारने का फ़ैसला किया और हज़रत लूत (अलैहि०) को हुक्म दिया कि अपने घरवालों को लेकर इस इलाक़े से निकल जाएँ तो साथ ही यह भी हिदायत कर दी कि अपनी बीवी को साथ न ले जाओ, "तो तू कुछ रात रहे अपने घरवालों को साथ लेकर निकल जा और तुममें से कोई पीछे पलटकर न देखे। मगर अपनी बीवी को साथ न ले जा, उसपर वही कुछ गुज़रनी है जो उन लोगों पर गुज़रनी है।" (सूरा-11 हूद, आयत-81)

114. इस बारिश से मुराद पानी की बारिश नहीं, बल्कि पत्थरों की बारिश है। क़ुरआन मजीद में दूसरी जगहों पर इस अज़ाब की जो तफ़सील बयान हुई है वह यह है कि हज़रत लूत (अलैहि०) जब रात के पिछले पहर अपने बाल-बच्चों को लेकर निकल गए तो सुबह पौ फटते ही यकायक एक ज़ोर का धमाका हुआ, एक भयानक ज़लज़ले ने उनकी बस्तियों को तलपट करके रख दिया, (सूरा-15 हिज्र, आयत-73) एक ज़बरदस्त ज्वालामुखी के फूट पड़ने से उनपर पकी हुई मिट्टी के पत्थर बरसाए गए, (सूरा-15 हिज्र, आयत-74) और एक तूफ़ानी हवा से भी उनपर

पथराव किया गया। (सूरा-11 हूद, आयत-82)
बाइबल के बयानों, क़दीम (प्राचीन) यूनानी और लेटिन लेखों, नए ज़माने की ज़मीन की अन्दरूनी खोजों और आसारे-क़दीमा (प्राचीन अवशेषों) को देखने से इस अज़ाब की तफ़सील पर जो रौशनी पड़ती है, उसका ख़ुलासा हम नीचे लिख रहे हैं–
मृत सागर (Dead Sea) के दक्षिण और पूरब में जो इलाक़ा आज इन्तिहाई वीरान और सुनसान हालत में पड़ा हुआ है, उसमें बड़ी तादाद में पुरानी बस्तियों के खण्डहरों की मौजूदगी पता देती है कि यह किसी ज़माने में निहायत आबाद इलाक़ा रहा था। आज वहाँ सैकड़ों बरबाद हो चुकी बस्तियों के निशान मिलते हैं, हालाँकि अब यह इलाक़ा इतना हरा-भरा नहीं है कि इतनी आबादी का बोझ सह सके। आसारे-क़दीमा (प्राचीन अवशेषों) के माहिरों का अन्दाज़ा है कि इस इलाक़े की आबादी और ख़ुशहाली का दौर 2300 ई॰पू॰ से 1900 ई॰पू॰ तक रहा है और हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के बारे में इतिहासकारों का अन्दाज़ा यह है कि वे 2000 ई॰पू॰ के लगभग ज़माने में गुज़रे हैं। इस लिहाज़ से आसार की गवाही इस बात की ताईद करती है कि यह इलाक़ा हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) और उनके भतीजे हज़रत लूत (अलैहि॰) के दौर ही में बरबाद हुआ है।
इस इलाक़े का सबसे ज़्यादा आबाद और हरा-भरा हिस्सा वह था जिसे बाइबल में 'सिद्दीम की घाटी' कहा गया है, जिसके बारे में बाइबल का बयान है कि "वह इससे पहले कि ख़ुदावन्द ने सदोम और उमोरा को तबाह किया, ख़ुदावन्द के बाग़ (अदन) और मिस्र की तरह ख़ूब सैराब थी।" (उत्पत्ति, अध्याय-13, आयत-10) आज के ज़माने के खोज करनेवालों की आम राय यह है कि वह घाटी अब मृत सागर के अन्दर डूब चुकी है, और यह राय अलग-अलग निशानियों से क़ायम की गई है। पुराने ज़माने में मृत सागर दक्षिण की तरफ़ इतना फैला हुआ न था जितना अब है। पूर्वी जॉर्डन के मौजूदा शहर अल-कर्क के सामने पश्चिम की तरफ़ इस सागर में जो एक छोटा-सा जज़ीरा-नुमा (प्रायद्वीप) 'अल-लिसान' पाया जाता है, पुराने ज़माने में बस यही पानी की आख़िरी सरहद थी। उसके नीचे का हिस्सा जहाँ अब पानी फैल गया है। पहले एक हरी-भरी घाटी की शक्ल में आबाद था और यही वह घाटी सिद्दीम थी जिसमें लूत (अलैहि॰) की क़ौम के बड़े-बड़े शहर सदोम, उमोरा, अद्मा, सबोयीम और बेला (सोअर) थे। 2000 ई॰पू॰ के लगभग ज़माने में एक ज़बरदस्त ज़लज़ले की वजह से यह घाटी फटकर दब गई और मृत सागर का पानी इसके ऊपर छा गया। आज भी यह सागर का सबसे ज़्यादा उथला हिस्सा है, मगर रोमी दौर में यह इतना उथला था कि लोग अल-लिसान से मग़रिबी (पश्चिमी) तट तक चलकर पानी में से गुज़र जाते थे। इस वक़्त तक दक्षिणी तट के साथ-साथ पानी में डूबे हुए जंगल साफ़ नज़र आते हैं, बल्कि यह शक भी किया जाता है कि पानी में कुछ इमारतें डूबी हुई हैं।
बाइबल और क़दीम (प्राचीन) यूनानी और लैटिन लेखों से मालूम होता है कि इस इलाक़े में जगह-जगह पेट्रोल और स्फ़ाल्ट के गढ़े थे और कुछ-कुछ जगह ज़मीन से जल उठनेवाली गैस भी निकलती थी। अब भी वहाँ ज़मीन के नीचे पेट्रोल और गैसों का पता चलता है। ज़मीन की अन्दरूनी खोजों से अन्दाज़ा किया गया है कि ज़लज़ले के तेज़ झटकों के साथ पेट्रोल, गैस और स्फ़ाल्ट ज़मीन से निकलकर भड़क उठे और सारा इलाक़ा भक से उड़ गया। बाइबल का बयान

كَذَّبَ اَصْحٰبُ لْئَيْكَةِ الْمُرْسَلِيْنَ ۝ اِذْ قَالَ لَهُمْ شُعَيْبٌ اَلَا
تَتَّقُوْنَ ۝ اِنِّيْ لَكُمْ رَسُوْلٌ اَمِيْنٌ ۝ فَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاَطِيْعُوْنِ ۝

(176) ऐकावालों ने रसूलों (पैग़म्बरों) को झुठलाया।[115] (177) याद करो जबकि शुऐब ने उनसे कहा था कि "क्या तुम डरते नहीं? (178) मैं तुम्हारे लिए एक अमानतदार रसूल हूँ। (179) लिहाज़ा तुम अल्लाह से डरो और मेरी फ़रमाँबरदारी करो।

है कि इस तबाही की ख़बर पाकर हज़रत इबराहीम (अलैहि०) जब हिब्रून से इस घाटी का हाल देखने आए तो ज़मीन से धुआँ इस तरह उठ रहा था जैसे भट्टी का धुआँ होता है।

115. 'ऐकावालों' का थोड़ा-सा ज़िक्र सूरा-15 हिज्र, आयतें–78-84 में पहले गुज़र चुका है। यहाँ उसकी तफ़सील बयान हो रही है। क़ुरआन के आलिमों के बीच इस बात में रायें अलग-अलग हैं कि क्या मदयन और ऐकावाले अलग-अलग क़ौमें हैं या एक ही क़ौम के दो नाम हैं। एक गरोह का ख़याल है कि ये दो अलग-अलग क़ौमें हैं और इसके लिए सबसे बड़ी दलील यह है कि सूरा-7 आराफ़, आयत-85 में हज़रत शुऐब (अलैहि०) को मदयनवालों का भाई कहा गया है, "व इला मद-य-न अख़ाहुम शुऐबा" (और मदयन की तरफ़ उनके भाई शुऐब को भेजा), और यहाँ ऐकावालों के ज़िक्र में सिर्फ़ यह कहा है कि "जबकि उनसे शुऐब ने कहा।" (सूरा-26 शुअरा, आयत-177) 'उनके भाई' (अख़ूहुम) का लफ़्ज़ इस्तेमाल नहीं किया। इसके बरख़िलाफ़ कुछ तफ़सीर लिखनेवाले दोनों को एक ही क़ौम ठहराते हैं; क्योंकि सूरा-7 आराफ़ और सूरा-11 हूद में जो बीमारियाँ और सिफ़ात मदयनवालों की बयान हुई हैं वही यहाँ ऐकावालों की बयान हो रही हैं। हज़रत शुऐब (अलैहि०) की दावत और नसीहत भी एक जैसी है और आख़िरकार उनके अंजाम में भी फ़र्क़ नहीं है।

तहक़ीक़ से मालूम होता है कि ये दोनों बातें अपनी जगह सही हैं। मदयनवाले और ऐकावाले बेशक दो अलग-अलग क़बीले हैं, मगर हैं एक ही नस्ल की दो शाखाएँ। हज़रत इबराहीम (अलैहि०) की जो औलाद उनकी बीवी या कनीज़ (लौंडी) क़तूरा के पेट से थी वह अरब और इसराईल के इतिहास में बनी-क़तूरा के नाम से जानी जाती है। उनमें से एक क़बीला जो सबसे ज़्यादा मशहूर हुआ, मदयान-बिन-इबराहीम के ताल्लुक़ से मदयानी या असहाबे-मदयन कहलाया और उसकी आबादी उत्तरी हिजाज़ से फ़िलस्तीन के दक्षिण तक और वहाँ से जज़ीरा-नुमाए-सीना (प्रायद्वीप सीना) के आख़िरी कोने तक लाल सागर और अक़बा खाड़ी के समन्दरी तटों पर फैल गई। उसकी राजधानी शहर मदयन थी, जो अबुल-फ़िदा के मुताबिक़ अक़बा नामक खाड़ी के पश्चिमी किनारे ऐला (मौजूदा अक़बा) से पाँच दिन के रास्ते पर था। बाक़ी बनी-क़तूरा जिनमें बनी-दिदान (Dedanites) दूसरों के मुक़ाबले में ज़्यादा मशहूर हैं, उत्तरी अरब में तैमा, तबूक और अल-उला के बीच आबाद हुए और उनकी राजधानी तबूक थी, जिसे पुराने ज़माने में ऐका कहते थे। (याक़ूब ने मुअजमुल-बुलदान में एक लफ़्ज़ ऐका के तहत बताया है कि यह तबूक

وَمَآ اَسْـَٔلُكُمْ عَلَيْهِ مِنْ اَجْرٍ ۚ اِنْ اَجْرِىَ اِلَّا عَلٰى رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۝١٨٠
اَوْفُوا الْكَيْلَ وَلَا تَكُوْنُوْا مِنَ الْمُخْسِرِيْنَ ۝١٨١ وَزِنُوْا بِالْقِسْطَاسِ
الْمُسْتَقِيْمِ ۝١٨٢ وَلَا تَبْخَسُوا النَّاسَ اَشْيَآءَهُمْ وَلَا تَعْثَوْا فِى

(180) मैं इस काम पर तुमसे किसी बदले का तलबगार नहीं हूँ, मेरा इनाम तो सारे जहानों के रब के ज़िम्मे है। (181) पैमाने ठीक भरो और किसी को घाटा न दो। (182) सही तराज़ू से तौलो (183) और लोगों को उनकी चीज़ें कम न दो। ज़मीन में बिगाड़ न

का पुराना नाम है और तबूकवालों में आम तौर पर यह बात मशहूर है कि यही जगह किसी ज़माने में ऐका थी)।

मदयनवालों और ऐकावालों के लिए एक ही पैग़म्बर भेजे जाने की वजह शायद यह थी कि दोनों एक ही नस्ल से ताल्लुक़ रखते थे, एक ही ज़बान बोलते थे और उनके इलाक़े भी बिलकुल एक-दूसरे से मिले हुए थे, बल्कि नामुमकिन नहीं कि कुछ इलाक़ों में यह साथ-साथ आबाद हों और आपस के शादी-ब्याह से उनका समाज भी आपस में घुल-मिल गया हो। इसके अलावा बनी-क़तूरा की इन दोनों शाखाओं का पेशा भी तिजारत था और दोनों में एक ही तरह की तिजारती बेईमानियाँ और मज़हबी और अख़लाक़ी बीमारियाँ पाई जाती थीं। बाइबल की शुरुआती किताबों में जगह-जगह यह ज़िक्र मिलता है कि ये लोग बअले-फ़ग़ूर की परस्तिश करते थे और बनी-इसराईल जब मिस्र से निकलकर उनके इलाक़े में आए तो उनके अन्दर भी इन्होंने शिर्क और ज़िनाकारी (व्यभिचार) की बुराई फैला दी। (गिनती, अध्याय-25, आयतें—1-5, अध्याय-31, आयतें—16-17) फिर ये लोग बैनुल-अक़वामी तिजारत (अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार) के उन दो बड़े रास्तों पर आबाद थे जो यमन से शाम (सीरिया) और फ़ारस की खाड़ी से मिस्र की तरफ़ जाते थे। इन रास्तों पर होने की वजह से उन्होंने बड़े पैमाने पर लूटपाट का सिलसिला चला रखा था। दूसरी क़ौमों के तिजारती क़ाफ़िलों को भारी टैक्स लिए बिना गुज़रने न देते थे और बैनुल-अक़वामी तिजारत पर ख़ुद क़ब्ज़ा किए रहने के लिए उन्होंने रास्तों का अम्न ख़तरे में डाल रखा था। क़ुरआन मजीद में उनकी इस पोज़ीशन को यूँ बयान किया गया है, "ये दोनों (लूत की क़ौम और ऐकावाले) खुली सड़क पर आबाद थे।" और इनकी लूटपाट का ज़िक्र सूरा-7 आराफ़ में इस तरह किया गया है, "और हर रास्ते पर लोगों को डराने न बैठो।" यही वजहें थीं जो अल्लाह तआला ने उन दोनों क़बीलों के लिए एक ही पैग़म्बर भेजा और उनको एक ही तरह की तालीम दी। हज़रत शुऐब (अलैहि.) और मदयनवालों के क़िस्से की तफ़सीलात के लिए देखिए सूरा-7 आराफ़, आयतें—85-93; सूरा-11 हूद, आयतें—84-95; सूरा-29 अनकबूत, आयतें—36-37।

الْاَرْضِ مُفْسِدِيْنَ ۝١٨٣ وَاتَّقُوا الَّذِيْ خَلَقَكُمْ وَالْجِبِلَّةَ الْاَوَّلِيْنَ ۝١٨٤
قَالُوْٓا اِنَّمَآ اَنْتَ مِنَ الْمُسَحَّرِيْنَ ۝١٨٥ وَمَآ اَنْتَ اِلَّا بَشَرٌ مِّثْلُنَا وَاِنْ
نَّظُنُّكَ لَمِنَ الْكٰذِبِيْنَ ۝١٨٦ فَاَسْقِطْ عَلَيْنَا كِسَفًا مِّنَ السَّمَآءِ اِنْ
كُنْتَ مِنَ الصّٰدِقِيْنَ ۝١٨٧ قَالَ رَبِّيْٓ اَعْلَمُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ ۝١٨٨
فَكَذَّبُوْهُ فَاَخَذَهُمْ عَذَابُ يَوْمِ الظُّلَّةِ ۭ اِنَّهٗ كَانَ عَذَابَ

फैलाते फिरो (184) और उस हस्ती से डरो जिसने तुम्हें और पिछली नस्लों को पैदा किया है।" (185) उन्होंने कहा, "तू तो बस एक जादू का मारा आदमी है, (186) और तू कुछ नहीं है मगर एक इनसान हम ही जैसा, और हम तो तुझे बिलकुल झूठा समझते हैं। (187) अगर तू सच्चा है तो हमपर आसमान का कोई टुकड़ा गिरा दे।" (188) शुऐब ने कहा, "मेरा रब जानता है जो कुछ तुम कर रहे हो।"[116] (189) उन्होंने उसे झुठला दिया, आख़िरकार छतरीवाले दिन का अज़ाब उनपर आ गया,[117] और वह बड़े ही भयानक

116. यानी अज़ाब भेजना मेरा काम नहीं है। यह तो सारे जहानों के रब अल्लाह के इख़्तियार में है और वह तुम्हारे करतूत देख ही रहा है। अगर वह तुम्हें इस अज़ाब का हक़दार समझेगा तो ख़ुद अज़ाब भेज देगा। ऐकावालों की इस माँग और हज़रत शुऐब (अलैहि॰) के इस जवाब में क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मनों के लिए भी एक चेतावनी थी। वे भी अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से यही माँगें करते थे, "या फिर गिरा दे हमपर आसमान का कोई टुकड़ा जैसाकि तेरा दावा है।" (सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-92) इसलिए उनको सुनाया जा रहा है कि ऐसी ही माँग ऐकावालों ने अपने पैग़म्बर से की थी, उसका जो जवाब उन्हें मिला वही मुहम्मद (सल्ल॰) की तरफ़ से तुम्हारी माँग का जवाब भी है।

117. इस अज़ाब की कोई तफ़सील क़ुरआन मजीद में या किसी सहीह हदीस में बयान नहीं हुई है। ज़ाहिर अलफ़ाज़ से जो बात समझ में आती है वह यह है कि उन लोगों ने चूँकि आसमानी अज़ाब माँगा था, इसलिए अल्लाह तआला ने उनपर एक बादल भेज दिया और वह छतरी की तरह उनपर उस वक़्त तक छाया रहा जब तक अज़ाब की बारिश ने उनको बिलकुल तबाह न कर दिया। क़ुरआन से यह बात साफ़ मालूम होती है कि मदयनवालों के अज़ाब की कैफ़ियत ऐकावालों के अज़ाब से बिलकुल अलग थी। जैसा कि यहाँ बताया गया है, छतरीवाले अज़ाब से हलाक हुए और उनपर अज़ाब एक धमाके और ज़लज़ले की शक्ल में आया, "आख़िरकार एक हिला मारनेवाली आफ़त ने उन्हें आ लिया और वे अपने घरों में औंधे पड़े रह गए।" (सूरा-7

يَوْمٍ عَظِيمٍ ﴿١٨٩﴾ إِنَّ فِي ذَٰلِكَ لَآيَةً ۖ وَمَا كَانَ أَكْثَرُهُم مُّؤْمِنِينَ ﴿١٩٠﴾
وَإِنَّ رَبَّكَ لَهُوَ الْعَزِيزُ الرَّحِيمُ ﴿١٩١﴾ وَإِنَّهُ لَتَنزِيلُ رَبِّ الْعَالَمِينَ ﴿١٩٢﴾
نَزَلَ بِهِ الرُّوحُ الْأَمِينُ ﴿١٩٣﴾ عَلَىٰ قَلْبِكَ لِتَكُونَ مِنَ الْمُنذِرِينَ ﴿١٩٤﴾

ع ١٢

दिन का अज़ाब था।

(190) यक़ीनन इसमें एक निशानी है, मगर इनमें से ज़्यादातर लोग माननेवाले नहीं। (191) और हक़ीक़त यह है कि तेरा रब ज़बरदस्त भी है और रहम करनेवाला भी।

(192) यह[118] सारे जहानों के रब की उतारी हुई चीज़ है।[119] (193-194) उसे लेकर तेरे दिल पर अमानतदार रूह[120] उतरी है ताकि तू उन लोगों में शामिल हो जो (ख़ुदा की तरफ़ से ख़ुदा के बन्दों को) ख़बरदार करनेवाले हैं,—

आराफ़, आयत-91) और, "और एक हिला मारनेवाली आफ़त ने उन ज़ालिमों को आ लिया और वे अपने घरों में औंधे पड़े रह गए।" (सूरा-11 हूद, आयत-94) इसलिए इन दोनों को मिलाकर एक दास्तान बनाने की कोशिश दुरुस्त नहीं है। क़ुरआन के कुछ आलिमों ने 'अज़ाबु यौमिज़-ज़ुल्ला' के कुछ मतलब बयान किए हैं, मगर हमें नहीं मालूम कि उनकी मालूमात का ज़रिआ क्या है। इब्ने-जरीर ने हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) का यह क़ौल (कथन) नक़्ल किया है कि "आलिमों में से जो कोई तुमसे बयान करे कि यौमुज़-ज़ुल्ला का अज़ाब क्या था उसको दुरुस्त न समझो।" (तफ़सीर तबरी)

118. तारीख़ी (ऐतिहासिक) बयान ख़त्म करके अब बात का सिलसिला उसी मज़मून की तरफ़ फिरता है जिससे सूरा की शुरुआत की गई थी। इसको समझने के लिए एक बार फिर पलटकर सूरा की शुरू की आयतों (1-9) को देख लेना चाहिए।

119. यानी यह 'खुली किताब' जिसकी आयतें यहाँ सुनाई जा रही हैं, और यह 'ज़िक्र' जिससे लोग मुँह मोड़ रहे हैं किसी इनसान की मनगढ़न्त चीज़ नहीं है, इसे मुहम्मद (सल्ल॰) ने ख़ुद गढ़ नहीं लिया है, बल्कि यह सारे जहानों के रब का उतारा हुआ है।

120. मुराद हैं जिबरील (अलैहि॰), जैसा कि दूसरी जगह क़ुरआन मजीद में कहा गया है, "कहो कि जो कोई दुश्मन है जिबरील का तो उसे मालूम हो कि उसी ने यह क़ुरआन अल्लाह के हुक्म से तेरे दिल पर उतारा है।" (सूरा-2 बक़रा, आयत-97) यहाँ उनका नाम लेने के बजाय उनके लिए, 'रूहुल-अमीन' (अमानतदार रूह) का लक़ब इस्तेमाल करने का मक़सद यह बताना है कि सारे जहानों के रब अल्लाह की तरफ़ से इस क़ुरआन को लेकर कोई माद्दी (भौतिक) ताक़त नहीं आई है जिसके अन्दर फेर-बदल का इमकान हो, बल्कि वह एक ख़ालिस रूह है जिसमें माद्दियत का हलका-सा निशान भी नहीं, और वह पूरी तरह अमानतदार है, ख़ुदा का पैग़ाम जैसा

بِلِسَانٍ عَرَبِيٍّ مُّبِيْنٍ ﴿١٩٥﴾ وَاِنَّهٗ لَفِيْ زُبُرِ الْاَوَّلِيْنَ ﴿١٩٦﴾ اَوَلَمْ يَكُنْ لَّهُمْ اٰيَةً

(195) साफ़-साफ़ अरबी ज़बान में।[121] (196) और अगले लोगों की किताबों में भी यह मौजूद है।[122] (197) क्या इन (मक्कावालों) के लिए यह कोई निशानी नहीं है कि इसे

उसके सिपुर्द किया जाता है वैसा ही बिना घटाए-बढ़ाए पहुँचा देती है, अपनी तरफ़ से कुछ बढ़ाना या घटा देना या अपने तौर पर ख़ुद कुछ गढ़ लेना उसके लिए मुमकिन नहीं है।

121. इस जुमले का ताल्लुक़ "अमानतदार रूह उतरी है" से भी हो सकता है और "ख़बरदार करनेवाले हैं" से भी। पहली सूरत में इसका मतलब यह होगा कि वह अमानतदार रूह उसे साफ़-साफ़ अरबी ज़बान में लाई है, और दूसरी सूरत में मतलब यह होगा कि नबी (सल्ल॰) उन पैग़म्बरों में शामिल हों जिन्हें अरबी ज़बान में दुनियावालों को ख़बरदार करने के लिए मुक़र्रर किया गया था, यानी हूद (अलैहि॰), सॉलेह (अलैहि॰), इसमाईल (अलैहि॰) और शुऐब (अलैहि॰)। दोनों सूरतों में बात का मक़सद एक ही है, और वह यह कि सारे जहानों के रब की तरफ़ से यह तालीम किसी मुर्दा या जिन्नाती ज़बान में नहीं आई है, न इसमें कोई मुअम्मे या पहेली की-सी उलझी हुई ज़बान इस्तेमाल की गई है, बल्कि यह ऐसी साफ़ और आला दर्जे की ज़बान में है जिसका मतलब और मंशा हर अरबवासी और हर वह शख़्स जो अरबी ज़बान जानता हो, आसानी से समझ सकता है। इसलिए जो लोग इससे मुँह मोड़ रहे हैं उनके लिए यह बहाना करने का कोई मौक़ा नहीं है कि वे इस तालीम को समझ नहीं सके हैं, बल्कि उनके कतराने और इनकार करने की वजह सिर्फ़ यह है कि ये उसी बीमारी में मुब्तला हैं जिसमें मिस्र का फ़िरऔन और इबराहीम (अलैहि॰) की क़ौम और नूह (अलैहि॰) की क़ौम और लूत (अलैहि॰) की क़ौम और आद और समूद और ऐकावाले मुब्तला थे।

122. यानी यही ज़िक्र और यही ख़ुदा की तरफ़ से उतारा हुआ कलाम और यही अल्लाह की तालीम पिछली किताबों में मौजूद है। यही एक अल्लाह की बन्दगी का बुलावा, यही आख़िरत की ज़िन्दगी का अक़ीदा, यही नबियों की पैरवी का तरीक़ा उन सबमें भी पेश किया गया है। सब किताबें जो ख़ुदा की तरफ़ से आई हैं शिर्क को बुरा ही कहती हैं, ज़िन्दगी के माद्दापरस्ताना नज़रिए को छोड़कर ज़िन्दगी के उसी सही नज़रिए की तरफ़ दावत देती हैं जिसकी बुनियाद ख़ुदा के सामने इनसान की जवाबदेही के तसव्वुर (परिकल्पना) पर है, और इनसान से यही माँग करती हैं कि वह अपनी ख़ुदमुख़्तारी छोड़कर अल्लाह के उन हुक्मों की पैरवी करने लगे जो पैग़म्बर (अलैहि॰) लाए हैं। इन बातों में से कोई बात भी निराली नहीं जो दुनिया में पहली बार क़ुरआन ही पेश कर रहा हो और कोई शख़्स यह कह सके कि तुम वह बात कर रहे हो जो अगलों-पिछलों में से किसी ने भी नहीं की।

यह आयत उन दलीलों में से है जो इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) की उस पुरानी राय के हक़ में पेश की जाती हैं कि अगर कोई शख़्स नमाज़ में क़ुरआन का तर्जमा पढ़ ले तो नमाज़ हो जाती है,

चाहे वह शख़्स अरबी में क़ुरआन पढ़ सकता हो या नहीं। दलील की बुनियाद अल्लामा अबू-बक्र जस्सास के अलफ़ाज़ में यह है कि अल्लाह तआला यहाँ यह बता रहा है कि यह क़ुरआन पिछली किताबों में भी था और ज़ाहिर है कि उन किताबों में वह अरबी अलफ़ाज़ के साथ न था। लिहाज़ा किसी दूसरी ज़बान में उसकी इबारतों को नक़्ल कर देना उसे क़ुरआन होने से ख़ारिज नहीं कर देता (अहकामुल-क़ुरआन, हिस्सा-3, पेज-429) लेकिन इस दलील की कमज़ोरी बिलकुल ज़ाहिर है। क़ुरआन मजीद हो या कोई दूसरी आसमानी किताब, किसी के उतरने की कैफ़ियत भी यह न थी कि अल्लाह तआला ने सिर्फ़ मानी को नबी के दिल में डाल दिया हो और नबी ने फिर उन्हें अपने अलफ़ाज़ में बयान किया हो, बल्कि हर किताब जिस ज़बान में भी आई है अल्लाह तआला की तरफ़ से मतलब और लफ़्ज़ दोनों के साथ आई है। इसलिए क़ुरआन की तालीम जिन पिछली किताबों में थी, इनसानी अलफ़ाज़ में नहीं, ख़ुदाई अलफ़ाज़ ही में थी और उनमें से किसी के तर्जमे को भी अल्लाह की किताब नहीं कहा जा सकता कि वह अस्ल के बराबर ठहराई जा सके। रहा क़ुरआन तो उसके बारे में बार-बार और साफ़-साफ़ कहा गया है कि लफ़्ज़-ब-लफ़्ज़ अरबी ज़बान में उतारा गया है, "बेशक हमने इसे अरबी क़ुरआन बनाकर उतारा।" (सूरा-12 यूसुफ़, आयत-2) और, "और इसी तरह हमने इस (क़ुरआन) को एक अरबी फ़रमान के रूप में उतारा है।" (सूरा-13 अर-रअद, आयत-37) और, "अरबी क़ुरआन के रूप में, जिसमें कोई टेढ़ नहीं।" (सूरा-39 अज़-ज़ुमर, आयत-28) और ख़ुद इसी आयत से पहले, जिसपर चर्चा चल रही है, फ़रमाया जा चुका है कि रूहुल-अमीन इसे अरबी ज़बान में लेकर उतरा है। अब उसके बारे में यह कैसे कहा जा सकता है कि उसका कोई तर्जमा जो किसी इनसान ने दूसरी ज़बान में किया हो वह भी क़ुरआन ही होगा और उसके अलफ़ाज़ अल्लाह तआला के अलफ़ाज़ की तरह होंगे। मालूम होता है कि दलील की इस कमज़ोरी को बाद में ख़ुद इमाम अबू-हनीफ़ा (रह०) ने भी महसूस कर लिया था, चुनाँचे भरोसेमन्द रिवायतों से यह बात नक़्ल हुई है कि उन्होंने इस मसले में अपनी राय से रुजू करके इमाम अबू-यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद की राय क़बूल कर ली थी, यानी यह कि जो शख़्स अरबी ज़बान में क़ुरआन न पढ़ सकता हो वह उस वक़्त तक नमाज़ में क़ुरआन का तर्जमा पढ़ सकता है जब तक उसकी ज़बान अरबी अलफ़ाज़ को अदा करने के क़ाबिल न हो जाए, लेकिन जो शख़्स अरबी में क़ुरआन पढ़ सकता हो वह अगर क़ुरआन का तर्जमा पढ़ेगा तो उसकी नमाज़ न होगी। हक़ीक़त यह है कि इमाम अबू-यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद ने यह रिआयत अस्ल में उन अजमी (ग़ैर-अरब) नव-मुस्लिमों के लिए पेश की थी जो इस्लाम क़बूल करते ही फ़ौरन अरबी ज़बान में नमाज़ अदा करने के क़ाबिल न हो सकते थे और इसमें दलील की बुनियाद यह न थी कि क़ुरआन का तर्जमा भी क़ुरआन है, बल्कि उनकी दलील यह थी कि जिस तरह इशारे से रुकू और सजदे करना उस शख़्स के लिए जाइज़ है जो रुकू और सजदा न कर सकता हो, इसी तरह ग़ैर-अरबी में नमाज़ पढ़ना उस शख़्स के लिए जाइज़ है जो अरबी न पढ़ सकता हो। इसी उसूल के मुताबिक़ जिस तरह मजबूरी दूर हो जाने के बाद इशारे से रुकू और सजदे करनेवाले

اَنْ يَّعْلَمَهٗ عُلَمٰٓؤُا بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ ﴿١٩٧﴾ وَلَوْ نَزَّلْنٰهُ عَلٰى بَعْضِ

बनी-इसराईल के आलिम जानते हैं?[123] (198) (लेकिन इनकी हठधर्मी का हाल तो यह है

की नमाज़ न होगी उसी तरह क़ुरआन के अरबी अलफ़ाज़ अदा करना आ जाने के बाद तर्जमा पढ़नेवाले की नमाज़ न होगी। (इस मसले पर तफ़सीली बहस के लिए देखिए— मबसूत सरख़सी, हिस्सा-1, पेज-37; फ़तहुल-क़दीर व शरह इनाया अलल-हिदाया, हिस्सा-1, पेज—190-201)

123. यानी बनी-इसराईल के आलिम लोग यह बात जानते हैं कि जो तालीम क़ुरआन मजीद में दी गई है वह ठीक वही तालीम है जो पिछली आसमानी किताबों में दी गई थी। मक्कावाले ख़ुद किताब के इल्म से अनजान सही, बनी-इसराईल के आलिम तो आसपास के इलाक़ों में बड़ी तादाद में मौजूद हैं। वे जानते हैं कि यह कोई अनोखा और निराला, 'ज़िक्र' नहीं है जो आज पहली बार अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद (सल्ल॰) ने लाकर तुम्हारे सामने रख दिया हो, बल्कि हज़ारों साल से ख़ुदा के पैग़म्बर यही ज़िक्र एक-के-बाद एक लाते रहे हैं। क्या यह इस बात के इत्मीनान के लिए काफ़ी नहीं है कि यह किताब भी उसी सारे जहानों के रब की तरफ़ से उतरी है जिसने पिछली किताबें उतारी थीं?

सीरत इब्ने-हिशाम से मालूम होता है कि इन आयतों के उतरने के ज़माने से क़रीब ही यह वाक़िआ पेश आ चुका था कि हबश (इथोपिया) से हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) का पैग़ाम सुनकर 20 आदमियों का एक गरोह मक्का आया और उसने मस्जिदे-हराम में क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मनों के सामने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से मिलकर पूछा कि आप क्या तालीम लाए हैं। नबी (सल्ल॰) ने जवाब में उनको क़ुरआन की कुछ आयतें सुनाईं। इसपर उनकी आँखों से आँसू बहने लगे और वे उसी वक़्त आप (सल्ल॰) को सच्चा रसूल मानकर आप (सल्ल॰) पर ईमान ले आए। फिर जब वे नबी (सल्ल॰) के पास से उठे तो अबू-जह्ल क़ुरैश के कुछ लोगों के साथ उनसे मिला और उन्हें सख़्त बुरा-भला कहा। उसने कहा, "तुमसे ज़्यादा बेवक़ूफ़ क़ाफ़िला यहाँ कभी नहीं आया। कमबख़्तो, तुम्हारे यहाँ के लोगों ने तो तुम्हें इसलिए भेजा था कि इस आदमी के हालात का पता लगाकर आओ, मगर तुम अभी उससे मिले ही थे कि अपना दीन छोड़ बैठे।" वे शरीफ़ लोग अबू-जह्ल की इस डाँट-फिटकार पर उलझने के बजाय सलाम करके हट गए और कहने लगे कि हम आपसे बहस नहीं करना चाहते, आपको अपने दीन पर चलने का अधिकार है और हमें अपने दीन पर चलने का अधिकार। हमें जिस चीज़ में अपनी भलाई दिखाई दी, उसे हमने अपना लिया (हिस्सा-2, पेज-32)। इसी वाक़िए का ज़िक्र सूरा-28 क़सस में आया है कि "जिन लोगों को हमने इससे पहले किताब दी थी वे इस क़ुरआन पर ईमान लाते हैं और जब वह उन्हें सुनाया जाता है तो कहते हैं हम इसपर ईमान लाए, यह हक़ है हमारे रब की तरफ़ से, हम इससे पहले भी इसी दीने-इस्लाम पर थे......और जब उन्होंने बेहूदा बातें सुनीं तो उलझने से परहेज़ किया और बोले कि हमारे आमाल हमारे लिए हैं और तुम्हारे आमाल तुम्हारे लिए, तुमको सलाम है, हम जाहिलों का तरीक़ा पसन्द नहीं करते (कि चार बातें

الْاَعْجَمِيْنَ ﴿١٩٨﴾ فَقَرَاَهٗ عَلَيْهِمْ مَّا كَانُوْا بِهٖ مُؤْمِنِيْنَ ﴿١٩٩﴾
كَذٰلِكَ سَلَكْنٰهُ فِيْ قُلُوْبِ الْمُجْرِمِيْنَ ﴿٢٠٠﴾ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِهٖ

कि) अगर हम इसे किसी अजमी (ग़ैर-अरब) पर भी उतार देते (199) और यह (आला दर्जे का अरबी कलाम) वह इनको पढ़कर सुनाता तब भी यह मानकर न देते।[124] (200) इसी तरह हमने इस (ज़िक्र) को मुजरिमों के दिलों में गुज़ारा है।[125] (201) वे इसपर ईमान नहीं लाते

तुम हमें सुनाओ तो चार हम तुम्हें सुनाएँ)।'' (आयतें—52-55)

124. यानी अब उन्हीं की क़ौम का एक आदमी उन्हें साफ़ और वाज़ेह अरबी में यह कलाम पढ़कर सुना रहा है तो ये लोग कहते हैं कि इस आदमी ने इसे ख़ुद गढ़ लिया है। अरब के आदमी की ज़बान से अरबी तक़रीर अदा होने में आख़िर मोजिज़े (चमत्कार) की क्या बात है कि हम उसे ख़ुदा का कलाम मान लें। लेकिन अगर यही बेहतरीन अरबी कलाम अल्लाह तआला की तरफ़ से अरब के बाहर के किसी आदमी पर मोजिज़े (चमत्कार) के तौर पर उतार दिया जाता और वह उनके सामने आकर बेहद सही अरबी लहजे में उसे पढ़ता तो ये ईमान न लाने के लिए दूसरा बहाना तराशते, उस वक़्त यह कहते कि उसपर कोई जिन्न आ गया है जो अजमी (ग़ैर-अरब) की ज़बान से अरबी बोलता है। (तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, हिस्सा-4, सूरा-41 हा-मीम सजदा, हाशिए—54-58) अस्ल चीज़ यह है कि जो शख़्स सच्चाई-पसन्द होता है, वह उस बात पर ग़ौर करता है जो उसके सामने पेश की जा रही हो और ठण्डे दिल से सोच-समझकर राय क़ायम करता है कि यह मुनासिब बात है या नहीं और जो शख़्स हठधर्म होता है और न मानने का इरादा कर लेता है तो वह अस्ल बात पर ध्यान नहीं देता, बल्कि उसे रद्द करने के लिए तरह-तरह के हीले-बहाने तलाश करता है। उसके सामने बात चाहे किसी तरीक़े से पेश की जाए, वह बहरहाल उसे झुठलाने के लिए कोई-न-कोई वजह पैदा कर लेगा। क़ुरैश के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की इस हठधर्मी का परदा क़ुरआन मजीद में जगह-जगह फ़ाश किया गया है और उनसे साफ़-साफ़ कहा गया है कि तुम ईमान लाने के लिए मोजिज़ा दिखाने की शर्त आख़िर किस मुँह से लगाते हो। तुम तो वे लोग हो कि तुम्हें चाहे कोई चीज़ दिखा दी जाए, तुम उसे झुठलाने के लिए कोई बहाना निकाल लोगे; क्योंकि अस्ल में तुम्हें हक़ बात माननी ही नहीं है, ''(ऐ नबी,) अगर हम तेरे ऊपर काग़ज़ में लिखी हुई कोई किताब उतार देते और ये लोग उसे अपने हाथों से छूकर भी देख लेते तो जिन लोगों ने नहीं माना वे कहते, यह तो खुला जादू है।'' (सूरा-6 अनआम, आयत-7) दूसरी जगह कहा गया, ''और अगर हम उनपर आसमान का कोई दरवाज़ा भी खोल देते और ये उसमें चढ़ने लगते तो ये कहते हमारी आँखों को धोखा हो रहा है, बल्कि हमपर जादू कर दिया गया है।''

(सूरा-15 हिज्र, आयतें—14-15)

125. यानी यह हक़पसन्दों के दिलों की तरह रूह का सुकून और दिल की शिफ़ा (आरोग्य) बनकर

حَتّٰى يَرَوُا الْعَذَابَ الْاَلِيْمَ ﴿٢٠١﴾ فَيَاْتِيَهُمْ بَغْتَةً وَّهُمْ لَا يَشْعُرُوْنَ ﴿٢٠٢﴾
فَيَقُوْلُوْا هَلْ نَحْنُ مُنْظَرُوْنَ ﴿٢٠٣﴾ اَفَبِعَذَابِنَا يَسْتَعْجِلُوْنَ ﴿٢٠٤﴾ اَفَرَءَيْتَ
اِنْ مَّتَّعْنٰهُمْ سِنِيْنَ ﴿٢٠٥﴾ ثُمَّ جَآءَهُمْ مَّا كَانُوْا يُوْعَدُوْنَ ﴿٢٠٦﴾ مَآ اَغْنٰى
عَنْهُمْ مَّا كَانُوْا يُمَتَّعُوْنَ ﴿٢٠٧﴾ وَمَآ اَهْلَكْنَا مِنْ قَرْيَةٍ اِلَّا لَهَا

जबतक कि दर्दनाक अज़ाब न देख लें।[126] (202) फिर जब वह बेख़बरी में उनपर आ पड़ता है (203) उस वक़्त वे कहते हैं कि अब हमें कुछ मुहलत मिल सकती है?"[127]

(204) तो क्या ये लोग हमारे अज़ाब के लिए जल्दी मचा रहे हैं? (205) तुमने कुछ ग़ौर किया, अगर हम इन्हें सालों तक ऐश करने की मुहलत भी दे दें (206) और फिर वही चीज़ इनपर आ जाए, जिससे इन्हें डराया जा रहा है, (207) तो वह ज़िन्दगी का सामान जो इन्हें मिला हुआ है इनके किस काम आएगा?[128]

(208) (देखो) हमने कभी किसी बस्ती को इसके बिना हलाक नहीं किया कि उसके

उनके अन्दर नहीं उतरता, बल्कि एक गर्म लोहे की सलाख़ बनकर इस तरह गुज़रता है कि वे भड़क उठते हैं और इसकी बातों पर ग़ौर करने के बजाय उसे रद्द करने के लिए तरकीबें ढूँढ़ने में लग जाते हैं।

126. वैसा ही अज़ाब जैसा वे क़ौमें देख चुकी हैं जिनका ज़िक्र ऊपर इस सूरा में गुज़रा है।

127. यानी अज़ाब सामने देखकर ही मुजरिमों को यक़ीन आया करता है कि सचमुच पैग़म्बर ने जो कुछ कहा था, वह सच था। उस वक़्त वे हसरत के साथ हाथ मलकर कहते हैं कि काश अब हमें कुछ मुहलत मिल जाए! हालाँकि मुहलत का वक़्त गुज़र चुका होता है।

128. इस जुमले और इससे पहले के जुमले के बीच एक लतीफ़ ख़ला (सूक्ष्म रिक्तता) है जिसे सुननेवाले का ज़ेहन थोड़ा-सा ग़ौर करके ख़ुद भर सकता है। अज़ाब के लिए उनके जल्दी मचाने की वजह यह थी कि वे अज़ाब के आने का कोई अन्देशा न रखते थे। उन्हें भरोसा था कि जैसी चैन की बंसी आज तक हम बजाते रहे हैं, उसी तरह हमेशा बजाते रहेंगे। इसी भरोसे पर वे अल्लाह के रसूल (सल्ल.) को चैलेंज देते थे कि अगर सचमुच तुम अल्लाह के रसूल हो और हम तुम्हें झुठलाकर अल्लाह के अज़ाब के हक़दार हो रहे हैं तो लो हमने तुम्हें झुठला दिया। अब ले आओ अपना वह अज़ाब जिससे तुम हमें डराते हो। इसपर कहा जा रहा है कि अच्छा, अगर मान लो कि उनका यह भरोसा सही ही हो, अगर उनपर फ़ौरन अज़ाब न आए, अगर उन्हें दुनिया में मज़े करने के लिए एक लम्बी ढील भी मिल जाए जिसकी उम्मीद पर ये फूल रहे

مُنۡذِرُوۡنَ ۞۲۰۸ ذِكۡرٰى ۛ وَمَا كُنَّا ظٰلِمِيۡنَ ۞۲۰۹ وَمَا تَنَزَّلَتۡ بِهِ
الشَّيٰطِيۡنُ ۞۲۱۰

لिए ख़बरदार करनेवाले (209) नसीहत का हक़ अदा करने को मौजूद थे। और हम ज़ालिम न थे।[129]

(210) इस (खुली किताब) को शैतान लेकर नहीं उतरे हैं,[130]

हैं, तो सवाल यह है कि जब भी उनपर आद और समूद या लूत की क़ौम और ऐकावालों की कोई अचानक आफ़त टूट पड़ी जिससे बचे रहने की किसी के पास कोई ज़मानत नहीं है, या और कुछ नहीं तो मौत ही की आख़िरी घड़ी आ पहुँची जिससे बहरहाल किसी को छुटकारा नहीं, तो उस वक़्त दुनिया के मज़ों के ये कुछ साल आख़िर उनके लिए क्या फ़ायदेमन्द साबित होंगे?

129. यानी जब उन्होंने ख़बरदार करनेवालों की चेतावनी और समझानेवालों की नसीहत क़बूल न की और हमने उन्हें हलाक कर दिया, तो ज़ाहिर है कि यह हमारी तरफ़ से उनपर कोई ज़ुल्म न था। ज़ुल्म तो उस वक़्त होता जब कि हलाक करने से पहले उन्हें समझाकर सीधे रास्ते पर लाने की कोई कोशिश न की गई होती।

130. पहले इस मामले का मुसबत (सकारात्मक) पहलू बयान हुआ था कि यह सारे जहानों के रब की उतारी हुई है और इसे रूहुल-अमीन लेकर उतरा है। अब इसका मनफ़ी (नकारात्मक) पहलू बयान किया जा रहा है कि इसे शैतान लेकर नहीं उतरे हैं, जैसाकि हक़ के दुश्मनों का इलज़ाम है। क़ुरैश के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों ने नबी (सल्ल॰) की दावत को नीचा दिखाने के लिए झूठ की जो मुहिम चला रखी थी, उसमें सबसे बड़ी मुश्किल उन्हें यह पेश आ रही थी कि उस हैरत-अंगेज़ कलाम को क्या कहा जाए जो क़ुरआन की शक्ल में लोगों के सामने आ रहा था और दिलों में उतरता चला जा रहा था। यह बात तो उनके बस में न थी कि लोगों तक इसके पहुँचने को रोक सकें। अब परेशानी की बात उनके लिए यह थी कि लोगों को इससे बदगुमान करने और उसके असर से बचाने के लिए क्या बात बनाएँ। इस घबराहट में जो इलज़ामात उन्होंने आम लोगों में फैलाए थे उनमें से एक यह था कि मुहम्मद (सल्ल॰), अल्लाह की पनाह, काहिन हैं और आम काहिनों की तरह उनके ज़ेहन में भी ये बातें शैतान डालते हैं। इस इलज़ाम को वे अपना सबसे ज़्यादा अचूक हथियार समझते थे। उनका ख़याल था कि किसी के पास इस बात को जाँचने के लिए आख़िर क्या ज़रिआ हो सकता है कि यह कलाम कोई फ़रिश्ता लाता है या शैतान, और शैतान के ज़रिए से मन में डाली गई बात को कोई रद्द करेगा भी तो कैसे।

وَمَا يَنۢبَغِى لَهُمْ وَمَا يَسْتَطِيعُونَ ﴿٢١١﴾ إِنَّهُمْ عَنِ ٱلسَّمْعِ لَمَعْزُولُونَ ﴿٢١٢﴾

(211) न यह काम उनको सजता है,[131] और न वे ऐसा कर ही सकते हैं।[132] (212) वे तो इसके सुनने तक से दूर रखे गए हैं।[133]

131. यानी यह कलाम और ये मज़ामीन (विषय) शैतान के मुँह पर फबते भी तो नहीं हैं। कोई अक़्ल रखता हो तो ख़ुद समझ सकता है कि कहीं ये बातें, जो क़ुरआन में बयान हो रही हैं, शैतानों की तरफ़ से भी हो सकती हैं? क्या तुम्हारी बस्तियों में काहिन (ग़ैब की बातें जानने का दावा करनेवाले) मौजूद नहीं हैं और शैतानों से ताल्लुक़ रखकर जो बातें वे करते हैं, वे तुमने कभी नहीं सुनीं? क्या कभी तुमने सुना है कि किसी शैतान ने किसी काहिन के ज़रिए से लोगों को ख़ुदापरस्ती और परहेज़गारी की तालीम दी हो? शिर्क और बुतपरस्ती से रोका हो? आख़िरत की पूछ-गच्छ से डराया हो? ज़ुल्म और बुरे कामों और बद-अख़लाक़ियों से मना किया हो? भले काम करने, सच बोलने और दुनियावालों के साथ एहसान करने की नसीहत की हो? शैतानों का यह मिज़ाज कहाँ है? उनका मिज़ाज तो यह है कि लोगों में बिगाड़ डलवाएँ और उन्हें बुराइयों के लिए उकसाएँ। उनसे ताल्लुक़ रखनेवाले काहिनों के पास तो लोग यह पूछने जाते हैं कि आशिक़ को माशूक़ मिलेगा या नहीं? जुए में कौन-सा दाँव फ़ायदेमन्द रहेगा? दुश्मन को नीचा दिखाने के लिए क्या चाल चली जाए? और फ़ुलाँ शख़्स का ऊँट किसने चुराया है? इन मसलों और मामलों को छोड़कर काहिनों और उनके सरपरस्त शैतानों को लोगों के सुधार, भलाइयों की सीख देने और बुराइयों को जड़ से मिटाने की कब से फ़िक्र सताने लगी?

132. यानी शैतान अगर करना चाहें भी तो यह काम उनके बस का नहीं है कि थोड़ी देर के लिए भी अपने आपको इनसानों के सच्चे मुअल्लिम (शिक्षक) और सच्चे सुधारक के मक़ाम पर रखकर ख़ालिस हक़ और ख़ालिस भलाई की वह तालीम दे सकें, जो क़ुरआन दे रहा है। वे धोखा देने की ख़ातिर भी अगर यह रूप इख़्तियार कर लें तो उनका काम ऐसी मिलावटों से ख़ाली नहीं हो सकता जो उनकी जहालत और उनके अन्दर छिपी हुई शैतानी फ़ितरत को ज़ाहिर न कर दें। नीयत की ख़राबी, इरादों की नापाकी, मक़सदों की ख़राबी लाज़िमन उस आदमी की ज़िन्दगी में भी और उसकी तालीम में भी झलककर रहेगी जो शैतान से इलहाम (ग़ैब की बात) हासिल करके पेशवा बन बैठा हो। मिलावट से पाक और ख़ालिस (विशुद्ध) नेकी न शैतान इनसान के ज़ेहन में डाल सकते हैं और न उनसे ताल्लुक़ रखनेवाले ऐसा कर सकते हैं। फिर तालीम की बुलन्दी और पाकीज़गी के अलावा ज़बान की वह ख़ूबी और मेयार और सच्चाइयों का वह इल्म है जो क़ुरआन में पाया जाता है। इसी वजह से क़ुरआन में बार-बार यह चैलेंज दिया गया है कि इनसान और जिन्न मिलकर भी चाहें तो इस किताब के जैसी कोई चीज़ तैयार करके नहीं ला सकते, "कह दो कि अगर इनसान और जिन्न सब-के-सब मिलकर इस क़ुरआन जैसी कोई चीज़ लाने की कोशिश करें तो न ला सकेंगे, चाहे वे सब एक-दूसरे के मददगार ही क्यों न हों।" (सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-88) और "कहो, अगर तुम अपने इस इलज़ाम में सच्चे हो तो एक सूरा इस जैसी रचकर लाओ और एक अल्लाह को छोड़कर जिस-जिसको बुला सकते हो मदद के लिए बुला लो।" (सूरा-10 यूनुस, आयत-38)

133. यानी इस क़ुरआन के इलक़ा (दिल में डालने) में दख़ल देना तो बहुत दूर की बात, जिस

فَلَا تَدْعُ مَعَ اللّٰهِ اِلٰهًا اٰخَرَ فَتَكُوْنَ مِنَ الْمُعَذَّبِيْنَ ۝٢١٣ وَاَنْذِرْ
عَشِيْرَتَكَ الْاَقْرَبِيْنَ ۝٢١٤ وَاخْفِضْ جَنَاحَكَ لِمَنِ اتَّبَعَكَ مِنَ

(213) तो ऐ नबी, अल्लाह के साथ किसी दूसरे माबूद को न पुकारो, वरना तुम भी सज़ा पानेवालों में शामिल हो जाओगे।[134] (214) अपने सबसे क़रीबी रिश्तेदारों को डराओ,[135] (215) और ईमान लानेवालों में से जो लोग तुम्हारी पैरवी अपना लें उनके

वक़्त अल्लाह तआला की तरफ़ से रूहुल-अमीन इसको लेकर चलता है और जिस वक़्त मुहम्मद (सल्ल०) के दिल पर वह इसको उतारता है, इस पूरे सिलसिले में किसी जगह भी शैतानों को कान लगाकर सुनने तक का मौक़ा नहीं मिलता। वे आसपास कहीं फटकने भी नहीं पाते कि सुन-गुन लेकर ही कोई बात उचक ले जाएँ और जाकर अपने दोस्तों को बता सकें कि आज मुहम्मद (सल्ल०) यह पैग़ाम सुनानेवाले हैं, या उनकी तक़रीर में फ़ुलाँ बात का भी ज़िक्र आनेवाला है। (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-15 हिज्र, हाशिए—8-12; सूरा-37 साफ़्फ़ात, हाशिए—5-7 और सूरा-72 जिन्न, आयतें—8, 9, 27)

134. इसका यह मतलब नहीं है कि अल्लाह की पनाह नबी (सल्ल०) से शिर्क का कोई ख़तरा था और इस वजह से उनको धमकाकर इससे रोका गया। अस्ल में इसका मक़सद काफ़िरों और मुशरिकों को ख़बरदार करना है। बात का मक़सद यह है कि-क़ुरआन मजीद में जो तालीम पेश की जा रही है यह चूँकि ख़ालिस हक़ (विशुद्ध सत्य) है कायनात के बादशाह की तरफ़ से, और इसमें शैतानी गन्दगियों का ज़र्रा बराबर भी दख़ल नहीं है, इसलिए यहाँ हक़ के मामले में किसी के साथ छूट और रिआयत का कोई काम नहीं। ख़ुदा को सबसे बढ़कर अपनी मख़लूक़ में कोई प्यारा और पसन्दीदा हो सकता है तो वह उसका रसूल है। लेकिन मान लीजिए अगर वह भी बन्दगी की राह से बाल बराबर हट जाए और एक ख़ुदा के सिवा किसी और को माबूद की हैसियत से पुकार बैठे तो पकड़ से नहीं बच सकता, तो दूसरों की बात ही क्या। इस मामले में जब ख़ुद मुहम्मद (सल्ल०) के साथ भी कोई रिआयत नहीं तो और कौन है जो ख़ुदा की ख़ुदाई में किसी और को शरीक ठहराने के बाद यह उम्मीद कर सकता हो कि ख़ुद बच निकलेगा या किसी के बचाने से बच जाएगा।

135. यानी ख़ुदा के इस बेलाग दीन में जिस तरह नबी (सल्ल०) की हस्ती के लिए कोई रिआयत नहीं उसी तरह नबी के ख़ानदान और उसके सबसे ज़्यादा क़रीबी लोगों के लिए भी किसी रिआयत की गुंजाइश नहीं है। यहाँ जिसके साथ भी कोई मामला है उसकी ख़ूबियों (Merits) के लिहाज़ से है। किसी का ख़ानदान और किसी के साथ आदमी का ताल्लुक़ कोई फ़ायदा नहीं पहुँचा सकता। गुमराही और बद अमली पर ख़ुदा के अज़ाब का डर सबके लिए एक जैसा है। ऐसा नहीं है कि और सब तो उन चीज़ों पर पकड़े जाएँ, मगर नबी के रिश्तेदार बचे रह जाएँ। इसलिए हुक्म हुआ कि अपने सबसे ज़्यादा क़रीबी रिश्तेदारों को भी साफ़-साफ़ ख़बरदार कर

दो। अगर वह अपना अक़ीदा और अमल दुरुस्त न रखेंगे तो यह बात उनके किसी काम न आ सकेगी कि वे नबी के रिश्तेदार हैं।

भरोसेमन्द रिवायतों में आया है कि इस आयत के उतरने के बाद नबी (सल्ल०) ने सबसे पहले अपने दादा की औलाद को मुख़ातब करते हुए फ़रमाया और एक-एक को पुकार-पुकारकर साफ़-साफ़ कह दिया कि "ऐ बनी-अब्दुल-मुत्तलिब, ऐ अब्बास, ऐ अल्लाह के रसूल की फूफी सफ़ीया, ऐ मुहम्मद की बेटी फ़ातिमा, तुम लोग आग के अज़ाब से अपने आपको बचाने की फ़िक्र कर लो, मैं ख़ुदा की पकड़ से तुमको नहीं बचा सकता, अलबत्ता मेरे माल में से तुम लोग जो कुछ चाहो माँग सकते हो।" फिर नबी (सल्ल०) ने सुबह-सवेरे 'सफ़ा' की सबसे ऊँची जगह पर खड़े होकर पुकारा, "या सबाहाह, (हाय, सुबह का ख़तरा), ऐ क़ुरैश के लोगो, ऐ बनी-कअब-बिन- लुवई, एक बनी-मुर्रा, ऐ आले-क़ुसई, ऐ बनी-अब्दे-मनाफ़, ऐ बनी-अब्दे-शम्स, ऐ बनी-हाशिम, ऐ आले-अब्दुल-मुत्तलिब।" इस तरह क़ुरैश के एक-एक क़बीले और ख़ानदान का नाम ले-लेकर नबी (सल्ल०) ने आवाज़ दी। अरब में दस्तूर था कि जब सुबह तड़के किसी अचानक हमले का ख़तरा होता तो जिस शख़्स को भी उसका पता चल जाता, वह इसी तरह पुकारना शुरू कर देता और लोग उसकी आवाज़ सुनते ही हर तरफ़ दौड़ पड़ते। चुनाँचे नबी (सल्ल०) की इस आवाज़ पर सब लोग घरों से निकल आए और जो ख़ुद न आ सका उसने अपनी तरफ़ से किसी को ख़बर लाने के लिए भेज दिया। जब सब लोग जमा हो गए तो नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "लोगो, अगर मैं तुम्हें बताऊँ कि इस पहाड़ के दूसरी तरफ़ एक भारी लश्कर है जो तुमपर टूट पड़ना चाहता है तो तुम मेरी बात सच मानोगे?" सबने कहा, "हाँ, हमारे तजरिबे में तुम कभी झूठ बोलनेवाले नहीं रहे हो।" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अच्छा, तो मैं ख़ुदा का सख़्त अज़ाब आने से पहले तुमको ख़बरदार करता हूँ। अपनी जानों को उसकी पकड़ से बचाने की फ़िक्र करो। मैं ख़ुदा के मुक़ाबले में तुम्हारे किसी काम नहीं आ सकता। क़ियामत में मेरे रिश्तेदार सिर्फ़ अल्लाह से डरनेवाले और परहेज़गार लोग होंगे। ऐसा न हो कि दूसरे लोग अच्छे आमाल लेकर आएँ और तुम लोग दुनिया भर के गुनाहों का बोझ सिर पर उठाए हुए आओ। उस वक़्त तुम पुकारोगे कि ऐ मुहम्मद, मगर मैं मजबूर होऊँगा कि तुम्हारी तरफ़ से मुँह फेर लूँ। अलबत्ता दुनिया में मेरा और तुम्हारा ख़ून का रिश्ता है और यहाँ मैं तुम्हारे साथ हर तरह का बेहतर सुलूक करूँगा।" (इस मज़मून की कई रिवायतें बुख़ारी, मुस्लिम, मुसनद अहमद, तिरमिज़ी, नसई और तफ़सीर इब्ने-जरीर में हज़रत आइशा (रज़ि०), हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०), हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०), हज़रत ज़ुहैर-बिन-अम्र (रज़ि०) और हज़रत क़बीसा-बिन-मख़ारिक़ (रज़ि०) से बयान हुई हैं।)

यह मामला सिर्फ़ इस हद तक न था कि क़ुरआन में, "अपने क़रीबी रिश्तेदीरों को ख़बरदार कर दो" का हुक्म आया और नबी (सल्ल०) ने अपने रिश्तेदारों को इकट्ठा करके बस यह काम कर दिया। अस्ल में इसमें जो उसूल बताया गया था वह यह था कि दीन में नबी और उसके ख़ानदान के लिए कोई ख़ास रिआयतें नहीं हैं जो दूसरों को न मिली हों। जो चीज़ हलाक कर देनेवाला ज़हर है, वह सभी के लिए हलाक करनेवाली है। नबी का काम यह है कि सबसे पहले इससे ख़ुद बचे और अपने क़रीबी लोगों को इससे डराए, फिर हर ख़ास और आम को ख़बरदार

الْمُؤْمِنِينَ ۝٢١٥ فَإِنْ عَصَوْكَ فَقُلْ إِنِّي بَرِيٓءٌ مِّمَّا تَعْمَلُونَ ۝٢١٦ وَتَوَكَّلْ

साथ नरमी से पेश आओ, (216) लेकिन अगर वे तुम्हारी नाफ़रमानी करें तो उनसे कह दो कि जो कुछ तुम करते हो उसकी ज़िम्मेदारी से मैं बरी हूँ।[136] (217) और उस

कर दे कि जो भी उसे खाएगा, हलाक हो जाएगा और जो चीज़ फ़ायदेमन्द है वह सभी के लिए फ़ायदेमन्द है। नबी का मंसब यह है सबसे पहले उसे ख़ुद अपनाए और अपने रिश्तेदारों और क़रीबी लोगों को उसकी नसीहत करे, ताकि हर शख़्स देख ले कि यह नसीहत दूसरों ही के लिए नहीं है, बल्कि नबी अपने पैग़ाम में सच्चा है। इसी तरीक़े पर नबी (सल्ल॰) ज़िन्दगी भर अमल करते रहे। मक्का की फ़त्ह के दिन जब पैग़म्बर (सल्ल॰) शहर में दाख़िल हुए तो उन्होंने एलान किया कि "जाहिलियत के ज़माने का हर सूद (ब्याज), जो लोगों के ज़िम्मे था, मेरे इन क़दमों तले रौंद डाला गया और सबसे पहले जिस सूद को मैं ख़त्म करता हूँ वह मेरे चचा अब्बास (रज़ि॰) का है।" (ध्यान रहे कि ब्याज के हराम होने का हुक्म आने से पहले हज़रत अब्बास ब्याज पर रुपया चलाते थे और उनका बहुत-सा ब्याज उस वक़्त लोगों के ज़िम्मे था जिसको वुसूल किया जाना था।) एक बार चोरी के जुर्म में फ़ातिमा नाम की क़ुरैश की एक औरत का हाथ काटने का आप (सल्ल॰) ने हुक्म दिया। हज़रत उसामा-बिन-ज़ैद (रज़ि॰) ने उसके हक़ में सिफ़ारिश की। इसपर पैग़म्बर (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "ख़ुदा की क़सम, अगर मुहम्मद की बेटी फ़ातिमा भी चोरी करती तो मैं उसका हाथ काट देता।"

136. इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि तुम्हारे रिश्तेदारों में से जो लोग ईमान लाकर तुम्हारी पैरवी करने लगें उनके साथ नरमी, मुहब्बत और मेहरबानी का सुलूक करो और जो तुम्हारी बात न मानें उनसे अलग होने का एलान कर दो। दूसरा मतलब यह भी हो सकता है कि यह बात सिर्फ़ उन रिश्तेदारों के बारे में न हो जिन्हें ख़बरदार करने का हुक्म दिया था, बल्कि सबके लिए आम हो। यानी जो भी ईमान लाकर तुम्हारी पैरवी करे उसके साथ नरमी बरतो और जो भी तुम्हारी नाफ़रमानी करे, उसको ख़बरदार कर दो कि तेरे आमाल की कुछ भी ज़िम्मेदारी मुझपर नहीं है।

इस आयत से मालूम होता है कि उस वक़्त क़ुरैश और आसपास के अरबवालों में कुछ लोग ऐसे भी थे जो अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की सच्चाई को मान गए थे, मगर उन्होंने अमली तौर से नबी (सल्ल॰) की पैरवी नहीं अपनाई थी, बल्कि वे पहले की तरह अपनी गुमराह सोसाइटी में मिल-जुलकर उसी तरह ज़िन्दगी गुज़ार रहे थे जैसी दूसरे इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की थी। अल्लाह तआला ने इस तरह के माननेवालों को उन ईमानवालों से अलग ठहराया जिन्होंने नबी (सल्ल॰) की सच्चाई क़बूल करने के बाद उनकी पैरवी भी अपना ली थी। नरमी बरतने का हुक्म सिर्फ़ इसी बादवाले गरोह के लिए था। बाक़ी रहे वे लोग जो नबी (सल्ल॰) की फ़रमाँबरदारी से मुँह मोड़े हुए थे, जिनमें उनकी सच्चाई को माननेवाले भी शामिल थे और उनका इनकार कर देनेवाले भी, उनके बारे में नबी (सल्ल॰) को हिदायत की गई कि उनसे बेताल्लुक़ी ज़ाहिर कर दो और साफ़-साफ़ कह दो कि अपने आमाल का नतीजा तुम ख़ुद भुगतोगे, तुम्हें ख़बरदार कर

عَلَى الْعَزِيْزِ الرَّحِيْمِ ﴿٢١٧﴾ الَّذِيْ يَرٰىكَ حِيْنَ تَقُوْمُ ﴿٢١٨﴾ وَتَقَلُّبَكَ
فِي السّٰجِدِيْنَ ﴿٢١٩﴾ اِنَّهٗ هُوَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ﴿٢٢٠﴾

ज़बरदस्त और रहम करनेवाले पर भरोसा करो[137] (218) जो तुम्हें उस वक़्त देख रहा होता है जब तुम उठते हो,[138] (219) और सजदे करनेवाले लोगों में तुम्हारी नक़्लो-हरकत (गतिविधियों) पर निगाह रखता है।[139] (220) वह सबकुछ सुनने और जाननेवाला है।

देने के बाद अब मुझपर तुम्हारे किसी काम की कोई ज़िम्मेदारी नहीं है।

137. यानी दुनिया की किसी बड़ी-से-बड़ी ताक़त की भी परवाह न करो और उस हस्ती के भरोसे पर अपना काम किए चले जाओ जो ज़बरदस्त भी है और रहम करनेवाला भी। उसका ज़बरदस्त होना इस बात की ज़मानत है कि जिसकी पीठ पर उसकी मदद हो, उसे दुनिया में कोई नीचा नहीं दिखा सकता और उसका रहमवाला होना इस इत्मीनान के लिए काफ़ी है कि जो शख़्स उसके लिए हक़ का बोलबाला करने के काम में जान लड़ाएगा, उसकी कोशिशों को वह कभी बेकार न जाने देगा।

138. उठने से मुराद रातों को नमाज़ के लिए उठना भी हो सकता है और रिसालत (पैग़म्बरी) का फ़र्ज़ अदा करने के लिए उठना भी।

139. इससे कई मानी मुराद हो सकते हैं। एक यह कि नबी (सल्ल॰) जब जमाअत से नमाज़ पढ़ने में अपने पीछे नमाज़ पढ़नेवालों के साथ उठते और बैठते और रुकू और सजदे करते हैं उस वक़्त अल्लाह तआला आप (सल्ल॰) को देख रहा होता है। दूसरा जब रातों को उठकर आप (सल्ल॰) अपने साथियों को (जिनके लिए 'सजदा गुज़ारों' का लफ़्ज़ ख़ास सिफ़त के तौर पर इस्तेमाल हुआ है) देखते फिरते हैं कि वे अपना अंजाम सँवारने के लिए क्या कुछ कर रहे हैं, उस वक़्त आप (सल्ल॰) अल्लाह की निगाह से छिपे हुए नहीं होते। तीसरा यह कि अल्लाह तआला उस तमाम दौड़-धूप और कोशिशों को जानता है जो आप (सल्ल॰) अपने सजदा करनेवाले साथियों के साथ में उसके बन्दों के सुधार के लिए कर रहे हैं। चौथा यह कि सजदा करनेवाले लोगों के गरोह में आप (सल्ल॰) की तमाम कोशिशें अल्लाह की निगाह में हैं। वह जानता है कि आप (सल्ल॰) किस तरह उनकी तरबियत कर रहे हैं, कैसा कुछ उनका तज़किया (आत्म-सुधार) आपने किया है और किस तरह कच्ची धातु को खरा सोना बनाकर रख दिया है। नबी (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के सहाबा किराम (रज़ि॰) की इन सिफ़ात का ज़िक्र यहाँ जिस मक़सद से किया गया है, उसका ताल्लुक़ ऊपर के मज़मून से भी है और आगे के मज़मून से भी। ऊपर के मज़मून से इसका ताल्लुक़ यह है कि आप (सल्ल॰) हक़ीक़त में अल्लाह की रहमत और उसकी ज़बरदस्त मदद के हक़दार हैं, इसलिए कि अल्लाह कोई अंधा-बहरा माबूद नहीं है, देखने और सुननेवाला हुक्मराँ है, उसकी राह में आप (सल्ल॰) की दौड़-धूप और अपने सजदे करनेवाले साथियों में आप (सल्ल॰) की सरगर्मियाँ, सबकुछ उसकी निगाह में हैं। बाद के

هَلْ أُنَبِّئُكُمْ عَلٰى مَنْ تَنَزَّلُ الشَّيٰطِيْنُ ﴿٢٢١﴾ تَنَزَّلُ عَلٰى كُلِّ أَفَّاكٍ
أَثِيْمٍ ﴿٢٢٢﴾ يُّلْقُوْنَ السَّمْعَ وَأَكْثَرُهُمْ كٰذِبُوْنَ ﴿٢٢٣﴾

(221) लोगो, क्या मैं तुम्हें बताऊँ कि शैतान किसपर उतरा करते हैं? (222) वे हर जालसाज़ बदकार पर उतरा करते हैं।[140] (223) सुनी-सुनाई बातें कानों में फूँकते हैं और उनमें से अकसर झूठे होते हैं।[141]

मज़मून से इसका ताल्लुक़ यह है कि जिस शख़्स की ज़िन्दगी यह कुछ हो जैसी कि मुहम्मद (सल्ल॰) की है। और जिसके साथियों की सिफ़ात वे कुछ हों जैसी कि मुहम्मद (सल्ल॰) के साथियों की हैं, उसके बारे कोई अक़्ल का अंधा ही यह कह सकता है कि उसपर शैतान उतरते हैं या वह शाइर है। शैतान जिन काहिनों पर उतरते हैं और शाइर और उनके साथ लगे रहनेवालों के जैसे कुछ रंग-ढंग हैं, वे आख़िर किससे छिपे हैं। तुम्हारे अपने समाज में ऐसे लोग बड़ी तादाद में पाए ही जाते हैं। क्या कोई आँखोंवाला ईमानदारी के साथ यह कह सकता है कि उसे मुहम्मद (सल्ल॰) और उनके साथियों की ज़िन्दगी में और शाइरों और काहिनों की ज़िन्दगी में कोई फ़र्क़ नज़र नहीं आता? अब यह कैसी ढिठाई है कि ख़ुदा के इन बन्दों का खुल्लम-खुल्ला कहानत और शाइर कहकर मज़ाक़ उड़ाया जाता है और किसी को इसपर शर्म भी नहीं आती।

140. मुराद हैं काहिन, ज्योतिषी, फाल निकालनेवाले, मिट्टी के ज़रिए से शगुन निकालनेवाले और 'आमिल' क़िस्म के लोग जो ग़ैब की बातें जानने का ढोंग रचाते फिरते हैं। गोल-मोल लच्छेदार बातें बनाकर लोगों की क़िस्मतें बताते हैं, या सयाने बनकर जिन्नों और रूहों और मुअक्किलों के ज़रिए से लोगों की बिगड़ी बनाने का कारोबार करते हैं।

141. इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि शैतान कुछ सुनगुन लेकर अपने चेलों के दिलों में डाला करते हैं और उसमें थोड़ी-सी हक़ीक़त के साथ बहुत-सा झूठ मिला देते हैं। दूसरा यह कि झूठे लपाड़िए काहिन शैतानों से कुछ बातें सुन लेते हैं और फिर अपनी तरफ़ से बहुत-सा झूठ मिलाकर लोगों के कानों में फूँकते फिरते हैं। इसकी तशरीह एक हदीस में भी आई है जो बुख़ारी ने हज़रत आइशा (रज़ि॰) से रिवायत की है। वे फ़रमाती हैं कि कुछ लोगों ने नबी (सल्ल॰) से काहिनों के बारे में सवाल किया। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, वे कुछ नहीं हैं। उन्होंने पूछा, ऐ अल्लाह के रसूल, कभी-कभी तो वे ठीक बात बता देते हैं। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, वह ठीक बात जो होती है, उसे कभी-कभार जिन्न ले उड़ते हैं और जाकर अपने दोस्त काहिन के कान में फूँक देते हैं, फिर वह उसके साथ झूठ की बहुत-सी मिलावट करके एक दास्तान बना लेता है।

وَالشُّعَرَآءُ يَتَّبِعُهُمُ الْغَاوٗنَ ﴿٢٢٤﴾ اَلَمْ تَرَ اَنَّهُمْ فِيْ كُلِّ وَادٍ يَّهِيْمُوْنَ ﴿٢٢٥﴾

(224) रहे शाइर, तो उनके पीछे बहके हुए लोग चला करते हैं।[142] (225) क्या तुम देखते नहीं हो कि वे हर घाटी में भटकते हैं[143]

142. यानी शाइरों के साथ लगे रहनेवाले लोग अपने अख़लाक़, आदतों और मिज़ाज में उन लोगों से बिलकुल अलग होते हैं, जो मुहम्मद (सल्ल॰) के साथ तुम्हें नज़र आते हैं। दोनों गरोहों का फ़र्क़ ऐसा खुला हुआ फ़र्क़ है कि एक नज़र देखकर ही आदमी जान सकता है कि ये कैसे लोग हैं और वे कैसे। एक तरफ़ इन्तिहाई संजीदगी, तहज़ीब, शराफ़त, सच्चाई और ख़ुदा का डर है। बात-बात में ज़िम्मेदारी का एहसास है। बरताव में लोगों के हक़ों का ख़याल रखा जाता है। मामलों में इन्तिहाई दरजे की ईमानदारी है और ज़बान जब खुलती है, भलाई ही के लिए खुलती है, बुराई की बात कभी उससे नहीं निकलती। सबसे ज़्यादा यह कि इन लोगों को देखकर साफ़ मालूम होता है कि इनके सामने एक बुलन्द और पाकीज़ा नस्बुल-ऐन (मक़सद व लक्ष्य) है जिसकी धुन में ये रात-दिन लगे हुए हैं और इनकी सारी ज़िन्दगी एक बड़े मक़सद के लिए वक़्फ़ (समर्पित) है। दूसरी तरफ़ हाल यह है कि कहीं इश्क़बाज़ी और शराब पीने की बातें बयान हो रही हैं और वहाँ मौजूद लोग उछल-उछलकर उनपर दाद दे रहे हैं। कहीं किसी बाज़ारी औरत या किसी घर की बहू-बेटी की ख़ूबसूरती पर बात हो रही है और सुननेवाले उसपर मज़े ले रहे हैं। कहीं जिंसी मेल-मिलाप (यौन-सम्बन्धों) की कहानी बयान हो रही है और पूरी भीड़ पर शहवानियत (कामुकता) का भूत सवार है। कहीं बेहूदा बातें बकी जा रही हैं या हँसी-मज़ाक़ हो रहा है और भीड़ में हर तरफ़ ठहाके लग रहे हैं। कहीं किसी की बुराई बयान की जा रही है और लोग उससे मज़े ले रहे हैं। कहीं किसी की बेजा तारीफ़ हो रही है और उसपर तारीफ़ और शाबाशी के डोंगरे बरसाए जा रहे हैं और कहीं किसी के ख़िलाफ़ नफ़रत, दुश्मनी और इन्तिक़ाम के जज़बात भड़काए जा रहे हैं और सुननेवालों के दिलों में उनसे आग-सी लग जाती है। इन मजलिसों में शाइरों के कलाम सुनने के लिए जो भीड़-की-भीड़ लगती है, और बड़े-बड़े शाइरों के पीछे जो लोग लगे फिरते हैं, उनको देखकर कोई शख़्स यह महसूस किए बिना नहीं रह सकता कि ये अख़लाक़ की बन्दिशों से आज़ाद, जज़बात और ख़ाहिशों के बहाव में बहनेवाले और मौज-मस्ती के दीवाने, आधे जानवर क़िस्म के लोग हैं, जिनके ज़ेहन को कभी यह ख़याल छूकर भी नहीं गया है कि दुनिया में इनसान के लिए ज़िन्दगी का कोई बुलन्द मक़सद और नस्बुल-ऐन भी हो सकता है। इन दोनों गरोहों का खुला-खुला फ़र्क़ अगर किसी को नज़र नहीं आता तो वह अंधा है और अगर सबकुछ देखकर भी कोई सिर्फ़ हक़ (सत्य) को नीचा दिखाने के लिए ईमान निगलकर यह कहता है कि मुहम्मद (सल्ल॰) और उनके आसपास इकट्ठा होनेवाले उसी तरह के लोग हैं जैसे शाइर और उनके पीछे लगे रहनेवाले लोग होते हैं, तो वह झूठ बोलने में बेशर्मी की सारी हदें पार कर गया है।

143. यानी कोई एक तयशुदा राह नहीं है जिसपर वे सोचते और अपनी बोलने की ताक़त का इस्तेमाल करते हों, बल्कि उनकी सोच की रफ़्तार एक बे-लगाम घोड़े की तरह है जो हर घाटी

में भटकता फिरता है और जज़्बात, ख़ाहिशों और ज़रूरतों की हर नई लहर उनकी ज़बान से एक नई बात निकालती है जिसे सोचने और बयान करने में इस बात का कोई लिहाज़ सिरे से होता ही नहीं कि यह बात हक़ और सच्चाई भी है। कभी एक लहर उठी तो हिकमत और नसीहत की बातें होने लगीं और कभी दूसरी लहर आई तो उसी ज़बान से इन्तिहाई गन्दे और घटिया जज़्बात ज़ाहिर होने शुरू हो गए। कभी किसी से ख़ुश हुए तो उसे आसमान पर चढ़ा दिया और कभी बिगड़ बैठे तो उसी को पाताल में जा गिराया। एक कंजूस को हातिम और एक बुज़दिल को रुस्तम और स्फ़न्दयार से बढ़ाकर पेश करने में उन्हें ज़रा झिझक नहीं होती, अगर उससे कोई फ़ायदा उठाना हो। इसके बरख़िलाफ़ किसी से दुख पहुँच जाए तो उसकी पाक ज़िन्दगी पर धब्बा लगाने और उसकी इज़्ज़त पर मिट्टी डालने में, बल्कि उसके ख़ानदान पर छींटाकशी करने में भी उनको शर्म महसूस नहीं होती। ख़ुदापरस्ती और नास्तिकता, माद्दा-परस्ती (भौतिकता) और रूहानियत, अच्छा अख़लाक़ और बद-अख़लाक़ी, पाकीज़गी और गन्दगी, संजीदगी और हँसी-ठिठोली और मज़ाक उड़ाना सबकुछ एक ही शाइर के कलाम में आपको एक-दूसरे से मिला हुआ मिल जाएगा। शाइरों की इन जानी-मानी ख़ासियतों को जो शख़्स जानता हो उसके दिमाग़ में आख़िर यह बेतुकी बात कैसे उतर सकती है कि इस क़ुरआन के लानेवाले पर शाइरी की तुहमत रखी जाए जिसकी तक़रीर जंची-तुली, जिसकी बात दोटूक, जिसकी राह बिलकुल साफ़ और तयशुदा है और जिसने हक़ और ईमानदारी और भलाई की दावत से हटकर कभी एक बात भी ज़बान से नहीं निकाली है।

क़ुरआन मजीद में एक दूसरी जगह पर नबी (सल्ल॰) के बारे में कहा गया है कि आप (सल्ल॰) के मिज़ाज का तो शाइरी के साथ सिरे से कोई जोड़ ही नहीं है, "हमने उसको शेअर (शाइरी) नहीं सिखाया है, न यह उसके करने का काम है।" (क़ुरआन, सूरा-36 या-सीन, आयत-69) और यह एक ऐसी हक़ीक़त थी कि जो लोग भी नबी (सल्ल॰) को निजी तौर पर जानते थे वे सब इसे जानते थे। भरोसेमन्द रिवायतों में आया है कि कोई शेअर नबी (सल्ल॰) को पूरा याद न था। बातचीत के बीच में कभी किसी शाइर का कोई अच्छा शेअर नबी (सल्ल॰) की मुबारक ज़बान पर आता भी तो बेमेल शेअर पढ़ जाते थे, या उसमें अलफ़ाज़ का उलटफेर हो जाता था। हज़रत आइशा (रज़ि॰) से पूछा गया कि नबी (सल्ल॰) कभी अपनी तक़रीरों में अशआर भी इस्तेमाल करते थे? उन्होंने फ़रमाया, "शेअर से बढ़कर आप (सल्ल॰) को किसी चीज़ से नफ़रत न थी। अलबत्ता कभी-कभार बनी-क़ैस के शाइर का एक शेअर पढ़ते थे, मगर पहले को बाद में और बाद को पहले पढ़ जाते थे। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) कहते, ऐ अल्लाह के रसूल! यूँ नहीं बल्कि यूँ है, तो आप (सल्ल॰) फ़रमाते कि "भाई मैं शाइर नहीं हूँ और न शेअर कहना मेरे करने का काम है।" जिस तरह के मज़ामीन (विषयों) से अरब की शाइरी भरी थी उनमें या तो शहवानियत (कामुकता) और इश्क़बाज़ी की बातें थीं, या शराब पीने की, या क़बीलों की आपसी नफ़रत और लड़ाई-झगड़े की, या नस्ली ग़ुरूर और घमण्ड की। नेकी और भलाई की बातें उनमें बहुत ही कम पाई जाती थीं। फिर झूठ, बातों को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करना, झूठे इलज़ाम लगाना, बुराई बयान करना, बेजा तारीफ़, डींगें, ताने, फबतियाँ और शिर्क से भरी ख़ुराफ़ात तो इस शाइरी की रग-रग में पेवस्त थीं। इसी लिए नबी (सल्ल॰) की राय इस शाइरी के बारे में यह थी

وَاَنَّهُمۡ يَقُوۡلُوۡنَ مَا لَا يَفۡعَلُوۡنَۙ ﴿۲۲۶﴾ اِلَّا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا وَعَمِلُوا
الصّٰلِحٰتِ وَذَكَرُوا اللّٰهَ كَثِيۡرًا وَّانْتَصَرُوۡا مِنۡۢ بَعۡدِ مَا ظُلِمُوۡا ؕ
وَسَيَعۡلَمُ الَّذِيۡنَ ظَلَمُوۡۤا اَىَّ مُنۡقَلَبٍ يَّنۡقَلِبُوۡنَ ﴿۲۲۷﴾

(226) और ऐसी बातें कहते हैं जो करते नहीं हैं[144] (227)—सिवाय उन लोगों के जो ईमान लाए और जिन्होंने भले काम किए और अल्लाह को बहुत ज़्यादा याद किया और जब उनपर ज़ुल्म किया गया तो सिर्फ़ बदला ले लिया[145]—और ज़ुल्म करनेवालों को जल्द ही मालूम हो जाएगा कि वे किस अंजाम से दोचार होते हैं।[146]

कि "तुममें से किसी शख़्स का ख़ोल पीप से भर जाना इससे ज़्यादा बेहतर है कि वह शेअर से भरे।" अलबत्ता जिस शेअर में कोई अच्छी बात होती थी आप (सल्ल०) उसकी दाद भी देते थे और आप (सल्ल०) फ़रमाते थे कि "कुछ अशआर हिकमत से भरे होते हैं।" उमैया-बिन-अबिस्सल्त का कलाम सुनकर आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इसका शेअर ईमानवाला है मगर इसका दिल ईमान से ख़ाली है।" एक बार एक सहाबी ने सौ के क़रीब बेहतरीन अशआर आप (सल्ल०) को सुनाए और आप (सल्ल०) फ़रमाते गए, "और सुनाओ।"

144. यह शाइरों की एक और ख़ासियत है जो नबी (सल्ल०) के रवैये के बिलकुल बरख़िलाफ़ थी। नबी (सल्ल०) के बारे में आप (सल्ल०) का हर जाननेवाला जानता था कि आप (सल्ल०) जो कहते हैं वही करते हैं और जो करते हैं वही कहते हैं। आप (सल्ल०) की कथनी और करनी का एक जैसा होना ऐसी खुली हक़ीक़त थी जिससे आप (सल्ल०) के आसपास के समाज में कोई इनकार न कर सकता था। इसके बरख़िलाफ़ शाइरों के बारे में किसको मालूम न था कि उनके यहाँ कहने की बातें और हैं और करने की और। सख़ावत (दानशीलता) की बात इस ज़ोर-शोर से बयान करेंगे कि आदमी समझे कि शायद उनसे बढ़कर दरिया-दिल कोई न होगा। मगर अमल देखिए तो मालूम होगा कि बेहद कंजूस हैं। बहादुरी की बातें करेंगे, मगर ख़ुद बुज़दिल होंगे। बेनियाज़ी (निस्पृहता), क़नाअत (सन्तोष), और ख़ुद्दारी (स्वाभिमान) की बातें करेंगे मगर ख़ुद हिर्स और लालच में नीचता की आख़िरी हद को पार कर जाएँगे। दूसरों की छोटी-छोटी कमज़ोरियों पर पकड़ करेंगे, मगर ख़ुद बड़ी-बड़ी कमज़ोरियों में मुब्तला होंगे।

145. यहाँ शाइरों की उस आम बुराई से, जो ऊपर बयान हुई, उन शाइरों को अलग किया गया है जो चार ख़ूबियों के मालिक हों—

एक यह कि वे मोमिन (ईमानवाले) हों, यानी अल्लाह और उसके रसूल और उसकी किताबों को सच्चे दिल से मानते हों और आख़िरत पर यक़ीन रखते हों।

दूसरी यह कि अपनी अमली ज़िन्दगी में नेक हों, बुरे काम करनेवाले और अल्लाह के नाफ़रमान और गुनहगार न हों, अख़लाक़ी बन्दिशों से आज़ाद होकर झक न मारते फिरें।

तीसरी यह कि अल्लाह को बहुत ज़्यादा याद करनेवाले हों, अपने आम हालात और वक़्तों में भी, और अपने कलाम में भी। यह न हो कि निजी ज़िन्दगी तो अल्लाह के डर और परहेज़गारी से भरी हो, मगर कलाम सरासर शराब और शहवानी (कामुक) बातों से भरा हो और यह भी न हो कि शेअर में तो बड़ी हिकमतवाली और अल्लाह को पहचानने की बातें बघारी जा रही हैं, मगर निजी ज़िन्दगी को देखिए तो अल्लाह की याद की सारी अलामतों से ख़ाली। हक़ीक़त यह है कि ये दोनों हालतें यकसाँ तौर पर बुरी हैं। एक पसन्दीदा शाइर वही है जिसकी निजी ज़िन्दगी भी ख़ुदा की याद से भरी हो और शाइराना क़ाबिलियतें भी उस राह में लगी रहें जो ख़ुदा से ग़ाफ़िल लोगों की नहीं, बल्कि अल्लाह को पहचाननेवाले, उससे मुहब्बत करनेवाले और उसकी परस्तिश करनेवाले लोगों की राह है।

चौथी ख़ूबी इन अलग तरह के शाइरों की यह बयान की गई है कि वे निजी फ़ायदों के लिए तो किसी की बुराई बयान न करें, न निजी या नस्ली और क़ौमी असबियतों (पक्षपातों) की ख़ातिर इन्तिक़ाम की आग भड़काएँ, मगर जब ज़ालिमों के मुक़ाबले में हक़ की हिमायत के लिए ज़रूरत पड़े तो फिर ज़बान से वही काम लें जो एक मुजाहिद (जिहाद करनेवाला) तीर और तलवार से लेता है। हर वक़्त घिघियाते ही रहना और ज़ुल्म के मुक़ाबले में नरमी से अर्ज़ियाँ ही पेश करते रहना ईमानवालों का तरीक़ा नहीं है। इसी के बारे में रिवायत में आता है कि ग़ैर-मुस्लिमों और मुशरिकों के शाइर इस्लाम और नबी (सल्ल.) के ख़िलाफ़ इलज़ामों का जो तूफ़ान उठाते और नफ़रत और दुश्मनी का जो ज़हर फैलाते थे, उसका जवाब देने के लिए नबी (सल्ल.) ख़ुद इस्लामी शाइरों की हिम्मत बढ़ाया करते थे। चुनाँचे कअब-बिन-मालिक (रज़ि.) से आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, इनकी हज्व (बुराई) में शेअर कहो, क्योंकि उस ख़ुदा की क़सम जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है, तुम्हारा शेअर उनके हक़ में तीर से ज़्यादा तेज़ है।" (हदीस : अहमद इब्ने-हम्बल, मुसनद अहमद, जिल्द-6, पेज-387; नसई किताबुल-मनासिक-अल-हज्ज बाब इंशाद अश्शिर-फ़िल-हराम, बाब इस्तिक़बाल-अल-हज्ज) हज़रत हस्सान-बिन-साबित (रज़ि.) से फ़रमाया, "इनकी ख़बर लो और जिबरील तुम्हारे साथ है।" (हदीस : बुख़ारी किताबुल-ल-बद-अल-ख़ल्क़, बाब-अज़्ज़िकरल-मलाइ-क स-लवातुल्ला अलैहिम) और "कहो, और रूहुल-क़ुदुस तुम्हारे साथ है।" (अहमद-इब्ने-हम्बल, मुसनद जिल्द-4, पेज-298 और 301) आप (सल्ल.) का इरशाद था कि "मोमिन तलवार से भी लड़ता है और ज़बान से भी।"

(हदीस : मुसनद अहमद, जिल्द-6, पेज-387)

146. ज़ुल्म करनेवालों से मुराद यहाँ वे लोग हैं जो हक़ को नीचा दिखाने के लिए सरासर हठधर्मी की राह से नबी (सल्ल.) पर शाइरी और कहानत और जादूगरी और जुनून की तुहमतें लगाते फिरते थे, ताकि न जाननेवाले लोग आप (सल्ल.) की दावत से बदगुमान हों और आप (सल्ल.) की तालीम की तरफ़ ध्यान न दें।

☆☆☆

[illegible]

27. अन-नम्ल

परिचय

नाम

इस सूरा की आयत-18 में 'वादिन-नमलि' (चींटियों की घाटी) का ज़िक्र आया है। सूरा का नाम इसी से लिया गया है। यानी वह सूरा जिसमें 'अन-नम्ल' (चींटी) का क़िस्सा बयान हुआ है, या जिसमें 'अन-नम्ल' का लफ़्ज़ आया है।

उतरने का ज़माना

मज़मून (विषय) और बयान का अन्दाज़ मक्का के बीच के दौर की सूरतों से पूरी तरह मिलता-जुलता है और इसकी ताईद रिवायतों से भी होती है। इब्ने-अब्बास (रज़ि०) और जाबिर-बिन-ज़ैद का बयान है कि "पहले सूरा-26 शुअरा उतरी, फिर नम्ल, फिर क़सस।"

मौज़ू (विषय) और बहसें

इस सूरा में दो ख़ुतबे (अभिभाषण) हैं। पहला ख़ुतबा सूरा के शुरू से आयत-58 तक है और दूसरा ख़ुतबा आयत-59 से सूरा के आख़िर तक है।

पहले ख़ुतबे में बताया गया है कि क़ुरआन की रहनुमाई से सिर्फ़ वही लोग फ़ायदा उठा सकते हैं और उसकी ख़ुशख़बरियों के हक़दार भी सिर्फ़ वही लोग हैं जो उन सच्चाइयों को मानें जिन्हें यह किताब इस कायनात की बुनियादी हक़ीक़तों की हैसियत से पेश करती है और फिर मान लेने के बाद अपनी अमली ज़िन्दगी में भी फ़रमाँबरदारी और पैरवी का रवैया अपनाएँ। लेकिन इस राह पर आने और चलने में जो चीज़ सबसे बढ़कर रुकावट होती है वह आख़िरत का इनकार है; क्योंकि यह आदमी को ग़ैर-ज़िम्मेदार, नफ़्स (मन) का ग़ुलाम और दुनिया की जिन्दगी का आशिक़ बना देता है, जिसके बाद आदमी का ख़ुदा के आगे झुकना और अपने मन की ख़ाहिशों पर अख़लाक़ी पाबन्दियाँ बरदाश्त करना मुमकिन नहीं रहता। इन शुरुआती बातों के बाद तीन तरह के

किरदारों के नमूने पेश किए गए हैं।

एक नमूना फ़िरऔन और समूद की क़ौम के सरदारों और क़ौमे-लूत के सरकश लोगों का है, जिनका किरदार आख़िरत की फ़िक्र से बे-परवाह और नतीजतन मन की ग़ुलामी से बनी थी। ये लोग किसी निशानी को देखकर भी ईमान लाने के लिए तैयार न हुए। ये उलटे उन लोगों के दुश्मन हो गए जिन्होंने उनको भलाई और सुधार की तरफ़ बुलाया। वे अपनी उन बदकारियों पर भी पूरी तरह अड़े रहे जिनका घिनौनापन किसी अक़्लवाले इनसान से छिपा नहीं है। उन्हें अल्लाह के अज़ाब में गिरफ़्तार होने से एक पल पहले तक भी होश न आया।

दूसरा नमूना हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) का है जिनको ख़ुदा ने दौलत, हुकूमत और शानो-शौकत से इतना ज़्यादा नवाज़ा था कि मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के सरदार उसका ख़ाब भी न देख सकते थे। लेकिन इस सबके बावजूद चूँकि वे अपने आपको अल्लाह के सामने जवाबदेह समझते थे और उन्हें एहसास था कि उन्हें जो कुछ भी हासिल है ख़ुदा के देने से हासिल है, इसलिए उनका सिर हर वक़्त हक़ीक़ी नेमतें देनेवाले के आगे झुका रहता था और अपनी बड़ाई का कोई हलका-सा निशान तक उनकी सीरत और किरदार में न पाया जाता था।

तीसरा नमूना सबा की मलिका (रानी) का है जो अरब के इतिहास की बेहद दौलतमन्द क़ौम पर हुक्मराँ थी। उसके पास तमाम वे असबाब (दौलत और संसाधन) जमा थे जो किसी इनसान को अपनी बड़ाई में मुब्तला कर सकते हैं। जिन चीज़ों के बल पर कोई इनसान घमण्ड कर सकता है, वह क़ुरैश के सरदारों के मुक़ाबले में लाखों दर्जे ज़्यादा उसे हासिल थीं। फिर वह एक मुशरिक क़ौम से ताल्लुक़ रखती थी। बाप-दादा के रास्ते पर चलने की वजह से भी और अपनी क़ौम की सरदारी क़ायम रखने की ख़ातिर भी, उसके लिए शिर्कवाले दीन (धर्म) को छोड़कर तौहीदवाले (एकेश्वरवादी) दीन को अपना लेना उससे बहुत ज़्यादा मुश्किल काम था जितना किसी आम मुशरिक के लिए हो सकता है। लेकिन जब उसपर हक़ खुल गया तो कोई चीज़ उसे हक़ (सत्य) को क़बूल करने से न रोक सकी; क्योंकि उसकी गुमराही सिर्फ़ एक मुशरिक माहौल में आँखें खोलने की वजह से थी। नफ़्स (मन) की बन्दगी और ख़ाहिशों की ग़ुलामी का रोग उसपर छाया हुआ न था। ख़ुदा के सामने जवाबदेही के एहसास से उसका ज़मीर (अन्तरात्मा) आज़ाद न था।

दूसरे ख़ुतबे में सबसे पहले कायनात की कुछ सबसे ज़्यादा नुमायाँ हक़ीक़तों की तरफ़ इशारे करके मक्का के इस्लाम-दुश्मनों से एक के बाद एक सवाल किया गया है

कि बताओ, ये हक़ीक़तें उस शिर्क की गवाही दे रही हैं जिसमें तुम मुब्तला हो, या उस तौहीद पर गवाह हैं जिसकी दावत इस क़ुरआन में तुम्हें दी जा रही है? इसके बाद इस्लाम-दुश्मनों के अस्ल रोग पर उँगली रख दी गई है कि जिस चीज़ ने उनको अंधा बना रखा है, जिसकी वजह से वे सबकुछ देखकर भी कुछ नहीं देखते और सबकुछ सुनकर भी कुछ नहीं सुनते, वह अस्ल में आख़िरत का इनकार है। इसी चीज़ ने उनके लिए ज़िन्दगी के किसी मामले में भी कोई संजीदगी बाक़ी नहीं छोड़ी है; क्योंकि जब उनके नज़दीक आख़िरकार सबकुछ मिट्टी हो जाना है और दुनिया की इस ज़िन्दगी की सारी दौड़-धूप का नतीजा कुछ भी नहीं है, तो आदमी के लिए फिर हक़ (सत्य) और बातिल (असत्य) सब एक जैसे हैं। उसके लिए इस सवाल में सिरे से कोई अहमियत ही नहीं रहती कि उसकी ज़िन्दगी का निज़ाम सही रास्ते पर क़ायम है या ग़लत रास्ते पर।

लेकिन इस बहस का मक़सद मायूस करना नहीं है कि जब ये लोग ग़फ़लत में मग्न हैं तो इन्हें दावत देना ही बेकार है, बल्कि अस्ल में इसका मक़सद सोनेवालों को झकझोरकर जगाना है। इसलिए आयत-67 से आख़िर तक की आयतों में लगातार वे बातें कही गई हैं जो लोगों में आख़िरत का एहसास जगाएँ, उससे लापरवाही बरतने के नतीजों पर ख़बरदार करें और उन्हें उसके आने का इस तरह यक़ीन दिलाएँ जिस तरह एक आदमी अपनी आँखों देखी बात का उस शख़्स को यक़ीन दिलाता है जिसने उसे नहीं देखा है।

सूरा के आख़िर में क़ुरआन की अस्ल दावत, यानी एक ख़ुदा की बन्दगी की दावत निहायत कम अलफ़ाज़ में, मगर इन्तिहाई असरदार अन्दाज़ में पेश करके लोगों को ख़बरदार किया गया है कि उसे क़बूल करना तुम्हारे अपने लिए फ़ायदेमन्द और उसे ठुकराना तुम्हारे अपने लिए ही नुक़सानदेह है। उसे मानने के लिए अगर ख़ुदा की वे निशानियाँ देखने का इन्तिज़ार करोगे जिनके सामने आ जाने के बाद माने बिना कोई चारा न रहेगा, तो याद रखो कि वह फ़ैसले का वक़्त होगा। उस वक़्त मानने से कुछ हासिल न होगा।

☆☆☆

آيَاتُهَا ٩٣ ٢٧ سُوْرَةُ النَّمْلِ مَكِّيَّةٌ ٤٨ رُكُوْعَاتُهَا ٧

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

طٰسٓ ۚ تِلْكَ اٰيٰتُ الْقُرْاٰنِ وَكِتَابٍ مُّبِيْنٍ ﴿١﴾ هُدًى وَّبُشْرٰى
لِلْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٢﴾ الَّذِيْنَ يُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَيُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَهُمْ بِالْاٰخِرَةِ

27. अन-नम्ल

(मक्का में उतरी--आयतें-93)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) ता-सीन। ये आयतें हैं क़ुरआन और किताबे-मुबीन (खुली किताब)[1] की, (2-3) हिदायत और ख़ुशख़बरी[2] उन ईमान लानेवालों के लिए जो नमाज़ क़ायम करते और ज़कात देते हैं,[3] और फिर वे ऐसे लोग हैं जो आख़िरत पर पूरा यक़ीन रखते

1. 'किताबे-मुबीन' का एक मतलब यह है कि यह किताब अपनी तालीमात (शिक्षाओं) और अपने हुक्मों और हिदायतों को बिलकुल साफ़ तरीक़े से बयान करती है। दूसरा मतलब यह कि वह हक़ और बातिल (सत्य-असत्य) का फ़र्क़ नुमायाँ तरीक़े से खोल देती है और एक तीसरा मतलब यह भी है कि इसका अल्लाह की किताब होना ज़ाहिर है, जो कोई इसे आँखें खोलकर पढ़ेगा उसपर यह बात खुल जाएगी कि यह मुहम्मद (सल्ल॰) का अपना गढ़ा हुआ कलाम (वाणी) नहीं है।
2. यानी ये आयतें हिदायतें और ख़ुशख़बरियाँ हैं। 'हिदायत करनेवाली' और 'ख़ुशख़बरी देनेवाली' कहने के बजाय उन्हें अपने आपमें खुद 'हिदायत' और 'ख़ुशख़बरी' कहा गया, जिसका मक़सद यह बताना है कि उसके अन्दर कामिल दर्जे की रहनुमाई और ख़ुशख़बरी की सिफ़त पाई जाती है। जैसे किसी को आप सख़ी (दानशील) कहने के बजाय सख़ावत की मूर्ति और हसीन (ख़ूबसूरत) कहने के बजाय सिर से पाँव तक हुस्न (सौन्दर्य) कहें।
3. यानी क़ुरआन मजीद की ये आयतें रहनुमाई भी सिर्फ़ उन्हीं लोगों की करती हैं और भले अंजाम की ख़ुशख़बरी भी सिर्फ़ उन्हीं लोगों को देती हैं जिनमें दो ख़ासियतें पाई जाती हों, एक यह कि वे ईमान लाएँ और ईमान लाने से मुराद यह है कि वे क़ुरआन और मुहम्मद (सल्ल॰) की दावत को क़बूल कर लें, एक ख़ुदा को अपना अकेला माबूद और रब मान लें, क़ुरआन को ख़ुदा की किताब तस्लीम कर लें, मुहम्मद (सल्ल॰) को सच्चा नबी मानकर अपना पेशवा बना लें और यह अक़ीदा भी अपना लें कि इस ज़िन्दगी के बाद एक दूसरी ज़िन्दगी है जिसमें हमको अपने

هُمْ يُوْقِنُوْنَ۝۳ اِنَّ الَّذِيْنَ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِالْاٰخِرَةِ زَيَّنَّا لَهُمْ

हैं।[4] (4) हक़ीक़त यह है कि जो लोग आख़िरत को नहीं मानते उनके लिए हमने उनके

आमाल का हिसाब देना और आमाल के बदले का सामना करना है। दूसरी ख़ासियत उनकी यह है कि वे उन चीज़ों को सिर्फ़ मान कर न रह जाएँ, बल्कि अमली तौर से फ़रमाँबरदारी के लिए राज़ी हों और इस रज़ामन्दी की सबसे पहली निशानी यह है कि वे नमाज़ क़ायम करें और ज़कात दें। ये दोनों शर्तें जो लोग पूरी कर देंगे उन्हीं को क़ुरआन की आयतें दुनिया में ज़िन्दगी का सीधा रास्ता बताएँगी, इस रास्ते के हर मरहले में उनको सही और ग़लत का फ़र्क़ समझाएँगी, उसके हर मोड़ पर उन्हें ग़लत राहों की तरफ़ जाने से बचाएँगी और उनको यह इतमीनान दिलाएँगी कि सीधे रास्ते पर चलने के नतीजे दुनिया में चाहे जो कुछ भी हों, आख़िरकार हमेशा रहनेवाली और दाइमी कामयाबी इसी की बदौलत उन्हें मिलेगी और वे अल्लाह तआला की ख़ुशनूदी पाएँगे। यह बिलकुल ऐसा ही है जैसे एक टीचर की तालीम से वही शख़्स फ़ायदा उठा सकता है जो उसपर भरोसा करे, सचमुच उसका शागिर्द बनना क़बूल कर ले और फिर उसकी हिदायतों के मुताबिक़ काम भी करे। एक डॉक्टर से फ़ायदा वही रोगी उठा सकता है जो उसे अपना डॉक्टर बनाए और दवा और परहेज़ वग़ैरा के मामले में उसकी हिदायतों पर अमल करे। इसी सूरत में टीचर और डॉक्टर यह इतमीनान दिला सकते हैं कि आदमी को मनचाहे नतीजे मिलेंगे।

कुछ लोगों ने इस आयत में ''युअतूनज़्-ज़कात'' का मतलब यह लिया है कि वे अख़लाक़ की पाकीज़गी अपनाएँ। लेकिन क़ुरआन मजीद में 'इक़ामते-सलात' के साथ 'ईता-ए-ज़कात' का लफ़्ज़ जहाँ भी आया है, उससे मुराद वह ज़कात अदा करना है जो नमाज़ के साथ इस्लाम का दूसरा रुक्न है। इसके अलावा ज़कात के लिए 'ईता' का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है जो माल की ज़कात अदा करने का मानी तय कर देता है; क्योंकि अरबी ज़बान में पीकीज़गी अपनाने के लिए 'तज़क्का' का लफ़्ज़ बोला जाता है, न कि 'ईता-ए-ज़कात'। अस्ल में यहाँ मक़सद जो बात ज़ेहन में बिठाना है वह यह कि क़ुरआन की रहनुमाई से फ़ायदा उठाने के लिए ईमान के साथ अमली तौर से फ़रमाँबरदारी और पैरवी का रवैया अपनाना भी ज़रूरी है और 'इक़ामते-सलात' और 'ईता-ए-ज़कात' वह पहली निशानी है जो यह ज़ाहिर करती है कि आदमी ने सचमुच फ़रमाँबरदारी क़बूल कर ली है। यह निशानी जहाँ ग़ायब हुई वहाँ फ़ौरन यह मालूम हो जाता है कि आदमी सरकश है, हाकिम को हाकिम चाहे उसने मान लिया हो, मगर हुक्म की पैरवी के लिए वह तैयार नहीं है।

4. हालाँकि आख़िरत का अक़ीदा उन बातों में शामिल है जिनपर ईमान लाना ज़रूरी है और इस वजह से 'ईमान लानेवालों' से मुराद ज़ाहिर है कि वही लोग हैं जो तौहीद और रिसालत के साथ आख़िरत पर भी ईमान लाएँ, लेकिन ईमान के तक़ाज़ों में इसके आप-से-आप शामिल होने के बावजूद यहाँ इस अक़ीदे की अहमियत ज़ाहिर करने के लिए ख़ास तौर पर ज़ोर देकर इसे अलग से बयान किया गया है। इसका मक़सद यह ज़ेहन में बिठाना है कि जो लोग आख़िरत

أَعْمَالَهُمْ فَهُمْ يَعْمَهُونَ ۝ أُولَٰئِكَ الَّذِينَ لَهُمْ

करतूतों को लुभावना बना दिया है, इसलिए वे भटकते फिरते हैं।[5] (5) ये वे लोग हैं जिनके

को न मानते हों उनके लिए इस क़ुरआन के बताए हुए रास्ते पर चलना बल्कि उसपर क़दम रखना भी मुश्किल है; क्योंकि इस तरह की सोच रखनेवाले लोग फ़ितरी तौर से भलाई-बुराई को सिर्फ़ उन्हीं नतीजों से तय करते हैं जो इस दनिया में ज़ाहिर होते या हो सकते हैं और उनके लिए किसी ऐसी नसीहत और हिदायत को क़बूल करना मुमकिन नहीं होता जो आख़िरत के अंजाम को फ़ायदे-नुक़सान का पैमाना क़रार देकर भलाई और बुराई को तय करती हो। ऐसे लोग अव्वल तो नबियों और पैग़म्बरों की तालीम पर कान ही नहीं धरते, लेकिन अगर किसी वजह से वे ईमान लानेवालों के गरोह में शामिल हो भी जाएँ तो आख़िरत का यक़ीन न होने की वजह से उनके लिए ईमान और इस्लाम के रास्ते पर एक क़दम चलना भी मुश्किल होता है। इस राह में पहली ही आज़माइश जब पेश आएगी, जहाँ दुनियावी फ़ायदे और आख़िरत में मिलनेवाले नुक़सान के तक़ाज़े उन्हें दो अलग-अलग सम्तों (दिशाओं) में खींचेंगे तो बेहिचक दुनिया के फ़ायदे की तरफ़ खिंच जाएँगे और आख़िरत के नुक़सान की ज़र्रा बराबर परवाह न करेंगे, चाहे ज़बान से वे ईमान के कितने ही दावे करते रहें।

5. यानी ख़ुदा का क़ानूने-फ़ितरत यह है कि इनसानी नफ़सियात (मनोविज्ञान) की फ़ितरी मन्तिक़ (तार्किकता) यही है कि जब आदमी ज़िन्दगी और उसकी कोशिश और अमल के नतीजों को सिर्फ़ इसी दुनिया तक महदूद समझेगा, जब वह किसी ऐसी अदालत को मानता न होगा जहाँ इनसान की पूरी ज़िन्दगी के कामों की जाँच-पड़ताल करके उसके अच्छे-बुरे होने का आख़िरी फ़ैसला किया जानेवाला हो और जब वह मौत के बाद किसी ऐसी ज़िन्दगी का माननेवाला न होगा जिसमें दुनिया की ज़िन्दगी के आमाल की हक़ीक़ी क़द्रो-क़ीमत के मुताबिक़ ठीक-ठीक इनाम या सज़ा दी जानेवाली हो, तो लाज़िमन उसके अन्दर एक माद्दा-परस्ताना (भौतिकवादी) सोच परवान चढ़ेगी। उसे हक़ और बातिल, शिर्क और तौहीद, भलाई और बुराई, अख़लाक़ और बद-अख़लाक़ी की सारी बहसें सरासर बेमतलब नज़र आएँगी। जो कुछ उसे इस दुनिया में ऐशो-आराम और माद्दी ख़ुशहाली और ताक़त और इक़्तिदार दे, वही उसके नज़दीक भलाई होगी, यह देखे बग़ैर कि वह इक़्तिदार ज़िन्दगी का कोई फ़लसफ़ा (जीवन-दर्शन), कोई तर्ज़े-ज़िन्दगी (जीवन-शैली) और कोई निज़ामे-अख़लाक़ (नैतिक व्यवस्था) हो। उसको हक़ीक़त और सच्चाई से कोई सरोकार ही न होगा। उसको अस्ल में जो कुछ चाहिए वे दुनिया की ज़िन्दगी की सुख-सुविधाएँ और कामयाबियाँ होंगी जिनको पाने की फ़िक्र उसे हर घाटी में लिए भटकती फिरेगी और इस मक़सद के लिए जो कुछ भी वह करेगा, उसे अपने नज़दीक बड़ी ख़ूबी की बात समझेगा और उलटा उन लोगों को बेवक़ूफ़ समझेगा जो उसकी तरह दुनिया की तलब में नहीं लगे हैं और अख़लाक़ और बद-अख़लाक़ी से बे-परवाह होकर हर काम कर गुज़रने में निडर नहीं हैं।

سُوْٓءُ الْعَذَابِ وَهُمْ فِي الْاٰخِرَةِ هُمُ الْاَخْسَرُوْنَ۝۵ وَاِنَّكَ لَتُلَقَّى
الْقُرْاٰنَ مِنْ لَّدُنْ حَكِيْمٍ عَلِيْمٍ۝۶ اِذْ قَالَ مُوْسٰى لِاَهْلِهٖٓ اِنِّيْٓ اٰنَسْتُ

लिए बुरी सज़ा है[6] और आख़िरत में यही सबसे ज़्यादा घाटे में रहनेवाले हैं। (6) और (ऐ नबी) बेशक तुम यह क़ुरआन एक हिकमतवाली और सबकुछ जाननेवाली हस्ती की तरफ़ से पा रहे हो।[7]

(7) (इन्हें उस वक़्त का क़िस्सा सुनाओ) जब मूसा ने अपने घरवालों से कहा[8] कि

किसी के बुरे कामों को उसके लिए लुभावना बना देने का यह अमल क़ुरआन मजीद में कभी अल्लाह तआला से जोड़ा गया है और कभी शैतान की तरफ़। जब इसे अल्लाह तआला की तरफ़ जोड़ा जाता है तो इससे मुराद, जैसा कि ऊपर बयान हुआ, यह होती है कि जो शख़्स यह नज़रिया अपनाता है, उसे फ़ितरी तौर पर ज़िन्दगी का यही रवैया अच्छा मालूम होता है और जब यह अमल शैतान की तरफ़ जोड़ा जाता है तो इसका मतलब यह होता है कि इस नज़रिए और रवैये को अपनानेवाले आदमी के सामने शैतान हर वक़्त एक ख़याली जन्नत पेश करता रहता है और उसे ख़ूब इतमीनान दिलाता है कि शाबाश बेटे, बहुत अच्छे जा रहे हो।

6. इस बुरी सज़ा की सूरत, वक़्त और जगह को तय नहीं किया गया है; क्योंकि यह इस दुनिया में भी अलग-अलग लोगों और गरोहों और क़ौमों को अनगिनत अलग-अलग तरीक़ों से मिलती है। इस दुनिया से रुख़सत होते वक़्त ठीक मौत के दरवाज़े पर भी इसका एक हिस्सा ज़ालिमों को पहुँचता है, मौत के बाद आलमे-बरज़ख़ (मौत और क़ियामत के बीच का वक़्त) में भी इससे आदमी दोचार होता है और फिर हश्र के दिन से तो इसका एक सिलसिला शुरू हो जाएगा जो फिर कहीं जाकर ख़त्म न होगा।

7. यानी यह कोई हवाई बातें नहीं हैं जो इस क़ुरआन में की जा रही हैं और न किसी इनसान के अन्दाज़े और राय पर इनकी बुनियाद है, बल्कि उन्हें एक हिकमतवाली और सबकुछ जाननेवाली हस्ती दिल में डाल रही है जो हिकमत और अक़्लमन्दी और इल्म व दानिश में मुकम्मल है, जिसे अपने पैदा किए हुओं की मस्लहतें और उनके माज़ी (अतीत), हाल (मौजूदा) और मुस्तक़बिल (भविष्य) का पूरा इल्म है और जिसकी हिकमत बन्दों के सुधार और हिदायत के लिए बेहतरीन तदबीरें अपनाती है।

8. यह उस वक़्त का क़िस्सा है जब हज़रत मूसा (अलैहि॰) मदयन में आठ-दस साल गुज़ारने के बाद अपने बाल-बच्चों को साथ लेकर कोई ठिकाना तलाश करने जा रहे थे। मदयन का इलाक़ा अक़बा की खाड़ी के किनारे अरब और जज़ीरा-नुमा-ए-सीना (प्रायद्वीप सीना) के समन्दरी तटों पर था (देखिए– तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-26 शुअरा, हाशिया-115) वहाँ से चलकर हज़रत मूसा जज़ीरा-नुमाए-सीना के दक्षिणी हिस्से में उस जगह पर पहुँचे जो अब सीना पहाड़ और जब्ले-मूसा कहलाता है और क़ुरआन उतरने के ज़माने में तूर के नाम से मशहूर था। इसी के

نَارًا ؕ سَاٰتِيۡكُمۡ مِّنۡهَا بِخَبَرٍ اَوۡ اٰتِيۡكُمۡ بِشِهَابٍ قَبَسٍ لَّعَلَّكُمۡ
تَصۡطَلُوۡنَ ۝ فَلَمَّا جَآءَهَا نُوۡدِىَ اَنۡۢ بُوۡرِكَ مَنۡ فِى النَّارِ وَمَنۡ حَوۡلَهَا ؕ

"मुझे एक आग-सी नज़र आई है, मैं अभी या तो वहाँ से कोई ख़बर लेकर आता हूँ या कोई अंगारा चुन लाता हूँ ताकि तुम लोग गर्म हो सको।"[9] (8) वहाँ जो पहुँचा तो आवाज़ आई[10] कि "मुबारक है वह जो इस आग में है और जो इसके माहौल में है।

दामन में वह वाक़िआ पेश आया जिसका यहाँ ज़िक्र हो रहा है।

यहाँ जो क़िस्सा बयान किया जा रहा है उसकी तफ़सीलात इससे पहले सूरा-20 ता-हा (आयतें—9-24) में गुज़र चुकी हैं और आगे सूरा-28 क़सस (आयतें—29-42) में आ रही हैं।

9. बात के मौक़ा-महल से ज़ाहिर होता है कि यह रात का वक़्त और जाड़े का मौसम था और हज़रत मूसा (अलैहि०) एक अजनबी इलाक़े से गुज़र रहे थे, जिसकी उन्हें कुछ ज़्यादा जानकारी न थी। इसलिए उन्होंने अपने घरवालों से फ़रमाया कि मैं जाकर मालूम करता हूँ यह कौन-सी बस्ती है जहाँ आग जल रही है, आगे किधर-किधर रास्ते जाते हैं और कौन-कौन-सी बस्तियाँ क़रीब हैं। फिर भी अगर वे भी हमारी ही तरह कोई चलते-फिरते मुसाफ़िर हुए, जिनसे कोई मालूमात हासिल न हो सकीं, तो कम-से-कम मैं कुछ अंगारे ही ले आऊँगा, ताकि तुम लोग आग जलाकर कुछ गर्मी हासिल कर सको।

यह मक़ाम जहाँ हज़रत मूसा (अलैहि०) ने झाड़ी में आग लगी हुई देखी थी, तूर पहाड़ के दामन में समन्दर-तल से लगभग 5 हज़ार फ़ीट की बुलन्दी पर क़ायम है। यहाँ रोमी (रूमी) सल्तनत के पहले ईसाई बादशाह क़ुस्तनतीन ने 365 ई० के लगभग ज़माने में ठीक उस जगह पर एक कनीसा बनवा दिया था जहाँ यह वाक़िआ पेश आया था। इसके दो सौ साल बाद क़ैसर जस्टिनीन ने यहाँ एक बुतख़ाना (Monastery) बनवाया जिसके अन्दर क़ुस्तनतीन के बनाए हुए कनीसा को भी शामिल कर लिया। ये बुतख़ाना और कनीसा दोनों आज तक मौजूद हैं और यूनानी गिरजाघर (Greek Orthodox Church) के राहिबों का उनपर क़ब्ज़ा है। मैंने जनवरी 1960 ई० में इस जगह को देखा है।

10. सूरा-28 क़सस में है कि आवाज़ एक पेड़ से आ रही थी, "मुबारक हिस्से में एक पेड़ से" (आयत-30) इससे जो सूरते-हाल समझ में आती है वह यह है कि घाटी के किनारे एक जगह में आग-सी लगी हुई थी, मगर न कुछ जल रहा था, न कोई धुआँ उठ रहा था और इस आग के अन्दर एक हरा-भरा पेड़ खड़ा था जिसपर से यकायक यह आवाज़ आनी शुरू हुई।

यह एक अजीब मामला है जो नबियों और पैग़म्बरों (अलैहि०) के साथ पेश आता रहा है। नबी (सल्ल०) को जब पहली बार पैग़म्बरी दी गई तो हिरा नामक गुफा की तन्हाई में यकायक एक फ़रिश्ता आया और उसने अल्लाह का पैग़ाम पहुँचाना शुरू कर दिया। हज़रत मूसा (अलैहि०) के साथ भी यही सूरत पेश आई कि एक आदमी सफ़र करता हुआ एक जगह ठहरा है, दूर से

وَسُبْحٰنَ اللّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ⑧ يٰمُوْسٰى اِنَّهٗ اَنَا اللّٰهُ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ⑨
وَاَلْقِ عَصَاكَ ۚ فَلَمَّا رَاٰهَا تَهْتَزُّ كَاَنَّهَا جَآنٌّ وَّلّٰى مُدْبِرًا وَّلَمْ
يُعَقِّبْ ۚ يٰمُوْسٰى لَا تَخَفْ ۗ اِنِّيْ لَا يَخَافُ لَدَيَّ الْمُرْسَلُوْنَ⑩ اِلَّا مَنْ

पाक है अल्लाह, सब जहानवालों का परवरदिगार।[11] (9) ऐ मूसा, यह मैं हूँ अल्लाह, ज़बरदस्त और हिकमतवाला। (10) और फेंक तो ज़रा अपनी लाठी।" ज्यों ही कि मूसा ने देखा लाठी साँप की तरह बल खा रही है[12] तो पीठ फेरकर भागा और पीछे मुड़कर भी न देखा। "ऐ मूसा, डरो नहीं। मेरे सामने रसूल डरा नहीं करते,[13] (11) सिवाय यह

आग देखकर रास्ता पूछने या अंगारा चुनने की ग़रज़ से आता है और अचानक सारे जहानों के रब अल्लाह की हर अन्दाज़े और गुमान से परे हस्ती उससे मुख़ातब हो जाती है। इन मौक़ों पर हक़ीक़त में एक ऐसी ग़ैर-मामूली कैफ़ियत बाहर में भी और नबी (अलैहि.) के मन में भी मौजूद होती है जिसकी वजह से उन्हें इस बात का यक़ीन हासिल हो जाता है कि यह किसी जिन्न या शैतान या ख़ुद उनके अपने ज़ेहन का कोई करिश्मा नहीं है, न उनके हवास कोई धोखा खा रहे हैं, बल्कि सचमुच यह अल्लाह तआला या उसका फ़रिश्ता ही है जो उनसे बात कर रहा है। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें— सूरा-53 नज्म, हाशिया-10)

11. इस मौक़े पर 'सुब्हानल्लाह' कहने का मक़सद अस्ल में हज़रत मूसा (अलैहि.) को इस बात पर ख़बरदार करना था कि यह मामला इन्तिहाई दर्जे की पाकीज़गी के साथ पेश आ रहा है। यानी ऐसा नहीं है कि सारे जहानों का रब अल्लाह उस पेड़ पर बैठा हो, या उसमें समा गया हो, या उसका नूर तुम्हारी देखने की क़ुव्वत में समा गया हो, या कोई ज़बान किसी मुँह में हरकत करके यहाँ बात कर रही हो, बल्कि उन तमाम महदूदियतों (सीमाओं) से पाक और परे होते हुए वह ख़ुद तुमसे बात कर रहा है।

12. सूरा-7 आराफ़ और सूरा-26 शुअरा में इसके लिए 'सुअबान' (अजगर) का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है और यहाँ उसके लिए 'जान' का लफ़्ज़ आया है जो छोटे साँप के लिए बोला जाता है। इसकी वजह यह है कि डील-डौल में वह अजगर था, मगर उसकी हरकत की तेज़ी एक छोटे साँप जैसी थी। इसी मतलब को सूरा-20 ता-हा में "हय्यतुन-तसआ" (दौड़ते हुए साँप) के अलफ़ाज़ में अदा किया गया है।

13. यानी मेरे सामने इस बात का कोई ख़तरा नहीं है कि रसूल (पैग़म्बर) को कोई तकलीफ़ पहुँचे। रिसालत (पैग़म्बरी) के बड़े मंसब पर मुक़र्रर करने के लिए जब मैं किसी को अपनी पेशी में बुलाता हूँ तो उसकी हिफ़ाज़त का ख़ुद ज़िम्मेदार होता हूँ। इसलिए चाहे कैसा ही कोई ग़ैर-मामूली मामला पेश आए रसूल को निडर और मुत्मइन रहना चाहिए कि उसके लिए यह किसी तरह नुक़सानदेह न होगा।

ظَلَمَ ثُمَّ بَدَّلَ حُسْنًا بَعْدَ سُوْٓءٍ فَاِنِّیْ غَفُوْرٌ رَّحِیْمٌ ⑪ وَاَدْخِلْ یَدَكَ
فِیْ جَیْبِكَ تَخْرُجْ بَیْضَآءَ مِنْ غَیْرِ سُوْٓءٍ فِیْ تِسْعِ اٰیٰتٍ اِلٰی فِرْعَوْنَ
وَقَوْمِهٖ اِنَّهُمْ كَانُوْا قَوْمًا فٰسِقِیْنَ ⑫ فَلَمَّا جَآءَتْهُمْ اٰیٰتُنَا مُبْصِرَةً

कि किसी ने क़ुसूर किया हो।[14] फिर अगर बुराई के बाद उसने भलाई से (अपनी करनी को) बदल लिया तो मैं माफ़ करनेवाला मेहरबान हूँ।[15] (12) और ज़रा अपना हाथ अपने गरीबान में तो डालो। चमकता हुआ निकलेगा बिना किसी तकलीफ़ के। ये (दो निशानियाँ) नौ निशानियों में से हैं फ़िरऔन और उसकी क़ौम की तरफ़ (ले जाने के लिए[16])। वे बड़े बदकिरदार लोग हैं।''

(13) मगर जब हमारी खुली-खुली निशानियाँ उन लोगों के सामने आईं तो उन्होंने

14. इसका एक मतलब यह होगा कि डर की मुनासिब वजह अगर हो सकती है तो यह कि रसूल से कोई क़ुसूर हो गया हो और दूसरा मतलब यह होगा कि मेरे सामने तो किसी को भी कोई ख़तरा नहीं है, जब तक कि आदमी क़ुसूरवार न हो।

15. यानी क़ुसूर करनेवाला भी अगर तौबा करके अपने रवैये को सुधार ले और बुरे काम के बजाय अच्छे काम करने लगे तो ख़ुदा के यहाँ उसके लिए माफ़ी का दरवाज़ा खुला है। इस मौक़े पर यह बात कहने का मक़सद एक चेतावनी भी थी और ख़ुशख़बरी भी। हज़रत मूसा (अलैहि.) बे-इरादा एक क़िब्ती को क़त्ल करके मिस्र से निकले थे। यह एक क़ुसूर था जिसकी तरफ़ हलका-सा इशारा कर दिया गया। फिर जिस वक़्त यह क़ुसूर अचानक बे-इरादा उनसे हो गया था उसके बाद फ़ौरन ही उन्होंने अल्लाह तआला से माफ़ी माँग ली थी कि ''ऐ परवरदिगार, मैं अपने आपपर ज़ुल्म कर गुज़रा, मुझे माफ़ कर दे।'' और अल्लाह तआला ने उसी वक़्त उन्हें माफ़ भी कर दिया था (सूरा-28 क़सस, आयत-16) अब यहाँ उसी माफ़ी की ख़ुशख़बरी उन्हें दी गई है। मानो मतलब इस तक़रीर का यह हुआ कि ऐ मूसा, मेरे सामने तुम्हारे लिए डरने की एक वजह तो ज़रूर हो सकती थी; क्योंकि तुमसे एक क़ुसूर हो गया था, लेकिन जब तुम इस बुराई को भलाई से बदल चुके हो तो मेरे पास तुम्हारे लिए अब मग़फ़िरत और रहमत के सिवा कुछ नहीं है। कोई सज़ा देने के लिए इस वक़्त मैंने तुम्हें नहीं बुलाया है बल्कि बड़े-बड़े मोजिज़े (चमत्कार) देकर मैं तुम्हें एक बड़े काम पर भेजनेवाला हूँ।

16. सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-101 में कहा गया है कि मूसा को हमने खुले तौर पर नज़र आनेवाली नौ निशानियाँ दी थीं और सूरा-7 आराफ़, आयतें—107, 108, 119, 120, 130 और 133 में उनकी तफ़सील यह बयान की गई है, (1) लाठी जो अजगर बन जाती थी, (2) हाथ जो बग़ल से सूरज की तरह चमकता हुआ निकलता था, (3) जादूगरों को सबके सामने हरा देना, (4) हज़रत मूसा (अलैहि.) के पहले से किए हुए एलान के मुताबिक़ सारे देश में अकाल,

قَالُوْا هٰذَا سِحْرٌ مُّبِيْنٌ ﴿١٣﴾ وَجَحَدُوْا بِهَا وَاسْتَيْقَنَتْهَآ اَنْفُسُهُمْ ظُلْمًا
وَّعُلُوًّا ۭ فَانْظُرْ كَيْفَ كَانَ عَاقِبَةُ الْمُفْسِدِيْنَ ﴿١٤﴾ وَلَقَدْ اٰتَيْنَا دَاوٗدَ
وَسُلَيْمٰنَ عِلْمًا ۚ وَقَالَا الْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِيْ فَضَّلَنَا عَلٰى كَثِيْرٍ مِّنْ

कहा कि यह तो खुला जादू है। (14) उन्होंने सरासर ज़ुल्म और घमण्ड की राह से उन निशानियों का इनकार किया, हालाँकि दिल उनके मान चुके थे।[17] अब देख लो कि उन बिगाड़ पैदा करनेवालों का अंजाम कैसा हुआ।

(15) (दूसरी तरफ़) हमने दाऊद और सुलैमान को इल्म अता किया[18] और उन्होंने कहा कि शुक्र है उस ख़ुदा का जिसने हमको अपने बहुत-से ईमानवाले बन्दों पर बड़ाई

(5) तूफ़ान, (6) टिड्डी दल, (7) तमाम अनाज के भण्डारों में सुरसुरियाँ और इनसान और जानवर सबमें जूँएँ, (8) मेंढकों का तूफ़ान (9) और ख़ून की बारिश। (तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, हिस्सा-4; सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, हाशिया-43)।

17. क़ुरआन में दूसरी जगहों पर बयान किया गया है कि जब मूसा (अलैहि॰) के एलान के मुताबिक़ कोई आम बला मिस्र पर टूट पड़ती थी तो फ़िरऔन हज़रत मूसा (अलैहि॰) से कहता था कि तुम अपने ख़ुदा से दुआ करके इस बला को टलवा दो, फिर जो कुछ तुम कहते हो वह हम मान लेंगे। मगर जब वह बला टल जाती थी तो फ़िरऔन अपनी उसी हठधर्मी पर तुल जाता था (सूरा-7 आराफ़, आयत-134; सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयतें—49-50)। बाइबल में भी इसका ज़िक्र मौजूद है (निष्कासन, अध्याय 8-10)

और वैसे भी यह बात किसी तरह नहीं सोची जा सकती थी कि एक पूरे देश पर अकाल और तूफ़ान और टिड्डी दलों का टूट पड़ना और मेंढकों और सुरसुरियों के अनगिनत लश्करों का उमड़ आना किसी जादू का करिश्मा हो सकता है। यह ऐसे खुले हुए मोजिज़े थे जिनको देखकर एक बेवक़ूफ़- से-बेवक़ूफ़ आदमी भी यह समझ सकता था कि पैग़म्बर के कहने पर देश भर में ऐसी बलाओं का आना और फिर उसके कहने पर उनका दूर हो जाना सिर्फ़ सारे जहानों के रब अल्लाह ही के करने से हो सकता है। इसी वजह से हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने फ़िरऔन से साफ़-साफ़ कह दिया था कि "तू ख़ूब जान चुका है कि ये निशानियाँ ज़मीन-आसमान के मालिक के सिवा और किसी ने नहीं उतारी हैं।" (सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-102) लेकिन जिस वजह से फ़िरऔन और उसकी क़ौम के सरदारों ने जान-बूझकर उनका इनकार किया वह यह थी कि "क्या हम अपने ही जैसे दो आदमियों की बात मान लें हालाँकि उनकी क़ौम हमारी गुलाम है?" (सूरा-23 मोमिनून, आयत-47)

18. यानी हक़ीक़त का इल्म। इस बात का इल्म कि अस्ल में उनके पास अपना कुछ भी नहीं है, जो कुछ है अल्लाह का दिया हुआ है और उसे इस्तेमाल करने के जो अधिकार भी उनको दिए

عِبَادِهِ الْمُؤْمِنِيْنَ۝۱۵ وَوَرِثَ سُلَيْمٰنُ دَاوٗدَ وَقَالَ يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ

दी।[19] (16) और दाऊद का वारिस सुलैमान हुआ।[20] और उसने कहा, "लोगो, हमें

गए हैं उन्हें अल्लाह ही की मरज़ी के मुताबिक़ इस्तेमाल किया जाना चाहिए और इस इख़्तियार के सही और ग़लत इस्तेमाल पर उन्हें अस्ल मालिक के सामने जवाबदेही करनी है। यह इल्म उस जहालत के उलट है जिसमें फ़िरऔन मुब्तला था। उस जहालत ने जो किरदार तैयार किया था, उसका नमूना ऊपर बयान हुआ। अब बताया जाता है कि यह इल्म कैसे किरदार का नमूना तैयार करता है। बादशाही, दौलत, शानो-शौकत, दोनों तरफ़ बराबर है। फ़िरऔन को भी यह मिली थी और दाऊद (अलैहि॰) और सुलैमान (अलैहि॰) को भी। लेकिन जहालत और इल्म के फ़र्क़ ने उनके बीच कितना बड़ा फ़र्क़ पैदा कर दिया।

19. यानी दूसरे ईमानवाले बन्दे भी ऐसे मौजूद थे जिनको ख़िलाफ़त दी जा सकती थी। लेकिन यह हमारी कोई निजी ख़ूबी नहीं, बल्कि सिर्फ़ अल्लाह का एहसान है कि उसने हमें इस सल्तनत पर हुकूमत करने के लिए चुना।

20. विरासत से मुराद माल और जायदाद की विरासत नहीं, बल्कि नुबूवत (पैग़म्बरी) और ख़िलाफ़त में हज़रत दाऊद (अलैहि॰) की जानशीनी है। माल-जायदाद की विरासत अगर मान लो कि एक से दूसरे को मिली भी तो वह अकेले हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) ही को नहीं मिल सकती थी; क्योंकि हज़रत दाऊद (अलैहि॰) की दूसरी औलाद भी मौजूद थी। इसलिए आयत को उस हदीस के रद्द में नहीं पेश किया जा सकता जो नबी (सल्ल॰) से रिवायत है कि "हम नबियों की विरासत नहीं बँटती, जो कुछ हमने छोड़ा वह सदक़ा है।" (हदीस : बुख़ारी) और "नबी का वारिस कोई नहीं होता, जो कुछ छोड़ता है वह मुसलमानों के ग़रीबों और मिस्कीनों में बाँट दिया जाता है।" (हदीस : मुसनद अहमद, अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) की रिवायतों में से, हदीस नम्बर 60 और 78)

हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) हज़रत दाऊद (अलैहि॰) के सबसे छोटे बेटे थे। उनका अस्ल इबरानी नाम 'सोलोमोन' था जिसका मतलब भी वही है जो 'सलीम' का है यानी अच्छी तबीअत का। 965 ई॰ पू॰ में हज़रत दाऊद (अलैहि॰) के जानशीन हुए और 926 ई॰ पू॰ तक लगभग 40 साल हुकूमत करते रहे। उनके हालात की तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-15 हिज्र, हाशिया-7; सूरा-21 अम्बिया, हाशिए-74-75। उनकी सल्तनत की हदों को क़ुरआन के कुछ आलिमों ने बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बयान किया है। वह उन्हें दुनिया के बहुत बड़े हिस्से का हुक्मराँ बताते हैं, हालाँकि उनकी सल्तन में सिर्फ़ मौजूदा फ़िलस्तीन और पूर्वी जॉर्डन शामिल थे और शाम (सीरिया) का एक हिस्सा भी उसमें शामिल था।

عُلِّمْنَا مَنْطِقَ الطَّيْرِ وَاُوْتِيْنَا مِنْ كُلِّ شَيْءٍ ؕ اِنَّ هٰذَا لَهُوَ
الْفَضْلُ الْمُبِيْنُ ﴿١٦﴾ وَحُشِرَ لِسُلَيْمٰنَ جُنُوْدُهٗ مِنَ الْجِنِّ وَالْاِنْسِ
وَالطَّيْرِ فَهُمْ يُوْزَعُوْنَ ﴿١٧﴾ حَتّٰۤى اِذَاۤ اَتَوْا عَلٰى وَادِ النَّمْلِ ۙ
قَالَتْ نَمْلَةٌ يّٰۤاَيُّهَا النَّمْلُ ادْخُلُوْا مَسٰكِنَكُمْ ۚ لَا يَحْطِمَنَّكُمْ

परिन्दों की बोलियाँ सिखाई गई हैं[21] और हमें हर तरह की चीज़ें दी गई हैं,[22] बेशक यह (अल्लाह की) नुमायाँ मेहरबानी है।" (17) सुलैमान के लिए जिन्न और इनसानों और परिन्दों के लश्कर इकट्ठे किए गए थे[23] और वे पूरे कंट्रोल (क़ाबू) में रखे जाते थे। (18) (एक बार वह उनके साथ कूच कर रहा था), यहाँ तक कि जब ये सब चींटियों की घाटी में पहुँचे तो एक चींटी ने कहा, "ऐ चींटियो, अपने बिलों में घुस जाओ, कहीं ऐसा

21. बाइबल इस ज़िक्र से ख़ाली है कि हज़रत सुलैमान (अलैहि.) को परिन्दों और जानवरों की बोलियों का इल्म दिया गया था। लेकिन बनी-इसराईल की रिवायतों में इसका ज़िक्र मिलता है। (जैविश इंसाइक्लोपीडिया, हिस्सा-11, पेज-439)

22. यानी अल्लाह का दिया हमारे पास सबकुछ मौजूद है। इस बात को लफ़्ज़ी मानी में लेना दुरुस्त नहीं है, बल्कि इससे मुराद अल्लाह के दिए हुए माल-दौलत और साज़ो-सामान की बहुतायत है। यह बात हज़रत सुलैमान (अलैहि.) ने फ़ख़्र के साथ नहीं कही थी, बल्कि इसका मक़सद अल्लाह की मेहरबानी और उसकी देन का शुक्रिया अदा करना था।

23. बाइबल में इसका भी कोई ज़िक्र नहीं है कि जिन्न हज़रत सुलैमान (अलैहि.) के लश्करों में शामिल थे और वे उनसे काम लेते थे। लेकिन तलमूद और रिब्बियों की रियायतों में इसका तफ़सीली ज़िक्र मिलता है। (जैविश इंसाइक्लोपीडिया, हिस्सा-11, पेज-440)
मौजूदा ज़माने के कुछ लोगों ने यह साबित करने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया है कि 'जिन्न' और 'तैर' से मुराद जिन्नात और परिन्दे नहीं हैं, बल्कि इनसान ही हैं जो हज़रत सुलैमान (अलैहि.) के लश्कर में तरह-तरह के काम करते थे। वे कहते हैं कि जिन्न से मुराद पहाड़ी क़बीलों के वे लोग हैं जिन्हें हज़रत सुलैमान (अलैहि.) ने अपने मातहत कर लिया था और वे उनके यहाँ हैरत-अंगेज़ ताक़त और मेहनत के काम करते थे और तैर से मुराद घुड़सवारों के दस्ते हैं जो पैदल दस्तों के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा तेज़ी से आ-जा सकते थे। लेकिन ये क़ुरआन मजीद के अलफ़ाज़ को ग़लत मानी में लेने की सबसे ज़्यादा बुरी मिसालें हैं। क़ुरआन यहाँ जिन्न, इंस और तैर, तीन अलग तरह के लश्कर बयान कर रहा है और तीनों पर 'अलिफ़ लाम' (अल) चीज़ की जाति बताने के लिए लाया गया है। इसलिए किसी भी तरह

سُلَيۡمٰنُ وَجُنُوۡدُهٗ ۙ وَهُمۡ لَا يَشۡعُرُوۡنَ ۝١٨ فَتَبَسَّمَ ضَاحِكًا مِّنۡ قَوۡلِهَا

न हो कि सुलैमान और उसके लश्कर तुम्हें कुचल डालें और उन्हें ख़बर भी न हो।''[24] (19) सुलैमान उसकी बात पर मुस्कराते हुए हँस पड़ा और बोला,

अल-जिन्न और अत-तैर अल-इंस में शामिल नहीं हो सकते, बल्कि वे इससे अलग दो अलग जातियाँ हो सकती हैं। इसके अलावा कोई शख़्स, जो अरबी ज़बान की थोड़ी भी जानकारी रखता हो, यह सोच भी नहीं सकता कि इस ज़बान में सिर्फ़ लफ़्ज़ 'अल-जिन्न' बोलकर इनसानों का कोई गरोह, या सिर्फ़ 'अत-तैर' बोलकर सवारों का दस्ता कभी मुराद लिया जा सकता है और कोई अरब इन अलफ़ाज़ को सुनकर उनका यह मतलब समझ सकता है। सिर्फ़ मुहावरे में किसी इनसान को उसकी आम आदत से बढ़कर काम की वजह से जिन्न, या किसी औरत को उसकी ख़ूबसूरती की वजह से परी और किसी तेज़ रफ़्तार आदमी को परिन्दा कह देना यह मानी नहीं रखता कि अब जिन्न का मतलब ताक़तवर आदमी और परी का मतलब ख़ूबसूरत औरत और परिन्दे का मतलब तेज़ रफ़्तार इनसान ही हो जाए। इन अलफ़ाज़ के ये मानी तो अलामती हैं न कि हक़ीक़ी और किसी कलाम में किसी लफ़्ज़ को हक़ीक़ी मानी छोड़कर अलामती मानी में सिर्फ़ उसी हालत में इस्तेमाल किया जाता है और सुननेवाले भी उनको अलामती मानी में सिर्फ़ उसी वक़्त ले सकते हैं जबकि आसपास कोई वाज़ेह इशारा ऐसा मौजूद हो जो उसके अलामती होने की दलील दे रहा हो। यहाँ आख़िर कौन-सा इशारा पाया जाता है जिससे यह गुमान किया जा सके कि जिन्न और तैर के अलफ़ाज़ अपने हक़ीक़ी मानी में नहीं, बल्कि अलामती मानी में इस्तेमाल किए गए हैं? बल्कि आगे इन दोनों गरोहों के एक-एक शख़्स का जो हाल और काम बयान किया गया है वह तो इस मतलब के बिलकुल ख़िलाफ़ मानी की खुली दलील दे रहा है। किसी शख़्स का दिल अगर क़ुरआन की बात पर यक़ीन न करना चाहता हो तो उसे साफ़ कहना चाहिए कि मैं इस बात को नहीं मानता। लेकिन यह बड़ी अख़लाक़ी बुज़दिली और इल्मी ख़ियानत (बेईमानी) है कि आदमी क़ुरआन के साफ़-साफ़ अलफ़ाज़ को तोड़-मरोड़कर अपने मनमाने मानी में ढाले और यह ज़ाहिर करे कि क़ुरआन के बयान को मानता है, हालाँकि अस्ल में क़ुरआन ने जो कुछ बयान किया है वह उसे नहीं, बल्कि ख़ुद अपने ज़बरदस्ती के गढ़े हुए मतलब को मानता है।

24. इस आयत को भी आजकल के कुछ क़ुरआन की तफ़सीर लिखनेवालों ने मनमाने मतलब दे रखे हैं। वे कहते हैं कि 'वादिन-नम्ल' से मुराद चींटियों की घाटी नहीं है, बल्कि यह एक घाटी का नाम है जो शाम (सीरिया) के इलाक़े में थी और 'नमला' का मतलब एक चींटी नहीं, बल्कि यह एक क़बीले का नाम है। इस तरह वे आयत का मतलब यह बयान करते हैं कि ''जब हज़रत सुलैमान वादिन-नम्ल में पहुँचे तो एक नम्ली ने कहा कि ऐ नम्ल क़बीले के लोगो.....'' लेकिन यह भी ऐसा मतलब है जिसका साथ क़ुरआन के अलफ़ाज़ नहीं देते। अगर वादिन-नम्ल को उस घाटी का नाम मान भी लिया जाए और यह भी मान लिया जाए कि वहाँ बनी-नम्ल

नाम का कोई क़बीला रहता था, तब भी यह बात अरबी ज़बान के इस्तेमाल के बिलकुल ख़िलाफ़ है कि नम्ल क़बीले के एक शख़्स को नमला कहा जाए। अगरचे वहाँ जानवरों के नाम पर बहुत-से क़बीलों के नाम हैं, मसलन कल्ब, असद वग़ैरा। लेकिन कोई अरब कल्ब क़बीले के किसी शख़्स के बारे में "क़ा-ल कल्बुन" (एक कुत्ते ने यह कहा) या असद क़बीले के किसी आदमी के बारे में "क़ा-ल असदुन" (एक शेर ने कहा) हरगिज़ नहीं बोलेगा। इसलिए बनी-नम्ल के एक शख़्स के बारे में यह कहना कि "क़ालत नम्लतुन" (एक चींटी बोली) अरबी मुहावरे और इस्तेमाल के बिलकुल ख़िलाफ़ है। फिर क़बीला नम्ल के एक शख़्स का बनी-नम्ल को पुकारकर यह कहना कि "ऐ नम्लियो, अपने घरों में घुस जाओ। कहीं ऐसा न हो कि सुलैमान के लश्कर तुमको कुचल डालें और उनको ख़बर भी न हो," बिलकुल बेमतलब बात है। इनसानों के किसी गरोह को इनसानों का कोई लश्कर बेख़बरी में नहीं कुचला करता। अगर वह उनपर हमले की नीयत से आया हो तो उनका अपने घरों में घुस जाना बेनतीजा है। हमलावर उनके घरों में घुसकर उन्हें और ज़्यादा अच्छी तरह कुचलेंगे और अगर वह सिर्फ़ कूच करता हुआ गुज़र रहा हो तो उसके लिए बस रास्ता साफ़ छोड़ देना काफ़ी है। कूच करनेवालों की लपेट में आकर इनसानों को नुक़सान तो पहुँच सकता है, मगर यह नहीं हो सकता कि चलते हुए इनसान बेख़बरी में इनसानों को कुचल डालें। लिहाज़ा अगर बनी-नम्ल कोई इनसानी क़बीला होता और उसका कोई आदमी अपने क़बीले के लोगों को ख़बरदार करना चाहता तो हमले के ख़तरे की सूरत में वह कहता कि "ऐ नम्लियो, भाग चलो और पहाड़ों में चलकर पनाह लो ताकि सुलैमान के लश्कर तुम्हें तबाह न कर दें।" और हमले का ख़तरा न होने की सूरत में वह कहता कि "ऐ नम्लियो, रास्ते से हट जाओ ताकि तुममें से कोई शख़्स सुलैमान के लश्करों की चपेट में न आ जाए।"

यह तो वह ग़लती है जो इस मतलब में अरबी ज़बान और मौक़ा-महल के एतिबार से है। रही यह बात कि वादिन-नम्ल अस्ल में उस घाटी का नाम था और वहाँ बनी-नम्ल नाम का कोई क़बीला रहता था, यह सिर्फ़ एक गढ़ी हुई बात है जिसके लिए कोई इल्मी सुबूत मौजूद नहीं है। जिन लोगों ने उसे घाटी का नाम ठहराया है, उन्होंने ख़ुद यह बयान किया है कि उसे यह नाम इसलिए दिया गया था कि वहाँ चींटियाँ बहुत बड़ी तादाद में पाई जाती थीं। क़तादा और मुक़ातिल कहते हैं कि "वह एक घाटी है शाम (सीरिया) की सरज़मीन में जहाँ चींटियाँ बहुत हैं।" लेकिन तारीख़ (इतिहास) और जोग़राफ़िया (भूगोल) की किसी किताब में और आसारे-क़दीमा (पुरातत्व विभाग) की किसी खोज में यह ज़िक्र नहीं है कि इस घाटी में बनी-नम्ल नाम का कोई क़बीला भी रहता था। यह सिर्फ़ एक मनगढ़न्त है जो अपने मनमाने मतलब की गाड़ी चलाने के लिए रच ली गई है।

बनी-इसराईल की रिवायतों में भी यह क़िस्सा पाया जाता है, मगर उसका आख़िरी हिस्सा क़ुरआन के ख़िलाफ़ है और हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) की शान के भी ख़िलाफ़ है। उसमें यह बयान किया गया है कि हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) जब एक घाटी से गुज़र रहे थे जिसमें चींटियाँ बहुत थीं तो उन्होंने सुना कि एक चींटी पुकारकर दूसरी चींटियों से कह रही है कि "अपने घरों में दाख़िल हो जाओ वरना सुलैमान के लश्कर तुम्हें कुचल डालेंगे।" इसपर हज़रत सुलैमान ने

وَقَالَ رَبِّ اَوْزِعْنِیْۤ اَنْ اَشْكُرَ نِعْمَتَكَ الَّتِیْۤ اَنْعَمْتَ عَلَیَّ وَعَلٰی وَالِدَیَّ وَاَنْ اَعْمَلَ صَالِحًا تَرْضٰىهُ وَاَدْخِلْنِیْ بِرَحْمَتِكَ فِیْ عِبَادِكَ الصّٰلِحِیْنَ۝۱۹

"ऐ मेरे रब, मुझे क़ाबू में[25] रख कि मैं तेरे उस एहसान का शुक्र अदा करता रहूँ जो तूने मुझपर और मेरे माँ-बाप पर किया है और ऐसा भला काम करूँ जो तुझे पसन्द आए और अपनी रहमत से मुझको अपने नेक बन्दों में दाख़िल कर।"[26]

चींटी के सामने बड़े घमण्ड का इज़हार किया और जवाब में उस चींटी ने उनसे कहा कि तुम्हारी हक़ीक़त क्या है, एक मामूली बूँद से तो तुम पैदा हुए हो। यह सुनकर हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) शर्मिन्दा हो गए। (जैविश इंसाइक्लोपीडिया, हिस्सा-11, पेज-440) इससे अन्दाज़ा होता है कि क़ुरआन किस तरह बनी-इसराईल की ग़लत रिवायतों को सुधारता है और उन गन्दगियों को साफ़ करता है जो उन्होंने ख़ुद अपने पैग़म्बरों की सीरतों पर डाल दी थीं। इन रिवायतों के बारे में मग़रिब के इस्लाम-मुख़ालिफ़ अहले-इल्म (विद्वान) बेशर्मी के साथ यह दावा करते हैं कि क़ुरआन ने सबकुछ उनसे चुरा लिया है।

अक़्ली हैसियत से यह बात कुछ भी मुश्किल नहीं कि एक चींटी अपनी जाति के लोगों को किसी आते हुए ख़तरे से ख़बरदार करे और बिलों में घुस जाने के लिए कहे। रही यह बात कि हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) ने उसकी बात कैसे सुन ली, तो जिस शख़्स के हवास (इन्द्रियाँ) वह्य के कलाम जैसी लतीफ़ (सूक्ष्म) चीज़ को महसूस कर सकते हों, उसके लिए चींटी के कलाम जैसी चीज़ का महसूस कर लेना कोई बड़ी मुश्किल बात नहीं है।

25. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं "रब्बि अवज़िअनी"। 'व-ज़-अ' का अस्ल मतलब अरबी ज़बान में रोकना है। इस मौक़े पर हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) का यह कहना कि "मुझे रोक कि मैं तेरे एहसान का शुक्र अदा करूँ" हमारे नज़दीक अस्ल में यह मानी देता है कि ऐ मेरे रब, जो अज़ीमुश्शान ताक़तें और क़ाबिलियतें तूने मुझे दी हैं वे ऐसी हैं कि अगर मैं ज़रा-सी लापरवाही में पड़ जाऊँ तो बन्दगी के दायरे से निकलकर अपनी बड़ाई के पागलपन में न जाने कहाँ-से-कहाँ निकल जाऊँ। इसलिए ऐ मेरे परवरदिगार, तू मुझे क़ाबू में रख ताकि मैं नाशुक्रा बनने के बजाय नेमत का शुक्र अदा करने पर क़ायम रहूँ।

26. नेक बन्दों में दाख़िल करने से मुराद शायद यह है कि आख़िरत में मेरा अंजाम नेक बन्दों के साथ हो और मैं उनके साथ जन्नत में दाख़िल होऊँ। इसलिए कि आदमी जब अच्छे काम करेगा तो नेक तो वह आप-से-आप होगा ही, अलबत्ता आख़िरत में किसी का जन्नत में दाख़िल होना सिर्फ़ उसके अच्छे काम के बल-बूते पर नहीं हो सकता, बल्कि इसका दारोमदार अल्लाह की रहमत पर है। हदीस में आया है कि एक बार नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि "तुममें से किसी को भी सिर्फ़ उसका अमल जन्नत में नहीं पहुँचा देगा।" पूछा गया, "ऐ अल्लाह के रसूल, क्या आपके साथ भी यही मामला है?" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "हाँ, मैं भी सिर्फ़ अपने अमल के

وَتَفَقَّدَ الطَّيْرَ فَقَالَ مَا لِيَ لَآ اَرَى الْهُدْهُدَ ۖ اَمْ كَانَ مِنَ
الْغَآئِبِيْنَ ۝٢٠ لَاُعَذِّبَنَّهٗ عَذَابًا شَدِيْدًا اَوْ لَاَاذْبَحَنَّهٗٓ اَوْ لَيَاْتِيَنِّيْ
بِسُلْطٰنٍ مُّبِيْنٍ ۝٢١ فَمَكَثَ غَيْرَ بَعِيْدٍ فَقَالَ اَحَطْتُّ بِمَا لَمْ تُحِطْ بِهٖ

(20) (एक और मौक़े पर) सुलैमान ने परिन्दों का जाइज़ा लिया[27] और कहा, "क्या बात है कि मैं फ़ुलाँ हुदहुद को नहीं देख रहा हूँ। क्या वह कहीं ग़ायब हो गया है? (21) मैं उसे सख़्त सज़ा दूँगा, या उसे ज़ब्ह कर दूँगा, वरना उसे मेरे सामने मुनासिब वजह पेश करनी होगी।"[28] (22) कुछ ज़्यादा देर न गुज़री थी कि उसने आकर कहा,

---

बल-बूते पर जन्नत में न चला जाऊँगा जब तक कि अल्लाह तआला अपनी रहमत से मुझे न ढाँक ले।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) की यह दुआ इस मौक़े पर बिलकुल बेमौक़ा हो जाती है अगर 'अन-नम्ल' से मुराद कोई इनसानी क़बीला ले लिया जाए और 'नम्ला' का मतलब नम्ल क़बीले का एक शख़्स समझा जाए। एक बादशाह के बहुत बड़े लश्कर से डरकर किसी इनसानी क़बीले के एक आदमी का अपने क़बीले को ख़तरे से ख़बरदार करना आख़िर कौन-सी ऐसी ग़ैर-मामूली बात है कि वह इतना बड़ा बादशाह इसपर ख़ुदा से यह दुआ करने लगे। अलबत्ता एक शख़्स को महसूस करने की इतनी ज़बरदस्त ताक़त का हासिल होना कि वह दूर से एक चींटी की आवाज़ भी सुन ले और उसका मतलब समझ जाए, ज़रूर ऐसी बात है जिससे आदमी के घमण्ड में पड़ जाने का ख़तरा हो। इसी सूरत में हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) की यह दुआ मौक़ा-महल के मुताबिक़ हो सकती है।

27. यानी उन परिन्दों का जिनके बारे में ऊपर ज़िक्र किया जा चुका है कि जिन्नों और इनसानों की तरह उनके लश्कर भी हज़रत सुलैमान की फ़ौज में शामिल थे।

28. मौजूदा ज़माने के कुछ लोग कहते हैं कि हुदहुद से मुराद वह परिन्दा नहीं है जो अरबी और उर्दू ज़बान में इस नाम से (और हिन्दी में नीलकण्ठ के नाम से) जाना जाता है, बल्कि यह एक आदमी का नाम है जो हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) की फ़ौज में एक अफ़सर था। इस दावे की बुनियाद यह नहीं है कि इतिहास में कहीं हुदहुद नाम का कोई शख़्स इन लोगों को सुलैमान (अलैहि॰) की हुकूमत के अफ़सरों की लिस्ट में मिल गया है, बल्कि यह इमारत सिर्फ़ इस दलील की बुनियाद पर खड़ी की गई है कि जानवरों के नामों पर इनसानों के नाम रखने का रिवाज तमाम ज़बानों की तरह अरबी ज़बान में भी पाया जाता है और इबरानी (हिब्रू) में भी था। इसके अलावा यह कि आगे उस हुदहुद का जो काम बयान किया गया है और हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) से उसकी बातचीत का जो ज़िक्र है वह उनके नज़दीक सिर्फ़ एक इनसान ही कर

सकता है। लेकिन क़ुरआन मजीद के मौक़ा-महल को आदमी अगर देखे तो साफ़ मालूम होता है कि यह क़ुरआन की तफ़सीर नहीं, बल्कि उसमें फेर-बदल करना और उससे भी कुछ बढ़कर उसको ग़लत ठहराना है। आख़िर क़ुरआन को इनसान की अक़्ल और समझ से क्या दुश्मनी है कि वह कहना तो यह चाहता हो कि हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) के फ़ौजी दस्ते या पलटन या ख़बर देनेवाले महकमे (सूचना-विभाग) का एक आदमी ग़ायब था जिसे उन्होंने तलाश किया और उसने हाज़िर होकर यह ख़बर दी और उसे हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) ने इस काम पर भेजा, लेकिन वह इसे लगातार एक पेचीदा ज़बान में बयान करे कि पढ़नेवाला शुरू से आख़िर तक उसे परिन्दा ही समझने पर मजबूर हो। इस सिलसिले में ज़रा क़ुरआन मजीद के बयान की तरतीब को देखिए—

पहले कहा जाता है कि हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) ने अल्लाह की इस मेहरबानी पर शुक्र का इज़हार किया कि "हमें परिन्दों की बोली का इल्म दिया गया है।" इस जुमले में अव्वल तो 'तैर' का लफ़्ज़ जिस तरह आया है उसे हर अरबवासी और अरबी जाननेवाला परिन्दे ही के मानी में लेगा; क्योंकि कोई चीज़ उसके अलामती होने की दलील नहीं दे रही है। दूसरे, अगर तैर से मुराद परिन्दे नहीं, बल्कि इनसानों का कोई गरोह हो तो इसके लिए 'मन्तिक़' (बोली) के बजाय 'लुग़त' या 'लिसान' (ज़बान) का लफ़्ज़ ज़्यादा सही होता और फिर किसी शख़्स का किसी दूसरे इनसानी गरोह की ज़बान जानना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है कि वह ख़ास तौर पर उसका ज़िक्र करे। आज हमारे बीच हज़ारों आदमी बहुत-सी दूसरी ज़बानों के बोलने और समझनेवाले मौजूद हैं। यह आख़िर कौन-सा बड़ा कमाल है जिसे अल्लाह तआला की ग़ैर-मामूली देन कहा जा सके।

इसके बाद फ़रमाया गया कि "सुलैमान के लिए जिन्न और इनसानों और परिन्दों के लश्कर इकट्ठे किए गए थे।" इस जुमले में अव्वल तो जिन्न और इंस और तैर (परिन्दे) तीन जानी-मानी चीज़ों के नाम इस्तेमाल हुए हैं जो तीन अलग-अलग और जानी-मानी जातियों के लिए अरबी ज़बान में इस्तेमाल होते हैं। फिर इन्हें आज़ाद रूप से इस्तेमाल किया गया है और कोई इशारा उनमें से किसी के अलामती या मिसाल होने का मौजूद नहीं है जिससे एक आदमी लुग़त (शब्दकोश) के जाने-माने मानी के सिवा किसी और मानी में उन्हें ले। फिर इंस का लफ़्ज़ जिन्न और तैर के बीच आया है तो यह मानी लेने में साफ़ रुकावट है कि जिन्न और तैर अस्ल में इंस (इनसान) ही की जाति के दो गरोह थे। यह मानी मुराद होते तो 'अल-जिन्नु वत-तैरु मिनल-इंसि' (इनसानों में से जिन्न और तैर) कहा जाता न कि 'मिनल-जिन्नि वल-इंसि वत-तैरि' (जिन्न और इंस और तैर में से)।

आगे चलकर कहा जाता है कि हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) तैर (परिन्दे) का जाइज़ा ले रहे थे और हुदहुद को ग़ायब देखकर उन्होंने यह बात कही। अगर ये तैर इनसान थे और हुदहुद भी किसी आदमी का नाम ही था तो कम-से-कम कोई लफ़्ज़ तो ऐसा कह दिया जाता कि बेचारा पढ़नेवाला उसको जानवर न समझ बैठता। गरोह का नाम परिन्दा और उसके एक शख़्स का नाम हुदहुद, फिर भी हमसे उम्मीद की जाती है कि हम आप-से-आप उसे इनसान समझ लेंगे।

फिर हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) फ़रमाते हैं कि हुदहुद या तो अपने ग़ायब होने की कोई सही

وَجِئْتُكَ مِنْ سَبَإٍۭ بِنَبَإٍ يَّقِيْنٍ ﴿٢٢﴾ اِنِّيْ وَجَدْتُّ امْرَاَةً تَمْلِكُهُمْ

"मैंने वे मालूमात हासिल की हैं जो आपकी जानकारी में नहीं हैं। मैं सबा के बारे में पक्की ख़बर लेकर आया हूँ।[29] (23) मैंने वहाँ एक औरत देखी जो उस क़ौम की हुक्मराँ

वजह बयान करे वरना मैं उसे सख़्त सज़ा दूँगा या ज़ब्ह कर दूँगा। इनसान को क़त्ल किया जाता है, फाँसी दी जाती है, सज़ा-ए-मौत दी जाती है, ज़ब्ह कौन करता है? कोई बड़ा ही पत्थरदिल और बेदर्द आदमी इन्तिक़ाम के जोश में अंधा हो चुका हो तो शायद किसी आदमी को ज़ब्ह भी कर दे, मगर क्या पैग़म्बर से हम यह उम्मीद करें कि वह अपनी फ़ौज के एक आदमी को सिर्फ़ ग़ैर-हाज़िर (Deserter) होने के जुर्म में ज़ब्ह कर देने का एलान करेगा और अल्लाह मियाँ से यह ख़ुशगुमानी रखें कि वह ऐसी संगीन बात का ज़िक्र करके उसपर मलामत में एक लफ़्ज़ भी न कहेंगे?

कुछ दूर आगे चलकर अभी आप देखेंगे कि हज़रत सुलैमान (अलैहि०) इसी हुदहुद को सबा की मलिका के नाम ख़त देकर भेजते हैं और फ़रमाते हैं कि इसे उनकी तरफ़ डाल दे या फेंक दे। ज़ाहिर है कि यह हिदायत परिन्दे को तो दी जा सकती है, लेकिन किसी आदमी को नुमाइन्दा या एलची या पैग़ाम ले जानेवाला बनाकर भेजने की हालत में यह इन्तिहाई नामुनासिब है। किसी की अक़्ल ही मारी गई हो तो वह मान लेगा कि एक देश का बादशाह दूसरे देश की रानी के नाम ख़त देकर अपने नुमाइन्दे को इस हिदायत के साथ भेज सकता है कि उसे ले जाकर उसके आगे डाल दे या उसकी तरफ़ फेंक दे। क्या तहज़ीब और आदाब के उस इब्तिदाई दर्जे से भी हज़रत सुलैमान (अलैहि०) को गिरा हुआ मान लिया जाए जिसका लिहाज़ हम जैसे मामूली लोग भी अपने किसी पड़ोसी के पास अपने नौकर को भेजते हुए रखते हैं? क्या कोई शरीफ़ आदमी अपने नौकर से यह कह सकता है कि मेरा यह ख़त ले जाकर फ़ुलाँ साहब के आगे फेंक आ?

ये तमाम इशारे साफ़ बता रहे हैं कि यहाँ हुदहुद का मतलब वही है जो लुग़त (शब्दकोश) के मुताबिक़ उसका मतलब है, यानी यह कि वह इनसान नहीं, बल्कि एक परिन्दा था। अब अगर कोई शख़्स यह मानने के लिए तैयार नहीं है कि एक हुदहुद वे बातें कर सकता है जो क़ुरआन उसकी तरफ़ जोड़ रहा है तो उसे साफ़-साफ़ कहना चाहिए कि मैं क़ुरआन की इस बात को नहीं मानता। अपने न मानने को इस परदे में छिपाना कि क़ुरआन के साफ़-साफ़ अलफ़ाज़ में अपने मनमाने मानी भरे जाएँ, घटिया दर्जे की मुनाफ़िक़त (कपटाचार) है।

29. सबा दक्षिणी अरब की मशहूर तिजारत-पेशा क़ौम थी जिसकी राजधानी मारिब, मौजूदा यमन की राजधानी सनआ से 55 मील पूरब-उत्तर की तरफ़ थी। उसकी तरक़्क़ी का ज़माना मईन की सल्तनत ख़त्म होने (पतन) के बाद लगभग 1100 ई॰पू॰ से शुरू हुआ और एक हज़ार साल तक यह अरब में अपनी बड़ाई के डंके बजाती रही। फिर 115 ई॰पू॰ में दक्षिणी अरब की दूसरी मशहूर क़ौम हमयर ने इसकी जगह ले ली। अरब में यमन और हज़रमौत और अफ़रीक़ा में

وَاُوْتِيَتْ مِنْ كُلِّ شَيْءٍ وَّلَهَا عَرْشٌ عَظِيْمٌ ۝٢٣ وَجَدْتُّهَا
وَقَوْمَهَا يَسْجُدُوْنَ لِلشَّمْسِ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَزَيَّنَ

है। उसको हर तरह का सरो-सामान दिया गया है और उसका तख़्त बड़ा ही शानदार है। (24-25) मैंने देखा कि वह और उसकी क़ौम अल्लाह के बजाय सूरज के आगे सजदा[30]

हब्शा (इथोपिया) के इलाक़े पर इसका क़ब्ज़ा था। पूर्वी अफ़रीक़ा, भारत, सुदूर पूर्व और ख़ुद अरब की जितनी तिजारत मिस्र और शाम (सीरया) और यूनान और रोम के साथ होती थी वह ज़्यादातर इन्हीं सबाइयों के हाथ में थी। इसी वजह से यह क़ौम पुराने ज़माने में अपनी दौलत के लिए बहुत मशहूर थी, बल्कि यूनानी इतिहासकार तो उसे दुनिया की सबसे ज़्यादा मालदार क़ौम कहते हैं। कारोबार के अलावा उनकी ख़ुशहाली की बड़ी वजह यह थी कि उन्होंने अपने देश में जगह-जगह बाँध बनाकर पानी का बेहतरीन इन्तिज़ाम कर रखा था जिससे उनका पूरा इलाक़ा जन्नत बना हुआ था। उनके देश के इस ग़ैर-मामूली हरे-भरेपन का ज़िक्र यूनानी इतिहासकारों ने भी किया है और सूरा-34 सबा (आयतें—10-21) में क़ुरआन भी इसकी तरफ़ इशारा करता है।

हुदहुद का यह बयान कि "मैंने वे मालूमात हासिल की हैं जो आपके इल्म में नहीं हैं" यह मतलब नहीं रखता कि हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) सबा से बिलकुल अनजान थे। ज़ाहिर है कि फ़िलस्तीन और शाम (सीरिया) के जिस बादशाह की हुकूमत लाल सागर के पूर्वी किनारे (अक़बा की खाड़ी) तक पहुँची हुई थी वह इसी लाल सागर के दक्षिणी किनारे (यमन) की एक ऐसी क़ौम से अनजान न हो सकता था जो बैनल-अक़वामी (अन्तर्राष्ट्रीय) तिजारत के एक अहम हिस्से पर क़ब्ज़ा किए हुए थी। इसके अलावा ज़बूर से मालूम होता है कि हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) से भी पहले उनके बाप हज़रत दाऊद (अलैहि॰) सबा को जानते थे। उनकी दुआ के ये अलफ़ाज़ ज़बूर में हमें मिलते हैं—

"ऐ ख़ुदा, बादशाह (यानी ख़ुद हज़रत दाऊद) को अपने हुक्म और शहज़ादे (यानी हज़रत सुलैमान) को अपनी सच्चाई अता कर...... तरसीस और जज़ीरों के बादशाह भेंटें चढ़ाएँगे। सबा और शैबा (यानी सबा की यमनी और हब्शी शाख़ाओं) के बादशाह हदिये लाएँगे।"

(72:1-2 और 10-11)

इसलिए हुदहुद के कहने का मतलब यह मालूम होता है कि सबा क़ौम की राजधानी में आँखों से जो हालात मैं देखकर आया हूँ, वे अभी तक आपको नहीं पहुँचे हैं।

30. इससे मालूम होता है कि यह क़ौम उस ज़माने में सूरज की पूजावाले मज़हब को माननेवाली थी। अरब की पुरानी रिवायतों से भी उसका यही मज़हब मालूम होता है। चुनाँचे इब्ने-इसहाक़ नसब (वंशावली) के माहिरों की यह बात नक़्ल करता है कि सबा की क़ौम अस्ल में एक पुराने और बड़े वारिस के नाम से जुड़ी है, जिसका नाम अब्दे-शम्स (सूरज का बन्दा या पुजारी) और

لَهُمُ الشَّيْطٰنُ اَعْمَالَهُمْ فَصَدَّهُمْ عَنِ السَّبِيْلِ فَهُمْ لَا يَهْتَدُوْنَ ۝۲۴
اَلَّا يَسْجُدُوْا لِلّٰهِ الَّذِيْ يُخْرِجُ الْخَبْءَ فِي السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَيَعْلَمُ

करती है।''—शैतान[31] ने उनके आमाल उनके लिए लुभावने बना दिए[32] और उन्हें सही रास्ते से रोक दिया, इस वजह से वे सीधा रास्ता नहीं पाते कि उस ख़ुदा को सजदा करें जो आसमानों और ज़मीन की छिपी चीज़ें निकालता है[33] और वह सबकुछ जानता है

लक़ब सबा था। बनी-इसराईल की रिवायतें भी इसी की ताईद करती हैं। उनमें बयान किया गया है कि हुदहुद जब हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) का ख़त लेकर पहुँचा तो सबा की रानी सूरज देवता की पूजा के लिए जा रही थी। हुदहुद ने रास्ते ही में वह ख़त रानी के सामने फेंक दिया।

31. बात के अन्दाज़ से ऐसा महसूस होता है कि यहाँ से आख़िरी पैराग्राफ़ तक की इबारत हुदहुद की बात का हिस्सा नहीं है, बल्कि ''सूरज के आगे सजदा करती है'' पर उसकी बात ख़त्म हो गई और उसके बाद अब यह बात अल्लाह तआला की तरफ़ से उसपर बतौर इज़ाफ़ा है। इस अन्दाज़े को जो चीज़ मज़बूत करती है वह यह जुमला है ''और वह सबकुछ जानता है जिसे तुम छिपाते और ज़ाहिर करते हो।'' इन अलफ़ाज़ से यह गुमान होता है कि बात करनेवाला हुदहुद नहीं है और बात हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) और उनके दरबारियों से नहीं कही जा रही है, बल्कि बात करनेवाला अल्लाह तआला है और बात मक्का के मुशरिकों से की जा रही है जिनको नसीहत करने ही के लिए यह क़िस्सा सुनाया जा रहा है। क़ुरआन की तफ़सीर लिखनेवालों में से 'रूहुल-मआनी' के लेखक अल्लामा आलूसी भी इसी अन्दाज़े को तरजीह (प्राथमिकता) देते हैं।

32. यानी दुनिया की दौलत कमाने और अपनी ज़िन्दगी को ज़्यादा-से-ज़्यादा शानदार बनाने के जिस काम में वे लगे थे, शैतान ने उनको सुझा दिया कि बस यही अक़्ल और फ़िक्र ख़र्च करने का एक तरीक़ा और ज़ेहनी और जिस्मानी ताक़तों का एक इस्तेमाल है। इससे ज़्यादा किसी चीज़ पर संजीदगी के साथ ग़ौर करने की ज़रूरत ही नहीं है कि तुम ख़्राह-मख़्राह इस फ़िक्र में पड़ो कि दुनिया की इस ज़ाहिरी ज़िन्दगी के पीछे अस्ल हक़ीक़त क्या है और तुम्हारे मज़हब, अख़्लाक़, तहज़ीब और निज़ामे-ज़िन्दगी (जीवन-व्यवस्था) की बुनियादें उस हक़ीक़त से मेल खाती हैं या सरासर उसके ख़िलाफ़ जा रही हैं। शैतान ने उनको मुत्मइन कर दिया कि जब तुम दुनिया में दौलत और ताक़त और शानो-शौकत के लिहाज़ से बढ़ते ही चले जा रहे हो तो फिर तुम्हें यह सोचने की ज़रूरत ही क्या है कि हमारे ये अक़ीदे और फ़लसफ़े और नज़रिए ठीक हैं या नहीं। इनके ठीक होने की तो यही एक दलील काफ़ी है कि तुम मज़े से दौलत कमा रहे हो और ऐश कर रहे हो।

33. यानी जो हर पल उन चीज़ों को ज़ाहिर कर रहा है जो पैदाइश से पहले न जाने कहाँ-कहाँ छिपी थीं। ज़मीन के पेट से हर पल अनगिनत पेड़-पौधे निकाल रहा है और तरह-तरह के मादनियात (खनिज पदार्थ) ख़ारिज कर रहा है। ऊपरी दुनिया की फ़ज़ाओं से वे-वे चीज़ें सामने

مَا تُخْفُوْنَ وَمَا تُعْلِنُوْنَ ﴿٢٥﴾ اَللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ رَبُّ الْعَرْشِ الْعَظِيْمِ ﴿٢٦﴾ السجدة
قَالَ سَنَنْظُرُ اَصَدَقْتَ اَمْ كُنْتَ مِنَ الْكٰذِبِيْنَ ﴿٢٧﴾ اِذْهَبْ بِّكِتٰبِيْ
هٰذَا فَاَلْقِهْ اِلَيْهِمْ ثُمَّ تَوَلَّ عَنْهُمْ فَانْظُرْ مَاذَا يَرْجِعُوْنَ ﴿٢٨﴾

जिसे तुम लोग छिपाते और ज़ाहिर करते हो।[34] (26) अल्लाह कि जिसके सिवा कोई इबादत का हक़दार नहीं, जो बड़े अर्श (सिंहासन) का मालिक है।[35]

(27) सुलैमान ने कहा, "अभी हम देखे लेते हैं कि तूने सच कहा है या तू झूठ बोलनेवालों में से है। (28) मेरा यह ख़त ले जा और इसे उन लोगों की तरफ़ डाल दे, फिर अलग हटकर देख कि वे क्या रद्दे-अमल (प्रतिक्रिया) ज़ाहिर करते हैं।"[36]

ला रहा है जिनके सामने आने से पहले इनसान की सोच और गुमान भी उन तक न पहुँच सकता था।

34. यानी उसका इल्म (ज्ञान) हर चीज़ पर छाया हुआ है। उसके लिए खुले और छिपे सब एक जैसे हैं। उसपर सबकुछ ज़ाहिर है।
अल्लाह तआला की इन दो सिफ़ात को नमूने के तौर पर बयान करने का मक़सद अस्ल में यह ज़ेहन में बिठाना है कि अगर वे लोग शैतान के धोखे में न आते तो यह सीधा रास्ता उन्हें साफ़ नज़र आ सकता था कि सूरज नाम का एक दहकता हुआ गोला, जो बेचारा ख़ुद अपने वुजूद का होश भी नहीं रखता, किसी इबादत का हक़दार नहीं है, बल्कि सिर्फ़ वह हस्ती इसका हक़ रखती है जो सबकुछ जाननेवाली और सबकी ख़बर रखनेवाली है और जिसकी क़ुदरत हर पल नए-नए करिश्मे ज़ाहिर कर रही है।

35. इस मक़ाम पर सजदा वाजिब (अनिवार्य) है। यह क़ुरआन के उन मक़ामात में से है जहाँ तिलावत का सजदा वाजिब होने पर सभी फ़क़ीह एक राय हैं। यहाँ सजदा करने का मक़सद यह है कि एक ईमानवाला अपने आपको सूरज के पुजारियों से अलग करे और अपने अमल से इस बात का इक़रार करे कि वह सूरज को नहीं, बल्कि सिर्फ़ अल्लाह तआला ही को सजदा करने के लायक़ और अपना माबूद मानता है।

36. यहाँ पहुँचकर हुदहुद का किरदार ख़त्म होता है। अक़लियत के दावेदार (बुद्धिवादी) लोगों ने जिस वजह से उसे परिन्दा मानने से इनकार किया है वह यह है कि उन्हें एक परिन्दे की देखने, पहचानने और बयान करने की इतनी ताक़त नामुमकिन मालूम होती है कि वह एक देश पर गुज़रे और यह जान ले कि यह सबा क़ौम का देश है, इस देश का निज़ामे-हुकूमत (शासन-व्यवस्था) यह है, इसकी मलिका फ़ुलाँ औरत है, उसका धर्म सूरज की पूजा है, उसको एक ख़ुदा को माननेवाला होना चाहिए था, मगर यह गुमराही में मुब्तला है और अपनी ये सारी

قَالَتْ يٰٓاَيُّهَا الْمَلَؤُا اِنِّىْٓ اُلْقِيَ اِلَيَّ كِتٰبٌ كَرِيْمٌ ﴿٢٩﴾ اِنَّهٗ مِنْ سُلَيْمٰنَ وَاِنَّهٗ
بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ﴿٣٠﴾ اَلَّا تَعْلُوْا عَلَيَّ وَاْتُوْنِيْ مُسْلِمِيْنَ ﴿٣١﴾

(29) मलिका बोली, "ऐ दरबारियो, मेरी तरफ़ एक बड़ा अहम ख़त फेंका गया है। (30) वह सुलैमान की तरफ़ से है और अल्लाह रहमान और रहीम के नाम से शुरू किया गया है। (31) मज़मून यह है कि "मेरे मुक़ाबले में सरकशी न करो और मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) होकर मेरे पास हाज़िर हो जाओ।"[37]

आँखों देखी बातें वह आकर इस तरह साफ़-साफ़ और तफ़सील के साथ बयान कर दे। इन्हीं वजहों से खुले-खुले नास्तिक क़ुरआन पर यह एतिराज़ करते हैं कि यह कलीला दिमना (पंच-तन्त्र) की कहानियों जैसी बातें करता है और क़ुरआन की अक़्ली तफ़सीरें करनेवाले उसके अलफ़ाज़ को उनके खुले मानी से फेरकर यह साबित करने की कोशिश करते हैं कि यह हज़रते-हुदहुद तो सिरे से कोई परिन्दे थे ही नहीं। लेकिन इन दोनों लोगों के पास आख़िर वह क्या साइंटिफ़िक जानकारियाँ हैं जिनकी बुनियाद पर वे पूरे यक़ीन के साथ कह सकते हों कि हैवानों और उनकी अलग-अलग जातियों और फिर उनके अलग-अलग लोगों की क़ुव्वतें और सलाहियतें क्या हैं और क्या नहीं हैं। जिन चीज़ों को वे मालूमात समझते हैं वे हक़ीक़त में उस बिलकुल नाकाफ़ी आँखों देखे तजरिबे से निकाले गए नतीजे हैं जो महज़ सरसरी तौर पर हैवानों की ज़िन्दगी और उनके बर्ताव का किया गया है। इनसान को आज तक किसी यक़ीनी ज़रिए से यह मालूम न हो सका कि अलग-अलग तरह के जानदार क्या जानते हैं, क्या कुछ देखते और सुनते हैं, क्या महसूस करते हैं, क्या सोचते और समझते हैं और उनमें से हर एक का ज़ेहन किस तरह काम करता है। फिर भी जो थोड़ा-बहुत आँखों देखा तजरिबा अलग-अलग हैवानी जातियों की ज़िन्दगी का किया गया है उससे उनकी बहुत ही हैरत-अंगेज़ सलाहियतों (क्षमताओं) का पता चला है। अब अगर अल्लाह तआला, जो इन हैवानों का पैदा करनेवाला है, हमको यह बताता है कि उसने अपने एक नबी को जानवरों की बोली समझने और उनसे बात करने की क़ाबिलियत दी थी और उस नबी के पास सधाए जाने और तरबियत पाने से एक हुदहुद इस क़ाबिल हो गया था कि दूसरे देशों से कुछ देख करके आता और पैग़म्बर को उनकी ख़बर देता था, तो बजाय इसके कि हम अल्लाह तआला के इस बयान की रौशनी में जानवरों के बारे में अपने आज तक के थोड़े-से इल्म और बहुत-सी अटकलों पर दोबारा ग़ौर करें, यह क्या अक़्लमन्दी है कि हम अपने इस नाकाफ़ी इल्म को पैमाना ठहराकर अल्लाह तआला के इस बयान को झुठलाने या उसके मानी को बदलने लगें।

37. यानी ख़त की अहमियत कई वजहों से है। एक यह कि वह अजीब ग़ैर-मामूली तरीक़े से आया है। बजाय इसके कि कोई नुमाइन्दा उसे लाकर देता, एक परिन्दे ने उसे लाकर मुझपर टपका दिया है। दूसरा यह कि वह फ़िलस्तीन और शाम (सीरिया) के अज़ीम बादशाह सुलैमान

قَالَتْ يٰٓاَيُّهَا الْمَلَؤُا اَفْتُوْنِيْ فِيْٓ اَمْرِيْ ۚ مَا كُنْتُ قَاطِعَةً اَمْرًا حَتّٰى
تَشْهَدُوْنِ ﴿٣٢﴾ قَالُوْا نَحْنُ اُولُوْا قُوَّةٍ وَّاُولُوْا بَاْسٍ شَدِيْدٍ ۙ
وَّالْاَمْرُ اِلَيْكِ فَانْظُرِيْ مَاذَا تَاْمُرِيْنَ ﴿٣٣﴾ قَالَتْ اِنَّ الْمُلُوْكَ

(32) (ख़त सुनाकर) मलिका ने कहा, "ऐ क़ौम के सरदारो! मेरे इस मामले में मुझे मशवरा दो, मैं किसी मामले का फ़ैसला तुम्हारे बिना नहीं करती हूँ।"[38] (33) उन्होंने जवाब दिया, "हम ताक़तवर और लड़नेवाले लोग हैं। आगे फ़ैसला आपके हाथ में है। आप ख़ुद देख लें कि आपको क्या हुक्म देना है।" (34) मलिका ने कहा, "बादशाह जब

(अलैहि॰) की तरफ़ से है। तीसरा यह कि उसे अल्लाह रहमान और रहीम के नाम से शुरू किया गया है, हालाँकि दुनिया में कहीं किसी सल्तनत के ख़तों में यह तरीक़ा इस्तेमाल नहीं किया जाता। फिर सब देवताओं को छोड़कर सिर्फ़ बुज़ुर्ग और बरतर ख़ुदा के नाम पर ख़त लिखना भी हमारी दुनिया में एक ग़ैर-मामूली बात है। इन सब बातों के साथ यह चीज़ उसकी अहमियत को और ज़्यादा बढ़ा देती है कि उसमें बिलकुल साफ़-साफ़ हमको यह दावत दी गई है कि हम सरकशी छोड़कर फ़रमाँबरदारी अपना लें और हुक्म माननेवाले या मुसलमान होकर सुलैमान के आगे हाज़िर हो जाएँ।

'मुस्लिम' होकर हाज़िर होने के दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि फ़रमाँबरदार बनकर हाज़िर हो जाओ, दूसरा यह कि इस्लाम क़बूल करके हाज़िर हो जाओ। पहला मतलब हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) के हाकिम होने की हैसियत से मेल खाता है और दूसरा मतलब उनके पैग़म्बर होने की हैसियत से। दोनों मतलबों को अपने अन्दर रखनेवाला यह लफ़्ज़ शायद इसी लिए इस्तेमाल किया गया है कि ख़त में ये दोनों मक़सद शामिल थे। इस्लाम की तरफ़ से ख़ुदमुख़्तार क़ौमों और हुकूमतों को हमेशा यही दावत दी गई है कि या तो सच्चा दीन क़बूल करो और हमारे साथ इस्लामी निज़ाम (व्यवस्था) में बराबर के हिस्सेदार बन जाओ, या फिर अपनी सियासी ख़ुदमुख़्तारी (स्वायत्तता) छोड़कर इस्लामी निज़ाम की मातहती क़बूल करो और सीधे हाथ से जिज़या दो।

38. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं "हत्ता तश्हदून" (जब तक कि तुम हाज़िर न हो, या तुम गवाह न हो), यानी अहम मामलों में फ़ैसला करते वक़्त तुम लोगों की मौजूदगी मेरे नज़दीक ज़रूरी है और यह भी कि जो फ़ैसला मैं करूँ उसके सही होने की तुम गवाही दो। इससे जो बात ज़ाहिर होती है वह यह कि सबा क़ौम में बादशाही निज़ाम तो था मगर वह ज़ालिमाना (दमनकारी) निज़ाम न था, बल्कि वक़्त का बादशाह मामलों के फ़ैसले अपने दरबारियों के मशवरे से करता था।

إِذَا دَخَلُوا قَرْيَةً أَفْسَدُوهَا وَجَعَلُوٓا أَعِزَّةَ أَهْلِهَآ أَذِلَّةً ۚ وَكَذَٰلِكَ
يَفْعَلُونَ ﴿٣٤﴾ وَإِنِّي مُرْسِلَةٌ إِلَيْهِم بِهَدِيَّةٍ فَنَاظِرَةٌۢ بِمَ يَرْجِعُ
الْمُرْسَلُونَ ﴿٣٥﴾ فَلَمَّا جَآءَ سُلَيْمَٰنَ قَالَ أَتُمِدُّونَنِ بِمَالٍ فَمَآ ءَاتَىٰنِۦَ
اللَّهُ خَيْرٌ مِّمَّآ ءَاتَىٰكُم ۚ بَلْ أَنتُم بِهَدِيَّتِكُمْ تَفْرَحُونَ ﴿٣٦﴾ ارْجِعْ

किसी देश में घुस आते हैं तो उसे ख़राब और उसके इज़्ज़तवालों को बेइज़्ज़त कर देते हैं।[39] यही कुछ वे किया करते हैं।[40] (35) मैं उन लोगों की तरफ़ एक तोहफ़ा भेजती हूँ, फिर देखती हूँ कि मेरे एलची क्या जवाब लेकर पलटते हैं।"

(36) जब यह (मलिका का एलची) सुलैमान के यहाँ पहुँचा तो उसने कहा, "क्या तुम लोग माल से मेरी मदद करना चाहते हो? जो कुछ ख़ुदा ने मुझे दे रखा है वह उससे बहुत ज़्यादा है जो तुम्हें दिया है।[41] तुम्हारा तोहफ़ा तुम्हीं को मुबारक रहे। (37) (ऐ

39. इस एक जुमले में इम्पिरियलिज़्म (साम्राज्यवाद) और उसके असरात और नतीजों पर भरपूर तबसिरा (समीक्षा) कर दिया गया है। बादशाहों का देश जीतना और जीतनेवाली क़ौमों का दूसरी क़ौमों पर हाथ डालना कभी सुधार और भलाई के जज़्बे से नहीं होता। उसका मक़सद ही यह होता है कि दूसरी क़ौम को ख़ुदा ने जो रोज़ी दी है और जो वसाइल व ज़राए (साधन-संसाधन) दिए हैं उनसे वे ख़ुद फ़ायदा उठाएँ और उस क़ौम को इतना बेबस कर दें कि वह कभी उनके मुक़ाबले में सिर उठाकर अपना हिस्सा न माँग सके। इस ग़रज़ के लिए वह उसकी ख़ुशहाली और ताक़त और इज़्ज़त के तमाम ज़रिए ख़त्म कर देते हैं, उसके जिन लोगों में भी अपनी ख़ुदी (आत्मसम्मान) का एहसास होता है उन्हें कुचलकर रख देते हैं, उसके लोगों में ग़ुलामी, ख़ुशामद, एक-दूसरे की काट, एक-दूसरे की जासूसी, जीते हुए की नक़्क़ाली, अपनी तहज़ीब (संस्कृति) की बेक़द्री और रुसवाई, जीतनेवाले को इज़्ज़त देना और ऐसी ही गिरी हुई सिफ़ात पैदा कर देते हैं और उन्हें धीरे-धीरे इस बात का आदी बना देते हैं कि वे अपनी किसी पाकीज़ा-से-पाकीज़ा चीज़ को भी बेच देने में न झिझकें और पैसे के बदले हर नीच-से-नीच काम करने के लिए तैयार हो जाएँ।

40. इस जुमले में दो बराबर के इमकान हैं। एक यह कि यह सबा की मलिका ही की कही हुई बात हो और उसने अपनी पिछली बात पर ज़ोर देने के लिए इसका इज़ाफ़ा किया हो। दूसरा यह कि अल्लाह तआला का कहना हो जो मलिका की बात की ताईद (समर्थन) के लिए बीच में कह दिया गया हो।

41. इस जुमले का मक़सद बड़ाई और घमण्ड का इज़हार नहीं है। अस्ल मंशा यह है कि मुझे तुम्हारा माल नहीं चाहिए, बल्कि तुम्हारा ईमान दरकार है। या फिर कम-से-कम जो चीज़ मैं

اِلَيْهِمْ فَلَنَاْتِيَنَّهُمْ بِجُنُوْدٍ لَّا قِبَلَ لَهُمْ بِهَا وَلَنُخْرِجَنَّهُمْ مِّنْهَآ اَذِلَّةً
وَّهُمْ صٰغِرُوْنَ﴿۳۷﴾ قَالَ يٰۤاَيُّهَا الْمَلَؤُا اَيُّكُمْ يَاْتِيْنِيْ بِعَرْشِهَا قَبْلَ اَنْ
يَّاْتُوْنِيْ مُسْلِمِيْنَ﴿۳۸﴾ قَالَ عِفْرِيْتٌ مِّنَ الْجِنِّ اَنَا اٰتِيْكَ بِهٖ قَبْلَ

एलची) वापस जा अपने भेजनेवालों की तरफ़। हम उनपर ऐसे लश्कर लेकर आएँगे[42] जिनका मुक़ाबला वे न कर सकेंगे और हम उन्हें ऐसी बेइज़्ज़ती के साथ वहाँ से निकालेंगे कि वे बेइज़्ज़त होकर रह जाएँगे।"

(38) सुलैमान[43] ने कहा, "ऐ दरबारियो! तुममें से कौन उसका तख़्त मेरे पास लाता है, इससे पहले कि वे लोग फ़रमाँबरदार बनकर मेरे पास हाज़िर हों?"[44] (39) जिन्नों में से एक ताक़तवर और लम्बे-चौड़े (जिन्न) ने कहा, "मैं उसे हाज़िर कर दूँगा इससे पहले

चाहता हूँ वह यह है कि तुम एक सॉलेह निज़ाम (कल्याणकारी व्यवस्था) के तहत आ जाओ। अगर तुम इन दोनों बातों में से किसी के लिए राज़ी नहीं हो तो मेरे लिए यह मुमकिन नहीं है कि माल-दौलत की रिश्वत लेकर तुम्हें इस शिर्क और इस बिगड़े हुए निज़ामे-ज़िन्दगी के मामले में आज़ाद छोड़ दूँ। मुझे मेरे रब ने जो कुछ दे रखा है वह इससे बहुत ज़्यादा है कि मैं तुम्हारे माल का लालच करूँ।

42. पहले जुमले और इस जुमले के बीच में एक बारीक ख़ला (रिक्तता) है जो बात पर ग़ौर करने से ख़ुद-ब-ख़ुद समझ में आ जाता है। यानी पूरी बात यूँ है कि ऐ नुमाइन्दे, यह तोहफ़ा वापस ले जा, अपने भेजनेवालों की तरफ़, उन्हें या तो हमारी पहली बात माननी पड़ेगी कि मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) होकर हमारे पास हाज़िर हो जाएँ, वरना हम उनपर लश्कर लेकर आएँगे।

43. बीच में यह क़िस्सा छोड़ दिया गया है कि सबा की रानी का नुमाइन्दा रानी का तोहफ़ा वापस लेकर पहुँचा और जो कुछ उसने देखा और सुना था वह बता दिया। रानी ने उससे हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) के जो हालात सुने उनकी बुनियाद पर उसने यही मुनासिब समझा कि ख़ुद उनसे मुलाक़ात के लिए बैतुल-मक़दिस जाए। चुनाँचे वह अपने नौकर-चाकर और शाही साज़ो-सामान के साथ सबा से फ़िलस्तीन की तरफ़ रवाना हुई और उसने सुलैमान (अलैहि॰) के दरबार में ख़बर भेज दी कि मैं आपकी दावत ख़ुद आपकी ज़बान से सुनने और आमने-सामने बातचीत करने के लिए हाज़िर हो रही हूँ। इन तफ़सीलात को छोड़कर अब उस वक़्त का क़िस्सा बयान किया जा रहा है जब रानी बैतुल-मक़दिस के क़रीब पहुँच गई थी और एक दो ही दिन में हाज़िर होनेवाली थी।

44. यानी वही तख़्त जिसके बारे में हुदहुद ने बताया था कि "उसका तख़्त बड़ा शानदार है।" क़ुरआन के कुछ तफ़सीर लिखनेवालों ने ग़ज़ब किया है कि रानी के आने से पहले उसका तख़्त मँगवाने की वजह यह बताई है कि हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) उसपर क़ब्ज़ा करना चाहते थे,

اَنْ تَقُوْمَ مِنْ مَّقَامِكَ ۚ وَاِنِّىْ عَلَيْهِ لَقَوِىٌّ اَمِيْنٌ ﴿۳۹﴾

कि आप अपनी जगह से उठें।[45] मैं इसकी ताक़त रखता हूँ और अमानतदार हूँ।"[46]

उन्हें अन्देशा हुआ कि अगर रानी मुसलमान हो गई तो फिर उसके माल पर उसकी मरज़ी के बिना क़ब्ज़ा कर लेना हराम हो जाएगा, इसलिए उन्होंने उसके आने से पहले तख़्त मँगा लेने की जल्दी की; क्योंकि उस वक़्त रानी का माल जाइज़ था। अल्लाह माफ़ करे! एक नबी की नीयत के बारे में यह सोचना बड़ा ही अजीब है। आख़िर यह क्यों न समझा जाए कि हज़रत सुलैमान (अलैहि०) तबलीग़ के साथ-साथ रानी और उसके दरबारियों को एक मोजिज़ा (चमत्कार) भी दिखाना चाहते थे, ताकि उसे मालूम हो कि सारे जहानों का रब अल्लाह अपने पैग़म्बरों को कैसी ग़ैर-मामूली क़ुदरतें देता है और उसे यक़ीन आ जाए कि हज़रत सुलैमान (अलैहि०) सचमुच अल्लाह के नबी हैं। इससे भी कुछ ज़्यादा ग़ज़ब कुछ नए ज़माने के तफ़सीर लिखनेवालों ने किया है। वे आयत का तर्जमा यह करते हैं कि "तुममें से कौन है जो मलिका के लिए एक तख़्त मुझे ला दे।" हालाँकि क़ुरआन जो बात कह रहा है उसका मतलब "उसका तख़्त" है, न कि "उसके लिए तख़्त।" यह बात सिर्फ़ इसलिए बनाई गई है कि क़ुरआन के इस बयान से किसी तरह पीछा छुड़ाया जाए कि हज़रत सुलैमान (अलैहि०) उस रानी ही का तख़्त यमन से बैतुल-मक़दिस मँगवाना चाहते थे और वह भी इसी तरह कि रानी के पहुँचने से पहले-पहले वह आ जाए।

45. इससे मालूम हो सकता है कि हज़रत सुलैमान (अलैहि०) के पास जो जिन्न थे वे मौजूदा ज़माने के कुछ अक़्ल-परस्त तफ़सीर लिखनेवालों के मनमाने मानी के मुताबिक़ इनसानों में से थे या आम लोगों के मुताबिक़ उसी पोशीदा मख़लूक़ में से जो जिन्न के नाम से जाने जाते हैं। ज़ाहिर है कि हज़रत सुलैमान (अलैहि०) के दरबार की बैठक ज़्यादा-से-ज़्यादा तीन-चार घण्टे की होगी और बैतुल-मक़दिस से सबा की राजधानी मारिब का फ़ासला परिन्दे की उड़ान के लिहाज़ से भी कम-से-कम डेढ़ हज़ार मील का था। इतने फ़ासले से एक रानी का अज़ीमुश्शान तख़्त इतनी कम मुद्दत में उठा लाना किसी इनसान का काम नहीं हो सकता था, चाहे वह लम्बे-चौड़े लोगों में से कितना ही मोटा-ताज़ा आदमी क्यों न हो। यह काम तो आजकल का जेट हवाई जहाज़ भी नहीं कर सकता। मसला इतना ही नहीं है कि तख़्त कहीं जंगल में रखा हो और उसे उठा लाया जाए। मसला यह है कि तख़्त एक रानी के महल में था जिसपर यक़ीनन पहरेदार तैनात होंगे और वह मलिका की ग़ैर-मौजूदगी में ज़रूर महफ़ूज़ जगह रखा गया होगा। इनसान जाकर उठा लाना चाहता तो उसके साथ एक छापामार दस्ता होना चाहिए था कि लड़-भिड़कर उसे पहरेदारों से छीन लाए। यह सबकुछ आख़िर दरबार बरख़ास्त होने से पहले कैसे हो सकता था। इस चीज़ के बारे में अगर सोचा जा सकता है तो एक सचमुच के जिन्न ही के बारे में सोचा जा सकता है।

46. यानी आप मुझपर यह भरोसा कर सकते हैं कि मैं उसे ख़ुद उड़ा न ले जाऊँगा, या उसमें से कोई क़ीमती चीज़ न चुरा लूँगा।

قَالَ الَّذِىۡ عِنۡدَهٗ عِلۡمٌ مِّنَ الۡكِتٰبِ اَنَا اٰتِيۡكَ بِهٖ قَبۡلَ اَنۡ يَّرۡتَدَّ اِلَيۡكَ طَرۡفُكَ‌ ؕ فَلَمَّا رَاٰهُ مُسۡتَقِرًّا عِنۡدَهٗ قَالَ هٰذَا مِنۡ فَضۡلِ رَبِّىۡ ۖ لِيَبۡلُوَنِىۡۤ ءَاَشۡكُرُ اَمۡ اَكۡفُرُ‌ ؕ وَمَنۡ شَكَرَ فَاِنَّمَا

(40) जिस शख़्स के पास किताब का इल्म (ज्ञान) था वह बोला, "मैं आपकी पलक झपकने से पहले उसे लाए देता हूँ।"[47] ज्यों ही कि सुलैमान ने वह तख़्त अपने पास रखा हुआ देखा, वह पुकार उठा, "यह मेरे रब की मेहरबानी है ताकि वह मुझे आज़माए कि मैं शुक्र करता हूँ या नाशुक्रा बन जाता हूँ।[48] और जो कोई शुक्र करता है तो उसका

47. उस शख़्स के बारे में यक़ीनी तौर पर यह मालूम नहीं है कि वह कौन था और उसके पास वह किस ख़ास तरह का इल्म था और उस किताब से कौन-सी किताब मुराद है जिसका इल्म उसके पास था। इन बातों की कोई तफ़सील न क़ुरआन में है, न किसी सहीह हदीस में। तफ़सीर लिखनेवालों में से कुछ कहते हैं कि वह फ़रिश्ता था और कुछ कहते हैं कि वह कोई इनसान था। फिर उस इनसान की शख़्सियत को तय करने में भी उनके बीच इख़्तिलाफ़ है। कोई आसिफ़-बिन-बरख़ियाह (Asaf-B-Barchiah) का नाम लेता है जो यहूदी रिब्बियों की रिवायतों के मुताबिक़ इनसानों के राजकुमार (Prince of Men) थे। कोई कहता है कि वे हज़रत ख़िज़िर थे, कोई किसी और का नाम लेता है और इमाम राज़ी का सारा ज़ोर इसपर है कि वे ख़ुद हज़रत सुलैमान (अलैहि.) थे। लेकिन इनमें से किसी का भी कोई भरोसेमन्द ज़रिआ नहीं है जहाँ से उसने यह बात ली है और इमाम राज़ी की बात तो क़ुरआन के मौक़ा-महल से भी मेल नहीं खाती। इसी तरह किताब के बारे में भी तफ़सीर लिखनेवालों की रायें अलग-अलग हैं। कोई कहता है कि इससे मुराद लौहे-महफ़ूज़ है और कोई शरीअत की किताब मुराद लेता है। लेकिन ये सब सिर्फ़ अन्दाज़े हैं और ऐसे ही अन्दाज़े उस इल्म के बारे में भी बिना दलील और सुबूत क़ायम कर लिए गए हैं जो किताब से उस आदमी को हासिल था। हम सिर्फ़ उतनी ही बात जानते और मानते हैं जितनी क़ुरआन में कही गई है, या जो उसके अलफ़ाज़ से ज़ाहिर होती है। वह शख़्स बहरहाल जिन्न की जाति में से न था और नामुमकिन नहीं कि वह कोई इनसान ही हो। उसके पास कोई ग़ैर-मामूली इल्म था और वह अल्लाह की किसी किताब (अल-किताब) से लिया गया था। जिन्न अपने वुजूद की ताक़त से उस तख़्त को कुछ घण्टों में उठा लाने का दावा कर रहा था। यह आदमी इल्म की ताक़त से उसको एक पल में उठा लाया।

48. क़ुरआन मजीद का अन्दाज़े-बयान इस मामले में बिलकुल साफ़ है कि उस लम्बे-चौड़े जिन्न के दावे की तरह इस शख़्स का दावा सिर्फ़ दावा ही न रहा, बल्कि हक़ीक़त में जिस वक़्त उसने दावा किया उसी वक़्त एक ही पल में वह तख़्त हज़रत सुलैमान (अलैहि.) के सामने रखा नज़र

يَشْكُرُ لِنَفْسِهٖ ۚ وَمَنْ كَفَرَ فَاِنَّ رَبِّيْ غَنِيٌّ كَرِيْمٌ ۝٤٠

शुक्र उसके अपने ही लिए फ़ायदेमन्द है, वरना कोई नाशुक्री करे तो मेरा रब बेनियाज़ (निस्पृह) और अपनी ज़ात में आप बुज़ुर्ग है।"[49]

आया। ज़रा इन अलफ़ाज़ पर ग़ौर कीजिए—

"उस आदमी ने कहा कि मैं आपकी पलक झपकने से पहले उसे ले आता हूँ। ज्यों ही कि सुलैमान ने उसे अपने पास रखा देखा।"

जो शख़्स भी वाक़िए के अजीबो-ग़रीब होने का ख़याल ज़ेहन से निकालकर अपनी जगह इस इबारत को पढ़ेगा वह इससे यही मतलब लेगा कि उस शख़्स के यह कहते ही दूसरे पल में वह वाक़िआ पेश आ गया जिसका उसने दावा किया था। इस सीधी-सी बात को ख़ाह-मख़ाह मनमाने मतलब पहनाने की क्या ज़रूरत है? फिर तख़्त को देखते ही हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) का यह कहना कि "यह मेरे रब की मेहरबानी है, ताकि मुझे आज़माए कि मैं शुक्र करता हूँ या नेमत की नाशुक्री करनेवाला बन जाता हूँ" इसी सूरत में मौक़े के मुताबिक़ हो सकता है जबकि यह कोई ग़ैर-मामूली वाक़िआ हो। वरना अगर वाक़िआ यह होता कि उनका एक होशियार नौकर रानी के लिए जल्दी से एक तख़्त बना लाया या बनवा लाया, तो ज़ाहिर है कि यह ऐसी कोई निराली बात न हो सकती थी कि इसपर हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) बेइख़्तियार "हाज़ा मिन फ़ज़्लि रब्बी" (यह मेरे रब की मेहरबानी है) पुकार उठते और उनको यह ख़तरा लग जाता कि इतनी जल्दी मोहतरम मेहमान के लिए तख़्त तैयार हो जाने से कहीं मैं नेमत का शुक्रिया अदा करनेवाला बनने के बजाय नाशुक्रा न बन जाऊँ। आख़िर इतनी-सी बात पर किसी ईमानवाले बादशाह को इतना घमण्ड और अपनी बड़ाई का एहसास हो जाने का क्या ख़तरा हो सकता है, ख़ास तौर से जबकि वह एक मामूली मोमिन न हो, बल्कि अल्लाह का नबी हो।

अब रही यह बात कि डेढ़ हज़ार मील से एक शाही तख़्त पलक झपकते किस तरह उठकर आ गया, तो इसका छोटा-सा जवाब यह है कि वक़्त और जगह और माद्दा और हरकत के जो तसव्वुर (धारणाएँ) हमने अपने तजरिबों और देखने-सुनने की बुनियाद पर क़ायम कर रखे हैं उनकी सारी हदें सिर्फ़ हमारे ही लिए हैं। ख़ुदा के लिए न ये तसव्वुर सही हैं और न वह उन हदों में क़ैद है। उसकी क़ुदरत एक मामूली तख़्त तो एक तरफ़, सूरज और उससे भी बड़े सय्यारों (ग्रहों) को ज़रा-सी देर में लाखों मील का फ़ासला तय करा सकती है। जिस ख़ुदा के सिर्फ़ एक हुक्म से यह अज़ीम कायनात (विशाल सृष्टि) वुजूद में आ गई है उसका एक हलका-सा इशारा ही सबा की रानी के तख़्त को रौशनी की रफ़्तार से चला देने के लिए काफ़ी था। आख़िर इसी क़ुरआन में यह ज़िक्र भी तो मौजूद है कि अल्लाह तआला एक रात अपने बन्दे मुहम्मद (सल्ल॰) को मक्का से बैतुल-मक़दिस ले भी गया और वापस भी ले आया।

49. यानी ख़ुदा किसी के शुक्र का मुहताज नहीं है। उसकी ख़ुदाई में किसी की शुक्रगुज़ारी से न ज़र्रा बराबर कोई इज़ाफ़ा होता है और न किसी की नाशुक्री और एहसान-फ़रामोशी से बाल बराबर कोई कमी आती है। वह आप अपने ही बल-बूते पर ख़ुदाई कर रहा है, बन्दों के मानने

قَالَ نَكِّرُوْا لَهَا عَرْشَهَا نَنْظُرْ اَتَهْتَدِيْٓ اَمْ تَكُوْنُ مِنَ الَّذِيْنَ لَا
يَهْتَدُوْنَ۝ فَلَمَّا جَآءَتْ قِيْلَ اَهٰكَذَا عَرْشُكِ ؕ قَالَتْ كَاَنَّهٗ هُوَ ۚ

(41) सुलैमान[50] ने कहा, "अनजान तरीक़े से उसका तख़्त उसके सामने रख दो, देखें वह सही बात तक पहुँचती है या उन लोगों में से है जो सीधी राह नहीं पाते।"[51] (42) मलिका जब हाज़िर हुई तो उससे कहा गया कि तेरा तख़्त ऐसा ही है? वह कहने लगी, "यह तो जैसे वही है।[52] ———

या न मानने पर उसकी ख़ुदाई का दारोमदार नहीं है। यही बात क़ुरआन मजीद में एक जगह हज़रत मूसा (अलैहि॰) की ज़बान से नक़्ल की गई है कि "अगर तुम और सारी दुनियावाले मिलकर भी कुफ़्र करें तो अल्लाह बेनियाज़ (निस्पृह) और अपने आप में ख़ुद तारीफ़ के लायक़ है।" (सूरा-14 इबराहीम, आयत-8) और यही बात इस हदीसे-क़ुदसी में कही गई है जो सहीह मुस्लिम में आई है—

"अल्लाह तआला फ़रमाता है कि ऐ मेरे बन्दो, अगर अव्वल से आख़िर तक तुम सब इनसान और जिन्न अपने सबसे ज़्यादा परहेज़गार आदमी के दिल जैसे हो जाओ तो उससे मेरी बादशाही में कोई इज़ाफ़ा न हो जाएगा। ऐ मेरे बन्दो, अगर अव्वल से आख़िर तक तुम सब इनसान और जिन्न अपने सबसे ज़्यादा बदकार आदमी के दिल जैसे हो जाओ तो मेरी बादशाही में इससे कोई कमी न हो जाएगी। ऐ मेरे बन्दो, ये तुम्हारे अपने आमाल ही हैं जिनको मैं तुम्हारे हिसाब में गिनता हूँ, फिर उनका पूरा-पूरा बदला तुम्हें देता हूँ। तो जिसे कोई भलाई नसीब हो उसे चाहिए कि अल्लाह का शुक्र अदा करे और जिसे कुछ और नसीब हो वह अपने आप ही को मलामत करे।"

50. बीच में यह तफ़सील छोड़ दी गई है कि सबा की रानी कैसे बैतुल-मक़दिस पहुँची और किस तरह उसका इस्तिक़बाल हुआ। उसे छोड़कर अब उस वक़्त का हाल बयान किया जा रहा है जब वह हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) की मुलाक़ात के लिए उनके महल में पहुँच गई।

51. इस जुमले के कई मतलब हैं। इसका यह मतलब भी है कि वह यकायक अपने देश से इतनी दूर अपना तख़्त मौजूद पाकर यह समझ जाती है या नहीं कि यह उसी का तख़्त उठा लाया गया है और यह मतलब भी है कि वह इस हैरत-अंगेज़ मोजिज़े (चमत्कार) को देखकर हिदायत पाती है या अपनी गुमराही पर क़ायम रहती है।

इससे उन लोगों का ख़याल ग़लत साबित हो जाता है जो कहते हैं कि हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) उस तख़्त पर क़ब्ज़ा करने की नीयत रखते थे। यहाँ वे ख़ुद उस मक़सद को ज़ाहिर कर रहे हैं कि उन्होंने यह काम रानी की हिदायत के लिए किया था।

52. इससे उन लोगों के ख़यालात का भी रद्द हो जाता है जिन्होंने अस्ल सूरते-हाल का नक़्शा कुछ इस तरह खींचा है कि मानो हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) अपनी मेहमान रानी के लिए एक तख़्त

وَاُوْتِيْنَا الْعِلْمَ مِنْ قَبْلِهَا وَكُنَّا مُسْلِمِيْنَ ﴿٤٢﴾ وَصَدَّهَا مَا
كَانَتْ تَّعْبُدُ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ ۭ اِنَّهَا كَانَتْ مِنْ قَوْمٍ كٰفِرِيْنَ ﴿٤٣﴾

हम तो पहले ही जान गए थे और हमने फ़रमाँबरदारी में सिर झुका दिया था (या हम मुस्लिम हो चुके थे)।''[53] (43) उसको (ईमान लाने से) जिस चीज़ ने रोक रखा था वह उन माबूदों की इबादत थी जिन्हें वह अल्लाह के सिवा पूजती थी, क्योंकि वह एक कुफ़्र करनेवाली क़ौम से थी।[54]

बनवाना चाहते थे, इस ग़रज़ के लिए उन्होंने टेंडर तलब किए, एक हट्टे-कट्टे कारीगर ने कुछ ज़्यादा मुद्दत में तख़्त बना देने की पेशकश की, मगर एक-दूसरे माहिर उस्ताद ने कहा कि मैं तुरत-फुरत बनाए देता हूँ। इस सारे नक़्शे का ताना-बाना इस बात से बिखर जाता है कि हज़रत सुलैमान (अलैहि०) ने ख़ुद रानी ही का तख़्त लाने के लिए कहा था और उसके आने पर अपने नौकरों को उसी का तख़्त अनजान तरीक़े से उसके सामने पेश करने का हुक्म दिया था, फिर जब वह आई तो उससे पूछा गया कि क्या तेरा तख़्त ऐसा ही है और उसने कहा, गोया यह वही है। इस साफ़ बयान की मौजूदगी में उन लम्बे-चौड़े मनमाने मतलबों की क्या गुंजाइश रह जाती है। इसपर भी किसी को शक रहे तो बाद का जुमला उसे मुत्मइन करने के लिए काफ़ी है।

53. यानी यह मोजिज़ा (चमत्कार) देखने से पहले ही सुलैमान (अलैहि०) की जो सिफ़त और हालात हमें मालूम हो चुके थे उनकी बुनियाद पर हमें यक़ीन हो गया था कि वे अल्लाह के नबी हैं, सिर्फ़ एक सल्तनत के बादशाह नहीं हैं। तख़्त को देखने के और ''मानो यह वही है'' कहने के बाद इस जुमले का इज़ाफ़ा करने में आख़िर क्या मतलब रह जाता है अगर यह मान लिया जाए कि हज़रत सुलैमान (अलैहि०) ने उसके लिए एक तख़्त बनवाकर रख दिया था? मान लीजिए कि अगर वह तख़्त रानी के तख़्त से मिलता-जुलता ही तैयार करा लिया गया हो तब भी इसमें आख़िर वह क्या कमाल हो सकता था कि एक सूरज की पूजा करनेवाली रानी उसे देखकर यह बोल उठती कि ''हमें पहले ही इल्म नसीब हो गया था और हम फ़रमाँबरदार हो चुके थे।''

54. यह जुमला अल्लाह तआला की तरफ़ से सबा की रानी की पोज़ीशन वाज़ेह करने के लिए कहा गया है। यानी उसमें ज़िद और हठधर्मी न थी। वह उस वक़्त तक सिर्फ़ इसलिए ग़ैर-मुस्लिम थी कि वह एक ऐसी क़ौम में पैदा हुई थी जो कुफ़्र और शिर्क में पड़ी हुई थी। होश संभालने के बाद से उसको जिस चीज़ के आगे सजदा करने की आदत पड़ी हुई थी, बस वही उसके रास्ते में एक रुकावट बनी हुई थी। हज़रत सुलैमान (अलैहि०) से मुलाक़ात होने पर जब उसकी आँखें खुलीं तो उस रुकावट के हट जाने में ज़रा-सी देर भी न लगी।

قِيْلَ لَهَا ادْخُلِي الصَّرْحَ ۚ فَلَمَّا رَاَتْهُ حَسِبَتْهُ لُجَّةً وَّكَشَفَتْ
عَنْ سَاقَيْهَا ۭ قَالَ اِنَّهٗ صَرْحٌ مُّمَرَّدٌ مِّنْ قَوَارِيْرَ ڛ قَالَتْ رَبِّ
اِنِّيْ ظَلَمْتُ نَفْسِيْ وَاَسْلَمْتُ مَعَ سُلَيْمٰنَ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۝۴۴

ع ۱۸

(44) उससे कहा गया कि महल में दाख़िल हो। उसने जो देखा तो समझी कि पानी का हौज़ है और उतरने के लिए उसने अपने पाईंचे उठा लिए। सुलैमान ने कहा, ''यह शीशे का चिकना फ़र्श है।''[55] इसपर वह पुकार उठी, ''ऐ मेरे रब, (आजतक) मैं अपने आपपर बड़ा ज़ुल्म करती रही, और अब मैंने सुलैमान के साथ सारे जहान के रब अल्लाह की फ़रमाँबरदारी क़बूल कर ली।''[56]

55. यह आख़िरी चीज़ थी जिसने सबा की रानी की आँखें खोल दीं। पहली चीज़ हज़रत सुलैमान (अलैहि०) का वह ख़त था जो आम बादशाहों के तरीक़े से हटकर अल्लाह रहमान और रहीम (दयावान, कृपाशील) के नाम से शुरू किया गया था। दूसरी चीज़ उसके क़ीमती तोहफ़ों को रद्द करना था जिससे रानी को अन्दाज़ा हुआ कि यह बादशाह किसी और तरह का है। तीसरी चीज़ रानी के नुमाइन्दे का बयान था जिससे उसने हज़रत सुलैमान (अलैहि०) की परहेज़गारीवाली ज़िन्दगी, उनकी हिकमत और उनकी हक़ की दावत के बारे में जाना। इसी चीज़ ने उसे आमादा किया कि ख़ुद चलकर उनसे मुलाक़ात करे और उसी की तरफ़ उसने अपनी इस बात में इशारा किया कि ''हम तो पहले ही जान गए थे और हम मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हो चुके थे।'' चौथी चीज़ उस शानदार तख़्त का आनन-फ़ानन मारिब से बैतुल-मक़दिस पहुँच जाना था जिससे रानी को मालूम हुआ कि इस शख़्स के पीछे अल्लाह तआला की ताक़त है और अब आख़िरी चीज़ यह थी कि उसने देखा जो शख़्स ऐशो-आराम के यह सामान रखता है और ऐसे शानदार महल में रहता है वह घमण्ड से कितना ज़्यादा दूर है, कितना ज़्यादा ख़ुदा से डरनेवाला और नेकदिल है, किस तरह बात-बात पर उसका सिर ख़ुदा के आगे शुक्रगुज़ारी में झुक जाता है और उसकी ज़िन्दगी दुनिया की ज़िन्दगी पर मर-मिटनेवालों की ज़िन्दगी से कितनी अलग है। यही चीज़ थी जिसने उसे वह कुछ पुकार उठने पर मजबूर कर दिया जो आगे उसकी ज़बान से नक़्ल किया गया है।

56. हज़रत सुलैमान (अलैहि०) और सबा की रानी का यह क़िस्सा बाइबल के पुराने नियम, नए नियम और यहूदियों की रिवायतों, सबमें अलग-अलग तरीक़ों से आया है, मगर क़ुरआन का बयान इन सबसे अलग है। पुराने नियम में इस क़िस्से का ख़ुलासा यह है—

''और जब शीबा (अर्थात् सबा) की रानी ने यहोवा (ख़ुदावन्द) के नाम के विषय में सुलैमान की शोहरत सुनी तो वह आई ताकि मुश्किल सवालों से उसे आज़माए और वह बहुत भारी दल

के साथ......यरूशलेम में आई और सुलैमान के पास पहुँचकर उसने उन सब बातों के बारे में जो उसके दिल में थीं उससे बातचीत की। सुलैमान ने उन सबका जवाब दिया........और जब शीबा की रानी ने सुलैमान की सब बुद्धिमानी (हिकमत) और उस महल को जो उसने बनाया था और उसके दस्तरख़ान की नेमतों और उसके कर्मचारियों की बैठक और उसके नौकरों का हाज़िर होना और उनके कपड़े और उसके पिलानेवालों और उस सीढ़ी को जिससे वह यहोवा (ख़ुदावन्द) के घर को जाया करता था, देखा तो उसके होश उड़ गए और उसने बादशाह से कहा कि वह सच्ची ख़बर थी जो मैंने तेरे कामों और तेरी बुद्धिमानी (हिकमत) के बारे में अपने देश में सुनी थी, तो भी मैंने वे बातें न मानीं जब तक ख़ुद आकर अपनी आँखों से देख न लिया और मुझे तो आधा भी नहीं बताया गया था क्योंकि तेरी बुद्धिमानी और ख़ुशनसीबी उस शोहरत से, जो मैंने सुनी, बहुत ज़्यादा है। ख़ुशनसीब हैं तेरे लोग और ख़ुशनसीब हैं तेरे ये नौकर जो हमेशा तेरे सामने खड़े रहकर तेरी बुद्धि (हिकमत) की बातें सुनते हैं। धन्य है तेरा परमेश्वर (ख़ुदावन्द) जो तुझसे ऐसा राज़ी हुआ कि तुझे इसराईल के तख़्त (राजगद्दी) पर बिठाया........और उसने बादशाह को एक सौ बीस किक्कार (किक्कार एक पैमाना है जो लगभग साढ़े चार टन के बराबर होता है) सोना और बहुत-सा सुगन्ध-द्रव्य और बहुत क़ीमती जवाहर दिए। जितना सुगन्ध-द्रव्य शीबा की रानी ने सुलैमान बादशाह को दिया उतना फिर कभी नहीं आया........शीबा (सबा) की रानी ने जो कुछ चाहा वही बादशाह सुलैमान ने उसकी इच्छा के मुताबिक़ उसको दिया। फिर वह अपने नौकरों सहित अपने राज्य को लौट गई।'' (1-राजा, 10:1-13। इसी से मिलती-जुलती बात इतिहास-2, 9:1-12 में भी है।)

नए नियम की किताब में हज़रत ईसा (अलैहि॰) की एक तक़रीर का सिर्फ़ यह जुमला सबा की रानी के बारे में नक़्ल हुआ है—

''दक्षिण की रानी न्याय के दिन इस ज़माने के लोगों के साथ उठकर उनको मुजरिम ठहराएगी; क्योंकि वह ज़मीन के छोर से सुलैमान की हिकमत सुनने आई और देखो यहाँ वह है जो सुलैमान से भी बड़ा है।'' (मत्ती, 12:42, लूक़ा, 11:31)

यहूदी रिब्बियों की रिवायतों में हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) और शीबा (सबा) की रानी का क़िस्सा अपनी ज़्यादातर तफ़सीलात में क़ुरआन से मिलता-जुलता है। हुदहुद का ग़ायब होना, फिर आकर सबा और उसकी रानी के हालात बयान करना, हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) का उसके ज़रिए से ख़त भेजना, हुदहुद का ठीक उस वक़्त वह ख़त रानी के आगे गिराना जब कि वह सूरज की पूजा को जा रही थी, रानी का उस ख़त को देखकर अपने वज़ीरों से मीटिंग करना, फिर रानी का एक क़ीमती तोहफ़ा हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) के पास भेजना, ख़ुद यरूशलेम पहुँचकर उनसे मिलना, उनके महल में पहुँचकर यह समझना कि हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) पानी के हौज़ में बैठे हैं और उसमें उतरने के लिए पाँईंचे चढ़ा लेना, ये सब उन रिवायतों में इसी तरह बयान हुआ है जिस तरह क़ुरआन में बयान हुआ है। मगर तोहफ़ा मिलने पर हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) का जवाब, रानी के तख़्त को उठवा मँगाना, हर मौक़े पर उनका ख़ुदा के आगे झुकना और आख़िरकार रानी का उनके हाथ पर ईमान लाना, ये सब बातें, बल्कि ख़ुदा को मानने और ख़ुदा की बन्दगी से मुताल्लिक़ सारी बातें ही इन रिवायतों में नहीं हैं। सबसे

وَلَقَدْ اَرْسَلْنَآ اِلٰى ثَمُوْدَ اَخَاهُمْ صٰلِحًا اَنِ اعْبُدُوا اللّٰهَ فَاِذَا هُمْ
فَرِيْقٰنِ يَخْتَصِمُوْنَ۝ قَالَ يٰقَوْمِ لِمَ تَسْتَعْجِلُوْنَ بِالسَّيِّئَةِ قَبْلَ

(45) और समूद[57] की तरफ़ हमने उनके भाई सॉलेह को (यह पैग़ाम देकर) भेजा कि अल्लाह की बन्दगी करो, तो यकायक वे झगड़नेवाले दो दुश्मन गरोह बन गए।[58] (46) सॉलेह ने कहा, "ऐ मेरी क़ौम के लोगो, भलाई से पहले बुराई के लिए क्यों

बढ़कर ग़ज़ब यह है कि इन ज़ालिमों ने हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) पर इलज़ाम लगाया है कि उन्होंने सबा की रानी के साथ (अल्लाह की पनाह!) ज़िना (व्यभिचार) का जुर्म किया और उसी नाजाइज़ नस्ल से बाबिल का बादशाह बुख़्त-नसर पैदा हुआ जिसने बैतुल-मक़दिस को तबाह किया (जैविश इंसाइक्लोपीडिया, हिस्सा-11, पेज-443)। अस्ल मामला यह है कि यहूदी आलिमों का एक गरोह हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) का सख़्त दुश्मन रहा है। उन लोगों ने उनपर तौरात के हुक्मों की ख़िलाफ़वर्ज़ी, हुकूमत और अक़्लमन्दी के घमण्ड, औरत के रसिया होने, ऐश-परस्ती और शिर्क और बुतपरस्ती के घिनौने इलज़ाम लगाए हैं (जैविश इंसाइक्लोपीडिया, हिस्सा-11, पेज-441) और यह उसी प्रोपेगण्डे का असर है कि बाइबल उन्हें नबी के बजाय सिर्फ़ एक बादशाह की हैसियत से पेश करती है और बादशाह भी ऐसा जो, अल्लाह की पनाह, ख़ुदाई हुक्मों के ख़िलाफ़ मुशरिक औरतों के इश्क़ में गुम हो गया, जिसका दिल ख़ुदा से फिर गया और जो ख़ुदा के सिवा दूसरे माबूदों की तरफ़ माइल हो गया। (1-राजा, 11:1-12) इन चीज़ों को देखकर अन्दाज़ा होता है कि क़ुरआन ने बनी-इसराईल पर कितना बड़ा एहसान किया है कि उनके बुज़ुर्गों का दामन ख़ुद उनकी फेंकी हुई गन्दगियों से साफ़ किया और ये बनी-इसराईल कितने एहसान फ़रामोश हैं कि इसपर भी ये क़ुरआन और उसके लानेवाले को अपना दुश्मन समझते हैं।

57. यह क़िस्सा क़ुरआन में कुछ फ़र्क़ के साथ कई जगहों पर आया है। दखिए– सूरा-7 आराफ़, आयतें–73-79; सूरा-11 हूद, आयतें–61-68; सूरा-26 शुअरा, आयतें–141-159; सूरा-54 क़मर, आयतें–23-32; सूरा-91 शम्स, आयतें–11-15।

58. यानी ज्यों ही कि हज़रत सॉलेह (अलैहि॰) की दावत की शुरुआत हुई, उनकी क़ौम दो गरोहों में बँट गई। एक गरोह ईमान लानेवालों का, दूसरा गरोह इनकार करनेवालों का और इस फूट के साथ ही उनके बीच कशमकश शुरू हो गई, जैसा कि क़ुरआन मजीद में दूसरी जगह कहा गया है, "उसकी क़ौम में से जो सरदार अपनी बड़ाई का घमण्ड रखते थे, उन्होंने उन लोगों से जो कमज़ोर बनाकर रखे गए थे, जो उनमें से ईमान लाए थे, कहा, क्या सचमुच तुम यह जानते हो कि सॉलेह अपने रब की तरफ़ से भेजा गया है? उन्होंने जवाब दिया, हम उस चीज़ पर ईमान रखते हैं जिसको लेकर वे भेजे गए हैं। उन बड़े बननेवालों ने कहा, जिस चीज़ पर तुम ईमान लाए हो उसका हम इनकार करते हैं।" (सूरा-7 आराफ़, आयतें–75-78)

الْحَسَنَةِ ۚ لَوْلَا تَسْتَغْفِرُونَ اللَّهَ لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُونَ ۝ قَالُوا اطَّيَّرْنَا
بِكَ وَبِمَن مَّعَكَ ۚ قَالَ طَائِرُكُمْ عِندَ اللَّهِ ۖ بَلْ أَنتُمْ قَوْمٌ

जल्दी मचाते हो?[59] क्यों नहीं अल्लाह से माफ़ी माँगते? शायद कि तुमपर रहम किया जाए।" (47) उन्होंने कहा, "हमने तो तुमको और तुम्हारे साथियों को नहूसत (अपशकुन) का निशान पाया है।"[60] सॉलेह ने जवाब दिया, "तुम्हारे अच्छे और बुरे शगुन का सिरा तो अल्लाह के पास है। अस्ल बात यह है कि तुम लोगों की आज़माइश

याद रहे कि ठीक यही सूरते-हाल मुहम्मद (सल्ल॰) के नबी बनाकर भेजे जाने के साथ मक्का में भी पैदा हुई थी कि क़ौम दो हिस्सों में बँट गई और इसके साथ ही उन दोनों गरोहों में कशमकश शुरू हो गई। इसलिए यह क़िस्सा आप-से-आप उन हालात पर चस्पाँ हो रहा था जिनमें ये आयतें उतरीं।

59. यानी अल्लाह से भलाई माँगने के बजाय अज़ाब माँगने में क्यों जल्दी करते हो? दूसरी जगह सॉलेह (अलैहि॰) की क़ौम के सरदारों की कही हुई यह बात नक़्ल हो चुकी है कि "ऐ सॉलेह, ले आ वह अज़ाब हमपर जिसकी तू हमें धमकी देता है, अगर तू सचमुच रसूलों में से है।"
(क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-77)

60. उनके यह कहने का एक मतलब यह है कि तुम्हारी यह तहरीक (आन्दोलन) हमारे लिए सख़्त मनहूस (अशुभ) साबित हुई है, जब से तुमने और तुम्हारे साथियों ने अपने बाप-दादा के दीन के ख़िलाफ़ यह बग़ावत शुरू की है हमपर आए दिन कोई-न-कोई मुसीबत टूटती रहती है; क्योंकि हमारे माबूद (उपास्य) हमसे नाराज़ हो गए हैं। इस मतलब के लिहाज़ से यह बात अकसर उन मुशरिक क़ौमों की बातों से मिलती-जुलती है जो अपने नबियों को मनहूस क़रार देती थी। चुनाँचे सूरा-36 यासीन में एक क़ौम का ज़िक्र आता है कि उसने अपने नबियों से कहा, "हमने तुमको मनहूस पाया है।" (आयत-18) यही बात फ़िरऔन की क़ौम हज़रत मूसा (अलैहि॰) के बारे में कहती थी, "जब उनपर कोई अच्छा वक़्त आता तो कहते कि हमारे लिए यही है और जब कोई मुसीबत आ जाती तो मूसा (अलैहि॰) और उनके साथियों के मनहूस होने को इसका ज़िम्मेदार ठहराते।" (सूरा-7 आराफ़, आयत-131) लगभग ऐसी ही बातें मक्का में नबी (सल्ल॰) के बारे में भी कही जाती थीं।

दूसरा मतलब इस बात का यह है कि तुम्हारे आते ही हमारी क़ौम में फूट पड़ गई है। पहले हम एक क़ौम थे जो एक दीन (धर्म) पर इकट्ठा थी। तुम्हारे क़दम ऐसे पड़े कि भाई, भाई का दुश्मन हो गया और बेटा बाप से कट गया। इस तरह क़ौम के अन्दर एक नई क़ौम उठ खड़ी होने का अंजाम हमें अच्छा दिखाई नहीं देता। यही वह इलज़ाम था जिसे मुहम्मद (सल्ल॰) की मुख़ालिफ़त करनेवाले आप (सल्ल॰) के ख़िलाफ़ बार-बार पेश करते थे। आप (सल्ल॰) की दावत

تُفْتَنُوْنَ۝ وَكَانَ فِي الْمَدِيْنَةِ تِسْعَةُ رَهْطٍ يُّفْسِدُوْنَ فِي الْاَرْضِ
وَلَا يُصْلِحُوْنَ۝ قَالُوْا تَقَاسَمُوْا بِاللّٰهِ لَنُبَيِّتَنَّهٗ وَاَهْلَهٗ ثُمَّ لَنَقُوْلَنَّ

हो रही है।"[61]

(48) उस शहर में नौ जत्थेदार थे[62] जो देश में बिगाड़ फैलाते और कोई सुधार का काम न करते थे। (49) उन्होंने आपस में कहा, "ख़ुदा की क़सम खाकर अहद (प्रतिज्ञा) कर लो कि हम सॉलेह और उसके घरवालों पर हमला करेंगे और फिर उसके वली

शुरू होते ही क़ुरैश के सरदारों के जो नुमाइन्दे अबू-तालिब के पास गए थे, उन्होंने यही कहा था कि "अपने इस भतीजे को हमारे हवाले कर दो जिसने तुम्हारे दीन (धर्म) और तुम्हारे बाप-दादा के दीन की मुख़ालिफ़त की है और तुम्हारी क़ौम में फूट डाल दी है और सारी क़ौम को बेवक़ूफ़ ठहरा दिया है।" (इब्ने-हिशाम, हिस्सा-1, पेज-285) हज के मौक़े पर जब मक्का के इस्लाम-दुश्मनों को अन्देशा हुआ कि ज़ियारत के लिए बाहर से आनेवाले आकर कहीं मुहम्मद (सल्ल॰) के पैग़ाम से मुतास्सिर न हो जाएँ तो उन्होंने आपस में मशवरा करने के बाद यही तय किया कि अरब के क़बीलों से कहा जाए कि "यह आदमी जादूगर है, इसके जादू का असर यह होता है कि बेटा बाप से, भाई भाई से, बीवी शौहर से और आदमी अपने सारे ख़ानदान से कट जाता है। (इब्ने-हिशाम, पेज-289)

61. यानी बात वह नहीं है जो तुमने समझ रखी है, अस्ल मामला जिसे अब तक तुम नहीं समझे हो यह है कि मेरे आने से तुम्हारा इम्तिहान शुरू हो गया है। जब तक मैं न आया था, तुम अपनी जहालत में एक डगर पर चले जा रहे थे। हक़ (सत्य) और बातिल (असत्य) का कोई खुला फ़र्क़ सामने न था। खरे और खोटे की परख की कोई कसौटी न थी। बुरे-से-बुरे लोग ऊँचे हो रहे थे और अच्छी-से-अच्छी सलाहियतों के लोग मिट्टी में मिले जा रहे थे। मगर अब एक कसौटी आ गई है जिसपर तुम सब जाँचे और परखे जाओगे। अब बीच मैदान में एक तराज़ू रख दिया गया है जो हर एक को उसके वज़न के लिहाज़ से तौलेगा। अब हक़ और बातिल आमने-सामने मौजूद हैं। जो हक़ को क़बूल करेगा वह भारी उतरेगा चाहे आज तक उसकी कौड़ी-भर भी क़ीमत न रही हो और जो बातिल पर जमेगा उसका वज़न रत्ती-भर भी न रहेगा चाहे वह आज तक अमीरों-का-अमीर ही बना रहा हो। अब फ़ैसला इसपर नहीं होगा कि कौन किस ख़ानदान का है और किसके पास कितने सरो-सामान हैं और कौन कितना ज़ोर रखता है, बल्कि इसपर होगा कि कौन सीधी तरह सच्चाई को क़बूल करता है और कौन झूठ के साथ अपनी क़िस्मत जोड़ देता है।

62. यानी क़बीलों के नौ सरदार जिनमें से हर एक अपने साथ एक बड़ा जत्था रखता था।

لِوَلِيِّهٖ مَا شَهِدْنَا مَهْلِكَ اَهْلِهٖ وَاِنَّا لَصٰدِقُوْنَ ﴿٤٩﴾ وَمَكَرُوْا
مَكْرًا وَّمَكَرْنَا مَكْرًا وَّهُمْ لَا يَشْعُرُوْنَ ﴿٥٠﴾ فَانْظُرْ كَيْفَ
كَانَ عَاقِبَةُ مَكْرِهِمْ ۙ اَنَّا دَمَّرْنٰهُمْ وَقَوْمَهُمْ اَجْمَعِيْنَ ﴿٥١﴾
فَتِلْكَ بُيُوْتُهُمْ خَاوِيَةًۢ بِمَا ظَلَمُوْا ۭ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيَةً

(सरपरस्त)[63] से कह देंगे कि हम उसके ख़ानदान की तबाही के मौक़े पर मौजूद न थे, हम बिलकुल सच कहते हैं।"[64] (50) यह चाल तो वे चले और फिर एक चाल हमने चली जिसकी उन्हें ख़बर न थी।[65] (51) अब देख लो कि उनकी चाल का अंजाम क्या हुआ। हमने तबाह करके रख दिया उनको और उनकी पूरी क़ौम को। (52) वे उनके घर ख़ाली पड़े हैं उस ज़ुल्म के बदले में जो वे करते थे, उसमें इबरत की एक निशानी है उन

63. यानी हज़रत सॉलेह (अलैहि॰) के क़बीले के सरदार से, जिसको पुराने क़बाइली रस्मो-रिवाज के मुताबिक़ उनके ख़ून के दावे का हक़ पहुँचता था। यह वही पोज़ीशन थी जो नबी (सल्ल॰) के ज़माने में आप (सल्ल॰) के चचा अबू-तालिब को हासिल थी। क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मन भी इसी अन्देशे से हाथ रोकते थे कि अगर वे नबी (सल्ल॰) को क़त्ल कर देंगे तो बनी-हाशिम के सरदार अबू-तालिब अपने क़बीले की तरफ़ से ख़ून का दावा लेकर उठेंगे।

64. यह बिलकुल उसी तरह की साज़िश थी जैसी मक्का के क़बाइली सरदार नबी (सल्ल॰) के ख़िलाफ़ सोचते रहते थे और आख़िरकार यही साज़िश उन्होंने हिजरत के मौक़े पर नबी (सल्ल॰) को क़त्ल करने के लिए की। यानी यह कि सब क़बीलों के लोग मिलकर आप (सल्ल॰) पर हमला करें ताकि बनी-हाशिम किसी एक क़बीले को मुलज़िम न ठहरा सकें और सब क़बीलों से एक ही वक़्त में लड़ना उनके लिए मुमकिन न हो।

65. यानी इससे पहले कि वे अपने तयशुदा वक़्त पर हज़रत सॉलेह (अलैहि॰) के यहाँ धावा बोलते, अल्लाह तआला ने अपना अज़ाब भेज दिया और न सिर्फ़ वह बल्कि उनकी पूरी क़ौम तबाह हो गई। मालूम ऐसा होता है कि यह साज़िश उन लोगों ने ऊँटनी की कूचें काटने के बाद की थी। सूरा-11 हूद में बताया गया है कि जब उन्होंने ऊँटनी को मार डाला तो हज़रत सॉलेह (अलैहि॰) ने उन्हें नोटिस दिया कि बस अब तीन दिन मज़े कर लो, उसके बाद तुमपर अज़ाब आ जाएगा। इसपर शायद उन्होंने सोचा होगा कि अज़ाब जिसका वादा सॉलेह (अलैहि॰) कर रहा है, वह आए चाहे न आए, हम लगे हाथों ऊँटनी के साथ उसका भी क्यों न काम तमाम कर दें। चुनाँचे ज़्यादा इमकान यह है कि उन्होंने हमला करने के लिए वही रात चुनी होगी जिस रात अज़ाब आना था और इससे पहले कि उनका हाथ हज़रत सॉलेह (अलैहि॰) पर पड़ता, ख़ुदा का ज़बरदस्त हाथ उनपर पड़ गया।

لِّقَوْمٍ يَّعْلَمُوْنَ۝ وَاَنْجَيْنَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَكَانُوْا يَتَّقُوْنَ۝ وَلُوْطًا
اِذْ قَالَ لِقَوْمِهٖٓ اَتَاْتُوْنَ الْفَاحِشَةَ وَاَنْتُمْ تُبْصِرُوْنَ۝ اَئِنَّكُمْ

लोगों के लिए जो इल्म रखते हैं।[66] (53) और बचा लिया हमने उन लोगों को जो ईमान लाए थे और नाफ़रमानी से बचते थे।

(54) और लूत[67] को हमने भेजा। याद करो वह वक़्त जब उसने अपनी क़ौम से कहा, "क्या तुम आँखों देखते बदकारी करते हो?[68] (55) क्या तुम्हारा यही चलन है कि

66. यानी जाहिलों का मामला तो दूसरा है। वे तो कहेंगे कि हज़रत सॉलेह (अलैहि॰) और उनकी ऊँटनी के मामले से उस ज़लज़ले का कोई ताल्लुक़ नहीं है जो समूद की क़ौम पर आया, ये चीज़ें तो अपनी क़ुदरती वजहों से आया करती हैं। इनके आने या न आने में इस चीज़ का कोई दख़ल नहीं हो सकता कि कौन इस इलाक़े में नेक और भला आदमी था और कौन बुरे काम करनेवाला और किसने किसपर ज़ुल्म किया था और किसने रहम खाया था। ये सिर्फ़ नसीहत के अन्दाज़ के ढकोसले हैं कि फ़ुलाँ शहर या फ़ुलाँ इलाक़ा फ़िस्क़ और फ़ुजूर (बुराई और गुनाह) से भर गया था, इसलिए उसपर सैलाब आ गया या ज़लज़ले ने उसकी बस्तियाँ उलट दीं या किसी और अचानक आ जानेवाली आफ़त ने उसे तलपट कर डाला। लेकिन जो लोग इल्म (ज्ञान) रखते हैं वे जानते हैं कि कोई अंधा-बहरा ख़ुदा इस कायनात पर हुकूमत नहीं कर रहा है, बल्कि एक हिकमतवाली और सबकुछ जाननेवाली हस्ती यहाँ क़िस्मतों के फ़ैसले कर रही है। उसके फ़ैसले क़ुदरती उसूलों के ग़ुलाम नहीं हैं, बल्कि क़ुदरती असबाब उसके इरादे के ग़ुलाम हैं। उसके यहाँ क़ौमों को गिराने और उठाने के फ़ैसले अंधाधुंध नहीं किए जाते, बल्कि हिकमत (गहरी सूझबूझ) और इनसाफ़ के साथ किए जाते हैं और कामों का बदला दिए जाने का क़ानून भी उसके दस्तूर की किताब में शामिल है जिसके मुताबिक़ अख़लाक़ी बुनियादों पर इस दुनिया में भी ज़ालिम अपने कामों के बुरे अंजाम को पहुँचाए जाते हैं। इन हक़ीक़तों को जो लोग जानते हैं, वे उस ज़लज़ले को क़ुदरती असबाब का नतीजा कहकर नहीं टाल सकते। वे उसे अपने हक़ में चेतावनी का कोड़ा समझेंगे। वे इससे सबक़ हासिल करेंगे। वे उन अख़लाक़ी असबाब को समझने की कोशिश करेंगे जिनकी बुनियाद पर पैदा करनेवाले ने अपनी पैदा की हुई एक फलती-फूलती क़ौम को तबाह करके रख दिया। वे अपने रवैये को उस राह से हटाएँगे जो उसका ग़ज़ब लानेवाली है और उस राह पर डालेंगे जो उसकी रहमत से मिलानेवाली है।

67. यह क़िस्सा क़ुरआन में कुछ फ़र्क़ के साथ कई जगहों पर आया है। देखिए— सूरा-7 आराफ़, आयतें—80-84; सूरा-11 हूद, आयतें—74-83; सूरा-15 हिज्र, आयतें—57-77; सूरा-21 अम्बिया, आयतें—71-75; सूरा-26 शुअरा, आयतें—160-174; सूरा-29 अनकबूत, आयतें—38-75; सूरा-37 साफ़्फ़ात, आयतें—133-138; सूरा-54 क़मर, आयतें—33-39।

68. इस बात के कई मतलब हो सकते हैं और शायद वे सभी मुराद हैं। एक यह कि तुम इस काम के फ़ुह्श (अश्लील) और बुरे होने से अनजान नहीं हो, बल्कि जानते-बूझते यह हरकत करते

لَتَأْتُوْنَ الرِّجَالَ شَهْوَةً مِّنْ دُوْنِ النِّسَآءِ ۭ بَلْ اَنْتُمْ قَوْمٌ
تَجْهَلُوْنَ ﴿55﴾ فَمَا كَانَ جَوَابَ قَوْمِهٖٓ اِلَّآ اَنْ قَالُوْٓا اَخْرِجُوْٓا اٰلَ لُوْطٍ
مِّنْ قَرْيَتِكُمْ ۚ اِنَّهُمْ اُنَاسٌ يَّتَطَهَّرُوْنَ ﴿56﴾ فَاَنْجَيْنٰهُ وَاَهْلَهٗٓ اِلَّا
امْرَاَتَهٗ ۡ قَدَّرْنٰهَا مِنَ الْغٰبِرِيْنَ ﴿57﴾ وَاَمْطَرْنَا عَلَيْهِمْ مَّطَرًا ۚ فَسَآءَ

औरतों को छोड़कर मर्दों के पास शहवतरानी (यौन-इच्छा पूरी करने) के लिए जाते हो? हक़ीक़त यह है कि तुम लोग सख़्त जहालत का काम करते हो।"[69] (56) मगर उसकी क़ौम का जवाब इसके सिवा कुछ न था कि उन्होंने कहा, "निकाल दो लूत के घरवालों को अपनी बस्ती से, ये बड़े पाकबाज़ बनते हैं।" (57) आख़िरकार हमने बचा लिया उसको और उसके घरवालों को, सिवाय उसकी बीवी के जिसका पीछे रह जाना हमने तय कर दिया था,[70] (58) और बरसाई उन लोगों पर एक बरसात, बहुत ही बुरी बरसात थी

हो। दूसरा यह कि तुम इस बात से भी अनजान नहीं हो कि मर्द की ख़ाहिशे-नफ़्स (यौन-इच्छा) पूरी करने के लिए मर्द नहीं पैदा किया गया, बल्कि औरत पैदा की गई है और मर्द-औरत का फ़र्क़ भी ऐसा नहीं है कि तुम्हारी आँखों को नज़र न आता हो, मगर तुम खुली आँखों के साथ यह जीती मक्खी निगलते हो। तीसरा यह कि तुम खुल्लम-खुल्ला यह बेशर्मी और बेहयाई का काम करते हो जबकि देखनेवाली आँखें तुम्हें देख रही होती हैं, जैसा कि आगे सूरा-29 अन्कबूत में आ रहा है, "और तुम अपनी महफ़िलों में बुरा काम करते हो।" (आयत-29)

69. जहालत का लफ़्ज़ यहाँ बेवक़ूफ़ी और बेअक़्ली के मानी में इस्तेमाल हुआ है। उर्दू और हिन्दी ज़बान में भी हम गाली-गलौज और बेहूदा हरकतें करनेवाले को कहते हैं कि यह जहालत पर उतर आया है। इसी मानी में यह लफ़्ज़ अरबी ज़बान में भी इस्तेमाल होता है। चुनाँचे क़ुरआन मजीद में कहा गया है, "और जाहिल उनके मुँह आएँ तो कह देते हैं कि तुमको सलाम।" (सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयत-63) लेकिन अगर इस लफ़्ज़ को बेइल्मी (अज्ञानता) ही के मानी में लिया जाए तो इसका मतलब होगा कि तुम अपनी इन हरकतों के बुरे अंजाम को नहीं जानते। तुम यह तो जानते हो कि यह एक नफ़्स की लज़्ज़त (यौन-सुख) है जो तुम हासिल कर रहे हो। मगर तुम्हें यह मालूम नहीं है कि इस इन्तिहाई मुजरिमाना और घिनौनी लज़्ज़त हासिल करने का कैसा ख़मियाज़ा तुम्हें बहुत जल्द भुगतना पड़ेगा। ख़ुदा का अज़ाब तुमपर टूट पड़ने के लिए तैयार खड़ा है और तुम हो कि अंजाम से बेख़बर अपने इस गन्दे खेल में लगे हो।

70. यानी पहले ही हज़रत लूत (अलैहि॰) को हिदायत कर दी गई थी कि वे उस औरत को अपने साथ न ले जाएँ; क्योंकि उसे अपनी क़ौम के साथ तबाह होना है।

مَطَرُ الْمُنْذَرِيْنَ۝ قُلِ الْحَمْدُ لِلّٰهِ وَسَلٰمٌ عَلٰى عِبَادِهِ الَّذِيْنَ
اصْطَفٰى ۭ آٰللّٰهُ خَيْرٌ اَمَّا يُشْرِكُوْنَ۝
اَمَّنْ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ وَاَنْزَلَ لَكُمْ مِّنَ السَّمَاۗءِ مَاۗءً
فَاَنْۢبَتْنَا بِهٖ حَدَاۗىِٕقَ ذَاتَ بَهْجَةٍ ۚ مَا كَانَ لَكُمْ اَنْ تُنْۢبِتُوْا

वह उन लोगों के लिए जो ख़बरदार किए जा चुके थे।

(59) (ऐ नबी[71]) कहो, तारीफ़ है अल्लाह के लिए और सलाम उसके उन बन्दों पर जिन्हें उसने चुन लिया।

(इनसे पूछो) अल्लाह बेहतर है या वे माबूद जिन्हें वे लोग उसका साझी ठहरा रहे हैं?[72] (60) भला वह कौन है जिसने आसमानों और ज़मीन को पैदा किया और तुम्हारे लिए आसमान से पानी बरसाया फिर उसके ज़रिए से वे लुभावने बाग़ उगाए जिनके पेड़ों

71. यहाँ से दूसरी तक़रीर शुरू होती है और यह जुमला उसकी तमहीद (भूमिका) है। इस तमहीद से यह सबक़ सिखाया गया है कि मुसलमानों को अपनी तक़रीर की शुरुआत किस तरह करनी चाहिए। इसी वजह से सही इस्लामी ज़ेहनियत रखनेवाले लोग हमेशा से अपनी तक़रीरें अल्लाह की हम्द (तारीफ़) और उसके नेक बन्दों पर सलाम से शुरू करते रहे हैं। मगर अब इसे 'मुल्लाइयत' समझा जाने लगा है और मौजूदा ज़माने के मुसलमान तक़रीर करनेवाले इससे बात की शुरुआत करने का ख़याल तक अपने ज़ेहन में नहीं रखते, या फिर इसमें शर्म महसूस करते हैं।

72. बज़ाहिर यह सवाल बड़ा अजीब मालूम होता है कि अल्लाह बेहतर है या ये झूठे माबूद। हक़ीक़त के एतिबार से तो झूठे माबूदों में सिरे से किसी भलाई का सवाल ही नहीं है कि अल्लाह से उनका मुक़ाबला किया जाए। रहे मुशरिक लोग तो वे भी इस ग़लतफ़हमी में पड़े हुए न थे कि अल्लाह का और उन माबूदों का कोई मुक़ाबला है। लेकिन यह सवाल उनके सामने इसलिए रखा गया कि वे अपनी ग़लती पर ख़बरदार हों। ज़ाहिर है कि कोई आदमी दुनिया में कोई काम भी उस वक़्त तक नहीं करता जब तक वह अपने नज़दीक उसमें किसी भलाई या फ़ायदे का ख़याल न रखता हो। अब अगर ये मुशरिक लोग अल्लाह की इबादत के बजाय उन माबूदों की इबादत करते थे और अल्लाह को छोड़कर उनसे अपनी ज़रूरतें तलब करते और उनके आगे भेंटें चढ़ाते थे, तो यह इसके बिना बिलकुल बेमतलब था कि उन माबूदों में कोई भलाई हो। इसी वजह से उनके सामने साफ़ अलफ़ाज़ में यह सवाल रखा गया कि बताओ, अल्लाह बेहतर है या तुम्हारे ये माबूद? क्योंकि इस दोटूक सवाल का सामना करने की उनमें

شَجَرَهَا ۗ ءَ اِلٰهٌ مَّعَ اللّٰهِ ۗ بَلْ هُمْ قَوْمٌ يَّعْدِلُوْنَ ۞ اَمَّنْ جَعَلَ

का उगाना तुम्हारे बस में न था? क्या अल्लाह के साथ कोई दूसरा ख़ुदा भी (इन कामों में शरीक) है?[73] (नहीं), बल्कि यही लोग सीधे रास्ते से हटकर चले जा रहे हैं।

हिम्मत न थी। उनमें से कोई कट्टर-से-कट्टर मुशरिक भी यह कहने की जुरअत नहीं कर सकता था कि हमारे माबूद बेहतर हैं और यह मान लेने के बाद कि अल्लाह बेहतर है, उनके पूरे दीन की बुनियाद ढह जाती थी, इसलिए कि फिर यह बात सरासर ग़लत क़रार पाती थी कि बेहतर को छोड़कर बदतर को अपनाया जाए।

इस तरह क़ुरआन ने तक़रीर के पहले ही जुमले में मुख़ालिफ़त करनेवालों को बेबस कर दिया। इसके बाद अब लगातार अल्लाह तआला की क़ुदरत और तख़लीक़ (पैदाइश) के एक-एक करिश्मे की तरफ़ उँगली उठाकर पूछा जाता है कि बताओ ये काम किसके हैं? क्या अल्लाह के साथ कोई दूसरा ख़ुदा भी इन कामों में शरीक है? अगर नहीं है तो फिर ये दूसरे आख़िर क्या हैं कि इन्हें तुमने माबूद बना रखा है।

रिवायतों में आता है कि नबी (सल्ल.) जब इस आयत की तिलावत करते तो फ़ौरन जवाब में फ़रमाते, ''बलिल्लाहु ख़ैरूँ-व अबक़ा व अजल्लु व अक-रमु'' (नहीं, बल्कि अल्लाह ही बेहतर है और वही बाक़ी रहनेवाला और बुज़ुर्ग और बरतर है)।

73. मुशरिकों में से कोई भी इस सवाल का यह जवाब न दे सकता था कि ये काम अल्लाह के सिवा किसी और के हैं, या अल्लाह के साथ कोई और भी इनमें शरीक है। क़ुरआन मजीद दूसरी जगहों पर मक्का के ग़ैर-मुस्लिमों और अरब के मुशरिकों के बारे में कहता है, ''अगर तुम उनसे पूछो कि किसने आसमानों और ज़मीन को पैदा किया है तो ये ज़रूर कहेंगे कि उस ज़बरदस्त, इल्मवाले ने ही इनको पैदा किया है।'' (सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयत-9) ''और अगर उनसे पूछो कि ख़ुद उन्हें किसने पैदा किया है तो वे ज़रूर कहेंगे कि अल्लाह ने।'' (सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयत-87) ''और अगर उनसे पूछो कि किसने आसमान से पानी बरसाया और मुर्दा पड़ी हुई ज़मीन को जिला उठाया तो वे ज़रूर कहेंगे कि अल्लाह ने।'' (सूरा-29 अनकबूत, आयत-63) ''उनसे पूछो कौन तुमको आसमान और ज़मीन से रोज़ी देता है? ये सुनने और देखने की ताक़तें किसके अधिकार में हैं? कौन जानदार को बेजान में से और बेजान को जानदार में से निकालता है? कौन इस कायनात के इन्तिज़ाम को चला रहा है? वे ज़रूर कहेंगे कि अल्लाह।'' (सूरा-10 यूनुस, आयत-31)

अरब के मुशरिक ही नहीं, दुनिया भर के मुशरिक लोग आम तौर से यही मानते थे और आज भी मानते हैं कि कायनात का पैदा करनेवाला और इस पूरी दुनिया का निज़ाम चलानेवाला अल्लाह तआला ही है। इसलिए क़ुरआन मजीद के इस सवाल का यह जवाब उनमें से कोई शख़्स हठधर्मी की वजह से बहस करने के लिए भी न दे सकता था कि हमारे माबूद ख़ुदा के साथ इन कामों में शरीक हैं; क्योंकि अगर वह ऐसा कहता तो उसकी अपनी ही क़ौम के हज़ारों

اَلْاَرْضَ قَرَارًا وَّجَعَلَ خِلٰلَهَآ اَنْهٰرًا وَّجَعَلَ لَهَا رَوَاسِیَ وَجَعَلَ بَیْنَ

(61) और वह कौन है जिसने ज़मीन को ठहरने की जगह[74] बनाया और उसके अन्दर नदियाँ बहाईं और उसमें (पहाड़ों की) खूँटियाँ गाड़ दीं और पानी के दो

आदमी उसको झुठला देते और साफ़ कहते कि हमारा यह अक़ीदा नहीं है।

इस सवाल और इसके बाद के सवालों में सिर्फ़ मुशरिकों ही के शिर्क को ग़लत साबित नहीं किया गया है, बल्कि नास्तिकों की नास्तिकता को भी ग़लत साबित किया गया है। मसलन इसी पहले सवाल में पूछा गया है कि यह बारिश बरसानेवाला और उसके ज़रिए से हर तरह के पेड़-पौधे उगानेवाला कौन है? अब ग़ौर कीजिए, ज़मीन में उस माद्दे (तत्व) का ठीक सतह पर या सतह से मिला हुआ मौजूद होना जो अनगिनत तरह के पेड़-पौधों की ज़िन्दगी के लिए दरकार है और पानी के अन्दर ठीक वे ख़ूबियाँ मौजूद होना जो जानवरों की ज़िन्दगी और पेड़-पौधों की ज़िन्दगी की ज़रूरतों के मुताबिक़ हैं और उस पानी का लगातार समन्दरों से उठाया जाना और ज़मीन के अलग-अलग हिस्सों में वक़्त-वक़्त पर एक बाक़ायदगी के साथ बरसाया जाना और ज़मीन, हवा, पानी और दर्जा-ए-हरारत (तापमान) वग़ैरा अलग-अलग क़ुव्वतों के बीच ऐसा मुनासिब तालमेल क़ायम करना कि इससे पेड़-पौधों की ज़िन्दगी फले-फूले और वह हर तरह के जानवरों की ज़िन्दगी के लिए उसकी अनगिनत ज़रूरतें पूरी करे, क्या यह सबकुछ एक हिकमतवाले की मंसूबा-बन्दी और समझदारी से भरी तदबीर के बिना ख़ुद-ब-ख़ुद इत्तिफ़ाक़ से हो सकता है? और क्या यह मुमकिन है कि यह इत्तिफ़ाक़ी हादिसा लगातार हज़ारों साल, बल्कि लाखों-करोड़ों साल तक इसी बाक़ायदगी के साथ होता चला जाए? सिर्फ़ एक हठधर्म आदमी ही, जो तास्सुब में अंधा हो चुका हो, उसे एक इत्तिफ़ाक़ी बात कह सकता है। किसी सच्चाई-पसन्द अक़्लमन्द इनसान के लिए ऐसा बेमतलब दावा करना और मानना मुमकिन नहीं है।

74. ज़मीन का अपनी बेहद्दो-हिसाब तरह-तरह की आबादी के लिए रहने की जगह होना भी कोई सादा सी बात नहीं है। मिट्टी के इस गोले (धरती) को जिन हिकमत भरी मुनासिब चीज़ों के साथ क़ायम किया गया है, उनकी तफ़सीलात पर अगर आदमी ग़ौर करे तो उसकी अक़्ल दंग रह जाती है और उसे ऐसा महसूस होता है कि ये मुनासबतें (अनुकूलताएँ) एक हिकमतवाले और सबकुछ करने की क़ुदरत रखनेवाले की तदबीर के बिना क़ायम न हो सकती थीं।

यह गोला (धरती) लम्बी-चौड़ी फ़ज़ा (वायुमण्डल) में लटका हुआ है, किसी चीज़ पर टिका हुआ नहीं है। मगर इसके बावजूद न तो यह हिलता-डुलता है और न काँपता ही है। अगर यह ज़रा-सा भी हिलता-डुलता या काँपता, जिसके ख़तरनाक नतीजों का हम कभी ज़लज़ला आ जाने से आसानी से अन्दाज़ा लगा सकते हैं, तो यहाँ कोई आबादी मुमकिन न थी। धरती का यह गोला बाक़ायदगी के साथ सूरज के सामने आता और छिपता है, जिससे रात-दिन का फ़र्क़ सामने आता है। अगर उसका एक ही रुख़ हर वक़्त सूरज के सामने रहता और दूसरा रुख़ हर

वक़्त छिपा रहता तो यहाँ कोई आबादी मुमकिन न होती; क्योंकि एक रुख़ को सर्दी और अंधेरा पेड़-पौधों और जानदारों की पैदाइश के क़ाबिल न रखता और दूसरे रुख़ को गर्मी की शिद्दत बिना पानी और हरियाली के बंजर बना देती। इस धरती पर पाँच सौ मील की बुलन्दी तक हवा की एक मोटी परत चढ़ा दी गई है जो शिहाबों (उल्का-पिण्डों) की भयानक बमबारी से उसे बचाए हुए है। वरना हर दिन दो करोड़ शिहाब, जो 30 मील फ़ी सेकण्ड की गति से ज़मीन की तरफ़ गिरते हैं, यहाँ वह तबाही मचाते कि कोई इनसान, जानवर या पेड़ जीता न रह सकता था। यही हवा दर्जा-ए-हरारत (तापमान) को क़ाबू में रखती है, यही समन्दरों से बादल उठाती और ज़मीन के अलग-अलग हिस्सों तक पानी पहुँचाने का काम करती है और यही इनसान और जानवरों और पेड़-पौधों की ज़िन्दगी को दरकार गैसें जुटाती है। यह न होती तब भी ज़मीन किसी आबादी के लिए रहने की जगह न बन सकती।

अब इस बात पर ग़ौर करें कि इस गोले (धरती) की सतह से बिलकुल मिले हुए वे मादनियात (खनिज पदार्थ) और तरह-तरह के कीमियावी अजज़ा (रासायनिक तत्व) बड़े पैमाने पर जुटा दिए गए हैं जो पेड़-पौधों की, जानवरों की और इनसान की ज़िन्दगी के लिए दरकार हैं। जिस जगह भी यह सरो-सामान नहीं होता, वहाँ की ज़मीन किसी ज़िन्दगी को सहारा देने के लायक़ नहीं होती। धरती के इस गोले पर समन्दरों, नदियों, झीलों और ज़मीन के नीचे सोतों की शक्ल में पानी का बड़ा अज़ीमुश्शान ज़ख़ीरा (भण्डार) रख दिया गया है और पहाड़ों पर भी उसके बड़े-बड़े ज़ख़ीरों को जमा देने और फिर पिघलाकर बहाने का इन्तिज़ाम किया गया है। इस तदबीर (उपाय) के बिना यहाँ किसी ज़िन्दगी का इमकान न था। फिर इस पानी, हवा और तमाम उन चीज़ों को जो ज़मीन पर पाई जाती हैं, समेटे रखने के लिए इस धरती के गोले में बहुत ही मुनासिब कशिश (खिंचाव) रख दी गई है। यह कशिश अगर कम होती तो हवा और पानी, दोनों को न रोक सकती और तापमान इतना ज़्यादा होता कि ज़िन्दगी यहाँ दुश्वार हो जाती। यह कशिश अगर ज़्यादा होती तो हवा बहुत भारी हो जाती, उसका दबाव बढ़ जाता पानी का भाप बनकर उठना मुश्किल हो जाता और बारिशें न हो सकतीं, सर्दी ज़्यादा होती, ज़मीन के बहुत कम इलाक़े आबादी के क़ाबिल होते, बल्कि कशिशे-सक़्ल (गुरुत्वाकर्षण) बहुत ज़्यादा होने की हालत में इनसानों और जानवरों की जसामत (आकार) बहुत छोटी होती और उनका वज़न इतना ज़्यादा होता कि चलना-फिरना भी उनके लिए मुश्किल होता। इसके अलावा, धरती के इस गोले को सूरज से एक ख़ास दूरी पर रखा गया है जो आबादी के लिए सबसे ज़्यादा मुनासिब जगह है। अगर इसका फ़ासला ज़्यादा होता तो सूरज से इसको गर्मी कम मिलती, सर्दी बहुत ज़्यादा होती, मौसम बहुत लम्बे होते और मुश्किल ही से यह आबादी के क़ाबिल होता और अगर फ़ासला कम होता तो इसके बरख़िलाफ़ गर्मी की ज़्यादती और दूसरी बहुत-सी चीज़ें मिल-जुलकर इसे इनसान जैसे जानदार के रहने के क़ाबिल न रहने देतीं।

यह सिर्फ़ कुछ वे मुनासबतें (अनुकूलताएँ) हैं जिनकी बदौलत ज़मीन अपनी मौजूदा आबादी के लिए रहने का ठिकाना बनी है। कोई शख़्स अक़्ल रखता हो और इन बातों को निगाह में रखकर सोचे तो वह एक पल के लिए भी न यह सोच सकता है कि किसी ख़ालिक़े-हकीम (तत्त्वदर्शी-स्रष्टा) की स्कीम के बिना यह मुनासबतें (अनुकूलताएँ) सिर्फ़ एक हादिसे (घटना) के

الْبَحْرَيْنِ حَاجِزًا ءَاِلٰهٌ مَّعَ اللّٰهِ بَلْ اَكْثَرُهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ ﴿٦١﴾
اَمَّنْ يُّجِيْبُ الْمُضْطَرَّ اِذَا دَعَاهُ وَيَكْشِفُ السُّوْٓءَ وَيَجْعَلُكُمْ
خُلَفَآءَ الْاَرْضِ ءَاِلٰهٌ مَّعَ اللّٰهِ قَلِيْلًا مَّا تَذَكَّرُوْنَ ﴿٦٢﴾

ज़ख़ीरों (भण्डारों) के बीच परदे डाल दिए?[75] क्या अल्लाह के साथ कोई और ख़ुदा भी (इन कामों में शरीक) है? नहीं, बल्कि उनमें से अकसर लोग नादान हैं।

(62) कौन है जो बेक़रार की दुआ सुनता है जबकि वह उसे पुकारे और कौन उसकी तकलीफ़ दूर करता है?[76] और (कौन है जो) तुम्हें ज़मीन का ख़लीफ़ा बनाता है?[77] क्या अल्लाह के साथ कोई और ख़ुदा भी (यह काम करनेवाला) है? तुम लोग कम ही सोचते हो।

नतीजे में ख़ुद-ब-ख़ुद क़ायम हो गई हैं और न यह गुमान कर सकता है कि इस अज़ीमुश्शान तख़लीक़ी मंसूबे (पैदाइश से मुताल्लिक़ स्कीम) को बनाने और अमल में लाने में किसी देवी-देवता, या जिन्न, या नबी और वली, या फ़रिश्ते का कोई दख़ल है।

75. यानी मीठे और खारे पानी के भण्डार, जो इसी ज़मीन पर मौजूद हैं, मगर आपस में गड्ड-मड्ड नहीं होते। ज़मीन के नीचे के पानी के सोत कई बार एक ही इलाक़े में खारा पानी अलग और मीठा पानी अलग लेकर चलते हैं। खारे पानी के समन्दर तक में कुछ जगहों पर मीठे पानी के चश्मे जारी होते हैं और उनकी धारा समन्दर के पानी से इस तरह अलग होती है कि समन्दरी मुसाफ़िर उसमें से पीने के लिए पानी हासिल कर सकते हैं। (तफ़सीली बहस के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-25 फ़ुरक़ान, हाशिया-68)

76. अरब के मुशरिक लोग ख़ुद इस बात को जानते और मानते थे कि मुसीबत को टालनेवाला हक़ीक़त में अल्लाह ही है। चुनाँचे क़ुरआन मजीद जगह-जगह उन्हें याद दिलाता है कि जब तुमपर कोई सख़्त वक़्त आता है तो तुम ख़ुदा ही से फ़रियाद करते हो, मगर जब वह वक़्त टल जाता है तो ख़ुदा के साथ दूसरों को शरीक करने लगते हो। (तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, हाशिए-29, 41; सूरा-10 यूनुस, आयतें—21, 22, हाशिया-31; सूरा-16 नहल, हाशिया-46; सूरा-17 बनी-इसराईल, हाशिया-84) और यह बात अरब के मुशरिकों तक ही महदूद नहीं है। दुनिया भर के मुशरिकों का आम तौर से यही हाल है। यहाँ तक कि रूस के वे लोग जो सिरे से ख़ुदा ही को नहीं मानते और जिन्होंने ख़ुदापरस्ती के ख़िलाफ़ एक बाक़ायदा मुहिम चला रखी है, उनपर भी जब पिछली जंगे-अज़ीम (विश्वयुद्ध) में जर्मनी की फ़ौजों का घेरा सख़्त हो गया तो उन्हें ख़ुदा को पुकारने की ज़रूरत महसूस हो गई थी।

77. इसके दो मतलब हैं। एक यह कि एक नस्ल के बाद दूसरी नस्ल और एक क़ौम के बाद दूसरी क़ौम उठाता है। दूसरा यह कि तुमको ज़मीन में इस्तेमाल और हुकूमत के अधिकार देता है।

اَمَّنْ يَّهْدِيْكُمْ فِيْ ظُلُمٰتِ الْبَرِّ وَالْبَحْرِ وَمَنْ يُّرْسِلُ
الرِّيٰحَ بُشْرًا بَيْنَ يَدَيْ رَحْمَتِهٖ ؕ ءَ اِلٰهٌ مَّعَ اللّٰهِ ؕ تَعٰلَى
اللّٰهُ عَمَّا يُشْرِكُوْنَ ﴿٦٣﴾ اَمَّنْ يَّبْدَؤُا الْخَلْقَ ثُمَّ يُعِيْدُهٗ

(63) और वह कौन है जो ख़ुश्की (थल) और समन्दर के अंधियारों में तुमको रास्ता दिखाता है[78] और कौन अपनी रहमत के आगे हवाओं को ख़ुशख़बरी लेकर भेजता है?[79] क्या अल्लाह के साथ कोई दूसरा ख़ुदा भी (यह काम करता) है? बहुत बुलन्द और बरतर (श्रेष्ठ) है अल्लाह उस शिर्क से जो ये लोग करते हैं।

(64) और वह कौन है जो पैदाइश की शुरुआत करता है और फिर उसे दोहराता है?[80]

78. यानी जिसने सितारों के ज़रिए से ऐसा इन्तिज़ाम कर दिया है कि तुम रात के अंधेरे में भी अपना रास्ता तलाश कर सकते हो। यह भी अल्लाह तआला की हिकमत भरी तदबीरों में से एक है कि उसने समन्दरी और ज़मीनी सफ़रों में इनसान की रहनुमाई के लिए वे ज़रिए पैदा कर दिए हैं जिनसे वह अपने सफ़र की सम्त (दिशा) और मंज़िल की तरफ़ अपनी राह तय करता है। दिन के वक़्त ज़मीन की अलग-अलग निशानियाँ और सूरज के निकलने और डूबने की सम्तें (दिशाएँ) उसकी मदद करती हैं और अंधेरी रातों में तारे उसको रास्ता दिखाते हैं। सूरा-16 नह्ल में इन सबको अल्लाह के एहसानों में गिना गया है, "उसने (ज़मीन में रास्ता बतानेवाली) निशानियाँ रख दीं और तारों से भी लोग रास्ता पाते हैं।" (आयत-16)

79. रहमत से मुराद है बारिश जिसके आने से पहले हवाएँ उसके आने की ख़बर दे देती हैं।

80. यह सादा-सी बात जिसको एक जुमले में बयान कर दिया गया है अपने अन्दर ऐसी तफ़सीलात रखती है कि आदमी उनकी गहराई में जितनी दूर तक उतरता जाता है उतने ही अल्लाह के वुजूद और उसके एक होने के सुबूत मिलते चले जाते हैं। पहले तो ख़ुद पैदाइश के अमल ही को देखिए। इनसान का इल्म आज तक यह राज़ नहीं पा सका है कि ज़िन्दगी कैसे और कहाँ से आती है। इस वक़्त तक तसलीमशुदा (मान्य) साइंटिफ़िक सच्चाई यही है कि बेजान माद्दे (तत्त्व) की सिर्फ़ तरतीब (संयोजन) से अपने आप जान पैदा नहीं हो सकती। ज़िन्दगी की पैदाइश के लिए जितनी चीज़ें दरकार हैं, उन सबका ठीक तनासुब (अनुपात) के साथ बिलकुल इत्तिफ़ाक़ से इकट्ठा होकर ज़िन्दगी का आप-से-आप वुजूद में आ जाना ख़ुदा को न माननेवालों का एक ग़ैर-इल्मी (ज्ञान के बिना) गढ़ा हुआ ख़याल तो ज़रूर है, लेकिन अगर 'इमकान के क़ानून' (Law of Probability) को इसपर चस्पाँ किया जाए तो उसके होने का इमकान सिफ़र (शून्य) से ज़्यादा नहीं निकलता। अब तक तजरिबी तरीक़े पर साइंस की लेबोरटीज़ (प्रयोगशालाओं) में बेजान माद्दे से जानदार माद्दा पैदा करने की जितनी भी कोशिशें की गई हैं,

तमाम मुमकिन तदबीरें इस्तेमाल करने के बावजूद वे सब पूरी तरह नाकाम हो चुकी हैं। ज़्यादा-से-ज़्यादा जो चीज़ पैदा की जा सकी है वह सिर्फ़ वह माद्दा है जिसे डी.एन.ए. (D.N.A.) कहा जाता है। यह वह माद्दा है जो ज़िन्दा ख़लियों (कोशिकाओं) में पाया जाता है। यह ज़िन्दगी का सत (जौहर) तो ज़रूर है मगर ख़ुद जानदार नहीं है। ज़िन्दगी अब भी अपने आपमें एक मोजिज़ा (चमत्कार) ही है जिसकी कोई इल्मी (Scientific) वजह इसके सिवा नहीं बयान की जा सकी है कि यह एक पैदा करनेवाले के हुक्म और इरादे और मंसूबे का नतीजा है।

इसके बाद आगे देखिए। ज़िन्दगी सिर्फ़ एक तन्हा शक्ल में नहीं, बल्कि अनगिनत शक्लों में पाई जाती है। इस वक़्त ज़मीन पर जानवरों की लगभग दस लाख और पेड़-पौधों की लगभग दो लाख क़िस्मों का पता चला है। यह लाखों क़िस्में अपनी बनावट और जातीय ख़ुसूसियतों में एक-दूसरे से ऐसा साफ़ फ़र्क़ रखती हैं और बहुत पुराने ज़माने से अपनी-अपनी क़िस्मों को इस तरह लगातार बनाए रखती चली आ रही हैं कि एक ख़ुदा के तख़लीक़ी मंसूबे (रचनात्मक योजना Design) के सिवा ज़िन्दगी की इस बड़ी रंगा-रंगी की कोई और सही वजह बयान कर देना किसी डॉर्विन के बस की बात नहीं है। आज तक कहीं भी दो क़िस्मों के बीच की कोई एक कड़ी भी नहीं मिल सकी है जो एक क़िस्म की बनावट और ख़ासियतों का ढाँचा तोड़कर निकल आई हो और अभी दूसरी क़िस्म की बनावट और ख़ासियतों तक पहुँचने के लिए हाथ-पाँव मार रही हो। मुतहज्जिरात (जीवाश्म, Fossils) का पूरा रिकार्ड इसकी मिसाल से ख़ाली है और मौजूदा जानवरों में भी यह अधूरा रूप कहीं नहीं मिला है। आज तक किसी जाति की जो इकाई भी मिली है, अपनी क़िस्म के पूरे रूप के साथ ही मिली है और हर वह कहानी जो किसी खोई हुई कड़ी के मिल जाने की वक़्त-वक़्त पर सुना दी जाती है, थोड़ी मुद्दत बाद सच्चाई उसकी सारी हवा निकाल देती है। इस वक़्त तक यह हक़ीक़त अपनी जगह बिलकुल अटल है कि एक हिकमतवाले कारीगर, एक पैदाइश की शुरुआत करने और शक्ल देनेवाले ही ने ज़िन्दगी को ये लाखों रंगा-रंग सूरतें दी हैं।

यह तो है पैदाइश की शुरुआत का मामला। अब ज़रा दोबारा पैदा किए जाने पर ग़ौर कीजिए। पैदा करनेवाले ने हर जानवर और पेड़-पौधे की बनावट और तरकीब में वह हैरत-अंगेज़ निज़ामुल-अमल (Maechanism) रख दिया है जो उसकी अनगिनत इकाइयों में से बेहद्दो-हिसाब नस्ल ठीक उसी की क़िस्म की शक्लों, मिज़ाज और ख़ासियतों के साथ निकलता चला जाता है और कभी भूले से भी उन करोड़ों छोटे-छोटे कारख़ानों में यह भूल-चूक नहीं होती कि एक जाति की नस्ल का बनानेवाला कोई कारख़ाना किसी दूसरी जाति का एक नमूना निकालकर फेंक दे। पैदाइश और नस्ल के बारे में जो इल्म आज मौजूद है उसके तजरिबे इस मामले में हैरत-अंगेज़ सच्चाइयाँ पेश करते हैं। हर पौधे में यह सलाहियत (क्षमता) रखी गई है कि अपनी जाति का सिलसिला आगे की नस्लों तक जारी रखने का ऐसा पूरा इन्तिज़ाम करे जिससे आनेवाली नस्ल में उस जाति की तमाम ख़ासियतें पाई जाएँ और उसकी हर इकाई दूसरी तमाम जातियों की इकाइयों से अपनी जातीय शक्ल में अलग हो। जाति और नस्ल के बाक़ी रखने का यह सामान हर पौधे की एक कोशिका (Cell) के एक हिस्से में होता है जिसे बड़ी

وَمَنْ يَّرْزُقُكُمْ مِّنَ السَّمَآءِ وَالْاَرْضِ ؕ ءَاِلٰهٌ مَّعَ اللّٰهِ ؕ قُلْ هَاتُوْا

और कौन तुमको आसमान और ज़मीन से रोज़ी देता है?[81] क्या अल्लाह के साथ कोई और ख़ुदा भी (इन कामों में हिस्सेदार) है? कहो कि लाओ अपनी दलील अगर

मुश्किल से इन्तिहाई ताक़तवर दूरबीन (सूक्ष्मदर्शी यंत्र) से देखा जा सकता है। यह छोटा-सा इंजीनियर बिना किसी कमी के पौधे के सारे नशो-नमा को पूरी तरह उसी रास्ते पर डालता है जो उसकी अपनी जातीय सूरत का रास्ता है। इसी की बदौलत गेहूँ के एक दाने से आज तक जितने पौधे भी दुनिया में कहीं पैदा हुए हैं उन्होंने गेहूँ ही पैदा किया है, किसी आबो-हवा (जलवायु) और किसी माहौल में यह हादिसा कभी सामने नहीं आया कि गेहूँ के दाने की नस्ल से कोई एक ही दाना जौ का पैदा हो जाता। ऐसा ही मामला जानवरों और इनसानों का भी है कि उनमें से किसी की पैदाइश बस एक ही बार होकर नहीं रह गई है, बल्कि इतने बड़े पैमाने पर, जिसके बारे में सोचा भी नहीं जा सकता, हर तरफ़ बार-बार पैदा करने का एक बड़ा कारख़ाना चल रहा है जो हर क़िस्म की इकाइयों से लगातार उसी क़िस्म की बेशुमार इकाइयाँ वुजूद में लाता चला जा रहा है। अगर कोई शख़्स दूरबीन (सूक्ष्मदर्शी यंत्र) से दिखाई देनेवाले नस्ल के उस बीज को देखे जो तमाम जातीय ख़ासियतों और विरासती ख़ासियतों को अपने ज़रा-से वुजूद के भी सिर्फ़ एक हिस्से में लिए हुए होता है और फिर उस बेहद नाज़ुक और पेचीदा निज़ाम को देखे जो अंगों से ताल्लुक़ रखता है और बेहद लतीफ़ (सूक्ष्म) और पुरपेच अमलियात (जटिल प्रक्रियाओं, Progresses) को देखे जिनकी मदद से हर जाति की हर इकाई का नस्ल पैदा करनेवाला बीज उसी जाति की इकाई वुजूद में लाता है, तो वह एक पल के लिए भी यह सोच नहीं सकता कि ऐसा नाज़ुक और पेचीदा निज़ामुल-अमल कभी ख़ुद-ब-ख़ुद बन सकता है और फिर तरह-तरह के अरबों-खरबों लोगों में आप-से-आप ठीक चलता भी रह सकता है। यह चीज़ न सिर्फ़ अपनी इब्तिदा के लिए एक हिकमतवाला कारीगर चाहती है, बल्कि हर पल अपने दुरुस्त तरीक़े पर चलते रहने के लिए भी एक इन्तिज़ाम और तदबीर करनेवाले और एक हमेशा ज़िन्दा और क़ायम रहनेवाले की तलबगार है जो एक पल के लिए भी इन कारख़ानों की निगरानी और रहनुमाई से लापरवाह न हो।

ये सच्चाइयाँ एक नास्तिक के ख़ुदा के इनकार की भी इसी तरह जड़ काट देती हैं जिस तरह एक मुशरिक के शिर्क की। कौन बेवक़ूफ़ यह गुमान कर सकता है कि ख़ुदाई के इस काम में कोई फ़रिश्ता या जिन्न या नबी या वली ज़र्रा बराबर भी कोई हिस्सा रखता है और कौन अक़्लमन्द आदमी तास्सुब (पक्षपात) से पाक होकर यह कह सकता है कि बार-बार पैदाइश के अमल को दोहरानेवाला यह कारख़ाना इस पूरी हिकमत और नज़्म (अनुशासन) के साथ इत्तिफ़ाक़ से शुरू हुआ और आप-से-आप चले जा रहा है।

81. रोज़ी देने का मामला भी उतना सादा नहीं है जितना सरसरी तौर पर इन थोड़े से-अलफ़ाज़ को पढ़कर कोई शख़्स महसूस करता है। इस ज़मीन पर लाखों तरह के जानदार और लाखों तरह ही के पेड़-पौधे पाए जाते हैं जिनमें से हर एक की अरबों की तादाद मौजूद है और हर एक की

بُرْهَانَكُمْ إِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ﴿٦٤﴾ قُلْ لَّا يَعْلَمُ مَنْ
فِي السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ الْغَيْبَ إِلَّا اللّٰهُ ۚ وَمَا يَشْعُرُوْنَ

तुम सच्चे हो।[82]

(65) इनसे कहो : अल्लाह के सिवा आसमानों और ज़मीन में कोई ग़ैब (परोक्ष) का इल्म नहीं रखता।[83] और वे (तुम्हारे माबूद तो यह भी) नहीं जानते कि कब वे

खाने-पीने की ज़रूरतें अलग-अलग हैं। पैदा करनेवाले ने उनमें से हर जाति के खाने-पीने का सामान इतनी ज़्यादा मिक़दार में और हर एक की पहुँच के इतने ज़्यादा क़रीब जुटा दिया है कि किसी जाति के लोग यहाँ खाना पाने से महरूम (वंचित) नहीं रह जाते। फिर इस इन्तिज़ाम में ज़मीन और आसमान की इतनी अलग-अलग ताक़तें मिल-जुलकर काम करती हैं कि जिनकी गिनती करना मुश्किल है। गर्मी, रौशनी, हवा, पानी और ज़मीन के तरह-तरह के माद्दों (पदार्थों) के बीच अगर ठीक तनासुब (अनुपात) के साथ तालमेल न हो तो खाने का एक ज़र्रा भी वुजूद में नहीं आ सकता।

कौन शख़्स सोच सकता है कि यह हिकमत भरा इन्तिज़ाम एक गहरी सूझ-बूझ रखनेवाले की तदबीर और सोचे-समझे मंसूबे के बिना यूँ ही इत्तिफ़ाक़ से हो सकता था? और कौन अपने होश-हवास में रहते हुए यह सोच सकता है कि इस इन्तिज़ाम में किसी जिन्न या फ़रिश्ते या किसी बुज़ुर्ग की रूह का कोई दख़ल है?

82. यानी या तो इस बात पर दलील लाओ कि इन कामों में सचमुच कोई और भी शरीक है, या नहीं तो फिर किसी सही दलील से यही बात समझा दो कि ये सारे काम तो हों सिर्फ़ एक अल्लाह के मगर बन्दगी व इबादत का हक़ पहुँचे उसके सिवा किसी और को, या उसके साथ किसी और को भी।

83. ऊपर पैदा करने, इन्तिज़ाम करने और रोज़ी देने के एतिबार से अल्लाह तआला के अकेला माबूद (यानी अकेले ख़ुदा और अकेले इबादत का हक़दार) होने पर दलील दी गई थी। अब ख़ुदाई की एक और अहम सिफ़त, यानी इल्म के लिहाज़ से बताया जा रहा है कि इसमें भी अल्लाह तआला का कोई शरीक नहीं है। आसमान और ज़मीन में जो भी जानदार हैं, चाहे फ़रिश्ते हों या जिन्न या पैग़म्बर और नेक बुज़ुर्ग या दूसरे इनसान या इनसान के अलावा कोई और जानदार, सबका इल्म महदूद है। सबसे कुछ-न-कुछ छिपा है। सबकुछ जाननेवाला अगर कोई है तो वह सिर्फ़ अल्लाह तआला है जिससे इस कायनात की कोई चीज़ और कोई बात छिपी नहीं, जो गुज़रे हुए (भूतकाल), हाल (वर्तमान) और आइन्दा (भविष्य) सबको जानता है।

'ग़ैब' का मतलब है छिपा हुआ। इस्लामी ज़बान में इससे मुराद हर वह चीज़ है जो मालूम न हो, जिस तक जानकारी के ज़रिओं की पहुँच न हो। दुनिया में बहुत-सी चीज़ें ऐसी हैं जो अलग-अलग कुछ इनसानों की जानकारी में हैं और कुछ की जानकारी में नहीं हैं और बहुत-सी

चीज़ें ऐसी हैं जो सब-की-सब तमाम इनसानों की जानकारी में न कभी थीं, न आज हैं, न आगे कभी हो सकेंगी। ऐसा ही मामला जिन्नों और फ़रिश्तों और दूसरे जानदारों का है कि कुछ चीज़ें उनमें से किसी से छिपी और किसी को मालूम हैं और अनगिनत चीज़ें ऐसी हैं जो उन सबसे छिपी हैं और किसी को भी मालूम नहीं। ये तमाम तरह के 'ग़ैब' सिर्फ़ एक हस्ती के सामने हैं और वह अल्लाह तआला की हस्ती है। उसके लिए कोई चीज़ ग़ैब नहीं, सब सामने- ही-सामने है।

इस हक़ीक़त को बयान करने में सवाल का वह तरीक़ा नहीं अपनाया गया जो ऊपर कायनात को पैदा करने, उसका इन्तिज़ाम चलाने और रोज़ी देने के बयान में अपनाया गया है। इसकी वजह यह है कि उन सिफ़ात के आसार तो बिलकुल नुमायाँ हैं जिन्हें हर शख़्स देख रहा है और उनके बारे में ख़ुदा के इनकारी और ख़ुदा के साथ दूसरी चीज़ों को शरीक करनेवाले लोग यह मानते थे और मानते हैं कि ये सारे काम अल्लाह तआला ही के हैं। इसलिए वहाँ दलील इस तरह दी गई थी कि जब ये सारे काम अल्लाह ही के हैं और कोई इनमें उसका शरीक नहीं है, तो फिर ख़ुदाई में तुमने दूसरों को कैसे शरीक बना लिया और इबादत के हक़दार वे किस बुनियाद पर हो गए? लेकिन इल्म की सिफ़त अपने कोई महसूस होनेवाले आसार (लक्षण) नहीं रखती जिनकी तरफ़ इशारा किया जा सके। यह मामला सिर्फ़ सोच-विचार ही से समझ में आ सकता है। इसलिए इसको सवाल के बजाय दावे के अन्दाज़ में पेश किया गया है। अब यह हर समझदार आदमी का काम है कि वह अपनी जगह इस बात पर ग़ौर करे कि हक़ीक़त में क्या यह समझ में आनेवाली बात है कि अल्लाह के सिवा कोई दूसरा ग़ैब का इल्म रखनेवाला हो? यानी तमाम उन हालात और चीज़ों और हक़ीक़तों का जाननेवाला हो जो कायनात में कभी थीं, या अब हैं, या आगे होंगी और अगर कोई दूसरा ग़ैब की बातें जाननेवाला नहीं है और नहीं हो सकता तो फिर क्या यह बात अक़्ल में आती है कि जो लोग पूरी तरह हक़ीक़तें और हालात जानते ही नहीं हैं उनमें से कोई बन्दों की फ़रियाद सुननेवाला, ज़रूरतें पूरी करनेवाला और मुश्किलें दूर करनेवाला हो सके?

ख़ुदाई और ग़ैब का इल्म रखने के बीच एक ऐसा गहरा ताल्लुक़ है कि पुराने ज़माने से इनसान ने जिस हस्ती में भी ख़ुदाई के किसी अंश का गुमान किया है, उसके बारे में यह ख़याल ज़रूर ज़ाहिर किया है कि उसपर सबकुछ रौशन है और कोई चीज़ उससे छिपी नहीं है। मानो इनसान का ज़ेहन इस हक़ीक़त से बिलकुल साफ़ तौर पर आगाह है कि क़िस्मतों का बनाना और बिगाड़ना, दुआओं का सुनना, ज़रूरतें पूरी करना और हर मदद तलब करनेवाले की मदद को पहुँचना सिर्फ़ उसी हस्ती का काम हो सकता है जो सबकुछ जानती हो और जिससे कुछ भी छिपा न हो। इसी वजह से तो इनसान जिसको भी ख़ुदा के अधिकार रखनेवाला समझता है, उसे ज़रूर ही ग़ैब का जाननेवाला भी समझता है; क्योंकि उसकी अक़्ल बिना किसी शक-शुब्हे के गवाही देती है कि इल्म और अधिकार आपस में एक-दूसरे के लिए ज़रूरी हैं। अब अगर यह हक़ीक़त है कि पैदा करनेवाला और इन्तिज़ाम चलानेवाला और दुआएँ सुननेवाला और रोज़ी देनेवाला ख़ुदा के सिवा कोई दूसरा नहीं है, जैसाकि ऊपर की आयतों में साबित किया गया है तो आप-से-आप यह भी हक़ीक़त है कि ग़ैब का जाननेवाला भी ख़ुदा के सिवा कोई दूसरा नहीं

है। आख़िर कौन अपने होशो-हवास में यह सोच सकता है कि किसी फ़रिश्ते या जिन्न या नबी या वली को या किसी जानदार को भी यह मालूम होगा कि समन्दर में और हवा में और ज़मीन की तहों में और समन्दर की सतह के ऊपर किस-किस तरह के कितने जानवर कहाँ-कहाँ हैं? और ऊपरी दुनिया के बेहद्दो-हिसाब सय्यारों (उपग्रहों) की ठीक तादाद क्या है? और उनमें से हर एक में किस-किस तरह के जानदार मौजूद हैं? और उन जानदारों का एक-एक फ़र्द कहाँ है और क्या उसकी ज़रूरतें हैं? यह सबकुछ अल्लाह को तो लाज़िमन मालूम होना चाहिए; क्योंकि उसने उन्हें पैदा किया है और उसी को उनके मामलात की तदबीर और उनके हालात की देखभाल करनी है और वही उनकी रोज़ी का इन्तिज़ाम करनेवाला है। लेकिन दूसरा कोई अपने महदूद वुजूद में इतना फैला हुआ और सबकुछ अपने में समेटे रखनेवाला इल्म कैसे रख सकता है और पैदा करने और रोज़ी देने के इस काम से उसका क्या ताल्लुक़ है कि वह इन चीज़ों को जाने?

फिर यह सिफ़त तजज़िए (विश्लेषण) के लायक़ भी नहीं है कि कोई बन्दा मसलन सिर्फ़ ज़मीन की हद तक और ज़मीन में भी सिर्फ़ इनसानों की हद तक, ग़ैब का जाननेवाला हो। यह उसी तरह तजज़िए के क़ाबिल नहीं है जिस तरह पैदा करने, रोज़ी देने, क़ायम रहने और पालने-पोसने के बारे में अल्लाह की सिफ़ात तजज़िए के क़ाबिल नहीं हैं। कायनात की शुरुआत से आज तक जितने इनसान दुनिया में पैदा हुए हैं और क़ियामत तक पैदा होंगे, माँ के पेट में आने से ज़िन्दगी की आख़िरी घड़ी तक उन सबके तमाम हालात और कैफ़ियतों को जानना आख़िर किस बन्दे का काम हो सकता है? और वह कैसे और क्यों उसको जानेगा? क्या वह इस बेहद्दो-हिसाब मख़लूक़ (सृष्टि) का पैदा करनेवाला है? क्या वह उनके बापों के ख़ून में उनके जरसूमे (जीवाणु) को वुजूद में लाया था? क्या उसने उनकी माँओं के पेटों में उनकी शक्ल-सूरत बनाई थी? क्या उसने उनके ज़िन्दा हालत में पैदा होने का इन्तिज़ाम किया था? क्या उसने उनमें से एक-एक शख़्स की क़िस्मत बनाई थी? क्या वह उनकी मौत और ज़िन्दगी, उनकी सेहत और बीमारी, उनकी ख़ुशहाली और बदहाली और उनकी तरक़्क़ी और गिरावट के फ़ैसले करने का ज़िम्मेदार है? और आख़िर यह काम कब से उसके ज़िम्मे हुआ? उसकी अपनी पैदाइश से पहले या उसके बाद? और सिर्फ़ इनसानों की हद तक ये ज़िम्मेदारियाँ महदूद कैसे हो सकती हैं? यह काम तो लाज़िमन ज़मीन और आसमान के आलमगीर इन्तिज़ाम का एक हिस्सा है। जो हस्ती सारी कायनात का निज़ाम चला रही है वही तो इनसानों की पैदाइश और मौत और उनकी रोज़ी की तंगी और कुशादगी और उनकी क़िस्मतों के बनाव-बिगाड़ की ज़िम्मेदार हो सकती है।

इसी वजह से यह इस्लाम का बुनियादी अक़ीदा है कि ग़ैब का जाननेवाला अल्लाह तआला के सिवा कोई दूसरा नहीं है। अल्लाह तआला अपने बन्दों में से जिसपर चाहे और जितना चाहे अपनी मालूमात का कोई कोना खोल दे और किसी ग़ैब या ग़ैब की कुछ बातों को उसपर रौशन कर दे, लेकिन ग़ैब का इल्म पूरे तौर पर किसी को नसीब नहीं और ग़ैब का जाननेवाला होने की सिफ़त सिर्फ़ सारे जहानों के रब अल्लाह के लिए ख़ास है--

"और उसी के पास ग़ैब की कुंजियाँ हैं, उन्हें कोई नहीं जानता उसके सिवा।" (सूरा-6

अनआम, आयत-59) "अल्लाह ही के पास है क़ियामत का इल्म और वही बारिश बरसानेवाला है और वही जानता है कि माओं के पेटों में क्या (पल रहा) है और कोई जानदार नहीं जानता कि कल वह क्या कमाई करेगा और किसी जानदार को ख़बर नहीं है कि किस सरज़मीन में उसको मौत आएगी।" (सूरा-31 लुक़मान, आयत-34) "वह जानता है जो कुछ बन्दों के सामने है और जो कुछ उनसे ओझल है और उसके इल्म में से किसी चीज़ पर भी वे हावी नहीं हो सकते सिवाय यह कि वह जिस चीज़ का चाहे उन्हें इल्म दे। (सूरा-2 बक़रा, आयत-255) क़ुरआन मजीद बन्दों के लिए ग़ैब के इल्म के इस आम और पूरी तरह इनकार पर ही बस नहीं करता, बल्कि ख़ास तौर पर पैग़म्बरों (अलैहि॰) और ख़ुद मुहम्मद (सल्ल॰) के बारे में इस बात को साफ़-साफ़ बयान करता है कि वे ग़ैब के जाननेवाले नहीं हैं और उनको ग़ैब की सिर्फ़ उतनी ही जानकारी अल्लाह तआला की तरफ़ से दी गई है, जो रिसालत (पैग़म्बरी) की ख़िदमत अंजाम देने के लिए दरकार थी। सूरा-6 अनआम, आयत-50; सूरा-7 आराफ़, आयत-187; सूरा-9 तौबा, आयत-101; सूरा-11 हूद, आयत-31; सूरा-33 अहज़ाब, आयत-63; सूरा-46 अहक़ाफ़, आयत-9; सूरा-66 तहरीम, आयत-3 और सूरा-72 जिन्न, आयतें—26-28 इस मामले में किसी शक-शुब्हे की गुंजाइश नहीं छोड़तीं।

क़ुरआन के ये तमाम साफ़-साफ़ बयान इस आयत की ताईद और तशरीह करते हैं जिनके बाद इस बात में किसी शक की गुंजाइश नहीं रहती कि अल्लाह तआला के सिवा किसी को ग़ैब का जाननेवाला समझना और यह समझना कि कोई दूसरा भी तमाम गुज़रे हुए और आनेवाले हालात की जानकारी रखता है, बिलकुल एक ग़ैर-इस्लामी अक़ीदा है। इमाम बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी, नसई, इमाम अहमद, इब्ने-जरीर और इब्ने-अबी-हातिम ने सहीह सनदों के साथ हज़रत आइशा (रज़ि॰) का यह क़ौल (कथन) नक़्ल किया है—

"जिसने यह दावा किया कि नबी (सल्ल॰) जानते हैं कि कल क्या होनेवाला है, उसने अल्लाह पर सख़्त झूठ का इलज़ाम लगाया; क्योंकि अल्लाह तो फ़रमाता है, ऐ नबी, तुम कह दो कि ग़ैब का इल्म अल्लाह के सिवा आसमानों और ज़मीन के रहनेवालों में से किसी को भी नहीं है।"

इब्नुल-मुंज़िर हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) के मशहूर शागिर्द इकरिमा से रिवायत करते हैं कि एक आदमी ने नबी (सल्ल॰) से पूछा, "ऐ मुहम्मद, क़ियामत कब आएगी? और हमारे इलाक़े में सूखा पड़ा है, बारिश कब होगी? और मेरी बीवी हामिला (गर्भवती) है, वह लड़का पैदा करेगी या लड़की? और यह तो मुझे मालूम है कि मैंने आज क्या कमाया है, कल मैं क्या कमाऊँगा? और यह तो मुझे मालूम है कि मैं कहाँ पैदा हुआ हूँ, मरूँगा कहाँ?" इन सवालों के जवाब में सूरा-31 लुक़मान की वह आयत नबी (सल्ल॰) ने सुनाई जो ऊपर हमने नक़्ल की है। यानी—

"अल्लाह ही के पास है क़ियामत का इल्म और वही बारिश बरसानेवाला है और वही जानता है जो कुछ माओं के पेट में (पल रहा) है और कोई जानदार नहीं जानता कि कल वह क्या कमाई करेगा और किसी जानदार को ख़बर नहीं है कि किस सरज़मीन में उसको मौत आएगी।"

फिर बुख़ारी और मुस्लिम और हदीस की दूसरी किताबों की वह मशहूर रिवायत भी इसी की

اَيَّانَ يُبْعَثُوْنَ۝٦٥ بَلِ ادّٰرَكَ عِلْمُهُمْ فِي الْاٰخِرَةِ ۚ بَلْ هُمْ فِيْ شَكٍّ
مِّنْهَا ۚ بَلْ هُمْ مِّنْهَا عَمُوْنَ۝٦٦ وَقَالَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا ءَاِذَا كُنَّا تُرٰبًا
وَّاٰبَآؤُنَآ اَئِنَّا لَمُخْرَجُوْنَ۝٦٧ لَقَدْ وُعِدْنَا هٰذَا نَحْنُ وَاٰبَآؤُنَا مِنْ قَبْلُ ۙ

उठाए जाएँगे।[84]

(66) बल्कि आख़िरत का तो इल्म ही इन लोगों से गुम हो गया है, बल्कि ये उसकी तरफ़ से शक में हैं, बल्कि ये उससे अंधे हैं।[85] (67) ये इनकार करनेवाले कहते हैं, "क्या जब हम और हमारे बाप-दादा मिट्टी हो चुके होंगे तो हमें सचमुच क़ब्रों से निकाला जाएगा? (68) ये ख़बरें हमको भी बहुत दी गई हैं और पहले हमारे बाप-दादा को भी दी जाती

ताईद करती है जिसमें ज़िक्र है कि सहाबा की मौजूदगी में हज़रत जिबरील (अलैहि॰) ने इनसानी शक्ल में आकर नबी (सल्ल॰) से जो सवालात किए थे उनमें से एक यह भी था कि क़ियामत कब आएगी? नबी (सल्ल॰) ने जवाब दिया, "जिससे पूछा जा रहा है वह ख़ुद पूछनेवाले से ज़्यादा इस बारे में कुछ नहीं जानता।" फिर फ़रमाया, "यह उन पाँच चीज़ों में से है जिनका इल्म अल्लाह के सिवा किसी को नहीं और यही ऊपर बयान की गई आयत नबी (सल्ल॰) ने तिलावत की।

84. यानी दूसरे, जिनके बारे में यह गुमान किया जाता है कि वे ग़ैब की बातें जानते हैं और इसी वजह से जिनको तुम लोगों ने ख़ुदाई में शरीक ठहरा लिया है, उन बेचारों को तो ख़ुद अपने आनेवाले कल की भी ख़बर नहीं। वे नहीं जानते कि कब क़ियामत की वह घड़ी आएगी, जब अल्लाह तआला उनको दोबारा उठा खड़ा करेगा।

85. ख़ुदाई के बारे में उन लोगों की बुनियादी ग़लतियों पर ख़बरदार करने के बाद अब यह बताया जा रहा है कि ये लोग जो इन सख़्त गुमराहियों में पड़े हुए हैं, इसकी वजह यह नहीं है कि सोच-विचार करने के बाद ये किसी दलील से इस नतीजे पर पहुँचे थे कि ख़ुदाई में हक़ीक़त में कुछ दूसरी हस्तियाँ अल्लाह तआला की शरीक हैं, बल्कि इसकी अस्ल वजह यह है कि इन्होंने कभी संजीदगी के साथ ग़ौर ही नहीं किया है। चूँकि ये लोग आख़िरत से बेख़बर हैं, या उसकी तरफ़ से शक में हैं, या उससे अंधे बने हुए हैं, इसलिए अंजाम की फ़िक्र से बेपरवाही ने इनके अन्दर सरासर एक ग़ैर-ज़िम्मेदाराना रवैया पैदा कर दिया है। यह कायनात और ख़ुद अपनी ज़िन्दगी के हक़ीक़ी मसलों के बारे में सिरे से कोई संजीदगी रखते ही नहीं। इनको इसकी परवाह ही नहीं है कि हक़ीक़त क्या है और इनकी ज़िन्दगी का फ़लसफ़ा (दर्शन) उस हक़ीक़त से मेल खाता है या नहीं; क्योंकि इनके नज़दीक आख़िरकार मुशरिक और नास्तिक और एक अल्लाह को माननेवाले और शक में पड़े हुए सबको मरकर मिट्टी हो जाना है और किसी चीज़

إِنْ هَٰذَآ إِلَّآ أَسَٰطِيرُ ٱلْأَوَّلِينَ ۝٦٨ قُلْ سِيرُوا۟ فِى ٱلْأَرْضِ فَٱنظُرُوا۟
كَيْفَ كَانَ عَٰقِبَةُ ٱلْمُجْرِمِينَ ۝٦٩ وَلَا تَحْزَنْ عَلَيْهِمْ وَلَا تَكُن فِى

रही हैं, मगर ये बस कहानियाँ-ही-कहानियाँ हैं जो पुराने ज़माने से सुनते चले आ रहे हैं।" (69) कहो, ज़रा ज़मीन में चल-फिरकर देखो कि मुजरिमों का क्या अंजाम हो चुका है।[86] (70) ऐ नबी, इनके हाल पर दुखी न हो और न इनकी चालों पर दिल छोटा

का भी कोई नतीजा निकलना नहीं है।

आख़िरत की यह बात इससे पहले की आयत के इस जुमले से निकली है कि "वे नहीं जानते कि कब वे उठाए जाएँगे।" उस जुमले में तो यह बताया गया था कि जिनको माबूद बनाया जाता है—और इनमें फ़रिश्ते, जिन्न, पैग़म्बर और वली लोग सब शामिल थे—उनमें से कोई भी आख़िरत के वक़्त को नहीं जानता कि वह कब आएगी। इसके बाद अब आम मुशरिकों और इनकारियों के बारे में तीन बातें कही गई हैं। एक यह कि वे सिरे से यही नहीं जानते कि आख़िरत कभी होगी भी या नहीं। दूसरी यह कि उनकी यह बेख़बरी इस वजह से नहीं है कि उन्हें इसकी ख़बर ही कभी न दी गई हो, बल्कि इस वजह से है कि जो ख़बर उन्हें दी गई उसपर उन्होंने यक़ीन नहीं किया, बल्कि उसके सही होने में शक करने लगे। तीसरी यह कि उन्होंने कभी सोच-विचार करके उन दलीलों को जाँचने की तकलीफ़ ही नहीं उठाई जो आख़िरत के आने के बारे में पेश की गईं, बल्कि उसकी तरफ़ से अंधे बनकर रहने ही को उन्होंने तरजीह दी।

86. इस छोटे-से जुमले में आख़िरत की दो ज़बरदस्त दलीलें भी हैं और नसीहत भी।

पहली दलील यह है कि दुनिया की जिन क़ौमों ने भी आख़िरत को नज़र-अन्दाज़ किया है, वे मुजरिम बने बिना नहीं रह सकी हैं। वे ग़ैर-ज़िम्मेदार बनकर रहीं। उन्होंने ज़ुल्मो-सितम ढाए। वे सरकशी और नाफ़रमानी में डूब गईं और अख़लाक़ की तबाही ने आख़िरकार उनको बरबाद करके छोड़ा। यह इनसानी इतिहास का लगातार तजरिबा, जिसपर ज़मीन में हर तरफ़ तबाह हो चुकी क़ौमों के आसार गवाही दे रहे हैं, साफ़ ज़ाहिर करता है कि आख़िरत के मानने और न मानने का बहुत ही गहरा ताल्लुक़ इनसानी रवैये के सही होने और सही न होने से है। इसको माना जाए तो यह रवैया दुरुस्त रहता है। न माना जाए तो रवैया ग़लत हो जाता है। यह इस बात की खुली दलील है कि उसका मानना हक़ीक़त के मुताबिक़ है, इसी लिए उसके मानने से इनसानी ज़िन्दगी ठीक डगर पर चलती है और उसका न मानना हक़ीक़त के ख़िलाफ़ है। इसी वजह से यह गाड़ी पटरी से उतर जाती है।

दूसरी दलील यह है कि इतिहास के इस लम्बे तजरिबे में मुजरिम बन जानेवाली क़ौमों का लगातार तबाह होना इस हक़ीक़त की साफ़ दलील दे रहा है कि यह कायनात बेसमझ ताक़तों की अंधी-बहरी हुकूमत नहीं है, बल्कि यह एक हिकमत भरा निज़ाम (व्यवस्था) है, जिसके अन्दर अमल का अच्छा-बुरा बदला दिए जाने का एक अटल क़ानून काम कर रहा है; जिसकी

ضَيْقٍ مِّمَّا يَمْكُرُوْنَ۝ وَيَقُوْلُوْنَ مَتٰى هٰذَا الْوَعْدُ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ۝

करो[87] — (71) वे कहते हैं कि "यह धमकी कब पूरी होगी अगर तुम सच्चे हो?"[88]

हुकूमत इनसानी क़ौमों के साथ सरासर अख़लाक़ी बुनियादों पर मामला कर रही है; जिसमें किसी क़ौम को बुरे काम करने की खुली छूट नहीं दी जाती कि एक बार ऊपर उठ जाने के बाद वह हमेशा ऐशो-आराम के मज़े लूटती रहे और ज़ुल्मो-सितम के डंके बजाती चली जाए, बल्कि एक ख़ास हद को पहुँचकर एक ज़बरदस्त हाथ आगे बढ़ता है और उसको ऊँचाइयों से गिराकर रुसवाई के गढ़े में फेंक देता है। इस हक़ीक़त को जो शख़्स समझ ले वह कभी इस बात में शक नहीं कर सकता कि कामों का अच्छा या बुरा बदला दिए जाने का यही क़ानून इस दुनिया की ज़िन्दगी के बाद एक दूसरी दुनिया का तक़ाज़ा करता है, जहाँ लोगों का और क़ौमों का और कुल मिलाकर सारे ही इनसानों का इनसाफ़ चुकाया जाए; क्योंकि सिर्फ़ एक ज़ालिम क़ौम के तबाह हो जाने से तो इनसाफ़ के सारे तक़ाज़े पूरे नहीं हो गए। इससे उन सताए हुए लोगों की तो कोई भरपाई नहीं हुई जिनकी लाशों पर उन्होंने अपनी शानो-शौकत का महल बनाया था। इससे उन ज़ालिमों को तो कोई सज़ा नहीं मिली जो तबाही के आने से पहले मज़े उड़ाकर जा चुके थे। इससे उन बदकारों की भी कोई पकड़ नहीं हुई जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी और अपने बाद आनेवाली नस्लों के लिए गुमराहियों और बद-अख़लाक़ियों की विरासत छोड़ते चले गए थे। दुनिया में अज़ाब भेजकर तो सिर्फ़ उनकी आख़िरी नस्ल के और ज़्यादा ज़ुल्म का सिलसिला तोड़ दिया गया। अभी अदालत का अस्ल काम तो हुआ ही नहीं कि हर ज़ालिम को उसके किए का बदला दिया जाए और हर ज़ुल्म के शिकार शख़्स के नुक़सान की भरपाई की जाए और उन सब लोगों को इनाम दिया जाए जो बुराई के इस तूफ़ान में सच्चाई और ईमानदारी पर क़ायम और सुधार के लिए कोशिश करते रहे और उम्र भर इस राह में तकलीफ़ें सहते रहे। यह सब ज़रूर ही किसी वक़्त होना चाहिए; क्योंकि दुनिया में कामों के अच्छे या बुरे बदले दिए जाने के क़ानून का लगातार काम करना कायनात की फ़रमाँरवा हुकूमत का यह मिज़ाज और काम का तरीक़ा साफ़ बता रहा है कि वह इनसानी आमाल को उनकी अख़लाक़ी क़द्र के लिहाज़ से तौलती और उनका इनाम या सज़ा देती है।

इन दो दलीलों के साथ इस आयत में नसीहत का पहलू यह है कि पिछले मुजरिमों का अंजाम देखकर उससे सबक़ लो और आख़िरत के इनकार के उस बेवक़ूफ़ीवाले अक़ीदे पर अड़े न रहो जिसने उन्हें मुजरिम बनाकर छोड़ा था।

87. यानी तुमने समझाने का हक़ अदा कर दिया। अब अगर ये नहीं मानते और अपनी बेवक़ूफ़ी पर अड़े रहकर अल्लाह के अज़ाब के हक़दार बनना ही चाहते हैं तो तुम ख़ाह-मख़ाह इनके हाल पर कुढ़-कुढ़कर अपनी जान क्यों हलकान करो। फिर ये हक़ीक़त और सच्चाई से लड़ने और तुम्हारी सुधार की कोशिशों को नीचा दिखाने के लिए जो घटिया दर्जे की चालें चल रहे हैं, उनपर परेशान और दुखी होने की तुम्हें क्या ज़रूरत है। तुम्हारी पीठ पर तो अल्लाह की ताक़त है। ये तुम्हारी बात न मानेंगे तो अपना ही कुछ बिगाड़ेंगे। तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

88. इससे मुराद वही धमकी है जो ऊपर की आयत में छिपी है। उनका मतलब यह था कि इस

قُلْ عَسٰٓى اَنْ يَّكُوْنَ رَدِفَ لَكُمْ بَعْضُ الَّذِىْ تَسْتَعْجِلُوْنَ ۝ وَاِنَّ رَبَّكَ
لَذُوْ فَضْلٍ عَلَى النَّاسِ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَهُمْ لَا يَشْكُرُوْنَ ۝ وَاِنَّ رَبَّكَ
لَيَعْلَمُ مَا تُكِنُّ صُدُوْرُهُمْ وَمَا يُعْلِنُوْنَ ۝ وَمَا مِنْ غَآئِبَةٍ فِى السَّمَآءِ

(72) कहो, क्या अजब कि जिस अज़ाब के लिए तुम जल्दी मचा रहे हो, उसका एक हिस्सा तुम्हारे क़रीब ही आ लगा हो।[89] (73) हक़ीक़त यह है कि तेरा रब तो लोगों पर बहुत मेहरबानी करनेवाला है, मगर ज़्यादातर लोग शुक्र नहीं करते।[90] (74) बेशक तेरा रब ख़ूब जानता है जो कुछ उनके सीने अपने अन्दर छिपाए हुए हैं और जो कुछ वे ज़ाहिर करते हैं।[91] (75) आसमान और ज़मीन की कोई छिपी चीज़ ऐसी नहीं है जो एक

जुमले में हमारी ख़बर लेने की जो छिपी हुई धमकी दी जा रही है यह आख़िर कब अमल में लाई जाएगी? हम तो तुम्हारी बात रद्द भी कर चुके हैं और तुम्हें नीचा दिखाने के लिए अपनी तदबीरों में भी हमने कोई कसर नहीं उठा रखी है। अब क्यों हमारी ख़बर नहीं ली जाती?

89. यह शाही अन्दाज़े-बयान है। सबकुछ करने की क़ुदरत रखनेवाले के कलाम में जब 'शायद' और 'क्या अजब' और 'क्या मुश्किल' जैसे अलफ़ाज़ आते हैं तो उनमें शक का कोई मतलब छिपा नहीं होता, बल्कि उनसे शाने-बेनियाज़ी (निस्पृहता) का इज़हार होता है। उसकी क़ुदरत ऐसी हावी है कि उसका किसी चीज़ को चाहना और उस चीज़ का हो जाना मानो एक ही बात है। इसके बारे में यह सोचा भी नहीं जा सकता कि वह कोई काम करना चाहे और वह न हो सके। इसलिए उसका यह फ़रमाना कि ''क्या अजब ऐसा हो'' यह मतलब रखता है कि ऐसा होकर रहेगा, अगर तुम सीधे न हुए। एक मामूली थानेदार भी अगर बस्ती के किसी आदमी से कह दे कि तुम्हारी शामत पुकार रही है तो उसे रात को नींद नहीं आती। कहाँ यह कि हर चीज़ की क़ुदरत रखनेवाला किसी से कह दे कि तुम्हारा बुरा वक़्त कुछ दूर नहीं है और फिर वह निडर होकर रहे।

90. यानी यह तो सारे जहानों के रब अल्लाह की मेहरबानी है कि वह लोगों को ग़लती करते ही नहीं पकड़ लेता, बल्कि संभलने की मुहलत देता है। मगर ज़्यदारतर लोग इसपर शुक्रगुज़ार होकर इस मुहलत को अपने सुधार के लिए इस्तेमाल नहीं करते, बल्कि पकड़ में देर होने का मतलब यह लेते हैं कि यहाँ कोई पकड़ करनेवाला नहीं है, इसलिए जो जी में आए करते रहो और किसी समझानेवाले की बात मानकर न दो।

91. यानी वह इनकी खुल्लम-खुल्ला हरकतों ही को नहीं जानता, बल्कि जो घोर खोट और कपट इनके सीनों में छिपा हुआ है और जो चालें ये अपने दिलों में सोचते हैं, उनको भी वह ख़ूब जानता है। इसलिए जब उनकी शामत आने का वक़्त आ पहुँचेगा तो कोई चीज़ छोड़ी नहीं जाएगी जिसपर उनकी ख़बर न ली जाए। बयान का यह अन्दाज़ उसी तरह का है जैसे एक

وَالْاَرْضِ اِلَّا فِىْ كِتٰبٍ مُّبِيْنٍ ۝ اِنَّ هٰذَا الْقُرْاٰنَ يَقُصُّ عَلٰى
بَنِىْٓ اِسْرَآءِيْلَ اَكْثَرَ الَّذِىْ هُمْ فِيْهِ يَخْتَلِفُوْنَ ۝ وَاِنَّهٗ لَهُدًى
وَّرَحْمَةٌ لِّلْمُؤْمِنِيْنَ ۝

खुली किताब में लिखी हुई मौजूद न हो।[92]

(76,77) यह सच है कि यह क़ुरआन बनी-इसराईल को अकसर उन बातों की हक़ीक़त बताता है जिनमें वे इख़्तिलाफ़ रखते हैं[93] और यह हिदायत और रहमत है ईमान लानेवालों के लिए।[94]

अधिकारी अपने इलाक़े के किसी बदमाश से कहे, मुझे तेरे सब करतूतों की ख़बर है। इसका सिर्फ़ यही मतलब नहीं होता कि वह अपने बाख़बर होने की उसे ख़बर दे रहा है, बल्कि मतलब यह होता है कि तू अपनी हरकतें छोड़ दे, वरना याद रख जब पकड़ा जाएगा तो तेरे एक-एक जुर्म की पूरी सज़ा दी जाएगी।

92. यहाँ किताब से मुराद क़ुरआन नहीं है, बल्कि अल्लाह तआला का वह रिकार्ड है जिसमें ज़र्रा-ज़र्रा लिखा है।

93. इस जुमले का ताल्लुक़ पिछली बात से भी है और बाद की बात से भी। पिछली बात से इसका ताल्लुक़ यह है कि उसी ग़ैब के जाननेवाले ख़ुदा के इल्म का एक करिश्मा यह है कि एक उम्मी (अनपढ़) की ज़बान से इस क़ुरआन में उन वाक़िआत की हक़ीक़त खोली जा रही है, जो बनी-इसराईल के इतिहास में गुज़रे हैं। हालाँकि ख़ुद बनी-इसराईल के आलिमों के बीच उनके अपने इतिहास के उन वाक़िआत में इख़्तिलाफ़ है (इसकी मिसालें इसी सूरा-27 नम्ल के शुरू की आयतों में गुज़र चुकी हैं जैसा कि हमने अपने हाशियों में वाज़ेह किया है) और बाद की बात से इसका ताल्लुक़ यह है कि जिस तरह अल्लाह तआला ने उन इख़्तिलाफ़ों का फ़ैसला किया है, उसी तरह वह उस इख़्तिलाफ़ का भी फ़ैसला कर देगा जो मुहम्मद (सल्ल.) और उनके मुख़ालिफ़ों के बीच पाया जाता है। वह खोलकर रख देगा कि दोनों में से हक़ पर कौन है और बातिल (असत्य) पर कौन। चुनाँचे इन आयतों के उतरने के कुछ ही साल बाद फ़ैसला सारी दुनिया के सामने आ गया। उसी अरब की सरज़मीन में और उसी क़ुरैश के क़बीले में एक आदमी भी ऐसा न रहा जो इस बात का माननेवाला न हो गया हो कि हक़ पर मुहम्मद (सल्ल.) थे न कि अबू-जहल और अबू-लहब। इन लोगों की अपनी औलाद तक मान गई कि उनके बाप ग़लती पर थे।

94. यानी उन लोगों के लिए जो इस क़ुरआन की दावत क़बूल कर लें और वह बात मान लें जिसे यह पेश कर रहा है। ऐसे लोग उन गुमराहियों से बच जाएँगे जिनमें उनकी क़ौम मुब्तला है।

إِنَّ رَبَّكَ يَقْضِي بَيْنَهُمْ بِحُكْمِهِ ۚ وَهُوَ الْعَزِيزُ الْعَلِيمُ ﴿٧٨﴾ فَتَوَكَّلْ
عَلَى اللَّهِ ۖ إِنَّكَ عَلَى الْحَقِّ الْمُبِينِ ﴿٧٩﴾ إِنَّكَ لَا تُسْمِعُ الْمَوْتَىٰ وَلَا تُسْمِعُ
الصُّمَّ الدُّعَاءَ إِذَا وَلَّوْا مُدْبِرِينَ ﴿٨٠﴾ وَمَا أَنْتَ بِهَادِي الْعُمْيِ
عَنْ ضَلَالَتِهِمْ ۖ إِنْ تُسْمِعُ إِلَّا مَنْ يُؤْمِنُ بِآيَاتِنَا فَهُمْ مُسْلِمُونَ ﴿٨١﴾

(78) यक़ीनन (इसी तरह) तेरा रब इन लोगों के बीच[95] भी अपने हुक्म से फ़ैसला कर देगा और वह ज़बरदस्त और सबकुछ जाननेवाला है।[96] (79) तो ऐ नबी, अल्लाह पर भरोसा रखो, यक़ीनन तुम खुले हक़ पर हो। (80) तुम मुर्दों को नहीं सुना सकते,[97] न उन बहरों तक अपनी पुकार पहुँचा सकते हो जो पीठ फेरकर भागे जा रहे हों,[98] (81) और न अंधों को रास्ता बताकर भटकने से बचा सकते हो।[99] तुम तो अपनी बात उन्हीं लोगों को सुना सकते हो जो हमारी आयतों पर ईमान लाते हैं और फिर फ़रमाँबरदार बन जाते हैं।

उनको इस क़ुरआन की बदौलत ज़िन्दगी का सीधा रास्ता मिल जाएगा और उनपर ख़ुदा की ये मेहरबानियाँ होंगी जिनके बारे में क़ुरैश के इस्लाम-मुख़ालिफ़ आज सोच भी नहीं सकते। इस रहमत की बारिश को भी कुछ ही साल बाद दुनिया ने देख लिया कि वही लोग जो अरब के रेगिस्तान के एक गुमनाम कोने में पड़े हुए थे और कुफ़्र (अधर्म) की हालत में ज़्यादा-से-ज़्यादा एक कामयाब छापामार बन सकते थे, इस क़ुरआन पर ईमान लाने के बाद यकायक वे दुनिया के पेशवा, क़ौमों के इमाम, इनसानी तहज़ीब के उस्ताद और धरती के एक बड़े हिस्से पर फ़रमाँरवा (शासक) हो गए।

95. यानी क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मनों और ईमानवालों के बीच।

96. यानी न उसके फ़ैसले को लागू होने से कोई ताक़त रोक सकती है और न उसके फ़ैसले में ग़लती का कोई इमकान है।

97. यानी ऐसे लोगों को जिनके ज़मीर (अन्तरात्माएँ) मर चुके हैं और जिनमें ज़िद और हठधर्मी और रस्म-परस्ती ने हक़ और बातिल का फ़र्क़ समझने की कोई सलाहियत बाक़ी नहीं छोड़ी है।

98. यानी जो तुम्हारी बात के लिए सिर्फ़ अपने कान बन्द कर लेने पर ही बस नहीं करते, बल्कि उस जगह से कतराकर निकल जाते हैं जहाँ उन्हें अन्देशा होता है कि कहीं तुम्हारी बात उनके कान में न पड़ जाए।

99. यानी इनका हाथ पकड़कर ज़बरदस्ती इन्हें सीधे रास्ते पर खींच लाना और घसीटकर ले चलना तो तुम्हारा काम नहीं है। तुम तो सिर्फ़ ज़बान और अपनी मिसाल ही से बता सकते हो कि यह

وَاِذَا وَقَعَ الْقَوْلُ عَلَيْهِمْ اَخْرَجْنَا لَهُمْ دَآبَّةً مِّنَ الْاَرْضِ تُكَلِّمُهُمْ ۙ
اَنَّ النَّاسَ كَانُوْا بِاٰيٰتِنَا لَا يُوْقِنُوْنَ۝ وَيَوْمَ نَحْشُرُ مِنْ كُلِّ اُمَّةٍ
فَوْجًا مِّمَّنْ يُّكَذِّبُ بِاٰيٰتِنَا فَهُمْ يُوْزَعُوْنَ۝ حَتّٰٓى اِذَا جَآءُوْ قَالَ

(82) और जब हमारी बात पूरी होने का वक़्त उनपर आ पहुँचेगा[100] तो हम उनके लिए एक जानवर ज़मीन से निकालेंगे जो उनसे बात करेगा कि लोग हमारी आयतों पर यक़ीन नहीं करते थे।[101] (83) और ज़रा सोचो उस दिन के बारे में जब हम हर उम्मत (समुदाय) में से एक फ़ौज-की-फ़ौज उन लोगों की घेर लाएँगे जो हमारी आयतों को झुठलाया करते थे, फिर उनको (उनकी क़िस्मों के लिहाज़ से दर्जा-ब-दर्जा) तरतीब दिया जाएगा। (84) यहाँ तक कि जब सब आ जाएँगे, तो (उनका रब उनसे) पूछेगा कि "तुमने

सीधा रास्ता है और वह रास्ता ग़लत है जिसपर ये लोग चल रहे हैं। मगर जिसने अपनी आँखें बन्द कर ली हों और जो देखना ही न चाहता हो उसकी रहनुमाई तुम कैसे कर सकते हो।

100. यानी क़ियामत क़रीब आ जाएगी जिसका वादा उनसे किया जा रहा है।

101. इब्ने-उमर (रज़ि.) का कहना है कि यह उस वक़्त होगा जब ज़मीन में कोई नेकी का हुक्म करनेवाला और बुराई से रोकनेवाला बाक़ी न रहेगा। इब्ने-मरदूया ने एक हदीस अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि.) से नक़्ल की है जिसमें वे कहते हैं कि यही बात उन्होंने ख़ुद नबी (सल्ल.) से सुनी थी। इससे मालूम हुआ कि जब इनसान भलाई का हुक्म देना और बुराई से रोकना छोड़ देंगे तो क़ियामत क़ायम होने से पहले अल्लाह तआला एक जानवर के ज़रिए से आख़िरी बार हुज्जत (तर्क) पूरी करेगा। यह बात वाज़ेह नहीं है कि यह एक ही जानवर होगा या एक ख़ास तरह के जानवरों की एक जाति होगी जिसके बहुत-से जानवर ज़मीन पर फैल जाएँगे—अरबी अलफ़ाज़ "दाब्बतुम-मिनल-अर्ज़" के दोनों मतलब हो सकते हैं। बहरहाल जो बात वह कहेगा वह यह होगी कि लोग अल्लाह तआला की उन आयतों पर यक़ीन नहीं करते थे जिनमें क़ियामत के आने और आख़िरत क़ायम होने की ख़बरें दी गई थीं, तो लो अब उसका वक़्त आ पहुँचा है और जान लो कि अल्लाह की आयतें सच्ची थीं। यह जुमला कि "लोग हमारी आयतों पर यक़ीन नहीं करते थे।" या तो उस जानवर की अपनी बात की नक़्ल है, या अल्लाह तआला की तरफ़ से उसके कलाम को बयान करना है। अगर यह उसी के अलफ़ाज़ की नक़्ल है तो 'हमारी' का लफ़्ज़ वह उसी तरह इस्तेमाल करेगा जिस तरह एक हुकूमत का हर कारिन्दा 'हम' का लफ़्ज़ इस मानी में बोलता है कि वह अपनी हुकूमत की तरफ़ से बात कर रहा है, न कि अपनी निजी हैसियत में। दूसरी सूरत में बात साफ़ है कि अल्लाह तआला उसकी बात को चूँकि अपने अलफ़ाज़ में बयान कर रहा है इसलिए उसने 'हमारी आयतों' का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया है।

اَكَذَّبْتُمْ بِاٰيٰتِىْ وَلَمْ تُحِيْطُوْا بِهَا عِلْمًا اَمَّا ذَا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ﴿٨٤﴾ وَ
وَقَعَ الْقَوْلُ عَلَيْهِمْ بِمَا ظَلَمُوْا فَهُمْ لَا يَنْطِقُوْنَ ﴿٨٥﴾ اَلَمْ

मेरी आयतों को झुठला दिया, हालाँकि इल्म के पहलू से तुम उनपर हावी न हुए थे?[102] अगर यह नहीं तो और तुम क्या कर रहे थे?"[103] (85) और उनके ज़ुल्म की वजह से अज़ाब का वादा उनपर पूरा हो जाएगा, तब वे कुछ भी न बोल सकेंगे। (86) क्या

इस जानवर के निकलने का वक़्त कौन-सा होगा? इसके बारे में नबी (सल्ल.) फ़रमाते हैं कि "सूरज पश्चिम से निकलेगा और एक रोज़ दिन-दहाड़े यह जानवर निकल आएगा। उनमें से जो निशानी भी पहले हो वह बहरहाल दूसरी के क़रीब ही ज़ाहिर होगी।" (हदीस : मुस्लिम) दूसरी रिवायतें जो मुस्लिम, इब्ने-माजा, तिरमिज़ी और मुसनद अहमद वग़ैरा में आई हैं, उनमें नबी (सल्ल.) ने बताया है कि क़ियामत के क़रीब ज़माने में दज्जाल का निकलना, ज़मीन के जानवर का ज़ाहिर होना, दुख़ान (धुआँ) और सूरज का पश्चिम से निकलना वे निशानियाँ हैं जो एक-के-बाद एक ज़ाहिर होंगी।

इस जानवर की बनावट, शक्ल-सूरत, निकलने की जगह और ऐसी ही दूसरी तफ़सीलात के बारे में तरह-तरह की रिवायतें नक़्ल की गई हैं जो आपस में बहुत अलग और एक-दूसरे से टकराती हैं। इन चीज़ों के ज़िक्र से सिवाय ज़ेहन उलझने के और कुछ हासिल नहीं होता और उनके जानने का कोई फ़ायदा भी नहीं; क्योंकि जिस मक़सद के लिए क़ुरआन में यह ज़िक्र किया गया है, उससे उन तफ़सीलात का कोई ताल्लुक़ नहीं है।

रहा किसी जानवर का इनसानों से इनसानी ज़बान में बात करना, तो यह अल्लाह की क़ुदरत का एक करिश्मा है। वह जिस चीज़ को चाहे बोलने की ताक़त दे सकता है। क़ियामत से पहले तो वह एक जानवर ही को बोलने की ताक़त देगा। मगर जब क़ियामत क़ायम हो जाएगी तो अल्लाह की अदालत में इनसान की आँख और कान और उसके जिस्म की खाल तक बोल उठेगी, जैसा कि क़ुरआन में साफ़-साफ़ बयान हुआ है, "फिर जब सब वहाँ पहुँच जाएँगे तो उनके कान और उनकी आँखें और उनके जिस्म की खालें उनपर गवाही देंगी कि वे दुनिया में क्या कुछ करते रहे हैं। वे अपनी खालों से कहेंगे, तुमने हमारे ख़िलाफ़ क्यों गवाही दी? वे जवाब देंगी, हमें उसी ख़ुदा ने बोलने की ताक़त दी है जिसने हर चीज़ को बोलने की ताक़त दी है।" (क़ुरआन, सूरा-41 हा-मीम सजदा, आयतें—20, 21)

102. यानी तुम्हारे झुठलाने की वजह यह हरगिज़ नहीं थी कि किसी इल्मी ज़रिए से पता लगाकर तुम्हें मालूम हो गया था कि ये आयतें झूठी हैं। तुमने सच्चाई का पता लगाए बिना और सोच-विचार किए बिना बस यूँ ही हमारी आयतों को झुठला दिया?

103. यानी अगर ऐसा नहीं है तो क्या तुम यह साबित कर सकते हो कि तुमने सच्चाई का पता लगाने के बाद इन आयतों को झूठा ही पाया था और तुम्हें सचमुच यह जानकारी हासिल हो

يَرَوْا اَنَّا جَعَلْنَا الَّيْلَ لِيَسْكُنُوْا فِيْهِ وَالنَّهَارَ مُبْصِرًا ۭ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّقَوْمٍ يُّؤْمِنُوْنَ ۝ وَيَوْمَ يُنْفَخُ فِي الصُّوْرِ فَفَزِعَ مَنْ فِي السَّمٰوٰتِ وَمَنْ فِي الْاَرْضِ اِلَّا مَنْ شَاۗءَ اللّٰهُ ۭ وَكُلٌّ اَتَوْهُ دٰخِرِيْنَ ۝

उनको सुझाई न देता था कि हमने रात उनके लिए सुकून हासिल करने के लिए बनाई थी और दिन को रौशन किया था?[104] इसमें बहुत निशानियाँ थीं उन लोगों के लिए जो ईमान लाते थे।[105]

(87) और क्या गुज़रेगी उस दिन जबकि सूर (नरसिंघा) फूँका जाएगा और हौल खा जाएँगे वे सब जो आसमानों और ज़मीन में हैं[106]—सिवाए उन लोगों के जिन्हें अल्लाह इस हौल से बचाना चाहेगा—और सब कान दबाए उसके सामने हाज़िर हो जाएँगे।

गई थी कि अस्ल हक़ीक़त वह नहीं है जो इन आयतों में बयान की गई है?

104. यानी अनगिनत निशानियों में से ये दो निशानियाँ तो ऐसी थीं जिनको वे सब हर वक़्त देख रहे थे, जिनके फ़ायदों से हर पल फ़ायदा उठा रहे थे, जो किसी अंधे-बहरे और गूँगे तक से छिपी हुई न थीं। क्यों न रात के आराम और दिन के मौक़ों से फ़ायदा उठाते वक़्त उन्होंने कभी सोचा कि यह एक हिकमतवाले (तत्त्वदर्शी) का बनाया हुआ निज़ाम (व्यवस्था) है जिसने ठीक-ठीक उनकी ज़रूरतों के मुताबिक़ ज़मीन और सूरज का ताल्लुक़ क़ायम किया है। यह कोई इत्तिफ़ाक़ी बात नहीं हो सकती; क्योंकि इसमें मक़सदियत (उद्देश्यपूर्णता), हिकमत (तत्त्वदर्शिता) और मंसूबा-बन्दी साफ़-साफ़ नज़र आ रही है जो अंधी क़ुदरती ताक़तों की ख़ासियत नहीं हो सकती और यह बहुत-से ख़ुदाओं का काम भी नहीं है; क्योंकि यह निज़ाम ज़रूर किसी एक ही ऐसे पैदा करनेवाले मालिक और मुदब्बिर (संचालक) का क़ायम किया हुआ हो सकता है जो ज़मीन, चाँद, सूरज और तमाम दूसरे सय्यारों (ग्रहों) पर हुकूमत कर रहा है। सिर्फ़ इसी एक चीज़ को देखकर वे जान सकते थे कि हमने अपने रसूल और अपनी किताब के ज़रिए से जो हक़ीक़त बताई है, यह रात और दिन का आना-जाना उसको सच साबित कर रहा है।

105. यानी यह कोई न समझ में आ सकनेवाली बात भी नहीं थी। आख़िर उन्हीं के भाई-बन्धु उन्हीं के क़बीले और बिरादरी के लोग, उन्हीं के जैसे इनसान ऐसे मौजूद थे जो यही निशानियाँ देखकर मान गए थे कि नबी जिस ख़ुदापरस्ती और तौहीद की तरफ़ बुला रहा है यह बिलकुल हक़ीक़त के मुताबिक़ है।

106. सूर फूँके जाने पर तफ़सीली बहस के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, हाशिया-47; सूरा-14 इबराहीम, हाशिया-57; सूरा-20 ता-हा, हाशिया-78; सूरा-22 हज, हाशिया-1; सूरा-36 या-सीन, हाशिए-46-47; सूरा-39 ज़ुमर, हाशिया-79।

وَتَرَى الْجِبَالَ تَحْسَبُهَا جَامِدَةً وَّهِيَ تَمُرُّ مَرَّ السَّحَابِ ۭ صُنْعَ اللّٰهِ
الَّذِيْٓ اَتْقَنَ كُلَّ شَيْءٍ ۭ اِنَّهٗ خَبِيْرٌۢ بِمَا تَفْعَلُوْنَ ۝ مَنْ جَاۗءَ بِالْحَسَنَةِ
فَلَهٗ خَيْرٌ مِّنْهَا ۚ وَهُمْ مِّنْ فَزَعٍ يَّوْمَىِٕذٍ اٰمِنُوْنَ ۝ وَمَنْ جَاۗءَ بِالسَّيِّئَةِ

(88) आज तू पहाड़ों को देखता है और समझता है कि ख़ूब जमे हुए हैं, मगर उस वक़्त ये बादलों की तरह उड़ रहे होंगे। यह अल्लाह की क़ुदरत का करिश्मा होगा जिसने हर चीज़ को हिकमत के साथ क़ायम किया है। वह ख़ूब जानता है कि तुम लोग क्या करते हो।[107] (89) जो शख़्स भलाई लेकर आएगा उसे उससे ज़्यादा बेहतर बदला मिलेगा[108] और ऐसे लोग उस दिन के हौल से महफ़ूज़ होंगे।[109] (90) और जो बुराई लिए हुए

107. यानी ऐसे ख़ुदा से तुम यह उम्मीद न रखो कि अपनी दुनिया में तुमको अक़्ल और तमीज़ और इस्तेमाल करने के इख़्तियारात देकर वह तुम्हारे कामों से बेख़बर रहेगा और यह न देखेगा कि उसकी ज़मीन में तुम उन इख़्तियारों को कैसे इस्तेमाल करते रहे हो।

108. यानी वह इस लिहाज़ से भी बेहतर होगा कि जितनी नेकी उसने की होगी उससे ज़्यादा इनाम उसे दिया जाएगा और इस लिहाज़ से भी कि उसकी नेकी तो वक़्ती थी और उसके असरात भी दुनिया में एक महदूद ज़माने के लिए थे, मगर उसका इनाम हमेशा रहनेवाला होगा।

109. यानी क़ियामत और दोबारा ज़िन्दा होकर सबके इकट्ठे होने की वे हौलनाकियाँ जो सच को झुठलानेवालों के होश उड़ाए दे रही होंगी, उनके बीच ये लोग मुत्मइन होंगे। इसलिए कि यह सबकुछ उनकी उम्मीदों के मुताबिक़ होगा। वे पहले से अल्लाह और उसके रसूलों की दी हुई ख़बरों के मुताबिक़ अच्छी तरह जानते थे कि क़ियामत क़ायम होनी है, एक दूसरी ज़िन्दगी पेश आनी है और उसमें यही सबकुछ होना है। इसलिए उनपर वह बदहवासी और घबराहट न छाएगी जो मरते दम तक इस चीज़ का इनकार करनेवालों और उससे बेपरवाह रहनेवालों पर छाएगी। फिर उनके इत्मीनान की वजह यह भी होगी कि उन्होंने इस दिन की उम्मीद पर उसके लिए फ़िक्र की थी और यहाँ की कामयाबी के लिए कुछ सामान करके दुनिया से आए थे। इसलिए उनपर वह घबराहट न छाएगी जो उन लोगों पर छाएगी जिन्होंने अपनी ज़िन्दगी की सारी पूंजी दुनिया ही की कामयाबियाँ हासिल करने पर लगा दी थी और कभी न सोचा था कि कोई आख़िरत भी है जिसके लिए कुछ सामान करना है। इनकार करनेवालों के बरख़िलाफ़ यह ईमानवाले अब मुत्मइन होंगे कि जिस दिन के लिए हमने नाजाइज़ फ़ायदों और मज़ों को छोड़ा था और तकलीफ़ें और मुश्किलें बरदाश्त की थीं, वह दिन आ गया है और अब यहाँ हमारी मेहनतों का फल बरबाद होनेवाला नहीं है।

فَكُبَّتْ وُجُوهُهُمْ فِي النَّارِ ۖ هَلْ تُجْزَوْنَ إِلَّا مَا كُنتُمْ تَعْمَلُونَ ﴿٩٠﴾
إِنَّمَا أُمِرْتُ أَنْ أَعْبُدَ رَبَّ هَٰذِهِ الْبَلْدَةِ الَّذِي حَرَّمَهَا وَلَهُ كُلُّ
شَيْءٍ ۖ وَأُمِرْتُ أَنْ أَكُونَ مِنَ الْمُسْلِمِينَ ﴿٩١﴾ وَأَنْ أَتْلُوَ الْقُرْآنَ ۖ
فَمَنِ اهْتَدَىٰ فَإِنَّمَا يَهْتَدِي لِنَفْسِهِ ۖ وَمَن ضَلَّ فَقُلْ إِنَّمَا أَنَا مِنَ
الْمُنذِرِينَ ﴿٩٢﴾ وَقُلِ الْحَمْدُ لِلَّهِ سَيُرِيكُمْ آيَاتِهِ فَتَعْرِفُونَهَا ۚ
وَمَا رَبُّكَ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُونَ ﴿٩٣﴾

आएगा, ऐसे सब लोग औंधे मुँह आग में फेंके जाएँगे। क्या तुम लोग इसके सिवा कोई और बदला पा सकते हो कि जैसा करो वैसा भरो?[109अ]

(91, 92) (ऐ नबी इनसे कहो,) "मुझे तो यही हुक्म दिया गया है कि इस शहर (मक्का) के रब की बन्दगी करूँ जिसने इसे हरम (एहतिराम के क़ाबिल जगह) बनाया है और जो हर चीज़ का मालिक है।[110] मुझे हुक्म दिया गया है कि मैं मुस्लिम (ख़ुदा का फ़रमाँबरदार) बनकर रहूँ और यह क़ुरआन पढ़कर सुनाऊँ।" अब जो हिदायत अपनाएगा, वह अपने ही भले के लिए हिदायत अपनाएगा और जो गुमराह हो, उससे कह दो कि "मैं तो बस ख़बरदार करनेवाला हूँ।" (93) इनसे कहो, "तारीफ़ अल्लाह ही के लिए है। जल्द ही वह तुम्हें अपनी निशानियाँ दिखा देगा और तुम उन्हें पहचान लोगे और तेरा रब बेख़बर नहीं है उन कामों से जो तुम लोग करते हो।

109अ. क़ुरआन मजीद में कई जगहों पर इस बात को साफ़-साफ़ बयान किया गया है कि आख़िरत में बुराई का बदला उतना ही दिया जाएगा जितनी किसी ने बुराई की हो और नेकी का इनाम अल्लाह तआला आदमी के अमल से बहुत ज़्यादा देगा। इसकी कुछ और मिसालों के लिए देखिए— सूरा-10 यूनुस, आयतें—26, 27; सूरा-28 क़सस, आयत-84; सूरा-29 अन्कबूत, आयत-7; सूरा-34 सबा, आयतें—37, 38; सूरा-23 मोमिन, आयत-40।

110. यह सूरा चूँकि उस ज़माने में उतरी थी, जबकि इस्लाम की दावत अभी सिर्फ़ मक्का तक महदूद थी और उसी शहर के लोगों को दी जा रही थी। इसलिए कहा, "मुझे इस शहर के रब की बन्दगी का हुक्म दिया गया है।" इसके साथ उस रब की ख़ासियत यह बयान की गई कि उसने इसे हरम बनाया है। इसका मक़सद मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों को ख़बरदार करना है

कि जिस ख़ुदा का तुमपर यह अज़ीम एहसान (महान उपकार) है, उसने अरब की इन्तिहाई बदअम्नी और बिगाड़ और ख़ून-ख़राबे से भरी ज़मीन में तुम्हारे इस शहर को अम्न का घर बना रखा है और जिसकी मेहरबानी से तुम्हारा यह शहर पूरे अरब देश की अक़ीदत का मरकज़ (श्रद्धा-केन्द्र) बना हुआ है। तुम उसकी नाशुक्री करना चाहो तो करते रहो, मगर मुझे तो यही हुक्म दिया गया है कि मैं उसका शुक्रगुज़ार बन्दा बनूँ और उसी के आगे सिर झुकाऊँ। तुम जिन्हें माबूद बनाए बैठे हो उनमें से किसी की यह ताक़त न थी कि इस शहर को हरम बना देता और अरब के जंगजू और लूट-पाट मचानेवाले क़बीलों से इसका एहतिराम करा सकता। मेरे लिए तो यह मुमकिन नहीं है कि अस्ल एहसान करनेवाले को छोड़कर उनके आगे झुकूँ जिनका कोई ज़र्रा बराबर भी एहसान मुझपर नहीं है।

☆☆☆

28. अल-क़सस

परिचय

नाम

आयत-25 के इस जुमले से लिया गया है "व क़स-स अलैहिल-क़-सस" (और अपना सारा क़िस्सा उसे सुनाया), यानी वह सूरा जिसमें अल-क़सस का लफ़्ज़ आया है। लुग़त (शब्दकोश) के एतिबार से 'क़सस' का मतलब तरतीब से वाक़िआत बयान करना है। इस लिहाज़ से यह लफ़्ज़ मतलब के एतिबार से भी इस सूरा का नाम हो सकता है; क्योंकि इसमें हज़रत मूसा (अलैहि॰) का क़िस्सा तफ़सील से बयान हुआ है।

उतरने का ज़माना

सूरा-27 नम्ल के परिचय में इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) और जाबिर-बिन-ज़ैद (रज़ि॰) की कही हुई यह बात हम नक़्ल कर चुके हैं कि सूरा-26 शुअरा, सूरा-27 नम्ल और सूरा-28 क़सस एक-के-बाद एक उतरी हैं। ज़बान, अन्दाज़े-बयान और मज़ामीन (वार्ताओं) से भी यही महसूस होता है कि इन तीनों सूरतों के उतरने का ज़माना क़रीब-क़रीब एक ही है और इस लिहाज़ से भी इन तीनों में क़रीबी ताल्लुक़ है कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) के क़िस्से के अलग-अलग हिस्से जो इनमें बयान किए गए हैं, वे आपस में मिलकर एक पूरा क़िस्सा बन जाते हैं। सूरा-26 शुअरा में पैग़म्बरी का मंसब क़बूल करने से मजबूरी ज़ाहिर करते हुए हज़रत मूसा (अलैहि॰) अर्ज़ करते हैं कि "फ़िरऔन की क़ौम का एक जुर्म मेरे ज़िम्मे है जिसकी वजह से मैं डरता हूँ कि वहाँ जाऊँगा तो वे मुझे क़त्ल कर देंगे।" फिर जब हज़रत मूसा (अलैहि॰) फ़िरऔन के यहाँ जाते हैं तो वह कहता है, "क्या हमने अपने यहाँ तुझे बच्चा-सा नहीं पाला था और तू हमारे यहाँ कुछ साल रहा, फिर कर गया जो कुछ कि कर गया।" इन दोनों बातों की कोई तफ़सील वहाँ नहीं बयान की गई। इस सूरा में उसे तफ़सील से बयान किया गया है। इसी तरह सूरा-27 नम्ल में क़िस्सा यकायक इस बात से शुरू हो गया है कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) अपने घरवालों को लेकर जा रहे थे और अचानक उन्होंने एक आग देखी। वहाँ उसकी कोई तफ़सील नहीं मिलती

कि यह कैसा सफ़र था, कहाँ से वे आ रहे थे और किधर जा रहे थे। यह तफ़सील इस सूरा में बयान हुई है। इस तरह ये तीनों सूरतें मिलकर मूसा (रज़ि॰) के क़िस्से को पूरा कर देती हैं।

मौज़ू (विषय) और बहसें

इसका मज़मून (विषय) उन शक-शुब्हों और एतिराज़ों को दूर करना है जो नबी (सल्ल॰) की रिसालत (पैग़म्बरी) पर किए जा रहे थे और उन बहानों की काट करना है जो नबी (सल्ल॰) पर ईमान न लाने के लिए पेश किए जाते थे।

इस ग़रज़ के लिए सबसे पहले हज़रत मूसा (अलैहि॰) का क़िस्सा बयान किया गया है जो उतरने के ज़माने के हालात से मिलकर ख़ुद-ब-ख़ुद कुछ हक़ीक़तें सुननेवाले के ज़ेहन में बिठा देता है—

एक यह कि अल्लाह तआला जो कुछ करना चाहता है, उसके लिए वह महसूस न होनेवाले तरीक़े से असबाब और ज़रिए (साधन) जुटा देता है। जिस बच्चे के हाथों आख़िरकार फ़िरऔन का तख़्ता उलटना था, उसे अल्लाह ने ख़ुद फ़िरऔन ही के घर में उसके अपने हाथों परवरिश करा दिया और फ़िरऔन यह न जान सका कि वह किसे पाल-पोस रहा है। उस ख़ुदा की मरज़ी से कौन लड़ सकता है और किसकी चालें उसके मुक़ाबले में कामयाब हो सकती हैं।

दूसरी यह कि नुबूवत किसी शख़्स को किसी बड़े जश्न और ज़मीन और आसमान से किसी भारी एलान के साथ नहीं दी जाती। तुमको हैरत है कि मुहम्मद (सल्ल॰) को चुपके से यह नुबूवत (पैग़म्बरी) कहाँ से मिल गई और बैठे-बिठाए ये नबी (पैग़म्बर) कैसे बन गए। मगर जिन मूसा (अलैहि॰) का तुम ख़ुद हवाला देते हो कि "क्यों न दिया गया इसको वही कुछ जो मूसा को दिया गया था?" (आयत-48) उन्हें भी इसी तरह राह चलते पैग़म्बरी मिल गई थी और किसी को कानों-कान ख़बर भी न हुई थी कि आज 'सीना' नाम के पहाड़ की सुनसान घाटी में क्या घटना घट गई। मूसा (अलैहि॰) ख़ुद एक लम्हे पहले तक न जानते थे कि उन्हें क्या चीज़ मिलनेवाली है। आग लेने चले थे और पैग़म्बरी मिल गई।

तीसरी यह कि जिस बन्दे से ख़ुदा कोई काम लेना चाहता है वह बिना किसी लाव-लश्कर और सरो-सामान के उठता है। कोई उसका मददगार नहीं होता, कोई ताक़त बज़ाहिर उसके पास नहीं होती, मगर बड़े-बड़े लाव-लश्कर और सरो-सामानवाले आख़िरकार उसके मुक़ाबले में धरे-के-धरे रह जाते हैं। जो ताल्लुक़ आज तुम अपने और

मुहम्मद (सल्ल॰) के बीच पा रहे हो उससे बहुत ज़्यादा फ़र्क़ मूसा (अलैहि॰) और फ़िरऔन की ताक़त के बीच था। मगर देख लो कि आख़िर कौन जीता और कौन हारा।

चौथी हक़ीक़त यह कि तुम लोग बार-बार मूसा (अलैहि॰) का हवाला देते हो कि "मुहम्मद (सल्ल॰) को वह कुछ क्यों न दिया गया जो मूसा को दिया गया था।" यानी असा (लाठी) और चमकता हाथ और दूसरे खुले-खुले मोजिज़े (चमत्कार)। मानो तुम ईमान लाने को तो तैयार बैठे हो, बस इन्तिज़ार है तो यह कि तुम्हें वे मोजिज़े दिखाए जाएँ जो मूसा (अलैहि॰) ने फ़िरऔन को दिखाए थे। मगर तुम्हें कुछ मालूम भी है कि जिन लोगों को वे मोजिज़े दिखाए गए थे उन्होंने क्या किया था? वे उन्हें देखकर भी ईमान न लाए। उन्होंने कहा तो यह कहा कि यह तो जादू है; क्योंकि वे हक़ (सत्य) के ख़िलाफ़ हठधर्मी और दुश्मनी में मुब्तला थे। इसी रोग में आज तुम मुब्तला हो। क्या तुम उसी तरह के मोजिज़े देखकर ईमान ले आओगे? फिर तुम्हें कुछ यह भी ख़बर है कि जिन लोगों ने वे मोजिज़े देखकर हक़ का इनकार किया था उनका अंजाम क्या हुआ? आख़िरकार अल्लाह ने उन्हें तबाह करके छोड़ा। अब क्या तुम भी हठधर्मी के साथ मोजिज़ा माँगकर अपनी शामत बुलाना चाहते हो?

ये वे बातें हैं जो किसी तशरीह (व्याख्या) के बिना आप-से-आप हर उस शख़्स के ज़ेहन में उतर जाती थीं जो मक्का के कुफ़्र भरे माहौल में इस क़िस्से को सुनता था; क्योंकि उस वक़्त मुहम्मद (सल्ल॰) और मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के बीच वैसी ही एक कशमकश चल रही थी, जैसी इससे पहले फ़िरऔन और हज़रत मूसा (अलैहि॰) के बीच चल रही थी और इन हालात में यह क़िस्सा सुनाने का मतलब यह था कि उसका हर-हर हिस्सा वक़्त के हालात पर ख़ुद-ब-ख़ुद चस्पाँ होता चला जाए, चाहे एक लफ़्ज़ भी ऐसा न कहा जाए जिससे मालूम हो कि क़िस्से का कौन-सा हिस्सा इस वक़्त के किस मामले पर चस्पाँ हो रहा है।

इसके बाद आयतें 43 से 50 तक अस्ल मौज़ू पर सीधे तौर पर बात शुरू होती है।

पहले इस बात को मुहम्मद (सल्ल॰) की पैग़म्बरी का एक सुबूत ठहराया जाता है कि आप (सल्ल॰) उम्मी (अनपढ़) होने के बावजूद दो हज़ार साल पहले गुज़रा हुआ एक तारीख़ी वाक़िआ इस तफ़सील के साथ ठीक-ठीक सुना रहे हैं। हालाँकि आप (सल्ल॰) के शहर और आप (सल्ल॰) की बिरादरी के लोग अच्छी तरह जानते थे कि आप (सल्ल॰) के पास इन मालूमात के हासिल होने का कोई ऐसा ज़रिआ नहीं है जिसकी वे निशानदेही कर सकें।

फिर आप (सल्ल॰) के पैग़म्बर बनाए जाने को उन लोगों के हक़ में अल्लाह की

एक रहमत ठहराया जाता है कि वे ग़फ़लत में पड़े हुए थे और अल्लाह ने उनकी हिदायत के लिए यह इन्तिज़ाम किया।

फिर उनके उस एतिराज़ का जवाब दिया जाता है जो वे बार-बार पेश करते थे कि "यह नबी वे मोजिज़े क्यों न लाया जो इससे पहले मूसा (अलैहि०) लाए थे।" उनसे कहा जाता है कि मूसा (अलैहि०) जिनके बारे में तुम ख़ुद यह मान रहे हो कि वे ख़ुदा की तरफ़ से मोजिज़े लाए थे, उन्हीं को तुमने कब माना है कि अब इस नबी से मोजिज़े की माँग करते हो? मन की ख़ाहिशों की बन्दगी न करो तो हक़ अब भी तुम्हें नज़र आ सकता है। लेकिन अगर इस रोग में तुम मुब्तला रहो तो चाहे कोई मोजिज़ा आ जाए, तुम्हारी आँखें नहीं खुल सकतीं।

फिर मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों को उस वाक़िए पर इबरत और शर्म दिलाई गई है जो उसी ज़माने में पेश आया था कि बाहर से कुछ ईसाई मक्का आए और नबी (सल्ल०) से क़ुरआन सुनकर ईमान ले आए, मगर मक्का के लोग अपने घर की इस नेमत से फ़ायदा तो क्या उठाते, उनके अबू-जह्ल ने उलटी उन लोगों की खुल्लम-खुल्ला बे-इज़्ज़ती की।

आख़िर में मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के उस अस्ल बहाने को लिया जाता है जो नबी (सल्ल०) की बात न मानने के लिए वे पेश करते थे। उनका कहना यह था कि अगर हम अरबवालों का शिर्कवाला (अनेकेश्वरवादी) मज़हब छोड़कर इस नए तौहीदवाले (एकेश्वरवादी) दीन को क़बूल कर लें तो यकायक इस देश से हमारी मज़हबी, सियासी और मआशी (आर्थिक) चौधराहट ख़त्म हो जाएगी और हमारा हाल यह होगा कि अरब के सबसे ज़्यादा असरवाले क़बीले की हैसियत खोकर इस सरज़मीन में हमारे लिए पनाह लेने की कोई जगह बाक़ी न रहेगी। यह चूँकि क़ुरैश के सरदारों की हक़ से दुश्मनी का अस्ल सबब था और बाक़ी सारे शक-शुब्हे और एतिराज़ सिर्फ़ बहाने थे जो वे आम लोगों को धोखा देने के लिए तराशते थे, इसलिए अल्लाह तआला ने इसपर सूरा के आख़िर तक तफ़सील से बात की है और इसके एक-एक पहलू पर रौशनी डालकर बहुत ही हिकमत भरे तरीक़े से उन तमाम बुनियादी रोगों का इलाज किया है जिनकी वजह से ये लोग हक़ (सत्य) और बातिल (असत्य) का फ़ैसला दुनियावी फ़ायदे के नज़रिए से करते थे।

☆☆☆

آيَاتُهَا ٨٨ ٢٨ سُوْرَةُ الْقَصَصِ مَكِّيَّةٌ ٤٩ رُكُوْعَاتُهَا ٩

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

طٰسٓمّٓ ① تِلْكَ اٰيٰتُ الْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ ② نَتْلُوْا عَلَيْكَ مِنْ نَّبَاِ
مُوْسٰى وَفِرْعَوْنَ بِالْحَقِّ لِقَوْمٍ يُّؤْمِنُوْنَ ③ اِنَّ فِرْعَوْنَ عَلَا فِي
الْاَرْضِ وَجَعَلَ اَهْلَهَا شِيَعًا يَّسْتَضْعِفُ طَآئِفَةً مِّنْهُمْ يُذَبِّحُ

28. अल-क़सस

(मक्का में उतरी--आयतें 88)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) ता-सीम-मीम। (2) ये खुली किताब की आयतें हैं। (3) हम मूसा और फ़िरऔन का कुछ हाल ठीक-ठीक तुम्हें सुनाते हैं,[1] ऐसे लोगों के फ़ायदे के लिए जो ईमान लाएँ।[2]

(4) सच तो यह है कि फ़िरऔन ने ज़मीन में सरकशी की[3] और उसके रहनेवालों को गरोहों में बाँट दिया।[4] उनमें से एक गरोह को वह रुसवा करता था, उसके लड़कों

1. यह क़िस्सा कुछ फ़र्क़ के साथ क़ुरआन में कई जगहों पर आया है। देखिए— सूरा-2 बक़रा, आयतें—47-59; सूरा-7 आराफ़, आयतें—100-141; सूरा-10 यूनुस, आयतें—75-92; सूरा-11हूद, आयतें—96-109; सूरा-17 बनी-इसराईल, आयतें—101-111; सूरा-19 मरयम, आयतें—51-53; सूरा-20 ता-हा, आयतें—45-59; सूरा-23 मोमिनून, आयतें—45-49; सूरा-26 शुअरा, आयतें—10-68; सूरा-27 नम्ल, आयतें—7-14; सूरा-29 अनूकबूत, आयतें—39-40; सूरा-40 मोमिन, आयतें—23-50; सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयतें—46-56; सूरा-44 दुख़ान, आयतें—17-33; सूरा-51 ज़ारियात, आयतें—38-40 और सूरा-79 नाज़िआत, आयतें—15-26।
2. यानी जो लोग बात मानने के लिए तैयार ही न हों उनको सुनाना तो बेकार है। अलबत्ता जिन्होंने हठधर्मी का ताला अपने दिलों पर लगा न रखा हो, उनसे यह बात कही जा रही है।
3. अस्ल में अरबी लफ़्ज़ "अला फ़िल-अर्ज़ि" इस्तेमाल हुआ है जिसका मतलब यह है कि उसने ज़मीन में सिर उठाया, बाग़ियाना रवैया अपनाया, अपनी अस्ल हैसियत यानी बन्दगी के मक़ाम से उठकर ख़ुदमुख़्तारी और ख़ुदावन्दी की शक्ल इख़्तियार कर ली, मातहत बनकर रहने के बजाय अधिकारी बन बैठा और ज़ालिम और घमण्डी बनकर ज़ुल्म ढाने लगा।
4. यानी उसकी हुकूमत का क़ायदा यह न था कि क़ानून की निगाह में देश के सब बाशिन्दे बराबर

أَبْنَآءَهُمْ وَيَسْتَحْيِ نِسَآءَهُمْ ۚ إِنَّهُ كَانَ مِنَ الْمُفْسِدِينَ ﴿٤﴾

को क़त्ल करता और उसकी लड़कियों को जीता रहने देता था।[5] हक़ीक़त में वह फ़सादी

हों और सबको बराबर हक़ दिए जाएँ, बल्कि उसने रहन-सहन और सियासत का यह तरीक़ा अपनाया कि देश के वासियों को गरोहों में बाँट दिया जाए, किसी को रिआयतें और ख़ास अधिकार देकर हुक्मराँ गरोह ठहराया जाए और किसी को ग़ुलाम बनाकर दबाया, पीसा और लूटा जाए।

यहाँ किसी को यह शक न हो कि इस्लामी हुकूमत भी तो मुस्लिम और ज़िम्मी के बीच फ़र्क़ करती है और उनके हक़ और अधिकार हर हैसियत से एक समान नहीं रखती। यह शक इसलिए ग़लत है कि इस फ़र्क़ की बुनियाद फ़िरऔनी फ़र्क़ के बरख़िलाफ़ नस्ल, रंग, ज़बान या तबक़ाती फ़र्क़ पर नहीं है, बल्कि उसूल और मसलक (पंथ) के फ़र्क़ पर है। इस्लामी निज़ामे-हुकूमत (शासन-व्यवस्था) में ज़िम्मियों और मुसलमानों के बीच क़ानूनी हक़ों में बिलकुल भी कोई फ़र्क़ नहीं है। सारा फ़र्क़ सिर्फ़ सियासी अधिकारों में है और इस फ़र्क़ की वजह इसके सिवा कुछ नहीं कि एक उसूली हुकूमत में हुक्मराँ जमाअत सिर्फ़ वही हो सकती है जो हुकूमत के बुनियादी उसूलों की हामी हो। इस जमाअत में हर वह शख़्स दाख़िल हो सकता है जो इसके उसूलों को मान ले और हर वह शख़्स इससे बाहर हो जाता है जो उन उसूलों को मानने से इनकार कर दे। आख़िर इस फ़र्क़ में और उस फ़िरऔनी फ़र्क़ के तरीक़े में कौन-सी समानता है जिसकी बुनियाद पर ग़ुलाम नस्ल का कोई शख़्स कभी हुक्मराँ गरोह में शामिल नहीं हो सकता। जिसमें ग़ुलाम नस्ल के लोगों को सियासी और क़ानूनी अधिकार तो बहुत दूर की बात बुनियादी इनसानी हक़ भी हासिल नहीं होते, यहाँ तक कि ज़िन्दा रहने का हक़ भी उनसे छीन लिया जाता है। जिसमें ग़ुलामों और मातहतों के लिए किसी हक़ की कोई ज़मानत नहीं होती, तमाम फ़ायदे और अच्छे मंसब और दर्जे सिर्फ़ हुक्मराँ (सत्ताधारी) क़ौम के लिए ख़ास होते हैं और ये ख़ास हक़ सिर्फ़ उसी शख़्स को हासिल होते हैं जो हुक्मराँ क़ौम में पैदा हो जाए।

5. बाइबल में इसकी जो तशरीह (व्याख्या) मिलती है वह यह है—
"तब मिस्र में एक नया बादशाह हुआ जो यूसुफ़ को नहीं जानता था और उसने अपनी क़ौम के लोगों से कहा कि देखो, इसराईली गिनती में हमसे ज़्यादा और ताक़त में अधिक बढ़ गए हैं, इसलिए आओ हम उनके साथ हिकमत से पेश आएँ। कहीं ऐसा न हो कि जब वे और ज़्यादा हो जाएँ और उस वक़्त जंग छिड़ जाए तो वे हमारे दुश्मनों से मिलकर हमसे लड़ें और इस देश से निकल जाएँ। इसलिए उन्होंने उनपर बेगारी करानेवालों को मुक़र्रर किया जो उनसे सख़्त काम लेकर उन्हें सताएँ और उन्होंने फ़िरऔन के लिए पितोम और रामसेस नामी ज़ख़ीरेवाले शहरों को बनाया......और मिस्रियों ने बनी-इसराईल पर सख़्ती करके उनसे काम कराया और उन्होंने उनसे सख़्त मेहनत से गारा और ईंट बनवा-बनवाकर और खेत में हर तरह के काम लेकर उनकी ज़िन्दगी दूभर कर दी। जिस किसी काम में भी वे उनसे ख़िदमत लेते थे, तो उसमें

وَنُرِيْدُ اَنْ نَّمُنَّ عَلَى الَّذِيْنَ اسْتُضْعِفُوْا فِى الْاَرْضِ وَنَجْعَلَهُمْ اَىِٕمَّةً

(बिगाड़ फैलानेवाले) लोगों में से था। (5) और हम यह इरादा रखते थे कि मेहरबानी करें उन लोगों पर जो ज़मीन में रुसवा करके रखे गए थे और उन्हें पेशवा बना दें[6] और उन्हीं

वे कठोरता का व्यवहार करते थे।......तब मिस्र के बादशाह ने इबरानी दाइयों से......बातें कीं और कहा कि जब इबरानी (यानी इसराईली) औरतों के तुम बच्चा जनाओ और उनको प्रसव के पत्थर पर बैठी देखो तो अगर बेटा हो तो उसे मार डालना और अगर बेटी हो तो जीवित रहने देना।''
(निर्गमन, अध्याय-1, आयत-8-16)

इससे मालूम हुआ कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) का दौर गुज़र जाने के बाद मिस्र में एक क़ौम-परस्ताना इंक़िलाब हुआ था और क़िबतियों के हाथ में जब दोबारा हुकूमत आई तो नई क़ौमपरस्त हुकूमत ने बनी-इसराईल का ज़ोर तोड़ने की पूरी कोशिश की थी। इस सिलसिले में सिर्फ़ इतने ही पर बस न किया गया कि इसराईलियों को बे-इज़्ज़त और रुसवा किया जाता और उन्हें छोटे दर्जे के काम के लिए ख़ास कर लिया जाता, बल्कि इससे आगे बढ़कर यह पॉलिसी अपनाई गई कि बनी-इसराईल की तादाद घटाई जाए और उनके लड़कों को क़त्ल करके सिर्फ़ उनकी लड़कियों को ज़िन्दा रहने दिया जाए, ताकि धीरे-धीरे उनकी औरतें क़िबतियों के इस्तेमाल में आती जाएँ और उनसे इसराईल के बजाय क़िब्ती नस्ल पैदा हो। तलमूद इसकी और ज़्यादा तफ़सील यह देती है कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) के इन्तिक़ाल पर एक सदी से कुछ ज़्यादा मुद्दत गुज़र जाने के बाद यह इंक़िलाब हुआ था। यह बताती है कि नई क़ौमपरस्त हुकूमत ने पहले तो बनी-इसराईल को उनकी उपजाऊ ज़मीनों और उनके मकानों और जायदादों से महरूम किया। उसके बाद भी जब क़िब्ती हुक्मरानों ने महसूस किया कि बनी-इसराईल और उनके अपने मज़हबवाले मिस्री काफ़ी ताक़तवर हैं तो उन्होंने इसराईलियों को बे-इज़्ज़त और रुसवा करना शुरू किया और उनसे सख़्त मेहनत के काम बहुत कम मज़दूरी पर या बिना मज़दूरी ही के लेने लगे। यह तफ़सीर है क़ुरआन के इस बयान की कि मिस्र की आबादी के एक गरोह को यह बे-इज़्ज़त करता था और सूरा-2 बक़रा में अल्लाह तआला के इस इरशाद (कथन) की कि आले-फ़िरऔन बनी-इसराईल को सख़्त अज़ाब देते थे।

मगर बाइबल और क़ुरआन दोनों इस ज़िक्र से ख़ाली हैं कि फ़िरऔन से किसी ज्योतिषी ने यह कहा था कि बनी-इसराईल में एक लड़का पैदा होनेवाला है जिसके हाथों फ़िरऔनी हुकूमत का तख़्ता उलट जाएगा और इसी ख़तरे को रोकने के लिए फ़िरऔन ने इसराईल के लड़कों को क़त्ल करने का हुक्म दिया था, या फ़िरऔन ने कोई भयानक सपना देखा था और उसका यह मतलब बताया गया था कि एक लड़का बनी-इसराईल में ऐसा और ऐसा पैदा होनेवाला है। यह कहानी तलमूद और दूसरी इसराईली रिवायतों से हमारे तफ़सीर लिखनेवालों ने नक़्ल की है। (देखिए– जैविश इंसाइक्लोपीडिया, लेख 'मूसा' और The Talmud Selections. P. 23-24)

6. यानी उन्हें दुनिया में क़ियादत (नेतृत्व) और रहनुमाई का मक़ाम दें।

وَنَجْعَلَهُمُ الْوٰرِثِيْنَ ۝ وَنُمَكِّنَ لَهُمْ فِي الْاَرْضِ وَنُرِيَ فِرْعَوْنَ وَهَامٰنَ
وَجُنُوْدَهُمَا مِنْهُمْ مَّا كَانُوْا يَحْذَرُوْنَ ۝ وَاَوْحَيْنَآ اِلٰٓى اُمِّ مُوْسٰٓى اَنْ
اَرْضِعِيْهِ ۚ فَاِذَا خِفْتِ عَلَيْهِ فَاَلْقِيْهِ فِي الْيَمِّ وَلَا تَخَافِيْ وَلَا تَحْزَنِيْ ۚ

को वारिस बनाएँ[7] (6) और ज़मीन में उनको हुकूमत दें और उनसे फ़िरऔन और हामान[8] और उनके लश्करों को वही कुछ दिखला दें जिसका उन्हें डर था।

(7) हमने[9] मूसा की माँ को इशारा किया कि "इसको दूध पिला, फिर जब तुझे उसकी जान का ख़तरा हो तो उसे दरिया में डाल दे और कुछ ख़ौफ़ और दुख न कर,

7. यानी उनको ज़मीन की विरासत दें और वे हुक्मराँ और हुकूमत करनेवाले हों।
8. मग़रिबी मुस्तशरिक़ीन (इस्लाम का दुराग्रहपूर्ण अध्ययन करनेवाले पश्चिमी विद्वानों) ने इस बात पर बड़ी ले दे की है कि हामान तो ईरान के बादशाह अख़्सवीरस यानी ख़शियार शा (Xerxes) के दरबार का एक अमीर (सरदार) था और उस बादशाह का ज़माना हज़रत मूसा के सैंकड़ों साल बाद 484 और 465 ई॰पू॰ में गुज़रा है, मगर क़ुरआन ने उसे मिस्र ले जाकर फ़िरऔन का वज़ीर (मंत्री) बना दिया। इन लोगों की अक़्ल पर तास्सुब (दुराग्रह) का परदा पड़ा हुआ न हो तो ये ख़ुद ग़ौर करें कि आख़िर उनके पास यह यक़ीन करने के लिए क्या ऐतिहासिक सुबूत मौजूद है कि अख़्सवीरस के दरबारी हामान से पहले दुनिया में कोई शख़्स कभी इस नाम का नहीं गुज़रा है। जिस फ़िरऔन का ज़िक्र यहाँ हो रहा है अगर उसके तमाम वज़ीरों और सरदारों और दरबारियों की कोई मुकम्मल फ़ेहरिस्त बिलकुल भरोसेमन्द ज़रिए से किसी मुस्तशरिक़ साहब को मिल गई है जिसमें हामान का नाम नहीं है तो वह उसे छिपाए क्यों बैठे हैं? उन्हें उसकी तस्वीर फ़ौरन छपवा देनी चाहिए; क्योंकि क़ुरआन को झुठलाने के लिए इससे ज़्यादा असरदार हथियार उन्हें कोई और न मिलेगा।
9. बीच में यह ज़िक्र छोड़ दिया गया है कि इन्हीं हालात में एक इसराईली माँ-बाप के यहाँ वह बच्चा पैदा हो गया जिसको दुनिया ने मूसा (अलैहि॰) के नाम से जाना। बाइबल और तलमूद के बयान के मुताबिक़ यह ख़ानदान हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) के बेटे लावी की औलाद में से था। हज़रत मूसा (अलैहि॰) के बाप का नाम इन दोनों किताबों में 'इमराम' बताया गया है, क़ुरआन इसी को 'इमरान' कहता है। मूसा (अलैहि॰) की पैदाइश से पहले उनके यहाँ दो बच्चे हो चुके थे। सबसे बड़ी लड़की मरयम (Miriam) नाम की थीं जिनका ज़िक्र आगे आ रहा है। उनसे छोटे हज़रत हारून (अलैहि॰) थे। शायद यह फ़ैसला कि बनी-इसराईल के यहाँ जो लड़का पैदा हो उसे क़त्ल कर दिया जाए, हज़रत हारून (अलैहि॰) की पैदाइश के ज़माने में नहीं हुआ था, इसलिए वे बच गए। फिर यह क़ानून जारी हुआ और उस भयानक दौर में तीसरे बच्चे की पैदाइश हुई।

إِنَّا رَآدُّوهُ إِلَيْكِ وَجَاعِلُوهُ مِنَ الْمُرْسَلِينَ۝ فَالْتَقَطَهُ آلُ فِرْعَوْنَ
لِيَكُونَ لَهُمْ عَدُوًّا وَّحَزَنًا ط إِنَّ فِرْعَوْنَ وَهَامٰنَ وَجُنُودَهُمَا

हम इसे तेरे ही पास वापस ले आएँगे और इसको पैग़म्बरों में शामिल करेंगे।"[10] (8) आख़िरकार फ़िरऔन के घरवालों ने उसे (दरिया से) निकाल लिया, ताकि वह उनका दुश्मन और उनके लिए दुख का सबब बने।[11] वाक़ई फ़िरऔन और हामान और उनके लश्कर

10. यानी पैदा होते ही नदी में डाल देने का हुक्म न था, बल्कि कहा यह गया कि जब तक ख़तरा न हो बच्चे को दूध पिलाती रहो। जब राज़ खुलता हुआ दिखाई दे और अन्देशा हो कि बच्चे की आवाज़ सुनकर या और किसी तरह दुश्मनों को इसकी पैदाइश का पता चल जाएगा, या ख़ुद बनी-इसराईल ही में से कोई कमीना आदमी मुख़बिरी कर बैठेगा तो बिलकुल निडर होकर उसे एक ताबूत (सन्दूक़) में रखकर नदी में डाल देना। बाइबल का बयान है कि पैदाइश के बाद तीन महीने तक हज़रत मूसा (अलैहि०) की माँ उनको छिपाए रहीं। तलमूद इसपर इज़ाफ़ा करती है कि फ़िरऔन की हुकूमत ने उस ज़माने में जासूस औरतें छोड़ रखी थीं जो इसराईली घरों में अपने साथ छोटे-छोटे बच्चे ले जाती थीं और वहाँ किसी-न-किसी तरह उन बच्चों को रुला देती थीं ताकि अगर किसी इसराईली ने अपने यहाँ कोई बच्चा छिपा रखा हो तो वह भी दूसरे बच्चे की आवाज़ सुनकर रोने लगे। जासूसी के इस नए तरीक़े से हज़रत मूसा (अलैहि०) की माँ परेशान हो गईं और उन्होंने अपने बच्चे की जान बचाने के लिए पैदाइश के तीन महीने बाद उसे नदी में डाल दिया। इस हद तक इन दोनों किताबों का बयान क़ुरआन के मुताबिक़ है और नदी में डालने की कैफ़ियत भी उन्होंने वही बताई है जो क़ुरआन में बताई गई है। सूरा-20 ता-हा में कहा गया है, "बच्चे को एक ताबूत में रखकर नदी में डाल दे।" (आयत-39) इसी की ताईद (समर्थन) बाइबल और तलमूद भी करती हैं। उनका बयान है कि हज़रत मूसा (अलैहि०) की माँ ने सरकण्डों का एक टोकरा बनाया और उसे चिकनी मिट्टी और राल से लेपकर पानी से महफ़ूज़ कर दिया, फिर उसमें हज़रत मूसा (अलैहि०) को लिटाकर नील नदी में डाल दिया। लेकिन सबसे बड़ी बात जो क़ुरआन में बयान की गई है उसका कोई ज़िक्र इसराईली रिवायतों में नहीं है, यानी यह कि हज़रत मूसा (अलैहि०) की माँ ने यह काम अल्लाह तआला के इशारे पर किया था और अल्लाह तआला ने पहले ही उनको यह इत्मीनान दिला दिया था कि इस तरीक़े पर अमल करने में न सिर्फ़ यह कि तुम्हारे बच्चे की जान को कोई ख़तरा नहीं है, बल्कि हम बच्चे को तुम्हारे पास ही पलटा लाएँगे और यह कि तुम्हारा यह बच्चा आगे चलकर हमारा रसूल (पैग़म्बर) होनेवाला है।

11. यह उनका मक़सद न था, बल्कि यह उनके उस काम का अंजाम होना था। वे उस बच्चे को उठा रहे थे जिसके हाथों आख़िरकार उन्हें तबाह होना था।

كَانُوْا خٰطِـِٕيْنَ۝۸ وَقَالَتِ امْرَاَتُ فِرْعَوْنَ قُرَّتُ عَيْنٍ لِّيْ وَلَكَ ۭ لَا
تَقْتُلُوْهُ ۖ عَسٰٓى اَنْ يَّنْفَعَنَآ اَوْ نَتَّخِذَهٗ وَلَدًا وَّهُمْ لَا يَشْعُرُوْنَ۝۹

(अपनी तदबीर में) बड़े ग़लत काम करनेवाले लोग थे। (9) फ़िरऔन की बीवी ने (उससे) कहा, "यह मेरे और तेरे लिए आँखों की ठण्डक है, इसे क़त्ल न करो, क्या अजब कि यह हमारे लिए फ़ायदेमन्द साबित हो, या हम इसे बेटा ही बना लें।"[12] और वे अंजाम से बेख़बर थे।

12. इस बयान से जो सूरते-हाल साफ़ समझ में आती है वह यह है कि ताबूत या टोकरा नदी में बहता हुआ जब उस मक़ाम पर पहुँचा जहाँ फ़िरऔन के महल थे, तो फ़िरऔन के नौकरों ने उसे पकड़ लिया और ले जाकर बादशाह और मलिका के सामने पेश कर दिया। मुमकिन है कि बादशाह और मलिका ख़ुद उस वक़्त नदी के किनारे सैर कर रहे हों और उनकी निगाह उस टोकरे पर पड़ी हो और उन्हीं के हुक्म से वह निकाला गया हो। उसमें एक बच्चा पड़ा हुआ देखकर आसानी से यह अन्दाज़ा लगाया जा सकता था कि यह ज़रूर किसी इसराईली का बच्चा है; क्योंकि वह उन मुहल्लों की तरफ़ से आ रहा था जिनमें बनी-इसराईल रहते थे और उन्हीं के बेटे उस ज़माने में क़त्ल किए जा रहे थे और उन्हीं के बारे में यह उम्मीद की जा सकती थी कि किसी ने बच्चे को छिपाकर कुछ मुद्दत तक पाला है और फिर जब वह ज़्यादा देर छिप न सका तो अब उसे इस उम्मीद पर नदी में डाल दिया है कि शायद इसी तरह उसकी जान बच जाए और कोई उसे निकालकर पाल ले। इसी वजह से कुछ ज़रूरत से ज़्यादा वफ़ादार ग़ुलामों ने कहा कि हुज़ूर इसे फ़ौरन क़त्ल करा दें, यह भी कोई साँप (इसराईली दुश्मन) का बच्चा ही है। लेकिन फ़िरऔन की बीवी आख़िर औरत थी और नामुमकिन नहीं कि बे-औलाद हो। फिर बच्चा भी बहुत प्यारी सूरत का था, जैसाकि सूरा-20 ता-हा में अल्लाह तआला ख़ुद हज़रत मूसा को बताता है कि "मैंने अपनी तरफ़ से तेरे ऊपर मुहब्बत डाल दी थी।" (आयत-39) यानी तुझे ऐसी मोहनी सूरत दी थी कि देखनेवालों को बे-इख़्तियार तुझपर प्यार आ जाता था। इसलिए उस औरत से रहा न गया और उसने कहा कि इसे क़त्ल न करो, बल्कि लेकर पाल लो। यह जब हमारे यहाँ परवरिश पाएगा और हम इसे अपना बेटा बना लेंगे तो इसे क्या ख़बर होगी कि मैं इसराईली हूँ। यह अपने आपको आले-फ़िरऔन ही का एक शख़्स समझेगा और इसकी क़ाबिलियतें बनी-इसराईल के बजाय हमारे काम आएँगी।

बाइबल और तलमूद का बयान है कि वह औरत जिसने हज़रत मूसा (अलैहि.) को पालने और बेटा बनाने के लिए कहा था फ़िरऔन की बेटी थी। लेकिन क़ुरआन साफ़ अलफ़ाज़ में उसे 'इम-रअतु फ़िरऔन' (फ़िरऔन की बीवी) कहता है और ज़ाहिर है कि सदियों बाद तरतीब दी हुई ज़बानी रिवायतों के मुक़ाबले में सीधे तौर पर अल्लाह तआला का बयान ही भरोसे के लायक़ है। कोई वजह नहीं कि ख़ाह-मख़ाह इसराईली रिवायतों से तालमेल पैदा करने के लिए

وَاَصۡبَحَ فُؤَادُ اُمِّ مُوۡسٰى فٰرِغًا ؕ اِنۡ كَادَتۡ لَتُبۡدِىۡ بِهٖ لَوۡلَاۤ
اَنۡ رَّبَطۡنَا عَلٰى قَلۡبِهَا لِتَكُوۡنَ مِنَ الۡمُؤۡمِنِيۡنَ ⑩ وَقَالَتۡ
لِاُخۡتِهٖ قُصِّيۡهِ فَبَصُرَتۡ بِهٖ عَنۡ جُنُبٍ وَّهُمۡ لَا يَشۡعُرُوۡنَ ⑪
وَحَرَّمۡنَا عَلَيۡهِ الۡمَرَاضِعَ مِنۡ قَبۡلُ فَقَالَتۡ هَلۡ اَدُلُّكُمۡ عَلٰٓى
اَهۡلِ بَيۡتٍ يَّكۡفُلُوۡنَهٗ لَكُمۡ وَهُمۡ لَهٗ نٰصِحُوۡنَ ⑫ فَرَدَدۡنٰهُ

(10) उधर मूसा की माँ का दिल उड़ा जा रहा था। वह इसका राज़ खोल बैठती अगर हम उसकी ढाढ़स न बंधा देते, ताकि वह (हमारे वादे पर) ईमान लानेवालों में से हो। (11) उसने बच्चे की बहन से कहा, इसके पीछे-पीछे जा। चुनाँचे वह अलग से उसको इस तरह देखती रही कि (दुश्मनों को) उसका पता न चला।[13] (12) और हमने बच्चे पर पहले ही दूध पिलानेवालों की छातियाँ हराम कर रखी थीं।[14] (यह हालत देखकर) उस लड़की ने उनसे कहा, "मैं तुम्हें ऐसे घर का पता बताऊँ जिसके लोग उसकी परवरिश का ज़िम्मा लें और ख़ैरख़ाही के साथ उसे रखें?[15] (13) इस तरह हम

अरबी मुहावरे और इस्तेमाल के ख़िलाफ़ 'इम-रअतु फ़िरऔन' का मतलब "फ़िरऔन के ख़ानदान की औरत" लिया जाए।

13. यानी लड़की ने इस तरीक़े से टोकरे पर निगाह रखी कि बहते हुए टोकरे के साथ-साथ वह उसको देखती हुई चलती भी रही और दुश्मन यह न समझ सके कि उसका कोई ताल्लुक़ इस टोकरेवाले बच्चे के साथ है। इसराईली रिवायतों के मुताबिक़ हज़रत मूसा (अलैहि॰) की यह बहन उस वक़्त 10-12 साल की थीं। उनकी अक़्लमन्दी का अन्दाज़ा इससे हो सकता है कि उन्होंने बड़ी होशियारी के साथ भाई का पीछा किया और यह पता चला लिया कि वह फ़िरऔन के महल में पहुँच चुका है।
14. यानी फ़िरऔन की बीवी जिस अन्ना को भी दूध पिलाने के लिए बुलाती थी, बच्चा उसकी छाती को मुँह न लगाता था।
15. इससे मालूम हुआ कि फ़िरऔन के महल में भाई के पहुँच जाने के बाद बहन घर नहीं बैठ गई, बल्कि वह अपनी उसी होशियारी के साथ महल के आसपास चक्कर लगाती रही। फिर जब उसे पता चला कि बच्चा किसी का दूध नहीं पी रहा है और मलिका-ए-आलिया परेशान हैं कि कोई ऐसी अन्ना (दूध पिलानेवाली) मिले जो बच्चे को पसन्द आए तो वह होशियार लड़की सीधी महल में पहुँच गई और जाकर कहा कि मैं एक अच्छी अन्ना का पता बताती हूँ जो इस

اِلٰٓى اُمِّهٖ كَیْ تَقَرَّ عَیْنُهَا وَلَا تَحْزَنَ وَلِتَعْلَمَ اَنَّ وَعْدَ اللّٰهِ حَقٌّ
وَّلٰكِنَّ اَكْثَرَهُمْ لَا یَعْلَمُوْنَ ﴿١٣﴾

ع

मूसा[16] को उसकी माँ के पास पलटा लाए, ताकि उसकी आँखें ठण्डी हों और वह दुखी न हो और जान ले कि अल्लाह का वादा सच्चा था,[17] मगर अकसर लोग इस बात को नहीं जानते।

बच्चे को बड़ी ममता के साथ पालेगी।

इस जगह पर यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि पुराने ज़माने में उन देशों के बड़े और ख़ानदानी लोग बच्चों को अपने यहाँ पालने के बजाय आम तौर से अन्नाओं (दूध पिलानेवाली औरतों) के सिपुर्द कर देते थे और वे अपने यहाँ उनकी परवरिश करती थीं। नबी (सल्ल॰) की ज़िन्दगी के हालात में भी यह ज़िक्र आता है कि मक्का में समय-समय पर आसपास की औरतें अन्ना का काम करने के लिए आती थीं और सरदारों के बच्चे दूध पिलाने के लिए अच्छे-अच्छे मेहनतानों पर हासिल करके साथ ले जाती थीं। नबी (सल्ल॰) ने ख़ुद भी हलीमा सादिया के यहाँ रेगिस्तान में परवरिश पाई है। यही तरीक़ा मिस्र में भी था। इसी बुनियाद पर हज़रत मूसा (अलैहि॰) की बहन ने यह नहीं कहा कि मैं एक अच्छी अन्ना लाकर देती हूँ, बल्कि यह कहा कि मैं ऐसे घर का पता बताती हूँ जिसके लोग उसकी परवरिश का ज़िम्मा लेंगे और उसे भलाई के जज़्बे के साथ पालेंगे।

16. बाइबल और तलमूद से मालूम होता है कि बच्चे का नाम 'मूसा' फ़िरऔन के घर में रखा गया था। यह इबरानी ज़बान का नहीं, बल्कि क़िब्ती ज़बान का लफ़्ज़ है और इसका मतलब है, "मैंने इसे पानी से निकाला।" पुरानी मिस्री ज़बान से भी हज़रत मूसा (अलैहि॰) का यह नाम रखना सही साबित होता है। इस ज़बान में 'मू' पानी को कहते थे और 'ओशे' का मतलब था 'बचाया हुआ।'

17. और अल्लाह की इस हिकमत भरी तदबीर का फ़ायदा यह भी हुआ कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) सचमुच फ़िरऔन के शहज़ादे न बन सके, बल्कि अपने ही माँ-बाप और बहन-भाइयों में परवरिश पाकर उन्हें अपनी अस्लियत अच्छी तरह मालूम हो गई। अपनी ख़ानदानी रिवायतों से, अपने बाप-दादा के मज़हब से और अपनी क़ौम से उनका रिश्ता न कट सका। वह आले-फ़िरऔन के एक शख़्स बनने के बजाय अपने दिली जज़्बात और ख़यालात के एतिबार से पूरी तरह बनी-इसराईल के एक शख़्स बनकर उठे।

नबी (सल्ल॰) एक हदीस में फ़रमाते हैं, "जो शख़्स अपनी रोज़ी कमाने के लिए काम करे और उस काम में अल्लाह की ख़ुशनूदी को सामने रखे, उसकी मिसाल हज़रत मूसा (अलैहि॰) की माँ की-सी है कि उन्होंने अपने ही बेटे को दूध पिलाया और उसका मेहनताना भी पाया।" (इब्ने-कसीर) यानी ऐसा शख़्स अगरचे अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट भरने के लिए काम

وَلَمَّا بَلَغَ اَشُدَّهٗ وَاسْتَوٰۤى اٰتَيْنٰهُ حُكْمًا وَّعِلْمًا ؕ وَكَذٰلِكَ نَجْزِى الْمُحْسِنِيْنَ ﴿١٤﴾

(14) जब मूसा अपनी पूरी जवानी को पहुँच गया और उसका बढ़ना पूरा[18] हो गया तो हमने उसे हुक्म और इल्म अता किया,[19] हम नेक लोगों को ऐसा ही बदला देते हैं।

करता है, लेकिन चूँकि वह अल्लाह तआला की ख़ुशनूदी सामने रखकर ईमानदारी से काम करता है, जिसके साथ भी मामला करता है उसका हक़ ठीक-ठीक अदा करता है और हलाल रोज़ी से ख़ुद की और अपने बाल-बच्चों की परवरिश अल्लाह की इबादत समझते हुए करता है, इसलिए वह अपनी रोज़ी कमाने पर भी अल्लाह के यहाँ इनाम का हक़दार होता है। यानी रोज़ी भी कमाई और अल्लाह से अज्रो-सवाब (इनाम) भी पाया।

18. यानी जब उनका जिस्मानी और ज़ेहनी नशो-नमा पूरा हो गया। यहूदी रिवायतों में उस वक़्त हज़रत मूसा (अलैहि॰) की अलग-अलग उम्रें बताई गई हैं। किसी ने 18 साल लिखी है, किसी ने 20 साल और किसी ने 40 साल। बाइबल के नए नियम में 40 साल उम्र बताई गई है (प्रेरितों, 7:23), लेकिन क़ुरआन किसी उम्र को साफ़ तौर से बयान नहीं करता। जिस मक़सद के लिए क़िस्सा बयान किया जा रहा है उसके लिए बस इतना ही जान लेना काफ़ी है कि आगे जिस वाक़िए का ज़िक्र हो रहा है, वह उस ज़माने का है जब हज़रत मूसा (अलैहि॰) पूरी जवानी को पहुँच चुके थे।

19. हुक्म से मुराद हिकमत, अक़्लमन्दी, समझ-बूझ और फ़ैसला करने की ताक़त है और इल्म से मुराद दीनी और दुनियावी इल्म दोनों हैं; क्योंकि अपने माँ-बाप के साथ ताल्लुक़ क़ायम रखने और मिलते-जुलते रहने की वजह से उनको अपने बाप-दादा (हज़रत यूसुफ़, याक़ूब, इसहाक़ और इबराहीम अलैहिमुस्सलाम) की तालीमात की भी जानकारी हासिल हो गई और वक़्त के बादशाह के यहाँ शहज़ादे की हैसियत से परवरिश पाने की वजह से उनको वे तमाम दुनियावी इल्म भी हासिल हुए जो उस ज़माने के मिस्रवालों में मौजूद थे। इस हुक्म और इल्म की देन से मुराद नुबूवत (पैग़म्बरी) की देन नहीं है; क्योंकि हज़रत मूसा (अलैहि॰) को नुबूवत तो उसके कई साल बाद दी गई, जैसाकि आगे आ रहा है और उससे पहले सूरा-26 शुअरा (आयत-21) में भी बयान हो चुका है।

शहज़ादे की हैसियत से गुज़रनेवाले इस ज़माने की तालीम व तरबियत के बारे में बाइबल की किताब 'प्रेरितों के काम' में बताया गया है कि "मूसा ने मिस्रियों के तमाम इल्मों की तालीम पाई और वह बात और काम दोनों में क़ुव्वतवाला था।" (7:22)। तलमूद का बयान है कि मूसा (अलैहि॰) फ़िरऔन के घर में एक ख़ूबसूरत जवान बनकर उठे। शहज़ादों का-सा लिबास पहनते, शहज़ादों की तरह रहते और लोग उनकी बहुत इज़्ज़त करते थे। वे अकसर जुशन के इलाक़े में जाते, जहाँ इसराईलियों की बस्तियाँ थीं और उन तमाम सख़्तियों को अपनी आँखों से देखते जो

وَدَخَلَ الْمَدِيْنَةَ عَلٰى حِيْنِ غَفْلَةٍ مِّنْ اَهْلِهَا فَوَجَدَ فِيْهَا رَجُلَيْنِ
يَقْتَتِلٰنِ ۥ هٰذَا مِنْ شِيْعَتِهٖ وَهٰذَا مِنْ عَدُوِّهٖ ۚ فَاسْتَغَاثَهُ الَّذِيْ
مِنْ شِيْعَتِهٖ عَلَى الَّذِيْ مِنْ عَدُوِّهٖ ۙ فَوَكَزَهٗ مُوْسٰى فَقَضٰى عَلَيْهِ ۥ
قَالَ هٰذَا مِنْ عَمَلِ الشَّيْطٰنِ ؕ اِنَّهٗ عَدُوٌّ مُّضِلٌّ مُّبِيْنٌ ⑮ قَالَ رَبِّ

(15) (एक दिन) वह शहर में ऐसे वक़्त दाख़िल हुआ जबकि शहर के लोग बेसुध थे।[20] वहाँ उसने देखा कि दो आदमी लड़ रहे हैं। एक उसकी अपनी क़ौम का था और दूसरा उसकी दुश्मन क़ौम से ताल्लुक़ रखता था। उसकी क़ौम के आदमी ने दुश्मन क़ौमवाले के ख़िलाफ़ उसे मदद के लिए पुकारा। मूसा ने उसको एक घूँसा मारा[21] और उसका काम तमाम कर दिया। (यह हरकत होते ही) मूसा ने कहा, "यह शैतान का किया-धरा है, वह सख़्त दुश्मन और खुला गुमराह करनेवाला है।"[22] (16) फिर वह कहने लगा, "ऐ मेरे रब,

उनकी क़ौम के साथ क़िब्ती हुकूमत के लोग करते थे। इन्हीं की कोशिश से फ़िरऔन ने इसराईलियों के लिए हफ़्ते में एक दिन छुट्टी तय की। उन्होंने फ़िरऔन से कहा कि हमेशा लगातार काम करने की वजह से ये लोग कमज़ोर हो जाएँगे और हुकूमत ही के काम का नुक़सान होगा। इनकी ताक़त बहाल होने के लिए ज़रूरी है कि इन्हें हफ़्ते में एक दिन आराम का दिया जाय। इसी तरह अपनी अक़्लमन्दी से उन्होंने और बहुत-से ऐसे काम किए जिनकी वजह से सारे मिस्र देश में उनकी शोहरत हो गई थी। (इक़्तिबासाते-तलमूद, पेज-129)

20. हो सकता है कि यह सुबह-सवेरे का वक़्त हो, या गर्मी में दोपहर का, या सर्दियों में रात का। बहरहाल मुराद यह है कि जब सड़कें सुनसान थीं और शहर में सन्नाटा छाया हुआ था।
"शहर में दाख़िल हुआ", इन अलफ़ाज़ से ज़ाहिर होता है कि राजधानी के शाही महल आम आबादी से बाहर क़ायम थे। हज़रत मूसा (अलैहि०) चूँकि शाही महल में रहते थे इसलिए "शहर में निकले" कहने के बजाय "शहर में दाख़िल हुए" कहा गया है।

21. अस्ल में अरबी लफ़्ज़ 'व-क-ज़' इस्तेमाल हुआ है जिसका मतलब थप्पड़ मारना भी है और घूँसा मारना भी। हमने इस ख़याल से कि थप्पड़ से मौत हो जाना घूँसे के मुक़ाबले ज़्यादा मुश्किल है, इसका तर्जमा घूँसा मारना किया है।

22. इससे अन्दाज़ा होता है कि घूँसा खाकर जब मिस्रवासी गिरा होगा और उसने दम तोड़ा होगा तो कैसी सख़्त शर्मिन्दगी और घबराहट की हालत में ये अलफ़ाज़ हज़रत मूसा (अलैहि०) की ज़बान से निकले होंगे। उनका कोई इरादा क़त्ल का न था। न क़त्ल के लिए घूँसा मारा जाता है, न कोई शख़्स यह उम्मीद रखता है कि एक घूँसा खाते ही एक भला-चंगा आदमी चल

إِنِّي ظَلَمْتُ نَفْسِي فَاغْفِرْ لِي فَغَفَرَ لَهُ إِنَّهُ هُوَ الْغَفُورُ
الرَّحِيمُ ﴿١٦﴾ قَالَ رَبِّ بِمَا أَنْعَمْتَ عَلَيَّ فَلَنْ أَكُونَ

मैंने अपने आपपर ज़ुल्म कर डाला, मुझे माफ़ कर दे।''[23] चुनाँचे अल्लाह ने उसे माफ़ कर दिया, वह बहुत माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।[24] (17) मूसा ने अहद (प्रण) किया कि ''ऐ मेरे रब, यह एहसान जो तूने मुझपर किया है[25] इसके बाद अब मैं

बसेगा। इस वजह से हज़रत मूसा (अलैहि०) ने कहा कि यह शैतान की कोई शरारत भरी स्कीम मालूम होती है। उसने एक बड़ा फ़साद खड़ा करने के लिए मुझसे यह काम कराया है, ताकि एक इसराईली की हिमायत में एक क़िब्ती को मार डालने का इलज़ाम मुझपर लग जाए और सिर्फ़ मेरे ही ख़िलाफ़ नहीं, बल्कि तमाम बनी-इसराईल के ख़िलाफ़ मिस्र में एक बड़ा तूफ़ान उठ खड़ा हो। इस मामले में बाइबल का बयान क़ुरआन से अलग है। वह हज़रत मूसा (अलैहि०) को जान-बूझकर किए गए क़त्ल का मुजरिम ठहराती है। उसकी रिवायत यह है कि मिस्रवासी और इसराईली को लड़ते देखकर हज़रत मूसा (अलैहि०) ने ''इधर-उधर निगाह डाली और जब देखा कि वहाँ कोई दूसरा आदमी नहीं है तो इस मिस्रवासी को जान से मारकर उसे रेत में छिपा दिया।'' (निष्कासन, 2:12) यही बात तलमूद में भी बयान की गई है। अब यह हर शख़्स देख सकता है कि बनी-इसराईल अपने बुज़ुर्गों की सीरतों को ख़ुद किस तरह दाग़दार करते हैं और क़ुरआन किस तरह उनकी पोज़ीशन साफ़ करता है। अक़्ल भी यही कहती है कि एक हिकमतवाला और समझदार आदमी, जिसे आगे चलकर एक मज़बूत इरादेवाला पैग़म्बर होना था और जिसे इनसान को इनसाफ़ का एक अज़ीमुश्शान क़ानून देना था, ऐसा अंधा क़ौम-परस्त नहीं हो सकता कि अपनी क़ौम के एक शख़्स से दूसरी क़ौम के किसी आदमी को लड़ते देखकर आपे से बाहर हो जाए और जान-बूझकर उसे क़त्ल कर डाले। ज़ाहिर है कि इसराईली को मिस्रवासी के पंजे से छुड़ाने के लिए उसे क़त्ल कर देना तो सही न हो सकता था।

23. 'मग़फ़िरत' का मतलब अनदेखा कर देना और माफ़ कर देना भी है और छिपाना भी। हज़रत मूसा (अलैहि०) की दुआ का मतलब यह था कि मेरे इस गुनाह को (जिसे तू जानता है कि मैंने जान-बूझकर नहीं किया है) माफ़ भी कर दे और उसका परदा भी ढाँक दे, ताकि दुश्मनों को इसका पता न चले।

24. इसके भी दो मतलब हैं और दोनों ही यहाँ मुराद हैं। यानी अल्लाह तआला ने उनका यह क़ुसूर माफ़ भी कर दिया और हज़रत मूसा (अलैहि०) का परदा भी ढाँक दिया, यानी क़िब्ती क़ौम के किसी शख़्स और क़िब्ती हुकूमत के किसी आदमी का उस वक़्त उनके आसपास कहीं गुज़र न हुआ कि वह क़त्ल के इस वाक़िए को देख लेता। इस तरह हज़रत मूसा (अलैहि०) को चुपचाप वहाँ से निकल जाने का मौक़ा मिल गया।

25. यानी यह एहसान कि मेरी हरकत छिपी रह गई और दुश्मन क़ौम के किसी शख़्स ने मुझको नहीं देखा और मुझे बच निकलने का मौक़ा मिल गया।

ظَهِيۡرًا لِّلۡمُجۡرِمِيۡنَ۝۱۷ فَاَصۡبَحَ فِي الۡمَدِيۡنَةِ خَآئِفًا يَّتَرَقَّبُ فَاِذَا

कभी मुजरिमों का मददगार न बनूँगा।"[26]

(18) दूसरे दिन वह सुबह-सवेरे डरता और हर तरफ़ से ख़तरा भाँपता हुआ शहर में

26. हज़रत मूसा (अलैहि.) का यह अहद (प्रण) ऐसे अलफ़ाज़ में है जो अपने अन्दर बहुत मानी रखते हैं इससे मुराद सिर्फ़ यही नहीं है कि मैं किसी मुजरिम शख़्स का मददगार नहीं बनूँगा, बल्कि इससे मुराद यह भी है कि मेरी मदद कभी उन लोगों के साथ न होगी, जो दुनिया में ज़ुल्मो-सितम करते हैं। इब्ने-जरीर और कई दूसरे तफ़सीर लिखनेवालों ने इसका यह मतलब बिलकुल ठीक लिया है कि इसी दिन हज़रत मूसा (अलैहि.) ने फ़िरऔन और उसकी हुकूमत से अलग हो जाने का अहद कर लिया; क्योंकि वह एक ज़ालिम हुकूमत थी और उसने ख़ुदा की ज़मीन पर एक मुजरिमाना निज़ाम (व्यवस्था) क़ायम कर रखा था। उन्होंने महसूस किया कि किसी ईमानदार आदमी का यह काम नहीं है कि वह एक ज़ालिम हूकूमत का कल-पुर्ज़ा बनकर रहे और उसकी फ़ौज और ताक़त में इज़ाफ़े का सबब बने।

मुस्लिम आलिमों ने आम तौर से हज़रत मूसा (अलैहि.) के इस अहद से यह दलील ली है कि एक ईमानवाले को ज़ालिम की मदद करने से पूरी तरह बचना चाहिए, चाहे वह ज़ालिम एक आदमी हो या गरोह, या हुकूमत और सल्तनत। मशहूर ताबिई अता-बिन-अबी-रबाह (रह.) से एक साहब ने कहा कि "मेरा भाई बनी-उमैया की हुकूमत में कूफ़े के गवर्नर का कातिब (सेक्रेट्री) है। मामलात के फ़ैसले करना उसका काम नहीं है। अलबत्ता जो फ़ैसले किए जाते हैं वह उसके क़लम से जारी होते हैं। यह नौकरी वह न करे तो मुफ़लिस हो जाए।" हज़रत अता (रह.) ने जवाब में यह आयत पढ़ी और फ़रमाया, "तेरे भाई को चाहिए कि अपना क़लम फेंक दे, रोज़ी देनेवाला अल्लाह है।"

एक और कातिब ने आमिर शअबी (रह.) से पूछा, "ऐ अबू-अम्र, मैं बस हुक्म लिखकर जारी करने का ज़िम्मेदार हूँ, फ़ैसले करने का ज़िम्मेदार नहीं हूँ। क्या यह रोज़ी मेरे लिए जाइज़ है?" उन्होंने कहा, "हो सकता है कि किसी बेगुनाह के क़त्ल का फ़ैसला किया जाए और वह तुम्हारे क़लम से जारी हो, हो सकता है कि किसी का माल नाहक़ ज़ब्त किया जाए, या किसी का घर गिराने का हुक्म दिया जाए और वह तुम्हारे क़लम से जारी हो।" फिर इमाम साहब ने यह आयत पढ़ी जिसे सुनते ही कातिब ने कहा, "आज के बाद मेरा क़लम बनी-उमैया के हुक्म जारी करने में इस्तेमाल न होगा।" इमाम ने फिर कहा, "फिर अल्लाह भी तुम्हें रोज़ी से महरूम न करेगा।"

ज़ह्हाक को तो अब्दुर्रहमान-बिन-मुस्लिम ने सिर्फ़ इस काम पर भेजना चाहा था कि वे बुख़ारा के लोगों की तनख़ाहें जाकर बाँट आएँ, मगर उन्होंने इससे भी इनकार कर दिया। उनके दोस्तों ने कहा, "आख़िर इसमें क्या हरज है?" उन्होंने कहा, "मैं ज़ालिमों के किसी काम में भी मददगार नहीं बनना चाहता।" (रूहुल-मआनी, हिस्सा-20, पेज-49)

الَّذِی اسۡتَنۡصَرَهٗ بِالۡاَمۡسِ یَسۡتَصۡرِخُهٗ ؕ قَالَ لَهٗ مُوۡسٰۤی اِنَّكَ لَغَوِیٌّ
مُّبِیۡنٌ ۞١٨ فَلَمَّاۤ اَنۡ اَرَادَ اَنۡ یَّبۡطِشَ بِالَّذِیۡ هُوَ عَدُوٌّ لَّهُمَا ۙ قَالَ
یٰمُوۡسٰۤی اَتُرِیۡدُ اَنۡ تَقۡتُلَنِیۡ كَمَا قَتَلۡتَ نَفۡسًۢا بِالۡاَمۡسِ ٭ۖ اِنۡ تُرِیۡدُ اِلَّاۤ
اَنۡ تَكُوۡنَ جَبَّارًا فِی الۡاَرۡضِ وَ مَا تُرِیۡدُ اَنۡ تَكُوۡنَ مِنَ الۡمُصۡلِحِیۡنَ ۞١٩

जा रहा था कि यकायक क्या देखता है कि वही आदमी जिसने कल उसे मदद के लिए पुकारा था, आज फिर उसे पुकार रहा है। मूसा ने कहा, "तू तो बड़ा ही बहका हुआ आदमी है।"[27] (19) फिर जब मूसा ने इरादा किया कि दुश्मन क़ौम के आदमी पर हमला करे[28] तो वह पुकार उठा,[29] "ऐ मूसा, क्या आज तू मुझे उसी तरह क़त्ल करने लगा है जिस तरह कल एक आदमी को क़त्ल कर चुका है। तू इस देश में बहुत ही बेरहम ज़ालिम बनकर रहना चाहता है, सुधार करना नहीं चाहता।"——————

इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) का यह वाक़िआ उनके तमाम भरोसेमन्द सवानेह-निगारों (जीवनी-लेखकों), अल-मुअफ़्फ़िक़ अल-मक्की, इब्नुल-बज़्ज़ाज़ अल-करदरी, मुल्ला अली क़ारी वग़ैरा ने लिखा है कि उन्हीं की नसीहत पर मंसूर के कमांडर इन चीफ़ हसन-बिन-क़हतुबा ने यह कहकर अपने ओहदे से इस्तीफ़ा दे दिया था कि आज तक मैंने तो आपकी हुकूमत की हिमायत के लिए जो कुछ किया है यह अगर अल्लाह की राह में था तो मेरे लिए बस इतना काफ़ी है, लेकिन अगर यह ज़ुल्म की राह में था तो मैं अपने आमालनामे में और ज़्यादा जुर्मों का इज़ाफ़ा करना नहीं चाहता।

27. यानी तू झगड़ालू आदमी मालूम होता है। रोज़ तेरा किसी-न-किसी से झगड़ा होता रहता है। कल एक आदमी से भिड़ गया था, आज एक-दूसरे आदमी से जा भिड़ा।

28. बाइबल का बयान यहाँ क़ुरआन के बयान से अलग है। बाइबल कहती है कि दूसरे दिन का झगड़ा दो इसराईलियों के बीच था। लेकिन क़ुरआन कहता है कि यह झगड़ा भी इसराईली और मिस्री के बीच ही था। यही दूसरा बयान ज़्यादा सही मालूम होता है; क्योंकि पहले दिन के क़त्ल का राज़ खुल जाने की जो सूरत आगे बयान हो रही है, वह इसी तरह हो सकती थी कि मिस्री क़ौम के एक शख़्स को उस वाक़िए का पता चल जाता। एक इसराईली को उसके मालूम हो जाने से यह इमकान कम था कि अपनी क़ौम के मददगार शहज़ादे के इतने बड़े क़ुसूर की ख़बर पाते ही वह जाकर फ़िरऔनी हुकूमत में उसकी मुख़बिरी कर देता।

29. यह पुकारनेवाला वही इसराईली था जिसकी मदद के लिए हज़रत मूसा (अलैहि॰) आगे बढ़े थे। उसको डाँटने के बाद जब वे मिस्री को मारने के लिए चले तो उस इसराईली ने समझा कि ये

وَجَآءَ رَجُلٌ مِّنْ اَقْصَا الْمَدِيْنَةِ يَسْعٰى قَالَ يٰمُوْسٰٓى اِنَّ
الْمَلَاَ يَاْتَمِرُوْنَ بِكَ لِيَقْتُلُوْكَ فَاخْرُجْ اِنِّىْ لَكَ مِنَ
النّٰصِحِيْنَ۝۲۰ فَخَرَجَ مِنْهَا خَآئِفًا يَّتَرَقَّبُ قَالَ رَبِّ
٢ ع٨ ٥ نَجِّنِىْ مِنَ الْقَوْمِ الظّٰلِمِيْنَ۝۲۱ وَلَمَّا تَوَجَّهَ تِلْقَآءَ مَدْيَنَ قَالَ

(20) इसके बाद एक आदमी शहर के परले सिरे से दौड़ता हुआ आया[30] और बोला, "मूसा, सरदारों में तेरे क़त्ल के मशवरे हो रहे हैं, यहाँ से निकल जा, मैं तेरा भला चाहता हूँ।" (21) यह ख़बर सुनते ही मूसा डरता और सहमता निकल खड़ा हुआ और उसने दुआ की कि "ऐ मेरे रब, मुझे ज़ालिमों से बचा।"

(22) (मिस्र से निकलकर) जब मूसा ने मदयन का रुख़ किया[31] तो उसने कहा,

---

मुझे मारने आ रहे हैं, इसलिए उसने चिल्लाना शुरू कर दिया और अपनी बेवक़ूफ़ी से कल के क़त्ल का राज़ खोल डाला।

30. यानी इस दूसरे झगड़े में जब क़त्ल का राज़ खुल गया और उस मिस्री ने जाकर मुख़बिरी कर दी, तब यह वाक़िआ पेश आया।

31. बाइबल का बयान इस बात में क़ुरआन जैसा ही है कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने मिस्र से निकलकर मदयन का रुख़ किया था। लेकिन तलमूद यह बे-सिर-पैर की कहानी बयान करती है कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) मिस्र से भागकर हबशा चले गए और वहाँ बादशाह के क़रीबी लोगों में से हो गए। फिर उसके मरने पर लोगों ने उनको अपना बादशाह बना लिया और उसकी बेवा (विधवा) से उनकी शादी कर दी। 40 साल उन्होंने वहाँ हुकूमत की। मगर इस पूरी मुद्दत में अपनी हबशी बीवी से कभी सोहबत (सहवास) न की। 40 साल बीत जाने के बाद उस औरत ने हबशा के वासियों से शिकायत की कि इस आदमी ने आज तक न तो मुझसे मियाँ-बीवी का ताल्लुक़ रखा है और न कभी हबशा के देवताओं की पूजा की है। इस बात पर हुकूमत के अधिकारियों ने उन्हें बरख़ास्त करके और बहुत-सा माल देकर देश से बाइज़्ज़त रुख़सत कर दिया। तब वे हबशा से मदयन पहुँचे और वे वाक़िआत पेश आए जो आगे बयान हो रहे हैं। तलमूद के मुताबिक़ उस वक़्त उनकी उम्र 67 साल थी।

इस कहानी के बे-सिर-पैर होने की एक खुली हुई दलील यह है कि इसी कहानी में यह भी बयान हुआ है कि उस ज़माने में असीरिया (उत्तरी इराक़) पर हबशा की हुकूमत थी और असीरियावालों की बग़ावतें कुचलने के लिए हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने भी और उनसे पहले के

عَسٰى رَبِّیْۤ اَنْ یَّهْدِیَنِیْ سَوَآءَ السَّبِیْلِ﴿۲۲﴾ وَلَمَّا وَرَدَ مَآءَ مَدْیَنَ
وَجَدَ عَلَیْهِ اُمَّةً مِّنَ النَّاسِ یَسْقُوْنَ ۬ؗ وَوَجَدَ مِنْ دُوْنِهِمُ
امْرَاَتَیْنِ تَذُوْدٰنِ ۚ قَالَ مَا خَطْبُكُمَا ؕ قَالَتَا لَا نَسْقِیْ

"उम्मीद है कि मेरा रब मुझे ठीक रास्ते पर डाल देगा।"[32] (23) और जब वह मदयन के कुएँ पर पहुँचा,[33] उसने देखा कि बहुत-से लोग अपने जानवरों को पानी पिला रहे हैं और उनसे अलग एक तरफ़ दो औरतें अपने जानवरों को रोक रही हैं। मूसा ने उन औरतों से पूछा, "तुम्हें क्या परेशानी है?" उन्होंने कहा, "हम अपने जानवरों को पानी नहीं पिला

बादशाह ने भी फ़ौजी चढ़ाइयाँ की थीं। अब जो शख़्स भी इतिहास और जोग़राफ़िया (भूगोल) की कोई जानकारी रखता हो वह नक़्शे पर एक निगाह डालकर देख सकता है कि असीरिया पर हबशा का ग़लबा और हबशी फ़ौज का हमला या तो इस सूरत में हो सकता था कि मिस्र और फ़िलिस्तीन और सीरिया पर उसका क़ब्ज़ा होता, या पूरा अरब देश उसके मातहत होता, या फिर हबशा का बेड़ा ऐसा ज़बरदस्त होता कि वह हिन्द महासागर और फ़ारस की खाड़ी को पार करके इराक़ जीत लेता। इतिहास इस ज़िक्र से ख़ाली है कि कभी हबशियों को इन देशों पर ग़लबा हासिल हुआ हो या उनकी समन्दरी ताक़त इतनी ज़बरदस्त रही हो। इससे अन्दाज़ा होता है कि बनी-इसराईल की जानकारी ख़ुद अपने इतिहास के बारे में कितनी ख़राब थी और क़ुरआन उनकी ग़लतियों को सुधारकर सही वाक़िआत कैसी साफ़ शक्ल में पेश करता है। लेकिन ईसाई और यहूदी मुस्तशरिक़ीन (पश्चिमी देशों के वे ग़ैर-मुस्लिम विद्वान जिन्होंने इस्लाम का आलोचनात्मक अध्ययन किया) को यह कहते हुए ज़रा शर्म नहीं आती कि क़ुरआन ने ये क़िस्से बनी-इसराईल से नक़्ल कर लिए हैं।

32. यानी ऐसे रास्ते पर जिससे मैं ख़ैरियत के साथ मदयन पहुँच जाऊँ।
ध्यान रहे कि उस ज़माने में मदयन फ़िरऔन की हुकूमत से बाहर था। मिस्र की हुकूमत पूरे जज़ीरा नुमा-ए-सीना (प्रायद्वीप सीना) पर न थी, बल्कि सिर्फ़ उसके पश्चिमी और दक्षिणी इलाक़े तक महदूद थी। अक़बा की खाड़ी के पूर्वी और पश्चिमी तट, जिनपर बनी-मदयान आबाद थे, मिस्री असर और हुकूमत से बिलकुल आज़ाद थे। इसी वजह से हज़रत मूसा (अलैहि०) ने मिस्र से निकलते ही मदयन का रुख़ किया था; क्योंकि सबसे क़रीब आज़ाद और आबाद इलाक़ा वही था। लेकिन वहाँ जाने के लिए उन्हें गुज़रना बहरहाल मिस्र के दूसरे इलाक़ों ही से था और मिस्र की पुलिस और फ़ौजी चौकियों से बचकर निकलना था। इसी लिए उन्होंने अल्लाह से दुआ की कि मुझे ऐसे रास्ते पर डाल दे जिससे मैं सही-सलामत मदयन पहुँच जाऊँ।

33. यह जगह जहाँ हज़रत मूसा (अलैहि०) पहुँचे थे, अरबी रिवायतों के मुताबिक़ अक़बा की खाड़ी के पश्चिमी तट पर मक़ना से कुछ मील उत्तर की तरफ़ था। आजकल इसे अल-बिद्अ कहते हैं

حَتّٰى يُصْدِرَ الرِّعَآءُ ۜ وَاَبُوْنَا شَيْخٌ كَبِيْرٌ ﴿٢٣﴾ فَسَقٰى لَهُمَا ثُمَّ تَوَلّٰٓى اِلَى
الظِّلِّ فَقَالَ رَبِّ اِنِّيْ لِمَآ اَنْزَلْتَ اِلَيَّ مِنْ خَيْرٍ فَقِيْرٌ ﴿٢٤﴾ فَجَآءَتْهُ

सकतीं, जब तक ये चरवाहे अपने जानवर न निकाल ले जाएँ और हमारे बाप एक बहुत बूढ़े आदमी हैं।"[34] (24) यह सुनकर मूसा ने उनके जानवरों को पानी पिला दिया, फिर एक साये की जगह जा बैठा और बोला, "परवरदिगार, जो भलाई भी तू मुझपर उतार दे मैं उसका मुहताज हूँ।" (25) (कुछ देर न गुज़री थी कि) उन दोनों औरतों में से एक

और वहाँ एक छोटा-सा क़स्बा आबाद है। मैंने दिसम्बर 1959 में तबूक से अक़बा जाते हुए इस जगह को देखा है। मक़ामी लोगों ने मुझे बताया कि हम बाप-दादा से यही सुनते चले आए हैं कि मदयन इसी जगह पर था। यूसीफ़ूस से लेकर बर्टन (Burton) तक पुराने और नए सय्याहों (पर्यटकों) और जोग़राफ़िया (भूगोल) के लिखनेवालों ने भी आम तौर से मदयन के होने की जगह यही बताई है। इसके क़रीब थोड़ी दूरी पर वह जगह है जिसे अब 'मग़ाइरे-शुऐब' या 'मुग़ाराते-शुऐब' कहा जाता है। इस जगह समूद की तरह की कुछ इमारतें मौजूद हैं और इससे लगभग मील-डेढ़-मील की दूरी पर कुछ पुराने खण्डहर हैं जिनमें दो अंधे कुएँ हमने देखे। मक़ामी लोगों ने हमें बताया कि यक़ीन के साथ तो हम नहीं कह सकते, लेकिन हमारे यहाँ रिवायतें यही हैं कि इन दोनों में से एक कुआँ वह था जिसपर हज़रत मूसा (अलैहि०) ने बकरियों को पानी पिलाया है। यही बात अबुल-फ़िदा (मौत 732 हि०) ने तक़वीमुल-बुलदान में और याक़ूत ने मुअजमुल-बुलदान में अबू-ज़ैद अनसारी (मौत 216 हिजरी) के हवाले से लिखी है कि इस इलाक़े के रहनेवाले इसी जगह पर हज़रत मूसा (अलैहि०) के उस कुएँ की निशानदेही करते हैं। इससे मालूम होता है कि यह रिवायत सदियों से वहाँ के लोगों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है और इस बुनियाद पर एतिमाद के साथ कहा जा सकता है कि क़ुरआन मजीद में जिस जगह का ज़िक्र किया गया है वह यही है।

34. यानी हम औरतें हैं, इन चरवाहों से मुक़ाबला और कशमकश करके अपने जानवरों को पानी पिलाना हमारे बस में नहीं है। हमारे बाप इतने ज़्यादा बूढ़े हैं कि वे ख़ुद यह मेहनत नहीं कर सकते। घर में कोई दूसरा मर्द भी नहीं है। इसलिए हम औरतें ही यह काम करने निकलती हैं और जब तक सब चरवाहे अपने जानवरों को पानी पिलाकर चले नहीं जाते, हमको मजबूरन इन्तिज़ार करना पड़ता है। इन सारी बातों को उन औरतों ने सिर्फ़ एक छोटे-से जुमले में अदा कर दिया, जिससे उनकी हयादारी (शर्म) का अन्दाज़ा होता है कि एक ग़ैर-मर्द से ज़्यादा बात भी न करना चाहती थीं, मगर यह भी पसन्द न करती थीं कि यह अजनबी हमारे ख़ानदान के बारे में कोई ग़लत राय क़ायम कर ले और अपने ज़ेहन में यह ख़याल करे कि कैसे लोग हैं जिनके मर्द घर बैठे रहे और अपनी औरतों को इस काम के लिए बाहर भेज दिया।

इन औरतों के बाप के बारे में हमारे यहाँ यह रिवायत मशहूर हो गई है कि वे हज़रत शुऐब

(अलैहि०) थे। लेकिन क़ुरआन मजीद में हल्के-से इशारे में भी कोई बात ऐसी नहीं कही गई है जिससे यह समझा जा सके कि वे हज़रत शुऐब (अलैहि०) ही थे। हालाँकि शुऐब (अलैहि०) की शख़्सियत क़ुरआन में एक जानी-मानी शख़्सियत है। अगर इन औरतों के बाप वही होते तो कोई वजह न थी कि यहाँ इसको साफ़-साफ़ बयान न कर दिया जाता। बेशक कुछ हदीसों में साफ़ तौर से उनका नाम लिया गया है, लेकिन अल्लामा इब्ने-जरीर और इब्ने-कसीर दोनों इसपर एकराय हैं कि उनमें से किसी की सनद भी सही नहीं है। इसी लिए इब्ने-अब्बास (रज़ि०), हसन बसरी, अबू-उबैदा और सईद-बिन-जुबैर (रह०) जैसे बुज़ुर्ग तफ़सीर लिखनेवालों ने बनी-इसराईल की रिवायतों पर एतिमाद करके उन बुज़ुर्ग के वही नाम बताए हैं जो तलमूद वग़ैरा में आए हैं। वरना ज़ाहिर है कि अगर नबी (सल्ल०) से शुऐब नाम का ज़िक्र नक़्ल होता तो ये लोग कोई दूसरा नाम न ले सकते थे।

बाइबल में एक जगह उन बुज़ुर्ग का नाम रूएल और दूसरी जगह यित्रो बयान किया गया है और बताया गया है कि वे मिद्यान (मदयन) के काहिन (याजक) थे (निर्गमन, अध्याय 2:16-18, अध्याय 3:1, अध्याय 18:5) तलमूदी लिट्रेचर में रूएल, यित्रो और हूबाब तीन अलग-अलग नाम बताए गए हैं। आजकल के ज़माने के यहूदी आलिमों का ख़याल है कि यित्रो हिज़ एक्सिलेंसी (His Excellency) की तरह लक़ब था और अस्ल नाम रूएल या हूबाब था। इस तरह लफ़्ज़ काहिन (Kohen) की तशरीह में भी यहूदी आलिमों के बीच रायें अलग-अलग हैं। कुछ उसको पुरोहित (Priest) के मानी में बताते हैं और कुछ रईस या अमीर (Prince) के।

तलमूद में उनके जो हालात बयान किए गए हैं वे ये हैं कि हज़रत मूसा (अलैहि०) की पैदाइश से पहले फ़िरऔन के यहाँ उनका आना-जाना था और वह उनके इल्म और उनकी रायों और मशवरों पर भरोसा करता था। मगर जब बनी-इसराईल को उखाड़ फेंकने के लिए मिस्र की शाही कौंसिल में मशवरे होने लगे और उनके लड़कों को पैदा होते ही क़त्ल कर देने का फ़ैसला किया गया तो उन्होंने फ़िरऔन को इस ग़लत काम से रोकने की कोशिश की, उसे इस ज़ुल्म के बुरे नतीजों से डराया और राय दी कि अगर उन लोगों का वुजूद आपके लिए बरदाश्त से बाहर है तो उन्हें उनके बाप-दादा के देश कनआन की तरफ़ निकाल दीजिए। इसपर फ़िरऔन उनसे नाराज़ हो गया और उसने उन्हें रुसवाई के साथ अपने दरबार से निकलवा दिया। उस वक़्त से वे अपने देश मिद्यान (मदयन) ही में ठहर गए थे।

उनके मज़हब के बारे में अन्दाज़ा यही है कि हज़रत मूसा (अलैहि०) की तरह वे भी इबराहीम (अलैहि०) के दीन की पैरवी करनेवाले थे; क्योंकि जिस तरह हज़रत मूसा इसहाक़-बिन-इबराहीम (अलैहि०) की औलाद थे, इसी तरह वे मिदयान-बिन-इबराहीम की औलाद में से थे। यही ताल्लुक़ शायद इसका सबब हुआ होगा कि उन्होंने फ़िरऔन को बनी-इसराईल पर ज़ुल्म करने से रोका और उसकी नाराज़ी मोल ली। क़ुरआन के आलिम नेसाबूरी ने हज़रत हसन बसरी के हवाले से लिखा है कि "वे एक मुसलमान आदमी थे। हज़रत शुऐब का दीन उन्होंने क़बूल कर लिया था।" तलमूद में बयान किया गया है कि वे मिदयानवालों की बुतपरस्ती को खुल्लम-खुल्ला बेवक़ूफ़ी बताते थे, इस वजह से मदयनवाले उनके ख़िलाफ़ हो गए थे।

اِحْدٰىهُمَا تَمْشِىْ عَلَى اسْتِحْيَآءٍ ۫ قَالَتْ اِنَّ اَبِىْ يَدْعُوْكَ لِيَجْزِيَكَ
اَجْرَ مَا سَقَيْتَ لَنَا ؕ فَلَمَّا جَآءَهٗ وَقَصَّ عَلَيْهِ الْقَصَصَ ۙ قَالَ
لَا تَخَفْ ٚ نَجَوْتَ مِنَ الْقَوْمِ الظّٰلِمِيْنَ ﴿٢٥﴾ قَالَتْ اِحْدٰىهُمَا يٰٓاَبَتِ

शर्मो-हया के साथ चलती हुई उसके पास आई[35] और कहने लगी, "मेरे बाप आप को बुला रहे हैं, ताकि आपने हमारे लिए जानवरों को जो पानी पिलाया है उसका बदला आपको दें।"[36] मूसा जब उसके पास पहुँचा और अपना सारा क़िस्सा उसे सुनाया तो उसने कहा, "बिलकुल न डरो, अब तुम ज़ालिम लोगों से बच निकले हो।"

(26) उन दोनों औरतों में से एक ने अपने बाप से कहा, "अब्बाजान, इस आदमी को

---

35. हज़रत उमर (रज़ि॰) ने इस जुमले की यह तशरीह की है कि "वह शर्मो-हया के साथ चलती हुई अपना मुँह घूँघट से छिपाए हुए आई। उन बेबाक औरतों की तरह बेधड़क नहीं चली आई जो हर तरफ़ निकल जातीं और हर जगह जा घुसती हैं।" इस बात को बयान करनेवाली कई रिवायतें सईद-बिन-मंसूर, इब्ने-जरीर, इब्ने-अबी-हातिम और इब्ने-मुंज़िर ने भरोसेमन्द सनदों के साथ हज़रत उमर (रज़ि॰) से नक़्ल की हैं। इससे साफ़ मालूम होता है कि सहाबा किराम के दौर में हयादारी का इस्लामी तसव्वुर (परिकल्पना), जो क़ुरआन और नबी (सल्ल॰) की तालीमो-तरबियत से इन बुज़ुर्गों ने समझा था, चेहरे को अजनबियों के सामने खोले फिरने और घर से बाहर बेधड़क चलत-फिरत दिखाने के बिलकुल ख़िलाफ़ था। हज़रत उमर (रज़ि॰) साफ़ अलफ़ाज़ में यहाँ चेहरा ढाँकने को हया की निशानी और उसे अजनबियों के सामने खोलने को बेहयाई ठहरा रहे हैं।

36. यह बात भी शर्मो-हया ही की वजह से उन्होंने कही; क्योंकि एक ग़ैर-मर्द के पास अकेली जगह आने की कोई मुनासिब वजह बतानी ज़रूरी थी। वरना ज़ाहिर है कि एक शरीफ़ आदमी ने अगर औरत ज़ात को परेशानी में मुब्तला देखकर उसकी कोई मदद की हो तो उसका बदला देने के लिए कहना कोई अच्छी बात न थी और फिर उस बदले का नाम सुन लेने के बावजूद हज़रत मूसा (अलैहि॰) जैसे बड़े दिल के इनसान का चल पड़ना यह ज़ाहिर करता है कि वह उस वक़्त बेहद परेशानी की हालत में थे। बेसरो-सामानी की हालत में यकायक मिस्र से निकल खड़े हुए थे। मदयन तक कम-से-कम आठ दिन में पहुँचे होंगे। भूख-प्यास और सफ़र की थकन से बुरा हाल होगा और सबसे बढ़कर यह फ़िक्र होगी कि इस परदेस में कोई ठिकाना मिल जाए और कोई ऐसा हमदर्द मिले जिसकी पनाह में रह सकें। इसी मजबूरी की वजह से यह लफ़्ज़ सुन लेने के बावजूद कि इस ज़रा-से काम का बदला देने के लिए बुलाया जा रहा है, हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने जाने में झिझक न दिखाई। उन्होंने सोचा होगा कि ख़ुदा से अभी-अभी जो

اسْتَاْجِرْهُ ۡ اِنَّ خَيْرَ مَنِ اسْتَاْجَرْتَ الْقَوِيُّ الْاَمِيْنُ ۝۲۶ قَالَ اِنِّيْٓ
اُرِيْدُ اَنْ اُنْكِحَكَ اِحْدَى ابْنَتَيَّ هٰتَيْنِ عَلٰٓى اَنْ تَاْجُرَنِيْ ثَمٰنِيَ حِجَجٍ ۚ
فَاِنْ اَتْمَمْتَ عَشْرًا فَمِنْ عِنْدِكَ ۚ وَمَآ اُرِيْدُ اَنْ اَشُقَّ عَلَيْكَ ؕ
سَتَجِدُنِيْٓ اِنْ شَآءَ اللّٰهُ مِنَ الصّٰلِحِيْنَ ۝۲۷ قَالَ ذٰلِكَ بَيْنِيْ وَبَيْنَكَ ؕ

नौकर रख लीजिए, बेहतरीन आदमी जिसे आप नौकर रखें वही हो सकता है जो मज़बूत और अमानतदार हो।"[37] (27) उसके बाप ने (मूसा से) कहा,[38] "मैं चाहता हूँ कि अपनी इन दो बेटियों में से एक का निकाह तुम्हारे साथ कर दूँ, शर्त यह है कि तुम आठ साल तक मेरे यहाँ नौकरी करो और अगर दस साल पूरे कर दो तो यह तुम्हारी मरज़ी है। मैं तुमपर सख़्ती करना नहीं चाहता। अल्लाह ने चाहा तो तुम मुझे भला आदमी पाओगे।" (28) मूसा ने जवाब दिया, "यह बात मेरे और आपके बीच तय हो गई।

दुआ मैंने माँगी है, उसे पूरा करने का यह सामान ख़ुदा ही की तरफ़ से हुआ है, इसलिए अब ख़ाह-मख़ाह ख़ुद्दारी दिखाकर अपने रब के दिए गए मेज़बानी के सामान को ठुकराना मुनासिब नहीं है।

37. ज़रूरी नहीं कि यह बात लड़की ने अपने बाप से हज़रत मूसा (अलैहि॰) की पहली मुलाक़ात के वक़्त ही कह दी हो। ज़्यादा इमकान यह है कि उसके बाप ने अजनबी मुसाफ़िर को एक-दो दिन अपने पास ठहरा लिया होगा और उस दौरान में किसी वक़्त बेटी ने बाप को यह मशवरा दिया होगा। इस मशवरे का मतलब यह था कि आपके बुढ़ापे की वजह से मजबूरन हम लड़कियों को काम के लिए निकलना पड़ता है। हमारा कोई भाई नहीं है कि बाहर के काम संभाले। आप इस शख़्स को नौकर रख लें। मज़बूत आदमी है, हर तरह की मेहनत कर लेगा और भरोसे के लायक़ आदमी है। सिर्फ़ अपनी शराफ़त की वजह से इसने हम औरतों को बेबस खड़ा देखकर हमारी मदद की और कभी हमारी तरफ़ नज़र उठाकर न देखा।

38. यह भी ज़रूरी नहीं कि बेटी की बात सुनते ही बाप ने फ़ौरन हज़रत मूसा (अलैहि॰) से यह बात कह दी हो। अन्दाज़ा यही है कि उन्होंने बेटी के मशवरे पर ग़ौर करने के बाद यह राय क़ायम की होगी कि आदमी शरीफ़ सही, मगर जवान बेटियों के घर में एक जवान, तन्दुरुस्त और ताक़तवर आदमी का यूँ ही नौकर रख छोड़ना मुनासिब नहीं है। जब यह शरीफ़, पढ़ा-लिखा, मुहज़्ज़ब (सभ्य) और ख़ानदानी आदमी है (जैसा कि हज़रत मूसा का क़िस्सा सुनकर उन्हें मालूम हो चुका होगा) तो क्यों न इसे दामाद बनाकर ही घर में रखा जाए। इस राय पर पहुँचने के बाद उन्होंने किसी मुनासिब वक़्त पर हज़रत मूसा (अलैहि॰) से यह बात कही होगी।

أَيَّمَا الْأَجَلَيْنِ قَضَيْتُ فَلَا عُدْوَانَ عَلَيَّ ۖ وَاللَّهُ عَلَىٰ مَا نَقُولُ وَكِيلٌ ﴿٢٨﴾

इन दोनों मुद्दतों में से जो भी मैं पूरी कर दूँ, उसके बाद फिर कोई ज़्यादती मुझपर न हो और जो कुछ क़ौल-क़रार हम कर रहे हैं अल्लाह उसपर निगहबान है।"[39]

यहाँ फिर बनी-इसराईल की एक 'मेहरबानी' देखिए जो उन्होंने अपने क़ाबिले-क़द्र नबी, अपने सबसे बड़े मुहसिन (उपकारक) और क़ौमी हीरो पर की है। तलमूद में कहा गया है कि "मूसा रूएल के यहाँ रहने लगे और वह अपने मेज़बान की बेटी सफ़ूरा पर मेहरबानी की नज़र रखते थे, यहाँ तक कि आख़िरकार उन्होंने उससे ब्याह कर लिया।" एक और यहूदी रिवायत जो जैविश इंसाइक्लोपीडिया में नक़्ल की गई है, यह है कि "हज़रत मूसा (अलैहि.) ने जब यित्रो को अपना सारा माजरा सुनाया तो उसने समझ लिया कि यही वह आदमी है जिसके हाथों फ़िरऔन की सल्तनत तबाह होने की पेशीनगोइयाँ की गई थीं। इसलिए उसने फ़ौरन हज़रत मूसा (अलैहि.) को क़ैद कर लिया, ताकि उन्हें फ़िरऔन के हवाले करके इनाम हासिल करे। सात या दस साल तक वह उसकी क़ैद में रहे। एक अंधेरा तहख़ाना था जिसमें वे बन्द थे। मगर यित्रो की बेटी ज़फ़ूरा (या सफ़ूरा) जिससे कुएँ पर उनकी पहली मुलाक़ात हुई थी, चुपके-चुपके उनसे क़ैदख़ाने में मिलती रही और उन्हें खाना-पानी भी पहुँचाती रही। उन दोनों में शादी का ख़ुफ़िया समझौता हो चुका था। सात या दस साल के बाद ज़फ़ूरा ने अपने बाप से कहा कि इतनी मुद्दत हुई आपने एक आदमी को क़ैद में डाल दिया था और फिर उसकी ख़बर तक न ली। अब तक उसे मर जाना चाहिए था। लेकिन अगर वह अब भी ज़िन्दा हो तो ज़रूर कोई अल्लाहवाला आदमी है। यित्रो उसकी यह बात सुनकर जब क़ैदख़ाने में गया तो हज़रत मूसा (अलैहि.) को ज़िन्दा देखकर उसे यक़ीन आ गया कि वे मोजिज़े से ज़िन्दा हैं। तब उसने ज़फ़ूरा से उनकी शादी कर दी।" (जिल्द-9, पेज-48, 49)

जो मग़रिबी मुस्तशरिक़ीन (पश्चिमी देशों के वे ग़ैर-मुस्लिम विद्वान जिन्होंने इस्लाम का आलोचनात्मक अध्ययन किया) क़ुरआनी क़िस्सों के माख़ज़ (मूल स्रोत) ढूँढ़ते फिरते हैं, उन्हें कहीं यह खुला फ़र्क़ भी नज़र आता है जो क़ुरआन के बयान और इसराईली रिवायतों में पाया जाता है?

39. कुछ लोगों ने हज़रत मूसा (अलैहि.) और लड़की के बाप की इस बातचीत को निकाह का ईजाब और क़बूल (रज़ामन्दी और इक़रार) समझ लिया है और यह बहस छेड़ दी है कि क्या बाप की ख़िदमत बेटी के निकाह का महर क़रार पा सकती है? और क्या निकाह के बन्धन में इस तरह की बाहरी शर्तें शामिल हो सकती हैं? हालाँकि इन आयतों की इबारत से ख़ुद ही यह बात ज़ाहिर हो रही है कि यह निकाह होना न था, बल्कि वह शुरुआती बातचीत थी जो निकाह से पहले निकाह की पेशकश के सिलसिले में आम तौर से दुनिया में हुआ करती है। आख़िर यह निकाह का ईजाब और क़बूल कैसे हो सकता है जबकि इसमें यह भी तय न किया गया था कि दोनों लड़कियों में से कौन-सी निकाह में दी जा रही है। इस बातचीत से जो नतीजा निकला था

فَلَمَّا قَضٰى مُوْسَى الْاَجَلَ وَسَارَ بِاَهْلِهٖۤ اٰنَسَ مِنْ جَانِبِ
الطُّوْرِ نَارًا ۚ قَالَ لِاَهْلِهِ امْكُثُوْۤا اِنِّيْۤ اٰنَسْتُ نَارًا لَّعَلِّيْۤ اٰتِيْكُمْ
مِّنْهَا بِخَبَرٍ اَوْ جَذْوَةٍ مِّنَ النَّارِ لَعَلَّكُمْ تَصْطَلُوْنَ۝۲۹

(29) जब मूसा ने मुद्दत पूरी कर दी[40] और वह अपने घरवालों को लेकर चला तो तूर की तरफ़ उसको एक आग नज़र आई।[41] उसने अपने घरवालों से कहा, "ठहरो, मैंने एक आग देखी है, शायद मैं वहाँ से कोई ख़बर ले आऊँ या उस आग से कोई अंगारा ही उठा लाऊँ जिससे तुम ताप सको।" ———

वह सिर्फ़ यह था कि लड़की के बाप ने कहा कि मैं अपनी लड़कियों में से एक का निकाह तुमसे कर देने के लिए तैयार हूँ, शर्त यह है कि तुम मुझसे वादा करो कि आठ-दस साल मेरे यहाँ रहकर मेरे घर के काम-काज में मेरा हाथ बँटाओगे; क्योंकि इस रिश्ते से मेरा अस्ल मक़सद यही है कि मैं बूढ़ा आदमी हूँ, कोई बेटा मेरे यहाँ नहीं है जो मेरी जायदाद का इन्तिज़ाम संभाले, लड़कियाँ-ही-लड़कियाँ हैं जिन्हें मजबूरन बाहर निकालता हूँ, मैं चाहता हूँ कि दामाद मेरा मददगार बनकर रहे, यह ज़िम्मेदारी अगर तुम संभालने के लिए तैयार हो और शादी के बाद ही बीवी को लेकर चले जाने का इरादा न रखते हो तो मैं अपनी एक लड़की का निकाह तुमसे कर दूँगा। हज़रत मूसा (अलैहि०) उस वक़्त एक ठिकाने के तलबगार थे। उन्होंने इस पेशकश को क़बूल कर लिया। ज़ाहिर है कि यह एक समझौते की सूरत थी जो निकाह से पहले दोनों तरफ़ के लोगों में तय हुई थी। इसके बाद अस्ल निकाह का बन्धन क़ायदे के मुताबिक़ बाँधा गया होगा और उसमें महर भी बाँधा गया होगा। उस बन्धन में ख़िदमत की शर्त शामिल होने की कोई वजह न थी।

40. हज़रत हसन-बिन-अबी-तालिब (रज़ि०) फ़रमाते हैं कि हज़रत मूसा (अलैहि०) ने आठ साल के बजाय दस साल की मुद्दत पूरी की थी। इब्ने-अब्बास (रज़ि०) की रिवायत है कि यह बात ख़ुद नबी (सल्ल०) से रिवायत हुई है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया था, "मूसा (अलैहि०) ने दोनों मुद्दतों में से यह मुद्दत पूरी की जो ज़्यादा मुकम्मल और उनके ससुर के लिए ज़्यादा ख़ुशगवार थी, यानी दस साल।"

41. इस सफ़र का रुख़ तूर की तरफ़ होने से यह ख़याल होता है कि हज़रत मूसा (अलैहि०) अपने घरवालों को लेकर मिस्र ही जाना चाहते होंगे। इसलिए कि तूर उस रास्ते पर है जो मदयन से मिस्र की तरफ़ जाता है। शायद हज़रत मूसा (अलैहि०) ने सोचा होगा कि दस साल गुज़र चुके हैं। वह फ़िरऔन भी मर चुका है जिसकी हुकूमत के ज़माने में वे मिस्र से निकले थे। अब अगर चुपचाप वहाँ चला जाऊँ और अपने ख़ानदानवालों के साथ रह पड़ूँ तो शायद किसी को मेरा पता भी न चले।

فَلَمَّآ اَتٰىهَا نُوْدِيَ مِنْ شَاطِئِ الْوَادِ الْاَيْمَنِ فِي الْبُقْعَةِ الْمُبٰرَكَةِ
مِنَ الشَّجَرَةِ اَنْ يّٰمُوْسٰۤى اِنِّيْۤ اَنَا اللّٰهُ رَبُّ الْعٰلَمِيْنَ ۙ﴿۳۰﴾ وَاَنْ اَلْقِ
عَصَاكَ ؕ فَلَمَّا رَاٰهَا تَهْتَزُّ كَاَنَّهَا جَآنٌّ وَّلّٰى مُدْبِرًا وَّلَمْ يُعَقِّبْ ؕ
يٰمُوْسٰۤى اَقْبِلْ وَلَا تَخَفْ ۟ اِنَّكَ مِنَ الْاٰمِنِيْنَ ﴿۳۱﴾ اُسْلُكْ يَدَكَ فِيْ
جَيْبِكَ تَخْرُجْ بَيْضَآءَ مِنْ غَيْرِ سُوْٓءٍ ۫ وَّاضْمُمْ اِلَيْكَ جَنَاحَكَ

(30) वहाँ पहुँचा तो घाटी के दाहिने किनारे[42] पर मुबारक इलाक़े[43] में एक पेड़ से पुकारा गया कि "ऐ मूसा, मैं ही अल्लाह हूँ, सारे जहानवालों का मालिक।" (31) और (हुक्म दिया गया कि) फेंक दे अपनी लाठी। ज्यों ही कि मूसा ने देखा कि वह लाठी साँप की तरह बल खा रही है, तो वह पीठ फेरकर भागा और उसने मुड़कर भी न देखा। (कहा गया), "मूसा, पलट आ और डर मत, तू बिलकुल महफ़ूज़ है। (32) अपना हाथ गिरेबान में डाल, चमकता हुआ निकलेगा बिना किसी तकलीफ़ के।[44] और डर से बचने के लिए

बाइबल का बयान यहाँ वाक़िआत की तरतीब में क़ुरआन के बयान से बिलकुल अलग है। वह कहती है कि हज़रत मूसा (अलैहि.) अपने ससुर की बकरियाँ चराते हुए "जंगल के पश्चिम की तरफ़ ख़ुदा के पहाड़ होरेब के नज़दीक" आ निकले थे। उस वक़्त अल्लाह तआला ने उनसे बात की और उन्हें रिसालत (पैग़म्बरी) के मंसब पर मुक़र्रर करके मिस्र जाने का हुक्म दिया। फिर वे अपने ससुर के पास वापस आ गए और उनसे इजाज़त लेकर अपने बाल-बच्चों के साथ मिस्र रवाना हुए (निर्गमन, 3:1, 4:8) इसके बरख़िलाफ़ क़ुरआन कहता है कि हज़रत मूसा (अलैहि.) मुद्दत पूरी करने के बाद अपने घरवालों को लेकर मदयन से रवाना हुए और इस सफ़र में अल्लाह तआला से बात हुई और पैग़म्बरी के मंसब पर मुक़र्रर किए जाने का मामला पेश आया।

बाइबल और तलमूद दोनों का बयान है कि हज़रत मूसा (अलैहि.) के मदयन में ठहरने के ज़माने में वह फ़िरऔन मर चुका था जिसके यहाँ उन्होंने परवरिश पाई थी और अब एक दूसरा फ़िरऔन मिस्र का बादशाह था।

42. यानी उस किनारे पर जो हज़रत मूसा (अलैहि.) के दाहिने हाथ की तरफ़ था।

43. यानी उस इलाक़े में जो ख़ुदाई नूर से रौशन हो रहा था।

44. ये दोनों मोजिज़े उस वक़्त हज़रत मूसा (अलैहि.) को इसलिए दिखाए गए कि अव्वल तो उन्हें ख़ुद पूरी तरह यक़ीन हो जाए कि सचमुच वही हस्ती उनसे बात कर रही है जो कायनात के पूरे

مِنَ الرَّهْبِ فَذٰنِكَ بُرْهَانٰنِ مِنْ رَّبِّكَ إِلٰى فِرْعَوْنَ وَمَلَائِهٖ ۗ إِنَّهُمْ
كَانُوْا قَوْمًا فٰسِقِيْنَ ﴿٣٢﴾ قَالَ رَبِّ إِنِّيْ قَتَلْتُ مِنْهُمْ نَفْسًا فَأَخَافُ

अपना बाज़ू भींच ले।[45] ये दो रौशन निशानियाँ हैं तेरे रब की तरफ़ से फ़िरऔन और उसके दरबारियों के सामने पेश करने के लिए, वे बड़े नाफ़रमान लोग हैं।"[46] (33) मूसा ने अर्ज़ किया, "मेरे आक़ा, मैं तो उनका एक आदमी क़त्ल कर चुका हूँ, डरता हूँ कि वे

निज़ाम को बनानेवाली, मालिक और हुकूमत करनेवाली है। दूसरे वे उन मोजिज़ों को देखकर मुत्मइन हो जाएँ कि जिस ख़तरनाक मिशन पर उन्हें फ़िरऔन की तरफ़ भेजा जा रहा है उसका सामना करने के लिए वे बिलकुल निहत्थे नहीं जाएँगे, बल्कि दो ज़बरदस्त हथियार लेकर जाएँगे।

45. यानी जब कभी कोई ख़तरनाक मौक़ा ऐसा आए जिससे तुम्हारे दिल में डर पैदा हो तो अपना बाज़ू भींच लिया करो, इससे तुम्हारा दिल मज़बूत हो जाएगा और रोब और दहशत की कोई कैफ़ियत तुम्हारे अन्दर बाक़ी न रहेगी।

बाज़ू से मुराद शायद सीधा बाज़ू है; क्योंकि सिर्फ़ हाथ बोलकर सीधा हाथ ही मुराद लिया जाता है। भींचने की दो शक्लें हो सकती हैं। एक यह कि बाज़ू को पहलू के साथ लगाकर दबा लिया जाए। दूसरी यह कि एक हाथ को दूसरे हाथ की बग़ल में रखकर दबाया जाए। ज़्यादा इमकान यह है कि पहली शक्ल ही मुराद होगी; क्योंकि इस सूरत में दूसरा कोई शख़्स यह महसूस नहीं कर सकता कि आदमी अपने दिल का डर दूर करने के लिए कोई ख़ास अमल कर रहा है।

हज़रत मूसा (अलैहि.) को यह तदबीर इसलिए बताई गई कि वे एक ज़ालिम हुकूमत का मुक़ाबला करने के लिए किसी लाव-लश्कर और दुनियावी साज़ो-सामान के बिना भेजे जा रहे थे। कई बार ऐसे भयानक मौक़े पेश आनेवाले थे जिनमें एक इन्तिहाई मज़बूत इरादेवाला नबी तक दहशत से महफ़ूज़ न रह सकता था। अल्लाह तआला ने फ़रमाया है कि जब कोई ऐसी सूरत पेश आए, तुम बस यह अमल कर लिया करो, फ़िरऔन अपनी पूरी सल्तनत का ज़ोर लगाकर भी तुम्हारे दिल की ताक़त को डगमगा न सकेगा।

46. इन अलफ़ाज़ में यह मतलब आप-से-आप शामिल है कि ये निशानियाँ लेकर फ़िरऔन के पास जाओ और अल्लाह के रसूल की हैसियत से अपने आपको पेश करके उसे और उसके दरबारियों को अल्लाह, सारे जहान के रब, की फ़रमाँबरदारी और बन्दगी की तरफ़ बुलाओ। इसी लिए यहाँ इस तक़रुर का मतलब खोलकर बयान नहीं किया गया है। अलबत्ता दूसरी जगहों पर साफ़ तौर से यह मज़मून बयान किया गया है। सूरा-20 ता-हा और सूरा-79 नाज़िआत में फ़रमाया, "फ़िरऔन के पास जा कि वह सरकश हो गया है।" और सूरा-26 शुअरा में फ़रमाया, "जब कि पुकारा तेरे रब ने मूसा (अलैहि.) को कि जा ज़ालिम क़ौम के पास, फ़िरऔन की क़ौम के पास।"

اَنۡ يَّقۡتُلُوۡنِ۝۳۳ وَاَخِیۡ هٰرُوۡنُ هُوَ اَفۡصَحُ مِنِّیۡ لِسَانًا فَاَرۡسِلۡهُ مَعِیَ رِدۡاً
يُّصَدِّقُنِیۡۤ ۖ اِنِّیۡۤ اَخَافُ اَنۡ يُّكَذِّبُوۡنِ۝۳۴ قَالَ سَنَشُدُّ عَضُدَكَ
بِاَخِيۡكَ وَنَجۡعَلُ لَـكُمَا سُلۡطٰنًا فَلَا يَصِلُوۡنَ اِلَيۡكُمَا ۛۚ بِاٰيٰتِنَاۤ ۛۚ اَنۡتُمَا
وَمَنِ اتَّبَعَكُمَا الۡغٰلِبُوۡنَ۝۳۵ فَلَمَّا جَآءَهُمۡ مُّوۡسٰی بِاٰيٰتِنَا بَيِّنٰتٍ

मुझे मार डालेंगे।[47] (34) और मेरा भाई हारून मुझसे ज़्यादा बोलने में माहिर है, उसे मेरे साथ मददगार के तौर पर भेज, ताकि वह मेरी ताईद (समर्थन) करे। मुझे अन्देशा है कि वे लोग मुझे झुठलाएँगे।'' (35) फ़रमाया, ''हम तेरे भाई के ज़रिए से तेरा हाथ मज़बूत करेंगे और तुम दोनों को ऐसी ताक़त अता करेंगे कि वे तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेंगे। हमारी निशानियों के ज़ोर से तुम और तुम्हारी पैरवी करनेवाले ही ऊपर रहेंगे।''[48]

(36) फिर जब मूसा उन लोगों के पास हमारी खुली-खुली निशानियाँ लेकर पहुँचा तो

47. इसका मतलब यह नहीं था कि इस डर से मैं वहाँ नहीं जाना चाहता, बल्कि मतलब यह था कि आपकी तरफ़ से कुछ ऐसा इन्तिज़ाम होना चाहिए कि मेरे पहुँचते ही किसी बातचीत और रिसालत का फ़र्ज़ अदा करने की नौबत आने से पहले ये लोग मुझे क़त्ल के इलज़ाम में गिरफ़्तार न कर लें; क्योंकि इस सूरत में तो वह मक़सद ही ख़त्म हो जाएगा जिसके लिए मुझे इस मुहिम पर भेजा जा रहा है। बाद की इबारत से यह बात ख़ुद ज़ाहिर हो जाती है कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) की इस गुज़ारिश का यह मक़सद हरगिज़ नहीं था कि वे डर के मारे नुबूवत (पैग़म्बरी) का मंसब क़बूल करने और फ़िरऔन के यहाँ जाने से इनकार करना चाहते थे।

48. अल्लाह तआला के साथ हज़रत मूसा (अलैहि॰) की इस मुलाक़ात और बातचीत का हाल इससे ज़्यादा तफ़सील के साथ सूरा-20 ता-हा (आयतें—9-48) में बयान हुआ है। क़ुरआन मजीद के इस बयान का जो शख़्स भी उस दास्तान से मुक़ाबला करेगा जो इस सिलसिले में बाइबल की किताब निष्कासन (अध्याय-3, 4) में बयान की गई है, वह अगर कुछ साफ़-सुथरा ज़ौक़ रखता हो तो ख़ुद महसूस कर लेगा कि इन दोनों में से अल्लाह का कलाम कौन-सा है और इनसान की कही गई कहानी कौन लगती है। साथ ही वह इस मामले में भी आसानी से राय क़ायम कर सकेगा कि क्या क़ुरआन की यह रिवायत (अल्लाह की पनाह) बाइबल और इसराईली रिवायतों की नक़्ल है, या वह ख़ुदा ख़ुद अस्ल वाक़िआ बयान कर रहा है जिसने हज़रत मूसा (अलैहि॰) को मुलाक़ात की ख़ुशनसीबी का मौक़ा दिया था। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-20 ता-हा, हाशिया-19)

قَالُوْا مَا هٰذَآ اِلَّا سِحْرٌ مُّفْتَرًى وَّمَا سَمِعْنَا بِهٰذَا فِيْٓ اٰبَآئِنَا
الْاَوَّلِيْنَ ﴿۳۶﴾ وَقَالَ مُوْسٰى رَبِّيْٓ اَعْلَمُ بِمَنْ جَآءَ بِالْهُدٰى مِنْ عِنْدِهٖ
وَمَنْ تَكُوْنُ لَهٗ عَاقِبَةُ الدَّارِ ۭ اِنَّهٗ لَا يُفْلِحُ الظّٰلِمُوْنَ ﴿۳۷﴾

उन्होंने कहा कि यह कुछ नहीं है मगर बनावटी जादू।[49] और ये बातें तो हमने अपने बाप-दादा के ज़माने में कभी सुनीं ही नहीं।[50] (37) मूसा ने जवाब दिया, "मेरा रब उस शख़्स का हाल अच्छी तरह जानता है जो उसकी तरफ़ से हिदायत लेकर आया है और वही बेहतर जानता है कि आख़िरी अंजाम किसका अच्छा होना है, सच यह है कि ज़ालिम कभी कामयाब नहीं होते।"[51]

49. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं "सिहरुम-मुफ़्-तरन" (गढ़ा हुआ जादू) इस 'इफ़्तिरा' (गढ़ना) को अगर झूठ के मानी में लिया जाए तो मतलब यह होगा कि यह लाठी का अजगर बनना और हाथ का चमक उठना अस्ल चीज़ में हक़ीक़ी तब्दीली नहीं है, बल्कि सिर्फ़ एक दिखावटी धोखा है जिसे यह शख़्स मोजिज़ा (चमत्कार) कहकर हमें धोखा दे रहा है और अगर इसे बनावट के मानी में लिया जाए तो मुराद यह होगी कि यह शख़्स किसी करतब से एक ऐसी चीज़ बना लाया है जो देखने में लाठी मालूम होती है मगर जब यह उसे फेंक देता है तो साँप नज़र आने लगती है और अपने हाथ पर भी उसने कोई ऐसी चीज़ मल ली है कि उसकी बग़ल से निकलने के बाद वह यकायक चमक उठता है। यह बनावटी जादू उसने ख़ुद तैयार किया है और हमें यक़ीन यह दिला रहा है कि ये मोजिज़े हैं जो ख़ुदा ने उसे दिए हैं।

50. इशारा है उन बातों की तरफ़ जो रिसालत (पैग़म्बरी) की तबलीग़ के सिलसिले में हज़रत मूसा (अलैहि०) ने पेश की थीं। क़ुरआन मजीद में दूसरी जगहों पर उन बातों की तफ़सील दी गई है। सूरा-79 नाज़िआत में है कि हज़रत मूसा (अलैहि०) ने उससे कहा, "क्या तू पाकीज़ा रवैया अपनाने पर आमादा है? और मैं तुझे तेरे रब की राह बताऊँ तो (उसका) डर तेरे अन्दर पैदा हो?" सूरा-20 ता-हा में है कि "हम तेरे पास तेरे रब की निशानी लाए हैं और सलामती है उसके लिए जो सीधे रास्ते की पैरवी करे और हमपर वह्य की गई है कि सज़ा है उसके लिए जो झुठलाए और मुँह मोड़े और हम तेरे रब के पैग़म्बर हैं। तू हमारे साथ बनी-इसराईल को जाने दे।" इन्हीं बातों के बारे में फ़िरऔन ने कहा कि हमारे बाप-दादा ने भी कभी यह नहीं सुना था कि मिस्र के फ़िरऔन से ऊपर भी कोई ऐसी ताक़तवर हस्ती है जो उसको हुक्म दे सकती हो, जो उसे सज़ा दे सकती हो, जो उसे हिदायत देने के लिए किसी आदमी को उसके दरबार में भेजे और जिससे डरने के लिए मिस्र के बादशाह से कहा जाए। ये तो निराली बातें हैं जो आज हम एक आदमी की ज़बान से सुन रहे हैं।

51. यानी तू मुझे जादूगर और झूठ गढ़नेवाला कहता है, लेकिन मेरा रब मेरा हाल अच्छी तरह जानता है। वह जानता है कि जो शख़्स उसकी तरफ़ से रसूल मुक़र्रर किया गया है वह कैसा

وَقَالَ فِرْعَوْنُ يٰٓاَيُّهَا الْمَلَاُ مَا عَلِمْتُ لَكُمْ مِّنْ اِلٰهٍ غَيْرِيْ ۚ فَاَوْقِدْ لِيْ يٰهَامٰنُ عَلَى الطِّيْنِ فَاجْعَلْ لِّيْ صَرْحًا لَّعَلِّيْٓ اَطَّلِعُ اِلٰٓى اِلٰهِ مُوْسٰى ۙ

(38) और फ़िरऔन ने कहा, "ऐ दरबारियो, मैं तो अपने सिवा तुम्हारे किसी ख़ुदा को नहीं जानता।[52] हामान, ज़रा ईंटें पकवाकर मेरे लिए एक ऊँची इमारत तो बनवा, शायद कि उसपर चढ़कर मैं मूसा के ख़ुदा को देख सकूँ,——

आदमी है और आख़िरी अंजाम का फ़ैसला उसी के हाथ में है। मैं झूठा हूँ तो मेरा अंजाम बुरा होगा और अगर तू झूठा है तो फिर ख़ूब जान ले कि तेरा अंजाम अच्छा नहीं है। बहरहाल यह हक़ीक़त अपनी जगह अटल है कि ज़ालिम के लिए कामयाबी नहीं है। जो आदमी ख़ुदा का रसूल न हो और झूठमूठ का रसूल बनकर अपना कोई फ़ायदा हासिल करना चाहे वह भी ज़ालिम है और फ़लाह (कामयाबी और नजात) से महरूम रहेगा और जो तरह-तरह के झूठे इलज़ाम लगाकर सच्चे रसूल को झुठलाए और मक्कारियों से सच्चाई को दबाना चाहे वह भी ज़ालिम है और उसे कभी फ़लाह (कामयाबी) न मिलेगी।

52. इस बात से फ़िरऔन का मतलब ज़ाहिर है कि यह नहीं था और नहीं हो सकता था कि मैं ही तुम्हारा और ज़मीन और आसमान का पैदा करनेवाला हूँ; क्योंकि ऐसी बात सिर्फ़ एक पागल ही के मुँह से निकल सकती थी और इसी तरह इसका मतलब यह भी नहीं हो सकता था कि मेरे सिवा तुम्हारा कोई माबूद नहीं है; क्योंकि मिस्रवालों के मज़हब में बहुत-से माबूदों (उपास्यों) की पूजा होती थी और ख़ुद फ़िरऔन को जिस बुनियाद पर माबूदियत का दर्जा दिया गया था वह भी सिर्फ़ यह थी कि उसे सूरज देवता का अवतार माना जाता था। सबसे बड़ी गवाही क़ुरआन मजीद की मौजूद है कि फ़िरऔन ख़ुद बहुत-से देवताओं का पुजारी था, "और फ़िरऔन की क़ौम के सरदारों ने कहा, क्या तू मूसा और उसकी क़ौम को छूट देगा कि देश में फ़साद फैलाएँ और तुझे और तेरे माबूदों को छोड़ दें?" (सूरा-7 आराफ़, आयत-127) इसलिए हो-न-हो यहाँ फ़िरऔन ने लफ़्ज़ 'ख़ुदा' अपने लिए पैदा करनेवाले और माबूद के मानी में नहीं, बल्कि फ़रमाँबरदारी के हक़दार और हुक्म देनेवाले के मानी में इस्तेमाल किया था। उसका मतलब यह था कि मिस्र की इस सरज़मीन का मालिक मैं हूँ। यहाँ मेरा हुक्म चलेगा। मेरा ही क़ानून यहाँ क़ानून माना जाएगा। मुझे ही यहाँ हुक्म देने और मना करने का हक़दार माना जाएगा। कोई दूसरा यहाँ हुक्म देने का हक़दार नहीं है। यह मूसा कौन है जो रब्बुल-आलमीन (सारे जहानों के रब) का नुमाइन्दा बनकर आ खड़ा हुआ है और मुझे इस तरह हुक्म दे रहा है कि मानो अस्ल बादशाह यह है और मैं उसके हुक्म का ग़ुलाम हूँ। इसी बुनियाद पर उसने अपने दरबार के लोगों को मुख़ातब करके कहा था, " ऐ क़ौम, क्या मिस्र की बादशाही मेरी ही नहीं है और ये नहरें मेरे नीचे जारी नहीं हैं?" (सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयत-51) और इसी वजह से वह हज़रत

وَإِنِّي لَأَظُنُّهُ مِنَ الْكَاذِبِينَ ۝٣٨ وَاسْتَكْبَرَ هُوَ وَجُنُودُهُ فِي الْأَرْضِ

मैं तो उसे झूठा समझता हूँ।"[53]

(39) उसने और उसके लश्करों ने ज़मीन में बिना किसी हक़ के अपनी बड़ाई का

मूसा (अलैहि.) से बार-बार कहता था, "क्या तू इसलिए आया है कि हमें उस तरीक़े से हटा दे जो हमारे बाप-दादा के ज़माने से चला आ रहा है और इस देश में बड़ाई तुम दोनों भाइयों की हो जाए?" (सूरा-10 यूनुस, आयत-78) "ऐ मूसा, क्या तू इसलिए आया है कि हमें अपने जादू के ज़ोर से हमारी ज़मीन से बेदख़ल कर दे?" (सूरा-20 ता-हा, आयत-57) "मैं डरता हूँ कि यह आदमी तुम लोगों का दीन बदल डालेगा, या देश में बिगाड़ पैदा करेगा।"

(सूरा-40 मोमिन, आयत-26)

इस लिहाज़ से अगर ग़ौर किया जाए तो फ़िरऔन की पोज़ीशन उन हुकूमतों की पोज़ीशन से कुछ भी अलग नहीं है जो ख़ुदा के पैग़म्बर की लाई हुई शरीअत (क़ानून) से आज़ाद और ख़ुदमुख़्तार होकर सियासी और क़ानूनी तौर पर हुकूमत का अधिकार रखने की दावेदार हैं। वे चाहे क़ानून का सरचश्मा और हुक्म देने और मना करने का अधिकारी किसी बादशाह को मानें या क़ौम की मरज़ी को, बहरहाल जब तक वे यह तरीक़ा अपनाए हुए हैं कि देश में ख़ुदा और उसके रसूल का नहीं, बल्कि हमारा हुक्म चलेगा उस वक़्त तक उनके और फ़िरऔन के तरीक़े में कोई उसूली फ़र्क़ नहीं है। अब यह अलग बात है कि नासमझ लोग फ़िरऔन पर लानत भेजते रहें और इनको जाइज़ ठहराते रहें। हक़ीक़तों की समझ-बूझ रखनेवाला आदमी तो मतलब और रूह को देखेगा न कि अलफ़ाज़ और इस्तिलाहों (परिभाषाओं) को। आख़िर इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है कि फ़िरऔन ने अपने लिए 'इलाह' का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया था और ये इसी मानी में 'हाकिमियत' (सत्ताधिकार) की इस्तिलाह इस्तेमाल करती हैं। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-20 ता-हा, हाशिया-21)

53. यह उसी तरह की ज़ेहनियत थी जैसी आजकल के ज़माने के रूसी कम्युनिस्ट ज़ाहिर कर रहे हैं। यह स्पुटनिक और लूनिक छोड़कर दुनिया को ख़बर देते हैं कि हमारी इन गेंदों को ऊपर कहीं ख़ुदा नहीं मिला। वह बेवक़ूफ़ (फ़िरऔन) एक मीनार पर चढ़कर ख़ुदा को झाँकना चाहता था। इससे मालूम हुआ कि गुमराह लोगों के ज़ेहन की उड़ान साढ़े तीन हज़ार साल पहले जहाँ थी, आज भी वहीं तक है। इस एतिबार से एक अँगुल-भर भी तरक़्क़ी वे नहीं कर सके हैं। मालूम नहीं किस बेवक़ूफ़ ने इनको यह ख़बर दी थी कि ख़ुदा-परस्त लोग जिस रब्बुल-आलमीन को मानते हैं, वह उनके अक़ीदे के मुताबिक़ ऊपर कहीं बैठा हुआ है और इस अथाह कायनात में ज़मीन से चन्द हज़ार फ़ीट या चन्द लाख मील ऊपर उठकर अगर वह उन्हें न मिले तो यह बात मानो बिलकुल साबित हो जाएगी कि वह कहीं मौजूद नहीं है।

क़ुरआन यह नहीं कहता कि फ़िरऔन ने सचमुच एक इमारत इस मक़सद के लिए बनवाई थी

بِغَيْرِ الْحَقِّ وَظَنُّوْٓا اَنَّهُمْ اِلَيْنَا لَا يُرْجَعُوْنَ ۝٣٩ فَاَخَذْنٰهُ

घमण्ड किया[54] और समझे कि उन्हें कभी हमारी तरफ़ पलटना नहीं है।[55] (40) आख़िरकार

और उसपर चढ़कर ख़ुदा को झाँकने की कोशिश भी की थी, बल्कि वह उसकी सिर्फ़ उस बात को नक़्ल करता है। इससे बज़ाहिर यही मालूम होता है कि उसने अमली तौर पर यह बेवक़ूफ़ी नहीं की थी। इन बातों से उसका मक़सद सिर्फ़ बेवक़ूफ़ बनाना था।

यह बात भी साफ़ तौर से मालूम नहीं होती कि फ़िरऔन क्या सचमुच ख़ुदा रब्बुल-आलमीन की हस्ती का इनकार करनेवाला था या सिर्फ़ ज़िद और हठधर्मी की वजह से नास्तिकता की बातें करता था। उसकी बातें इस मामले में उसी ज़ेहनी उलझाव की निशानदेही करती हैं जो रूसी कम्युनिस्टों की बातों में पाया जाता है। कभी तो वह आसमान पर चढ़कर दुनिया को बताना चाहता था कि मैं ऊपर देख आया हूँ, मूसा (अलैहि॰) का ख़ुदा कहीं नहीं है और कभी वह कहता, "अगर मूसा सचमुच ख़ुदा का भेजा हुआ है तो क्यों न उसके लिए सोने के कंगन उतारे गए, या उसकी अरदली में फ़रिश्ते न आए?" (सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयत-53) ये बातें रूस के एक प्रधानमंत्री ख़ुरुश्चेफ़ की बातों से कुछ ज़्यादा अलग नहीं हैं जो कभी ख़ुदा का इनकार करता और कभी बार-बार ख़ुदा का नाम लेता और उसके नाम की क़स्में खाता था। हमारा अन्दाज़ा यह है कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) और उनके ख़लीफ़ाओं (उनके बाद हुकूमत की बागडोर संभालनेवालों) की हुकूमत का दौर गुज़र जाने के बाद जब मिस्र में क़िब्ती क़ौम-परस्ती का ज़ोर हुआ और देश में इसी नस्ली और वतनी तास्सुब (पक्षपात) की बुनियाद पर सियासी इंक़िलाब आ गया तो नए लीडरों ने अपनी क़ौम-परस्ती के जोश में उस ख़ुदा के ख़िलाफ़ भी बग़ावत कर दी जिसको मानने की दावत हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) और उनके पैरोकार इसराईली और मिस्री मुसलमान देते थे। उन्होंने यह समझा कि ख़ुदा को मानकर हम यूसुफ़ी तहज़ीब (सभ्यता) के असर से न निकल सकेंगे और यह तहज़ीब बाक़ी रही तो हमारा सियासी असर भी मज़बूत न हो सकेगा। वे ख़ुदा के इक़रार और मुसलमानों की हुकूमत को एक-दूसरे के लिए लाज़िमी समझते थे, इसलिए एक से पीछा छुड़ाने के लिए दूसरे का इनकार उनके नज़दीक ज़रूरी था, अगरचे उसका इक़रार उनके दिल की गहराइयों से किसी तरह निकाले न निकलता था।

54. यानी बड़ाई का हक़ तो इस कायनात में सिर्फ़ सारे जहानों के रब अल्लाह को है। मगर फ़िरऔन और उसके लश्कर ज़मीन के एक ज़रा-से हिस्से में थोड़ी-सी हुकूमत पाकर यह समझ बैठे कि यहाँ बड़े बस वही हैं।

55. यानी उन्होंने अपने आपको हर पूछ-गच्छ से आज़ाद समझ लिया और यह मान करके पूरी तरह अपनी मरज़ी से काम करने लगे कि उन्हें जाकर किसी के सामने जवाबदेही नहीं करनी है।

وَجُنُوْدَهٗ فَنَبَذْنٰهُمْ فِي الْيَمِّ ۚ فَانْظُرْ كَيْفَ كَانَ عَاقِبَةُ
الظّٰلِمِيْنَ۝۴۰ وَجَعَلْنٰهُمْ اَئِمَّةً يَّدْعُوْنَ اِلَى النَّارِ ۚ وَيَوْمَ الْقِيٰمَةِ لَا
يُنْصَرُوْنَ۝۴۱ وَاَتْبَعْنٰهُمْ فِيْ هٰذِهِ الدُّنْيَا لَعْنَةً ۚ وَيَوْمَ الْقِيٰمَةِ هُمْ
مِّنَ الْمَقْبُوْحِيْنَ۝۴۲ وَلَقَدْ اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ مِنْۢ بَعْدِ مَاۤ اَهْلَكْنَا
الْقُرُوْنَ الْاُوْلٰى بَصَآئِرَ لِلنَّاسِ وَهُدًى وَّرَحْمَةً لَّعَلَّهُمْ يَتَذَكَّرُوْنَ۝۴۳

हमने उसे और उसके लश्करों को पकड़ा और समन्दर में फेंक दिया।[56] अब देख लो कि उन ज़ालिमों का कैसा अंजाम हुआ। (41) हमने उन्हें जहन्नम की तरफ़ बुलानेवाला पेशवा बना दिया[57] और क़ियामत के दिन वे कहीं से कोई मदद न पा सकेंगे। (42) हमने इस दुनिया में उनके पीछे लानत लगा दी और क़ियामत के दिन वे बड़ी बदहाली में मुब्तला होंगे।[58]

(43) पिछली नस्लों को हलाक करने के बाद हमने मूसा को किताब दी, लोगों के लिए गहरी सूझ-बूझ का सामान बनाकर, हिदायत और रहमत बनाकर, ताकि शायद लोग सबक़ हासिल करें।[59] —

56. इन अलफ़ाज़ में अल्लाह तआला ने उनके झूठे घमण्ड के मुक़ाबले में उनके बेहक़ीक़त और हक़ीर (तुच्छ) होने की तस्वीर खींच दी है। वे अपने आपको बड़ी चीज़ समझ बैठे थे। मगर जब वह मुहलत जो ख़ुदा ने उनको सीधे रास्ते पर आने के लिए दी थी ख़त्म हो गई तो उन्हें इस तरह उठाकर समन्दर में फेंक दिया जैसे कूड़ा-करकट फेंका जाता है।

57. यानी वे बाद की नस्लों के लिए एक मिसाल क़ायम कर गए हैं कि ज़ुल्म यूँ किया जाता है, हक़ (सत्य) के इनकार पर डट जाने और आख़िर वक़्त तक डटे रहने की शान यह होती है और सच्चाई के मुक़ाबले में बातिल (असत्य) पर चलनेवाले लोग ऐसे-ऐसे हथियार इस्तेमाल कर सकते हैं। ये सब रास्ते दुनिया को दिखाकर वे जहन्नम की तरफ़ जा चुके हैं और उनके पीछे आनेवाले अब उन्हीं के रास्तों पर चलकर उसी मंज़िल की तरफ़ लपके जा रहे हैं।

58. अस्ल अलफ़ाज़ हैं क़ियामत के दिन वे 'मक़बूहीन' में से होंगे। इसके कई मतलब हो सकते हैं। वे फिटकारे हुए होंगे। अल्लाह की रहमत से बिलकुल महरूम कर दिए जाएँगे। उनकी बुरी गत (दुर्गति) बनाई जाएगी और उनके चेहरे बिगाड़ दिए जाएँगे।

59. यानी पिछली नस्लें जब पिछले नबियों की तालीमात से मुँह फेरने का बुरा नतीजा भुगत चुकीं और उनका आख़िरी अंजाम वह कुछ हो चुका जो फ़िरऔन और उसके लश्करों ने देखा, तो

وَمَا كُنْتَ بِجَانِبِ الْغَرْبِيِّ إِذْ قَضَيْنَآ إِلَىٰ مُوسَى الْأَمْرَ وَمَا كُنْتَ
مِنَ الشّٰهِدِيْنَ ﴿٤٤﴾ وَلٰكِنَّآ أَنْشَأْنَا قُرُوْنًا فَتَطَاوَلَ عَلَيْهِمُ الْعُمُرُ ۚ
وَمَا كُنْتَ ثَاوِيًا فِيْٓ أَهْلِ مَدْيَنَ تَتْلُوْا عَلَيْهِمْ اٰيٰتِنَا ۙ وَلٰكِنَّا كُنَّا
مُرْسِلِيْنَ ﴿٤٥﴾ وَمَا كُنْتَ بِجَانِبِ الطُّوْرِ إِذْ نَادَيْنَا وَلٰكِنْ رَّحْمَةً مِّنْ رَّبِّكَ

(44) (ऐ नबी) तुम उस वक़्त पश्चिमी कोने में मौजूद न थे,[60] जब हमने मूसा को शरीअत का यह हुक्म दिया और न तुम देखनेवालों में शामिल[61] थे, (45) बल्कि उसके बाद (तुम्हारे ज़माने तक) हम बहुत-सी नस्लें उठा चुके हैं और उनपर बहुत ज़माना गुज़र चुका है।[62] तुम मदयनवालों के बीच भी मौजूद न थे कि उनको हमारी आयतें सुना रहे होते,[63] मगर (उस वक़्त की ये ख़बरें) भेजनेवाले हम हैं। (46) और तुम तूर के दामन में भी उस वक़्त मौजूद न थे जब हमने (मूसा को पहली बार) पुकारा था, मगर यह तुम्हारे रब की रहमत है (कि तुमको ये जानकारियाँ दी जा रही हैं[64]), ———

इसके बाद मूसा (अलैहि॰) को किताब दी गई ताकि इनसानियत का एक नया दौर शुरू हो।

60. पश्चिमी कोने से मुराद जज़ीरा नुमा-ए-सीना (प्रायद्वीप सीना) का वह पहाड़ है जिसपर हज़रत मूसा (अलैहि॰) को शरीअत के अहकाम दिए गए थे। यह इलाक़ा हिजाज़ के पश्चिमी तरफ़ पाया जाता है।

61. यानी बनी-इसराईल के उन सत्तर नुमाइन्दों में जिनको शरीअत की पाबन्दी का अहद (शपथ) लेने के लिए हज़रत मूसा (अलैहि॰) के साथ बुलाया गया था। (सूरा-7 आराफ़, आयत-155 में उन नुमाइन्दों के बुलाए जाने का ज़िक्र गुज़र चुका है और बाइबल की किताब निष्कासन, अध्याय-24 में भी इसका ज़िक्र मौजूद है।)

62. यानी तुम्हारे पास इन मालूमात के हासिल करने का सीधे तौर पर कोई ज़रिआ नहीं था। आज जो तुम इन वाक़िआत को दो हज़ार साल से ज़्यादा मुद्दत गुज़र जाने के बाद इस तरह बयान कर रहे हो कि मानो यह सब तुम्हारा आँखों देखा हाल है, इसकी कोई वजह इसके सिवा नहीं है कि अल्लाह तआला की वह्य के ज़रिए से तुमको ये मालूमात पहुँचाई जा रही हैं।

63. यानी जब हज़रत मूसा (अलैहि॰) मदयन पहुँचे और जो कुछ वहाँ उनके साथ पेश आया और दस साल गुज़ारकर जब वे वहाँ से रवाना हुए, उस वक़्त तुम्हारा कहीं पता भी न था। तुम उस वक़्त मदयन की बस्तियों में वह काम नहीं कर रहे थे जो आज मक्का की गलियों में कर रहे हो। उन वाक़िआत का ज़िक्र तुम कुछ इस बुनियाद पर नहीं कर रहे हो कि यह तुम्हारा आँखों देखा हाल है, बल्कि यह इल्म भी तुमको हमारी वह्य के ज़रिए ही से हासिल हुआ है।

64. ये तीनों बातें मुहम्मद (सल्ल॰) की नुबूवत (पैग़म्बरी) के सुबूत में पेश की गई हैं। जिस वक़्त ये बातें कही गई थीं उस वक़्त मक्का के तमाम सरदार और आम ग़ैर-मुस्लिम इस बात पर पूरी

तरह तुले हुए थे कि किसी-न-किसी तरह आप (सल्ल॰) को ग़ैर-नबी और, अल्लाह की पनाह, झूठा दावेदार साबित कर दें। उनकी मदद के लिए यहूदियों के उलमा और ईसाइयों के राहिब भी हिजाज़ की बस्तियों में मौजूद थे और मुहम्मद (सल्ल॰) कहीं ऊपरी दुनिया से आकर यह क़ुरआन नहीं सुना जाते थे, बल्कि उसी मक्का के रहनेवाले थे और आप (सल्ल॰) की ज़िन्दगी का कोई हिस्सा आप (सल्ल॰) की बस्ती और आप (सल्ल॰) के क़बीले के लोगों से छिपा हुआ न था। यही वजह है कि जिस वक़्त इस खुले चैलेंज के अन्दाज़ में नबी (सल्ल॰) की पैग़म्बरी के सूबूत के तौर पर ये तीन बातें कही गईं, उस वक़्त मक्का और हिजाज़ और पूरे अरब में कोई एक शख़्स भी उठकर वह बेहूदा बात न कह सका जो आज के मुस्तशरिक़ीन (पश्चिमी प्राच्यविद्) कहते हैं। अगरचे झूठ गढ़ने में वे लोग इनसे कुछ कम न थे, लेकिन ऐसा बे-सिर-पैर का झूठ वे आख़िर कैसे बोल सकते थे जो एक पल के लिए भी न चल सकता हो। वे कैसे कहते कि ऐ मुहम्मद, तुम फ़ुलाँ-फ़ुलाँ यहूदी आलिमों और ईसाई राहिबों से ये जानकारियाँ हासिल कर लाए हो; क्योंकि पूरे देश में वे इस ग़रज़ के लिए किसी का नाम नहीं ले सकते थे। जिसका नाम भी वे लेते, फ़ौरन ही यह साबित हो जाता कि उससे नबी (सल्ल॰) ने कोई मालूमात हासिल नहीं की हैं। वे कैसे कहते कि ऐ मुहम्मद, तुम्हारे पास पिछले इतिहास और उलूम-व-आदाब (ज्ञान-विज्ञान और शिष्टाचार) की एक लाइब्रेरी मौजूद है जिसकी मदद से तुम ये सारी तक़रीरें कर रहे हो; क्योंकि लाइब्रेरी तो दूर की बात, मुहम्मद (सल्ल॰) के आसपास कहीं से वे एक काग़ज़ का टुकड़ा भी बरामद नहीं कर सकते थे जिसमें ये मालूमात लिखी हुई हों। मक्का का बच्चा-बच्चा जानता था कि मुहम्मद (सल्ल॰) पढ़े-लिखे आदमी नहीं हैं और कोई यह भी नहीं कह सकता था कि आप (सल्ल॰) ने कुछ तर्जमा करनेवालों को काम पर लगा रखा है जो इबरानी और सुरयानी और यूनानी किताबों के तर्जमे कर-करके आप (सल्ल॰) को देते हैं। फिर उनमें से कोई बड़े-से-बड़ा बेहया आदमी भी यह दावा करने की जुरअत न रखता था कि शाम (सीरिया) और फ़िलिस्तीन के तिजारती सफ़रों में आप (सल्ल॰) ये मालूमात हासिल कर आए थे; क्योंकि ये सफ़र अकेले नहीं हुए थे। मक्का ही के तिजारती क़ाफ़िले हर सफ़र में आप (सल्ल॰) के साथ लगे हुए थे। अगर कोई उस वक़्त ऐसा दावा करता तो सैंकड़ों ज़िन्दा गवाह यह गवाही दे देते कि वहाँ आप (सल्ल॰) ने किसी से कोई दर्स नहीं लिया और आप (सल्ल॰) के इन्तिक़ाल के बाद तो दो साल के अन्दर ही रोम-वासियों से मुसलमानों की जंग होने लगी थी। अगर कहीं झूठों भी शाम और फ़िलिस्तीन में किसी ईसाई राहिब या यहूदी रिब्बी से नबी (सल्ल॰) ने कोई मुज़ाकरा (विचारों का आदान-प्रदान) किया होता तो रोमी सल्तनत राई का पहाड़ बनाकर यह प्रोपेगण्डा करने में ज़रा न झिझकती कि मुहम्मद, (अल्लाह की पनाह), सबकुछ यहाँ से सीखकर गए थे और मक्का जाकर नबी बन बैठे। ग़रज़ उस ज़माने में जबकि क़ुरआन का यह चैलेंज क़ुरैश के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों और मुशरिकों के लिए मौत के पैग़ाम की हैसियत रखता था और उसको झुठलाने की ज़रूरत मौजूदा ज़माने के मुस्तशरिक़ीन (पश्चिमी देशों के वे ग़ैर-मुस्लिम विद्वान जिन्होंने इस्लाम का आलोचनात्मक अध्ययन किया) के मुक़ाबले में उन लोगों को कहीं ज़्यादा थी, कोई शख़्स भी कहीं से ऐसी कोई सामग्री जुटाकर न ला सका जिससे वह यह साबित कर सकता कि मुहम्मद (सल्ल॰) के पास वह्य के सिवा इन मालूमात

لِتُنْذِرَ قَوْمًا مَّآ اَتٰىهُمْ مِّنْ نَّذِيْرٍ مِّنْ قَبْلِكَ لَعَلَّهُمْ يَتَذَكَّرُوْنَ۝

ताकि तुम उन लोगों को ख़बरदार करो जिनके पास तुमसे पहले कोई ख़बरदार करनेवाला नहीं आया,[65] शायद कि वे होश में आएँ। (47) (और यह हमने इसलिए किया कि)

के हासिल करने का कोई दूसरा ज़रिआ मौजूद है जिसकी निशानदेही की जा सकती हो। यह बात भी जान लेनी चाहिए कि क़ुरआन ने यह चैलेंज इसी एक जगह नहीं दिया है, बल्कि कई जगहों पर अलग-अलग क़िस्सों के सिलसिले में दिया है। हज़रत ज़करिय्या और हज़रत मरयम (अलैहि०) का क़िस्सा बयान करके फ़रमाया, "यह ग़ैब की ख़बरों में से है जो हम वह्य के ज़रिए से तुम्हें दे रहे हैं, तुम उन लोगों के आसपास कहीं मौजूद न थे, जबकि वे अपने पाँसे यह तय करने के लिए फेंक रहे थे कि मरयम की सरपरस्ती कौन करे और न तुम उस वक़्त मौजूद थे जबकि वे झगड़ रहे थे।" (सूरा-3 आले-इमरान, आयत-44) हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) का क़िस्सा बयान करने के बाद फ़रमाया, "यह ग़ैब की ख़बरों में से है जो हम वह्य के ज़रिए से तुम्हें दे रहे हैं, तुम उनके (यानी यूसुफ़ के भाइयों के) आसपास कहीं मौजूद न थे जबकि वे अपनी तदबीर पर एकमत हुए और जबकि वे अपनी चाल चल रहे थे।" (सूरा-12 यूसुफ़, आयत-102) इसी तरह हज़रत नूह (अलैहि०) का तफ़सीली क़िस्सा बयान करके फ़रमाया, "ये बातें ग़ैब की ख़बरों में से हैं जो हम तुमपर वह्य कर रहे हैं। तुम्हें और तुम्हारी क़ौम को इससे पहले इनका कोई इल्म न था।" (सूरा-11 हूद, आयत-49) इस चीज़ की बार-बार तकरार से यह बात साफ़ ज़ाहिर होती है कि क़ुरआन मजीद अपने अल्लाह की तरफ़ से होने और मुहम्मद (सल्ल०) के अल्लाह का रसूल होने पर जो बड़ी-बड़ी दलीलें देता था उनमें से एक दलील यह थी कि सैंकड़ों-हज़ारों साल पहले के गुज़रे हुए वाक़िआत की जो तफ़सीलात एक उम्मी (अनपढ़) की ज़बान से अदा हो रही हैं उनके इल्म का कोई ज़रिआ उसके पास वह्य के सिवा नहीं है और यह चीज़ उन अहम वजहों में से थी जिनकी बुनियाद पर नबी (सल्ल०) के ज़माने के लोग इस बात पर यक़ीन लाते चले जा रहे थे कि सचमुच आप (सल्ल०) अल्लाह के नबी हैं और आप (सल्ल०) पर वह्य आती है। अब यह हर शख़्स ख़ुद सोच सकता है कि इस्लामी तहरीक (आन्दोलन) की मुख़ालिफ़त करनेवालों के लिए उस ज़माने में इस चैलेंज को ग़लत साबित करना कैसा-कुछ अहमियत रखता होगा और उन्होंने उसके ख़िलाफ़ सुबूत जुटाने की कोशिशों में क्या कमी छोड़ी होगी। साथ ही यह भी अन्दाज़ा किया जा सकता है कि अगर अल्लाह की पनाह, इस चैलेंज में ज़रा-सी भी कोई कमज़ोरी होती तो उसको ग़लत साबित करने के लिए सुबूत जुटाना उस ज़माने के लोगों के लिए मुश्किल न होता।

65. अरब में हज़रत इसमाईल (अलैहि०) और हज़रत शुऐब (अलैहि०) के बाद कोई नबी नहीं आया था। लगभग दो हज़ार साल की इस लम्बी मुद्दत में बाहर के नबियों की दावतें और तालीमात तो ज़रूर वहाँ पहुँचीं, मसलन हज़रत मूसा (अलैहि०), हज़रत सुलैमान (अलैहि०) और हज़रत ईसा (अलैहि०) की तालीमात, मगर किसी नबी को ख़ास तौर से इस सरज़मीन में नहीं भेजा गया था।

وَلَوْلَآ اَنْ تُصِيْبَهُمْ مُّصِيْبَةٌ بِمَا قَدَّمَتْ اَيْدِيْهِمْ فَيَقُوْلُوْا رَبَّنَا
لَوْلَآ اَرْسَلْتَ اِلَيْنَا رَسُوْلًا فَنَتَّبِعَ اٰيٰتِكَ وَنَكُوْنَ مِنَ
الْمُؤْمِنِيْنَ۝ فَلَمَّا جَآءَهُمُ الْحَقُّ مِنْ عِنْدِنَا قَالُوْا لَوْلَآ اُوْتِيَ مِثْلَ
مَآ اُوْتِيَ مُوْسٰى ؕ اَوَلَمْ يَكْفُرُوْا بِمَآ اُوْتِيَ مُوْسٰى مِنْ قَبْلُ ۚ قَالُوْا

कहीं ऐसा न हो कि उनके अपने किए करतूतों की बदौलत कोई मुसीबत जब उनपर आए तो वे कहें, "ऐ परवरदिगार, तूने क्यों न हमारी तरफ़ कोई रसूल भेजा कि हम तेरी आयतों की पैरवी करते और ईमानवालों में से होते।"[66]

(48) मगर जब हमारे यहाँ से हक़ (सत्य) उनके पास आ गया तो वे कहने लगे, "क्यों न दिया गया इसको वही कुछ जो मूसा को दिया गया था?"[67] क्या ये लोग उसका इनकार नहीं कर चुके हैं जो इससे पहले मूसा को दिया गया था?[68] उन्होंने कहा,

66. इसी चीज़ को क़ुरआन मजीद कई जगहों पर रसूलों के भेजे जाने की वजह के तौर पर पेश करता है। मगर इससे यह नतीजा निकालना सही नहीं है कि इस ग़रज़ के लिए हर वक़्त हर जगह एक रसूल आना चाहिए। जब तक दुनिया में एक रसूल का पैग़ाम अपनी सही शक्ल में मौजूद रहे और लोगों तक उसके पहुँचने के ज़राए (साधन) मौजूद रहें, किसी नए रसूल की ज़रूरत नहीं रहती, सिवाय यह कि पिछले पैग़ाम में कुछ बढ़ाने की और कोई नया पैग़ाम देने की ज़रूरत हो। अलबत्ता जब नबियों की तालीमात गुम हो जाएँ, या गुमराहियों में गड्ड-मड्ड होकर हिदायत का ज़रिआ बनने के क़ाबिल न रहें, तब लोगों के लिए यह मजबूरी पेश करने का मौक़ा पैदा हो जाता है कि हमें हक़ और बातिल के फ़र्क़ से आगाह करने और सही राह बताने का कोई इन्तिज़ाम सिरे से मौजूद ही नहीं था, फिर भला हम कैसे हिदायत पा सकते थे। इसी मजबूरी को तोड़ने के लिए अल्लाह तआला ऐसे हालात में नबी को भेजता है, ताकि उसके बाद जो शख़्स भी ग़लत राह पर चले वह अपनी गुमराही का ज़िम्मेदार ठहराया जा सके।

67. यानी मुहम्मद (सल्ल॰) को वे सारे मोजिज़े क्यों न दिए गए जो हज़रत मूसा (अलैहि॰) को दिए गए थे। ये भी लाठी का अजगर बनाकर हमें दिखाते। इनका हाथ भी सूरज की तरह चमक उठता। झुठलानेवालों पर इनके इशारे से भी लगातार तूफ़ानों और ज़मीन और आसमान से बलाएँ उतरतीं और ये भी पत्थर की तख़्तियों पर लिखे हुए हुक्म लाकर हमें देते।

68. यह उनके एतिराज़ का जवाब है। मतलब यह है कि इन मोजिज़ों (चमत्कारों) के बावजूद मूसा (अलैहि॰) ही पर तुम कब ईमान लाए थे जो अब मुहम्मद (सल्ल॰) से उनकी माँग कर रहे हो। तुम ख़ुद कहते हो कि मूसा (अलैहि॰) को ये मोजिज़े दिए गए थे। मगर फिर भी उनको नबी

سِحْرٰنِ تَظٰهَرَا ۚ وَقَالُوْٓا اِنَّا بِكُلٍّ كٰفِرُوْنَ ﴿٤٨﴾ قُلْ فَاْتُوْا بِكِتٰبٍ مِّنْ
عِنْدِ اللّٰهِ هُوَ اَهْدٰى مِنْهُمَآ اَتَّبِعْهُ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ﴿٤٩﴾ فَاِنْ لَّمْ
يَسْتَجِيْبُوْا لَكَ فَاعْلَمْ اَنَّمَا يَتَّبِعُوْنَ اَهْوَآءَهُمْ ۗ وَمَنْ اَضَلُّ مِمَّنِ
اتَّبَعَ هَوٰىهُ بِغَيْرِ هُدًى مِّنَ اللّٰهِ ۗ اِنَّ اللّٰهَ لَا يَهْدِى الْقَوْمَ
الظّٰلِمِيْنَ ﴿٥٠﴾ وَلَقَدْ وَصَّلْنَا لَهُمُ الْقَوْلَ لَعَلَّهُمْ يَتَذَكَّرُوْنَ ﴿٥١﴾

ع ٨

"दोनों जादू हैं,[69] जो एक-दूसरे की मदद करते हैं।" और कहा, "हम किसी को नहीं मानते।" (49) (ऐ नबी,) इनसे कहो, "अच्छा तो लाओ अल्लाह की तरफ़ से कोई किताब जो इन दोनों से ज़्यादा हिदायत देनेवाली हो, अगर तुम सच्चे हो, मैं उसी की पैरवी करूँगा।"[70] (50) अब अगर वे तुम्हारी यह माँग पूरी नहीं करते तो समझ लो कि अस्ल में ये अपनी ख़ाहिशों के पीछे चलते हैं, और उस शख़्स से बढ़कर कौन गुमराह होगा जो ख़ुदाई हिदायत के बिना बस अपनी ख़ाहिशों की पैरवी करे? अल्लाह ऐसे ज़ालिमों को हरगिज़ हिदायत नहीं देता। (51) और (नसीहत की) बात लगातार हम उन्हें पहुँचा चुके हैं, ताकि वे ग़फ़लत से जागें।[71]

मानकर उनकी पैरवी तुमने कभी क़बूल नहीं की। सूरा-34 सबा, आयत-31 में भी मक्का के ग़ैर-मुस्लिमों की कही हुई यह बात नक़्ल की गई है कि "न हम इस क़ुरआन को मानेंगे, न उन किताबों को जो इससे पहले आई हुई हैं।"

69. यानी क़ुरआन और तौरात।

70. यानी मुझे तो हिदायत की पैरवी करनी है, शर्त यह है कि वह किसी की मनगढ़न्त न हो, बल्कि ख़ुदा की तरफ़ से हक़ीक़ी हिदायत हो। अगर तुम्हारे पास अल्लाह की कोई किताब मौजूद है जो क़ुरआन और तौरात से बेहतर रहनुमाई करती हो तो उसे तुमने छिपा क्यों रखा है? उसे सामने लाओ, मैं बिना झिझक उसकी पैरवी क़बूल कर लूँगा।

71. यानी जहाँ तक नसीहत का हक़ अदा करने का ताल्लुक़ है, हम इस क़ुरआन में लगातार इसे अदा कर चुके हैं। लेकिन हिदायत तो उसी को नसीब हो सकती है जो ज़िद और हठधर्मी छोड़े और तास्सुबों से दिल को पाक करके सच्चाई को सीधी तरह क़बूल करने के लिए तैयार हो।

الَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِهٖ هُمْ بِهٖ يُؤْمِنُوْنَ ﴿٥٢﴾ وَاِذَا يُتْلٰى
عَلَيْهِمْ قَالُوْٓا اٰمَنَّا بِهٖٓ اِنَّهُ الْحَقُّ مِنْ رَّبِّنَآ اِنَّا كُنَّا مِنْ قَبْلِهٖ مُسْلِمِيْنَ ﴿٥٣﴾

(52) जिन लोगों को इससे पहले हमने किताब दी थी वे इस (क़ुरआन) पर ईमान लाते हैं।[72] (53) और जब यह उनको सुनाया जाता है तो वे कहते हैं कि "हम इसपर ईमान लाए, यह वाक़ई हक़ है हमारे रब की तरफ़ से, हम तो पहले ही से मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हैं।"[73]

72. इससे मुराद यह नहीं है कि तमाम अहले-किताब (यहूदी और ईसाई) इसपर ईमान लाते हैं, बल्कि यह इशारा अस्ल में उस वाक़िए की तरफ़ है जो इस सूरा के उतरने के ज़माने में पेश आया था और इसका मक़सद मक्कावालों को शर्म दिलाना है कि तुम अपने घर आई हुई नेमत को ठुकरा रहे हो हालाँकि दूर-दूर के लोग उसकी ख़बर सुनकर आ रहे हैं और उसकी क़द्र पहचानकर उससे फ़ायदा उठा रहे हैं।
इस वाक़िए को इब्ने-हिशाम और बैहक़ी वग़ैरा ने मुहम्मद-बिन-इसहाक़ के हवाले से इस तरह रिवायत किया है कि हबशा की हिजरत के बाद जब नबी (सल्ल.) की रिसालत (पैग़म्बरी) और दावत की ख़बरें हबशा के देश में फैलीं तो वहाँ से बीस (20) के क़रीब ईसाइयों का एक दल सही हालात जानने के लिए मक्का आया और नबी (सल्ल.) से मस्जिदे-हराम में मिला। क़ुरैश के बहुत-से लोग भी यह माजरा देखकर आसपास खड़े हो गए। दल के लोगों ने नबी (सल्ल.) से कुछ सवाल किए जिनका आप (सल्ल.) ने जवाब दिया। फिर आप (सल्ल.) ने उनको इस्लाम की तरफ़ दावत दी और क़ुरआन मजीद की आयतें उनके सामने पढ़ीं। क़ुरआन सुनकर उनकी आँखों से आँसू जारी हो गए और उन्होंने उसके अल्लाह का कलाम होने को सच मान लिया और नबी (सल्ल.) पर ईमान ले आए। जब महफ़िल ख़त्म हो गई तो अबू-जह्ल और उसके कुछ साथियों ने उन लोगों को रास्ते में जा लिया और उन्हें सख़्त मलामत की कि "बड़े नामुराद हो तुम लोग, तुम्हारे मज़हबवाले लोगों ने तुमको इसलिए भेजा था कि तुम इस शख़्स के हालात की जाँच-पड़ताल करके आओ और उन्हें ठीक-ठीक ख़बर दो, मगर तुम अभी उसके पास बैठे ही थे कि अपना दीन छोड़कर उसपर ईमान ले आए। तुमसे ज़्यादा बेवक़ूफ़ गरोह तो कभी हमारी नज़र से नहीं गुज़रा।" इसपर उन्होंने जवाब दिया कि "सलाम है भाइयो, तुमको। हम तुम्हारे साथ जहालतबाज़ी नहीं कर सकते। हमें हमारे तरीक़े पर चलने दो और तुम अपने तरीक़े पर चलते रहो। हम अपने आपको जान-बूझकर भलाई से महरूम नहीं रख सकते।" (सीरत इब्ने-हिशाम, हिस्सा-2, पेज-32; अल-बिदाया वन-निहाया, हिस्सा-3, पेज-82) और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-26 शुअरा, हाशिया-123।

73. यानी इससे पहले भी हम नबियों और आसमानी किताबों के माननेवाले थे, इसलिए इस्लाम के सिवा हमारा कोई और दीन न था और अब जो नबी अल्लाह तआला की तरफ़ से किताब लेकर आया है उसे भी हमने मान लिया है। लिहाज़ा हक़ीक़त में हमारे दीन में कोई तब्दीली नहीं हुई है, बल्कि जैसे हम पहले मुसलमान (ख़ुदा के फ़रमाँबरदार) थे वैसे ही अब भी मुसलमान हैं।

यह कहना इस बात को साफ़ कर देता है कि इस्लाम सिर्फ़ उस दीन का नाम नहीं है जिसे मुहम्मद (सल्ल॰) लेकर आए हैं और 'मुस्लिम' नाम सिर्फ़ नबी (सल्ल॰) के पैरोकारों पर ही चस्पाँ नहीं होता, बल्कि हमेशा से तमाम नबियों का दीन यही इस्लाम था और हर ज़माने में उन सबके पैरोकार मुसलमान ही थे। ये मुसलमान अगर कभी इनकारी हुए तो सिर्फ़ उस वक़्त जबकि किसी बाद के आनेवाले सच्चे नबी को मानने से उन्होंने इनकार किया। लेकिन जो लोग पहले नबी को मानते थे और बाद के आनेवाले नबी पर भी ईमान ले आए उनके इस्लाम में कोई रुकावट नहीं हुई। वे जैसे मुसलमान पहले थे, वैसे ही बाद में रहे।

ताज्जुब है कि कुछ बड़े-बड़े इल्मवाले भी इस हक़ीक़त को न समझ सके हैं, यहाँ तक कि इस वाज़ेह आयत को देखकर भी उनको इत्मीनान न हुआ। अल्लामा सुयूती ने एक तफ़सीली किताब इस सिलसिले में लिखी है कि मुस्लिम का नाम सिर्फ़ मुहम्मद (सल्ल॰) की उम्मत के लिए ख़ास है। फिर जब यह आयत सामने आई तो ख़ुद फ़रमाते हैं कि "मेरे हाथों के तोते उड़ गए।" लेकिन कहते हैं कि "मैंने फिर ख़ुदा से दुआ की कि इस मामले में मेरा सीना खोल दे (यानी मैं इसका मतलब सही तरह से समझ सकूँ)।" आख़िरकार अपनी राय से रुजू करने के बजाय वे उसपर अड़े रहे और इस आयत के कई मनमाने मतलब निकाल डाले जो एक-से-एक बढ़कर बेवज़्न हैं। मसलन उनका बयान किया हुआ एक मतलब यह है कि "इन्ना कुन्ना मिन् क़बलिही मुस्लिमीन" का मतलब है हम क़ुरआन के आने से पहले ही मुस्लिम बन जाने का इरादा रखते थे क्योंकि हमें अपनी किताबों से उसके आने की ख़बर मिल चुकी थी और हमारा इरादा यह था कि जब वह आएगा तो हम इस्लाम क़बूल कर लेंगे। दूसरा मतलब वे यह बयान करते हैं कि इस जुमले में 'मुस्लिमीन' के बाद लफ़्ज़ 'बिही' महज़ूफ़ (छिपा हुआ) है, यानी पहले ही से हम क़ुरआन को मानते थे; क्योंकि उसके आने की हम उम्मीद रखते थे और उसपर पेशगी ईमान लाए हुए थे, इसलिए तौरात और इंजील को मानने की वजह से नहीं, बल्कि क़ुरआन को उसके उतरने से पहले सच मान लेने की वजह से हम मुस्लिम थे। तीसरा मतलब वे यह बयान करते हैं कि अल्लाह की लिखी तक़दीर में हमारे लिए पहले ही मुक़द्दर हो चुका था कि मुहम्मद (सल्ल॰) और क़ुरआन के आने पर हम इस्लाम क़बूल कर लेंगे, इसलिए हक़ीक़त में हम पहले ही से मुस्लिम थे। इन मनमाने मतलबों में से किसी को देखकर भी यह महसूस नहीं होता कि अल्लाह की तरफ़ से सीना खोले जाने का इसमें कोई असर मौजूद है।

सच तो यह है कि क़ुरआन सिर्फ़ इसी एक मक़ाम पर नहीं, बल्कि बीसियों जगहों पर इस उसूली हक़ीक़त को बयान करता है कि अस्ल दीन सिर्फ़ 'इस्लाम' (अल्लाह की फ़रमाँबरदारी) है और ख़ुदा की कायनात में ख़ुदा की मख़लूक़ (सृष्टि) के लिए इसके सिवा कोई दूसरा दीन (तरीक़ा) नहीं हो सकता और कायनात की शुरुआत से जो नबी भी इनसानों की हिदायत के लिए आया है, वह यही दीन लेकर आया है और यह कि सारे पैग़म्बर (अलैहि॰) हमेशा ख़ुद मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) रहे हैं, अपने पैरोकारों को उन्होंने मुस्लिम ही बनकर रहने की ताकीद की है और उनकी पैरवी करनेवाले वे सब लोग जिन्होंने नुबूवत के ज़रिए से आए हुए अल्लाह के हुक्म के आगे सिर झुका दिया, हर ज़माने में मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) ही थे। इस सिलसिले में मिसाल के तौर पर क़ुरआन मजीद की सिर्फ़ कुछ आयतें देखिए, "हक़ीक़त में अल्लाह के

नज़दीक दीन तो सिर्फ़ इस्लाम है।" (सूरा-3 आले-इमरान, आयत-19)

"और जो कोई इस्लाम के सिया कोई और दीन अपनाए वह हरगिज़ क़बूल न किया जाएगा।" (सूरा-3 आले-इमरान, आयत-85)

हज़रत नूह (अलैहि॰) फ़रमाते हैं, "मेरा बदला तो अल्लाह के ज़िम्मे है और मुझे हुक्म दिया गया है कि मैं मुस्लिमों (फ़रमाँबरदारों) में शामिल होकर रहूँ।" (सूरा-10 यूनुस, आयत-72)

हज़रत इबराहीम और उनकी औलाद के बारे में कहा जाता है—

"जबकि उसके रब ने उससे कहा कि मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हो जा, तो उसने कहा, मैं मुस्लिम हो गया रब्बुल-आलमीन के लिए और इसी चीज़ की वसीयत की इबराहीम ने अपनी औलाद को और याक़ूब ने भी, कि ऐ मेरे बच्चो, अल्लाह ने तुम्हारे लिए इस दीन को पसन्द किया है। लिहाज़ा तुमको मौत न आए, मगर इस हाल में कि तुम मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हो। क्या तुम उस वक़्त मौजूद थे जब याक़ूब की मौत का वक़्त आया? जबकि उसने अपनी औलाद से पूछा, किसकी बन्दगी करोगे तुम मेरे बाद? उन्होंने जवाब दिया, हम बन्दगी करेंगे आपके माबूद और आपके बाप-दादा इबराहीम और इसमाईल और इसहाक़ के माबूद की, उसको अकेला माबूद मानकर और हम उसी के मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हैं।" (सूरा-2 बक़रा, आयतें—131-133)

"इबराहीम न यहूदी था न नसरानी (ईसाई), बल्कि वह यकसू (एकाग्र) मुस्लिम था।" (सूरा-3 आले-इमरान, आयत-68)

हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) और हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) ख़ुद दुआ फ़रमाते हैं—

"ऐ हमारे रब, हमको अपना मुस्लिम बना और हमारी नस्ल से एक उम्मत पैदा कर जो तेरी मुस्लिम हो।" (सूरा-2 बक़रा, आयत-128)

हज़रत लूत (अलैहि॰) के क़िस्से में कहा जाता है—

"हमने लूत की क़ौम की बस्ती में एक घर के सिवा मुसलमानों का कोई घर नहीं पाया।" (सूरा-51 ज़ारियात, आयत-36)

हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) अल्लाह के दरबार में अर्ज़ करते हैं—

"मुझको मुस्लिम होने की हालत में मौत दे और नेक लोगों के साथ मिला।" (सूरा-12 यूसुफ़, आयत-101)

हज़रत मूसा अपनी क़ौम से कहते हैं—

"ऐ मेरी क़ौम के लोगो, अगर तुम अल्लाह पर ईमान लाए हो तो उसी पर भरोसा करो अगर तुम मुस्लिम हो।" (सूरा-10 यूनुस, आयत-84)

बनी-इसराईल का अस्ल मज़हब यहूदियत नहीं, बल्कि इस्लाम था, इस बात को दोस्त और दुश्मन सब जानते थे। चुनाँचे फ़िरऔन समन्दर में डूबते वक़्त आख़िरी बात जो कहता है वह यह है—

"मैंने मान लिया कि कोई माबूद उसके सिवा नहीं है जिसपर बनी-इसराईल ईमान लाए हैं और मैं मुस्लिमों (फ़रमाँबरदारों) में से हूँ।" (सूरा-10 यूनुस, आयत-90)

बनी-इसराईल के तमाम पैग़म्बरों का दीन भी यही इस्लाम था—

"हमने तौरात उतारी जिसमें हिदायत और रौशनी थी। उसी के मुताबिक़ वे नबी, जो मुस्लिम

أُولَٰئِكَ يُؤْتَوْنَ أَجْرَهُم مَّرَّتَيْنِ بِمَا صَبَرُوا وَيَدْرَءُونَ

(54) ये वे लोग हैं जिन्हें उनका इनाम दो बार दिया जाएगा[74] उस मज़बूती से जमे रहने

थे, उन लोगों के मामलों के फ़ैसले करते थे जो यहूदी हो गए थे।" (सूरा-5 माइदा, आयत-44) यही हज़रत सुलैमान (अलैहि.) का दीन था, चुनाँचे सबा की मलिका उनपर ईमान लाते हुए कहती है—

"मैं सुलैमान के साथ रब्बुल-आलमीन की मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हो गई।"

(सूरा-27 नम्ल, आयत-44)

और यही हज़रत ईसा (अलैहि.) और उनके हवारियों (साथियों) का दीन था—

"और जबकि मैंने हवारियों पर वह्य (प्रकाशना) की कि ईमान लाओ मुझपर और मेरे रसूल पर, तो उन्होंने कहा, हम ईमान लाए और गवाह रह कि हम मुस्लिम हैं।"

(सूरा-5 माइदा, आयत-111)

इस मामले में अगर कोई शक इस बुनियाद पर किया जाए कि अरबी ज़बान के अलफ़ाज़ 'इस्लाम' और 'मुस्लिम' इन अलग-अलग देशों और अलग-अलग ज़बानों में कैसे इस्तेमाल हो सकते थे, तो ज़ाहिर है कि यह सिर्फ़ एक नादानी की बात होगी; क्योंकि अस्ल एतिबार अरबी के इन अलफ़ाज़ का नहीं, बल्कि उस मानी का है जिसके लिए ये अलफ़ाज़ अरबी में इस्तेमाल होते हैं। अस्ल में जो बात इन आयतों में बताई गई है वह यह है कि ख़ुदा की तरफ़ से आया हुआ हक़ीक़ी दीन मसीहियत या मूसवियत या मुहम्मदियत नहीं है, बल्कि नबियों और आसमानी किताबों के ज़रिए से आए हुए अल्लाह के हुक्मों के आगे सिर झुका देना है और यह रवैया ख़ुदा के जिस बन्दे ने भी जिस ज़माने में अपनाया है वह एक ही आलमगीर और हमेशा से रहनेवाले सच्चे दीन का पैरोकार है। इस दीन को जिन लोगों ने ठीक-ठीक सोच-समझकर और सच्चे दिल से अपनाया है, उनके लिए मूसा (अलैहि.) के बाद मसीह (अलैहि.) को और मसीह के बाद मुहम्मद (सल्ल.) को मानना मज़हब की तब्दीली नहीं, बल्कि हक़ीक़ी दीन की पैरवी का फ़ितरी और मन्तिक़ी (तार्किक) तक़ाज़ा है। इसके बरख़िलाफ़ जो लोग नबियों (अलैहि.) के गरोहों में बे-सोचे-समझे घुस आए या पैदा हो गए और क़ौमी, नस्ली और गरोही तास्सुबात ने जिनके लिए अस्ल मज़हब का रूप ले लिया, वे बस यहूदी या ईसाई बनकर रह गए और मुहम्मद (सल्ल.) के आने पर उनकी जहालत की क़लई खुल गई; क्योंकि उन्होंने अल्लाह के आख़िरी नबी का इनकार करके न सिर्फ़ यह कि आगे के लिए मुस्लिम रहना क़बूल न किया, बल्कि अपनी इस हरकत से यह साबित कर दिया कि हक़ीक़त में वे पहले भी 'मुस्लिम' न थे, सिर्फ़ एक नबी या कुछ नबियों की शख़्सियत-परस्ती में मुब्तला थे, या बाप-दादा की अन्धी पैरवी को दीन बनाए बैठे थे।

74. यानी एक इनाम उस ईमान का जो वे पहले हज़रत ईसा (अलैहि.) पर रखते थे और दूसरा इनाम उस ईमान पर जो ये अब अरबी नबी मुहम्मद (सल्ल.) पर लाए। यही बात उस हदीस में बयान की गई है जो बुख़ारी और मुस्लिम ने हज़रत अबू-मूसा अशअरी (रज़ि.) से रिवायत की

بِالْحَسَنَةِ السَّيِّئَةَ وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ۝ وَاِذَا سَمِعُوا اللَّغْوَ
اَعْرَضُوْا عَنْهُ وَقَالُوْا لَنَآ اَعْمَالُنَا وَلَكُمْ اَعْمَالُكُمْ سَلٰمٌ
عَلَيْكُمْ لَا نَبْتَغِى الْجٰهِلِيْنَ۝ اِنَّكَ لَا تَهْدِيْ مَنْ اَحْبَبْتَ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ

के बदले जो उन्होंने दिखाई।[75] ये बुराई को भलाई से दूर करते हैं[76] और जो कुछ रोज़ी हमने उन्हें दी है उसमें से ख़र्च करते हैं।[77] (55) और जब उन्होंने बेहूदा बात सुनी[78] तो यह कहकर उससे अलग हो गए कि "हमारे आमाल हमारे लिए और तुम्हारे आमाल तुम्हारे लिए, तुमको सलाम है, हम जाहिलों का-सा तरीक़ा अपनाना नहीं चाहते।" (56) ऐ नबी, तुम जिसे चाहो उसे हिदायत नहीं दे सकते, मगर अल्लाह जिसे चाहता है

है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "तीन शख़्स ऐसे हैं जिनको दोहरा इनाम मिलेगा। उनमें से एक वह है जो अहले-किताब में से था और अपने नबी पर ईमान रखता था, फिर मुहम्मद (सल्ल.) पर ईमान लाया।"

75. यानी उन्हें यह दोहरा इनाम इस बात का मिलेगा कि ये क़ौमी, नस्ली और वतनी और गरोही तास्सुबात (पक्षपातों) से बचकर अस्ल सच्चे दीन पर जमे रहे और नए नबी के आने पर जो सख़्त इम्तिहान का सामना हुआ उसमें उन्होंने साबित कर दिया कि अस्ल में ये मसीह-परस्त नहीं, बल्कि ख़ुदा-परस्त थे और मसीह (अलैहि.) की शख़्सियत के दीवाने नहीं, बल्कि 'इस्लाम' के पैरोकार थे, इसी वजह से मसीह (अलैहि.) के बाद जब दूसरा नबी वही इस्लाम लेकर आया जिसे मसीह (अलैहि.) लाए थे तो उन्होंने बेझिझक उसकी रहनुमाई में इस्लाम का रास्ता अपना लिया और उन लोगों का रास्ता छोड़ दिया जो मसीहियत पर जमे रह गए।

76. यानी ये बुराई का जवाब बुराई से नहीं बल्कि नेकी से देते हैं। झूठ के मुक़ाबले में झूठ नहीं, बल्कि सच्चाई लाते हैं। ज़ुल्म को ज़ुल्म से नहीं, बल्कि इनसाफ़ से दूर करते हैं। शरारतों का सामना शरारत से नहीं, बल्कि शराफ़त से करते हैं।

77. यानी वे सच की राह में माल की क़ुरबानी भी करते हैं। मुमकिन है कि इसमें इशारा इस तरफ़ भी हो कि ये लोग सिर्फ़ हक़ (सत्य) की तलाश में हबश से सफ़र करके मक्का आए थे। इस मेहनत और माल के ख़र्च से कोई माद्दी (भौतिक) फ़ायदा उनके सामने न था। उन्होंने जब सुना कि मक्का में एक शख़्स ने नुबूवत (पैग़म्बरी) का दावा किया है तो उन्होंने ज़रूरी समझा कि ख़ुद जाकर सच्चाई का पता लगाएँ ताकि अगर सचमुच एक नबी ही ख़ुदा की तरफ़ से भेजा गया हो तो ये उसपर ईमान लाने और हिदायत पाने से महरूम न रह जाएँ।

78. इशारा है उस बेहूदा बात की तरफ़ जो अबू-जह्ल और उसके साथियों ने हबशी ईसाइयों के उस दल से की थी, जिसका ज़िक्र ऊपर हाशिया-72 में गुज़र चुका है।

يَهْدِيْ مَنْ يَّشَآءُ ۚ وَهُوَ اَعْلَمُ بِالْمُهْتَدِيْنَ ۝٥٦ وَقَالُوْٓا اِنْ نَّتَّبِعِ الْهُدٰى

हिदायत देता है और वह उन लोगों को ख़ूब जानता है जो हिदायत क़बूल करनेवाले हैं।[79]
(57) वे कहते हैं, "अगर हम तुम्हारे साथ इस हिदायत की पैरवी कर लें तो अपनी

79. जिस पसमंज़र (सन्दर्भ) में बात हो रही है उससे ज़ाहिर है कि हबशी ईसाइयों के ईमान और इस्लाम का ज़िक्र करने के बाद नबी (सल्ल.) को मुख़ातब करके यह जुमला कहने का मक़सद अस्ल में मक्का के ग़ैर-मुस्लिमों को शर्म दिलाना था। कहना यह था कि बदनसीबो, मातम करो अपनी हालत पर कि दूसरे कहाँ-कहाँ से आकर इस नेमत से फ़ायदा उठा रहे हैं और तुम भलाई के इस सरचश्मे से जो तुम्हारे अपने घर में बह रहा है, महरूम रहे जाते हो। लेकिन कहा गया है इस अन्दाज़ से कि ऐ मुहम्मद (सल्ल.) तुम चाहते हो कि मेरी क़ौम के लोग, मेरे भाई-बन्धु, मेरे दूर-क़रीब के रिश्तेदार, इस अमृत से फ़ायदा उठाएँ, लेकिन तुम्हारे चाहने से क्या होता है, हिदायत तो अल्लाह के इख़्तियार में है, वह अपनी इस नेमत से उन्हीं लोगों को फ़ायदा पहुँचाता है जिनमें वह देखता है कि वे हिदायत क़बूल करने के लिए तैयार हैं, तुम्हारे रिश्तेदारों में अगर यह ख़ूबी मौजूद न हो तो उनपर यह मेहरबानी कैसे हो सकती है।

हदीस बुख़ारी-मुस्लिम की रिवायत है कि यह आयत नबी (सल्ल.) के चचा अबू-तालिब के मामले में उतरी है। उनका जब आख़िरी वक़्त आया तो नबी (सल्ल.) ने अपनी हद तक इन्तिहाई कोशिश की कि वे कलिमा "ला-इला-ह इल्लल्लाह" पर ईमान ले आएँ ताकि उनका ख़ातिमा भलाई पर हो, मगर उन्होंने अब्दुल-मुत्तलिब के मज़हब पर ही जान देने को तरजीह दी। इसपर अल्लाह तआला ने फ़रमाया, "जिससे तुम्हें मुहब्बत है, तुम उसे हिदायत नहीं दे सकते।" लेकिन मुहद्दिसों (हदीस के आलिमों) और क़ुरआन की तफ़सीर लिखनेवालों का यह तरीक़ा जाना-माना है कि एक आयत नबी (सल्ल.) के जिस मामले पर चस्पाँ होती है, उसे वह आयत के उतरने के ज़माने के तौर पर बयान करते हैं। इसलिए इस रिवायत और इसी मज़मून (विषय) की दूसरी रिवायतों से जो तिरमिज़ी और मुसनद अहमद वग़ैरा में हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.), इब्ने-अब्बास (रज़ि.) और इब्ने-उमर (रज़ि.) वग़ैरा से बयान हुई हैं, लाज़िमन यही नतीजा नहीं निकलता कि सूरा क़सस की यह आयत अबू-तालिब की मौत के वक़्त उतरी थी, बल्कि उनसे सिर्फ़ यह मालूम होता है कि इस आयत के मज़मून की सच्चाई सबसे ज़्यादा इस मौक़े पर ज़ाहिर हुई। अगरचे नबी (सल्ल.) की दिली ख़ाहिश तो ख़ुदा के हर बन्दे को सीधे रास्ते पर लाने की थी, लेकिन सबसे बढ़कर अगर किसी शख़्स का कुफ़्र (अधर्म) पर ख़ातिमा नबी (सल्ल.) के लिए तकलीफ़देह हो सकता था और ज़ाती मुहब्बत और ताल्लुक़ की बुनियाद पर सबसे ज़्यादा किसी शख़्स के सीधे रास्ते पर आने की आप (सल्ल.) आरज़ू रखते थे तो वे अबू-तालिब थे। लेकिन जब उनको भी आप (सल्ल.) हिदायत न दे सके तो यह बात बिलकुल ज़ाहिर हो गई कि किसी को हिदायत देना और किसी को उससे महरूम रखना नबी के बस की बात नहीं है। यह मामला बिलकुल अल्लाह के हाथ में है और अल्लाह के यहाँ से यह दौलत

مَعَكَ نُتَخَطَّفْ مِنْ اَرْضِنَا ؕ اَوَلَمْ نُمَكِّنْ لَّهُمْ حَرَمًا اٰمِنًا

ज़मीन से उचक लिए जाएँगे।"[80]

क्या यह सच नहीं है कि हमने एक अम्नवाले हरम को उनके लिए ठहरने की जगह

किसी रिश्तेदारी और बिरादरी की बुनियाद पर नहीं, बल्कि आदमी के क़बूल करने पर आमादा होने, क़बूल करने की सलाहियत और मुख़लिसाना (निष्ठापूर्ण) सच्चाई-पसन्दी की बुनियाद पर दी जाती है।

80. यह वह बात है जो क़ुरैश के इस्लाम-मुख़ालिफ़ इस्लाम क़बूल न करने के लिए बहाने के तौर पर पेश करते थे और अगर ग़ौर से देखा जाए तो मालूम होता है कि उनके कुफ़्र और इनकार की सबसे अहम और बुनियादी वजह यही थी। इस बात को ठीक-ठीक समझने के लिए हमें देखना होगा कि तारीख़ी (ऐतिहासिक) तौर पर उस ज़माने में क़ुरैश की पोज़ीशन क्या थी जिसपर चोट पड़ने का उन्हें अन्देशा था।

क़ुरैश को शुरू में जिस चीज़ ने अरब में अहमियत दी वह यह थी कि उनका हज़रत इसमाईल (अलैहि.) की औलाद से होना अरब के नसब (वंशावली) के मुताबिक़ बिलकुल साबित था और इस बुनियाद पर उनका ख़ानदान अरबों की निगाह में पीरज़ादों का ख़ानदान था। फिर जब क़ुसई-बिन-किलाब की अच्छी तदबीरों से यह लोग काबा के मुतवल्ली (प्रबन्धक) हो गए और मक्का उनका ठिकाना बन गया तो उनकी अहमियत पहले से बहुत ज़्यादा हो गई। इसलिए कि अब वे अरब के सबसे बड़े तीर्थ के मुजाविर (पुरोहित) थे, तमाम अरब क़बीलों में उनको मज़हबी पेशवाई का मक़ाम हासिल था और हज की वजह से अरब का कोई क़बीला ऐसा न था जो उनसे ताल्लुक़ात न रखता हो। इस मर्कज़ी (केन्द्रीय) हैसियत से फ़ायदा उठाकर क़ुरैश ने धीरे-धीरे तिजारती तरक़्क़ी शुरू की और ख़ुशक़िस्मती से रोम (रूम) और ईरान की सियासी कशमकश ने उनको पूरी दुनिया की तिजारत (अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार) में एक अहम मक़ाम दिला दिया। उस ज़माने में रोम और यूनान और मिस्र और शाम (सीरिया) की जितनी तिजारत भी चीन, भारत, इंडोनेशिया और पूर्वी अफ़रीक़ा के साथ थी, उसके सारे नाके ईरान ने रोक दिए थे। आख़िरी रास्ता लाल सागर का रह गया था, सो यमन पर ईरान के क़ब्ज़े ने उसे भी रोक दिया। इसके बाद कोई सूरत इस तिजारत को जारी रखने के लिए इसके सिवा नहीं रह गई थी कि अरब के कारोबारी एक तरफ़ रोम के क़ब्ज़ेवाले हिस्सों का माल अरब सागर और फ़ारस की खाड़ी की बन्दरगाहों पर पहुँचाएँ और दूसरी तरफ़ उन्हीं बन्दरगाहों से पूर्वी तिजारती सामान लेकर रोम के क़ब्ज़ेवाले हिस्सों में पहुँचें। इस सूरते-हाल ने मक्का को पूरी दुनिया की तिजारत (अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार) का एक अहम सेंटर बना दिया। उस वक़्त क़ुरैश ही थे जिनका इस कारोबार पर लगभग पूरा क़ब्ज़ा था। लेकिन अरब की बदनज़्मी (अव्यवस्था) के माहौल में ये तिजारती काम इसके बिना न हो सकते थे कि तिजारती रास्ते जिन क़बीलों के इलाक़ों से गुज़रते थे उनके साथ क़ुरैश के गहरे ताल्लुक़ात हों। क़ुरैश के सरदार इस ग़रज़ के लिए सिर्फ़ अपने मज़हबी असर पर बस न कर सकते थे। इसके लिए उन्होंने तमाम क़बीलों के साथ

يُّجۡبٰٓى اِلَيۡهِ ثَمَرٰتُ كُلِّ شَىۡءٍ رِّزۡقًا مِّنۡ لَّدُنَّا وَلٰـكِنَّ اَكۡثَرَهُمۡ لَا يَعۡلَمُوۡنَ۝

बना दिया जिसकी तरफ़ हर तरह के फल खिंचे चले आते हैं, हमारी तरफ़ से रोज़ी के तौर पर? मगर इनमें से ज़्यादातर लोग जानते नहीं हैं।[81]

समझौते कर रखे थे। तिजारती फ़ायदों में से भी वे उनको हिस्सा देते थे। क़बीले के मुखियाओं और असरदार सरदारों को तोहफ़ों और नज़रानों से भी ख़ुश रखते थे और सूदी कारोबार का भी एक जाल उन्होंने फैला रखा था जिसमें क़रीब-क़रीब तमाम पड़ोसी क़बीलों के कारोबारी और सरदार जकड़े हुए थे।

इन हालात में जब नबी (सल्ल.) की एक ख़ुदा को मानने की दावत उठी तो बाप-दादा के दीन के तास्सुब (पक्षपात) से भी बढ़कर जो चीज़ क़ुरैश के लिए उसके ख़िलाफ़ भड़क उठने की वजह बनी वह यह थी कि इस दावत की बदौलत उन्हें अपना फ़ायदा ख़तरे में नज़र आ रहा था। वे समझते थे कि मुनासिब दलीलों और हुज्जतों से शिर्क और बुतपरस्ती ग़लत और तौहीद सही भी हो तो उसको छोड़ना और इसे क़बूल कर लेना हमारे लिए बरबादी का सबब है। ऐसा करते ही तमाम अरब हमारे ख़िलाफ़ भड़क उठेगा। हमें काबा के मुतवल्ली के पद से बेदख़ल कर दिया जाएगा। बुतपरस्त क़बीलों के साथ हमारे ये तमाम समझौतेवाले ताल्लुक़ात ख़त्म हो जाएँगे जिनकी वजह से हमारे तिजारती क़ाफ़िले रात-दिन अरब के अलग-अलग हिस्सों से गुज़रते हैं। इस तरह यह दीन हमारे मज़हबी रुसूख़ और असर को भी ख़त्म कर देगा और हमारी मआशी (आर्थिक) ख़ुशहाली को भी, बल्कि नामुमकिन नहीं कि तमाम अरब क़बीले हमें सिरे से मक्का ही छोड़ने पर मजबूर कर दें।

यहाँ पहुँचकर दुनिया-परस्तों की नासमझी का अजीब नक़्शा इनसान के सामने आता है। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) बार-बार उन्हें यक़ीन दिलाते थे कि यह कलिमा जो मैं तुम्हारे सामने पेश कर रहा हूँ उसे मान लो तो अरब और अजम (अरब से बाहर के इलाक़े) तुम्हारे मातहत हो जाएँगे, (देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-38 का परिचय) मगर उन्हें इसमें अपनी मौत नज़र आती थी। वे समझते थे कि जो दौलत, असर, पहुँच हमें आज हासिल है वह सब भी ख़त्म हो जाएगा। उनको अन्देशा था कि यह कलिमा क़बूल करते ही हम इस सरज़मीन में ऐसे बेसहारा हो जाएँगे कि चील-कौए हमारी बोटियाँ नोच खाएँगे। उनकी दूर तक न देख पानेवाली नज़र वह वक़्त न देख सकती थी जब कुछ ही साल बाद तमाम अरब मुहम्मद (सल्ल.) के मातहत एक मर्कज़ी सल्तनत (केन्द्रीय साम्राज्य) के तहत होनेवाला था, फिर इसी नस्ल की ज़िन्दगी में ईरान, इराक़, सीरिया, मिस्र, सब एक-एक करके इस सल्तनत के मातहत हो जानेवाले थे और इस बात पर एक सदी गुज़रने से भी पहले क़ुरैश ही के ख़लीफ़ा सिन्ध से लेकर स्पेन तक और क़फ़क़ाज़ से लेकर यमन के समुद्री-तटों तक दुनिया के एक बहुत बड़े हिस्से पर हुक्मरानी करनेवाले थे।

81. यह अल्लाह तआला की तरफ़ से उनकी बहानेबाज़ी का पहला जवाब है। इसका मतलब यह है कि यह हरम जिसके अम्न और शान्ति और जिसकी मर्कज़ियत (केन्द्रीयता) की बदौलत आज

وَكَمْ اَهْلَكْنَا مِنْ قَرْيَةٍۭ بَطِرَتْ مَعِيْشَتَهَا ۚ فَتِلْكَ مَسٰكِنُهُمْ لَمْ تُسْكَنْ مِّنْۢ بَعْدِهِمْ اِلَّا قَلِيْلًا ۭ وَكُنَّا نَحْنُ الْوٰرِثِيْنَ ۝

(58) और कितनी ही ऐसी बस्तियाँ हम तबाह कर चुके हैं, जिनके लोग अपनी दौलतमन्दी और ख़ुशहाली पर इतरा गए थे। सो देख लो, वे उनके घर पड़े हुए हैं जिनमें उनके बाद कम ही कोई बसा है, आख़िरकार हम ही वारिस होकर रहे।[82]

तुम इस क़ाबिल हुए हो कि दुनिया-भर का कारोबारी माल इस बंजर और वीरान घाटी में खिंचा चला आ रहा है, क्या इसको यह अम्न और मर्कज़ियत का मक़ाम तुम्हारी किसी तदबीर ने दिया है? ढाई हज़ार साल पहले चटियल पहाड़ों के बीच इस पानी और हरियाली से महरूम घाटी में एक अल्लाह का बन्दा अपनी बीवी और एक दूध पीते बच्चे को लेकर आया था। उसने यहाँ पत्थर और गारे का एक कमरा बना दिया और पुकार दिया कि अल्लाह ने इसे हरम (एहतिराम के क़ाबिल जगह) बनाया है, आओ इस घर की तरफ़ और इसका तवाफ़ (परिक्रमा) करो। अब यह अल्लाह की दी हुई बरकत नहीं तो और क्या है कि पच्चीस (25) सदियों से यह जगह अरब का मर्कज़ बनी हुई है, सख़्त बदअम्नी के माहौल में देश का सिर्फ़ यही कोना ऐसा है जहाँ अम्न हासिल है, इसको अरब का बच्चा-बच्चा एहतिराम की निगाह से देखता है और हर साल हज़ारों-हज़ार इनसान इसके तवाफ़ के लिए चले आते हैं। इसी नेमत का फल है कि तुम अरब के सरदार बने हुए हो और दुनिया की तिजारत का एक बड़ा हिस्सा तुम्हारे क़ब्ज़े में है। अब क्या तुम यह समझते हो कि जिस ख़ुदा ने यह नेमत तुम्हें दी है, उससे मुँह मोड़कर और बाग़ी होकर तो तुम फलो-फूलोगे मगर उसके दीन की पैरवी अपनाते ही बरबाद हो जाओगे?

82. यह उनके बहाने का दूसरा जवाब है। इसका मतलब यह है कि जिस माल-दौलत और ख़ुशहाली पर तुम इतराए हुए हो और जिसके खोए जाने के ख़तरे से बातिल (असत्य) पर जमना और हक़ से मुँह मोड़ना चाहते हो, यही चीज़ कभी आद और समूद और सबा और मदयन और लूत (अलैहि॰) की क़ौम के लोगों को भी हासिल थी। फिर क्या यह चीज़ उनको तबाही से बचा सकी? आख़िर मेयारे-ज़िन्दगी (जीवन-स्तर) की बुलन्दी ही तो एक मक़सद नहीं है कि आदमी हक़ और बातिल से बेपरवाह होकर बस इसी के पीछे पड़ा रहे और सीधे रास्ते को सिर्फ़ इसलिए क़बूल करने से इनकार कर दे कि ऐसा करने से यह मनचाही क़ीमती चीज़ हाथ से जाने का ख़तरा है। क्या तुम्हारे पास इसकी कोई ज़मानत है कि जिन गुमराहियों और बदकारियों ने पिछली ख़ुशहाल क़ौमों को तबाह किया, उन्हीं पर अड़े रहकर तुम बचे रह जाओगे और उनकी तरह तुम्हारी शामत कभी न आएगी?

وَمَا كَانَ رَبُّكَ مُهْلِكَ الْقُرٰى حَتّٰى يَبْعَثَ فِيْٓ اُمِّهَا رَسُوْلًا يَّتْلُوْا
عَلَيْهِمْ اٰيٰتِنَا ۚ وَمَا كُنَّا مُهْلِكِي الْقُرٰٓى اِلَّا وَاَهْلُهَا ظٰلِمُوْنَ ﴿٥٩﴾ وَمَآ
اُوْتِيْتُمْ مِّنْ شَيْءٍ فَمَتَاعُ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا وَزِيْنَتُهَا ۚ وَمَا عِنْدَ اللّٰهِ خَيْرٌ
وَّاَبْقٰى ۭ اَفَلَا تَعْقِلُوْنَ ﴿٦٠﴾ اَفَمَنْ وَّعَدْنٰهُ وَعْدًا حَسَنًا فَهُوَ لَاقِيْهِ كَمَنْ
مَّتَّعْنٰهُ مَتَاعَ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ثُمَّ هُوَ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ مِنَ الْمُحْضَرِيْنَ ﴿٦١﴾

(59) और तेरा रब बस्तियों को हलाक करनेवाला न था जब तक कि उनके मरकज़ (केन्द्र) में एक रसूल न भेज देता जो उनको हमारी आयतें सुनाता। और हम बस्तियों को हलाक करनेवाले न थे जब तक कि उनके रहनेवाले ज़ालिम न हो जाते।[83]

(60) तुम लोगों को जो कुछ भी दिया गया है वह सिर्फ़ दुनिया की ज़िन्दगी का सामान और उसकी ज़ीनत (शोभा) है और जो कुछ अल्लाह के पास है वह इससे बेहतर और बाक़ी रहनेवाला है। क्या तुम लोग अक़्ल से काम नहीं लेते? (61) भला वह शख़्स जिससे हमने अच्छा वादा किया हो और वह उसे पानेवाला हो कभी उस शख़्स की तरह हो सकता है जिसे हमने सिर्फ़ दुनिया की ज़िन्दगी का सामान दे दिया हो और फिर वह क़ियामत के दिन सज़ा के लिए पेश किया जानेवाला हो?[84]

---

83. यह उनकी बहानेबाज़ी का तीसरा जवाब है। पहले जो क़ौमें तबाह हुईं, उनके लोग ज़ालिम हो चुके थे, मगर ख़ुदा ने उनको तबाह करने से पहले अपने रसूल भेजकर उन्हें ख़बरदार किया और जब उनके ख़बरदार करने पर भी वे अपनी गुमराही से न रुके तो उन्हें हलाक कर दिया। यही मामला अब तुम्हारे साथ है। तुम भी ज़ालिम हो चुके हो और एक रसूल तुम्हें भी ख़बरदार करने के लिए आ गया है। अब तुम कुफ़्र और इनकार का रवैया अपना करके अपने ऐश और अपनी ख़ुशहाली को बचाओगे नहीं, बल्कि उलटा ख़तरे में डालोगे। जिस तबाही का तुम्हें डर है वह ईमान लाने से नहीं, बल्कि इनकार करने से तुमपर आएगी।

84. यह उनकी बहानेबाज़ी का चौथा जवाब है। इस जवाब को समझने के लिए पहले दो बातें अच्छी तरह ज़ेहन में बैठ जानी चाहिएँ–
एक यह कि दुनिया की मौजूदा ज़िन्दगी, जिसकी मुद्दत किसी के लिए भी कुछ सालों से ज़्यादा नहीं होती, सिर्फ़ एक सफ़र का थोड़ी देर रहनेवाला मरहला है। अस्ल ज़िन्दगी जो हमेशा रहनेवाली है, आगे आनी है। मौजूदा कुछ दिनों की ज़िन्दगी में इनसान चाहे कितना ही

सरो-सामान जमा कर ले और कुछ साल कैसे ही ऐश के साथ गुज़ार ले, बहरहाल उसे ख़त्म होना है और यहाँ का सब सरो-सामान आदमी को यूँ ही छोड़कर उठ जाना है। ज़िन्दगी की इस थोड़ी-सी मुद्दत का ऐश अगर आदमी को इस क़ीमत पर हासिल होता हो कि आगे की हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी में वह हमेशा तंगहाल और मुसीबतों से घिरा रहे, तो कोई समझदार आदमी यह घाटे का सौदा नहीं कर सकता। इसके मुक़ाबले में एक अक़्लमन्द आदमी इसको ज़्यादा अहमियत देगा कि यहाँ कुछ साल मुसीबतें बरदाश्त कर ले, मगर यहाँ से वे भलाइयाँ कमाकर जाए जो बाद की हमेशा की ज़िन्दगी में उसके लिए हमेशा रहनेवाले ऐश का सबब बनें।

दूसरी बात यह है कि अल्लाह का दीन इनसान से यह माँग नहीं करता कि वह इस दुनिया के साज़ो-सामान से फ़ायदा न उठाए और उसकी नेमतों और अच्छी चीज़ों को ख़ाह-मख़ाह लात ही मार दे। उसकी माँग सिर्फ़ यह है कि वह दुनिया पर आख़िरत को तरजीह दे; क्योंकि दुनिया मिट जानेवाली है और आख़िरत बाक़ी रहनेवाली और दुनिया का ऐश कमतर है और आख़िरत का ऐश बहुत ज़्यादा। इसलिए दुनिया की वह नेमत और अच्छी चीज़ें तो आदमी को ज़रूर हासिल करनी चाहिएँ, जो आख़िरत की बाक़ी रहनेवाली ज़िन्दगी में उसे कामयाब करें, या कम-से-कम उसे वहाँ के हमेशा के घाटे में मुब्तला न करें। लेकिन जहाँ मामला मुक़ाबले का आ पड़े, यानी दुनिया की कामयाबी और आख़िरत की कामयाबी एक-दूसरे के मुक़ाबले में आ जाएँ, वहाँ सच्चे दीन (इस्लाम) की माँग इनसान से यह है और यही सही-सलामत अक़्ल की माँग भी है कि आदमी दुनिया को आख़िरत पर क़ुरबान कर दे और इस दुनिया की थोड़े दिनों की दौलत और चमक-दमक की ख़ातिर वह राह हरगिज़ न अपनाए जिससे हमेशा के लिए उसकी आगे आनेवाली ज़िन्दगी ख़राब होती हो।

इन दो बातों को निगाह में रखकर देखिए कि अल्लाह तआला ऊपर के जुमलों में मक्का के ग़ैर-मुस्लिमों से क्या फ़रमाता है। वह यह नहीं फ़रमाता कि तुम अपनी तिजारत लपेट दो, अपने कारोबार ख़त्म कर दो और हमारे पैग़म्बर को मानकर भिखारी हो जाओ, बल्कि वह यह फ़रमाता है कि यह दुनिया की दौलत जिसपर तुम रीझे हुए हो, बहुत थोड़ी दौलत है और बहुत थोड़े दिनों के लिए तुम इसका फ़ायदा दुनिया की इस ज़िन्दगी में उठा सकते हो। इसके बरख़िलाफ़ अल्लाह के यहाँ जो कुछ है वह इसके मुक़ाबले में तादाद और मेयार (Quantity & Quality) में भी बेहतर है और हमेशा बाक़ी रहनेवाला भी है। इसलिए तुम सख़्त बेवक़ूफ़ी करोगे अगर इस थोड़े दिनों की ज़िन्दगी की थोड़ी-सी नेमतों से मज़े लेने की ख़ातिर वह रवैया अपनाओ जिसका नतीजा आख़िरत के हमेशा के घाटे की शक्ल में तुम्हें भुगतना पड़े। तुम ख़ुद मुक़ाबला करके देख लो कि कामयाब क्या वह शख़्स है जो मेहनत और जी-जान से अपने रब के हुक्म को पूरा करे और फिर हमेशा के लिए उसका इनाम पाए, या वह शख़्स जो गिरफ़्तार होकर मुजरिम की हैसियत से अपने ख़ुदा की अदालत में पेश किया जानेवाला हो और गिरफ़्तारी से पहले सिर्फ़ कुछ दिन हराम की दौलत के मज़े लूट लेने का उसको मौक़ा मिल जाए?

وَيَوْمَ يُنَادِيهِمْ فَيَقُولُ أَيْنَ شُرَكَاءِيَ الَّذِينَ كُنْتُمْ
تَزْعُمُونَ ۝٦٢ قَالَ الَّذِينَ حَقَّ عَلَيْهِمُ الْقَوْلُ رَبَّنَا هَٰؤُلَاءِ
الَّذِينَ أَغْوَيْنَا ۚ أَغْوَيْنَاهُمْ كَمَا غَوَيْنَا ۖ تَبَرَّأْنَا إِلَيْكَ ۖ

(62) और (भूल न जाएँ ये लोग) उस दिन को जबकि वह इनको पुकारेगा और पूछेगा, "कहाँ हैं मेरे वे शरीक जिनका तुम गुमान रखते थे?"[85] (63) यह बात जिसपर चस्पाँ होगी[86] वे कहेंगे, "ऐ हमारे रब, बेशक यही लोग हैं जिनको हमने गुमराह किया था। इन्हें हमने उसी तरह गुमराह किया जैसे हम ख़ुद गुमराह हुए। हम आपके सामने अपने बरी होने का इज़हार करते हैं।[87]—

85. यह तक़रीर भी इसी चौथे जवाब के सिलसिले में है और इसका ताल्लुक़ ऊपर की आयत के आख़िरी जुमले से है। इसमें यह बताया जा रहा है कि सिर्फ़ अपने दुनियावी फ़ायदे की ख़ातिर शिर्क, बुतपरस्ती और पैग़म्बर के इनकार की जिस गुमराही पर ये लोग अड़े हुए हैं, आख़िरत की हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी में इसका कैसा बुरा नतीजा इन्हें देखना पड़ेगा। इसका मक़सद यह एहसास दिलाना है कि मान लो कि दुनिया में तुमपर कोई आफ़त न भी आए और यहाँ की छोटी-सी ज़िन्दगी में तुम दुनियावी ज़िन्दगी के माल और चमक-दमक से ख़ूब फ़ायदा भी उठा लो, तब भी अगर आख़िरत में इसका अंजाम यही कुछ होना है तो ख़ुद सोच लो कि यह फ़ायदे का सौदा है जो तुम कर रहे हो, या सरासर घाटे का सौदा?

86. इससे मुराद वे शैतान जिन्न और शैतान इनसान हैं जिनको दुनिया में ख़ुदा का शरीक बनाया गया था, जिनकी बात के मुक़ाबले में ख़ुदा और उसके रसूलों की बात को रद्द किया गया था और जिनके भरोसे पर सीधे रास्ते को छोड़कर ज़िन्दगी के ग़लत रास्ते अपनाए गए थे। ऐसे लोगों को चाहे किसी ने 'इलाह' (माबूद) और 'रब' कहा हो या न कहा हो, बहरहाल जब उनकी पैरवी उस तरह की गई जैसी ख़ुदा की होनी चाहिए तो ज़रूर ही उन्हें ख़ुदाई में शरीक किया गया। (तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, हाशिया-50)

87. यानी हमने ज़बरदस्ती इनको गुमराह नहीं किया था। हमने न इनसे देखने और सुनने की ताक़त छीनी थी, न इनसे सोचने-समझने की सलाहियतें छीन ली थीं और न ऐसी ही कोई सूरत पेश आई थी कि यह तो सीधे रास्ते की तरफ़ जाना चाहते हों मगर हम उनका हाथ पकड़कर ज़बरदस्ती उन्हें ग़लत रास्ते पर खींच ले गए हों, बल्कि जिस तरह हम ख़ुद अपनी मरज़ी से गुमराह हुए थे उसी तरह इनके सामने भी हमने गुमराही पेश की और इन्होंने अपनी मरज़ी से उसको क़बूल किया। लिहाज़ा हम इनकी ज़िम्मेदारी क़बूल नहीं करते। हम अपनी करनी के

مَا كَانُوْٓا اِيَّانَا يَعْبُدُوْنَ۝۶۳ وَقِيْلَ ادْعُوْا شُرَكَآءَكُمْ فَدَعَوْهُمْ فَلَمْ
يَسْتَجِيْبُوْا لَهُمْ وَرَاَوُا الْعَذَابَ ۚ لَوْ اَنَّهُمْ كَانُوْا يَهْتَدُوْنَ۝۶۴ وَيَوْمَ
يُنَادِيْهِمْ فَيَقُوْلُ مَاذَآ اَجَبْتُمُ الْمُرْسَلِيْنَ۝۶۵ فَعَمِيَتْ عَلَيْهِمُ
الْاَنْۢبَآءُ يَوْمَىِٕذٍ فَهُمْ لَا يَتَسَآءَلُوْنَ۝۶۶ فَاَمَّا مَنْ تَابَ وَاٰمَنَ وَعَمِلَ
صَالِحًا فَعَسٰٓى اَنْ يَّكُوْنَ مِنَ الْمُفْلِحِيْنَ۝۶۷ وَرَبُّكَ يَخْلُقُ مَا يَشَآءُ

ये हमारी तो बन्दगी नहीं करते थे।"[88] (64) फिर उनसे कहा जाएगा कि पुकारो अब अपने ठहराए हुए शरीकों को।[89] ये उन्हें पुकारेंगे मगर वे इनको कोई जवाब न देंगे। और ये लोग अज़ाब देख लेंगे। काश, ये हिदायत अपनानेवाले होते!

(65) और (भूल न जाएँ ये लोग) वह दिन जबकि वह इनको पुकारेगा और पूछेगा कि "जो रसूल भेजे गए थे उन्हें तुमने क्या जवाब दिया था?" (66) उस वक़्त कोई जवाब इनको न सूझेगा और न ये आपस में एक-दूसरे से पूछ ही सकेंगे। (67) अलबत्ता जिसने आज तौबा कर ली और ईमान ले आया और नेक अमल किए वही यह उम्मीद कर सकता है कि वहाँ कामयाबी पानेवालों में से होगा।

(68) तेरा रब पैदा करता है जो कुछ चाहता है और (वह ख़ुद ही अपने काम के

ज़िम्मेदार हैं और ये अपनी करनी के ज़िम्मेदार।

यहाँ यह बारीक नुक्ता (प्वाइंट) ध्यान में रहे कि अल्लाह तआला सवाल तो करेगा शरीक ठहरानेवालों से। मगर इससे पहले कि ये कुछ बोलें, जवाब देने लगेंगे वे जिनको शरीक ठहराया गया था। इसकी वजह यह है कि जब आम मुशरिकों से यह सवाल किया जाएगा तो उनके लीडर और पेशवा महसूस करेंगे कि अब आ गई हमारी शामत। यह हमारे पीछे चलनेवाले पिछले लोग ज़रूर कहेंगे कि ये लोग हमारी गुमराही के अस्ल ज़िम्मेदार हैं। इसलिए पीछे चलनेवालों के बोलने से पहले वे ख़ुद आगे बढ़कर अपनी सफ़ाई पेश करनी शुरू कर देंगे।

88. यानी ये हमारे नहीं, बल्कि अपने ही मन के बन्दे बने हुए थे।

89. यानी इन्हें मदद के लिए पुकारो। दुनिया में तो तुमने इनपर भरोसा करके हमारी बात रद्द की थी। अब यहाँ इनसे कहो कि आएँ और तुम्हारी मदद करें और तुम्हें अज़ाब से बचाएँ।

وَيَخْتَارُ ۗ مَا كَانَ لَهُمُ الْخِيَرَةُ ۗ سُبْحٰنَ اللّٰهِ وَتَعٰلٰى عَمَّا
يُشْرِكُوْنَ ﴿٦٨﴾ وَرَبُّكَ يَعْلَمُ مَا تُكِنُّ صُدُوْرُهُمْ وَمَا يُعْلِنُوْنَ ﴿٦٩﴾

लिए जिसे चाहता है) चुन लेता है, यह चुनाव इन लोगों के करने का काम नहीं है।[90] अल्लाह पाक है और बहुत बुलन्द है उस शिर्क से जो ये लोग ज़ाहिर करते हैं।
(69) तेरा रब जानता है जो कुछ ये दिलों में छिपाए हुए हैं और जो कुछ ये ज़ाहिर करते हैं।[91]

90. यह बात अस्ल में शिर्क के रद्द में कही गई है। मुशरिकों ने अल्लाह तआला की पैदा की हुई चीज़ों में से जो अनगिनत माबूद अपने लिए बना लिए हैं और उनको अपनी तरफ़ से जो सिफ़ात, दर्जे और मंसब सौंप रखे हैं, उसपर एतिराज़ करते हुए अल्लाह तआला फ़रमाता है कि अपने पैदा किए हुए इनसानों, फ़रिश्तों, जिन्नों और दूसरे बन्दों में से हम ख़ुद जिसको जैसी चाहते हैं ख़ूबियाँ, सलाहियतें और ताक़तें देते हैं और जो काम जिससे लेना चाहते हैं, लेते हैं। ये इख़्तियार आख़िर इन मुशरिकों को कैसे और कहाँ से मिल गए कि मेरे बन्दों में से जिसको चाहें मुश्किल-कुशा (मुश्किलें हल करनेवाला), जिसको चाहें गंज-बख़्श (ख़ज़ाना देनेवाला) और जिसे चाहें फ़रियाद सुननेवाला ठहरा लें? जिसे चाहें बारिश बरसानेवाला, जिसे चाहें रोज़गार या औलाद देनेवाला, जिसे चाहें बीमारी और सेहत का मालिक बना दें? जिसे चाहें मेरी ख़ुदाई के किसी हिस्से का बादशाह ठहरा लें? और मेरे इख़्तियारों में से जो कुछ जिसको चाहें सौंप दें? कोई फ़रिश्ता हो या जिन्न या नबी या वली, बहरहाल जो भी है हमारा पैदा किया हुआ है। जो कमालात भी किसी को मिले हैं हमारी देन और बख़्शिश से मिले हैं और जो ख़िदमत भी हमने जिससे लेनी चाही है ले ली है। मेरे पसन्दीदा होने का यह मतलब आख़िर कैसे हो गया कि वे बन्दे के मक़ाम से उठाकर ख़ुदाई के रुतबे पर पहुँचा दिए जाएँ और ख़ुदा को छोड़कर इनके आगे सिर झुका दिया जाए, इनको मदद के लिए पुकारा जाने लगे, इनसे ज़रूरतें तलब की जाने लगें, इन्हें क़िस्मतों का बनानेवाला और बिगाड़नेवाला समझ लिया जाए और इन्हें ख़ुदाई सिफ़ात और इख़्तियारात रखनेवाला ठहराया जाए?

91. बात के इस सिलसिले में यह बात जिस मक़सद के लिए कही गई है, वह यह है कि एक शख़्स या गरोह दुनिया में लोगों के सामने यह दावा कर सकता है कि जिस गुमराही को उसने अपनाया है, उसके सही होने पर वह बड़ी मुनासिब वजहों से मुत्मइन है और उसके ख़िलाफ़ जो दलीलें दी गई हैं उनसे सचमुच उसका इत्मीनान नहीं हुआ है और इस गुमराही को उसने किसी बुरे जज़्बे से नहीं, बल्कि ख़ालिस नेक नीयती के साथ अपनाया है और उसके सामने कभी कोई ऐसी चीज़ नहीं आई है जिससे उसकी ग़लती उसपर खुल जाए। लेकिन अल्लाह तआला के सामने उसकी यह बात नहीं चल सकती। वह सिर्फ़ ज़ाहिर ही को नहीं देखता। उसके सामने तो आदमी के दिलो-दिमाग़ का एक-एक कोना खुला हुआ है। वह उसके इल्म और एहसासात और जज़बात और ख़ाहिशों और नीयत और ज़मीर (अन्तरात्मा), हर चीज़ को ख़ुद सीधे तौर से जानता है। उसको मालूम है कि किस शख़्स को किस-किस वक़्त किन ज़रिओं से ख़बरदार

وَهُوَاللّٰهُ لَاۤ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ؕ لَهُ الْحَمْدُ فِی الْاُوْلٰی وَالْاٰخِرَةِ ۫ وَلَهُ الْحُكْمُ

وَاِلَیْهِ تُرْجَعُوْنَ۝۷۰ قُلْ اَرَءَیْتُمْ اِنْ جَعَلَ اللّٰهُ عَلَیْكُمُ الَّیْلَ سَرْمَدًا

اِلٰی یَوْمِ الْقِیٰمَةِ مَنْ اِلٰهٌ غَیْرُ اللّٰهِ یَاْتِیْكُمْ بِضِیَآءٍ ؕ اَفَلَا تَسْمَعُوْنَ۝۷۱

قُلْ اَرَءَیْتُمْ اِنْ جَعَلَ اللّٰهُ عَلَیْكُمُ النَّهَارَ سَرْمَدًا اِلٰی یَوْمِ الْقِیٰمَةِ

مَنْ اِلٰهٌ غَیْرُ اللّٰهِ یَاْتِیْكُمْ بِلَیْلٍ تَسْكُنُوْنَ فِیْهِ ؕ اَفَلَا تُبْصِرُوْنَ۝۷۲

وَمِنْ رَّحْمَتِهٖ جَعَلَ لَكُمُ الَّیْلَ وَالنَّهَارَ لِتَسْكُنُوْا فِیْهِ وَلِتَبْتَغُوْا

مِنْ فَضْلِهٖ وَلَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ۝۷۳ وَیَوْمَ یُنَادِیْهِمْ فَیَقُوْلُ اَیْنَ

شُرَكَآءِیَ الَّذِیْنَ كُنْتُمْ تَزْعُمُوْنَ۝۷۴ وَنَزَعْنَا مِنْ كُلِّ اُمَّةٍ

(70) वही एक अल्लाह है जिसके सिवा कोई इबादत का हक़दार नहीं। उसी के लिए तारीफ़ है दुनिया में भी और आख़िरत में भी, हुकूमत उसी की है और उसी की तरफ़ तुम सब पलटाए जानेवाले हो। (71) ऐ नबी! इनसे कहो, कभी तुम लोगों ने ग़ौर किया कि अगर अल्लाह क़ियामत तक तुमपर हमेशा के लिए रात छा दे तो अल्लाह के सिवा वह कौन-सा माबूद है जो तुम्हें रौशनी ला दे? क्या तुम सुनते नहीं हो? (72) इनसे पूछो, कभी तुमने सोचा कि अगर अल्लाह क़ियामत तक तुमपर हमेशा के लिए दिन छा दे तो अल्लाह के सिवा वह कौन-सा माबूद है जो तुम्हें रात ला दे, ताकि तुम उसमें सुकून हासिल कर सको? क्या तुमको सूझता नहीं? (73) यह उसी की रहमत है कि उसने तुम्हारे लिए रात और दिन बनाए, ताकि तुम (रात में) सुकून हासिल करो और (दिन में) अपने रब का फ़ज़्ल (रोज़ी) तलाश करो, शायद कि तुम शुक्रगुज़ार बनो।

(74) (याद रखें ये लोग) वह दिन जबकि वह उन्हें पुकारेगा, फिर पूछेगा, ''कहाँ हैं मेरे वे शरीक, जिनका तुम गुमान रखते थे?'' (75) और हम हर उम्मत (समुदाय) में से

किया गया, किन-किन रास्तों से हक़ पहुँचा, किस-किस तरीक़े से बातिल (असत्य) का बातिल होना उसपर खुला और फिर वे अस्ल सबब क्या थे जिनकी बुनियाद पर उसने अपनी गुमराही को तरजीह दी और हक़ से मुँह मोड़ा।

شَهِيْدًا فَقُلْنَا هَاتُوْا بُرْهَانَكُمْ فَعَلِمُوْٓا اَنَّ الْحَقَّ لِلّٰهِ وَضَلَّ عَنْهُمْ
مَّا كَانُوْا يَفْتَرُوْنَ۝ اِنَّ قَارُوْنَ كَانَ مِنْ قَوْمِ مُوْسٰى فَبَغٰى

ع ٥ ١٠

एक गवाह निकाल लाएँगे,[92] फिर कहेंगे कि "लाओ अब अपनी दलील।"[93] उस वक़्त उन्हें मालूम हो जाएगा कि हक़ अल्लाह की तरफ़ है और गुम हो जाएँगे उनके वे सारे झूठ जो उन्होंने गढ़ रखे थे।

(76) यह एक सच्चाई है[94] कि क़ारून मूसा की क़ौम का एक आदमी था, फिर वह

92. यानी वह नबी जिसने इस उम्मत को ख़बरदार किया था, या पैग़म्बरों की पैरवी करनेवालों में से कोई ऐसा हिदायत पाया हुआ इनसान जिसने इस उम्मत में हक़ की तबलीग़ का फ़र्ज़ अंजाम दिया था, या कोई ऐसा ज़रिआ जिससे इस उम्मत तक हक़ का पैग़ाम पहुँच चुका था।

93. यानी अपनी सफ़ाई में कोई ऐसी दलील पेश करो जिसकी बुनियाद पर तुम्हें माफ़ किया जा सके। या तो यह साबित करो कि तुम जिस शिर्क, जिस आख़िरत के इनकार और जिस नुबूवत (पैग़म्बरी) के इनकार पर क़ायम थे वह बिलकुल सही था और तुमने मुनासिब वजहों से यह रास्ता अपनाया था। या यह नहीं तो फिर कम-से-कम यही साबित कर दो कि ख़ुदा की तरफ़ से तुमको इस ग़लती पर ख़बरदार करने और ठीक बात तुम तक पहुँचाने का कोई इन्तिज़ाम नहीं किया गया था।

94. यह वाक़िआ भी मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की उसी बहानेबाज़ी के जवाब में बयान किया जा रहा है जिसपर आयत-57 से लगातार बात हो रही है। इस सिलसिले में यह बात ध्यान में रहे कि जिन लोगों ने मुहम्मद (सल्ल॰) की दावत से क़ौमी फ़ायदों पर चोट लगने का ख़तरा ज़ाहिर किया था वे अस्ल में मक्का के बड़े-बड़े सेठ, साहूकार और सरमायादार (पूंजीपति) थे जिन्हें बैनल-अक़वामी तिजारत (अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार) और सूदख़ोरी ने वक़्त का क़ारून बना रखा था। यही लोग अपनी जगह यह समझे बैठे थे कि अस्ल हक़ बस यह है कि ज़्यादा-से-ज़्यादा दौलत समेटो। इस मक़सद पर जिस चीज़ से भी आँच आने का डर हो वह सरासर बातिल है जिसे किसी हाल में क़बूल नहीं किया जा सकता। दूसरी तरफ़ आम लोग दौलत के इन मीनारों को आरज़ू भरी निगाहों से देखते थे और उनकी अस्ल तमन्ना बस यह थी कि जिस बुलन्दी पर ये लोग पहुँचे हुए हैं। काश, हमें भी उस तक पहुँचना नसीब हो जाए। इस दौलत की पूजा के माहौल में यह दलील बड़ी वज़नी समझी जा रही थी कि मुहम्मद (सल्ल॰) जिस तौहीद और आख़िरत की और अख़लाक़ के जिस ज़ाबिते की दावत दे रहे हैं उसे मान लिया जाए, तो क़ुरैश की बड़ाई का यह आसमान छूता महल ज़मीन पर आ रहेगा और तिजारती कारोबार तो दरकिनार, जीने तक के लाले पड़ जाएँगे।

عَلَيْهِمْ ۖ وَاٰتَيْنٰهُ مِنَ الْكُنُوْزِ مَآ اِنَّ مَفَاتِحَهٗ لَتَنُوْٓاُ بِالْعُصْبَةِ
اُولِي الْقُوَّةِ ۚ اِذْ قَالَ لَهٗ قَوْمُهٗ لَا تَفْرَحْ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ
الْفَرِحِيْنَ ۝ وَابْتَغِ فِيْمَآ اٰتٰىكَ اللّٰهُ الدَّارَ الْاٰخِرَةَ وَلَا
تَنْسَ نَصِيْبَكَ مِنَ الدُّنْيَا وَاَحْسِنْ كَمَآ اَحْسَنَ اللّٰهُ

अपनी क़ौम के ख़िलाफ़ बाग़ी हो गया[95] और हमने उसको इतने ख़ज़ाने दे रखे थे कि उनकी कुंजियाँ ताक़तवर आदमियों की एक टीम मुश्किल से उठा सकती थी।[96] एक बार जब उसकी क़ौम के लोगों ने उससे कहा, "फूल न जा, अल्लाह फूलनेवालों को पसन्द नहीं करता। (77) जो माल अल्लाह ने तुझे दिया है, उससे आख़िरत का घर बनाने की फ़िक्र कर और दुनिया में से भी अपना हिस्सा न भूल। एहसान कर जिस तरह अल्लाह

95. क़ारून, जिसका नाम बाइबल और तलमूद में कोरह (Korah) बयान किया गया है, हज़रत मूसा (अलैहि०) का चचेरा भाई था। बाइबल की किताब निर्गमन (अध्याय-6, आयतें—18-21) में जो नसब (वंशावली) लिखा है उसके मुताबिक़ हज़रत मूसा (अलैहि०) और क़ारून के बाप आपस में सगे भाई थे। क़ुरआन मजीद में दूसरी जगह यह बताया गया है कि यह शख़्स बनी-इसराईल में से होने के बावजूद फ़िरऔन के साथ जा मिला था और उसका क़रीबी बनकर इस हद तक पहुँच गया था कि मूसा (अलैहि०) की दावत के मुक़ाबले में फ़िरऔन के बाद मुख़ालिफ़त के जो दो सबसे बड़े सरग़ने थे, उनमें से एक यही क़ारून था—

"हमने मूसा को अपनी निशानियों और खुली दलील के साथ फ़िरऔन और हामान और क़ारून की तरफ़ भेजा, मगर उन्होंने कहा कि यह एक जादूगर है सख़्त झूठा।"

(क़ुरआन, सूरा-40 मोमिन, आयतें-23, 24)

इससे वाज़ेह हो जाता है कि क़ारून अपनी क़ौम से बाग़ी होकर उस दुश्मन ताक़त का पिट्ठू बन गया था जो बनी-इसराईल को जड़-बुनियाद से ख़त्म कर देने पर तुली हुई थी और क़ौमी ग़द्दारी की बदौलत उसने फ़िरऔनी सल्तनत में यह रुतबा हासिल कर लिया था कि हज़रत मूसा (अलैहि०) फ़िरऔन के अलावा मिस्र की जिन बड़ी हस्तियों की तरफ़ भेजे गए थे वे दो ही थीं, एक फ़िरऔन का वज़ीर हामान और दूसरा यह इसराईली सेठ। बाक़ी सब सल्तनत के अधिकारी और दरबारी उनसे कमतर दर्जे में थे जिनका ख़ास तौर पर नाम लेने की ज़रूरत न थी। क़ारून की यही पोज़ीशन सूरा-29 अनकबूत की आयत-39 में भी बयान की गई है।

96. बाइबल (गिनती, अध्याय-16) में इसका जो क़िस्सा बयान किया गया है उसमें उस शख़्स की दौलत का कोई ज़िक्र नहीं है, मगर यहूदी रिवायतें यह बताती हैं कि यह शख़्स ग़ैर-मामूली दौलत का मालिक था, यहाँ तक कि उसके ख़ज़ानों की कुंजियाँ उठाने के लिए तीन सौ ख़च्चर

اِلَيْكَ وَلَا تَبْغِ الْفَسَادَ فِي الْاَرْضِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ الْمُفْسِدِيْنَ ﴿٧٧﴾
قَالَ اِنَّمَآ اُوْتِيْتُهٗ عَلٰى عِلْمٍ عِنْدِيْ ؕ اَوَلَمْ يَعْلَمْ اَنَّ اللّٰهَ قَدْ اَهْلَكَ
مِنْ قَبْلِهٖ مِنَ الْقُرُوْنِ مَنْ هُوَ اَشَدُّ مِنْهُ قُوَّةً وَّاَكْثَرُ جَمْعًا ؕ

ने तेरे साथ एहसान किया है और ज़मीन में बिगाड़ फैलाने की कोशिश न कर, अल्लाह बिगाड़ फैलानेवालों को पसन्द नहीं करता।" (78) तो उसने कहा, "यह सबकुछ तो मुझे उस इल्म की बुनियाद पर दिया गया है जो मुझको हासिल है"[97]—क्या उसको यह मालूम न था कि अल्लाह उससे पहले बहुत-से लोगों को हलाक कर चुका है जो उससे ज़्यादा ताक़त और जत्था रखते थे?[98]———

(टट्टू) दरकार होते थे (जैविश इंसाइक्लोपीडिया, हिस्सा-7, पेज-556)। यह बयान अगरचे इन्तिहाई बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया गया है, लेकिन इससे यह मालूम हो जाता है कि इसराईली रिवायतों के मुताबिक़ भी क़ारून अपने वक़्त का बहुत बड़ा दौलतमन्द आदमी था।

97. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं 'इन्नमा ऊतीतुहू अला इलमिन इन्दी'। इसके दो मतलब हो सकते हैं, एक यह कि मैंने जो कुछ पाया है अपनी क़ाबिलियत से पाया है, यह कोई फ़ज़्ल और मेहरबानी नहीं है जो हक़दारी के बजाय एहसान के तौर पर किसी ने मुझपर कर दी हो और अब मुझे उसका शुक्रिया इस तरह अदा करना हो कि जिन नाकारा लोगों को कुछ नहीं दिया गया है उन्हें मैं फ़ज़्ल और एहसान के तौर पर उसमें से कुछ दूँ, या कोई ख़ैर-ख़ैरात इस ग़रज़ के लिए करूँ कि यह मेहरबानी मुझसे छीन न ली जाए। दूसरा मतलब यह भी हो सकता है कि मेरे नज़दीक तो ख़ुदा ने यह दौलत जो मुझे दी है मेरी ख़ूबियों को जानते हुए दी है। अगर मैं उसकी निगाह में एक पसन्दीदा इनसान न होता तो यह कुछ मुझे क्यों देता। मुझपर उसकी नेमतों की बारिश होना ही इस बात की दलील है कि मैं उसका चहेता हूँ और मेरा रवैया उसको पसन्द है।

98. यानी यह शख़्स जो बड़ा पढ़ा-लिखा और अक़्लमन्द और बाख़बर बना फिर रहा था और अपनी क़ाबिलियत का यह कुछ घमण्ड रखता था, उसके इल्म में क्या यह बात कभी न आई थी कि उससे ज़्यादा दौलत, नौकर-चाकर, ताक़त और शानो-शौकतवाले इससे पहले दुनिया में गुज़र चुके हैं और अल्लाह ने उन्हें आख़िरकार तबाह और बरबाद करके रख दिया? अगर क़ाबिलियत और हुनरमन्दी ही दुनियावी तरक़्क़ी के लिए कोई ज़मानत है तो उनकी ये सलाहियतें उस वक़्त कहाँ चली गई थीं जब वे तबाह हुए? और अगर किसी को दुनियावी तरक़्क़ी नसीब होना लाज़िमन इस बात का सुबूत है कि अल्लाह तआला उस शख़्स से ख़ुश है और उसके आमाल और सिफ़ात को पसन्द करता है तो फिर उन लोगों की शामत क्यों आई?

وَلَا يُسْـَٔلُ عَنْ ذُنُوْبِهِمُ الْمُجْرِمُوْنَ ﴿٧٨﴾ فَخَرَجَ عَلٰى قَوْمِهٖ فِىْ زِيْنَتِهٖ ؕ
قَالَ الَّذِيْنَ يُرِيْدُوْنَ الْحَيٰوةَ الدُّنْيَا يٰلَيْتَ لَنَا مِثْلَ مَاۤ اُوْتِىَ
قَارُوْنُ ۙ اِنَّهٗ لَذُوْ حَظٍّ عَظِيْمٍ ﴿٧٩﴾ وَقَالَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْعِلْمَ
وَيْلَكُمْ ثَوَابُ اللّٰهِ خَيْرٌ لِّمَنْ اٰمَنَ وَعَمِلَ صَالِحًا ۚ وَلَا يُلَقّٰىهَاۤ
اِلَّا الصّٰبِرُوْنَ ﴿٨٠﴾ فَخَسَفْنَا بِهٖ وَبِدَارِهِ الْاَرْضَ ۗ فَمَا كَانَ

मुजरिमों से तो उनके गुनाह नहीं पूछे जाते।[99]

(79) एक दिन वह अपनी क़ौम के सामने अपने पूरे ठाठ में निकला। जो लोग दुनिया की ज़िन्दगी के तलबगार थे वे उसे देखकर कहने लगे, "काश, हमें भी वही कुछ मिलता जो क़ारून को दिया गया है! यह तो बड़ा नसीबवाला है!" (80) मगर जो लोग इल्म रखनेवाले थे वे कहने लगे, "अफ़सोस तुम्हारे हाल पर, अल्लाह का सवाब (इनाम) बेहतर है उस शख़्स के लिए जो ईमान लाए और नेक अमल करे और यह दौलत नहीं मिलती मगर सब्र करनेवालों को।"[100]

(81) आख़िरकार हमने उसे और उसके घर को ज़मीन में धँसा दिया। फिर कोई

99. यानी मुजरिम तो यही दावा किया करते हैं कि हम बड़ अच्छे लोग हैं। वे कब माना करते हैं कि उनके अन्दर कोई बुराई है। मगर उनकी सज़ा का दारोमदार उनके अपने क़बूल करने पर नहीं होता। उन्हें जब पकड़ा जाता है तो उनसे पूछकर नहीं पकड़ा जाता कि बताओ तुम्हारे गुनाह क्या हैं।

100. यानी यह सीरत (किरदार), सोचने का यह अन्दाज़ और यह अल्लाह के सवाब (इनाम) की देन सिर्फ़ उन्हीं लोगों के हिस्से में आती है जिनमें इतना सब्र और इतना जमाव मौजूद हो कि हलाल तरीक़े ही अपनाने पर मज़बूती के साथ जमे रहें, चाहे उनसे सिर्फ़ चटनी-रोटी मिले या करोड़पति बन जाना नसीब हो जाए और हराम तरीक़ों की तरफ़ ज़रा भी ध्यान न दें चाहे उनसे दुनिया-भर के फ़ायदे समेट लेने का मौक़ा मिल रहा हो। इस आयत में अल्लाह के सवाब से मुराद है, वह बेहतरीन और जाइज़ रोज़ी जो अल्लाह की हदों के अन्दर रहते हुए मेहनत और कोशिश करने के नतीजे में इनसान को दुनिया और आख़िरत में नसीब हो और सब्र से मुराद है अपने जज़्बात और ख़ाहिशों पर क़ाबू रखना, लोभ और लालच के मुक़ाबले में ईमानदारी और सीधे रास्ते पर डटे रहना, सच्चाई और दियानतदारी से जो नुक़सान भी होता हो या जो फ़ायदा

لَهٗ مِنْ فِئَةٍ يَّنْصُرُوْنَهٗ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ ۗ وَمَا كَانَ مِنَ الْمُنْتَصِرِيْنَ ﴿٨١﴾
وَاَصْبَحَ الَّذِيْنَ تَمَنَّوْا مَكَانَهٗ بِالْاَمْسِ يَقُوْلُوْنَ وَيْكَاَنَّ اللّٰهَ يَبْسُطُ
الرِّزْقَ لِمَنْ يَّشَآءُ مِنْ عِبَادِهٖ وَيَقْدِرُ ۚ لَوْلَآ اَنْ مَّنَّ اللّٰهُ عَلَيْنَا

उसके हिमायतियों का गरोह न था जो अल्लाह के मुक़ाबले में उसकी मदद को आता और न वह ख़ुद अपनी मदद आप कर सका। (82) अब वही लोग, जो कल तक उसकी जगह पाने की तमन्ना कर रहे थे, कहने लगे, "अफ़सोस, हम भूल गए थे कि अल्लाह अपने बन्दों में से जिसकी रोज़ी चाहता है बढ़ा देता है और जिसे चाहता है नपी-तुली देता है।[101] अगर अल्लाह ने हमपर एहसान न किया होता तो हमें भी

भी हाथ से जाता हो उसे बरदाश्त कर लेना, नाजाइज़ तदबीरों से जो फ़ायदा भी हासिल हो सकता हो उसे ठोकर मार देना, हलाल की रोज़ी चाहे ज़र्रा बराबर ही हो उसपर मुत्मइन रहना, हरामख़ोरों के ठाठ-बाठ देखकर ललचाने और उसकी तमन्ना के जज़्बात से बेचैन होने के बजाय उसपर एक निगाह भी ग़लत तरीक़े से न डालना और ठण्डे दिल से यह समझ लेना कि एक ईमानदार आदमी के लिए इस चमकदार गन्दगी के मुक़ाबले वह बे-चमक पाकीज़गी ही बेहतर है जो अल्लाह ने अपनी मेहरबानी से उसको दी है। रहा यह कहना कि "यह दौलत नहीं मिलती मगर सब्र करनेवालों को," तो इस दौलत से मुराद अल्लाह का सवाब भी है और वह पाकीज़ा ज़ेहनियत भी जिसकी बुनियाद पर आदमी ईमान और भले कामों के साथ भूखा-प्यासा रह लेने को इससे बेहतर समझता है कि बेईमानी अपनाकर अरबपति बन जाए।

101. यानी अल्लाह की तरफ़ से रोज़ी का ज़्यादा या कम होना जो कुछ भी होता है उसकी मरज़ी की बुनियाद पर होता है और इस मरज़ी में उसकी कुछ दूसरी ही मस्लहतें काम कर रही होती हैं। किसी को ज़्यादा रोज़ी देने का मतलब लाज़िमी तौर से यही नहीं है कि अल्लाह उससे बहुत ख़ुश है और उसे इनाम दे रहा है। बहुत बार एक शख़्स अल्लाह के ग़ज़ब का हक़दार होता है मगर वह उसे बड़ी दौलत देता चला जाता है, यहाँ तक कि आख़िरकार यही दौलत उसके ऊपर अल्लाह का सख़्त अज़ाब ले आती है। इसके बरख़िलाफ़ अगर किसी की रोज़ी तंग है तो इसका मतलब लाज़िमी तौर से यही नहीं है कि अल्लाह तआला उससे नाराज़ है और उसे सज़ा दे रहा है। अकसर नेक लोगों पर तंगी इसके बावजूद रहती है कि वे अल्लाह के प्यारे होते हैं, बल्कि बहुत बार यही तंगी उनके लिए ख़ुदा की रहमत होती है। इस हक़ीक़त को न समझने ही का नतीजा यह होता है कि आदमी उन लोगों की ख़ुशहाली को ललचाई निगाह से देखता है जो अस्ल में ख़ुदा के ग़ज़ब के हक़दार होते हैं।

لَخَسَفَ بِنَا ۭ وَيْكَاَنَّهٗ لَا يُفْلِحُ الْكٰفِرُوْنَ ۝ تِلْكَ الدَّارُ الْاٰخِرَةُ
نَجْعَلُهَا لِلَّذِيْنَ لَا يُرِيْدُوْنَ عُلُوًّا فِي الْاَرْضِ وَلَا فَسَادًا ۭ وَالْعَاقِبَةُ
لِلْمُتَّقِيْنَ ۝ مَنْ جَاۗءَ بِالْحَسَنَةِ فَلَهٗ خَيْرٌ مِّنْهَا ۚ وَمَنْ جَاۗءَ بِالسَّيِّئَةِ

ज़मीन में धँसा देता। अफ़सोस, हमको याद न रहा कि ख़ुदा के नाफ़रमान कामयाबी नहीं पाया करते।"[102]

(83) वह आख़िरत का घर[103] तो हम उन लोगों के लिए ख़ास कर देंगे जो ज़मीन में अपनी बड़ाई नहीं चाहते[104] और न फ़साद करना चाहते हैं।[105] और अंजाम की भलाई परहेज़गारों ही के लिए है।[106] (84) जो कोई भलाई लेकर आएगा, उसके लिए उससे बेहतर भलाई है और जो बुराई लेकर आए तो बुराइयाँ करनेवालों को वैसा ही बदला

---

102. यानी हमें यह ग़लतफ़हमी थी कि दुनियावी ख़ुशहाली और दौलतमन्दी ही कामयाबी है। इसी वजह से हम यह समझे बैठे थे कि क़ारून बड़ी कामयाबी पा रहा है। मगर अब पता चला कि हक़ीक़ी कामयाबी किसी और ही चीज़ का नाम है और वह हक़ के इनकारियों को नसीब नहीं होती।
क़ारून के क़िस्से का यह सबक़आमोज़ पहलू सिर्फ़ क़ुरआन ही में बयान हुआ है। बाइबल और तलमूद दोनों में इसका कोई ज़िक्र नहीं है। अलबत्ता इन दोनों किताबों में जो तफ़सीलात बयान हुई हैं, उनसे यह मालूम होता है कि बनी-इसराईल जब मिस्र से निकले तो यह शख़्स भी अपनी पार्टी समेत उनके साथ निकला और फिर उसने हज़रत मूसा (अलैहि.) और हारून (अलैहि.) के ख़िलाफ़ एक साज़िश की जिसमें ढाई सौ आदमी शामिल थे। आख़िरकार अल्लाह का ग़ज़ब इसपर टूट पड़ा और यह अपने घर-द्वार और माल-असबाब के साथ ज़मीन में धँस गया।
103. मुराद है जन्नत जो हक़ीक़ी कामयाबी की जगह है।
104. यानी जो ख़ुदा की ज़मीन में अपनी बड़ाई क़ायम करना नहीं चाहते। जो सरकश, ज़ालिम और घमण्डी बनकर नहीं रहते, बल्कि बन्दे बनकर रहते हैं और ख़ुदा के बन्दों को अपना बन्दा बनाकर रखने की कोशिश नहीं करते।
105. फ़साद से मुराद इनसानी ज़िन्दगी के निज़ाम का वह बिगाड़ है जो हक़ से आगे बढ़ने के नतीजे में ज़रूर ही सामने आता है। ख़ुदा की बन्दगी और उसके क़ानूनों की पैरवी से निकलकर आदमी जो कुछ भी करता है, वह सरासर फ़साद-ही-फ़साद है। इसी का एक हिस्सा वह बिगाड़ भी है जो हराम तरीक़ों से दौलत समेटने और हराम रास्तों में ख़र्च करने से फैलता है।
106. यानी उन लोगों के लिए जो ख़ुदा से डरते हैं और उसकी नाफ़रमानी से परहेज़ करते हैं।

فَلَا يُجْزَى الَّذِيْنَ عَمِلُوا السَّيِّاٰتِ اِلَّا مَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ۝٨٤ اِنَّ الَّذِيْ
فَرَضَ عَلَيْكَ الْقُرْاٰنَ لَرَآدُّكَ اِلٰى مَعَادٍ ۭ قُلْ رَّبِّيْٓ اَعْلَمُ مَنْ جَآءَ
بِالْهُدٰى وَمَنْ هُوَ فِيْ ضَلٰلٍ مُّبِيْنٍ۝٨٥

मिलेगा जैसे काम वे करते थे।

(85) ऐ नबी, यक़ीन जानो कि जिसने यह क़ुरआन तुमपर फ़र्ज़ किया है,[107] वह तुम्हें एक बेहतरीन अंजाम को पहुँचानेवाला है।[108] इन लोगों से कह दो कि "मेरा रब ख़ूब जानता है कि हिदायत लेकर कौन आया है और खुली गुमराही में कौन पड़ा है।"

107. यानी इस क़ुरआन को अल्लाह के बन्दों तक पहुँचाने और उसकी तालीम देने और उसकी हिदायत के मुताबिक़ दुनिया को सुधारने की ज़िम्मेदारी तुमपर डाली है।

108. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं "लरादुदु-क इला मआद" (तुम्हें एक मआद की तरफ़ फेरनेवाला है) अरबी लफ़्ज़ 'मआद' का मतलब है, वह मक़ाम जिसकी तरफ़ आख़िरकार आदमी को पलटना हो और उसे नकरा (Indefinite Noun) इस्तेमाल करने से ख़ुद-ब-ख़ुद यह मतलब पैदा हो जाता है कि वह बड़ी शान और अज़मत (महानता) की जगह है। क़ुरआन के कुछ आलिमों ने इससे मुराद जन्नत ली है। लेकिन इसे सिर्फ़ जन्नत के साथ ख़ास कर देने की कोई मुनासिब वजह नहीं है। क्यों न इसे वैसा ही आम रखा जाए जैसा ख़ुद अल्लाह तआला ने बयान किया है, ताकि यह वादा दुनिया और आख़िरत दोनों के बारे में हो जाए। जो बात बयान की जा रही है उसके मौक़ा-महल की माँग भी यह है कि इसे आख़िरत ही नहीं, इस दुनिया में भी नबी (सल्ल०) को आख़िरकार बड़ी शान और अज़मत अता करने का वादा समझा जाए। मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की जिस बात पर आयत-57 से लेकर यहाँ तक लगातार बात चली आ रही है, उसमें उन्होंने कहा था कि ऐ मुहम्मद, तुम अपने साथ हमें भी ले डूबना चाहते हो। अगर हम तुम्हारा साथ दें और उस दीन को अपना लें तो अरब की सरज़मीन में हमारा जीना मुश्किल हो जाए। इसके जवाब में अल्लाह तआला अपने नबी (सल्ल०) से फ़रमाता है कि ऐ नबी, जिस ख़ुदा ने इस क़ुरआन की अलमबरदारी का बोझ तुमपर डाला है वह तुम्हें बरबाद करनेवाला नहीं है, बल्कि तुमको उस मर्तबे पर पहुँचानेवाला है जिसका तसव्वुर भी ये लोग आज नहीं कर सकते और सचमुच अल्लाह तआला ने कुछ ही साल बाद नबी (सल्ल०) को इस दुनिया में, उन्हीं लोगों की आँखों के सामने तमाम अरब देश पर ऐसा मुकम्मल इक़्तिदार (पूर्ण सत्ता) देकर दिखा दिया कि आप (सल्ल०) के रास्ते में रुकावट डालनेवाली कोई ताक़त वहाँ न ठहर सकी और आप (सल्ल०) के दीन के सिवा किसी दीन के लिए वहाँ गुंजाइश न रही। अरब के इतिहास में इससे पहले कोई मिसाल इसकी मौजूद न थी कि पूरे अरब जज़ीरे (द्वीप) पर किसी एक शख़्स की ऐसी बिना मुख़ालिफ़त बादशाही क़ायम हो गई हो कि देश-भर में कोई उसके मुक़ाबले पर

وَمَا كُنتَ تَرْجُوٓا۟ أَن يُلْقَىٰٓ إِلَيْكَ ٱلْكِتَـٰبُ إِلَّا رَحْمَةً مِّن رَّبِّكَ

(86) तुम इस बात के हरगिज़ उम्मीदवार न थे कि तुमपर किताब उतारी जाएगी, यह तो सिर्फ़ तुम्हारे रब की मेहरबानी से (तुमपर उतारी गई है[109]), ———

बाक़ी न रहा हो, किसी में उसके हुक्म से इनकार करने की हिम्मत न हो और लोग सिर्फ़ सियासी तौर पर ही उसके दायरे में न आ गए हों, बल्कि सारे दीनों (धर्मों) को मिटाकर उसी एक शख़्स ने सबको अपने दीन का पैरोकार भी बना लिया हो।

कुछ तफ़सीर लिखनेवालों ने यह ख़याल ज़ाहिर किया है कि सूरा-28 क़सस की यह आयत मक्का से मदीना की तरफ़ हिजरत करते हुए रास्ते में उतरी थी और इसमें अल्लाह तआला ने अपने नबी (सल्ल॰) से यह वादा किया था कि वह आप (सल्ल॰) को फिर मक्का वापस पहुँचाएगा। लेकिन अव्वल तो इसके अलफ़ाज़ में कोई गुंजाइश इस बात की नहीं है कि 'मआद' से मुराद 'मक्का' लिया जाए। दूसरे, यह सूरा रिवायतों के मुताबिक़ भी और अपने मज़मून (विषय) की अन्दरूनी गवाही के एतिबार से भी हबशा की हिजरत के क़रीब ज़माने की है और यह बात समझ में नहीं आती कि कई साल बाद मदीना की हिजरत के रास्ते में अगर यह आयत उतरी थी तो इसे किस पहलू से यहाँ इस मौक़े पर लाकर रख दिया गया। तीसरे, इस जगह मक्का की तरफ़ नबी (सल्ल॰) की वापसी का ज़िक्र बिलकुल बेमौक़ा नज़र आता है। आयत का यह मतलब अगर लिया जाए तो यह मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की बात का जवाब नहीं, बल्कि उनके बहाने को और मज़बूत बनानेवाला होगा। इसका मतलब यह होगा कि बेशक ऐ मक्कावालो, तुम ठीक कहते हो, मुहम्मद (सल्ल॰) इस शहर से निकाल दिए जाएँगे, लेकिन वह हमेशा के लिए वतन से बाहर नहीं होंगे, बल्कि आख़िरकार हम उन्हें इसी जगह वापस ले आएँगे। यह रिवायत अगरचे बुख़ारी, नसई, इब्ने-जरीर और दूसरे मुहद्दिसों ने इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) से नक़्ल की है, लेकिन यह है इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) की अपनी ही राय। कोई भरोसेमन्द हदीस नहीं है जो नबी (सल्ल॰) ने कही हो कि उसे मानना ज़रूरी हो।

109. यह बात मुहम्मद (सल्ल॰) की पैग़म्बरी के सुबूत में पेश की जा रही है। जिस तरह मूसा (अलैहि॰) बिलकुल बेख़बर थे कि उन्हें नबी बनाया जानेवाला है और एक बहुत बड़े मिशन पर वे लगाए जानेवाले हैं, उनके ज़ेहन के किसी कोने में भी इसका इरादा या ख़ाहिश तो एक तरफ़ इसकी उम्मीद तक कभी न गुज़री थी, बस यकायक राह चलते उन्हें खींच बुलाया गया और नबी बनाकर वह हैरतअंगेज़ काम उनसे लिया गया जो उनकी पिछली ज़िन्दगी से कोई मेल नहीं रखता था, ठीक ऐसा ही मामला नबी (सल्ल॰) के साथ भी पेश आया। मक्का के लोग ख़ुद जानते थे कि हिरा की गुफा से जिस दिन आप पैग़म्बरी का पैग़ाम लेकर उतरे उससे एक दिन पहले तक आप (सल्ल॰) की ज़िन्दगी क्या थी, आप (सल्ल॰) की मशग़ूलियतें क्या थीं, आप (सल्ल॰) की बातचीत क्या थी, आप (सल्ल॰) की बातचीत किन-किन बातों (विषयों) के बारे में होती थी, आप (सल्ल॰) की दिलचस्पियाँ और सरगर्मियाँ किस तरह की थीं। यह पूरी ज़िन्दगी सच्चाई, ईमानदारी, अमानत और पाकबाज़ी से भरी ज़रूर थी। इसमें इन्तिहाई शराफ़त,

अम्न-पसन्दी, वादे का ख़याल रखना, हक़ों को अदा करना और समाज की ख़िदमत का रंग भी ग़ैर-मामूली शान के साथ नुमायाँ था। मगर इसमें कोई चीज़ ऐसी मौजूद न थी जिसकी बुनियाद पर किसी के वहमो-गुमान में भी यह ख़याल गुज़र सकता हो कि यह नेक बन्दा कल ख़ुदा का पैग़म्बर होने का दावा लेकर उठनेवाला है। आप (सल्ल.) से सबसे ज़्यादा क़रीबी ताल्लुक़ात रखनेवालों में, आप (सल्ल.) के रिश्तेदारों और पड़ोसियों और दोस्तों में कोई शख़्स यह न कह सकता था कि आप (सल्ल.) पहले से नबी बनने की तैयारी कर रहे थे। किसी ने उन बातों और मामलों के बारे में कभी एक लफ़्ज़ तक आप (सल्ल.) की ज़बान से न सुना था जो हिरा नामक गुफा की उस इंक़िलाबी घड़ी के बाद यकायक आप (सल्ल.) की ज़बान पर जारी होने शुरू हो गए। किसी ने आप (सल्ल.) को वह ख़ास ज़बान और वे अलफ़ाज़ और इस्तिलाहें इस्तेमाल करते न सुना था जो अचानक क़ुरआन की शक्ल में लोग आप (सल्ल.) से सुनने लगे। कभी आप (सल्ल.) तक़रीर करने खड़े न हुए थे। कभी कोई दावत और तहरीक (आन्दोलन) लेकर न उठे थे, बल्कि कभी आप (सल्ल.) की किसी सरगर्मी से यह गुमान तक न हो सकता था कि आप इजतिमाई मसलों के हल, या मज़हबी सुधार या अख़लाक़ी सुधार के लिए कोई काम शुरू करने की फ़िक्र में हैं। इस इंक़िलाबी घड़ी से एक दिन पहले तक आप (सल्ल.) की ज़िन्दगी एक ऐसे ताजिर की ज़िन्दगी नज़र आती थी जो सीधे-सादे जाइज़ तरीक़ों से अपनी रोज़ी कमाता है, अपने बाल-बच्चों के साथ हँसी-ख़ुशी रहता है, मेहमानों की ख़ातिरदारी, ग़रीबों की मदद और रिश्तेदारों से अच्छा सुलूक करता है और कभी-कभी इबादत करने के लिए तन्हाई में जा बैठता है। ऐसे शख़्स का यकायक एक आलमगीर (विश्वव्यापी) भूकम्प पैदा कर देनेवाली तक़रीर के साथ उठना, एक इंक़िलाब लानेवाली दावत शुरू कर देना, एक निराला लिट्रेचर पैदा कर देना, ज़िन्दगी का एक मुस्तक़िल फ़लसफ़ा (स्थायी जीवन-दर्शन) और निज़ामे-फ़िक्र और अख़लाक़ व तमद्दुन लेकर सामने आ जाना, इतनी बड़ी तब्दीली है जो इनसानी नफ़सियात (मनोवृत्ति) के लिहाज़ से किसी बनावट और तैयारी और इरादी कोशिश के नतीजे में हरगिज़ पैदा नहीं हो सकती। इसलिए कि ऐसी हर कोशिश और तैयारी बहरहाल दर्जा-ब-दर्जा तरक़्क़ी के मरहलों से गुज़रती है और ये मरहले उन लोगों से कभी छिपे नहीं रह सकते जिनके बीच आदमी दिन-रात ज़िन्दगी गुज़ारता हो। अगर नबी (सल्ल.) की ज़िन्दगी इन मरहलों से गुज़री होती तो मक्का में सैकड़ों ज़बानें यह कहनेवाली होतीं कि हम न कहते थे, यह आदमी एक दिन कोई बड़ा दावा लेकर उठनेवाला है। लेकिन इतिहास गवाह है कि मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने आप (सल्ल.) पर हर तरह के एतिराज़ किए, मगर यह एतिराज़ करनेवाला उनमें से कोई एक आदमी भी न था।

फिर यह बात कि नबी (सल्ल.) ख़ुद भी पैग़म्बरी के ख़ाहिशमन्द या उसकी उम्मीद और इन्तिज़ार में न थे, बल्कि पूरी बेख़बरी की हालत में अचानक आप (सल्ल.) को इस मामले का सामना करना पड़ा, इसका सुबूत उस घटना से मिलता है जो हदीसों में वह्य की शुरुआत की कैफ़ियत के बारे में नक़्ल हुई है। जिबरील (अलैहि.) से पहली मुलाक़ात और सूरा-96 अलक़ की शुरू की आयतों के उतरने के बाद आप (सल्ल.) हिरा की गुफा से काँपते और थरथराते हुए घर पहुँचते हैं। घरवालों से कहते हैं कि "मुझे ओढ़ाओ, मुझे ओढ़ाओ!" कुछ देर के बाद जब

ज़रा डर की कैफ़ियत दूर होती है तो अपनी बीवी हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) को सारा माजरा सुनाकर कहते हैं कि "मुझे अपनी जान का डर है।" वे फ़ौरन जवाब देती हैं, "हरगिज़ नहीं! आपको अल्लाह कभी रंज में न डालेगा। आप तो रिश्तेदारों के हक़ अदा करते हैं। बेसहारा को सहारा देते हैं। ग़रीब की मदद करते हैं। मेहमानों की ख़ातिरदारी करते हैं। हर भले काम में मदद करने के लिए तैयार रहते हैं।" फिर वे नबी (सल्ल॰) को लेकर वरक़ा-बिन-नौफ़ल के पास जाती हैं जो उनके चचेरे भाई और अहले-किताब में से एक इल्म रखनेवाले और सच्चे आदमी थे। वे आप (सल्ल॰) से सारा वाक़िआ सुनने के बाद बिना झिझक कहते हैं कि "यह जो आपके पास आया था वही नामूस (ख़ास काम पर लगा हुआ फ़रिश्ता) है जो मूसा के पास आता था। काश, मैं जवान होता और उस वक़्त तक ज़िन्दा रहता जब आपकी क़ौम आपको निकाल देगी!" आप (सल्ल॰) पूछते हैं, "क्या ये लोग मुझे निकाल देंगे?" वे जवाब देते हैं, "हाँ, कोई शख़्स ऐसा नहीं गुज़रा कि वह चीज़ लेकर आया हो, जो आप लाए हैं और लोग उसके दुश्मन न हो गए हों।"

यह पूरा वाक़िआ उस हालत की तस्वीर पेश कर देता है, जो बिलकुल फ़ितरी तौर पर यकायक उम्मीद के ख़िलाफ़ एक इन्तिहाई ग़ैर-मामूली तजरिबा पेश आ जाने से किसी सीधे-सादे इनसान पर छा सकती है। अगर नबी (सल्ल॰) पहले से नबी बनने की फ़िक्र में होते, अपने बारे में यह सोच रहे होते कि मुझ जैसे आदमी को नबी होना चाहिए और उसके इन्तिज़ार में मुराक़बे (ध्यान और साधना) कर-करके अपने ज़ेहन पर ज़ोर डाल रहे होते कि कब कोई फ़रिश्ता आता है और मेरे पास पैग़ाम लाता है, तो हिरा नाम की गुफावाला मामला पेश आते ही आप (सल्ल॰) ख़ुशी से उछल पड़ते और बड़े दम-दावे के साथ पहाड़ से उतरकर सीधे अपनी क़ौम के सामने पहुँचते और अपनी पैग़म्बरी का एलान कर देते। लेकिन इसके बरख़िलाफ़ यहाँ हालत यह है कि जो कुछ देखा था उसपर हैरान रह जाते हैं, काँपते और थरथराते हुए घर पहुँचते हैं, लिहाफ़ ओढ़कर लेट जाते हैं, ज़रा दिल ठहरता है तो बीवी को चुपके से बताते हैं कि आज हिरा की गुफा की तन्हाई में मुझपर यह हादिसा गुज़रा है, पता नहीं क्या होनेवाला है, मुझे अपनी जान की ख़ैर नज़र नहीं आती। यह कैफ़ियत पैग़म्बरी के किसी उम्मीदवार की कैफ़ियत से कितनी अलग है।

फिर बीवी से बढ़कर शौहर की ज़िन्दगी, उसके हालात और उसके ख़यालात को कौन जान सकता है? अगर उनके तजरिबे में पहले से यह बात आई हुई होती कि मियाँ पैग़म्बरी के उम्मीदवार हैं और हर वक़्त फ़रिश्ते के आने का इन्तिज़ार कर रहे हैं, तो उनका जवाब हरगिज़ वह न होता जो आप (सल्ल॰) की बीवी हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) ने दिया। वे कहतीं कि मियाँ घबराते क्यों हो, जिस चीज़ की मुद्दतों से तमन्ना थी, वह मिल गई। चलो अब पीरी की दुकान चमकाओ, मैं भी नज़राने संभालने की तैयारी करती हूँ। लेकिन वे पन्द्रह साल के साथ में आप (सल्ल॰) की ज़िन्दगी का जो रंग देख चुकी थीं, उसकी बुनियाद पर उन्हें यह बात समझने में एक पल की भी देर न लगी कि ऐसे नेक बे-ग़रज़ इनसान के पास शैतान नहीं आ सकता, न अल्लाह उसको किसी बड़ी आज़माइश में डाल सकता है, उसने जो कुछ देखा है वह सरासर हक़ीक़त है।

فَلَا تَكُونَنَّ ظَهِيرًا لِّلْكٰفِرِينَ ﴿٨٦﴾ وَلَا يَصُدُّنَّكَ عَنْ اٰيٰتِ اللّٰهِ بَعْدَ اِذْ

इसलिए तुम (ख़ुदा के) इनकारियों के मददगार न बनो।[110] (87) और ऐसा कभी न होने पाए कि अल्लाह की आयतें जब तुमपर उतरें तो (ख़ुदा के) इनकारी तुम्हें उनसे दूर

और यही मामला वरक़ा-बिन-नौफ़ल का भी है। वे कोई बाहर के आदमी न थे, बल्कि नबी (सल्ल॰) की अपनी बिरादरी के आदमी और क़रीब के रिश्ते से निस्बती भाई (साले) थे। फिर एक इल्मवाले ईसाई होने की हैसियत से पैग़म्बरी, किताब और वह्य (प्रकाशना) को बनावट से अलग कर सकते थे। उम्र में कई साल बड़े होने की वजह से आप (सल्ल॰) की पूरी ज़िन्दगी बचपन से उस वक़्त तक उनके सामने थी। उन्होंने भी आप (सल्ल॰) की ज़बान से हिरा में जो कुछ गुज़रा उसे सुनते ही फ़ौरन कह दिया कि यह आनेवाला यक़ीनन वही फ़रिश्ता है जो मूसा (अलैहि॰) पर वह्य लाता था; क्योंकि यहाँ भी वही सूरत पेश आई थी जो हज़रत मूसा (अलैहि॰) के साथ पेश आई थी कि एक इन्तिहाई पाकीज़ा सीरत का सीधा-सादा इनसान बिलकुल ख़ाली ज़ेहन है, पैग़म्बरी की फ़िक्र में रहना तो दूर, उसको पाने का तसव्वुर (कल्पना) तक उसके ज़ेहन के किसी कोने में कभी नहीं आया है और अचानक वह पूरे होशो-हवास की हालत में खुल्लम-खुल्ला इस तजरिबे से दोचार होता है। इसी चीज़ ने उनको दो और दो चार की तरह ज़रा भी झिझक किए बिना इस नतीजे तक पहुँचा दिया कि यहाँ कोई मन का धोखा या शैतानी करिश्मा नहीं है, बल्कि इस सच्चे इनसान ने अपने किसी इरादे और ख़ाहिश के बिना जो कुछ देखा है वह अस्ल में हक़ीक़त ही को देखा है।

यह मुहम्मद (सल्ल॰) की नुबूवत (पैग़म्बरी) का एक ऐसा खुला सुबूत है कि एक हक़ीक़त-पसन्द इनसान मुश्किल ही से इसका इनकार कर सकता है। इसी लिए क़ुरआन में कई जगहों पर इसे नुबूवत की दलील की हैसियत से पेश किया गया है। मसलन सूरा-10 यूनुस में फ़रमाया—

"ऐ नबी, इनसे कहो कि अगर अल्लाह ने यह न चाहा होता तो मैं कभी यह क़ुरआन तुम्हें न सुनाता, बल्कि इसकी ख़बर तक वह तुमको न देता। आख़िर मैं इससे पहले एक उम्र तुम्हारे बीच गुज़ार चुका हूँ, क्या तुम इतनी बात भी नहीं समझते?" (आयत-16)

और सूरा-42 शूरा में फ़रमाया—

"ऐ नबी, तुम तो जानते तक न थे कि किताब क्या होती है और ईमान क्या होता है, मगर हमने इस वह्य को एक नूर बना दिया जिससे हम रहनुमाई करते हैं, अपने बन्दों में से जिसकी चाहते हैं।" (आयत-52)

और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-10 यूनुस, हाशिया-21; सूरा-29 अनूकबूत, हाशिए-88-92; सूरा-42 शूरा, हाशिया-84।

110. यानी जब अल्लाह ने यह नेमत तुम्हें बिन माँगे दी है तो उसका हक़ अब तुमपर यह है कि तुम्हारी सारी क़ुव्वतें और मेहनतें इसकी अलमबरदारी पर, इसकी तबलीग़ पर और इसे फैलाने पर लगें। इसमें कोताही करने का मतलब यह होगा कि तुमने हक़ के बजाय हक़ का इनकार

أُنْزِلَتْ إِلَيْكَ وَادْعُ إِلَىٰ رَبِّكَ وَلَا تَكُونَنَّ مِنَ الْمُشْرِكِينَ ﴿٨٧﴾ وَلَا
تَدْعُ مَعَ اللَّهِ إِلَٰهًا آخَرَ ۘ لَا إِلَٰهَ إِلَّا هُوَ ۚ كُلُّ شَيْءٍ هَالِكٌ إِلَّا وَجْهَهُ ۚ
لَهُ الْحُكْمُ وَإِلَيْهِ تُرْجَعُونَ ﴿٨٨﴾

وقف لازم

ع ١٢

رखें।[111] अपने रब की तरफ़ बुलाओ और हरगिज़ मुशरिकों में शामिल न हो (88) और अल्लाह के साथ किसी दूसरे माबूद को न पुकारो। उसके सिवा कोई माबूद नहीं है। हर चीज़ हलाक होनेवाली है सिवाय उस हस्ती के। हुकूमत उसी की है[112] और उसी की तरफ़ तुम सब पलटाए जानेवाले हो।

करनेवालों की मदद की। इसका यह मतलब नहीं है कि अल्लाह की पनाह, नबी (सल्ल॰) से ऐसी किसी कोताही का अन्देशा था, बल्कि अस्ल में इस तरह अल्लाह तआला इस्लाम-मुख़ालिफ़ों को सुनाते हुए अपने नबी को यह हिदायत कर रहा है कि तुम इनके शोर-हंगामे और इनकी मुख़ालिफ़त के बावजूद अपना काम करो और इसकी कोई परवाह न करो कि हक़ के दुश्मन इस दावत से अपने क़ौमी फ़ायदे पर चोट लगने के क्या अन्देशे ज़ाहिर करते हैं।

111. यानी उनकी तबलीग़ और इशाअत (प्रचार-प्रसार) से और उनके मुताबिक़ अमल करने से।

112. यह मतलब भी हो सकता है कि हुकूमत उसी के लिए है, यानी वही इसका हक़ रखता है।

☆☆☆

[illegible]

[illegible] (৪৪) [illegible]

[illegible]

☆☆☆

29. अल-अनूकबूत

परिचय

नाम

आयत-41 के जुमले "जिन लोगों ने अल्लाह को छोड़कर दूसरे सरपरस्त बना लिए हैं, उनकी मिसाल मकड़ी (अनूकबूत) जैसी है" से लिया गया है। मतलब यह है कि यह वह सूरत है जिसमें लफ़्ज़ 'अनूकबूत' आया है।

उतरने का ज़माना

आयतें-56-60 से साफ़ ज़ाहिर होता है कि यह सूरा हब्शा की हिजरत से कुछ पहले उतरी थी। बाक़ी मज़मूनों (विषयों) की अन्दरूनी गवाही भी इसी की ताईद करती है, क्योंकि पसमंज़र में उसी ज़माने के हालात झलकते नज़र आते हैं। कुछ तफ़सीर लिखनेवालों ने सिर्फ़ इस दलील की बुनियाद पर कि इसमें मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) का ज़िक्र आया है और निफ़ाक़ (कपटाचार) मदीना में ज़ाहिर हुआ है, यह अन्दाज़ा क़ायम कर लिया है कि इस सूरा की शुरुआती दस आयतें मदीना में उतरी हैं और बाक़ी सूरा मक्का में उतरी है। हालाँकि यहाँ जिन लोगों के निफ़ाक़ का ज़िक्र है, वे लोग वे हैं जो इस्लाम-दुश्मनों के ज़ुल्मो-सितम और सख़्त जिस्मानी तकलीफ़ों के डर से मुनाफ़िक़ों के जैसा रवैया अपना रहे थे, और ज़ाहिर है कि इस तरह का निफ़ाक़ मक्का ही में हो सकता था, न कि मदीना में। इसी तरह कुछ दूसरे तफ़सीर लिखनेवालों ने यह देखकर कि इस सूरा में मुसलमानों को हिजरत करने की नसीहत की गई है, इसे मक्का की आख़िरी उतरी हुई सूरत बताया है। हालाँकि मदीना तय्यिबा की तरफ़ हिजरत करने से पहले मुसलमान हबशा (इथोपिया) की तरफ़ भी हिजरत कर चुके थे। ये तमाम अन्दाज़े अस्ल में किसी रिवायत की बुनियाद पर नहीं हैं बल्कि सिर्फ़ मज़ामीन (विषयों) की अन्दरूनी गवाही पर इनकी बुनियाद रखी गई है। और यह अन्दरूनी गवाही, अगर कुल मिलाकर पूरी सूरत के मज़ामीन पर निगाह डाली जाए, मक्का के आख़िरी दौर की नहीं बल्कि उस दौर के हालात की निशानदेही करती है जिसमें हबशा की हिजरत हुई थी।

मौज़ू (विषय) और बहसें

सूरा को पढ़ते हुए महसूस होता है कि इसके उतरने का ज़माना मक्का में मुसलमानों पर बड़ी मुसीबतों और तकलीफ़ों का ज़माना था। इस्लाम-दुश्मनों की तरफ़ से इस्लाम की मुख़ालिफ़त पूरे ज़ोर-शोर से हो रही थी और ईमान लानेवालों पर सख़्त ज़ुल्मो-सितम तोड़े जा रहे थे। इन हालात में अल्लाह तआला ने यह सूरा एक तरफ़ सच्चे ईमानवाले लोगों में इरादे की मज़बूती, हिम्मत और जमाव पैदा करने के लिए, और दूसरी तरफ़ कमज़ोर ईमानवालों को शर्म दिलाने के लिए उतारी। इसके साथ मक्का के इस्लाम-दुश्मनों को भी इसमें सख़्त धमकी दी गई है कि अपने लिए उस अंजाम को दावत न दो जो हक़ से दुश्मनी का तरीक़ा अपनानेवाले हर ज़माने में देखते रहे हैं।

इस सिलसिले में उन सवालों का जवाब भी दिया गया है जो कुछ नौजवानों को उस वक़्त पेश आ रहे थे। मसलन उनके माँ-बाप उनपर ज़ोर डालते थे कि तुम मुहम्मद (सल्ल॰) का साथ छोड़ दो और हमारे दीन पर क़ायम रहो। जिस क़ुरआन पर तुम ईमान लाए हो उसमें भी तो यही कहा गया है कि माँ-बाप का हक़ सबसे ज़्यादा है। तो हम जो कुछ कहते हैं, उसे मानो वरना तुम ख़ुद अपने ही ईमान के ख़िलाफ़ काम करोगे। इसका जवाब आयत-8 में दिया गया है।

इसी तरह कुछ नव-मुस्लिमों से उनके क़बीले के लोग कहते थे कि अज़ाब-सवाब हमारी गर्दन पर, तुम हमारा कहना मानो और इस शख़्स से अलग हो जाओ। अगर ख़ुदा तुम्हें पकड़ेगा तो हम ख़ुद आगे बढ़कर कह देंगे कि साहब, इन बेचारों का कुछ क़ुसूर नहीं, इनको हमने ईमान छोड़ने पर मजबूर किया था, इसलिए आप हमें पकड़ लें। इसका जवाब आयत-12 और 13 में दिया गया है।

जो क़िस्से इस सूरा में बयान किए गए हैं उनमें भी ज़्यादातर यही पहलू नुमायाँ है कि पिछले नबियों को देखो, कैसी-कैसी सख़्तियाँ उनपर गुज़रीं और कितनी-कितनी मुद्दत वे सताए गए। फिर आख़िरकार अल्लाह तआला की तरफ़ से उनकी मदद हुई। इसलिए घबराओ नहीं, अल्लाह की मदद ज़रूर आएगी, मगर आज़माइश का एक दौर गुज़रना ज़रूरी है। मुसलमानों को यह सबक़ देने के साथ मक्का के इस्लाम-दुश्मनों को भी इन क़िस्सों में ख़बरदार किया गया है कि अगर ख़ुदा की तरफ़ से पकड़ होने में देर लग रही है तो यह न समझ बैठो कि कभी पकड़ होगी ही नहीं। पिछली तबाह हो चुकी क़ौमों के निशानात तुम्हारे सामने हैं। देख लो कि आख़िरकार उनकी शामत आकर रही और ख़ुदा ने अपने पैग़म्बरों की मदद की।

फिर मुसलमानों को हिदायत की गई कि अगर ज़ुल्मो-सितम तुम्हारे लिए बरदाश्त से बाहर हो जाए तो ईमान छोड़ने के बजाय घर-बार छोड़कर निकल जाओ। ख़ुदा की ज़मीन बहुत बड़ी है। जहाँ ख़ुदा की बन्दगी कर सको, वहाँ चले जाओ।

इन सब बातों के साथ इस्लाम-मुख़ालिफ़ों को समझाने का पहलू भी छूटने नहीं पाया है। तौहीद और आख़िरत, दोनों हक़ीक़तों को दलीलों के साथ उनके ज़ेहन में बिठाने की कोशिश की गई है। शिर्क का ग़लत होना साबित किया गया है और कायनात की निशानियों की तरफ़ ध्यान दिलाकर उनको बताया गया है कि ये सब निशानियाँ उस तालीम को सही साबित कर रही हैं जो हमारा पैग़म्बर तुम्हारे सामने पेश कर रहा है।

☆☆☆

[illegible]

☆☆☆

آيَاتُهَا ٦٩ ﴿٢٩ سُوْرَةُ الْعَنْكَبُوْتِ مَكِّيَّةٌ ٨٥﴾ رُكُوْعَاتُهَا ٧

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

الٓمّٓ ۟ اَحَسِبَ النَّاسُ اَنْ يُّتْرَكُوْٓا اَنْ يَّقُوْلُوْٓا اٰمَنَّا وَهُمْ لَا يُفْتَنُوْنَ ۝

29. अल-अनकबूत

(मक्का में उतरी--आयतें-69)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) अलिफ़-लाम-मीम। (2) क्या लोगों ने यह समझ रखा है कि वे बस इतना कहने पर छोड़ दिए जाएँगे कि "हम ईमान लाए" और उन्हें आज़माया न जाएगा?[1]——

1. जिन हालात में यह बात कही गई है वे ये थे कि मक्का में जो शख़्स इस्लाम क़बूल करता था उसपर आफ़तों और मुसीबतों और ज़ुल्मों का एक तूफ़ान टूट पड़ता था। कोई ग़ुलाम या ग़रीब होता तो उसको बुरी तरह मारा-पीटा जाता और सख़्त ना-क़ाबिले-बरदाश्त तकलीफ़ें दी जातीं। कोई दुकानदार या कारीगर होता तो उसकी रोज़ी के दरवाज़े बन्द कर दिए जाते, यहाँ तक कि भूखों मरने की नौबत आ जाती। कोई किसी असरदार ख़ानदान का आदमी होता तो उसके अपने ख़ानदान के लोग उसको तरह-तरह से तंग करते और उसका जीना दूभर कर देते थे। इन हालात ने मक्का में एक सख़्त ख़ौफ़ और दहशत का माहौल पैदा कर दिया था जिसकी वजह से बहुत-से लोग तो नबी (सल्ल.) की सच्चाई को जान लेने के बावजूद ईमान लाते हुए डरते थे, और कुछ लोग ईमान लाने के बाद जब दर्दनाक तकलीफ़ों से गुज़रते तो हिम्मत हारकर इस्लाम-दुश्मनों के आगे घुटने टेक देते थे। इन हालात ने अगरचे पक्के ईमानवाले सहाबा के इरादे और जमाव में कोई लड़खड़ाहट पैदा नहीं की थी, लेकिन इनसानी फ़ितरत के तक़ाज़े से अकसर उनपर भी एक सख़्त बेचैनी की कैफ़ियत छा जाती थी। चुनाँचे इसी कैफ़ियत का एक नमूना हज़रत ख़ब्बाब-बिन-अरत की वह रिवायत पेश करती है जो बुख़ारी, अबू-दाऊद और नसई ने नक़्ल की है। वे फ़रमाते हैं कि जिस ज़माने में मुशरिकों की सख़्तियों से हम बुरी तरह तंग आए हुए थे, एक दिन मैंने देखा कि नबी (सल्ल.) काबा की दीवार के साए में तशरीफ़ रखते हैं। मैंने हाज़िर होकर अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप हमारे लिए दुआ नहीं करते?" यह सुनकर आप (सल्ल.) का चेहरा जोश और जज़बे से लाल हो गया और आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "तुमसे पहले जो ईमानवाले गुज़र चुके हैं, उनपर इससे ज़्यादा सख़्तियाँ की गई हैं। उनमें से किसी को ज़मीन में गढ़ा खोदकर बिठाया जाता और उसके सिर पर आरा चलाकर उसके दो टुकड़े कर डाले जाते। किसी के जोड़ों पर लोहे के कंघे घिसे जाते थे, ताकि

वह ईमान छोड़ दे। ख़ुदा की क़सम! यह काम पूरा होकर रहेगा यहाँ तक कि एक शख़्स सनआ से हज़रेमौत तक बे-खटके सफ़र करेगा और अल्लाह के सिवा कोई न होगा, जिससे वह डरे। इस बेचैनी और बेक़रारी की कैफ़ियत को ठण्डे सब्र और बरदाश्त में तब्दील करने के लिए अल्लाह तआला ईमानवालों को समझाता है कि हमारे जो वादे दुनिया और आख़िरत की कामयाबियों के लिए हैं, कोई शख़्स सिर्फ़ ज़बान से ईमान का दावा करके उनका हक़दार नहीं हो सकता, बल्कि हर दावेदार को ज़रूर ही आज़माइशों की भट्टी से गुज़रना होगा, ताकि वह अपने दावे की सच्चाई का सुबूत दे। हमारी जन्नत इतनी सस्ती नहीं है, और न दुनिया ही में हमारी ख़ास मेहरबानियाँ ऐसी सस्ती हैं कि तुम बस ज़बान से हमपर ईमान लाने का एलान करो और हम वह सबकुछ तुम्हें दे दें। इनके लिए तो इम्तिहान शर्त है। हमारी ख़ातिर मशक़्क़तें उठानी होंगी। जान-माल का घाटा बरदाश्त करना होगा। तरह-तरह की सख़्तियाँ झेलनी होंगी। ख़तरों, मुसीबतों और मुश्किलों का मुक़ाबला करना होगा। डर से भी आज़माए जाओगे और लालच से भी। हर चीज़ जिसे बहुत पसन्द करते हो, हमारी मरज़ी पर उसे क़ुरबान करना पड़ेगा, और हर तकलीफ़ जो तुम्हें नागवार है, हमारे लिए बरदाश्त करनी होगी। तब कहीं यह बात खुलेगी कि हमें मानने का जो दावा तुमने किया था वह सच्चा था या झूठा। यह बात क़ुरआन मजीद में हर उस मक़ाम पर कही गई है जहाँ मुसीबतों और सख़्तियों के हुजूम में मुसलमानों पर घबराहट छाई है। हिजरत के बाद मदीना की इब्तिदाई ज़िन्दगी में जब मआशी (आर्थिक) मुश्किलों, बाहरी ख़तरों और यहूदियों और मुनाफ़िक़ों की अन्दरूनी शरारतों ने ईमानवालों को सख़्त परेशान कर रखा था, उस वक़्त फ़रमाया—

"क्या तुमने यह समझ रखा है कि तुम जन्नत में दाख़िल हो जाओगे, हालाँकि अभी तुमपर वे हालात नहीं गुज़रे जो तुमसे पहले गुज़रे हुए (ईमानवाले) लोगों पर गुज़र चुके हैं? उनपर सख़्तियाँ और तकलीफ़ें आईं और वे हिला मारे गए। यहाँ तक कि रसूल और उसके साथ ईमानवाले लोग पुकार उठे कि अल्लाह की मदद कब आएगी? (तब उन्हें ख़ुशख़बरी सुनाई गई कि) ख़बरदार रहो, अल्लाह की मदद क़रीब है।" (सूरा-2 बक़रा, आयत-214)

इसी तरह उहुद की जंग के बाद जब मुसलमानों पर फिर मुसीबतों का एक सख़्त दौर आया तो कहा गया—

"क्या तुमने समझ रखा है कि जन्नत में दाख़िल हो जाओगे, हालाँकि अभी अल्लाह ने यह तो देखा ही नहीं कि तुममें से जिहाद में जान लड़ानेवाले और मज़बूती के साथ डट जानेवाले कौन लोग हैं।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-142)

क़रीब-क़रीब यही बात सूरा-3 आले-इमरान, आयत-179; सूरा-9 तौबा, आयत-16 और सूरा-47 मुहम्मद, आयत-31 में भी बयान हुई है। इन फ़रमानों से अल्लाह तआला ने यह हक़ीक़त मुसलमानों के ज़ेहन में बिठाई है कि आज़माइश ही वह कसौटी है जिससे खोटा और खरा परखा जाता है, खोटा ख़ुद-ब-ख़ुद अल्लाह तआला की राह से हट जाता है और खरा छाँट लिया जाता है ताकि अल्लाह के वे इनामात उसे दिए जाएँ जो सिर्फ़ सच्चे ईमानवालों का ही हिस्सा हैं।

وَلَقَدْ فَتَنَّا الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ فَلَيَعْلَمَنَّ اللّٰهُ الَّذِيْنَ صَدَقُوْا
وَلَيَعْلَمَنَّ الْكٰذِبِيْنَ۝۳ اَمْ حَسِبَ الَّذِيْنَ يَعْمَلُوْنَ السَّيِّاٰتِ اَنْ

(3) हालाँकि हम उन सब लोगों को आज़मा चुके हैं जो इनसे पहले गुज़रे हैं।[2] अल्लाह को तो ज़रूर यह देखना है[3] कि सच्चे कौन हैं और झूठे कौन।

(4) और क्या वे लोग जो बुरी हरकतें कर रहे हैं[4] यह समझे बैठे हैं कि वे हमसे

2. यानी यह कोई नया मामला नहीं है जो तुम्हारे साथ ही पेश आ रहा हो। इतिहास में हमेशा यही हुआ है कि जिसने भी ईमान का दावा किया है उसे आज़माइशों की भट्टी में डालकर ज़रूर तपाया गया है। और जब दूसरों को इम्तिहान के बिना कुछ नहीं दिया गया तो तुम्हारी क्या ख़ास बात है कि तुम्हें सिर्फ़ ज़बानी दावे पर इनाम दे दिया जाए।

3. अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं 'फ़-ल-यअ्-ल-मन्नल्लाहु' जिनका लफ़्ज़ी तर्जमा यह होगा, "ज़रूर है अल्लाह यह मालूम करे।" इसपर एक शख़्स यह सवाल कर सकता है कि अल्लाह को तो सच्चे की सच्चाई और झूठे का झूठ ख़ुद ही मालूम है, आज़माइश करके उसे मालूम करने की क्या ज़रूरत है। इसका जवाब यह है कि जब तक एक शख़्स के अन्दर किसी चीज़ की सिर्फ़ सलाहियत और क़ाबिलियत ही होती है, अमली तौर पर वह सामने नहीं आ जाती, उस वक़्त तक इनसाफ़ की रू से न तो वह किसी इनाम का हक़दार हो सकता है और न सज़ा का। मसलन एक आदमी में अमानतदार होने की सलाहियत है और एक-दूसरे में ख़ियानत (बेईमानी) की सलाहियत। इन दोनों पर जब तक आज़माइश न आए और एक से अमानतदारी और दूसरे से ख़ियानत अमली तौर पर ज़ाहिर न हो जाए, यह बात अल्लाह के इनसाफ़ से दूर है कि वह सिर्फ़ अपने इल्मे-ग़ैब (परोक्ष-ज्ञान) की बुनियाद पर एक को अमानतदारी का इनाम दे दे और दूसरे को ख़ियानत की सज़ा दे डाले। इसलिए वह इल्म जो अल्लाह को लोगों के अच्छे और बुरे कामों से पहले उनकी सलाहियतों के बारे में और उनके आगे अपनाए जानेवाले रवैये के बारे में पहले से हासिल है, इनसाफ़ के मक़सदों के लिए काफ़ी नहीं है। अल्लाह के यहाँ इनसाफ़ इस इल्म की बुनियाद पर नहीं होता कि फ़ुलाँ शख़्स चोरी का रुझान रखता है और चोरी करेगा या करनेवाला है, बल्कि इस इल्म की बुनियाद पर होता है कि उस शख़्स ने चोरी कर डाली है। इसी तरह बख़्शिशें और इनामात भी उसके यहाँ इस इल्म की बुनियाद पर नहीं दिए जाते कि फ़ुलाँ शख़्स आला दर्जे का मोमिन और मुजाहिद बन सकता है या बनेगा, बल्कि इस इल्म की बुनियाद पर दिए जाते हैं कि फ़ुलाँ शख़्स ने अपने अमल से यह साबित कर दिया है कि वह अपने ईमान में सच्चा है और उसने अल्लाह की राह में जान लड़ाकर दिखा दी है। इसी लिए हमने आयत के इन अलफ़ाज़ का तर्जमा "अल्लाह को तो ज़रूर यह देखना है" किया है।

4. इससे मुराद हालाँकि तमाम वे लोग हो सकते हैं जो अल्लाह तआला की नाफ़रमानियाँ करते हैं, लेकिन यहाँ ख़ास तौर पर बात का रुख़ क़ुरैश के उन ज़ालिम सरदारों की तरफ़ है जो इस्लाम

يَّسْبِقُوْنَا ؕ سَآءَ مَا يَحْكُمُوْنَ ۝ مَنْ كَانَ يَرْجُوْا لِقَآءَ اللّٰهِ فَاِنَّ اَجَلَ اللّٰهِ
لَاٰتٍ ؕ وَهُوَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ۝ وَمَنْ جَاهَدَ فَاِنَّمَا يُجَاهِدُ لِنَفْسِهٖ ؕ

बाज़ी ले जाएँगे?[5] बड़ा ग़लत हुक्म है जो ये लगा रहे हैं।

(5) जो कोई अल्लाह से मिलने की उम्मीद रखता हो (उसे मालूम होना चाहिए कि) अल्लाह का मुक़र्रर किया हुआ वक़्त आने ही वाला है,[6] और अल्लाह सबकुछ सुनता और जानता है।[7] (6) जो शख़्स भी जिद्दोजुहद करेगा अपने ही भले के लिए करेगा,[8]

की मुख़ालिफ़त में और इस्लाम क़बूल करनेवालों को तकलीफ़ें देने में उस वक़्त आगे-आगे थे। मिसाल के तौर पर वलीद-बिन-मुग़ीरा, अबू-जह्ल, उतबा, शैबा, उक़बा- -बिन-अबी-मुऐत और हंज़ला-बिन-वाइल वग़ैरा। मौक़ा-महल ख़ुद यहाँ तक़ाज़ा कर रहा है कि मुसलमानों को आज़माइशों के मुक़ाबले में सब्र और जमाव की नसीहत करने के बाद डाँट-फटकार की एक बात उन लोगों से भी कही जाए जो इन हक़परस्तों पर ज़ुल्म ढा रहे थे।

5. यह मतलब भी हो सकता है कि "हमारी पकड़ से बचकर कहीं भाग सकेंगे।" अस्ल अरबी अलफ़ाज़ हैं 'यसबिक़ूना' यानी हमसे आगे निकल जाएँगे। इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि जो कुछ हम करना चाहते हैं (यानी अपने रसूल के मिशन की कामयाबी) वह तो न हो सके और जो कुछ ये चाहते हैं (यानी हमारे रसूल को नीचा दिखाना) वह हो जाए। दूसरा यह कि हम इनकी ज़्यादतियों पर इन्हें पकड़ना चाहते हों और ये भागकर हमारी पहुँच से दूर निकल जाएँ।

6. यानी जो शख़्स आख़िरत की ज़िन्दगी को मानता ही न हो और यह समझता हो कि कोई नहीं है जिसके सामने हमें अपने कामों का हिसाब देना हो और कोई वक़्त ऐसा नहीं आना है जब हमसे हमारी ज़िन्दगी के कामों का हिसाब लिया जाए, उसका मामला तो दूसरा है। वह अपनी ग़फ़लत में पड़ा रहे और बेफ़िक्री के साथ जो कुछ चाहे करता रहे। अपना नतीजा अपने अन्दाज़ों के ख़िलाफ़ वह ख़ुद देख लेगा। लेकिन जो लोग यह उम्मीद रखते हैं कि एक वक़्त हमें अपने ख़ुदा के सामने हाज़िर होना है और अपने आमाल के मुताबिक़ इनाम और सज़ा भी पानी है, उन्हें इस ग़लतफ़हमी में न रहना चाहिए कि मौत का वक़्त कुछ बहुत दूर है। उनको तो यह समझना चाहिए कि वह बस क़रीब ही आ लगा है और अमल की मुहलत ख़त्म होने ही वाली है। इसलिए जो कुछ भी वे अपनी आख़िरत की ज़िन्दगी की भलाई के लिए कर सकते हों, कर लें। लम्बी उम्र के बेबुनियाद भरोसे पर अपने सुधार में देर न लगाएँ।

7. यानी उनको इस ग़लतफ़हमी में भी न रहना चाहिए कि उनका वास्ता किसी बेख़बर चीज़ से है। जिस ख़ुदा के सामने उन्हें जवाबदेही के लिए हाज़िर होना है वह बेख़बर नहीं, बल्कि सबकुछ सुनने और सबकुछ जाननेवाला ख़ुदा है, उनकी कोई बात भी उससे छिपी हुई नहीं है।

8. अस्ल अरबी में 'जाह-द' और 'युजाहिदु' अलफ़ाज़ आए हैं जो 'मुजाहदा' से बने हैं। 'मुजाहदा' का मतलब किसी मुख़ालिफ़ ताक़त के मुक़ाबले में कशमकश और जिद्दोजुहद करना है। और

إِنَّ اللّٰهَ لَغَنِيٌّ عَنِ الْعٰلَمِيْنَ ۝٦ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا
الصّٰلِحٰتِ لَنُكَفِّرَنَّ عَنْهُمْ سَيِّاٰتِهِمْ وَلَنَجْزِيَنَّهُمْ اَحْسَنَ
الَّذِيْ كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ۝٧ وَوَصَّيْنَا الْاِنْسَانَ بِوَالِدَيْهِ حُسْنًا ۗ

अल्लाह यक़ीनन दुनिया-जहानवालों से बेनियाज़ (निस्पृह) है।[9] (7) और जो लोग ईमान लाएँगे और भले काम करेंगे उनकी बुराइयाँ हम उनसे दूर कर देंगे और उन्हें उनके बेहतरीन आमाल का बदला देंगे।[10]

(8) हमने इनसान को ताकीद की कि अपने माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करे।

जब किसी ख़ास मुख़ालिफ़ ताक़त की निशानदेही न की जाए बल्कि सिर्फ़ 'मुजाहदा' का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया जाए तो इसका मतलब यह है कि यह एक हमागीर (व्यापक) और हर मैदान में की जानेवाली कशमकश है। ईमानवाले को इस दुनिया में जो कशमकश करनी है वह कुछ इसी तरह की है। इसे शैतान से भी लड़ना है जो उसको हर पल नेकी के नुक़सानात से डराता और बुराई के फ़ायदों और मज़ों का लालच दिलाता रहता है। अपने नफ़्स (मन) से भी लड़ना है जो उसे हर वक़्त अपनी ख़ाहिशों का ग़ुलाम बनाने के लिए ज़ोर लगाता रहता है। उसे अपने घर से लेकर पूरी दुनिया तक के उन तमाम इनसानों से भी कशमकश करनी है जिनके नज़रिए, रुझान, अख़लाक़ी उसूल, रस्मो-रिवाज, रहन-सहन का ढंग और मईशत (आर्थिक) और सामाजिक क़ानून सच्चे दीन से टकराते हों। और उस रियासत से भी कशमकश करनी है जो ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी से आज़ाद रहकर अपना फ़रमान चलाए और नेकी के बजाय बुराई को बढ़ावा देने में अपनी क़ुव्वतें लगा दे। यह मुजाहदा एक दो दिन का नहीं, उम्र भर का, और दिन के चौबीस घण्टों में से हर लम्हे का है। किसी एक मैदान में नहीं, ज़िन्दगी के हर पहलू में हर मोरचे पर है। इसी के बारे में हसन बसरी (रह०) फ़रमाते हैं, ''आदमी जिहाद करता है चाहे वह कभी एक बार भी तलवार न चलाए।''

9. यानी अल्लाह इस मुजाहदे की माँग तुमसे इसलिए नहीं कर रहा है कि अपनी ख़ुदाई क़ायम करने और क़ायम रखने के लिए उसे तुम्हारी किसी मदद की ज़रूरत है और तुम्हारी इस लड़ाई के बिना उसकी ख़ुदाई न चलेगी, बल्कि वह इसलिए तुम्हें इस कशमकश में पड़ने की हिदायत करता है कि यही तुम्हारी तरक़्क़ी का रास्ता है। इसी ज़रिए से तुम बुराई और गुमराही के चक्कर से निकलकर नेकी और सच्चाई की राह पर बढ़ सकते हो। इसी से तुममें यह ताक़त पैदा हो सकती है कि दुनिया में भलाई और सुधार के अलमबरदार और आख़िरत में ख़ुदा की जन्नत के हक़दार बनो। तुम यह लड़ाई लड़कर ख़ुदा पर कोई एहसान न करोगे, अपना ही भला करोगे।

10. ईमान से मुराद उन तमाम चीज़ों को सच्चे दिल से मानना है जिन्हें मानने की दावत अल्लाह के रसूल और उसकी किताब ने दी है। और 'अमले-सॉलेह' (भले कर्म) से मुराद अल्लाह और

وَاِنۡ جَاهَدٰكَ لِتُشۡرِكَ بِىۡ مَا لَيۡسَ لَكَ بِهٖ عِلۡمٌ فَلَا تُطِعۡهُمَا ؕ اِلَىَّ

लेकिन अगर वे तुझपर दबाव डालें कि तू मेरे साथ किसी ऐसे (माबूद) को शरीक ठहराए जिसे तू (मेरे शरीक की हैसियत से) नहीं जानता तो उनका कहना न मान।[11] मेरी ही

उसके रसूल की हिदायत के मुताबिक़ अमल करना है। दिल और दिमाग़ का अमले-सॉलेह यह है कि आदमी की सोच और उसके ख़यालात और इरादे दुरुस्त और पाकीज़ा हों। ज़बान का अमले-सॉलेह यह है कि आदमी बुराई पर ज़बान खोलने से बचे और जो बात भी करे हक़ और इनसाफ़ और सच्चाई के मुताबिक़ करे। और जिस्म के हिस्सों (अंगों) का अमले-सॉलेह यह है कि आदमी की पूरी ज़िन्दगी अल्लाह की फ़रमाँबरदारी और बन्दगी में, और उसके हुक्मों और क़ानूनों की पाबन्दी में गुज़रे, इस ईमान और अमले-सॉलेह के दो नतीजे बयान किए गए हैं—
एक यह कि आदमी की बुराइयाँ उससे दूर कर दी जाएँगी।
दूसरा यह कि उसे उसके अच्छे कामों का, और उसके कामों से बेहतर इनाम दिया जाएगा।
बुराइयाँ दूर करने से मुराद कई चीज़ें हैं। एक यह कि ईमान लाने से पहले आदमी ने चाहे कैसे ही गुनाह किए हों, ईमान लाते ही वे सब माफ़ हो जाएँगे। दूसरी यह कि ईमान लाने के बाद आदमी ने बग़ावत के जज़्बे से नहीं बल्कि इनसानी कमज़ोरी से जो क़ुसूर किए हों, उसके नेक कामों का लिहाज़ करके उनकी अनदेखी कर दी जाएगी। तीसरी यह कि ईमान और अमले-सॉलेह की ज़िन्दगी अपनाने से आदमी के नफ़्स (मन) का सुधार आप-से-आप होगा और उसकी बहुत-सी कमज़ोरियाँ दूर हो जाएँगी।
ईमान और अमले-सॉलेह के इनाम के बारे में जो जुमला कहा गया है वह है, "और उन्हें उनके बेहतरीन आमाल का इनाम देंगे।" इसके दो मतलब हैं। एक यह कि आदमी के नेक आमाल में से जो आमाल सबसे ज़्यादा अच्छे होंगे, उनका ख़याल रखकर उसके लिए इनाम तय किया जाएगा। दूसरा यह कि आदमी अपने अमल के लिहाज़ से जितने इनाम का हक़दार होगा उससे ज़्यादा अच्छा इनाम उसे दिया जाएगा। यह बात दूसरी जगहों पर भी क़ुरआन में कही गई है। मिसाल के तौर पर सूरा-6 अनआम में फ़रमाया, "जो नेकी लेकर आएगा उसका उससे दस गुना इनाम दिया जाएगा।" (आयत-160) और सूरा-28 क़सस में फ़रमाया, "जो शख़्स नेकी लेकर आएगा उसको उससे बेहतर इनाम दिया जाएगा।" (आयत-84) और सूरा-4 निसा में फ़रमाया, "अल्लाह ज़ुल्म तो ज़र्रा बराबर नहीं करता, और अगर नेकी हो तो उसको कई गुना बढ़ाता है।" (आयत-40)

11. इस आयत के बारे में मुस्लिम, तिरमिज़ी, अहमद, अबू-दाऊद और नसाई की रिवायत है कि यह हज़रत सअ़द-बिन-अबी-वक़्क़ास (रज़ि॰) के बारे में उतरी है। वे 18-19 साल के थे जब उन्होंने इस्लाम क़बूल किया। उनकी माँ हमना-बिन्ते-सुफ़ियान-बिन-उमैया (अबू-सुफ़ियान की भतीजी) को जब मालूम हुआ कि बेटा मुसलमान हो गया है तो उसने कहा कि जब तक तू मुहम्मद का इनकार न करेगा मैं न खाऊँगी, न पियूँगी, न छाँव में बैठूँगी। माँ का हक़ अदा

مَرْجِعُكُمْ فَأُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ۝٨ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا
وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ لَنُدْخِلَنَّهُمْ فِي الصّٰلِحِيْنَ۝٩

तरफ़ तुम सबको पलटकर आना है, फिर मैं तुमको बता दूँगा कि तुम क्या करते रहे हो।[12] (9) और जो लोग ईमान लाए होंगे और जिन्होंने भले काम किए होंगे उनको हम ज़रूर अच्छों में दाख़िल करेंगे।

करना तो अल्लाह का हुक्म है। तू मेरी बात न मानेगा तो अल्लाह की भी नाफ़रमानी करेगा। हज़रत सअद (रज़ि०) इसपर सख़्त परेशान हुए और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर होकर माजरा सुनाया। इसपर यह आयत उतरी। मुमकिन है कि ऐसे ही हालात से दूसरे वे नौजवान भी दोचार हुए हों जो मक्का के इबतिदाई दौर में मुसलमान हुए थे। इसी लिए इस मज़मून (विषय) को सूरा-31 लुक़मान में भी पूरे ज़ोर के साथ दोहराया गया है (देखिए–आयत-15)

आयत का मंशा यह है कि इनसान पर इनसानों में से किसी का हक़ सबसे बढ़कर है तो वे उसके माँ-बाप हैं। लेकिन माँ-बाप भी अगर इनसान को शिर्क (यानी ख़ुदा के साथ दूसरों को इबादत में शरीक करने) पर मजबूर करें तो उनकी बात क़बूल न करनी चाहिए, कहाँ यह कि किसी और के कहने पर आदमी ऐसा करे। फिर अलफ़ाज़ ये हैं कि "अगर वे दोनों तुझे मजबूर करने के लिए अपना पूरा ज़ोर भी लगा दें।" इससे मालूम हुआ कि कमतर दर्जे का दबाव, या माँ-बाप में से किसी एक का ज़ोर देना तो सबसे पहले रद्द कर देने के लायक़ है। इसके साथ "जिसे तू मेरे शरीक की हैसियत से नहीं जानता" का जुमला भी क़ाबिले-ग़ौर है। इसमें उनकी बात न मानने के लिए एक बहुत मुनासिब दलील दी गई है। माँ-बाप का यह हक़ तो बेशक है कि औलाद उनकी ख़िदमत करे, उनका अदब और एहतिराम करे, उनकी जाइज़ बातों में उनकी फ़रमाँबरदारी भी करे। लेकिन यह हक़ उनको नहीं पहुँचता कि आदमी अपने इल्म के ख़िलाफ़ उनकी अंधी पैरवी करे। कोई वजह नहीं है कि एक बेटा या बेटी सिर्फ़ इस बुनियाद पर एक मज़हब की पैरवी किए जाए कि यह उसके माँ-बाप का मज़हब है। अगर औलाद को यह इल्म हासिल हो जाए कि माँ-बाप का मज़हब ग़लत है तो उसे उस मज़हब को छोड़कर सही मज़हब अपनाना चाहिए और उनके दबाव डालने पर भी उस तरीक़े की पैरवी न करनी चाहिए जिसकी गुमराही उसपर खुल चुकी हो। और यह मामला जब माँ-बाप के साथ है तो फिर दुनिया के हर शख़्स के साथ भी यही होना चाहिए। किसी शख़्स की तक़लीद (पैरवी) भी जाइज़ नहीं है जब तक आदमी यह न जान ले कि वह शख़्स हक़ (सत्य) पर है।

12. यानी यह दुनिया की रिश्तेदारियाँ और उनके हक़ तो बस इसी दुनिया की हद तक हैं। आख़िरकार माँ-बाप को भी और औलाद को भी अपने पैदा करनेवाले ख़ुदा के सामने पलटकर जाना है, और वहाँ हर एक की पूछ-गच्छ उसकी निजी ज़िम्मेदारी की बुनियाद पर होनी है।

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّقُوْلُ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ فَاِذَاۤ اُوْذِيَ فِي اللّٰهِ جَعَلَ فِتْنَةَ النَّاسِ
كَعَذَابِ اللّٰهِ ؕ وَلَئِنْ جَآءَ نَصْرٌ مِّنْ رَّبِّكَ لَيَقُوْلُنَّ اِنَّا كُنَّا مَعَكُمْ ؕ

(10) लोगों में से कोई ऐसा है जो कहता है कि हम ईमान लाए अल्लाह पर।[13] मगर जब वह अल्लाह के मामले में सताया गया तो उसने लोगों की डाली हुई आज़माइश को अल्लाह के अज़ाब की तरह समझ लिया।[14] अब अगर तेरे रब की तरफ़ से फ़तह और मदद आ गई तो यही शख़्स कहेगा कि "हम तो तुम्हारे साथ थे।"[15] क्या

अगर माँ-बाप ने औलाद को गुमराह किया है तो वे पकड़े जाएँगे। अगर औलाद ने माँ-बाप की ख़ातिर गुमराही क़बूल की है तो उसे सज़ा मिलेगी। और अगर औलाद ने सीधी राह अपनाई और माँ-बाप के जाइज़ हक़ अदा करने में भी कोताही न की, लेकिन माँ-बाप ने सिर्फ़ इस क़ुसूर पर उसे सताया कि उसने गुमराही में उनका साथ क्यों न दिया, तो वे अल्लाह की पकड़ से बच न सकेंगे।

13. अगरचे कहनेवाला एक शख़्स है, मगर "मैं ईमान लाया" कहने के बजाय कह रहा है "हम ईमान लाए।" इमाम राज़ी (रह.) ने इसमें एक बारीक नुक्ते (Point) की निशानदेही की है। वे कहते हैं कि मुनाफ़िक़ अपने आपको हमेशा ईमानवालों के गरोह में शामिल करने की कोशिश करता है और अपने ईमान का ज़िक्र इस तरह करता है कि मानो वह भी वैसा ही ईमानवाला है जैसे दूसरे हैं। उसकी मिसाल ऐसी है जैसे एक बुज़दिल अगर किसी फ़ौज के साथ गया है और उस फ़ौज के बहादुर सिपाहियों ने लड़कर दुश्मनों को मार भगाया है, तो चाहे उसने ख़ुद कोई कारनामा अंजाम न दिया हो, मगर वह आकर यूँ कहेगा कि हम गए और ख़ूब लड़े और हमने दुश्मन को बुरी तरह हरा दिया। मानो आप भी उन्हीं बहादुरों में से हैं जिन्होंने बहादुरी के करतब दिखाए हैं।

14. यानी जिस तरह अल्लाह के अज़ाब से डरकर कुफ़्र और गुनाह छोड़ देना चाहिए, यह शख़्स बन्दों की दी हुई तकलीफ़ों से डरकर ईमान और नेकी छोड़ बैठा। ईमान लाने के बाद इस्लाम-दुश्मनों की धमकियों और मार-पीट और क़ैद किए जाने से जब उसे पाला पड़ा तो उसने समझा कि अल्लाह की वह दोज़ख़ भी बस इतनी ही कुछ होगी जिससे मरने के बाद कुफ़्र (नाफ़रमानी) की सज़ा में पाला पड़ना है। इसलिए उसने फ़ैसला कर लिया कि वह अज़ाब तो बाद में भुगत लूँगा, यह नक़द अज़ाब जो अब मिल रहा है इससे बचने के लिए मुझे ईमान छोड़कर फिर इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के गरोह में जा मिलना चाहिए ताकि दुनिया की ज़िन्दगी तो ख़ैरियत से गुज़र जाए।

15. यानी आज तो वह अपनी खाल बचाने के लिए इस्लाम-दुश्मनों से जा मिला है और ईमानवालों का साथ उसने छोड़ दिया है, क्योंकि सच्चे दीन को फैलाने के लिए यह अपनी नकसीर तक फुड़वाने को तैयार नहीं है। मगर जब इस दीन की ख़ातिर सिर-धड़ की बाज़ी लगा देनेवालों को

अल्लाह तआला जीत और कामयाबी देगा तो यह आदमी जीत के फलों में हिस्सा बँटाने के लिए आ मौजूद होगा और मुसलमानों से कहेगा कि दिल से तो हम तुम्हारे ही साथ थे, तुम्हारी कामयाबी के लिए दुआएँ माँगा करते थे, तुम्हारी जी-तोड़ मेहनतों और क़ुरबानियों की बड़ी क़द्र हमारी निगाह में थी।

यहाँ इतनी बात और समझ लेनी चाहिए कि बरदाश्त से बाहर तकलीफ़ या नुक़सान, या बहुत ज़्यादा डर की हालत में किसी शख़्स का कुफ़्र की कोई बात कहकर अपने आपको बचा लेना शरई तौर पर जाइज़ है, शर्त यह है कि आदमी सच्चे दिल से ईमान पर जमा रहे। लेकिन बहुत बड़ा फ़र्क़ है उस सच्चे मुसलमान में जो मजबूरी की हालत में जान बचाने के लिए कुफ़्र (अधर्म) का इज़हार करे, और उस मस्लहतपरस्त (मौक़ा-परस्त) इनसान में जो नज़रिए के एतिबार से इस्लाम ही को हक़ और दुरुस्त जानता और मानता हो मगर ईमानी ज़िन्दगी के ख़तरों को देखकर इस्लाम-दुश्मनों से जा मिले। बज़ाहिर इन दोनों की हालत एक-दूसरे से कुछ ज़्यादा अलग नज़र नहीं आती। मगर हक़ीक़त में जो चीज़ उनके बीच ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ कर देती है वह यह है कि मजबूरन कुफ़्र ज़ाहिर करनेवाला सच्चा मुसलमान न सिर्फ़ अक़ीदे के एतिबार से इस्लाम का चाहनेवाला रहता है, बल्कि अमली तौर से भी उसकी दिली हमदर्दियाँ दीन और दीनवालों के साथ रहती हैं। उनकी कामयाबी से वह ख़ुश और उनको चोट पहुँचने से वह बेचैन हो जाता है। मजबूरी की हालत में भी वह मुसलमानों का साथ देने के हर मौक़े से फ़ायदा उठाता है, और इस ताक में रहता है कि जब भी उसपर से दीन के दुश्मनों की पकड़ ढीली हो वह अपने मज़हबवालों के साथ जा मिले। इसके बरख़िलाफ़ मस्लहत-परस्त आदमी जब दीन की राह कठिन देखता है, और ख़ूब नाप-तौलकर देख लेता है कि सच्चे दीन (सत्यधर्म) का साथ देने के नुक़सानात इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के साथ जा मिलने के फ़ायदों से ज़्यादा हैं, तो वह ख़ालिस आफ़ियत और फ़ायदे की ख़ातिर दीन और दीनवालों से मुँह मोड़ लेता है, इस्लाम-मुख़ालिफ़ों से दोस्ती का रिश्ता जोड़ता है और अपने फ़ायदे की ख़ातिर उनकी कोई ऐसी ख़िदमत कर देने से भी बाज़ नहीं रहता जो दीन के सख़्त ख़िलाफ़ और दीनवालों के लिए निहायत नुक़सानदेह हो। लेकिन इसके साथ वह इस इमकान से भी आँखें बन्द नहीं कर लेता कि शायद किसी वक़्त सच्चे दीन ही का बोलबाला हो जाए। इसलिए जब कभी उसे मुसलमानों से बात करने का मौक़ा मिलता है, वह उनके नज़रिए को सही मानने और उनके सामने अपने ईमान का इक़रार करने और हक़ के रास्ते में उनकी क़ुरबानियों की तारीफ़ करने में ज़र्रा बराबर कंजूसी नहीं करता, ताकि यह ज़बानी तौर पर मानना सनद रहे और ज़रूरत के वक़्त पर काम आए। क़ुरआन मजीद एक-दूसरे मौक़े पर इन मुनाफ़िक़ों की इसी सौदागरोंवाली ज़ेहनियत को यूँ बयान करता है–

"ये वे लोग हैं जो तुम्हारे मामले में इन्तिज़ार कर रहे हैं (कि ऊँट किस करवट बैठता है) अगर अल्लाह की तरफ़ से जीत तुम्हारी हुई तो आकर कहेंगे कि क्या हम तुम्हारे साथ न थे? और अगर इस्लाम-दुश्मनों का पलड़ा भारी रहा तो उनसे कहेंगे कि क्या हम तुम्हारे ख़िलाफ़ लड़ न सकते थे और हमने फिर भी तुम्हें मुसलमानों से बचाया?" (सूरा-4 निसा, आयत-141)

اَوَلَيْسَ اللّٰهُ بِاَعْلَمَ بِمَا فِيْ صُدُوْرِ الْعٰلَمِيْنَ ۝١٠ وَلَيَعْلَمَنَّ اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَلَيَعْلَمَنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ ۝١١ وَقَالَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا لِلَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّبِعُوْا سَبِيْلَنَا وَلْنَحْمِلْ خَطٰيٰكُمْ ؕ وَمَا هُمْ بِحٰمِلِيْنَ مِنْ خَطٰيٰهُمْ مِّنْ شَيْءٍ ؕ اِنَّهُمْ لَكٰذِبُوْنَ ۝١٢ وَلَيَحْمِلُنَّ اَثْقَالَهُمْ

दुनियावालों के दिलों का हाल अल्लाह को अच्छी तरह मालूम नहीं है? (11) और अल्लाह को तो ज़रूर यह देखना ही है कि ईमान लानेवाले कौन हैं और मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) कौन।[16]

(12) ये इनकार करनेवाले ईमान लानेवालों से कहते हैं कि तुम हमारे तरीक़े की पैरवी करो और तुम्हारी ख़ताओं को हम अपने ऊपर ले लेंगे।[17] हालाँकि उनकी ख़ताओं में से कुछ भी वे अपने ऊपर लेनेवाले नहीं हैं,[18] वे बिलकुल झूठ कहते हैं। (13) हाँ ज़रूर वे

16. यानी अल्लाह आज़माइश के मौक़े इसी लिए बार-बार लाता है ताकि ईमानवालों के ईमान और मुनाफ़िक़ों के निफ़ाक़ (कपट) का हाल खुल जाए और जिसके अन्दर जो कुछ भी छिपा हुआ है वह सामने आ जाए। यही बात सूरा आले-इमरान में कही गई है कि "अल्लाह ईमानवालों को हरगिज़ इस हालत में रहने देनेवाला नहीं है जिसमें तुम इस वक़्त हो (कि सच्चे ईमानवाले और मुनाफ़िक़ सब मिले-जुले हैं)। वह पाक लोगों को नापाक लोगों से अलग नुमायाँ करके रहेगा।" (सूरा-3 आले-इमरान, आयत-179)

17. उनकी इस बात का मतलब यह था कि अव्वल तो मरने के बाद ज़िन्दगी मिलना, सबका इकट्ठा होना, हिसाब लिया जाना और उसके मुताबिक़ इनाम या सज़ा मिलना, ये बातें सब ढकोसला हैं। लेकिन अगर मान भी लें कि कोई दूसरी ज़िन्दगी है और उसमें कोई पूछ-गच्छ भी होनी है, तो हम ज़िम्मा लेते हैं कि ख़ुदा के सामने हम सारा अज़ाब-सवाब अपनी गर्दन पर ले लेंगे। तुम हमारे कहने से इस नए दीन को छोड़ दो और अपने बाप-दादा के दीन की तरफ़ वापस आ जाओ। रिवायतों में क़ुरैश के कई सरदारों के बारे में ज़िक्र है कि शुरू में जो लोग इस्लाम क़बूल करते थे उनसे मिलकर ये लोग इसी तरह की बातें किया करते थे। चुनाँचे हज़रत उमर (रज़ि०) के बारे में बयान किया गया है कि जब वे ईमान लाए तो अबू-सुफ़ियान और हर्ब-बिन-उमैया-बिन-ख़लफ़ ने उनसे मिलकर भी यही कहा था।

18. यानी अव्वल तो यही मुमकिन नहीं है कि कोई शख़्स ख़ुदा के यहाँ किसी दूसरे की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ले और किसी के कहने से गुनाह करनेवाला ख़ुद अपने गुनाह की सज़ा पाने से बच जाए, क्योंकि वहाँ तो हर शख़्स अपने किए का आप ज़िम्मेदार है। लेकिन अगर मान भी

وَأَثْقَالًا مَّعَ أَثْقَالِهِمْ ۖ وَلَيُسْأَلُنَّ يَوْمَ الْقِيَامَةِ عَمَّا كَانُوا يَفْتَرُونَ ﴿١٣﴾

अपने बोझ भी उठाएँगे और अपने बोझों के साथ दूसरे बहुत-से बोझ भी।[19] और क़ियामत के दिन यक़ीनन उनसे इन झूठे इलज़ामों की पूछ-गच्छ होगी जो वे लगाते रहे हैं।[20]

लो कि ऐसा हो भी तो जिस वक़्त कुफ़्र और शिर्क का अंजाम एक दहकती हुई जहन्नम की शक्ल में सामने आएगा उस वक़्त किसकी यह हिम्मत है कि दुनिया में जो वादा उसने किया था उसकी लाज रखने के लिए यह कह दे कि जनाब, मेरे कहने से जिस शख़्स ने ईमान को छोड़कर कुफ़्र (अधर्म) का रास्ता अपनाया था, आप उसे माफ़ करके जन्नत में भेज दें, और मैं जहन्नम में अपने कुफ़्र के साथ उसके कुफ़्र की सज़ा भी भुगतने के लिए तैयार हूँ।

19. यानी वे ख़ुदा के यहाँ हालाँकि दूसरों का बोझ तो न उठाएँगे, लेकिन दोहरा बोझ उठाने से बचेंगे भी नहीं। एक बोझ उनपर ख़ुद गुमराह होने का लदेगा और दूसरा बोझ दूसरों को गुमराह करने का भी उनपर लादा जाएगा। इस बात को यूँ समझिए कि एक शख़्स ख़ुद भी चोरी करता है और किसी दूसरे शख़्स से भी कहता है कि वह उसके साथ चोरी के काम में हिस्सा ले। अब अगर वह दूसरा शख़्स इसके कहने से चोरी करेगा तो कोई अदालत उसे इस वजह से न छोड़ देगी कि उसने दूसरे के कहने से जुर्म किया है। चोरी की सज़ा तो बहरहाल उसे मिलेगी और इनसाफ़ के किसी उसूल के मुताबिक़ भी यह दुरुस्त न होगा कि उसे छोड़कर उसके बदले की सज़ा उस पहले चोर को दे दी जाए जिसने उसे बहकाकर चोरी के रास्ते पर डाला था। लेकिन वह पहला चोर अपने जुर्म के साथ इस जुर्म की सज़ा भी पाएगा कि उसने ख़ुद चोरी की सो की, एक-दूसरे शख़्स को भी अपने साथ चोर बना डाला। क़ुरआन मजीद में एक दूसरी जगह इस उसूल को इन अलफ़ाज़ में बयान किया गया है, "ताकि वे क़ियामत के दिन अपने बोझ भी पूरे-पूरे उठाएँ और उन लोगों के बोझों का भी एक हिस्सा उठाएँ जिनको वह इल्म के बिना गुमराह करते हैं। (सूरा-16 नह्‌ल, आयत-25) और इसी उसूल को नबी (सल्ल॰) ने इस हदीस में बयान किया है कि "जिस शख़्स ने सीधे रास्ते की तरफ़ दावत दी उसको उन सब लोगों के बदले के बराबर बदला मिलेगा जिन्होंने उसकी दावत पर सीधा रास्ता अपना लिया, बिना इसके कि उनके इनामों में कोई कमी हो। और जिसने गुमराही की तरफ़ दावत दी उसपर उन सब लोगों के गुनाहों के बराबर गुनाह होगा जिन्होंने उसकी पैरवी की बिना इसके कि उनके गुनाहों में कोई कमी हो।" (हदीस : मुस्लिम)

20. 'झूठे इलज़ामों' से मुराद वे झूठी बातें हैं जो मक्का के इस्लाम- मुख़ालिफ़ों की इस बात में छिपी हुई थीं कि "तुम हमारे तरीक़े की पैरवी करो और तुम्हारी ख़ताओं को हम अपने ऊपर ले लेंगे।" अस्ल में वे लोग दो मनगढ़न्त बातों की बुनियाद पर यह बात कहते थे। एक यह कि जिस शिर्कवाले मज़हब की वे पैरवी कर रहे हैं वह सही है और मुहम्मद (सल्ल॰) का तौहीदवाला (एकेश्वरवादी) मज़हब ग़लत है, इसलिए उससे कुफ़्र करने में (यानी उसके ख़िलाफ़ रवैया अपनाने में) कोई ग़लती की बात नहीं है। दूसरी मनगढ़न्त बात यह थी कि मरने के बाद

وَلَقَدْ اَرْسَلْنَا نُوْحًا اِلٰى قَوْمِهٖ فَلَبِثَ فِيْهِمْ اَلْفَ سَنَةٍ اِلَّا خَمْسِيْنَ عَامًا ؕ

(14) हमने नूह को उसकी क़ौम की तरफ़ भेजा[21] और वह पचास कम एक हज़ार साल उनके बीच रहा।[22]

दोबारा ज़िन्दा होकर जमा नहीं होना है और यह आख़िरत की ज़िन्दगी का ख़याल, जिसकी वजह से एक मुसलमान कुफ़्र (ख़ुदा की नाफ़रमानी) करते हुए डरता है, बिलकुल बे-बुनियाद है। ये मनगढ़न्त बातें अपने दिल में रखने के बाद वे एक मुसलमान से कहते थे कि अच्छा अगर तुम्हारे नज़दीक कुफ़्र करना एक ख़ता ही है, और दोबारा ज़िन्दा होकर जमा भी होना है जिसमें इस ख़ता पर तुमसे पूछ-गच्छ होगी, तो चलो तुम्हारी इस ख़ता को हम अपने सिर लेते हैं, तुम हमारी ज़िम्मेदारी पर मुहम्मद (सल्ल॰) का दीन छोड़कर बाप-दादा के दीन में वापस आ जाओ। इस मामले में फिर दो और झूठी बातें भी शामिल थीं। एक उनका यह ख़याल कि जो शख़्स किसी के कहने पर जुर्म करे वह अपने जुर्म की ज़िम्मेदारी से बरी हो सकता है और उसकी पूरी ज़िम्मेदारी वह शख़्स उठा सकता है जिसके कहने पर उसने जुर्म किया है। दूसरा उनका यह झूठा वादा कि क़ियामत के दिन वे उन लोगों की ज़िम्मेदारी सचमुच उठा लेंगे जो उनके कहने पर ईमान से कुफ़्र की तरफ़ पलट गए होंगे। क्योंकि जब क़ियामत सचमुच क़ायम हो जाएगी और उनकी उम्मीदों के ख़िलाफ़ जहन्नम उनकी आँखों के सामने होगी उस वक़्त वे हरगिज़ इसके लिए तैयार न होंगे कि अपने कुफ़्र (इनकार) का ख़मियाज़ा भुगतने के साथ उन लोगों के गुनाह का बोझ भी पूरा-का-पूरा अपने ऊपर ले लें जिन्हें वे दुनिया में बहकाकर गुमराह करते थे।

21. हज़रत नूह (अलैहि॰) का क़िस्सा क़ुरआन में कुछ फ़र्क़ के साथ कई जगहों पर आया है। देखिए— सूरा-3 आले-इमरान, आयतें-33-34; सूरा-4 निसा, आयत-163; सूरा-6 अनआम, आयत-84; सूरा-7 आराफ़, आयतें-59-64; सूरा-10 यूनुस, आयतें-71-73; सूरा-11 हूद, आयतें-25-48; सूरा-21 अम्बिया, आयतें-76-77; सूरा-23 मोमिनून, आयतें-23-30; सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयत-37; सूरा-26 शुअरा, आयतें-105-123; सूरा-37 साफ़्फ़ात, आयतें-75-82; सूरा-54 क़मर, आयतें-90-95; सूरा-69 हाक़्क़ा, आयतें-11-12; सूरा-71 नूह, आयतें-1-28।

पैग़म्बरों के ये क़िस्से यहाँ जिस वजह से बयान किए जा रहे हैं उसको समझने के लिए सूरा की इबतिदाई आयतों को निगाह में रखना चाहिए। वहाँ एक तरफ़ ईमानवालों से कहा गया है कि हमने उन सब ईमानवालों को आज़माइश में डाला है जो तुमसे पहले गुज़र चुके हैं। दूसरी तरफ़ हक़ के इनकारियों से कहा गया है कि तुम इस ग़लतफ़हमी में न रहो कि तुम हमसे बाज़ी ले जाओगे और हमारी पकड़ से बच निकलोगे। इन्हीं दो बातों को ज़ेहन में बिठाने के लिए ये तारीख़ी वाक़िआत (ऐतिहासिक घटनाएँ) सुनाए जा रहे हैं।

22. इसका यह मतलब नहीं है कि हज़रत नूह (अलैहि॰) की उम्र साढ़े नौ सौ साल थी, बल्कि इसका मतलब यह है कि पैग़म्बरी के मंसब पर बिठाए जाने के बाद से तूफ़ान तक पूरे साढ़े नौ सौ साल हज़रत नूह (अलैहि॰) इस ज़ालिम और गुमराह क़ौम के सुधार के लिए कोशिश करते रहे, और इतनी लम्बी मुद्दत तक उनकी ज़्यादतियाँ बरदाश्त करने पर भी उन्होंने हिम्मत न

فَاَخَذَهُمُ الطُّوْفَانُ وَهُمْ ظٰلِمُوْنَ۝۱۴ فَاَنْجَيْنٰهُ وَاَصْحٰبَ السَّفِيْنَةِ

आख़िरकार उन लोगों को तूफ़ान ने आ घेरा इस हाल में कि वे ज़ालिम थे।[23] (15) फिर नूह को और नाववालों[24] को हमने बचा लिया ———

हारी। मक़सद यही चीज़ यहाँ बयान करना है। ईमानवालों को बताया जा रहा है कि तुमको अभी पाँच-सात साल ही ज़ुल्मो-सितम सहते और एक गुमराह क़ौम की हठधर्मियाँ बरदाश्त करते गुज़रे हैं। ज़रा हमारे उस बन्दे के सब्र, जमाव और इरादे की मज़बूती और लगन को देखो जिसने लगातार साढ़े नौ सदियों तक उन सख़्तियों का मुक़ाबला किया।

हज़रत नूह (अलैहि॰) की उम्र के बारे में क़ुरआन मजीद और बाइबल के बयान एक-दूसरे से अलग हैं। बाइबल का बयान यह है कि उनकी उम्र साढ़े नौ सौ साल थी। वे छः सौ साल के थे जब तूफ़ान आया। और उसके बाद साढ़े तीन सौ साल और ज़िन्दा रहे (उत्पत्ति, अध्याय-7, आयत-6, अध्याय-9, आयतें-28-29) लेकिन क़ुरआन के बयान के मुताबिक़ उनकी उम्र कम से कम एक हज़ार साल होनी चाहिए; क्योंकि साढ़े नौ सौ साल तो सिर्फ़ वह मुद्दत है जो पैग़म्बरी की ज़िम्मेदारी सौंपे जाने के बाद से तूफ़ान आने तक उन्होंने दावत और तबलीग़ में लगाई। ज़ाहिर है कि पैग़म्बरी उन्हें पक्की उम्र को पहुँचने के बाद ही मिली होगी और तूफ़ान के बाद भी वे कुछ मुद्दत ज़िन्दा रहे होंगे।

यह लम्बी उम्र कुछ लोगों के लिए नाक़ाबिले-यक़ीन है। लेकिन ख़ुदा की इस ख़ुदाई में अजूबों की कमी नहीं है। जिस तरफ़ भी आदमी निगाह डाले, उसकी क़ुदरत के करिश्मे ग़ैर-मामूली वाक़िआत की शक्ल में नज़र आ जाते हैं। कुछ वाक़िआत और हालात का पहले से एक ख़ास सूरत में सामने आते रहना इस बात के लिए कोई दलील नहीं है कि इस आम बात से हटकर किसी दूसरी ग़ैर-मामूली सूरत में कोई वाक़िआ हो ही नहीं सकता। इस तरह के मनगढ़न्त उसूलों को तोड़ने के लिए कायनात के हर कोने में और जानदारों की हर क़िस्म में आम उसूल से हटकर हालात और वाक़िआत की एक लम्बी लिस्ट मौजूद है। ख़ास तौर से जो शख़्स ख़ुदा के बारे में यह साफ़ सोच अपने ज़ेहन में रखता हो कि वह हर चीज़ की क़ुदरत रखता है तो वह कभी इस ग़लतफ़हमी में नहीं पड़ सकता कि किसी इनसान को एक हज़ार साल या उससे कम-ज़्यादा उम्र दे देना उस ख़ुदा के लिए भी मुमकिन नहीं है जो मौत और ज़िन्दगी का पैदा करनेवाला है। हक़ीक़त यह है कि आदमी अगर ख़ुद चाहे तो एक लम्हे के लिए भी ज़िन्दा नहीं रह सकता। लेकिन अगर ख़ुदा चाहे तो जब तक वह चाहे उसे ज़िन्दा रख सकता है।

23. यानी तूफ़ान उनपर इस हालत में आया कि वे अपने ज़ुल्म पर क़ायम थे। दूसरे अलफ़ाज़ में, अगर वे तूफ़ान आने से पहले ज़ुल्म करना छोड़ देते तो अल्लाह तआला उनपर यह अज़ाब न भेजता।

24. यानी उन लोगों को जो हज़रत नूह (अलैहि॰) पर ईमान लाए थे और जिन्हें नाव में सवार होने की अल्लाह तआला ने इजाज़त दी थी। सूरा-11 हूद में इसको साफ़ तौर पर बयान किया गया है—

وَجَعَلْنٰهَآ اٰيَةً لِّلْعٰلَمِيْنَ۝١٥ وَاِبْرٰهِيْمَ اِذْ قَالَ لِقَوْمِهِ اعْبُدُوا اللّٰهَ
وَاتَّقُوْهُ ۭ ذٰلِكُمْ خَيْرٌ لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ۝١٦ اِنَّمَا

और उसे दुनियावालों के लिए इबरत (शिक्षा) की एक निशानी बनाकर रख दिया।[25]
(16) और इबराहीम को भेजा[26] जबकि उसने अपनी क़ौम से कहा, "अल्लाह की बन्दगी करो और उससे डरो।[27] यह तुम्हारे लिए बेहतर है अगर तुम जानो। (17) तुम

"यहाँ तक कि जब हमारा हुक्म आ गया और तन्दूर उबल पड़ा तो हमने कहा कि (ऐ नूह) इस नाव में सवार कर ले हर क़िस्म (के जानवरों) में से एक-एक जोड़ा, और अपने घरवालों को सिवाय उनके जिन्हें साथ न लेने का पहले हुक्म दे दिया गया है, और उन लोगों को जो ईमान लाए हैं, और उसके साथ बहुत ही कम लोग ईमान लाए थे।" (आयत-40)

25. इसका मतलब यह भी हो सकता है कि इस भयानक सज़ा को या इस अज़ीमुश्शान वाक़िए को बादवालों के लिए इबरत की निशानी बना दिया गया। लेकिन यहाँ और सूरा-54 क़मर में यह बात जिस तरीक़े से बयान की गई है उससे ज़ाहिर यही होता है कि वह इबरत की निशानी ख़ुद वह नाव थी जो पहाड़ की चोटी पर सदियों मौजूद रही और बाद की नस्लों को ख़बर देती रही कि इस सरज़मीन में कभी ऐसा तूफ़ान आया था जिसकी बदौलत यह नाव पहाड़ पर जा टिकी है। सूरा-54 क़मर में इसके बारे में कहा गया है—
"और हमने नूह को सवार किया तख़्तों और कीलोंवाली (नाव) पर, वह चल रही थी हमारी निगरानी में उस शख़्स के लिए इनाम के तौर पर जिसका इनकार कर दिया गया था, और हमने उसे छोड़ दिया एक निशानी बनाकर, तो है कोई सबक़ लेनेवाला?" (आयतें—13-15)
सूरा-54 क़मर की इस आयत की तफ़सीर में इब्ने-जरीर ने क़तादा की यह रिवायत नक़्ल की है कि सहाबा के दौर में जब मुसलमान अल-जज़ीरा के इलाक़े में गए हैं तो उन्होंने जूदी पहाड़ पर (और एक रिवायत के मुताबिक़ बाक़िरवा नाम की बस्ती के क़रीब) इस नाव को देखा है। मौजूदा ज़माने में भी समय-समय पर ये ख़बरें अख़बारों में आती रहती हैं कि नूह की नाव को तलाश करने के लिए मुहिमें भेजी जा रही हैं। और इसकी वजह यह बताई जाती है कि कई-बार हवाई जहाज़ जो अरारात के पहाड़ों पर से गुज़रे हैं तो एक चोटी पर उन्होंने ऐसी चीज़ देखी है जो एक नाव से मिलती-जुलती है। (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए— तफ़हीमुल-कुरआन, सूरा-7 आराफ़, हाशिया-47; सूरा-11 हूद, हाशिया-46)

26. हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) का क़िस्सा कुरआन में कुछ फ़र्क़ के साथ कई जगहों पर आया है। देखें— सूरा-2 बक़रा, आयतें—113-141, 258-260; सूरा-3 आले-इमरान, आयतें—65-68; सूरा-6 अनआम, आयतें—74-90; सूरा-11 हूद, आयतें—69-76; सूरा-14 इबराहीम, आयतें—51-60; सूरा-15 हिज्र, आयतें—35-41; सूरा-19 मरयम, आयतें—41-50; सूरा-26 शुअरा, आयतें—69-87; सूरा-37 साफ़्फ़ात, आयतें—83-113; सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयतें—26-29; सूरा-51 ज़ारियात, आयतें—24-34।

27. यानी ख़ुदा के साथ शिर्क (किसी को शरीक करने) और उसकी नाफ़रमानी करने से डरो।

تَعْبُدُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ اَوْثَانًا وَّتَخْلُقُوْنَ اِفْكًا ۭ اِنَّ الَّذِيْنَ تَعْبُدُوْنَ
مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ لَا يَمْلِكُوْنَ لَكُمْ رِزْقًا فَابْتَغُوْا عِنْدَ اللّٰهِ الرِّزْقَ
وَاعْبُدُوْهُ وَاشْكُرُوْا لَهٗ ۭ اِلَيْهِ تُرْجَعُوْنَ ⑰ وَاِنْ تُكَذِّبُوْا فَقَدْ

अल्लाह को छोड़कर जिन्हें पूज रहे हो वे तो सिर्फ़ बुत हैं और तुम एक झूठ गढ़ रहे हो।[28] हक़ीक़त में अल्लाह के सिवा जिनकी तुम पूजा करते हो वे तुम्हें कोई रोज़ी भी देने का अधिकार नहीं रखते। अल्लाह से रोज़ी माँगो और उसी की बन्दगी करो और उसका शुक्र अदा करो, उसी की तरफ़ तुम पलटाए जानेवाले हो।[29] (18) और अगर तुम

28. यानी तुम ये बुत नहीं गढ़ रहे हो बल्कि एक झूठ गढ़ रहे हो। इन बुतों का वुजूद ख़ुद एक झूठ है। और फिर तुम्हारे ये अक़ीदे कि ये देवियाँ और देवता हैं, या ख़ुदा के अवतार या उसकी औलाद हैं, या ख़ुदा के क़रीबी और उसके यहाँ सिफ़ारिश करनेवाले हैं, या यह कि इनमें से कोई बीमारी दूर करनेवाला और कोई औलाद देनेवाला और कोई रोज़गार दिलवानेवाला है, ये सब झूठी बातें हैं जो तुम लोगों ने अपने अन्दाज़े और अटकल से गढ़ ली हैं। हक़ीक़त इससे ज़्यादा कुछ नहीं है कि ये सिर्फ़ बुत हैं बेजान, बेबस और बेअसर।

29. इन चन्द जुमलों में हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने बुतपरस्ती के ख़िलाफ़ तमाम मुनासिब दलीलें समेटकर रख दी हैं। किसी को माबूद बनाने के लिए लाज़िमी तौर पर कोई मुनासिब वजह होनी चाहिए। एक मुनासिब वजह यह हो सकती है कि वे अपने आपमें माबूद होने का कोई हक़ रखता हो। दूसरी वजह यह हो सकती है कि वह आदमी का (ख़ालिक़) पैदा करनेवाला हो और आदमी अपने वुजूद के लिए उसका मुहताज हो। तीसरी वजह यह हो सकती है कि वह आदमी की परवरिश का सामान करता हो और उसे रोज़ी यानी ज़िन्दगी गुज़ारने का सामान मुहैया कराता हो। चौथी वजह यह हो सकती है कि आदमी का मुस्तक़बिल (भविष्य) उसकी मेहरबानियों से जुड़ा हो और आदमी को डर हो कि उसकी नाराज़ी मोल लेकर वह अपना अंजाम ख़राब कर लेगा। हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने फ़रमाया कि इन चारों वजहों में से कोई वजह भी बुतपरस्ती के हक़ में नहीं है, बल्कि हर एक ख़ालिस ख़ुदापरस्ती का तक़ाज़ा करती है। "ये सिर्फ़ बुत हैं" कहकर उन्होंने पहली वजह को ख़त्म कर दिया, क्योंकि जो निरा बुत हो उसको माबूद होने का आख़िर क्या निजी हक़ हासिल हो सकता है। फिर यह कहकर कि "तुम इनके बनानेवाले हो" दूसरी वजह भी ख़त्म कर दी। इसके बाद तीसरी वजह को यह कहकर ख़त्म किया कि वे तुम्हें किसी तरह की कुछ भी रोज़ी नहीं दे सकते। और आख़िरी बात यह कही कि तुम्हें पलटना तो ख़ुदा की तरफ़ है, न कि इन बुतों की तरफ़, इसलिए तुम्हारा अंजाम और तुम्हारी आख़िरत की ज़िन्दगी सँवारना या बिगाड़ना भी इनके बस में नहीं, सिर्फ़ ख़ुदा के बस में है। इस तरह शिर्क को पूरी तरह ग़लत साबित करके हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने यह

كَذَّبَ أُمَمٌ مِّنْ قَبْلِكُمْ ۚ وَمَا عَلَى الرَّسُولِ إِلَّا الْبَلٰغُ الْمُبِينُ ﴿١٨﴾
أَوَلَمْ يَرَوْا كَيْفَ يُبْدِئُ اللّٰهُ الْخَلْقَ ثُمَّ يُعِيدُهُ ۚ إِنَّ ذٰلِكَ عَلَى اللّٰهِ
يَسِيرٌ ﴿١٩﴾ قُلْ سِيرُوا فِي الْأَرْضِ فَانْظُرُوا كَيْفَ بَدَأَ الْخَلْقَ

झुठलाते हो तो तुमसे पहले बहुत-सी क़ौमें झुठला चुकी हैं,[30] और रसूल पर साफ़-साफ़ पैग़ाम पहुँचा देने के सिवा कोई ज़िम्मेदारी नहीं है।"

(19) क्या[31] इन लोगों ने कभी देखा ही नहीं है कि अल्लाह किस तरह पैदाइश की शुरुआत करता है, फिर उसे दोहराता है? यक़ीनन यह (दोहराना तो) अल्लाह के लिए बहुत आसान है।[32] (20) इनसे कहो कि ज़मीन में चल-फिरकर देखो कि उसने किस तरह पैदाइश

बात उनपर खोल दी कि जितनी वजहों से भी इनसान किसी को माबूद क़रार दे सकता है वे सबके सब एक अल्लाह के सिवा, जिसका कोई शरीक नहीं, किसी की इबादत का तक़ाज़ा नहीं करतीं।

30. यानी अगर तुम तौहीद (एकेश्वरवाद) की मेरी दावत को और इस ख़बर को कि तुम्हें अपने रब की तरफ़ पलटना और अपने कामों का हिसाब देना है, झुठलाते हो तो यह कोई नई बात नहीं है। इतिहास में इससे पहले भी बहुत-से पैग़म्बर (जैसे नूह, हूद, सॉलेह अलैहि॰ वग़ैरा) यही तालीम लेकर आ चुके हैं और उनकी क़ौमों ने भी उनको इसी तरह झुठलाया है। अब तुम ख़ुद देख लो कि उन्होंने झुठलाकर उन पैग़म्बरों का कुछ बिगाड़ा या अपना अंजाम ख़राब किया।

31. यहाँ से "लहुम अज़ाबुन अलीम" (उनके लिए दर्दनाक सज़ा है) तक बीच में अलग से आ गया एक जुमला है जो हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के क़िस्से का सिलसिला तोड़कर अल्लाह तआला ने मक्का के उन लोगों को ख़िताब (सम्बोधित) करके कहा है जो इस्लाम की तौहीद की तालीम को मानने से इनकार करते थे और कुफ़्र (अधर्म) पर अड़े हुए थे। ऊपर से चली आ रही इस बात से हटकर बीच में आ गया यह जुमला यहाँ इस तरह फ़िट होता है कि मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़, जिन्हें सबक़ देने के लिए यह क़िस्सा सुनाया जा रहा है, दो बुनियादी गुमराहियों में मुब्तला थे। एक शिर्क और बुतपरस्ती, दूसरी आख़िरत का इनकार। इनमें से पहली गुमराही का रद्द हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की उस तक़रीर में आ चुका है जो ऊपर नक़्ल की गई है। अब दूसरी गुमराही के रद्द में ये कुछ जुमले अल्लाह तआला अपनी तरफ़ से कह रहा है ताकि दोनों का रद्द बात के एक ही सिलसिले में हो जाए।

32. यानी एक तरफ़ अनगिनत चीज़ें अदम (शून्य) से वुजूद में आती हैं, और दूसरी तरफ़ हर क़िस्म के लोगों के मिटने के साथ फिर वैसे ही लोग वुजूद में आते चले जाते हैं। मुशरिक लोग इस बात को मानते थे कि यह सब कुछ इसलिए हो रहा है; क्योंकि अल्लाह चीज़ों को बनाने और पैदा कर देने की सिफ़त और क़ुदरत रखता है। उन्हें इस बात से इनकार न था कि

ثُمَّ اللّٰهُ يُنْشِئُ النَّشْاَةَ الْاٰخِرَةَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَیْءٍ قَدِيْرٌ ﴿۲۰﴾
يُعَذِّبُ مَنْ يَّشَآءُ وَيَرْحَمُ مَنْ يَّشَآءُ ۚ وَاِلَيْهِ تُقْلَبُوْنَ ﴿۲۱﴾ وَمَآ اَنْتُمْ
بِمُعْجِزِيْنَ فِى الْاَرْضِ وَلَا فِى السَّمَآءِ ۫ وَمَا لَكُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ مِنْ
وَّلِيٍّ وَّلَا نَصِيْرٍ ﴿۲۲﴾ وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَلِقَآئِهٖٓ اُولٰٓئِكَ يَئِسُوْا

की शुरुआत की है, फिर अल्लाह दूसरी बार भी ज़िन्दगी देगा। यक़ीनन अल्लाह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है।[33] (21) जिसे चाहे सज़ा दे और जिसपर चाहे रहम करे, उसी की तरफ़ तुम फेरे जानेवाले हो। (22) तुम न ज़मीन में बेबस करनेवाले हो न आसमान में,[34] और अल्लाह से बचानेवाला कोई सरपरस्त और मददगार तुम्हारे लिए नहीं है।[35] (23) जिन लोगों ने अल्लाह की आयतों का और उससे मुलाक़ात का इनकार किया है वे मेरी रहमत

अल्लाह चीज़ों को पैदा करनेवाला है, जिस तरह आज के मुशरिकों को नहीं है। इसलिए उनकी अपनी मानी हुई बात पर यह दलील क़ायम की गई है कि जो ख़ुदा तुम्हारे नज़दीक चीज़ों को अदम से वुजूद में लाता है, और फिर एक ही बार पैदा करके नहीं रह जाता बल्कि तुम्हारी आँखों के सामने मिट जानेवाली चीज़ों की जगह फिर वैसी ही चीज़ें लगातार वुजूद में लाता चला जाता है, उसके बारे में आख़िर तुमने यह क्यों समझ रखा है कि तुम्हारे मर जाने के बाद वह फिर तुम्हें दोबारा ज़िन्दा करके उठा खड़ा नहीं कर सकता। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— सूरा-27 नम्ल, हाशिया-80)

33. यानी जब ख़ुदा की कारीगरी से पहली बार की पैदाइश तुम ख़ुद देख रहे हो तो तुम्हें समझना चाहिए कि इसी ख़ुदा की कारीगरी से दूसरी बार भी पैदाइश होगी। ऐसा करना उसकी क़ुदरत से बाहर नहीं है और न हो सकता है।

34. यानी तुम किसी ऐसी जगह भागकर नहीं जा सकते जहाँ अल्लाह की पकड़ से बच निकलो। चाहे तुम ज़मीन की तहों में कहीं उतर जाओ या आसमान की बुलन्दियों में पहुँच जाओ, बहरहाल तुम्हें हर जगह से पकड़ लाया जाएगा और अपने रब के सामने तुम हाज़िर कर दिए जाओगे। यही बात सूरा-55 रहमान में जिन्नों और इनसानों को ख़िताब करते हुए चैलेंज के अन्दाज़ में कही गई है कि तुम ख़ुदा की ख़ुदाई से अगर निकल सकते हो तो ज़रा निकलकर दिखाओ, उससे निकलने के लिए ज़ोर चाहिए, और वह ज़ोर तुम्हें हासिल नहीं है, इसलिए तुम हरगिज़ नहीं निकल सकते। (आयत-33)

35. यानी न तुम्हारा अपना ज़ोर इतना है कि ख़ुदा की पकड़ से बच जाओ और न तुम्हारा कोई वली और सरपरस्त या मददगार ऐसा ज़ोरावर है कि ख़ुदा के मुक़ाबले में तुम्हें पनाह दे सके और उसकी पकड़ से तुम्हें बचा ले। सारी कायनात में किसी की यह मजाल नहीं है कि जिन

مِنْ رَّحْمَتِيْ وَاُولٰٓئِكَ لَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿٢٣﴾ فَمَا كَانَ جَوَابَ
قَوْمِهٖٓ اِلَّآ اَنْ قَالُوا اقْتُلُوْهُ اَوْ حَرِّقُوْهُ فَاَنْجٰىهُ اللّٰهُ مِنَ النَّارِ ؕ

से मायूस हो चुके हैं[36] और उनके लिए दर्दनाक सज़ा है।

(24) फिर[37] उसकी क़ौम का जवाब इसके सिवा कुछ न था कि उन्होंने कहा, "क़त्ल कर दो इसे या जला डालो इसको।"[38] आख़िरकार अल्लाह ने उसे आग से बचा लिया,[39]

लोगों ने कुफ़्र और शिर्क का जुर्म किया है, जिन्होंने ख़ुदा के हुक्मों के आगे झुकने से इनकार किया है, जिन्होंने जुरअत और जसारत (दुस्साहस) के साथ अल्लाह की नाफ़रमानियाँ की हैं और उसकी ज़मीन में ज़ुल्म और फ़साद के तूफ़ान उठाए हैं, उनका हिमायती बनकर उठ सके और ख़ुदा के अज़ाब के फ़ैसले को उनपर लागू होने से रोक सके, या ख़ुदा की अदालत में यह कहने की हिम्मत कर सके कि ये मेरे हैं, इसलिए जो कुछ भी उन्होंने किया है उसे माफ़ कर दिया जाए।

36. यानी उनका कोई हिस्सा मेरी रहमत में नहीं है। उनके लिए कोई गुंजाइश इस बात की नहीं है कि वे मेरी रहमत में से हिस्सा पाने की उम्मीद रख सकें। ज़ाहिर बात है कि जब उन्होंने अल्लाह की आयतों को मानने से इनकार किया तो ख़ुद-ब-ख़ुद उन वादों से फ़ायदा उठाने का हक़ भी उन्हें न रहा जो अल्लाह तआला ने ईमान लानेवालों से किए हैं। फिर जब उन्होंने आख़िरत का इनकार किया और यह माना ही नहीं कि उन्हें कभी अपने ख़ुदा के सामने पेश होना है तो इसका मतलब यह है कि उन्होंने ख़ुदा की तरफ़ से बख़्श दिए जाने और माफ़ कर दिए जाने के साथ उम्मीद का कोई रिश्ता सिरे से जोड़ा ही नहीं है। इसके बाद जब अपनी उम्मीदों के ख़िलाफ़ वे आख़िरत की दुनिया में आँखें खोलेंगे और अल्लाह की उन निशानियों को भी अपनी आँखों से सच्चा और बरहक़ देख लेंगे जिन्हें वे झुठला चुके थे, तो कोई वजह नहीं कि वहाँ वे अल्लाह की रहमत में से कोई हिस्सा पाने के उम्मीदवार हो सकें।

37. यहाँ से फिर बात का सिलसिला हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के क़िस्से की तरफ़ मुड़ता है।

38. यानी हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की अक़्ल में आनेवाली और मुनासिब दलीलों का कोई जवाब उनके पास न था। उनका जवाब अगर था तो यह कि काट दो उस ज़बान को जो सच बात कहती है और जीने न दो उस शख़्स को जो हमारी ग़लती हमपर खोलता है और हमें उससे बाज़ आने के लिए कहता है। "क़त्ल कर दो या जला डालो" के अलफ़ाज़ से यह बात ज़ाहिर होती है कि पूरी भीड़ इस बात पर तो एक राय थी कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को मार डाला जाए, अलबत्ता हलाक करने के तरीक़े में इख़्तिलाफ़ था। कुछ लोगों की राय यह थी कि क़त्ल किया जाए और कुछ की राय यह थी कि ज़िन्दा जला दिया जाए ताकि हर उस आदमी को सबक़ मिले जिसे आगे कभी हमारी सरज़मीन में सच बोलने का जुनून हो गया हो।

39. इस जुमले से ख़ुद-ब-ख़ुद यह बात निकलती है कि उन लोगों ने आख़िरकार हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को जलाने का फ़ैसला किया था और वे आग में फेंक दिए गए थे। यहाँ बात सिर्फ़

اِنَّ فِىۡ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّقَوۡمٍ يُّؤۡمِنُوۡنَ ﴿۲۴﴾

यक़ीनन इसमें निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो ईमान लानेवाले हैं।[40]

इतनी कही गई है कि अल्लाह तआला ने उनको आग से बचा लिया। लेकिन सूरा-21 अम्बिया में साफ़ तौर से कहा गया है कि आग अल्लाह तआला के हुक्म से हज़रत इबराहीम (अलैहि०) के लिए ठण्डी और नुक़सान न पहुँचानेवाली हो गई– "हमने कहा कि ऐ आग, ठण्डी हो जा और सलामती बन जा इबराहीम पर।" (आयत-69) ज़ाहिर है कि अगर उनको आग में फेंका ही न गया हो तो आग को यह हुक्म देने का कोई मतलब नहीं है कि तू उनपर ठण्डी हो जा और उनके लिए सलामती बन जा। इससे यह बात साफ़ तौर पर साबित होती है कि तमाम चीज़ों की ख़ासियतों का दारोमदार अल्लाह तआला के हुक्म पर है, और वह जिस वक़्त जिस चीज़ की ख़ासियत को चाहे बदल सकता है। आम क़ायदे के मुताबिक़ आग का अमल यही है कि वह जलाए और हर जल जानेवाली चीज़ उसमें पड़कर जल जाए। लेकिन आग का यह आम क़ायदा उसका अपना क़ायम किया हुआ नहीं है बल्कि ख़ुदा का क़ायम किया हुआ है। और इस आम क़ायदे ने ख़ुदा को अपना पाबन्द नहीं कर दिया है कि वह उसके ख़िलाफ़ कोई हुक्म न दे सके। वह अपनी आग का मालिक है। किसी वक़्त भी वह उसे हुक्म दे सकता है कि वह जलाने का काम छोड़ दे। किसी वक़्त भी वह अपने एक इशारे से आतिश-कदे (अग्निकुण्ड) को हरे-भरे बाग़ में बदल सकता है। यह ग़ैर-मामूली आम क़ायदे से हटा हुआ वाक़िआ उसके यहाँ रोज़-रोज़ नहीं होता। किसी बड़ी हिकमत और मस्लहत की ख़ातिर ही होता है। लेकिन आम वाक़िआत और क़ायदों को, जिन्हें रोज़ाना देखने के हम आदी हैं, इस बात के लिए दलील हरगिज़ नहीं ठहराया जा सकता कि अल्लाह तआला की क़ुदरत उनसे बंध गई है और आम क़ायदे के ख़िलाफ़ कोई वाक़िआ अल्लाह के हुक्म से भी नहीं हो सकता।

40. यानी ईमानवालों के लिए निशानियाँ हैं इस बात में कि हज़रत इबराहीम (अलैहि०) ने ख़ानदान, क़ौम और देश के मज़हब की पैरवी करने के बजाय इस सच्चे इल्म की पैरवी की जिसके मुताबिक़ उन्हें मालूम हो गया था कि शिर्क झूठ है और तौहीद ही हक़ीक़त है। और इस बात में कि वह क़ौम की हठधर्मी और उसके सख़्त तास्सुब की परवाह किए बिना उसको बातिल (असत्य) से रुक जाने और सच को क़बूल कर लेने के लिए लगातार तबलीग़ करते रहे। और इस बात में कि वह आग की भयानक सज़ा बरदाश्त करने के लिए तैयार हो गए मगर हक़ और सच्चाई से मुँह मोड़ने के लिए तैयार न हुए। और इस बात में कि अल्लाह तआला ने अपने प्यारे दोस्त इबराहीम (अलैहि०) तक को आज़माइशों से गुज़ारे बिना न छोड़ा। और इस बात में जबकि हज़रत इबराहीम (अलैहि०) अल्लाह के डाले हुए इम्तिहान से कामयाबी के साथ गुज़र गए तब अल्लाह की मदद उनके लिए आई और ऐसे मोजिज़ाना (चामत्कारिक) तरीक़े से आई कि आग का अलाव उनके लिए ठण्डा कर दिया गया।

وَقَالَ اِنَّمَا اتَّخَذۡتُمۡ مِّنۡ دُوۡنِ اللّٰهِ اَوۡثَانًا ۙ مَّوَدَّةَ بَيۡنِكُمۡ فِى الۡحَيٰوةِ
الدُّنۡيَا ۚ ثُمَّ يَوۡمَ الۡقِيٰمَةِ يَكۡفُرُ بَعۡضُكُمۡ بِبَعۡضٍ وَّيَلۡعَنُ
بَعۡضُكُمۡ بَعۡضًا ۖ وَّمَاۡوٰٮكُمُ النَّارُ وَمَا لَـكُمۡ مِّنۡ نّٰصِرِيۡنَ ﴿٢٥﴾ فَاٰمَنَ

(25) और उसने कहा,[41] "तुमने दुनिया की ज़िन्दगी में तो अल्लाह को छोड़कर बुतों को अपने बीच मुहब्बत का ज़रिआ बना लिया है[42] मगर क़ियामत के दिन तुम एक-दूसरे का इनकार और एक-दूसरे पर लानत करोगे[43] और आग तुम्हारा ठिकाना होगी और कोई तुम्हारा मददगार न होगा।"——————

41. सिलसिला-ए-कलाम से ज़ाहिर होता है कि यह बात आग से सही-सलामत निकल आने के बाद हज़रत इबराहीम (अलैहि.) ने लोगों से कही होगी।

42. यानी तुमने ख़ुदापरस्ती के बजाय बुतपरस्ती की बुनियाद पर अपनी इजतिमाई ज़िन्दगी बना डाली है जो दुनियावी ज़िन्दगी की हद तक तुम्हें एक क़ौमी बन्धन में बाँध सकती है। इसलिए कि यहाँ किसी अक़ीदे पर भी लोग इकट्ठे हो सकते हैं, चाहे सही हो या ग़लत। और एक राय होना और एक साथ हो जाना, चाहे यह कैसे ही ग़लत अक़ीदे पर हो, आपसी दोस्तियों, रिश्तेदारियों, बिरादरियों और सामाजिक, मआशी (आर्थिक) और सियासी ताल्लुक़ात के जुड़ने का ज़रिआ बन सकती है।

43. यानी ग़लत अक़ीदों पर तुम्हारा यह एक साथ जमा होना आख़िरत में बना नहीं रह सकता। वहाँ आपस की मुहब्बत, दोस्ती, मदद, रिश्तेदारी और अक़ीदतमन्दी (श्रद्धा) और मुरीदी के सिर्फ़ वही ताल्लुक़ात बाक़ी रह सकते हैं जो दुनिया में एक ख़ुदा की बन्दगी और नेकी और परहेज़गारी पर क़ायम हुए हों। कुफ़्र और शिर्क और गुमराही और बुराई के रास्ते पर जुड़े हुए सारे रिश्ते वहाँ कट जाएँगे, सारी मुहब्बतें दुश्मनी में बदल जाएँगी, सारी अक़ीदतें (श्रद्धाएँ) नफ़रत में बदल जाएँगी। बेटे और बाप, शौहर और बीवी, पीर और मुरीद तक एक-दूसरे पर लानत भेजेंगे और हर एक अपनी गुमराही की ज़िम्मेदारी दूसरे पर डालकर पुकारेगा कि इस ज़ालिम ने मुझे ख़राब किया। इसलिए इसे दोहरा अज़ाब दिया जाए। यह बात क़ुरआन मजीद में कई जगहों पर कही गई है। मसलन सूरा-43 ज़ुख़रुफ़ में फ़रमाया—

"दोस्त उस दिन एक-दूसरे के दुश्मन हो जाएँगे, सिवाय परहेज़गारों के।" (आयत-67)

सूरा-7 आराफ़ में फ़रमाया—

"हर गरोह जब जहन्नम में दाख़िल होगा तो अपने पासवाले गरोह पर लानत करता हुआ दाख़िल होगा, यहाँ तक कि जब सब वहाँ इकट्ठे हो जाएँगे तो हर बादवाला गरोह पहलेवाले गरोह के हक़ में कहेगा कि ऐ हमारे रब, ये लोग थे जिन्होंने हमें गुमराह किया, इसलिए इन्हें आग का दोहरा अज़ाब दे।" (आयत-38)

और सूरा-33 अहज़ाब में फ़रमाया—

لَهٗ لُوْطٌ ۘ وَقَالَ اِنِّیْ مُهَاجِرٌ اِلٰی رَبِّیْ ؕ اِنَّهٗ هُوَالْعَزِیْزُ الْحَکِیْمُ ﴿۲۶﴾

(26) उस वक़्त लूत ने उसको माना।[44] और इबराहीम ने कहा, "मैं अपने रब की तरफ़ हिजरत करता हूँ,[45] वह ज़बरदस्त है और हिकमतवाला है।"[46]

"और वे कहेंगे, ऐ हमारे रब, हमने अपने सरदारों और बड़ों का हुक्म माना और उन्होंने हमको राह से भटका दिया, हमारे रब, तू इन्हें दोहरी सज़ा दे और इनपर सख़्त लानत कर।"

(आयतें—67-68)

44. बात के सिलसिले से ज़ाहिर होता है कि जब हज़रत इबराहीम (अलैहि.) आग से निकल आए और उन्होंने ऊपर के जुमले कहे उस वक़्त सारी भीड़ में सिर्फ़ एक लूत (अलैहि.) थे जिन्होंने आगे बढ़कर उनको मानने और उनकी पैरवी करने का एलान किया। हो सकता है कि इस मौक़े पर दूसरे बहुत-से लोग भी अपने दिल में हज़रत इबराहीम (अलैहि.) की सच्चाई को मान गए हों। लेकिन पूरी क़ौम और हुकूमत की तरफ़ से इबराहीम (अलैहि.) के दीन के ख़िलाफ़ जिस ग़ज़बनाक जज़्बे का इज़हार उस वक़्त सबकी आँखों के सामने हुआ था, उसे देखते हुए कोई दूसरा आदमी ऐसे ख़तरनाक हक़ (सत्य) को मानने और उसका साथ देने की जुरअत (साहस) न कर सका। यह ख़ुशनसीबी सिर्फ़ एक आदमी के हिस्से में आई और वे हज़रत इबराहीम (अलैहि.) के भतीजे हज़रत लूत (अलैहि.) थे जिन्होंने आख़िरकार हिजरत में भी अपने चचा और चची (हज़रत सारा) का साथ दिया।

यहाँ एक शक पैदा होता है जिसे दूर कर देना ज़रूरी है। एक शख़्स सवाल कर सकता है कि क्या इस घटना से पहले हज़रत लूत (अलैहि.) कुफ़्र और शिर्क करते थे और आग से हज़रत इबराहीम (अलैहि.) के सही-सलामत निकल आने का मोजिज़ा देखने के बाद उन्हें ईमान की नेमत मिल पाई? अगर यह बात है तो क्या नुबूवत (पैग़म्बरी) का मंसब कोई ऐसा शख़्स भी पा सकता है जो पहले मुशरिक रह चुका हो? इसका जवाब यह है कि क़ुरआन ने यहाँ "फ़आ-म-न लहू लूतुन" (तो लूत ने उसको माना) के अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए हैं जिनसे यह ज़रूरी नहीं हो जाता कि उससे पहले हज़रत लूत (अलैहि.) सारे जहान के ख़ुदा को न मानते हों, या उसके साथ दूसरे माबूदों को शरीक करते हों, बल्कि इनसे सिर्फ़ यह ज़ाहिर होता है कि इस वाक़िए के बाद उन्होंने हज़रत इबराहीम (अलैहि.) की रिसालत (पैग़म्बरी) को सच्चा मान लिया और उनकी पैरवी अपना ली। अरबी ज़बान में 'ईमान' के साथ जब हर्फ़ 'लाम' का सिला (जोड़) आता हो तो उसका मतलब किसी शख़्स की बात मानना और उसकी फ़रमाँबरदारी करना होता है। मुमकिन है कि हज़रत लूत (अलैहि.) उस वक़्त एक नई उम्र के लड़के ही हों और अपने होश में उनको पहली बार इस मौक़े पर ही अपने चचा की तालीम के बारे में जानने और उनकी पैग़म्बरी से आगाह होने का मौक़ा मिला हो।

45. यानी अपने रब की ख़ातिर देश छोड़कर निकलता हूँ। अब जहाँ मेरा रब ले जाएगा, वहाँ चला जाऊँगा।

46. यानी वह मेरी हिमायत और हिफ़ाज़त करने की क़ुदरत रखता है और मेरे हक़ में उसका जो फ़ैसला भी होगा उसमें ज़रूर कोई हिकमत होगी।

وَوَهَبْنَا لَهٗٓ اِسْحٰقَ وَيَعْقُوْبَ وَجَعَلْنَا فِيْ ذُرِّيَّتِهِ النُّبُوَّةَ وَالْكِتٰبَ وَاٰتَيْنٰهُ
اَجْرَهٗ فِي الدُّنْيَا ۚ وَاِنَّهٗ فِي الْاٰخِرَةِ لَمِنَ الصّٰلِحِيْنَ ﴿٢٧﴾ وَلُوْطًا اِذْ قَالَ لِقَوْمِهٖٓ
اِنَّكُمْ لَتَاْتُوْنَ الْفَاحِشَةَ ۡمَا سَبَقَكُمْ بِهَا مِنْ اَحَدٍ مِّنَ الْعٰلَمِيْنَ ﴿٢٨﴾

---

(27) और हमने उसे इसहाक़ और याक़ूब (जैसी औलाद) दी[47] और उसकी नस्ल में नुबूवत और किताब रख दी,[48] और उसे दुनिया में उसका बदला दिया और आख़िरत में वह यक़ीनन नेक लोगों में से होगा।[49]

(28) और हमने लूत को भेजा[50] जबकि उसने अपनी क़ौम से कहा, ''तुम तो वह गन्दा काम करते हो जो तुमसे पहले दुनियावालों में से किसी ने नहीं किया है।

---

47. हज़रत इसहाक़ (अलैहि॰) बेटे थे और हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) पोते। यहाँ हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के दूसरे बेटों का ज़िक्र इसलिए नहीं किया गया है कि इबराहीम (अलैहि॰) की औलाद की मदयानी शाख़ में सिर्फ़ हज़रत शुऐब (अलैहि॰) नबी बनाए गए और इसमाईली शाख़ में हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) तक ढाई हज़ार साल की मुद्दत में कोई नबी नहीं आया। इसके बरख़िलाफ़ नुबूवत (पैग़म्बरी) और किताब की नेमत हज़रत ईसा (अलैहि॰) तक लगातार उस शाख़ को दी जाती रही जो हज़रत इसहाक़ (अलैहि॰) से चली थी।

48. इसमें वे तमाम पैग़म्बर आ गए जो इबराहीमी नस्ल की सब शाख़ों में भेजे गए हैं।

49. बयान करने का मक़सद यह है कि बाबिल के वे हुक्मराँ और मज़हबी गुरु और पुरोहित जिन्होंने इबराहीम (अलैहि॰) की दावत को नीचा दिखाना चाहा था, और उसके वे मुशरिक निवासी जिन्होंने आँखें बन्द करके उन ज़ालिमों की पैरवी की थी, वे तो दुनिया से मिट गए और ऐसे मिटे कि आज दुनिया में कहीं उनका नामो-निशान तक बाक़ी नहीं। मगर वह शख़्स जिसे अल्लाह का कलिमा बुलन्द करने के जुर्म में उन लोगों ने जलाकर राख कर देना चाहा था, और जिसे आख़िरकार बे-सरो-सामानी के हाल में वतन से निकल जाना पड़ा था, उसको अल्लाह तआला ने यह कामयाबी दी कि चार हज़ार साल से दुनिया में उसका नाम रौशन है और क़ियामत तक रहेगा। दुनिया के तमाम मुसलमान, ईसाई और यहूदी सारे जहानों के उस दोस्त (हज़रत इबराहीम अलैहि॰) को एकमत होकर अपना पेशवा मानते हैं। दुनिया को उन चालीस सदियों में जो कुछ भी हिदायत की रौशनी मिली है उसी एक इनसान और उसकी पाकीज़ा औलाद की बदौलत मिली है। आख़िरत में जो बड़ा इनाम उसको मिलेगा वह तो मिलेगा ही, इस दुनिया में भी उसने वह इज़्ज़त पाई जो दुनिया हासिल करने के पीछे जान खपानेवालों में से किसी को आज तक नसीब नहीं हुई।

50. लूत (अलैहि॰) का क़िस्सा क़ुरआन में कुछ फ़र्क़ के साथ कई जगहों पर आया है। देखिए— सूरा-7 आराफ़, आयतें—80-84; सूरा-11 हूद, आयतें—69-83; सूरा-15 हिज्र, आयतें—5-79;

أَئِنَّكُمْ لَتَأْتُونَ الرِّجَالَ وَتَقْطَعُونَ السَّبِيلَ ۙ وَتَأْتُونَ فِي
نَادِيكُمُ الْمُنْكَرَ ۖ فَمَا كَانَ جَوَابَ قَوْمِهِ إِلَّا أَنْ قَالُوا ائْتِنَا
بِعَذَابِ اللَّهِ إِنْ كُنْتَ مِنَ الصَّادِقِينَ ﴿٢٩﴾ قَالَ رَبِّ انْصُرْنِي
عَلَى الْقَوْمِ الْمُفْسِدِينَ ﴿٣٠﴾ وَلَمَّا جَاءَتْ رُسُلُنَا إِبْرَاهِيمَ ع ٣ ٨ ١٥
بِالْبُشْرَىٰ ۙ قَالُوا إِنَّا مُهْلِكُو أَهْلِ هَٰذِهِ الْقَرْيَةِ ۖ إِنَّ أَهْلَهَا

(29) क्या तुम्हारा हाल यह है कि मर्दों के पास जाते हो,[51] और रहज़नी (बटमारी) करते हो और अपनी मजलिसों में बुरे काम करते हो?''[52] फिर कोई जवाब उसकी क़ौम के पास इसके सिवा न था कि उन्होंने कहा, ''ले आ अल्लाह का अज़ाब अगर तू सच्चा है।'' (30) लूत ने कहा, ''ऐ मेरे रब, इन बिगाड़ फैलानेवाले लोगों के मुक़ाबले में मेरी मदद कर।''

(31) और जब हमारे भेजे हुए (फ़रिश्ते) इबराहीम के पास ख़ुशख़बरी लेकर पहुँचे[53] तो उन्होंने उससे कहा, ''हम इस बस्ती के लोगों को हलाक करनेवाले हैं,[54] इसके लोग

सूरा-21 अम्बिया, आयतें—71-75; सूरा-26 शुअरा, आयतें—160-175; सूरा-27 नम्ल, आयतें—54-58; सूरा-37 साफ़्फ़ात, आयतें—133-138; सूरा-54 क़मर, आयतें—33-40।

51. यानी उनसे जिंसी अमल (यौनाचार) करते हो, जैसाकि सूरा-7 आराफ़ में है—
''तुम मन की ख़ाहिश पूरी करने के लिए औरतों को छोड़कर मर्दों के पास जाते हो।'' (आयत-81)

52. यानी यह गन्दा (अश्लील) काम छिपकर भी नहीं करते बल्कि खुल्लम-खुल्ला अपनी मजलिसों में एक-दूसरे के सामने करते हो। यही बात सूरा-27 नम्ल में कही गई है—
''क्या तुम ऐसे बिगड़ गए हो कि देखनेवाली आँखों के सामने बेहूदा काम करते हो।''
(आयत-54)

53. सूरा-11 हूद और सूरा-15 हिज्र में इसकी तफ़सील यह बयान हुई है कि जो फ़रिश्ते लूत (अलैहि॰) की क़ौम पर अज़ाब नाज़िल करने के लिए भेजे गए थे वे पहले हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के पास हाज़िर हुए और उन्होंने उनको हज़रत इसहाक़ (अलैहि॰) की और उनके बाद हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) की पैदाइश की ख़ुशख़बरी दी, फिर यह बताया कि हमें लूत (अलैहि॰) की क़ौम को तबाह करने के लिए भेजा गया है।

54. 'इस बस्ती' का इशारा लूत (अलैहि॰) की क़ौम के इलाक़े की तरफ़ है। हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) उस वक़्त फ़िलस्तीन के शहर हबरून (मौजूदा 'अल-ख़लील') में रहते थे। इस शहर

كَانُوْا ظٰلِمِیْنَ ۝۳۱ قَالَ اِنَّ فِیْهَا لُوْطًا ؕ قَالُوْا نَحْنُ اَعْلَمُ بِمَنْ فِیْهَا ٚ
لَنُنَجِّیَنَّهٗ وَاَهْلَهٗۤ اِلَّا امْرَاَتَهٗ ٚ كَانَتْ مِنَ الْغٰبِرِیْنَ ۝۳۲ وَلَمَّاۤ اَنْ

सख़्त ज़ालिम हो चुके हैं।" (32) इबराहीम ने कहा, "वहाँ तो लूत मौजूद है।"[55] उन्होंने कहा, "हम ख़ूब जानते हैं कि वहाँ कौन-कौन है। हम उसे, उसकी बीवी के सिवा, उसके बाक़ी सब घरवालों को बचा लेंगे।" उसकी बीवी पीछे रह जानेवालों में से थी।[56]

के दक्षिण-पूर्व में कुछ मील के फ़ासले पर मृतसागर (Dead Sea) का वह हिस्सा वाक़े (स्थित) है जहाँ पहले लूत (अलैहि.) की क़ौम आबाद थी और अब जिसपर सागर का पानी फैला हुआ है। यह इलाक़ा ढलान में क़ायम है और हबरून की ऊँची पहाड़ियों पर से साफ़ नज़र आता है। इसी लिए फ़रिश्तों ने इसकी तरफ़ इशारा करके हज़रत इबराहीम (अलैहि.) से कहा कि "हम इस बस्ती को हलाक करनेवाले हैं।" (देखिए– सूरा-26 शुअरा, हाशिया-114)

55. सूरा-11 हूद में इस क़िस्से का शुरुआती हिस्सा यह बयान किया गया है कि सबसे पहले तो हज़रत इबराहीम (अलैहि.) फ़रिश्तों को इनसानी शक्ल में देखकर ही घबरा गए, क्योंकि इस शक्ल में फ़रिश्तों का आना किसी ख़तरनाक मुहिम की शुरुआत हुआ करती है। फिर जब उन्होंने आपको ख़ुशख़बरी दी और आपकी घबराहट दूर हो गई और आपको मालूम हुआ कि यह मुहिम लूत (अलैहि.) की क़ौम की तरफ़ जा रही है तो आप इस क़ौम के लिए बड़े इसरार (आग्रह) के साथ रहम की दरख़ास्त करने लगे। "फिर जब इबराहीम की घबराहट दूर हो गई और उसे ख़ुशख़बरी भी मिली तो वह लूत की क़ौम के बारे में हमसे झगड़ने लगा। हक़ीक़त में इबराहीम बड़ा कुशादादिल (उदार) और नर्मदिल आदमी था और हर हाल में हमारी तरफ़ रुजू करता था।" (क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयतें–74-76) मगर यह दरख़ास्त क़बूल न हुई और फ़रमाया गया कि इस मामले में अब कुछ न कहो, तुम्हारे रब का फ़ैसला हो चुका है और यह अज़ाब अब टलनेवाला नहीं है–
"ऐ इबराहीम, यह (ज़िद) छोड़ दो। तुम्हारे रब का हुक्म हो चुका है और अब उन लोगों पर वह अज़ाब आकर रहेगा जो किसी के फेरे नहीं फिर सकता।" (सूरा-11 हूद, आयत-76)
इस जवाब से जब हज़रत इबराहीम (अलैहि.) को यह उम्मीद बाक़ी न रही कि लूत (अलैहि.) की क़ौम की मुहलत में कोई इज़ाफ़ा हो सकेगा, तब उन्हें हज़रत लूत (अलैहि.) की फ़िक्र हुई और उन्होंने वह बात कही कि जो यहाँ नक़्ल की गई है कि "वहाँ तो लूत मौजूद है।" यानी यह अज़ाब अगर लूत (अलैहि.) की मौजूदगी में आया तो वे और उनके घरवाले उससे कैसे महफ़ूज़ रहेंगे।

56. इस औरत के बारे में सूरा-66 तहरीम (आयत-10) में बताया गया है कि यह हज़रत लूत (अलैहि.) की वफ़ादार न थी, इसी वजह से इसके हक़ में यह फ़ैसला किया गया कि वह भी, एक नबी की बीवी होने के बावजूद, अज़ाब में मुब्तला कर दी जाए। ज़्यादा इमकान इस बात

جَآءَتْ رُسُلُنَا لُوْطًا سِيْٓءَ بِهِمْ وَضَاقَ بِهِمْ ذَرْعًا وَّقَالُوْا لَا تَخَفْ
وَلَا تَحْزَنْ ۗ اِنَّا مُنَجُّوْكَ وَاَهْلَكَ اِلَّا امْرَاَتَكَ كَانَتْ مِنَ الْغٰبِرِيْنَ ﴿۳۳﴾

(33) फिर जब हमारे भेजे हुए (फ़रिश्ते) लूत के पास पहुँचे तो उनके आने पर वह सख़्त परेशान और दिल-तंग हुआ।[57] उन्होंने कहा, "न डरो और न रंज करो।[58] हम तुम्हें और तुम्हारे घरवालों को बचा लेंगे, सिवाय तुम्हारी बीवी के जो पीछे रह जानेवालों में से है।

का है कि हज़रत लूत (अलैहि॰) हिजरत के बाद जब उर्दुन (जॉर्डन) के इलाक़े में आकर आबाद हुए होंगे तो उन्होंने उसी क़ौम में शादी कर ली होगी। लेकिन उनके साथ में एक उम्र गुज़ार देने के बाद भी यह औरत ईमान न लाई और उसकी हमदर्दियाँ और दिलचस्पियाँ अपनी क़ौम ही के साथ जुड़ी रहीं। चूँकि अल्लाह तआला के यहाँ रिश्तेदारियाँ और बिरादरियाँ कोई चीज़ नहीं हैं, हर शख़्स के साथ मामला उसके अपने ईमान और अख़लाक़ की बुनियाद पर होता है, इसलिए पैग़म्बर की बीवी होना उसके लिए कुछ भी फ़ायदेमन्द न हो सका और उसका अंजाम अपने शौहर के साथ होने के बजाय अपनी उस क़ौम के साथ हुआ जिसके साथ उसने अपना दीन और अख़लाक़ जोड़ रखा था।

57. इस परेशानी और घबराहट की वजह यह थी कि फ़रिश्ते बहुत ख़ूबसूरत नई उम्र के लड़कों की शक्ल में आए थे। हज़रत लूत (अलैहि॰) अपनी क़ौम के अख़लाक़ को जानते थे, इसलिए उनके आते ही वे परेशान हो गए कि मैं अपने इन मेहमानों को ठहराऊँ तो इस बदकिरदार क़ौम से उनको बचाना मुश्किल है, और न ठहराऊँ तो यह बड़ी बेमुरव्वती (रूखापन) है जिसे शराफ़त गवारा नहीं करती। इसके अलावा यह अन्देशा भी है कि अगर मैं इन मुसाफ़िरों को अपनी पनाह में न लूँगा तो रात इन्हें कहीं और गुज़ारनी पड़ेगी और इसका मतलब यह होगा कि मानो मैंने ख़ुद उन्हें भेड़ियों के हवाले किया। इसके बाद का क़िस्सा यहाँ बयान नहीं किया गया है। इसकी तफ़सीलात सूरा-11 हूद, सूरा-15 हिज्र और सूरा-54 क़मर में बयान हुई हैं कि उन लड़कों के आने की ख़बर सुनकर शहर के बहुत-से लोग हज़रत लूत (अलैहि॰) के मकान पर इकट्ठे होकर आ गए और ज़िद करने लगे कि वे अपने इन मेहमानों को बदकारी के लिए उनके हवाले कर दें।

58. यानी हमारे मामले में न इस बात से डरो कि ये लोग हमारा कुछ बिगाड़ सकेंगे और न इस बात के लिए फ़िक्रमन्द हो कि हमें उनसे कैसे बचाया जाए। यही मौक़ा था जब फ़रिश्तों ने हज़रत लूत (अलैहि॰) पर यह राज़ खोला कि वे इनसान नहीं बल्कि फ़रिश्ते हैं जिन्हें इस क़ौम पर अज़ाब नाज़िल करने के लिए भेजा गया है। सूरा-11 हूद में यह बात बयान की गई है कि जब लोग हज़रत लूत (अलैहि॰) के घर में घुसे चले आ रहे थे और उन्होंने महसूस किया कि अब वे किसी तरह भी अपने मेहमानों को उनसे नहीं बचा सकते तो वे परेशान होकर चीख़ उठे कि "काश, मेरे पास तुम्हें ठीक कर देने की ताक़त होती या किसी ज़ोरावर की हिमायत मैं पा

إِنَّا مُنزِلُونَ عَلَىٰ أَهْلِ هَٰذِهِ الْقَرْيَةِ رِجْزًا مِّنَ السَّمَاءِ بِمَا كَانُوا
يَفْسُقُونَ ﴿٣٤﴾ وَلَقَد تَّرَكْنَا مِنْهَا آيَةً بَيِّنَةً لِّقَوْمٍ يَعْقِلُونَ ﴿٣٥﴾ وَإِلَىٰ مَدْيَنَ
أَخَاهُمْ شُعَيْبًا فَقَالَ يَا قَوْمِ اعْبُدُوا اللَّهَ وَارْجُوا الْيَوْمَ الْآخِرَ

(34) हम इस बस्ती के लोगों पर आसमान से अज़ाब उतारनेवाले हैं उस फ़िस्क़ (नाफ़रमानी) की बदौलत जो ये करते रहे हैं।" (35) और हमने उस बस्ती की एक खुली निशानी छोड़ दी है[59] उन लोगों के लिए जो अक़्ल से काम लेते हैं।[60]

(36) और मदयन की तरफ़ हमने उनके भाई शुऐब को भेजा।[61] उसने कहा, "ऐ मेरी क़ौम के लोगो, अल्लाह की बन्दगी करो और आख़िरत के दिन के उम्मीदवार रहो[62]

सकता।" उस वक़्त फ़रिश्तों ने कहा, "ऐ लूत, हम तुम्हारे रब के भेजे हुए फ़रिश्ते हैं, ये तुम तक हरगिज़ नहीं पहुँच सकते।" (आयतें—80-81)

59. इस खुली निशानी से मुराद है मृत-सागर जिसे लूत-सागर भी कहा जाता है। क़ुरआन मजीद में कई जगहों पर मक्का के ग़ैर-मुस्लिमों से कहा गया है कि उस ज़ालिम क़ौम पर उसके करतूतों की वजह से जो अज़ाब आया था, उसकी एक निशानी आज भी आम शाहराह (राजमार्ग) पर मौजूद है जिसे तुम शाम (सीरिया) की तरफ़ अपने तिजारती सफ़रों में जाते हुए रात-दिन देखते हो। (देखिए— सूरा-15 हिज्र, आयत-76; सूरा-37 साफ़्फ़ात, आयतें—137-138)
मौजूदा ज़माने में यह बात लगभग यक़ीन के साथ मानी जा रही है कि मृत-सागर का दक्षिणी भाग एक भयानक भूकम्प की वजह से ज़मीन में धँस जाने की बदौलत वुजूद में आया है और इसी धँसे हुए हिस्से में लूत (अलैहि०) की क़ौम का शहर सदूम (Sadom) था। इस हिस्से में पानी के नीचे कुछ डूबी हुई बस्तियों के आसार भी पाए जाते हैं। हाल में ग़ोता-ख़ोरी के नए औज़ारों (आधुनिक उपकरणों) की मदद से यह कोशिश शुरू हुई है कि कुछ लोग नीचे जाकर उन निशानियों की खोज करें। लेकिन अभी तक इन कोशिशों के नतीजे सामने नहीं आए हैं। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— सूरा-26 शुअरा, हाशिया-114)

60. शरीअत के मुताबिक़ हमजिंसियत (समलैंगिकता) की सज़ा के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, हाशिया-68।

61. यह क़िस्सा क़ुरआन में कुछ फ़र्क़ के साथ कई जगहों पर आया है। देखिए— सूरा-7 आराफ़, आयतें—85-93; सूरा-11 हूद, आयतें—84-95; सूरा-26 शुअरा, आयतें—176-191।

62. इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि आख़िरत के आने की उम्मीद रखो, यह न समझो कि जो कुछ है बस यही दुनियावी ज़िन्दगी है और कोई दूसरी ज़िन्दगी नहीं है जिसमें तुम्हें अपने कामों का हिसाब देना और इनाम और सज़ा पाना हो। दूसरा मतलब यह है कि वह काम करो जिससे तुम आख़िरत में अंजाम बेहतर होने की उम्मीद कर सको।

وَلَا تَعْثَوْا فِي الْأَرْضِ مُفْسِدِيْنَ ﴿٣٦﴾ فَكَذَّبُوْهُ فَأَخَذَتْهُمُ الرَّجْفَةُ
فَأَصْبَحُوْا فِيْ دَارِهِمْ جٰثِمِيْنَ ﴿٣٧﴾ وَعَادًا وَّثَمُوْدَا۟ وَقَدْ تَّبَيَّنَ لَكُمْ
مِّنْ مَّسٰكِنِهِمْ ۗ وَزَيَّنَ لَهُمُ الشَّيْطٰنُ أَعْمَالَهُمْ فَصَدَّهُمْ عَنِ
السَّبِيْلِ وَكَانُوْا مُسْتَبْصِرِيْنَ ﴿٣٨﴾ وَقَارُوْنَ وَفِرْعَوْنَ وَهَامٰنَ ۗ
وَلَقَدْ جَآءَهُمْ مُّوْسٰى بِالْبَيِّنٰتِ فَاسْتَكْبَرُوْا فِي الْأَرْضِ وَمَا كَانُوْا

और ज़मीन में बिगाड़ फैलानेवाले बनकर ज़्यादतियाँ न करते फिरो।" (37) मगर उन्होंने उसे झुठला दिया।[63] आख़िरकार एक सख़्त ज़लज़ले (भूकम्प) ने उन्हें आ लिया और वे अपने घर[64] में पड़े-के-पड़े रह गए।

(38) और आद और समूद को हमने हलाक किया, तुम वे जगहें देख चुके हो जहाँ वे रहते थे।[65] उनके आमाल को शैतान ने उनके लिए लुभावना बना दिया और उन्हें सीधी राह से भटका दिया, हालाँकि वे समझ-बूझ रखते थे।[66] (39) और क़ारून और फ़िरऔन और हामान को हमने हलाक किया। मूसा उनके पास खुली निशानियाँ लेकर आया, मगर उन्होंने ज़मीन में अपनी बड़ाई का घमण्ड किया, हालाँकि वे आगे निकल

63. यानी इस बात को न माना कि हज़रत शुऐब (अलैहि॰) अल्लाह के रसूल हैं, और यह तालीम जो वे दे रहे हैं यह अल्लाह तआला की तरफ़ से है और इसको न मानने का नतीजा उन्हें अल्लाह के अज़ाब की शक्ल में भुगतना होगा।

64. घर से मुराद वह पूरा इलाक़ा है जिसमें यह क़ौम रहती थी। ज़ाहिर है कि जब एक पूरी क़ौम का ज़िक्र हो रहा हो तो उसका घर उसका देश ही हो सकता है।

65. अरब के जिन इलाक़ों में ये दोनों क़ौमें आबाद थीं उनसे अरब का बच्चा-बच्चा वाक़िफ़ था। दक्षिणी अरब का पूरा इलाक़ा जो अब अहक़ाफ़, यमन और हज़रेमौत के नाम से जाना जाता है, पुराने ज़माने में आद का ठिकाना था और अरबवाले उसको जानते थे। हिजाज़ के उत्तरी हिस्से में राबिग़ से अक़बा तक और मदीना और ख़ैबर से तैमा और तबूक तक का सारा इलाक़ा आज भी समूद की निशानियों से भरा हुआ है और क़ुरआन उतरने के ज़माने में ये निशानियाँ मौजूदा हालत से कुछ ज़्यादा ही नुमायाँ होंगी।

66. यानी जाहिल और नादान न थे। अपने-अपने वक़्त के बड़े तरक़्क़ी किए हुए लोग थे। और अपनी दुनिया के मामले निबटाने में पूरी होशियारी और समझदारी का सुबूत देते थे। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि शैतान उनकी आँखों पर पट्टी बाँधकर और उनकी मति मारकर उन्हें अपने रास्ते पर खींच ले गया। नहीं, उन्होंने ख़ूब सोच-समझकर आँखों देखते शैतान के

سٰبِقِیۡنَ ﴿۳۹﴾ فَکُلًّا اَخَذۡنَا بِذَنۡۢبِہٖ ۚ فَمِنۡہُمۡ مَّنۡ اَرۡسَلۡنَا عَلَیۡہِ حَاصِبًا ۚ
وَمِنۡہُمۡ مَّنۡ اَخَذَتۡہُ الصَّیۡحَۃُ ۚ وَمِنۡہُمۡ مَّنۡ خَسَفۡنَا بِہِ الۡاَرۡضَ ۚ
وَمِنۡہُمۡ مَّنۡ اَغۡرَقۡنَا ۚ وَمَا کَانَ اللّٰہُ لِیَظۡلِمَہُمۡ وَلٰکِنۡ کَانُوۡۤا
اَنۡفُسَہُمۡ یَظۡلِمُوۡنَ ﴿۴۰﴾ مَثَلُ الَّذِیۡنَ اتَّخَذُوۡا مِنۡ دُوۡنِ اللّٰہِ اَوۡلِیَآءَ

जानेवाले न थे।[67] (40) आख़िरकार हर एक को हमने उसके गुनाह में पकड़ा, फिर उनमें से किसी पर हमने पथराव करनेवाली हवा भेजी,[68] और किसी को एक ज़बरदस्त धमाके ने आ लिया,[69] और किसी को हमने ज़मीन में धँसा दिया,[70] और किसी को डुबो दिया।[71] अल्लाह उनपर ज़ुल्म करनेवाला न था, मगर वे ख़ुद ही अपने ऊपर ज़ुल्म कर रहे थे।[72]

(41) जिन लोगों ने अल्लाह को छोड़कर दूसरे सरपरस्त बना लिए हैं, उनकी मिसाल

पेश किए हुए उस रास्ते को अपनाया जिसमें उन्हें बड़ी लज़्ज़तें और फ़ायदे नज़र आते थे और पैग़म्बरों के पेश किए हुए उस रास्ते को छोड़ दिया जो उन्हें रूखा और बेमज़ा और अख़लाक़ी पाबन्दियों की वजह से तकलीफ़देह नज़र आता था।

67. यानी भागकर अल्लाह की पकड़ से बच निकलनेवाले न थे। अल्लाह की तदबीरों को नाकाम कर देने की ताक़त न रखते थे।

68. यानी आद, जिनपर लगातार सात रात और आठ दिन तक सख़्त हवा का तूफ़ान बरपा रहा। (सूरा-69 हाक़्क़ा, आयत-7)

69. यानी समूद।

70. यानी क़ारून।

71. यानी फ़िरऔन और हामान।

72. ये तमाम क़िस्से जो यहाँ तक सुनाए गए हैं, उनका रुख़ दो तरफ़ है। एक तरफ़ ये ईमानवालों को सुनाए गए हैं ताकि वे हिम्मत न हारें और मायूस न हों और मुश्किलों और मुसीबतों के सख़्त-से-सख़्त तूफ़ान में भी सब्र और जमाव के साथ हक़ और सच्चाई का झण्डा बुलन्द किए रखें, और अल्लाह तआला पर भरोसा रखें कि आख़िरकार उसकी मदद ज़रूर आएगी और वह ज़ालिमों को नीचा दिखाएगा और हक़ के कलिमे को सरबुलन्द कर देगा। दूसरी तरफ़ ये उन ज़ालिमों को भी सुनाए गए हैं जो अपने नज़दीक तहरीके-इस्लामी (इस्लामी आन्दोलन) को बिलकुल ख़त्म कर देने पर तुले हुए थे। उनको ख़बरदार किया गया है कि तुम ख़ुदा की नरमी, बर्दाश्त और अनदेखा करने का ग़लत मतलब ले रहे हो। तुमने ख़ुदा की ख़ुदाई को अंधेर नगरी समझ लिया है। तुम्हें अगर बग़ावत और सरकशी और ज़ुल्मो-सितम और बुरे कामों पर अभी

كَمَثَلِ الْعَنْكَبُوْتِ ۚ اِتَّخَذَتْ بَيْتًا ۖ وَاِنَّ اَوْهَنَ الْبُيُوْتِ لَبَيْتُ
الْعَنْكَبُوْتِ ۘ لَوْ كَانُوْا يَعْلَمُوْنَ ﴿٤١﴾ اِنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُ مَا يَدْعُوْنَ مِنْ

मकड़ी जैसी है जो अपना एक घर बनाती है और सब घरों से ज़्यादा कमज़ोर घर मकड़ी का घर ही होता है। काश, ये लोग इल्म रखते![73] (42) ये लोग अल्लाह को छोड़कर

तक पकड़ा नहीं गया है और संभलने के लिए सिर्फ़ मेहरबानी के लिए लम्बी मुद्दत दी गई है तो तुम अपनी जगह यह समझ बैठे हो कि यहाँ कोई इनसाफ़ करनेवाली ताक़त सिरे से है ही नहीं और इस ज़मीन पर जिसका जो कुछ जी चाहे बे-रोक-टोक किए जा सकता है। यह ग़लतफ़हमी आख़िरकार तुम्हें जिस अंजाम तक पहुँचाकर रहेगी वह वही अंजाम है जो तुमसे पहले नूह (अलैहि॰) की क़ौम, लूत (अलैहि॰) की क़ौम और शुऐब (अलैहि॰) की क़ौम देख चुकी है, जिसका आद और समूद सामना कर चुके हैं, और जिसे क़ारून और फ़िरऔन ने देखा है।

73. ऊपर जितनी क़ौमों का ज़िक्र किया गया है वे सब शिर्क में मुब्तला थीं और अपने माबूदों के बारे में उनका अक़ीदा यह था कि ये हमारे तरफ़दार, मददगार और सरपरस्त (Guardians) हैं, हमारी क़िस्मतें बनाने और बिगाड़ने की क़ुदरत रखते हैं, इनकी पूजा-पाठ करके और इन्हें भेंट-चढ़ावे देकर जब हम इनकी सरपरस्ती हासिल कर लेंगे तो ये हमारे काम बनाएँगे और हमको हर तरह की आफ़तों से बचाए रखेंगे। लेकिन जैसा कि ऊपर के तारीख़ी वाक़िआत (ऐतिहासिक घटनाओं) में दिखाया गया है, उनके ये तमाम अक़ीदे (धारणाएँ) और अंधविश्वास उस वक़्त बिलकुल बेबुनियाद साबित हुए जब अल्लाह तआला की तरफ़ से उनकी बरबादी का फ़ैसला कर दिया गया। उस वक़्त कोई देवता, कोई अवतार, कोई वली, कोई रूह और कोई जिन्न या फ़रिश्ता, जिसे वे पूजते थे, उनकी मदद को न आया और अपनी झूठी उम्मीदों की नाकामी पर पछतावे से हाथ मलते हुए वे सब मिट्टी में मिल गए। इन वाक़िआत को बयान करने के बाद अब अल्लाह तआला मुशरिकों को ख़बरदार कर रहा है कि कायनात के हक़ीक़ी मालिक और बादशाह को छोड़कर बिलकुल बेइख़्तियार-बेबस बन्दों और सरासर ख़याली माबूदों के भरोसे पर जो उम्मीदों का घरौंदा तुमने बना रखा है उसकी हक़ीक़त मकड़ी के जाले से ज़्यादा कुछ नहीं है। जिस तरह मकड़ी का जाला एक उँगली की चोट भी सहन नहीं कर सकता, उसी तरह तुम्हारी उम्मीदों का यह घरौंदा भी ख़ुदा की तदबीर से पहला टकराव होते ही टुकड़े-टुकड़े होकर रह जाएगा। यह सिर्फ़ जहालत का करिश्मा है कि तुम अंधविश्वास के इस चक्कर में पड़े हुए हो। हक़ीक़त का कुछ भी इल्म तुम्हें होता तो तुम इन बेबुनियाद सहारों पर अपना निज़ामे-हयात (जीवन-व्यवस्था) कभी न बनाते। हक़ीक़त बस यह है कि इख़्तियारात का मालिक इस कायनात में सारे जहान के एक रब के सिवा कोई नहीं है और उसी का सहारा वह सहारा है जिसपर भरोसा किया जा सकता है। "जो तागूत से कुफ़्र करे और अल्लाह पर ईमान लाए, उसने वह मज़बूत सहारा थाम लिया जो कभी टूटनेवाला नहीं है, और अल्लाह सबकुछ सुनने और जाननेवाला है।" (सूरा-2 बक़रा, आयत-256)

دُوْنِهٖ مِنْ شَیْءٍ ؕ وَهُوَ الْعَزِیْزُ الْحَكِیْمُ ۝٤٢ وَتِلْكَ الْاَمْثَالُ نَضْرِبُهَا
لِلنَّاسِ ۚ وَمَا یَعْقِلُهَاۤ اِلَّا الْعٰلِمُوْنَ ۝٤٣ خَلَقَ اللّٰهُ السَّمٰوٰتِ
وَالْاَرْضَ بِالْحَقِّ ؕ اِنَّ فِیْ ذٰلِكَ لَاٰیَةً لِّلْمُؤْمِنِیْنَ ۝٤٤

जिस चीज़ को भी पुकारते हैं, अल्लाह उसे ख़ूब जानता है और वही ज़बरदस्त और हिकमतवाला है।[74] (43) ये मिसालें हम लोगों को समझाने के लिए देते हैं, मगर इनको वही लोग समझते हैं जो इल्म रखनेवाले हैं। (44) अल्लाह ने आसमानों और ज़मीन को हक़ (सत्य और मक़सद) के साथ पैदा किया है,[75] हक़ीक़त में इसमें एक निशानी है ईमानवालों के लिए।[76]

74. यानी अल्लाह को उन सब चीज़ों की हक़ीक़त ख़ूब मालूम है जिन्हें ये लोग माबूद बनाए बैठे हैं और मदद के लिए पुकारते हैं। उनके बस में कुछ भी नहीं है। ताक़त का मालिक सिर्फ़ अल्लाह ही है और उसी की तदबीर और हिकमत इस कायनात का निज़ाम (व्यवस्था) चला रही है।
एक दूसरा तर्जमा इस आयत का यह भी हो सकता है– "अल्लाह ख़ूब जानता है कि उसे छोड़कर जिन्हें ये लोग पुकारते हैं वे कुछ भी नहीं हैं (यानी बे-हक़ीक़त हैं), और ज़बरदस्त और हिकमतवाला बस वही है।"

75. यानी कायनात का यह निज़ाम हक़ (सत्य) पर क़ायम है, न कि बातिल (असत्य) पर। इस निज़ाम पर जो शख़्स भी साफ़ ज़ेहन के साथ ग़ौर करेगा उसपर यह बात खुल जाएगी कि ये ज़मीन और आसमान अंधविश्वासों और ख़याली बातों पर नहीं बल्कि हक़ीक़त की बुनियाद पर खड़े हैं। यहाँ इस बात का कोई इमकान नहीं है कि हर शख़्स अपनी जगह जो कुछ भी समझ बैठे और अपनी अटकलों से जो फ़ल्सफ़ा (दर्शन) भी गढ़े वह ठीक बैठ जाए। यहाँ तो सिर्फ़ वही चीज़ कामयाब हो सकती है और टिकी और ठहरी रह सकती है जो हक़ीक़त और सच्चाई के मुताबिक़ हो। हक़ीक़त के ख़िलाफ़ अन्दाज़ों और अटकलों पर जो इमारत भी खड़ी की जाएगी वह आख़िरकार हक़ीक़त से टकराकर चूर-चूर हो जाएगी। कायनात का यह निज़ाम साफ़ गवाही दे रहा है कि एक ख़ुदा इसका पैदा करनेवाला है और एक ही ख़ुदा इसका मालिक और चलानेवाला है। इस सच्चाई के ख़िलाफ़ अगर कोई शख़्स इस मनगढ़न्त तसव्वुर पर काम करता है कि इस दुनिया का कोई ख़ुदा नहीं है, या यह मानकर चलता है कि इसके बहुत-से ख़ुदा हैं जो मन्नतों और चढ़ावों का माल खाकर अपने अक़ीदतमन्दों (श्रद्धालुओं) को यहाँ सबकुछ करने की आज़ादी और ख़ैरियत से रहने की ज़मानत देते हैं, तो हक़ीक़त उसके इन मनगढ़न्त तसव्वुरात की वजह से ज़र्रा बराबर भी नहीं बदलेगी, बल्कि वह ख़ुद ही किसी वक़्त एक बहुत बड़े सदमे से दोचार होगा।

76. यानी ज़मीन और आसमान की पैदाइश में तौहीद (एकेश्वरवाद) की सच्चाई और शिर्क और नास्तिकता के ग़लत होने पर एक साफ़ गवाही मौजूद है, मगर इस गवाही को सिर्फ़ वही लोग

اُتْلُ مَآ اُوْحِيَ اِلَيْكَ مِنَ الْكِتٰبِ وَاَقِمِ الصَّلٰوةَ ؕ

(45) (ऐ नबी) तिलावत करो उस किताब की जो तुम्हारी तरफ़ वह्य के ज़रिए से भेजी गई है और नमाज़ क़ायम करो,[77]

पाते हैं जो पैग़म्बरों (अलैहि॰) की पेश की हुई तालीमात को मानते हैं। उनका इनकार कर देनेवालों को सबकुछ देखने पर भी कुछ दिखाई नहीं देता।

77. बात बज़ाहिर नबी (सल्ल॰) से कही जा रही है, मगर अस्ल में तमाम ईमानवालों से कही जा रही है। उनपर जो ज़ुल्मो-सितम उस वक़्त तोड़े जा रहे थे, और ईमान पर क़ायम रहने में जिन सख़्त हिम्मत तोड़नेवाली मुश्किलों से उनको जूझना पड़ रहा था, उनका मुक़ाबला करने के लिए शुरू से आयत-44 तक में सब्र और जमाव और अल्लाह पर भरोसा करने की लगातार नसीहत करने के बाद अब उन्हें अमली तदबीर यह बताई जा रही है कि क़ुरआन की तिलावत करें (क़ुरआन पढ़ें) और नमाज़ क़ायम करें, क्योंकि यही दो चीज़ें ऐसी हैं जो एक ईमानवाले में वह मज़बूत किरदार और वह ज़बरदस्त सलाहियत पैदा करती हैं जिनसे वह बातिल (असत्य) की बड़ी-से-बड़ी सरकशियों और बदी के सख़्त-से-सख़्त तूफ़ानों के मुक़ाबले में न सिर्फ़ खड़ा रह सकता है बल्कि उनका मुँह फेर सकता है। लेकिन क़ुरआन की तिलावत और नमाज़ से यह ताक़त इनसान को उसी वक़्त हासिल हो सकती है जबकि वह क़ुरआन के सिर्फ़ अलफ़ाज़ को पढ़ने पर बस न करे बल्कि उसकी तालीम को ठीक-ठीक समझकर अपनी रूह में उतारता चला जाए, और उसकी नमाज़ सिर्फ़ बदन की हरकतों तक महदूद न रहे, बल्कि उसके दिल की धड़कन और उसके अख़लाक़ और किरदार को हरकत देनेवाली ताक़त (प्रेरणा-शक्ति) बन जाए। नमाज़ के ज़रिए से जो ख़ूबी पैदा करना मक़सद है उसको तो आगे के जुमले में क़ुरआन ख़ुद बयान कर रहा है, रही तिलावत तो उसके बारे में यह जान लेना चाहिए कि जो तिलावत आदमी के गले से उतरकर उसके दिल तक नहीं पहुँचती वह उसे कुफ़्र की सरकशियों के मुक़ाबले में ताक़त तो बहुत दूर की बात, ख़ुद ईमान पर क़ायम रहने की ताक़त भी नहीं दे सकती, जैसाकि हदीस में नबी (सल्ल॰) ने एक गरोह के बारे में कहा है—

"वे क़ुरआन पढ़ेंगे मगर क़ुरआन उनके गले से नीचे नहीं उतरेगा, वे दीन से इस तरह निकल जाएँगे जैसे तीर कमान से निकल जाता है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, मुवत्ता)

हक़ीक़त में जिस तिलावत के बाद आदमी के ज़ेहन और सोच और अख़लाक़ और किरदार में कोई तब्दीली न हो, बल्कि क़ुरआन पढ़कर भी आदमी वह सबकुछ करता रहे जिससे क़ुरआन मना करता है, वह एक ईमानवाले की तिलावत है ही नहीं। उसके बारे में तो नबी (सल्ल॰) साफ़ फ़रमाते हैं—

"क़ुरआन पर ईमान नहीं लाया वह शख़्स जिसने उसकी हराम की हुई चीज़ों को हलाल कर लिया।" (हदीस : तिरमिज़ी)

ऐसी तिलावत आदमी के मन को सुधारने और उसकी रूह को ताक़त देने के बजाय उसको

إِنَّ الصَّلٰوةَ تَنْهٰى عَنِ الْفَحْشَآءِ وَالْمُنْكَرِ ؕ وَلَذِكْرُ اللّٰهِ

यक़ीनन नमाज़ बेहयाई और बुरे कामों से रोकती है[78] और अल्लाह का ज़िक्र इससे भी

अपने ख़ुदा के मुक़ाबले में और ज़्यादा ढीठ और अपने ज़मीर (अन्तरात्मा) के आगे और ज़्यादा बेहया बना देती है और उसके अन्दर कैरेक्टर (किरदार) नाम की कोई चीज़ बाक़ी नहीं रहने देती। क्योंकि जो शख़्स क़ुरआन को ख़ुदा की किताब माने और उसे पढ़कर यह मालूम भी करता रहे कि उसके ख़ुदा ने उसे क्या हिदायतें दी हैं और फिर उसकी हिदायतों की ख़िलाफ़वर्ज़ी करता चला जाए, उसका मामला तो उस मुजरिम का-सा है जो क़ानून न जानने की वजह से नहीं, बल्कि क़ानून की जानकारी अच्छी तरह हासिल कर लेने के बाद जुर्म करता है। इस पोज़ीशन को अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने एक छोटे-से जुमले में बेहतरीन तरीक़े पर यूँ बयान किया है–

"क़ुरआन हुज्जत (दलील) है तेरे हक़ में या तेरे ख़िलाफ़।" (हदीस : मुस्लिम)

यानी अगर तू क़ुरआन की ठीक-ठीक पैरवी करता है तो वह तेरे हक़ में हुज्जत है। दुनिया से आख़िरत तक जहाँ भी तुझसे पूछ-गच्छ हो, तू अपनी सफ़ाई में क़ुरआन को पेश कर सकता है कि मैंने जो कुछ किया है इस किताब के मुताबिक़ किया है। अगर तेरा अमल सचमुच उसके मुताबिक़ हुआ तो न दुनिया में कोई इस्लामी क़ाज़ी तुझे सज़ा दे सकता है और न आख़िरत में अल्लाह तआला ही के यहाँ तेरी पकड़ होगी। लेकिन अगर यह किताब तुझे पहुँच चुकी हो और तूने इसे पढ़कर यह मालूम कर लिया हो कि तेरा रब तुझसे क्या चाहता है, किस चीज़ का तुझे हुक्म देता है और किस चीज़ से तुझे मना करता है, और फिर तू उसके ख़िलाफ़ रवैया अपनाए तो यह किताब तेरे ख़िलाफ़ हुज्जत है। यह तेरे ख़ुदा की अदालत में तेरे ख़िलाफ़ फ़ौजदारी का मुक़द्दमा और ज़्यादा मज़बूत कर देगी। इसके बाद न जानने का बहाना पेश करके बच जाना या हलकी सज़ा पाना तेरे लिए मुमकिन न रहेगा।

78. यह नमाज़ की बहुत-सी ख़ूबियों में से एक अहम ख़ूबी है जिसे मौक़ा और महल के लिहाज़ से यहाँ नुमायाँ करके पेश किया गया है। मक्का के उस माहौल में जिन सख़्त रुकावटों से मुसलमानों को जूझना पड़ रहा था, उनका मुक़ाबला करने के लिए उन्हें माद्दी ताक़त से बढ़कर अख़लाक़ी ताक़त दरकार थी। इस अख़लाक़ी ताक़त की पैदाइश और उसके पलने-बढ़ने के लिए पहले दो तदबीरों की निशानदेही की गई। एक क़ुरआन की तिलावत यानी उसे पढ़ना, दूसरे नमाज़ क़ायम करना। इसके बाद अब यह बताया जा रहा है कि नमाज़ क़ायम करना वह ज़रिआ है जिससे तुम लोग उन बुराइयों से पाक हो सकते हो जिनमें इस्लाम क़बूल करने से पहले तुम ख़ुद मुब्तला थे और जिनमें तुम्हारे आसपास अरबवालों की और अरब से बाहर की जाहिली सोसाइटी इस वक़्त मुब्तला है।

ग़ौर किया जाए तो यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि इस मौक़े पर नमाज़ के इस ख़ास फ़ायदे का ज़िक्र क्यों किया गया है। ज़ाहिर है कि अख़लाक़ी बुराइयों से पाक होना अपने अन्दर सिर्फ़ इतना ही फ़ायदा नहीं रखता कि यह अपनी जगह ख़ुद उन लोगों के लिए दुनिया

और आख़िरत में फ़ायदेमन्द है जिन्हें यह पाकीज़ा चीज़ हासिल हो, बल्कि इसका लाज़िमी फ़ायदा यह भी है कि इससे उनको उन सब लोगों पर ज़बरदस्त बड़ाई हासिल हो जाती है जो तरह-तरह की अख़लाक़ी बुराइयों में मुब्तला हों और जाहिलियत के उस नापाक निज़ाम (व्यवस्था) को, जो उन बुराइयों को पालता है, क़ायम रखने के लिए इन पाकीज़ा इनसानों के मुक़ाबले में एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रहे हों। 'गन्दे कामों' (अश्लील कर्म) और 'बुरे कामों' (बुरे कर्म) के तहत वे बुराइयाँ आती हैं जिन्हें इनसान की फ़ितरत बुरा जानती है और हमेशा से हर क़ौम और हर समाज के लोग, चाहे वे अमली लिहाज़ से कैसे ही बिगड़े हुए हों, उसूली तौर पर उनको बुरा ही समझते रहे हैं। क़ुरआन के उतरने के वक़्त अरब का समाज भी इस आम उसूल से अलग न था। इस समाज के लोग भी अख़लाक़ की जानी-मानी ख़ूबियों और बुराइयों को जानते थे। बुराई के मुक़ाबले में नेकी की क़द्र पहचानते थे, और शायद ही उनके अन्दर कोई ऐसा शख़्स हो जो बुराई को भलाई समझता हो या भलाई को बुरी निगाह से देखता हो। इस हालत में उस बिगड़े हुए समाज के अन्दर किसी ऐसी तहरीक (आन्दोलन) का उठना जिससे जुड़ते ही ख़ुद उसी समाज के लोग अख़लाक़ी तौर पर बदल जाएँ और अपने किरदार और बर्ताव में अपने ज़माने के दूसरे लोगों से नुमायाँ तौर पर बुलन्द हो जाएँ, यक़ीनन अपना असर किए बिना नहीं रह सकता था। मुमकिन न था कि अरब के आम लोग बुराइयों को मिटानेवाली और नेक और पाकीज़ा इनसान बनानेवाली इस तहरीक (आन्दोलन) का अख़लाक़ी वज़्न महसूस न करते और उसके मुक़ाबले में सिर्फ़ जाहिली तास्सुबात के खोखले नारों की वजह से उन लोगों का साथ दिए चले जाते जो ख़ुद अख़लाक़ी बुराइयों में मुब्तला थे और जाहिलियत के उस निज़ाम को क़ायम रखने के लिए लड़ रहे थे जो उन बुराइयों की सदियों से परवरिश कर रहा था। यही वजह है कि क़ुरआन ने इस मौक़े पर मुसलमानों को माद्दी वसाइल (भौतिक संसाधन) और ताक़तें देने के बजाय नमाज़ क़ायम करने की नसीहत की ताकि ये मुट्ठी भर इनसान अख़लाक़ की वह ताक़त अपने अन्दर पैदा कर लें जो लोगों के दिल जीत ले और तीर व तलवार के बिना दुश्मनों को हरा दे।

नमाज़ की यह ख़ूबी जो इस आयत में बयान की गई है, इसके दो पहलू हैं। एक इसकी लाज़िमी ख़ूबी है, यानी यह कि वह 'फ़ुहशा' (बेहयाई) और 'मुनकर' (बुराई) से रोकती है और इसकी दूसरी ख़ूबी वह है जो हक़ीक़त में इसके ज़रिए से मतलूब है, यानी यह कि नमाज़ पढ़नेवाला सचमुच बेहयाई और बुराई से रुक जाए। जहाँ तक बुराई से रोकने का ताल्लुक़ है, नमाज़ लाज़िमी तौर पर यह काम करती है। जो शख़्स भी नमाज़ के बारे में ज़रा-सा ग़ौर करेगा वह मान लेगा कि इनसान को बुराइयों से रोकने के लिए जितने ब्रेक भी लगाने मुमकिन हैं उनमें सबसे ज़्यादा कारगर ब्रेक नमाज़ ही हो सकती है। आख़िर इससे बढ़कर असरदार रुकावट और क्या हो सकती है कि आदमी को हर दिन में पाँच बार अल्लाह की याद के लिए बुलाया जाए और उसके ज़ेहन में यह बात ताज़ा की जाए कि तू इस दुनिया में आज़ाद और अपनी मरज़ी का मालिक नहीं है, बल्कि एक ख़ुदा का बन्दा है, और तेरा ख़ुदा वह है जो तेरे खुले और छिपे तमाम कामों को, यहाँ तक कि तेरे दिल के इरादों और नीयतों तक को जानता है, और एक वक़्त ऐसा ज़रूर आना है जब तुझे उस ख़ुदा के सामने पेश होकर अपने आमाल की

जवाबदेही करनी होगी। फिर इस याददिहानी पर भी बस न किया जाए बल्कि आदमी को अमली तौर पर हर नमाज़ के वक़्त इस बात की प्रैक्टिस कराई जाती रहे कि वह छिपकर भी अपने ख़ुदा के किसी हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी न करे। नमाज़ के लिए उठने के वक़्त से लेकर नमाज़ ख़त्म करने तक लगातार आदमी को वे काम करने पड़ते हैं जिनमें उसके और ख़ुदा के सिवा कोई तीसरी हस्ती यह जाननेवाली नहीं होती कि इस शख़्स ने ख़ुदा के क़ानून की पाबन्दी की है या उसे तोड़ दिया है। मसलन अगर आदमी का वुज़ू टूट चुका हो और वह नमाज़ पढ़ने खड़ा हो जाए तो उसके और ख़ुदा के सिवा आख़िर किसे मालूम हो सकता है कि वह वुज़ू से नहीं है। अगर आदमी नमाज़ की नीयत ही न करे और बज़ाहिर रुकू और सजदे और उठते और बैठते हुए नमाज़ के अज़कार (दुआएँ और तसबीह वग़ैरा) पढ़ने के बजाय ख़ामोशी के साथ ग़ज़लें पढ़ता रहे तो उसके और ख़ुदा के सिवा किस पर यह राज़ खुल सकता है कि उसने अस्ल में नमाज़ नहीं पढ़ी है। इसके बावजूद जब आदमी जिस्म और लिबास की पाकी से लेकर नमाज़ के अरकान (क्रियाएँ) और अज़कार तक अल्लाह के क़ानून की तमाम शर्तों के मुताबिक़ हर दिन पाँच वक़्त नमाज़ अदा करता है तो इसका मतलब यह है कि इस नमाज़ के ज़रिए से रोज़ाना कई-कई बार उसके ज़मीर (अन्तरात्मा) में ज़िन्दगी पैदा की जा रही है, उसमें ज़िम्मेदारी का एहसास जगाया जा रहा है, उसे अपने फ़र्ज़ और ज़िम्मेदारी को पहचाननेवाला इनसान बनाया जा रहा है, और उसको अमली तौर से इस बात की प्रैक्टिस कराई जा रही है कि वह ख़ुद अपने फ़रमाँबरादारी के जज़्बे के असर से छिपे और खुले हर हाल में उस क़ानून की पाबन्दी करे जिसपर वह ईमान लाया है, चाहे बाहरी रूप में उससे पाबन्दी करानेवाली कोई ताक़त मौजूद हो या न हो और चाहे दुनिया के लोगों को उसके अमल का हाल मालूम हो या न हो।

इस लिहाज़ से देखा जाए तो यह मानने के सिवा चारा नहीं है कि नमाज़ सिर्फ़ यही नहीं कि आदमी को बेहयाई और बुराई से रोकती है बल्कि हक़ीक़त में दुनिया में तरबियत का कोई दूसरा तरीक़ा ऐसा नहीं है जो इनसान को बुराइयों से रोकने के मामले में इस हद तक असरदार हो। अब रहा यह सवाल कि आदमी नमाज़ का पाबन्द बन जाने के बाद भी अमली तौर पर बुराइयों से रुकता है या नहीं, तो इसका दारोमदार ख़ुद उस आदमी पर है जो अपने ख़ुद के सुधार की यह तरबियत ले रहा हो। वह इससे फ़ायदा उठाने की नीयत रखता हो और उसकी कोशिश करे तो नमाज़ के इस्लाही (सुधारवादी) असरात उसपर पड़ेंगे, वरना ज़ाहिर है कि दुनिया की कोई भी इस्लाह करनेवाली तदबीर उस शख़्स पर कारगर नहीं हो सकती जो उसका असर क़बूल करने के लिए तैयार ही न हो, या जान-बूझकर उसके असर को मिटाता रहे। इसकी मिसाल ऐसी है जैसे खाने (भोजन) की लाज़िमी ख़ूबी बदन को ताक़त देना और उसका नशो-नमा (विकास) करना है, लेकिन यह फ़ायदा उसी सूरत में हासिल हो सकता है जबकि आदमी उसे हज़म होने दे। अगर कोई शख़्स हर खाने के बाद फ़ौरन ही उलटी करके सारा खाना बाहर निकालता चला जाए तो इस तरह का खाना उसके लिए कुछ भी फ़ायदेमन्द नहीं हो सकता। जिस तरह ऐसे शख़्स की मिसाल सामने लाकर आप यह नहीं कह सकते कि खाना बदन को ताक़त देने का सबब नहीं है, क्योंकि फ़ुलाँ शख़्स खाना खाने के बावजूद सूखता चला

اَكْبَرُ ۭ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ مَا تَصْنَعُوْنَ۝۴۵

ज़्यादा बड़ी चीज़ है।[79] अल्लाह जानता है जो कुछ तुम करते हो।

जा रहा है। इसी तरह बुरे काम करनेवाले नमाज़ी की मिसाल पेश करके आप यह नहीं कह सकते कि नमाज़ बुराइयों से रोकनेवाली नहीं है, क्योंकि फ़ुलाँ शख़्स नमाज़ पढ़ने के बावजूद बुरे काम करता है। ऐसे नमाज़ी के बारे में तो यह कहना ज़्यादा सही है कि वह हक़ीक़त में नमाज़ नहीं पढ़ता जैसे खाना खाकर उलटी कर देनेवाले के बारे में यह कहना ज़्यादा सही है कि वह हक़ीक़त में खाना नहीं खाता।

ठीक यही बात है जो कई हदीसों में नबी (सल्ल॰) और कुछ बड़े सहाबा (रज़ि॰) और ताबिईन से रिवायत हुई है। इमरान-बिन-हुसैन की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जिसे उसकी नमाज़ ने बेहयाई और बुरे कामों से न रोका, उसकी नमाज़ नहीं है।" (इब्ने-अबी-हातिम) इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) का यह फ़रमान नक़्ल करते हैं, "जिसकी नमाज़ ने उसे बेहयाई और बुरे कामों से न रोका, उसको उसकी नमाज़ ने अल्लाह से और ज़्यादा दूर कर दिया।" (इब्ने-अबी-हातिम, तबरानी) यही बात जनाब हसन बसरी (रह॰) ने भी अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से मुरसलन (यानी बग़ैर किसी सहाबी के वास्ते के सीधे तौर पर नबी सल्ल॰ से) रिवायत की है। (हदीस : इब्ने-जरीर, बैहक़ी) इब्ने-मसऊद (रज़ि॰) से अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) का यह इरशाद भी रिवायत हुआ है, "उस शख़्स की कोई नमाज़ नहीं है जिसने नमाज़ का हुक्म न माना, और नमाज़ का हुक्म मानना यह है कि आदमी बेहयाई और बुराई के कामों से रुक जाए।" (हदीस : इब्ने-जरीर, इब्ने-अबी-हातिम) इसी मज़मून (विषय) के कई क़ौल (कथन) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰), अब्दुल्लाह-बिन- अब्बास (रज़ि॰), हसन बसरी (रह॰), क़तादा (रह॰) और आमश (रह॰) वग़ैरा से नक़्ल हुए हैं। इमाम जाफ़र सादिक़ (रज़ि॰) फ़रमाते हैं, "जो शख़्स यह मालूम करना चाहे कि उसकी नमाज़ क़बूल हुई है या नहीं, उसे देखना चाहिए कि उसकी नमाज़ ने उसे बेहयाई और बुरे कामों से कहाँ तक रोके रखा। अगर नमाज़ के रोकने से वह बुराइयाँ करने से रुक गया है तो उसकी नमाज़ क़बूल हुई है।" (रूहुल-मआनी)

79. इसके कई मतलब हो सकते हैं। एक यह कि अल्लाह का ज़िक्र (यानी नमाज़) इससे बढ़कर है। उसका असर सिर्फ़ यही नहीं है कि बुराइयों से रोके, बल्कि इससे बढ़कर वह नेकियों पर उभारनेवाली और भलाइयों में दूसरों से आगे बढ़ने पर आमादा करनेवाली चीज़ भी है। दूसरा मतलब यह है कि अल्लाह की याद अपनी जगह ख़ुद बहुत बड़ी चीज़ है। सबसे बेहतर अमल है। इनसान का कोई अमल इससे बढ़कर नहीं है। तीसरा मतलब यह है कि अल्लाह का तुम्हें याद करना तुम्हारे उसको याद करने से ज़्यादा बड़ी चीज़ है। क़ुरआन में अल्लाह तआला ने फ़रमाया है, "तुम मुझे याद करो, मैं तुम्हें याद करूँगा।" (सूरा-2 बक़रा, आयत-152) तो जब बन्दा नमाज़ में अल्लाह को याद करेगा तो ज़रूर ही अल्लाह भी उसको याद करेगा। और यह ख़ुशनसीबी और बड़ाई कि अल्लाह किसी बन्दे को याद करे, इससे बढ़कर है कि बन्दा अल्लाह

وَلَا تُجَادِلُوٓا اَهۡلَ الۡكِتٰبِ اِلَّا بِالَّتِىۡ هِىَ اَحۡسَنُ ۖ اِلَّا الَّذِيۡنَ

(46) और अहले-किताब[80] से बहस न करो मगर उम्दा तरीक़े से[81]—सिवाय उन लोगों

को याद करे। इन तीन मतलबों के अलावा एक और मतलब यह भी है जिसे हज़रत अबुद्दरदा (रज़ि.) की बीवी ने बयान किया है कि अल्लाह तआला की याद नमाज़ तक महदूद नहीं है, बल्कि इसका दायरा इससे बहुत ज़्यादा फैला हुआ है। जब आदमी रोज़ा रखता है, या ज़कात देता है या कोई नेक काम करता है तो यक़ीनन अल्लाह को याद ही करता है, तभी तो उससे वह नेक अमल होता है। इसी तरह जब आदमी किसी बुराई के मौक़े सामने आने पर उससे परहेज़ करता है तो यह भी अल्लाह की याद ही का नतीजा होता है। इसलिए अल्लाह की याद एक ईमानवाले की पूरी ज़िन्दगी पर हावी होती है।

80. वाज़ेह रहे कि आगे चलकर इसी सूरा में हिजरत की नसीहत की जा रही है। उस वक़्त हबशा ही एक ऐसी पनाहगाह और अम्न का मक़ाम था जहाँ मुसलमान हिजरत करके जा सकते थे। और हबशा पर उस ज़माने में ईसाइयों का ग़लबा (प्रभुत्त्व) था। इसलिए इन आयतों में मुसलमानों को हिदायतें दी जा रही हैं कि अहले-किताब से जब वास्ता पड़े तो उनसे दीन के मामले में बहस-मुबाहसे (वार्ता) का क्या अन्दाज़ अपनाएँ।

81. यानी बहस-मुबाहसा अक़्ली दलीलों के साथ, मुहज़्ज़ब और शाइस्ता (सभ्य और शालीन) ज़बान में, और समझने-समझाने की स्प्रिट में होना चाहिए ताकि जिस शख़्स से बहस की जा रही हो उसके ख़यालात को सुधारा जा सके। तबलीग़ करनेवाले को फ़िक्र इस बात की होनी चाहिए कि वह जिससे बात कर रहा है उसके दिल का दरवाज़ा खोलकर हक़ बात उसमें उतार दे और उसे सीधे रास्ते पर लाए। उसको एक पहलवान की तरह नहीं लड़ना चाहिए जिसका मक़सद अपने सामनेवाले को नीचा दिखाना होता है, बल्कि उसको एक हकीम की तरह काम करना चाहिए जो रोगी का इलाज करते हुए हर वक़्त इस बात का ख़याल रखता है कि उसकी अपनी किसी ग़लती से रोगी का रोग और ज़्यादा बढ़ न जाए, और इस बात की पूरी कोशिश करता है कि कम-से-कम तकलीफ़ के साथ रोगी ठीक हो जाए। यह हिदायत इस जगह पर तो मौक़े के हिसाब से अहले-किताब के साथ मुबाहसा करने के मामले में दी गई है, मगर यह अहले-किताब के लिए ख़ास नहीं है, बल्कि दीन की तबलीग़ के सिलसिले में एक आम हिदायत है जो क़ुरआन मजीद में जगह-जगह दी गई है। मिसाल के तौर पर देखें—

"दावत दो अपने रब के रास्ते की तरफ़ हिकमत और उम्दा नसीहत (सदुपदेश) के साथ। और लोगों से मुबाहसा (वाद-विवाद) करो ऐसे तरीक़े पर जो बेहतरीन हो।"

(सूरा-16 नहल, आयत-125)

"भलाई और बुराई बराबर नहीं हैं (मुख़ालिफ़ों के हमलों का) मुक़ाबला ऐसे तरीक़े से करो जो बेहतरीन हो, तुम देखोगे कि वही शख़्स जिसके और तुम्हारे बीच दुश्मनी थी वह ऐसा हो गया है जैसे गर्मजोश दोस्त है।" (सूरा-41 हा-मीम सजदा, आयत-34)

"तुम बुराई को अच्छे ही तरीक़े से दूर करो, हमें मालूम है जो बातें वे (तुम्हारे ख़िलाफ़) बनाते

ظَلَمُوْا مِنْهُمْ وَقُوْلُوْٓا اٰمَنَّا بِالَّذِیْٓ اُنْزِلَ اِلَیْنَا وَاُنْزِلَ اِلَیْكُمْ وَاِلٰهُنَا وَاِلٰهُكُمْ وَاحِدٌ وَّنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ۝۴۶

के जो उनमें से ज़ालिम हों[82]—और उनसे कहो कि "हम ईमान लाए हैं उस चीज़ पर भी जो हमारी तरफ़ भेजी गई है और उस चीज़ पर भी जो तुम्हारी तरफ़ भेजी गई थी, हमारा ख़ुदा और तुम्हारा ख़ुदा एक ही है और हम उसी के मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हैं।"[83]

हैं।" (सूरा-23 मोमिनून, आयत-96)

"अनदेखा कर देने का रवैया अपनाओ, भलाई की नसीहत करो, और जाहिलों के मुँह न लगो, और अगर (जैसे को तैसा जवाब देने के लिए) शैतान तुम्हें उकसाए तो अल्लाह की पनाह माँगो।" (सूरा-7 आराफ़, आयतें—199-200)

82. यानी जो लोग ज़ुल्म का रवैया अपनाएँ उनके साथ उनके ज़ुल्म की क़िस्म के लिहाज़ से अलग-अलग रवैया भी अपनाया जा सकता है। मतलब यह है कि हर वक़्त हर हाल में और हर तरह के लोगों के मुक़ाबले में नर्म और मीठे ही न बने रहना चाहिए कि दुनिया हक़ की दावत देनेवाले की शराफ़त को कमज़ोरी और बेबसी समझ बैठे। इस्लाम अपने माननेवालों को शाइस्तगी (शालीनता), शराफ़त और सही रवैया अपनाना तो ज़रूर सिखाता है, मगर बेबसी और बेचारगी नहीं सिखाता कि वह हर ज़ालिम के लिए नर्म चारा बनकर रहें।

83. इन जुमलों में अल्लाह तआला ने ख़ुद बहस के उस उम्दा तरीक़े की तरफ़ रहनुमाई की है जिसे हक़ की तबलीग़ का काम करनेवालों को अपनाना चाहिए। इसमें यह सिखाया गया है कि जिस शख़्स से तुम्हें बहस करनी हो उसकी गुमराही को लेकर बहस शुरू मत करो, बल्कि बात इससे शुरू करो कि हक़ और सच्चाई की वे कौन-सी बातें हैं जो तुम्हारे और उसके बीच एक जैसी हैं। यानी बात की शुरुआत इख़्तिलाफ़वाली बातों से नहीं बल्कि उन बातों से होनी चाहिए जो उनके और तुम्हारे बीच एक हैं। फिर इन्हीं बातों से जो तुम्हारे बीच एक हैं दलील लेकर सामनेवाले को यह समझाने की कोशिश करनी चाहिए कि जिन मामलों में तुम्हारे और उसके बीच इख़्तिलाफ़ है उनमें तुम्हारी राय उन बुनियादों से मेल खाती है जिनमें सभी लोग एक राय हैं और उसकी राय उनसे टकराती है।

इस सिलसिले में यह समझ लेना चाहिए कि अहले-किताब अरब के मुशरिकों की तरह वह्य, रिसालत (पैग़म्बरी) और तौहीद (एकेश्वरवाद) का इनकार न करते थे बल्कि मुसलमानों की तरह इन सब हक़ीक़तों को मानते थे। इन बुनियादी बातों में एकराय होने के बाद अगर कोई बड़ी चीज़ इख़्तिलाफ़ की बुनियाद हो सकती थी तो वह यह कि मुसलमान उनके यहाँ आई हुई आसमानी किताबों को न मानते और अपने यहाँ आई हुई किताब पर ईमान लाने की उन्हें दावत देते और उसके न मानने पर उन्हें हक़ का इनकारी ठहराते। यह झगड़े की बड़ी मज़बूत वजह होती, लेकिन मुसलमानों का रवैया इससे अलग था। वे उन तमाम किताबों को सही

وَكَذٰلِكَ اَنْزَلْنَآ اِلَيْكَ الْكِتٰبَ ؕ فَالَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ
يُؤْمِنُوْنَ بِهٖ ۚ وَمِنْ هٰٓؤُلَآءِ مَنْ يُّؤْمِنُ بِهٖ ؕ وَمَا يَجْحَدُ بِاٰيٰتِنَآ اِلَّا

(47) (ऐ नबी) हमने इसी तरह तुम्हारी तरफ़ किताब उतारी है,[84] इसलिए वे लोग जिनको हमने पहले किताब दी थी, वे इसपर ईमान लाते हैं,[85] और इन लोगों में से भी बहुत-से इसपर ईमान ला रहे हैं,[86] और हमारी आयतों का इनकार सिर्फ़

मानते थे जो अहले-किताब के पास मौजूद थीं और फिर उस वह्य पर ईमान लाए थे जो मुहम्मद (सल्ल॰) पर उतरी थी। इसके बाद यह बताना अहले-किताब का काम था कि किस सही वजह से वे ख़ुदा ही की उतारी हुई एक किताब को मानते और दूसरी किताब का इनकार करते हैं। इसी लिए अल्लाह तआला ने यहाँ मुसलमानों को नसीहत की है कि अहले-किताब से जब मामला पड़े तो सबसे पहले मुसबत (सकारात्मक) तौर पर अपनी यही राय उनके सामने पेश करो। उनसे कहो कि जिस ख़ुदा को तुम मानते हो उसी को हम मानते हैं और हम उसके फ़रमाँबरदार हैं। उसकी तरफ़ से जो हुक्म और हिदायतें और तालीमात भी आई हैं उन सबको हम मानते हैं, चाहे तुम्हारे यहाँ आई हों या हमारे यहाँ। हम तो हुक्म के बन्दे हैं। देश और क़ौम और नस्ल के बन्दे नहीं हैं कि एक जगह ख़ुदा का हुक्म आए तो हम मानें और उसी ख़ुदा का हुक्म दूसरी जगह आए तो हम उसको न मानें। क़ुरआन मजीद में यह बात जगह-जगह दोहराई गई है और ख़ास तौर से अहले-किताब से जहाँ मामला पेश आया है, वहाँ तो इसे ज़ोर देकर बयान किया गया है। मिसाल के तौर पर देखिए— सूरा-2 बक़रा, आयतें—4, 136, 177, 285; सूरा-3 आले-इमरान, आयत-84; सूरा-4 निसा, आयतें—136, 150-152, 162-164; सूरा-42 शूरा, आयत-13।

84. इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि जिस तरह पहले नबियों (पैग़म्बरों) पर हमने किताबें उतारी थीं उसी तरह अब यह किताब तुमपर उतारी है। दूसरा मतलब यह है कि हमने इसी तालीम के साथ यह किताब उतारी है कि हमारी पिछली किताबों का इनकार करके नहीं बल्कि उन सबका इक़रार करते हुए इसे माना जाए।

85. मौक़ा-महल ख़ुद बता रहा है कि इससे मुराद तमाम अहले-किताब नहीं हैं, बल्कि वे अहले-किताब हैं जिनको अल्लाह की किताबों का सही इल्म और सही समझ हासिल थी, जो "किसी चौपाए पर कुछ किताबें लाद दी जाएँ" की तरह सिर्फ़ किताब ढोनेवाले क़िस्म के अहले-किताब नहीं थे, बल्कि सही मानी में अहले-किताब थे। उनके सामने जब अल्लाह की तरफ़ से उसकी पिछली किताबों की तसदीक़ (पुष्टि) करती हुई यह आख़िरी किताब आई तो उन्होंने किसी ज़िद और हठधर्मी और तास्सुब से काम न लिया और उसे भी वैसे ही सच्चे दिल के साथ मान लिया जिस तरह पिछली किताबों को मानते थे।

86. 'इन लोगों' का इशारा अरबवालों की तरफ़ है। मतलब यह है कि हक़पसन्द लोग हर जगह इसपर ईमान ला रहे हैं, चाहे वे अहले-किताब में से हों या दूसरे लोगों में से।

الْكٰفِرُوْنَ۝ وَمَا كُنْتَ تَتْلُوْا مِنْ قَبْلِهٖ مِنْ كِتٰبٍ وَّلَا تَخُطُّهٗ
بِيَمِيْنِكَ اِذًا لَّارْتَابَ الْمُبْطِلُوْنَ۝ بَلْ هُوَ اٰيٰتٌۢ بَيِّنٰتٌ فِيْ صُدُوْرِ

कुफ़्र करनेवाले (विधर्मी) ही करते हैं।[87]

(48) (ऐ नबी) तुम इससे पहले कोई किताब नहीं पढ़ते थे और न अपने हाथ से लिखते थे, अगर ऐसा होता तो बातिल-परस्त (असत्यवादी) लोग शक में पड़ सकते थे।[88] (49) अस्ल में ये रौशन निशानियाँ हैं उन लोगों के दिलों में जिन्हें इल्म

87. यहाँ कुफ़्र करनेवालों से मुराद वे लोग हैं जो अपने तास्सुबात (दुराग्रहों) को छोड़कर हक़ बात मानने के लिए तैयार नहीं हैं, या वे जो अपनी मन की ख़ाहिशों और अपनी बे-लगाम आज़ादियों पर पाबन्दियाँ क़बूल करने से जी चुराते हैं और इस वजह से हक़ का इनकार करते हैं।

88. यह नबी (सल्ल॰) की नुबूवत के सुबूत में वही दलील है जो इससे पहले सूरा-10 यूनुस और सूरा-28 क़सस में गुज़र चुकी है (देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-10 यूनुस, हाशिया-21; सूरा-28 क़सस, हाशिया-64, 109। इस मज़मून (विषय) को और ज़्यादा तफ़सील से जानने के लिए तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, हाशिया-107; सूरा-17 बनी-इसराईल, हाशिया-105; सूरा-23 मोमिनून, हाशिया-66; सूरा-25 फ़ुरक़ान, और सूरा-42 शूरा, हाशिया-84 का मुताला भी फ़ायदेमन्द होगा।)

इस आयत में दलील की बुनियाद यह है कि नबी (सल्ल॰) अनपढ़ थे। आप (सल्ल॰) के वतन के लोग और रिश्ते और बिरादरी के लोग जिनके बीच जन्म के दिन से अधेड़ उम्र को पहुँचने तक आप (सल्ल॰) की सारी ज़िन्दगी गुज़री थी, इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि आप (सल्ल॰) ने उम्र भर न कभी कोई किताब पढ़ी, न क़लम हाथ में लिया। इस हक़ीक़त को पेश करके अल्लाह तआला फ़रमाता है कि यह इस बात का खुला हुआ सुबूत है कि आसमानी किताबों की तालीमात, पिछले नबियों के हालात, दूसरे मज़हबों के अक़ीदों, पुरानी क़ौमों के इतिहास, और रहन-सहन, अख़लाक़ और मईशत (अर्थशास्त्र) के अहम मसलों पर जिस फैले हुए और गहरे इल्म का इज़हार इस उम्मी (अनपढ़) की ज़बान से हो रहा है, यह उसको वह्य के सिवा किसी दूसरे ज़रिए से हासिल नहीं हो सकता था। अगर इसको लिखना-पढ़ना आता होता और लागों ने कभी इसे किताबें पढ़ते, मुताला और तहक़ीक़ करते देखा होता तो बातिल-परस्तों (असत्यवादियों) के लिए शक करने की कुछ बुनियाद हो भी सकती थी कि यह इल्म वह्य से नहीं बल्कि अपनी मेहनत से या कहीं और से हासिल किया गया है। लेकिन उसके उम्मी होने ने तो ऐसे किसी शक के लिए नाम की भी कोई बुनियाद बाक़ी नहीं छोड़ी है। अब ख़ालिस हठधर्मी के सिवा उसकी पैग़म्बरी का इनकार करने की और कोई वजह नहीं है जिसे किसी दर्जे में भी मुनासिब और अक़्ल के मुताबिक़ कहा जा सकता हो।

الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْعِلْمَ ۭ وَمَا يَجْحَدُ بِاٰيٰتِنَآ اِلَّا الظّٰلِمُوْنَ ۝ وَقَالُوْا لَوْلَآ
اُنْزِلَ عَلَيْهِ اٰيٰتٌ مِّنْ رَّبِّهٖ ۭ قُلْ اِنَّمَا الْاٰيٰتُ عِنْدَ اللّٰهِ ۭ وَاِنَّمَآ اَنَا نَذِيْرٌ
مُّبِيْنٌ ۝ اَوَلَمْ يَكْفِهِمْ اَنَّآ اَنْزَلْنَا عَلَيْكَ الْكِتٰبَ يُتْلٰى عَلَيْهِمْ ۭ

दिया गया है,[89] और हमारी आयतों का इनकार नहीं करते मगर वे जो ज़ालिम हैं। (50) ये लोग कहते हैं कि "क्यों न उतारी गईं इस शख़्स पर निशानियाँ[90] इसके रब की तरफ़ से?" कहो, "निशानियाँ तो अल्लाह के पास हैं और मैं सिर्फ़ ख़बरदार करनेवाला हूँ खोल-खोलकर।" (51) और क्या इन लोगों के लिए यह (निशानी) काफ़ी नहीं है कि हमने तुमपर किताब उतारी जो इन्हें पढ़कर सुनाई जाती है?[91]———

89. यानी एक उम्मी (अनपढ़) का क़ुरआन जैसी किताब पेश करना और अचानक उन ग़ैर-मामूली और इन्तिहाई ख़ूबियों को ज़ाहिर करना जिनके लिए किसी पहले से की गई तैयारी के आसार कभी किसी के देखने में नहीं आए, यही समझ-बूझ रखनेवालों की निगाह में उसकी पैग़म्बरी की दलील देनेवाली सबसे रौशन निशानियाँ हैं। दुनिया की तारीख़ी (ऐतिहासिक) हस्तियों में से जिसके हालात का भी जाइज़ा लिया जाए, आदमी उसके अपने माहौल में उन असबाब (साधनों) का पता चला सकता है जो उसकी शख़्सियत बनाने और उससे ज़ाहिर होनेवाले कमालात के लिए उसको तैयार करने में लगे हुए थे। उसके माहौल में और इस बात में कि उसकी शख़्सियत किन-किन चीज़ों से वुजूद में आई है खुली मुनासिबत (अनुकूलता) पाई जाती है। लेकिन मुहम्मद (सल्ल॰) की शख़्सियत से जो हैरतअंगेज़ कमालात ज़ाहिर हो रहे थे, आप (सल्ल॰) के माहौल में इस बात को तलाश नहीं किया जा सकता कि ये कमालात और ख़ूबियाँ उन्हें कैसे हासिल हुईं। यहाँ न उस वक़्त के अरब समाज में, और न आसपास के जिन देशों से अरब के ताल्लुक़ात थे उनके समाज में, कहीं दूर-दराज़ से भी वे चीज़ें ढूँढ़कर नहीं निकाली जा सकतीं जो मुहम्मद (सल्ल॰) की शख़्सियत के अन्दर पाई जानेवाली बातों से किसी तरह मेल खाती हों। यही हक़ीक़त है जिसकी बुनियाद पर यहाँ कहा गया है कि मुहम्मद (सल्ल॰) का वुजूद एक निशानी नहीं बल्कि बहुत-सी रौशन निशानियों का ख़ज़ाना है। जाहिल आदमी को इसमें कोई निशानी नज़र न आती हो तो न आए, मगर जो लोग इल्म रखनेवाले हैं वे इन निशानियों को देखकर अपने दिलों में कहने लगे हैं कि यह शान एक पैग़म्बर ही की हो सकती है।

90. यानी मोजिज़े (चमत्कार) जिन्हें देखकर यक़ीन आए कि सचमुच मुहम्मद (सल्ल॰) अल्लाह के पैग़म्बर हैं।

91. यानी उम्मी होने के बावजूद तुमपर क़ुरआन जैसी किताब का उतरना, क्या यह अपनी जगह ख़ुद इतना बड़ा मोजिज़ा (चमत्कार) नहीं है कि तुम्हारे पैग़म्बर होने पर यक़ीन लाने के लिए यह काफ़ी हो? इसके बाद भी किसी और मोजिज़े की ज़रूरत बाक़ी रह जाती है? दूसरे मोजिज़े तो

जिन्होंने देखे उनके लिए वे मोजिज़े थे। मगर यह मोजिज़ा तो हर वक़्त तुम्हारे सामने है। तुम्हें आए दिन पढ़कर सुनाया जाता है। तुम हर वक़्त उसे देख सकते हो।

क़ुरआन मजीद के इस बयान और दलील देने के बाद उन लोगों की जसारत (दुस्साहस) हैरतअंगेज़ है जो नबी (सल्ल॰) को पढ़ा-लिखा साबित करने की कोशिश करते हैं। हालाँकि यहाँ क़ुरआन साफ़ अलफ़ाज़ में नबी (सल्ल॰) के अनपढ़ होने को आप (सल्ल॰) की पैग़म्बरी के हक़ में एक ताक़तवर सुबूत के तौर पर पेश कर रहा है। जिन रिवायतों का सहारा लेकर यह दावा किया जाता है कि नबी (सल्ल॰) पढ़े-लिखे थे, या बाद में आप (सल्ल॰) ने लिखना-पढ़ना सीख लिया था, वे अव्वल तो पहली ही नज़र में रद्द कर देने के लायक़ हैं; क्योंकि क़ुरआन के ख़िलाफ़ कोई रिवायत भी क़बूल करने लायक़ नहीं हो सकती। फिर वह अपनी जगह ख़ुद भी इतनी कमज़ोर हैं कि उनपर किसी दलील की बुनियाद क़ायम नहीं हो सकती। इनमें से एक बुख़ारी की यह रिवायत है कि हुदैबिया की सुलह (सन्धि) का मुआहदा (समझौता पत्र) जब लिखा जा रहा था तो मक्का के इस्लाम-दुश्मनों के नुमाइन्दे ने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के नाम के साथ 'रसूलुल्लाह' (अल्लाह का रसूल) लिखे जाने पर एतिराज़ किया। इसपर नबी (सल्ल॰) ने लिखनेवाले (हज़रत अली रज़ि॰) को हुक्म दिया कि अच्छा 'रसूलुल्लाह' का लफ़्ज़ काटकर 'मुहम्मद-बिन-अब्दुल्लाह' लिख दो। हज़रत अली (रज़ि॰) ने लफ़्ज़ 'रसूलुल्लाह' काटने से इनकार कर दिया। इसपर नबी (सल्ल॰) ने उनके हाथ से क़लम लेकर वे अलफ़ाज़ ख़ुद काट दिए और मुहम्मद-बिन-अब्दुल्लाह लिख दिया।

लेकिन यह रिवायत बरा-बिन-आज़िब (रज़ि॰) से (हदीस) बुख़ारी में चार जगह और (हदीस) मुस्लिम में दो जगह आई है और हर जगह अलफ़ाज़ अलग-अलग हैं–

(1) बुख़ारी किताबुस्सुलह में एक रिवायत के अलफ़ाज़ ये हैं, "नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अली (रज़ि॰) से फ़रमाया, "ये अलफ़ाज़ काट दो!" उन्होंने अर्ज़ किया, "मैं तो नहीं काट सकता।" आख़िरकार नबी (सल्ल॰) ने अपने हाथ से उन्हें काट दिया।

(2) इसी किताब की दूसरी रिवायत के अलफ़ाज़ ये हैं, "फिर अली (रज़ि॰) से कहा, 'रसूलुल्लाह' काट दो।" उन्होंने कहा, "ख़ुदा की क़सम! मैं आपका नाम कभी न काटूँगा।" आख़िर नबी (सल्ल॰) ने तहरीर लेकर लिखा, "यह वह मुआहदा (समझौता) है जो मुहम्मद-बिन-अब्दुल्लाह ने तय किया।"

(3) तीसरी रिवायत इन्हीं बरा-बिन-आज़िब (रज़ि॰) से बुख़ारी किताबुल-जिज़्या में यह है–"नबी (सल्ल॰) ख़ुद न लिख सकते थे। आप (सल्ल॰) ने हज़रत अली (रज़ि॰) से कहा, "रसूलुल्लाह काट दो।" उन्होंने अर्ज़ किया, "ख़ुदा की क़सम! मैं ये अलफ़ाज़ हरगिज़ न काटूँगा!" इसपर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मुझे वह जगह बताओ जहाँ ये अलफ़ाज़ लिखे हैं।" उन्होंने आप (सल्ल॰) को जगह बताई और आप (सल्ल॰) ने अपने हाथ से वे अलफ़ाज़ काट दिए।

(4) चौथी रिवायत बुख़ारी किताबुल-मग़ाज़ी में यह है– "तो अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने वह तहरीर (लेख) ले ली, हालाँकि आप (सल्ल॰) लिखना न जानते थे और आप (सल्ल॰) ने लिखा यह वह मुआहदा है जो मुहम्मद-बिन-अब्दुल्लाह ने तय किया।"

(5) इन्हीं बरा-बिन-आज़िब (रज़ि॰) से मुस्लिम किताबुल-जिहाद में एक रिवायत यह है कि

हज़रत अली (रज़ि॰) के इनकार करने पर अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने अपने हाथ से 'रसूलुल्लाह' के अलफ़ाज़ मिटा दिए।

(6) दूसरी रिवायत इसी किताब में उनसे यह नक़्ल हुई है कि नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अली (रज़ि॰) से फ़रमाया, "मुझे बताओ रसूलुल्लाह लफ़्ज़ कहाँ लिखा है?" हज़रत अली (रज़ि॰) ने आप (सल्ल॰) को जगह बताई, और आप (सल्ल॰) ने उसे मिटाकर 'इब्ने-अब्दुल्लाह' लिख दिया।

रिवायतों का यूँ अलग-अलग होना साफ़ बता रहा है कि बीच के रावियों ने हज़रत बरा-बिन-आज़िब (रज़ि॰) के अलफ़ाज़ ज्यों-के-त्यों नक़्ल नहीं किए हैं, इसलिए उनमें से किसी एक की नक़्ल पर भी ऐसा मुकम्मल भरोसा नहीं किया जा सकता कि यक़ीनी तौर पर यह कहा जा सके कि नबी (सल्ल॰) ने 'मुहम्मद-बिन-अब्दुल्लाह' के अलफ़ाज़ अपने मुबारक हाथ ही से लिखे थे। हो सकता है कि सही सूरतेहाल यह हो कि जब हज़रत अली (रज़ि॰) ने 'रसूलुल्लाह' का लफ़्ज़ मिटाने से इनकार कर दिया तो आप (सल्ल॰) ने उसकी जगह उनसे पूछकर यह लफ़्ज़ अपने हाथ से मिटा दिया हो और फिर उनसे या किसी दूसरे लिखनेवाले से इब्ने-अब्दुल्लाह के अलफ़ाज़ लिखवा दिए हों। दूसरी रिवायतों से मालूम होता है कि इस मौक़े पर सुलहनामा दो कातिब (लिखनेवाले) लिख रहे थे। एक हज़रत अली (रज़ि॰) और दूसरे मुहम्मद-बिन-मसलमा (फ़तहुल-बारी, हिस्सा-5, पेज-217) इसलिए यह बात नामुमकिन नहीं कि जो काम एक कातिब ने न किया था वह दूसरे कातिब से ले लिया गया हो। फिर भी अगर सच्चाई यही हो कि नबी (सल्ल॰) ने अपना नाम अपने ही मुबारक हाथ से लिखा हो तो ऐसी मिसालें दुनिया में बहुत पाई जाती हैं कि अनपढ़ लोग सिर्फ़ अपना नाम लिखना सीख लेते हैं, बाक़ी कोई चीज़ न पढ़ सकते हैं न लिख सकते हैं।

दूसरी रिवायत जिसकी बुनियाद पर नबी (सल्ल॰) के पढ़े-लिखे होने का दावा किया गया है मुजाहिद से इब्ने-अबी-शैबा और उमर-बिन-शुबह ने नक़्ल की है। उसके अलफ़ाज़ ये हैं, "अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) अपने इन्तिक़ाल से पहले लिखना-पढ़ना सीख चुके थे।" लेकिन अव्वल तो यह सनद के एतिबार से बहुत कमज़ोर रिवायत है जैसा कि हाफ़िज़ इब्ने-कसीर फ़रमाते हैं, "यह (रिवायत) कमज़ोर है और इसकी कोई अस्ल नहीं है।" दूसरे इसकी कमज़ोरी यूँ भी सामने आ जाती है कि अगर नबी (सल्ल॰) ने सचमुच बाद में लिखना-पढ़ना सीखा होता तो यह बात मशहूर हो जाती, बहुत-से सहाबा उसको रिवायत करते और यह भी मालूम हो जाता कि नबी (सल्ल॰) ने किस आदमी या किन आदमियों से यह तालीम हासिल की थी। लेकिन सिवाय एक औन-बिन-अब्दुल्लाह के, जिनसे मुजाहिद ने यह बात सुनी, और कोई शख़्स इसे रिवायत नहीं करता। और यह औन भी सहाबी नहीं, बल्कि ताबिई हैं जिन्होंने यह बिलकुल नहीं बताया कि उन्हें किस सहाबी या किन सहाबियों से इस बात की जानकारी हुई। ज़ाहिर है कि ऐसी कमज़ोर रिवायतों की बुनियाद पर कोई ऐसी बात मानने के लायक़ नहीं हो सकती जो मशहूर और जाने-माने वाक़िआत का रद्द करती हो।

ع ٥

اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَرَحْمَةً وَّذِكْرٰى لِقَوْمٍ يُّؤْمِنُوْنَ﴿٥١﴾ قُلْ كَفٰى بِاللّٰهِ بَيْنِيْ
وَبَيْنَكُمْ شَهِيْدًا ۚ يَعْلَمُ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ۗ وَالَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا بِالْبَاطِلِ وَكَفَرُوْا بِاللّٰهِ ۙ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْخٰسِرُوْنَ﴿٥٢﴾
وَيَسْتَعْجِلُوْنَكَ بِالْعَذَابِ ۗ وَلَوْلَآ اَجَلٌ مُّسَمًّى لَّجَآءَهُمُ الْعَذَابُ ۗ
وَلَيَاْتِيَنَّهُمْ بَغْتَةً وَّهُمْ لَا يَشْعُرُوْنَ﴿٥٣﴾ يَسْتَعْجِلُوْنَكَ بِالْعَذَابِ ۗ
وَاِنَّ جَهَنَّمَ لَمُحِيْطَةٌ ۢ بِالْكٰفِرِيْنَ﴿٥٤﴾ يَوْمَ يَغْشٰىهُمُ الْعَذَابُ مِنْ
فَوْقِهِمْ وَمِنْ تَحْتِ اَرْجُلِهِمْ وَيَقُوْلُ ذُوْقُوْا مَا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ﴿٥٥﴾

हक़ीक़त में इसमें रहमत (दयालुता) है और नसीहत (उपदेश) उन लोगों के लिए जो ईमान लाते हैं।[92] (52) (ऐ नबी) कहो कि "मेरे और तुम्हारे बीच अल्लाह गवाही के लिए काफ़ी है। वह आसमानों और ज़मीन में सबकुछ जानता है। जो लोग बातिल (असत्य) को मानते हैं और अल्लाह से कुफ़्र करते हैं वही घाटे में रहनेवाले हैं।

(53) ये लोग तुमसे अज़ाब जल्दी लाने की माँग करते हैं।[93] अगर एक वक़्त मुक़र्रर न कर दिया गया होता तो उनपर अज़ाब आ चुका होता। और यक़ीनन (अपने वक़्त पर) वह आकर रहेगा अचानक, इस हाल में कि इन्हें ख़बर भी न होगी। (54) ये तुमसे अज़ाब जल्दी लाने की माँग करते हैं, हालाँकि जहन्नम इन इनकारियों को घेरे में ले चुकी है (55) (और इन्हें पता चलेगा) उस दिन जबकि अज़ाब इन्हें ऊपर से भी ढाँक लेगा और पाँव के नीचे से भी और कहेगा कि अब चखो मज़ा उन करतूतों का जो तुम करते थे।

92. यानी बेशक इस किताब का उतरना अल्लाह तआला की बहुत बड़ी मेहरबानी है और इसमें बन्दों के लिए बड़ी नसीहतें हैं, मगर इसका फ़ायदा सिर्फ़ वही लोग उठा सकते हैं जो इसपर ईमान लाएँ।

93. यानी बार-बार चैलेंज के अन्दाज़ में माँग कर रहे हैं कि अगर तुम रसूल (पैग़म्बर) हो और हम सचमुच हक़ को झुठला रहे हैं तो हमपर वह अज़ाब क्यों नहीं ले आते जिसके डरावे तुम हमें दिया करते हो।

يٰعِبَادِيَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنَّ اَرْضِيْ وَاسِعَةٌ فَاِيَّايَ فَاعْبُدُوْنِ ﴿٥٦﴾ كُلُّ
نَفْسٍ ذَآئِقَةُ الْمَوْتِ ثُمَّ اِلَيْنَا تُرْجَعُوْنَ ﴿٥٧﴾ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا
الصّٰلِحٰتِ لَنُبَوِّئَنَّهُمْ مِّنَ الْجَنَّةِ غُرَفًا تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ

---

(56) ऐ मेरे बन्दो जो ईमान लाए हो, मेरी ज़मीन बहुत फैली हुई है, तो तुम मेरी ही बन्दगी करो।[94] (57) हर जानदार को मौत का मज़ा चखना है, फिर तुम सब हमारी तरफ़ ही पलटाकर लाए जाओगे।[95] (58) जो लोग ईमान लाए हैं और जिन्होंने भले काम किए हैं उनको हम जन्नत की ऊँची-ऊँची इमारतों में रखेंगे जिनके नीचे नहरें बहती होंगी,

---

94. यह इशारा है हिजरत की तरफ़। मतलब यह है कि अगर मक्का में ख़ुदा की बन्दगी मुश्किल हो रही है तो देश छोड़कर निकल जाओ, ख़ुदा की ज़मीन तंग नहीं है। जहाँ भी तुम ख़ुदा के बन्दे बनकर रह सकते हो वहाँ चले जाओ। तुमको क़ौम और वतन की नहीं, बल्कि अपने ख़ुदा की बन्दगी करनी चाहिए। इससे मालूम हुआ कि अस्ल चीज़ क़ौम, वतन और देश नहीं है बल्कि अल्लाह की बन्दगी है। अगर किसी वक़्त क़ौम और वतन और देश की मुहब्बत के तक़ाज़े अल्लाह की बन्दगी के तक़ाज़ों से टकरा जाएँ तो वही वक़्त ईमानवाले के ईमान की आज़माइश का होता है। जो सच्चा ईमानवाला है वह अल्लाह की बन्दगी करेगा और क़ौम, वतन और देश को लात मार देगा। जो ईमान का झूठा दावेदार है वह ईमान को छोड़ देगा और अपनी क़ौम और अपने देश और वतन से चिमटा रहेगा। यह आयत इस सिलसिले में बिलकुल साफ़ है कि एक सच्चा ख़ुदापरस्त इनसान क़ौम और वतन से मुहब्बत करनेवाला तो हो सकता है मगर क़ौमपरस्त और वतनपरस्त नहीं हो सकता। उसके लिए ख़ुदा की बन्दगी हर चीज़ से प्यारी है जिसपर दुनिया की हर चीज़ वह क़ुरबान कर देगा मगर उसे दुनिया की किसी चीज़ पर भी क़ुरबान न करेगा।

95. यानी जान की फ़िक्र न करो। यह तो कभी-न-कभी जानी ही है। हमेशा रहने के लिए तो कोई भी दुनिया में नहीं आया है। लिहाज़ा तुम्हारे लिए फ़िक्र के लायक़ मसला यह नहीं है कि इस दुनिया में जान कैसे बचाई जाए, बल्कि अस्ल फ़िक्र के लायक़ मसला यह है कि ईमान कैसे बचाया जाए और ख़ुदापरस्ती के तक़ाज़े कैसे पूरे किए जाएँ। आख़िरकार तुम्हें पलटकर हमारी तरफ़ ही आना है। अगर दुनिया में जान बचाने के लिए ईमान खोकर आए तो इसका नतीजा कुछ और होगा, और ईमान बचाने के लिए जान खो आए तो इसका अंजाम कुछ दूसरा होगा। इसलिए फ़िक्र जो कुछ भी करनी है इस बात की करो कि हमारी तरफ़ जब पलटोगे तो क्या लेकर पलटोगे, जान पर क़ुरबान किया हुआ ईमान? या ईमान पर क़ुरबान की हुई जान?

خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ۭ نِعْمَ اَجْرُ الْعٰمِلِيْنَ ۝ الَّذِيْنَ صَبَرُوْا
وَعَلٰى رَبِّهِمْ يَتَوَكَّلُوْنَ ۝ وَكَاَيِّنْ مِّنْ دَاۗبَّةٍ لَّا تَحْمِلُ
رِزْقَهَا ڰ اَللّٰهُ يَرْزُقُهَا وَاِيَّاكُمْ ڮ وَهُوَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ۝

वहाँ वे हमेशा रहेंगे, क्या ही अच्छा बदला है अमल करनेवालों के लिए।[96]—(59) उन लोगों के लिए जिन्होंने सब्र किया है[97] और जो अपने रब पर भरोसा करते हैं।[98] (60) कितने ही जानवर हैं जो अपनी रोज़ी उठाए नहीं फिरते, अल्लाह उनको रोज़ी देता है और तुम्हें रोज़ी देनेवाला भी वही है, वह सबकुछ सुनता और जानता है।[99]

96. यानी अगर ईमान और नेकी के रास्ते पर चलकर मान लो तुम दुनिया की सारी नेमतों से महरूम (वंचित) भी रह गए और दुनियावी नज़रिए से सरासर नाकाम भी मरे तो यक़ीन रखो कि इसकी भरपाई बहरहाल होगी और निरी भरपाई ही न होगी बल्कि बेहतरीन इनाम मिलेगा।

97. यानी जो हर तरह की मुश्किलों और मुसीबतों और नुक़सानों और तकलीफ़ों के मुक़ाबले में ईमान पर क़ायम रहे हैं, जिन्होंने ईमान लाने के ख़तरों को अपनी जान पर झेला है और मुँह नहीं मोड़ा है, ईमान छोड़ने के फ़ायदों और लाभों को अपनी आँखों से देखा है और उनकी तरफ़ ज़र्रा बराबर भी नहीं झुके हैं। अल्लाह का इनकार करनेवालों और उसके नाफ़रमानों को अपने सामने फलते-फूलते देखा है और उनकी दौलत और शानो-शौकत पर एक निगाह भी ग़लत अन्दाज़ में नहीं डाली है।

98. यानी जिन्होंने भरोसा अपनी जायदादों और अपने कारोबारों और अपने ख़ानदान और क़बीले पर नहीं बल्कि अपने रब पर किया। जो दुनिया के असबाब (संसाधनों) को नज़र-अन्दाज़ करके सिर्फ़ अपने रब के भरोसे पर ईमान की ख़ातिर हर ख़तरा सहने और हर ताक़त से टकरा जाने के लिए तैयार हो गए, और वक़्त आया तो घर-द्वार छोड़कर निकल खड़े हुए। जिन्होंने अपने रब पर यह भरोसा किया कि ईमान और नेकी पर क़ायम रहने का बदला उसके यहाँ कभी बरबाद न होगा और यक़ीन रखा कि वह अपने ईमानवाले और नेक बन्दों की इस दुनिया में भी मदद करेगा और आख़िरत में भी उनके अमल का बेहतरीन बदला देगा।

99. यानी हिजरत करने में तुम्हें जान की फ़िक्र की तरह रोज़गार की फ़िक्र से भी परेशान न होना चाहिए। आख़िर ये अनगिनत जानवर और परिन्दे और पानी के जानवर जो तुम्हारी आँखों के सामने हवा और ख़ुश्की और पानी में फिर रहे हैं, इनमें से कौन अपना रिज़्क़ (खाना) उठाए फिरता है? अल्लाह ही तो इन सबको पाल रहा है। जहाँ जाते हैं अल्लाह की मेहरबानी से इनको किसी-न-किसी तरह रिज़्क़ मिल ही जाता है। लिहाज़ा तुम यह सोच-सोचकर हिम्मत न हारो कि अगर ईमान की ख़ातिर घर-द्वार छोड़कर निकल गए तो खाएँगे कहाँ से। अल्लाह जहाँ से अपने अनगिनत पैदा किए हुओं को रिज़्क़ (रोज़ी) दे रहा है, तुम्हें भी देगा।

وَلَئِنْ سَاَلْتَهُمْ مَّنْ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ وَسَخَّرَ الشَّمْسَ وَالْقَمَرَ

(61) अगर तुम[100] इन लोगों से पूछो कि ज़मीन और आसमानों को किसने पैदा किया है और चाँद और सूरज को किसने ख़िदमत में लगा रखा है तो ज़रूर

ठीक यही बात है जो हज़रत मसीह (अलैहि.) ने अपने हवारियों (साथियों) से कही थी। उन्होंने कहा—

"कोई आदमी दो मालिकों की सेवा नहीं कर सकता; क्योंकि वह एक से दुश्मनी और दूसरे से प्रेम रखेगा, या एक से मिला रहेगा और दूसरे को तुच्छ समझेगा। तुम ख़ुदा और दौलत दोनों की सेवा नहीं कर सकते। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि अपनी जान की फ़िक्र न करना कि हम क्या खाएँगे, क्या पिएँगे, और न अपने बदन की कि क्या पहनेंगे। क्या प्राण खाने से और बदन कपड़ों से बढ़कर नहीं? आकाश के परिन्दों को देखो कि न बोते हैं, न काटते हैं, न कोठियों में जमा करते हैं। फिर भी तुम्हारा आसमानी बाप उनको खिलाता है। क्या तुम उनसे ज़्यादा मूल्य नहीं रखते? तुममें से ऐसा कौन है जो फ़िक्र करके अपनी उम्र में एक घड़ी भी बढ़ा सके? और पोशाक (कपड़ों) के लिए क्यों फ़िक्र करते हो? जंगली सूसन के पेड़ों को ग़ौर से देखो कि वे किस तरह बढ़ते हैं। वे न मेहनत करते हैं, न कातते हैं, फिर भी मैं तुमसे कहता हूँ कि सुलैमान भी बावजूद अपनी सारी शानो-शौकत के उनमें से किसी की तरह पोशाकवाला न था। तो जब ख़ुदा मैदान की घास को जो आज है और कल तन्दूर में झोंकी जाएगी, ऐसा लिबास पहनाता है तो ऐ कम यक़ीन करनेवालो, तुमको क्यों न वह पहनाएगा। इसलिए फ़िक्रमन्द न हो कि हम क्या खाएँगे या क्या पिएँगे या क्या पहनेंगे। इन सब चीज़ों की तलाश में तो ग़ैर-क़ौमें रहती हैं। तुम्हारा आसमानी बाप जानता है कि तुम इन सब चीज़ों के मुहताज हो। अतः तुम पहले उसकी बादशाही और उसकी सच्चाई को खोजो। ये सब चीज़ें भी तुम्हें मिल जाएँगी। कल के लिए फ़िक्र न करो। कल का दिन अपनी फ़िक्र आप कर लेगा। आज के लिए आज ही का दुख काफ़ी है।" (मत्ती, अध्याय-6, आयतें—24-34)

क़ुरआन और इंजील की इन बातों का पसमंज़र (पृष्ठभूमि) एक ही है। सच्चाई की तरफ़ बुलाने की राह में एक मरहला ऐसा आ जाता है जिसमें एक हक़परस्त (सत्यवादी) आदमी के लिए इसके सिवा चारा नहीं रहता कि आलमे-असबाब (कारणों और संसाधनों की दुनिया) के तमाम सहारों से बेपरवाह होकर सिर्फ़ अल्लाह के भरोसे पर जान जोखिम में डाल दे। इन हालात में वे लोग कुछ नहीं कर सकते जो हिसाब लगा-लगाकर आनेवाले दिनों के इमकानात का जाइज़ा लेते हैं और क़दम उठाने से पहले जान की हिफ़ाज़त और रोज़ी के हासिल होने की ज़मानतें तलाश करते हैं। हक़ीक़त में इस तरह के हालात बदलते ही उन लोगों की ताक़त से हैं जो सिर हथेली पर लेकर उठ खड़े हों और हर ख़तरे का सामना करने के लिए बेधड़क तैयार हो जाएँ। उन्हीं की क़ुरबानियाँ आख़िरकार वह वक़्त लाती हैं जब अल्लाह का कलिमा बुलन्द होता है और उसके मुक़ाबले में सारी आवाज़ें दबकर रह जाती हैं।

100. यहाँ से फिर बात का रुख़ मक्का के इस्लाम-दुश्मनों की तरफ़ मुड़ता है।

لَيَقُولُنَّ اللّٰهُ ۚ فَأَنّٰى يُؤْفَكُونَ ﴿٦١﴾ اَللّٰهُ يَبْسُطُ الرِّزْقَ لِمَنْ يَّشَآءُ مِنْ
عِبَادِهٖ وَيَقْدِرُ لَهٗ ۚ اِنَّ اللّٰهَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ ﴿٦٢﴾ وَلَئِنْ سَاَلْتَهُمْ مَّنْ
نَّزَّلَ مِنَ السَّمَآءِ مَآءً فَاَحْيَا بِهِ الْاَرْضَ مِنْۢ بَعْدِ مَوْتِهَا لَيَقُوْلُنَّ
اللّٰهُ ۚ قُلِ الْحَمْدُ لِلّٰهِ ۚ بَلْ اَكْثَرُهُمْ لَا يَعْقِلُوْنَ ﴿٦٣﴾ وَمَا هٰذِهِ الْحَيٰوةُ
الدُّنْيَآ اِلَّا لَهْوٌ وَّلَعِبٌ ۚ وَاِنَّ الدَّارَ الْاٰخِرَةَ لَهِيَ الْحَيَوَانُ ۘ لَوْ كَانُوْا

कहेंगे कि अल्लाह ने, फिर ये किधर से धोखा खा रहे हैं? (62) अल्लाह ही है जो अपने बन्दों में से जिसकी चाहता है रोज़ी कुशादा करता है और जिसकी चाहता है तंग करता है, यक़ीनन अल्लाह हर चीज़ का जाननेवाला है। (63) और अगर तुम इनसे पूछो कि किसने आसमान से पानी बरसाया और उसके ज़रिए से मुर्दा पड़ी हुई ज़मीन को जिला उठाया तो वे ज़रूर कहेंगे अल्लाह ने। कहो, "अल-हम्दुलिल्लाह"[101] मगर अकसर लोग समझते नहीं हैं।

(64) और यह दुनिया की ज़िन्दगी कुछ नहीं है, मगर एक खेल और दिल का बहलावा।[102] अस्ल ज़िन्दगी का घर तो आख़िरत का घर है, काश ये लोग

101. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'अल-हम्दुलिल्लाह' इस्तेमाल हुआ है। इस जगह यह लफ़्ज़ दो मतलब दे रहा है। एक यह कि जब ये सारे काम अल्लाह के हैं तो फिर हम्द (तारीफ़ व शुक्र) का हक़दार भी सिर्फ़ वही है, दूसरों को हम्द का हक़ कहाँ से पहुँच गया? दूसरा यह कि ख़ुदा का शुक्र है, इस बात को तुम ख़ुद भी मानते हो।

102. यानी इसकी हक़ीक़त बस इतनी ही है जैसे बच्चे थोड़ी देर के लिए खेल-कूद लें और फिर अपने-अपने घर को सिधारें। यहाँ जो बादशाह बन गया है वह हक़ीक़त में बादशाह नहीं बन गया है, बल्कि सिर्फ़ बादशाही का ड्रामा कर रहा है। एक वक़्त आता है जब उसका यह खेल ख़त्म हो जाता है और उसी बे-सरो-सामानी के साथ वह दुनिया से रुख़सत हो जाता है जिसके साथ वह दुनिया में आया था। इसी तरह ज़िन्दगी की कोई शक्ल भी यहाँ हमेशा रहनेवाली और टिकाऊ नहीं है। जो जिस हाल में भी है आरज़ी (अस्थाई) तौर पर एक (तय) महदूद वक़्त के लिए है। इस कुछ दिनों की ज़िन्दगी की कामयाबियों पर जो लोग मरे-मिटते हैं और उन्हीं के लिए ज़मीर (अन्तरात्मा) और ईमान की बाज़ी लगाकर कुछ ऐशो-आराम का सामान और कुछ दिनों की शानो-शौकत के ठाठ हासिल कर लेते हैं। उनकी ये सारी हरकतें दिल के बहलावे से

يَعْلَمُوْنَ۝٦٤ فَاِذَا رَكِبُوْا فِى الْفُلْكِ دَعَوُا اللّٰهَ مُخْلِصِيْنَ لَهُ الدِّيْنَ ۚ
فَلَمَّا نَجّٰىهُمْ اِلَى الْبَرِّ اِذَا هُمْ يُشْرِكُوْنَ۝٦٥ لِيَكْفُرُوْا بِمَآ اٰتَيْنٰهُمْ ۚ
وَلِيَتَمَتَّعُوْا ۫ فَسَوْفَ يَعْلَمُوْنَ۝٦٦ اَوَلَمْ يَرَوْا اَنَّا جَعَلْنَا حَرَمًا اٰمِنًا
وَّيُتَخَطَّفُ النَّاسُ مِنْ حَوْلِهِمْ ۭ اَفَبِالْبَاطِلِ يُؤْمِنُوْنَ وَبِنِعْمَةِ اللّٰهِ

जानते।[103] (65) जब ये लोग नाव पर सवार होते हैं तो अपने दीन को अल्लाह के लिए ख़ालिस करके दुआ माँगते हैं, फिर जब वह इन्हें बचाकर ख़ुश्की (सूखे) पर ले आता है तो यकायक यह शिर्क करने लगते हैं (66) ताकि अल्लाह की दी हुई नजात पर उसकी नाशुक्री करें और (दुनिया की ज़िन्दगी के) मज़े लूटें।[104] अच्छा, जल्द ही इन्हें मालूम हो जाएगा। (67) क्या ये देखते नहीं हैं कि हमने एक पुर-अम्न (शान्तिपूर्ण) हरम (प्रतिष्ठित स्थान) बना दिया है, हालाँकि इनके आसपास ही लोग उचक लिए जाते हैं?[105] क्या फिर भी ये लोग बातिल (असत्य) को मानते हैं और अल्लाह की नेमतों (अनुकम्पाओं) की

ज़्यादा कुछ नहीं हैं, इन खिलौनों से अगर वे दस-बीस या साठ-सत्तर साल दिल बहला लें और फिर मौत के दरवाज़े से ख़ाली हाथ गुज़रकर उस दुनिया में पहुँचें जहाँ की हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी में उनका यही खेल न टलनेवाली आफ़त साबित हो तो आख़िर इस बचकाना झूठी तसल्ली का फ़ायदा क्या है?

103. यानी अगर ये लोग इस सच्चाई को जानते कि दुनिया की मौजूदा ज़िन्दगी सिर्फ़ इम्तिहान की एक मुहलत है, और इनसान के लिए अस्ल ज़िन्दगी, जो हमेशा-हमेशा बाक़ी रहनेवाली है, आख़िरत की ज़िन्दगी है, तो वे यहाँ इम्तिहान की मुद्दत को इस खेल-तमाशे में बरबाद करने के बजाय इसका एक-एक पल उन कामों में इस्तेमाल करते जो उस हमेशा की ज़िन्दगी में बेहतर नतीजे पैदा करनेवाले हों।

104. तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, हाशिया-29, 41; सूरा-10 यूनुस, हाशिया-29, 31; सूरा-17 बनी-इसराईल, हाशिया-84।

105. यानी क्या इनके शहर मक्का को, जिसके दामन में इन्हें कमाल दर्जे का अम्न हासिल है, किसी लात या हुबल (नामी देवता) ने हरम (प्रतिष्ठित स्थान) बनाया है? क्या किसी देवी या देवता की यह क़ुदरत थी कि ढाई हज़ार साल से अरब की इन्तिहाई बदअम्नी के माहौल में इस जगह को तमाम फ़ितनों और फ़सादों से महफ़ूज़ रखता? इसकी हुरमत (प्रतिष्ठा) को बनाए रखनेवाले हम न थे तो और कौन था?

يَكْفُرُوْنَ ۝٦٧ وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنِ افْتَرٰى عَلَى اللّٰهِ كَذِبًا اَوْ كَذَّبَ بِالْحَقِّ
لَمَّا جَآءَهٗ ؕ اَلَيْسَ فِيْ جَهَنَّمَ مَثْوًى لِّلْكٰفِرِيْنَ ۝٦٨ وَالَّذِيْنَ جَاهَدُوْا
فِيْنَا لَنَهْدِيَنَّهُمْ سُبُلَنَا ؕ وَاِنَّ اللّٰهَ لَمَعَ الْمُحْسِنِيْنَ ۝٦٩

नाशुक्री करते हैं? (68) उस शख़्स से बढ़कर ज़ालिम कौन होगा जो अल्लाह पर झूठ बाँधे या हक़ को झुठलाए, जबकि वह उसके सामने आ चुका हो?[106] क्या ऐसे इनकारियों का ठिकाना जहन्नम ही नहीं है? (69) जो लोग हमारी ख़ातिर जिद्दोजुहद करेंगे उन्हें हम अपने रास्ते दिखाएँगे[107] और यक़ीनन अल्लाह भले काम करनेवालों ही के साथ है।

106. यानी पैग़म्बर ने पैग़म्बरी का दावा किया है कि वह ख़ुदा का भेजा हुआ है और तुमने उसे झुठला दिया है। अब मामला दो हाल से ख़ाली नहीं। अगर पैग़म्बर ने अल्लाह का नाम लेकर झूठा दावा किया है तो उससे बड़ा ज़ालिम कोई नहीं। और अगर तुमने सच्चे पैग़म्बर को झुठलाया है तो फिर तुमसे बड़ा ज़ालिम कोई नहीं।

107. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'मुजाहदा' इस्तेमाल हुआ है, इसकी तशरीह (व्याख्या) इसी सूरा-29 अन्कबूत के हाशिया-8 में गुज़र चुकी है। वहाँ यह कहा गया था कि जो शख़्स मुजाहदा (अनथक प्रयास) करेगा वह अपनी ही भलाई के लिए करेगा। (आयत-6) यहाँ यह इत्मीनान दिलाया जा रहा है कि जो लोग अल्लाह की राह में सच्चे दिल से दुनिया भर से कशमकश का ख़तरा मोल ले लेते हैं, उन्हें अल्लाह तआला उनके हाल पर नहीं छोड़ देता, बल्कि वह उनकी मदद और रहनुमाई करता है और अपनी तरफ़ आने की राहें उनके लिए खोल देता है। वह क़दम-क़दम पर उन्हें बताता है कि हमारी ख़ुशनूदी तुम किस तरह हासिल कर सकते हो। हर-हर मोड़ पर उन्हें रौशनी दिखाता है कि सीधा रास्ता किधर है और ग़लत रास्ते कौन-से हैं। जितनी नेक नीयती और भलाई की तलब उनमें होती है, उतनी ही अल्लाह की मदद, तौफ़ीक़ और हिदायत भी उनके साथ रहती है।

☆☆☆

30. अर-रूम

परिचय

नाम

पहली ही आयत के लफ़्ज़ 'गुलिबतिर-रूम' से लिया गया है।

उतरने का ज़माना

शुरू ही में जिस तारीख़ी (ऐतिहासिक) वाक़िए का ज़िक्र किया गया है, उससे उतरने का ज़माना यक़ीनी तौर पर तय हो जाता है। इसमें कहा गया है कि "क़रीब की सरज़मीन में रूमी हार गए हैं।" उस ज़माने में अरब से लगे हुए उर्दुन (जॉर्डन), शाम (सीरिया) और फ़िलस्तीन थे जिन पर रूमियों का क़ब्ज़ा था और इन इलाक़ों में रूमियों पर ईरानियों का ग़लबा 615 ई॰ में मुकम्मल हुआ था। इसलिए पूरे एतिमाद के साथ यह कहा जा सकता है कि यह सूरा उसी साल उतरी थी, और यह वही साल था जिसमें हबशा की हिजरत हुई।

तारीख़ी पसमंज़र (ऐतिहासिक पृष्ठभूमि)

जो पेशीनगोई (भविष्यवाणी) इस सूरा की इबतिदाई आयतों में की गई है, वह क़ुरआन मजीद के अल्लाह के कलाम होने और मुहम्मद (सल्ल॰) के सच्चे रसूल होने की सबसे नुमायाँ गवाहियों में से एक है। इसे समझने के लिए ज़रूरी है कि उन तारीख़ी वाक़िआत पर एक तफ़सीली निगाह डाली जाए जो इन आयतों से ताल्लुक़ रखती हैं।

नबी (सल्ल॰) को पैग़म्बर बनाए जाने से आठ साल पहले का वाक़िआ है कि रूम के क़ैसर (बादशाह) मौरीस (Maurice) के ख़िलाफ़ बग़ावत हुई और एक शख़्स फ़ोकास (Phocas) ने हुकूमत पर क़ब्ज़ा कर लिया। उस शख़्स ने पहले तो क़ैसर की आँखों के सामने उसके पाँच बेटों को क़त्ल कराया, फिर ख़ुद क़ैसर को क़त्ल कराके बाप-बेटों के सिर क़ुस्तनतीनिया में खुले आम लटकवा दिए, और उसके कुछ दिनों के बाद उसकी बीवी और तीन लड़कियों को भी मरवा डाला। इस वाक़िए से ईरान के बादशाह ख़ुसरो

परवेज़ को रूम (रोम) पर हमला करने के लिए बेहतरीन अख़लाक़ी बहाना मिल गया। क़ैसर मौरीस ने उसपर एहसान किया था। उसी की मदद से परवेज़ को ईरान का तख़्त मिला था। उसे वह अपना बाप कहता था। इस वजह से उसने एलान किया कि मैं नाजाइज़ क़ब्ज़ा करनेवाले फ़ोकास से उस ज़ुल्म का बदला लूँगा जो उसने मेरे मुँह बोले बाप और उसकी औलाद पर ढाया है। 603 ई॰ में उसने रूमी सल्तनत के ख़िलाफ़ जंग का आग़ाज़ किया और कुछ साल के अन्दर वह फ़ोकास की फ़ौजों को लगातार हराता हुआ एक तरफ़ एशियाए-कोचक में एडिसा (मौजूदा ओरफ़ा) तक और दूसरी तरफ़ शाम (सीरिया) में हलब और अनताकिया तक पहुँच गया। रूम के दरबारी यह देखकर कि फ़ोकास देश को नहीं बचा सकता, अफ़्रीक़ा के गवर्नर से मदद के तलबगार हुए। उसने अपने बेटे हिरक़्ल (Heraclius) को एक ताक़तवर बेड़े के साथ क़ुस्तनतीनिया भेज दिया। उसके पहुँचते ही फ़ोकास को मंसब से हटा दिया गया, उसकी जगह हिरक़्ल क़ैसर बनाया गया, और उसने हुकूमत में आकर फ़ोकास के साथ वही कुछ किया जो उसने मौरीस के साथ किया था। यह 610 ई॰ का वाक़िआ है, और यह वही साल है जिसमें मुहम्मद (सल्ल॰) अल्लाह तआला की तरफ़ से नबी (पैग़म्बर) बनाए गए।

ख़ुसरो परवेज़ ने जिस अख़लाक़ी बहाने को बुनियाद बनाकर जंग छेड़ी थी, फ़ोकास के हटाए जाने और क़त्ल किए जाने के बाद वह ख़त्म हो चुका था। अगर सचमुच उसकी जंग का मक़सद नाजाइज़ क़ब्ज़ा करनेवाले फ़ोकास से उसके ज़ुल्म का बदला लेना होता तो उसके मारे जाने पर उसे नए क़ैसर से सुलह (सन्धि) कर लेनी चाहिए थी। मगर उसने फिर भी जंग जारी रखी, और अब उस जंग को उसने मजूसियत और मसीहियत की मज़हबी जंग का रंग दे दिया। ईसाइयों के जिन गरोहों को रूमी सल्तनत के सरकारी कलीसा ने नास्तिक ठहराकर सालों-साल से ज़ुल्म का निशाना बना रखा था (यानी नस्तूरी और याक़ूबी वग़ैरा) उनकी सारी हमदर्दियाँ भी मजूसी हमला करनेवालों के साथ हो गईं। और यहूदियों ने भी मजूसियों का साथ दिया, यहाँ तक कि ख़ुसरो परवेज़ की फ़ौज में भरती होनेवाले यहूदियों की तादाद छब्बीस हज़ार (26000) तक पहुँच गई।

हिरक़्ल आकर इस सैलाब को न रोक सका। हुकूमत की कुर्सी पर बैठते ही पहली ख़बर जो उसे पूरब से मिली वह अनताकिया पर ईरानी क़ब्ज़े की थी। उसके बाद 613 ई॰ में दमिश्क़ फ़तह हुआ। फिर 614 ई॰ में बैतुल-मक़दिस पर क़ब्ज़ा करके ईरानियों ने मसीही दुनिया पर क़ियामत ढा दी। नव्वे हज़ार ईसाई उस शहर में क़त्ल कर दिए गए। उनका सबसे मुक़द्दस कलीसा, कनीसतुल-क़ियामा (Holy Sepulchre) बरबाद कर दिया गया। असली सलीब, जिसके बारे में ईसाइयों का अक़ीदा था कि उसी पर मसीह ने जान

दी थी, मजूसियों ने छीनकर मदायन पहुँचा दी। लाट पादरी ज़करियाह को भी वे पकड़ ले गए और शहर के तमाम बड़े-बड़े गिरजों को उन्होंने ढा दिया। इस जीत का नशा जिस बुरी तरह .ख़ुसरो परवेज़ पर चढ़ा था, इसका अन्दाज़ा उस ख़त से होता है जो उसने बैतुल-मक़दिस से हिरक़्ल को लिखा था। उसमें वह कहता है–

"सब ख़ुदाओं से बड़े ख़ुदा, सारी ज़मीन के मालिक ख़ुसरो की तरफ़ से उसके कमीने और नासमझ बन्दे हिरक़्ल के नाम।

तू कहता है कि तुझे अपने रब पर भरोसा है। क्यों न तेरे रब ने यरूशलम को मेरे हाथ से बचा लिया?"

इस जीत के बाद एक साल के अन्दर-अन्दर ईरानी फ़ौजें उर्दुन, फ़िलस्तीन और जज़ीरानुमा-ए-सीना (प्रायद्वीप सीना) के पूरे इलाक़े पर क़ब्ज़ा करके मिस्र की सीमाओं तक पहुँच गईं। यह वह ज़माना था जब मक्का में एक और उससे कई गुना ज़्यादा तारीख़ी अहमियत रखनेवाली जंग छिड़ी हुई थी। यहाँ तौहीद (एकेश्वरवाद) के अलमबरदार हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की रहनुमाई में, और शिर्क के माननेवाले क़ुरैश के सरदारों की रहनुमाई में एक दूसरे से जंग कर रहे थे, और नौबत यहाँ तक पहुँच गई थी कि 615 ई॰ में मुसलमानों की एक बड़ी तादाद को अपना घर-बार छोड़कर हबशा की ईसाई हुकूमत में (जिसका रूम से समझौता था) पनाह लेनी पड़ी। उस वक़्त रूमी सल्तनत पर ईरान के ग़लबे (प्रभुत्व) की चर्चा हर ज़बान पर थी। मक्का के मुशरिक इसपर बग़लें बजा रहे थे और मुसलमानों से कहते थे कि देखो ईरान के आग के पुजारी जीत रहे हैं और वह्य और रिसालत (पैग़म्बरी) के माननेवाले ईसाइयों को एक-के-बाद एक हार मिलती चली जा रही है। इसी तरह हम अरब के बुतपरस्त भी तुम्हें और तुम्हारे दीन को मिटाकर रख देंगे।

इन हालात में क़ुरआन मजीद की यह सूरा उतरी और इसमें यह पेशीनगोई की गई कि "क़रीब की सरज़मीन में रूमी हार गए हैं, मगर इस हार के बाद कुछ साल के अन्दर ही वे ग़ालिब (विजयी) हो जाएँगे, और वह दिन वह होगा जबकि अल्लाह की दी हुई जीत से ईमानवाले ख़ुश हो रहे होंगे।" इसमें एक के बजाय दो पेशीनगोइयाँ थीं। एक यह कि रूमियों को ग़लबा (प्रभुत्व) मिलेगा। दूसरी यह कि मुसलमानों को भी उसी ज़माने में जीत हासिल होगी। बज़ाहिर दूर-दूर तक कहीं इसके आसार मौजूद न थे कि उनमें से कोई एक पेशीनगोई भी कुछ साल के अन्दर पूरी हो जाएगी। एक तरफ़ मुट्ठी भर मुसलमान थे जो मक्का में मारे और खदेड़े जा रहे थे और इस पेशीनगोई के बाद भी आठ साल तक उनके लिए ग़लबे और फ़तह का कोई इमकान किसी को नज़र न आता

था। दूसरी तरफ़ रूम (रोम) दिन-पर-दिन मातहत होता चला गया। 619 ई॰ तक पूरा मिस्र ईरान के क़ब्ज़े में चला गया और मजूसी फ़ौजों ने तराबुलुस (Tripolis) के क़रीब पहुँचकर अपने झण्डे गाड़ दिए। एशियाए-कोचक में ईरानी फ़ौजें रूमियों को मारती-दबाती बासफ़ोरस के किनारे तक पहुँच गईं और 617 ई॰ में उन्होंने ठीक क़ुस्तनतीनिया (Constantinople or Istambul) के सामने ख़िलक़दून (Chalcedon मौजूदा क़ाज़ी कोई) पर क़ब्ज़ा कर लिया। क़ैसर ने ख़ुसरो के पास एलची भेजकर बहुत ही आजिज़ी (विनम्रता) के साथ दरख़ास्त की कि मैं हर क़ीमत पर सुलह करने के लिए तैयार हूँ। मगर उसने जवाब दिया कि "अब मैं क़ैसर को उस वक़्त तक पनाह न दूँगा जब तक वह बेड़ियों में जकड़ा हुआ मेरे सामने हाज़िर न हो और अपने सलीबी ख़ुदा को छोड़कर अग्नि देवता की बन्दगी न अपना ले।" आख़िरकार क़ैसर इस हद तक हार गया कि उसने क़ुस्तनतीनिया छोड़कर क़रताजना (Chalcedon मौजूदा त्यूनिस) चले जाने का इरादा कर लिया। ग़रज़ अंग्रेज़ इतिहासकार गिब्बन के कहने के मुताबिक़, क़ुरआन मजीद की इस पेशीनगोई के बाद भी सात-आठ साल तक हालात ऐसे थे कि कोई शख़्स यह सोच तक न सकता था कि रूमी सल्तनत ईरान पर ग़ालिब आ जाएगी, बल्कि ग़लबा तो दूर की बात उस वक़्त तो किसी को यह उम्मीद भी न थी कि अब यह सल्तनत ज़िन्दा रह जाएगी। (Gibbon, Decline and Fall of the Roman Empire. 5th Ed. London: Methueu, 1942, P.74)

क़ुरआन की ये आयतें जब उतरीं तो मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों ने इनका ख़ूब मज़ाक़ उड़ाया और उबई-बिन-ख़लफ़ ने हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) से शर्त लगाई कि अगर तीन साल के अन्दर रूमी ग़ालिब आ गए तो दस ऊँट मैं दे दूँगा वरना दस ऊँट तुमको देने होंगे। नबी (सल्ल॰) को इस शर्त का पता चला तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि क़ुरआन में "फ़ी बिज़्इ सिनीन" के अलफ़ाज़ आए हैं और अरबी ज़बान में 'बिज़्इ' का लफ़्ज़ दस से कम के लिए इस्तेमाल होता है, इसलिए दस साल के अन्दर की शर्त करो और ऊँटों की तादाद बढ़ाकर सौ कर दो। चुनाँचे हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने उबई से फिर बात की और नए सिरे से यह शर्त तय हुई कि दस साल के अन्दर दोनों फ़रीक़ों में से जिसकी बात ग़लत साबित होगी वह सौ ऊँट देगा।

622 ई॰ में इधर नबी (सल्ल॰) हिजरत करके मदीना तय्यिबा तशरीफ़ ले गए, और उधर क़ैसर हिरक़्ल चुपचाप क़ुस्तनतीनिया से काला सागर के रास्ते तराबज़ोन की तरफ़ चला गया, जहाँ उसने ईरान पर पीछे की तरफ़ से हमला करने की तैयारी की। इस जवाबी हमले की तैयारी के लिए क़ैसर ने कलीसा से रुपया माँगा और मसीही कलीसा

के बड़े पादरी सरजियस (Sergius) ने मसीहियत को मजूसियत से बचाने के लिए गिरजाघरों के चढ़ावों की जमा की हुई दौलत सूद (ब्याज) पर क़र्ज़ दी। हिरक़्ल ने अपना हमला 623 ई॰ में आरमीनिया से शुरू किया और दूसरे साल 624 ई॰ में उसने आज़र बाइजान में घुसकर ज़रतुश्त के मक़ामे-पैदाइश अर्मियाह (Clorumia) को तबाह कर दिया और ईरानियों के सबसे बड़े आतिश-कदे (अग्निकुण्ड) की ईंट-से-ईंट बजा दी। ख़ुदा की क़ुदरत का करिश्मा देखिए कि यही वह साल था जिसमें मुसलमानों को बद्र के मक़ाम पर पहली बार मुशरिकों के मुक़ाबले में फ़ैसलाकुन (निर्णायक) जीत मिली। इस तरह वे दोनों पेशीनगोइयाँ जो सूरा रूम में की गई थीं, दस साल की मुद्दत ख़त्म होने से पहले एक साथ पूरी हो गईं।

फिर रूम की फ़ौजें ईरानियों को लगातार दबाती चली गईं। नैनवा की फ़ैसला कर डालनेवाली लड़ाई (627 ई॰) में उन्होंने ईरानी सल्तनत की कमर तोड़ दी। इसके बाद ईरान के बादशाहों के रहने की जगह दस्तगर्द (दस्करतुल-मलिक) को तबाह कर दिया गया और आगे बढ़कर हिरक़्ल के लश्कर ठीक तेसिफ़ोन (Ctesiphon) के सामने पहुँच गए जो उस वक़्त ईरान की राजधानी थी। 628 ई॰ में ख़ुसरो परवेज़ के ख़िलाफ़ घर में बग़ावत उठ खड़ी हुई। वह क़ैद कर दिया गया, उसकी आँखों के सामने उसके 18 बेटे क़त्ल कर दिए गए, और कुछ दिनों के बाद वह ख़ुद क़ैद की सख़्तियों से मर गया। यही साल था जिसमें हुदैबिया की सुलह (सन्धि) का वाक़िआ हुआ जिसे क़ुरआन 'बड़ी फ़तह' का नाम देता है, और यही साल था जिसमें ख़ुसरो के बेटे क़बाद सानी (द्वितीय) ने तमाम रूमी क़ब्ज़ों को छोड़कर और असली सलीब वापस करके रूम से सुलह कर ली। 629 ई॰ में क़ैसर 'मुक़द्दस सलीब' को उसकी जगह रखने के लिए ख़ुद बैतुल-मक़दिस गया, और उसी साल नबी (सल्ल॰) छूटा हुआ उमरा अदा करने के लिए हिजरत के बाद पहली बार मक्का में दाख़िल हुए।

इसके बाद किसी के लिए भी इस बात में शक की कोई गुंजाइश बाक़ी न रही कि क़ुरआन की पेशीनगोई बिलकुल सच्ची थी। अरब के बहुत-से मुशरिक उसपर ईमान ले आए। उबई-बिन-ख़लफ़ के वारिसों को हार मानकर शर्त के ऊँट अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) के हवाले करने पड़े। वे उन्हें लेकर नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुए। आप (सल्ल॰) ने हुक्म दिया कि उन्हें सदक़ा कर दिया जाए, क्योंकि शर्त उस वक़्त हुई थी जब शरीअत में जुए के हराम होने का हुक्म नहीं आया था, मगर अब हराम होने का हुक्म आ चुका था, इसलिए जिन दुश्मनों से लड़ाई हो उनसे शर्त का माल लेने की तो इजाज़त दे दी गई, मगर हिदायत की गई कि उसे ख़ुद इस्तेमाल करने के बजाय सदक़ा कर दिया जाए।

मौज़ू (विषय) और मज़मून (वार्ताएँ)

इस सूरा में बात का आग़ाज़ इस बात से किया गया है कि आज रूमी हार गए हैं और सारी दुनिया यह समझ रही है कि इस सल्तनत का ख़ातिमा क़रीब है, मगर कुछ साल न गुज़रने पाएँगे कि पाँसा पलट जाएगा और जो हारा हुआ है वह ग़ालिब (विजयी) हो जाएगा।

इस इबतिदाई गुफ़्तगू से यह बात निकल आई कि इनसान सिर्फ़ ज़ाहिरी चीज़ें देखने की वजह से वही कुछ देखता है जो बज़ाहिर उसकी आँखों के सामने होता है, मगर इस ज़ाहिर के परदे के पीछे जो कुछ है उसकी उसे कुछ ख़बर नहीं होती। यह ज़ाहिरी चीज़ें देखना जब दुनिया के ज़रा-ज़रा से मामलों में ग़लतफ़हमियों और ग़लत अन्दाज़ों का सबब होती हैं, और जबकि सिर्फ़ इतनी-सी बात न जानने की वजह से कि "कल क्या होनेवाला है," आदमी ग़लत अन्दाज़े लगा बैठता है, तो फिर पूरी ज़िन्दगी के मामले में दुनिया की ज़ाहिरी ज़िन्दगी पर भरोसा कर बैठना और उसी की बुनियाद पर अपनी ज़िन्दगी के सरमाए को दाँव पर लगा देना कितनी बड़ी ग़लती है।

इस तरह रूम और ईरान के मामले से तक़रीर का रुख़ आख़िरत के मज़मून की तरफ़ फिर जाता है और लगातार 7 से 27 आयतों तक अलग-अलग ढंग से यह समझाने की कोशिश की जाती है कि आख़िरत मुमकिन भी है, अक़्ल के मुताबिक़ भी है और उसकी ज़रूरत भी है, और इनसानी ज़िन्दगी के निज़ाम (व्यवस्था) को दुरुस्त रखने के लिए भी यह ज़रूरी है कि आदमी आख़िरत का यक़ीन रखकर अपनी मौजूदा ज़िन्दगी का प्रोग्राम बनाए, वरना वही ग़लती होगी जो ज़ाहिर पर भरोसा कर लेने से हुआ करती है।

इस सिलसिले में आख़िरत पर दलील देते हुए कायनात की जिन निशानियों को गवाही में पेश किया गया है वह ठीक वही निशानियाँ हैं जो तौहीद (एकेश्वरवाद) की भी दलीलें हैं। इसलिए आयत-28 से तक़रीर का रुख़ तौहीद को सही और शिर्क को ग़लत साबित करने की तरफ़ फिर जाता है और यह बताया जाता है कि इनसान के लिए फ़ितरी दीन (स्वाभाविक धर्म) इसके सिवा कुछ नहीं है कि वह बिलकुल यकसू (एकाग्र) होकर एक ख़ुदा की बन्दगी करे। शिर्क कायनात और इनसान दोनों की फ़ितरत के ख़िलाफ़ है, इसलिए जहाँ भी इनसान ने इस गुमराही को अपनाया है वहाँ फ़साद (बिगाड़) फैला है। इस मौक़े पर फिर उस बड़े बिगाड़ की तरफ़, जो उस वक़्त दुनिया की सबसे बड़ी दो सल्तनतों के बीच जंग की वजह से फैला था, इशारा किया

गया है और बताया गया है कि यह बिगाड़ भी शिर्क के नतीजों में से है और पिछली इनसानी तारीख़ में भी जितनी क़ौमें बिगाड़ में मुब्तला हुई हैं वे सब भी मुशरिक ही थीं।

बात के आख़िर में मिसाल के अन्दाज़ में लोगों को समझाया गया है कि जिस तरह मुर्दा पड़ी हुई ज़मीन ख़ुदा की भेजी हुई बारिश से यकायक जी उठती है और ज़िन्दगी और बहार के ख़ज़ाने उगलने शुरू कर देती है, उसी तरह ख़ुदा की भेजी हुई वह्य और नुबूवत (पैग़म्बरी) भी मुर्दा पड़ी हुई इनसानियत के लिए रहमत की एक बारिश है जिसका उतरना उसके लिए ज़िन्दगी और फलने-फूलने और भलाई और कामयाबी का सबब होता है। इस मौक़े से फ़ायदा उठाओगे तो यही अरब की सूनी ज़मीन अल्लाह की रहमत से लहलहा उठेगी और सारी भलाई तुम्हारे अपने ही लिए होगी। इससे फ़ायदा न उठाओगे तो अपना ही नुक़सान करोगे, फिर पछताने का कुछ हासिल न होगा और भरपाई का कोई मौक़ा तुम्हें न मिलेगा।

☆☆☆

[illegible]

[illegible]

☆☆☆

آيَاتُهَا ٦٠ ٣٠ سُورَةُ الرُّومِ مَكِّيَّةٌ ٨٤ رُكُوعَاتُهَا ٦

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

الٓمّٓ ۟ۚ غُلِبَتِ الرُّوْمُ ۟ۙ فِيْۤ اَدْنَى الْاَرْضِ وَهُمْ مِّنْۢ بَعْدِ غَلَبِهِمْ سَيَغْلِبُوْنَ ۟ۙ فِيْ بِضْعِ سِنِيْنَ ؕ

30. अर-रूम

(मक्का में उतरी--आयतें-60)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) अलिफ़-लाम-मीम। (2-4) रूमी क़रीब की ज़मीन में हार गए हैं और अपनी इस हार के बाद कुछ साल के अन्दर वे ग़ालिब (विजयी) हो जाएँगे।[1]

1. इब्ने-अब्बास (रज़ि.) और दूसरे सहाबा और ताबिईन के बयानों से मालूम होता है कि रूम और ईरान की इस लड़ाई में मुसलमानों की हमदर्दियाँ रूम के साथ और मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की हमदर्दियाँ ईरान के साथ थीं। इसकी कई वजहें थीं। एक यह कि ईरानियों ने इस लड़ाई को मजूसियत (मजूसी धर्म) और मसीहियत (ईसाई धर्म) की लड़ाई का रंग दे दिया था और वे मुल्क जीतने के मक़सद से आगे बढ़कर उसे मजूसियत फैलाने का ज़रिआ बना रहे थे। बैतुल-मक़दिस की फ़तह के बाद ख़ुसरो परवेज़ ने जो ख़त रूम (रोम) के क़ैसर (बादशाह) को लिखा था उसमें साफ़ तौर पर वह अपनी जीत को मजूसियत के सही होने की दलील ठहराता है। उसूली तौर से मजूसियों का मज़हब मक्का के मुशरिकों से मिलता-जुलता था, क्योंकि वे भी तौहीद (एक ख़ुदा) को नहीं मानते थे, दो ख़ुदाओं को मानते थे और आग की पूजा करते थे। इसलिए मुशरिकों की हमदर्दियाँ उनके साथ थीं। उनके मुक़ाबले में ईसाई चाहे कितने ही शिर्क में मुब्तला हो गए हों, मगर वे ख़ुदा की तौहीद को अस्ल दीन (धर्म) मानते थे, आख़िरत को मानते थे और वह्य और रिसालत को हिदायत का सरचश्मा (मूलस्रोत) मानते थे। इस वजह से उनका दीन अपनी अस्ल के एतिबार से मुसलमानों के दीन से मिलता-जुलता था, और इसी लिए मुसलमान क़ुदरती तौर पर उनसे हमदर्दी रखते थे और उनपर मुशरिक क़ौम का ग़लबा उन्हें नागवार था। दूसरी वजह यह थी कि एक नबी के आने से पहले जो लोग पिछले नबी को मानते हों, वे उसूली तौर पर मुसलमान (ख़ुदा के दीन को माननेवाले) ही कहलाते हैं और जब तक बाद के आनेवाले नबी की दावत उन्हें न पहुँचे और वे उसका इनकार न कर दें, उनकी गिनती मुसलमानों ही में होती है। (देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-28 क़सस, हाशिया-73)।

لِلّٰهِ الْاَمْرُ مِنْ قَبْلُ وَمِنْ بَعْدُ ۭ وَيَوْمَىِٕذٍ يَّفْرَحُ الْمُؤْمِنُوْنَ ۝ۙ
بِنَصْرِ اللّٰهِ ۭ يَنْصُرُ مَنْ يَّشَاۗءُ ۭ وَهُوَ الْعَزِيْزُ الرَّحِيْمُ ۝ۙ وَعْدَ
اللّٰهِ ۭ لَا يُخْلِفُ اللّٰهُ وَعْدَهٗ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَ النَّاسِ لَا يَعْلَمُوْنَ ۝

अल्लाह ही का इख़्तियार है पहले भी और बाद में भी।[2] और वह दिन वह होगा जबकि अल्लाह की दी हुई जीत पर मुसलमान ख़ुशियाँ मनाएँगे।[3] (5) अल्लाह मदद करता है जिसकी चाहता है, और वह ज़बरदस्त और रहम करनेवाला है। (6) यह वादा अल्लाह ने किया है, अल्लाह कभी अपने वादे की ख़िलाफ़वर्ज़ी नहीं करता, मगर अकसर लोग जानते नहीं हैं।

उस वक़्त नबी (सल्ल॰) को नबी बने हुए सिर्फ़ पाँच-छः साल ही बीते थे, और नबी (सल्ल॰) की दावत अभी बाहर नहीं पहुँची थी। इसलिए मुसलमान ईसाइयों की गिनती कुफ़्र करनेवालों में नहीं करते थे। अलबत्ता यहूदी उनकी निगाह में ख़ुदा के दीन के इनकारी थे, क्योंकि वे हज़रत ईसा (अलैहि॰) की नुबूवत का इनकार कर चुके थे। तीसरी वजह यह थी कि इस्लाम के शुरू ही में ईसाइयों की तरफ़ से मुसलमानों के साथ हमदर्दी ही का बर्ताव हुआ था, जैसाकि सूरा-5 माइदा, आयतें—82-85 और सूरा-28 क़सस, आयतें—52-55 में बयान हुआ है। बल्कि उनमें से बहुत-से लोग खुले दिल से हक़ की दावत क़बूल कर रहे थे। फिर हबशा की हिजरत के मौक़े पर जिस तरह हबशा के ईसाई बादशाह ने मुसलमानों को पनाह दी और उनकी वापसी के लिए मक्का के इस्लाम-दुश्मनों की माँग को ठुकरा दिया उसका भी यह तक़ाज़ा था कि मुसलमान मजूसियों के मुक़ाबले में ईसाइयों का भला चाहनेवाले हों।

2. यानी पहले जब ईरानी जीत गए तो इस बुनियाद पर नहीं कि मआज़ल्लाह (अल्लाह की पनाह) सारे जहान का ख़ुदा उनके मुक़ाबले में हार गया, और बाद में जब रूमी कामयाब होंगे तो इसका मतलब यह नहीं है कि अल्लाह तआला को उसका खोया हुआ मुल्क मिल जाएगा। हुकूमत तो हर हाल में अल्लाह ही की है। पहले जिसे जीत हुई उसे भी अल्लाह ही ने जिताया, और बाद में जो जीतेगा वह भी अल्लाह ही के हुक्म से जीतेगा। उसकी ख़ुदाई में कोई अपने बल पर जीत हासिल नहीं कर सकता। जिसे वह उठाता है वही उठता है और जिसे वह गिराता है वही गिरता है।

3. इब्ने-अब्बास (रज़ि॰), अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि॰), सुफ़ियान सौरी (रह॰), सुद्दी (रह॰) वग़ैरा लोगों का बयान है कि ईरानियों पर रूमियों की जीत और बद्र की जंग में मुशरिकों पर मुसलमानों की जीत का ज़माना एक ही था, इसलिए मुसलमानों को दोहरी ख़ुशी हासिल हुई। यही बात ईरान और रूम के इतिहासों से भी साबित है। 624 ई॰ ही वह साल है जिसमें बद्र की जंग हुई, और यही वह साल है जिसमें रूम के क़ैसर (बादशाह) ने ज़रतुश्त की जाए-पैदाइश को तबाह किया

يَعْلَمُوْنَ ظَاهِرًا مِّنَ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۖ وَهُمْ عَنِ الْاٰخِرَةِ
هُمْ غٰفِلُوْنَ ۝ اَوَلَمْ يَتَفَكَّرُوْا فِيْٓ اَنْفُسِهِمْ ۗ مَا خَلَقَ اللّٰهُ

(7) लोग दुनिया की ज़िन्दगी का बस ज़ाहिरी पहलू जानते हैं और आख़िरत से वे ख़ुद ही ग़ाफ़िल हैं।[4] (8) क्या इन्होंने कभी अपने आपमें ग़ौर-फ़िक्र नहीं किया?[5] अल्लाह

और ईरान के सबसे बड़े आतिश-कदे (अग्निकुण्ड) को ढा दिया।

4. यानी अगरचे आख़िरत पर दलील देनेवाली निशानियाँ और गवाहियाँ बहुत ज़्यादा मौजूद हैं और उससे ग़फ़लत की कोई मुनासिब वजह नहीं है, लेकिन ये लोग उससे ख़ुद ही लापरवाही बरत रहे हैं। दूसरे अलफ़ाज़ में, यह उनकी अपनी कोताही है कि दुनियावी ज़िन्दगी के इस ज़ाहिरी परदे पर निगाह जमाकर बैठ गए हैं और उसके पीछे जो कुछ आनेवाला है उससे बिलकुल बेख़बर हैं, वरना ख़ुदा की तरफ़ से उनको ख़बरदार करने में कोई कोताही नहीं हुई है।

5. यह आख़िरत पर अपने आपमें ख़ुद एक मुस्तक़िल (स्थायी) दलील है। इसका मतलब यह है कि अगर ये लोग बाहर किसी तरफ़ निगाह दौड़ाने से पहले ख़ुद अपने वुजूद पर ग़ौर करते तो उन्हें अपने अन्दर ही वे दलीलें मिल जातीं जो मौजूदा ज़िन्दगी के बाद दूसरी ज़िन्दगी की ज़रूरत साबित करते हैं। इनसान की तीन ख़ास ख़ूबियाँ ऐसी हैं जो उसको ज़मीन पर मौजूद दूसरी चीज़ों से अलग करती हैं—

एक यह कि ज़मीन और उसके माहौल की अनगिनत चीज़ें उसकी ख़िदमत में लगा दी गई हैं और उनके इस्तेमाल के बहुत ज़्यादा इख़्तियार उसको दे दिए गए हैं।

दूसरी यह कि उसे अपनी ज़िन्दगी की राह को चुनने में आज़ाद छोड़ दिया गया है। ईमान और कुफ़्र, फ़रमाँबरदारी और नाफ़रमानी, नेकी और बदी (बुराई) की राहों में से जिसपर भी जाना चाहे जा सकता है। हक़ और बातिल, सही और ग़लत, जिस तरीक़े को भी अपनाना चाहे अपना सकता है। हर रास्ते पर चलने के लिए उसे तौफ़ीक़ (सामर्थ्य) दे दी जाती है और उसपर चलने में वह ख़ुदा के दिए हुए ज़रिए इस्तेमाल कर सकता है, चाहे वह ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी का रास्ता हो या उसकी नाफ़रमानी का रास्ता।

तीसरी यह कि उसमें पैदाइशी तौर पर अख़लाक़ की हिस (चेतना) रख दी गई है जिसकी बुनियाद पर वह इख़्तियारी और ग़ैर-इख़्तियारी कामों में फ़र्क़ करता है। इख़्तियारी कामों पर नेकी और बदी का हुक्म लगाता है, और फ़ौरन यह राय क़ायम करता है कि अच्छा काम इनाम का और बुरा काम सज़ा का हक़दार होना चाहिए।

ये तीनों ख़ासियतें जो इनसान के अपने वुजूद में पाई जाती हैं इस बात की निशानदेही करती हैं कि कोई वक़्त ऐसा होना चाहिए जब इनसान से हिसाब लिया जाए। जब उससे पूछा जाए कि जो कुछ दुनिया में उसको दिया गया था उसे इस्तेमाल करने के इख़्तियारों को उसने किस तरह इस्तेमाल किया? जब यह देखा जाए कि उसने अपने चुनाव की आज़ादी को इस्तेमाल करके

السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ وَمَا بَيْنَهُمَآ اِلَّا بِالْحَقِّ وَاَجَلٍ مُّسَمًّى ؕ

ने ज़मीन और आसमानों को और उन सारी चीज़ों को जो उनके बीच हैं हक़ के साथ और एक मुक़र्रर मुद्दत ही के लिए पैदा किया है।[6]———————

सही रास्ता अपनाया या ग़लत? जब उसके इख़्तियारी आमाल की जाँच की जाए और नेक अमल पर इनाम और बुरे अमल पर सज़ा दी जाए। यह वक़्त लाज़िमन इनसान की ज़िन्दगी का कारनामा ख़त्म और उसके अमल का दफ़्तर बन्द होने के बाद ही आ सकता है, न कि उससे पहले। और यह वक़्त लाज़िमन उसी वक़्त आना चाहिए जबकि एक इनसान या एक क़ौम का नहीं बल्कि तमाम इनसानों के अमल का दफ़्तर बन्द हो। क्योंकि एक इनसान या एक क़ौम के मर जाने पर उन असरात का सिलसिला ख़त्म नहीं हो जाता जो उसने अपने आमाल की बदौलत दुनिया में छोड़े हैं। उसके छोड़े हुए अच्छे या बुरे असरात भी तो उसके हिसाब में गिने जाने चाहिएँ। ये असरात जब तक पूरे तौर पर ज़ाहिर न हो लें इनसाफ़ के मुताबिक़ पूरा हिसाब-किताब करना और पूरा इनाम या पूरी सज़ा देना कैसे मुमकिन है? इस तरह इनसान का अपना वुजूद इस बात की गवाही देता है, और ज़मीन में इनसान को जो हैसियत हासिल है वह आप-से-आप इस बात का तक़ाज़ा करती है कि दुनिया की मौजूदा ज़िन्दगी के बाद एक दूसरी ज़िन्दगी ऐसी हो जिसमें अदालत क़ायम हो, इनसाफ़ के साथ इनसान की ज़िन्दगी के कामों का हिसाब किया जाए और हर शख़्स को उसके काम के लिहाज़ से बदला दिया जाए।

6. इस जुमले में आख़िरत की दो और दलीलें दी गई हैं। इसमें बताया गया है कि अगर इनसान अपने वुजूद से बाहर के निज़ामे-कायनात (सृष्टि-व्यवस्था) को ग़ौर से देखे तो उसे दो सच्चाइयाँ नुमायाँ नज़र आएँगी—

एक यह कि यह कायनात बरहक़ और बामक़सद बनाई गई है। यह किसी बच्चे का खेल नहीं है कि सिर्फ़ दिल बहलाने के लिए उसने एक बेढंगा-सा घरौंदा बना लिया हो जिसका बनाना और बिगाड़ना दोनों ही का कोई मक़सद न हो, बल्कि यह एक संजीदा निज़ाम है, जिसका एक-एक ज़र्रा इस बात की गवाही दे रहा है कि उसे इन्तिहाई दर्जा हिकमत के साथ बनाया गया है, जिसकी हर चीज़ में एक क़ानून काम कर रहा है, जिसकी हर चीज़ बामक़सद है। इनसान का सारा कल्चर और उसकी पूरी मईशत (आर्थिक व्यवस्था) और उसके तमाम उलूम व फ़ुनून (ज्ञान और कलाएँ) ख़ुद इस बात पर गवाह हैं। दुनिया की हर चीज़ के पीछे काम करनेवाले क़ानूनों को खोज करके और हर चीज़ जिस मक़सद के लिए बनाई गई है उसे तलाश करके ही इनसान यहाँ यह सबकुछ बना सका है। वरना एक बेज़ाब्ता और बेमक़सद खिलौने में अगर एक पुतले की हैसियत से उसको रख दिया गया होता तो किसी साइंस और किसी तहज़ीब व तमद्दुन (सभ्यता एवं संस्कृति) का तसव्वुर तक न किया जा सकता था। अब आख़िर यह बात तुम्हारी अक़्ल में कैसे समाती है कि जिस हिकमतवाले ने इस हिकमत और मक़सद के साथ यह दुनिया बनाई है और इसके अन्दर तुम जैसी एक मख़लूक़ (प्राणी) को

आला दर्जे की ज़ेहनी और जिस्मानी ताक़तें देकर, इख़्तियार देकर, चुनने की आज़ादी देकर, अख़लाक़ का एहसास देकर अपनी दुनिया का बेशुमार सरो-सामान तुम्हारे हवाले किया है, उसने तुम्हें बेमक़सद ही पैदा कर दिया होगा? तुम दुनिया में बनाने-बिगाड़ने, नेकी और बदी, ज़ुल्म और इनसाफ़, और सही और ग़लत के सारे हंगामे बरपा करने के बाद बस यूँ ही मरकर मिट्टी में मिल जाओगे और तुम्हारे किसी अच्छे या बुरे काम का कोई नतीजा न होगा? तुम अपने एक-एक अमल से अपनी और अपने जैसे हज़ारों इनसानों की ज़िन्दगी पर और दुनिया की अनगिनत चीज़ों पर बहुत-से फ़ायदेमन्द या नुक़सानदेह असरात डालकर चले जाओगे और तुम्हारे मरते ही कामों का यह सारा खाता बस यूँ ही लपेटकर नदी में बहा दिया जाएगा?

दूसरी हक़ीक़त जो इस कायनात के निज़ाम का मुताला (अध्ययन) करने से साफ़ नज़र आती है वह यह है कि यहाँ किसी चीज़ के लिए भी हमेशगी नहीं है। हर चीज़ के लिए एक उम्र तय है जिसे पहुँचने के बाद वह ख़त्म हो जाती है। और यही मामला कुल मिलाकर पूरी कायनात का भी है। यहाँ जितनी ताक़तें काम कर रही हैं, वे सब महदूद (सीमित) हैं। एक वक़्त तक ही वे काम कर रही हैं, और किसी वक़्त पर उन्हें लाज़िमी तौर पर ख़र्च हो जाना और इस निज़ाम को ख़त्म हो जाना है। पुराने ज़माने में तो जानकारी की कमी के सबब उन फ़ल्सफ़ियों (दार्शनिकों) और साइंसदानों की बात कुछ चल भी जाती थी जो दुनिया को हमेशा से चली आ रही और हमेशा रहनेवाली बताते थे। मगर मौजूदा साइंस ने दुनिया में क्या चीज़ मिट जानेवाली है और क्या चीज़ हमेशा रहनेवाली है की उस बहस में, जो एक लम्बी मुद्दत से ख़ुदा के इनकारियों (नास्तिकों) और ख़ुदा को माननेवालों के बीच चली आ रही थी, क़रीब-क़रीब तयशुदा तौर पर अपना वोट ख़ुदापरस्तों के हक़ में डाल दिया है। अब नास्तिकों के लिए अक़्ल और हिकमत का नाम लेकर यह दावा करने की कोई गुंजाइश नहीं रही है कि दुनिया हमेशा से है और हमेशा रहेगी और क़ियामत कभी न आएगी। पुरानी माद्दापरस्ती (भौतिकवाद) का सारा दारोमदार इस ख़याल पर था कि माद्दा (पदार्थ) मिट नहीं सकता, सिर्फ़ सूरत बदली जा सकती है, मगर हर बदलाव के बाद माद्दा माद्दा ही रहता है और उसकी मिक़दार में कोई कमी-ज़्यादती नहीं होती। इस बुनियाद पर यह नतीजा निकाला जाता था कि इस माद्दी आलम की न कोई शुरुआत है और न इन्तिहा (अन्त)। लेकिन अब जौहरी तवानाई (परमाणु-शक्ति, Atomic Energy) की खोज ने इस पूरी सोच और ख़याल बिलकुल ही बदल कर रख दिया है। अब यह बात खुल गई है कि ताक़त माद्दे में बदल जाती है और माद्दा फिर ताक़त में बदल जाता है, यहाँ तक कि न सूरत बाक़ी रहती है, न मिला हुआ माद्दा। अब हरकियाते-हरारत (ऊष्मा की गति) के दूसरे क़ानून (Second Law of Thermo-Dynamics) ने यह साबित कर दिया है कि यह आलमे-माद्दी न सदा से हो सकता है और न सदा के लिए हो सकता है। इसको लाज़िमन एक वक़्त शुरू और एक वक़्त ख़त्म होना ही चाहिए। इसलिए साइंस की बुनियाद पर अब क़ियामत का इनकार मुमकिन नहीं रहा है। और ज़ाहिर बात है कि जब साइंस हथियार डाल दे तो फ़ल्सफ़ा किन टाँगों पर उठकर क़ियामत का इनकार करेगा?

وَاِنَّ كَثِيْرًا مِّنَ النَّاسِ بِلِقَآئِ رَبِّهِمْ لَكٰفِرُوْنَ۝٨ اَوَلَمْ
يَسِيْرُوْا فِي الْاَرْضِ فَيَنْظُرُوْا كَيْفَ كَانَ عَاقِبَةُ الَّذِيْنَ
مِنْ قَبْلِهِمْ ؕ كَانُوْٓا اَشَدَّ مِنْهُمْ قُوَّةً وَّاَثَارُوا الْاَرْضَ وَعَمَرُوْهَآ

मगर बहुत-से लोग अपने रब की मुलाक़ात के इनकारी हैं।[7] (9) और क्या ये लोग कभी ज़मीन में चले-फिरे नहीं हैं कि इन्हें उन लोगों का अंजाम नज़र आता जो इनसे पहले गुज़र चुके हैं?[8] वे इनसे ज़्यादा ताक़त रखते थे, उन्होंने ज़मीन को ख़ूब उधेड़ा था[9] और उसे इतना

7. यानी इस बात का इनकार करनेवाले कि उन्हें मरने के बाद अपने रब के सामने हाज़िर होना है।

8. यह आख़िरत के हक़ में तारीख़ी (ऐतिहासिक) दलील है। मतलब यह है कि आख़िरत का इनकार दुनिया में दो-चार आदमियों ही ने तो नहीं किया है, इनसानी तारीख़ के दौरान में बहुत-से इनसान इस रोग में मुब्तला होते रहे हैं। बल्कि पूरी-पूरी क़ौमें ऐसी गुज़री हैं जिन्होंने या तो इसका इनकार किया है, या इससे बेपरवाह होकर रही हैं, या मरने के बाद की ज़िन्दगी के बारे में ऐसे ग़लत अक़ीदे ईजाद कर लिए हैं जिनसे आख़िरत का अक़ीदा बेमानी होकर रह जाता है। फिर तारीख़ का लगातार तजरिबा यह बताता है कि आख़िरत का इनकार जिस सूरत में भी किया गया है उसका लाज़िमी नतीजा यह हुआ कि लोगों के अख़लाक़ बिगड़े, वे अपने आपको ग़ैर-ज़िम्मेदार समझकर बेनकेल के ऊँट बन गए, उन्होंने ज़ुल्म और फ़साद और नाफ़रमानी और सरकशी की हद कर दी। और इसी चीज़ की वजह से क़ौमों-पर-क़ौमें तबाह होती चली गईं। क्या हज़ारों साल की तारीख़ का यह तजरिबा, जो एक-के-बाद एक इनसानी नस्लों को पेश आता रहा है, यह साबित नहीं करता कि आख़िरत एक हक़ीक़त है, जिसका इनकार इनसान के लिए तबाह कर देनेवाला है? इनसान कशिशे-सक़्ल (गुरुत्वाकर्षण) को इसी लिए तो मानने लगा है कि अमली और आँखों देखे तजरिबे से उसने माद्दी चीज़ों को हमेशा ज़मीन की तरफ़ गिरते देखा है। इनसान ने ज़हर को ज़हर इसी लिए तो माना है कि जिसने भी ज़हर खाया वह मर गया। इसी तरह जब आख़िरत का इनकार हमेशा इनसान के लिए अख़लाक़ी बिगाड़ का सबब साबित हुआ है तो क्या यह तजरिबा यह सबक़ देने के लिए काफ़ी नहीं है कि आख़िरत एक हक़ीक़त है और उसको नज़र-अन्दाज़ करके दुनिया में ज़िन्दगी बसर करना ग़लत है?

9. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ ''आसारुल-अरज़'' इस्तेमाल हुआ है। यह लफ़्ज़ खेती के लिए हल चलाने के लिए भी इस्तेमाल होता है और ज़मीन खोदकर नीचे का पानी, नहरें-नाले और मादनियात (खनिज पदार्थ) वग़ैरा निकालने के लिए भी।

اَكْثَرَ مِمَّا عَمَرُوْهَا وَجَآءَتْهُمْ رُسُلُهُمْ بِالْبَيِّنٰتِ ؕ فَمَا كَانَ اللّٰهُ
لِيَظْلِمَهُمْ وَلٰكِنْ كَانُوْۤا اَنْفُسَهُمْ يَظْلِمُوْنَ ۝ ثُمَّ كَانَ عَاقِبَةَ الَّذِيْنَ
اَسَآءُوا السُّوْٓاٰى اَنْ كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَكَانُوْا بِهَا يَسْتَهْزِءُوْنَ ۝١٠ ع

आबाद किया था जितना इन्होंने नहीं किया है।[10] उनके पास उनके रसूल रौशन निशानियाँ लेकर आए।[11] फिर अल्लाह उनपर ज़ुल्म करनेवाला न था, मगर वे ख़ुद ही अपने ऊपर ज़ुल्म कर रहे थे।[12] (10) आख़िरकार जिन लोगों ने बुराइयाँ की थीं, उनका अंजाम बहुत बुरा हुआ, इसलिए कि उन्होंने अल्लाह की आयतों को झुठलाया था और वे उनका मज़ाक़ उड़ाते थे।

10. इसमें उन लोगों की दलील का जवाब मौजूद है जो सिर्फ़ माद्दी तरक़्क़ी को किसी क़ौम के नेक होने की निशानी समझते हैं। ये कहते हैं कि जिन लोगों ने ज़मीन के ज़राए (संसाधनों) को इतने बड़े पैमाने पर इस्तेमाल (Exploit) किया है, जिन्होंने दुनिया में बड़े-बड़े तामीरी काम किए हैं और एक शानदार कल्चर को जन्म दिया है, भला यह कैसे मुमकिन है कि अल्लाह तआला उनको जहन्नम का ईंधन बना दे। क़ुरआन इसका जवाब यह देता है कि ये 'तामीरी काम' पहले भी बहुत-सी क़ौमों ने बड़े पैमाने पर किए हैं, फिर क्या तुम्हारी आँखों ने नहीं देखा कि ये क़ौमें अपनी तहज़ीब (सभ्यता) और अपने तमद्दुन (संस्कृति) समेत मिट्टी में मिल गईं और उनकी 'तामीर' का गगनचुम्बी महल ज़मीन पर आ रहा? जिस ख़ुदा के क़ानून ने यहाँ सच्चे अक़ीदे और बेहतरीन अख़लाक़ के बिना सिर्फ़ माद्दी तामीर की यह क़द्र की है, आख़िर क्या वजह है कि उसी ख़ुदा का क़ानून दूसरी दुनिया में उन्हें जहन्नम में दाख़िल न करे?

11. यानी ऐसी निशानियाँ लेकर आए जो उनके सच्चे नबी होने का यक़ीन दिलाने के लिए काफ़ी थीं। यहाँ इस मौक़े पर नबियों के आने के ज़िक्र का मतलब यह है कि एक तरफ़ इनसान के अपने वुजूद में, और उससे बाहर सारी कायनात के निज़ाम (व्यवस्था) में, और इनसानी तारीख़ के लगातार तजरिबे में आख़िरत की गवाहियाँ मौजूद थीं, और दूसरी तरफ़ एक-के-बाद एक ऐसे नबी भी आए जिनके साथ उनकी नुबूवत के सच होने की खुली-खुली निशानियाँ पाई जाती थीं, और उन्होंने इनसानों को ख़बरदार किया कि सचमुच आख़िरत आनेवाली है।

12. यानी उसके बाद जो तबाही उन क़ौमों पर आई वह उनपर ख़ुदा का ज़ुल्म न था, बल्कि वह उनका अपना ज़ुल्म था जो उन्होंने अपने ऊपर किया। जो शख़्स या गरोह न ख़ुद सही सोचे और न किसी समझानेवाले के समझाने से सही रवैया अपनाए, उसपर अगर तबाही आती है तो वह आप ही अपने बुरे अंजाम का ज़िम्मेदार है। ख़ुदा पर उसका इलज़ाम लगाया नहीं जा सकता। ख़ुदा ने तो अपनी किताबों और अपने नबियों के ज़रिए से इनसान को हक़ीक़त का

اَللّٰهُ يَبْدَؤُا الْخَلْقَ ثُمَّ يُعِيدُهٗ ثُمَّ اِلَيْهِ تُرْجَعُوْنَ۝۱۱ وَيَوْمَ تَقُوْمُ
السَّاعَةُ يُبْلِسُ الْمُجْرِمُوْنَ۝۱۲ وَلَمْ يَكُنْ لَّهُمْ مِّنْ شُرَكَآئِهِمْ

(11) अल्लाह ही पैदाइश की शुरुआत करता है, फिर वही उसको दोहराएगा,[13] फिर उसी की तरफ़ तुम पलटाए जाओगे। (12) और जब वह घड़ी आएगी,[14] उस दिन मुजरिम हक्का-बक्का रह जाएँगे,[15] (13) उनके ठहराए हुए शरीकों में कोई उनका

इल्म देने का इन्तिज़ाम भी किया है, और ये इल्मी और अक़्ली ज़रिए भी दिए हैं जिनसे काम लेकर वह हर वक़्त नबियों और आसमानी किताबों के दिए हुए इल्म के सही होने की जाँच कर सकता है। यह रहनुमाई और ये ज़रिए अगर ख़ुदा ने इनसान को न दिए होते और इस हालत में इनसान को ग़लत रवैये के नतीजों का सामना करना पड़ता तब बेशक ख़ुदा पर ज़ुल्म के इलज़ाम की गुंजाइश निकल सकती थी।

13. यह बात अगरचे दावे के अन्दाज़ में कही गई है, मगर इसमें ख़ुद दावे की दलील भी मौजूद है। अक़्ल साफ़ तौर से इस बात की गवाही देती है कि जिसके लिए पैदाइश की इबतिदा करना मुमकिन हो उसके लिए उसी पैदाइश को दोहरा देना कहीं ज़्यादा आसान है। पैदाइश की इबतिदा तो एक ऐसी हक़ीक़त है जो सबके सामने मौजूद है। और कुफ़्र और शिर्क करनेवाले भी मानते हैं कि यह अल्लाह तआला ही का काम है। इसके बाद उनका यह ख़याल करना सरासर अक़्ल के ख़िलाफ़ बात है कि वही ख़ुदा जिसने पहली बार पैदा किया, दोबारा पैदा नहीं कर सकता।

14. यानी अल्लाह तआला की तरफ़ पलटने और उसके सामने पेश होने की घड़ी।

15. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'युबलिसु' इस्तेमाल किया गया है जो 'इबलास' से बना है। इबलास का मतलब है सख़्त मायूसी और सदमे की वजह से किसी शख़्स का गुमसुम हो जाना, उम्मीद के सारे रास्ते बन्द पाकर हैरान और परेशान रह जाना, कोई दलील न पाकर चुपचाप रह जाना। यह लफ़्ज़ जब मुजरिम के लिए इस्तेमाल किया जाए तो ज़ेहन के सामने उसकी यह तस्वीर आती है कि एक शख़्स ठीक जुर्म की हालत में रंगे हाथों (Red-handed) पकड़ा गया है, न बच निकलने की कोई राह पाता है, न अपनी सफ़ाई में कोई चीज़ पेश करके बच निकलने की उम्मीद रखता है, इसलिए ज़बान उसकी बन्द है और वह इन्तिहाई मायूसी और दुख की हालत में हैरान और परेशान खड़ा है।

इस जगह पर यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि यहाँ मुजरिमों से मुराद सिर्फ़ वही लोग नहीं हैं जिन्होंने दुनिया में क़त्ल, चोरी, डाके और इसी तरह के दूसरे जुर्म किए हैं, बल्कि वे सब लोग मुराद हैं जिन्होंने ख़ुदा से बग़ावत की है, उसके रसूलों की तालीम और हिदायत को क़बूल करने से इनकार किया है, आख़िरत की जवाबदेही का इनकार किया या उससे बेफ़िक्र रहे हैं, और दुनिया में ख़ुदा के बजाय दूसरों की या अपने मन की बन्दगी करते रहे हैं, चाहे इस बुनियादी

شُفَعٰٓؤُا وَكَانُوْا بِشُرَكَآئِهِمْ كٰفِرِيْنَ ﴿١٣﴾ وَيَوْمَ تَقُوْمُ السَّاعَةُ

सिफ़ारिशी न होगा[16] और ये अपने शरीकों के इनकारी हो जाएँगे।[17] (14) जिस दिन वह

गुमराही के साथ उन्होंने ये काम किए हों या न किए हों जिन्हें आम तौर पर जुर्म कहा जाता है। इसके अलावा वे लोग भी शामिल हैं जिन्होंने ख़ुदा को मानकर, उसके पैग़म्बरों पर ईमान लाकर, आख़िरत का इक़रार करके फिर जान-बूझकर अपने रब की नाफ़रमानियाँ की हैं और आख़िर वक़्त तक अपनी इस बाग़ियाना रविश पर डटे रहे हैं। ये लोग जब अपनी उम्मीदों के बिलकुल ख़िलाफ़ आख़िरत की दुनिया में यकायक जी उठेंगे और देखेंगे कि यहाँ तो सचमुच वह दूसरी ज़िन्दगी पेश आ गई है जिसका इनकार करके, या जिसे अनदेखा करके, वे दुनिया में काम करते रहे थे, तो उनके होश उड़ जाएँगे और उनकी यह हालत हो जाएगी जिसका नक़्शा 'युबलिसुल-मुजरिमून' के अलफ़ाज़ में खींचा गया है।

16. शरीक होनेवालों में तीन तरह की हस्तियाँ शामिल हैं। एक फ़रिश्ते, नबी, वली और शहीद और नेक लोग जिनको अलग-अलग ज़मानों में मुशरिकों ने ख़ुदाई ख़ूबियाँ और इख़्तियार रखनेवाला ठहराकर उनके आगे बन्दगी की रस्में अदा की हैं। वे क़ियामत के दिन साफ़-साफ़ कह देंगे कि तुम यह सबकुछ हमारी मरज़ी के बिना, बल्कि हमारी तालीम और हिदायत के सरासर ख़िलाफ़ करते रहे हो, इसलिए हमारा तुमसे कोई ताल्लुक़ नहीं, हमसे कोई उम्मीद न रखो कि हम तुम्हारी सिफ़ारिश के लिए अल्लाह तआला के सामने कुछ दरख़ास्त करेंगे। दूसरी क़िस्म उन चीज़ों की है जो बेसमझ या बेजान हैं, जैसे चाँद, सूरज, सितारे, पेड़, पत्थर और जानवर वग़ैरा। मुशरिकों ने उनको ख़ुदा बनाया और उनकी पूजा की और उनसे दुआएँ माँगीं, मगर ये बेचारे अनजान हैं कि अल्लाह मियाँ के ख़लीफ़ा साहब ये सारी मन्नत-नियाज़ें उनके लिए ख़ास कर रहे हैं। ज़ाहिर है कि उनमें से भी कोई यहाँ उनकी सिफ़ारिश के लिए आगे बढ़नेवाला न होगा। तीसरी क़िस्म उन बड़े मुजरिमों की है जिन्होंने ख़ुद कोशिश करके, धोखा-धड़ी से काम लेकर, झूठ के जाल फैलाकर, या ताक़त इस्तेमाल करके दुनिया में ख़ुदा के बन्दों से अपनी बन्दगी कराई। मसलन शैतान, झूठे मज़हबी पेशवा, और ज़ालिम और अत्याचारी हुक्मराँ वग़ैरा। ये यहाँ ख़ुद मुसीबत में पड़े होंगे, अपने इन बन्दों की सिफ़ारिश के लिए आगे बढ़ना तो एक तरफ़, उनकी तो उलटी कोशिश यह होगी कि अपने आमालनामे का बोझ हल्का करें और हश्र के दिन इनसाफ़ करनेवाले अल्लाह तआला के सामने यह साबित कर दें कि ये लोग अपने जुर्मों के ख़ुद ज़िम्मेदार हैं, इनकी गुमराही का बोझ हमपर नहीं पड़ना चाहिए। इस तरह मुशरिकों को वहाँ किसी तरफ़ से भी कोई सिफ़ारिश न मिलेगी।

17. यानी उस वक़्त ये मुशरिक लोग ख़ुद इस बात को क़बूल करेंगे कि हम इनको ख़ुदा का साझेदार ठहराने में ग़लती पर थे। उनपर यह हक़ीक़त खुल जाएगी कि सचमुच उनमें से किसी का भी ख़ुदाई में कोई हिस्सा नहीं है, इसलिए जिस शिर्क पर आज वे दुनिया में अड़े हैं, उसी का वह आख़िरत में इनकार करेंगे।

يَوْمَىِٕذٍ يَّتَفَرَّقُوْنَ۝١٤

घड़ी आएगी, उस दिन (सब इनसान) अलग गरोहों में बँट जाएँगे।[18]

18. यानी दुनिया की ये तमाम जत्थे-बन्दियाँ जो आज क़ौम, नस्ल, वतन, ज़बान, क़बीला और बिरादरी और मआशी (आर्थिक) और सियासी फ़ायदों की बुनियाद पर बनी हुई हैं, उस दिन टूट जाएँगी, और ख़ालिस अक़ीदे और अख़लाक़ और किरदार की बुनियाद पर नए सिरे से एक दूसरी गरोह-बन्दी होगी। एक तरफ़ इनसानों की तमाम अगली-पिछली क़ौमों में से ईमानवाले और नेक इनसान अलग छाँट लिए जाएँगे और उन सबका एक गरोह होगा। दूसरी तरफ़ एक-एक क़िस्म के गुमराहीवाले नज़रिए और अक़ीदे रखनेवाले, और एक-एक क़िस्म के जराइम-पेशा लोग इनसानों की इस अज़ीमुश्शान भीड़ में से छाँट-छाँटकर अलग निकाल लिए जाएँगे और उनके अलग-अलग गरोह बन जाएँगे। दूसरे अलफ़ाज़ में यूँ समझना चाहिए कि इस्लाम जिस चीज़ को इस दुनिया में जुदा होने और जमा होने की हक़ीक़ी बुनियाद ठहराता है और जिसे जाहिलियत के पुजारी यहाँ मानने से इनकार करते हैं, आख़िरत में इसी बुनियाद पर जुदाई और अलगाव भी होगा और इसी बुनियाद पर लोग जमा भी होंगे। इस्लाम कहता है कि इनसानों को काटने और जोड़नेवाली अस्ल चीज़ अक़ीदा और अख़लाक़ है। ईमान लानेवाले और ख़ुदाई हिदायत पर ज़िन्दगी के निज़ाम (व्यवस्था) की बुनियाद रखनेवाले एक उम्मत (समुदाय) हैं, चाहे वे दुनिया के किसी कोने से ताल्लुक़ रखते हों, और इनकार और नाफ़रमानी की राह अपनानेवाले एक दूसरी उम्मत हैं, चाहे उनका ताल्लुक़ किसी नस्ल और वतन से हो। इन दोनों की क़ौमियत एक नहीं हो सकती। ये न दुनिया में मिल-जुलकर ज़िन्दगी की एक राह बनाकर एक साथ चल सकते हैं और न आख़िरत में इनका अंजाम एक हो सकता है। दुनिया से आख़िरत तक इनकी राह और मंज़िल एक दूसरे से अलग है। जाहिलियत के पुजारी इसके बरख़िलाफ़ हर ज़माने में इस बात पर ज़ोर देते रहे हैं और आज भी इसी बात पर अड़े हैं कि जत्थाबन्दी नस्ल और वतन की बुनियादों पर होनी चाहिए, इन बुनियादों के लिहाज़ से जो लोग एक जैसे हों उन्हें मज़हब और अक़ीदे का लिहाज़ किए बिना एक क़ौम बनकर दूसरी ऐसी ही क़ौमों के मुक़ाबले में एकजुट हो जाना चाहिए, और इस क़ौमियत का एक ऐसा निज़ामे-ज़िन्दगी (जीवन-व्यवस्था) होना चाहिए जिसमें तौहीद (एकेश्वरवाद) और शिर्क और नास्तिकता के माननेवाले सब एक साथ मिलकर चल सकें। यही ख़याल अबू-जह्ल, अबू-लहब और क़ुरैश के सरदारों का था, जब वे बार-बार मुहम्मद (सल्ल.) पर इलज़ाम रखते थे कि इस आदमी ने आकर हमारी क़ौम में फूट डाल दी है। इसी पर क़ुरआन यहाँ ख़बरदार कर रहा है कि तुम्हारी ये तमाम जत्थेबन्दियाँ, जो तुमने इस दुनिया में ग़लत बुनियादों पर कर रखी हैं, आख़िरकार टूट जानेवाली हैं और इनसानों में मुस्तक़िल अलगाव तो उसी अक़ीदे और नज़रिए और अख़लाक़ और किरदार की बुनियाद पर होनेवाला है जिसपर इस्लाम दुनिया की इस ज़िन्दगी में करना चाहता है। जिन लोगों की मंज़िल एक नहीं है, उनकी ज़िन्दगी की राह आख़िर कैसे एक हो सकती है?

فَاَمَّا الَّذِیْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ فَهُمْ فِیْ رَوْضَةٍ یُّحْبَرُوْنَ﴿۱۵﴾
وَاَمَّا الَّذِیْنَ كَفَرُوْا وَكَذَّبُوْا بِاٰیٰتِنَا وَلِقَآئِ الْاٰخِرَةِ فَاُولٰٓىِٕكَ فِی
الْعَذَابِ مُحْضَرُوْنَ﴿۱۶﴾ فَسُبْحٰنَ اللّٰهِ حِیْنَ تُمْسُوْنَ وَحِیْنَ تُصْبِحُوْنَ﴿۱۷﴾

(15) जो लोग ईमान लाए हैं और जिन्होंने भले काम किए हैं वे एक बाग़ में[19] ख़ुशी और आनन्द के साथ रखे जाएँगे।[20] (16) और जिन्होंने इनकार किया है और हमारी आयतों को और आख़िरत को झुठलाया है[21] वे अज़ाब में हाज़िर रखे जाएँगे।

(17) तो[22] तसबीह करो अल्लाह की[23] जबकि तुम शाम करते हो और जब सुबह करते

19. 'एक बाग़' का लफ़्ज़ यहाँ उस बाग़ की बड़ाई और शान का तसव्वुर दिलाने के लिए इस्तेमाल हुआ है। अरबी ज़बान की तरह उर्दू/हिन्दी में भी यह अन्दाज़े-बयान इस ग़रज़ के लिए जाना जाता है। जैसे कोई आदमी किसी को एक बड़ा अहम काम करने को कहे और इसके साथ यह कहे कि तुमने यह काम अगर कर दिया तो मैं तुम्हें 'एक चीज़' दूँगा, तो इससे मुराद यह नहीं होती कि वह चीज़ गिनती के लिहाज़ से एक होगी, बल्कि इसका मक़सद यह होता है कि उसके इनाम में तुमको एक बड़ी क़ीमती चीज़ दूँगा जिसे पाकर तुम निहाल हो जाओगे।

20. अस्ल अरबी में 'युहबरून' इस्तेमाल हुआ है जिसके मतलब में ख़ुशी, मज़ा, शानो-शौकत और इज़्ज़त व एहतिराम शामिल है। यानी वहाँ बड़ी इज़्ज़त के साथ रखे जाएँगे, ख़ुश रहेंगे और हर तरह की लज़्ज़तों से फ़ायदा उठाएँगे।

21. यह बात ध्यान देने के क़ाबिल है कि ईमान के साथ तो भले कामों का ज़िक्र किया गया है जिसके नतीजे में वह शानदार अंजाम नसीब होगा, लेकिन कुफ़्र का बुरा अंजाम बयान करते हुए बुरे कामों का कोई ज़िक्र नहीं किया गया। इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि कुफ़्र अपने आपमें ख़ुद आदमी के अंजाम को ख़राब कर देने के लिए काफ़ी है चाहे अमल की ख़राबी उसके साथ शामिल हो या न हो।

22. यह 'तो' इस मानी में है कि जब तुम्हें यह मालूम हो गया कि ईमान और भले काम का अंजाम यह कुछ, और कुफ़्र और झुठलाने का अंजाम यह कुछ है तो तुम्हें यह रवैया अपनाना चाहिए। इसके अलावा यह 'तो' इस मानी में भी है कि शिर्क और कुफ़्र करनेवाले लोग आख़िरत की ज़िन्दगी को नामुमकिन ठहराकर अल्लाह तआला को अस्ल में बेबस और कमज़ोर ठहरा रहे हैं। इसलिए तुम इसके मुक़ाबले में अल्लाह की तसबीह करो और इस कमज़ोरी से उसके पाक होने का एलान करो। यह हुक्म नबी (सल्ल.) और आप (सल्ल.) के ज़रिए से तमाम ईमानवालों को दिया गया है।

23. अल्लाह की तसबीह करने से मुराद उन तमाम बुराइयों, ख़राबियों और कमज़ोरियों से, जो मुशरिक लोग अपने शिर्क और आख़िरत के इनकार से अल्लाह की तरफ़ जोड़ते हैं, उस

وَلَهُ الْحَمْدُ فِي السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَعَشِيًّا وَّحِيْنَ تُظْهِرُوْنَ ⑱ يُخْرِجُ الْحَيَّ مِنَ الْمَيِّتِ وَيُخْرِجُ الْمَيِّتَ مِنَ الْحَيِّ وَيُحْيِ الْاَرْضَ

हो (18) आसमानों और ज़मीन में उसी के लिए हम्द (तारीफ़) है। और (तसबीह करो उसकी) तीसरे पहर और जबकि तुमपर ज़ुहर का वक़्त आता है।[24] (19) वह ज़िन्दा में से मुर्दे को निकालता है और मुर्दे में से ज़िन्दा को निकाल लाता है और ज़मीन को उसकी

बेमिसाल हस्ती के पाक होने का एलान और इज़हार करना है। इस एलान और इज़हार की बेहतरीन सूरत नमाज़ है। इसी वजह से इब्ने-अब्बास, मुजाहिद, क़तादा, इब्ने-ज़ैद और दूसरे तफ़सीर लिखनेवाले कहते हैं कि यहाँ तसबीह करने से मुराद नमाज़ पढ़ना है। इस तफ़सीर के हक़ में यह साफ़ इशारा ख़ुद इस आयत में मौजूद है कि अल्लाह की पाकी बयान करने के लिए इसमें कुछ ख़ास वक़्त मुक़र्रर किए गए हैं। ज़ाहिर बात है कि अगर सिर्फ़ यह अक़ीदा रखना मक़सद हो कि अल्लाह तमाम ख़राबियों और कमज़ोरियों से पाक है तो इसके लिए सुबह-शाम और ज़ुहर और अस्र के वक़्तों की पाबन्दी का कोई सवाल पैदा नहीं होता, क्योंकि यह अक़ीदा तो मुसलमान को हर वक़्त रखना चाहिए। इसी तरह अगर सिर्फ़ ज़बान से अल्लाह की पाकी ज़ाहिर करना मक़सद हो तब भी इन वक़्तों के ख़ास करने का कोई मतलब नहीं, क्योंकि यह इज़हार तो मुसलमान को हर मौक़े पर करना चाहिए। इसलिए वक़्तों की पाबन्दी के साथ तसबीह करने का हुक्म लाज़िमी तौर पर उसकी एक ख़ास अमली शक्ल ही की तरफ़ इशारा करता है। और यह अमली शक्ल नमाज़ के सिवा और कोई नहीं है।

24. इस आयत में नमाज़ के चार वक़्तों की तरफ़ साफ़ इशारा है : फ़ज्र, मग़रिब, अस्र और ज़ुहर। इसके अलावा कुछ और इशारे जो क़ुरआन मजीद में नमाज़ के वक़्तों की तरफ़ दिए गए हैं, नीचे दिए जा रहे हैं—

"नमाज़ क़ायम करो सूरज ढलने के बाद से रात के अंधेरे तक, और फ़ज्र के वक़्त क़ुरआन पढ़ने का एहतिमाम करो।" (क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-78)

"और नमाज़ क़ायम करो दिन के दोनों सिरों पर और कुछ रात गुज़रने पर।" (क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयत-114)

"और अपने रब की हम्द (तारीफ़) के साथ उसकी तसबीह करो सूरज निकलने से पहले और उसके डूबने से पहले, और रात की कुछ घड़ियों में तसबीह करो, और दिन के किनारों पर भी।" (क़ुरआन, सूरा-20 ता-हा, आयत-130)

इनमें से पहली आयत बताती है कि नमाज़ के वक़्त सूरज ढलने के बाद से इशा तक हैं, और इसके बाद फिर फ़ज्र का वक़्त है। दूसरी आयत में दिन के दोनों सिरों से मुराद सुबह और मग़रिब के वक़्त हैं और कुछ रात गुज़रने पर से मुराद इशा का वक़्त। तीसरी आयत में सूरज निकलने से पहले से मुराद फ़ज्र और सूरज डूबने से पहले से मुराद अस्र। रात की घड़ियों में

मग़रिब और इशा दोनों शामिल हैं। और दिन के किनारे तीन हैं, एक सुबह, दूसरे सूरज ढलने का वक़्त और तीसरे मग़रिब। इस तरह क़ुरआन मजीद अलग-अलग जगहों पर नमाज़ के उन पाँचों वक़्तों की तरफ़ इशारा करता है जिनपर आज दुनिया भर के मुसलमान नमाज़ पढ़ते हैं। लेकिन ज़ाहिर है कि सिर्फ़ इन आयतों को पढ़कर कोई शख़्स भी नमाज़ के वक़्त मुक़र्रर न कर सकता था जब तक कि अल्लाह के मुक़र्रर किए हुए क़ुरआन सिखानेवाले, मुहम्मद (सल्ल.) ख़ुद अपनी ज़बान और अमल से इनकी तरफ़ रहनुमाई न करते।

यहाँ ज़रा थोड़ी देर ठहरकर हदीस को न माननेवालों की इस जसारत (दुस्साहस) पर ग़ौर कीजिए कि ये 'नमाज़ पढ़ने' का मज़ाक़ उड़ाते हैं और कहते हैं कि यह नमाज़ जो आज मुसलमान पढ़ रहे हैं यह सिरे से वह चीज़ ही नहीं है जिसका क़ुरआन में हुक्म दिया गया है। उनका कहना है कि क़ुरआन तो 'इक़ामते-सलात' का हुक्म देता है और इससे मुराद नमाज़ पढ़ना नहीं बल्कि 'निज़ामे-रुबूबियत' (ख़ुदा की व्यवस्था) क़ायम करना है। अब ज़रा उनसे पूछिए कि यह कौन-सा निराला निज़ामे- रुबूबियत है जिसे या तो सूरज निकलने से पहले क़ायम किया जा सकता है या फिर सूरज ढलने के बाद से कुछ रात गुज़रने तक? और यह कौन-सा निज़ामे-रुबूबियत है जो ख़ास जुमे के दिन क़ायम किया जाना दरकार है? (जब जुमे के दिन नमाज़ के लिए पुकारा जाए तो दौड़ो अल्लाह के ज़िक्र की तरफ़—सूरा-62 जुमुआ, आयत-9)। और निज़ामे-रुबूबियत की आख़िर यह कौन-सी ख़ास क़िस्म है कि उसे क़ायम करने के लिए जब आदमी खड़ा हो तो पहले मुँह और कुहनियों तक हाथ और टख़नों तक पाँव धो ले और सिर पर हाथ फेर ले, वरना वह उसे क़ायम नहीं कर सकता? (जब तुम नमाज़ के लिए खड़े हो तो अपने चेहरों को और अपने हाथों को कुहनियों तक धो लो—सूरा-5 माइदा, आयत-6)। और निज़ामे-रुबूबियत के अन्दर आख़िर यह क्या ख़ासियत है कि अगर आदमी नापाकी की हालत में हो तो जब तक वह ग़ुस्ल न कर ले, उसे क़ायम नहीं कर सकता? (जब तुम नशे की हालत में हो तो नमाज़ के क़रीब न जाओ......और इसी तरह जनाबत (नापाकी) की हालत में भी नमाज़ के क़रीब न जाओ जब तक ग़ुस्ल न कर लो। सिवाय इसके कि रास्ते से गुज़रते हो। सूरा-4 अन-निसा, आयत-43) और यह क्या मामला है कि अगर आदमी औरत को छू बैठा हो और पानी न मिले तो इस अजीबो-ग़रीब निज़ामे-रुबूबियत को क़ायम करने के लिए उसे पाक मिट्टी पर हाथ मारकर अपने चेहरे और मुँह पर मलना होगा? (या तुमने औरत को छुआ हो और फिर पानी न मिले तो पाक मिट्टी से काम लो और उसे अपने चेहरों और हाथों पर मल लो। सूरा-4 निसा, आयत-43) और यह कैसा अजीब निज़ामे-रुबूबियत है कि अगर सफ़र करना पड़े तो आदमी उसे पूरा क़ायम करने के बजाय आधा ही क़ायम कर ले? (और जब तुम लोग सफ़र के लिए निकलो तो तुमपर कोई हरज नहीं कि नमाज़ में कमी कर लो। सूरा-4 निसा, आयत-101)। फिर यह क्या लतीफ़ा है कि अगर जंग की हालत हो तो फ़ौज के आधे सिपाही हथियार लिए हुए इमाम के पीछे 'निज़ामे-रुबूबियत' क़ायम करते रहें और आधे दुश्मन के मुक़ाबले में डटे रहें, इसके बाद जब पहला गरोह इमाम के पीछे 'निज़ामे-रुबूबियत' क़ायम करते हुए एक सजदा कर ले तो वह उठकर दुश्मन का मुक़ाबला करने के लिए चला जाए, और दूसरा गरोह उसकी जगह आकर इमाम के पीछे इस 'निज़ामे-रुबूबियत' को क़ायम करना शुरू कर दे

بَعْدَ مَوْتِهَا ۚ وَكَذٰلِكَ تُخْرَجُوْنَ ۝١٩ وَمِنْ اٰيٰتِهٖٓ اَنْ خَلَقَكُمْ مِّنْ تُرَابٍ

मौत के बाद ज़िन्दगी देता है।[25] इसी तरह तुम लोग भी (मौत की हालत से) निकाल लिए जाओगे।

(20) उसकी[26] निशानियों में से यह है कि उसने तुमको मिट्टी से पैदा किया। फिर

(ऐ नबी, जब तुम मुसलमानों के बीच में हो और, (जंग की हालत में) उन्हें नमाज़ पढ़ाने खड़े हो तो चाहिए कि उनमें से एक गरोह तुम्हारे साथ खड़ा हो और अपने हथियार लिए रहे, फिर जब सजदा कर ले तो पीछे चला जाए और दूसरा गरोह जिसने अभी नमाज़ नहीं पढ़ी है, आकर तुम्हारे साथ नमाज़ पढ़े। सूरा-4 निसा, आयत-102)।

क़ुरआन मजीद की ये सारी आयतें साफ़ बता रही हैं कि 'इक़ामते-सलात' से मुराद वही नमाज़ क़ायम करना है जो मुसलमान दुनिया भर में पढ़ रहे हैं, लेकिन हदीस को न माननेवाले हैं कि ख़ुद बदलने के बजाय क़ुरआन को बदलने पर अड़े चले जाते हैं। हक़ीक़त यह है कि जब तक कोई शख़्स अल्लाह तआला के मुक़ाबले में बिलकुल ही निडर और बेख़ौफ़ न हो जाए, वह उसके कलाम के साथ यह मज़ाक़ नहीं कर सकता जो ये लोग कर रहे हैं। या फिर क़ुरआन के साथ यह खेल वह शख़्स खेल सकता है जो अपने दिल में उसे अल्लाह का कलाम न समझता हो और सिर्फ़ धोखा देने के लिए क़ुरआन-क़ुरआन पुकारकर मुसलमानों को गुमराह करना चाहता हो। (इस सिलसिले में आगे हाशिया-50 भी देखिए।)

25. यानी जो ख़ुदा हर पल तुम्हारी आँखों के सामने यह काम कर रहा है वह आख़िर इनसान को, मरने के बाद, दोबारा ज़िन्दगी देने में बेबस कैसे हो सकता है। वह हर वक़्त ज़िन्दा इनसानों और हैवानों में से बेकार चीज़ें (Waste Matter) निकाल रहा है जिनके अन्दर ज़िन्दगी का हल्का-सा असर तक नहीं होता। वह हर लम्हा बेजान माद्दे (Dead Matter) के अन्दर ज़िन्दगी की रूह फूँककर अनगिनत जीते-जागते जानवर, पेड़-पौधे और इनसान वुजूद में ला रहा है, हालाँकि अपने आपमें ख़ुद उन माद्दों (पदार्थों) में जिनसे इन ज़िन्दा हस्तियों के जिस्म तैयार होते हैं, हरगिज़ कोई ज़िन्दगी नहीं होती। वह हर पल यह मंज़र तुम्हें दिखा रहा है कि बंजर पड़ी हुई ज़मीन को जहाँ पानी मयस्सर आया और यकायक वह हैवानी और नबाताती (जन्तु और पेड़-पौधों की) ज़िन्दगी के ख़ज़ाने उगलना शुरू कर देती है। यह सबकुछ देखकर भी अगर कोई शख़्स यह समझता है कि इस दुनिया को चलानेवाला ख़ुदा इनसान के मर जाने के बाद उसे दोबारा ज़िन्दा करने से बेबस है तो हक़ीक़त में वह अक़्ल का अंधा है। उसके सर की आँखें जिन ज़ाहिरी मंज़रों को देखती हैं, उसकी अक़्ल की आँखें उनके अन्दर नज़र आनेवाली रौशन सच्चाइयों को नहीं देखतीं।

26. ख़बरदार रहना चाहिए कि यहाँ से आयत-27 के ख़ातिमे तक अल्लाह तआला की जो निशानियाँ बयान की जा रही हैं, वे एक तरफ़ तो ऊपर से चली आ रही बात को सामने रखते हुए इस बात को साबित करती हैं कि आख़िरत की ज़िन्दगी का होना मुमकिन भी है और वह

ثُمَّ إِذَآ أَنتُم بَشَرٌ تَنتَشِرُونَ ۝٢٠ وَمِنْ ءَايَٰتِهِۦٓ أَنْ خَلَقَ لَكُم مِّنْ
أَنفُسِكُمْ أَزْوَٰجًا

यकायक तुम इनसान हो कि (ज़मीन में) फैलते चले जा रहे हो।[27]

(21) और उसकी निशानियों में से यह है कि उसने तुम्हारे लिए तुम्हारी ही जिंस (सहजाति) में से बीवियाँ बनाईं[28]

होकर भी रहेगी, और दूसरी तरफ़ यही निशानियाँ इस बात पर भी दलील देती हैं कि यह कायनात न बे-ख़ुदा है और न उसके बहुत-से ख़ुदा हैं, बल्कि सिर्फ़ एक ख़ुदा उसका अकेला पैदा करनेवाला, चलानेवाला और हाकिम है जिसके सिवा इनसानों का कोई माबूद नहीं होना चाहिए। इस तरह ये आयतें अपने मज़मून के लिहाज़ से पिछली तक़रीर और आगे की तक़रीर, दोनों के साथ जुड़ी हुई हैं।

27. यानी इनसान जिन चीज़ों से बना है वे इसके सिवा क्या हैं कि कुछ बेजान माद्दे हैं जो ज़मीन में पाए जाते हैं। जैसे कुछ कार्बन, कुछ कैल्शियम, कुछ सोडियम और ऐसी ही कुछ और चीज़ें। इन्हीं को मिलाकर वह हैरतअंगेज़ हस्ती बना खड़ी की गई है जिसका नाम इनसान है और उसके अन्दर एहसासात, जज़बात, समझ, अक़्ल और सोचने की वे अजीब ताक़तें पैदा कर दी गई हैं जिनमें से किसी का मम्बा (मूलस्रोत) भी उन चीज़ों में तलाश नहीं किया जा सकता जिनसे वह बना है। फिर यही नहीं कि एक इनसान इत्तिफ़ाक़ से ऐसा बन खड़ा हुआ हो, बल्कि उसके अन्दर पैदा करने की वह अजीब क़ुव्वत भी पैदा कर दी गई जिसकी बदौलत करोड़ों और अरबों इनसान वही बनावट और वही सलाहियतें (प्रतिभाएँ) लिए हुए अनगिनत विरासती और बेहद और बेहिसाब इन्फ़िरादी (व्यक्तिगत) ख़ासियतें रखनेवाले निकलते चले आ रहे हैं। क्या तुम्हारी अक़्ल यह गवाही देती है कि ये इन्तिहाई हिकमत से भरी पैदाइश किसी हिकमतवाले पैदा करनेवाले के बिना आप-से-आप हो गई है? क्या तुम होशो-हवास की हालत में यह कह सकते हो कि इनसान की पैदाइश जैसा अज़ीमुश्शान मंसूबा बनाना और उसको अमल में लाना और ज़मीन और आसमान की बेहद और बेहिसाब क़ुव्वतों को इनसानी ज़िन्दगी के लिए साज़गार (अनुकूल) कर देना बहुत-से ख़ुदाओं की फ़िक्र और तदबीर का नतीजा हो सकता है? और क्या तुम्हारा दिमाग़ अपनी सही हालत में होता है जब तुम यह गुमान करते हो कि जो ख़ुदा इनसान को ख़ालिस अदम (अनस्तित्व) से वुजूद में लाया है वह उसी इनसान को मौत देने के बाद दोबारा ज़िन्दा नहीं कर सकता?

28. यानी पैदा करनेवाले की हिकमत का कमाल यह है कि उसने इनसान की सिर्फ़ एक सिन्फ़ (जाति) ही नहीं बनाई, बल्कि उसे दो जातियों (Sexes) की शक्ल में पैदा किया, जो इनसानियत में एक जैसे हैं जिनकी बनावट का बुनियादी फ़ार्मूला भी एक जैसा ही है, मगर दोनों एक दूसरे से अलग जिस्मानी बनावट, अलग-अलग ज़ेहनी और नफ़सी सिफ़तें, और

لِّتَسۡكُنُوٓاْ إِلَيۡهَا

ताकि तुम उनके पास सुकून हासिल करो[29]

अलग-अलग जज़बात और ख़्वाहिशें लेकर पैदा होती हैं। और फिर उनके बीच यह हैरतअंगेज़ मुनासिबत (अनुकूलता) रख दी गई है कि उनमें से हर एक दूसरे का पूरा जोड़ है, हर एक का जिस्म और उसकी नफ़सियात (मनोवृत्तियाँ) और ख़्वाहिशें दूसरे के जिस्मानी और नफ़सियाती (मनोवैज्ञानिक) तक़ाज़ों का मुकम्मल जवाब हैं। इसके अलावा वह हिकमतवाला ख़ालिक़ (स्रष्टा) इन दोनों जातियों के लोगों को शुरू ही से बराबर इस तनासुब (अनुपात) के साथ पैदा किए चला जा रहा है कि आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ कि दुनिया की किसी क़ौम या किसी भू-भाग में सिर्फ़ लड़के-ही-लड़के पैदा हुए हों, या कहीं किसी क़ौम में सिर्फ़ लड़कियाँ-ही-लड़कियाँ पैदा होती चली गई हों। यह ऐसी चीज़ है जिसमें किसी इनसानी तदबीर का बिलकुल भी कोई दख़्ल नहीं है। इनसान ज़र्रा बराबर भी न इस मामले में कुछ असर-अन्दाज़ हो सकता है कि लड़कियाँ लगातार ऐसी ज़नाना ख़ुसूसियतें और लड़के ऐसी मर्दाना ख़ुसूसियतें लिए हुए पैदा होते रहें जो एक दूसरे का ठीक जोड़ हों, और न इस मामले ही में उसके पास कुछ असर-अन्दाज़ होने का कोई ज़रिआ है कि औरतों और मर्दों की पैदाइश इस तरह लगातार एक तनासुब (अनुपात) के साथ होती चली जाए। हज़ारों साल से करोड़ों और अरबों इनसानों की पैदाइश में इस तदबीर और इन्तिज़ाम का इतने मुतनासिब (सन्तुलित) तरीक़े के साथ लगातार जारी रहना इत्तिफ़ाक़ से भी नहीं हो सकता, और यह बहुत-से ख़ुदाओं की मिली-जुली तदबीर का नतीजा भी नहीं हो सकता। यह चीज़ साफ़-साफ़ इस बात पर दलील दे रही है कि एक हिकमतवाले ख़ालिक़ (स्रष्टा), और एक ही हिकमतवाले ख़ालिक़ ने अपनी ज़बरदस्त हिकमत और क़ुदरत से पहले-पहल मर्द और औरत का एक बहुत ही बेहतर डिज़ाइन बनाया, फिर इस बात का इन्तिज़ाम किया कि उस डिज़ाइन के मुताबिक़ अनगिनत मर्द और अनगिनत औरतें अपनी अलग-अलग इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) ख़ासियतें लिए हुए दुनिया भर में एक तनासुब (अनुपात) के साथ पैदा हों।

29. यानी यह इन्तिज़ाम अललटप नहीं हो गया है, बल्कि बनानेवाले ने इरादे के साथ इस ग़रज़ के लिए यह इन्तिज़ाम किया है कि मर्द अपनी फ़ितरत के तक़ाज़े औरत के पास, और औरत अपनी फ़ितरत की माँग मर्द के पास पाए, और दोनों एक दूसरे से वाबस्ता होकर ही सुकून और इत्मीनान हासिल करें। यही वह हिकमत भरी तदबीर है जिसे पैदा करनेवाले ने एक तरफ़ इनसानी नस्ल के बाक़ी रहने का, और दूसरी तरफ़ इनसानी तहज़ीब व तमद्दुन (सभ्यता एवं संस्कृति) को वुजूद में लाने का ज़रिआ बनाया है। अगर ये दोनों जातियाँ सिर्फ़ अलग-अलग डिज़ाइनों के साथ पैदा कर दी जातीं और इनमें वह बेचैनी न रख दी जाती जो उनके आपसी मिलन के बिना सुकून में नहीं बदल सकती, तो इनसानी नस्ल तो मुमकिन है कि भेड़-बकरियों की तरह चल जाती, लेकिन किसी तहज़ीब व तमद्दुन (सभ्यता एवं संस्कृति) के वुजूद में आने का कोई इमकान न था। जानवरों की तमाम जातियों के बरख़िलाफ़ इनसानों में तहज़ीब व

وَجَعَلَ بَيْنَكُمْ مَّوَدَّةً وَّرَحْمَةً ۭ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّقَوْمٍ يَّتَفَكَّرُوْنَ ۝۲۱

और तुम्हारे बीच मुहब्बत और रहमत पैदा कर दी।[30] यक़ीनन इसमें बहुत-सी निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो ग़ौर-फ़िक्र करते हैं।

तमद्दुन के पैदा होने का बुनियादी सबब यही है कि पैदा करनेवाले ने अपनी हिकमत से मर्द और औरत में एक-दूसरे के लिए वह माँग, वह प्यास, वह बेचैनी की कैफ़ियत रख दी जिसे सुकून नहीं मिलता जब तक कि वह एक-दूसरे से जुड़कर न रहें। यही सुकून की चाहत है जिसने उन्हें मिलकर घर बनाने पर मजबूर किया। इसी की बदौलत ख़ानदान और क़बीले वुजूद में आए। और इसी की बदौलत इनसान की ज़िन्दगी में सामाजिकता पली-बढ़ी। इस पलने-बढ़ने में इनसान की ज़ेहनी सलाहियतें मददगार ज़रूर हुई हैं, मगर वे उसकी अस्ली वजह नहीं हैं। अस्ल वजह यही बेचैनी है जिसे मर्द और औरत के वुजूद में रखकर उन्हें 'घर' की बुनियाद डालने पर मजबूर कर दिया गया। अक़्ल रखनेवाला कौन आदमी यह सोच सकता है कि अक़्लमन्दी का यह शाहकार (महान कार्य) फ़ितरत की अंधी ताक़तों से महज़ इत्तिफ़ाक़ी तौर पर वुजूद में आ गया है? या बहुत-से ख़ुदा ये इन्तिज़ाम कर सकते थे कि इस गहरे हिकमत भरे मक़सद को ध्यान में रखकर हज़ारों साल से लगातार अनगिनत मर्दों और औरतों को यह ख़ास बेचैनी लिए हुए पैदा करते चले जाएँ? यह तो एक हिकमतवाले और एक ही हिकमतवाले की हिकमत का खुला और वाज़ेह निशान है जिसे सिर्फ़ अक़्ल के अंधे ही देखने से इनकार कर सकते हैं।

30. मुहब्बत से मुराद यहाँ जिंसी मुहब्बत (Sexual Love) है जो मर्द और औरत के अन्दर एक-दूसरे की तरफ़ खिंचने और एक-दूसरे के साथ रहने का इबतिदाई सबब बनती है और फिर उन्हें एक-दूसरे से जोड़े रखती है। और रहमत से मुराद वह रूहानी ताल्लुक़ है जो शौहर-बीवी की ज़िन्दगी में धीरे-धीरे उभरता है जिसकी बदौलत वे एक-दूसरे के ख़ैरख़ाह, हमदर्द और दुख-सुख के साथी बन जाते हैं, यहाँ तक कि एक वक़्त ऐसा आता है जब जिंसी मुहब्बत पीछे जा पड़ती है और बुढ़ापे में ये जीवन-साथी कुछ जवानी से भी बढ़कर एक-दूसरे के लिए रहमदिल और मेहरबान साबित होते हैं। ये दो ऐसी ताक़तें हैं जिनके अच्छे नतीजे सामने आते हैं और इन्हें पैदा करनेवाले (ख़ुदा) ने उस शुरुआती बेचैनी की मदद के लिए इनसान के अन्दर पैदा की हैं जिसका ज़िक्र ऊपर गुज़रा है। वह बेचैनी तो सिर्फ़ सुकून चाहती है और उसकी तलाश में मर्द और औरत को एक-दूसरे की तरफ़ ले जाती है। इसके बाद ये दो ताक़तें आगे बढ़कर उनके बीच मुस्तक़िल दोस्ती का ऐसा रिश्ता जोड़ देती हैं जो दो अलग माहौलों में पले-बढ़े हुए अजनबियों को मिलाकर कुछ इस तरह एक-दूसरे से जोड़ देता है कि उम्र भर वे ज़िन्दगी के मंझधार में अपनी नाव एक साथ खींचते रहते हैं। ज़ाहिर है कि यह मुहब्बत और रहमत जिसका तजरिबा करोड़ों इनसानों को अपनी ज़िन्दगी में हो रहा है, कोई माद्दी (भौतिक) चीज़ नहीं है जो नाप-तौल में आ सके, इनसानी जिस्म जिन चीज़ों से मिलकर बना है उनमें भी

وَمِنْ اٰيٰتِهٖ خَلْقُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَاخْتِلَافُ اَلْسِنَتِكُمْ وَاَلْوَانِكُمْ ۚ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّلْعٰلِمِيْنَ ۝٢٢ وَمِنْ اٰيٰتِهٖ مَنَامُكُمْ بِالَّيْلِ وَالنَّهَارِ

(22) और उसकी निशानियों में से आसमानों और ज़मीन की पैदाइश,[31] और तुम्हारी ज़बानों और तुम्हारे रंगों का अलग-अलग होना है।[32] यक़ीनन इसमें बहुत-सी निशानियाँ हैं अक़्लमन्द लोगों के लिए।

(23) और उसकी निशानियों में से तुम्हारा रात और दिन का सोना और तुम्हारा

कहीं इसकी निशानदेही नहीं की जा सकती कि यह चीज़ उनसे हासिल हुई है, न किसी लेबॉरेटरी (प्रयोगशाला) में इसकी पैदाइश और इसके पलने-बढ़ने की वजहों की खोज लगाई जा सकती है। इसकी कोई वजह इसके सिवा नहीं बयान की जा सकती कि एक हिकमतवाले ख़ालिक़ (स्रष्टा) ने पूरे इरादे के साथ एक मक़सद के लिए पूरी मुनासिबत (अनुकूलता) के साथ इसे इनसान के नफ़्स (मन) में रख दिया है।

31. यानी उनका अदम (अनस्तित्व) से वुजूद में आना, और एक अटल ज़ाब्ते पर उनका क़ायम होना, और अनगिनत क़ुव्वतों का उनके अन्दर बहुत ही तनासुब व तवाज़ुन (अनुपात और सन्तुलन) के साथ काम करना, अपने अन्दर इस बात की बहुत-सी निशानियाँ रखता है कि इस पूरी कायनात को एक ख़ालिक़ (स्रष्टा) और एक ही ख़ालिक़ वुजूद में लाया है, और वही इस अज़ीमुश्शान निज़ाम को चला रहा है। एक तरफ़ अगर इस बात पर ग़ौर किया जाए कि वह इबतिदाई क़ुव्वत (Energy) कहाँ से आई है जिसने माद्दे (पदार्थ) की शक्ल इख़्तियार कर ली, फिर माद्दे के ये बहुत-से अनासिर (तत्व) कैसे बने, फिर उन अनासिर (तत्वों) की इस क़द्र हिकमत भरी तरकीब (मिलान करने) से इतनी हैरतनाक मुनासिबतों के साथ यह हैरान कर देनेवाला दुनिया का निज़ाम कैसे बन गया, और अब यह निज़ाम करोड़ों-करोड़ सदियों से किस तरह एक ज़बरदस्त क़ुदरती क़ानून की बन्दिश में कसा हुआ चल रहा है, तो तास्सुब न रखनेवाली (निष्पक्ष) हर अक़्ल इस नतीजे पर पहुँचेगी कि यह सबकुछ किसी सबकुछ जाननेवाले और हिकमतवाले के ज़बरदस्त इरादे के बिना सिर्फ़ क़िस्मत और इत्तिफ़ाक़ के नतीजे में नहीं हो सकता। और दूसरी तरफ़ अगर यह देखा जाए कि ज़मीन से लेकर कायनात के सबसे दूर के सितारों तक सब एक ही तरह के अनासिर (तत्वों) से बने हैं और एक ही क़ुदरती क़ानून उनमें काम कर रहा है तो हर अक़्ल जो हठधर्म नहीं है, बेशक यह मान लेगी कि यह सबकुछ बहुत-से ख़ुदाओं की ख़ुदाई का करिश्मा नहीं है, बल्कि एक ही ख़ुदा इस पूरी कायनात का पैदा करनेवाला और रब है।

32. यानी इसके बावजूद कि तुम्हारे बोलने-चालने के आज़ा (अंग) एक जैसे हैं, न मुँह और ज़बान की बनावट में कोई फ़र्क़ है और न दिमाग़ की बनावट में, मगर ज़मीन के अलग-अलग हिस्सों में तुम्हारी ज़बानें अलग-अलग हैं, फिर एक ही ज़बान बोलनेवाले इलाक़ों में शहर-शहर और

وَابْتِغَآؤُكُمْ مِّنْ فَضْلِهٖ ۭ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّقَوْمٍ يَّسْمَعُوْنَ ۝23

उसकी मेहरबानी को तलाश करना है।[33] यक़ीनन इसमें बहुत-सी निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो (ध्यान से) सुनते हैं।

बस्ती-बस्ती की बोलियाँ अलग-अलग हैं, और इसके अलावा हर शख़्स का लहजा और तलफ़्फ़ुज़ (उच्चारण) और बात करने का अन्दाज़ दूसरे से अलग है। इसी तरह तुम्हारा वह माद्दा (तत्व) जिससे तुम बनाए गए हो और तुम्हारी बनावट का फ़ार्मूला एक ही है, मगर तुम्हारे रंग इस क़द्र अलग-अलग हैं कि क़ौम और क़ौम तो एक तरफ़, एक माँ-बाप के दो बेटों का रंग भी बिलकुल एक जैसा नहीं है। यहाँ नमूने के तौर पर सिर्फ़ दो ही चीज़ों की तरफ़ ध्यान दिलाया गया है। लेकिन इसी रुख़ पर आगे बढ़कर देखिए तो दुनिया में आप हर तरफ़ इतनी रंगारंगी (Variety) पाएँगे कि उसको पूरी तरह जानना मुश्किल हो जाएगा। इनसान, जानवर, पेड़-पौधों (वनस्पतियों) और दूसरी तमाम चीज़ों की जिस क़िस्म को भी आप ले लें, उसकी इकाइयों में बुनियादी समानता के बावजूद अनगिनत फ़र्क़ मौजूद हैं, यहाँ तक कि किसी क़िस्म की भी कोई एक इकाई दूसरे से बिलकुल मिलती हुई नहीं है, यहाँ तक कि एक पेड़ के पत्तों में भी पूरी मुशाबहत (एकरूपता) नहीं पाई जाती। यह चीज़ साफ़ बता रही है कि यह दुनिया कोई ऐसा कारख़ाना नहीं है जिसमें ऑटोमेटिक (स्वचालित) मशीनें चल रही हों और ज़्यादा पैदावारी (Mass Production) के तरीक़े पर हर तरह की चीज़ों का बस एक-एक ठप्पा हो जिससे ढल-ढलकर एक ही तरह की चीज़ें निकलती चली आ रही हों, बल्कि यहाँ एक ऐसा ज़बरदस्त कारीगर काम कर रहा है जो हर-हर चीज़ को पूरे अलग और ख़ास ध्यान के साथ नए डिज़ाइन, नए नक़्शो-निगार, नए तनासुब (अनुपात) और नई सिफ़तों के साथ बनाता है और उसकी बनाई हुई हर चीज़ अपनी जगह अनोखी है। उसकी ईजाद की क़ुव्वत हर पल हर चीज़ का एक नया मॉडल निकाल रही है, और उसकी कारीगरी एक डिज़ाइन को दूसरी बार दोहराना अपने कमाल की तौहीन समझती है। इस हैरतअंगेज़ मंज़र को जो शख़्स भी आँखें खोलकर देखेगा वह कभी इस बेवक़ूफ़ी भरे ख़याल में मुब्तला न होगा कि इस कायनात का बनानेवाला एक बार इस कारख़ाने को चलाकर कहीं जा सोया है। यह तो इस बात का खुला सुबूत है कि वह हर वक़्त पैदा करने और बनाने के काम में लगा हुआ है और अपनी बनाई हुई एक-एक चीज़ पर अलग-अलग ध्यान दे रहा है।

33. फ़ज़्ल (मेहरबानी) को तलाश करने से मुराद रोज़ी (आजीविका) की तलाश में दौड़-धूप करना है। इनसान अगरचे आम तौर पर रात को सोता और दिन को अपनी रोज़ी के लिए जिद्दोजुहद करता है, लेकिन यह ऐसी बात नहीं है जिसपर सब अमल करते हों, बहुत-से इनसान दिन को भी सोते हैं और रात को भी रोज़ी के लिए काम करते हैं। इसी लिए रात और दिन का इकट्ठा ज़िक्र करके कहा गया कि इन दोनों वक़्तों में तुम सोते भी हो और अपनी रोज़ी के लिए

दौड़-धूप भी करते हो।

यह चीज़ भी उन निशानियों में से एक है जो एक हिकमतवाले ख़ालिक़ (स्रष्टा) की तदबीर का पता देती हैं। बल्कि इसके अलावा यह चीज़ इस बात की निशानदेही भी करती है कि वह सिर्फ़ पैदा करनेवाला ही नहीं है बल्कि अपनी मख़लूक़ पर बेइन्तिहा रहमतवाला और मेहरबान और उसकी ज़रूरतों और मस्लहतों के लिए ख़ुद उससे बढ़कर फ़िक्र करनेवाला है। इनसान दुनिया में लगातार मेहनत नहीं कर सकता, बल्कि हर कुछ घण्टों की मेहनत के बाद उसे कुछ घण्टों के लिए आराम चाहिए होता है, ताकि फिर कुछ घण्टे मेहनत करने के लिए उसे ताक़त मिल जाए। इस ग़रज़ के लिए हिकमतवाले और रहमवाले ख़ालिक़ ने इनसान के अन्दर सिर्फ़ थकन का एहसास और सिर्फ़ आराम की ख़ाहिश पैदा कर देने ही पर बस नहीं किया, बल्कि उसने 'नींद' की एक ज़बरदस्त तलब उसके वुजूद में रख दी जो उसके इरादे के बिना, यहाँ तक कि उसके रोकने के बावजूद, अपने आप हर कुछ घण्टों की बेदारी और मेहनत के बाद उसे आ दबोचती है, कुछ घण्टे आराम लेने पर उसको मजबूर कर देती है, और ज़रूरत पूरी हो जाने के बाद अपने आप उसे छोड़ देती है। इस नींद की हक़ीक़त और कैफ़ियत और उसकी हक़ीक़ी वजहों को इनसान आज तक नहीं समझ सका है। यह बिलकुल एक पैदाइशी चीज़ है जो आदमी की फ़ितरत और उसकी बनावट में रख दी गई है। इसका ठीक इनसान की ज़रूरत के मुताबिक़ होना ही इस बात की गवाही देने के लिए काफ़ी है कि यह एक इत्तिफ़ाक़ी हादिसा नहीं है बल्कि किसी हिकमतवाले ने एक सोचे-समझे मंसूबे के मुताबिक़ यह इन्तिज़ाम किया है। इसमें एक बड़ी हिकमत, मस्लहत और मक़सद साफ़ तौर पर काम करता दिखाई देता है। इसके अलावा यही नींद इस बात पर भी गवाह है कि जिसने यह मजबूर कर देनेवाली तलब इनसान के अन्दर रखी है वह इनसान के हक़ में ख़ुद उससे बढ़कर ख़ैरख़ाह है, वरना इनसान अपनी कोशिश और इरादे से नींद को रोक करके और ज़बरदस्ती जाग-जागकर और लगातार काम कर-करके अपनी काम करने की ताक़त को ही नहीं, जीने की ताक़त तक को ख़त्म कर डालता।

फिर रोज़ी की तलाश के लिए 'अल्लाह की मेहरबानी की तलाश' का लफ़्ज़ इस्तेमाल करके निशानियों के एक दूसरे सिलसिले की तरफ़ इशारा किया गया है। आदमी आख़िर यह रोज़ी तलाश ही कहाँ कर सकता था, अगर ज़मीन और आसमान की बेहदो-हिसाब ताक़तों को रोज़ी के असबाब (संसाधन) पैदा करने में न लगा दिया गया होता, और ज़मीन में इनसान के लिए रोज़ी के अनगिनत ज़रिए न पैदा कर दिए गए होते। सिर्फ़ यही नहीं, बल्कि रोज़ी की यह तलाश और इसका कमाना उस हालत में भी मुमकिन न होता अगर इनसान को इस काम के लिए निहायत मुनासिब आज़ा (अंग) और निहायत मुनासिब जिस्मानी और ज़ेहनी सलाहियतें न दी गई होतीं। इसलिए आदमी के अन्दर रोज़ी की तलाश की क़ाबिलियत और उसके वुजूद से बाहर रोज़ी के वसाइल (संसाधनों) का मौजूद होना, साफ़-साफ़ एक रहम और करम करनेवाले रब के वुजूद का पता देता है। जो अक़्ल बीमार न हो वह कभी यह नहीं मान सकती कि यह

وَمِنْ اٰيٰتِهٖ يُرِيْكُمُ الْبَرْقَ خَوْفًا وَّطَمَعًا وَّيُنَزِّلُ مِنَ السَّمَآءِ مَآءً
فَيُحْيٖ بِهِ الْاَرْضَ بَعْدَ مَوْتِهَا ۭ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّقَوْمٍ يَّعْقِلُوْنَ ۝۲۴

(24) और उसकी निशानियों में से यह है कि वह तुम्हें बिजली की चमक दिखाता है डर के साथ भी और लालच के साथ भी।[34] और आसमान से पानी बरसाता है, फिर उसके ज़रिए से ज़मीन को उसकी मौत के बाद ज़िन्दगी देता है।[35] यक़ीनन इसमें बहुत-सी निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो अक़्ल से काम लेते हैं।

सबकुछ इत्तिफ़ाक़ से हो गया है, या यह बहुत-से ख़ुदाओं की ख़ुदाई का करिश्मा है, या कोई बेदर्द अंधी ताक़त इस मेहरबानी और करम की ज़िम्मेदार है।

34. यानी उसकी गरज और चमक से उम्मीद भी बँधती है कि बारिश होगी और फ़स्लें तैयार होंगी, मगर साथ ही डर भी लगा होता है कि कहीं बिजली न गिर पड़े या ऐसी तूफ़ानी बारिश न हो जाए जो सबकुछ बहा ले जाए।

35. यह चीज़ एक तरफ़ मरने के बाद आनेवाली ज़िन्दगी की निशानदेही करती है, और दूसरी तरफ़ यही चीज़ इसपर भी दलील देती है कि ख़ुदा है और ज़मीन और आसमान का इन्तिज़ाम करनेवाला एक ही ख़ुदा है। ज़मीन के अनगिनत जानदारों के खाने-पीने का दारोमदार उस पैदावार पर है जो ज़मीन से निकलती है। इस पैदावार का दारोमदार इस बात पर है कि ज़मीन के अन्दर पैदावार की कितनी सलाहियत (क्षमता) है। इस सलाहियत के काम आने का दारोमदार बारिश पर है, चाहे वह सीधे तौर पर ज़मीन पर बरसे या उसके भण्डार ज़मीन की सतह पर जमा हों, या ज़मीन के नीचे चश्मों और कुओं की शक्ल इख़्तियार कर लें, या पहाड़ों पर ठण्डी होकर नदियों की शक्ल में बहें। फिर इस बारिश का दारोमदार सूरज की गर्मी पर, मौसमों के रद्दोबदल पर, फ़िज़ा के ठण्डे-गर्म होने पर, हवाओं के चलने पर और उस बिजली पर है जो बादलों से बारिश बरसने का सबब भी होती है और साथ-ही-साथ बारिश के पानी में एक तरह की क़ुदरती खाद भी शामिल कर देती है। ज़मीन से लेकर आसमान तक की इन तमाम अलग-अलग चीज़ों के बीच यह ताल्लुक़ और मुनासिबतें (अनुकूलताएँ) क़ायम होना, फिर इन सबका अनगिनत अलग-अलग मक़सदों और मस्लहतों के लिए खुले तौर पर साज़गार होना, और हज़ारों-लाखों साल तक इनका पूरे तालमेल के साथ लगातार साज़गारी करते चले जाना, क्या यह सबकुछ सिर्फ़ इत्तिफ़ाक़ी तौर पर हो सकता है? क्या यह किसी कारीगर की हिकमत और उसके सोचे-समझे मंसूबे और उसकी ग़ालिब तदबीर के बिना हो गया है? और क्या यह इस बात की दलील नहीं है कि ज़मीन, सूरज, हवा, पानी, गर्मी, सर्दी और ज़मीन के जानदारों का पैदा करनेवाला और रब एक ही है?

وَمِنْ اٰيٰتِهٖۤ اَنْ تَقُوْمَ السَّمَآءُ وَالْاَرْضُ بِاَمْرِهٖ ؕ ثُمَّ اِذَا دَعَاكُمْ
دَعْوَةً ۖۗ مِّنَ الْاَرْضِ ۖۗ اِذَاۤ اَنْتُمْ تَخْرُجُوْنَ ﴿٢٥﴾ وَلَهٗ مَنْ فِی السَّمٰوٰتِ
وَالْاَرْضِ ؕ كُلٌّ لَّهٗ قٰنِتُوْنَ ﴿٢٦﴾ وَهُوَ الَّذِیْ یَبْدَؤُا الْخَلْقَ ثُمَّ یُعِیْدُهٗ
وَهُوَ اَهْوَنُ عَلَیْهِ ؕ وَلَهُ الْمَثَلُ الْاَعْلٰی فِی السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ۚ
وَهُوَ الْعَزِیْزُ الْحَكِیْمُ ﴿٢٧﴾ ضَرَبَ لَكُمْ مَّثَلًا مِّنْ اَنْفُسِكُمْ ؕ هَلْ لَّكُمْ

(25) और उसकी निशानियों में से यह है कि आसमान और ज़मीन उसके हुक्म से क़ायम हैं।[36] फिर ज्यों ही कि उसने तुम्हें ज़मीन से पुकारा, बस एक ही पुकार में अचानक तुम निकल आओगे।[37] (26) आसमानों और ज़मीन में जो भी हैं उसके बन्दे हैं, सब-के-सब उसी के हुक्म के मातहत हैं। (27) वही है जो पैदाइश (सृष्टि) की इबतिदा करता है, फिर वही उसको दोहराएगा और यह उसके लिए बहुत आसान है।[38] आसमानों और ज़मीन में उसकी सिफ़त (बड़ाई) सबसे बढ़कर है, और वह ज़बरदस्त और हिकमतवाला है।

(28) वह तुम्हें[39] ख़ुद तुम्हारी अपनी ही ज़ात से एक मिसाल देता है। क्या तुम्हारे

36. यानी सिर्फ़ यही नहीं कि वे उसके हुक्म से एक बार वुजूद में आ गए हैं, बल्कि उनका लगातार क़ायम रहना और उनके अन्दर एक अज़ीमुश्शान कारख़ाने का लगातार चलते रहना भी उसी के हुक्म की बदौलत है। एक पल के लिए भी अगर उसका हुक्म उन्हें बरक़रार न रखे तो यह सारा निज़ाम एकदम दरहम-बरहम हो जाए।

37. यानी कायनात के पैदा करनेवाले और चलानेवाले के लिए तुम्हें दोबारा ज़िन्दा करके उठाना कोई ऐसा बड़ा काम नहीं है कि उसे इसके लिए बहुत बड़ी तैयारियाँ करनी होंगी, बल्कि उसकी सिर्फ़ एक पुकार इसके लिए बिलकुल काफ़ी होगी कि दुनिया की शुरुआत से आज तक जितने इनसान दुनिया में पैदा हुए हैं और आगे पैदा होंगे वे सब एक साथ ज़मीन के हर कोने से निकल खड़े हों।

38. यानी पहली बार पैदा करना अगर उसके लिए मुश्किल न था तो आख़िर तुमने यह कैसे समझ लिया कि दोबारा पैदा करना उसके लिए मुश्किल हो जाएगा? पहली बार की पैदाइश में तो तुम ख़ुद जीते-जागते मौजूद हो। इसलिए उसका मुश्किल न होना तो ज़ाहिर है। अब यह बिलकुल सीधी-सादी अक़्ल की बात है कि एक बार जिसने किसी चीज़ को बनाया हो उसके लिए वही चीज़ दोबारा बनाना और ज़्यादा आसान होना चाहिए।

39. यहाँ तक तौहीद और आख़िरत का बयान मिला-जुला चल रहा था। इसमें जिन निशानियों की

مِّنْ مَّا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ مِّنْ شُرَكَآءَ فِيْ مَا رَزَقْنٰكُمْ فَاَنْتُمْ فِيْهِ
سَوَآءٌ تَخَافُوْنَهُمْ كَخِيْفَتِكُمْ اَنْفُسَكُمْ ؕ كَذٰلِكَ نُفَصِّلُ الْاٰيٰتِ
لِقَوْمٍ يَّعْقِلُوْنَ ﴿۲۸﴾ بَلِ اتَّبَعَ الَّذِيْنَ ظَلَمُوْٓا اَهْوَآءَهُمْ بِغَيْرِ
عِلْمٍ ۚ فَمَنْ يَّهْدِيْ مَنْ اَضَلَّ اللّٰهُ ؕ وَمَا لَهُمْ مِّنْ نّٰصِرِيْنَ ﴿۲۹﴾

उन गुलामों में से जो तुम्हारी मिल्कियत में हैं कुछ गुलाम ऐसे भी हैं जो हमारे दिए हुए माल-दौलत में तुम्हारे साथ बराबर के हिस्सेदार हों और तुम उनसे उस तरह डरते हो जिस तरह आपस में अपने बराबरवालों से डरते हो?[40]—इस तरह हम आयतें खोल-खोलकर पेश करते हैं उन लोगों के लिए जो अक़्ल से काम लेते हैं। (29) मगर ये ज़ालिम बिना समझे-बूझे अपने ख़यालों (कल्पनाओं) के पीछे चल पड़े हैं। अब कौन उस शख़्स को रास्ता दिखा सकता है जिसे अल्लाह ने भटका दिया हो।[41] ऐसे लोगों का तो कोई मददगार

तरफ़ ध्यान दिलाया गया है, उनके अन्दर तौहीद की दलीलें भी हैं और वही दलीलें यह भी साबित करती हैं कि आख़िरत का आना नामुमकिन नहीं है। इसके बाद आगे ख़ालिस तौहीद पर बात शुरू हो रही है।

40. मुशरिक लोग यह मानने के बाद कि ज़मीन-आसमान और उसकी सब चीज़ों का पैदा करनेवाला और मालिक अल्लाह तआला है, उसकी मख़लूक़ (सृष्टि) में से कुछ को ख़ुदाई सिफ़ात और इख़्तियारों में उसका साझी ठहराते थे और उनसे दुआएँ माँगते, उनके आगे नज़रें (भेंटें) और चढ़ावे पेश करते और इबादत की रस्में अदा करते थे। ख़ुदा के इन बनावटी साझेदारों के बारे में उनका अस्ल अक़ीदा उन अलफ़ाज़ में हमें मिलता है जो काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) करते वक़्त वे ज़बान से अदा करते थे। वे इस मौक़े पर कहते थे, "मैं हाज़िर हूँ, मेरे अल्लाह मैं हाज़िर हूँ, तेरा कोई शरीक नहीं, सिवाय उस शरीक के जो तेरा अपना है, तू उसका भी मालिक है और जो कुछ उसकी मिलकियत है, उसका भी तू मालिक है।" अल्लाह तआला इस आयत में इसी शिर्क को रद्द कर रहा है। मिसाल देने का मंशा यह है कि ख़ुदा के दिए हुए माल में ख़ुदा ही के पैदा किए हुए वे इनसान जो इत्तिफ़ाक़ से तुम्हारी ग़ुलामी में आ गए हैं तुम्हारे तो साझीदार नहीं बन सकते, मगर तुमने यह अजीब धांधली मचा रखी है कि ख़ुदा की पैदा की हुई कायनात में ख़ुदा ही की पैदा की हुई मख़लूक़ (सृष्टि) को बेझिझक उसके साथ ख़ुदाई का शरीक ठहराते हो। इस तरह की बेवक़ूफ़ीवाली बातें सोचते हुए आख़िर तुम्हारी अक़्ल कहाँ मारी जाती है। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए— तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, हाशिया-62)

41. यानी जब कोई आदमी सीधी-सीधी अक़्ल की बात न ख़ुद सोचे और न किसी के समझाने से

فَاَقِمۡ وَجۡهَكَ لِلدِّيۡنِ حَنِيۡفًا ؕ فِطۡرَتَ اللّٰهِ الَّتِىۡ فَطَرَ النَّاسَ

नहीं हो सकता।

(30) लिहाज़ा[42] (ऐ नबी, और नबी की पैरवी करनेवालो) यकसू होकर अपना रुख़ इस दीन[43] की सम्त (दिशा) में जमा दो,[44] क़ायम हो जाओ उस फ़ितरत पर

समझने के लिए तैयार हो तो फिर उसकी अक़्ल पर अल्लाह की फिटकार पड़ जाती है और उसके बाद हर वह चीज़ जो किसी समझदार आदमी को हक़ बात तक पहुँचने में मदद दे सकती है, वह इस ज़िद्दी जहालत-पसन्द इनसान को उलटी और ज़्यादा गुमराही में डालती चली जाती है। यही कैफ़ियत है जिसके लिए 'भटकाने' का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है। सच्चाई-पसन्द इनसान जब अल्लाह से हिदायत की तौफ़ीक़ माँगता है तो अल्लाह उसकी सच्ची तलब के मुताबिक़ उसके लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा रहनुमाई के ज़रिए पैदा कर देता है। और गुमराही-पसन्द इनसान जब गुमराह ही होने पर अड़ जाता है तो फिर अल्लाह उसके लिए वही असबाब पैदा करता चला जाता है जो उसे भटकाकर दिन-पर-दिन हक़ से दूर लिए चले जाते हैं।

42. यह 'लिहाज़ा' इस मानी में है कि जब हक़ीक़त तुमपर खुल चुकी और तुमको मालूम हो गया कि इस कायनात का और ख़ुद इनसान का पैदा करनेवाला और मालिक और तमाम इख़्तियार रखनेवाला हाकिम एक अल्लाह के सिवा और कोई नहीं है तो इसके बाद हर हाल में तुम्हारा रवैया यह होना चाहिए।

43. इस दीन से मुराद वह ख़ास दीन है जिसे क़ुरआन पेश कर रहा है, जिसमें बन्दगी, इबादत, और फ़रमाँबरदारी का हक़दार एक अल्लाह, जिसका कोई शरीक नहीं, के सिवा और कोई नहीं है जिसमें ख़ुदाई और उसकी सिफ़ात और इख़्तियारों और उसके हक़ों में बिलकुल किसी को भी अल्लाह तआला के साथ शरीक नहीं ठहराया जाता, जिसमें इनसान अपनी मरज़ी और ख़ुशी से इस बात की पाबन्दी करता है कि वह अपनी पूरी ज़िन्दगी अल्लाह की हिदायत और उसके क़ानून की पैरवी में बिताएगा।

44. "यकसू होकर अपना रुख़ इस तरफ़ जमा दो", यानी फिर किसी और तरफ़ का रुख़ न करो। ज़िन्दगी के लिए इस राह को अपना लेने के बाद फिर किसी दूसरे रास्ते की तरफ़ नज़र तक न उठने पाए। फिर तुम्हारी फ़िक्र और सोच हो तो मुसलमान की-सी और तुम्हारी पसन्द और नापसन्द हो तो मुसलमान की-सी। तुम्हारी क़द्रें (नैतिक मूल्य) और तुम्हारे पैमाने हों तो वे जो इस्लाम तुम्हें देता है, तुम्हारे अख़लाक़ और तुम्हारी सीरत और किरदार का ठप्पा हो तो उस तरह का जो इस्लाम चाहता है, और तुम्हारी निजी और सामाजिक ज़िन्दगी के मामले चलें तो उस तरीक़े पर जो इस्लाम ने तुम्हें बताया है।

عَلَيْهَا ۚ لَا تَبْدِيْلَ لِخَلْقِ اللّٰهِ ۚ ذٰلِكَ الدِّيْنُ الْقَيِّمُ ۙ وَلٰكِنَّ

जिसपर अल्लाह तआला ने इनसानों को पैदा किया है,[45] अल्लाह की बनाई हुई साख़्त (बनावट) बदली नहीं जा सकती,[46] यही बिलकुल सच्चा और सही दीन है,[47] मगर

45. यानी सारे इनसान इस फ़ितरत पर पैदा किए गए हैं कि उनका कोई पैदा करनेवाला और कोई रब और कोई माबूद और हक़ीक़ी हुक्म मानने लायक़ एक अल्लाह के सिवा नहीं है। इसी फ़ितरत पर तुमको क़ायम हो जाना चाहिए। अगर ख़ुदमुख़्तारी का रवैया अपनाओगे तब भी फ़ितरत के ख़िलाफ़ चलोगे और अगर अल्लाह के सिवा किसी और की बन्दगी का तौक़ अपने गले में डालोगे तब भी अपनी फ़ितरत के ख़िलाफ़ काम करोगे।

इस बात को कई हदीसों में नबी (सल्ल.) ने साफ़ तौर पर बयान कर दिया है। बुख़ारी और मुस्लिम में है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया—

"हर बच्चा जो किसी माँ के पेट से पैदा होता है, अस्ल इनसानी फ़ितरत पर पैदा होता है। यह माँ-बाप हैं जो उसे बाद में ईसाई या यहूदी या मजूसी वग़ैरा बना डालते हैं। इसकी मिसाल ऐसी है जैसे हर जानवर के पेट से पूरा-का-पूरा सही-सलामत बच्चा निकलता है, कोई बच्चा भी कटे हुए कान लेकर नहीं आता, बाद में मुशरिक अपने अंधविश्वासों की बुनियाद पर उसके कान काटते हैं।"

मुसनद अहमद और नसई में एक और हदीस है कि एक जंग में मुसलमानों ने दुश्मनों के बच्चों तक को क़त्ल कर दिया। नबी (सल्ल.) को ख़बर हुई तो सख़्त नाराज़ हुए और फ़रमाया, "लोगों को क्या हो गया कि आज वे हद से गुज़र गए और बच्चों तक को क़त्ल कर डाला।" एक शख़्स ने पूछा, "क्या ये मुशरिकों के बच्चे न थे?" आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "तुम्हारे बेहतरीन लोग मुशरिकों ही की तो औलाद हैं।" फिर फ़रमाया, "हर इनसान फ़ितरत पर पैदा होता है, यहाँ तक कि जब उसकी ज़बान खुलने पर आती है तो माँ-बाप उसे यहूदी या ईसाई बना लेते हैं।"

एक और हदीस जो इमाम अहमद (रह.) ने अयाज़-बिन-हिमारुल- मुजाशिई से नक़्ल की है। उसमें बयान हुआ है कि एक दिन नबी (सल्ल.) ने अपने ख़ुतबे के दौरान में फ़रमाया, "मेरा रब कहता है कि मैंने अपने तमाम बन्दों को हनीफ़ (सच्चे दीन पर यकसू) पैदा किया था, फिर शैतानों ने आकर उन्हें उनके दीन से गुमराह किया, और जो कुछ मैंने उनके लिए हलाल किया था, उसे हराम किया और उन्हें हुक्म दिया कि मेरे साथ उन चीज़ों को साझी ठहराएँ जिनके साझी होने पर मैंने कोई दलील नहीं उतारी है।"

46. यानी ख़ुदा ने इनसान को अपना बन्दा बनाया है और अपनी ही बन्दगी के लिए पैदा किया है। यह बनावट किसी के बदले नहीं बदल सकती। न आदमी बन्दे से ग़ैर-बन्दा बन सकता है, न किसी ग़ैर-ख़ुदा को ख़ुदा बना लेने से वह हक़ीक़त में उसका ख़ुदा बन सकता है। इनसान चाहे अपने कितने ही माबूद बना बैठे, लेकिन यह हक़ीक़त अपनी जगह अटल है कि वह एक ख़ुदा के सिवा किसी का बन्दा नहीं है। इनसान अपनी बेवक़ूफ़ी और जहालत की वजह से

اَكْثَرَ النَّاسِ لَا يَعْلَمُوْنَ ۝٣٠ مُنِيْبِيْنَ اِلَيْهِ وَاتَّقُوْهُ
وَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَلَا تَكُوْنُوْا مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ۝٣١ مِنَ
الَّذِيْنَ فَرَّقُوْا دِيْنَهُمْ وَكَانُوْا شِيَعًا ؕ كُلُّ حِزْبٍۭ بِمَا

अकसर लोग जानते नहीं हैं। (31-32) (क़ायम हो जाओ इस बात पर) अल्लाह की तरफ़ रुजू करते हुए,[48] और डरो उससे[49] और नमाज़ क़ायम करो,[50] और न हो जाओ उन मुशरिकों में से जिन्होंने अपना-अपना दीन अलग बना लिया है और गरोहों में बँट गए हैं,

जिसको भी चाहे ख़ुदाई सिफ़ात और इख़्तियारात में हिस्सेदार ठहरा ले और जिसे भी चाहे अपनी क़िस्मत का बनाने और बिगाड़नेवाला समझ बैठे, मगर हक़ीक़त तो यही है कि न ख़ुदाई सिफ़ात अल्लाह तआला के सिवा किसी को हासिल हैं न उसके इख़्तियार और न किसी दूसरे के पास यह ताक़त है कि इनसान की क़िस्मत बना सके या बिगाड़ सके।

एक दूसरा तर्जुमा इस आयत का यह भी हो सकता है कि "अल्लाह की बनाई हुई साख़्त (संरचना) में तब्दीली न की जाए।" यानी अल्लाह ने जिस फ़ितरत पर इनसान को पैदा किया है उसको बिगाड़ना और बदलना दुरुस्त नहीं है।

47. यानी सही फ़ितरत पर क़ायम रहना ही सीधा और सही तरीक़ा है।

48. अल्लाह की तरफ़ से मुराद यह है कि जिसने भी आज़ादी और ख़ुदमुख़्तारी का रवैया अपनाकर अपने हक़ीक़ी मालिक से मुँह मोड़ा हो, या जिसने भी अल्लाह को छोड़कर दूसरे की बन्दगी का तरीक़ा अपनाकर अपने अस्ली और हक़ीक़ी रब से बेवफ़ाई की हो, वह अपने इस रवैये को छोड़ दे और उसी एक ख़ुदा की बन्दगी की तरफ़ पलट आए जिसका बन्दा हक़ीक़त में यह पैदा हुआ है।

49. यानी तुम्हारे दिल में इस बात का डर होना चाहिए कि अगर अल्लाह के पैदाइशी बन्दे होने के बावजूद तुमने उसके मुक़ाबले में ख़ुदमुख़्तारी का रवैया अपनाया, या उसके बजाय किसी और की बन्दगी की तो इस ग़द्दारी और नमक-हरामी की सख़्त सज़ा तुम्हें भुगतनी होगी। इसलिए तुम्हें ऐसे हर रवैये से बचना चाहिए जो तुमको ख़ुदा के ग़ज़ब का हक़दार बनाता हो।

50. अल्लाह तआला की तरफ़ रुजू और उसके ग़ज़ब का डर, दोनों का ताल्लुक़ दिल से है। इस दिली कैफ़ियत को ज़ाहिर होने और क़ायम रहने के लिए लाज़िमन किसी ऐसे जिस्मानी काम की ज़रूरत है जिससे ज़ाहिरी तौर पर भी हर आदमी को मालूम हो जाए कि फ़ुलाँ शख़्स सचमुच एक अल्लाह जिसका कोई साझी नहीं, की बन्दगी की तरफ़ पलट आया है, और आदमी के अपने मन में भी इस पलटने और अल्लाह से डरने की कैफ़ियत को एक अमली तजरिबे के ज़रिए से लगातार बढ़ना और फलना-फूलना नसीब होता चला जाए। इसी लिए अल्लाह तआला उस ज़ेहनी तब्दीली का हुक्म देने के बाद फ़ौरन ही इस जिस्मानी अमल, यानी नमाज़ क़ायम करने का हुक्म देता है। आदमी के ज़ेहन में जब तक कोई ख़याल सिर्फ़ ख़याल की हद तक

لَدَيْهِمْ فَرِحُوْنَ ﴿۳۲﴾

हर एक गरोह के पास जो कुछ है उसी में वह मग्न है।[51]

रहता है, उसमें मज़बूती और पायदारी नहीं होती। उस ख़याल के कमज़ोर पड़ जाने का भी ख़तरा रहता है और बदल जाने का भी इमकान होता है। लेकिन जब वह उसके मुताबिक़ काम करने लगता है तो वह ख़याल उसके अन्दर जड़ पकड़ लेता है, और ज्यों-ज्यों वह उसपर अमल करता जाता है, उसकी मज़बूती बढ़ती चली जाती है, यहाँ तक कि उस अक़ीदे और सोच का बदल जाना या कमज़ोर पड़ जाना मुश्किल-से-मुश्किल होता जाता है। इस नज़रिए से देखा जाए तो अल्लाह की तरफ़ रुजू होना और अल्लाह के डर को मज़बूत करने के लिए हर दिन पाँच वक़्त पाबन्दी के साथ नमाज़ अदा करने से बढ़कर कोई अमल कारगर नहीं है; क्योंकि दूसरा जो अमल भी हो, उसकी नौबत देर-देर में आती है या अलग-अलग शक्लों में अलग-अलग मौक़ों पर आती है। लेकिन नमाज़ एक ऐसा अमल है जो हर कुछ घण्टों के बाद एक ही तयशुदा सूरत में आदमी को हमेशा करना होता है, और इसमें ईमान और इस्लाम का वह पूरा सबक़ जो क़ुरआन ने उसे पढ़ाया है, आदमी को बार-बार दोहराना होता है, ताकि वह उसे भूलने न पाए। इसके अलावा ग़ैर-ईमानवालों और ईमानवालों, दोनों पर यह ज़ाहिर होना ज़रूरी है कि इनसानी आबादी में से किस-किस ने बग़ावत का रवैया छोड़कर रब की फ़रमाँबरदारी का रवैया अपना लिया है। ईमानवालों पर इसका ज़ाहिर होना इसलिए दरकार है कि उनकी एक जमाअत और सोसायटी बन सके और वे ख़ुदा की राह में एक-दूसरे से तआवुन (सहयोग) कर सकें और ईमान और इस्लाम से जब भी उनके गरोह का ताल्लुक़ ढीला पड़ना शुरू हो उसी वक़्त कोई खुली निशानी फ़ौरन ही तमाम ईमानवालों को उसकी हालत से बाख़बर कर दे। ग़ैर-ईमानवालों पर इसका ज़ाहिर होना इसलिए ज़रूरी है कि उनके अन्दर सोई हुई फ़ितरत अपने जैसे इनसानों को हक़ीक़ी ख़ुदा की तरफ़ बार-बार पलटते देखकर जाग सके, और जब तक वह न जागे उनपर ख़ुदा के फ़रमाँबरदार बन्दों की अमली सरगरमी देख-देखकर दहशत छाती रहे। इन दोनों मक़सदों के लिए भी नमाज़ क़ायम करना ही सबसे ज़्यादा मुनासिब ज़रिआ है।

इस जगह पर यह बात भी निगाह में रहनी चाहिए कि नमाज़ क़ायम करने का यह हुक्म मक्का के उस दौर में दिया गया था जबकि मुसलमानों की एक मुट्ठी-भर जमाअत क़ुरैश के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के ज़ुल्मो-सितम की चक्की में पिस रही थी और उसके बाद भी नौ साल तक पिसती रही। उस वक़्त दूर-दूर भी कहीं इस्लामी हुकूमत का नामो-निशान नहीं था। अगर नमाज़ इस्लामी हुकूमत के बिना बेमतलब होती, जैसाकि कुछ नादान समझते हैं, या 'इक़ामते-सलात' से मुराद नमाज़ क़ायम करना सिरे से होता ही नहीं, बल्कि 'निज़ामे-रुबूबियत' चलाना होता, जैसाकि हदीस को न माननेवालों का दावा है, तो इस हालत में क़ुरआन मजीद का यह हुक्म देना आख़िर क्या मानी रखता है? और यह हुक्म आने के बाद नौ साल तक नबी (सल्ल.) और मुसलमान इस हुक्म पर अमल आख़िर किस तरह करते रहे?

51. यह इशारा है इस चीज़ की तरफ़ कि इनसानों का अस्ल दीन वही फ़ितरी दीन है जिसका ऊपर ज़िक्र किया गया है। यह दीन शिर्कवाले धर्मों से धीरे-धीरे तरक़्क़ी करता हुआ तौहीद

وَاِذَا مَسَّ النَّاسَ ضُرٌّ دَعَوْا رَبَّهُمْ مُّنِيْبِيْنَ اِلَيْهِ ثُمَّ اِذَآ
اَذَاقَهُمْ مِّنْهُ رَحْمَةً اِذَا فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ بِرَبِّهِمْ يُشْرِكُوْنَ ﴿٣٣﴾
لِيَكْفُرُوْا بِمَآ اٰتَيْنٰهُمْ ؕ فَتَمَتَّعُوْا ٙ فَسَوْفَ تَعْلَمُوْنَ ﴿٣٤﴾ اَمْ
اَنْزَلْنَا عَلَيْهِمْ سُلْطٰنًا فَهُوَ يَتَكَلَّمُ بِمَا كَانُوْا بِهٖ يُشْرِكُوْنَ ﴿٣٥﴾

(33-34) लोगों का हाल यह है कि जब उन्हें कोई तकलीफ़ पहुँचती है तो अपने रब की तरफ़ रुजू करके उसे पुकारते हैं,[52] फिर जब वह कुछ अपनी रहमत का मज़ा उन्हें चखा देता है तो यकायक उनमें से कुछ लोग शिर्क करने लगते हैं[53] ताकि हमारे किए हुए एहसान की नाशुक्री करें। अच्छा, मज़े कर लो, जल्द ही तुम्हें मालूम हो जाएगा। (35) क्या हमने कोई सनद और दलील उनपर उतारी है जो गवाही देती हो उस शिर्क की सच्चाई पर जो ये कर रहे हैं?[54]

(एकेश्वरवाद) तक नहीं पहुँचा है, जैसाकि अटकलों और अन्दाज़ों से एक फ़ल्सफ़ा-ए-मज़हब (धर्म-दर्शन) गढ़ लेनेवाले लोग समझते हैं, बल्कि इसके बरख़िलाफ़ ये जितने धर्म दुनिया में पाए जाते हैं ये सब-के-सब उस अस्ली दीन में बिगाड़ आने की वजह से पैदा हुए हैं। और यह बिगाड़ इसलिए आया है कि अलग-अलग लोगों ने क़ुदरती हक़ीक़तों पर अपनी-अपनी नई निकाली हुई बातों का इज़ाफ़ा करके अपने अलग दीन बना डाले और हर एक अस्ल हक़ीक़त के बजाय उस बढ़ाई हुई चीज़ का दीवाना हो गया जिसकी बदौलत वह दूसरों से अलग होकर एक अलग फ़िरक़ा (सम्प्रदाय) बना था। अब जो शख़्स भी हिदायत पा सकता है, वह इसी तरह पा सकता है कि उस अस्ल हक़ीक़त की तरफ़ पलट जाए जो सच्चे दीन की बुनियाद थी, और बाद के इन तमाम इज़ाफ़ों से और उनके दीवाने होनेवाले गरोहों से दामन झाड़कर बिलकुल अलग हो जाए। उनके साथ ताल्लुक़ का जो रिश्ता भी वह लगाए रखेगा वही दीन में बिगाड़ का सबब होगा।

52. यह इस बात की खुली दलील है कि उनके दिल की गहराइयों में एक ख़ुदा की गवाही मौजूद है। उम्मीदों के सहारे जब भी टूटने लगते हैं, उनका दिल ख़ुद ही अन्दर से पुकारने लगता है कि अस्ल बादशाही कायनात के मालिक ही की है और उसी की मदद उनकी बिगड़ी बना सकती है।

53. यानी फिर दूसरे माबूदों को नज़रें (भेंटें) और चढ़ावे चढ़ने शुरू हो जाते हैं और कहा जाने लगता है कि यह मुसीबत फ़ुलाँ हज़रत की मेहरबानी और फ़ुलाँ आस्ताने की बरकत से टली है।

54. यानी आख़िर किस दलील से उन लोगों को यह मालूम हुआ कि बलाएँ ख़ुदा नहीं टालता बल्कि हज़रत टाला करते हैं? क्या अक़्ल इसकी गवाही देती है? या अल्लाह की कोई किताब

وَاِذَآ اَذَقْنَا النَّاسَ رَحْمَةً فَرِحُوْا بِهَا ؕ وَاِنْ تُصِبْهُمْ سَيِّئَةٌۢ بِمَا قَدَّمَتْ اَيْدِيْهِمْ اِذَا هُمْ يَقْنَطُوْنَ ۝ اَوَلَمْ يَرَوْا اَنَّ اللّٰهَ يَبْسُطُ الرِّزْقَ لِمَنْ يَّشَآءُ وَيَقْدِرُ ؕ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّقَوْمٍ يُّؤْمِنُوْنَ ۝

(36) जब हम लोगों को रहमत का मज़ा चखाते हैं तो वे उसपर फूल जाते हैं, और जब उनके अपने किए करतूतों से उनपर कोई मुसीबत आती है तो यकायक वे मायूस होने लगते हैं।[55] (37) क्या ये लोग देखते नहीं हैं कि अल्लाह ही रोज़ी कुशादा करता है जिसकी चाहता है और तंग करता है (जिसकी चाहता है)! यक़ीनन इसमें बहुत-सी निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो ईमान लाते हैं।[56]———

ऐसी है जिसमें अल्लाह तआला ने यह फ़रमाया हो कि मैं अपने ख़ुदाई के इख़्तियारात फ़ुलाँ-फ़ुलाँ हज़रतों को दे चुका हूँ और अब ये तुम लोगों के काम बनाया करेंगे?

55. ऊपर की आयत में इनसान की जहालत और बेवक़ूफ़ी और उसकी नाशुक्री और नमक-हरामी पर गिरिफ़्त थी। इस आयत में उसके छिछोरेपन और नीचता पर गिरिफ़्त की गई है। इस थुड़दिले को जब दुनिया में कुछ दौलत, ताक़त, इज़्ज़त मिल जाती है और यह देखता है कि इसका काम ख़ूब चल रहा है तो इसे याद नहीं रहता कि यह सबकुछ अल्लाह का दिया है। यह समझता है कि मेरे ही कुछ सुर्ख़ाब के पंख लगे हुए हैं जो मुझे यह कुछ मिला है जिससे दूसरे महरूम हैं। इस ग़लतफ़हमी में घमण्ड और ग़ुरूर का नशा इसपर ऐसा चढ़ता है कि फिर यह न ख़ुदा को कुछ समझता है, न इनसानों को। लेकिन ज्यों ही कि कामयाबी और तरक़्क़ी ने मुँह मोड़ा इसकी हिम्मत जवाब दे जाती है और बदनसीबी की एक ही चोट उसपर दिल टूटने की वह कैफ़ियत तारी कर देती है कि जिसमें यह हर नीच-से-नीच हरकत कर बैठता है, यहाँ तक कि ख़ुदकुशी तक कर जाता है।

56. यानी ईमानवाले इससे सबक़ हासिल कर सकते हैं कि कुफ़्र और शिर्क का इनसान के अख़लाक़ पर क्या असर पड़ता है, और इसके बरख़िलाफ़ अल्लाह पर ईमान के अख़लाक़ी नतीजे क्या हैं। जो शख़्स सच्चे दिल से ख़ुदा पर ईमान रखता हो और उसी को रोज़ी के ख़ज़ानों का मालिक समझता हो, वह कभी उस नीचता में मुब्तला नहीं हो सकता जिसमें ख़ुदा को भूले हुए लोग मुब्तला होते हैं। उसे कुशादा रोज़ी मिले तो फूलेगा नहीं, शुक्र करेगा, लोगों के साथ नरमी और फ़ैयाज़ी (उदारता) से पेश आएगा, और ख़ुदा का माल ख़ुदा की राह में ख़र्च करने से हरगिज़ परहेज़ न करेगा। तंगी के साथ रोज़ी मिले, या फ़ाक़े ही पड़ जाएँ, तब भी सब्र से काम लेगा, ईमानदारी और अमानतदारी और ख़ुद्दारी को हाथ से न जाने देगा, और आख़िर वक़्त तक ख़ुदा से मेहरबानी और करम की आस लगाए रहेगा। यह अख़लाक़ी बुलन्दी न किसी

فَاٰتِ ذَا الْقُرْبٰى حَقَّهٗ وَالْمِسْكِيْنَ وَابْنَ السَّبِيْلِ

(38) तो (ऐ ईमान लानेवाले) रिश्तेदार को उसका हक़ दे और मिसकीन और मुसाफ़िर को (उसका हक़)।[57]

नास्तिक को नसीब हो सकती है, न मुशरिक को।

57. यह नहीं फ़रमाया कि रिश्तेदार, मिसकीन और मुसाफ़िर को ख़ैरात दे। कहा गया है कि यह उसका हक़ है जो तुझे देना चाहिए, और हक़ ही समझकर तू उसे दे। इसको देते हुए यह ख़याल तेरे दिल में न आने पाए कि यह कोई एहसान है जो तू उसपर कर रहा है, और तू कोई बड़ी हस्ती है दान करनेवाली और वह कोई हक़ीर मख़लूक़ है तेरा दिया खानेवाली। बल्कि यह बात अच्छी तरह तेरे ज़ेहन में रहे कि माल के हक़ीक़ी मालिक ने अगर तुझे ज़्यादा दिया है और दूसरे बन्दों को कम दिया है तो यह ज़ाइद माल उन दूसरों का हक़ है जो तेरी आज़माइश के लिए तेरे हाथ में दे दिया गया है, ताकि तेरा मालिक देखे कि तू उनका हक़ पहचानता और पहुँचाता है या नहीं।

अल्लाह का यह फ़रमान और इसकी अस्ल रूह पर जो शख़्स भी ग़ौर करेगा वह यह महसूस किए बिना नहीं रह सकता कि क़ुरआन मजीद इनसान के लिए अख़लाक़ी और रूहानी तरक़्क़ी का जो रास्ता सुझाता है उसके लिए एक आज़ाद समाज और आज़ाद मईशत (आर्थिक व्यवस्था Free Economy) का होना ज़रूरी है। यह तरक़्क़ी किसी ऐसे सामाजिक माहौल में मुमकिन नहीं है जहाँ लोगों के मिलकियत के हक़ ख़त्म कर दिए जाएँ, हुकूमत तमाम ज़राए (साधनों) की मालिक हो जाए और लोगों के बीच रोज़ी के तक़सीम होने का पूरा कारोबार हुकूमत की मशीनरी संभाल ले, यहाँ तक कि न कोई आदमी अपने ऊपर किसी का कोई हक़ पहचान कर दे सके और न कोई दूसरा आदमी किसी से कुछ लेकर उसके लिए अपने दिल में कोई भलाई का जज़्बा पाल सके। इस तरह का ख़ालिस कम्युनिस्ट सामाजिक और मआशी (आर्थिक) निज़ाम जिसे आजकल हमारे देश में 'क़ुरआनी निज़ामे-रुबूबियत' के धोखे में डालनेवाले नाम से ज़बरदस्ती क़ुरआन के सिर मंढा जा रहा है, क़ुरआन की अपनी स्कीम के बिलकुल ख़िलाफ़ है, क्योंकि इसमें निजी अख़लाक़ के फलने-फूलने और इनफ़िरादी किरदारों के पैदा होने और तरक़्क़ी करने का दरवाज़ा बिलकुल बन्द हो जाता है। क़ुरआन की स्कीम तो उसी जगह चल सकती है जहाँ लोग दौलत के कुछ ज़रिओं के मालिक हों, उन्हें आज़ादी से इस्तेमाल करने के इख़्तियार रखते हों, और अपनी मरज़ी से ख़ुदा और उसके बन्दों के हुक़ूक़ ख़ुलूस (निष्ठा) के साथ अदा करें। इसी तरह के समाज में यह इमकान पैदा होता है कि अलग-अलग तौर पर लोगों में एक तरफ़ हमदर्दी, रहम और नर्मदिली, ईसार और क़ुरबानी और हक़ को पहचानने और हक़ अदा करने की आला ख़ूबियाँ पैदा हों, और दूसरी तरफ़ जिन लोगों के साथ भलाई की जाए उनके दिलों में भलाई करनेवालों के लिए भला चाहने, एहसानमन्दी और एहसान के बदले एहसान के पाकीज़ा जज़बात फलें-फूलें, यहाँ तक कि वह मिसाली हालत पैदा हो जाए

ذٰلِكَ خَيْرٌ لِّلَّذِيْنَ يُرِيْدُوْنَ وَجْهَ اللّٰهِ ۚ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ۝٣٨
وَمَآ اٰتَيْتُمْ مِّنْ رِّبًا لِّيَرْبُوَاۡ فِيْٓ اَمْوَالِ النَّاسِ فَلَا يَرْبُوْا عِنْدَ اللّٰهِ ۚ
وَمَآ اٰتَيْتُمْ مِّنْ زَكٰوةٍ تُرِيْدُوْنَ وَجْهَ اللّٰهِ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ

यह तरीक़ा बेहतर है उन लोगों के लिए जो अल्लाह की ख़ुशनूदी चाहते हों, और वही कामयाबी पानेवाले हैं।[58] (39) जो सूद (ब्याज) तुम देते हो ताकि लोगों के माल में शामिल होकर वह बढ़ जाए, अल्लाह के नज़दीक वह नहीं बढ़ता,[59] और जो ज़कात तुम अल्लाह की ख़ुशनूदी हासिल करने के इरादे से देते हो, उसी के देनेवाले हक़ीक़त में

जिसमें बुराई का रुकना और नेकी का फलना-फूलना किसी ज़ोर-ज़बरदस्ती करनेवाली ताक़त पर टिका न हो, बल्कि लोगों की अपने मन की पाकीज़गी और उनके अपने नेक इरादे इस ज़िम्मेदारी को संभाल लें।

58. यह मतलब नहीं है कि कामयाबी सिर्फ़ मिसकीन और मुसाफ़िर और रिश्तेदार का हक़ अदा कर देने से हासिल हो जाती है, इसके अलावा और कोई चीज़ कामयाबी के हासिल करने के लिए दरकार नहीं है। बल्कि मतलब यह है कि इनसानों में से जो लोग इन हक़ों को नहीं पहचानते और नहीं अदा करते वे कामयाबी पानेवाले नहीं है, बल्कि कामयाबी पानेवाले वे हैं जो ख़ालिस अल्लाह की ख़ुशनूदी के लिए ये हक़ पहचानते और अदा करते हैं।

59. क़ुरआन मजीद में यह पहली आयत है जो सूद (ब्याज) की मज़म्मत (बुराई) में उतरी है। इसमें सिर्फ़ इतनी बात कही गई है कि तुम लोग तो सूद (ब्याज) यह समझते हुए देते हो कि जिसको हम यह ज़्यादा माल दे रहे हैं उसकी दौलत बढ़ेगी, लेकिन हक़ीक़त में अल्लाह के नज़दीक सूद से दौलत नहीं बढ़ती, बल्कि ज़कात से बढ़ती है। आगे चलकर जब मदीना तय्यिबा में सूद के हराम होने का हुक्म उतारा गया तो इसपर यह बात और कही गई कि "अल्लाह सूद का मठ मार देता है और सदक़ों को बढ़ाता है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-276) (बाद के हुक्मों के लिए देखिए– तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-130; सूरा-2 बक़रा, आयतें—275-281,)।

इस आयत की तफ़सीर में तफ़सीर लिखनेवालों की दो राय हैं। एक गरोह कहता है कि यहाँ 'रिबा' से मुराद वह सूद (ब्याज) नहीं है जो शरई तौर पर हराम किया गया है, बल्कि वह अतिया या हदिया और तोहफ़ा है जो इस नीयत से दिया जाए कि लेनेवाला बाद में उससे ज़्यादा वापस करेगा, या देनेवाले के लिए कोई फ़ायदेमन्द काम करेगा, या उसका ख़ुशहाल हो जाना देनेवाले के अपने लिए फ़ायदेमन्द होगा। यह इब्ने-अब्बास (रज़ि॰), मुजाहिद (रज़ि॰), ज़ह्हाक (रज़ि॰), क़तादा, इकरिमा, मुहम्मद-बिन-कअब अल-क़ुरज़ी और शअबी का कहना है। और मुमकिन है यह तफ़सीर इन लोगों ने इस बिना पर की है कि आयत में इस काम का

الْمُضْعِفُوْنَ ۝ اَللّٰهُ الَّذِیْ خَلَقَكُمْ ثُمَّ رَزَقَكُمْ ثُمَّ

अपने माल बढ़ाते हैं।[60]

(40) अल्लाह[61] ही है जिसने तुमको पैदा किया, फिर तुम्हें रोज़ी दी,[62] फिर वह तुम्हें

नतीजा सिर्फ़ इतना ही बताया गया है कि अल्लाह के यहाँ इस दौलत को कोई बढ़ोत्तरी नसीब न होगी, हालाँकि अगर मामला सूद का होता जिसे शरीअत ने हराम किया है तो साफ़ तौर से कहा जाता कि अल्लाह के यहाँ इसपर सख़्त अज़ाब दिया जाएगा।

दूसरा गरोह कहता है कि नहीं इससे मुराद वही जाना-माना सूद (ब्याज) ही है जिसे शरीअत ने हराम किया है। यह राय हज़रत हसन बसरी और सुद्दी (रह.) की है और अल्लामा आलूसी का ख़याल है कि आयत का ज़ाहिरी मतलब यही है, क्योंकि अरबी ज़बान में 'रिबा' का लफ़्ज़ इसी मतलब के लिए इस्तेमाल होता है। यही मतलब क़ुरआन के आलिम नेसाबुरी (रह.) ने भी लिया है।

हमारे ख़याल में भी यही दूसरी तफ़सीर सही है, इसलिए कि जाने-माने मतलब को छोड़ने के लिए वह दलील काफ़ी नहीं है जो ऊपर पहली तफ़सीर के हक़ में बयान हुई है। सूरा-30 रूम जिस ज़माने में उतरी है उस वक़्त क़ुरआन मजीद में सूद के हराम होने का एलान नहीं हुआ था। यह एलान उसके कई साल बाद हुआ है। क़ुरआन मजीद का तरीक़ा यह है कि जिस चीज़ को बाद में किसी वक़्त हराम करना होता है, उसके लिए वह पहले से ज़ेहनों को तैयार करना शुरू कर देता है। शराब के मामले में भी पहले सिर्फ़ इतनी बात कही गई थी कि वह पाकीज़ा रोज़ी नहीं है (सूरा-16 नह्ल, आयत-67), फिर फ़रमाया कि उसका गुनाह उसके फ़ायदे से ज़्यादा है (सूरा-2 बक़रा, आयत-219), फिर हुक्म दिया गया कि नशे की हालत में नमाज़ के क़रीब न जाओ (सूरा-4 निसा, आयत-43), फिर उसके बिलकुल हराम होने का फ़ैसला कर दिया गया। इसी तरह यहाँ सूद के बारे में सिर्फ़ इतना कहने पर बस किया गया है कि यह वह चीज़ नहीं है जिससे दौलत बढ़ती हो, बल्कि हक़ीक़त में बढ़ोत्तरी तो ज़कात से होती है। इसके बाद सूद-दर-सूद को मना किया गया (सूरा-3 आले-इमरान, आयत-130)। और सबसे आख़िर में अपनी जगह ख़ुद सूद ही के बिलकुल हराम होने का फ़ैसला कर दिया गया (सूरा-2 बक़रा, आयत-275)

60. इस बढ़ोत्तरी के लिए कोई हद मुक़र्रर नहीं है। जितनी ख़ालिस नीयत और जितने गहरे क़ुरबानी के जज़्बे और जिस क़द्र ज़्यादा अल्लाह की ख़ुशनूदी की तलब के साथ कोई शख़्स अल्लाह की राह में माल ख़र्च करेगा उसी क़द्र अल्लाह तआला उसका ज़्यादा-से-ज़्यादा इनाम देगा। चुनाँचे एक सही हदीस में आया है कि अगर एक आदमी ख़ुदा की राह में एक खजूर भी दे तो अल्लाह तआला उसको बढ़ाकर उहुद पहाड़ के बराबर कर देता है।

61. यहाँ से फिर कुफ़्र और शिर्क में पड़े हुए लोगों को समझाने के लिए बात का सिलसिला तौहीद (एक ख़ुदा को मानने) और आख़िरत के मज़मून की तरफ़ फिर जाता है।

62. यानी ज़मीन में तुम्हारी रोज़ी के लिए सारे वसाइल (संसाधन) जुटाए और ऐसा इन्तिज़ाम कर दिया कि रोज़ी की गरदिश से हर एक को कुछ-न-कुछ हिस्सा पहुँच जाए।

يُمِيتُكُمْ ثُمَّ يُحْيِيكُمْ ۖ هَلْ مِن شُرَكَائِكُم مَّن يَفْعَلُ مِن ذَٰلِكُم
مِّن شَيْءٍ ۚ سُبْحَانَهُ وَتَعَالَىٰ عَمَّا يُشْرِكُونَ ﴿٤٠﴾ ظَهَرَ الْفَسَادُ فِي الْبَرِّ
وَالْبَحْرِ بِمَا كَسَبَتْ أَيْدِي النَّاسِ لِيُذِيقَهُم بَعْضَ الَّذِي عَمِلُوا
لَعَلَّهُمْ يَرْجِعُونَ ﴿٤١﴾ قُلْ سِيرُوا فِي الْأَرْضِ فَانظُرُوا كَيْفَ كَانَ
عَاقِبَةُ الَّذِينَ مِن قَبْلُ ۚ كَانَ أَكْثَرُهُم مُّشْرِكِينَ ﴿٤٢﴾ فَأَقِمْ

मौत देता है, फिर वह तुम्हें ज़िन्दा करेगा। क्या तुम्हारे ठहराए हुए शरीकों में कोई ऐसा है जो इनमें से कोई काम भी करता हो?[63] पाक है वह और बहुत बुलन्द और बरतर है उस शिर्क से जो ये लोग करते हैं। (41) ख़ुश्की और तरी में बिगाड़ पैदा हो गया है लोगों के अपने हाथों की कमाई से ताकि मज़ा चखाए उनको उनके कुछ कामों का, शायद कि वे बाज़ आएँ।[64] (42) (ऐ नबी) इनसे कहो कि ज़मीन में चल-फिरकर देखो कि पहले गुज़रे हुए लोगों का क्या अंजाम हो चुका है, उनमें से ज़्यादातर मुशरिक ही थे।[65] (43) तो (ऐ

63. यानी अगर तुम्हारे बनाए हुए माबूदों में से कोई भी न पैदा करनेवाला है, न रोज़ी देनेवाला, न मौत और ज़िन्दगी उसके इख़्तियार में है, और न मर जाने के बाद वह किसी को ज़िन्दा कर देने की क़ुदरत रखता है, तो आख़िर ये लोग हैं किस रोग की दवा कि तुमने इन्हें माबूद बना लिया?

64. यह फिर उस जंग की तरफ़ इशारा है जो उस वक़्त रूम (रोम) और ईरान के बीच हो रही थी जिसकी आग ने पूरे शरक़े-औसत (मध्य-पूर्व) को अपनी लपेट में ले लिया था। 'लोगों के अपने हाथों की कमाई' से मुराद वह नाफ़रमानी, सरकशी और ज़ुल्मो-सितम है जो शिर्क या नास्तिकता का अक़ीदा अपनाने और आख़िरत को नज़र-अन्दाज़ कर देने से लाज़िमन इनसानी अख़लाक़ और किरदार में ज़ाहिर होता है। 'शायद कि वे बाज़ आएँ' का मतलब यह है कि अल्लाह आख़िरत की सज़ा से पहले इस दुनिया में इनसानों को उनके तमाम कामों का नहीं, बल्कि कुछ कामों का बुरा नतीजा इसलिए दिखाता है कि वह हक़ीक़त को समझें और अपने ख़यालात और सोच की ग़लती को महसूस करके उस सही अक़ीदे की तरफ़ रुजू करें जो ख़ुदा के पैग़म्बर हमेशा से इनसान के सामने पेश करते चले आ रहे हैं जिसको अपनाने के सिवा इनसानी आमाल (कर्मों) को सही बुनियाद पर क़ायम करने की कोई दूसरी सूरत नहीं है। यह बात क़ुरआन मजीद में कई जगहों पर बयान हुई है। मिसाल के तौर पर देखिए, सूरा-9 तौबा, आयत-126; सूरा-13 रअद, आयत-21; सूरा-32 सजदा, आयत-21; सूरा-52 तूर, आयत-47।

65. यानी रूम और ईरान की तबाही मचानेवाली जंग आज कोई नया हादिसा नहीं है। पिछला इतिहास बड़ी-बड़ी क़ौमों की तबाही और बरबादी के रिकार्ड से भरा हुआ है। और उन सब

وَجْهَكَ لِلدِّيْنِ الْقَيِّمِ مِنْ قَبْلِ اَنْ يَّاْتِيَ يَوْمٌ لَّا مَرَدَّ لَهٗ مِنَ اللّٰهِ
يَوْمَىِٕذٍ يَّصَّدَّعُوْنَ۝۴۳ مَنْ كَفَرَ فَعَلَيْهِ كُفْرُهٗ ۚ وَمَنْ عَمِلَ صَالِحًا
فَلِاَنْفُسِهِمْ يَمْهَدُوْنَ۝۴۴ لِيَجْزِيَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ
مِنْ فَضْلِهٖ ۭ اِنَّهٗ لَا يُحِبُّ الْكٰفِرِيْنَ۝۴۵ وَمِنْ اٰيٰتِهٖٓ اَنْ يُّرْسِلَ الرِّيَاحَ
مُبَشِّرٰتٍ وَّلِيُذِيْقَكُمْ مِّنْ رَّحْمَتِهٖ وَلِتَجْرِيَ الْفُلْكُ بِاَمْرِهٖ

नबी) अपना रुख़ मज़बूती के साथ जमा दो इस सच्चे दीन की सम्त (दिशा) में, इससे पहले कि वह दिन आए जिसके टल जाने की कोई सूरत अल्लाह की तरफ़ से नहीं है।[66] उस दिन लोग फटकर एक-दूसरे से अलग हो जाएँगे (44) जिसने कुफ़्र (इनकार) किया है उसके कुफ़्र का वबाल उसी पर है।[67] और जिन लोगों ने नेक अमल किया है वे अपने ही लिए कामयाबी का रास्ता साफ़ कर रहे हैं, (45) ताकि अल्लाह ईमान लानेवालों और अच्छे काम करनेवालों को अपनी मेहरबानी से बदला दे। यक़ीनन वह कुफ़्र करनेवालों को पसन्द नहीं करता।

(46) उसकी निशानियों में से यह है कि वह हवाएँ भेजता है ख़ुशख़बरी देने के लिए[68] और तुम्हें अपनी रहमत देने के लिए और इस ग़रज़ के लिए कि कश्तियाँ उसके हुक्म से चलें[69]

क़ौमों को जिन ख़राबियों ने बरबाद किया उन सबकी जड़ यही शिर्क था जिससे रुक जाने के लिए आज तुमसे कहा जा रहा है।

66. यानी जिसको न अल्लाह तआला ख़ुद टालेगा और न उसने किसी के लिए ऐसी किसी तदबीर की कोई गुंजाइश छोड़ी है कि वह उसे टाल सके।

67. यह एक ऐसा जुमला है जो अपने अन्दर बड़े मानी रखता है। यह तमाम उन नुक़सानों को अपने अन्दर समेट लेता है जो कुफ़्र करनेवाले को अपने कुफ़्र की वजह से पहुँच सकते हैं। नुक़सानों की कोई तफ़सीली लिस्ट भी ऐसी नहीं हो सकती जो अपने अन्दर उनका समेट सके।

68. यानी रहमत की बारिश की ख़ुशख़बरी देने के लिए।

69. यह एक और क़िस्म की हवाओं का ज़िक्र है जो पानी के जहाज़ चलाने में मददगार होती हैं। पुराने ज़माने की बादबानी कश्तियों और जहाज़ों के सफ़र का दारोमदार ज़्यादातर मुवाफ़िक़ (अनूकूल) हवा पर था, और मुख़ालिफ़ हवा उनके लिए तबाही की बात होती थी। इसलिए बारिश लानेवाली हवाओं के बाद इन हवाओं का ज़िक्र एक ख़ास नेमत की हैसियत से किया गया है।

وَلِتَبْتَغُوْا مِنْ فَضْلِهٖ وَلَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ۝٤٦ وَلَقَدْ اَرْسَلْنَا مِنْ
قَبْلِكَ رُسُلًا اِلٰى قَوْمِهِمْ فَجَآءُوْهُمْ بِالْبَيِّنٰتِ فَانْتَقَمْنَا مِنَ
الَّذِيْنَ اَجْرَمُوْا ؕ وَكَانَ حَقًّا عَلَيْنَا نَصْرُ الْمُؤْمِنِيْنَ۝٤٧ اَللّٰهُ الَّذِيْ
يُرْسِلُ الرِّيٰحَ فَتُثِيْرُ سَحَابًا فَيَبْسُطُهٗ فِى السَّمَآءِ كَيْفَ يَشَآءُ
وَيَجْعَلُهٗ كِسَفًا فَتَرَى الْوَدْقَ يَخْرُجُ مِنْ خِلٰلِهٖ ۚ فَاِذَآ اَصَابَ بِهٖ مَنْ

और तुम उसकी मेहरबानी (फ़ज़्ल) तलाश करो[70] और उसके शुक्रगुज़ार बनो। (47) और हमने तुमसे पहले रसूलों को उनकी क़ौम की तरफ़ भेजा और वे उनके पास रौशन निशानियाँ लेकर आए,[71] फिर जिन्होंने जुर्म किया[72] उनसे हमने इन्तिक़ाम लिया, और हमपर यह हक़ था कि हम ईमानवालों की मदद करें।

(48) अल्लाह ही है जो हवाओं को भेजता है और वे बादल उठाती हैं, फिर वह उन बादलों को आसमान में फैलाता है जिस तरह चाहता है और उन्हें टुकड़ियों में बाँटता है, फिर तू देखता है कि बारिश की बूँदें बादल में से टपकी चली आती हैं। यह बारिश जब

---

70. यानी तिजारत के लिए सफ़र करो।

71. यानी एक क़िस्म की निशानियाँ तो वे हैं जो कायनात की फ़ितरत में हर तरफ़ फैली हुई हैं जिनसे इनसान को अपनी ज़िन्दगी में हर पल वास्ता पेश आता है, जिनमें से एक हवाओं के चलने का यह निज़ाम है जिसका ऊपर की आयत में ज़िक्र किया गया है। दूसरी क़िस्म की निशानियाँ वे हैं जो पैग़म्बर (अलैहि०) के मोजिज़ों (चमत्कारों) की सूरत में, अल्लाह के कलाम की सूरत में, अपनी ग़ैर-मामूली पाकीज़ा सीरत की शक्ल में, और इनसानी समाज पर ज़िन्दगी देनेवाले असरात की शक्ल में लेकर आए। ये दोनों क़िस्म की निशानियाँ एक ही हक़ीक़त की निशानदेही करती हैं, और वह यह है कि जिस तौहीद (एकेश्वरवाद) की तालीम पैग़म्बर दे रहे हैं, वही सही है। उनमें से हर निशानी दूसरी की ताईद करती है। कायनात की निशानियाँ नबियों के बयान की सच्चाई पर गवाही देती हैं और नबियों की लाई हुई निशानियाँ उस हक़ीक़त को खोलती हैं जिसकी तरफ़ कायनात की निशानियाँ इशारे कर रही हैं।

72. यानी जो लोग इन दोनों निशानियों की तरफ़ से अंधे बनकर तौहीद से इनकार पर जमे रहे और ख़ुदा से बग़ावत ही किए चले गए।

يَّشَاۤءُ مِنْ عِبَادِهٖۤ اِذَا هُمْ يَسْتَبْشِرُوْنَ ﴿٤٨﴾ وَاِنْ كَانُوْا مِنْ قَبْلِ اَنْ يُّنَزَّلَ
عَلَيْهِمْ مِّنْ قَبْلِهٖ لَمُبْلِسِيْنَ ﴿٤٩﴾ فَانْظُرْ اِلٰۤى اٰثٰرِ رَحْمَتِ اللّٰهِ كَيْفَ يُحْيِ
الْاَرْضَ بَعْدَ مَوْتِهَا ؕ اِنَّ ذٰلِكَ لَمُحْيِ الْمَوْتٰى ۚ وَهُوَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ﴿٥٠﴾
وَلَئِنْ اَرْسَلْنَا رِيْحًا فَرَاَوْهُ مُصْفَرًّا لَّظَلُّوْا مِنْ بَعْدِهٖ يَكْفُرُوْنَ ﴿٥١﴾

वह अपने बन्दों में से जिनपर चाहता है बरसाता है, तो यकायक वे ख़ुश हो जाते हैं। (49) हालाँकि उसके उतरने से पहले वे मायूस हो रहे थे। (50) देखो अल्लाह की रहमत के असरात कि मुर्दा पड़ी हुई ज़मीन को वह किस तरह जिला उठाता है,[73] यक़ीनन वह मुर्दों को ज़िन्दगी देनेवाला है और वह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है। (51) और अगर हम एक ऐसी हवा भेज दें जिसके असर से वे अपनी खेती को पीला पाएँ[74] तो वे नाशुक्री करते रह जाते हैं।[75]

73. यहाँ जिस अन्दाज़ से नुबूवत (पैग़म्बरी) और बारिश का ज़िक्र एक-के-बाद एक किया गया है उसमें एक बारीक इशारा इस हक़ीक़त की तरफ़ भी है कि नबी (पैग़म्बर) का आना भी इनसान की अख़लाक़ी ज़िन्दगी के लिए वैसी ही रहमत है जैसी बारिश का आना उसकी माद्दी (भौतिक) ज़िन्दगी के लिए रहमत साबित होता है। जिस तरह आसमानी बारिश के पड़ने से मुर्दा पड़ी हुई ज़मीन यकायक जी उठती है और उसमें खेतियाँ लहलहाने लगती हैं, उसी तरह आसमानी वह्य (ईश-प्रकाशना) का उतरना अख़लाक़ और रूहानियत की वीरान पड़ी हुई दुनिया को जिला उठाता है और उसमें नेकियों और भलाइयों के बाग़ लहलहाने शुरू हो जाते हैं। यह इनकार करनेवालों की अपनी बदक़िस्मती है कि ख़ुदा की तरफ़ से यह नेमत जब उनके यहाँ आती है तो वे उसकी नाशुक्री करते हैं और उसको अपने लिए रहमत की ख़ुशख़बरी समझने के बजाय मौत का पैग़ाम समझ लेते हैं।

74. यानी रहमत की बारिश के बाद जब खेतियाँ हरी-भरी हो चुकी हों उस वक़्त अगर कोई ऐसी सख़्त सर्द या सख़्त गर्म हवा चल पड़े जो हरी-भरी फ़स्लों को जलाकर रख दे।

75. यानी फिर वे ख़ुदा को कोसने लगते हैं और उसपर इलज़ाम रखने लगते हैं कि उसने यह कैसी मुसीबतें हमपर डाल रखी हैं। हालाँकि जब ख़ुदा ने उनपर नेमत की बारिश की थी उस वक़्त उन्होंने शुक्र के बजाय उसकी नाक़द्री की थी। यहाँ फिर एक बारीक इशारा इस बात की तरफ़ है कि जब ख़ुदा के रसूल उसकी तरफ़ से रहमत का पैग़ाम लाते हैं तो लोग उनकी बात नहीं मानते और उस नेमत को ठुकरा देते हैं। फिर जब उनकी नाफ़रमानी और इनकार की सज़ा में ख़ुदा उनके सिरों पर ज़ालिमों और जाबिरों को सवार कर देता है और वे ज़ुल्मो-सितम की

فَإِنَّكَ لَا تُسْمِعُ الْمَوْتَىٰ وَلَا تُسْمِعُ الصُّمَّ الدُّعَاءَ إِذَا وَلَّوْا مُدْبِرِينَ ﴿٥٢﴾
وَمَا أَنتَ بِهَادِ الْعُمْيِ عَن ضَلَالَتِهِمْ ۖ إِن تُسْمِعُ إِلَّا مَن يُؤْمِنُ بِآيَاتِنَا فَهُم
مُّسْلِمُونَ ﴿٥٣﴾ اللَّهُ الَّذِي خَلَقَكُم مِّن ضَعْفٍ ثُمَّ جَعَلَ مِن بَعْدِ
ضَعْفٍ قُوَّةً ثُمَّ جَعَلَ مِن بَعْدِ قُوَّةٍ ضَعْفًا وَشَيْبَةً ۚ يَخْلُقُ مَا يَشَاءُ ۖ

ع ٥ ٨

قرء حفص بضم الضاد وفتحها في الثلاثة لكن الضم مختار ١٢٥

(52) (ऐ नबी) तुम मुर्दों को नहीं सुना सकते,[76] न उन बहरों को अपनी पुकार सुना सकते हो जो पीठ फेरे चले जा रहे हों,[77] (53) और न तुम अन्धों को उनकी गुमराही से निकालकर सही रास्ता दिखा सकते हो।[78] तुम तो सिर्फ़ उन्हीं को सुना सकते हो, जो हमारी आयतों पर ईमान लाते और फ़रमाँबरदारी में सिर झुका देते हैं।

(54) अल्लाह ही तो है जिसने कमज़ोरी की हालत से तुम्हारी पैदाइश की शुरुआत की, फिर उस कमज़ोरी के बाद तुम्हें ताक़त दी, फिर उस ताक़त के बाद तुम्हें कमज़ोर और बूढ़ा कर दिया। वह जो कुछ चाहता है पैदा करता है।[79] और वह सबकुछ

चक्की में उन्हें पीसते हैं और उनके साथ इनसानियत-सोज़ रवैया अपनाकर आदमियत का गला घोंट डालते हैं तो वही लोग ख़ुदा को बुरा-भला कहना शुरू कर देते हैं और उसे इलज़ाम देते हैं कि उसने यह कैसी ज़ुल्म से भरी हुई दुनिया बना डाली है।

76. यहाँ मुर्दों से मुराद वे लोग हैं जिनके ज़मीर (अन्तरात्माएँ) मर चुके हैं जिनके अन्दर अख़लाक़ी ज़िन्दगी का हलका-सा असर भी बाक़ी नहीं रहा है, जिनके मन की बन्दगी और ज़िद और हठधर्मी ने उस सलाहियत ही को ख़त्म कर दिया है जो आदमी को हक़ बात समझने और क़बूल करने के क़ाबिल बनाती है।

77. बहरों से मुराद वे लोग हैं जिन्होंने अपने दिलों पर ऐसे ताले लगा रखे हैं कि सबकुछ सुनकर भी वे कुछ नहीं सुनते। फिर जब ऐसे लोग यह कोशिश भी करें कि हक़ की दावत की आवाज़ सिरे से उनके कान में पड़ने ही न पाए, और दावत देनेवाले की शक्ल देखते ही दूर भागना शुरू कर दें तो ज़ाहिर है कि कोई उन्हें क्या सुनाए और कैसे सुनाए?

78. यानी पैग़म्बर का काम यह तो नहीं है कि अंधों का हाथ पकड़कर उन्हें सारी उम्र सीधे रास्ते पर चलाता रहे। वह तो सीधे रास्ते की तरफ़ रहनुमाई ही कर सकता है। मगर जिन लोगों की दिल की आँखें फूट चुकी हों और जिन्हें वह रास्ता नज़र ही न आता हो जो पैग़म्बर उन्हें दिखाने की कोशिश करता है, उनकी रहनुमाई करना पैग़म्बर के बस का काम नहीं है।

79. यानी बचपन, जवानी और बुढ़ापा, ये सारी हालतें उसी की पैदा की हुई हैं। यह उसी की मरज़ी पर है कि जिसे चाहे कमज़ोर पैदा करे और जिसको चाहे ताक़तवर बनाए, जिसे चाहे

وَهُوَ الْعَلِيْمُ الْقَدِيْرُ ﴿٥٤﴾ وَيَوْمَ تَقُوْمُ السَّاعَةُ يُقْسِمُ الْمُجْرِمُوْنَ ۙ
مَا لَبِثُوْا غَيْرَ سَاعَةٍ ۭ كَذٰلِكَ كَانُوْا يُؤْفَكُوْنَ ﴿٥٥﴾ وَقَالَ الَّذِيْنَ
اُوْتُوا الْعِلْمَ وَالْاِيْمَانَ لَقَدْ لَبِثْتُمْ فِيْ كِتٰبِ اللّٰهِ اِلٰى يَوْمِ
الْبَعْثِ ۡ فَهٰذَا يَوْمُ الْبَعْثِ وَلٰكِنَّكُمْ كُنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿٥٦﴾
فَيَوْمَئِذٍ لَّا يَنْفَعُ الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا مَعْذِرَتُهُمْ وَلَا هُمْ يُسْتَعْتَبُوْنَ ﴿٥٧﴾

जाननेवाला, हर चीज़ पर क़ुदरत रखनेवाला है। (55) और जब वह घड़ी आएगी[80] तो मुजरिम क़समें खा-खाकर कहेंगे कि हम एक घड़ी भर से ज़्यादा नहीं ठहरे हैं,[81] इसी तरह वे दुनिया की ज़िन्दगी में धोखा खाया करते थे।[82] (56) मगर जिन्हें इल्म और ईमान दिया गया था वे कहेंगे कि ख़ुदा के रजिस्टर में तो तुम हश्र (जी उठने) के दिन तक पड़े रहे हो, सो यह वही हश्र का दिन है, लेकिन तुम जानते न थे। (57) तो वह दिन होगा जिसमें ज़ालिमों को उनका बहाना कोई फ़ायदा नहीं देगा और न उनसे माफ़ी माँगने के लिए कहा जाएगा।[83]

बचपन से जवानी तक न पहुँचने दे और जिसको चाहे जवानी में मौत दे दे, जिसे चाहे लम्बी उम्र देकर भी तन्दुरुस्त और ताक़तवर रखे और जिसको चाहे शानदार जवानी के बाद बुढ़ापे में इस तरह एड़ियाँ रगड़वाए कि दुनिया उसे देखकर सबक़ लेने लगे। इनसान अपनी जगह जिस घमण्ड में चाहे मुब्तला होता रहे, मगर ख़ुदा के क़ब्ज़े में वह इस तरह बेबस है कि जो हालत भी ख़ुदा उसपर तारी कर दे उसे वह अपनी किसी तदबीर से नहीं बदल सकता।

80. यानी क़ियामत जिसके आने की ख़बर दी जा रही है।

81. यानी मरने के वक़्त से क़ियामत की उस घड़ी तक। इन दोनों घड़ियों के दरमियान चाहे दस-बीस हज़ार साल ही गुज़र चुके हों, मगर वह यह महसूस करेंगे कि कुछ घण्टे पहले हम सोए थे और अब अचानक एक हादिसे ने हमें जगा उठाया है।

82. यानी ऐसे ही ग़लत अन्दाज़े ये लोग दुनिया में भी लगाते थे। वहाँ भी यह हक़ीक़त के समझने से महरूम थे। इसी वजह से यह हुक्म लगाया करते थे कि कोई क़ियामत-वयामत नहीं आनी, मरने के बाद कोई ज़िन्दगी नहीं और किसी ख़ुदा के सामने हाज़िर होकर हमें हिसाब नहीं देना।

83. दूसरा तर्जमा यह भी हो सकता है, "न उनसे यह चाहा जाएगा कि अपने रब को राज़ी करो", इसलिए कि तौबा और ईमान और नेक अमल की तरफ़ रुजू करने के सारे मौक़ों को वे खो चुके होंगे और इम्तिहान का वक़्त ख़त्म होकर फ़ैसले की घड़ी आ चुकी होगी।

وَلَقَدْ ضَرَبْنَا لِلنَّاسِ فِيْ هٰذَا الْقُرْاٰنِ مِنْ كُلِّ مَثَلٍ ؕ وَلَئِنْ جِئْتَهُمْ
بِاٰيَةٍ لَّيَقُوْلَنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اِنْ اَنْتُمْ اِلَّا مُبْطِلُوْنَ ﴿٥٨﴾ كَذٰلِكَ يَطْبَعُ
اللّٰهُ عَلٰى قُلُوْبِ الَّذِيْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ ﴿٥٩﴾ فَاصْبِرْ اِنَّ وَعْدَ اللّٰهِ حَقٌّ وَّلَا
يَسْتَخِفَّنَّكَ الَّذِيْنَ لَا يُوْقِنُوْنَ ﴿٦٠﴾

(58) हमने इस क़ुरआन में लोगों को तरह-तरह से समझाया है। तुम चाहे कोई निशानी ले आओ, जिन लोगों ने मानने से इनकार कर दिया है वे यही कहेंगे कि तुम बातिल (असत्य) पर हो। (59) इस तरह ठप्पा लगा देता है अल्लाह उन लोगों के दिलों पर जो बेइल्म हैं। (60) तो (ऐ नबी) सब्र करो, यक़ीनन अल्लाह का वादा सच्चा है,[84] और हरगिज़ हलका न पाएँ तुमको वे लोग जो यक़ीन नहीं लाते।[85]

84. इशारा है उस वादे की तरफ़ जो ऊपर की आयत-47 में गुज़र चुका है। वहाँ अल्लाह तआला ने अपनी यह सुन्नत (रीति) बयान की है कि जिन लोगों ने भी अल्लाह के रसूलों की लाई हुई बय्यिनात (खुली हुई हिदायतों) का मुक़ाबला झुठलाने, मज़ाक़ उड़ाने और हठधर्मी के साथ किया है, अल्लाह ने ऐसे मुजरिमों से ज़रूर इन्तिक़ाम लिया है (तो हमने मुजरिमों से बदला लिया) और अल्लाह पर यह हक़ है कि ईमानवालों की मदद करे (और मोमिनों की मदद करना हमपर हक़ था)।

85. यानी दुश्मन तुमको ऐसा कमज़ोर न पाएँ कि उनके शोर-शराबे से तुम दब जाओ, या उनकी झूठे इलज़ामों की मुहिम से तुम डर जाओ, या उनकी फब्तियों और तानों और मज़ाक़ और ठट्ठा उड़ाने से तुम हिम्मत हार जाओ, या उनकी धमकियों और ताक़त के इस्तेमाल और ज़ुल्मो-सितम से तुम डर जाओ, या उनके दिए हुए लालचों से तुम फिसल जाओ, या क़ौमी मफ़ाद (हित) के नाम पर जो अपीलें वे तुमसे कर रहे हैं, उनकी बुनियाद पर तुम उनके साथ समझौता कर लेने पर उतर आओ। इसके बजाय वे तुमको अपने मक़सद के एहसास में इतना होशमन्द और अपने यक़ीन और ईमान में इतना मज़बूत और इस इरादे में इतना पक्का और अपने किरदार में इतना मज़बूत पाएँ कि न किसी डर से तुम्हें डराया जा सके, न किसी क़ीमत पर तुम्हें ख़रीदा जा सके, न किसी धोखे से तुमको फुसलाया जा सके, न कोई ख़तरा या नुक़सान या तकलीफ़ तुम्हें अपनी राह से हटा सके और न दीन के मामले में किसी लेन-देन का सौदा तुमसे चुकाया जा सके। ये सारी बातें अल्लाह तआला के बेहतरीन अन्दाज़े-बयान ने इस ज़रा-से जुमले में समेट दी हैं कि "ये बेयक़ीन लोग तुमको हलका न पाएँ।" अब इस बात का सुबूत इतिहास की बेलाग गवाही देती है कि नबी (सल्ल.) दुनिया पर वैसे ही भारी साबित हुए

जैसा अल्लाह अपने आख़िरी नबी (सल्ल.) को भारी-भरकम देखना चाहता था। आप (सल्ल.) से जिसने जिस मैदान में भी ज़ोर आज़माई की उसने उसी मैदान में मात खाई और आख़िर उस अज़ीम शख़्सियत ने वह इंक़िलाब बरपा करके दिखा दिया जिसे रोकने के लिए अरब की कुफ़्र और शिर्क करनेवाली ताक़तों ने अपना सारा ज़ोर लगा दिया और अपने सारे दाँव-पेंच इस्तेमाल कर डाले।

☆☆☆

इण्डेक्स
तफ़हीमुल-क़ुरआन-3

(अ)

● **अख़लाक़ और अख़लाक़ी तालीमात**

सूरा-18, हा-23; सूरा-18, आ-23, हा-24; सूरा-19 का परिचय; सूरा-19, आ-36, हा-23; सूरा-19, आ-72, 76; सूरा-20 का परिचय; सूरा-20, आ-61, 81, 82, 130 से 132, हा-115; सूरा-21, हा-38; सूरा-22 का परिचय; सूरा-22, हा-17; सूरा-22, आ-30, 31, 60; सूरा-23, आ-2 से 9, हा-1 से 9, 11; सूरा-23, आ-51, 52, हा-46, 50; सूरा-23, आ-57 से 60, हा-51 से 54; सूरा-23, आ-96 से 98; सूरा-24 का परिचय; सूरा-24, हा-7; सूरा-24, आ-12 से 23, 27 से 33; सूरा-25, आ-63 से 75; सूरा-26, हा-61, 62, 145; सूरा-27, हा-71; सूरा-28, हा-26; सूरा-28, आ-54, 55, 76, 77; सूरा-28, हा-100; सूरा-28, आ-83, 84; सूरा-29, हा-1 से 3, 6; सूरा-29, आ-6 से 8; सूरा-29, हा-40, 72; सूरा-29, आ-56 से 60, हा-94, 97 से 99; सूरा-30, आ-38, 39, 60, हा-85

★ फ़लसफ़ा-ए-अख़लाक़

सूरा-18 का परिचय; सूरा-18, आ-28 से 47; सूरा-20, हा-94; सूरा-23, आ-53 से 60; सूरा-24, आ-3, 26

● **अज्र (इनाम)**

★ कैसे लोग इसके हक़दार हैं?

सूरा-18, आ-2, 30; सूरा-29, आ-58

★ अल्लाह के यहाँ किसी हक़दार का अज्र मारा नहीं जाता है

सूरा-18, आ-30

★ अल्लाह की ख़ुशी को सामने रखकर उसके क़ानून की हदों में जो काम भी किया जाए उसमें अज्र है

सूरा-18, आ-32 से 44

★ पिछले नबियों के माननेवाले अगर मुहम्मद (सल्ल.) को मान लें तो दोहरे अज्र के हक़दार हैं

सूरा-28, आ-53, 54, हा-74

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें– 'जज़ा व सज़ा')

● **अज़ाब**

★ दुनिया में अज़ाब नाज़िल होने का क़ानून

सूरा-18, आ-58, 59; सूरा-20 का परिचय; सूरा-21, आ-95, हा-92; सूरा-22, आ-44, हा-88; सूरा-22, आ-47, 48, हा-101; सूरा-23, हा-43; सूरा-26, आ-208, 209; सूरा-29, आ-14, हा-23; सूरा-29, आ-53

★ ख़ुदा का अज़ाब कैसे लोगों के लिए है?

सूरा-18, आ-4, 29; सूरा-19, आ-44, 45, 75, 77 से 80; सूरा-20, आ-48, 61; सूरा-21, आ-9, 11 से 15; सूरा-22, आ-3, 4, 8, 9, 57; सूरा-23, आ-63, 64; सूरा-24, आ-11, 14, 19, 23, 63; सूरा-25, आ-19, 37, 42, 68, 69; सूरा-26, आ-131 से 135, 201, 213; सूरा-27, आ-4, 5; सूरा-28, आ-64; सूरा-29, आ-23; सूरा-30, आ-16

★ अज़ाबे-इलाही की शिद्दत

सूरा-22, आ-2

★ वह अचानक आता है

सूरा-26, आ-202, 203

★ उसके आने के बाद फिर मोहलत नहीं मिलती है

सूरा-26, आ-203, हा-127

★ उससे बचकर कोई भाग नहीं सकता है

सूरा-18, आ-58

★ उसके मुक़ाबले में कोई तदबीर कारगर नहीं हो सकती है

सूरा-22, हा-102

★ किसी की रिश्तेदारी इनसान को उससे नहीं बचा सकती है

सूरा-26, हा-113; सूरा-26, आ-214, हा-135; सूरा-29, आ-32, हा-56

★ वह ऐसी चीज़ नहीं है कि इनसान उसका मुतालबा करे

सूरा-26, आ-204 से 207, हा-128

★ वह है ही डरने के क़ाबिल चीज़

सूरा-23, हा-87

● अब्दुल्लाह-बिन-उबई
★ इस्लाम के ख़िलाफ़ उसकी शरारतें
सूरा-24 का परिचय; सूरा-24, हा-11
★ उसका किरदार
सूरा-24, हा-59
● अमले-सालेह (नेक अमल)
★ इसके मानी
सूरा-29, आ-7, हा-10
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'ईमान')
● अमानत
★ इसका वसीअ मफ़हूम
सूरा-23, हा-8
★ मोमिन की एक लाज़िमी सिफ़त
सूरा-23, आ-8, हा-8
● अम्बिया
(देखें— 'नुबूवत')
● अम्र बिल-मारूफ़ व नही अनिल-मुनकर (भलाई का हुक्म देना और बुराई से रोकना)
★ इस्लामी रियासत के बुनियादी मक़ासिद (उद्देश्यों) में से है
सूरा-22, आ-41, हा-85
● अय्यूब (अलैहि.)
सूरा-21, आ-83, 84, हा-76 से 79
● अरब
★ अरब के मुशरिकों के अख़लाक़ी और मज़हबी तसव्वुरात
सूरा-25, हा-84
★ जाहिलियत के ज़माने में इबराहीमी दीन के बाक़ी रह गए आसार
सूरा-25, हा-84
★ नबी (सल्ल.) से पहले अरब में कौन-कौन नबी आए थे?
सूरा-26, हा-121
★ अरब के मुशरिकों का शिर्क किस नौइयत का था?
(देखें— 'शिर्क')
● अर्श
सूरा-21, आ-22; सूरा-23, आ-86; सूरा-25, आ-59
★ अल्लाह के अर्श पर मुस्तवी होने का मतलब
सूरा-20, आ-5, हा-2
● अल्लाह
★ अहसनुल-ख़ालिक़ीन
सूरा-23, आ-14
★ बसीर (देखनेवाला)
सूरा-22, आ-61, 75; सूरा-25, आ-20
★ तव्वाब (तौबा क़बूल करनेवाला)
सूरा-24, आ-10
★ हक़
सूरा-24, आ-25
★ हकीम (हिकमतवाला)
सूरा-22, आ-52; सूरा-24, आ-10, 18, 58, 59; सूरा-27, आ-6, 9; सूरा-29, आ-26, 42; सूरा-30, आ-27
★ हलीम (नर्मदिल)
सूरा-22, आ-59
★ हमीद (ख़ुद में तारीफ़ किया हुआ)
सूरा-22, आ-64
★ हय्यो-क़य्यूम (ज़िन्दा और क़ायम रहनेवाला)
सूरा-20, आ-111
★ ख़ालिक़ (पैदा करनेवाला)
सूरा-26, आ-78, हा-57
★ ख़बीर (ख़बर रखनेवाला)
सूरा-22, आ-63
★ ख़ैरुर्राज़िक़ीन (बेहतरीन राज़िक़)
सूरा-22, आ-58
★ रब्बुस्समावाति वल-अर्ज़ (आसमानों और ज़मीन का रब)
सूरा-18, आ-14; सूरा-19, आ-65; सूरा-21, आ-56
★ रब्बुल-आलमीन (सारे जहानों का रब)
सूरा-26, आ-16, 23, 47, 77, 98, 109, 127, 145, 164, 180, 192; सूरा-27, आ-8, 44; सूरा-28, आ-30
★ रहमान
सूरा-19, आ-18, 26, 44, 45, 58, 69, 75, 78, 85, 87, 88, 91, 92, 93, 96; सूरा-20, आ-5, 90, 108, 109; सूरा-21, आ-26, 36, 42, 112; सूरा-25, आ-26, 59, 60, 63; सूरा-26, आ-5
★ रहीम
सूरा-22, आ-65; सूरा-24, आ-20, 22, 33, 62; सूरा-25, आ-6, 70; सूरा-26, आ-9, 68, 104, 122, 140, 159, 175, 191, 217; सूरा-27, आ-11; सूरा-28, आ-16; सूरा-30, आ-5
★ रऊफ़ (बहुत मेहरबान)

सूरा-22, आ-65; सूरा-24, आ-20

★ समीअ (सुननेवाला)

सूरा-21, आ-4; सूरा-22, आ-61, 75; सूरा-24, आ-21, 60; सूरा-29, आ-5, 60

★ आलिमुल-ग़ैबि वश्शहादा (खुले और छिपे का जाननेवाला)

सूरा-23, आ-92

★ अज़ीज़ (ज़बरदस्त)

सूरा-22, आ-40, 74; सूरा-26, आ-9, 68, 104, 122, 140, 159, 175, 191, 217; सूरा-27, आ-9, 78; सूरा-29, आ-26, 42; सूरा-30, आ-5, 27

★ अफ़ुव्वु (माफ़ करनेवाला)

सूरा-22, आ-60

★ अलीयु (हाकिम)

सूरा-22, आ-62

★ अलीम (जाननेवाला)

सूरा-21, आ-4; सूरा-22, आ-52, 59; सूरा-24, आ-18, 21, 32, 58, 59, 60; सूरा-27, आ-6, 78; सूरा-29, आ-5, 60; सूरा-30, आ-54

★ ग़फ़ूर (माफ़ करनेवाला)

सूरा-18, आ-58; सूरा-22, आ-60; सूरा-24, आ-22, 33, 62; सूरा-25, आ-6, 70; सूरा-27, आ-11; सूरा-28, आ-16

★ ग़नी (बेनियाज़)

सूरा-22, आ-64; सूरा-27, आ-40

★ क़दीर (क़ुदरतवाला)

सूरा-25, आ-54; सूरा-30, आ-54

★ क़वी (ताक़तवर)

सूरा-22, आ-40, 74

★ कबीर (बड़ा)

सूरा-22, आ-62

★ करीम

सूरा-27, आ-40

★ लतीफ़ (बारीकी से काम करनेवाला)

सूरा-22, आ-63

★ मुक़्तदिर (हाकिम)

सूरा-18, आ-45

★ वासेअ (वुसअतवाला, समाईवाला)

सूरा-24, आ-32

★ उसकी सिफ़ाते-आलिया (उच्च गुणों) का जामेअ (व्यापक) तसव्वुर

सूरा-25, हा-1

★ बड़ी बरकतवाला

सूरा-23, आ-14; सूरा-25, आ-1, 10

★ उसी के लिए हम्द (तारीफ़) है

सूरा-18, आ-1; सूरा-27, आ-59, 93; सूरा-28, आ-70; सूरा-29, आ-63; सूरा-30, आ-18

★ उसी की तसबीह (महिमागान) और हम्द (तारीफ़) होनी चाहिए

सूरा-25, आ-58; सूरा-27, आ-8, हा-11; सूरा-30, आ-17

★ उसके लिए बरतर सिफ़ात (गुण) हैं

सूरा-20, आ-8, हा-4

★ कायनात में उसकी सिफ़त सबसे बरतर है

सूरा-30, आ-27

★ उसके लिए अच्छे ही नाम हैं

सूरा-20, आ-8

★ उसके कमाल और चमत्कार बहुत ज़्यादा हैं

सूरा-18, आ-109, हा-80

★ वह कायनात का नूर है

सूरा-24, आ-35

★ उसके नूरे-कायनात होने की तशरीह

सूरा-24, आ-35, हा-62 से 65

★ वह किसी का मुहताज नहीं है

सूरा-22, आ-64, हा-112; सूरा-29, आ-6

★ वही बाक़ी रहनेवाला है

सूरा-20, आ-73

★ वह ज़िन्दा है, मरनेवाला नहीं है

सूरा-25, आ-58

★ उसके सिवा सब हलाक होनेवाले हैं

सूरा-28, आ-88

★ वह सबसे बरतर है

सूरा-20, आ-114; सूरा-23, आ-116

★ वह अपनी ज़ात में आप महमूद है, चाहे कोई उसकी हम्द करे या न करे

सूरा-22, आ-64

★ वह कभी भूलता नहीं है

सूरा-19, आ-64; सूरा-20, आ-52

★ उसकी बारगाह रुजू करने (पलटकर जाने) के लायक़ है
सूरा-25, आ-71, हा-88

★ रहम फ़रमानेवाला
सूरा-18, आ-58

★ मग़फ़िरत फ़रमानेवाला
सूरा-26, आ-82

★ बन्दों पर बड़ा फ़ज़्ल फ़रमानेवाला
सूरा-27, आ-73

★ वह मुज़्तर (बेक़रार) की दुआ सुनता और उसका जवाब देता है
सूरा-27, आ-62

★ ज़मीन और आसमान की हर चीज़ उसकी तसबीह कर रही है
सूरा-24, आ-41

★ कायनात की हर चीज़ उसके आगे सजदे में है
सूरा-22, आ-18

★ वह अपने वादों की ख़िलाफ़वर्ज़ी नहीं करता है
सूरा-30, आ-6

★ वही मदद का सहारा है
सूरा-21, आ-112

★ उसी पर भरोसा करना चाहिए
सूरा-18, आ-22; सूरा-25, आ-58; सूरा-27, आ-79

★ बेहतरीन हामी व मददगार
सूरा-22, आ-78

★ उसके सिवा कोई माबूद नहीं है
सूरा-18, आ-110; सूरा-20, आ-8, 14, 98; सूरा-21, आ-108; सूरा-22, आ-34; सूरा-23, आ-23, 32, 116; सूरा-27, आ-26; सूरा-28, आ-70, 88

★ उसके सिवा किसी और को माबूद पुकारना बेजा बात है
सूरा-18, आ-14

★ वही इबादत का हक़दार है
सूरा-19, आ-65, हा-41; सूरा-20, आ-14; सूरा-21, आ-92; सूरा-29, आ-16, 17

★ वह इससे बालातर है कि कोई उसका शरीक हो
सूरा-30, आ-40

★ ख़ुदाई में उसका कोई शरीक नहीं है
सूरा-23, आ-91

★ बादशाही में कोई उसका शरीक नहीं है
सूरा-25, आ-2

★ वह अपनी हुकूमत में किसी को शरीक नहीं करता है
सूरा-18, आ-26

★ उसका कोई बेटा नहीं है
सूरा-18, आ-4, 5; सूरा-19, आ-35; सूरा-23, आ-91; सूरा-25, आ-2

★ उसके लिए औलाद तजवीज़ करना सख़्त हिमाक़त और जिहालत है
सूरा-25, हा-6

★ उसके सिवा दूसरों को कारसाज़ ठहरानेवाले जहन्नमी और हक़ के इनकारी हैं
सूरा-18, आ-102

★ उसकी वहदानियत (एक होने) की दलीलें
(देखें– 'तौहीद')

★ कायनात और उसकी तमाम चीज़ों का ख़ालिक़
सूरा-20, आ-4 से 6, 50, हा-23; सूरा-21, आ-16, 30 से 33, 44, हा-44; सूरा-25, आ-2, 59; सूरा-27, आ-60; सूरा-29, आ-61

★ उसने ज़मीन और आसमान को हक़ के साथ पैदा किया है
सूरा-30, आ-8

★ उसने बिला शिरकते-ग़ैरे तख़लीक़ का काम किया है
सूरा-18, आ-51

★ वह जो कुछ चाहता है पैदा करता है
सूरा-28, आ-68

★ वही तमाम जानदारों का ख़ालिक़ है
सूरा-24, आ-45

★ ज़िन्दगी बख़्शनेवाला
सूरा-21, आ-30

★ उसके सिवा किसी में ताक़त नहीं कि बेजान माद्दे (पदार्थ) में जान डाल दे
सूरा-21, आ-21, हा-21

★ वह बेजान माद्दे को ज़िन्दगी बख़्शता है और जानदार में से बेजान को निकालता है
सूरा-30, आ-19

★ वही इनसान का ख़ालिक़ है
सूरा-18, आ-37; सूरा-25, आ-54; सूरा-26, आ-184; सूरा-30, आ-40

★ उसी ने इनसान को हवास और शुऊर की ताक़तें दी हैं
सूरा-23, आ-78

★ उसी ने ख़ल्क़ (सृष्टि) की शुरुआत की और वही इसको दोबारा पैदा करता है
सूरा-27, आ-64; सूरा-29, आ-19; सूरा-30, आ-27

★ वह मुर्दों को ज़िन्दा करता है
सूरा-22, आ-6

★ वही आसमान और ज़मीन की पोशीदा (छिपी हुई) चीज़ों को निकालनेवाला है
सूरा-27, आ-25

★ उसके सिवा आसमान और ज़मीन की मख़लूक़ की ख़बरगीरी करनेवाला कोई नहीं है
सूरा-18, आ-26

★ वह अपनी मख़लूक़ के हालात, ज़रूरियात और मस्लहतों (निहित हितों) से बाख़बर है
सूरा-22, हा-111

★ हर जानदार का रिज़्क़ उसी के ज़िम्मे है
सूरा-29, आ-60

★ वही रिज़्क़ देनेवाला है
सूरा-20, आ-132; सूरा-26, आ-79; सूरा-27, आ-64; सूरा-30, आ-40

★ उसी से रिज़्क़ माँगना चाहिए
सूरा-29, आ-17

★ उसी का शुक्र अदा करना चाहिए
सूरा-29, आ-17

★ बन्दे के लिए वही सरो-सामान मुहैया करता है
सूरा-18, आ-16

★ रिज़्क़ की तंगी और कुशादगी उसी के इख़्तियार में है
सूरा-28, आ-82; सूरा-29, आ-62; सूरा-30, आ-37

★ बीमारियों में वही शिफ़ा देता है
सूरा-26, आ-80

★ वही कायनात और उसकी हर चीज़ का रब और मालिक है
सूरा-19, आ-64; सूरा-20, आ-6; सूरा-21, आ-19; सूरा-22, आ-64; सूरा-24, आ-64; सूरा-26, आ-24; सूरा-27, आ-91

★ मशरिक़ (पूरब) और मग़रिब (पश्चिम) का रब
सूरा-26, आ-28

★ उसके सिवा कोई रब नहीं है
सूरा-18, आ-38

★ वह हक़ीक़ी बादशाह है
सूरा-20, आ-114; सूरा-23, आ-116

★ वही कायनात का हक़ीक़ी हुक्मराँ है
सूरा-22, हा-107; सूरा-24, आ-42; सूरा-25, आ-2

★ वह कायनात के तख़्तो-सल्तनत का मालिक है
सूरा-21, आ-22

★ वह अर्शे-अज़ीम का मालिक है
सूरा-23, आ-86; सूरा-27, आ-26

★ उसके अर्श पर मुस्तवी होने का मफ़हूम
सूरा-25, आ-59, हा-72

★ वह आसमानों का मालिक है
सूरा-23, आ-86, 87

★ वह हर चीज़ के ख़ज़ानों का मालिक है
सूरा-19, आ-64

★ वह हर चीज़ पर निगराँ है
सूरा-22, आ-17

★ वह हर चीज़ पर इख़्तियार रखनेवाला है
सूरा-23, आ-88, 89

★ वह हर चीज़ की तक़दीर मुक़र्रर करनेवाला है
सूरा-25, आ-2

★ वह रात से दिन और दिन से रात निकालनेवाला है
सूरा-22, आ-61

★ फ़रमाँरवाई उसी की है और उसी के लिए है
सूरा-28, आ-88

★ कायनात की सारी मख़लूक़ उसी की मिलकियत है
सूरा-30, आ-26

★ सब उसके ताबेअ फ़रमान हैं
सूरा-30, आ-26

★ अव्वल और आख़िर तमाम इख़्तियार उसी के हाथ में है
सूरा-18, आ-39, हा-40; सूरा-28, आ-70; सूरा-30, आ-4

★ तमाम मामलात का अंजामे-कार उसी के हाथ में है
सूरा-22, आ-41

★ तमाम मामले फ़ैसले के लिए उसी की तरफ़ रुजू होते हैं
सूरा-22, आ-76

★ वह महज़ ख़याली माबूद नहीं, बल्कि सब कुछ करने का अधिकारी है

सूरा-22, हा-8

★ उसके फ़रमान बदलने का हक़ किसी को नहीं है

सूरा-18, आ-27

★ वह किसी के सामने जवाबदेह नहीं और सब उसके सामने जवाबदेह हैं

सूरा-21, आ-23

★ जिसे वह रुसवा करे उसे इज़्ज़त देनेवाला कोई नहीं है

सूरा-22, आ-18

★ उससे भागकर कोई पनाह नहीं पा सकता है

सूरा-18, आ-27; सूरा-29, आ-8, हा-12; सूरा-29, आ-22, हा-34, 35

★ उसके मुक़ाबले में कोई पनाह नहीं दे सकता और जो उसकी पनाह में हो उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता

सूरा-23, आ-88, 89

★ उसकी पकड़ से कोई बचा नहीं सकता

सूरा-21, आ-42, हा-43

★ उसकी गिरिफ़्त से कोई बाहर नहीं है

सूरा-18, आ-58

★ उसके मुक़ाबले में किसी की कोई तदबीर नहीं चल सकती

सूरा-29, आ-4

★ उसके मुक़ाबले में कोई किसी की मदद नहीं कर सकता

सूरा-29, आ-22

★ ज़िन्दगी और मौत उसके इख़्तियार में है

सूरा-22, आ-66; सूरा-23, आ-80; सूरा-26, आ-81; सूरा-30, आ-40

★ फ़तह और कामरानी उसी के बख़्शने से हासिल होती है

सूरा-30, आ-5

★ वह ग़ैर-महसूस तरीक़ों से अपनी मर्ज़ी पूरी करता है

सूरा-18 का परिचय; सूरा-22, हा-111

★ वह जो चाहता है करता है

सूरा-22, आ-14, हा-21; सूरा-22 आ-18

★ उसके काम करने के अन्दाज़ निराले हैं

सूरा-20 का परिचय

★ जब तक वह न चाहे किसी के लिए कुछ नहीं हो सकता

सूरा-18, आ-24, हा-24; सूरा-18 आ-39, हा-40

★ वह जिस चीज़ का हुक्म देता है वह होकर रहती है

सूरा-19, आ-35

★ वही आसमान से पानी बरसाता है

सूरा-25, आ-48; सूरा-27, आ-60; सूरा-29, आ-63

★ वही हवाओं को गर्दिश देता है

सूरा-25, आ-48; सूरा-27, आ-63

★ उसी ने ज़मीन की चीज़ें इनसान के काम पर लगा रखी हैं

सूरा-22, आ-65

★ उसी ने इनसान को ज़मीन में इख़्तियारात दिए हैं

सूरा-27, आ-62

★ उसी ने इनसान को ज़मीन में फैलाया है

सूरा-23, आ-79

★ वही आसमान को थामे हुए है

सूरा-22, आ-65

★ सूरज और चाँद को उसी ने ख़िदमत में लगा रखा है

सूरा-29, आ-61

★ रात-दिन का आना-जाना उसी की क़ुदरत के क़ब्ज़े में है

सूरा-23, आ-80; सूरा-24, आ-44

★ वही रौशनी और साया लाता है

सूरा-25, आ-45, हा-58

★ उसी ने रात सोने के लिए और दिन कारोबार के लिए बनाया है

सूरा-25, आ-47, हा-61; सूरा-28, आ-73

★ उसी ने ज़मीन को जाए-क़रार (ठहरने की जगह) बनाया है

सूरा-27, आ-61

★ वही ज़मीन से पेड़ उगाता है

सूरा-27, आ-60; सूरा-29, आ-63

★ उसी ने ज़मीन से दरिया जारी किए

सूरा-27, आ-61

★ उसी के हुक्म से कश्तियाँ चलती हैं

सूरा-22, आ-65

★ उसी ने मीठे और खारे पानियों के बीच परदे डाल दिए हैं

सूरा-25, आ-53; सूरा-27, आ-61

★ वह हर चीज़ पर क़ादिर है

सूरा-18, आ-45; सूरा-22, आ-6, हा-9; सूरा-24, आ-45; सूरा-29, आ-20; सूरा-30, आ-50

★ उसकी क़ुदरत से कोई चीज़ दूर नहीं है

सूरा-18, आ-9 से 12, हा-8, 23

★ उसके लिए कोई बात नामुमकिन नहीं है

सूरा-18, हा-23

★ आसमान और ज़मीन की हर चीज़ उसके दफ़्तर में महफ़ूज़ है
सूरा-27, आ-75

★ आसमान और ज़मीन में जो कुछ है वह सबको जानता है
सूरा-22, आ-70

★ आसमान और ज़मीन की कोई चीज़ उससे छिपी नहीं है
सूरा-20, आ-6, 7

★ वह कायनात के सारे भेद जानता है
सूरा-25, आ-6

★ वह सब कुछ सुनता और देखता है
सूरा-18, आ-26; सूरा-20, आ-46

★ वह आसमान और ज़मीन की हर बात सुनता और जानता है
सूरा-21, आ-4; सूरा-29, आ-52

★ वह हर छिपे और ज़ाहिर को जानता है
सूरा-21, आ-110; सूरा-22, आ-76; सूरा-27, आ-25; सूरा-28, आ-69

★ वह दिलों के छिपे भेद तक जानता है
सूरा-27, आ-74

★ वह लोगों की नीयतों तक को जानता है
सूरा-29, आ-10

★ वह उन हक़ीक़तों को जानता है जिनको इनसान नहीं जानता
सूरा-24, आ-19, हा-17

★ वह हर चीज़ का इल्म रखता है
सूरा-24, आ-35, 64; सूरा-29, आ-62

★ उसका इल्म हर चीज़ पर हावी है
सूरा-20, आ-98; सूरा-21, आ-28, 81

★ ग़ैब का इल्म उसी को है, कोई दूसरा आलिमुल-ग़ैब नहीं
सूरा-18, आ-22, 26; सूरा-20, आ-110

★ लोग जो कुछ भी करते हैं वह उससे बाख़बर है
सूरा-24, आ-30, 41, 53

★ वह तमाम इनसानों के आमाल (कर्मों) पर नज़र रखता है
सूरा-22, आ-68; सूरा-27, आ-93; सूरा-29, आ-45

★ वह दुनिया की हर चीज़ की रहनुमाई करता है
सूरा-27, आ-62

★ वह सिर्फ़ पैदा ही नहीं करता, बल्कि हिदायत भी देता है
सूरा-20, आ-50

★ वही सही रहनुमाई करनेवाला है
सूरा-26, आ-78

★ हिदायत और नुसरत के लिए वही काफ़ी है
सूरा-25, आ-31

★ जिसे वह हिदायत दे वही हिदायत पानेवाला है और जिसे वह भटका दे उसे कोई हिदायत नहीं दे सकता
सूरा-18, आ-13, 17; सूरा-24, आ-40; सूरा-30, आ-29
(अधिक जानकारी के लिए देखें— 'तक़दीर')

★ वह किस तरह अहले-हक़ की हिदायत और नुसरत करता है?
सूरा-25, आ-31, हा-43

★ वह अहले-हक़ के साथ होता है
सूरा-20, आ-46

★ वह नेक काम करनेवालों के साथ है
सूरा-29, आ-69

★ वह मोमिनों का मौला है
सूरा-22, आ-78

★ उसकी बन्दगी करनेवाला नामुराद नहीं हो सकता
सूरा-22, हा-109

★ उसकी बन्दगी से मुँह मोड़नेवाला फ़लाह नहीं पा सकता
सूरा-22, हा-109

★ नाफ़रमान लोग उसकी पकड़ से बच नहीं सकते
सूरा-29, आ-4

★ जिसपर उसका ग़ज़ब नाज़िल हो वह गिरकर रहता है
सूरा-20, आ-81

★ वह कुफ़्र करनेवालों को पसन्द नहीं करता
सूरा-30, आ-45

★ वह मुफ़सिदों (फ़साद करनेवालों) को पसन्द नहीं करता
सूरा-28, आ-77

★ वह ख़ियानत करनेवालों और नेमतों का कुफ़्र (इनकार) करनेवालों को पसन्द नहीं करता
सूरा-22, आ-38

★ वह दुनियावी ख़ुशहाली पर इतरानेवालों को पसन्द नहीं करता
सूरा-28, आ-76

★ इनसान उसके सामने जवाबदेह है
सूरा-19, आ-37 से 40; सूरा-21, आ-23

★ उसी की तरफ़ सबको पलटकर जाना है
सूरा-19, आ-40; सूरा-21, आ-35; सूरा-24, आ-42; सूरा-28, आ-70, 88; सूरा-29, आ-8, 21, 57
★ तमाम इनसान उसी के सामने पेश होनेवाले हैं
सूरा-18, आ-48; सूरा-21, आ-13
★ आख़िरकार वही ज़मीन और उसकी सारी चीज़ों का वारिस होगा
सूरा-19, आ-40
★ बन्दों के आमाल (कर्मों) और नीयतों का हिसाब उसके ज़िम्मे है
सूरा-26, आ-112, 113, हा-82
★ वह हर इनसान का मुकम्मल रिकार्ड तैयार कर रहा है
सूरा-18, आ-49; सूरा-20, आ-52
★ बन्दों के गुनाहों से उसी का बाख़बर होना काफ़ी है
सूरा-25, आ-58
★ उसको हिसाब लेते कुछ देर नहीं लगती
सूरा-24, आ-39
★ क़ियामत के दिन हक़ीक़ी बादशाही सिर्फ़ उसी की होगी
सूरा-25, आ-26
★ उसे अज़ाब देने और माफ़ कर देने के पूरे इख़्तियारात हैं
सूरा-29, आ-21
★ वह किसी पर ज़ुल्म नहीं करता
सूरा-18, आ-49; सूरा-22, आ-10; सूरा-26, आ-208, 209, हा-129; सूरा-29, आ-40; सूरा-30, आ-9
★ वह छोटी-छोटी बातों पर गिरिफ़्त करनेवाला नहीं है
सूरा-22, हा-103
(उसकी हस्ती की दलीलों के लिए देखें— 'तौहीद' और 'शिर्क')
● **असहाबुर्रस्स**
सूरा-25, आ-38, हा-52
● **असहाबुल-ऐका**
★ उनका इलाक़ा और उनकी असलियत
सूरा-26, हा-115
● **असहाबे-कह्फ़**
सूरा-18 का परिचय
★ उनका क़िस्सा
सूरा-18, आ-9 से 26, हा-7, 9, 11, 13 से 20
★ उनके मक़ाम की तहक़ीक़
सूरा-18, हा-7, 9, 11, 21
★ क़ुरआन के अलावा उनके क़िस्से की बाहरी शहादतें
सूरा-18, हा-9
★ उनके क़िस्से से आदमी को क्या सबक़ मिलता है?
सूरा-18, हा-23
★ वे गुफा में कितने साल रहे?
सूरा-18, आ-25, हा-25
● **अहकामुल-क़ुरआन**
★ अक़ीदों से मुताल्लिक़
सूरा-18, आ-24, हा-24
★ जान बचाने के लिए कुफ़्र का कलिमा कहने की इजाज़त और उसकी शर्तें
सूरा-29, आ-2 से 11, हा-15
★ इस्लामी निज़ामे-जमाअत से मुताल्लिक़ अहकाम
सूरा-24, आ-62, हा-98
★ एक-दूसरे को सलाम करने का हुक्म
सूरा-24, आ-61
★ नमाज़ के अहकाम के लिए देखें— 'नमाज़'
★ हज के अहकाम के लिए देखें— 'हज'
★ क़ुरबानी के अहकाम के लिए देखें— 'क़ुरबानी'
★ क़ानूनी अहकाम के लिए देखें— 'क़ानूने-इस्लाम'
★ इस्तीज़ान (घरों में दाख़िल होने के लिए इजाज़त चाहना) के अहकाम के लिए देखें— 'इस्तीज़ान'
★ परदे के अहकाम के लिए देखें— 'परदा'
★ खाने-पीने के मुताल्लिक़ अहकाम
सूरा-22, आ-30, हा-55; सूरा-22, आ-36, हा-71
★ झूठ का वसीअ मफ़हूम (व्यापक अर्थ) और उसका हराम होना
सूरा-22, आ-30, हा-58
★ क़सम से मुताल्लिक़ अहकाम
सूरा-24, आ-22, हा-20
★ इस्तिमना बिल-यद (हस्त-मैथुन Masturbation) की शरई हैसियत
सूरा-23, हा-7
★ रिश्तेदारों और दोस्तों के यहाँ खाने के बारे में हिदायतें
सूरा-24, आ-61, हा-95
★ माज़ूर (मुहताज) और अपाहिज को हर घर से खाने की इजाज़त

सूरा-24, आ-61, हा-95

● **अहदे-इलाही**

★ वह अहद जो ख़ुदा ने तमाम नबियों और उनकी उम्मतों से लिया है
सूरा-20, आ-86 हा-66

(आ)

● **आख़िरत**

★ तौहीद के बाद इस्लाम का दूसरा बुनियादी अक़ीदा
सूरा-20, हा-10

★ इस अक़ीदे की अहमियत
सूरा-27, आ-3, हा-4

★ उसकी दलीलें
सूरा-21, हा-99; सूरा-30 का परिचय; सूरा-30, आ-8, 9, हा-6, 8

★ उसके इमकान की दलीलें
सूरा-18 का परिचय; सूरा-18, हा-23; सूरा-19, आ-67 से 72; सूरा-22, आ-5 से 7, हा-9; सूरा-23, आ-82 से 90, हा-78; सूरा-27, आ-67 से 69, हा-86; सूरा-29, आ-19, 20, हा-32; सूरा-30, आ-11, 12, हा-13; सूरा-30, आ-20 से 27, 48 से 50

★ उसकी ज़रूरत की दलीलें
सूरा-22, हा-9; सूरा-27, हा-86; सूरा-30, आ-7 से 9, हा-5 से 8

★ असहाबे-कह्फ़ का क़िस्सा उसके होने की दलीलों में से है
सूरा-18, आ-21

★ उसका होना अक़्ल और इनसाफ़ का तक़ाज़ा है
सूरा-27, आ-90

★ उसके इनकार के बाद ख़ुदा को मानना बेमानी है
सूरा-18, हा-39

★ उसका इनकार अस्ल में ख़ुदा का इनकार है
सूरा-22, हा-4; सूरा-23, हा-77

★ उसको न मानने के नतीजे
सूरा-18, हा-39; सूरा-18, आ-103 से 105; सूरा-21 का परिचय; सूरा-23, आ-74, हा-71; सूरा-25, आ-11 से 14, हा-21; सूरा-27 का परिचय; सूरा-27, आ-4, 5, हा-4, 5; सूरा-27, आ-66, हा-85, 86; सूरा-30, हा-8

★ उसके न माननेवाले वही हैं जो सीधे रास्ते से हटकर चलना चाहते हैं
सूरा-23, आ-74, हा-71

★ उसको न माननेवाले हमेशा नबियों को झुठलाते रहे हैं
सूरा-23, आ-31 से 44, 73, 74

★ उसका इनकार करनेवाले अल्लाह की रहमत से मायूस हैं
सूरा-29, आ-23, हा-36

★ उसपर ईमान लाने के तक़ाज़े
सूरा-29, आ-5, हा-6, 7

★ दुनिया पर आख़िरत को तरजीह देने की वजहें
सूरा-28, आ-60, 61, हा-84; सूरा-29, आ-64, हा-102, 103

★ उसके आने का वक़्त किसी को नहीं मालूम है
सूरा-27, आ-65, हा-83, 85

★ वह इसलिए है कि हर शख़्स अपने अमल का बदला पाए
सूरा-20, आ-15

★ आलमे-आख़िरत के तफ़सीली हालात बयान करने का मक़सद
सूरा-25, हा-23

★ आलमे-आख़िरत का नक़्शा
सूरा-20, आ-100 से 112; सूरा-27, आ-83 से 90

★ वह इसी ज़मीन पर क़ायम होगी
सूरा-20, आ-55

★ मौत के बाद दोबारा उठाए जाने के वक़्त से जहन्नम में दाख़िल होने तक मुजरिमों के हालात
सूरा-20, हा-107

★ वहाँ अचानक ज़िन्दा होकर उठने पर मुजरिमों की बदहवासी
सूरा-20, आ-102 से 104, हा-79

★ वहाँ लोग अपनी दुनियावी ज़िन्दगी का अन्दाज़ा बहुत कम लगाएँगे
सूरा-20, आ-103, 104, हा-80; सूरा-23, आ-113; सूरा-30, आ-55

★ वहाँ काफ़िर और मुशरिक तमन्ना करेंगे कि उन्हें फिर दुनिया में जाने और ईमान लाने का मौक़ा दिया जाए
सूरा-26, आ-102, हा-72

★ मरने के बाद इनसान दुनिया में फिर वापस नहीं आ सकता और इसकी वजह
सूरा-23, हा-91, 92

★ वहाँ तमाम इनसान और शैतान ख़ुदा के सामने घेर लाए

जाएँगे

सूरा-18, आ-47; सूरा-19, आ-68

★ वहाँ दुनिया की सारी जत्थेबन्दियाँ ख़त्म हो जाएँगी

सूरा-18, आ-48; सूरा-30, आ-14 से 16, हा-18; सूरा-30, आ-43

★ वहाँ दोस्तियाँ काम न आएँगी

सूरा-26, आ-101, हा-71

★ वहाँ इनसानियत किस उसूल पर तक़सीम की जाएगी?

सूरा-30, आ-14, हा-18

★ वहाँ हर शख़्स अपनी इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) हैसियत में ख़ुदा के सामने पेश होगा

सूरा-18, आ-48; सूरा-19, आ-80, 95

★ वहाँ दुनियावी रिश्ते कट जाएँगे

सूरा-23, आ-101, हा-94; सूरा-29, आ-25, हा-43

★ वहाँ मुजरिम एक-दूसरे पर लानत भेजेंगे

सूरा-29, आ-25

★ वहाँ माल और औलाद नहीं सिर्फ़ भला-चंगा दिल काम आएगा

सूरा-26, आ-88, 89, हा-65

★ नामा-ए-आमाल (कर्मपत्र) पेश होंगे

सूरा-18, आ-49

★ आमाल का ठीक-ठीक वज़न किया जाएगा

सूरा-21, आ-47

★ इनसान के आमाल पर उसके अपने आज़ा (अंग) गवाही देंगे

सूरा-24, आ-23, 24

★ वहाँ अल्लाह बता देगा कि लोग दुनिया में क्या करके आए हैं

सूरा-24, आ-25, 64

★ वहाँ आख़िरत का इनकार करनेवालों की ग़लती खुल जाएगी

सूरा-18, आ-49

★ उस दिन अल्लाह आख़िरत का इनकार करनेवालों पर किस तरह हुज्जत क़ायम करेगा?

सूरा-27, आ-83 से 90

★ वहाँ मुशरिकों के माबूद उनकी इबादत का इनकार करेंगे

सूरा-19, आ-81, 82

★ वहाँ काफ़िरों और मुशरिकों के अक़ीदों की ग़लती खुल जाएगी

सूरा-19, आ-81, 82

★ वहाँ ज़ालिमों पर हक़ीक़त खुल जाएगी

सूरा-19, आ-38

★ आख़िरत का इनकार करनेवाले पछताएँगे

सूरा-23, आ-106, 107

★ हक़ का इनकार करनेवाले को पछताना पड़ेगा

सूरा-26, आ-6, हा-4

★ वहाँ किसी के साथ ज़ुल्म न होगा

सूरा-18, आ-49, हा-46; सूरा-20, आ-112, हा-87; सूरा-21, आ-47; सूरा-23, आ-62, हा-57

★ वहाँ हर शख़्स के साथ उसके औसाफ़ (गुणों) के लिहाज़ से मामला होगा

सूरा-20, हा-87

★ वहाँ ठीक-ठीक इनसाफ़ के साथ हर शख़्स को उसके अमल का बदला दिया जाएगा

सूरा-24, आ-25

★ वहाँ अज़ाब के हक़दार कौन लोग होंगे?

सूरा-18, आ-52, 53, 103 से 106; सूरा-20, आ-74, 99 से 101; सूरा-21, आ-97, 98, हा-95; सूरा-22, आ-8, 9; सूरा-23, आ-63 से 65, 103 से 108; सूरा-24, आ-19, 23; सूरा-27, आ-92, 93

★ वहाँ कामयाबी किन लोगों के लिए है?

सूरा-18, आ-107, 108; सूरा-21, आ-101 से 103; सूरा-23, आ-102, हा-95; सूरा-23, आ-109 से 111; सूरा-27, आ-89; सूरा-28, आ-67, 83

★ वहाँ मुत्तक़ी (परहेज़गार) मेहमानों की तरह हाज़िर होंगे

सूरा-18, आ-107; सूरा-25, आ-75

★ वहाँ नेक और बुरे लोगों की हालत का फ़र्क़

सूरा-25, आ-22 से 29

★ वहाँ अज़ाब और सवाब किन बातों पर है?

सूरा-18, आ-1 से 4, 29, 30

★ वहाँ मुशरिकों से क्या पूछ-ताछ होगी?

सूरा-26, आ-92, 93; सूरा-28, आ-62, 64, 65, 74, 75

★ वहाँ की जज़ा और सज़ा का क़ायदा

सूरा-28, आ-83, 84

★ वहाँ कोई शख़्स किसी दूसरे के गुनाह का बोझ अपने ऊपर न ले सकेगा

सूरा-29, आ-12

★ वहाँ गुमराह करनेवाले अपनी गुमराही के अलावा दूसरों को गुमराह करने के भी मुजरिम होंगे

सूरा-29, आ-13, हा-19

★ वहाँ कोई शख़्स इस उज़्र की बुनियाद पर न छूट सकेगा कि वह गुमराह लोगों में पैदा हुआ था

सूरा-28, हा-91

★ वहाँ गुमराह लोगों पर गवाही क़ायम की जाएगी कि उन्हें हक़ पहुँच चुका था

सूरा-28, आ-75, हा-92

★ वहाँ ज़ालिमों को कोई बहाना पेश करने का मौक़ा नहीं मिलेगा

सूरा-30, आ-57

★ वहाँ मुजरिमों पर सख़्त मायूसी तारी होगी

सूरा-30, आ-12, हा-15

★ वहाँ शफ़ाअत (सिफ़ारिश) का क़ायदा

सूरा-20, हा-86

★ मुशरिकों के माबूद उनको झूठा क़रार देंगे

सूरा-25, आ-17 से 19, हा-25

★ मुशरिकों के माबूद उन्हें कहीं न मिलेंगे कि सिफ़ारिश के लिए आएँ

सूरा-30, आ-13

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'जज़ा और सज़ा' और 'क़ियामत')

● **आज़माइश**

★ दुनिया में इनसान की आज़माइश किस चीज़ के लिए है?

सूरा-18, आ-7, हा-5, सूरा-20, हा-106

★ आज़माइश किस-किस तरह होती है?

सूरा-21, आ-111, हा-103; सूरा-22, आ-53, 54, हा-101; सूरा-23, आ-30, हा-33, 50; सूरा-23, आ-75 से 77; सूरा-25, आ-20, हा-30, 31

★ दुनिया में ईमान लानेवालों की आज़माइश किस लिए की जाती है?

सूरा-25, हा-30; सूरा-29, आ-2, 3, हा-1 से 3; सूरा-29, आ-10, 11, हा-13 से 16; सूरा-29, हा-40

★ ईमानवालों की आज़माइश किस तरह की जाती है?

सूरा-20, आ-85

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'दुनिया')

● **आद**

सूरा-22, आ-42; सूरा-25, आ-38; सूरा-26, आ-123; सूरा-29, आ-38

★ उनका क़िस्सा

सूरा-23, आ-31 से 41, हा-34; सूरा-26, आ-123 से 139

★ उनका इलाक़ा

सूरा-29, हा-65

★ उनके हालात

सूरा-26, आ-123 से 139, हा-89 से 93

● **आदम (अलैहि.)**

सूरा-18, आ-50; सूरा-19, हा-33; सूरा-19, आ-58; सूरा-20 का परिचय; सूरा-20, आ-115, 116, 117, 120, 121

★ आदम व इबलीस का क़िस्सा

सूरा-18, आ-50, हा-47; सूरा-20, आ-115 से 124

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'क़ुरआन, इसमें क़िस्से किस मक़सद के लिए बयान किए गए हैं?')

● **आयत/आयात**

★ हक़ की पहचान की निशानियों और अल्लाह की क़ुदरत की निशानियों के मानी में

सूरा-18, आ-17; सूरा-19, आ-10; सूरा-20, आ-54, 56, 128; सूरा-21, आ-32, 37, हा-42; सूरा-24, आ-41 से 46; सूरा-26, आ-7, 8, 197; सूरा-27, आ-86, 93; सूरा-29, आ-44; सूरा-30, आ-20, 21, 22, 23 से 25, 28, 37, 46

★ निशाने-इबरत के मानी में

सूरा-23, आ-30, हा-32; सूरा-25, आ-37; सूरा-26, आ-67, हा-49; सूरा-26, आ-103, हा-73; सूरा-26, आ-121, 139, 158, 174, 190; सूरा-27, आ-52; सूरा-29, आ-15, हा-25; सूरा-29, आ-24, हा-40; सूरा-29, आ-35

★ मोजिज़े के मानी में

सूरा-19, आ-21, हा-15, 20, 22; सूरा-20, आ-22, 23, 42, 47, 56, 133; सूरा-21, आ-5, 91; सूरा-23, आ-45, 50; सूरा-26, आ-4, 15, हा-12; सूरा-26, आ-154, 155; सूरा-27, आ-12; सूरा-29, आ-49, 50; सूरा-30, आ-58

★ अल्लाह की किताब की आयतों के मानी में और अल्लाह

के अहकाम व इरशाद के मानी में
सूरा-18, आ-56, 57; सूरा-19, आ-73; सूरा-20, आ-134; सूरा-22, आ-16, 51, 52; सूरा-23, आ-58, 66, 105; सूरा-24, आ-58, 59, 61; सूरा-25, आ-36, 73; सूरा-27, आ-1, 81, 82, 83; सूरा-28, आ-2, 45, 87; सूरा-29, आ-23, 47; सूरा-30, आ-53

★ जाहिल इनसान अल्लाह की निशानियों से हक़ीक़त तक पहुँचने के बजाय उलटी गुमराही मोल लेते हैं
सूरा-18, हा-23

★ अल्लाह की आयतों का इनकार करनेवाले किस तरह गुमराह होते हैं?
सूरा-19, आ-73 से 75, हा-45; सूरा-20, आ-125 से 127, हा-107

★ अल्लाह की आयतों को न माननेवाले काफ़िर हैं
सूरा-29, आ-47

★ अल्लाह की आयतों का इनकार करनेवाले ज़ालिम हैं
सूरा-23, आ-105 से 107; सूरा-29, आ-49

★ अल्लाह की आयतों को नज़र-अन्दाज़ करने का बुरा नतीजा
सूरा-20, आ-124 से 127; सूरा-23, आ-65 से 67

★ अल्लाह की आयतों का इनकार करनेवाले उसकी रहमत से मायूस हैं
सूरा-29, आ-23

★ अल्लाह की आयतों के ख़िलाफ़ अमल करनेवालों का बुरा अंजाम
सूरा-22, आ-51

★ अल्लाह की आयतों का मज़ाक़ उड़ानेवाले किस अंजाम से दोचार होंगे?
सूरा-18, आ-106

★ अल्लाह की आयतों को झुठलानेवालों का बुरा अंजाम
सूरा-18, आ-105; सूरा-23, आ-103 से 105

● आसमान
सूरा-22, आ-65, हा-113; सूरा-23, आ-18, 86

(इ)

● इक़ामते-दीन
(देखें– 'दावते-हक़')

● इक़ामते-सलात
(देखें– 'नमाज़')

● इदरीस (अलैहि.)
सूरा-19, आ-56; सूरा-21, आ-85

★ उनकी शख़्सियत की तहक़ीक़ और उनके उठाए जाने का मतलब
सूरा-19, हा-33, 34

● इनफ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह

★ इसकी तारीफ़
सूरा-22, हा-66

★ इनफ़ाक़ करनेवालों के लिए ख़ुशख़बरी
सूरा-22, आ-34, 35
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें– 'ज़कात')

● इनसान

★ तख़लीक़े-इनसानी (इनसान के पैदा किए जाने) से मुताल्लिक़ क़ुरआन का बयान
सूरा-22, आ-5; सूरा-23, आ-12 से 14; सूरा-25, आ-54; सूरा-30, आ-8, हा-5, 6; सूरा-30, आ-20 से 23, हा-27 से 33; सूरा-30, आ-54

★ उसकी पैदाइश के आग़ाज़ में उसे दुनिया के अन्दर ज़िन्दगी बसर करने का सही रास्ता बता दिया गया था
सूरा-20, आ-115, हा-92; सूरा-20, आ-123

★ दुनिया में मुक़र्रर किया हुआ ख़लीफ़ा
सूरा-27, आ-62

★ उसके फ़ितरी गुनहगार होने का ईसाई नज़रिया ग़लत है
सूरा-30, आ-30, हा-45

★ वह फ़ितरी तौर पर एक ख़ुदा का बन्दा पैदा हुआ है
सूरा-30, आ-31, हा-45

★ उसके लिए अल्लाह की बन्दगी के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं है
सूरा-19, आ-65, हा-41

★ ज़मीन की चीज़ें उसी के लिए मुसख़्ख़र की गई हैं
सूरा-22, आ-65

★ उसकी बुनियादी ज़रूरतें
सूरा-20, आ-119, हा-98

★ उसकी ज़िन्दगी के तीन मरहले
सूरा-20, आ-55

★ वह आज़माइश के लिए पैदा किया गया है
सूरा-20, हा-106

★ उससे शैतान की हमेशा की दुश्मनी है

सूरा-18, आ-50

★ उसकी फ़ितरी कमज़ोरियाँ और ख़ूबियाँ
सूरा-18, आ-23, 24; सूरा-20, आ-115, हा-94, 98, 102, 106; सूरा-21, आ-37; सूरा-22, आ-66; सूरा-30, आ-33, 36

★ उसको हवास और शुऊर की ताक़तें किस लिए दी गई हैं?
सूरा-23, आ-78, हा-74

★ उसे कुफ़्र और ईमान का इख़्तियार दिया गया है
सूरा-18, आ-29

★ अल्लाह उससे किस तरह का ईमान चाहता है
सूरा-26, हा-3

★ नेकी के रास्ते पर चलना उसकी ताक़त से बाहर नहीं है
सूरा-23, आ-62, हा-55

★ अच्छे और बुरे इनसानों का फ़र्क़
सूरा-18, आ-32 से 44

★ उसकी इस्लाह किस तरह हो सकती है?
सूरा-20, आ-44, हा-18

★ उसकी सआदत और शक़ावत का दारोमदार किन चीज़ों पर है?
सूरा-20, हा-92; सूरा-20, आ-123, 124

★ उसकी तबाही किस रास्ते में है?
सूरा-18, आ-51 से 57, 103 से 106; सूरा-19, आ-59

★ उसकी तहज़ीब की अस्ल बुनियाद क्या है?
सूरा-30, आ-21, हा-29

★ वह अल्लाह की मर्ज़ी के ताबेअ है
सूरा-18, आ-24, हा-41

★ वह ख़ुदा के मुक़ाबले में बेबस है
सूरा-21, आ-44, हा-46; सूरा-22, आ-6, 7, हा-9

★ उसकी मौत और ज़िन्दगी अल्लाह के हाथ में है
सूरा-22, आ-66

★ किसी इनसान के लिए हमेशा की ज़िन्दगी नहीं है
सूरा-21, आ-34, 35

★ सबको ख़ुदा की तरफ़ पलटना है
सूरा-19, आ-40; सूरा-21, आ-35; सूरा-24, आ-42; सूरा-28, आ-70, 88; सूरा-29, आ-8, 21, 57

★ इनसान को जवाबदेही के लिए एक दिन ख़ुदा के सामने जाना है
सूरा-18, आ-47, हा-44; सूरा-19, आ-39; सूरा-21, आ-13, 23

★ हर इनसान के आमाल का मुकम्मल रिकॉर्ड तैयार हो रहा है
सूरा-18, आ-49; सूरा-20, आ-52

★ हर इनसान अपने अमल का बदला पाएगा
सूरा-18, आ-106, 107; सूरा-20, आ-15, 76, 123, 124, 127; सूरा-21, आ-29; सूरा-24, आ-38; सूरा-25, आ-15, 75 से 77; सूरा-27, आ-89, 90, हा-109 (अ); सूरा-28, आ-84; सूरा-29, आ-7; सूरा-30, आ-44, 45

★ उसके अपने वुजूद में इस बात की गवाही मौजूद है कि आख़िरत होनी चाहिए
सूरा-30, आ-8, हा-5

● **इफ़्क**

★ इफ़्क के क़िस्से की तफ़सील
सूरा-24 का परिचय; सूरा-24, हा-8 से 16

★ अल्लाह तआला की तरफ़ से हज़रत आइशा (रज़ि.) की सफ़ाई
सूरा-24, आ-11 से 20

★ इस फ़साद में कौन-कौन लोग शरीक हैं?
सूरा-24, हा-9

★ इफ़्क के क़िस्से का अस्ल बानी-मबानी (कर्ता-धर्ता) कौन था?
सूरा-24, हा-11

★ इफ़्क के क़िस्से में हज़रत अली (रज़ि.) का तर्ज़े-अमल
सूरा-24 का परिचय; सूरा-24, हा-11

★ इफ़्क के क़िस्से में प्यारे नबी (सल्ल.) अस्ल में हज़रत आइशा (रज़ि.) से बदगुमान न थे
सूरा-24 का परिचय; सूरा-24, हा-13

★ इफ़्क के क़िस्से में मामले की अस्ल नौइयत
सूरा-24, हा-12, 14

★ इफ़्क के क़िस्से में ख़ैर का पहलू
सूरा-24, हा-10

● **इबराहीम (अलैहि.)**
सूरा-19, आ-41, 46, 58; सूरा-21, आ-51, 60, 62 69; सूरा-22, आ-26, 43, 78; सूरा-26, आ-69; सूरा-29, आ-16, 31

★ इबराहीम (अलैहि.) का क़िस्सा

सूरा-19, आ-41 से 50; सूरा-21, आ-51 से 73, हा-53, 56 से 60, 62, 63, 66; सूरा-26, आ-69 से 89, हा-50, 51, 55; सूरा-29, आ-16 से 27
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें– 'क़ुरआन, इसमें क़िस्से किस मक़सद के लिए बयान किए गए हैं?')
★ उनके लिए सिद्दीक़ का ख़िताब
सूरा-19, आ-41
★ उनकी तरफ़ झूठ की निस्बत और उसकी हक़ीक़त
सूरा-21, हा-60
★ उनसे हज की शुरुआत
सूरा-22 का परिचय
★ ख़ाना-काबा की तामीर
सूरा-22, आ-26
★ ख़ुदा के हुक्म से हज का तरीक़ा मुक़र्रर करते हैं
सूरा-22, आ-27, 28, हा-44, 45
★ मिल्लते-इबराहीमी पर क़ायम होने का हुक्म
सूरा-22, आ-78, हा-131
★ इस्लाम में उनकी अहमियत
सूरा-22, हा-131
★ उन्होंने अपने बाप के लिए मग़फ़िरत की दुआ क्यों की थी?
सूरा-19, आ-47; सूरा-26, हा-63
★ उनका आग में डाला जाना और बचा लिया जाना
सूरा-29, आ-24, हा-39
★ उनपर अल्लाह के इनाम
सूरा-29, आ-27
★ उनको लूत (अलैहि॰) की क़ौम पर अज़ाब के फ़ैसले की ख़बर दी जाती है
सूरा-29, आ-31, हा-54
● **इबलीस**
★ वह फ़रिश्तों में से नहीं, बल्कि जिन्नों में से था
सूरा-18, आ-50, हा-48
★ वह इनसान का अज़ली (हमेशा का) दुश्मन है
सूरा-18, आ-50
★ लफ़्ज़ इबलीस के मानी
सूरा-23, हा-73
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें– 'शैतान')
● **इबादत**
★ इसका वसीअ मफ़हूम
सूरा-23, हा-41
★ किसी को क़ानूनसाज़ (क़ानून बनानेवाला) मानकर उसके अम्रो-नही (आदेश-निषेध) की बे-चूँ-चरा पैरवी करना उसकी इबादत है
सूरा-19, हा-27
★ ख़ुदा से बेनियाज़ होकर किसी मख़लूक़ की इताअत करना उसकी इबादत है
सूरा-28, आ-63, हा-86
★ सिर्फ़ अल्लाह की इबादत होनी चाहिए
सूरा-21, आ-92; सूरा-23, आ-23, 32
● **इलहाद**
★ इसका बुरा नतीजा
सूरा-22, हा-44
★ इलहाद फ़िल-हरम (मस्जिदे-हराम में सच्चाई से हटकर ज़ुल्म का तरीक़ा अपनाने) का मफ़हूम और उसका गुनाह
सूरा-22, हा-44
● **इलियास (अलैहि.)**
सूरा-19, हा-8
● **इल्म**
★ क़ुरआन की निगाह में हक़ीक़ी इल्म क्या है?
सूरा-24, आ-40; सूरा-27, आ-15, हा-18
★ इल्म की एक ख़ास क़िस्म 'इल्मुम-मिनल-किताब' और उसकी नौइयत
सूरा-27, आ-40, हा-47
● **इल्मे-ग़ैब**
★ इस बात की दलीलें कि अल्लाह के सिवा कोई आलिमुल-ग़ैब नहीं है
सूरा-27, आ-65, हा-83
★ अल्लाह के सिवा किसी और को आलिमुल-ग़ैब मानना शिर्क है
सूरा-23, आ-92, हा-86
★ ग़ैरुल्लाह की तरफ़ इल्मे-ग़ैब की निस्बत दर-अस्ल ख़ुदाई में उसको शरीक करने की तमहीद है
सूरा-27, हा-83
● **इसमाईल (अलैहि.)**
सूरा-19, आ-54; सूरा-21, आ-85
● **इसराईल**

सूरा-19, आ-58

(देखें— 'बनी-इसराईल')

● **इसहाक़ (अलैहि.)**

सूरा-19, आ-49; सूरा-21, आ-72; सूरा-29, आ-27

● **इस्तीज़ान (घर में दाख़िल होने से पहले इजाज़त लेना)**

★ इसके अहकाम

सूरा-24, आ-27 से 29, हा-23 से 27

★ घर के बच्चों और ख़ादिमों के लिए इस्तीज़ान (इजाज़त लेने) के अहकाम

सूरा-24, आ-58, 59, हा-86 से 91

● **इस्लाम**

★ यह तमाम नबियों का दीन रहा है

सूरा-20, हा-10; सूरा-21 का परिचय; सूरा-21, आ-24, हा-24; सूरा-21, आ-48, हा-49; सूरा-21, आ-92, 93, हा-91; सूरा-22, आ-67; सूरा-23 का परिचय; सूरा-23, आ-23, 24, 32, 33, 51, 52, हा-45, 47, 48; सूरा-26, हा-50; सूरा-26, आ-105 से 110, हा-73; सूरा-26, आ-123 से 127, 141 से 145; सूरा-27, आ-29 से 31, हा-37, 44; सूरा-27, आ-42 से 44, हा-56; सूरा-28, आ-53, हा-73; सूरा-29, आ-16 से 18, 36

★ लफ़्ज़ 'इस्लाम' के मानी

सूरा-28, हा-72

★ लफ़्ज़ 'मुस्लिम' के मानी

सूरा-22, हा-132; सूरा-27, हा-37

★ ईमानवालों का अस्ल नाम मुस्लिम है

सूरा-22 का परिचय; सूरा-27, आ-91

★ तमाम नबियों के पैरो मुस्लिम थे

सूरा-28, आ-53, हा-73

★ हर नबी के पैरो उस वक़्त तक मुस्लिम क़रार पाते हैं जब तक वे दूसरे नबी का इनकार न कर दें

सूरा-30, हा-1

★ इसको इबराहीम की मिल्लत क़रार देने की वजह

सूरा-22, हा-131

★ इसके दीने-फ़ितरत होने का मतलब

सूरा-30, हा-45

★ तमाम इनसानों का अस्ल दीन इस्लाम ही था और दूसरे मज़हब इसको बिगाड़कर बनाए गए हैं

सूरा-30, आ-32, हा-51

★ यह बे-दलील अक़ीदों को ग़लत समझता है

सूरा-18, आ-15

★ इसमें क़ब्र-परस्ती की सख़्त मनाही है

सूरा-18, आ-21, हा-21

★ मुसलमानों को तमाम आसमानी किताबों पर ईमान लाने का हुक्म

सूरा-29, आ-46, 47

★ दुनियावी ज़िन्दगी के बारे में उसका तसव्वुर

सूरा-18, आ-7, 8, हा-5

★ किस तरह के इनसान उसके नज़दीक क़द्र के हक़दार हैं और कौन नहीं हैं?

सूरा-18, आ-28, हा-28

★ काफ़िरों (अधर्मियों) को राज़ी करने के लिए कोई तरमीम (फेर-बदल) नहीं की जा सकती

सूरा-18, आ-27 हा-27, 31

★ इसकी अख़लाक़ी तालीमात के लिए देखें— 'अख़लाक़' और इसके क़ानूनों के लिए देखें— 'क़ानूने-इस्लाम'

● **इस्लामी निज़ामे-जमाअत**

★ इस्लाम का तसव्वुरे-क़ौमियत

सूरा-30, हा-18

★ लफ़्ज़ 'उम्मत' के मानी

सूरा-23, हा-47

★ क़ौम-परस्ती और वतन-परस्ती के मुताल्लिक़ इस्लाम का नुक़्ता-ए-नज़र

सूरा-29, आ-56, हा-94; सूरा-30, हा-18

★ जमाअती ज़िन्दगी के मुताल्लिक़ अहकाम

सूरा-24, आ-62

★ समाज की इस्लाह के लिए इस्लाम का प्रोग्राम

सूरा-24 का परिचय; सूरा-24, हा-2; सूरा-24, आ-3 से 5, हा-5, 6; सूरा-24, आ-16 से 18, 26 से 34

● **इस्लामी रियासत (स्टेट)**

★ इसके कार्फ़रमाओं और कारकुनों की सिफ़ात

सूरा-22, आ-41, हा-85

★ इसका मक़सद

सूरा-22, आ-41

★ इसका इस्लामी तसव्वुर

सूरा-26, हा-24

★ इस्लामी दस्तूर के लिए देखें— 'क़ानूने-इस्लाम', 'दस्तूरी

क़ानून' और 'बुनियादी हुक़ूक़'

(ई)

● ईमान

★ मोमिन और काफ़िर का फ़र्क़
सूरा-29, हा-15

★ मोमिन की सिफ़ात
सूरा-18, हा-23; सूरा-23, आ-1 से 11; सूरा-24, आ-37, 51, 52, 62; सूरा-25, आ-63 से 76; सूरा-27, आ-3; सूरा-29, हा-40

★ ईमान के तक़ाज़े
सूरा-24, हा-3 से 5, 49; सूरा-24, आ-51, 52, हा-81; सूरा-29, आ-7, हा-10; सूरा-29, आ-9, हा-15; सूरा-29, आ-58, 59, हा-97, 98

★ रसूल की रिसालत पर ईमान लाने का लाज़िमी तक़ाज़ा
सूरा-24, आ-62, 63, हा-102; सूरा-26, आ-108, हा-78; सूरा-26, आ-126, 131, 144, 150, 163, 179

★ ईमान के असरात इनसानी सीरत पर
सूरा-20, आ-71 से 73; सूरा-26, आ-49 से 51, हा-40; सूरा-30, हा-56

★ ईमान और अमले-सालेह (नेक कामों) का ताल्लुक़
सूरा-18, आ-30, 31, 107, 108; सूरा-19, आ-60, 96; सूरा-20, आ-75, 82, 112; सूरा-21, आ-94; सूरा-22, आ-14, 23, 50, 56; सूरा-23, हा-11; सूरा-24, आ-55; सूरा-25, आ-70; सूरा-28, आ-67, 80; सूरा-29, आ-7

★ ईमान लानेवालों की ज़िम्मेदारियाँ
सूरा-22, आ-77, 78

★ दुनिया में ईमान लानेवालों की आज़माइश किस लिए की जाती है?
सूरा-25, आ-20, हा-30, 31; सूरा-29, आ-2, 3, हा-1, 2; सूरा-29, आ-10, 11, हा-40

★ नेक मोमिनों को ख़िलाफ़त अता करने का वादा और उसकी शर्तें
सूरा-24, आ-55, 56

★ अहले-ईमान को अल्लाह ने अपने काम के लिए चुन लिया है
सूरा-22, आ-78, हा-129

★ ईमान लानेवालों को अल्लाह सीधा रास्ता दिखाता है
सूरा-22, आ-54

★ मोमिनों को अल्लाह बन्दों का महबूब बना देता है
सूरा-19, आ-96

★ कुफ़्र और ईमान की कशमकश में अल्लाह मोमिनों के साथ होता है
सूरा-22, आ-38, 39, हा-76, 79; सूरा-30, आ-47

★ मोमिन ही फ़लाह पानेवाले हैं
सूरा-23, आ-1, हा-1, 11

★ ईमान लाने के असर और नतीजे
सूरा-18, आ-30, 31; सूरा-19, आ-60 से 63; सूरा-20, आ-75, 76; सूरा-22, आ-23, 50, 56; सूरा-25, आ-75, 76; सूरा-28, आ-67; सूरा-29, आ-7, 9

★ नेक मोमिन क़ियामत के दिन अज़ाब से महफ़ूज़ रहेगा
सूरा-25, आ-70

★ मोमिन का अज्र ज़ाए नहीं होगा
सूरा-20, आ-112

★ मोमिन के नेक अमल की नाक़द्री न की जाएगी
सूरा-21, आ-94

★ कमज़ोर ईमान के अख़लाक़ी नतीजे
सूरा-22, आ-11, हा-17

★ ईमान न लानेवालों का अंजाम
सूरा-23, आ-38 से 41

● ईसा (अलैहि.)
सूरा-19, आ-34

★ उनके बारे में इस्लाम का अक़ीदा
सूरा-19 का परिचय

★ उनके बे-बाप पैदा होने की दलीलें
सूरा-19, हा-6, 8, 15 से 19 (अ)

★ उनकी पैदाइश एक मोजिज़ा थी
सूरा-19, हा-21; सूरा-21, आ-91, हा-90; सूरा-23, आ-50, हा-43

★ उनको बाप के बग़ैर पैदा करने की मस्लहत
सूरा-19, हा-21

★ हज़रत यह्या (अलैहि.) उनके आने से पहले ज़मीन तैयार करते हैं
सूरा-19, हा-12

★ उनकी असली तालीम
सूरा-19, आ-30 से 36

★ उनके बारे में ईसाइयों के ग़लत अक़ीदों का रद्द

सूरा-19, आ-34, 35

★ उनके ख़िलाफ़ यहूदी उलमा की चालें

सूरा-24, हा-2

★ उनकी शुरुआती परवरिश कहाँ हुई?

सूरा-23, आ-50, हा-44

● ईसाइयत

★ ईसा (अलैहि.) के शुरू के पैरुओं के अक़ीदे

सूरा-18, आ-10, 13 से 16, 19, 20, हा-18

★ बाद में मसीहियत में किस तरह गुमराहियाँ पैदा हुईं?

सूरा-18, हा-20

★ इसमें हज़रत मरयम (अलैहि.) को अल्लाह की माँ क़रार देने का अक़ीदा कब से शुरू हुआ?

सूरा-18, हा-20

★ इसमें आख़िरत के अक़ीदे पर मज़बूत दलीलें मौजूद नहीं हैं

सूरा-18, हा-18

★ इनसान के फ़ितरी गुनहगार होने का ईसाई नज़रिया ग़लत है

सूरा-30, आ-30, हा-45

★ ज़िना के बारे में ईसाइयों की लापरवाही और उसकी वजहें

सूरा-24, हा-2

★ इस्लाम के शुरू में ईसाइयों के साथ मुसलमानों की हमदर्दी की वजहें

सूरा-30, हा-1

(उ)

● उमर-बिन-ख़त्ताब (रज़ि.)

★ उनके ईमान लाने का वाक़िआ

सूरा-20 का परिचय

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'ख़िलाफ़ते-राशिदा')

● उम्मत

★ इसके मानी की तहक़ीक़

सूरा-23, हा-47

● उसूले-फ़िक़्ह

★ अम्र (Order) के सेगों (Forms) में कोई हुक्म बयान करना लाज़िमी तौर पर उसके फ़र्ज़ और वाजिब होने का हम मानी नहीं है

सूरा-24, आ-32, हा-52

★ शरीअत के अहकाम मस्लहत पर मबनी (आधारित) हैं और हर हुक्म की कोई हिकमत ज़रूर है

सूरा-24, आ-28, 31, हा-42, 45; सूरा-24, आ-58, हा-90, 91

★ शरीअत के अहकाम किस हिकमत पर मबनी (आधारित) हैं?

सूरा-24 का परिचय

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'क़ानूने-इस्लाम', 'उसूले-क़ानून' और 'फ़लसफ़ा-ए-क़ानून')

(क/क़)

● क़ज़फ़ (ज़िना की तोहमत)

★ इसके अहकाम

सूरा-24, आ-4, 5

★ क़ज़फ़ के क़ानून का मक़सद

सूरा-24, हा-6

★ क़ज़फ़ के जुर्म की सज़ा

सूरा-24, हा-6

★ क़ज़फ़ के मुक़द्दिमों की मिसालें नबी (सल्ल.) और ख़िलाफ़ते-राशिदा के ज़माने में

सूरा-24, हा-6

★ एक शख़्स किस हालत में क़ज़फ़ का मुजरिम होगा और किस हालत में नहीं?

सूरा-24, हा-6

★ क़ज़फ़ का जुर्म पुलिस के दख़ल देने के क़ाबिल है या नहीं?

सूरा-24, हा-6

★ राज़ीनामा के क़ाबिल है या नहीं?

सूरा-24, हा-6

★ क़ज़फ़ की हद (सज़ा) के मुतालबे का हक़ किसे है और किसे नहीं है?

सूरा-24, हा-6

★ किसी पर क़ौमे-लूत के अमल का इलज़ाम लगाना क़ज़फ़ है या नहीं?

सूरा-24, हा-6

★ अगर एक मर्द किसी औरत के साथ ज़िना का इक़रार करे, मगर औरत इनकार कर दे तो क्या मर्द को क़ज़फ़ का मुजरिम क़रार दिया जाएगा?

सूरा-24, हा-2

★ तकरारे-क़ज़फ़ के बारे में क़ानूनी हुक्म

सूरा-24, हा-6

★ एक से ज़्यादा आदमियों पर तोहमत लगाने की सूरत में क़ानूनी हुक्म

सूरा-24, हा-6

★ क़ज़फ़ के जुर्म में सफ़ाई की शहादत

सूरा-24, हा-6

★ अगर ज़िना के गवाहों की शहादत अदालत में क़ाबिले-क़बूल साबित न हो तो क्या उनपर क़ज़फ़ का मुक़द्दिमा चलाया जाएगा?

सूरा-24, हा-2

★ क़ाज़िफ़ को माफ़ कर देने का हक़ किसी को नहीं है

सूरा-24, हा-6

★ क़ज़फ़ के जुर्म में माली तावान दिलवाकर मुजरिम को नहीं छोड़ा जा सकता

सूरा-24, हा-6

★ क़ाज़िफ़ की तौबा किस चीज़ पर मुअस्सिर है और किस पर मुअस्सिर नहीं है?

सूरा-24, हा-6

★ बीवी पर शौहर की तरफ़ से ज़िना की तोहमत लगाए जाने की सूरत में क़ानूनी हुक्म

(देखें— 'लिआन')

● क़ज़ा और क़द्र

(देखें— 'तक़दीर')

● क़सम

★ किसी बुरे काम की क़सम अगर आदमी ने खा ली हो तो उसे उसपर क़ायम न रहना चाहिए

सूरा-24, हा-20

● क़ानूने-इस्लाम

★ फ़लसफ़ा-ए-क़ानून

सूरा-24, हा-16, 23

उसूल

★ ज़ालिमों और मुजरिमों की मदद जाइज़ नहीं है

सूरा-28, हा-26

★ ज़ालिम हुकूमतों की मुलाज़मत का मसला

सूरा-28, हा-26

★ कोई शख़्स किसी दूसरे शख़्स के काम की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर नहीं ले सकता

सूरा-29, आ-12, हा-18

★ जुर्म पर आमादा करनेवाला भी मुजरिम है

सूरा-29, आ-13, हा-19

★ एक ग़ैर-क़ानूनी काम किसी क़ानूनी काम को ग़ैर-क़ानूनी नहीं बना देता

सूरा-24, हा-5

★ बग़ावत के सिवा कोई जुर्म आदमी को क़ानून की हदों से ख़ारिज नहीं करता

सूरा-24, हा-5

★ हर शख़्स को बेगुनाह समझा जाएगा जब तक उसके जुर्म का कोई सुबूत न हो

सूरा-24, आ-13, हा-14

★ अल्लाह के हक़ और इनसान के हक़ का फ़र्क़

सूरा-24, हा-6

★ सद्दे-बाब के ज़रिओं का क़ायदा

सूरा-24, आ-27

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'उसूले-फ़िक़्ह')

बैनल-अक़वामी (अन्तर्राष्ट्रीय) क़ानून

★ जंग की इजाज़त के बारे में पहला हुक्म किन हालात में नाज़िल हुआ?

सूरा-22 का परिचय

★ जंग के बारे में अहकाम

सूरा-22, आ-38 से 40, हा-78

दस्तूरी क़ानून

★ किस तरह के लोग इताअत के हक़दार नहीं हैं?

सूरा-18, आ-28, हा-29, 30; सूरा-25, आ-52; सूरा-26, आ-151, 152, हा-100

★ इस्लामी रियासत का मक़सद

सूरा-22, आ-41, हा-85

★ इस्लामी रियासत की ज़िम्मेदारियाँ

सूरा-24, आ-55, 56

★ इस्लामी रियासत मुजरिमों को माफ़ कर देने का इख़्तियार नहीं रखती

सूरा-24, आ-2, हा-2, 3

★ शरीअत की हदों को लागू करने का इख़्तियार सिर्फ़ रियासत को है

सूरा-24, हा-2

★ शरीअत की हदों में कमी और बढ़ोतरी करने का

इख़्तियार रियासत को नहीं है
सूरा-24, हा-3

★ क़ानून की निगाह में सब बराबर हैं
सूरा-24, हा-3

★ ज़िम्मियों के साथ इस्लामी रियासत के बरताव की अस्ल हैसियत
सूरा-28, हा-4
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'इस्लामी रियासत' और 'क़ुरआन, सियासी निज़ाम के बारे में उसकी रहनुमाई')

बुनियादी इनसानी हुक़ूक़

★ निजी ज़िन्दगी की हिफ़ाज़त का हक़
सूरा-24, आ-27, 28, हा-25, 27

★ ख़तो-किताबत की राज़दारी का हक़
सूरा-24, हा-25

★ ख़ुद-इख़्तियारी की हिफ़ाज़त का हक़
सूरा-24, हा-25

★ इनसानी जान की हुरमत
सूरा-25, आ-68

★ क़ानून की निगाह में सबको बराबर होना चाहिए
सूरा-24, हा-3; सूरा-28, आ-4, हा-4

★ जनता के बीच इम्तियाज़ी सुलूक ठीक नहीं है
सूरा-28, आ-4, हा-4 (तफ़सील के लिए देखें— 'क़ानूने-इस्लाम, उसूल')

क़ानूने-शहादत (गवाही)

★ ज़िना के जुर्म के लिए किस तरह का सुबूत दरकार है?
सूरा-24, हा-2

★ ज़िना की गवाही का निसाब
सूरा-24, आ-4, 5, 13

★ क़ज़फ़ के जुर्म में सफ़ाई की शहादत
सूरा-24, हा-6

★ क़ज़फ़ की सज़ा पाए हुए की गवाही क़ाबिले-क़बूल नहीं है
सूरा-24, हा-6

★ मुलज़िम के इक़रारे-जुर्म की हैसियत
सूरा-24, हा-2

★ क़ाज़ी अपनी शहादत की बिना पर फ़ैसला नहीं कर सकता
सूरा-24, हा-2

फ़ौजदारी क़ानून

★ ज़िना के जुर्म के बारे में क़ानून
सूरा-23, हा-7; सूरा-24, हा-2
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'ज़िना')

★ क़ज़फ़ (ज़िना की तोहमत) का क़ानून
सूरा-24, आ-4, 5, हा-6
(तफ़सील के लिए देखें— 'क़ज़फ़')

★ बीवी पर शौहर के इल्ज़ामे-ज़िना के बारे में क़ानून
सूरा-24, आ-6 से 9, हा-7
(तफ़सील के लिए देखें— 'लिआन')

★ जानवर से मुजामअत (सम्भोग) का हराम होना और उसकी सज़ा
सूरा-23, हा-7; सूरा-24, हा-2

★ झूठी शहादत की हुरमत और उसकी सज़ा
सूरा-22, हा-58

★ अगर मर्द अपनी बीवी को ग़ैर-शख़्स के साथ देख ले तो क्या वह उसे क़त्ल कर सकता है?
सूरा-24, हा-7

★ मुस्लिम समाज में जो लोग फ़वाहिश (अश्लीलता) फैलाएँ, वे मुजरिम हैं और उनको सज़ा दी जानी चाहिए
सूरा-24, आ-19, हा-16

★ क़िसास और इन्तिक़ाम के बारे में हिदायतें
सूरा-22, आ-60, हा-104

★ क़ौमे-लूत का अमल जुर्म है
सूरा-23, हा-7

★ इज़ाला-ए-हैसियते-उर्फ़ी का क़ानून
सूरा-24, हा-6

★ हद और ताज़ीर का फ़र्क़
सूरा-24, हा-2, 6

★ हद के हक़दार को माफ़ कर देने का हुकूमत को इख़्तियार नहीं है
सूरा-24, हा-2

★ कोई मुजरिम तौबा करने की बिना पर सज़ा से नहीं बच सकता है
सूरा-24, हा-6

★ शुब्हे का फ़ायदा मुलज़िम को दिया जाएगा
सूरा-24, हा-2, 6, 7

★ माफ़ कर देने में ग़लती करना सज़ा देने में ग़लती करने

से बेहतर है

सूरा-24, हा-2

★ मुजरिमों के बीच उनके समाजी मरतबे के लिहाज़ से इम्तियाज़ करना मना है

सूरा-24, हा-3

★ मुजरिमों को कोड़े लगाने के बारे में हिदायतें

सूरा-24, हा-2

★ मुजरिम को दुश्मनी के जज़्बे से नहीं, बल्कि ख़ैरख़्वाही के जज़्बे से सज़ा देनी चाहिए

सूरा-24, हा-2

★ इस्लाम का सज़ा देने का नज़रिया

सूरा-24, हा-4

★ ज़िम्मियों पर इस्लाम का फ़ौजदारी क़ानून किस हद तक लागू होगा?

सूरा-24, हा-2

दीवानी क़ानून

★ लड़कों और लड़कियों के लिए बालिग़ होने की उम्र

सूरा-24, आ-58, 59, हा-87, 91

ज़ाब्ता-ए-अदालत

★ फ़ैसले में ईमानदारी से ग़लती हो जाने पर कोई पूछ-गच्छ नहीं है

सूरा-21, हा-70

★ क़ाज़ी अपने ज़ाती इल्म की बिना पर मुक़द्दिमे की रूदाद के ख़िलाफ़ फ़ैसला नहीं दे सकता

सूरा-24, हा-2

★ मुक़द्दिमों में ज्यूरी (Jury) या असीसरों (माहिरे-क़ानून (Assessors) से मदद लेना

सूरा-24, हा-6

★ अदालत के समन पर हाज़िर न होना जुर्म है

सूरा-24, आ-47, 48, हा-78

★ अदालत के ग़लत फ़ैसले पर माक़ूल तनक़ीद की जा सकती है

सूरा-24, हा-2

मआशी (आर्थिक) क़ानून

★ वज़न और पैमाने ठीक रखने का हुक्म

सूरा-26, आ-181, 182

★ जुए का हराम होना

सूरा-30 का परिचय

★ हराम माल किसी के पास आ जाए तो क्या करे?

सूरा-30 का परिचय

(तफ़सील के लिए देखें– 'क़ुरआन, मआशी ज़िन्दगी के मुताल्लिक़ उसकी रहनुमाई')

समाजी क़ानून

★ औलाद पर वालिदैन की फ़रमाँबरदारी लाज़िम है, मगर उनके हुक्म से ख़ुदा की नाफ़रमानी जाइज़ नहीं है

सूरा-29, आ-8, हा-11

★ नेक और सालेह ईमानवालों के लिए बदकार मर्दों और औरतों से शादी-ब्याह जाइज़ नहीं है

सूरा-24, हा-5

★ शादी-शुदा ज़िन्दगी की अस्ल रूह

सूरा-30, आ-21

★ क्या बाप की ख़िदमत बेटी का महर क़रार पा सकती है?

सूरा-28, हा-39

★ शादी-शुदा औरत का महर किसी हालत में साक़ित (ख़त्म) नहीं होता

सूरा-24, हा-7

★ मुतआ की शरई हैसियत

सूरा-23, हा-7

★ लौंडियों से तमत्तोअ की इजाज़त

सूरा-23, आ-6, हा-7

★ औरत को ग़ुलाम से तमत्तोअ की इजाज़त नहीं है

सूरा-23, हा-7

★ औरत के सतर (जिस्म के क़ाबिले-शर्म हिस्सों के ढाँकने) के अहकाम

सूरा-23, आ-5

★ परदे के अहकाम

सूरा-24, आ-30, 31, हा-29 से 49; सूरा-24, आ-60, हा-92, 93

(तफ़सील के लिए देखें– 'परदा')

★ इस्तीज़ान के अहकाम

सूरा-24, आ-27, 28, हा-24, 25; सूरा-24 आ-58, 59, हा-89

(तफ़सील के लिए देखें– 'इस्तीज़ान')

● काफ़िर

(देखें– 'कुफ़्र')

● काबा

★ अल्लाह ने काबा के लिए जगह तय की

सूरा-22, आ-26 से 29

★ वह शिर्क के लिए नहीं बल्कि ख़ुदा-ए-वाहिद की बन्दगी के लिए तामीर किया गया था

सूरा-22 का परिचय

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें– 'मक्का')

● क़ारून

सूरा-28, आ-76, 79; सूरा-29, आ-39

★ उसका क़िस्सा

सूरा-28, आ-76 से 82

● क़िताल फ़ी सबीलिल्लाह

★ इसकी इजाज़त का पहला हुक्म किन हालात में नाज़िल हुआ?

सूरा-22 का परिचय

★ इसकी सबसे पहली इजाज़त और उसका मक़सद

सूरा-22, आ-38 से 40, हा-78

★ इसकी मस्लहत

सूरा-22, आ-40, हा-83

● क़ियामत

★ उससे पहले दुनिया में ज़ाहिर होनेवाले वाक़िआत

सूरा-21, आ-96, हा-93; सूरा-27, आ-82, हा-101

★ क़ियामत क़ायम होने की दलीलें

सूरा-30, हा-6

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें– 'आख़िरत, उसकी दलीलें')

★ उसकी कैफ़ियत

सूरा-18, आ-8, हा-5; सूरा-18, आ-47, 48, हा-42, 43; सूरा-18, आ-99 से 101; सूरा-20, आ-102 से 111; सूरा-22, हा-1; सूरा-25, आ-22 से 25; सूरा-27, आ-87 से 90, हा-109, 109अ

★ उस दिन दिल उलटने और दीदे पथराने की नौबत आ जाएगी

सूरा-24, आ-37

★ वह इसी ज़मीन पर क़ायम होगी

सूरा-20, आ-105 से 107

★ उसका वक़्त ख़ुदा के सिवा किसी को मालूम नहीं है

सूरा-20, आ-15

★ उसका वक़्त छिपाकर रखने की मस्लहत

सूरा-20, आ-15, हा-10

★ वह अचानक आएगी

सूरा-21, आ-40; सूरा-22, आ-55

★ वह ज़रूर आकर रहेगी

सूरा-18, आ-21; सूरा-20, आ-15; सूरा-22, आ-7

★ उसे टालने की ताक़त अल्लाह ने किसी को नहीं दी है

सूरा-30, आ-43

★ तमाम इनसानों के ज़िन्दा करके उठाए जाने का दिन

सूरा-19, आ-33; सूरा-23, आ-16; सूरा-26, आ-87; सूरा-30, आ-55, 56

★ मरे हुए इनसान किस तरह यकायक ज़मीन से निकल आएँगे?

सूरा-30, आ-25

★ तमाम इनसानों के एक साथ हाज़िर किए जाने का दिन

सूरा-18, आ-99; सूरा-19, आ-95; सूरा-23, आ-79; सूरा-27, आ-83; सूरा-28, आ-61

★ उस दिन बादशाही अल्लाह ही की होगी

सूरा-22, आ-56

★ हिसाब और जज़ा व सज़ा का दिन

सूरा-21, आ-1, 47; सूरा-22, आ-9; सूरा-26, आ-82; सूरा-29, आ-13

★ यौमे-अज़ीम

सूरा-19, आ-37

★ वह दिन जब मुजरिमों से पूछ-ताछ होगी

सूरा-20, आ-100, 101

★ उस दिन दुनिया-परस्तों और आख़िरत के मुनकिरों के तमाम अमल बेवज़न होंगे

सूरा-18, आ-103 से 105

★ तमाम इख़्तिलाफ़ात की हक़ीक़त खोल दी जाएगी और उनका फ़ैसला कर दिया जाएगा

सूरा-19, आ-36 से 39; सूरा-22, आ-17, 56, 69

★ गुमराह लोग उस वक़्त किस हालत में लाए जाएँगे?

सूरा-20, आ-124 से 126, हा-107

★ काफ़िर अपनी ग़फ़लत पर पछताएँगे

सूरा-21, आ-97

★ मुजरिम एक-दूसरे पर लानत भेजेंगे

सूरा-29, आ-25

★ ज़ालिम कहीं से मदद न पा सकेंगे

सूरा-28, आ-40, 41

★ दोस्तियाँ और रिश्तेदारियाँ ख़त्म हो जाएँगी

सूरा-29, हा-43

★ आख़िरत का इनकार करनेवालों की बदहवासी और बदअंजामी

सूरा-25, आ-11 से 14; सूरा-27, आ-87 से 90, हा-109

★ इसकी हौलनाकियाँ नेक लोगों को ख़ौफ़ज़दा न करेंगी

सूरा-21, आ-101, 102; सूरा-27, आ-89, हा-109

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'आख़िरत')

● कुफ़्र

★ उसकी हक़ीक़त

सूरा-18, हा-39

★ अल्लाह की आयतों को न माननेवाले काफ़िर हैं

सूरा-29, आ-47

★ अल्लाह के लिए औलाद तजवीज़ करनेवाले काफ़िर हैं

सूरा-19, आ-34 से 37

★ एक नबी का इनकार भी कुफ़्र है

सूरा-26, आ-105, हा-75

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'नुबूवत')

★ वह बजाय ख़ुद इनसान के लिए तबाहकुन है चाहे उसके साथ बुरे अमल हों या न हों

सूरा-30, आ-16, हा-21

★ काफ़िर (इनकार करनेवाले) को अल्लाह से दुश्मनी होती है

सूरा-25, आ-55, हा-70

★ काफ़िर ही फ़ासिक़ हैं

सूरा-24, आ-55

★ अल्लाह काफ़िरों को पसन्द नहीं करता

सूरा-30, आ-45

★ काफ़िर फ़लाह नहीं पा सकते

सूरा-23, आ-117; सूरा-28, आ-82

★ कुफ़्र के अख़लाक़ी और ज़ेहनी नतीजे

सूरा-22, हा-77; सूरा-24, आ-39, 40

★ काफ़िरों का अंजाम

सूरा-18, आ-100 से 102, 106; सूरा-19, आ-37; सूरा-21, आ-39; सूरा-22, आ-19 से 22, 25, 57, 71, 72; सूरा-24, आ-57; सूरा-29, आ-52, 68; सूरा-30, आ-44

★ कुफ़्र एहसानफ़रामोशी और नाशुक्री के मानी में

सूरा-26, आ-19; सूरा-27, आ-40; सूरा-29, आ-67; सूरा-30, आ-34, 51, हा-75

● क़ुरआन : इसके नाम

★ क़ुरआन

सूरा-18, आ-54; सूरा-20, आ-2, 113, 114; सूरा-25, आ-30, 32; सूरा-27, आ-1, 6, 76, 92; सूरा-28, आ-82; सूरा-30, आ-58

★ फ़ुरक़ान

सूरा-25, आ-1, हा-2

★ किताबे-मुबीन

सूरा-26, आ-2; सूरा-27, आ-1; सूरा-28, आ-2

★ ज़िक्र

सूरा-20, आ-99; सूरा-21, आ-2, 36, 42, 50; सूरा-25, आ-29; सूरा-26, आ-5

★ इसको अल्लाह ने नाज़िल किया है

सूरा-18, आ-1, 27; सूरा-19, आ-97; सूरा-20, आ-2, 99, 113; सूरा-21, आ-50; सूरा-24 का परिचय; सूरा-24, आ-1, 34; सूरा-25, आ-1, 32, हा-46; सूरा-26, आ-192; सूरा-27, आ-6; सूरा-29, आ-51

★ यह मुहम्मद (सल्ल.) की क्या हैसियत बयान करता है?

सूरा-18, हा-20; सूरा-18, आ-27 से 29, 110; सूरा-21, आ-34; सूरा-22, आ-49; सूरा-24, हा-8, 10; सूरा-25, आ-7, 8, 20, 56

★ इसके अल्लाह के कलाम होने की दलीलें

सूरा-18, 24 के परिचय; सूरा-26, हा-1; सूरा-27, आ-76, हा-93; सूरा-28, आ-43 से 46, हा-64; सूरा-29, आ-48 से 51, हा-88 से 91; सूरा-30 का परिचय

★ इसकी पेशीनगोइयाँ जो हर्फ़-ब-हर्फ़ सच्ची साबित हुईं

सूरा-28, आ-85, हा-108; सूरा-30 का परिचय; सूरा-30, आ-3, 4, हा-1, 3

★ यह वह मोजिज़ा है जो नबी (सल्ल.) को दिया गया

सूरा-20, हा-116; सूरा-26, हा-1

★ इसको रूहुल-अमीन लेकर आया है

सूरा-26, आ-193, हा-120

★ यह साफ़ और फ़सीह अरबी ज़बान में नाज़िल हुआ है

सूरा-20, आ-113; सूरा-26, आ-192 से 195

★ इसके नाज़िल होने का तरीक़ा

सूरा-19, आ-64, हा-39; सूरा-20, आ-114, हा-91; सूरा-25, आ-1, हा-3

★ इसके तदरीज के साथ नाज़िल होने की हिकमत
सूरा-25, आ-32, 33, हा-45, 46

★ इसका अन्दाज़े-तरतीब
सूरा-20, हा-91

★ मक्की सूरतों की तक़सीम ज़माने के लिहाज़ से
सूरा-18 का परिचय

★ कुछ सूरतें मक्की भी हैं और मदनी भी
सूरा-22 का परिचय

★ मक्की सूरतों का अन्दाज़े-बयान
सूरा-23 का परिचय

★ इस्लाम की शुरुआत में इसकी इशाअत किस तरह हुई?
सूरा-25, हा-45

★ यह किस नौइयत की किताब है?
सूरा-25, हा-45

★ यह नाक़ाबिले-फ़हम ज़बान में बात नहीं करता है
सूरा-18, आ-2; सूरा-23, हा-64

★ इसकी आयतें साफ़-साफ़ हक़ीक़त बतानेवाली हैं
सूरा-22, आ-16

★ इसमें कोई बात हक़ और सच्चाई के ख़िलाफ़ नहीं है जिसे मानने में किसी सच्चाई-पसन्द इनसान को हिचकिचाहट हो
सूरा-18, हा-1

★ यह इनसान की फ़ितरत के मुताबिक़ तालीम पेश करता है
सूरा-23, हा-69

★ वह बरकतवाली किताब है
सूरा-21, आ-50

★ यह अहले-ईमान के लिए हिदायत, रहमत और बशारत है
सूरा-27, आ-2, हा-2; सूरा-27, आ-77; सूरा-29, आ-51

★ इसको ज़िक्र किस मानी में कहा गया है?
सूरा-20, आ-99; सूरा-21, आ-2, 50

★ यह किताबे-मुबीन किस मानी में है?
सूरा-26, हा-1; सूरा-27, हा-1

★ इसके नाज़िल होने का मक़सद
सूरा-18, आ-1, 2; सूरा-19, आ-97; सूरा-20, आ-2, 3, हा-1; सूरा-20, आ-113

★ इसकी तिलावत के रूहानी और अख़लाक़ी फ़ायदे
सूरा-29, आ-45, हा-77

★ इसकी तिलावत के आदाब
सूरा-27, हा-72

★ इसके ग़ैर-मामूली कलाम की तासीर
सूरा-21, हा-5

★ यह दिलों को किस तरह मुसख़्ख़र करता था?
सूरा-20 का परिचय

★ इससे किस तरह के लोग फ़ायदा उठा सकते हैं?
सूरा-27, आ-2, 3, हा-3; सूरा-27, आ-80, 81; सूरा-28, हा-100; सूरा-29, आ-51, हा-92

★ इससे कैसे लोग फ़ायदा नहीं उठा सकते हैं?
सूरा-27, आ-80, 81

★ मुजरिमों को इसकी तालीम सख़्त नागवार होती है
सूरा-26, आ-200, हा-125

★ जो कोई इससे मुँह मोड़ेगा, उससे सख़्त पूछ-ताछ होगी
सूरा-20, आ-100, 101, हा-77

★ इसकी दावत क्या है?
सूरा-22, आ-31, 34

★ इसकी दावत वही है जो पिछली तमाम आसमानी किताबों की थी
सूरा-23, हा-65; सूरा-26, आ-196, 197

★ यह तमाम आसमानी किताबों का निचोड़ पेश करता है
सूरा-20, आ-133, हा-116

★ यह आसमानी किताबों की तसदीक़ के लिए आया है न कि रद्द करने के लिए
सूरा-29, हा-83

★ यह पिछले नबियों को उन दाग़ों से पाक करता है जो ख़ुद बनी-इसराईल ने उनपर लगाए हैं
सूरा-20, हा-67, 69; सूरा-27, हा-24, 56; सूरा-28, हा-22, 38

★ बाइबल और तलमूद से इसके इख़्तिलाफ़
सूरा-18, हा-57; सूरा-19, हा-8; सूरा-20, हा-13, 15, 19, 55, 67, 69, 99, 106; सूरा-21, हा-63, 66, 79; सूरा-26, हा-10; सूरा-27, हा-21, 24, 56; सूरा-28, हा-12, 22, 28, 31, 38, 41, 48, 102; सूरा-29, हा-22

★ इसकी तफ़सीर के सही उसूल
सूरा-20, हा-73, 94; सूरा-22, हा-99; सूरा-22, हा-22,

40, 101

★ उसकी तफ़सीर के ग़लत तरीक़े

सूरा-21, हा-62, 75, 99; सूरा-22, हा-101; सूरा-23, हा-7, 45; सूरा-24, हा-2, 33; सूरा-25, हा-71; सूरा-27, हा-23, 24, 28, 36, 45, 48, 52; सूरा-30, हा-57

★ इसको समझने के लिए हदीस से मदद लेने की ज़रूरत

(देखें– 'सुन्नत')

★ मुनकिरीने-हदीस की ग़लत तावीलें

सूरा-30, हा-24, 50, 57

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें– 'इसकी तफ़सीर के ग़लत तरीक़े')

★ इसकी दावत को रोकने के लिए इस्लाम-दुश्मन क्या तरीक़े इख़्तियार कर रहे थे?

(देखें– 'मुहम्मद सल्ल.')

★ इसपर मुख़ालिफ़ों के एतिराज़ और उनके जवाब

सूरा-18, हा-9; सूरा-20, हा-63, 69; सूरा-21, आ-10, हा-12, 95; सूरा-25, आ-5, 6, हा-12; सूरा-25, आ-32, 33, हा-44 से 46; सूरा-26, हा-131

★ इसका मख़सूस तर्ज़े-बयान

सूरा-20, हा-26, 50, 68, 73, 78, 82, 90; सूरा-21, हा-48; सूरा-22 का परिचय; सूरा-22, हा-91; सूरा-22, आ-61 से 65; सूरा-23, हा-14, 45, 49; सूरा-24, हा-62; सूरा-25 का परिचय; सूरा-25, हा-59, 65, 68, 80; सूरा-26, हा-65; सूरा-27, हा-89, 91; सूरा-28 का परिचय; सूरा-28, हा-86, 110; सूरा-29, हा-101; सूरा-30 का परिचय

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें– 'क़िस्से बयान करने में इसका अन्दाज़े-बयान')

★ इसके इस्तिदलाल का तरीक़ा

सूरा-18 का परिचय; सूरा-22, हा-9; सूरा-23 का परिचय; सूरा-23, हा-11, 74, 75; सूरा-27 का परिचय; सूरा-27, आ-59, 60, हा-72, 73, 83, 86

★ यह इनसान की अक़्ल और फ़िक्र से अपील करता है

सूरा-19, आ-41 से 45; सूरा-21, आ-10, हा-12; सूरा-21, आ-24, हा-24; सूरा-21, आ-67; सूरा-22, आ-45, 46, 70; सूरा-23, आ-68, हा-64, 65; सूरा-23, आ-79, 80, 84, 85, 88, 89, 115; सूरा-24, आ-41 से 44; सूरा-25, आ-45 से 50, 54; सूरा-26, आ-28, 72, 73, 112, 113; सूरा-27, आ-52, 62, 64, 80, 81; सूरा-28, आ-60, 61, 71, 78; सूरा-29, आ-35, 43, 61 से 63, 67; सूरा-30, आ-9, 21, 22, 23, 28, 30, 52, 53

★ यह क़ियास और गुमान के बजाय इल्मी दलीलों पर अपने रवैये की बुनियाद रखने की इनसान को दावत देता है

सूरा-18, आ-1 से 5, 15; सूरा-22, आ-3, 8, 9; सूरा-23, आ-70, 71

★ यह मुशाहिदे और तजरिबे से हक़ीक़त को पहचानने की दावत देता है

सूरा-20, आ-53, 54; सूरा-22, आ-18; सूरा-23, आ-78 से 80, 84 से 89; सूरा-24, आ-43, 44; सूरा-25, आ-45 से 50; सूरा-26 का परिचय; सूरा-26, हा-3; सूरा-26, आ-7 से 9; सूरा-27, आ-60 से 69, 86; सूरा-28, आ-71, 72; सूरा-30, आ-7 से 9, 20 से 27

★ कायनात के निज़ाम और कायनात की तख़लीक़ (पैदाइश) के बारे में इसका बयान

सूरा-21, आ-16, 19, 20, 22, 30 से 33; सूरा-22, आ-65; सूरा-23, आ-17, 18; सूरा-25, आ-45 से 50, 59, 61, 62; सूरा-29, आ-44; सूरा-30, आ-8, 22, 24, 25, 46, 48

★ इनसान की तख़लीक़ के बारे में इसका बयान

(देखें– 'इनसान')

★ मज़हबों की असलियत के बारे में इसका बयान

(देखें– 'इस्लाम' और 'दीन')

★ इसका फ़लसफ़ा-ए-तारीख़

सूरा-20, हा-80, 92; सूरा-21, आ-7 से 9, हा-11; सूरा-21, आ-92, 93, हा-91; सूरा-22, आ-40, हा-83; सूरा-22, आ-45 से 48, हा-93, 101; सूरा-23 का परिचय; सूरा-23, आ-12 से 14, 27, 28, 39 से 44; सूरा-25, आ-37 से 40, हा-65; सूरा-26 का परिचय; सूरा-26, हा-73; सूरा-27 का परिचय; सूरा-27, आ-51 से 53, हा-66, 86; सूरा-29, हा-1, 73; सूरा-30, हा-8

★ इसका फ़लसफ़ा-ए-अख़लाक़

सूरा-18 का परिचय; सूरा-18, आ-28 से 48; सूरा-20, हा-94; सूरा-23, आ-55 से 59; सूरा-24, आ-3, हा-5; सूरा-24, आ-26

★ इसकी अख़लाक़ी तालीमात

(देखें– 'अख़लाक़')

★ इसका इल्मुन्नफ़्स

सूरा-22, आ-46, हा-91; सूरा-24, हा-22

★ तहज़ीब और तमद्दुन के बारे में इसकी रहनुमाई

सूरा-26, आ-128, 129, हा-91; सूरा-26, आ-149, हा-99

★ समाज-सुधार के बारे में इसका प्रोग्राम

(देखें– 'इस्लाम')

★ मआशी ज़िन्दगी के बारे में इसकी रहनुमाई

सूरा-25, आ-67, हा-83; सूरा-26, आ-128, 129, हा-91; सूरा-26, आ-149, 181 से 183; सूरा-28, आ-57 से 61, हा-84; सूरा-28, आ-76 से 82, हा-100, 101; सूरा-30, आ-36 से 39, हा-56 से 60

★ सियासी निज़ाम के बारे में इसकी रहनुमाई

सूरा-26, आ-131, 151, 152; सूरा-27, आ-32, 33, हा-38; सूरा-28, आ-4, 38 से 42, हा-52

★ क़िस्से बयान करने में इसका अन्दाज़े-बयान

सूरा-18, आ-17, 18, हा-12; सूरा-18, आ-22, हा-23; सूरा-26, आ-23, हा-19; सूरा-26, आ-52, हा-41; सूरा-26, आ-117, हा-85; सूरा-27, आ-24 से 26, हा-31; सूरा-27, आ-38, हा-43; सूरा-27, आ-41, हा-50; सूरा-28, आ-7 से 9, हा-9

★ इसमें क़िस्से किस मक़सद के लिए बयान किए गए हैं?

सूरा-18, 19, 21 के परिचय; सूरा-21, हा-49, 87; सूरा-23, 26 के परिचय; सूरा-26, हा-122; सूरा-27, 29 के परिचय; सूरा-29, हा-72

★ आदम और हव्वा (अलैहि.) का क़िस्सा बयान करने का मक़सद

सूरा-18, हा-47; सूरा-20 का परिचय; सूरा-20, हा-92, 95, 106

★ नूह (अलैहि.) का क़िस्सा बयान करने का मक़सद

सूरा-26, हा-81 से 83; सूरा-29, हा-21

★ सालेह (अलैहि.) का क़िस्सा बयान करने का मक़सद

सूरा-27, आ-45 से 53, हा-58, 60, 63, 64, 66

★ इबराहीम (अलैहि.) का क़िस्सा बयान करने का मक़सद

सूरा-19 का परिचय; सूरा-19, आ-41 से 50, हा-26, 28; सूरा-21, हा-53, 54; सूरा-26, हा-50, 73

★ मूसा (अलैहि.) और बनी-इसराईल का क़िस्सा बयान करने का मक़सद

सूरा-20 का परिचय; सूरा-20, हा-55, 62; सूरा-26, हा-7, 41; सूरा-27 का परिचय

★ क़ारून का क़िस्सा बयान करने का मक़सद

सूरा-28, हा-94

★ ख़ज़िर का क़िस्सा बयान करने का मक़सद

सूरा-18 का परिचय

★ शुऐब (अलैहि.) का क़िस्सा बयान करने का मक़सद

सूरा-26, हा-116

★ दाऊद और सुलैमान (अलैहि.) के क़िस्से बयान करने का मक़सद

सूरा-21, हा-70; सूरा-27, हा-18

★ ज़ुल-क़रनैन (अलैहि.) का क़िस्सा बयान करने का मक़सद

सूरा-18 का परिचय

★ यह्या (अलैहि.) का क़िस्सा बयान करने का मक़सद

सूरा-19 का परिचय

★ ईसा (अलैहि.) का क़िस्सा बयान करने का मक़सद

सूरा-19 का परिचय; सूरा-19, हा-21 से 25

★ असहाबे-कह्फ़ का क़िस्सा बयान करने का मक़सद

सूरा-18 का परिचय; सूरा-18, हा-31

● **क़ुरआनी क़िस्से**

★ आदम और हव्वा (अलैहि.) का क़िस्सा

सूरा-18, आ-50; सूरा-20, आ-115 से 124

★ नूह (अलैहि.) का क़िस्सा

सूरा-21, आ-76, 77; सूरा-23, आ-23 से 30; सूरा-26, आ-105 से 120; सूरा-29, आ-14, 15

★ हूद (अलैहि.) का क़िस्सा

सूरा-23, आ-31 से 41, हा-34; सूरा-26, आ-123 से 139

★ सालेह (अलैहि.) का क़िस्सा

सूरा-26, आ-141 से 158; सूरा-27, आ-45 से 53

★ इबराहीम (अलैहि.) का क़िस्सा

सूरा-19, आ-41 से 50; सूरा-21, आ-51 से 73, हा-66; सूरा-26, आ-69 से 89; सूरा-29, आ-16 से 18, 24 से 27

★ लूत (अलैहि.) का क़िस्सा

सूरा-21, आ-71, 74, 75; सूरा-26, आ-160 से 173; सूरा-27, आ-54 से 58; सूरा-29, आ-26, हा-44; सूरा-29, आ-28 से 35

★ शुऐब (अलैहि.) का क़िस्सा
सूरा-26, आ-176 से 189, हा-117; सूरा-29, आ-36, 37
★ मूसा (अलैहि.) का क़िस्सा
सूरा-19, आ-51 से 53; सूरा-20 का परिचय; सूरा-20, आ-9 से 98; सूरा-23, आ-45 से 49; सूरा-26, आ-10 से 66; सूरा-27, आ-7 से 14; सूरा-28 का परिचय; सूरा-28, आ-3 से 42
★ ख़ज़िर और मूसा (अलैहि.) का क़िस्सा
सूरा-18, आ-60 से 82
★ क़ारून का क़िस्सा
सूरा-28, आ-76 से 82
★ दाऊद (अलैहि.) का क़िस्सा
सूरा-21, आ-78 से 80; सूरा-27, आ-15
★ सुलैमान (अलैहि.) का क़िस्सा
सूरा-21, आ-78 से 82; सूरा-27, आ-15 से 44
★ अय्यूब (अलैहि.) का क़िस्सा
सूरा-21, आ-83, 84, हा-79
★ यूनुस (अलैहि.) का क़िस्सा
सूरा-21, आ-87, 88
★ यह्या (अलैहि.) का क़िस्सा
सूरा-19, आ-2 से 15, हा-12, 15; सूरा-21, आ-89, 90
★ ईसा (अलैहि.) का क़िस्सा
सूरा-19, आ-16 से 36; सूरा-21, आ-91; सूरा-23, आ-50; सूरा-24, हा-2
★ असहाबे-कह्फ़ का क़िस्सा
सूरा-18, आ-9 से 26
● **क़ुरआनी दुआएँ**
★ असहाबे-कह्फ़ की दुआ
सूरा-18, आ-10
★ हज़रत मूसा (अलैहि.) की दुआ फ़िरऔन के दरबार में जाने से पहले
सूरा-20, आ-25 से 28
★ हज़रत मूसा (अलैहि.) की दुआ क़िबती को क़त्ल करने के बाद
सूरा-28, आ-16
★ हज़रत मूसा (अलैहि.) की दुआ मिस्र से मदयन जाते हुए
सूरा-28, आ-21
★ हज़रत मूसा (अलैहि.) की दुआ मदयन पहुँचकर
सूरा-28, आ-24
★ इल्म में इज़ाफ़े की दुआ
सूरा-20, आ-114
★ हज़रत अय्यूब (अलैहि.) की दुआ बीमारी की हालत में
सूरा-21, आ-83
★ हज़रत यूनुस (अलैहि.) की दुआ मछली के पेट में
सूरा-21, आ-87
★ शैतान की उकसाहटों से पनाह माँगने की दुआ
सूरा-23, आ-97, 98
★ ख़ुदा के सालेह बन्दों की दुआ
सूरा-23, आ-109, 118
★ इबादुर्रहमान की दुआ
सूरा-25, आ-74
★ हज़रत इबराहीम (अलैहि.) की दुआ अपनी क़ौम को दावते-तौहीद देने के बाद
सूरा-26, आ-83 से 87
★ हज़रत सुलैमान (अलैहि.) की दुआ च्यूँटी का कलाम सुनने के बाद
सूरा-27, आ-19
● **क़ुरआनी मिसालें**
★ दुनिया-परस्त और ख़ुदा-परस्त की मिसाल
सूरा-18, आ-32 से 44
★ दुनिया की ज़िन्दगी की मिसाल
सूरा-18, आ-45
★ अल्लाह के कलिमों के बेपायाँ होने की मिसाल
सूरा-18, आ-109
★ अल्लाह के नूरे-कायनात होने की मिसाल
सूरा-24, आ-35
★ काफ़िरों और मुनाफ़िक़ों के नूरे-हिदायत से महरूम होने की मिसाल
सूरा-24, आ-39, 40
★ अल्लाह के सिवा दूसरों को वली और कारसाज़ बनानेवालों की मिसाल
सूरा-29, आ-41
● **क़ुरा-अन्दाज़ी**
★ किन सूरतों में जाइज़ है?
सूरा-24 का परिचय
● **क़ुरबानी**

★ क़ुरबानी अल्लाह की तमाम शरीअतों में दीन का एक हुक्म रही है
सूरा-22, आ-34, हा-64
★ क़ुरबानी का आम हुक्म
सूरा-22, आ-36 से 37
★ इसकी दीनी मस्लहतें
सूरा-22, हा-64, 68, 70, 73 से 75
★ अल्लाह को ख़ून और गोश्त नहीं, बल्कि तक़्वा पहुँचता है
सूरा-22, आ-37
★ हज के मौक़े पर जानवर ज़िब्ह करने के अहकाम
सूरा-22, आ-28, 29, हा-49, 50; सूरा-22, आ-33
★ ऊँट की क़ुरबानी का तरीक़ा
सूरा-22, आ-36, हा-69
● क़ुरैश
★ अरब में उनकी हैसियत
सूरा-28, हा-80
★ मक्की दौर में इस्लाम का रास्ता रोकने के लिए उनकी कोशिशें और उनकी नाकामी के असबाब
सूरा-18, 19 के परिचय; सूरा-21, आ-5, 6, हा-5, 7, 8; सूरा-22, हा-81
★ उनकी इस्लाम की मुख़ालफ़त के असबाब
सूरा-18, हा-27; सूरा-21, हा-5; सूरा-25, आ-11, हा-21; सूरा-26 का परिचय; सूरा-27, हा-60; सूरा-28, आ-57, हा-80, 94
★ इस्लाम को न मानने के लिए उनके बहाने और वजहें
सूरा-26, हा-81, 83; सूरा-28 का परिचय; सूरा-28, आ-57, हा-80 से 84, 94, 97, 98, 101, 108
★ दावते-इस्लामी के मुक़ाबले में उनकी हठधर्मी
सूरा-25, आ-7 से 9; सूरा-26 का परिचय; सूरा-26, आ-198, 199, हा-124
★ मुसलमानों को इस्लाम से फेरने के लिए उनकी चालें
सूरा-29, आ-12, 13, हा-20
★ उन्होंने हिजरत के बाद मुसलमानों के लिए हज का रास्ता बन्द कर दिया था
सूरा-22 का परिचय; सूरा-22, आ-25, हा-54
★ वे ख़ुद मानते थे कि नबी (सल्ल.) पर जो इलज़ामात वे रखते हैं वे झूठे हैं
सूरा-21, हा-7

(ख़)

● ख़ज़िर
सूरा-18 का परिचय; सूरा-18, आ-65, हा-59
★ क्या वे इनसान थे?
सूरा-18, हा-60
● ख़त्मे-नुबूवत
सूरा-21, हा-1
● ख़िलाफ़त
★ इसके मानी
सूरा-24, हा-83; सूरा-27, हा-77
★ अल्लाह ने इनसान को ज़मीन की ख़िलाफ़त दी है
सूरा-27, आ-62
★ इस दुनिया में इनसान को सिर्फ़ आज़माइशी ख़िलाफ़त दी गई है, न कि मुस्तक़िल ख़िलाफ़त
सूरा-20, हा-106
★ सिर्फ़ मोमिनीन सालिहीन ही हक़ीक़ी ख़िलाफ़त के हामिल होते हैं
सूरा-24, हा-83
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'विरासते-ज़मीन')
★ ईमानवालों को ख़िलाफ़त दिए जाने का वादा और उसकी शर्तें
सूरा-24, आ-55, 56
★ रसूल की इताअत इस्लामी ख़िलाफ़त की लाज़मी शर्त है
सूरा-26, आ-56
● ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन
★ उनकी ख़िलाफ़त पर क़ुरआन की तसदीक़ की मुहर
सूरा-24, हा-83
● ख़ुशूअ
★ इसके मानी और हक़ीक़त
सूरा-23, हा-3
● ख़ुसरान (नुक़सान)
★ दुनिया और आख़िरत में ख़ुसरान कैसे लोगों के लिए है?
सूरा-22, आ-11, हा-17; सूरा-29, आ-52

(ग/ग़)

● ग़ज़वा-ए-अहज़ाब
★ उसका ज़माना और हालात
सूरा-24 का परिचय

● ग़ज़वा-ए-बनी-मुस्तलिक़

★ उसका ज़माना और हालात

सूरा-24 का परिचय

● ग़ज़ब

★ अल्लाह का ग़ज़ब किन लोगों पर है?

सूरा-20, आ-81, 86

● गुनाह

★ वे बड़े-बड़े गुनाह जिनपर सख़्त पूछ-ताछ होनी है

सूरा-24, हा-2, 7, 14; सूरा-24, आ-23; सूरा-25, आ-68

● गुमराही

(देखें— 'ज़लालत')

● गुलामी

★ गुलामों के बारे में अहकाम

सूरा-24, आ-31, हा-44; सूरा-24, आ-32, 51; सूरा-24, आ-33, हा-57 से 59

★ लौंडी से तमत्तो की इजाज़त

सूरा-23, आ-6, हा-7

★ इस्लाम में गुलामी का मसला किस तरह हल किया गया है?

सूरा-24, आ-33, हा-55 से 58

● ग़ैब

(देखें— 'इल्मे-ग़ैब')

(ज/ज़)

● ज़करिय्या (अलैहि.)

सूरा-19, आ-2; सूरा-21, आ-89

● ज़कात

★ इसके मानी की तहक़ीक़

सूरा-23, हा-5

★ ज़कात पाकीज़गी के मानी में

सूरा-19, आ-13

★ ज़कात तज़किया के मानी में

सूरा-23, आ-4, हा-5

★ माल की ज़कात अदा करने का हुक्म

सूरा-22, आ-78

★ इसका अदा करना ईमान लानेवालों की लाज़मी ख़ूबी है

सूरा-27, आ-2, 3

★ यह तमाम नबियों के दीन में फ़र्ज़ थी

सूरा-19, आ-31, 55; सूरा-21, आ-73

★ इसका इन्तिज़ाम इस्लामी रियासत के बुनियादी मक़सदों में से है

सूरा-22, आ-41; सूरा-24, आ-56

★ दुनिया में डूबकर ज़कात से ग़फ़लत न करनेवाले ही हिदायत पाते हैं

सूरा-24, आ-37

★ इससे माल घटता नहीं, बढ़ता है

सूरा-30, आ-39

● जज़ा और सज़ा

★ अल्लाह के यहाँ जज़ा और सज़ा किस क़ायदे पर आधारित है?

सूरा-27, आ-89, 90; सूरा-29, आ-7

★ नेकियों की जज़ा देने में अल्लाह का क़ानून बुराई की सज़ा से मुख़्तलिफ़ है

सूरा-28, आ-84; सूरा-29, आ-7, हा-10

★ अल्लाह के यहाँ क़ुसूरवार के सिवा किसी को ख़तरा नहीं है

सूरा-27, आ-10, 11, हा-14, 15

★ अल्लाह के फ़रमानों को बदलने की सख़्त सज़ा

सूरा-18, आ-27

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'अज्र')

● ज़बीहा

★ इस बात की दलील कि सिर्फ़ वही जानवर हलाल है जिसे ज़िब्ह करते वक़्त अल्लाह का नाम लिया गया हो

सूरा-22, आ-28, हा-49

● ज़बूर

सूरा-21, आ-105, हा-99

● जब्र और क़द्र

(देखें— 'तक़दीर')

● जन्नत

★ उसकी कैफ़ियत

सूरा-18, आ-31; सूरा-19, आ-61, 62; सूरा-25, आ-15, 16, 75, 76, हा-95; सूरा-29, आ-58

★ जन्नत की ज़िन्दगी और दुनिया की ज़िन्दगी का फ़र्क़

सूरा-20, हा-98, 102, 106

★ वे ख़ूबियाँ जो आदमी को जन्नत का हक़दार बनाती हैं

सूरा-23 का परिचय; सूरा-23, आ-2 से 11

★ ख़ुदा की नाफ़रमानी करनेवाले के लिए जन्नत में रहना

ग़ैर-मुमकिन है
सूरा-20, आ-117, हा-97
★ जन्नत कैसे लोगों के लिए है?
सूरा-18, आ-30, 31, 107, 108; सूरा-19, आ-60 से 63; सूरा-22, आ-56; सूरा-25, आ-15, 75, 76; सूरा-26, आ-90; सूरा-29, आ-58; सूरा-30, आ-15
★ उसके क़ियाम की अबदियत (उसका हमेशा के लिए क़ायम रहना)
सूरा-18, आ-2, 3, 107, 108; सूरा-20, आ-76; सूरा-21, आ-102; सूरा-23, आ-11; सूरा-25, आ-15, 16, 76; सूरा-29, आ-58,
★ वहाँ आदम और हव्वा का क़ियाम और इम्तिहान
सूरा-20, आ-117 से 122
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'फ़िरदौस')
● **ज़लालत (गुमराही)**
★ ज़लालत की वजहें
सूरा-18, आ-21, हा-21; सूरा-18, आ-35, 36, 54, 55; सूरा-19, आ-42, 59, हा-35; सूरा-19, आ-69, 77; सूरा-20, आ-131; सूरा-21 का परिचय; सूरा-21, हा-99; सूरा-22, आ-8, 46, हा-91, 125; सूरा-23 का परिचय; सूरा-23, हा-1; सूरा-23, आ-24, 25, 33 से 38, 46 से 48, हा-43; सूरा-23, आ-55, 56, हा-50, 86; सूरा-25, आ-11, हा-21; सूरा-25, आ-41 से 43; सूरा-26, हा-24; सूरा-26, आ-111, हा-81, 83; सूरा-26, आ-152, हा-100; सूरा-26, आ-185 से 187; सूरा-27, हा-83; सूरा-28, आ-57, 77, 78, हा-101; सूरा-30, आ-33
★ ज़लाले-बईद (गुमराही की इन्तिहा) क्या है?
सूरा-22, आ-12
★ ख़्वाहिशे-नफ़्स की पैरवी करनेवाला सबसे बड़ा गुमराह है
सूरा-28, आ-50
★ ख़ुदा की दी हुई हिदायत से मुँह मोड़ने का बुरा नतीजा
सूरा-20, आ-124
★ गुमराहों के लिए दुनिया में भी रुसवाई है
सूरा-22, आ-8, 9
★ ज़लालत नादानिस्तगी के मानी में
सूरा-26, आ-20
● **जहन्नम**
★ उसकी हक़ीक़त और कैफ़ियत
सूरा-18, आ-29; सूरा-20, आ-74, हा-51; सूरा-21, आ-100; सूरा-22, आ-19 से 22; सूरा-23, आ-104; सूरा-25, आ-11, 12; सूरा-29, आ-55
★ वह ठहरने की बहुत बुरी जगह है
सूरा-25, आ-66
★ हर इनसान उसपर से गुज़रेगा
सूरा-19, आ-71, हा-44
★ वहाँ पैरुओं और पेशवाओं का एक-दूसरे से झगड़ा
सूरा-26, आ-96 से 101, हा-69
★ वह कैसे लोगों के लिए है?
सूरा-18, आ-29, 100 से 102, 106; सूरा-19, आ-66 से 70; सूरा-20, आ-74; सूरा-21, आ-29, 39 से 41, हा-75; सूरा-21, आ-98; सूरा-22, आ-3, 4, 8, 9, 19, 51; सूरा-23, आ-103; सूरा-24, आ-57; सूरा-25, आ-11, 34; सूरा-26, आ-91 से 95; सूरा-27, आ-90; सूरा-29, आ-25, 54, 68
★ उसमें हमेशा रहना होगा
सूरा-20, आ-100, 101; सूरा-21, आ-98, 99; सूरा-23, आ-103; सूरा-25, आ-69
● **जादू**
★ इसकी हक़ीक़त
सूरा-20, आ-56 से 58, हा-30, 37, 41, 42, 44; सूरा-23, हा-82
★ इसकी तासीर
सूरा-26, हा-36
★ जाहिलियत के ज़माने में इसके बारे में लोगों के तसव्वुरात
सूरा-26, हा-101
★ मोजिज़े और जादू का फ़र्क़
सूरा-26, हा-7, 29; सूरा-26, आ-45 से 48; सूरा-27, हा-17; सूरा-28, हा-49
★ नबी और जादूगर में फ़र्क़
सूरा-26, हा-33
● **ज़िना**
★ इसके गुनाह और बदी होने पर हर ज़माने में आम इत्तिफ़ाक़ रहा है
सूरा-24, हा-2
★ इसके अख़लाक़ी और इज्तिमाई नुक़सान
सूरा-24, हा-2

★ इसकी तारीफ़, इसके जुर्म होने और इसकी सज़ा के मसले में इस्लामी क़ानून और ग़ैर-इस्लामी क़ानून का इख़्तिलाफ़
सूरा-24, हा-2

★ इसके जुर्म होने के बारे में इस्लामी क़ानून का नुक़्ता-ए-नज़र
सूरा-24, हा-2

★ इसकी रोकथाम के लिए इस्लाम की इसलाही तदबीरें
सूरा-24, हा-2, 59

★ क़हबागिरी (जिस्म-फ़रोशी या वेश्यावृत्ति) की रोकथाम
सूरा-24, हा-59

★ इसके बारे में इस्लामी क़ानून का तदरीजी इरतिक़ा
सूरा-24, हा-2

★ इसका हराम होना
सूरा-24, हा-84

★ इसकी सज़ा
सूरा-24, आ-2, हा-2

★ इसकी सख़्त सज़ा किस मस्लहत से रखी गई है?
सूरा-24, हा-2

★ शादीशुदा ज़ानी और ग़ैर-शादीशुदा ज़ानी का फ़र्क़
सूरा-24, हा-2

★ शादीशुदा ज़ानी की सज़ा सुन्नत के मुताबिक़
सूरा-24, हा-2

★ तौरात के क़ानून में रज्म की सज़ा
सूरा-24, हा-2

★ उन लोगों के ख़याल की ग़लती जो रज्म को क़ुरआन के ख़िलाफ़ समझते हैं
सूरा-24, हा-2

★ क्या ज़िम्मी ज़ानी को रज्म की सज़ा दी जा सकती है?
सूरा-24, हा-2

★ किस काम पर ज़िना के जुर्म का इतलाक़ होगा और किस पर नहीं होगा?
सूरा-24, हा-2

★ फ़ेले-मुबाशरत (संभोग-क्रिया) से कमतर मिलाप की सूरत में शरीअत का हुक्म
सूरा-24, हा-2

★ किस हालत में एक शख़्स को ज़िना का मुजरिम क़रार दिया जाएगा?
सूरा-24, हा-2

★ ज़िना बिल-जब्र (बलात्कार) की सूरत में जिसपर जब्र किया गया हो वह सज़ा का हक़दार नहीं है
सूरा-24, हा-2, 59

★ ज़ानी और ज़ानिया पर सिर्फ़ इस्लामी हुकूमत के तहत ही हद (सज़ा) जारी की जा सकती है
सूरा-24, हा-2

★ ज़िना की सज़ा ग़ैर-मुस्लिमों पर जारी होगी या नहीं?
सूरा-24, हा-2

★ ज़ानी के लिए जुर्म का इक़रार शरीअत के मुताबिक़ लाज़िम नहीं है
सूरा-24, हा-2

★ ज़िना के जुर्म की ख़बर हाकिमों तक पहुँचाना शरीअत के मुताबिक़ लाज़िम नहीं है
सूरा-24, हा-2, 5

★ हुकूमत तक ख़बरा पहुँच जाने के बाद मुजरिम को माफ़ नहीं किया जा सकता
सूरा-24, हा-2

★ यह जुर्म क़ाबिले-राज़ीनामा नहीं है
सूरा-24, हा-2

★ इस्मत का मुआवज़ा माली तावान की सूरत में अदा नहीं किया जा सकता
सूरा-24, हा-2

★ ज़िना के जुर्म की कोई सज़ा जुर्म के सुबूत के बग़ैर नहीं दी जा सकती
सूरा-24, हा-2

★ जुर्म के सुबूत के बग़ैर सिर्फ़ शुबहे की बुनियाद पर किसी को सज़ा नहीं दी जा सकती चाहे शुब्हे कितने ही मज़बूत हों
सूरा-24, हा-2, 7

★ जुर्म को साबित करने की शर्तें
सूरा-24, हा-2

★ क्या सिर्फ़ हमल का पाया जाना औरत को मुजरिम साबित करने के लिए काफ़ी शहादत या क़रीना है?
सूरा-24, हा-2

★ अगर गवाहों की गवाही से जुर्म साबित न हो तो क्या गवाहों पर क़ज़फ़ का मुक़द्दिमा क़ायम किया जा सकता है?
सूरा-24, हा-2

★ मुलज़िम का इक़रार किस सूरत में क़बूल किया जाएगा?
सूरा-24, हा-2
★ अगर मुलज़िम अपने इक़रार से फिर जाए
सूरा-24, हा-2
★ हामिला औरत पर ज़िना की सज़ा जारी करने का मसला
सूरा-24, हा-2
★ इस्लामी शरीअत खोज लगा-लगाकर मुजरिमों को नहीं पकड़ना चाहती
सूरा-24, हा-2, 7
★ वह सज़ा जो जुर्म के सुबूत के बाद ज़ानी और ज़ानिया को दी जाएगी
सूरा-24, हा-2 से 5
★ सज़ा खुले-आम दी जानी चाहिए
सूरा-24, हा-4
★ कोड़े लगाने का तरीक़ा और उसकी शर्तें
सूरा-24, हा-2
★ मुजरिम को सज़ा देने के बाद उसके साथ इज़्ज़त का बरताव
सूरा-24, हा-2
★ ज़ानी और ज़ानिया का आपस में निकाह
सूरा-24, हा-5
★ ज़िना के मुक़द्दिमों में नबी (सल्ल॰) और ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन के फ़ैसलों की मिसालें
सूरा-24, हा-2, 5, 6
★ अगर मर्द अपनी बीवी को ग़ैर-शख़्स के साथ लगा देख ले तो क्या उसे क़त्ल कर सकता है?
सूरा-24, हा-7
★ जानवर से संभोग (मुबाशरत) की सज़ा
सूरा-24, हा-2
● ज़िन्दगी
★ इसकी शुरुआत पानी से हुई
सूरा-21, आ-30, हा-29
● ज़िन्दगी बाद मौत
★ मुर्दा इनसान क़ियामत के दिन ज़िन्दा किए जाएँगे
सूरा-19, आ-33, 66 से 68; सूरा-20, आ-55; सूरा-26, आ-81
★ दोबारा ज़िन्दा किए जाने की कैफ़ियत
सूरा-20, आ-124, हा-106; सूरा-30, आ-25, हा-37
★ इसके इमकान और होने की दलीलें
सूरा-18 का परिचय; सूरा-22, आ-5, हा-9; सूरा-27, आ-64, हा-80; सूरा-29, आ-19, हा-32
★ असहाबे-कह्फ़ का क़िस्सा उसके होने की दलीलों में से है
सूरा-18, आ-21, हा-18
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'आख़िरत' और 'क़ियामत')
● जिन्न
★ इनकी हक़ीक़त
सूरा-18, आ-50, हा-48
★ हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) के लिए मुसख़्ख़र किए जानेवाले जिन्न कौन थे?
सूरा-21, आ-82, हा-75; सूरा-27, आ-17, हा-23; सूरा-27, आ-39, 40 हा-45
● जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह
★ इसके मानी
सूरा-22, हा-128
★ मुजाहदे के मानी
सूरा-29, आ-6, हा-8
★ कुफ़्फ़ार (विधर्मियों) से जिहादे-कबीर करने का मतलब
सूरा-25, आ-52, हा-67
★ वह मुजाहदा करनेवालों ही के लिए फ़ायदेमन्द है, अल्लाह को इसकी ज़रूरत नहीं
सूरा-29, आ-6, हा-9
★ अल्लाह अपनी राह में मुजाहदा करनेवालों की ख़ुद रहनुमाई करता है
सूरा-29, आ-69, हा-107
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'क़िताल फ़ी सबीलिल्लाह')
● जुर्म
★ शिर्क करनेवाले मुजरिम हैं
सूरा-18, आ-52, 53; सूरा-19, आ-83 से 95
★ अल्लाह की भेजी हुई नसीहत से मुँह मोड़नेवाले मुजरिम हैं
सूरा-20, आ-99 से 103
★ नबियों की दावत से बेपरवाई करनेवाले मुजरिम हैं
सूरा-30, आ-55
★ नबियों की मुख़ालफ़त करनेवाले मुजरिम हैं
सूरा-25, आ-21 से 31; सूरा-30, आ-47
★ अल्लाह की आयतों को झुठलानेवाले मुजरिम हैं

सूरा-30, आ-10 से 12

★ आख़िरत को न माननेवाले मुजरिम हैं

सूरा-25, आ-21, 22; सूरा-27, आ-69, हा-86

★ गुमराह करनेवाले पेशवा मुजरिम हैं

सूरा-26, आ-96 से 99

★ क़ुरआन मुजरिमों को सख़्त नागवार गुज़रता है

सूरा-26, आ-200, हा-125

★ मुजरिमों की कभी मदद नहीं करनी चाहिए

सूरा-28, आ-17, हा-26

★ मुजरिमों का बुरा अंजाम

सूरा-18, आ-53; सूरा-19, आ-86; सूरा-20, आ-74, 100 से 102; सूरा-30, आ-10, 47, 55 से 57

★ तौबा से जुर्मों की सज़ा दुनिया की अदालत में माफ़ नहीं की जा सकती है

सूरा-24, हा-6

● ज़ुल-क़रनैन

सूरा-18 का परिचय; सूरा-18, आ-82 से 98

★ इस क़िस्से के बयान करने का मक़सद

सूरा-18, हा-72

★ वह कौन था?

सूरा-18, हा-62

● ज़ुल-किफ़्ल (अलैहि.)

सूरा-21, आ-85, हा-81

● ज़ुल्म

★ ज़ुल्म क़ुसूर और गुनाह के मानी में

सूरा-21, आ-87; सूरा-27, आ-11; सूरा-28, आ-16

★ ख़ुदा की ज़मीन पर अपनी मिलकियत का दावा करनेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-28, आ-39, 40

★ ख़ुदा की हिदायत को छोड़कर नफ़्स की ख़ाहिशात की पैरवी करनेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-28, आ-50; सूरा-30, आ-29

★ फ़ह्श (अश्लील) काम करनेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-29, आ-31

★ रहज़नी करनेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-29, आ-31

★ अल्लाह पर झूठ घड़नेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-18, आ-15; सूरा-29, आ-68

★ हक़ को झुठलानेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-29, आ-68

★ रसूलों की दावत पर ईमान न लानेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-23, आ-28, 41

★ अल्लाह के नबियों को झुठलाना बहुत बड़ा ज़ुल्म है

सूरा-22, आ-45; सूरा-25, आ-27, 37; सूरा-27, आ-52; सूरा-29, आ-40, हा-72

★ अल्लाह की आयतों को झुठलानेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-27, आ-84, 85

★ अल्लाह की आयतों से मुँह मोड़नेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-18, आ-57

★ अल्लाह की नेमतों का जवाब कुफ़्र और शिर्क से देनेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-18, आ-37, हा-39

★ शिर्क करनेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-25, आ-19; सूरा-27, आ-44; सूरा-30, आ-29

★ अल्लाह को छोड़कर शैतान को सरपरस्त बनानेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-18, आ-50

★ अल्लाह के सिवा दूसरों की बन्दगी करनेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-22, आ-71

★ ख़ुदाई में शरीक होने का दावा करनेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-21, आ-29

★ फ़िरऔन और उसकी क़ौम ज़ालिम थी

सूरा-26, आ-10, 11, हा-8

★ अल्लाह का इनकार करनेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-18, आ-29; सूरा-29, आ-49

★ हक़ीक़त के ख़िलाफ़ अक़ीदा रखनेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-21, आ-64

★ हक़ीक़त को झुठलाना ज़ुल्म है

सूरा-27, आ-14

★ हक़ के ख़िलाफ़ दुश्मनाना रवैया रखनेवाले ज़ालिम हैं

सूरा-22, आ-53

★ क़ुरआन को इनसानी तसनीफ़ (रचना) कहना ज़ुल्म है

सूरा-25, आ-4

★ मुनाफ़िक़ ज़ालिम हैं

सूरा-24, आ-47 से 50

★ ज़ालिमों के लिए फ़लाह नहीं है

सूरा-28, आ-37

★ ज़ालिमों का बुरा अंजाम

सूरा-18, आ-29, 59; सूरा-19, आ-71, 72; सूरा-20, आ-111; सूरा-21, आ-11 से 15; सूरा-22, आ-25, 45, 48; सूरा-23, आ-41; सूरा-28, आ-40 से 42, 59

★ अल्लाह बन्दों पर ज़ुल्म करनेवाला नहीं है

सूरा-18, आ-49; सूरा-20, आ-112; सूरा-22, आ-10; सूरा-23, आ-62, हा-57; सूरा-26, आ-209; सूरा-29, आ-40; सूरा-30, आ-9

(त)

● तक़दीर

★ इस अक़ीदे की मानवीयत

सूरा-18 का परिचय

★ हर चीज़ की हद और मिक़दार मुक़र्रर कर दी गई है जिससे कोई चीज़ आगे नहीं बढ़ सकती

सूरा-25, आ-2, हा-8

★ अल्लाह की मर्ज़ी के मुक़ाबले में इनसानी तदबीरें कारगर नहीं होती हैं

सूरा-18, आ-24, हा-24; सूरा-18, आ-39, 40; सूरा-22, आ-15, हा-22; सूरा-29, आ-4, हा-5

★ अल्लाह की मर्ज़ी किस तरह काम करती है?

सूरा-18 का परिचय; सूरा-18, हा-57; सूरा-22, आ-65

★ जब तक अल्लाह न चाहे किसी के किए कुछ नहीं हो सकता है

सूरा-18, आ-24, हा-24; सूरा-18, आ-39

★ हर शख़्स और क़ौम की अच्छी और बुरी तक़दीर की डोर अल्लाह के हाथ में है

सूरा-27, आ-47

★ वही हर चीज़ की तक़दीर मुक़र्रर करनेवाला है

सूरा-25, आ-2

★ अव्वल और आख़िर तमाम इख़्तियार उसी के हाथ में है

सूरा-18, आ-39, हा-40; सूरा-28, आ-70; सूरा-30, आ-4

★ अल्लाह ने हर एक के लिए फ़ैसले का एक दिन मुक़र्रर कर रखा है

सूरा-20, आ-129

★ कोई क़ौम अल्लाह की दी हुई मुहलत ख़त्म होने से पहले न हलाक हो सकती है, न उसके बाद बाक़ी रह सकती है

सूरा-23, आ-43

★ रिज़्क़ की कमी-बेशी अल्लाह के इख़्तियार में है

सूरा-28, आ-82; सूरा-29, आ-62; सूरा-30, आ-37

★ ज़िन्दगी और मौत उसके इख़्तियार में है

सूरा-22, आ-66; सूरा-23, आ-80; सूरा-26, आ-81; सूरा-30, आ-40

★ तमाम मामलात का अंजामे-कार उसी के हाथ में है

सूरा-22, आ-41, 76

★ जिसे वह रुसवा कर दे, उसे कोई इज़्ज़त देनेवाला नहीं है

सूरा-22, आ-18

★ फ़तह व कामरानी उसी के बख़्शने से हासिल होती है

सूरा-30, आ-5

★ वह जिस चीज़ का हुक्म दे, वह होकर रहती है

सूरा-19, आ-35

★ अल्लाह की तरफ़ से इनसान का आज़माइश में डाला जाना

सूरा-19; आ-83; सूरा-20, आ-85, हा-106; सूरा-21, हा-99; सूरा-23, आ-30, हा-33, 91; सूरा-30, आ-55

★ जो चाहे ईमान लाए और जो चाहे कुफ़्र करे

सूरा-18, आ-29

★ हक़ का इनकार करनेवालों पर शैतान मुसल्लत कर दिए जाते हैं

सूरा-19, आ-83

★ अल्लाह शैतानों को फ़ित्नापरदाज़ी का मौक़ा क्यों देता है?

सूरा-22, आ-53, 54, हा-101

★ अल्लाह जिसे चाहे हिदायत देता है

सूरा-22, आ-16; सूरा-24, आ-46

★ अल्लाह की तौफ़ीक़ के बग़ैर कोई हिदायत नहीं पा सकता है

सूरा-18, आ-17

★ जिसे वह हिदायत दे वही हिदायत पानेवाला है और जिसे वह भटका दे उसे कोई सीधा रास्ता नहीं दिखा सकता है

सूरा-18, आ-17; सूरा-24, आ-40; सूरा-30, आ-29

★ अपने नूर के इदराक की तौफ़ीक़ वही जिसे चाहता है देता है

सूरा-24, आ-35, हा-66

★ इनसान अपने बलबूते पर पाक नहीं हो सकता, पाकीज़गी अल्लाह ही के फ़ज़्ल से नसीब होती है

सूरा-24, आ-21, हा-18

★ अल्लाह की बाँट अन्धी बाँट नहीं है, बल्कि वह हिदायत की अहलियत रखनेवालों को हिदायत देता है
सूरा-24, हा-66

★ कैसे लोगों को हिदायत की तौफ़ीक़ नहीं दी जाती है?
सूरा-18, आ-57

★ कैसे लोगों के दिलों पर मुहर लगा दी जाती है?
सूरा-30, आ-58, 59

★ अल्लाह उन ज़ालिमों को हिदायत नहीं देता जो नफ़्स की ख़ाहिशात की पैरवी करते हैं
सूरा-28, आ-50

★ आख़िरत का इनकार करनेवालों के लिए अल्लाह उनके आमाल को ख़ुशनुमा बना देता है
सूरा-27, आ-4, हा-5

● **तक़वा**

★ इसका मतलब
सूरा-22, आ-1

★ वह सिर्फ़ ख़ुदा से होना चाहिए
सूरा-23, आ-52

★ अल्लाह के यहाँ अस्ल मक़बूलियत इसी की है
सूरा-22, आ-37, हा-73

★ इसके तक़ाज़े
सूरा-22, आ-32, हा-61; सूरा-23, आ-23; सूरा-26, आ-11, हा-9; सूरा-26, आ-106, हा-76; सूरा-26, आ-110, हा-80; सूरा-26, आ-126, 131, 144, 150 से 152, 163, 179; सूरा-29, आ-16, हा-27; सूरा-30, आ-31, हा-49

★ मुत्तक़ियों की सिफ़ात और उनका रवैया
सूरा-21, आ-49

★ मुत्तक़ियों के लिए ख़ुशख़बरी
सूरा-19, आ-97

★ तक़वा का नेक अंजाम
सूरा-19, आ-60 से 63, 71, 72, 85; सूरा-20, आ-132; सूरा-26, आ-90; सूरा-28, आ-83

● **तलमूद**

★ उसके हवाले
सूरा-19, हा-33; सूरा-27, हा-23, 47; सूरा-28, हा-5, 9, 12, 16, 19, 34, 41, 95, 96
(क़ुरआन और तलमूद के इख़्तिलाफ़ात के लिए देखें—'क़ुरआन, बाइबल और तलमूद से इसके इख़्तिलाफ़ात')

● **तवक्कुल (भरोसा)**

★ इसकी हक़ीक़त
सूरा-26, आ-217 से 220, हा-137; सूरा-29, आ-59, हा-98

★ तवक्कुल सिर्फ़ ज़िन्दा ख़ुदा पर होना चाहिए, जो मरनेवाला नहीं है
सूरा-25, आ-58

★ वह उस हस्ती पर होना चाहिए जो सब पर ग़ालिब और रहीम है
सूरा-26, आ-217

★ हक़-परस्त इनसान को सिर्फ़ अल्लाह ही पर भरोसा करना चाहिए
सूरा-27, आ-79

★ अल्लाह के भरोसे पर राहे-हक़ में इस्तिक़ामत दिखानेवालों का नेक अंजाम
सूरा-29, हा-95

● **तवाफ़**
सूरा-22, आ-26, 29

● **तसबीह**

★ नमाज़ के मानी में
सूरा-20, आ-130, हा-111; सूरा-24, आ-36, हा-68; सूरा-30, आ-17, 18, हा-23, 24

★ लफ़्ज़ तसबीह के मानी
सूरा-30, हा-23

★ सुब्हानल्लाह का मतलब
सूरा-27, हा-11

★ अल्लाह उससे बालातर है कि कोई उसका बेटा हो
सूरा-19, आ-35, हा-22; सूरा-21, आ-26

★ अल्लाह उन बातों से पाक है जो मुशरिक उसकी तरफ़ मंसूब (सम्बद्ध) करते हैं
सूरा-21, आ-22; सूरा-23, आ-91; सूरा-28, आ-68; सूरा-30, आ-40

★ अल्लाह ही की तसबीह होनी चाहिए और वही इसका हक़दार है
सूरा-25, आ-58; सूरा-27, आ-8; सूरा-30, आ-17, 18

★ उसी की तसबीह फ़रिश्ते करते हैं
सूरा-21, आ-19, 20

★ उसी की तसबीह ज़मीन और आसमान की हर चीज़ करती है
सूरा-24, आ-41
★ हज़रत दाऊद (अलैहि०) के साथ पहाड़ों और समन्दरों का तसबीह करना
सूरा-21, आ-79
● **ताज़ीर**
★ हद और ताज़ीर का फ़र्क़
सूरा-24, हा-2
● **तूरे-सीना**
सूरा-23, आ-20, हा-21
● **तौबा**
★ इसकी हक़ीक़त
सूरा-20, हा-92; सूरा-20, आ-122, हा-103, 104; सूरा-27, हा-15
★ कैसे लोगों की तौबा क़बूल होती है?
सूरा-20, हा-92, 103
★ इसके अख़लाक़ी, समाजी और आख़िरत में मिलनेवाले नतीजे
सूरा-19, आ-60 से 62; सूरा-20, आ-82, हा-60; सूरा-24, हा-2, 6; सूरा-25, आ-70, 71, हा-86 से 88; सूरा-27, आ-11, हा-15; सूरा-28, आ-67
★ जुर्म (अपराध) के मामले में इसका असर क्या है और क्या नहीं है?
सूरा-24, हा-6
★ इससे दुनियावी सज़ा माफ़ न होने की वजह
सूरा-24, हा-6
● **तौरात**
★ इसकी तारीफ़
सूरा-21, आ-48, हा-50; सूरा-28, आ-43, 44
★ क़ुरआन और तौरात एक-दूसरे के मददगार हैं
सूरा-28, आ-48, 49, हा-69
★ यह कब नाज़िल हुई?
सूरा-20, हा-58; सूरा-23, आ-49; सूरा-28, आ-43, हा-59
● **तौहीद (एकेश्वरवाद)**
★ इसकी तशरीह और इसकी हक़ीक़त
सूरा-20, आ-50, हा-22
★ वही हक़ है और शिर्क बातिल है
सूरा-22, आ-62, हा-109
★ मुशरिकों के तसव्वुरे-माबूद और इस्लाम के तसव्वुरे-इलाह का फ़र्क़
सूरा-26, हा-24
★ सिर्फ़ अल्लाह ही इबादत का हक़दार क्यों है?
सूरा-26, आ-78 से 82, हा-56 से 59
★ इस बात का सुबूत कि तौहीद का अक़ीदा इनसान की फ़ितरत में शामिल है
सूरा-30, आ-30, हा-45
★ तौहीद की दलीलें
सूरा-18, आ-51, हा-49; सूरा-20, आ-50, 53, 54, हा-23, 27; सूरा-21, आ-19 से 25; सूरा-22, आ-6, 7, हा-9, 33, 125 से 127; सूरा-23, आ-17 से 22, 53, हा-48; सूरा-23, आ-78 से 92; सूरा-25, आ-2, हा-8; सूरा-25, आ-45 से 50, हा-65; सूरा-25, आ-53, 54, हा-68, 69; सूरा-26, आ-7, 8, हा-5, 23, 49; सूरा-26, आ-77 से 82; सूरा-27, आ-25, 26, हा-34; सूरा-27, आ-60 से 65, हा-72, 73, 76, 83, 105; सूरा-29, आ-44, हा-76; सूरा-29, आ-61, हा-99; सूरा-29, आ-65; सूरा-30 का परिचय; सूरा-30, आ-19 से 28, 33, 46 से 50
(वाज़ेह रहे कि तौहीद की दलीलें ही अल्लाह की हस्ती की दलीलें भी हैं)
★ तौहीद के अक़ीदे पर ईमान लाने के तक़ाज़े
सूरा-18, हा-50; सूरा-22, आ-34, 35, हा-68; सूरा-22, 77, 78, हा-134; सूरा-23, आ-57 से 60
★ अल्लाह की रुबूबियत तसलीम करने के तक़ाज़े
सूरा-26, आ-24, 26, 28, हा-24

(द)

● **दहरियत (ख़ुदा के वुजूद का इनकार)**
★ इसकी तरदीद की दलीलें
सूरा-27, आ-60, हा-73; सूरा-27, आ-64, हा-80, 82
(तफ़सील के लिए देखें— 'तौहीद उसकी दलीलें' और 'शिर्क और उसकी तरदीद की दलीलें')
★ दुनिया के हमेशा-हमेश होने का नज़रिया बातिल और सरासर झूठा है
सूरा-30, आ-8, हा-6

★ दहरियत के असरात इनसानी अख़लाक़ पर
सूरा-30, आ-43

● दाऊद (अलैहि.)

★ उनका क़िस्सा
सूरा-21, आ-78 से 80, हा-71 से 73; सूरा-27, आ-15, 16

★ उनके लिए लोहे को नर्म किए जाने का मतलब
सूरा-21, हा-72

● दाब्बतुल-अर्ज़
सूरा-27, आ-82, हा-101

● दावते-हक़

★ इसका सही तरीक़ा
(देखें– 'हिकमते-तबलीग़')

★ यह काम करनेवाला अल्लाह का मददगार है
सूरा-22, हा-84

★ इसमें सब्र की अहमियत और ज़रूरत
सूरा-19, आ-65, हा-40; सूरा-20 का परिचय

★ इसमें नमाज़ की अहमियत
सूरा-20 का परिचय

★ इसके लिए किस तरह काम करना चाहिए?
सूरा-25, आ-52, हा-67

★ इसके कारकुनों को ख़ुदा-परस्ती की राह में क्या कुछ करना चाहिए?
सूरा-29, आ-56 से 60, हा-94 से 99

★ इस काम की मुश्किलों का मुक़ाबला करने के लिए ताक़त हासिल करने के ज़रिए
सूरा-29, आ-45

★ यह किन मंज़िलों से गुज़रकर कामयाबी की मंज़िल तक पहुँचती है?
सूरा-18, आ-13 से 16, 21, हा-23, 57; सूरा-19 का परिचय; सूरा-19, हा-28; सूरा-19, आ-96, हा-53

★ इस राह में काम करनेवालों को अल्लाह की हिदायत और मदद किस तरह हासिल होती है?
सूरा-25, हा-43; सूरा-29, हा-107

★ हक़ की दावत देनेवाले में क्या सिफ़ात होनी चाहिएँ?
सूरा-30, आ-60, हा-85

★ उसको सबसे पहले अपने क़रीबी लोगों को दावत देनी चाहिए
सूरा-26, आ-214, हा-135

★ उसको दीन में मुदाहनत व मुसालहत पर आमादा न होना चाहिए
सूरा-18, आ-28, 29, हा-31

★ उसकी निगाह में सिर्फ़ उन लोगों की अहमियत होनी चाहिए जो तालिबे-हक़ हों
सूरा-18, आ-28, हा-28

★ उसे लोगों के समाजी मर्तबे को नहीं बल्कि क़बूले-हक़ की आमादगी को देखना चाहिए
सूरा-26, आ-111 से 115, हा-83

★ उसका सुलूक अपने पैरोओं के साथ कैसा होना चाहिए?
सूरा-26, आ-114, 215

● दीन

★ इस्लाम के दीने-फ़ितरत होने का मफ़हूम
सूरा-30, आ-30, हा-45

★ तमाम इनसानों का दीन एक था और ये मज़हब इसकी बिगड़ी हुई सूरतें हैं
सूरा-21, आ-92, 93, हा-91; सूरा-30, आ-31, 32

★ ख़ुदा की तरफ़ से एक ही दीन आया है और मुख़्तलिफ़ मज़हब लोगों के मनगढ़न्त हैं
सूरा-23 का परिचय

★ तमाम नबियों का दीन एक ही था, बाद में लोगों ने मुख़्तलिफ़ मज़हब बना लिए
सूरा-23, आ-52, 53, हा-47, 48

★ शरीअतों के इख़्तिलाफ़ के बावजूद तमाम नबियों का दीन एक ही रहा है
सूरा-22, हा-64, 117
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें– 'नुबूवत')

★ सिर्फ़ इबादतों का नाम ही दीन नहीं है, बल्कि क़ानून भी दीन है
सूरा-24, आ-2, हा-3

★ क़ानूने-इलाही के मुताबिक़ अपने मामलों का फ़ैसला न करानेवाले मोमिन नहीं हैं
सूरा-24, आ-47 से 52

★ ख़ुदा के दीन में कोई तंगी नहीं है
सूरा-22, आ-78, हा-130

★ दीन में तफ़रिक़े की मनाही
सूरा-30, आ-31, 32

★ दीन की पैरवी किस तरह होनी चाहिए?

सूरा-30, आ-30, 31, हा-50; सूरा-30, आ-43

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें– 'इस्लाम')

● दुआ

★ दीन में इसकी अहमियत

सूरा-25, आ-77, हा-96

★ अल्लाह परेशानहाल की दुआ सुनता और उसकी तकलीफ़ दूर करता है

सूरा-27, आ-62

★ हरामख़ोरी के साथ दुआ क़बूल नहीं होती

सूरा-23, हा-46

★ मुशरिक के लिए मग़फ़िरत की दुआ नहीं की जा सकती

सूरा-26, हा-63

★ ग़ैरुल्लाह से दुआ माँगने की ग़लती

सूरा-22, आ-73, 74

★ अल्लाह के सिवा दूसरों को पुकारने का बुरा अंजाम

सूरा-22, आ-12

● दुनिया

★ दुनिया की ज़िन्दगी की हक़ीक़त और दुनियावी ज़िन्दगी का इस्लामी तसव्वुर

सूरा-18, आ-7, 8, हा-5; सूरा-18, आ-45, 46 हा-57

★ यह दारुल-जज़ा नहीं बल्कि दारुल-इम्तिहान है

सूरा-20, हा-50

★ दुनियावी ज़िन्दगी दरअस्ल वह वक़्त है जो इम्तिहान के लिए इनसान को दिया गया है

सूरा-19, आ-84, हा-51; सूरा-20, हा-106; सूरा-21, आ-111, हा-103; सूरा-23, आ-54, हा-49

★ दुनिया में ज़िन्दगी बसर करने का ग़लत तरीक़ा

सूरा-18, आ-103 से 106

★ ख़ुदा की हिदायत से मुँह मोड़नेवाले की दुनिया भी ख़राब होती है

सूरा-20, आ-124, हा-105

★ दुनिया कोई खेल का मैदान नहीं है, बल्कि एक संजीदा निज़ाम है

सूरा-21, आ-16 से 18, हा-15 से 17

★ वह किस मानी में लह्व-लइब (खेल-तमाशा) है?

सूरा-29, हा-102

★ यहाँ जो कुछ किसी को मिलता है आज़माइश के लिए मिलता है

सूरा-21, हा-99

★ यहाँ लाज़िमन हर शख़्स और हर क़ौम का इम्तिहान हो रहा है

सूरा-23, आ-30, हा-33

★ यहाँ आदमी का इम्तिहान किस तरह लिया जा रहा है?

सूरा-23, हा-91

★ दुनिया की ज़िन्दगी में इम्तिहान किस चीज़ का है?

सूरा-20, हा-106; सूरा-21, आ-35, हा-38

★ दुनिया में इनसान के इम्तिहान का वक़्त मौत के साथ ख़त्म हो जाता है

सूरा-30, आ-57, हा-83

★ यहाँ की बदहाली ख़ुदा का मग़ज़ूब होने की अलामत नहीं है

सूरा-23 का परिचय; सूरा-23, हा-1

★ दुनिया-परस्त लोग हमेशा हक़ और बातिल का मेयार दुनिया की ख़ुशहाली ही को समझते रहे हैं

सूरा-26, आ-111, हा-81, 83

★ दुनियावी नेमतों को नादान लोग हमेशा से मक़बूले-बारगाहे-ख़ुदावन्दी होने की अलामत समझते हैं

सूरा-19, आ-73, हा-45; सूरा-28, आ-78, हा-97, 101

★ अल्लाह दुनियावी ख़ुशहाली पर इतरानेवालों को पसन्द नहीं करता

सूरा-28, आ-76

★ दुनियावी नेमतें इस बात की अलामत नहीं हैं कि नेमत पानेवाला अल्लाह का महबूब है, बल्कि ये सिर्फ़ आज़माइश का सामान हैं

सूरा-18, आ-34 से 38; सूरा-20, आ-131; सूरा-21, हा-99; सूरा-23 का परिचय; सूरा-23, हा-1; सूरा-23, आ-56, हा-50

★ ग़ाफ़िल इनसान दुनियावी ज़िन्दगी के ज़ाहिरी पहलू से किस तरह धोखा खाते हैं?

सूरा-18, हा-57; सूरा-19, आ-73, हा-45; सूरा-21, आ-44, हा-44; सूरा-23, आ-64, हा-59; सूरा-25, आ-18; सूरा-26, आ-136, 137, हा-93; सूरा-26, आ-146, हा-97; सूरा-27, हा-5, 90; सूरा-28, आ-57, हा-80; सूरा-28, आ-79, 80, हा-100; सूरा-30 का परिचय; सूरा-30, आ-7

★ नादान लोग हमेशा यह समझते रहे हैं कि दीने-हक़ की पैरवी इख़्तियार करने से आदमी की दुनिया बरबाद हो जाती है
सूरा-28, आ-57, हा-80

★ दुनिया की ख़ुशहाली में मस्त रहनेवाले लोग हमेशा नबियों को झुठलाते रहे हैं
सूरा-23, आ-33

★ दुनिया में ज़ाहिर होनेवाले नतीजे हक़ और बातिल के मेयार नहीं बन सकते हैं
सूरा-23, आ-55 से 57; सूरा-25, हा-21

★ आख़िरत से बेपरवाह होकर दुनियावी ज़िन्दगी पर मुत्मइन हो जाने का अंजाम
सूरा-18, आ-103 से 106

★ दुनिया पर आख़िरत को तरजीह देने की वजहें
सूरा-28, आ-60, 61, हा-84; सूरा-29, आ-64, हा-103

★ दीन का यह मुतालबा नहीं है कि आदमी दुनिया छोड़ दे
सूरा-23, हा-46; सूरा-28, हा-84; सूरा-28, आ-77

★ क़ियामत के दिन मुजरिमों को अपनी दुनिया की ज़िन्दगी कुछ दिनों की महसूस होगी
सूरा-20, आ-103, 104, हा-80; सूरा-23, आ-113; सूरा-30, आ-55, हा-81

★ मरने के बाद फिर दुनिया में पलटकर आना नामुमकिन है
सूरा-21, आ-95, हा-92; सूरा-23, आ-99, 100, हा-91, 98

● **दोज़ख़**
(देखें— 'जहन्नम')

(न)

● **नज्जाशी**
(देखें— 'हिजरते-हबशा')

● **नमाज़**

★ तमाम नबियों के दीन में फ़र्ज़ थी
सूरा-19, आ-31, 54, 55; सूरा-20, आ-14; सूरा-21, आ-73

★ इसकी अहमियत इस्लामी ज़िन्दगी के निज़ाम में
सूरा-30, हा-50

★ इसका मक़सद
सूरा-20, आ-14, हा-9

★ इसके अख़लाक़ी और रूहानी फ़ायदे
सूरा-19, हा-35; सूरा-20 का परिचय; सूरा-20, हा-9, 115; सूरा-29, आ-43, हा-78

★ इसके तर्क कर देने के अख़लाक़ी नतीजे
सूरा-19, हा-35, 36

★ ईमान लानेवालों की लाज़िमी सिफ़त इक़ामते-सलात (नमाज़ क़ायम करना) है
सूरा-27, आ-2, 3, हा-3

★ नमाज़ क़ायम करनेवालों के लिए बशारत (ख़ुशख़बरी)
सूरा-22, आ-34, 35

★ नमाज़ की इक़ामत (क़ायम करना) इस्लामी हुकूमत के बुनियादी मक़सदों में से है
सूरा-22, आ-41; सूरा-24, आ-56

★ दीन की दावत के काम में इससे किस क़िस्म की ताक़त मिलती है?
सूरा-20, आ-130, हा-112

★ पाँच वक़्त की नमाज़ का फ़र्ज़ होना
सूरा-30, आ-17, 18, हा-24

★ इक़ामते-सलात (नमाज़ क़ायम करने) का हुक्म
सूरा-22, आ-77, 78; सूरा-30, आ-31, हा-50

★ नमाज़ के औक़ात
सूरा-20, आ-130; सूरा-24, आ-58; सूरा-30, आ-17, 18, हा-24

★ नमाज़ के मसले और उसके आदाब
सूरा-20, हा-9; सूरा-23, हा-3, 9

★ जूते पहनकर नमाज़ पढ़ने की इजाज़त
सूरा-20, हा-7

★ नमाज़ में ख़ुशूअ और ख़ुज़ूअ का मसला
सूरा-23, हा-3

★ इसकी हिफ़ाज़त का मतलब और उसका हुक्म
सूरा-23, हा-9

★ दुनियावी कारोबार में नमाज़ को न भूलनेवाले ही हिदायत पाते हैं
सूरा-24, आ-36, 37

★ क्या नमाज़ में क़ुरआन के बजाय उसका तर्जमा पढ़ा जा सकता है?
सूरा-26, हा-122

★ नमाज़ के बारे में हदीस का इनकार करनेवालों के ग़लत तसव्वुरात की तरदीद

सूरा-30, हा-24, 50

● **नसारा**

सूरा-22, आ-17

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'ईसाइयत')

● **नामा-ए-आमाल (कर्मपत्र)**

सूरा-18, आ-49; सूरा-19, आ-79; सूरा-20, आ-52, हा-107; सूरा-21, आ-94; सूरा-23, आ-62, हा-56

● **निफ़ाक़**

(देखें— 'मुनाफ़िक़')

● **नुबूवत (पैग़म्बरी)**

★ लफ़्ज़ नबी के मानी

सूरा-19, हा-30

★ रसूल और नबी का इस्तिलाही फ़र्क़

सूरा-19, हा-30

★ नबियों और रसूलों की तादाद

सूरा-19, हा-30

★ नबियों के नस्ब

सूरा-19, हा-33

★ नुबूवत के हक़ में अक़्ली दलीलें

सूरा-20, हा-23

★ तमाम नबी इनसान थे

सूरा-21 का परिचय; सूरा-21, आ-7, हा-49, 87; सूरा-23, आ-24, हा-26; सूरा-23, आ-33, 47; सूरा-25, आ-20

★ इनसानों के लिए इनसानों को नबी मुक़र्रर करने की मस्लहत

सूरा-25, हा-30

★ गुमराह लोगों को हमेशा यह ग़लतफ़हमी रही कि इनसान कभी रसूल नहीं हो सकता है

सूरा-21 का परिचय; सूरा-26, आ-154, 186

★ जाहिल इनसान हमेशा से इनसान को नबी और नबी को इनसान मानने से इनकार करते रहे हैं

सूरा-23, आ-24, हा-26; सूरा-23, आ-33, 34, 47

★ नबियों का ख़ुदाई में कोई हिस्सा न था

सूरा-21, हा-87; सूरा-22, हा-124

★ नबी का काम अज़ाब देना नहीं, बल्कि ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचा देना है

सूरा-18, आ-56, हा-53; सूरा-26, हा-114

★ नबी का काम लोगों को मोमिन बना देना नहीं है

सूरा-18, हा-4; सूरा-24, आ-54; सूरा-28, आ-56; सूरा-29, आ-18; सूरा-30 आ-52, हा-76, 77

★ नबी की रिश्तेदारी किसी को ख़ुदा की पकड़ से नहीं बचा सकती

सूरा-26, हा-113; सूरा-26, आ-214, हा-135; सूरा-29, आ-32, हा-56

★ नबी के रिश्तेदारों के लिए दीन में कोई इम्तियाज़ी हैसियत नहीं है

सूरा-26, आ-214, हा-135

★ नबी की सच्चाई कैसे परखी जा सकती है?

सूरा-23, आ-68, 69, हा-66; सूरा-23, आ-72, हा-70; सूरा-25, आ-56, 57; सूरा-26, आ-107, हा-77; सूरा-26, आ-109, हा-79; सूरा-26, आ-125 से 127, 143 से 145, 162 से 164, 178 से 180

★ नबी और जादूगर का फ़र्क़

सूरा-26, हा-33 से 35

★ अल्लाह नबी क्यों भेजता है?

सूरा-20, आ-134; सूरा-28, आ-47, हा-66

★ अल्लाह किसी क़ौम को हलाक नहीं करता जब तक कि एक रसूल के ज़रिए से उसको ख़बरदार न कर दे

सूरा-28, आ-59, हा-83

★ नुबूवत इनसानियत के लिए अल्लाह की रहमत है

सूरा-25, हा-65

★ इनसानियत के लिए इसकी हैसियत वही है जो ज़मीन के लिए बारिश की है

सूरा-30, आ-48 से 50, हा-73

★ नबियों को वह इल्म दिया जाता है जो आम इनसानों को हासिल नहीं होता

सूरा-19, आ-43

★ नबी के करिश्मे वहबी (दिए हुए) होते हैं न कि ज़ाती

सूरा-21, आ-78, 79, हा-70

★ नबी को हुक्म और इल्म अता करने का मतलब

सूरा-19, हा-10; सूरा-21, हा-67; सूरा-26, हा-17, 60

★ नबियों का पैदाइश से पहले ही नुबूवत के लिए नामज़द किया जाना

सूरा-19, आ-5 से 7, 21; सूरा-20, आ-38 से 42

★ नबियों को नुबूवत किस तरह दी जाती है?

सूरा-20 का परिचय; सूरा-27, आ-8, 9, हा-10

★ नबी हमेशा आला दर्जे की सिफ़ातवाले होते हैं
सूरा-20, हा-15

★ नबियों के औसाफ़ (ख़ूबियाँ)
सूरा-19, आ-12 से 14, 30 से 32, 41, 47 से 57; सूरा-21, आ-72 से 75, हा-66; सूरा-21, आ-78 से 80, हा-70, 77; सूरा-21, आ-85, 86, 90

★ नबी अपनी उम्मत पर गवाह होता है
सूरा-22, आ-78

★ नबियों के काम की हिफ़ाज़त अल्लाह फ़रमाता है
सूरा-22, आ-52

★ नबियों के साथ अल्लाह का ख़ास मामला
सूरा-21, हा-49, 87

★ नबी की मीरास तक़सीम नहीं होती है
सूरा-27, हा-20

★ नबियों के भेजे जाने का मक़सद
सूरा-18, आ-56, हा-53

★ नबी किस मानी में सिर्फ़ अल्लाह की तरफ़ दावत देते थे?
सूरा-23, हा-41

★ नबियों की दावत महदूद मानी में मज़हबी न थी, बल्कि पूरी ज़िन्दगी के निज़ाम को बदलने के लिए थी
सूरा-26, आ-24 से 28, हा-24; सूरा-26, आ-151, 152, हा-100

★ नबी शिर्क के ख़िलाफ़ कितना सख़्त जज़्बा रखते थे?
सूरा-20, आ-86 से 98

★ दीन के निज़ाम में नबी की हैसियत
सूरा-24, हा-2; सूरा-25, हा-78

★ रसूल को रसूल मान लेने का लाज़िमी तक़ाज़ा उसकी इताअत और पैरवी है
सूरा-24, आ-62, 63, हा-98, 102; सूरा-26, आ-108, हा-78; सूरा-26, आ-126, 131, 144, 150, 163, 179

★ जो शख़्स नबी की इताअत और पैरवी न करे उसके लिए महज़ नबी को नबी मान लेना फ़ायदेमन्द नहीं है
सूरा-26, आ-216, हा-136

★ रसूल की इताअत क़बूल किए बग़ैर आदमी मोमिन नहीं हो सकता
सूरा-24, आ-47 से 50, हा-76 से 80

★ रसूल की इताअत के बग़ैर आदमी को हिदायत नसीब नहीं होती
सूरा-19, आ-43 से 45; सूरा-24, आ-54

★ रसूल की इताअत से मुँह मोड़नेवाले फ़ितने में मुब्तला होकर रहते हैं
सूरा-24, आ-63

★ आख़िरत में पूछा जाएगा कि रसूलों की दावत का लोगों ने क्या जवाब दिया
सूरा-28, आ-65

★ नबी की दावत को रद्द कर देनेवाला बहरहाल पकड़ा जाएगा, जल्दी या कुछ देर से
सूरा-21, आ-109

★ तमाम नबी एक गरोह के लोग हैं और सबका दीन वही इस्लाम था जिसे मुहम्मद (सल्ल.) पेश फ़रमाते हैं, अलबत्ता उनकी शरीअतें मुख़्तलिफ़ थीं
सूरा-20, हा-10; सूरा-21 का परिचय; सूरा-21, आ-24, हा-24, 49; सूरा-21, आ-92, 93, हा-91; सूरा-22, आ-67, हा-116; सूरा-22, आ-78, हा-132; सूरा-23, आ-23, 32, 51, हा-45, 48; सूरा-26, हा-50, 73; सूरा-27, हा-37, 44, 53, 56; सूरा-28, हा-73; सूरा-29, आ-16, 36

★ तमाम नबियों के पैरोओं का नाम मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) था
(देखें— 'मुस्लिम')

★ हर नबी के पैरो उस वक़्त तक मुस्लिम क़रार पाते हैं, जब तक वे दूसरे नबी का इनकार न कर दें
सूरा-30, हा-1

★ एक रसूल का इनकार तमाम रसूलों का इनकार है
सूरा-25, आ-37, हा-50; सूरा-26, आ-105, हा-75; सूरा-26, आ-123, 141, 176

★ नबियों की उम्मतों में बिगाड़ किस तरह आया है?
सूरा-18, आ-21, हा-20, 21; सूरा-19 का परिचय; सूरा-19, आ-59, हा-35, 36; सूरा-20 का परिचय; सूरा-20, आ-86 से 98

★ नबियों को झुठलानेवालों के औसाफ़
सूरा-23, आ-33, हा-35; सूरा-23, आ-46, हा-40

★ मुजरिम हर ज़माने में नबियों के दुश्मन रहे हैं
सूरा-25, आ-31

★ हर नबी के आने पर क़ौम में अन्दरूनी मारका बरपा

हुआ है
सूरा-27, आ-45, हा-58
★ हर नबी के आने पर क़ौम आज़माइश में पड़ गई है
सूरा-27, आ-47, हा-61
★ मुख़ालफ़त करनेवालों ने हमेशा नबियों पर इक़्तिदार हासिल करने का इलज़ाम लगाया है
सूरा-20, आ-57, हा-30; सूरा-20, आ-63, हा-37; सूरा-23, आ-24, हा-27, 36; सूरा-26, आ-35
★ नबियों को झुठलानेवालों का अंजाम
सूरा-18, आ-106; सूरा-21, आ-39 से 41; सूरा-22, आ-42 से 45; सूरा-23, आ-39 से 41; सूरा-26, हा-47, 73; सूरा-26 आ-120, 139, 158, हा-106; सूरा-26, आ-172, 173, 189, हा-117; सूरा-27, आ-13, 14, 51, 52; सूरा-28, आ-40 से 42; सूरा-29, आ-14, 34, 37, 39, 40; सूरा-30, आ-47
● **नूह (अलैहि.)**
सूरा-19, आ-58; सूरा-21, आ-86; सूरा-22, आ-42; सूरा-23, आ-23; सूरा-25, आ-37; सूरा-26, आ-105, 106, 116; सूरा-29, आ-14
★ उनका क़िस्सा
सूरा-21, आ-76, 77; सूरा-23, आ-23 से 29; सूरा-26, आ-105 से 120; सूरा-29, आ-14, 15
★ उनकी लम्बी उम्र
सूरा-29, आ-14, हा-22
★ नूह (अलैहि.) की कश्ती इबरत के निशान की हैसियत से बाक़ी रखी गई है
सूरा-29, हा-25

(प)

● **परदा**
★ इसके अहकाम किस तरतीब से नाज़िल हुए हैं?
सूरा-24 का परिचय
★ इसके फ़र्ज़ होने के सुबूत
सूरा-24 का परिचय; सूरा-24, आ-1, हा-1
★ इसके अहकाम किस मक़सद के लिए हैं?
सूरा-24, हा-2
★ इसके अहकाम
सूरा-24, आ-30, 31, हा-29 से 49; सूरा-24, आ-60,
★ चेहरे के परदे का हुक्म
सूरा-24, हा-29, 35
★ अहदे-नबवी में और अहदे-सहाबा में चेहरे का परदा राइज था
सूरा-24 का परिचय; सूरा-28, हा-35
★ औरतों और मर्दों के लिए सतर के हुदूद
सूरा-24, हा-30, 32
★ नंगेपन की मनाही
सूरा-24, हा-30, 32
★ शर्मगाहों की हिफ़ाज़त का मतलब
सूरा-24, हा-30, 32
★ सतर और हिजाब का फ़र्क़
सूरा-24, हा-35
★ अजनबी औरत को देखने की मनाही
सूरा-24, हा-29
★ अजनबी औरत को किन-किन सूरतों में देखा जा सकता है?
सूरा-24, हा-29
★ औरत के लिए अजनबी मर्दों को देखने के मामले में अहकाम
सूरा-24, हा-31
★ अजनबी मर्दों और औरतों के इख़्तिलात (मिल-जुलकर रहने-सहने) की मनाही
सूरा-24, हा-49
★ औरत के लिए बारीक और चुस्त कपड़े पहनने की मनाही
सूरा-24, हा-32
★ ज़ीनत के मानी
सूरा-24, हा-34
★ 'इल्ला मा ज़ह-र मिनहा' (सिवाय इसके जो ख़ुद से ज़ाहिर हो जाए) की तशरीह
सूरा-24, हा-35, 37
★ ज़ीनत छिपाने का मंशा किस तरीक़े से पूरा होता है?
सूरा-24, हा-36
★ हदे-एतिदाल (सन्तुलन-सीमा) से ज़्यादा बनाव-सिंगार करने की मनाही
सूरा-24, हा-49
★ महरम रिश्तेदारों के मुताल्लिक़ अहकाम
सूरा-24, आ-31, हा-38 से 42
★ ग़ैर-महरम रिश्तेदारों के सामने परदे के हुदूद

सूरा-24, हा-42

★ बेआबरू और बदचलन औरतों से भी शरीफ़ औरतों को परदा करना चाहिए

सूरा-24, हा-43

★ लौंडी, ग़ुलामों और ताबेदार मर्दों के सामने परदा करने या न करने का मसला

सूरा-24, हा-44 से 46

★ नई उम्र के लड़कों के सामने परदे का मसला

सूरा-24, आ-31, हा-45, 46

★ औरतों के लिए अपनी आवाज़, ख़ुशबू और ज़ेवर की झंकार मर्दों को सुनाने की मनाही

सूरा-24, हा-47

★ ग़ैर-महरमों से अकेले में मिलने की मनाही

सूरा-24, हा-49

★ ग़ैर-महरम के जिस्म से औरत के जिस्म का छूना मना है

सूरा-24, हा-49

★ औरत के लिए तनहा सफ़र करना या ग़ैर-महरम के साथ सफ़र करना मना है

सूरा-24, हा-49

★ मस्जिदों में नमाज़ के लिए औरत के आने का मसला

सूरा-24, हा-49

★ ज़्यादा उम्रवाली औरतों के लिए परदे के अहकाम

सूरा-24, आ-60

★ 'तबर्रुज' के मानी

सूरा-24, हा-94

(फ़)

● **फ़रिश्ता**

★ फ़रिश्ते और जिन्न का फ़र्क़

सूरा-18, हा-48

★ फ़रिश्तों की सिफ़ात

सूरा-21, आ-19, 20, 26, 27

★ उनको आदम (अलैहि॰) के आगे सजदा करने का हुक्म दिया गया

सूरा-18, आ-50

★ ख़ुदाई में उनका कोई हिस्सा नहीं, बल्कि वे महज़ बन्दे हैं

सूरा-21, आ-19, 26; सूरा-22, आ-75

★ मुशरिक उनको ख़ुदाई में क्यों शरीक ठहराते थे?

सूरा-21, हा-27

★ रसूल फ़रिश्ता के मानी में

सूरा-19, हा-30

★ वे अल्लाह का पैग़ाम पहुँचानेवाले हैं

सूरा-22, आ-75

★ वे अपनी मर्ज़ी से कोई वह्य नहीं ला सकते हैं

सूरा-19, आ-64

★ उनका इनसानी शक्ल में आना

सूरा-19, आ-17; सूरा-29, हा-57

★ मुजरिमों के सामने फ़रिश्ते अज़ाब लेकर ही आते हैं

सूरा-25, आ-21, 22

★ आख़िरत में नेक लोगों का इस्तिक़बाल करेंगे

सूरा-21, आ-101 से 103

★ क़ियामत के रोज़ फ़रिश्तों की फ़ौजें नमूदार होंगी

सूरा-25, आ-25

● **फ़लाह (कामयाबी, सफलता)**

★ इसका मफ़हूम क़ुरआन की ज़बान में

सूरा-23, आ-1, हा-1, 11, 50

★ किन कामों के नतीजे में फ़लाह हासिल होती है?

सूरा-22, आ-77; सूरा-24, आ-31

★ यह कैसे लोगों के लिए है?

सूरा-23 का परिचय; सूरा-23, आ-1; सूरा-24, आ-51; सूरा-28, आ-67; सूरा-30, आ-38

★ यह किन लोगों के लिए नहीं है?

सूरा-18, आ-20; सूरा-20, आ-69; सूरा-23, हा-50, 55; सूरा-23, आ-117; सूरा-28, आ-37, 82

● **फ़साद फ़िल-अर्ज़ (ज़मीन पर फ़साद)**

★ ख़ुदा की बन्दगी और उसके क़ानूनों की इताअत से निकल जाना फ़साद है

सूरा-28, आ-83, हा-105

★ हुकूमत पाकर ख़ुदा के मुक़ाबले में ख़ुद-मुख़्तारी इख़्तियार करना फ़साद है

सूरा-28, आ-4

★ हक़ ज़ाहिर हो जाने के बाद उसको मानने से इनकार करना फ़साद है

सूरा-27, आ-14

★ मुल्कगीरी और मफ़तूह क़ौमों में ज़लील (घटिया) अख़लाक़ पैदा करना फ़साद है

सूरा-27, आ-34, हा-39

★ रिआया (जनता) को मुख़्तलिफ़ तबक़ों में तक़सीम करना और कुछ को दबाना और कुछ को उठाना फ़साद है
सूरा-28, आ-4

★ हर तरह के नामुनासिब हथकंडों से नाजाइज़ मक़सद पूरे करना फ़साद है
सूरा-27, आ-48, 49

★ बेनकेल का ऊँट बनकर रहना फ़साद है
सूरा-26, आ-151, 152, हा-100

★ नाप-तौल में कमी करना फ़साद है
सूरा-26, आ-181 से 183

★ दौलत समेटना और उसे रोके रखना फ़साद है
सूरा-28, आ-77

★ फ़ह्श (अश्लील) काम अंजाम देना फ़साद है
सूरा-29, आ-28 से 30

★ रहज़नी (बटमारी) फ़साद है
सूरा-29, आ-29, 30

★ यह शिर्क की वजह से बरपा होता है
सूरा-30, आ-40 से 42

● **फ़िरऔन**

सूरा-20, आ-24, 43, 60, 78, 79; सूरा-23, आ-46; सूरा-26, आ-11, 16, 23, 41, 44, 53; सूरा-27, आ-12; सूरा-28, आ-3, 4, 6, 8, 9, 32, 38; सूरा-29, आ-39

★ वह किस मानी में ख़ुदाई का दावेदार था?
सूरा-20, हा-21; सूरा-28, हा-52

★ क्या वह अल्लाह की हस्ती का इनकारी था?
सूरा-26, हा-26; सूरा-28, हा-52

★ मिस्र के पुराने मज़हब और फ़िरऔन के मज़हब से इसके इख़्तिलाफ़
सूरा-20, हा-32

★ हज़रत मूसा (अलैहि.) के ज़माने में एक ही फ़िरऔन था या दो थे?
सूरा-26, हा-14; सूरा-28, हा-41

★ उसके ज़ुल्म
सूरा-20, आ-47; सूरा-28, आ-4, हा-4, 5, 10, 12

★ उसकी हठधर्मी
सूरा-27, आ-13, 14, हा-17

★ उसे डर होता है कि हज़रत मूसा (अलैहि.) की दावत से मिस्र में सियासी इंक़िलाब बरपा हो जाएगा
सूरा-26, आ-35, हा-29

★ हज़रत मूसा (अलैहि.) को नीचा दिखाने के लिए उसकी चालें किस तरह उलटी पड़ीं?
सूरा-20, आ-51, 52, हा-24, 25; सूरा-20, आ-56 से 73; सूरा-26, आ-49 से 51, हा-40
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'बनी-इसराईल' और 'मूसा अलैहि.')

● **फ़िरदौस**

★ उसके मानी की तहक़ीक़
सूरा-23, हा-10

★ उसकी कैफ़ियत
सूरा-18, आ-107, हा-78

★ उसके हक़दार कौन लोग हैं?
सूरा-18, आ-107; सूरा-23, हा-11

● **फ़िस्क़**

★ इसके मानी और हक़ीक़त
सूरा-18, आ-50

★ कुफ़्र इख़्तियार करनेवाला फ़ासिक़ है
सूरा-24, आ-55

★ फ़ह्श (अश्लील) काम करना फ़िस्क़ है
सूरा-29, आ-34

★ रहज़नी (बटमारी) फ़िस्क़ है
सूरा-29, आ-34

(ब)

● **बरकत**

★ मानी और तशरीह और अल्लाह के बाबरकत होने का मफ़हूम
सूरा-23, आ-14, हा-14; सूरा-25, आ-1, हा-1; सूरा-25, आ-10, हा-19

● **बरज़ख़**

★ वह आलम जिसमें इनसान मौत से क़ियामत तक रहेगा
सूरा-23, आ-99, हा-90

● **बनी-इसराईल**

★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) के बाद मिस्र में उनपर क्या गुज़री?
सूरा-28, हा-5

★ हज़रत मूसा (अलैहि.) उनकी रिहाई के लिए फ़िरऔन के पास भेजे जाते हैं

सूरा-20, आ-46, 47; सूरा-26, आ-16, 17

★ फ़िरऔन के अहद में उनकी ग़ुलामाना हैसियत
सूरा-23, आ-47; सूरा-26, आ-22

★ उनपर फ़िरऔन के ज़ुल्म
सूरा-20, आ-47; सूरा-28, आ-4, हा-5, 9, 10, 12

★ उनकी यह ग़लतफ़हमी कि वे अल्लाह के ख़ास बच्चे हैं
सूरा-20, हा-19

★ मिस्र से उनके निकलने की कैफ़ियत
सूरा-20, आ-77, हा-53; सूरा-26, हा-42

★ क्या वे फ़िरऔन के बाद मिस्र के मालिक हुए
सूरा-18, हा-57; सूरा-26, आ-59, हा-45

★ उनका निज़ामे-कहानत
सूरा-19, हा-2

★ उनका गौसाला-परस्ती में मुब्तला होना
सूरा-20, आ-85, हा-63, 69

★ उनकी अख़लाक़ी और मज़हबी गिरावट
सूरा-24, हा-2

★ अपने नबियों पर उनके घिनावने इलज़ाम जिन्हें क़ुरआन ने साफ़ किया है
सूरा-20, आ-87 से 93, हा-67, 69; सूरा-27, हा-24, 56; सूरा-28, हा-22, 38

★ क़ुरआन उन बहुत-सी बातों की हक़ीक़त बताता है जिनके बीच उनमें इख़्तिलाफ़ है
सूरा-27, आ-76

★ हज़रत दाऊद और सुलैमान (अलैहि.) के ज़माने में उनका उरूज (तरक़्क़ी)
सूरा-21, हा-72, 74, 75

★ बाबिल की असीरी (क़ैद) से उनकी रिहाई
सूरा-18, हा-62

★ हज़रत यह्या और ईसा (अलैहि.) के ज़माने में उनकी अख़लाक़ी और दीनी हालत
सूरा-19, आ-5, हा-3, 12
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'मूसा' 'दाऊद' 'सुलैमान' 'यह्या' और 'ईसा' अलैहिमुस्सलाम)

● **बशारत (ख़ुशख़बरी)**

★ कैसे लोगों के लिए है?
सूरा-22, आ-34, 35, 37

● **बाइबल**

★ इसके हवाले
सूरा-18, हा-62, 69; सूरा-19, हा-2, 5, 8, 12, 22, 33, 34; सूरा-20, हा-15, 16, 19, 55, 59, 63, 67, 69, 74, 106; सूरा-21, हा-63, 66, 72, 76, 78, 79, 81, 99; सूरा-23, हा-44; सूरा-24, हा-2; सूरा-26, हा-114, 115; सूरा-27, हा-17, 29, 56; सूरा-28, हा-5, 10, 12, 16, 18, 19, 22, 28, 34, 41, 61, 95, 96; सूरा-29, हा-22, 99

★ यह ख़ुद बनी-इसराईल के नबियों को बुरे रंग में पेश करती है
(देखें— 'बनी-इसराईल')

★ बाइबल और क़ुरआन के इख़्तिलाफ़
(देखें— 'क़ुरआन, बाइबल और तलमूद से उसके इख़्तिलाफ़')

★ इसका यह बयान ग़लत है कि शैतान ने पहले हव्वा (अलैहि.) को बहकाया था और हव्वा ने आदम (अलैहि.) को बहकाया
सूरा-20, आ-120, हा-106

★ इसमें हज़रत इबराहीम (अलैहि.) के झूठ बोलने का ज़िक्र
सूरा-21, हा-60

★ इसकी सिफ़रे-अय्यूब (सहीफ़ा-ए-अय्यूब अलैहि.) की कमज़ोरियाँ
सूरा-21, हा-76, 79

★ इसके अन्दर तब्दीलियाँ होने के सुबूत
सूरा-21, आ-76, 79, 99

● **'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'**
एक आयत की हैसियत से
सूरा-27, आ-30

● **बुत-परस्ती**

★ इसकी सख़्त मनाही
सूरा-22, आ-30, हा-57
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'शिर्क')

(म)

● **मईशत**

★ मआशी ज़िन्दगी के बारे में क़ुरआन की हिदायत
सूरा-25, आ-67, हा-83; सूरा-26, आ-128, 129, हा-90, 91, 99; सूरा-26, आ-181, 182; सूरा-28, आ-58, हा-82; सूरा-28, आ-61, हा-84; सूरा-28, आ-76 से 82, हा-100, 101; सूरा-30, आ-37 से 39, हा-57, 59

★ कंजूसी और इसराफ़ (फ़ुज़ूलख़र्ची) के मानी
सूरा-25, हा-83
● **मक्का**
★ इसको अल्लाह ने हरम बनाया है
सूरा-27, आ-91, हा-110; सूरा-28, आ-57; सूरा-29, आ-67, हा-105
★ अरब में इसकी अहमियत
सूरा-28, हा-80, 81
★ इसके मकान के किराए और ज़मीन की मिलकियत का मसला
सूरा-22, हा-43
★ हरमे-मक्का में ज़ुल्म-ज़्यादती गुनाह है
सूरा-22, हा-44
★ मुहम्मद (सल्ल.) की नुबूवत के शुरुआती ज़माने में मक्का में सूखा पड़ना
सूरा-23 का परिचय; सूरा-23, हा-72
● **मग़फ़िरत**
★ इसके मानी
सूरा-22, हा-95; सूरा-28, हा-23
★ कैसे लोगों के लिए है?
सूरा-20, आ-82, हा-60; सूरा-22, आ-50; सूरा-24, आ-26
● **मज़हब**
(देखें— 'दीन')
● **मजूस**
सूरा-22, आ-17, हा-27
● **मदयन**
सूरा-20, आ-40; सूरा-22, आ-44; सूरा-28, आ-22, 23, 45; सूरा-29, आ-36
★ उसकी तरफ़ मूसा (अलैहि.) की हिजरत
सूरा-20, हा-5; सूरा-20, आ-40; सूरा-28, आ-22 से 28
★ वह कहाँ स्थित है और मूसा (अलैहि.) के ज़माने में उसकी सियासी हैसियत
सूरा-28, हा-33; सूरा-30 का परिचय
★ असहाबुल-ऐका (मदयनवाले) और असहाबे-मदयन (मदयनवाले) का फ़र्क़
सूरा-26, हा-115
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'शुऐब अलैहि.')
● **मन्न और सलवा**
सूरा-20, आ-80, हा-59
● **मरयम (अलैहस्सलाम)**
सूरा-19, आ-16, 27, 34; सूरा-21, आ-91, हा-88; सूरा-23, आ-50
★ उनका मर्द के बग़ैर हामिला (गर्भवती) होना एक मोजिज़ा था
सूरा-23, आ-50, हा-43
★ ईसाइयों का उनको ख़ुदा की माँ ठहराना
सूरा-18, हा-20
● **मलाइका**
(देखें— 'फ़रिश्ता')
● **मशीयते-इलाही (अल्लाह की मर्ज़ी)**
(देखें— 'तक़दीर')
● **मसीह**
(देखें— 'ईसा अलैहि.')
● **मसीही और मसीहियत**
(देखें— 'ईसाइयत')
● **मस्जिदे-हराम**
★ इसके हुदूद क्या हैं?
सूरा-22, हा-43, 63
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'काबा' और 'मक्का')
● **महर**
★ मनकूहा (शादीशुदा) औरत का महर किसी हालत में ख़त्म नहीं होता है
सूरा-24, हा-7
● **मुजरिम, मुजरिमीन**
(देखें— 'जुर्म')
● **मुत्तक़ी**
(देखें— 'तक़्वा')
● **मुनाफ़िक़, मुनाफ़िक़ीन (कपटाचारी)**
★ इनकी सिफ़ात और रवैया
सूरा-23, हा-8; सूरा-24, हा-49, 61; सूरा-24, आ-47 से 50, हा-80; सूरा-24, आ-53, हा-81; सूरा-24, आ-63, हा-103; सूरा-29, आ-10
★ मोमिन और मुनाफ़िक़ का फ़र्क़
सूरा-29 का परिचय; सूरा-29, हा-15
★ मक्की दौर में मुनाफ़िक़ों का वुजूद

सूरा-29 का परिचय; सूरा-29, हा-1; सूरा-29, आ-10, 11

★ मदीना में उनकी शरारतें

सूरा-24 का परिचय; सूरा-24, हा-10

● **मुशरिक**

(देखें— 'शिर्क')

● **मुशरिकीने-अरब**

(देखें— 'शिर्क' और 'अरब')

● **मुस्लिम**

★ इस्लाम के पैरोओं का नाम अल्लाह ने मुस्लिम रखा है

सूरा-22, आ-78, हा-132

★ तमाम नबियों के पैरोओं का नाम मुस्लिम था

सूरा-22, आ-78, हा-132; सूरा-28, आ-53, हा-73

★ दुनिया में मुसलमानों की अस्ल हैसियत और उनका काम

सूरा-22, आ-77, 78,

★ ईमानवालों का अस्ल नाम मुस्लिम है

सूरा-22 का परिचय

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'इस्लाम')

● **मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)**

★ नज़ीर

सूरा-25, आ-1, हा-4

★ नज़ीरे-मुबीन

सूरा-22, आ-49; सूरा-29, आ-50

★ मुबश्शिर और नज़ीर (ख़ुशख़बरी देनेवाला और डरानेवाला)

सूरा-25, आ-56

★ रहमतुल्लिल-आलमीन

सूरा-21, आ-107, हा-100

★ मुहम्मद (सल्ल.) से पहले दो हज़ार साल से अरब में कोई नबी नहीं आया था

सूरा-28, हा-64

★ मुहम्मद (सल्ल.) की नुबूवत का आग़ाज़ किस तरह हुआ?

सूरा-28, हा-109

★ मुहम्मद (सल्ल.) पर वह्य नाज़िल होने की कैफ़ियत

सूरा-23 का परिचय

★ मुहम्मद (सल्ल.) की तालीम ख़ुदा की वह्य पर मबनी (आधारित) है

सूरा-18, आ-27, 110; सूरा-20, आ-64, हा-39; सूरा-20, आ-114; सूरा-21, आ-45, 108; सूरा-29, आ-45

★ मुहम्मद (सल्ल.) ख़ुदा के आख़िरी नबी हैं

सूरा-21, हा-1

★ मुहम्मद (सल्ल.) के रसूल बनाए जाने के बाद वही शरीअत हक़ है जो मुहम्मद (सल्ल.) लाए हैं

सूरा-22, हा-117

★ मुहम्मद (सल्ल.) सरासर सीधे रास्ते पर हैं

सूरा-22, आ-67; सूरा-27, आ-79

★ मुहम्मद (सल्ल.) सीधे रास्ते की तरफ़ दावत देते हैं

सूरा-23, आ-73

★ ईमानवालों के लिए मुहम्मद (सल्ल.) सिर्फ़ एक मुबल्लिग़ ही नहीं, बल्कि रहनुमा और हाकिम भी हैं

सूरा-24, हा-2; सूरा-25, हा-71

★ मुहम्मद (सल्ल.) तमाम इनसानों की तरफ़ रसूल बनाकर भेजे गए हैं

सूरा-25, हा-4

★ अल्लाह ने हर बस्ती में एक-एक नबी भेजने के बजाय सारी दुनिया के लिए मुहम्मद (सल्ल.) ही को नबी मुक़र्रर किया है

सूरा-25, आ-51, हा-66

★ मुहम्मद (सल्ल.) बशर (इनसान) थे

सूरा-18, आ-110; सूरा-21, आ-34; सूरा-25, आ-7, हा-14; सूरा-25, आ-20, हा-29

★ क़ुरैश के लोग मुहम्मद (सल्ल.) को इसलिए नबी मानने से इनकार करते थे कि वे इनसान को नबी मानने के लिए तैयार न थे

सूरा-21 का परिचय; सूरा-21, आ-2, हा-5; सूरा-25, आ-7, हा-14

★ मुहम्मद (सल्ल.) आलिमुल-ग़ैब (ग़ैब के जाननेवाले) न थे

सूरा-24, हा-8, 10

★ ख़ुदाई सिफ़ात और इख़्तियारात में मुहम्मद (सल्ल.) का कोई हिस्सा न था

सूरा-18, हा-24

★ मुहम्मद (सल्ल.) ये इख़्तियारात न रखते थे कि जिसे चाहें ख़ुद हिदायत दे दें

सूरा-18, हा-4; सूरा-28, आ-56, हा-79

★ मुहम्मद (सल्ल.) का काम लोगों को ईमान बख़्श देना नहीं, बल्कि ख़बरदार कर देना था

सूरा-20 का परिचय; सूरा-20, आ-3, हा-1; सूरा-27, आ-80, 81, 92

★ मुहम्मद (सल्ल.) का काम लोगों को ख़बरदार करना था जज़ा और सज़ा देना मुहम्मद (सल्ल.) के इख़्तियार में न था
सूरा-25, आ-56, हा-71

★ मुहम्मद (सल्ल.) का काम लोगों को ख़बरदार करना था लोगों की क़िस्मतों के फ़ैसले करना न था
सूरा-22, आ-49, हा-94

★ अल्लाह के इरशादात में रद्दो-बदल करने के इख़्तियारात मुहम्मद (सल्ल.) को नहीं थे
सूरा-18, आ-27, हा-27

★ मुहम्मद (सल्ल.) के रिश्तेदारों के लिए दीन में कोई इम्तियाज़ी (ख़ुसूसी) मक़ाम नहीं है
सूरा-26, हा-135

★ मुहम्मद (सल्ल.) की नुबूवत की दलीलें
सूरा-18 का परिचय; सूरा-18, हा-57; सूरा-19 का परिचय; सूरा-23, हा-11; सूरा-23, आ-68, हा-65, 67; सूरा-23, आ-71, 72, हा-69, 70; सूरा-25, आ-57; सूरा-26, 28 का परिचय; सूरा-28, आ-44 से 46, हा-60 से 64, 109; सूरा-29, आ-48, हा-88

★ मुहम्मद (सल्ल.) की सीरत मुहम्मद (सल्ल.) की सच्चाई का सबसे बड़ा सुबूत है
सूरा-26, हा-136, 139

★ सहाबा किराम की सीरतों का इंक़िलाब मुहम्मद (सल्ल.) की नुबूवत की नुमायाँ दलील है
सूरा-23, हा-1, 11; सूरा-23, आ-57 से 61; सूरा-24, हा-10; सूरा-25, आ-63 से 68, 72 से 74; सूरा-26, हा-136, 139, 142

★ मुहम्मद (सल्ल.) को दलीले-नुबूवत के तौर पर क़ुरआन के सिवा कोई मोजिज़ा नहीं दिया गया था
सूरा-20, आ-133, हा-116; सूरा-29, आ-48, से 52, हा-89, 91

★ इसकी वजहें
सूरा-26 का परिचय; सूरा-26, हा-3, 5, 7, 49; सूरा-28 का परिचय; सूरा-28, हा-67, 68

★ मुशरिकों की तरफ़ से बार-बार मोजिज़ों के मुतालबे और उनका जवाब
सूरा-21, आ-5, 6, हा-8; सूरा-25, आ-21; सूरा-26 का परिचय; सूरा-26, आ-1 से 9, हा-7, 49

★ मुहम्मद (सल्ल.) की दावत
सूरा-19, आ-97; सूरा-21, आ-108 से 110; सूरा-22, आ-67; सूरा-25, हा-4; सूरा-26, आ-193 से 195; सूरा-28, आ-87, 88

★ मुहम्मद (सल्ल.) की दावत वही थी जो तमाम नबियों (अलैहि.) की थी
सूरा-18, 19, 20, 21 के परिचय; सूरा-21, आ-25; सूरा-22, आ-78, हा-131; सूरा-23 का परिचय

★ मुहम्मद (सल्ल.) के लाए हुए दीन की बुनियादी तालीमात (देखें– 'इस्लाम' और 'क़ुरआन')

★ मुहम्मद (सल्ल.) के ऊँचे अख़लाक़
सूरा-21, हा-7; सूरा-24, हा-10; सूरा-30, हा-85

★ मुहम्मद (सल्ल.) के दुश्मनों को भी मुहम्मद (सल्ल.) की सच्चाई का एतिराफ़ था
सूरा-21, हा-7

★ मुहम्मद (सल्ल.) की शख़्सियत और तालीम का ग़ैर-मामूली असर
सूरा-21, हा-5

★ क़ुरैश के मुशरिक मुहम्मद (सल्ल.) को किस मानी में जादूगर कहते थे?
सूरा-21, हा-5

★ मुहम्मद (सल्ल.) की फ़ुतूहात की अस्ल वजहें
सूरा-24 का परिचय; सूरा-24, हा-10

★ मुहम्मद (सल्ल.) लिखना-पढ़ना न जानते थे
सूरा-29, आ-48, हा-88, 91

★ अपनी क़ौम को हिदायत देने के लिए मुहम्मद (सल्ल.) की बेचैनी
सूरा-18, आ-6, हा-4; सूरा-26, आ-3, हा-2

★ मुहम्मद (सल्ल.) सबसे पहले अपने ख़ानदान के लोगों को दीने-हक़ की दावत देते हैं
सूरा-26, आ-214, हा-135

★ मक्का में मुहम्मद (सल्ल.) की और क़ुरैश के मुशरिकों की कशमकश
सूरा-18, 19 के परिचय; सूरा-21, आ-34 से 36

★ मक्का के इस्लाम-दुश्मनों की हठधर्मियाँ
सूरा-25, आ-7 से 9; सूरा-26 का परिचय; सूरा-26, आ-199, हा-124

★ मुहम्मद (सल्ल.) की दावत को नीचा दिखाने के लिए

कुरैश के इस्लाम-दुश्मनों की चालें और उनकी नाकामी की वजहें
सूरा-18, 19 के परिचय; सूरा-21, हा-5, 7; सूरा-22, हा-81

★ कुरैश के मुशरिक मुहम्मद (सल्ल.) के क्यों मुख़ालिफ़ थे?
सूरा-18, हा-28; सूरा-21, हा-5; सूरा-25, हा-21; सूरा-26 का परिचय; सूरा-27, हा-60; सूरा-28, आ-57, हा-80, 94

★ मक्का के मुशरिकों के मुहम्मद (सल्ल.) पर ईमान न लाने की वजहें और उनकी बहानेबाज़ियाँ
सूरा-26, हा-81, 83; सूरा-28 का परिचय; सूरा-28, आ-57, हा-80 से 85; सूरा-28, आ-76 से 82, हा-94, 108

★ मदीना में मुहम्मद (सल्ल.) के ख़िलाफ़ मुख़ालिफ़ों की चालें
सूरा-24 का परिचय

★ मुहम्मद (सल्ल.) के ख़िलाफ़ नए और पुराने मुख़ालिफ़ों के एतिराज़ और उनके जवाब
सूरा-21, हा-54; सूरा-23, हा-66 से 68; सूरा-25, हा-12; सूरा-25, आ-7 से 9, हा-18; सूरा-25, हा-55; सूरा-26, हा-81; सूरा-26, आ-210 से 213, हा-130 से 133; सूरा-26, हा-139, 142, 143; सूरा-28, हा-64

★ मुहम्मद (सल्ल.) के पास हबश से ईसाइयों का आना और उनका क़बूले-इस्लाम
सूरा-26, हा-123; सूरा-28, आ-52 से 55, हा-72, 73, 79

● **मूसा (अलैहि.)**
सूरा-18, आ-60, 66; सूरा-19, आ-51; सूरा-20, आ-9, 11, 17, 19, 36, 40, 49, 57, 61, 65, 67, 70, 77, 83, 86, 88, 91; सूरा-21, आ-48; सूरा-22, आ-44; सूरा-23, आ-45, 49; सूरा-25, आ-35; सूरा-26, आ-10, 43, 45, 48, 52, 61 63, 65; सूरा-27, आ-7, 9, 10; सूरा-28, आ-3, 7, 10, 15, 18, 19, 20, 29 30, 31, 36, 37, 38, 43, 44, 48, 76; सूरा-29, आ-39

★ उनका क़िस्सा
सूरा-18, आ-60 से 82; सूरा-19, आ-51 से 53; सूरा-20 का परिचय; सूरा-20, आ-9 से 98; सूरा-23, आ-45 से 49; सूरा-26, आ-10 से 66; सूरा-27, आ-7 से 14; सूरा-28 का परिचय; सूरा-28, आ-3 से 43

★ उनकी पैदाइश और परवरिश का हाल
सूरा-20, आ-38 से 40; सूरा-28, आ-7 से 14

★ उनका नाम मूसा कैसे रखा गया?
सूरा-28, हा-16

★ फ़िरऔन के घर में उनकी तरबियत और हैसियत
सूरा-26, हा-14; सूरा-28, हा-19

★ उनसे क़त्ल हो जाना
सूरा-20, आ-40; सूरा-26, आ-14, हा-11; सूरा-28, आ-15, 16

★ वे जान-बूझकर क़त्ल करने के गुनहगार नहीं थे
सूरा-20, हा-16

★ उनका मदयन में पनाह लेना
सूरा-20, आ-40; सूरा-28, आ-22 से 28

★ क्या हज़रत शुऐब (अलैहि.) उनके ससुर थे?
सूरा-28, हा-34

★ उनको नुबूवत अता की जाती है और फ़िरऔन के यहाँ जाने का हुक्म दिया जाता है
सूरा-20, आ-9 से 36, 43 से 48; सूरा-23, आ-45 से 49; सूरा-26, आ-10 से 17; सूरा-27, आ-7 से 12; सूरा-28, आ-29 से 32

★ उनके लिए हज़रत हारून (अलैहि.) को मददगार बनाया जाता है
सूरा-19, आ-53; सूरा-20, आ-29 से 36; सूरा-25, आ-35

★ वे मोजिज़े जो उनको दिए गए
सूरा-20, आ-19 से 22, 69, 77, हा-53; सूरा-20, आ-80, हा-59; सूरा-26, आ-32, 33, 63, हा-47; सूरा-27, आ-10, 12; सूरा-28, आ-31, 32

★ क्या वे सिर्फ़ बनी-इसराईल की रिहाई के लिए फ़िरऔन के यहाँ भेजे गए थे?
सूरा-20, आ-46 से 48; सूरा-26, आ-16, 17, हा-13

★ फ़िरऔन के दरबार में उनका पहुँचना और अपनी दावत पेश करना
सूरा-20, आ-47 से 52; सूरा-23, आ-45 से 48; सूरा-26, आ-24 से 28; सूरा-28, आ-36, 37

★ फ़िरऔन और उसकी क़ौम पर उनके मोजिज़ों की हैबत
सूरा-20, आ-57, हा-30; सूरा-26 आ-30 से 35, हा-29,

30; सूरा-26, आ-55, 56, हा-43

★ उसको मूसा (अलैहि.) से सियासी इंक़िलाब का ख़तरा क्यों हुआ?

सूरा-20, हा-30; सूरा-20, आ-63 से 73; सूरा-26, हा-29

★ उनके मुक़ाबले में फ़िरऔन की चालें और वे किस तरह उलटी पड़ीं?

सूरा-20, आ-63 से 73, हा-48; सूरा-26, आ-45 से 51, हा-40

★ जादूगरों से मुक़ाबला और उनका हार खाकर ईमान ले आना

सूरा-20, आ-57, 58, 65 से 73; सूरा-26, आ-38 से 51

★ नबी और साहिर (जादूगर) का फ़र्क़

सूरा-26, आ-41, 42, हा-34, 35

★ मिस्र से बनी-इसराईल को लेकर निकलते हैं

सूरा-20, आ-77, हा-53; सूरा-26, आ-52 से 66

★ ख़ुदाई तदबीर ने किस तरह फ़िरऔन को हलाक किया?

सूरा-26, आ-53 से 66

★ मिस्र से निकलने के बाद उनको किताब और शरीअत अता की जाती है

सूरा-20, हा-58; सूरा-23, आ-49; सूरा-28, आ-43

★ फ़िरऔन की हलाकत के बाद मिस्र में उनके क़ियाम का कोई सुबूत नहीं

सूरा-18, हा-57

★ सामरी का फ़ितना और बनी-इसराईल का गोसाला-परस्ती (गौ-पूजा) में पड़ जाना

सूरा-20, आ-85 से 98

★ क़ारून उनका रिश्तेदार था

सूरा-28, आ-76, हा-95

★ ख़ज़िर और मूसा (अलैहिमुस्सलाम) का क़िस्सा कब और कहाँ पेश आया और उसे क्यों बयान किया गया है?

सूरा-18, हा-57

★ अरब के लोग आम तौर से हज़रत मूसा (अलैहि.) को नबियों में शुमार करते थे

सूरा-20 का परिचय

● मोजिज़ा

★ इसके बरहक़ होने की दलीलें

सूरा-18, हा-23; सूरा-29, हा-22, 39

★ अल्लाह की तरफ़ से मामूर होने की अलामत के तौर पर नबियों को दिया जाता है

सूरा-23, आ-45, हा-39

★ मोजिज़ा दिखाने का मक़सद

सूरा-28, हा-44, 46

★ मोजिज़ा देख लेने के बाद इनकार करनेवाली क़ौम सज़ा से नहीं बच सकती है

सूरा-23, हा-43

★ हज़रत इबराहीम (अलैहि.) का आग से बचाया जाना

सूरा-29, आ-24, हा-39

★ वे मोजिज़े जो हज़रत मूसा (अलैहि.) को दिए गए—

★ लाठी का साँप बना दिया जाना

सूरा-20, आ-20, 69, हा-42; सूरा-26, आ-32, हा-27; सूरा-27, आ-10; सूरा-28, आ-31

★ हाथ का सूरज की तरह रौशन हो जाना

सूरा-20, आ-22, हा-13; सूरा-26, आ-33, हा-28; सूरा-27, आ-12; सूरा-28, आ-32

★ लाठी मारने पर समन्दर का फट जाना और उसमें सूखी सड़क निकल आना

सूरा-20, आ-77, हा-53; सूरा-26, आ-63, हा-47

★ मन्न और सलवा का नाज़िल होना

सूरा-20, आ-80, हा-59

★ वे मोजिज़े जो हज़रत सुलैमान (अलैहि.) को दिए गए—

★ परिन्दों की बोलियों का इल्म

सूरा-27, आ-16, 20 से 28

★ उनके लिए जिन्नों का मुसख़्ख़र (वश में) होना

सूरा-27, आ-17, हा-23; सूरा-27, आ-39, हा-45

★ उनके लिए मलिका-ए-सबा का तख़्त आनन-फ़ानन लाया जाना

सूरा-27, आ-38 से 41

★ हज़रत अय्यूब (अलैहि.) के लिए ज़मीन से चश्मा निकाला जाना

सूरा-21, हा-78

★ हज़रत यूनुस (अलैहि.) का मछली के पेट से ज़िन्दा निकाला जाना

सूरा-21, आ-87, 88, हा-85

★ हज़रत ज़करिय्या (अलैहि.) के यहाँ बुढ़ापे में बूढ़ी बाँझ बीवी से औलाद पैदा होना

सूरा-19, आ-5 से 9; सूरा-21, आ-89, 90

★ हज़रत ईसा (अलैहि.) का बेबाप पैदा किया जाना
सूरा-19, आ-16 से 33; सूरा-23, आ-50, हा-43
★ अभी-अभी पैदा हुए बच्चे का पालने में बात करना
सूरा-19, हा-20
★ मुहम्मद (सल्ल.) को नुबूवत की दलील के तौर पर सिर्फ़ क़ुरआन का मोजिज़ा दिया गया था
सूरा-20, हा-116; सूरा-29, आ-48 से 51, हा-89
★ मुहम्मद (सल्ल.) को हिस्सी मोजिज़े के बजाय अक़्ली मोजिज़ा देने की वजहें
सूरा-26 का परिचय; सूरा-26, हा-3, 5, 7, 49; सूरा-28 का परिचय; सूरा-28, आ-48, हा-67, 68
★ इस्लाम के इनकारियों की तरफ़ से बार-बार मोजिज़ों के मुतालबे और उनके जवाब
सूरा-21, आ-5, 6; सूरा-25, आ-21; सूरा-26 का परिचय; सूरा-26, आ-4 से 9, हा-7, 49
● मोमिन
(देखें— 'ईमान')
● मौत
★ हर जान को मौत का मज़ा चखना है
सूरा-29, आ-57

(य)

● यहूद
★ उनका एक गरोह आख़िरत का इनकारी था
सूरा-18, हा-18
★ मुहम्मद (सल्ल.) के ख़िलाफ़ उनकी तदबीरें
सूरा-24 का परिचय
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'बनी-इसराईल' और 'मूसा अलैहि.')
● यह्या (अलैहि.)
सूरा-19, आ-7, 12, हा-11, 12; सूरा-21, आ-90
★ उनके ज़माने में यहूदियों की अख़लाक़ी और मज़हबी हालत
सूरा-19, हा-3, 12
● याक़ूब (अलैहि.)
सूरा-19, आ-6, 49; सूरा-21, आ-72; सूरा-29, आ-27
● याजूज-माजूज
★ इससे मुराद कौन-सी क़ौमें हैं?
सूरा-18, हा-62
★ क़ियामत के क़रीब उनका ज़ाहिर होना
सूरा-21, आ-96, 97
● यूनुस (अलैहि.)
सूरा-21, आ-87, 88, हा-82
● यौमुद्दीन
सूरा-26, आ-82
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'क़ियामत' और 'आख़िरत')

(र)

● रज्म
★ उन लोगों के ख़याल की ग़लती जो शादीशुदा ज़ानी की सज़ा रज्म को क़ुरआन के ख़िलाफ़ क़रार देते हैं
सूरा-24, हा-2
★ अहदे-रिसालत और ख़िलाफ़ते-राशिदा में रज्म की सज़ा की मिसालें
सूरा-24, आ-2
★ तौरात के क़ानून में रज्म की सज़ा
सूरा-24, हा-2
● रब
★ इनसान का रब वही है जो कायनात का रब है
सूरा-18, आ-14; सूरा-21, आ-56, 92
★ रब सिर्फ़ अल्लाह है
सूरा-18, आ-38
★ लफ़्ज़ रब के मफ़हूम की वुसअत और अल्लाह के लिए रुबूबियत के मख़सूस होने का मतलब
सूरा-20, आ-50, हा-22
★ अल्लाह के सिवा किसी और के रब न होने की दलील
सूरा-20, हा-23
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'अल्लाह')
● रसूल
★ इसके मानी की तहक़ीक़
सूरा-19, हा-30
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'नुबूवत')
● रहबानियत (संन्यास)
★ इस्लाम में रहबानियत नहीं है
सूरा-23, हा-46; सूरा-28, हा-84; सूरा-28, आ-77
● रिज़्क़
★ अल्लाह अपनी हर मख़लूक़ के रिज़्क़ का इन्तिज़ाम करता

है

सूरा-29, आ-60

★ अल्लाह के रिज़्क़ से मुराद रिज़्क़े-हलाल है

सूरा-20, आ-132, हा-113

★ इस्लाम में रिज़्क़े-हलाल की अहमियत

सूरा-23, हा-46

★ अल्लाह जिसको चाहता है बेहिसाब रिज़्क़ देता है

सूरा-24, आ-38, हा-69

★ अल्लाह जिसका रिज़्क़ चाहता है कुशादा कर देता है और जिसका चाहता है तंग कर देता है

सूरा-28, आ-82; सूरा-29, आ-62; सूरा-30, आ-37

★ वह अल्लाह का फ़ज़्ल है

सूरा-30, आ-23, हा-33; सूरा-30, आ-46

● रिसालत

(देखें— 'नुबूवत')

(ल)

● लानत

★ ख़ुदा की लानत के हक़दार कैसे लोग हैं?

सूरा-24, आ-23; सूरा-28, आ-42

● लिआन

★ इसके बारे में शरई एहकाम

सूरा-24, आ-6 से 9, हा-7

★ क़ानूने-लिआन का मक़सद और वजहें

सूरा-24, हा-7

★ मुहम्मद (सल्ल.) और ख़िलाफ़ते-राशिदा के ज़माने में लिआन की मिसालें

सूरा-24, हा-7

★ लिआन का ज़ाब्ता और क़ानूनी नतीजे

सूरा-24, हा-7

★ क़ज़फ़ और लिआन का फ़र्क़

सूरा-24, हा-7

★ अगर शौहर बीवी पर तोहमत लगाए और लिआन न करे तो क्या वह क़ज़फ़ की सज़ा का हक़दार होगा?

सूरा-24, हा-7

★ अगर शौहर क़सम खाले और औरत क़सम न खाए तो क्या उसे रज्म किया जाएगा?

सूरा-24, हा-7

● लूत (अलैहि.)

सूरा-21, आ-71, 74; सूरा-22, आ-43; सूरा-26, आ-160, 161, 167; सूरा-27, आ-54, 56; सूरा-29, आ-26, 28, 32, 33

★ उनका क़िस्सा

सूरा-21, आ-71, 74, 75; सूरा-26, आ-160 से 173; सूरा-27, आ-54 से 58; सूरा-29, आ-26 से 35

★ क़ौमे-लूत

सूरा-25, हा-53

★ क़ौमे-लूत का इलाक़ा और उसपर अज़ाब की कैफ़ियत

सूरा-26, हा-114

(व)

● वह्य

★ हज़रत नूह (अलैहि.) वह्य की रहनुमाई में कश्ती बनाते हैं

सूरा-23, आ-27

★ हज़रत मूसा (अलैहि.) की माँ पर वह्य

सूरा-20, आ-38, 39; सूरा-28, आ-7

★ ग़ैर-नबी की तरफ़ वह्य किए जाने का मतलब

सूरा-20, आ-38

★ बाराने-रहमत (रहमत की बारिश) से वह्य की मुशाबहत (मिसाल)

सूरा-22, आ-63, हा-110

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'नुबूवत')

● वादी-ए-नम्ल

★ इसकी तहक़ीक़

सूरा-27, हा-24

● विरासते-ज़मीन

सूरा-28, आ-5

★ सालिहीन को उसके अता किए जाने का मतलब

सूरा-20, हा-83, 106; सूरा-21, आ-105, हा-99

★ ज़मीन के वारिस ख़ुदा के नेक बन्दे होंगे

सूरा-20, हा-106; सूरा-21, आ-105

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'ख़िलाफ़त')

(श)

● शआइरुल्लाह (अल्लाह के प्रतीक)

★ इनका एहतिराम तक़्वा का तक़ाज़ा है

सूरा-22, आ-32, हा-61

★ क़ुरबानी के जानवर शआइरुल्लाह में से हैं

सूरा-22, आ-36

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'क़ुरबानी')

● **शफ़ाअत**

★ इसका मुशरिकाना अक़ीदा और उसका ग़लत होना

सूरा-22, हा-125

★ आख़िरत में मुशरिकों का शफ़ाअत का अक़ीदा ग़लत साबित हो जाएगा

सूरा-26, आ-100, 101, हा-70, 71

★ मुशरिकों के माबूद उनकी कोई सिफ़ारिश न करेंगे

सूरा-30, आ-13, हा-16

★ उनके माबूद उनको उलटा मुजरिम ठहराएँगे

सूरा-25, आ-17, 18

★ ख़ुदा के नाफ़रमानों की शफ़ाअत करनेवाला कोई नहीं है

सूरा-29, आ-22, 23, हा-35; सूरा-29, आ-25, हा-43

★ आख़िरत में सिर्फ़ वही शफ़ाअत करेगा जिसको ख़ुदा इसकी इजाज़त दे

सूरा-20, आ-109; सूरा-21, आ-28

★ सिर्फ़ उसके हक़ में शफ़ाअत की जा सकेगी जिसके हक़ में ख़ुदा ख़ुद इसकी इजाज़त दे

सूरा-20, आ-109, हा-85; सूरा-21, आ-28

★ बिला इजाज़त शफ़ाअत का हक़ किसी को न होने की वजह

सूरा-20, हा-86; सूरा-21, हा-27; सूरा-22, हा-125

● **शरीअत**

★ नबियों की शरीअतें मुख़्तलिफ़ रही हैं, मगर दीन सबका एक है

सूरा-22, हा-64, 117

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'इस्लाम', 'दीन' और 'नुबूवत')

● **शहीद**

★ इसका अज्रे-अज़ीम

सूरा-22, आ-58, 59

● **शिर्क**

★ इसकी हक़ीक़त और तशरीह

सूरा-18, आ-38, 39, 52, हा-50; सूरा-18, आ-110; सूरा-22, आ-12, 13

★ शिर्क का इतलाक़ किन-किन चीज़ों पर होता है?

सूरा-23, आ-59, हा-53

★ अल्लाह के सिवा दूसरों को आलिमुल-ग़ैब मानना शिर्क है

सूरा-23, हा-86

★ ख़ाहिशे-नफ़्स को ख़ुदा बना लेना शिर्क है

सूरा-25, आ-43, हा-56

★ शिर्क की एक मुस्तक़िल क़िस्म, शिर्के-अमली और उसकी तशरीह

सूरा-18, आ-52, हा-50; सूरा-19, आ-42 से 45, हा-27

★ अरब के मुशरिकों का शिर्क किस नौइयत का था?

सूरा-23, आ-87 से 91; सूरा-25, हा-84; सूरा-27, आ-60 से 62; सूरा-29, आ-61 से 63, 65, 66; सूरा-30, हा-40

★ मुशरिकीन अल्लाह की हस्ती के इनकारी नहीं हैं

सूरा-26, हा-26, 57

★ मुशरिकों के तसव्वुरे-माबूद और इस्लाम के तसव्वुरे-इलाह का फ़र्क़

सूरा-26, हा-24

★ इनसान शैतान के बहकाने से शिर्क में मुब्तला होता है

सूरा-27, आ-24, हा-32

★ शिर्क की शुरुआत किस तरह हुई?

सूरा-30, आ-31, 32, हा-51

★ मुशरिक अल्लाह की क़द्र नहीं पहचानते हैं?

सूरा-22, आ-74

★ मुशरिकों के माबूदों की क़िस्में

सूरा-30, हा-16

★ क़ब्र-परस्ती सख़्त गुमराही है

सूरा-18, आ-21, हा-21

★ बुत-परस्ती एक गन्दगी है

सूरा-22, आ-30

★ शिर्क एक बेवक़ूफ़ी है

सूरा-20, आ-88, 89

★ वह हक़ीक़त के ख़िलाफ़ है

सूरा-22, आ-62, हा-109

★ वह बहुत बड़ा झूठ है

सूरा-22, आ-30, हा-58; सूरा-29, आ-17, हा-28

★ वह ज़ुल्म है

सूरा-22, आ-71

★ वह जुर्म है

सूरा-18, आ-52, 53; सूरा-19 आ-83 से 86

★ वह नमक हरामी और एहसान फ़रामोशी है

सूरा-29, आ-65, 66; सूरा-30, आ-36

★ वह इनसान की फ़ितरत के ख़िलाफ़ है

सूरा-30, आ-30, हा-45

★ इसके हक़ में कोई दलील और सनद नहीं है

सूरा-22, आ-71; सूरा-30, आ-35, हा-54

★ इसकी वजह से दुनिया में फ़साद बरपा होता है

सूरा-30, आ-41

★ नबियों को इससे सख़्त नफ़रत

सूरा-20, आ-86 से 98

★ इसके ख़िलाफ़ क़ुरआन की दलीलें

सूरा-18, आ-51 से 53; सूरा-19, आ-42, 43; सूरा-21, आ-19 से 25, 66, 67; सूरा-22, आ-12, 71, 72; सूरा-23, आ-78 से 92; सूरा-25, आ-3, 55; सूरा-26, आ-69 से 77; सूरा-27, आ-59 से 65, हा-73, 76, 80, 83; सूरा-27, आ-91, हा-110; सूरा-29, आ-17, हा-28; सूरा-29, आ-25, 41, 65, 66; सूरा-30, आ-28; सूरा-29, हा-40; सूरा-30, आ-33 से 35, हा-52, 54; सूरा-30, आ-40, हा-63

★ माँ-बाप को हक़ नहीं है कि वे औलाद को शिर्क पर मजबूर करें

सूरा-29, आ-8, हा-11

★ आदमी के लिए जाइज़ नहीं कि वह दुनिया में किसी की ख़ातिर भी शिर्क करे

सूरा-29, आ-8, हा-11

★ शिर्क के अख़लाक़ी और रूहानी नतीजे

सूरा-22, हा-17, 59; सूरा-30, आ-33 से 36, हा-53, 54; सूरा-30, आ-42, हा-65

★ शिर्क के नतीजे आख़िरत में

सूरा-18, आ-52, 53; सूरा-21, आ-98; सूरा-26, आ-96 से 102, 213, हा-134

★ मुशरिकों से आख़िरत में किस चीज़ की पूछ-ताछ होगी?

सूरा-28, आ-62 से 66, हा-85; सूरा-28, आ-74

★ मुशरिकों के माबूद उनके साथ जहन्नम में डाले जाएँगे

सूरा-21, आ-98

★ मुशरिकों का कोई मददगार नहीं है

सूरा-22, आ-71, हा-121

★ उनके माबूद कोई ताक़त नहीं रखते हैं

सूरा-22, आ-73, हा-123

★ आख़िरत में ख़ुद उनके माबूद उन्हें झूठा ठहरा देंगे

सूरा-25, आ-17, 18

★ मुशरिक ख़ुद अपने माबूदों का इनकार करेंगे

सूरा-30, आ-13

★ उनके माबूद आख़िरत में उनकी कोई सिफ़ारिश न करेंगे

सूरा-30, आ-13

★ मुशरिक के लिए मग़फ़िरत की दुआ जाइज़ नहीं है

सूरा-26, हा-63

● **शुऐब (अलैहि.)**

सूरा-26, आ-177; सूरा-29, आ-36

★ उनका क़िस्सा

सूरा-26, आ-176 से 189, हा-115 से 117; सूरा-29, आ-36, 37

★ क्या ये हज़रत मूसा (अलैहि.) के ससुर थे?

सूरा-28, हा-34

★ वे एक वक़्त में दो क़ौमों की तरफ़ भेजे गए थे

सूरा-26, हा-115

● **शुक्र**

★ अल्लाह की दी हुई ताक़तों को उसके मंशा के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करना नाशुक्री है

सूरा-23, आ-78, हा-74

★ ख़ुदा का शुक्र बन्दे ही के लिए फ़ायदेमन्द है, ख़ुदा इसका मुहताज नहीं है

सूरा-27, आ-40, हा-49

● **शेर (शेअर)**

★ मुहम्मद (सल्ल.) का मिज़ाज शाइरी से कोई मुनासिबत नहीं रखता था

सूरा-26, हा-143

★ शाइरों की अख़लाक़ी कमज़ोरियाँ

सूरा-26, हा-142

★ किस तरह के शाइर क़ुरआन की मज़म्मत से मुस्तसना हैं?

सूरा-26, आ-227, हा-145

● **शैतान**

★ उसकी पैदाइश का माद्दा (तत्त्व)

सूरा-18, आ-50; सूरा-20, हा-96

★ वह फ़रिश्तों में से नहीं था बल्कि जिन्नों में से था

सूरा-18, आ-50, हा-48

★ शैतान और इबलीस एक ही शख़्सियत है
सूरा-20, आ-117 से 120

★ यह इनसान का हमेशा का दुश्मन है
सूरा-18, आ-50; सूरा-20, हा-92, 106

★ यह इनसान के लिए उसके बुरे आमाल को ख़ुशनुमा (मनमोहक) बना देता है
सूरा-27, आ-24, हा-32; सूरा-29, आ-38

★ यह फ़हश और बुराई का हुक्म देता है
सूरा-23, आ-97; सूरा-24, आ-21

★ यह ख़ुदा का नाफ़रमान है
सूरा-19, आ-44

★ उसकी पैरवी इनसान के लिए तबाहकुन है
सूरा-24, आ-21

★ उसकी बन्दगी न की जाए
सूरा-19, आ-44, हा-27

★ नबियों के काम में अड़चनें डालने के लिए उसकी कोशिशें
सूरा-22, आ-52, हा-98

★ उसकी फ़ितनापरदाज़ियों को अल्लाह ने खरे और खोटे का फ़र्क़ खोल देने का ज़रिआ बनाया है
सूरा-22, आ-53, 54, हा-101

★ शैतानों की पैरवी करनेवाले इनसानों का किरदार
सूरा-26, आ-221 से 223

★ हक़ का इनकार करनेवालों पर शैतान मुसल्लत कर दिए जाते हैं
सूरा-19, आ-83

★ क़ियामत के दिन शैतान अपने दोस्तों का साथ छोड़ देगा
सूरा-25, आ-29, हा-40

★ वह अपने लश्करों समेत जहन्नम में डाला जाएगा
सूरा-26, आ-94, 95

★ उसकी पैरवी करनेवालों का बुरा अंजाम
सूरा-22, आ-3, 4

★ शैतानों का हज़रत सुलैमान (अलैहि.) के लिए मुसख़्ख़र किया जाना
सूरा-21, आ-82, हा-75

(स)

● सजदा-ए-तिलावत
सूरा-19, आ-58; सूरा-22, आ-18, 77; सूरा-25, आ-60; सूरा-27, आ-26

● सदक़ा
(देखें— 'ज़कात')

● सब्र

★ इसके मानी
सूरा-25, हा-94; सूरा-28, आ-54, हा-75; सूरा-28, आ-80, हा-100; सूरा-29, आ-59, हा-97

★ इस्लाम में इसकी अहमियत
सूरा-19, आ-65, हा-40; सूरा-20 का परिचय; सूरा-25, आ-75, हा-94; सूरा-28, हा-100; सूरा-29, हा-97

● सबा

★ सबा की क़ौम का हाल
सूरा-27, आ-22 से 24, हा-29

★ मलिका-ए-सबा का क़िस्सा
सूरा-27, आ-23 से 44

● समूद
सूरा-22, आ-42; सूरा-25, आ-38; सूरा-26, आ-141; सूरा-27, आ-45; सूरा-29, आ-38

★ समूद की क़ौम का इलाक़ा
सूरा-29, हा-65

★ उसके हालात
सूरा-26, आ-141 से 152, हा-95, 99, 100, 105, 106

● सलात
(देखें— 'नमाज़')

● सलीब

★ पुराने ज़माने में सलीब देने का तरीक़ा
सूरा-20, हा-47

● सवाब
सूरा-18, आ-44; सूरा-28, आ-80

● सहाबा किराम

★ उनके दीन में इख़लास की खुली शहादतें
सूरा-19 का परिचय; सूरा-19, हा-25

★ उनकी फ़ज़ीलत
सूरा-22, आ-78, हा-129

★ उनकी अख़लाक़ी फ़ज़ीलतें
सूरा-23, आ-1 से 11, हा-11; सूरा-24, हा-10; सूरा-25, आ-63 से 75

★ उनकी सीरत का इंक़िलाब मुहम्मद (सल्ल.) की सच्चाई का सुबूत है

सूरा-23, हा-1, 11; सूरा-24, हा-10; सूरा-25, हा-78, 89; सूरा-26, हा-136, 139, 142

● **साअत**

(देखें— 'क़ियामत')

● **साबिईन**

सूरा-22, आ-17, हा-25

● **सामिरी**

सूरा-20, आ-85 से 98, हा-63, 67 से 69, 73

● **सालेह (अलैहि.)**

सूरा-26, आ-142; सूरा-27, आ-45

★ उनका क़िस्सा

सूरा-26, आ-142 से 158; सूरा-27, आ-45 से 53

● **सिहर**

(देखें— 'जादू')

● **सुन्नत**

★ इस्लामी क़ानून में इसकी अहमियत

सूरा-24, हा-2

★ हदीस की रिवायतें क़ुरआन की तशरीह किस तरह करती हैं?

सूरा-18, हा-21, 28; सूरा-19, 20 के परिचय; सूरा-20, हा-7, 9; सूरा-21, हा-1, 5, 7, 70, 71, 93, 95; सूरा-22, हा-1, 40, 43, 44, 50, 58, 62, 67, 69 से 71, 73, 74, 128; सूरा-23, हा-3, 8, 46, 54; सूरा-24, हा-2, 3, 5, 7, 8, 9, 20, 21, 25, 29, 30, 31, 32, 35, 36, 42, 43, 44, 45, 47, 49, 54, 55, 56, 58, 59, 78; सूरा-25, हा-4, 38, 39, 56, 83, 84, 86; सूरा-26, हा-60, 123, 135, 143, 145; सूरा-27, हा-20, 26, 49, 83, 101; सूरा-28, हा-17, 35, 40, 74, 108; सूरा-29, हा-11, 19, 77, 78; सूरा-30, हा-23, 24, 45

(तफ़सील के लिए देखें— 'हदीस')

● **सुलैमान (अलैहि.)**

सूरा-21, आ-78, 79, 81; सूरा-27, आ-15, 16, 17, 18, 30, 36, 44

★ सुलैमान (अलैहि.) का क़िस्सा

सूरा-21, आ-78 से 82, हा-70 से 75; सूरा-27, आ-15 से 44, हा-20 से 56

★ उनके हालात

सूरा-27, हा-20

★ उनकी दावत क्या थी?

सूरा-27, आ-31, हा-42

★ गुमराह लोगों ने उनकी तरफ़ जादू-टोने को मंसूब किया है

सूरा-18, हा-11

★ बकरियों के मुक़द्दिमे में उनका फ़ैसला

सूरा-21, आ-78, 79

★ उनके लिए हवा के मुसख़्ख़र होने का मतलब

सूरा-21, हा-74

★ उनके लिए जिन्नों का मुसख़्ख़र किया जाना

सूरा-21, आ-82, हा-75

★ उनको परिन्दों की बोलियाँ सिखाई गई थीं

सूरा-27, आ-16, 20 से 24

★ उनके लश्करों में जिन्न और परिन्दे शामिल थे

सूरा-27, आ-17, हा-23, 27, 28, 45

★ वादी-ए-नम्ल में उनका पहुँचना और चींटियों का कलाम सुनना

सूरा-27, आ-18, हा-24, 26

★ हुदहुद के ग़ायब होने और सबा की ख़बर लाने का वाक़िआ

सूरा-27, आ-20 से 24, हा-29

★ हज़रत सुलैमान (अलैहि.) और मलिका-ए-सबा

सूरा-27, आ-23 से 44

★ उनके लिए मलिका-ए-सबा का तख़्त आनन-फ़ानन लाया जाना

सूरा-27, आ-38 से 41

★ उन्होंने यह तख़्त किस ग़रज़ से मँगवाया था?

सूरा-27, हा-44; सूरा-27, आ-42

★ उस इल्मुल-किताब की नौइयत जिसके ज़ोर से यह तख़्त लाया गया था

सूरा-27, हा-47

★ वह जिन्न किस क़िस्म का था जिसने चन्द घंटों में तख़्त ला देने का दावा किया था?

सूरा-27, हा-45

★ उनकी सीरत के असरात मलिका-ए-सबा पर

सूरा-27, आ-42, हा-53, 56

★ यहूदियों के गन्दे इलज़ाम हज़रत सुलैमान (अलैहि.) पर

सूरा-27, हा-56

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'बनी-इसराईल, अपने

नबियों पर उनके घिनावने इलज़ाम')

● **सूद (ब्याज)**

★ इसकी मज़म्मत

सूरा-30, आ-39, हा-59

● **सूर**

सूरा-18, आ-99; सूरा-20, आ-102; सूरा-23, आ-101; सूरा-27, आ-87

★ सूर फूँके जाने की कैफ़ियत

सूरा-20, आ-101 से 103; सूरा-27, आ-87, 88

★ सूर का फूँका जाना इनसानों को जमा करने के लिए

सूरा-18, आ-99

★ सूर किन-किन मौक़ों पर फूँका जाएगा?

सूरा-22, हा-1

(ह)

● **हज**

★ हज़रत इबराहीम (अलैहि.) के ज़माने से अरब का मुसल्लम तरीक़े-इबादत था

सूरा-22 का परिचय

★ क़दीम अहले-अरब (अरब-पूर्वजों) के लिए उसके तमद्दुनी फ़ायदे

सूरा-22, हा-48

★ मक्का के मुशरिकों ने हिजरत के बाद मुसलमानों के लिए हज का रास्ता बन्द कर दिया था

सूरा-22 का परिचय; सूरा-22, हा-43, 54

★ इसकी शुरुआत किस तरह हुई?

सूरा-22, आ-26, 27, हा-45

★ इसके अहकाम

सूरा-22, आ-27 से 29, 33, 34, 36

● **हदी (क़ुरबानी का जानवर)**

★ हदी के जानवर से फ़ायदा उठाने का मसला

सूरा-22, आ-33, हा-62

● **हदीस**

★ इस्लामी क़ानून में इसकी अहमियत

सूरा-24, हा-2

★ यह क़ुरआन की तशरीह किस तरह करती है?

(देखें— 'सुन्नत')

★ हदीसों की रिवायत को परखने में दिरायत का इस्तेमाल

सूरा-19, हा-19; सूरा-21, हा-60; सूरा-22, हा-1, 101; सूरा-24, हा-2, 49, 91; सूरा-28, हा-108; सूरा-29, हा-91

★ किन हालात में ज़ईफ़ (कमज़ोर) हदीस क़ाबिले-क़बूल होती है

सूरा-19, हा-30

● **हब्ते-आमाल (आमाल का ख़त्म हो जाना)**

★ इसकी वजहें

सूरा-18, आ-103 से 106

★ यह किस चीज़ के बदले में होता है?

सूरा-18, आ-105

★ कुफ़्र के साथ नेक आमाल किस तरह बरबाद (नष्ट) हो जाते हैं?

सूरा-24, आ-39, 40

★ आख़िरत में काफ़िरों (विधर्मियों) और मुशरिकों (बहुदेववादियों) के आमाल बरबाद कर दिए जाएँगे

सूरा-25, आ-22, 23

● **हव्वा**

★ क़ुरआन इसकी तरदीद करता है कि आदम (अलैहि.) के बहकाने में वे शैतान की एजेंट बनीं

सूरा-20, आ-120, हा-99, 106

● **हयात बाद मौत**

(देखें— 'मौत के बाद की ज़िन्दगी' और 'आख़िरत')

● **हयाते-दुनिया**

(देखें— 'दुनिया')

● **हश्र**

(देखें— 'क़ियामत' और 'आख़िरत')

● **हामान**

सूरा-28, आ-6; सूरा-29, आ-39

● **हारून (अलैहि.)**

सूरा-19, आ-28, 53; सूरा-20, आ-30, 70, 90, 92; सूरा-21, आ-48; सूरा-23, आ-45; सूरा-25, आ-35; सूरा-26, आ-13, 48; सूरा-28, आ-34

★ उनका हज़रत मूसा (अलैहि.) के लिए मददगार मुक़र्रर होना

सूरा-20, आ-29, 30; सूरा-26, आ-13, हा-10

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'मूसा अलैहि.')

★ उनको हज़रत मूसा (अलैहि.) का मददगार किस लिए बनाया गया?

सूरा-28, आ-34

★ बनी-इसराईल की तरफ़ से उनपर गौसाला-परस्ती शुरू करने का झूठा इलज़ाम और क़ुरआन की तरफ़ से उसकी तरदीद

सूरा-20, आ-90, 91, हा-69

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें– 'बनी-इसराईल')

★ उनके ख़ानदान का मज़हबी मंसबों के लिए मख़सूस किया जाना

सूरा-19, हा-2

● **हिकमते-तबलीग़**

★ मुख़ालिफ़ को किस तरह नसीहत करनी चाहिए?

सूरा-20, आ-44

★ हज़रत मूसा (अलैहि.) की हकीमाना तबलीग़ का एक नमूना

सूरा-20, आ-50, हा-21

★ दावते-हक़ का सही तरीक़ा

सूरा-23, आ-96

★ मुख़ातब की हटधर्मी को तोड़ने का हकीमाना तरीक़ा

सूरा-25, हा-23

★ मुख़ातब के ज़ेहन में हक़ बात उतारने का हकीमाना तरीक़ा

सूरा-26, हा-55

★ मुख़ातब को सोचने पर किस तरह आमादा किया जाए?

सूरा-27, हा-72

★ ग़ाफ़िल क़ौम को चौंकाने की तदबीर

सूरा-26, आ-106, हा-76

★ किताबवालों के सामने दावते-दीन पेश करने का तरीक़ा

सूरा-29, आ-46, हा-81

★ हर वक़्त आजिज़ी और मिसकीनी ही को शेवा बना लेना हिकमते-तबलीग़ के ख़िलाफ़ है

सूरा-29, आ-46, हा-82

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें– 'दावते-हक़')

● **हिकमते-तशरीअ (क़ानून लागू किए जाने की हिकमत)**

★ अहकाम को अमल में लाने में तदरीज

सूरा-30, हा-59

★ क़ुरआन में अहकाम किस हिकमत के साथ दिए गए हैं?

सूरा-24 का परिचय

★ क़ुरआन किस तरह अपने अहकाम की मस्लहतें बयान करता है?

सूरा-24, आ-28 से 31, 58 से 60

● **हिजरत**

★ दीन में इसकी अहमियत

सूरा-29, आ-56, हा-94

★ इसके मुहर्रिकात और इसकी अख़लाक़ी बुनियादें

सूरा-29, आ-56 से 60, हा-94 से 99

★ इसका अज्रे-अज़ीम

सूरा-22, आ-58, 59

● **हिजरते-मदीना**

★ किन हालात में हुई?

सूरा-22, हा-81

★ किस तरह इस्लाम-दुश्मनों के लिए फ़ितना बन गई थी?

सूरा-22, हा-101

● **हिजरते-हबशा**

★ किन हालात में हुई?

सूरा-19 का परिचय; सूरा-21, हा-37; सूरा-29 का परिचय; सूरा-29, हा-1, 95 से 99

★ इसके असरात और नतीजे

सूरा-19 का परिचय; सूरा-26, हा-123; सूरा-28, आ-52 से 55, हा-72 से 77

★ हबश में ईसाइयों के सामने दीन पेश करने के लिए हिदायतें

सूरा-29, आ-46, 47, हा-81 से 83

★ नज्जाशी के दरबार में हज़रत जाफ़र (रज़ि.) की तक़रीर

सूरा-19 का परिचय; सूरा-19, हा-25

● **हिदायत**

★ सिर्फ़ ख़ुदा ही सही राहनुमाई करनेवाला है

सूरा-28, आ-49, 50

★ अल्लाह किस तरह हर चीज़ की रहनुमाई करता है?

सूरा-20, आ-50, हा-23

★ अल्लाह किस तरह इनसान की रहनुमाई करता है?

सूरा-26, आ-78, हा-58

★ अल्लाह की हिदायत की पैरवी ही में इनसान की फ़लाह है

सूरा-20, आ-123

★ हिदायत के ज़रिए (साधन)

सूरा-22, आ-8, 9, हा-10 से 12

★ हिदायत इख़्तियार करनेवाला अपना ख़ुद भला करता है

सूरा-20, आ-47; सूरा-27, आ-92

★ अल्लाह के नूर की तरफ़ हिदायत पानेवाले कौन लोग हैं?

सूरा-24, आ-36 से 38

★ अल्लाह कैसे लोगों को हिदायत देता है?

सूरा-28, आ-52, 53

★ वह कैसे लोगों को हिदायत नहीं देता है?

सूरा-18, आ-57, हा-54; सूरा-28, आ-50

★ हिदायत पाने की वाहिद सूरत ईमान और इत्तिबा-ए-रसूल है

सूरा-24, आ-54

★ हिदायत में तरक़्क़ी का मफ़हूम

सूरा-18, आ-13, हा-10; सूरा-19, आ-76, हा-46

(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— 'तक़दीर' और 'ज़लालत')

● **हिसाब**

(देखें— 'आख़िरत')

● **हुक्म**

★ नबी को हुक्म अता करने का मतलब

सूरा-28, हा-19

★ 'हुक्म' और 'इल्म' के मानी

सूरा-28, हा-19

● **हूद (अलैहि.)**

★ उनका क़िस्सा

सूरा-23, आ-31 से 41; सूरा-26, आ-123 से 139

☆☆☆